ओ३म्

अथर्ववेद

भाषा भाष्य

क्षेमकरणदास त्रिवेदी

S.4 V2

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20/5

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी..........
पु०सं०..218
पुस्तकालय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी.........
पु०सं०.....
भारती पुस्तकालय
20/5

ओ३म्

अथर्ववेद

—भाषा भाष्य—

[अष्टम काण्ड से बीस काण्ड तक]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज स्थापना-शताब्दी-प्रकाशन

●

प्रकाशक
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान नई दिल्ली-१

● [९–१०]

अथर्ववेद (आर्य भाषा भाष्य)

(अष्टम काण्ड से बीस काण्ड तक)

श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी कृत भाष्य

सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०७३
विक्रमाब्द २०३०
दयानन्दाब्द १४९

●

मूल्य ४० रुपये

●

मुद्रक
चतुरसेन
सार्वदेशिक प्रेस, दरियागंज, दिल्ली-६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारती पुस्तकालय

२१८

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

अथर्व० १९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक-पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति, पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

शुक्ल

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे कृपानिधे !

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो-
ऽनन्तो योन्यायकृच्छुचिः ।
भूयात्तमां सहायो नो
दयालुः सर्वशक्तिमान् ।।१।।

व्याख्यान—जो परमात्मा, सबका आत्मा, सत् चित् आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्यायकारी, निर्मल, सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्य वाला हमारा इष्ट देव है वह हमको सहाय नित्य देवे, जिससे महा कठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों। हे कृपानिधे ! यह काम हमारा आप ही सिद्ध करने वाले हो, हम आशा करते हैं कि आप अवश्य हमारी कामना सिद्ध करेंगे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिथी ...... पुस्तक ...... भारती पुस्तकालय

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

अष्टमं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१॥

१—२१ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ पुरोबृहती त्रिष्टुप्, २, ३, १७—२१ अनुष्टुप्, ४, ९, १५, १६ प्रस्तारपङ्क्तिः, ५, ६, १०, ११ त्रिष्टुप् ७ भुरिक् त्रिपदा त्रिष्टुप, ८ विराट् पथ्या बृहती, १२ त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती, १३ त्रिपदा भुरिङ् महाबृहती, १४ एकावसाना द्विपदा साम्नी भुरिग् बृहती ॥

मनुष्यकर्त्तव्योपदेशः—मनुष्य कर्त्तव्य का उपदेश ॥

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम्।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥१॥

भाषार्थः—(अन्तकाय) मनोहर करने वाले [परमेश्वर] को (मृत्यवे) मृत्यु नाश करने के लिये (नमः) नमस्कार है, [हे मनुष्य!] (ते) तेरे (प्राणाः) प्राण और (अपानाः) अपान (इह) इस [परमेश्वर] में (रमन्ताम्) रमें रहें। (इह) इस [जगत्] में (अयम्) यह (पुरुषः) पुरुष (असुना सह) बुद्धि के साथ (सूर्यस्य) सब के चलाने वाले सूर्य [अर्थात् परमेश्वर] के (भागे) ऐश्वर्य समूह के बीच (अमृतस्य लोके) अमर लोक [मोक्षपद] में (अस्तु) रहे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य अपने आत्मा को परमात्मा के गुणों में निरन्तर लगाते हैं, वे सर्वथा उन्नति करते हैं ॥१॥

सूर्य परमेश्वर का नाम है—यजु० ७। ४२। (सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च) सूर्य चेतन और जड़ का आत्मा है ॥

उदे॑नं॒ भगो॑ अग्रभी॒दुदे॑नं॒ सोमो॑ अंशु॒मान् ।
उदे॑नं म॒रुतो॑ दे॒वा उदि॑न्द्रा॒ग्नी स्व॒स्तये॑ ॥२॥

भाषार्थः—(भगः) सेवनीय सूर्य ने (एनम्) इसे (उत्) ऊपर को, (अंशुमान्) अच्छी किरणों वाले (सोमः) चन्द्रमा ने (एनम्) इसे (उत्) ऊपर को (अग्रभीत्) ग्रहण किया है। (देवाः) दिव्य (मरुतः) वायुगणों ने (एनम्) इसे (उत्) ऊपर को, (इन्द्राग्नी) बिजुली और [भौतिक] अग्नि ने (स्वस्तये) अच्छी सत्ता के लिये (उत्) ऊपर को [ग्रहण किया है] ॥२॥

भावार्थः—जो विज्ञानी पुरुष सूर्य आदि संसार के सब पदार्थों से उपकार लेते हैं, वे कल्याण भोगते हैं ॥२॥

इ॒ह ते॒ऽसु॑रि॒ह प्रा॒ण इ॒हायु॑रि॒ह ते॒ मनः॑ ।
उत् त्वा॒ निर्ऋ॑त्याः॒ पाशे॑भ्यो॒ दैव्या॑ वा॒चा भ॑रामसि ॥३॥

भाषार्थः—(इह) इस [परमेश्वर] में (ते) तेरी (असुः) बुद्धि, (इह) इस में (प्राणः) प्राण, (इह) इसमें (आयुः) जीवन, (इह) इसमें (ते) तेरा (मनः) मन [हो]। (त्वा) तुझको (निर्ऋत्याः) महा विपत्ति [अविद्या] के (पाशेभ्यः) जालों से (दैव्या) दैवी (वाचा) वाणी [वेद विद्या] के साथ (उत्) ऊपर (भरामसि) हम धरते हैं ॥३॥

भावार्थः मनुष्य परमात्मा की आज्ञापालन में सब इन्द्रियोंसहित आत्मसमर्पण करें, यही विपत्तियों से बचने के लिये वेद का उपदेश है ॥३॥

उत् क्रा॒मातः॑ पुरुष॒माव॑ पत्था मृ॒त्योः पड्वी॑शमवमु॒ञ्चमा॑नः ।
मा च्छि॑त्था अ॒स्माल्लो॒काद॒ग्नेः सूर्य॑स्य सं॒दृशः॑ ॥४॥

भाषार्थः—(पुरुष) हे पुरुष ! (अतः) इस [वर्तमान दशा] से (उत् क्राम) आगे डग बढ़ा, (मृत्योः) मृत्यु [अज्ञान, निर्धनता आदि] की (पड्वीशम्) बेड़ी को (अवमुञ्चमानः) छोड़ता हुआ (मा अव पत्थाः) मत नीचे गिर। (अस्मात् लोकात्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लोक [वर्तमान अवस्था] से, (अग्नेः) अग्नि [शरीर और आत्मबल] से, और (सूर्यस्य) सूर्य के (संदृशः) दर्शन [नियम] से (मा च्छित्थाः) मत अलग हो ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य अपनी वर्तमान दशा से आगे बढ़ने के लिये नित्य पुरुषार्थ करे ॥४॥

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥५॥

भाषार्थः (तुभ्यम्) तेरे लिये (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में चलने वाला (वातः) वायु (पवताम्) शुद्ध हो, (तुभ्यम्) तेरे लिये (आपः) जलधारायें (अमृतानि) अमृतवस्तुयें (वर्षन्तु) बरसावें। (सूर्यः) सूर्य (ते) तेरे (तन्वे) शरीर के लिये (शम्) शान्ति से (तपाति) तपे, (मृत्युः) मृत्यु (त्वाम्) तुझ पर (दयताम्) दयाकरे (मा प्र मेष्ठाः) तू मत दुःखी होवे ॥५॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य को वायु आदि पदार्थ सुखदायी होते हैं, और वह क्लेशों में नहीं पड़ता ॥५॥

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥६॥

भाषार्थः—(पुरुष) हे पुरुष ! (ते) तेरा (उद्यानम्) चढ़ाव [होवे], (न) न (अवयानम्) गिराव, (ते) तेरे लिये (जीवातुम्) जीविका और (दक्षतातिम्) बल [योग्यता] (कृणोमि) मैं करता हूं। (हि) अवश्य (इमम्) इस (अमृतम्) अमर [सनातन], (सुखम्) सुखदायक (रथम्) रथ पर (आ रोह) चढ़ जा [उपदेश मान], (अथ) फिर (जिर्विः) स्तुति योग्य [होकर] तू (विदथम्) विचार समाज में (आ वदासि) भाषण कर ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वराज्ञा और गुरु शिक्षा से विघ्नों को हटाकर आगे बढ़ते हैं, वे संसार में स्तुति पाकर सभाओं के अधिष्ठाता होते हैं ॥६॥

मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥७॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरा (मनः) मन (तत्र) वहां [अधर्म में] (मा गात्) न जावे, और (मा तिरो भूत्) लुप्त न होवे, (जीवेभ्यः) जीवों के लिये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मा प्र मदः) भूल मत कर, (पितॄन् अनु) पितरों [माननीय माता पिता आदि विद्वानों] से न्यून होकर (मा गाः) मत चल। (विश्वे) सब (देवाः) इन्द्रियां (इह) इस [शरीर] में (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षन्तु) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य अधर्म छोड़ कर सावधानी से सब प्राणियों पर उपकार करें, और माननीय पुरुषों से हेटे न रहकर जितेन्द्रिय और प्रबलेन्द्रिय रहें ॥७॥

मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥८॥

भाषार्थः—(गतानाम्) [उन] गये हुए [कुमार्गियों] का (आ) कुछ भी (मा दीधीथाः) मत प्रकाश कर, (ये) जो [मनुष्य को धर्म से] (परावतम्) दूर (नयति) ले जाते हैं। (तमसः) अन्धकार में से (आ रोह) ऊपर चढ़, (ज्योतिः) प्रकाश में (आ इहि) आ, (ते) तेरे (हस्तौ) दोनों हाथों को (आ रभामहे) हम पकड़ते हैं ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य कुमार्गियों के मत में न फंस कर परस्पर ज्ञान बढ़ाकर उन्नति करें ॥८॥

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥९॥

भाषार्थः—(श्यामः) चलने वाला [प्राणवायु] (च च) और (शबलः) जाने वाला [अपान वायु] (त्वा) तुझको (मा) न [छोड़ें], (यौ) जो दोनों [प्राण और अपान] (यमस्य) नियन्ता मनुष्य के (प्रेषितौ) भेजे हुए, (पथिरक्षी) मार्गरक्षक (श्वानौ) दो कुत्तों [के समान हैं]। (अर्वाङ्) समीप (आ इहि) आ, (मा वि दीध्यः) विरुद्ध मत क्रीड़ा कर, (इह) यहां पर (पराङ्मनाः) उदास मन होकर (मा तिष्ठः) मत ठहर ॥९॥

भावार्थः—मन्त्र के प्रथम पाद में [छोड़ें] पद अध्याहार है। मनुष्य प्राण और अपान द्वारा बल पराक्रम स्थिर रखकर कभी दीन न होवें। प्राण और अपान शरीर की इस प्रकार रक्षा करते हैं जैसे कुत्ते मार्ग में अपने स्वामी की ॥९॥

यजुर्वेद ३४। ५५ में वर्णन है—"तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ) वहां पर दो न सोने वाले और बैठक [शरीर] में बैठने वाले, चलने फिरने वाले [प्राण और अपान] जागते है" ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ।।१०।।

भाषार्थः—(एतम्) इस (पन्थाम्) पथ [अधर्मपथ] पर (मा अनु गाः) मत कभी चल, (एषः) यह (भीमः) भयानक है, (येन) जिस [मार्ग] से (पूर्वम्) पहिले (न इयथ) तू नहीं गया है, (तम्) उसी [मार्ग] को (ब्रवीमि) मैं कहता हूं। (पुरुष) हे पुरुष ! (एतत्) इस (तमः) अन्धकार में (प्र) आगे (मा पत्थाः) मत पद रख (परस्तात्) दूरस्थान [कुपथ] में (भयम्) भय है, (अर्वाक्) इस ओर [धर्म-पथ में] (ते) तेरे लिये (अभयम्) अभय है ।।१०।।

भावार्थः—विद्वानों के निश्चय से मनुष्यों को अधर्म छोड़कर धर्म पर चलना आनन्ददायक है ।।१०।।

रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्व१न्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ।।११।।

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर (ये) जो (अग्नयः) अग्नियां हैं, वे (त्वा) तेरी (रक्षन्तु) रक्षा करें, (यम्) जिसको (मनुष्याः) मनुष्य [यज्ञ आदि में] (इन्धते) जलाते हैं, वह [अग्नि] (त्वा) तेरी (रक्षतु) रक्षा करे। (वैश्वानर) सब नरों में वर्तमान, (जातवेदाः) धन वा ज्ञान उत्पन्न करने वाला [जाठराग्नि तेरी] (रक्षतु) रक्षा करे, (दिव्यः) आकाश में रहनेवाला [सूर्य] (विद्युता सह) बिजुली के साथ (त्वा) तुझ को (मा प्र धाक्) न जला डाले ।।११।।

भावार्थः—मनुष्य सब प्रकार के अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेकर शरीर रक्षा करें ।।११।।

मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर । रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च । अन्तरिक्षं रक्षतु देव-हेत्याः ।।१२।।

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझ को (क्रव्याद्) मांस भक्षक [पशु, रोग, आदि] (मा अभि मंस्त) न किसी प्रकार मारे (संकसुकात्) नाश करने वाले [विघ्न] से (आरात्) दूर दूर (चर) चल । (द्यौः) प्रकाशमान ईश्वर (त्वा) तेरी (रक्षतु) रक्षा करे, (पृथिवी) पृथिवी (रक्षतु) रक्षा करे, (सूर्यः) सूर्य (च च) और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चन्द्रमाः) चन्द्रमा दोनों (त्वा) तेरी (रक्षताम्) रक्षा करें। (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक [तुझको] (देवहेत्याः) इन्द्रियों की चोट से (रक्षतु) बचावे ॥१२॥

भावार्थः—जो मनुष्य विघ्नों से बचकर सब पदार्थों का यथावत् उपयोग करते और इन्द्रियों को वश में रखते हैं, वे सुखी रहते हैं ॥१२॥

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम्।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥१३॥

भाषार्थः—(बोधः) बोध [विवेक] (च) और (प्रतीबोधः) प्रतिबोध [चेतनता] (च) निश्चय करके (त्वा) तेरी (रक्षताम्) रक्षा करें, (अस्वप्नः) न सोने वाले (च) और (अनवद्राणः) न भागने वाले [दोनों] (त्वा) तेरी (च) निश्चय करके (रक्षताम्) रक्षा करें। (गोपायन्) चौकसी करने वाले (च) और (जागृविः) जागने वाले [दोनों] (च) अवश्य (त्वा) तुझको (रक्षताम्) बचावें ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्यों को विवेक और चेतनापूर्वक सावधान रहकर रक्षा करनी चाहिये ॥१३॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ५। ३०। १० ॥

ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥१४॥

भाषार्थः—(ते) वे सब (त्वा) तेरी (रक्षन्तु) रक्षा करें, (ते) वे सब (त्वा) तेरी (गोपायन्तु) चौकसी करें, (तेभ्यः) उनके लिये (नमः) नमस्कार है, (तेभ्यः) उनके लिये (स्वाहा) सुन्दरवाणी है ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा से अग्नि, पृथिवी, आदि पदार्थों से [मन्त्र ११—१३] यथावत् उपकार लेकर रक्षा में प्रवृत्त रहें ॥१४॥

जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि ॥१५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (त्वा) तुझको (जीवेभ्यः) जीवों के लिये (समुदे) पूरा उत्तमपन [करने] के लिये (वायुः) वायु, (इन्द्रः) मेघ और (धाता) पोषण करने वाला, (त्रायमाणः) पालन करने वाला (सविता) चलाने वाला सूर्य (दधातु) पुष्ट करे। (त्वा) तुझको (प्राणः) प्राण और (बलम्) बल (मा हासीत्) न छोड़े, (ते) तेरे लिये (असुम्) बुद्धि को (अनु) सदा (ह्वयामसि) हम बुलाते हैं ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य वायु आदि पदार्थों के यथावत् प्रयोग से निरन्तर बुद्धि बढ़ावें ॥१५॥

मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥१६॥

भाषार्थः—(मा) न तो (जम्भः) नाश करने वाला (संहनुः) विघ्न, (मा) न (तमः) अन्धकार, (आ) और (मा) न (बर्हिः) सताने वाली (जिह्वा) जीभ (त्वा) तुझको (विदत्) पावे, (कथा) किस प्रकार से (प्रमयुः) तू गिर जाने वाला (स्याः) होवे। (त्वा) तुझको (आदित्याः) प्रकाशमान विद्वान् लोग और (वसवः) श्रेष्ठ पदार्थ (उत्) ऊपर (भरन्तु) ले चलें और (इन्द्राग्नी) मेघ और अग्नि (स्वस्तये) सुन्दर सत्ता के लिये (उत्) ऊपर [ले चलें] ॥१६॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब विघ्नों और अपवादों से बचकर विद्वानों और उत्तम पदार्थों की प्राप्ति से उन्नति करते हैं, वे अपने जीवन में सुख भोगते हैं ॥१६॥

उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत्।
उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥१७॥

भाषार्थः—(त्वा) तुझको (द्यौः) सूर्य ने (उत्) ऊपर को, (पृथिवी) पृथिवी ने (उत्) ऊपर को और (प्रजापतिः) प्रजापालक परमेश्वर ने (उत्) ऊपर को (अग्रभीत्) ग्रहण किया है। (त्वा) तुझको (सोमराज्ञीः) सोम [अमृत वा चन्द्रमा] को राजा रखनेवाली (ओषधयः) ओषधियों ने (मृत्योः) मृत्यु से [अलगा कर] (उत्) भली भांति (अपीपरन्) पाला है ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर, सूर्य और पृथिवी के नियमों को विचार कर अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके प्रसन्न रहें ॥१७॥

अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः।
इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥१८॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विजय चाहने वाले पुरुषो! (अयम्) यह [शूर पुरुष] (इह) यहां [धर्म्मात्माओं में] (एव) ही (अस्तु) रहे, (अयम्) यह (अमुत्र) वहां [दुष्टों में] (इतः) यहां से [सत्समाज से] (मा गात्) न जावे। (इमम्) इस [पुरुष] को (सहस्रवीर्येण) सहस्रों प्रकार के सामर्थ्य के साथ (मृत्योः) मृत्यु से (उत्) भले प्रकार (पारयामसि) हम पार लगाते हैं ॥१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः मनुष्य एक दूसरे को दुष्कर्मों से बचाकर धर्म में प्रवृत्त कर विज्ञान शिल्प आदि द्वारा अनेक प्रकार बल बढ़ाकर मृत्यु अर्थात् दरिद्रता आदि दुःखों से सुरक्षित रहें ॥१८॥

उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।

मा त्वा व्यस्तकेश्यो३ मा त्वाघरुदो रुदन् ॥१९॥

भाषार्थः—[हे पुरुष !] (त्वा) तुझे (मृत्योः) मृत्यु से (उत्) भले प्रकार (अपीपरम्) मैंने बचाया है। (वयोधसः) धारण करने वाले पदार्थ (सम्) ठीक ठीक (धमन्तु) मिलें। (त्वा) तुझको (मा) न तो (व्यस्तकेश्यः) प्रकाश गिरा देने वाली [विपत्तियां], और (मा) न (त्वा) तुझे (अघरुदः) पाप की पीड़ायें (रुदन्) रुलावें ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों द्वारा अज्ञान से बचकर पुरुषार्थ करके विपत्तियों से छूट कर कभी दुःख न उठावें ॥१९॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।

सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥२०॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझको (आ अहार्षम्) मैंने ग्रहण किया है और (अविदम्) पाया है, तू (पुनर्णवः) नवीन होकर (पुनः) फिर (आ अगाः) आया है। (सर्वाङ्ग) हे सम्पूर्ण [विद्या के] अङ्ग वाले (ते) तेरे लिये (सर्वम्) सम्पूर्ण (चक्षुः) दर्शन सामर्थ्य (च) और (ते) तेरे लिये (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (अविदम्) मैंने पायी है ॥२०॥

भावार्थः - जिस पुरुष को आचार्य स्वीकार करके विद्यादान देकर द्विजन्मा बनाता है, वह सब प्रकार विद्या से प्रकाशित होकर उत्तम जीवन-युक्त होता है ॥२०॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०।१६१।५॥

व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।

अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥२१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (ज्योतिः) ज्योति (वि) विविध प्रकार (अवात्) आई है और (अभूत्) उपस्थित हुई है, (त्वत्) तुझ से (तमः) अन्धकार (अप अक्रमीत्) चल दिया है। (त्वत्) तुझसे (मृत्युम्) मृत्यु को और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(निर्ऋतिम्) अलक्ष्मी को (अप) अलग और (यक्ष्मम्) राजरोग को (अप) अलग (नि दध्मसि) हम धरते हैं ॥२१॥

भावार्थः—मनुष्य वेदद्वारा अज्ञान का नाश करके दुःखों और क्लेशों से छूट कर नीरोग होकर आनन्द भोगें ॥२१॥

सूक्तम् ॥२॥

१ २८। १—६, ११–१३, १५, १६, १९—२८ प्रजापतिः; ७ भवाशर्वौ; ८, १० मृत्युः, ९ विश्वे देवाः, १४ द्यावापृथिव्यादयः, १७ वप्ता, १८ व्रीहियवौ देवते ॥ १, २, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३, २६ आस्तारपङ्क्तिः, ४ प्रस्तारपङ्क्तिः, ५, १०, १६–१८, २०, २३–२५, २७ अनुष्टुप्ः, ६, १५ पथ्या पङ्क्तिः, ८, १३ त्रिष्टुप् ज्योतिष्मती, ९ पञ्चपदा जगती, ११ विष्टारपङ्क्ति, १२, २२; २८ पुरस्ताद् बृहती, १४ त्र्यवसाना षट् पदा जगती, १९ उपरिष्टाद् बृहती, २१ बृहती छन्दः ॥

कल्याणप्राप्त्युपदेशः—कल्याण की प्राप्ति का उपदेश ॥

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (अमृतस्य) अमृत की (इमाम्) इस (श्नुष्टिम्) प्राप्ति को (आ) भलीभांति (रभस्व) ग्रहण कर, (अच्छिद्यमाना) विना कटती हुई (जरदष्टिः) स्तुति की व्याप्ति [फैलाव] (ते) तेरे लिये (अस्तु) होवे। (ते) तेरे (असुम्) बुद्धि और (आयुः) जीवन को (पुनः) वार वार (आ) अच्छे प्रकार (भरामि) मैं पुष्ट करता हूं, (रजः) रजोगुण और (तमः) तमोगुण को (मा उप गाः) मत प्राप्त हो और (मा प्र मेष्ठाः) मत पीड़ित हो ॥१॥

भावार्थः मनुष्य प्रयत्नपूर्वक सत्त्वगुण के प्रतिबन्धक रजोगुण और हित-अहित ज्ञान के बाधक तमोगुण को छोड़कर सात्त्विक होकर जीवन को सफल करें ॥१॥

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (जीवताम्) जीते हुए मनुष्यों की (ज्योतिः) ज्योति (अर्वाङ्) सन्मुख होकर (अभ्येहि) सब ओर से प्राप्त कर, (त्वा) तुझ को (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले [जीवन] के लिये (आ) सब प्रकार (हरामि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार करता हूं। (मृत्युपाशान्) मृत्यु के फन्दों और (अशस्तिम्) अपकीर्त्ति को (अवमुञ्चन्) छोड़ता हुआ मैं (द्राघीयः) अधिक दीर्घ और (प्रतरम्) अधिक उत्तम (आयुः) जीवन को (ते) तेरे लिये (दधामि) पुष्ट करता हूं ।।२।।

भावार्थः—मनुष्य जीते हुए अर्थात् पुरुषार्थी जनों का अनुकरण करके मानसिक और शारीरिक रोगों और निन्दित कर्मों से अलग रहकर कीर्ति बढ़ावें ।।२।।

वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ।।३।

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (वातात्) वायु से (ते) तेरे (प्राणम्) प्राण को और (सूर्यात्) सूर्य से (तव) तेरी (चक्षुः) दृष्टि (अहम्) मैंने (अविदम्) पाया है। (यत्) जो (ते) तेरा (मनः) मन है, (तत्) उस को (त्वयि) तुझ में (धारयामि) स्थापित करता हूं, (अङ्गैः) [शास्त्र के] सब अङ्गों से (सम् वित्स्व) यथावत् जान, (जिह्वया) जीभ से (अलपन्) बकवाद न करता हुआ (वद) बोल ।।३।।

भावार्थः—जैसे वायु से प्राण और सूर्य से दृष्टि स्थिर रहती है, वैसे ही मनुष्य आत्मा में मन को निश्चल करके पदार्थों के तत्त्व को साक्षात् करके सारांश का उपदेश करे ।।३।।

प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ।।४।।

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझ को (द्विपदाम्) दो पायों और (चतुष्पदाम्) चौपायों के (प्राणेन) प्राण से (अभि) सब ओर से (सम् धमामि) मैं फूंकता हूं, (इव) जैसे (जातम्) उत्पन्न हुए (अग्निम्) अग्नि को। (मृत्यो) हे मृत्यु ! (ते) तेरी (चक्षुषे) दृष्टि को (नमः) नमस्कार और (ते) तेरे (प्राणाय) प्राण [प्रबलता] को (नमः) नमस्कार (अकरम्) मैंने किया है ।।४।।

भावार्थः—मनुष्य मृत्यु की दृष्टि और प्रबलता विचार कर दोपाये और चौपाये आदि प्राणियों से पुरुषार्थ सीखकर अपने पराक्रम से प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी होवें ।।४।।

अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि ।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ।।५।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अयम्) यह [जीव] (जीवतु) जीता रहे (मा मृत) न मरे, (इमम्) इस [जीव] को (सम् ईरयामसि) हम वायु समान [शीघ्र] चलाते हैं। (अस्मै) इस के लिये मैं (भेषजम्) औषध (कृणोमि) करता हूं (मृत्यो) हे मृत्यु ! (पुरुषम्) [इस] पुरुष को (मा वधीः) मत मार ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुषार्थी निरालसी होकर धर्म में वायु समान शीघ्र चलते हैं, वे अमर मनुष्य दुःख में नहीं फंसते ॥५॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवे स्मा अरिष्टतातये ॥६॥

भाषार्थः —(जीवलाम्) जीवन देने वाली, (नघरिषाम्) न कभी हानि करने वाली, (जीवन्तीम्)जीव रखने वाली, (त्रायमाणाम्) रक्षा करने वाली, (सहमानाम्) [रोग] दबा लेने वाली, (सहस्वतीम्) बल वाली (ओषधीम्) ओषधि [समान वेद विद्या] को (इह) यहां [आत्मा में] (अस्मै) इस[पुरुष] को (अरिष्टतातये) शुभ करने के लिये (अहम्) मैं (हुवे) बुलाता हूं ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य ओषधि समान वेदविद्या का सेवन करते हैं; वे शुभ भोगते हैं ॥६॥

(जीवला, जीवन्ती, और त्रायमाणा) ओषधि विशेष भी हैं ॥

अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥७॥

भाषार्थः—[हे मृत्यु—म० ८] (अधि ब्रूहि) ढाढ़स दे, (मा आ रभथाः) मत पकड़, (इमम्) इस [पुरुष] को (सृज) छोड़, यह (तव एव सन्) तेरा ही होकर (सर्वहायाः) सब गति वाला (इह) यहां (अस्तु) रहे। (भवाशर्वौ) भव, [सुख देने वाले प्र ण] और शर्व [क्लेश वा मल नाश करने वाले अपान वायु] तुम दोनों (मृडतम्) प्रसन्न हो, (शर्म) सुख (यच्छतम्) दान करो और (दुरितम्) दुर्गति (अपसिध्य) हटा कर (आयुः) जीवन (धत्तम्) पुष्ट करो ॥७॥

भावार्थः मनुष्य मृत्यु अर्थात् विपत्ति को सम्पत्ति का कारण समझ-कर पूर्ण साहसी होकर आत्मिक और शारीरिक बल से विघ्न हटाकर कीर्ति-मान् होवें ॥७॥

अस्मै मृत्यो अधिब्रूहीमं दयस्वोदितो३ऽयमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मृत्यो) हे मृत्यु (अस्मै) इस [मनुष्य] को (अधि ब्रूहि) ढाढ़स दे, (इमम्) इस पर (दयस्व) दया कर, (अयम्) यह [मनुष्य] (उत् इतः=उदितः) उदय होता हुआ (एतु) चले। (अरिष्टः) निर्हानि, (सर्वाङ्गः) पूरे अङ्गों वाला, (सुश्रुत्) भली भांति सुनने वाला, (जरसा) स्तुति के साथ (शतहायनः) सौ वर्षों वाला होकर (आत्मना) आत्मबल से (भुजम्) पालन सामर्थ्य (अश्नुताम्) प्राप्त करे ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य विपत्तियों में ढाढ़स बांधकर आगे बढ़ते जाते हैं वे आत्मावलम्बी [सूर्य के समान अन्धकार से] उदय होकर पूरा सुख भोगते हैं ॥८॥

देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम्। आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥९॥

भाषार्थः—(देवानाम्) इन्द्रियों की (हेतिः) चोट (त्वा) तुझे (परि) सर्वथा (वृणक्तु) त्यागे, मैं (त्वा) तुझे (रजसः) राग से (पारयामि) पार करता हूं, (त्वा) तुझे (मृत्योः) मृत्यु से (उत्) भले प्रकार (अपीपरम्) मैं ने बचाया है। (क्रव्यादम्) मांसभक्षक [रोगोत्पादक] (अग्निम्) अग्नि को (आरात्) दूर (निरूहन्) हटाता हुआ मैं (ते) तेरे (जीवातवे) जीवन के लिये (परिधिम्) परिकोटा (दधामि) स्थापित करता हूं ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य इन्द्रियों के विकार और विघ्नों को हटा कर अपना जीवन स्थिर करें ॥९॥

यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम्।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥१०॥

भाषार्थः—(मृत्यो) हे मृत्यु! (यत्) जो (ते) तेरा (रजसम्) संसार सम्बन्धी (नियानम्) मार्ग (अनवधर्ष्यम्) अजेय है। (तस्मात्) उस (पथः) मार्ग से (इमम्) इस [पुरुष] को (रक्षन्तः) बचाते हुए हम (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (ब्रह्म) ब्रह्म [वेद विद्या वा परमेश्वर] को (वर्म) कवच (कृण्मसि) बनाते हैं ॥१०॥

भावार्थः जिस कठिनाई को सामान्य पुरुष नहीं रोक सकते, उसको ब्रह्मवादी जन पार करके मोक्ष सुख पाते हैं ॥१०॥

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान् ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (प्राणापानौ) प्राण और अपान, (जराम्=जरया) स्तुति के साथ (मृत्युम्) मृत्यु [प्राणत्याग], (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) जीवन और (स्वस्ति) कल्याण [अच्छी सत्ता] को (कृणोमि) मैं करता हूं। (वैवस्वतेन) मनुष्य सम्बन्धी [कर्म] द्वारा (प्रहितान्) भेजे हुए, (चरतः) घूमते हुए (सर्वान्) सब (यमदूतान्) मृत्यु के दूतों को (अप सेधामि) मैं हटाता हूं ॥११॥

भावार्थः—ब्रह्मवादी लोग अपनी शारीरिक और आत्मिक दशा सुधारकर सब दरिद्रता, रोग आदि दुःखों को हटाते हैं ॥११॥

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवाप हन्मसि ॥१२॥

भाषार्थः—(अरातिम्) निर्दानता, (निर्ऋतिम्) महामारी [दरिद्रता आदि महाविपत्ति] को (आरात्) दूर, (ग्राहिम्) जकड़ने वाली पीड़ा, (क्रव्यादः) मांस खाने वाले [रोगों] और (पिशाचान्) मांस भखने वाले [जीवों] को (परः) परे। और (यत्) जो कुछ (दुर्भूतम्) कुशील (रक्षः) राक्षस [दुष्ट प्राणी है], (तत्) उस (सर्वम्) सब को (तमःइव) अन्धकार के समान (अप हन्मसि) हम मार हटाते हैं ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य हिंसक रोगों, जीवों और दोषों से चौकस रहकर सुखी रहें ॥१२॥

अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः । यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥१३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे (प्राणम्) प्राण को (अमृतात्) अमर, (आयुष्मतः) बड़ी आयु वाले, (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले (अग्नेः) अग्नि [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (वन्वे) मैं मांगता हूँ। (यथा) जिससे (न रिष्याः) तू न मरे, (सजूः) [उसके साथ] प्रीति वाला तू (अमृतः) अमर (असः) रहे, मैं (तत्) वह [कर्म] (ते तेरे लिये (कृणोमि) करता हूं, (तत् उ) वही (ते) तेरे लिये (सम्) यथावत् (ऋध्यताम्) सिद्ध होवे ॥१३॥

भावार्थः जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा और गुरुजनों की शिक्षा में चलते हैं, वे बलवान् होकर सुख भोगते हैं ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥१४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी (शिवे) मङ्गलकारी, (असन्तापे) सन्ताप रहित और (अभिश्रियौ) सब ओर से ऐश्वर्यप्रद (स्ताम्) होवें। (सूर्यः) सूर्य (ते) तेरे लिये (शम्) शान्ति से (आ तपतु) तपता रहे, और (वातः) पवन (ते) तेरे (हृदे) हृदय के लिये (शम्) शान्ति से (वातु) चले। (शिवाः) मङ्गलकारी, (दिव्याः) दिव्य गुणवाले, (पयस्वतीः) दूध [उत्तम रस] वाले (आपः) जल (त्वा अभि) तेरे लिये (क्षरन्तु) बहें ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य आकाश पृथिवी आदि पदार्थों से यथावत् उपकार लेकर सुख प्राप्त करें ॥१४॥

शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥१५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (ओषधयः) ओषधें [अन्न आदि] (शिवाः) मङ्गलकारी (सन्तु) होवें मैंने (त्वा) तुझको (अधरस्याः) नीची [पृथिवी] से (उत्तराम्) ऊंची (पृथिवीम् अभि) पृथिवी पर (उत् अहार्षम्) उठाया है। (तत्र) वहां [ऊंचे स्थान पर] (त्वा) तुझको (उभा) दोनों (आदित्यौ) प्रकाशमान (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा [के समान नियम] (रक्षताम्) बचावें ॥१५॥

भावार्थः– मनुष्य अन्न आदि पदार्थों के सुन्दर उपयोग से दिन दिन अधिक उन्नति करके प्रत्यक्ष सूर्य चन्द्रमा के समान परस्पर पालन करें ॥१५॥

यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे३ तत् कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥१६॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (यत्) जिस (वासः) वस्त्र को (परिधानम्) ओढ़ना और (याम्) जिस (नीविम्) पेटी [फेंटा] को (ते) अपने लिये (त्वम्) तू (कृणुषे) बनाता है। (तत्) उसे (ते) तेरे (तन्वे) शरीर के लिये (शिवम्) सुख देने वाला (कृण्मः) हम बनाते हैं, वह (ते) तेरे लिये (संस्पर्शे) छूने में (अद्रूक्ष्णम्) अन-खुरखुरा (अस्तु) होवे ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य कवच, अङ्गरक्षा आदि वस्त्र शरीर के लिये सुखदायक बनावें ॥१६॥

यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥१७॥

भाषार्थः—(**वप्ता**) नापित तू (**मर्चयता**) [केशों का] पकड़ने वाले (**सुतेजसा**) बड़े तेज (**यत्**) जिस (**क्षुरेण**) छुरा से (**केशश्मश्रु**) केश और दाढ़ी मूंछ को (**वपसि**) बनाता है। [उससे] (**नः**) हमारे (**शुभम्**) सुन्दर (**मुखम्**) मुख और (**आयुः**) जीवन को (**मा प्र मोषीः**) मत घटा ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्य केशछेदन करा के मुख और जीवन की शोभा बढ़ावें ॥१७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से स्वामिदयानन्दकृतसंस्कारविधि, चूड़ा कर्म प्रकरण में आया है ॥

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥१८॥

भाषार्थः [हे मनुष्य!] (**ते**) तेरे लिये (**व्रीहियवौ**) चावल और जो (**शिवौ**) मङ्गल करनेवाले, (**अबलासौ**) बल के न गिराने वाले और (**अदोमधौ**) भोजन में हर्ष करनेवाले (**स्ताम्**) हों। (**एतौ**) यह दोनों (**यक्ष्मम्**) राज रोग को (**वि**) विशेष करके (**बाधेते**) हटाते हैं, (**एतौ**) यह दोनों (**अंहसः**) कष्ट से (**मुञ्चतः**) छुड़ाते हैं ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्यों को चावल और जौ आदि सात्त्विक अन्न का भोजन प्रसन्न होकर करना चाहिये, जिससे वह पुष्टिकारक हो ॥१८॥

यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः ।
यदाद्यं१ यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ॥१९॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (**यत्**) जो तू (**कृष्याः**) खेती का [उपजा] (**धान्यम्**) धान्य (**अश्नासि**) खाता है, और (**यत्**) जो तू (**पयः**) दूध वा जल (**पिबसि**) पीता है। (**यत्**) चाहे (**आद्यम्**) पुराना [धरा हुआ], (**यत्**) चाहे (**अनाद्यम्**) नवीन [पुराने से भिन्न] हो, (**सर्वम्**) वह सब (**अन्नम्**) अन्न (**ते**) तेरे लिये (**अविषम्**) निर्विष (**कृणोमि**) करता हूं ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः जो मनुष्य खान पान विचारपूर्वक करते हैं, वे नीरोग रहते हैं ॥१९॥

सायणाचार्य ने अर्थ किया है—(आद्यम्) खाने योग्य, सुख से भक्षणीय और (अनाद्यम्) न खाने योग्य, कठिन वा अत्यन्त कटु तिक्त द्रव्य ॥

अह्ने॑ च त्वा रात्र॑ये चो॒भाभ्यां॒ परि॑ दद्मसि ।

अ॒राये॑भ्यो जिघ॒त्सुभ्य॑ इ॒मं मे॒ परि॑ रक्षत ॥२०॥

भाषार्थः—(त्वा) तुझे (उभाभ्याम्) दोनों (अह्ने) दिन (च च) और (रात्रये) रात्रि को (परि दद्मसि) हम सौंपते हैं। (अरायेभ्यः) निर्दानी और (जिघत्सुभ्यः) खाना चाहने वाले लोगों से (इमम्) इस [पुरुष] को (मे) मेरे लिये (परि) सब प्रकार (रक्षत) तुम बचाओ ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्य प्रकाश अन्धकार और समय कुसमय का विचार करके शत्रुओं से परस्पर रक्षा करें ॥२०॥

श॒तं ते॒ऽयुतं॑ हाय॒नान् द्वे यु॒गे त्रीणि॑ च॒त्वारि॑ कृण्मः ।

इ॒न्द्रा॒ग्नी विश्वे॑ दे॒वास्तेऽनु॑ मन्यन्ता॒मह॑णीयमानाः ॥२१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (ते) तेरे लिये (शतम्) सौ और (अयुतम्) दश सहस्र (हायनान्) वर्षों को [क्रम से] (द्वे युगे) दो युग, (त्रीणि) तीन [युग] और (चत्वारि) चार [युग] (कृण्मः) हम करते हैं। (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि और (ते) वे [प्रसिद्ध] (विश्वे देवाः) सब दिव्य पदार्थ [सूर्य पृथिवी आदि] (अहृणीयमानाः) संकोच न करते हुए (अनुमन्यन्ताम्) अनुकूल रहें ॥२१॥

भावार्थः—परमेश्वर ने यह सृष्टि और काल चक्र मनुष्य के उपकार के लिये बनाये हैं। विज्ञानी पुरुष परमेश्वर की अपार महिमा में अपना पराक्रम बढ़ाकर नये नये आविष्कार करके अमर नाम करते हैं ।२१॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आ चुका है—अ० १।३५।४॥

मन्त्र के पूर्वार्द्ध में सृष्टि का समय क्रम कलियुग, द्वापर त्रेता और सत्ययुग और वर्षों का अर्थ दैववर्ष जान पड़ता है, सो इस प्रकार है ॥

सन्धिकाल	युगकाल
१००×१=१००	१०,०००×१=१०,०००
१००×२=२००	१०,०००×२=२०,०००
१००×३=३००	१०,०००×३=३०,०००
१००×४=४००	१०,०००×४=४०,०००
योगसन्धि १,००० वर्ष	योगयुग १,००,०००

योगसन्धि और युग १,०१,०००

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—अथर्ववेद काण्ड ८ सूक्त २ मन्त्र २१ के अनुसार युगवर्ष गणना ॥

सूचना—मन्त्र में केवल [सौ, दश सहस्र, वर्ष, दो युग, तीन और चार] पद हैं, कलि आदि पदों की कल्पना की गयी है। एक दैववर्ष में ३६० [तीन सौ साठ] मानुष वा सौर वर्ष होते हैं ॥

सन्धि और युग	कलि		द्वापर		त्रेता		कृतयुग		चतुर्युगी	
	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष
सन्धि	१००	३६,०००	२००	७२,०००	३००	१,०८,०००	४००	१,४४,०००	१,०००	३,६०,०००
युग	१०,०००	३६,००,०००	२०,०००	७२००,०००	३०,०००	१,०८,००,०००	४०,०००	१,४४,००,०००	१,००,०००	३,६०,००,०००
योग	१०,१००	३६,३६,०००	२०,२००	७२,७२,०००	३०,३००	१,०९,०८,०००	४०,४००	१,४५,४४,०००	१,०१,०००	३,६३,६०,०००

२—मनु अध्याय १ श्लोक ६९—७० और सूर्य सिद्धान्त अध्याय १ श्लोक १५–१७ के अनुसार युग वर्ष गणना ॥

सन्धि और युग	कृतयुग		त्रेतायुग		द्वापरयुग		कलियुग		चतुर्युगी	
	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष
सन्ध्या वर्ष	४००	१,४४,०००	३००	१,०८,०००	२००	७२,०००	१००	३६,०००	१,०००	३,६०,०००
युग वर्ष	४,०००	१४,४०,०००	३,०००	१०,८०,०००	२,०००	७,२०,०००	१,०००	३,६०,०००	१०,०००	३६,००,०००
संध्यांशवर्ष	४००	१,४४,०००	३००	१,०८,०००	२००	७२,०००	१००	३६,०००	१,०००	३,६०,०००
योग···	४,८००	१७,२८,०००	३,६००	१२,९६,०००	२४,००	८,६४,०००	१,२००	४,३२,०००	१२,०००	४३,२०,०००

[आगे मनु श्लोक ७१, ७२ के अनुसार बारह सहस्र चतुर्युगी का एक दैव युग और एक सहस्र दैव युग का ब्रह्मा का एक दिन, और इतनी ही रात्री। अर्थात १२,००० दैव वर्ष × १००० युग × ३६० मानुष वर्ष = ४,३ २,००,००,००० [चार अरब बत्तीस करोड़] मानुष वर्ष का एक दिन और इतनी वर्षों की ब्रह्मा की रात्रि है, परन्तु मन्त्र का संबन्ध इससे नहीं है] ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श॒रदे॑ त्वा हेम॒न्ताय॑ वस॒न्ताय॑ ग्री॒ष्माय॒ परि॑ दद्मसि ।
व॒र्षाणि॑ तु॒भ्यं॑ स्यो॒नानि॒ येषु॒ वर्ध॑न्त॒ ओष॑धीः ॥२२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझे (शरदे) शरद्, (हेमन्ताय) हेमन्त [और शिशिर], (वसन्ताय) वसन्त और (ग्रीष्माय) ग्रीष्म [ऋतु] को (परि दद्मसि) हम सौंपते हैं। (वर्षाणि) वर्षायें (तुभ्यम्) तेरे लिये (स्योनानि) मनभावनी [होवें], (येषु) जिनमें (ओषधीः) औषधें [अन्न आदि वस्तुएं] (वर्द्धन्ते) बढ़ती हैं ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्य सब ऋतुओं से यथावत् उपयोग लेकर सुखी रहें ॥२२॥

इस मन्त्र का मिलान अ० ६। ५५। २। से करो जहां छह ऋतुयें वर्णित हैं ॥

मृ॒त्युरी॑शे द्वि॒पदां॑ मृ॒त्युरी॑शे॒ चतु॑ष्पदाम् ।
तस्मा॑त् त्वां मृ॒त्योर्गोप॑ते॒रुद्भ॑रामि॒ स मा बि॑भेः ॥२३॥

भाषार्थः—(मृत्युः) मृत्यु (द्विपदाम्) दोपायों का (ईशे) शासक है। (मृत्युः) मृत्यु (चतुष्पदाम्) चौपायों का (ईशे) शासक है। (तस्मात्) उस (गोपतेः) पृथिवी के स्वामी (मृत्योः) मृत्यु से (त्वाम्) तुझे (उत् भरामि) ऊपर उठाता हूं (सः) सो तू (मा बिभेः) मत भय कर ॥२३॥

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी पुरुष प्रबल मृत्यु से निर्भय होकर विचरते रहते हैं ॥२३॥

सो॑ऽरिष्ट॒ न म॑रिष्यसि॒ न म॑रिष्यसि॒ मा बि॑भेः ।
न वै तत्र॑ म्रियन्ते॒ नो य॑न्त्यध॒मं तमः॑ ॥२४॥

भाषार्थः—(अरिष्ट) हे निर्हानि ! (सः) सो तू (न) नहीं (मरिष्यसि) मरेगा, तू (न) नहीं (मरिष्यसि) मरेगा, (मा बिभेः) मत भय कर। (तत्र, वहां पर [कोई] (वै) भी (न) नहीं (म्रियन्ते) मरते हैं, (नो) और नहीं (अधमम्) नीचे (तमः) अन्धकार में (यन्ति) जाते हैं ॥२४॥

भावार्थः—जहां पर मनुष्य ब्रह्म का विचार करते रहते हैं [देखो मन्त्र २५], वहां मृत्यु का भय नहीं होता ॥२४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥२५॥

भाषार्थः —(सर्वः) सब (वै, ही (तत्र) वहां (जीवति) जीता रहता है, (गौः)गौ, (अश्वः) घोड़ा, (पुरुषः) पुरुष, और (पशुः) पशु [हाथी ऊंट आदि] । (यत्र) जहां पर (इदम्) यह [प्रसिद्ध] (ब्रह्म) ब्रह्म [परमेश्वर] (जीवनाय) जीवन के लिये (कम्) सुख से (परिधिः) कोट [समान रक्षा साधन] (क्रियते) बनाया जाता है ॥२५॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्म के आश्रित रहते हैं, वे जीवन्मुक्त होकर सब सुख भोगते हैं ॥२५॥

इस मन्त्र का सम्बन्ध मन्त्र २३, २४ से है ॥

परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः ।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥२६॥

भाषार्थः—यह [ब्रह्म—म० २५] (त्वा) तुझ को (अभिचारात्) दुष्कर्म से (सबन्धुभ्यः) बन्धुओं सहित (समानेभ्यः) साथियों के [हित के] लिये (परि) सब प्रकार (पातु) बचावे । (अमम्रिः) विना मृत्युवाला, (अमृतः) अमर, (अतिजीवः) उत्तर जीवी (भव) हो, (ते) तेरे (असवः) प्राण [तेरे] (शरीरम्) शरीर को (मा हासिषुः) न छोड़ें ॥२६॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर का सहारा लेकर परोपकार करते हैं, वे ब्रह्मचारी अधिक जीकर अधिक उपकारी होते हैं ॥२६॥

ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः ।
मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥२७॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ये) जो (एकशतम्) एक सौ एक (मृत्यवः) मृत्युएं और (याः) जो (नाष्ट्राः) नाश करने वाली [पीड़ायें] (अतितार्याः) पार करने योग्य हैं । (तस्मात्) उस [क्लेश] से (त्वाम्) तुझ को (देवाः) [तेरे] उत्तम गुण [वैश्वानरात्] सब नरों के हितकारक (अग्नेः) अग्नि [सर्व व्यापक परमेश्वर] का आश्रय लेकर (अधि) अधिकार पूर्वक (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥२७॥

भावार्थः—ब्रह्मवादी योगीजन सर्वगुरु परमेश्वर के आश्रय से उत्तम कर्म करके शारीरिक और आत्मिक पीड़ायें छोड़कर आनन्द पाते हैं ॥२७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा ।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥२८॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (अग्नेः) अग्नि [तेज] का (शरीरम्) शरीर, (पारयिष्णु) पार लगाने वाला (असि) है, और (रक्षोहा) राक्षसों का नाश करने वाला, और (सपत्नहा) प्रतियोगियों का मार डालने वाला (असि) है। (अथो) और भी (अमीवचातनः) पीड़ा मिटाने वाला (पूतुद्रुः) शुद्धि पहुँचाने वाला (नाम) नाम का (भेषजम्) औषध है ॥२८॥

भावार्थः—यह मन्त्र इस सूक्त का उपसंहार है। मनुष्य तेजःस्वरूप परमात्मा की उपासना से अपने क्लेशों का नाश करें ॥२८॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥३॥

१—२६ ॥ अग्निरक्षोहा देवता ॥ १—६, ८-१०, ११, १६, १८, २१, त्रिष्टुप् ७, १२—१५, १७ भुरिक् त्रिष्टुप्, १६, २४ निचृत् त्रिष्टुप्, २० विराट् त्रिष्टुप्, २२, २३, अनुष्टुप्, २५ पंचपदा बृहती गर्भा जगती, २६ गायत्री ।

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म । शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥१॥

भाषार्थः—(रक्षोहणम्) राक्षसों के मारने वाले, (वाजिनम्) महाबली, पुरुष को (आ) भली भांति (जिघर्मि) प्रकाशित [प्रख्यात] करता हूं, (प्रथिष्ठम्) अति प्रसिद्ध (मित्रम्) मित्र के पास (शर्म) शरण के लिये (उप यामि) मैं पहुंचता हूं। (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी राजा अपने] (क्रतुभिः) कर्मों से (शिशानः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीक्ष्ण किया हुआ और (समिद्धः) प्रकाशमान है, (सः) वह (नः) हमें (दिवा) दिन में, (सः) वह (नक्तम्) रात्रि में (रिषः) कष्ट से (पातु) बचावे ॥१॥

भावार्थः—प्रतापी, पराक्रमी, प्रजापालक राजा की कीर्त्ति को प्रजागण गाते रहते हैं ॥१॥

मन्त्र १-२३ कुछ पद भेद और मन्त्र क्रम भेद से ऋग्वेद में हैं-- १० । ८७ । १-२३ ॥

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥२॥

भाषार्थः—(जातवेदः) प्रसिद्ध ज्ञानवाले [राजन्] (अयोदंष्ट्रः) लोहसमान दांतवाला [पुष्टाङ्ग], (समिद्धः) प्रकाशमान तू (अर्चिषा) [अपने] तेज से (यातुधानान्) दुःखदायी जीवों को (उप स्पृश, पांवों से कुचल । (जिह्वया) [अपनी] जय शक्ति से (मूरदेवान्) मूढ़ [बुद्धि हीन] व्यवहार वालों को (आ रभस्व) पकड़ले, और (वृष्ट्वा) पराक्रमी होकर तू (क्रव्यादः) मांस खानेवालों को (आसन्) [फेंकने के स्थान] कारागार में (अपि धत्स्व) बन्द करदे ॥२॥

भावार्थः—नीतिमान्, बलवान् राजा दुष्टों को दण्ड देकर प्रजापालन करे ॥२॥

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥३॥

भाषार्थः (उभयाविन्) हे पूर्ति की रक्षा करने वाले ! तू [शत्रुओं का] (हिंस्रः) नाश करने वाला और (शिशानः) तीक्ष्ण होकर (अवरम्) नीचे के (च) और (परम्) ऊपर के (उभा) दोनों (दंष्ट्रौ) दांतों को (उप धेहि) काम में ला। (उत) और (अग्ने) हे अग्नि [समान प्रतापी राजन् !] (अन्तरिक्षे) आकाश में [विमान से हमारे] (परि) आस पास (याहि) विचर, (यातुधानान् अभि] दुःखदायी दुर्जनों पर (जम्भैः) दांतों [दंतीले तेज हथियारों] से (सम् धेहि) लक्ष्य कर [बेंधले] ॥३॥

भावार्थः—राजा दुर्जनों को इस प्रकार दबाकर रक्खे जैसे दांतों के बीच वस्तु को दबा लेते हैं और आकाशमार्ग से सावधानी रखकर दुष्टों का नाश करे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥४॥

भाषार्थः—(**अग्ने**) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन् !] (**यातुधानस्य**) दुःखदायी दुष्ट की (**त्वचम्**) खाल (**भिन्धि**) उजाड़ दे, [तेरी] (**हिंस्रा**) वध करनेवाली (**अशनिः**) बिजुली [बिजुली का वज्र] (**हरसा**) अपने तेज से (**एनम्**) इस [अत्याचारी] को (**हन्तु**) मारे। (**जातवेदः**) हे महाधनी राजन् ! [उसके] (**पर्वाणि**) जोड़ों को (**प्र शृणीहि**) कुचल डाल, (**क्रव्यात्**) मांस खानेवाला, (**क्रविष्णुः**) भयंकर [सिंह, गीदड़, गिद्ध आदि जीव] (**एनम्**) इसको (**वि चिनोतु**) चींथ डाले ॥४॥

भावार्थः—राजा दुराचारियों को बिजुली वा अग्नि के हथियारों से कठिन दण्ड देकर विनाश करदे ॥४॥

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥५॥

भाषार्थः—(**जातवेदः**, हे प्रसिद्ध ज्ञानवाले ! (**अग्ने**) हे अग्नि [समान प्रतापी राजन् !] (**यत्र**) जहां कहीं (**इदानीम्**) अब (**तिष्ठन्तम्**) खड़े हुए, (**उत**) और (**वा**) अथवा (**चरन्तम्**) घूमते हुए (**उत**) और (**अन्तरिक्षे**) आकाश में [विमान आदि से] (**पतन्तम्**) उड़ते हुए (**यातुधानम्**) दुःखदायी जन को (**पश्यसि**) तू देखता है, (**शिशानः**) तीक्ष्ण स्वभाव, (**अस्ता**) बाण चलाने वाला तू (**शर्वा**) बाण वा वज्र से (**तम्**) उसे (**विध्य**) वेध ले ॥५॥

भावार्थः—राजा पृथिवी, समुद्र और आकाश के उपद्रवियों का नाश करके प्रजा को पाले ॥५॥

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥६॥

भाषार्थः—(**अग्ने**) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन् !] (**वाचा**) वाणी [विद्या] द्वारा (**यज्ञैः**) संयोग वियोग व्यवहारों से (**इषूः**) बाणों को (**संनममानः**) सीधा करता हुआ, और (**अशनिभिः**) बिजुलियों से (**शल्यान्**) [उनके] शिरों को (**दिहानः**) पोतता हुआ [तीक्ष्ण करता हुआ] तू (**ताभिः**) उन [बाणों] से (**यातुधानान्**) दुःखदायी जनों को (**हृदये**) हृदय में (**विध्य**) वेधले और (**एषाम्**) उनकी (**बाहून्**) भुजाओं को (**प्रतीचः**) उलटा करके (**प्रति भङ्ग्धि**) तोड़ दे ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा अपने शस्त्र अस्त्रों को बिजुली आदि के प्रयोग से तीक्ष्ण रखकर शत्रुओं को मारे ॥६॥

उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७॥

भाषार्थः—(उत) और (जातवेदः) हे प्रसिद्ध धन वाले राजन् ! (आरब्धान्) [शत्रुओं करके] पकड़े हुओं को (स्पृणुहि) पाल (उत) और (अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन् !] (पूर्वः) सब से पहिले और (शोशुचानः) अति प्रकाशमान तू (आरेभाणान्) [हमें] पकड़ने वाले (यातुधानान्) दुःखदायियों को (ऋष्टिभिः) दो-धारा तरवारों से (नि जहि) मार डाल, (आमादः) मांस खानेवाली (एनीः) चित-कबरी, (क्ष्विङ्काः) अव्यक्त शब्द बोलने वालीं [चील आदि पक्षी] (तम्) हिंसक चोर को (अदन्तु) खा जावें ॥७॥

भावार्थः—राजा प्रजा के पालने और वैरियों के मारने में सदा उद्यत रहे ॥७॥

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमारभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥८॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन् !] (इह) यहां पर (प्र ब्रूहि) बतला दे, (यतमः) जो कोई (सः) वह (यातुधानः) दुःखदायी, [है] (यः) जो (इदम्) यह [दुष्कर्म] (कृणोति) करता है। (यविष्ठ) हे बलिष्ठ ! (तम्) उसे (समिधा) [अपने] तेज से (आ रभस्व) पकड़ ले, और (नृचक्षसः) मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले की [अर्थात् अपनी] (चक्षुषे) दृष्टि के लिये (एनम्) उसे (रन्धय) आधीन कर ॥८॥

भावार्थः—राजा प्रसिद्ध दुराचारियों को पकड़ कर दृष्टिगोचर रख-कर उनका वृत्तान्त जानता रहे ॥८॥

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ॥९॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [समान प्रतापी राजन् !] (तीक्ष्णेन चक्षुषा) तीक्ष्ण दृष्टि से (प्राञ्चम्) श्रेष्ठ (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार की (रक्ष) रक्षा कर, (प्रचेतः) हे दूरदर्शी [राजन् !] (वसुभ्यः) धनों के लिये [हमें] (प्र णय) आगे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ा। (नृचक्षः) हे मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले! (रक्षांसि अभि) राक्षसों पर (हिंस्रम्) हिंसा करने वाले और (शोशुचानम्) अति प्रकाशमान (त्वा) तुझ को (यातुधानाः) दुःखदायी लोग (मा दभन्) न सतावें ॥९॥

भावार्थः—जो प्रतापी दूरदर्शी राजा उत्तम व्यवहारों की रक्षा करके अपना और प्रजा का धन बढ़ाता है, उसे शत्रु नहीं सता सकते ॥९॥

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०॥

भाषार्थः—(नृचक्षाः) मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाला तू (रक्षः) राक्षस को (विक्षु) मनुष्यों के बीच (परि पश्य) जांच कर देख, (तस्य) उसके (त्रीणि) तीन (अग्रा) अग्रभाग [मस्तक और दो कंधे] (प्रति शृणीहि) तोड़ दे। (अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन्!] (तस्य) उसकी (पृष्टीः) पसलियां (हरसा) बल से (शृणीहि) कुचल डाल, (यातुधानस्य) दुःखदायी की (मूलम्) जड़ को (त्रेधा, तीन प्रकार से [दोनों जंघा और कटिभाग से] (वृश्च) काट दे ॥१०॥

भावार्थः—राजा उपद्रवियों को दण्ड देने में सदा कठोर हृदय रहे ॥१०॥

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्ग्धि ॥११॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [समान प्रतापी राजन्!] (यातुधानः) वह दुःखदायी पुरुष (त्रिः) तीन वार (ते) तेरी (प्रसितिम्) बेड़ी को (एतु) प्राप्त हो, (यः) जो (ऋतम्) सत्य को (अनृतेन) असत्य से (हन्ति) तोड़ता है। (जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञान वाले [राजन्!] (अर्चिषा) अपने तेज से (तम् स्फूर्जयन्) उस पर गरजता हुआ तू (समक्षम्) सब के सन्मुख (एनम्) इस [शत्रु] को (गृणते) स्तुति करने वाले के [हित के] लिये (नि युङ्ग्धि) बांध ले ॥११॥

भावार्थः—राजा चोर डाकू आदि दुष्टों को प्रजा के हित के लिए यथावत् दण्ड देवे ॥११॥

"(त्रिः) तीन वार" से प्रयोजन ऊपर, नीचे और मध्य पाश है, देखो अ० ७। ८३। ३॥

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन् !] (यत्) जो (अद्य) आज (मिथुना) दो हिंसक मनुष्य [सत्पुरुषों से] (शपातः) कुवचन बोलते हैं, और (यत्) जो (रेभाः) शब्द करने वाले [शत्रु लोग] (वाचः) वाणी की (तृष्टम्) कठोरता (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं (मन्योः) क्रोध से (मनसः) मन की (या) जो (शरव्या) वाणों की झड़ी। (जायते) उत्पन्न होती है, (तया) उससे (यातुधानान्) दुःखदायियों को (हृदये) हृदय में (विध्य) बेध ले ॥१२॥

भावार्थः—राजा दुर्वचन भाषियों को विचारपूर्वक दण्ड देता रहे ॥१२॥

परा॑ शृणीहि॒ तप॑सा यातु॒धाना॒न् परा॑ग्ने॒ रक्षो॒ हर॑सा शृणीहि ।

परा॒र्चिषा॒ मूर॑देवाञ्छृणीहि॒ परा॑सु॒तृपः॒ शोशु॑चतः शृणीहि ॥१३॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन् !] (तपसा) अपने तप [ऐश्वर्य वा प्रताप] से (यातुधानान्) दुःखदायियों को (परा शृणीहि) कुचल डाल, (रक्षः) राक्षसों [दुराचारियों वा रोगों] को (हरसा) अपने बल से (परा शृणीहि) मिटा दे। (अर्चिषा) अपने तेज से (मूरदेवान्) मूढ़ [निर्बुद्धि] व्यवहार वालों को (परा शृणीहि) नाश करदे, (शोशुचतः) अत्यन्त दमकते हुए, (असुतृपः) [दूसरों के] प्राणों से तृप्त होने वालों को (परा शृणीहि) चूर चूर कर दे ॥१३॥

भावार्थः—राजा अत्यन्त क्लेशदायक प्राणियों के नाश करने में सदा उद्यत रहे ॥१३॥

परा॒द्य दे॒वा वृ॑जि॒नं शृ॑णन्तु प्र॒त्यगे॑नं श॒पथा॑ यन्तु सृ॒ष्टाः ।

वा॒चास्ते॑नं॒ शर॑व ऋच्छन्तु॒ मर्म॒न् विश्व॑स्यैतु॒ प्रसि॑तिं यातु॒धानः॑ ॥१४॥

भाषार्थः--(देवाः) विजय चाहने वाले शूर (अद्य) आज (वृजिनम्) पापी को (परा शृणन्तु) कुचल डालें, (सृष्टाः) [उसके] छोड़े हुए [कहे हुए] (शपथाः) कुवचन (एनम्) उसको (प्रत्यक्) प्रतिकूल गति से (यन्तु) पहुंचें। (शरवः) [हमारे] तीर (वाचास्तेनम्) बतचोर [छली] पुरुष को (मर्मन्) मर्मस्थान में (ऋच्छन्तु) प्राप्त होवें, (विश्वस्य) सब में प्रवेश करने वाले राजा की (प्रसितिम्) बेड़ी को (यातुधानः) दुःखदायी (एतु) पावें ॥१४॥

भावार्थः—वीर राजा मिथ्यावादी, चोर, डाकुओं को दण्ड देकर नाश कर दे ॥१४॥

मांसभक्षकस्य शिरश्छेदनोपदेशः- मांस भक्षक के शिर काटने का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१५॥

भाषार्थः—(यः) जो (यातुधानः) दुःखदायी जीव (पौरुषेयेण) पुरुष वध से [प्राप्त] (क्रविषा) मांस से, (यः) जो (अश्व्येन) घोड़े के [मांस से] और (पशुना) [दूसरे] पशु से (समङ्क्ते) [अपने को] पुष्ट करता है। और (यः) जो (अघ्न्यायाः) [नहीं मारने योग्य] गौ के (क्षीरम्) दूध को (भरति=हरति) नष्ट करता है, (अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन्!] (तेषाम्) उनके (शीर्षाणि) शिरों को (हरसा) अपने बल से (अपि वृश्च) काट डाल ॥१५॥

भावार्थः—जो कोई पुरुष, मनुष्य वा घोड़े वा अन्य पशु का मांस खावे वा गौ को मारकर दूध को घटावे, राजा उसका शिर कटवा दे ॥१५॥

विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१६॥

भाषार्थः—(यातुधानाः) दुःखदायी जन [जो] (गवाम्) गौओं का (विषम्) जल (भरन्ताम्=हरन्ताम्) बिगाड़ें, [तौ] वे (दुरेवाः) दुराचारी लोग (अदितये) अखण्ड नीति के लिये (आ) सर्वथा (वृश्चन्ताम्) काट दिये जावें। (देवः) व्यवहार जानने वाला (सविता) सर्व प्रेरक राजा (एनान्) उनको (परा ददातु) दूर हटावे, और वे [राजपुरुष] उनके (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न आदि वस्तुओं] के (भागम्) भाग को (परा जयन्ताम्) जीत लेवें ॥१६॥

भावार्थः—जो दुराचारी लोग गौ घाट आदि स्थानों को नष्ट करें, राजा उनको नीति के अनुसार दण्ड देवे ॥१६॥

संवत्सरीणं पयं उस्रियायास्तस्य माशींद् यातुधानों नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥१७॥

भाषार्थः—(उस्रियायाः) गौ का [हमारे] (संवत्सरीणम्) निवास-स्थान में उपस्थित [जो] (पयः) दूध है, (नृचक्षः) हे मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले राजन्! (यातुधानः) दुःखदायी जन (तस्य) उसका (मा आशीत्) न भोजन करे। (अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन्] (यतमः) जो कोई [उनमें से हमारे] (अमृतम्) अमृत [अन्न दुग्ध आदि से] (तितृप्सात्) पेट भरना चाहे (तम् प्रत्यञ्चम्) उस प्रतिकूलवर्ती को (अर्चिषा) अपने तेज से (मर्मणि) मर्मस्थान में (विध्य) छेदले ॥१७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा सावधानी रक्खे कि कोई दुष्ट जन प्रजा के पदार्थों को न हड़प जावे ॥१७॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानर्नु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१८॥

भाषार्थः—(**अग्ने**) हे विद्वान् राजन्! तू (**यातुधानान्**) पीड़ा देने वाले [प्राणियों वा रोगों] को (**सनात्**) नित्य (**मृणसि**) नष्ट करता है, (**रक्षांसि**) राक्षसों ने (**त्वा**) तुझे (**पृतनासु**) संग्रामों में (**न**) नहीं (**जिग्युः**) जीता है। (**क्रव्यादः**) मांस भक्षकों को (**सहमूरान्**) [उनके] मूल [अथवा मूढ़ मनुष्यों] सहित (**अनु दह**) भस्म कर दे, (**ते**) तेरे (**दैव्यायाः**) दिव्य गुण वाले (**हेत्याः**) वज्र से (**मा मुक्षत**) वे न छूटें ॥१८॥

भावार्थः–राजा दुःखदायी मनुष्यों को उनके मूल और साथियों सहित नाश करने में उत्साही रहे ॥१८॥

यह मन्त्र आचुका है—अथर्व० ५ । २९ । ११ ॥

त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥१९॥

भाषार्थः—(**अग्ने**) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन्!] (**त्वम्**) तू (**नः**) हमें (**अधरात्**) नीचे से, (**उदक्तः**) ऊपर से, (**त्वम्**) तू (**पश्चात्**) पीछे से (**उत**) और (**पुरस्तात्**) आगे से (**रक्ष**) बचा। (**ते**) तेरे (**त्ये**) वे (**अजरासः**) अजर (**तपिष्ठाः**) अत्यन्त तपाने वाले, (**शोशुचतः**) अत्यन्त चमकते हुए [वज्र] (**अघशंसम्**) बुरा चीतने वाले को (**प्रति दहन्तु**) जला डालें ॥१९॥

भावार्थः-राजा समुद्र, आकाश, पहाड़ पृथिवी आदि के डाकुओं से बिजुली और अग्नि के शस्त्र अस्त्रों द्वारा प्रजा की रक्षा करे ॥१९॥

पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः ॥२०॥

भाषार्थः—(**अग्ने**) हे अग्नि [समान प्रतापी राजन्!] (**कविः**) बुद्धिमान् तू (**काव्येन**) अपनी बुद्धिमत्ता के साथ (**पश्चात्**) पीछे से, (**पुरस्तात्**) आगे से, (**अधरात्**) नीचे से (**उत**) और (**उत्तरात्**) ऊपर से, (**अग्ने**) हे राजन्! (**अजरः**) अजर (**सखा**) मित्र [के समान] (**सखायम्**) मित्र को (**जरिम्णे**) स्तुति के लिये,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अमर्त्यः) अमर (त्वम्) तू (नः) हम (मर्तान्) मनुष्यों को (परि) सब ओर से (पाहि) बचा ॥२०॥

भावार्थः नीतिमान् राजा अपनी नीतिकुशलता से दृढ़चित्त होकर प्रजा की रक्षा करके संसार में स्तुति पावे ॥२०॥

तद॑ग्ने चक्षुः प्रति॑ धेहि रेभे श॑फारुजो येन॒ पश्य॑सि यातुधाना॑न् ।
अथर्ववज्ज्योति॑षा दैव्ये॑न स॒त्यं धूर्व॑न्तम॒चितं॒ न्यो॑ष ॥२१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन् !] (तत्) वह [क्रोध-भरी] (चक्षुः) आंख (रेभे) कोलाहल मचाने वाले [शत्रु] पर (परि धेहि) डाल, (येन) जिससे (शफारुजः) शान्ति तोड़ने वाले (यातुधानान्) दुःखदायियों को (पश्यसि) तू देखता है। (अथर्ववत्) निश्चल स्वभाव वाले ऋषि के समान तू (दैव्येन) देवताओं [विद्वानों] से पाये हुए (ज्योतिषा) तेज से (सत्यम्) सत्य (धूर्वन्तम्) नाश करने वाले (अचितम्) अचेत को (नि ओष) जला दे ॥२१॥

भावार्थः- नीतिमान् राजा विद्वानों की सम्मति से प्रजा की शान्ति में विघ्नकारी, मिथ्यावादी दुष्टों को नाश करे ॥२१॥

परि॑ त्वाग्ने॒ पुरं॑ व॒यं विप्रं॑ सहस्य धीमहि ।
धृषद्व॑र्णं दि॒वेदि॑वे ह॒न्तारं॑ भङ्गुराव॑तः ॥२२॥

भाषार्थः—(सहस्य) हे बल के हितकारी ! (अग्ने) तेजस्वी सेनापति ! (पुरम्) दुर्गरूप, (विप्रम्) बुद्धिमान्, (धृषद्वर्णम्) अभयस्वभाव, (भङ्गुरवतः) नाश कर्म वाले [कपटी] के (हन्तारम्) नाश करने वाले (त्वा) तुझ को (दिवेदिवे) प्रति दिन (वयम्) हम (परि धीमहि) परिधि बनाते हैं ॥२२॥

भावार्थः—प्रजागण शूर वीर सेनापति पर विश्वास करके शत्रुओं के नाश करने में उससे सहायता लेवें ॥२२॥

यह मन्त्र आचुका है—अ० ७। ७१। १॥

वि॒षेण॑ भङ्गुराव॑तः प्रति॑ स्म र॒क्षसो॑ जहि ।
अग्ने॑ ति॒ग्मेन॑ शो॒चिषा॒ तपु॑रग्राभिर॒र्चिभि॑ः ॥२३॥

भाषार्थः (अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन् !] (विषेण) विष से [वा अपनी व्याप्ति से] (भङ्गुरवतः) नाश कर्म वाले (रक्षसः) राक्षसों को (स्म)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) तेज से और (तपुरग्राभिः) तापयुक्त शिखाओं वाली (अर्चिभिः) ज्वालाओं से (प्रति जहि) नाश कर दे ॥२३॥

भावार्थः—राजा उपद्रवियों को तीव्र दण्ड देता रहे ॥२३॥

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।

प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे ॥२४॥

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी राजा] (बृहता) बड़ी (ज्योतिषा) तेज के साथ (वि भाति) चमकता है, और (विश्वानि) सब वस्तुओं को (महित्वा) अपनी महिमा से (आविः कृणुते) प्रकट करता है। (अदेवीः) अशुद्ध, (दुरेवाः) दुर्गति वाली (मायाः) बुद्धियों को (प्रसहते) जीत लेता है, और (शृङ्गे) दो प्रधान सामर्थ्य [प्रजापालन और शत्रुनाशन] को (रक्षोभ्यः) दुष्टों के (विनिक्ष्वे) विनाश के लिये (शिशीते) तेज करता है ॥२४॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अग्नि आदि प्रकाश करके सब पदार्थों को दिखाता और अन्धकार मिटाता है, वैसे ही प्रतापी राजा अपनी प्रधानता से प्रजा का पालन और शत्रुओं का नाश करता है ॥२४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—५।२।९।

ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते । ताभ्यां दुर्हार्द-मभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व ॥२५॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे बड़े ज्ञान वाले राजन्! (ये) जो (ते) तेरे (अजरे) अजर [अनश्वर] (शृङ्गे) दो प्रधान सामर्थ्य [प्रजापालन और शत्रुनाशन] (तिग्महेती) तेज हथियारों वाले, (ब्रह्मसंशिते) वेद से तीक्ष्ण किये गये हैं। (ताभ्याम्) उन दोनों से (दुर्हार्दम्) दुष्ट हृदय वाले, (अभिदासन्तम्) अति दुःख देने वाले, (प्रत्यञ्चम्) प्रतिकूल चलने वाले, (किमीदिनम्) [अब क्या हो रहा है, यह क्या हो रहा है, ऐसे] खोजी शत्रु को (अर्चिषा) अपने तेज से, (जातवेदः) हे बड़े धन वाले! (वि निक्ष्व) तू नाश कर दे ॥२५॥

भावार्थः—जो वेदानुगामी राजा अपनी राज्यशक्ति को प्रजापालन और शत्रुनाशन में लगाता है, वह कीर्तिमान् होता है ॥२५॥

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः ।

शुचिः पावक ईड्यः ॥२६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः – (**शुक्रशोचिः**) शुद्धतेज वाला, (**अमर्त्यः**) अमर, (**शुचिः**) पवित्र, (**पावकः**) शुद्ध करने वाला, (**ईड्यः**) स्तुति योग्य वा खोजने योग्य (**अग्निः**) अग्नि [समान तेजस्वी सेनापति] (**रक्षांसि**) दुष्टों को (**सेधति**) शासन में रखता है ॥२६॥

भावार्थः—प्रतापी, अमर अर्थात् शूर वीर पराक्रमी शुद्धाचरणी राजा दुष्टों को जीतकर कीर्ति पावे ॥२६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—७।१५।१०॥

सूक्तम् ॥४॥

१—२५ ॥ १-७, १५, २५ इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ, ८, १६, १९--२२, २४ इन्द्रः, ९, १२, १३ सोमः, १०, १४ अग्नि, ११ देवाः, १७ ग्रावाणः, १८ मरुतः, २३ पृथिव्यन्तरिक्षे देवते ॥ १—३, ५, ६, १८, २१ जगती, ४ विराड्जगती, ७ निचृज्जगती, ८, १२, २४ निचृत् त्रिष्टुप्, ९, ११, १३, १४, १६, १७, १९, २२ त्रिष्टुप्, १० विराट् त्रिष्टुप्, १५, स्वराट् त्रिष्टुप्, २०, २३ भुरिक् त्रिष्टुप्, २५ पादनिचृदनुष्टुप् ॥

राजमन्त्रिणोर्धर्मोपदेशः—राजा और मन्त्री के धर्म का उपदेश ॥

इन्द्रा॑सोमा॒ तप॑तं॒ रक्ष॑ उ॒ब्जतं॒ न्य॑र्पयतं वृषणा तमो॒वृधः॑ ।
परा॑ शृणीतम॒चितो॒न्यो॑षतं ह॒तं नु॒देथां॒ नि शि॑शीतम॒त्त्रिणः॑ ॥१॥

भाषार्थः—(**इन्द्रासोमा**) हे सूर्य और चन्द्र [समान राजा और मन्त्री !] तुम दोनों (**रक्षः**) राक्षसों को (**तपतम्**) तपाओ, (**उब्जतम्**) दबाओ, (**वृषणा**) हे बलिष्ठ ! तुम दोनों (**तमोवृधः**) अन्धकार बढ़ाने वालों को (**नि अर्पयतम्**) नीचे डालो। (**अचितः**) अचेतों [मूर्खों] को (**परा शृणीतम्**) कुचल डालो, (**नि ओषतम्**) जला दो, (**अत्त्रिणः**) खाऊ जनों को (**हतम्**) मारो, (**नुदेथाम्**) ढकेलो, (**नि शिशीतम्**) छील डालो [दुर्बल कर दो] ॥१॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री उपद्रवियों को कठिन दण्ड देते रहें ॥१॥

यह सूक्त म० १—२५। कुछ भेद से ऋग्वेद में है।७।१०४।१-२५॥

इन्द्रा॑सोमा॒ सम॒घशं॑सम॒भ्य॑१॒घं तपु॑र्ययस्तु च॒रुर॒ग्निमाँ॑ इव ।
ब्र॒ह्म॒द्विषे॑ क्र॒व्यादे॑ घो॒रच॑क्षसे॒ द्वेषो॑ धत्तमनवा॒यं कि॑मी॒दिने॑ ॥२॥

भाषार्थः —(**इन्द्रासोमा**) हे सूर्य और चन्द्र [समान राजा और मन्त्री !] (**अघशंसम् अभि**) बुरा चीतने वाले को (**तपुः**) तपन करने वाला (**अघम्**) दुःख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सम् ययस्तु) क्लेश देता रहे, (इव) जैसे (अग्निमान्) अग्निवाला (चरुः) चरु [पात्र] क्लेश देता है । (ब्रह्मद्विषे) वेद के द्वेषी, (क्रव्यादे) मांस खाने वाले, (किमीदिने) लुतरे के लिये (अनवायम्) निरन्तर (द्वेषः) द्वेष (धत्तम्) तुम दोनों धारण करो ॥२॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री घोर पापियों को निरन्तर दण्ड देकर प्रजापालन करें ॥२॥

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्रासोमा) हे सूर्य्य और चन्द्र [समान राजा और मन्त्री !] तुम दोनों (दुष्कृतः) दुष्कर्मियों को (वव्रे अन्तः) [ढकने वाले] गढ़े के बीच (अनारम्भणे) अथाह (तमसि) अन्धकार में (प्रविध्यतम्) छेद डालो । (यतः) जिस [गढ़े] से (एषाम्) उनमें से (पुनः) फिर (एकः चन) कोई भी (न) न (उदयत्) ऊपर आवे, (तत्) सो (वाम्) तुम दोनों का (मन्युमत्) क्रोधभरा (शवः) बल [उनके] (सहसे) हराने के लिये (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—प्रयत्नशाली राजा और मन्त्री सब अत्याचारियों को घेर कर नाश कर दें ॥३॥

म० ४, ५ आयुधनिर्माणोपदेशः—म० ४, ५ हथियार बनाने का उपदेश ॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत् तक्षतं स्वर्यं१ पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्रासोमा) हे सूर्य और चन्द्र [समान राजा और मन्त्री !] तुम दोनों (दिवः) आकाश से और (पृथिव्याः) पृथिवी से (वधम्) मारू हथियार (सम् वर्तयतम्) लुढ़कवाओ, [जिससे] (अघशंसाय) बुरा चीतने वाले के लिये (तर्हणम्) मरण [होवे] । (स्वर्यम्) धड़ाके वाला वा तपा देने वाला [हथियार] (पर्वतेभ्यः) पहाड़ों से (उत् तक्षतम्) ढलवाओ, (येन) जिस से (वावृधानम्) बढ़ते हुए (रक्षः) राक्षस को (निजूर्वथः) तुम दोनों मार गिराओ ॥४॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री ऐसे ऐसे हथियार बनवायें जिनके द्वारा शत्रुओं को आकाश, भूमि, पहाड़ों और गढ़ की भीतों आदि से मार सकें ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्रासोमा) हे सूर्य और चन्द्र [समान राजा और मन्त्री !] (युवम्) तुम दोनों (दिवः) आकाश से (अग्नितप्तेभिः) अग्नि से तपाये हुए, (अश्महन्मभिः) मेघ के समान चलने वाले [अथवा फैलने वाले पदार्थों पत्थर, लोहे आदि से मार करने वाले] (अजरेभिः) अजर [अटूट] (तपुर्वधेभिः) तपा देने वाले हथियारों से (अत्त्रिणः) खाऊ लोगों को (परि वर्तयतम्) लुढ़कवा दो, (पर्शाने) गढ़े के बीच (नि विध्यतम्) छेद डालो, वे लोग (निस्वरम्) चुप्पी (यन्तु) प्राप्त करें ॥५॥

भावार्थः—सेनापति लोग वायुयानों में चढ़ कर आकाश से आग्नेय हथियारों द्वारा शत्रुओं को मार गिरावें ॥५॥

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्रासोमा) हे सूर्य और चन्द्र [समान राजा और मन्त्री !] (इयम्) यह (मतिः) मति [बुद्धि] (वाम्) तुम दोनों को (विश्वतः) सब ओर से (परि भूतु) सर्वथा व्यापे, (इव) जैसे (कक्ष्या) पेटी (वाजिना) बलवान् (अश्वा) घोड़े को। (याम्) जिस (होत्राम्) वाणी को (वाम्) तुम दोनों के लिये (मेधया) बुद्धि के साथ (परि हिनोमि) मैं सन्मुख करता हूं, (नृपती इव) दो नरपतियों के समान तुम दोनों (इमा) इन (ब्रह्माणि) ब्रह्म ज्ञानों से (जिन्वतम्) तृप्त हो ॥६॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री वेदोक्त उत्तम शिक्षाओं को ग्रहण करके धर्म कर्म में प्रवृत्त रहें ॥६॥

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः ॥७॥

भाषार्थः—(तुजयद्भिः) बलवान् (एवैः) शीघ्रगामी [पुरुषों] के साथ (प्रति स्मरेथाम्) तुम दोनों स्मरण करते रहो, (द्रुहः) द्रोही, (भङ्गुरवतः) नाश कर्म वाले (रक्षसः) राक्षसों को (हतम्) मारो। (इन्द्रासोमा) हे सूर्य और चन्द्र [समान राजा और मन्त्री !] [उस] (दुष्कृते) दुष्कर्मी के लिये (सुगम्) सुगति (मा भूत्) न होवे,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यः) जो (द्रुहः) द्रोही मनुष्य (मा) मुझे (कदाचित्) कभी भी (अभिदासति) सतावे ॥७॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री बलवान् शीघ्रगामी सैनिकों से शत्रुओं को मार कर प्रजा की रक्षा करें ॥७॥

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥८॥

भाषार्थः—(यः) जो [दुराचारी] (पाकेन) परिपक्व [दृढ़] (मनसा) मन से (चरन्तम्) विचरते हुए (मा) मुझको (अनृतेभिः) असत्य (वचोभिः) वचनों से (अभिचष्टे) झिड़कता है। (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन्! (काशिना) मुट्ठी में (संगृभीताः) लिये हुए (आपः इव) जल के समान, [वह] (असतः) असत्य का (वक्ता) बोलने वाला (असन्) अविद्यमान (अस्तु) हो जावे ॥८॥

भावार्थः—राजा मिथ्यावादी लोगों को इस प्रकार नष्ट कर देवे, जैसे मुट्ठी में बांधा हुआ जल वा वायु बिखर जाता है ॥८॥

ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९॥

भाषार्थः—(ये) जो [दुष्ट] (एवैः) शीघ्रगामी [पुरुषार्थी] पुरुषों के साथ [वर्तमान] (पाकशंसम्) दृढ़ स्तुतिवाले पुरुष को (विहरन्ते) विशेष करके नष्ट करते हैं, (वा) अथवा (स्वधाभिः) आत्मधारणाओं के साथ [रहने वाले] (भद्रम्) कल्याण को (दूषयन्ति) दूषित करते हैं। (सोमः) ऐश्वर्यवान् राजा (वा) अवश्य (तान्) उन्हें (अहये) सर्प [समान क्रूर पुरुष] को (प्र ददातु) दे देवे, (वा) अथवा (निर्ऋतेः) अलक्ष्मी की (उपस्थे) गोद में (आ दधातु) रख देवे ॥९॥

भावार्थः—जो कोई पाखण्डी उपकारी सज्जनों के कामों में बाधा डालें, राजा उनको बधक आदि से मरवा डाले अथवा निर्धन कर देवे ॥९॥

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।
रिपुः स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥१०॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन्!] (यः) जो [दुष्ट] (नः) हमारे (पित्वः) रक्षा साधन अन्न आदि के और (यः) जो (अश्वानाम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोड़ों के और (गवाम्) गौओं के (तनूनाम्) शरीरों के (रसम्) रस [तत्त्व] को (दिप्सति) मिटाना चाहे। (स्तेनः) वह तस्कर, (स्तेयकृत्) चोरी करने वाला (रिपुः) शत्रु (दभ्रम्) कष्ट को (एतु) प्राप्त हो और (सः) वह (तन्वा) अपने शरीर से (च) और (नात) धन से (नि) सर्वथा (हीयताम्) हीन हो जावे ॥१०॥

भावार्थः—राजा प्रजा की सम्पत्ति हरने वाले डाकू चोर आदिकों को दण्ड देकर स्वाधीन रक्खे ॥१०॥

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११॥

भाषार्थः—(सः) वह [दुष्ट] (तन्वा) अपने शरीर से (च) और (तना) धन से (परः) परे (अस्तु) हो जावे और (विश्वाः) सब (तिस्रः) तीनों (पृथिवीः अधः) भूमियों [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओं] से नीचे नीचे (अस्तु) हो जावे। (देवाः) हे विद्वानो ! (अस्य) उसका (यशः) यश (प्रति शुष्यतु) सूख जावे, (यः) जो (मा) मुझे (दिवा) दिन में (च) और (यः) जो (नक्तम्) रात्रि में (दिप्सति) सताना चाहे ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रजा को दिन वा रात्रि में सतावे उसको विद्वान् लोग सब प्रकार दण्ड देवें ॥११॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२॥

भाषार्थः—(चिकितुषे) ज्ञानी (जनाय) पुरुष के लिये (सुविज्ञानम्) सुगम विज्ञान है, [कि] (सत्) सत्य (च च) और (असत्) असत्य (वचसी) वचन (पस्पृधाते) दोनों परस्पर विरोधी होते हैं। (तयोः) उन दोनों में से (यत्) जो (सत्यम्) सत्य और (यतरत्) जो कुछ (ऋजीयः) अधिक सीधा है, (तत्) उसको (इत्) ही (सोमः) सर्वप्रेरक राजा (अवति) मानता है और (असत्) असत्य को (हन्ति) नष्ट करता है ॥१२॥

भावार्थः विवेकी मर्मज्ञ राजा सत्य और असत्य का निर्णय करके सत्य को मानता और असत्य को छोड़ता है ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न [illegible] सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥

भाषार्थः—(सोमः) ऐश्वर्यवान् राजा (वृजिनम्) पापी को (न वै उ) न कभी भी (हिनोति) बढ़ाता है, और (न) न (मिथुया) [प्रजा की] हिंसा (धारयन्तम्) धारण करनेवाले (क्षत्रियम्) क्षत्रिय [बलवान्] को। वह (रक्षः) राक्षस को (हन्ति) मारता है, और (असत्) झूठ (वदन्तम्) बोलनेवाले को (हन्ति) मारता है, (उभौ) वे दोनों (इन्द्रस्य) राजा की (प्रसितौ) बेड़ी में (शयाते) सोते हैं ॥१३॥

भावार्थः—राजा दुष्टों का अपमान करके कारागार में रक्खे और नाश करे ॥१३॥

यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥१४॥

भाषार्थः—(यदि वा) क्या (अहम्) मैं (अनृतदेवः) झूठे व्यवहार वाला (अस्मि) हूं, (वा) अथवा, (अग्ने) हे विज्ञानी राजन्! (देवान्) स्तुति योग्य पुरुषों को (मोघम्) व्यर्थ (अप्यूहे) निन्दित जानता हूं। (जातवेदः) हे बड़े ज्ञान-वाले राजन्! तू (किम्) किस लिये (अस्मभ्यम्) हम पर (हृणीषे) क्रोध करता है, (द्रोघवाचः) अनिष्ट बोलने वाले पुरुष (ते) तेरे (निर्ऋथम्) क्लेश को (सचन्ताम्) भोगें ॥१४॥

भावार्थः—राजा सत्यवादी और असत्यवादियों का निर्णय करके यथोचित व्यवहार करे ॥१४॥

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५॥

भाषार्थः—(अद्य) आज (मुरीय) मैं मर जाऊं, (यदि) जो मैं (यातुधानः) पीड़ा देनेवाला (अस्मि) हूं, (यदि वा) अथवा (पुरुषस्य) किसी पुरुष के (आयुः) जीवन को (ततप) मैंने सताया है। (अध) सो (सः) वह तू (दशभिः) दश (वीरैः) वीरों से (वि यूयाः) अलग हो जा (यः) जो आप (मा) मुझ से (मोघम्) व्यर्थ (इति) यह (आह) कहे (यातुधान) "तू दुःखदायी है" ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः सत्पुरुषों के दुःखदायी होने से मनुष्य का मर जाना अच्छा है, और मिथ्या अपवादियों का भी नाश होना चाहिये ॥१५॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६॥

भाषार्थः—(यः) जो (मा अयातुम्) मुझ अनदुःखदायी को (इति, यह (आह) कहे, (यातुधान) "तू दुःखदायी है," (वा) अथवा (यः) जो (रक्षाः) राक्षस होकर (इति) यह (आह) कहे, (शुचिः अस्मि) "मैं पवित्र हूं"। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (तम्) उस को (महता) विशाल (वधेन) मारू हथियार से (हन्तु) मारे और वह (विश्वस्य) प्रत्येक (जन्तोः) जीव के (अधमः) नीचे होकर (पदीष्ट) चले ॥१६॥

भावार्थः—जो छली पुरुष धर्मात्माओं को अधर्मी बतावे और आप अधर्मी होकर धर्मात्मा बने, ऐसे पाखण्डियों को राजा सर्वथा दण्ड देवे ॥१६॥

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं १ गूहमाना ।
वव्रमनन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७॥

भाषार्थः—(या) जो (द्रुहुः) बुरा चीतने वाली स्त्री (तन्वम्) शरीर [स्वरूप] को (अप गूहमाना) छिपाती हुई (खर्गला इव) खड्ग लिये हुए जैसे [अथवा व्यथा देने वाली उलूकी आदि के समान] (नक्तम्) रात्रि में (प्र जिगाति) निकलती है। (सा) वह (अनन्तम्) अथाह (वव्रम्) गढ़े को (अव) अधोमुख होकर (पदीष्ट) प्राप्त हो, (ग्रावाणः) सूक्ष्मदर्शी लोग (उपब्दैः) शब्दों के साथ (रक्षसः) राक्षसों को (घ्नन्तु) मारें ॥१७॥

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुष अपराधी स्त्री पुरुषों को उनका दोष प्रकट करके दण्ड देवें ॥१७॥

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वी३ च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८॥

भाषार्थः—(मरुतः) हे शत्रुमारक वीरो! (विक्षु) मनुष्यों के बीच (वि तिष्ठध्वम्) फैल जाओ, (रक्षसः) उन राक्षसों को (इच्छत) ढूंढ़ो, (गृभायत) पकड़ो, (सम् पिनष्टन) पीस डालो (ये) जो (वयः) पक्षी [समान] (भूत्वा) होकर (नक्तभिः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रातों में [विमान आदि से] (पतयन्ति) उड़ते हैं, (वा) अथवा (ये) जिन्होंने (देवे) दिव्य गुण युक्त (अध्वरे) हिंसा रहित व्यवहार [यज्ञ] में (रिपः) हिंसायें (दधिरे) धरी हैं ॥१८॥

भावार्थः—शूरवीर पुरुष चोर उचक्के आदि शुभ कर्मों में विघ्न डालने वाले दुष्टों को छान बीन करके नष्ट करे ॥१८॥

प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तो३ऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे महाधनी ! (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (सोमशितम्) ऐश्वर्यवान् शिल्पी द्वारा तेज किये गए (अश्मानम्) व्यापने वाले पदार्थ पत्थर लोह आदि [अथवा पत्थर समान दृढ़ हथियार] को (सम्) सर्वथा (शिशाधि) तीक्ष्ण कर और (दिवः) आकाश से (प्र वर्तय) लुढ़का दे। (प्राक्तः) सामने से (अपाक्तः) दूर से, (अधरात्) नीचे से, (उदक्तः) ऊपर से (रक्षसः) राक्षसों को (पर्वतेन) पहाड़ [बड़े हथियार] से (अभि) सब ओर से (जहि) मार ॥१९॥

भावार्थः प्रतापी राजा गुणी शिल्पियों द्वारा आकाश से चलने वाले शस्त्र बनवाकर शत्रुओं को सब दिशाओं से नाश करे ॥१९॥

एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२०॥

भाषार्थः (एते) यह [देशीय] (उ) और (त्ये) वे [विदेशीय] (श्वयातवः) कुत्ते समान पीड़ा देने वाले (पतयन्ति) उड़ते हैं और (दिप्सवः) दुःख देने वाले लोग (अदाभ्यम्) न दबने वाले (इन्द्रम्) प्रतापी राजा को (दिप्सन्ति) हानि करना चाहते हैं। (शक्रः) शक्तिमान् राजा (पिशुनेभ्यः) छली लोगों के लिये (वधम्) मारू हथियार (शिशीते) तेज करता है, वह (नूनम्) निश्चय करके (अशनिम्) वज्र को (यातुमद्भ्यः) पीड़ा देने वालों पर (सृजत्) छोड़ देवे ॥२०॥

भावार्थः राजा भीतरी और बाहिरी हानिकारक शत्रुओं को शस्त्र आदिकों से नष्ट करे ॥२०॥

इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या३ऽविवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ॥२१॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा (हविर्मथीनाम्) ग्राह्य अन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि पदार्थों के मथने वाले [हलचल करने वाले], (आविवासताम्) समीप निवासी (यातूनाम्) पीड़ा देने वालों को (पराशरः) कुचलने वाला (अभि) सब ओर से (अभवत्) हुआ है। (शक्रः) शक्तिमान् राजा (इत् उ) अवश्य ही, (परशुः) कुल्हाड़ा (यथा) जैसे (वनम्) वन को, (पात्रा इव) पात्रों के समान (भिन्दन्) तोड़ता हुआ, (सतः) विद्यमान (रक्षसः) राक्षसों पर (अभि एतु) चढ़ाई करे ।।२१।।

भावार्थः पूर्वज पराक्रमी राजाओं के समान तेजस्वी राजा शत्रुओं का नाश करे, जैसे कुल्हाड़े से वन को काटते हैं अथवा मिट्टी के बासन को लाठी से तोड़ते हैं ।।२१।।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ।।२२।।

भाषार्थः—(इन्द्र) हे प्रतापी राजन् ! (उलूकयातुम्) उल्लू के समान झपटने वाले, (शुशुलूकयातुम्) बड़े अचेत के समान दुःखदायी, (श्वयातुम्) कुत्ते के समान पीड़ा देने वाले (उत) और (कोकयातुम्) भेड़िया के समान हिंसा करने वाले, (सुपर्णयातुम्) श्येन पक्षी समान शीघ्र चलने वाले (उत) और (गृध्रयातुम्) गिद्ध समान दूर पहुंचने वाले [उपद्रवी] को (जहि) मार और (दृषदा इव) जैसे शिला से (रक्षः) राक्षस को (प्र मृण) नाश कर दे ।।२२।।

भावार्थः—नीतिकुशल राजा विविध प्रकार के उपद्रवियों को नाश करता रहे ।।२२।।

मा नो रक्षो अभि नड् यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ।।२३।।

भाषार्थः—(यातुमावत्) पीड़ा रूप सम्पत्ति वाला (रक्षः) राक्षस (नः) हम तक (मा अभि नट्) कभी न पहुँचे, (मिथुनाः) हिंसक लोग, (ये) जो (किमीदिनः) लुतरे हैं, (अप उच्छन्तु) दूर जावें। (पृथिवी) पृथिवी (नः) हम को (पार्थिवात्) पार्थिव (अंहसः) कष्ट से (पातु) बचावे, (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (दिव्यात्) आकाशीय [कष्ट] से (अस्मान्) हमें (पातु) बचावे ।।२३।।

भावार्थः—शत्रुनाशक राजा के शासन में प्रजागण सब उपद्रवों को हटाकर पार्थिव और आकाशीय पदार्थों के उपयोग से प्रसन्न रहें ।।२३।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रं जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ।।२४।।

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजा ! (यातुधानम्) दुःखदायी (पुमांसम्) पुरुष को (उत) और (मायया) कपट से (शाशदानाम्) अति तीक्ष्ण स्वभाव वाली (स्त्रियम्) स्त्री को (जहि) नष्ट कर दे। (मूरदेवाः) मूढ़ [निर्बुद्धि] व्यवहार वाले (विग्रीवासः) ग्रीवा रहित होकर (ऋदन्तु) नष्ट हो जावें, (ते) वे (उच्चरन्तम्) उदय होते हुए (सूर्यम्) सूर्य को (मा दृशन्, न देखें ।।२४।।

भावार्थः—राजा उपद्रवी स्त्री पुरुषों को कठिन दण्ड देकर नष्ट कर दे, जिससे वे उदय होते हुए सूर्य के समान फिर न उभरें ।।२४।।

प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ।।२५।।

भाषार्थः—(प्रति चक्ष्व) प्रत्येक को देख, (वि चक्ष्व) विविध प्रकार देख, (इन्द्रः) हे सूर्य [समान राजन् !] (च) और (सोम) हे चन्द्र [समान मन्त्री !] (जागृतम्) तुम दोनों जागो। (रक्षोभ्यः) राक्षसों पर (वधम्) मारू हथियार और (यातुमद्भ्यः) पीड़ा स्वभाव वालों पर (अशनिम्) वज्र (अस्यतम्) चलाओ ।।२५।।

भावार्थः— जिस प्रकार राजा और मन्त्री सुनीति से शत्रुओं का नाश करके प्रजापालन करते हैं, वैसे ही आचार्य-शिष्य, पति--पत्नी, पिता-पुत्र आदि सुविद्या से आत्मदोष नाश करके आनन्दित हों ।।२५।।

इति द्वितीयोऽनुवाकः ।।

अथ तृतीयोऽनुवाकः ।।

सूक्तम् ।।५।।

१--२२ ।। १--९, १५ कृत्यादूषणाः, १०, २०, २१ विश्वे देवाः, ११, १३, १६ प्रजापतिः, १४, १७, २२, इन्द्रः, १८ मन्त्रोक्ताः, १९ वर्म देवता ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ उपरिष्टाद्बृहती, २ त्रिपदा त्रिष्टुप्, ३ भुरिग्जगती, ४, ७, ८ विराडनुष्टुप्, ५ संस्तारपङ्क्तिर्भुरिक्, ६ उपरिष्टाद्बृहती, ९ जगती, १०, २१ विराट् त्रिष्टुप् ११ पथ्यापङ्क्तिः, १२, १३, १६-१८ अनुष्टुप्, १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, १५ विराट् पुरस्ताद्बृहती; १९ भुरिक् त्रिष्टुप्; २० आस्तारपङ्क्तिः, २२ त्र्यवसाना सप्तपदा भुरिक् शक्वरी छन्दः ॥

हिंसाविनाशोपदेशः—हिंसा के नाश का उपदेश ॥

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ॥१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह [प्रसिद्ध वेदरूप] (वीरः) पराक्रमी, (वीर्यवान्) सामर्थ्य वाला, (सपत्नहा) प्रतियोगियों का नाश करने वाला, (शूरवीरः) शूर वीर, (परिपाणः) सब ओर से रक्षा करने वाला, (सुमङ्गलः) बड़ा मङ्गलकारी, (प्रतिसरः) अग्रगामी, (मणिः) मणि [उत्तम नियम] (वीराय) वीर पुरुष में (बध्यते) बांधा जाता है ॥१॥

भावार्थः—जो वीर पुरुष मणिरूप सर्व श्रेष्ठ वेदनियम पर चलते हैं, वे सुरक्षित रह कर सदा आनन्द भोगते हैं ॥१॥

अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः ॥२॥

भाषार्थः—(अयम्) यह [प्रसिद्ध वेद रूप] (मणिः) मणि [उत्तम नियम], (सपत्नहा) प्रतियोगियों का नाश करने वाला, (सुवीरः) बड़े वीरों वाला, (सहस्वान्) महा बली (वाजी) पराक्रमी, (सहमानः) [शत्रुओं का] हराने वाला, (उग्रः) तेजस्वी (वीरः) वीर होकर (कृत्याः) हिंसाओं को (दूषयन्) नाश करता हुआ (प्रत्यक्) सन्मुख (एति) चलता है ॥२॥

भावार्थः—पराक्रमी वीर पुरुष वैदिक नियमों को धारण करके विघ्नों को हटाते हुए आगे बढ़ते हैं ॥२॥

अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी ।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥३॥

भाषार्थः—(मनीषी) महा बुद्धिमान् (इन्द्रः) बड़े प्रतापी पुरुष ने (अनेन) इस [प्रसिद्ध वेद रूप] (मणिना) मणि [उत्तम नियम] के द्वारा (वृत्रम्) अन्धकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अहन्) मिटाया और (अनेन) इसी के द्वारा (असुरान्, असुरों को (परा अभावयत्) हराया (अनेन) इसी के द्वारा (उभे) दोनों (इमे) इन (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक को (अजयत्) जीता और (अनेन) इसी के द्वारा (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशाओं को (अजयत्) जीता ॥३॥

भावार्थः—वेदानुगामी बुद्धिमान् पराक्रमी पुरुष सब वैरियों को मिटा-कर सूर्य और पृथिवी आदि लोकों पर प्रभाव जमाकर चक्रवर्ती राजा हुए हैं, वैसा ही सब मनुष्यों को होना चाहिये ॥३॥

अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥४॥

भाषार्थः—(अयम्) यह [प्रसिद्ध वेद रूप] (मणिः) मणि [श्रेष्ठ नियम] (स्राक्तयः) उद्यमशील, (प्रतीवर्त्तः) सब ओर घूमने वाला और (प्रतिसरः) अग्र-गामी है। (सः) वह (ओजस्वान्) महाबली, (विमृधः) बड़े हिंसकों को (वशी) वश में करने वाला (अस्मान्) हमको (सर्वतः) सब ओर से (पातु) बचावे ॥४॥

भावार्थः—वेदानुगामी पुरुष बड़े ओजस्वी होकर शत्रुओं को वश में करके सब की रक्षा करते हैं ॥४॥

तद॒ग्निरा॑ह॒ तदु॒ सोम॑ आह॒ बृह॒स्पतिः॑ सवि॒ता तदिन्द्रः॑ ।
ते मे॑ दे॒वाः पु॒रोहि॑ताः प्र॒तीचीः॑ कृ॒त्याः प्र॑तिस॒रैर॑जन्तु ॥५॥

भाषार्थः—(तत्) यह [पूर्वोक्त] (अग्नि) अग्नि [समान तेजस्वी पुरुष] (आह) कहता है, (तत् उ, यही (सोमः) चन्द्र [समान पोषक] (आह) कहता है, (तत्) यही (बृहस्पतिः) बड़ी विद्याओं का स्वामी, (सविता) सब का प्रेरक (इन्द्रः) प्रतापी पुरुष। (ते) वे (देवाः) व्यवहार कुशल (पुरोहिताः) पुरोहित [अग्रगामी पुरुष] (प्रतिसरैः) अग्रगामी पुरुषों सहित (मे) मेरे लिये (कृत्याः) हिंसाओं को (प्रतीचीः) प्रतिकूल गति वाली करके (अजन्तु) हटावें ॥५॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष वेद विद्या का मान करते हैं और विद्वान् ही मनुष्यों को विघ्न से बचाते हैं ॥५॥

अन्तर्द॑धे॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒ताह॑रु॒त सूर्य॑म् ।
ते मे॑ दे॒वाः पु॒रोहि॑ताः प्र॒तीचीः॑ कृ॒त्याः प्र॑तिस॒रैर॑जन्तु ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी को (उत) और (अहः) दिन (उत) और (सूर्यम्) सूर्य को (अन्तः) मध्य में [हृदय में] (दधे) मैं धारण करता हूं। (ते) वे (देवाः) व्यवहार कुशल (पुरोहिताः) पुरोहित [अग्रगामी पुरुष] (प्रतिसरैः) अग्रगामी पुरुषों सहित (मे) मेरे लिये (कृत्याः) हिंसाओं को (प्रतीचीः) प्रतिकूल गति वाली करके (अजन्तु) हटावें ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष आकाश पृथिवी आदि पदार्थों से विज्ञानपूर्वक उपयोग लेते हैं, वे विघ्न नाश करके आनन्दित रहते हैं ॥६॥

ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते।
सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥७॥

भाषार्थः—(ये) जो (जनाः) जन (स्राक्त्यम्) उद्योग शील (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ नियम] को (वर्माणि) कवच (कृण्वते) बनाते हैं। [उनके समान] (वशी) वश में करने वाला पुरुष, (सूर्यं इव) सूर्य के समान (दिवम्) आकाश में (आरुह्य) चढ़कर, (कृत्याः) हिंसाओं को (वि बाधते) हटा देता है ॥७॥

भावार्थः—जो पुरुष संयमी पुरुषों के समान जितेन्द्रिय होते हैं, वे बड़े यशस्वी होकर निर्विघ्न रहते हैं ॥७॥

स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥८॥

भाषार्थः—(स्राक्त्येन) उद्योगशील (मणिना) मणि [श्रेष्ठ नियम] द्वारा (मनीषिणा) महाबुद्धिमान् (ऋषिणा इव) ऋषि के साथ होकर जैसे मैंने (सर्वाः) सब (पृतनाः) सेनाओं को (अजैषम्) जीत लिया है, मैं (मृधः) हिंसक (रक्षसः) राक्षसों को (वि हन्मि) नाश करता हूं ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य ऋषियों के समान पहिले से नियम धारण करके सब उपद्रवों को हटावें ॥८॥

याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः। उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या३ अति ॥९॥

भाषार्थः—(याः) जो (कृत्याः) हिंसाएं (आङ्गिरसीः) ऋषियों कर के कही गई हैं, (याः) जो (कृत्याः) हिंसाएं (आसुरीः) असुरों करके की गई हैं, (याः) जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कृत्याः) हिंसायें (स्वयंकृताः) अपने से की गई हैं, (च उ) और भी (याः) जो (अन्येभिः) दूसरे पुरुषों करके (आभृताः) पहुंचाई गई हैं। (उभयीः) सम्पूर्ण (ताः) वे (नवतिम्) नब्बे (नाव्याः) नाव से उतरने योग्य नदियों को (अति) पार करके (परावतः) बहुत दूर देशों को (परा यन्तु) चली जावें ॥९॥

भावार्थः - जिन हिंसाओं का विधान ऋषियों ने किया है और जिन को मनुष्य अपने आप बुद्धिविकार से करते हैं, अथवा जिन हिंसाओं को दूसरे उपद्रवी करते हैं उन सब को मनुष्य ज्ञान द्वारा सर्वथा अति दूर हटावें ॥९॥

अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥१०॥

भाषार्थः—(देवाः) स्तुति योग्य पुरुष, [अर्थात्] (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला (विष्णुः) कामों में व्याप्ति वाला [मन्त्री] (सविता) प्रेरणा करनेवाला [सेनापति], (रुद्रः) ज्ञानदाता (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी आचार्य] (प्रजापतिः) प्रजापालक, (परमेष्ठी) अति श्रेष्ठ [मोक्ष] पद में रहने वाला, (विराट्) अति प्रकाशमान, (वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी परमेश्वर (च) और (सर्वे) सब (ऋषयः) ऋषि लोग (अस्मै) इस [शूर पुरुष] के (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ नियमरूप] (वर्म) कवच (बधनन्तु) बांधें ॥१०॥

भावार्थः पुरुषार्थी मनुष्य विद्वानों की सम्मति और परमात्मा के श्रेष्ठ नियमों में चलकर आनन्द पावें ॥१०॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥११॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] तू (ओषधीनाम्) तापनाशकों में (उत्तमः) उत्तम (असि) है, (इव) जैसे (जगताम्) गतिशीलों [गौ आदि पशुओं] में (अनड्वान्) [रथ ले चलने वाला] बैल और (इव) जैसे (श्वपदाम्) हिंसक पशुओं में (व्याघ्रः) बाघ [है]। (यम्) जिसको (ऐच्छाम) हमने चाहा था, (तम्) उस (प्रतिस्पाशनम्) प्रत्येक को छूने वाले, (अन्तितम्) प्रबन्ध करने वाले [मणिरूप] श्रेष्ठ नियम को (अविदाम) हमने पाया है ॥११॥

भावार्थः—उत्साही आत्मावलम्बी पुरुष भय छोड़ कर परमात्मा के नियमों को अङ्गीकार करके सुखी होते हैं ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र का पूर्व भाग (उतमो······श्वपदामिव) अ० १६। ३६। ४। में है ॥

स इद् व्याघ्रो भवत्यथों सिंहो अथो वृषा ।
अथों सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥१२॥

भाषार्थः—(सः) वह पुरुष (इत्) ही (व्याघ्रः) बाघ, (अथो) और भी (सिंहः) सिंह, (अथो) और भी (वृषा) बलीवर्द [समान बलवान्] (अथो) और भी (सपत्नकर्शनः) शत्रुओं का दुर्बल करने वाला (भवति) होता है, (यः) जो (इमम्) इस [वेदरूप] (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ नियम] को (बिभर्ति) रखता है ॥१२॥

भावार्थः— वेदानुगामी पुरुष सब प्रकार शक्तिमान् होकर शत्रुओं का नाश करते हैं ॥१२॥

नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥१३॥

भाषार्थः— (एनम्) उस पुरुष को (न) न तो (अप्सरसः) अप्सरायें [आकाश में चलने वाली बिजुलियां], (न) न (गन्धर्वाः) गन्धर्व [पृथिवी धारण करने वाले मेघ] और (न) न (मर्त्याः) मनुष्य (घ्नन्ति) मारते हैं। वह (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं पर (वि राजति) शासन करता है, (यः) जो (इमम्) इस [वेद रूप] (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ नियम] को (बिभर्ति) रखता है ॥१३॥

भावार्थः आत्मज्ञानी पुरुषार्थी पुरुष विज्ञान द्वारा सर्वत्र राज्य करता है ॥१३॥

कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥१४॥

भाषार्थः— [हे मणि, नियम !] (कश्यपः) सब देखने वाले परमेश्वर ने (त्वाम्) तुझे (असृजत) उत्पन्न किया है, (कश्यपः) सर्वदर्शी ईश्वर ने (त्वा) तुझे (सम्) यथावत् (ऐरयत्) भेजा है। (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवान् मनुष्य ने (त्वा) तुझको (मानुषे) मनुष्य [लोक] में (अबिभः) धारण किया है और उसने [तुझ] (बिभ्रत्) धारण करते हुए (संश्रेषिणे) संग्राम में (अजयत्) जय पाई है। [इसी से] (देवाः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय चाहने वाले वीरों ने (सहस्रवीर्यम्) सहस्रों सामर्थ्य वाले (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ-नियम] को (वर्म) कवच (अकृण्वत) बनाया है ॥१४॥

भावार्थः—विद्वानों ने निश्चय किया है कि जो मनुष्य परमेश्वरकृत नियमों पर श्रद्धा रखता है, वह विजयी होता है ॥१४॥

यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥१५॥

भाषार्थः—(यः) जो (त्वा) तुझे (कृत्याभिः) हिंसा क्रियाओं से, (यः) जो (त्वा) तुझे (दीक्षाभिः) आत्मनिग्रह व्यवहारों से, (यः) जो (त्वा) तुझे (यज्ञैः) संयोगों से (जिघांसति) मारना चाहता है। (त्वम्) तू (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ! (तम्) उस को (शतपर्वणा) सैकड़ों पालन सामर्थ्य वाले (वज्रेण) वज्र से (प्रत्यक्) प्रत्यक्ष (जहि) नाश कर ॥१५॥

भावार्थः—जो पाखण्डी मनुष्य उपद्रव करके अथवा कपट से आत्म-निग्रह और मित्रता आदि करके मारना चाहे, राजा उसको नाश करके प्रजा पालन करे ॥१५॥

अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥१६॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (इत् वै) अवश्य ही (प्रतिवर्तः) प्रत्यक्ष घूमने वाला, (ओजस्वान्) बलवान्, (संजयः) विजयी, (परिपाणः) परिरक्षक, (सुमङ्गलः) बड़ा मंगलकारी (मणिः) मणि [श्रेष्ठ नियम] (प्रजाम्) प्रजा (च) और (धनम्) धन की (रक्षतु) रक्षा करे ॥१६॥

भावार्थः—नियमवान् मनुष्य ही प्रजा और धन की रक्षा करते हैं ॥१६॥

असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् ।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥१७॥

भाषार्थः—(शूर) हे शूर (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् राजन् ! (ज्योतिः) ज्योति को (नः) हमारे लिये (अधरात्) नीचे से (असपत्नम्) शत्रु रहित, (नः) हमारे लिये (उत्तरात्) ऊपर से (असपत्नम्) शत्रु रहित, (नः) हमारे लिये (पश्चात्) पीछे से (असपत्नम्) शत्रुरहित (पुरः) सन्मुख (कृधि) कर ॥१७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा सब ओर से शत्रुओं को नाश करके प्रजा की रक्षा करे ॥१७॥

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥१८॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (वर्म) कवच, (अहः) दिन (वर्म) कवच, (सूर्यः) सूर्य (वर्म) कवच (मे) मेरे लिये (इन्द्रः) वायु (च) और (अग्निः) अग्नि [जाठर अग्नि] (च) भी (वर्म) कवच [होवे] (धाता) पोषण करने वाला परमेश्वर (मे) मेरे लिये (वर्म) कवच (दधातु) धारण करे ॥१८॥

भावार्थः– मनुष्य परमेश्वर की महिमा को विचार कर संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर सदा उन्नति करे ॥१८॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध—अ० १९ । २० । ४ । में भी है ॥

ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नातिविध्यन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि ॥१९॥

भाषार्थः—(ऐन्द्राग्नम्) वायु और अग्नि का (वर्म) कवच (बहुलम्) बहुत अधिक और (उग्रम्) प्रचण्ड है, (यत्) जिसको (विश्वे सर्वे) सब की सब (देवाः) इन्द्रियां (न) नहीं (अतिविध्यन्ति) आरपार छेद सकती हैं । (तत्) वह (बृहत्) बड़ा [कवच] (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर को (सर्वतः) सब ओर से (त्रायताम्) पाले, (यथा) जिससे (आयुष्मान्) बड़ी आयु वाला (जरदष्टिः) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वा भोजन वाला (असानि) मैं रहूँ ॥१९॥

भावार्थः परमेश्वर की सृष्टि में वायु अग्नि आदि पदार्थ अपरिमित हैं, उनसे मनुष्य यथावत् उपकार लेकर अपना जीवन और यश बढ़ावें ॥१९॥

आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥२०॥

भाषार्थः—(देवमणिः) दिव्य मणि [श्रेष्ठ नियम] (मह्यै) बड़ी (अरिष्टतातये) कुशलता के लिये (मा) मुझ पर (आ अरुक्षत्) आरूढ़ [अधिकारवान्] हुआ है । [हे विद्वानो !] (इमम्) इस (तनूपानम्) शरीरपालक, (त्रिवरूथम्) तीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] रक्षा वाले (मेधिम्) ज्ञान में (ओजसे) बल के लिये (अभिसंविशध्वम्) सब ओर से मिलकर प्रवेश करो ॥२०॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने प्रत्येक प्राणी के कुशल के लिये उत्तम नियम उत्पन्न किये हैं, सब विद्वान् लोग उनका आश्रय लेकर अपना बल बढ़ावें ॥२०॥

इस मन्त्र का पूर्वभाग कुछ भेद से आ चुका है—अ० ३ । ५ । ५ ॥

अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासत् ॥२१॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (अस्मिन्) इस [पुरुष] में (नृम्णम्) बल वा धन (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतु वाले (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयु के लिये (नि दधातु) नियम से स्थापित करे, (देवासः) हे विद्वानो ! (इमम्) इस [ज्ञान—म० २०] में (अभिसंविशध्वम्) सब ओर से मिलकर प्रवेश करो, (यथा) जिससे वह (आयुष्मान्) बड़े जीवन वाला और (जरदष्टिः) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वा भोजन वाला (असत्) होवे ॥२१॥

भावार्थः –विद्वान् लोग उपदेश करें कि जिससे सब मनुष्य ईश्वर महिमा जानकर बल धन और यश बढ़ावें ॥२१॥

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा । स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥२२॥

भाषार्थः—(स्वस्तिदाः) मंगल का देने हारा, (विशाम्) प्रजाओं का (पतिः) पालने हारा, (वृत्रहा) अन्धकार मिटाने हारा, (विमृधः) शत्रुओं को (वशी) वश में करने हारा, (जिगीवान्) विजयी, (अपराजितः) कभी न हराया गया, (सोमपाः) ऐश्वर्य की रक्षा करने हारा, (अभयङ्करः) अभय करने हारा, (वृषा) महाबली (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (ते) तुझको [हे मनुष्य !] (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ नियम] (बध्नातु) बांधे । (सः) वह (सर्वतः) सब प्रकार (दिवा नक्तं च) दिन और रात (विश्वतः) सब ओर से (त्वा) तेरी (रक्षतु) रक्षा करे ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की उपासना करके उत्तम नियमों का पालन कर सदा सुरक्षित रहें ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र का प्रथम भाग और कुछ अन्यपद आ चुके हैं—अ० १। २१। १॥

सूक्तम् ॥६॥

१—२६॥ प्रजापतिर्देवता॥ १, ३, ४–९, १३, १८, २०–२६ अनुष्टुप्; २ बृहती; १०, १७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; ११, १२, १४, १६ पथ्या पङ्क्तिः; १५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी; १९ भुरिगनुष्टुप्॥

गर्भरक्षोपदेशः—गर्भ की रक्षा का उपदेश॥

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ।
दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः ॥१॥
पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम्।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥२॥

भाषार्थः—[हे स्त्री!] (ते जातायाः) तुझ उत्पन्न हुई की (माता) माता ने [तेरे] (यौ) जिन दोनों (पतिवेदनौ) ऐश्वर्य प्राप्त करने वालों [अर्थात् स्तनों] को (उन्ममार्ज) यथावत् धोया था। (तत्र) उन दोनों में [हो जाने वाला] (अलिंशः) शक्ति घटाने वाला (उत) और (वत्सपः) बच्चे नाश करने वाला (दुर्णामा) दुर्नामा [दुष्ट नाम वाला थनेला आदि रोग का कीड़ा], (पलालानुपलालौ) मांस [का बढ़ाव] रोकने वाले और लगातार पुष्टि रोकने वाले, (शर्कुम्) क्लेश करने वाले, (कोकम्) भेड़िया [समान बल छीनने वाले], (मलिम्लुचम्) मलिन चाल वाले, (पलीजकम्) चेष्टा में दोष लगाने वाले, (आश्रेषम्) अत्यन्त दाह वा कफ करने वाले, (वव्रिवाससम्) रूप हरलेने वाले, (ऋक्षग्रीवम्) गला दुखाने वाले, (प्रमीलिनम्) आंखें मूंद देने वाले, [क्लेश] को (मा गृधत्) न चाहे॥१, २॥

भावार्थः—स्त्री सावधान रहे कि जिन स्तन आदि अङ्गों को उसकी माता ने जन्म दिन पर धोकर नीरोग बनाया था, उनमें रोग के कीड़े हो जाने के कारण बलहीन होकर बच्चे के दुःखदायी क्लेश न उत्पन्न हों॥१, २॥

मन्त्र १ तथा २ युग्मक हैं॥ (दुर्णामा) का अर्थ "कीड़े पापनामा अर्थात् बुरे स्थान में झुके वा उत्पन्न" किया है—देखो निरुक्त ६। १२ और देवराज यज्वा की टीका॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा सं वृ॑तो मोप॑ सृप ऊरू माव॑ सृपोऽन्तरा ।
कृणोम्य॑स्यै भेषजं बजं दुर्णामचातंनम् ॥३॥

भाषार्थः - [हे रोग !] (मा सम् वृतः) तू मत घूमता रह, (मा उप सृपः) मत रींगता आ, (ऊरू अन्तरा) दोनों जांघों के बीच (मा अव सृपः) मत सरकता जा। (अस्यै) इस [स्त्री] के लिये (दुर्णामचातनम्) दुर्नामनाशक [दुष्ट नाम रोग मिटाने वाले] (बजम्) बलवान् (भेषजम्) औषध को (कृणोमि) बनाता हूँ ॥३॥

भावार्थः वैद्य गर्भिणी स्त्री के लिये उत्तम औषधि बनावे जिससे उसको कोई कठिन रोग न होवे ॥३॥

दुर्णामा॑ च सुनामा॑ चोभा संवृत॑मिच्छतः ।
अरायानप॑ हन्मः सुनामा स्त्रैण॑मिच्छताम् ॥४॥

भाषार्थः—(दुर्णामा) दुर्नाम [कठिन रोग] (च) और (सुनामा) सुनाम [स्वस्थपन] (च) भी (उभा) दोनों (संवृतम्) समीप रहना (इच्छतः) चाहते हैं। (अरायान्) अलक्ष्मी वाले [रोगों] को (अप हन्मः) हम मिटाते हैं, (सुनामा) सुनाम [स्वस्थपन] (स्त्रैणम्) स्त्री सम्बन्धी [शरीर] को (इच्छताम्) चाहे ॥४॥

भावार्थः—वैद्य समीपवर्ती रोग के कारणों को रोककर गर्भिणी का स्वास्थ्य बढ़ाते रहें ॥४॥

यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः ।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोऽप॑ हन्मसि ॥५॥

भाषार्थः—(यः) जो [रोग] (कृष्णः) काला, (केशी) बहुत क्लेश वा बहुत केश वाला (असुरः) गिरानेवाला, (स्तम्बजः) बैठने के अङ्ग में उत्पन्न होने वाला (उत) और (तुण्डिकः) कुरूप थूथन वा कुरूप नाभि वाला [है]। (अरायान्) अलक्ष्मीवाले [उन रोगों] को (अस्याः) इस [स्त्री] के (मुष्काभ्याम्) दोनों अण्ड कोशों से और (भंससः) गुप्त स्थान से (अप हन्मसि) हम मिटाते हैं ॥५॥

भावार्थः—वैद्य लोग गर्भिणी स्त्री के मर्म स्थानों के कुरोगों की चिकित्सा करते रहें, जिससे बालक बलवान् और नीरोग हो ॥५॥

अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम् ।
अरायांछ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अनुजिघ्रम्) लगातार सुड़कनेवाले, (प्रमृशन्तम्) छू जाने वाले (क्रव्यादम्) माँस खानेवाले (उत) और (रेरिहम्) अति चोट करने वाले [ऐसे] (अरायान्) अलक्ष्मी वाले और (श्वकिष्किणः) कुत्ते समान सताने वाले [रोगों] को (बजः) बली और (पिङ्गः) पराक्रमी [पुरुष] ने (अनीनशत्) नाश कर दिया है ॥६॥

भावार्थः—बलवान् और पराक्रमी स्त्री पुरुषों को शरीर का मांस और बल घटानेवाले रोग नहीं सताते हैं ॥६॥

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥७॥

भाषार्थः—[हे स्त्री !] (यः) जो कोई (त्वा) तेरे पास (स्वप्ने) सोते में (भ्राता) भाई [समान] (च) और (पिता इव) पिता के समान (भूत्वा) होकर (निपद्यते) आ जावे । (बजः) बली [पुरुष] (तान्) उन सब (क्लीबरूपान्) हिजड़े [समान] रूपवाले (तिरीटिनः) घातकों को (इतः) यहां से (सहताम्) हरा देवे ॥७॥

भावार्थः—पति आदि सावधान रहें कि कोई छली पुरुष गर्भिणी को सोते में न सतावे ॥७॥

यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ॥८॥

भाषार्थः—(यः) जो कोई (त्वा) तुझ (स्वपन्तीम्) सोती हुई को (त्सरति) छलता है, (यः) जो (त्वा) तुझ (जाग्रतीम्) जागती हुई को (दिप्सति) मारना चाहता है । (परिक्रामन्) घूमते हुए (सूर्यः) सूर्य [समान पुरुष] ने (तान्) उन सब को (छायाम् इव) छाया के समान (प्र अनीनशत्) नाश कर दिया है ॥८॥

भावार्थः—सावधान पति आदि सोती और जागती गर्भिणी के पास से दुष्टों को ऐसे हटावें जैसे परिक्रमा करता हुआ सूर्य अन्धकार को ॥८॥

मन्त्र ७ तथा ८ का मिलान करो -ऋग्वेद १० । १६२ । ५, ६ ॥

यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् ।
तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जो [रोग] (इमाम्) इस (स्त्रियम्) स्त्री को (मृतवत्साम्) मरे बच्चे वाली और (अवतोकाम्) पतितगर्भ वाली (कृणोति) करता है। (ओषधे) हे ओषधि ! [अन्न आदि पदार्थ] (त्वम्) तू (अस्याः) इस [स्त्री] के (तम्) उस (कमलम्) कामना रोकनेवाले और (अञ्जिवम्) कान्ति [शोभा] हरनेवाले [रोग] को (नाशय) नाश कर ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करें कि स्त्री उत्तम अन्न ओषधि आदि के सेवन से नीरोग रहकर बालक की पालना और फिर भी गर्भ की रक्षा करके कामना पूरी करती हुई शोभा बढ़ावे ॥९॥

ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः ।
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः ।
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय ॥१०॥

भाषार्थः—(ये) जो (गर्दभनादिनः) गधे समान नाद करनेवाले [कीड़े] (सायम्) सायंकाल में (शालाः) घरों के (परिनृत्यन्ति) आस पास नाचते हैं। (च) और (ये) जो (कुसूलाः) चिपट जानेवाले [अथवा अन्न के कोठे के समान आकार वाले], (कुक्षिलाः) बड़े पेटवाले, (ककुभाः) शरीर में टेढ़े दिखाई देने वाले, (करुमाः) मन को पीड़ा देने वाले, (स्रिमाः) चलने फिरने वाले [वा सुखाने वाले] हैं। (ओषधे) हे ओषधि ! [वैद्य] (त्वम्) तू (गन्धेन) गन्ध से (तान्) उन (विषूचीनान्) फैले हुए [कीड़ों] को (वि नाशय) विनष्ट कर दे ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य कस्तूरी, केशर, कपूर, अगर, तगर, आदि हव्य पदार्थों का अग्नि में होम करके रोगजनक कृमियों को घर से नाश करें ॥१०॥

ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥११॥

भाषार्थः—(ये) जो (कुकुन्धाः) कुत्सित ध्वनि रखने वाले [भिन भिनाने वाले], (कुकूरभाः) भूसे के अग्नि समान चमकने वाले [कीड़े] (कृत्तीः) कतरनियों [छेदन शक्तियों] और (दूर्शानि) दुष्ट हिंसाकर्मों को (बिभ्रति) रखते हैं। (ये) जो (क्लीबाः इव) हीजड़ों के समान (प्रनृत्यन्तः) नाचते हुए [कीड़े] (वने) घर में (घोषम्) कूक (कुर्वते) करते हैं, (तान्) उन को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करते हैं ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य रोगजनक छोटे-छोटे कीड़ों को सुगन्धित द्रव्यों के धूम आदि से नाश करते रहें ॥११॥

ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः। अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि ॥१२॥

भाषार्थः—(ये) जो [उल्लू आदि] (दिवः) आकाश से (आतपन्तम्) चमकते हुए (अमुम्) उस (सूर्यम्) सूर्य को (न) नहीं (तितिक्षन्ते) सहते हैं। (अरायान्) [उन] अलक्ष्मी वालों, (बस्तवासिनः) बकरे समान वस्त्र वालों, (दुर्गन्धीन्) दुर्गंध वालों, (लोहितास्यान्) रुधिर मुख वालों, (मककान्) टेढ़ी गति वालों को (नाशयामसि) हम नष्ट करते हैं ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य उल्लू, चिमगादड़ आदि जन्तुओं को, जिन से दुर्गन्ध फैलती है, हटावें ॥१२॥

य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥१३॥

भाषार्थः—(ये) जो [कीड़े अपने] (आत्मानम्) आत्मा को (अंसे) पीड़ा देने में (अतिमात्रम्) अत्यन्त (आधाय) लगाकर (बिभ्रति) रखते हैं। और (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के (श्रोणिप्रतोदिनः) कटिभाग में व्यथा करने वाले हैं, (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष! [उन] [रक्षांसि] राक्षसों को (नाशय) नष्ट कर दे ॥१३॥

भावार्थः—वैद्य लोग गर्भिणी स्त्रियों के दुःखदायी कीड़ों और रोगों को नाश करें ॥१३॥

ये पूर्वे वध्वो३ यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः। आपाकेस्थाः प्रहासिन स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥१४॥

भावार्थः—(ये) जो [कीड़े] (हस्ते) हाथ में (शृङ्गाणि) हिंसाकर्मों को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (वध्वः) वधू के (पूर्वे) सन्मुख (यन्ति) चलते हैं। (ये) जो [कीड़े] (आपाकेस्थाः) पाकशाला वा कुम्हार के आवां में बैठने वाले, (प्रहासिनः) ठट्ठा मारते हुए [जैसे] (स्तम्बे) बैठने के स्थान में (ज्योतिः) ज्वाला [जलन, चमक वा पीड़ा] (कुर्वते) करते हैं, (तान्) उन [कीड़ों] को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नष्ट करते हैं ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—घरों, पाकशालाओं और आवांओं में कूड़ा कर्कट एकत्र हो कर उष्णता के कारण रोगजनक कीड़े उत्पन्न होते हैं, मनुष्य ऐसे स्थानों को शुद्ध रक्खें ॥१४॥

येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा । खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः । तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥१५॥

भाषार्थः—(येषाम्) जिन [कीड़ों] के (पश्चात्) पीछे को (प्रपदानि) पांव के अगले भाग, (पुरः) आगे को (पार्ष्णीः) एड़ियां और (पुरः) आगे (मुखा) मुख हैं। (च) और (ये) जो [कीड़े] (खलजाः) खलिहान में उत्पन्न होने वाले, (शकधूमजाः) गोबर वा लीद के धुयें से उत्पन्न होने वाले, (उरुण्डाः) बहुत इकट्ठे किये गये, (मट्मटाः) अत्यन्त पीड़ा देने वाले, (कुम्भमुष्काः) घड़े समान अण्डकोश वाले और (अयाशवः) रेंगकर खाने वाले हैं। (ब्रह्मणः पते) हे वेदरक्षक! [वैद्य] (प्रतिबोधेन) अपने प्रत्यक्ष बोध से (तान्) उन [कीड़ों] को (अस्याः) इस [स्त्री के पास] से (नाशय) नाश करदे ॥१५॥

भावार्थः- वैद्य लोग कुरूप, क्लेशदायक कीड़ों को जो कूड़े कर्कट के कारण उत्पन्न होते हैं, घर से नष्ट करदें ॥१५॥

पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः ।
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम् ॥१६॥

भाषार्थः—(पण्डगाः) पण्डाओं [तत्त्वविवेकियों] के निन्दक, (पर्यस्ताक्षाः) व्यवहार से गिरे हुए पुरुष (अप्रचङ्कशाः) न कदापि शासन कर्ता और (अस्त्रैणाः) न [हमारी] स्त्रियों में मिलनेवाले (सन्तु) होवें। (भेषज) हे भय निवारक पुरुष! [उसको] (अव पादय) गिरा दे, (यः) जो (अपतिः) पति न होकर (इमाम्) इस (स्वपतिम्) अपने पति वाली (स्त्रियम्) स्त्री के पास (संविवृत्सति) आना चाहता है ॥१६॥

भावार्थः -राजा कुबुद्धि, व्यभिचारी, पतिव्रताओं के ठगने वाले पुरुषों को यथावत् दण्ड देवे ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् ।
उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम् ।
पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना ॥१७॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (उद्धर्षिणम्) अति झूठ बोलने वाले, (मुनि-केशम्) मुनियों के क्लेश देनेवाले, (जम्भयन्तम्) नाश करनेवाले, (मरीमृशम्) बरबस हाथ डालने वाले, (उपेषन्तम्) अधिक आने जाने वाले, (उदुम्बलम्) मार पीट का सेवन करने वाले, (तुण्डेलम्) तोड़ फोड़ के करने वाले, (उत) और (शालुडम्) घमंडी को (प्र विध्य) छेद डाल, (इव) जैसे (स्पन्दना) कूदने वाली (गौः) गाय (पदा) लात से और (पार्ष्ण्या) एड़ी से (स्थालीम्) हांडी को ॥१७॥

भावार्थः—राजा शिष्टों की रक्षा करके दुष्टों को सर्वथा दण्ड देता रहे ॥१७॥

यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते ।
पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥१८॥

भाषार्थः—[हे स्त्री !] (यः) जो (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ को (प्रति मृशात्) दबा देवे, (वा) अथवा (ते) तेरे (जातम्) उत्पन्न [बालक] को (मारयाति) मार डाले । (उग्रधन्वा) प्रचण्ड धनुष् वाला (पिङ्गः) पराक्रमी पुरुष (तम्) उसको (हृदयाविधम्) हृदय में बरमे [से छेद] वाला (कृणोतु) करे ॥१८॥

भावार्थः—राजा भ्रूण हत्यारे और बाल हत्यारे की छाती में बरमा चला कर नष्ट कर देवे ॥१८॥

ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते ।
स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु ॥१९॥

भाषार्थः—(ये) जो (अम्नः) पीड़ा देने वाले (जातान्) उत्पन्न बालकों को (मारयन्ति) मार डालते हैं और (सूतिकाः) सोहर वाली स्त्रियों को (अनुशेरते) अप्रिय करते हैं । (पिङ्गः) पराक्रमी पुरुष (स्त्रीभागान्) स्त्रियों के सेवन करने वाले, (गन्धर्वान्) [उन] दुःखदायी पीड़ा देने वालों को (अजतु) हटा देवे, (इव) जैसे (वातः) वायु (अभ्रम्) अभ्र [मेघ] को ॥१९॥

भावार्थः—जिन रोगों से बच्चे मर जाते हैं और स्त्रियों को प्रसूति रोग हो जाते हैं, वैद्य उनको सर्वथा हटावे ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिसृष्टं धारयतु यद्धितं मावं पादि तत् ।
गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥२०॥

भाषार्थः—[हे स्त्री !] (परिसृष्टम्) सब प्रकार युक्त [कर्म] [तुझे] (धारयतु) धारण करे, (यत्) जो (हितम्) हित है, (तत् वह (मा अव पादि) न गिर जावे। (उग्रौ) दोनों नित्य सम्बन्ध वाले, (नीविभार्यौ) नीति [नियम] से धारण करने योग्य, (भेषजौ) भय जीतने वाले [बल और पराक्रम, अर्थात् शारीरिक और आत्मिक सामर्थ्य] (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ की (रक्षताम्) रक्षा करें ॥२०॥

भावार्थः गर्भिणी समुचित कर्म से शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ा कर गर्भरक्षा करे ॥२०॥

पवीनसात् तङ्गल्वा३' च्छायकादुत नग्नकात् ।
प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥२१।

भाषार्थः—(पवीनसात्) वज्र समान टेढ़े से, (तङ्गल्वात्) गति रोकने वाले से, (छायकात्) काटने वाले से (उत) और (नग्नकात्) नगे करने वाले (किमीदिनः) लुतरे पुरुष से (प्रजायै) प्रजा के लिये और (पत्ये) पति के लिये (त्वा) तुझको (पिङ्गः) पराक्रमी पुरुष (परि पातु) सब ओर से बचावे ॥२१॥

भावार्थः—प्रतापी राजा कुकर्मी दुष्टों से स्त्रियों की रक्षा करे ॥२१॥

द्व्यास्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनङ्गुरेः ।
वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् ॥२२॥

भाषार्थः - (द्व्यास्यात्) दुमुहे से, (चतुरक्षात्) चार आंखों वाले से, (पञ्चपादात्) पांच पैर वाले से, (अनङ्गुरेः) विना चेष्टा वाले से। (वृन्तात्, फल पत्र आदि के डंठल से (अभि) चारों ओर को (प्रसर्पतः) रेंगने वाले (वरीवृतात्) टेढ़े टेढ़े घूमनेवाले [कीड़ों] से (परि) सब ओर से (पाहि) बचा ॥२२॥

भावार्थः मनुष्य दुःखदायी कुरूप दुष्ट कीड़ों से सदा रक्षा करे ॥२२॥

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ।२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जो [कीड़े] (आमम्) कच्चे (मांसम्) मांस को (च) और (ये) जो (पौरुषेयम्) पुरुष के (क्रविः) मांस को (अदन्ति) खाते हैं। (केशवाः) और क्लेश पहुंचानेवाले [रोग वा कीड़े] (गर्भान्) गर्भों को (खादन्ति) खाते हैं। (तान्) उन सब को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करते हैं ॥२३॥

भावार्थः— वैद्य लोग रोगजनक कीड़ों और रोगों को गर्भिणी स्त्री से अलग करें ॥२३॥

ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि ।
बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥२४॥

भाषार्थः— (ये) जो [उल्लू चोर आदि] (सूर्यात्) सूर्य से (अधि) अधिकार-पूर्वक (परिसर्पन्ति) खिसक जाते हैं, (इव) जैसे (स्नुषा) पतोहू (श्वशुरात्) ससुर से। (बजः) बली (च) और (पिङ्गः) पराक्रमी [पुरुष] (च) भी (तेषाम्) उनके (हृदये) हृदय में (अधि) अधिकार पूर्वक (नि) निरन्तर (विध्यताम्) छेद डालें ॥२४॥

भावार्थः—बुद्धिमान् बलवान् पुरुष डरपोक चोर आदि और हिंसक जन्तुओं का नाश करें ॥२४॥

पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् ।
आण्डादो गर्भान्मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः ॥२५॥

भाषार्थः—(पिङ्ग) हे पराक्रमी पुरुष ! (जायमानम्) उत्पन्न होते हुए [सन्तान] को (रक्ष) बचा, (आण्डादः) अण्डे [गर्भ] खाने वाले [रोग वा कीड़े] (पुमांसम्) पुरुष [वा] (स्त्रियम्) स्त्री [बालक] को (मा क्रन्) न मारें और (गर्भान्) गर्भों को (मा दभन्) नष्ट न करें, (इतः) यहां से (किमीदिनः) लुतरों को (बाधस्व) हटा दे ॥२५॥

भावार्थः—पुरुषार्थी बलवान् पुरुष स्त्रियों की रक्षा करें जिससे सन्तान और गर्भ नष्ट न होवें ॥२५॥

अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद् रोदमघमावयम् ।
वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥२६॥

भाषार्थः—(अप्रजास्त्वम्) विना सन्तान होना, (मार्तवत्सम्) बच्चों का मर जाना (आत्) और (रोदम्) रोदन करना (अघम्) पाप और (आवयम्) सब ओर से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख के योग को। (तत्) उसे (अप्रिये) अप्रिय पर (प्रतिमुञ्च) छोड़ दे (इव) जैसे (वृक्षात्) वृक्ष से (स्रजम्) फूलों की माला को (कृत्वा) बनाकर [छोड़ते हैं] ॥२६॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करें कि उनके सन्तान उत्पन्न होकर क्लेशों से बचकर दीर्घ आयु प्राप्त करें ॥२६॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् । ७॥

१—२८ ॥ ओषधयो देवताः ॥ १, ७, ८, ११, १३, १४, १६—२३, २६—२८, अनुष्टुप्; २ भुरिगुपरिष्टाद्बृहती; विराट्पुर उष्णिक्; ४ अतिजगती; ५, ६, १०, २५ पथ्यापङ्क्तिः; ९ आचर्यनुष्टुप्, १२ निचृदतिशक्वरी, १५ त्रिष्टुप्, २४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ॥

रोगविनाशोपदेशः—रोग के विनाश का उपदेश ॥

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि ॥१॥

भाषार्थः—(याः) जो (बभ्रवः) पुष्ट करनेवाली [वा भूरे रङ्ग वाली] (च) और (याः) जो (शुक्राः) वीर्यवाली [वा चमकीली] (रोहिणीः) स्वास्थ्य उत्पन्न करने वाली [वा रक्त वर्ण] (उत) और (पृश्नयः) स्पर्श करने वाली [वा अति सूक्ष्म] । (असिक्नीः) निर्बन्ध [वा श्याम वर्ण], (कृष्णाः) आकर्षण करने वाली [वा काले रंग वाली] (ओषधीः) (ओषधियां) हैं, (सर्वाः) उन सब को (अच्छावदामसि) हम अच्छे प्रकार चाहते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य पौष्टिक उत्तम अन्न आदि ओषधियों का सेवन करके उन्नति करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेषितादधि ।

यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥२॥

भाषार्थः—वे [ओषधियां] (इमम् पुरुषम्) इस पुरुष को (देवेषितात्) उन्माद से प्राप्त हुए (यक्ष्मात्) राज रोग से (अधि) अधिकार पूर्वक (त्रायन्ताम्) रक्षा करें। (यासाम् वीरुधाम्) जिन उगने वाली [अन्न आदि ओषधियों] का (द्यौः) सूर्य (पिता) पालनेवाला, (पृथिवी) पृथिवी (माता) उत्पन्न करने वाली और (समुद्रः) समुद्र [जल] (मूलम्) जड़ (बभूव) हुआ था ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य अन्न आदि अनेक ओषधियों की उत्पत्ति और गुण जान करके उनके सेवन से यथावत् रक्षा करें ॥२॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आ चुका है—अ० ३। २३। ६॥

आपो अग्रं दिव्या ओषधयः ।

तास्ते यक्ष्ममेनस्य१ मङ्गादङ्गादनीनशन् ॥३॥

भाषार्थः—(अग्रम्) पहिले (दिव्याः) दिव्य गुण वाले (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियां [अन्न आदि पदार्थ] [थीं] (ताः) उन्होंने (एनस्यम्) पाप से उत्पन्न हुए (यक्ष्मम्) राजरोग को (ते) तेरे (अङ्गादङ्गात्) अङ्ग अङ्ग से (अनीनशन्) नष्ट कर दिया है ॥३॥

भावार्थः परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में जल अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न करके प्राणियों की रक्षा की है ॥३॥

प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि । अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥४॥

भाषार्थः—(प्रस्तृणतीः) बहुत ढकने वाली [पत्तों वाली], (स्तम्बिनीः) बहुत गुच्छों वाली, (एकशुङ्गाः) एक कोंपल वाली, (प्रतन्वतीः) बहुत फैली हुई (ओषधीः) ओषधियों को (आ वदामि) मैं भले प्रकार बुलाता हूं। (अंशुमतीः) बहुत कोंपल वाली, (काण्डिनीः) बड़े गुद्दों वाली, (विशाखाः) बहुत टहनियों वाली, (वैश्वदेवीः) सब दिव्य गुणवाली, (उग्राः) बल वाली (पुरुषजीवनीः) मनुष्यों का जीवन करने वालियों को (ते) तेरे लिये (ह्वयामि) मैं बुलाता हूं, (याः) जो (वीरुधः) विविध प्रकार उगने वाली बेल बूटी हैं ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः मनुष्य विविध प्रकार अन्न, वृक्ष और औषधों को भले प्रकार निरीक्षण करके उपयोग करें ॥४॥

यद् वः सहः सहमाना वीर्यं १ यच्च वो बलम् ।
तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥५॥

भाषार्थः—(**सहमानाः**) हे बल वालियो ! (**यत्**) जो (**वः**) तुम्हारा **सहः**) पराक्रम और (**वीर्यम्**) वीरत्व (**च**) और (**यत्**) जो (**वः**) तुम्हारा (**बलम्**) बल है। (**ओषधीः**) हे ताप नाशक ओषधियो ! (**ते**) उस से (**इमम्**) इस (**पुरुषम्**) पुरुष को (**अस्मात्**) इस (**यक्ष्मात्**) राजरोग से (**मुञ्चत**) छुड़ाओ, (**अथो**) अब, मैं (**भेषजम्**) औषध (**कृणोमि**) करता हूं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य पदार्थों के गुणों का परीक्षण करके विघ्नों को हटावें ॥५॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥६॥

भाषार्थः --(**जीवलाम्**) जीवन देने वाली, (**नघरिषाम्**) न कभी हानि करने वाली, (**जीवन्तीम्**) जीव रखने वाली, (**अरुन्धतीम्**) रोक न डालने वाली, (**उन्नयन्तीम्**) उन्नति करने वाली, (**पुष्पाम्**) बहुत पुष्प वाली, (**मधुमतीम्**) मधुर रस वाली (**ओषधीम्**) ताप नाशक [अन्न आदि ओषधि] को (**इह**) यहां (**अस्मै**) इस [पुरुष] को (**अरिष्टतातये**) शुभ करने के लिये (**अहम्**) मैं (**हुवे**) बुलाता हूं ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को परीक्षणपूर्वक उत्तम-उत्तम पदार्थों का सेवन करना चाहिये ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० ८ । २ । ६ ॥

इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥७॥

भाषार्थः (**प्रचेतसः मम**) मुझ बड़े ज्ञानी के (**वचसः**) वचन की (**मेदिनीः**) प्रीति करने वाली [ओषधियां] (**इह**) यहां (**आ यन्तु**) आवें। (**यथा**) जिससे (**इमम् पुरुषम्**) इस पुरुष को (**दुरितात्**) कष्ट से (**अधि**) यथावत् (**पारयामसि**) हम पार लगावें ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—पूर्वदर्शी वैद्य यथावत् वार्तालाप करके युक्त ओषधियों द्वारा क्लेश मिटावें ॥७॥

अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः ।
ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः ॥८॥

भाषार्थः—(अग्नेः) अग्नि का (घासः) भोजन [अग्नि बढ़ाने वाली] और (अपाम्) जलों का (गर्भः) गर्भ [जल से युक्त], (याः) जो (पुनर्णवाः) बारंबार नवीन [ओषधियां] (रोहन्ति) उत्पन्न होती हैं। [वे] (ध्रुवाः) दृढ़ गुण वाली, (सहस्रनाम्नीः) सहस्रों नाम वाली (आभृताः) यथावत् भरी हुई (भेषजीः) भय जीतने वाली [ओषधियां] (सन्तु) होवें ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य अग्नि अर्थात् शरीरबल बढ़ाने वाली, रसीली, हरी उत्तम ओषधियों का उपयोग करें ॥८॥

अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः ।
व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ॥९॥

भाषार्थः—(अवकोल्बाः) पीड़ा को जलाने वाली, (उदकात्मानः) जल को जीवन रखने वाली, (तीक्ष्णशृङ्ग्यः) [रोग को] तीक्ष्ण काट करने वाली (ओषधयः) ओषधियां (दुरितम्) कष्ट को (वि) बाहिर (ऋषन्तु) निकालें ॥९॥

भावार्थः—वैद्य लोग परीक्षित उत्तम ओषधियों से रोग की चिकित्सा करें ॥९॥

उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः । अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥१०॥

भाषार्थः—(याः) जो (उन्मुञ्चन्तीः) [रोग से] मुक्त करने वाली, (विवरुणाः) विशेष करके स्वीकार करने योग्य, (उग्राः) बड़े बल वाली, (विषदूषणीः) विष हरने वाली। (अथो) और भी (याः) जो (बलासनाशनीः) बल गिराने वाले [सन्निपात, कफादि] का नाश करने वाली (च) और (कृत्यादूषणीः) पीड़ा मिटाने वाली हैं, (ताः) वे सब (ओषधीः) ओषधियां (इह) यहां (आ यन्तु) आवें ॥१०॥

भावार्थः - वैद्य लोग परीक्षित उत्तम ओषधियों का उपयोग करके रोग शान्ति करें ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः ।
त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥११॥

भाषार्थः—(याः) जो (अपक्रीताः) यथावत् मोल ली गई, (सहीयसीः) अधिक बल वाली, (अभिष्टुताः) उत्तम गुण वाली (वीरुधः) ओषधियां हैं। वे (अस्मिन् ग्रामे) इस ग्राम में (गाम्) गौ, (अश्वम्) घोड़े, (पुरुषम्) पुरुष और (पशुम्) पशु [भैंस बकरी आदि] को (त्रायन्ताम्) पालें ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम वस्तुओं द्वारा उपकारी प्राणियों की यथावत् रक्षा करें ॥११॥

मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव। मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुहतां गोपुरोगवम् ॥१२॥

भाषार्थः—(आसाम् वीरुधाम्) इन ओषधियों का (मूलम्) मूल (मधुमत्) मधुर, (अग्रम्) सिरा (मधुमत्, मधुर, (मध्यम्) मध्य (मधुमत्) मधुर, (पर्णम्) पत्र (मधुमत्) मधुर, (पुष्पम्) फूल (मधुमत्) मधुर (बभूव) हुआ था, (आसाम्) इनका (अमृतस्य) अमृत का (भक्षः) भोजन [है], (मधोः) मधुरता में (संभक्ताः) पूरी तत्पर वे [ओषधें] (गोपुरोगवम्) गौ को अग्रगामी [प्रधान] रखने वाले (घृतम्) घी और (अन्नम्) अन्न को (दुहताम्) भरपूर करें ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य अन्न, तृण आदि ओषधियों के भागों के गुणों से यथावत् उपकार लेकर गौ आदि जीवों की रक्षा करके घृत अन्न आदि परिपूर्ण करें ॥१२॥

यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः ।
ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३॥

भाषार्थः—(यावतीः) जितनी (च) और (कियतीः) कितनी [विविध परिमाण और गुणवाली] (इमाः) ये (ओषधीः) ओषधियां (पृथिव्याम् अधि) पृथिवी के ऊपर [हैं]। (सहस्रपर्ण्यः) सहस्रों पोषण वाली (ताः) वे सब (मा) मुझको (मृत्योः) मरण [आलस्य] से और (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य अन्न आदि ओषधियों द्वारा बल बढ़ाकर सुखी होवें ॥१३॥

वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः ।
अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत् ॥१४॥

भाषार्थः—(वीरुधाम्) ओषधियों का (वैयाघ्रः) व्याघ्र सम्बन्धी [महाबली] (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ, (अभिशस्तिपाः) पीड़ा से रक्षा करने वाला (मणिः) मणि [उत्तम गुण] (अमीवाः) रोगों को और (सर्वा) सब (रक्षांसि) राक्षसों [विघ्नों] को (अस्मत्) हम से (दूरम्) दूर (अधि) अधिकार पूर्वक (अप हन्तु) हटा देवे ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम पदार्थों के सेवन से नीरोग और पुष्टाङ्ग होवें ॥१४॥

सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः ।
गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः ॥१५॥

भाषार्थः—वे [रोग] (आभृताभ्यः) सब प्रकार पुष्ट की हुई [ओषधियों] से (विजन्ते) डरते हैं, (इव) जैसे (सिंहस्य) सिंह की (स्तनथोः) गर्जन से और (इव) जैसे (अग्नेः) अग्नि से (सम् विजन्ते) [प्राणी] डरकर भागते हैं। (गवाम्) गौओं का और (पुरुषाणाम्) पुरुषों का (यक्ष्मः) राज रोग (वीरुद्भिः) ओषधियों करके (नाव्याः) नौका से उतरने योग्य (स्रोत्याः) नदियों के (अतिनुत्तः) पार प्रेरणा किया गया (एतु) चला जावे ॥१५॥

भावार्थः—जहां पर मनुष्य अन्न आदि ओषधियों का उचित प्रयोग करते हैं, वहां रोग नदी रूप इन्द्रियों से दूर चले जाते हैं ॥१५॥

मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि ।
भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥१६॥

भाषार्थः—(मुमुचानाः) [रोग से] छुड़ाने वाली (ओषधयः) ओषधियां (वैश्वानरात्) सब नरों के हितकारक (अग्नेः) अग्नि [सर्वव्यापक परमेश्वर] का आश्रय लेकर (अधि) अधिकार पूर्वक (भूमिम्) भूमि को (संतन्वतीः) ढांकती हुई तुम (इत) चलो, (यासाम्) जिनका (राजा) राजा (वनस्पतिः) सेवनीय पदार्थों का स्वामी [सोम रस है] ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः मनुष्य परमेश्वर के उत्पन्न किये पदार्थों से यथावत् उपयोग लेवें ॥१६॥

या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च ।
ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ॥१७॥

भाषार्थः—(याः) जो (आङ्गिरसीः) ऋषियों करके बतलाई गईं (पर्वतेषु) पर्वतों पर (च) और (समेषु) चौरस ठौरों में (रोहन्ति) उगती हैं। (ताः) वे (पयस्वतीः) दूधवाली, (शिवाः) कल्याणी (ओषधीः) ओषधियां (नः) हमारे (हृदे) हृदय के लिये (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें ॥१७॥

भावार्थः वैद्य लोग शास्त्रोक्त ओषधियों को दूर और समीप स्थानों से लाकर संसार में नीरोगता करें ॥१७॥

याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा ।
अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम् ॥१८॥

सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥१९॥

भाषार्थः (च) और (याः) जिन (वीरुधः) ओषधियों को (अहम्) मैं (वेद) जानता हूँ, (च) और (याः) जिनको (चक्षुषा) नेत्र से (पश्यामि) देखता हूं। (च) और (याः) जिन (अज्ञाताः) अनजानी हुई [औषधियों को] (जानीमः) हम जानें (च) और (यासु) जिनमें (संभृतम्) पोषण सामर्थ्य (विद्म) हम जानें [वे] (सर्वाः-समग्राः) सब की सब (ओषधीः) ओषधियां (मम वचसः) मेरे वचन का (बोधन्तु) बोध करें। (यथा) जिससे (इमम् पुरुषम्) इस पुरुष को (दुरिताद्) कष्ट से (अधि) यथावत् (पारयामसि) हम पार लगावें ॥१८, १९॥

भावार्थः—विद्वान् वैद्य शास्त्रोक्त ओषधियों का और अपनी आविष्कृत ओषधियों का प्रचार संसार में नीरोगता बढ़ने के लिये करें ॥१८, १९॥

मन्त्र १८, १९ युग्मक हैं। मन्त्र १९ का उत्तर भाग मन्त्र सात में आ चुका है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः ।
व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ ॥२०॥

भाषार्थः—[अश्वत्थः] वीरों के ठहरने का स्थान, पीपल का वृक्ष, (दर्भः) दुःख विदारक, कुश वा कांस का बिरवा, (वीरुधाम्) ओषधियों का (राजा) राजा (सोमः) सोम लता (अमृतम्) अमृत [बलकर] (हविः) ग्राह्य द्रव्य है। (भेषजौ) भयनिवारक (व्रीहिः) चावल (च) और (यवः) जौ दोनों (दिवः) उन्माद वा पीड़ा के (पुत्रौ) शोधने वाले (अमर्त्यौ) अमर [पुष्टिकारक] हैं ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्य पीपल, दर्भ, सोमलता, चावल, जौ आदि पदार्थों के गुणों को यथावत् जानें ॥२०॥

उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः ।
यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥२१॥

भाषार्थः (ओषधीः) हे ओषधियो ! (पृश्निमातरः) हे पृथिवी को माता रखने वालियो ! (उद् जिहीध्वे) तुम खड़ी हो जाती हो, (यदा) जब (पर्जन्यः) मेघ (स्तनयति) गरजता है और (अभिक्रन्दति) कड़कड़ाता है और (वः) तुमको (रेतसा) जल से (अवति) तृप्त करता है ॥२१॥

भावार्थः—सूर्य द्वारा वृष्टि होने से पृथिवी पर सब ओषधियां और अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं ॥२१॥

तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि ।
अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः ॥२२॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (अमृतस्य) अमर [पुष्टिकारक मेघ] का (बलम्) बल [सार] (इमम् पुरुषम्) इस पुरुष को (पाययामसि) हम पिलाते हैं। (अथो) और (भेषजम्) चिकित्सा (कृणोमि) करता हूं (यथा) जिससे वह (शतहायनः) सौ वर्ष वाला (असत्) होवे ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्य मेघ से उत्पन्न हुए पदार्थ अन्न आदि का सेवन करके पूरा जीवन भोगें ॥२२॥

वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् ।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(वराहः) सूअर (वीरुधम्) ओषधि (वेद) जानता है, (नकुलः) नेवला (भेषजीम्) रोग जीतने वाली वस्तु (वेद) जानता है। (सर्पाः) सर्प और (गन्धर्वाः) गन्धर्व [दुःखदायी पीड़ा देने वाले जीव] (याः) जिनको (विदुः) जानते हैं, (ताः) उनको (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (अवसे) रक्षा के हित (हुवे) मैं बुलाता हूं ॥२३॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जिन ओषधियों को अन्य प्राणी काम में लाते हैं, उनकी यथावत् परीक्षा करके प्रयोग करें ॥२३॥

याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः ।
वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः ।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२४॥

भावार्थः—(याः) जिन (आङ्गिरसीः) ऋषियों करके बताई हुईं [ओषधियों] को (सुपर्णाः) गरुड़, गिद्ध आदि, (याः) जिन (दिव्याः) दिव्य [ओषधियों] को (रघटः) आकाश में फिरने वाले [जीव] (विदुः) जानते हैं। (याः) जिनको (वयांसि) पक्षी (हंसाः) हंस, (च) और (याः) जिन को (सर्वे) सब (पतत्रिणः) पंख वाले जीव (विदुः) जानते हैं। (याः ओषधीः) जिन ओषधियों को (मृगाः) बनैले पशु (विदुः) जानते हैं। (ताः) उन सब को (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (अवसे) रक्षा के हित (हुवे) मैं बुलाता हूं ॥२४॥

भावार्थः—मन्त्र २३ के समान ॥२४॥

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः ।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥२५॥

भावार्थः—(यावतीनाम्) जितनी (ओषधीनाम्) ओषधियों का (अघ्न्याः) न मारने योग्य (गावः) गौवें और (यावतीनाम्) जितनी [ओषधियों] का (अजावयः) भेड़ बकरी (प्राश्नन्ति) चारा करती हैं। (तावतीः) उतनी सब (आभृताः) यथावत् पुष्ट की हुई (ओषधीः) ओषधियां (तुभ्यम्) तुझ को (शर्म) सुख (यच्छन्तु) देवें ॥२५॥

भावार्थः—मन्त्र २३ के समान ॥२५॥

यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः ।
तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥२६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः – (भिषजः) वैद्य (मनुष्याः) लोग (यावतीषु) जितनी [ओषधियों] में (भेषजम्) चिकित्सा (विदुः) जानते हैं। (तावतीः) उतनी (विश्वभेषजीः) सब रोगों की जीतनेवाली [ओषधियों] को (त्वाम् अभि) तेरे लिये (आभरामि) मैं लाता हूं ॥२६॥

भावार्थः – वैद्य लोग विद्वानों से विद्या प्राप्त करके चिकित्सा करें ॥२६॥

पुष्पंवतीः प्रसूमंतीः फलिनीरफला उत ।
सं मातर इव दुहामस्मा अरिष्टतातये ॥२७॥

भाषार्थः—(पुष्पवतीः) पुष्प रखने वाली, (प्रसूमतीः) सुन्दर कोंपल वाली, (फलिनीः) फलवाली (उत) और (अफलाः) फल रहित [ओषधियां] (संमातरः इव) संमिलित माताओं के समान (अस्मै) इस [पुरुष] को (अरिष्टतातये) कुशल करने के लिये (दुहाम्) दूध देवें ॥२७॥

भावार्थः—मनुष्य सब प्रकार की ओषधियों से उपकार लेकर स्वस्थ रहें ॥२७॥

उत् त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ।२८॥

भाषार्थः—(अथो) अब (त्वा) तुझको (पञ्चशलात्) पञ्चभूतों में व्यापक (उत) और (दशशलात्) दश दिशाओं में व्यापक परमेश्वर का आश्रय लेकर (अथो) और (यमस्य) न्यायकारी राजा के (पड्वीशात्) वेड़ी डालने से (उत) और (विश्वस्मात्) सब (देवकिल्बिषात्) परमेश्वर के प्रति अपराध से [पृथक्] करके (उत् अहार्षम्) मैंने ऊंचा पहुंचाया है ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वव्यापक परमेश्वर का आश्रय लेकर सब दुराचार को छोड़कर उन्नति करें ॥२८॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग आ चुका है--अ० ६ । ९६ । २ तथा ७ । ११२ । २ ॥

सूक्तम् ॥८॥

१—२४ ॥ इन्द्रो मन्त्रोक्ताश्च देवताः ॥ १ निचृदनुष्टुप्, २, १२, भुरिगनुष्टुप्, ३ निचृद् बृहती, ४ भुरिग् बृहती, ५, ९, १३–१८ अनुष्टुप्, ६ आस्तार-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पङ्क्तिः, ७, २२ अतिजगती, ८, १९ विराड् बृहती, १०, ११, २३ उपरिष्टाद् बृहती, २० बृहती, २१ त्रिष्टुप्, २४, त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती ॥

शत्रुक्षयोपदेशः—शत्रु के नाश का उपदेश ॥

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः ।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥ १॥

भाषार्थः—(मन्थिता) मथन करने वाला, (शक्रः) शक्तिमान् (शूरः) शूर, (पुरन्दरः) गढ़ तोड़ने वाला, (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] (मन्थतु) मथन करे। (यथा) जिससे (अमित्राणाम्) वैरियों की (सेनाः) सेनायें (सहस्रशः) सहस्र सहस्र करके (हनाम) हम मारें ॥१॥

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् राजा के पुरुषार्थ से उसके सेना दल बहुत शत्रुओं का नाश करें ॥१॥

पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम् ।
धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् ॥२॥

भाषार्थः—(उपध्मानी) सुलगती हुई (पूतिरज्जुः) दुर्गन्ध उत्पन्न करने वाली [शस्त्रों की ज्वाला] (अमूम् सेनाम्) उस सेना को (पूतिम्) दुर्गन्धित (कृणोतु) करे। (अमित्राः) शत्रु लोग (धूमम्) धुयें और (अग्निम्) अग्नि को (परादृश्य) अत्यन्त देखकर (हृत्सु) हृदय में (भयम्) भय (आ दधताम्) धारण कर लेवें ॥२॥

भावार्थः—सेनापति के आग्नेय अस्त्रों की मार से शत्रु लोग श्वास घुट कर भाग जावें ॥२॥

अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून् खदिराजिरम् ।
ताजद्भङ्ग इव भज्यन्तां हन्त्वेनान् वधको वधैः ॥३॥

भाषार्थः—(अश्वत्थ) हे बलवानों में ठहरने वाले ! [अश्वत्थामा] (अमून्) उन को (निः शृणीहि) कुचल डाल, (खदिर) हे दृढ़ स्वभाव वाले [सेनापति !] (अमून्) उनको (अजिरम्) शीघ्र (खाद) खा ले । वे लोग (ताजद्भङ्गः इव) झटपट टूटे हुए सन के समान (भज्यन्ताम्) टूट जावें, (वधकः) मारू सेनापति (वधैः) मारू हथियारों से (एनान्) इनको (हन्तु) मारे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः वीर सेनापति दृढ़ स्वभाव होकर शत्रुओं का शीघ्र नाश करे ।।३।।

परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु हन्त्वेनान् वधको वधैः ।
क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां बृहज्जालेन संदिताः ।।४।।

भाषार्थः—(परुषाह्वः) कठोरों को ललकारने वाला [सेनापति] (अमून्) उन [अपने सैनिकों] को (परुषान्) कठोर स्वभाव वाला (कृणोतु) बनावे, (वधकः) मारू [सेनापति] (वधैः) मारू शस्त्रों से (एनान्) इन [शत्रुओं] को (हन्तु) मारे। (बृहज्जालेन) बड़े जाल से (संदिताः) बंधे हुए वे लोग (शर इव) सरकंडे के समान (क्षिप्रम्) शीघ्र (भज्यन्ताम्) टूट जावें ।।४।।

भावार्थः—सेनापति अपने सैनिकों को उत्साह देकर शत्रुओं को पाश में बांधकर नष्ट करे ।।४।।

अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः ।
तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत् ।।५।।

भाषार्थः—(अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (जालम्) जाल (आसीत्) था (जालदण्डाः) जाल के दण्डे (महीः) बड़ी (दिशः) दिशायें [थीं]। (तेन) उस [जाल] से (अभिधाय) घेरकर (शक्रः) शक्तिमान् [सेनापति] ने (दस्यूनाम्) डाकुओं की (सेनाम्) सेना को (अप अवपत्) तितर बितर कर दिया ।।५।।

भावार्थः—जो सेनापति अवकाश और सब दिशाओं का ध्यान रखकर व्यूह रचना करता है, वह शत्रुओं पर विजय पाता है ।।५।।

बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः ।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ।।६।।

भाषार्थः—(हि) क्योंकि (बृहतः) बड़े (वाजिनीवतः) बलवती क्रियाओं वाले (शक्रस्य) शक्तिमान् [सेनापति] का (जालम्) जाल [फैलाव] (बृहत्) बड़ा [है]। (तेन) उस [जाल] से (सर्वान्) सब (शत्रून् अभि) शत्रुओं पर (नि उब्ज) झुक पड़, (यथा) जिससे (एषाम्) इनमें से (कतमः चन) कोई भी (न मुच्यातै) न छूटे ।।६।।

भावार्थः—बलवान् सेनापति बहुत सी सेना का फैलाव करके शत्रुओं का नाश करे ।।६।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य । तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी !] (शूर) हे शूर ! (बृहतः) बड़े, (सहस्रार्घस्य) सहस्रों से पूजा योग्य, (शतवीर्यस्य) सैकड़ों वीरत्व वाले (ते) तेरे का (बृहत्) बड़ा (जालम्) जाल [फैलाव] है। (तेन) उस [जाल] से (शक्रः) शक्तिमान् [सेनापति] ने (सेनया) [अपनी] सेना से (शतम्) सौ, (सहस्रम्) सहस्र, (अयुतम्) दश सहस्र, (न्यर्बुदम्) अनेक दश कोटि (दस्यूनाम्) डाकुओं को (अभिधाय) घेर कर (जघान) मार डाला ॥७॥

भावार्थः—जिस प्रकार से शूरवीर पुरुष शत्रुओं को मारकर प्रजा-पालन करते आये हैं, उसी प्रकार पराक्रमी लोग रक्षा करते रहें ॥७॥

अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ॥८॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (महान्) बड़ा (लोकः) लोक (महतः) बड़े (शक्रस्य) शक्तिमान् [सेनापति] का (जालम्) जाल (आसीत्) था। (तेन) उस (इन्द्रजालेन) इन्द्रजाल [बड़े शस्त्र] से (अहम्) मैं (अमून्) उन (सर्वान्) सब को (तमसा) अन्धकार से (अभि दधामि) घेरे लेता हूं ॥८॥

भावार्थः—युद्ध कुशल सेनाध्यक्ष के सहाय से अन्य सेनापति शत्रुओं को इन्द्रजाल ब्रह्मास्त्र आदि महाशस्त्रों से अन्धकार में घेरकर मारें ॥८॥

सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना ।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ॥९॥

भाषार्थः-(सेदिः) महामारी आदि क्लेश, (उग्रा) भारी (व्यृद्धिः) निर्धनता (च) और (अनपवाचना) अकथनीय (आर्तिः) पीड़ा। (श्रमः) परिश्रम, (च) और (तन्द्रीः) आलस्य (च) और (मोहः) मोह [घबड़ाहट] [जो हैं], (तैः) उन सब से (अमून्) उन (सर्वान्) सबों को (अभि दधामि) मैं घेरे लेता हूं ॥९॥

भावार्थः—दुष्ट उपद्रवी लोगों को बड़ी बड़ी विपत्तियों में फंसाना योग्य है ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यवे॒ऽमून् प्र य॑च्छामि मृत्युपा॒शैर॒मी सि॒ताः ।
मृ॒त्योर्ये अ॑घ॒ला दू॒तास्तेभ्य॑ एना॒न् प्रति॑ नयामि ब॒द्ध्वा ॥१०॥

भाषार्थः—(अमून्) उन्हें (मृत्यवे) मृत्यु को (प्र यच्छामि) मैं सौंपता हूं, (मृत्युपाशैः) मृत्यु के पाशों से (अमी) वे लोग (सिताः) बंधे हुए हैं। (मृत्योः) मृत्यु के (ये) जो (अघलाः) दुःखदायी (दूताः) दूत हैं, (तेभ्यः) उनके पास (एनान्) इन्हें (बद्ध्वा) बांध कर (प्रति नयामि) मैं लिये जाता हूं ॥१०॥

भावार्थः—राजा दुःखदायी दुष्टों को घातकों द्वारा वध करावे ॥१०॥

नय॑ताम॒ून् मृ॑त्युदू॒ता यम॑दू॒ता अपो॑म्भत ।
प॒रः॒स॒ह॒स्रा ह॑न्यन्तां तृणे॒ढ्वेना॒न् मत्यं॑ भ॒वस्य॑ ॥११॥

भाषार्थः—(मृत्युदूताः) हे मृत्यु के दूतो ! [घातको !] (अमून्) उनको (नयत) ले जाओ, (यमदूताः) हे यम के दूतो ! [वधक पुरुषो !] (अप उम्भत) कस कर बाँध लो। (पर.सहस्राः) सहस्रों से अधिक [वे लोग] (हन्यन्ताम्) मारे जावें, (भवस्य) सुखदायक [राजा] की (मत्यम्) मुट्ठी [घूंसा] (एनान्) इनको (तृणेढु) चूर चूर कर डाले ॥११॥

भावार्थः—राजा दुष्टों को अनेक प्रकार कष्ट देकर घातकों और वधकों द्वारा नष्ट करादे ॥११॥

सा॒ध्या एकं॑ जालद॒ण्डमु॒द्यत्य॑ य॒न्त्योज॑सा ।
रु॒द्रा एकं॒ वस॑व॒ एक॑मादि॒त्यैरेक॒ उद्य॑तः ॥१२॥

भाषार्थः—(साध्याः) साध्य लोग [परोपकार साधक जन] (एकम्) एक (जालदण्डम्) जाल के दण्डे को, (रुद्राः) रुद्र [शत्रुनाशक लोग] (एकम्) एक को (वसवः) वसु लोग [उत्तम पुरुष] (एकम्) एक को (ओजसा) बल से (उद्यत्य) उठाकर (यन्ति) चलते हैं, (एकः) एक (आदित्यैः) पूर्णविद्या वालों करके (उद्यतः) उठाया गया है ॥१२॥

भावार्थः—जिस राजा के अधिकार में उत्तम उत्तम अधिकारी होते हैं, वहां विजय होती है ॥१२॥

विश्वे॑ दे॒वा उ॒परि॑ष्टादु॒ब्जन्तो॑ य॒न्त्वोज॑सा ।
म॒ध्ये॑न॒ घ्नन्तो॑ यन्तु॒ सेना॒मङ्गि॑रसो म॒हीम् ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(विश्वे) सब (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (उपरिष्टात्) ऊपर से (ओजसा) बल के साथ (उब्जन्तः) सीधे होकर (यन्तु) चलें। (अङ्गिरसः) बड़े ज्ञानी लोग (मध्येन) मध्य से (महीम्) बड़ी (सेनाम्) सेना को (घ्नन्तः) मारते हुए (यन्तु) चलें ॥१३॥

भावार्थः सेनाध्यक्ष व्यूहरचना में उत्तम उत्तम सेनापतियों को उचित स्थानों में नियत करके शत्रुओं का नाश करे ॥१३॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१४॥

भाषार्थः—(वनस्पतीन्) सेवनीय शास्त्रों के पालन करने वाले पुरुषों (वानस्पत्यान्) सेवनीय शास्त्रों के पालन करने वालों के सम्बन्धी पदार्थों, (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों (उत) और (वीरुधः) जड़ी बूटियों। (द्विपात्) दोपाये और (चतुष्पात्) चौपाये को (इष्णामि) मैं प्राप्त करता हूं (यथा) जिस से वे सब (अमूम् सेनाम्) उस सेना को (हनन्) मारें ॥१४॥

भावार्थः—सेनाध्यक्ष राजा सब उत्तम पुरुषों और उत्तम पदार्थों को साथ लेकर शत्रुओं को मारे ॥१४॥

गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१५॥

भाषार्थः—(गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्वों [पृथिवी के धारण करने वालों] और अप्सरों [आकाश में चलने वालों], (सर्पान्) सर्पों [के समान तीव्र दृष्टि वालों], (देवान्) विजय चाहने वालों, (पुण्यजनान्) पुण्यात्मा (पितॄन्) पितरों [महाविद्वानों]। (दृष्टान्) देखे हुए और (अदृष्टान्) अनदेखे पदार्थों को (इष्णामि) मैं प्राप्त करता हूं, (यथा) जिससे वे सब (अमूम् सेनाम्) उस सेना को (हनन्) मारें ॥१५॥

भावार्थः—राजा विवेकी, दूरदर्शी, शूर, सत्यवादी पुरुषों और गोचर और अगोचर पदार्थों को एकत्र करके शत्रु का नाश करे ॥१५॥

इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥१६॥

भाषार्थः—(इमे) ये (मृत्युपाशाः) मृत्यु के जाल (उप्ताः) फैले हैं, (यान्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें (आक्रम्य) पांव धरकर [हे शत्रु !] (न मुच्यसे) तू नहीं छूटता है। (इदम्) यह (कूटम्) फन्दा (अमुष्याः सेनायाः) उस सेना का (सहस्रशः) सहस्रों प्रकार से (हन्तु) हनन करे ॥१६॥

भावार्थः—राजा शत्रु लोगों को दृढ़ बन्धनों में रखकर विनष्ट करे ॥१६॥

घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः ।
भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् ॥१७॥

भाषार्थः—(अग्निना) अग्नि करके (समिद्धः) प्रज्वलित (घर्मः) ताप [के समान] (अयम्) यह (होमः) आत्मसमर्पण (सहस्रहः) सहस्र [क्लेश] नाश करने वाला है। (पृश्निबाहुः) भूमि को बाहु पर रखने वाले (भवः) हे सुख उत्पन्न करने वाले [प्राण वायु] (च) और (शर्व) क्लेश नाशक [अपान वायु] ! तुम दोनों (अमूम् सेनाम्) उस सेना को (च) निश्चय करके (हतम्) मारो ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्य आत्मसमर्पण के साथ प्राण और अपान वायु को स्थिर करके विघ्नों का नाश करें ॥१७॥

मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् ।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् ॥१८॥

भाषार्थः—[वे लोग] (मृत्योः) मृत्यु के (आषम्) बन्धन, (क्षुधम्) भूख, (सेदिम्) महामारी, (वधम्) वध और (भयम्) भय (आ पद्यन्ताम्) प्राप्त करें। (इन्द्रः) हे प्राण वायु ! (च) और (शर्व) हे अपान वायु ! तुम दोनों (अक्षुजालाभ्याम्) बन्धन और जालों से (अमूम् सेनाम्) उस सेना को (हतम्) मारो ॥१८॥

भावार्थः—प्रतापी मनुष्य आत्मिक और शारीरिक बल से शत्रुओं को नाना क्लेश देकर नाश करे ॥१८॥

पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥१९॥

भाषार्थः—(अमित्राः) हे पीड़ा देने वालो ! (पराजिताः) हार मान कर (प्र त्रसत) डर जाओ, (ब्रह्मणा) विद्वान् करके (नुत्ताः) ढकेले हुए तुम (धावत) दौड़े

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाओ। (बृहस्पतिप्रणुत्तानाम्) बृहस्पति [वेदों के रक्षक] करके ढकेले हुए (अमीषाम्) उन लोगों में से (कश्चन) कोई भी (मा मोचि) न छूटे ॥१९॥

भावार्थः - विद्वानों की नीति-निपुणता से सब शत्रु नाश प्राप्त करें ॥१९॥

अवं पद्यन्तामेषामायुंधानि मा शंकन् प्रतिधामिषुंम् ।
अथैषां बहु बिभ्यंतामिषंवो घ्नन्तु मर्मणि ॥२०॥

भाषार्थः—(एषाम्) इन के (आयुधानि) हथियार (अव पद्यन्ताम्) गिर पड़ें, वे लोग (इषुम्) बाण (प्रतिधाम्) रोपने को (मा शकन्) न समर्थ हों। (अथ) और (बहु) बहुत (बिभ्यताम्) डरे हुए (एषाम्) इन लोगों के (इषवः) बाण (मर्मणि) [उनके ही] मर्म स्थान में (घ्नन्तु) घाव करें ॥२०॥

भावार्थः चतुर सेनापति बड़े बल और शीघ्रता से शत्रुओं पर धावा करे, जिस से वे लोग घबरा कर अपने हथियारों से अपने आप को मारें ॥२०॥

सं क्रोंशतामेनान् द्यावांपृथिवी समन्तरिंक्षं सह देवतांभिः । मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विंदन्त मिथो विंघ्नाना उपं यन्तु मृत्युम् ॥२१॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (एनान्) इनको (सम्) बल से (क्रोशताम्) पुकारें, (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक (देवताभिः सह) सब लोकों के साथ (सम्) बल से [पुकारे]। वे लोग (मा) न तो (ज्ञातारम्) जानकार पुरुष को और (मा) न (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठा [आश्रय वा आदर] (विदन्त) पावें, और (मिथः) आपस में (विघ्नानाः) मारते हुए (मृत्युम्) मृत्यु (उप यन्तु) पावें ॥२१॥

भावार्थः—युद्धकुशल सेनापति शत्रुदल में कोलाहल मचाकर शत्रुओं को सर्वथा निर्बल कर दे ॥२१॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग आ चुका है—अ० ६।३२।३॥

दिशश्चतंस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्यं पुरोडाशाः शफा अन्तरिंक्षमुद्धिः । द्यावांपृथिवी पक्षंसी ऋतवो ऽभीशंवोऽन्तर्देशाः किंकरा वाक् परिंरथ्यम् ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देवरथस्य) विजय चाहने वालों के रथ की (चतस्रः) चारों (दिशः) दिशायें (अश्वतर्यः) खच्चरी [हैं], (पुरोडाशाः) पूरी पूए (शफाः) खुर, (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (उद्धिः) शरीर [बैठक]। (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (पक्षसी) दोनों पक्खे, (ऋतवः) ऋतुयें (अभीशवः) बागडोरें, (अन्तर्देशः) अन्त-र्दिशायें (किंकराः) सेवक लोग, (वाक्) बाणी (परिरथ्यम्) चक्र की पुट्ठी [वा हाल] है ॥२२॥

भावार्थः—सब प्रकार से सावधान सेनापति शत्रुओं पर पूरा विजय पाता है ॥२२॥

सं॒व॒त्स॒रो रथः॑ परिवत्स॒रो र॑थोप॒स्थो वि॒राडी॒षाग्नी र॑थमु॒खम् ।
इन्द्रः॑ सव्य॒ष्ठाश्च॒न्द्रमाः॒ सार॑थिः ॥२३॥

भाषार्थः—(संवत्सरः) यथाविधि निवास करनेवाला काल, (रथः) रथ, (परिवत्सरः) सब ओर से निवास करनेवाला अवकाश (रथोपस्थः) रथ की बैठक, (विराट्) विराट् [विविध प्रकाशमान सृष्टि] (ईषा) जुए का दण्डा, (अग्निः) अग्नि (रथमुखम्) रथ का मुख [अग्रभाग]। (इन्द्रः) सूर्य (सव्यष्ठाः) बाईं ओर बैठने वाला [सारथी], (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (सारथिः) [दूसरा] सारथी [है] ॥२३॥

भावार्थः—मन्त्र २२ के समान ॥२३॥

इ॒तो ज॑ये॒तो वि ज॑य॒ सं ज॑य॒ जय॒ स्वाहा॑ ।
इ॒मे ज॑यन्तु॒ परा॒मी ज॑यन्तां॒ स्वाहै॒भ्यो दु॒राहा॒मीभ्यः॑ ।
नी॒ल॒लो॒हि॒तेना॒मून॒भ्यव॑तनोमि ॥२४॥

भाषार्थः—(इतः) यहाँ (जय) जीत, (इतः) यहां (विजय) विजय कर, (सम् जय) पूरा पूरा जीत, (जय) जीत, (स्वाहा) यह सुवाणी है। (इमे) यह लोग (जयन्तु) जीतें, (अमी) वे लोग (परा जयन्ताम्) हार जावें, (एभ्यः) इन लोगों के लिये (स्वाहा) सुवाणी, (अमीभ्यः) उन लोगों के लिये (दुराहा) दुर्वाणी [हो]। (नीललोहितेन) नीलों अर्थात् निधियों की उत्पत्ति से (अमून्) उन लोगों को (अभ्यवतनोमि) गिरा कर फैलाता हूं ॥२४॥

भावार्थः—प्रतापी पराक्रमी शूर सेनापति शत्रुओं पर विजय पाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत धन प्राप्त करके अपनी सुकीर्ति और शत्रुओं की अपकीर्ति करे ॥२४॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥९॥ [ब्रह्मोद्यम्—ब्रह्म का व्याख्यान]

[यह दूसरा ब्रह्मोद्य सूक्त है, देखो—अथर्व का० ५ सू० १॥]

१—२६ ॥ प्रजापतिर्विराड् वा देवता ॥ १, ६, ७, ९–११, १३, १५, १६, १७, १९ त्रिष्टुप्, २, ३, २१ पङ्क्तिः, ४, ५, २३, २५, २६ अनुष्टुप्, ८, २२ जगती, १२, २४, भुरिक् त्रिष्टुप्, १४ अतिजगती, १८ निचृत् त्रिष्टुप्, २० भुरिक् पङ्क्तिः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

कुतस्तौ जातौ कंतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कंतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वां पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥१॥

भाषार्थः—(कुतः) कहां से (तौ) वे दोनों [ईश्वर और जीव] (जातौ) प्रकट हुए हैं, (कतमः) [बहुतों में से] कौन सा (सः) वह (अर्धः) ऋद्धि वाला है, (कस्मात् लोकात्) कौन से लोक से और (कतमस्याः) [बहुतसियों में से] कौन सी (पृथिव्याः) पृथिवी से (विराजः) विविध ऐश्वर्यवाली [ईश्वर शक्ति, सूक्ष्म प्रकृति] के (वत्सौ) बताने वाले (सलिलात्) व्याप्ति वाले [समुद्ररूप अगम्य दशा] से (उत् ऐताम्) वे दोनों उदय हुए हैं, (तौ) उन दोनों को (त्वा) तुझ से (पृच्छामि) मैं पूछता हूं, वह [विराट] (कतरेण) [दो के बीच] कौन से करके (दुग्धा) पूर्ण की गई है ॥१॥

भावार्थः—ईश्वर और जीव अपने सामर्थ्य से सब लोकों और सब कालों में व्याप्त हैं, उन्हीं दोनों से प्रकृति के विविध कर्म प्रकट होते हैं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर महा ऋद्धिमान् है और वही प्रकृति को संयोग वियोग आदि चेष्टा देता है ॥१॥

यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥२॥

भाषार्थः—(त्रिभुजम्) तीन भुजा वाला, [ऊंचे नीचे और मध्यलोकरूप] (योनिम्) घर (कृत्वा) बनाकर (यः शयानः) जिस सोते हुए ने (महित्वा) अपनी महिमा से (सलिलम्) व्याप्ति वाले [अगम्य देश] को (अक्रन्दयत्) पुकारा। (सः) उस (कामदुघः) कामना पूरक, (वत्सः) बोलन वाल [परमेश्वर] ने (विराजः) विविध ईश्वरी [प्रकृति] की (गुहा) गुहा में [अपने] (तन्वः) विस्तारों फो (पराचैः) दूर दूर तक (चक्रे) किया ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा ने प्रलय, सृष्टि और अवसान में विराजमान होकर अपनी अगम्य शक्ति द्वारा प्रकृति में चेष्टा देकर विविध संसार रचा है ॥२॥

यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् । ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ॥३॥

भाषार्थः—(यानि) जो (त्रीणि) तीन [सत्त्व, रज और तम] (बृहन्ति) बड़े बड़े हैं, (येषाम्) जिन में (चतुर्थम्) चौथा [ब्रह्म] (वाचम्) वाणी (वियुनक्ति) विलगाता है। (विपश्चित्) बुद्धिमान् (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदवेत्ता ब्राह्मण] (एनत्) इस [ब्रह्म] को (तपसा) तप से (विद्यात्) जाने, (यस्मिन्) जिस [तप] में (एकम्) एक [ब्रह्म] (यस्मिन्) जिस [तप] में (एकम्) एक [ब्रह्म] (युज्यते) ध्यान किया जाता है ॥३॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने तीनों गुणों द्वारा सृष्टि रची है और जिस ने वेद द्वारा सब उपदेश किया है, उस परमात्मा का ज्ञान अनन्य-ध्यानी योगी को ही तप द्वारा होता है ॥३॥

बृहतः परि सामानि षष्ठात् पञ्चाधि निर्मिता ।
बृहद् बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ॥४॥

भाषार्थः—(षष्ठात्) छठे (बृहतः) बड़े [ब्रह्म] से (पञ्च) पांच (सामानि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म समाप्त करने वाले [पांच पृथिवी आदि भूत] (परि) सब ओर (अधि) अधिकार पूर्वक (निर्मिता) बने हैं। (बृहत्) बड़ा [जगत्] (बृहत्याः) बड़ी [विराट्, प्रकृति] से (निर्मितम्) बना है, (कुतः) कहां से (अधि) फिर (बृहती) बड़ी [प्रकृति] (मिता) बनी है ॥४॥

भावार्थः—पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांच तत्त्वों की अपेक्षा जो छठा ब्रह्म है, उससे वे पञ्चभूत प्रकट हुए हैं और उसी की शक्ति से यह जगत् बना है और उसी शक्तिमान् से वह शक्ति उत्पन्न हुई है ॥४॥

बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥५॥

भाषार्थः—(बृहती) स्थूल सृष्टि (मात्रायाः) तन्मात्रा से (परि) सब प्रकार और (मातुः) निर्माता [परमेश्वर] से (अधि) ही (मात्रा) तन्मात्रा (निर्मिता) बनी है। (माया) बुद्धि (ह) निश्चय करके (मायायाः) बुद्धि रूप परमेश्वर से और (मायायाः) प्रज्ञारूप परमेश्वर से (मातली) इन्द्र [जीव] का रथवान् [अहंकार वा मन] (परि) सब प्रकार (जज्ञे) उत्पन्न हुआ ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर के सामर्थ्य से स्थूल और सूक्ष्म जगत्, और इन्द्र, अर्थात्, जीव का रथवान् मन भी उत्पन्न हुआ है ॥५॥

मन को अन्यत्र भी रथवान् सा माना है—यजु० ३४। ६॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जो [मन] मनुष्यों को [इन्द्रियों के द्वारा] लगातार लिये लिये फिरता है, जैसे चतुर रथवान् वेगवाले घोड़ों को बागडोर से, जो हृदय में ठहरा हुआ, सब का चलाने हारा, बड़ा ही वेगवाला है वह मेरा मन मङ्गल विचार युक्त हो ॥

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ॥६॥

भाषार्थः—(उपरि) ऊपर विराजमान (वैश्वानरस्य) सब नरों के हितकारी [परमेश्वर] की (प्रतिमा) प्रतिमा [आकृति समान] (द्यौः) आकाश है, (यावत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना कि (**अग्निः**) अग्नि [सर्वव्यापक परमेश्वर] ने (**रोदसी**) सूर्य और पृथिवी लोक को (**विबबाधे**) अलग अलग रोका है। (**ततः**) उसी के कारण (**अमुतः**) उस (**षष्ठात्**) छठे [परमेश्वर म० ४] से (**अह्नः**) दिन [प्रकाश] के (**स्तोमाः**) स्तुति योग्य गुण [सृष्टि काल में] (**आ यन्ति**) आते हैं, और (**इतः**) यहां से (**षष्ठम् अभि**) छठे [परमेश्वर] की ओर [प्रलय समय] (**उत् यन्ति**) ऊपर जाते हैं ॥६॥

भावार्थः - आकाश समान सर्वव्यापक और पञ्चभूतों की अपेक्षा छठे [म० ४] परमेश्वर ने सूर्य पृथिवी आदि लोकों को प्राणियों के उपकार के लिये अलग अलग किया है, उसके ही सामर्थ्य से प्रकाश आदि प्रकट और लुप्त होते हैं ॥६॥

परमेश्वर आकाश समान व्यापक है जैसा कि यजुर्वेद—४०। १७। का वचन है [ओ३म् खं ब्रह्म] सब का रक्षक ब्रह्म आकाश [के तुल्य व्यापक है] ॥

षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥७॥

भाषार्थः—(**कश्यप**) हे दृष्टिमान् विद्वन्! (**त्वम्**) तू ने (**हि**) ही (**युक्तम्**) ध्यान किये हुए (**च**) और (**योग्यम्**) ध्यान योग्य [पदार्थ] को (**युयुक्षे**) ध्यान किया है, (**त्वा**) तुझ से (**पृच्छाम**) हम पूंछें, (**इमे**) ये (**षट्**) छह (**ऋषयः**) ऋषि अर्थात् इन्द्रियां [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक और मन] (**ब्रह्मणः**) ब्रह्म की (**विराजम्**) विविधेश्वरी शक्ति को (**पितरम्=अपितरम्**) निश्चय करके (**आहुः**) बताते हैं, (**ताम्**) उसे (**सखिभ्यः नः**) हम मित्रों को, (**यतिधा**) जितने प्रकार हो, (**वि धेहि**) विधान कर ॥७॥

भावार्थः—भूत भविष्यत् के विचारवान् विद्वान् आचार्य और शिष्य इन्द्रिय आदि पदार्थों की रचना देखकर, परब्रह्म की शक्ति विचार कर सब पदार्थों से यथावत् उपकार लेवें ॥७॥

यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराडृषयः परमे व्योमन् ॥८॥

भाषार्थः—(**याम् प्रच्युताम् अनु**) जिस आगे बढ़ी हुई के पीछे (**यज्ञाः**) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार, सृष्टि समय में] (**प्रच्यवन्ते**) आगे बढ़ते हैं, (**उपतिष्ठमानाम्**) ठहरती हुई के [पीछे, प्रलय में] (**उपतिष्ठन्ते**) ठहर जाते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यस्याः) जिस [शक्ति] के (व्रते) नियम और (प्रसवे) बड़े ऐश्वर्य में (यक्षम्) संगति योग्य जगत् (एजति) चेष्टा करता है, (ऋषयः) हे ऋषि लोगो ! (सा) वह (विराट्) विविधेश्वरी (परमे) सर्वोत्कृष्ट (व्योमन्) विविध रक्षक परमेश्वर में है ॥८॥

भावार्थः जो परमेश्वरशक्ति जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का कारण है, उसका ऋषि लोग ध्यान करते हैं ॥८॥

अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥९॥

भाषार्थः—(अप्राणा) न श्वास लेने वाली (विराट्) विराट् (विविधेश्वरी) (प्राणतीनाम्) श्वास लेने वाली [प्रजाओं] के (प्राणेन) श्वास के साथ (एति) चलती है और (पश्चात्) फिर (स्वराजम् अभि) स्वराट् [स्वयं राजा, परमेश्वर] की ओर (एति) जाती है। (विश्वम्) जगत् को (मृशन्तीम्) छूती हुई (अभि रूपाम्) मनोहर (विराजम्) विराट् [महेश्वरी] को (त्वे) कोई कोई (पश्यन्ति) देखते हैं और (त्वे) कोई कोई (एनाम्) इस [महेश्वरी] को (न) नहीं (पश्यन्ति) देखते हैं ॥९॥

भावार्थः—निरन्तर व्यापिनी ईश्वर शक्ति को सूक्ष्मदर्शी पुरुष साक्षात् करते हैं, अज्ञानी उसको नहीं जानते ॥९॥

को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून् क उ कल्पमस्याः । क्रमान्
को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥१०॥

भाषार्थः—(कः) कौन पुरुष (विराजः) विराट् की [विविधेश्वरी ईश्वर शक्ति की] (मिथुनत्वम्) बुद्धिमत्ता (प्र) भले प्रकार (वेद) जानता है, (कः) कौन (अस्याः) इस [विराट्] के (ऋतून्) ऋतुओं [नियत कालों] को, और (कः) कौन (उ) ही (कल्पम्) सामर्थ्य को। (कः) कौन (अस्याः) इसके (कतिधा) कितने ही प्रकार से (विदुग्धान्) पूर्ण किये हुए (क्रमान्) क्रमों [विधानों] को, (कः) कौन (अस्याः) इसके (धाम) घर को और (कतिधा) कितने ही प्रकार की (व्युष्टीः) समृद्धियों को [जानता है] ॥१०॥

भावार्थः—दूरदर्शी, विवेकी जन परमात्मा की शक्ति के विविध स्वभावों को जानते हैं ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

तिथी..........
पु०सं०.........
भारती पुस्तकालय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥११॥

भाषार्थः—(इयम् एव) यही (सा) यह ईश्वरी, [विराट्, ईश्वर शक्ति] है, (या) जो (प्रथमा) प्रथम (व्यौच्छत्) प्रकाशमान हुई है, और (आसु) इन सब और (इतरासु) दूसरी [सृष्टियों] में (प्रविष्टा) प्रविष्ट होकर (चरति) विचरती है। (अस्याम् अन्तः) इसके भीतर (महान्तः) बड़ी बड़ी (महिमानः) महिमायें हैं, उस (नवगत्) नवीन नवीन गति वाली (वधूः) प्राप्ति योग्य (जनित्री) जननी ने [अनर्थों को] (जिगाय) जीत लिया है ॥११॥

भावार्थः—ईश्वरशक्ति की महिमाओं को अनुभव करके विद्वान् लोग विघ्नों का नाश करते हैं ॥११॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ३ । १० । ४ ॥

छन्दः॑पक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥१२॥

भाषार्थः—(उषसा) उषा [प्रभात वेला] के साथ (पेपिशाने) अत्यन्त सुवर्ण वा रूप करती हुई, (छन्दःपक्षे) स्वतन्त्रता का ग्रहण करती हुई दोनों (समानम्) एक (योनिम् अनु) घर [परमेश्वर] के पीछे पीछे (सम् चरेते) मिलकर चलती हैं। (प्रजानती) [मार्ग] जानती हुई, (केतुमती) झण्डा रखती हुई [जैसे], (अजरे) शीघ्र चलने वाली, (भूरिरेतसा) बड़ी सामर्थ्य वाली, (सूर्यपत्नी) सूर्य की दोनों पत्नियां [रात्रि और प्रभात वेलायें] (सम् चरतः) मिलकर विचरती हैं ॥१२॥

भावार्थः—उसी विराट् की महिमा से रात्रि और दिन विविध प्रकार संसार का उपकार करते हैं ॥१२॥

ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥१३॥

भाषार्थः—(तिस्रः) तीन [देवियां अर्थात् १—इडा स्तुतियोग्य भूमि वा नीति, २—सरस्वती प्रशस्त विज्ञान वाली विद्या वा बुद्धि, ३—और भारती पोषण करने वाली शक्ति वा विद्या] (ऋतस्य) सत्य शास्त्र के (पन्थाम् अनु) पथ पर (आ अगुः) चलती आयी हैं और (त्रयः) तीन (घर्माः) सींचने वाले यज्ञ [अर्थात्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवपूजा, संगतिकरण और दान] (रेतः अनु) वीरता के साथ साथ (आ अगुः) चलते आये हैं। (एका) एक [इडा] (प्रजाम्) प्रजा को (एका) एक [सरस्वती] (ऊर्जम्) पुरुषार्थ वा अन्न को (जिन्वति) भरपूर करती है, (एका) एक [भारती] (देवयूनाम्) दिव्यगुण प्राप्त करने वाले [धर्म्मात्माओं] के (राष्ट्रम्) राज्य की (रक्षति) रक्षा करती है ॥१३॥

भावार्थः—धर्म्मात्मा पुरुषार्थी पुरुष वेद मार्ग पर चल कर पुरुषार्थ-पूर्वक प्रजा और राज्य की रक्षा करते हैं ॥१३॥

तीन देवियों के विषय में देखो—अ० ५। ३। ७। और ५। १२। ८ ॥

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः। गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्कीं यजमानाय स्वराभरन्तीम् ॥१४॥

भाषार्थः—(यज्ञस्य) यज्ञ [रसों के संयोग वियोग] के (पक्षौ) ग्रहण करने वाले (अग्नीषोमौ) सूर्य और चन्द्रमा [के समान] (ऋषयः) ऋषि लोगों ने, (या) जो [वेद वाणी] (तुरीया) वेगवती वा ब्रह्म की [जो सत्व, रज और तम तीन गुणों से परे चौथा है] (आसीत्) थी, (यजमानाय) यजमान के लिये (स्वः) मोक्ष सुख (आभरन्तीम्) भर देने वाली [उस] (गायत्रीम्) गाने योग्य, (त्रिष्टुभम् [कर्म, उपासना और ज्ञान इन] तीन से पूजी गयी, (जगतीम्) प्राप्ति योग्य, (बृहदर्कीम्) बड़े सत्कार वाली (अनुष्टुभम्) निरन्तर स्तुति योग्य [विराट् वा वेदवाणी] को (कल्पयन्तः) समर्थन करते हुए (अदधुः) धारण किया है ॥१४॥

भावार्थः—जिस प्रकार ऋषि महात्माओं ने यथावत् नियम पर चल-कर वेदवाणी को ग्रहण किया है, उसी प्रकार सब मनुष्य वेदवाणी को स्वीकार कर के मोक्षपद प्राप्त करें ॥१४॥

पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च। पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥१५॥

भाषार्थः—(पञ्च) पांच (व्युष्टीः) विविध प्रकार वास करने वाली [तन्मात्राओं] के (अनु) साथ साथ (पञ्च) पांच [पृथिवी आदि पांच भूत सम्बन्धी] (दोहाः) पूर्ति वाले पदार्थ हैं, (पञ्चनाम्नीम्) पूर्व आदि पांच नाम वाली, यद्वा पांच ओर झुकने वाली (गाम् अनु) दिशा के साथ साथ (पञ्च) पांच (ऋतवः) ऋतुयें हैं [अर्थात् शरद्, हेमन्त, शिशिर सहित वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा]। (पञ्च) पांच [पूर्वादि चार और एक ऊपर वाली] (दिशः) दिशायें (पञ्चदशेन)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पांच प्राण अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान+पांच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, और घ्राण+पांच भूत अर्थात् भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन] पन्द्रह पदार्थ वाले जीवात्मा के साथ (क्लृप्ताः) समर्थ की गई हैं, (ताः) वे (एकमूर्ध्नीः) एक [परमेश्वर रूप] मस्तक वाली [दिशायें] (एकम्) एक (लोकम् अभि) देश की ओर [वर्तमान हैं] ॥१५॥

भावार्थः—उसी परमात्मा की शक्ति से पञ्चभूत, ऋतुएँ और दिशाएँ आदि जीवों के सुख के लिए उत्पन्न हुए हैं ॥१५॥

पांच ऋतुओं के लिये देखो—अ० ८। २। २२ और निरु० ४। २७॥

षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति ।
षड्योगं सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः ॥१६॥

भाषार्थः—(ऋतस्य) सत्य स्वरूप परमेश्वर के [सामर्थ्य से] (प्रथमजा) विस्तार के साथ [वा पहिले] उत्पन्न (षट् भूता) छह इन्द्रियां [स्थूल त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक और मन] (जाता) प्रकट हुईं, (षट् उ) छह ही (सामानि) कर्म समाप्त करने वाली [इन्द्रियाँ] (षडहम्) छह [इन्द्रियों] से व्याप्ति वाले [देह] को (वहन्ति) ले चलती हैं। (षड्योगम्) छह [स्पर्श, दृष्टि, श्रुति, रसना, घ्राण और मनन सूक्ष्म शक्तियों] से संयोग वाले (सीरम् अनु) बन्धन के साथ साथ (साम साम) प्रत्येक कर्म समाप्त करने वाली [स्थूल इन्द्रिय हैं], [लोग] (षट् षट्) छह छह [स्थूल इन्द्रियों और उनकी सूक्ष्म शक्तियों से सम्बन्ध वाले] (उर्वीः) विस्तृत (द्यावापृथिवीः) प्रकाशमान और अप्रकाशमान लोकों को (आहुः) बताते हैं ॥१६॥

भावार्थः – विद्वानों ने निश्चय किया है कि परमेश्वर के सामर्थ्य से स्थूल इन्द्रियां और उनकी सूक्ष्म शक्तियां उत्पन्न हुईं और उनके ही आश्रित संसार के सब पदार्थ हैं ॥१६॥

षडाहु शीतान् षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः ॥१७॥

भाषार्थः—वे [ईश्वर नियम] (षट्) छह (शीतान्) शीत और (षट् उ) छह ही (उष्णान्) उष्ण (मासः) महीने (आहुः) बताते हैं, (ऋतुम्) [वह] ऋतु (नः) हमें (ब्रूत) बताओ (यतमः) जो कोई (अतिरिक्तः) भिन्न है। (सप्त) सात [वा सात वर्ण वाली] (सुपर्णाः) बड़ी पालने वाली (कवयः) गति शील इन्द्रियां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[वा सूर्य की किरणें] (सप्त) सात (छन्दांसि अनु) ढकनों [मस्तक के छिद्रों] के साथ (सप्त) सात (दीक्षाः) संस्कारों में (नि षेदुः) बैठी हैं ॥१७॥

(क सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्। येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥) अ० १०।२।६॥

"प्रजापति ने मस्तक में सात गोलक खोदे, यह दोनों कान, दो नथने, दो आंखें, और एक मुख। जिनके विजय की महिमा में चौपाये और दोपाये जीव अनेक प्रकार से मार्ग चलते हैं॥" मस्तक में सात गोलक होने में यह अथर्ववेद १०। २। ६ का प्रमाण मन्त्र है, इसका प्रमाण अ० २। १२। ७ में आ चुका है।

भावार्थः—विराट्, ईश्वर शक्ति, से वर्ष में द्वन्द्व सूचक शीत और उष्ण दो ऋतु हैं, अन्य ऋतुयें इनके अन्तर्गत हैं। यह ऋतुयें सूर्य की किरणों के तिरछे और सीधे पड़ने से होती हैं। किरणों में शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र यह सात वर्ण हैं। इन किरणों का प्रभाव मस्तक के सात छिद्रों दो दो कानों, नथनों, आंखों और एक मुख पर पड़ता है। उससे सात संस्कार, दो दो प्रकार के श्रवण, गन्ध, दर्शन और एक कथन शक्ति उत्पन्न होकर समस्त शरीर का पालन करते हैं ॥१७॥

सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तऋतवो ह सप्त।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् ॥१८॥

भाषार्थः—(सप्त) सात (होमाः) [विषयों की] ग्रहण करने वाली [इन्द्रियां, त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि], (सप्त) सात (ह) ही (समिधः) विषय प्रकाश करने वाली [इन्द्रियों की सूक्ष्म शक्तियाँ], (सप्त) सात (मधूनि) ज्ञान [विषय] और (सप्त) सात (ह) ही (ऋतवः) गति [प्रवृत्ति] हैं। [वे ही] (सप्त) सात (आज्यानि) विषयों के प्रकाश साधन (भूतम् परि) प्रत्येक प्राणी के साथ (ताः) उन [प्रसिद्ध] (सप्तगृध्राः) सात इन्द्रियों से उत्पन्न हुई वासनाओं को (आयन्) प्राप्त हुए हैं, (इति) यह (वयम्) हम ने (शुश्रुम) सुना है ॥१८॥

भावार्थः—विद्वानों ने वेदादि शास्त्रों से निश्चय किया है कि सात इन्द्रियों और उनकी सूक्ष्म शक्तियों द्वारा विषय का ज्ञान प्राप्त करके प्राणी कामों में प्रवृत्ति करता है ॥१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि ।
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि ॥१९॥

भाषार्थः—(**चतुरुत्तराणि**) [धर्म अर्थ काम मोक्ष] चतुर्वर्ग से अधिक उत्तम किये गये (**सप्त**) सात (**छन्दांसि**) ढकने [मस्तक के सात छिद्र] (**अन्यः अन्यस्मिन्**) एक दूसरे में (**अधि**) यथावत् (**आर्पितानि**) यथावत् जड़े हुए हैं। (**कथम्**) कैसे (**स्तोमाः**) स्तुति योग्य गुण (**तेषु**) उन [मस्तक के गोलकों] में (**प्रति तिष्ठन्ति**) दृढ़ता से स्थित हैं, (**तानि**) वे [मस्तक के छिद्र] (**स्तोमेषु**) स्तुति योग्य गुणों में (**कथम्**) कैसे (**आर्पितानि**) ठीक ठीक जमे हुए हैं ॥१९॥

भावार्थः—मस्तक के सात गोलक दो कान, दो नथने, दो आंखें, और एक मुख के द्वारा धर्म अर्थ काम मोक्ष की प्राप्ति से मनुष्य उत्तम सुख भोगते हैं, यह दृढ़ ईश्वरनियम है ॥१९॥

कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते ।
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप् कथमेकविंशः ॥२०॥

भाषार्थः—(**गायत्री**) गाने योग्य [वह विराट्] (**त्रिवृतम्**) [सत्त्व, रज और तमोगुण—इन] तीनों के साथ वर्तमान [जीवात्मा] को (**कथम्**) कैसे (**वि आप**) व्यापी है, (**त्रिष्टुप्**) [कर्म, उपासना और ज्ञान इन] तीनों द्वारा पूजी गयी [मुक्ति] (**पञ्चदशेन**) [म० १४। पांच प्राण, पांच इन्द्रिय, और पञ्च भूत--इन] पन्द्रह पदार्थ वाले [जीवात्मा] के साथ (**कथम्**) कैसे (**कल्पते**) समर्थ होती है। (**त्रयस्त्रिंशेन**) [८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ इन्द्र और १ प्रजापति--इन] तेतीस [देवताओं] को अपने में रखने वाले [परमात्मा] के साथ (**कथम्**) कैसे (**जगती**) प्राप्ति योग्य [प्रकृति, सृष्टि] और (**कथम्**) कैसे (**अनुष्टुप्**) निरन्तर स्तुति योग्य [वेदवाणी] और (**एकविंशः**) [५ महाभूत, ५ प्राण, ५ ज्ञान इन्द्रिय ५ कर्म इन्द्रिय और १ अन्तः करण इन] इक्कीस पदार्थों वाला [जीवात्मा] [समर्थ होता है] ॥२०॥

भावार्थः—ईश्वर की विविध शक्तियों को साक्षात् करके विज्ञानी योगीजन अपनी शक्तियां बढ़ाकर आनन्द पाते हैं ॥२०॥

तेतीस देवता यह हैं,—८ वसु, अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः वा प्रकाश, चन्द्रमा और नक्षत्र,—११ रुद्र, अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय यह दश प्राण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ग्यारहवां जीवात्मा, —१२ आदित्य अर्थात् महीने,—१ इन्द्र, अर्थात् बिजुली—१ प्रजापति अर्थात् यज्ञ,—अथर्व० ६।१३६।१। तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ ६६।६८ ॥

अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्या ये।
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥२१॥

भाषार्थः—(**अष्ट**) आठ [महत्तत्त्व, अहंकार, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और मन से सम्बन्ध वाले] (**जाता**) उत्पन्न (**भूता**) जीव (**प्रथमजा**) आदिकारण[प्रकृति]से प्रकट हैं, (**ये**) जो (**अष्ट**) आठ [चार दिशा और चार विदिशा में स्थित], (**इन्द्र**) हे जीव ! (**ऋतस्य**) सत्य नियम के (**ऋत्विजः**) सब ऋतुओं में देने वाले (**दैव्याः**) दिव्य गुण वाले [पदार्थ हैं]। (**अष्टयोनिः**)[यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, इन] आठ से संयोग वाली, (**अष्टपुत्रा**) [अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व और कामावसायिता, इन आठ ऐश्वर्यरूप] आठ पुत्रवाली (**अदितिः**) अखण्ड [विराट् ईश्वर शक्ति] (**अष्टमीम्**) व्याप्त [जगत्] को नापने वाली (**रात्रिम् अभि**) रात्रि [विश्राम देनेवाली मुक्ति] में (**हव्यम्**) स्वीकार योग्य [सुख] [मनुष्य को] (**एति**) पहुंचाती है ॥२१॥

भावार्थः—संसार के बीच पुरुषार्थी योगी जन परमात्मा की ईश्वरता में स्थिरचित्त होकर ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं ॥२१॥

इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा।
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥२२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (**इत्थम्**) इस प्रकार (**श्रेयः**) आनन्द (**मन्यमाना**) मनाती हुई (**अहम्**) मैं [विराट्] (**इदम्**) इस [चराचर जगत्] में (**आ अगमम्**)आयी हूं, और (**युष्माकम्**) तुम्हारी (**सख्ये**) मित्रता में (**शेवा**) सुख देने वाली (**अस्मि**) हूं। (**समानजन्मा**) [कर्म फल के साथ] एक जन्मवाला (**वः क्रतुः**) तुम्हारा बोध (**शिवः**) मंगलकारी (**अस्ति**) है, (**सः**) वह [बोध] (**वः**) तुम्हारी (**सर्वाः**) सब [आशायें] (**प्रजानन्**) समझता हुआ (**संचरति**) संचार करता है ॥२२॥

भावार्थः मनुष्यों के कल्याण के लिये ईश्वर शक्ति प्रकट होकर उन्हें संचित कर्म-अनुसार बुद्धि देकर आगे के लिये पुरुषार्थ का उपदेश देती है ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्या३ नोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे ॥२३॥

भाषार्थः – (यमस्य) नियमवान् (इन्द्रस्य) जीव की (अष्ट) आठ [चार दिशा और चार विदिशायें], (षट्) छह [वसन्त, घाम, वर्षा, शरद्, शीत और शिशिर ऋतुयें–अ० ६ । ५५ । २], और (ऋषीणाम्) इन्द्रियों के (सप्त) सात [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि--अ० ४ । ११ । ९] (सप्तधा) [उनकी शक्तियों सहित] सात प्रकार से [हितकारक हैं] । (अपः) कर्म और (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदि वस्तुओं] ने (तान्) उन [विद्वान्] (मनुष्यान्) मनुष्यों को (उ) ही (पञ्च अनु) [पृथिवी आदि] पांच भूतों के पीछे पीछे (सेचिरे) सींचा है ॥२३॥

भावार्थः— नियमवान् पुरुष, सब स्थानों और सब कालों में सब इन्द्रिय और सब पदार्थों से यथावत् उपकार लेकर पूर्वजों के समान, उन्नति करता है ॥२३॥

केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्याँ३ असुरानुत ऋषीन् ॥२४॥

भाषार्थः—(प्रथमम्) पहिले से (दुहाना) पूर्ति करती हुई (केवली) अकेली (गृष्टिः) ग्रहण योग्य [विराट्] ने (हि) ही (इन्द्राय) जीव के लिये (वशम्) प्रभुता और (पीयूषम्) अमृत [अन्न, दुग्ध आदि] (दुदुहे) पूर्ण कर दिया है (अथ) तब उस [विराट्] ने (चतुर्धा) चार प्रकार से [धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष द्वारा] (चतुरः) चारों (देवान्) विजय चाहने वालों, (मनुष्यान्) मननशीलों, (असुरान्) बुद्धिमानों (उत) और (ऋषीन्) ऋषियों [धर्म के साक्षात् करने वालों] को (अतर्पयत) तृप्त किया है ॥२४॥

भावार्थः – परमेश्वर ने अपनी शक्ति से प्राणियों के पालन के लिये उन के कर्म अनुसार सब सामग्री उपस्थित करके उनके पुरुषार्थ द्वारा उन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का भागी बनाया है ॥२४॥

को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकऋतुः कतमो नु सः ॥२५॥

भाषार्थः— (कः नुः) कौन सा (गौः) [लोगों का] चलाने वाला, (कः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन (एकऋषिः) अकेला ऋषि [सन्मानदर्शक], (उ) और (किम्) कौन (धाम) ज्योतिःस्वरूप है, और (काः) कौनसी (आशिषः) हित प्रार्थनायें हैं। (पृथिव्याम्) पृथिवी पर [जो] (एकवृत्) अकेला वर्त्तमान (यक्षम्) पूजनीय [ब्रह्म] है, (सः) वह (एकर्तुः) एक ऋतु वाला [एकरस वर्त्तमान] (कतमः नु) कौन सा [पुरुष है] ॥२५॥

भावार्थः—इन प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में है ॥२५॥

एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकऋतुर्नाति रिच्यते ॥२६॥

भाषार्थः - (एकः) एक [सर्वव्यापक परमेश्वर] (गौः) [लोकों का] चलाने वाला, (एकः) एक (एकऋषिः) अकेला ऋषि [सन्मार्गदर्शक] (एकम्) एक [ब्रह्म] (धाम) ज्योतिः स्वरूप है, (एकधा) एक प्रकार से (आशिषः) हित प्रार्थनायें हैं। (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (एकवृत्) अकेला वर्त्तमान (यक्षम्) पूजनीय [ब्रह्म], (एकर्तुः) एक ऋतु वाला [एकरस वर्तमान परमात्मा] [किसी से] (न अति रिच्यते) नहीं जीता जाता है ॥२६॥

भावार्थः—एक, अद्वितीय, परमेश्वर अपनी अनुपम शक्ति से सर्व-शासक है, उसी की आज्ञा पालन सब प्राणियों के लिये हितकारक है ॥२६॥

सूक्तम् ॥१०॥ (पर्यायः १)

[यह छह पर्याय वाला सूक्त तीसरा ब्रह्मोद्य सूक्त है, देखो—अ० ५। १; ८। ९ ॥]

१—१३ ॥ विराड् देवता। १ आर्ची पङ्क्तिः; २, ४, ६, ८, १०, १२, याजुषी जगती; ३, ९ साम्न्यनुष्टुप्; ५साम्नी त्रिष्टुप् ७, १३ साम्नी पङ्क्तिः; ११ साम्नी बृहती छन्दः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमे वेदं भविष्यतीति । १॥

भाषार्थः—(विराट्) विराट् [विविध ईश्वरी, ईश्वरशक्ति] (वै) ही (अग्रे) पहिले ही पहिले (इदम्) यह [जगत्] (आसीत्) थी, (तस्याः जातायाः) उस प्रकट हुई से (सर्वम्) सब का सब (अबिभेत्) डरने लगा, "(इति) बस, (इयम् एव) यही (इदम्) यह [जगत्] (भविष्यति) हो जायगी" ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सृष्टि से पहिले एक ईश्वरशक्ति थी, जिससे ही होनहार सृष्टि उत्पन्न होने के लिये अनुभव होती थी, उसी का वर्णन अगले मन्त्रों में है ॥१॥

सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥२॥

भाषार्थः—(सा) वह [विराट्] (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ी, (सा) वह (गार्हपत्ये) गृहपतियों से संयुक्त कर्म में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥२॥

भावार्थः—उस विराट् ने प्रकट होकर जीव सम्बन्धी प्रत्येक व्यवहार में प्रवेश किया है ॥२॥

गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥३॥

भाषार्थः—वह [पुरुष] (गृहमेधी) घर के काम समझने वाला (गृहपतिः) गृहपति (भवति) होता है, (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र १ और २ में वर्णित विराट् की महिमा जान कर मनुष्य संसार के कामों में चतुर होता है ॥३॥

सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् ॥४॥

भाषार्थः—(सा) वह [विराट्] (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ी, (सा) (आहवनीये) यज्ञ योग्य व्यवहार में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥४॥

भावार्थः—उस विराट् की महिमा प्रत्येक उत्तम कर्म में प्रकट होती है ॥४॥

यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥५॥

भाषार्थः—(अस्य) उस [पुरुष] के (देवहूतिम्) विद्वानों के लिये बुलावे में (देवाः) विद्वान् लोग (यन्ति) जाते हैं, वह (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है, (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥५॥

भावार्थः—ईश्वर महिमा को जानने वाला पुरुष विद्वानों का प्रिय होता है ॥५॥

सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥६॥

भाषार्थः—(सा) वह [विराट्] (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ी, (सा) वह [सूर्य वा यज्ञ की] (दक्षिणाग्नौ) बढ़ी हुई अग्नि में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर की महिमा सूर्यादि तेजों और शिल्प आदि व्यवहारों में प्रकट है ॥६॥

यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥७॥

भाषार्थः—वह [पुरुष] (यज्ञर्तः) यज्ञ में पूजा गया, (दक्षिणीयः) दक्षिणा योग्य और (वासतेयः) वसती योग्य (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥७॥

भावार्थः—ईश्वर महिमा ही जानकर पुरुष सब प्रकार उन्नति करता है ॥७॥

सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥८॥

भाषार्थः—(सा) वह [विराट्] (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ी, (सा) वह (सभायाम्) सभा [विद्वानों के समाज] में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥८॥

भावार्थः—विद्वान् लोग ही ईश्वर महिमा का विचार करते हैं । ८॥

यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥९॥

भाषार्थः—(अस्य) उसकी (सभाम्) सभा में (यन्ति) जाते हैं, वह (सभ्यः) सभ्य [सभा में चतुर] (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥९॥

भावार्थ - पुरुषार्थी, ईश्वर महिमा जानने वाला मनुष्य सभा में प्रतिष्ठा पाता है ॥९॥

सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥१०॥

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (समितौ) संग्राम में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥१०॥

भावार्थः—संग्राम में ईश्वरशक्ति का प्रादुर्भाव होता है ॥१०॥

यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥११॥

भाषार्थः—[लोग] (अस्य) उसके (समितिम्) संग्राम में (यन्ति) जाते हैं, वह (सामित्यः) संग्राम योग्य [शूर] (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥११॥

भावार्थः—परमेश्वर का विश्वासी पुरुष संग्राम में विजय पाता है ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् । १२॥

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (आमन्त्रणे) अभिनन्दन स्थान में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥१२॥

भावार्थः—बड़े लोगों की प्रशंसा में ईश्वरशक्ति दिखाई देती है ॥१२॥

यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥१३॥

भाषार्थः—[लोग] (अस्य) उसके (आमन्त्रणम्) अभिनन्दन में (यन्ति) जाते हैं, वह (आमन्त्रणीयः) अभिनन्दन योग्य (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥१३॥

भावार्थः—ईश्वर ज्ञानी पुरुष उच्च पद पाकर संसार में अभिनन्दन योग्य होते हैं ॥१३॥

सूक्तम् ॥१०॥ (पर्यायः २)

१—१० विराड् देवता ॥ १, ८, ९, साम्न्यनुष्टुप्; २ आर्षी बृहती; ३ याजुषी गायत्री; ४, ५, १० साम्नी बृहती; ६ आर्ची बृहती; ७ साम्नी पङ्क्तिः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् ॥१॥

भाषार्थः—(सा) वह [विराट्] (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ी, (सा) वह (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष के बीच (चतुर्धा:) चार प्रकार [चारों दिशाओं में] (विक्रान्ता) विक्रम [पराक्रम] करती हुई (अतिष्ठत्) ठहरी ॥१॥

भावार्थः—उस ईश्वरशक्ति के पुरुषार्थ से आकाश में लोक लोकान्तर उत्पन्न हुए हैं ॥१॥

तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद् वेद यदुभय उपजीवेमेमामुप ह्वयामहा इति ॥२॥

भाषार्थः—(ताम्) उस से (देवमनुष्याः) सब दिव्य लोक और मनुष्य (अब्रुवन्) बोले, "(इयम्) यह [विराट्] (एव) ही (तत्) वह [कर्म] (वेद) जानती है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उभये) हम दोनों दल (यत् उपजीवेम) जिसके सहारे जीवें, (इति) बस (इमाम्) इसे (उपह्वयामहै) हम पास से पुकारें" ॥२॥

भावार्थः सब सूर्य चन्द्र आदि लोक और मनुष्य आदि जीव ईश्वर-शक्ति का व्याख्यान करते हैं ॥२॥

तामुपाह्वयन्त ॥३॥

भाषार्थः—(ताम्) उसे (उप) पास से (अह्वयन्त) उन्होंने बुलाया ॥३॥

भावार्थः– सब प्राणी ईश्वरशक्ति का खोज करते हैं ॥३॥

ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥४॥

भाषार्थः—"(ऊर्जे) हे बलवती ! (आ इहि) तू आ, (स्वधे) हे धन रखने वाली ! (आ इहि) तू आ, (सूनृते) हे प्रिय सत्य वाणी वाली ! (आ इहि) तू आ, (इरावति, हे अन्नवाली ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥४॥

भावार्थः - सब लोक लोकान्तर और प्राणी विराट् नाम ईश्वरशक्ति का आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं ॥४॥

तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ॥५॥

भाषार्थः—(तस्याः) उस [विराट्] का (इन्द्रः) जीव (वत्सः) उपदेष्टा, (गायत्री) गान योग्य वेद विद्या (अभिधानी) कथन शक्ति (अभ्रम्) मेघ (ऊधः) सेचन सामर्थ्य (आसीत्) हुआ ॥५॥

भावार्थः—उस ईश्वर शक्ति विराट् के आश्रय सब प्राणी हैं ॥५॥

बृहच्च रथंतरं च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥६।

भाषार्थः— (बृहत्) बड़ा [आकाश] (च च) और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों से पार लगाने वाला, जगत्] (द्वौ) दो, (च) और (यज्ञा-यज्ञियम्) सब यज्ञों का हितकारी [वेदज्ञान] (च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [मनोहर परमात्मा] से जताया गया [भूतपञ्चक] (द्वौ) दो (स्तनौ) स्तन [थन समान] (आस्ताम्) हुए ॥६॥

भावार्थः जैसे गौ के चार थन होते हैं, वैसे ही ईश्वरशक्ति से आकाश, जगत्, वेद; और पञ्चभूत प्रकट हुए हैं ।.६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओषधीरेव रथंतरेण देवा अदुहन् व्यचो बृहता ॥७॥

अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥८॥

भाषार्थः—(देवाः) गतिमान् लोकों ने (एव) अवश्य (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों को (रथन्तरेण) रथन्तर [रमणीय पदार्थों से पार लगाने वाले जगत्] द्वारा, (व्यचः) विस्तार को (बृहता) बृहत् [बड़े आकाश] द्वारा, (अपः) प्रजाओं को (वामदेव्येन) वामदेव [मनोहर परमात्मा] से जताये गये [भूतपञ्चक] द्वारा और (यज्ञम्) यज्ञ [संयोग वियोग आदि] को (यज्ञायज्ञियेन) सब यज्ञों के हितकारी [वेदज्ञान] द्वारा (अदुहन्) दुहा है ॥७, ८॥

भावार्थः—उसी विराट् ईश्वरशक्ति से सब लोक लोकान्तरों का जीवन और स्थिति है ॥७, ८॥

ओषधीरेवास्मै रथंतरं दुहे व्यचो बृहत् ॥९॥

अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद ॥१०॥

भाषार्थः—(रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों से पार लगाने वाला, जगत्] (एव) ही (व्यचः) विस्तृत (बृहत्) बृहत् [बड़े आकाश] से (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों को, और (अपः) सब प्रजाओं और (वामदेव्यम्) वामदेव [मनोहर परमात्मा] से जताये गये [पंचभूत] से (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार और (यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों के हितकारी [वेदज्ञान] को (अस्मै) उस [पुरुष] के लिये (दुहे) दोहता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥९, १०॥

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी पुरुष को संसार के सब पदार्थ सुखदायक होते हैं ॥९, १०॥

सूक्तम् ॥१०॥ (पर्यायः ३) ॥

१—८ ॥ विराड् देवता ॥ १ आर्ची पङ्क्तिः; २ आर्ष्यनुष्टुप्, ३, ५, ७ प्राजापत्या पङ्क्तिः; ४, ६, ८ प्राजापत्या त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत् तां वनस्पतयोऽघ्नत

सा संवत्सरे समभवत् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (वनस्पतीन्) वनस्पतियों [वृक्ष आदि पदार्थों] में (आ अगच्छत्) आयी, (ताम्) उसको (वनस्पतयः) वनस्पतियां (अघ्नत) प्राप्त हुईं, (सा) वह (संवत्सरे) संवत्सर [वर्ष काल] में (सम् अभवत्) संयुक्त हुई ॥१॥

भावार्थः—विराट्, ईश्वरशक्ति का प्रादुर्भाव वृक्ष आदि पदार्थों में है ॥१॥

तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति
वृश्चतेऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद ॥२॥

भावार्थः—(तस्मात्) इसी लिये (संवत्सरे) वर्ष भर में (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों का (वृक्णम्) खण्डित अंश (अपि रोहति) भर जाता है, (अस्य) उसका (अप्रियः) अप्रिय (भ्रातृव्यः) भ्रातृभाव से रहित [शत्रु, मनोदोष] (वृश्चते) कट जाता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥२॥

भावार्थः ब्रह्म ज्ञानी पुरुष अन्न आदि पदार्थों की न्यूनता की पूर्णता वर्ष भर में वृष्टि द्वारा देखकर आत्मिक दोषों के त्याग से ज्ञान की पूर्त्ति द्वारा ईश्वरशक्ति का अनुभव करते हैं ॥२॥

सोदक्रामत् सा पितृनागच्छत् तां पितरोऽघ्नत सा मासि
समभवत् ॥३॥

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (पितृन्) ऋतुओं में (आ अगच्छत्) आई, (ताम्) उसको (पितरः) ऋतुयें (अघ्नत) प्राप्त हुए, (सा) वह (मासि) महीने में [वा चन्द्रमा में] (सम् अभवत्) संयुक्त हुई ॥३॥

भावार्थः—ईश्वरशक्ति की महिमा ऋतु आदि कालों में प्रकट है ॥३॥

तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्थां
जानाति य एवं वेद ॥४॥

भाषार्थः—(तस्मात्) इसी कारण (पितृभ्यः) ऋतुओं को [वा ऋतुओं से] (मासि) महीने महीने (उपमास्यम्) चन्द्रमा में रहने वाले अमृत को वे [ईश्वर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम] (ददति) देते हैं, वह (पितृयाणम्) ऋतुओं के चलने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्र जानाति) जान लेता है (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥४॥

भावार्थः – ऋतुओं के गुणों को जानकर मनुष्य ऋतुओं की सूक्ष्म अवस्था जान लेता है ॥४॥

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा अघ्नत

सार्धमासे समभवत् ॥५॥

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (देवान्) सूर्य की किरणों में (आ अगच्छत्) आयी, (ताम्) उसको (देवाः) किरणें (अघ्नत) प्राप्त हुए, (सा) वह (अर्धमासे) आधे महीने [पखवाड़े] में (सम् अभवत्) संयुक्त हुई ॥५॥

भावार्थः—ईश्वरशक्ति किरणों द्वारा अर्ध मास आदि समय उत्पन्न करती है ॥५॥

तस्माद् देवेभ्योऽर्धमासे वषट् कुर्वन्ति प्र देवयानं

पन्थां जानाति य एवं वेद ॥६॥

भाषार्थः—(तस्मात्) इसलिये (देवेभ्यः) किरणों को [वा किरणों से] (अर्धमासे) आधे महीने में (वषट्) रस पहुंचाना वे [ईश्वर नियम] (कुर्वन्ति) करते हैं, वह (देवयानम्) किरणों के जाने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्र जानाति) जान लेता है (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥६॥

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी पुरुष किरणों और अर्धमास आदि के सम्बन्ध को यथावत् जान लेता है ॥६॥

सोदक्रामत् सा मनुष्या३ नागच्छत् तां मनुष्या

अघ्नत सा सद्यः समभवत् ॥७॥

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (मनुष्यान्) मननशील मनुष्यों में (आ अगच्छत्) आयी, (ताम्) उसको (मनुष्याः) मनुष्य (अघ्नत) प्राप्त हुए, (सा) वह (सद्यः) तुरन्त ही (सम् अभवत्) [उनमें] संयुक्त हुई ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मननशील पुरुष ईश्वरशक्ति का अनुभव तुरन्त कर लेते हैं ।।७।।

तस्मा॑न्मनुष्ये॑भ्य उभयद्युरुप॑ हरन्त्युपा॑स्य गृहे ह॑रन्ति य एवं वेद॑ ।।८।।

भाषार्थः—(तस्मात्) इसी लिये (मनुष्येभ्यः) मनुष्यों को (उभयद्युः) दोनों दिन [प्रति दिन] वे [ईश्वर नियम] (उप हरन्ति) उपहार देते हैं, (अस्य) उसके (गृहे) घर में वे [ईश्वर नियम] (उप हरन्ति) उपहार देते हैं, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ।।८।।

भावार्थः—ईश्वर का विचार करने वाले पुरुष सब कुटुम्बियों सहित उत्तम पदार्थों से आनन्द भोगते हैं ।।८।।

सूक्तम् १० (पर्यायः ४) ।।

१—१६ ।। विराड् देवता ।। १, ४, ५, ८, ९ साम्नी जगती; २, ६, १०, १५, साम्नी बृहती; ३ याजुषी जगती, ७, ११, १४ साम्न्युष्णिक्, १२ आर्ची त्रिष्टुप्, १३ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, १६ आर्षी जगती ।।

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ।।

सोद॑क्रामत् सासु॑राना॑गच्छत् ताम॑सु॑रा उपा॑ह्वयन्त माय॒ एही॑ति॑ । १।।

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (असुरान्) असुरों [बुद्धिमानों] में (आ अगच्छत्) आयी, (ताम्) उसको (असुराः) असुरों [बुद्धिमानों] ने (उप अह्वयन्त) पास बुलाया, "(माये) हे बुद्धि ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ।।१।।

भावार्थः—सब बुद्धिमान् लोग विराट्, ईश्वरशक्ति का विचार करते रहते हैं ।।१।।

माया=प्रज्ञा निघ० ३ । ९ । असुर=प्रज्ञावान् वा प्राणवान्—निरु० १० । ३४ ।।

तस्या॑ वि॒रोच॑नः प्राह्रा॑दिर्व॒त्स आसी॑दयस्पात्रं पात्र॑म् ।।२।।

भाषार्थः—(प्राह्लादिः) प्रह्लाद [बड़े आनन्द वाले परमेश्वर] करके बनाया गया (विरोचनः) विरोचन [विविध चमकने वाला संसार] (तस्याः) उस [विराट्]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का (वत्सः) निवास और (अयस्पात्रम्) सुवर्ण का पात्र [तेजवाले लोकों का आधार हिरण्यगर्भ, परब्रह्म] (पात्रम्) रक्षा साधन (आसीत्) था ॥२॥

भावार्थः–विज्ञानी पुरुष परमेश्वर की शक्ति को विविध प्रकार संसार में देखते हैं ॥२॥

तां द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक् तां मायामेवाधोक् ॥३॥

भाषार्थः—(ताम्) उस [विराट्] को (आर्त्व्यः) गति में चतुर (द्विमूर्धा) दो बन्धन वाले [संचित और क्रियमाण कर्म वाले जीव] ने (अधोक्) दुहा है' (ताम्) उस (मायाम्) माया [बुद्धि] को (एव) ही (अधोक्) दुहा है ॥३॥

भावार्थः—संचित अर्थात् पूर्वजन्म के फल और आचार्य आदि से संगृहीत शिक्षारूप फल और दूसरे क्रियमाण कर्म जो पूर्व संस्कार के अनुसार किये जाते हैं, इन दोनों प्रकार के कर्मों द्वारा मनुष्य परमेश्वर की शक्ति के अभ्यास से आनन्द पाता है ॥३॥

तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥४॥

भाषार्थः—(असुराः) असुर [बुद्धिमान्] (ताम्) उस (मायाम्) माया [बुद्धि] का (उप जीवन्ति) आश्रय लेकर जीते हैं, (उपजीवनीयः) वह [दूसरों का] आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥४॥

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुष ईश्वरशक्ति को साक्षात् करके अपनी और दूसरों की उन्नति करते हैं ॥४॥

सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥५॥

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (पितॄन्) पालन करने वाले [सूर्य आदि लोकों] में (आ अगच्छत्) आयी, (ताम्) उसको (पितरः) पालने वाले [लोकों] ने (उप अह्वयन्त, पास बुलाया, "(स्वधे) हे आत्मधारण शक्ति ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥५॥

भावार्थः—सब सूर्य आदि लोक ईश्वरशक्ति से धारण आकर्षण द्वारा पुष्ट होकर स्थित हैं ॥५॥

तस्या यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्रं पात्रम् ॥६॥

भाषार्थः—(यमः) नियमवान् (राजा) राजा [यह प्राणी] (तस्याः) उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[विराट्] का (वत्सः) उपदेष्टा, और (रजतपात्रम्) प्रीति वा ज्ञान वा पूजा का आधार [ब्रह्म] (पात्रम्) रक्षासाधन (आसीत्) था ।।६।।

भावार्थः—न्यायी धार्मिक पुरुष सूर्य आदि लोकों में ईश्वर शक्ति देखकर परब्रह्म में अनुराग करते हैं ।।६।।

तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाधोक् ।।७।।

भाषार्थः—(ताम्) उस [विराट्] को (अन्तकः) मनोहर करने वाले (मार्त्यवः) मृत्यु के स्वभाव जानने वाले [जीव] ने (अधोक्) दुहा है, (ताम्) उससे (स्वधाम्) आत्मधारण शक्ति को (एव) भी (अधोक्) दुहा है ।।७।।

भावार्थः मृत्यु के तत्त्ववेत्ता पुरुष ईश्वरमहिमा से अमृत [पुरुषार्थ] प्राप्त करके अमर होते हैं ।।७।।

तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ।।८।।

भाषार्थः—(पितरः) पालने वाले [सूर्य आदि लोक] (ताम्) उस (स्वधाम्) आत्मधारण शक्ति [विराट्] का (उप जीवन्ति) आश्रय लेकर जीते हैं (उपजीवनीयः) वह [दूसरों का] आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ।।८।।

भावार्थः ब्रह्मज्ञानी पुरुष सूर्य आदि लोकों में ईश्वर शक्ति देखकर उस के आश्रित रह कर सब की उन्नति करते हैं ।।८।।

सोदक्रामत् सा मनुष्या३ँन् नागच्छत् तां मनुष्या३ उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ।।९।।

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (मनुष्यान्) मनुष्यों में (आ अगच्छत्) आयी, (ताम्) उसको (मनुष्याः) मनुष्यों ने (उप अह्वयन्त) पास बुलाया, "(इरावति) हे अन्नवती ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ।।९।।

भावार्थः मननशील पुरुष ईश्वरशक्ति विराट् का विचार बड़े प्रेम से करते हैं ।।९।।

तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् ।।१०।

भाषार्थः—(वैवस्वतः) मनुष्यों का [स्वभाव] जानने वाला (मनुः) मननशील मनुष्य (तस्याः) उसका (वत्सः) उपदेष्टा और (पृथिवी) विस्तार करने वाला [परमेश्वर] (पात्रम्) रक्षा साधन (आसीत्) था ।।१०।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः विचारवान् पुरुष परमेश्वर की महिमा जान कर उसका उपदेश करते हैं ॥१०॥

तां पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ॥११॥

भाषार्थः—(ताम्) उसको (वैन्यः) बुद्धिमानों के पास रहने वाले (पृथी) विस्तारवान् पुरुष ने (अधोक्) दुहा है और (ताम्) उससे (कृषिम्) खेती (च च) और (सस्यम्) धान्य को (अधोक्) दुहा है ॥११॥

भावार्थः—विद्वान् लोग विद्वान् आचार्य्यों से शिक्षा पाकर परमेश्वर की शक्ति द्वारा अनेक लाभ उठाते हैं ॥११॥

ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या३ उपजीवन्ति
कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१२॥

भाषार्थः—(मनुष्याः) मनुष्य (ते) उन दोनों (कृषिम्) खेती (च च) और (सस्यम्) धान्य का (उप जीवन्ति) सहारा लेकर जीते हैं, (कृष्टराधिः) वह खेती में सिद्धि वाला (उपजीवनीयः) [दूसरों का] आश्रय (भवति) होता है (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥१२॥

भावार्थः—पुरुषार्थी ज्ञानी पुरुष उत्तम कर्म से उत्तम फल पाकर किसानों के समान उपकारी होते हैं ॥१२॥

सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां सप्तऋषय
उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ॥१३॥

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (सप्तऋषीन्) सात ऋषियों में [व्यापनशील वा दर्शनशील अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि में—अ० ४। ११। ९] (आ अगच्छत्) आयी, (ताम्) उस को (सप्तऋषयः) सात ऋषियों [त्वचा आदि] ने (उप अह्वयन्त) पास बुलाया, "(ब्रह्मण्वति) हे वेदवती! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्य इन्द्रियों द्वारा ईश्वरशक्ति का अनुभव करके ब्रह्मविद्या प्राप्त करते हैं ॥१३॥

तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् ॥१४॥

भाषार्थः--(राजा) राजा (सोमः) सुख उत्पन्न करने हारा [जीवात्मा]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तस्याः) उस [विराट्] का (वत्सः) उपदेष्टा और (छन्दः) स्वतन्त्रता [रूप ब्रह्म] (पात्रम्) रक्षा साधन (आसीत्) था ॥१४॥

भावार्थः—यह जीवात्मा परमेश्वर की स्वतन्त्रता से अनन्त शक्ति साक्षात् करके आनन्द पाता है ॥१४॥

तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् ॥१५॥

भाषार्थः—(आङ्गिरसः) महाज्ञानी परमेश्वर के जानने वाले (बृहस्पतिः) बड़े बड़े गुणों के रक्षक पुरुष ने (ताम्) उस [विराट] को (अधोक्) दुहा है, (ताम्) उसी से (ब्रह्म) वेद (च च) और (तपः) तप [ब्रह्मचर्य आदि व्रत वा ऐश्वर्य] को (अधोक्) दुहा है ॥१५॥

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी पुरुष ईश्वरशक्ति से वेद और सामर्थ्य प्राप्त करते हैं ॥१५॥

तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति

ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६॥

भाषार्थः—(सप्तऋषयः) सात ऋषि [त्वचा आदि—म० ४] (तत्) उस (ब्रह्म) वेद (च च) और (तपः) तप [ब्रह्मचर्य आदि व्रत वा ऐश्वर्य] का (उपजीवन्ति) सहारा लेकर जीते हैं, (ब्रह्मवर्चसी) वेद विद्या से प्रकाशवाला (उपजीवनीयः) [दूसरों का] आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥१६॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय पुरुष वेदविद्या और तपश्चरण से तेजस्वी होकर आनन्द भोगते हैं ॥१६॥

सूक्तम् १० (पर्यायः ५) ॥

१—१६ ॥ विराड् देवता ॥ १, ६ आर्च्युष्णिक्, २, ३ साम्न्युष्णिक्, ४, १३, १६ प्राजापत्या पङ्क्तिः, ५, ८ आर्ची त्रिष्टुप्, ७, १०, १४, प्राजापत्या बृहती, ९ आर्ची पङ्क्तिः, ११ आर्ची गायत्री १२ आर्ची जगती, १५ साम्न्यनुष्टुप् ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ॥१॥

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (देवान्) विजय चाहने वाले पुरुषों में (आ अगच्छत्) आयी, (ताम्) उसको (देवाः) विजय चाहने वालों ने (उप अह्वयन्त) पास बुलाया, "(ऊर्जे) हे बलवती! (आ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इहि) तू आ, (इति) बस" ॥१॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय विजयी पुरुष ईश्वरमहिमा में आनन्द पाते हैं ॥१॥

तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् जीव (तस्याः) उस [विराट्] का (वत्सः) उपदेष्टा, और (चमसः) अन्न का आधार [ब्रह्म] (पात्रम्) रक्षा साधन (आसीत्) था ॥२॥

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् पुरुष परमेश्वर शक्ति का सदा उपदेश करते हैं ॥२॥

तां देवः सविताधोक् तामूर्जामे वाधोक् ॥३॥

भाषार्थः—(ताम्) उस [विराट्] को (देवः) ज्ञानी (सविता) सर्व प्रेरक पुरुष ने (अधोक्) दुहा है, (ताम् ऊर्जाम्) उस बलवती को (एव) अवश्य (अधोक्) दुहा है ॥३॥

भावार्थः—ज्ञानी पुरुषार्थी पुरुष ईश्वरशक्ति से उपकार लेते हैं ॥३॥

तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥४॥

भाषार्थः—(देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (ताम् ऊर्जाम्, उस बलवती का] (उप जीवन्ति) सहारा लेकर जीते हैं, (उपजीवनीयः)) वह [दूसरों का] आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥४॥

भावार्थः—ईश्वरमहिमा से मनुष्य विजय पाते हैं, ऐसा जानने वाला पुरुष सदा उपकारी होता है ॥४॥

सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति ॥५॥

भाषार्थः—सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व और अप्सरों में [इन्द्रिय रखने वालों और प्राणों द्वारा चलने वाले जीवों में] (आ अगच्छत्) आयी, (ताम्) उसको (गन्धर्वाप्सरसः) इन्द्रिय रखने वालों और प्राणों द्वारा चलने वाले जीवों ने (उप अह्वयन्त) पास बुलाया, "(पुण्यगन्धे) हे पवित्र ज्ञानवाली (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सब प्राणी ईश्वर शक्ति के आधार रहते हैं ॥५॥

तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णं पात्रम् ॥६॥

भाषार्थः—(सौर्यवर्चसः) सूर्य का प्रकाश जानने वाला (चित्ररथः) विचित्र रमणीय गुणों वाला [जीव] (तस्याः) उसका (वत्सः) उपदेष्टा और (पुष्करपर्णम्) पुष्टि का पूर्ण करने वाला ब्रह्म (पात्रम्) रक्षा साधन (आसीत्) था ॥६॥

भावार्थः—सूर्य आदि लोकों की विद्या जानने वाला पुरुष परमेश्वर-शक्ति का व्याख्यान करता है ॥६॥

तां वसुरुचि सौर्यवर्चसोऽधोक् तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ॥७॥

भाषार्थः—(ताम्) उस [विराट्] को (सौर्यवर्चसः) सूर्य के प्रकाश जानने वाला (वसुरुचिः) वसु [सब के निवास परमेश्वर] में रुचि वाले [जीव] ने (अधोक्) दुहा है, (ताम् एव) उससे ही (पुण्यम्) पवित्र (गन्धम्) ज्ञान को (अधोक्) दुहा है ॥७॥

भावार्थः—विज्ञानी पुरुष ईश्वरशक्ति से अनेक ज्ञान प्राप्त करता है ॥७॥

**तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीव-
नीयो भवति य एवं वेद ॥८॥**

भाषार्थः—(गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व और अप्सर लोग [इन्द्रिय रखने वाले और प्राण द्वारा चलने वाले जीव] (तम्) उस (पुण्यम्) पवित्र (गन्धम्) ज्ञान का (उप जीवन्ति) सहारा लेकर जीते हैं, वह (पुण्यगन्धिः) पवित्र ज्ञान वाला [पुरुष] [दूसरों का] (उप जीवनीयः) आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥८॥

भावार्थः—सब प्राणी ईश्वर शक्ति से ही जीते हैं, ऐसा ज्ञानी पुरुष परोपकारी होता है ॥८॥

**सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत् तामितरजना उपाह्वयन्त
तिरोध एहीति ॥९॥**

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (इतरजनान्) दूसरे [पामर] जनों में (आ अगच्छत्) आयी, (ताम्) उसको (इतरजनाः) दूसरे जनों ने (उप अह्वयन्त) पास बुलाया, "(तिरोधे, हे अन्तर्धान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[गुप्त रूप] शक्ति ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥९॥

भावार्थः—संसार में देखते हुए भी अज्ञानी पुरुष ईश्वरशक्ति को विशेष रूप से नहीं जानते ॥९॥

तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् ॥१०॥

भाषार्थः—(वैश्रवणः) विशेष श्रवण [ज्ञान] वाला (कुबेरः) कुबेर [विद्वान पुरुष] (तस्याः) उस [विराट्] का (वत्सः) उपदेष्टा और (आमपात्रम्) सब गतियों का आधार [ब्रह्म] (पात्रम्) रक्षा साधन (आसीत्) था ॥१०॥

भावार्थः विशेष श्रवण मनन करने वाले पुरुष उस परमात्मा की शक्ति का यथावत् उपदेश करते हैं ॥१०॥

तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक् तां तिरोधामेवाधोक् ॥११॥

भाषार्थः—(ताम्) उस [विराट्] को (काबेरकः) प्रशंसनीय गुणों के निवास (रजतनाभिः) ज्ञान के प्रबन्धक [वा क्षत्रिय] ने (अधोक्) दुहा है, (ताम्) उस (तिरोधाम्) अन्तर्धान शक्ति को (एव) ही (अधोक्) दुहा है ॥११॥

भावार्थः—ज्ञानी [शू]र पुरुष ईश्वर शक्ति से उपकार लेते हैं ॥११॥

तां तिरोधामितरजना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं पाप्मानमुप-जीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१२॥

भाषार्थः—(इतरजनाः) दूसरे लोग (ताम्) उस (तिरोधाम्) अन्तर्धान शक्ति का (उप जीवन्ति) आश्रय लेकर जीते हैं, वह पुरुष (सर्वम्) सब (पाप्मानम्) पाप को (तिरो धत्ते) तिरस्कार करता है, और [दूसरों का] (उपजीवनीयः) आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥१२॥

भावार्थः अज्ञानी लोग भी ईश्वर शक्ति को मानते हैं, ऐसा श्रद्धावान् पुरुष अपने पाप नाश करके सर्व माननीय होता है ॥१२॥

सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति ॥१३॥

भाषार्थः—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (सर्पान्) सर्पों में (आ अगच्छत्) आयी, (ताम्) उसको (सर्पाः) सांपों ने (उप अह्वयन्त) पास बुलाया, "(विषवति) हे विषैली ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥१३॥

भावार्थः उस विराट् ईश्वर शक्ति के प्रभाव से सर्प आदि जीव अपने कर्म फल द्वारा विषधारी होते हैं ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्यास्तक्षको वैशालेयोवत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥१४॥

भाषार्थः—(वैशालेयः) विशाल [प्रवेश शक्ति ब्रह्मविद्या] का जानने वाला (तक्षकः) सूक्ष्म दर्शी [वा विश्वकर्मा पुरुष] (तस्याः) उस [विराट्] का (वत्सः) उपदेष्टा और (अलाबुपात्रम्) न डूबने वाला रक्षक [ब्रह्म] (पात्रम्) रक्षा साधन (आसीत्) था ॥१४॥

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी सूक्ष्मदर्शी पुरुष ईश्वर शक्ति का प्रभाव जानते हैं ॥१४॥

तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् तां विषमेवाधोक् ॥१५॥

भाषार्थः—(ताम्) उसको (ऐरावतः) भूमिवालों के स्वभाव जानने वाले (धृतराष्ट्रः) राज्य रखने वाले पुरुष ने (अधोक्) दुहा है. (ताम्) उस से (एव) ही (विषम्) विष को (अधोक्) दुहा है ॥१५॥

भावार्थः—नीति कुशल लोग ईश्वरशक्ति से ही विष की विवेचना करते हैं ॥१५॥

तद् विषं सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६॥

भाषार्थः—(सर्पाः) सर्प (तद् विषम्) उस विष का (उप जीवन्ति) आश्रय लेकर जीते हैं, वह पुरुष (उपजीवनीयः) [दूसरों का] आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥१६॥

भावार्थः—दुष्टों की दुष्टता जानने वाला पुरुष शिष्टों का आश्रयणीय होता है ॥१६॥

सूक्तम् १० (पर्यायः ६) ॥

१–४ । विराड् देवता ॥ १ साम्नी बृहती, २ साम्नी पङ्क्तिः, ३ साम्न्युष्णिक्, ४ आर्च्यनुष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

तद् यस्मा एवं विदुषेऽलाबुनाभिषिञ्चेत् प्रत्याहन्यात् ॥१॥

भाषार्थः—(तत्) विस्तार करने वाला [ब्रह्म] (एवम्) इस प्रकार (यस्मै विदुषे) जिस विद्वान् को (अलाबुना) न डूबने वाले कर्म से (अभिषिञ्चेत्) सब प्रकार सींचें, वह [विद्वान्] [विष को] (प्रत्याहन्यात्) हटा देवे ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्य ब्रह्म को जानकर दोषों का नाश करे। इस मन्त्र में [विष] पद का अनुकर्षण मन्त्र ३ में से है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न चं प्रत्याहुन्याम्मनंसा त्वा प्रत्याहुन्मीतिंप्रत्याहंन्यात् ॥२॥

यत् प्रंत्य।हन्तिं विषमेव तत् प्रत्याहंन्ति ॥३॥

भाषार्थः—(च) और (न) अब वह [विद्वान्] [विष को म० ३] (प्रत्याहन्यात्) हटा देवे, '[हे विष] ! (मनसा) मनन के साथ (त्वा) तुझ को (प्रत्याहन्मि) मैं निकाले देता हूं," (इति) इस प्रकार वह [उसे] (प्रत्याहन्यात्) हटा देवे ॥२॥

भाषार्थः—[तब] (यत्) नियन्ता [ब्रह्म] (विषम्) विष को (एव) इस प्रकार (प्रत्याहन्ति) हटा देता है, (तत्) विस्तार करने वाला [ब्रह्म] (प्रत्याहन्ति) हटा देता है ॥३॥

भावार्थः—जब मनुष्य विचारपूर्वक दोष हटाने का प्रयत्न करता है, ब्रह्म की कृपा से उसके सब दोष क्षीण हो जाते हैं ॥२, ३॥

विषमे वास्याप्रियं भ्रातृंव्यमनुविषिंच्यते य एवं वेदं ॥४॥

भाषार्थः—(बिषम्) विष [दोष] (एव) इस प्रकार (अस्य) उस [पुरुष] के (अप्रियम्) अप्रिय (भ्रातृव्यम्) भ्रातृभाव रहित [ब्रह्म निन्दक] को (अनुविषिच्यते) व्याप कर नष्ट कर देता है, (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् का विरोधी ब्रह्मनिन्दक दोषभागी होकर नष्ट हो जाता है, ऐसा मनुष्य को जानना चाहिये ॥४॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

इत्यष्टमं काण्डम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

नवमं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१॥ [मधु सूक्तम्]

१—२४ ॥ १-१०, २१—२४ मधुकशा;, ११—२० अश्विनौ देवते ॥ १, ४, ५ त्रिष्टुप्; २, २० भुरिक् पंक्तिः; ३ परानुष्टुप् पङ्क्तिः, ६ अतिशक्वरीगर्भा बृहती, ७ अतिजगतीगर्भा बृहती, ८ पक्तिः; ९ भुरिग् बृहती, १० परोष्णिक् पङ्क्तिः, ११—१३, १५, १६, १८, १९ अनुष्टुप् १४ पुरउष्णिक् १७ उपरिष्टाद् विराड् बृहती, २१ आर्च्यनुष्टुप्, २२ ब्राह्म्युष्णिक्, २३ आर्ची पङ्क्तिः, २४ त्र्यवसानाष्टिः ॥

ब्रह्मप्राप्त्युपदेशः – ब्रह्म की प्राप्ति का उपदेश ॥

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥१॥

भाषार्थः—(दिवः) सूर्य से (पृथिव्याः) पृथिवी से, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष [मध्यलोक] से, (समुद्रात्) समुद्र [जल समूह] से, (अग्नेः) अग्नि से और (वातात्) वायु से (मधुकशा) मधुकशा [मधुविद्या अर्थात् वेदवाणी] (हि) निश्चय करके [जज्ञे]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट हुई है। (अमृतम्) अमरण [पुरुषार्थ] की (वसानाम्) पहरने वाली (ताम्) उस को (चायित्वा) पूजकर (सर्वाः) सब (प्रजाः) प्रजायें [जीव जन्तु] (हृद्भिः) [अपने] हृदयों से (प्रति) प्रत्यक्ष (नन्दन्ति) आनन्द करते हैं ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सूर्य, पृथिवी आदि कार्य पदार्थों से आदि-कारण परमेश्वर की परम विद्वत्ता विचारकर आनन्दित होते हैं ॥१॥

मधु, उणादि १। १८। मन ज्ञाने-उ, न=ध। ज्ञान। कशा=वाक् - निघण्टु १। ११॥

ऋग्वेद १। २२। ३ में [मधुमती कशा] का वर्णन इस प्रकार है॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम्॥

(अश्विना) हे शिक्षक और शिष्य! (वाम्) तुम दोनों की (या) जो (मधुमती) मधुर गुण वाली, (सूनृतावती) प्रिय सत्य बुद्धि वाली (कशा) वाणी है, (तया) उससे (यज्ञम्) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] को (मिमिक्षतम्) तुम दोनों सींचने की इच्छा करो॥

महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम्॥२॥

भाषार्थः—[हे मधुकशा!] (त्वा) तुझ को (अस्याः) इस [पृथिवी] का (विश्वरूपम्) सब प्रकार रूप वाला (महत्) बड़ा (पयः) बल [वा अन्न] (उत) और (समुद्रस्य) सूर्य का (रेतः) बीज (आहुः) वे [विद्वान्] बताते हैं। (यतः) जिस [ब्रह्म] से (रराणा) दान शील (मधुकशा) मधुकशा [वेदवाणी] (ऐति) आती है, (तत्) उस [ब्रह्म] में (प्राणः) प्राण [जीवन], (तत्) उस में (अमृतम्) अमृत [मोक्षसुख] (निविष्टम्) निरन्तर भरा है ॥२॥

भावार्थः—ईश्वर के ज्ञान से पृथिवी, सूर्य आदि लोक उत्पन्न होकर स्थित हैं और उसी के द्वारा सब प्राणी प्रयत्नपूर्वक जीवन करके आनन्द पाते हैं ॥२॥

पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमानाः।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः॥३॥

भाषार्थः—(बहुधा) अनेक प्रकार (मीमांसमानाः) मीमांसा [विचारपूर्वक तत्त्वनिर्णय] करते हुए (नरः) नेतालोग (अस्याः) इस [मधुकशा] के (चरितम्) चरित्र को (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (पृथक्) अलग अलग (पश्यन्ति) देखते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मरुताम्) शूर पुरुषों की (उग्रा) प्रबल, (नप्तिः) न गिरने वाली शक्ति, (मधुकशा) मधुकशा [ब्रह्मविद्या] (हि) ही (अग्नेः) अग्नि से और (वातात्) वायु से (जज्ञे) प्रकट हुई है ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग ईश्वरज्ञान को जगत् के सब पदार्थों में साक्षात् करके बल बढ़ाते हैं ॥३॥

मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥४॥

भाषार्थः—(आदित्यानाम्) सूर्यलोकों की (माता) माता [बनाने वाली] (वसूनाम्) धनों की (दुहिता) पूर्ण करने हारी, (प्रजानाम्) प्रजाओं [जीव जन्तुओं] की (प्राणः) प्राण [जीवन] और (अमृतस्य) अमरपन [महापुरुषार्थ] की (नाभिः) नाभि [मध्य], (हिरण्यवर्णा) तेज रूप वाली, (घृताची) सेचन सामर्थ्य पहुंचाने वाली (मधुकशा) मधुकशा [वेदवाणी] (महान्) बड़े (भर्गः) प्रकाश [रूप होकर] (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (चरति) विचरती है ॥४॥

भावार्थः—वेदवाणी द्वारा सब लोक लोकान्तर और समस्त मनुष्य आदि प्राणी भीतरी और बाहरी शक्ति प्राप्त करके ठहरे हुए हैं ॥४॥

मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥५॥

भाषार्थः—(देवाः) पुरुषार्थियों ने (मधोः) ज्ञान की (कशाम्) वाणी को (अजनयन्त) प्रकट किया है, । "(तस्याः) उस [वाणी] का (गर्भः) गर्भ [आधार] (विश्वरूपः) सब रूपों का करने वाला [परमेश्वर] (अभवत्) हुआ है । (माता) बनाने वाली [वेदवाणी] (तम्) उस (जातम्) प्रसिद्ध (तरुणम्) तारने वाले [बलिष्ठ परमेश्वर] में (पिपर्ति) भरपूर है, (सः) वह (जातः) प्रसिद्ध [परमेश्वर] (विश्वा भुवना) सब भुवनों को (वि चष्टे) देखता रहता है" ॥५॥

भावार्थः- तत्त्वज्ञानी पुरुषार्थी लोग जानते हैं कि वेदवाणी परमेश्वर में और वेद वाणी में परमेश्वर है ॥५॥

कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः । ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥६॥

भाषार्थः—(कः) कौन पुरुष (तम्) उस [परमेश्वर] को (प्र वेद) अच्छे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार जानता है, (कः उ) किस ने ही (तम्) उसको (चिकेत) समझा है, (यः) जो [परमेश्वर] (अस्याः) इस [वेदवाणी] के (हृदः) हृदय का (कलशः) कलश (अक्षितः) अक्षय (सोमधानः) अमृत का पात्र है। (सः) वह (सुमेधाः) सुबुद्धि (ब्रह्मा) ब्रह्मा [ब्रह्मज्ञानी, वेदवेत्ता] (अस्मिन्) इस [परमेश्वर] में (मदेत) आनन्द पावे ॥६॥

भावार्थः—चतुर ब्रह्मज्ञानी पुरुष परमेश्वर और उसकी वेदवाणी का तत्त्व जानकर प्रसन्न होते हैं ॥६॥

स तौ प्र वे॑द॒ स उ॒ तौ चि॑केत॒ याव॑स्या॒ः स्तनौ॑ स॒हस्र॑धारा॒वक्षि॑तौ ।
ऊर्जं॑ दुहाते॒ अन॑पस्फुरन्तौ ॥७॥

भाषार्थः—(सः) वह [विद्वान्] (तौ) उन दोनों को (प्र वेद) अच्छे प्रकार जानता है, (सः उ) उसने ही (तौ) उन दोनों को (चिकेत) समझा है, (यौ) जो दोनों (अस्याः) इस [मधुकशा] के (स्तनौ) स्तनरूप [धारण आकर्षण गुण] (सहस्रधारौ) सहस्रों धारण शक्ति वाले, (अक्षितौ) अक्षय और (अनपस्फुरन्तौ) निश्चल होकर (ऊर्जम्) बल को (दुहाते) परिपूर्ण करते हैं ॥७॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष वेद द्वारा धारण आकर्षण गुण प्राप्त करके बल बढ़ाते हैं ॥७॥

हि॒ङ्क॒रिक्र॑ती बृह॒ती व॑यो॒धा उ॒च्चैर्घो॑षा॒भ्येति॒ या व्र॒तम् ।
त्रीन् घ॒र्मान॒भि वा॑वशा॒ना मि॒माति॑ मा॒युं पय॑ते॒ पयो॑भिः ॥८॥

भाषार्थः—(हिङ्करिक्रती) अत्यन्त वृद्धि करती हुई, (वयोधाः) बल वा अन्न देने वाली, (उच्चैर्घोषा) ऊंचा शब्द रखने वाली (या) जो (बृहती) बहुत बड़ी [ब्रह्म विद्या] (व्रतम्) अपने नियम पर (अभ्येति) चली चलती है। वह (त्रीन्) तीन [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक] (घर्मान्) यज्ञों की (अभि) सब ओर से (वावशाना) अति कामना करती हुई (मायुम्) शब्द (मिमाति) करती है और (पयोभिः) बलों के साथ (पयते) चलती है ॥८॥

भावार्थः वेदवाणी जानने वाले पुरुष संसार में सब प्रकार उन्नति करते हैं ॥८॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग भेद से ऋग्वेद में है—१।१६४।२८॥

यामापी॑ना॒मुप॒सीद॒न्त्याप॑ः शाक्व॒रा वृ॑ष॒भा ये स्व॒राज॑ः ।
ते व॑र्षन्ति॒ ते व॑र्षयन्ति त॒द्विदे॒ काम॒मूर्ज॒माप॑ः ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**ये**) जो (**शाक्वराः**) शक्तिमती [वेद वाणी] जानने वाले, (**वृषभाः**) पराक्रमी, (**स्वराजः**) स्वराजा, (**आपः**) सर्वविद्याव्यापक विद्वान् लोग (**याम्**) जिस (**आपीनाम्**) सब प्रकार बढ़ी हुई [ब्रह्म विद्या] को (**उपसीदन्ति**) आदर से प्राप्त होते हैं। (**ते**) वे (**वर्षन्ति**) समर्थ होते हैं, (**ते**) वे (**आपः**) महाविद्वान् (**तद्विदे**) उस [ब्रह्म विद्या] के जानने वाले के लिये (**कामम्**) अभीष्ट विषय और (**ऊर्जम्**) पराक्रम को (**वर्षयन्ति**) बरसाते हैं ॥९॥

भावार्थः—जो पुरुष वेदवाणी जानकर ईश्वर की आज्ञा में चलते हैं, वे दूसरों को वेदज्ञ बनाकर समर्थ करते हैं ॥९॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥१०॥

भाषार्थः—(**प्रजापते**) हे प्रजापालक ! [परमेश्वर !] (**ते**) तेरी (**वाक्**) वाणी (**स्तनयित्नुः**) मेघ की गर्जन [समान] है, (**वृषा**) तू ऐश्वर्यवान् होकर (**शुष्मम्**) बल को (**भूम्याम्**) भूमि पर (**अधि**) अधिकार पूर्वक (**क्षिपसि**) फैलाता है। (**मरुताम्**) शूर पुरुषों की (**उग्रा**) प्रबल (**नप्तिः**) न गिरने वाली शक्ति, (**मधुकशा**) मधुकशा [ब्रह्म विद्या] (**हि**) ही (**अग्नेः**) अग्नि से और (**वातात्**) वायु से (**जज्ञे**) प्रकट हुई है ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा की वेदवाणी स्पष्ट रूप से संसार का हित करती है ॥१०॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग मन्त्र ३ में ऊपर आया है ॥

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥११॥

भाषार्थः—(**यथा**) जैसे (**सोमः**) ऐश्वर्यवान् आत्मा [बालक] (**प्रातः सवने**) प्रातःकाल के यज्ञ [बालकपन] में (**अश्विनोः**) [कार्यकुशल] माता पिता का (**प्रियः**) प्रिय (**भवति**) होता है। (**एव**) वैसे ही, (**अश्विना**) हे [कार्यकुशल] माता पिता ! (**मे**) मेरे (**आत्मनि**) आत्मा में [विद्या का] (**वर्चः**) प्रकाश (**ध्रियताम्**) धरा जावे ॥११॥

भावार्थः—जिस प्रकार चतुर माता पिता अपने होनहार बालक का हित करते हैं, उसी प्रकार सब निपुण माता पिता और आचार्य बालकों को शिक्षा देकर उत्तम बनावें ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः ।
एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१२॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (सोमः) ऐश्वर्यवान् [युवा मनुष्य] (द्वितीये सवने) दूसरे यज्ञ [युवा अवस्था] में (इन्द्राग्न्योः) सूर्य और बिजुली [के समान माता पिता] का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है। (एव) वैसे ही, (इन्द्राग्नी) हे सूर्य और बिजुली [के समान माता पिता !] (मे आत्मनि) मेरे आत्मा में (वर्चः) प्रकाश (ध्रियताम्) धरा जावे ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्यों को उत्तम शिक्षा प्राप्त करके युवावस्था में ऐश्वर्यवान् होना चाहिये ॥१२॥

यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः ।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१३॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (सोमः) ऐश्वर्यवान् [वृद्ध पुरुष !] (तृतीये सवने) तीसरे यज्ञ [वृद्ध अवस्था] में (ऋभूणाम्) बुद्धिमानों का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है। (एव) वैसे ही, (ऋभवः) हे बुद्धिमानो ! (मे आत्मनि) मेरे आत्मा में (वर्चः) प्रकाश (ध्रियताम्) धरा जावे ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करें कि उत्तम शिक्षण और परीक्षण से वे वृद्धपन में माननीय होवें ॥१३॥

मधु जनिषीय मधु वंशिषीय ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥१४॥

भाषार्थः—(मधु) ज्ञान को (जनिषीय) मैं उत्पन्न करूं, (मधु) ज्ञान की (वंशिषीय) याचना करूं। (अग्ने) हे विद्वान् ! (पयस्वान्) गति वाला मैं (आ अगमम्) आया हूं, (तम्) उस (मा) मुझको (वर्चसा) [वेदाध्ययन आदि के] प्रकाश से (सम् सृज) संयुक्त कर ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य ज्ञान का प्रचार और जिज्ञासा करके संसार में कीर्ति प्राप्त करें ॥१४॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग आ चुका है—अ० ७। ८९। १॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान्! (मा) मुझ को (वर्चसा) [ब्रह्मविद्या के] प्रकाश से (सम्) अच्छे प्रकार (प्रजया) प्रजा से (सम्) अच्छे प्रकार और (आयुषा) जीवन से (सं सृज) अच्छे प्रकार संयुक्त कर। (देवाः) विद्वान् लोग (अस्य) इस (मे) मुझ को (विद्युः) जानें, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् आचार्य (ऋषिभिः सह) ऋषियों के साथ [मुझे] (विद्यात्) जाने ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम विद्या पाकर संसार के सुधार से अपना जीवन सफल करके विद्वानों और गुरु जनों में प्रतिष्ठा पावें ॥१५॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१।२३।२४। और पहिले आचुका है—अ० ७। ८९।२॥

यथा मधु मधुकृतः सं भरन्ति मधावधि।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१६॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (मधुकृतः) ज्ञान करने वाले [आचार्य लोग] (मधु) [एक] ज्ञान को (मधौ) [दूसरे] ज्ञान पर (अधि) यथावत् (संभरन्ति) भरते जाते हैं। (एव) वैसे ही, (अश्विना) हे [कार्यकुशल] माता पिता! (मे आत्मनि) मेरे आत्मा में [विद्या का] (वर्चः) प्रकाश (ध्रियताम्) धरा जावे ॥१६॥

भावार्थः- मनुष्य उत्तम आचार्यों के समान एक के ऊपर एक अनेक विद्याओं का उपदेश करके शिष्यों को श्रेष्ठ बनावें ॥१६॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग आ चुका है—म० ११॥

यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि।
एवा मे अश्विना वर्च स्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥१७॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (मक्षाः) संग्रह करने वाले पुरुष [अथवा भ्रमर आदि जन्तु] (इदम्) ऐश्वर्य देने वाले (मधु) ज्ञान [रस] को (मधौ) ज्ञान [वा मधु] के ऊपर (अधि) ठीक ठीक (न्यञ्जन्ति) मिलाते जाते हैं। (एव) वैसे ही, (अश्विना) हे चतुर माता पिता! (मे) मेरे लिये (वर्चः) प्रकाश, (तेजः) तीक्ष्णता, (बलम्) बल (च) और (ओजः) पराक्रम (ध्रियताम्) धरा जावे ॥१७॥

भावार्थः—जिस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष अनेक बुद्धिमानों से निरन्तर शिक्षा पाते हैं, अथवा जैसे भ्रमर आदि कीट पुष्प फल आदि से रस लेकर मधु एकत्र करते जाते हैं, वैसे ही माता पिता अपने सन्तानों को उचित शिक्षा देकर बली और पराक्रमी बनावें ॥१७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु ।
सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि ॥१८॥

भाषार्थः—(यत्) जो [ज्ञान] (गिरिषु) स्तुति योग्य संन्यासियों में, (पर्वतेषु, मेघों में, (गोषु) गौओं में और (अश्वेषु) घोड़ों में (यत्) जो (मधु) ज्ञान है। (तत्र) उस (सिच्यमानायाम् सुरायाम्) बहते हुए जल [अथवा बढ़ते हुए ऐश्वर्य) में (यत् मधु) जो ज्ञान है, (तत्) वह (मयि) मुझ में [होवे] ॥१८॥

भावार्थः—विवेकी जन संसार के सब विद्वानों, सब प्राणियों और सब पदार्थों से गुण ग्रहण करके कीर्तिमान् होवें ॥१८॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग भेद से आचुका है—अ० ६। ६९। १॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥१९॥

भाषार्थः—(शुभः) शुभ कर्म के (पती) पालन करने वाले (अश्विना) हे चतुर माता पिता ! (सारघेण) सार अर्थात् बल वा धन के पहुंचाने वाले (मधुना) ज्ञान से (मा) मुझ को (अङ्क्तम्) प्रकाशित करो। (यथा) जिससे (जनान् अनु) मनुष्यों के बीच (वर्चस्वतीम्) तेजोमयी (वाचम्) वाणी को (आवदानि) मैं बोला करूं ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्य माता पिता आदि सज्जनों से सुशिक्षा प्राप्त करके सत्य सार वचन बोलें ॥१९॥

यह मन्त्र भेद से आ चुका है—अ० ६। ६९। २॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति ॥२०॥

भाषार्थः—(प्रजापते) हे प्रजापालक ! [परमेश्वर !] (ते) तेरी (वाक्) वाणी (स्तनयित्नुः) मेघ की गर्जन [समान] है, (वृषा) तू ऐश्वर्यवान् होकर (शुष्मम्) बल को (भूम्याम्) भूमि पर और (दिवि) आकाश में (क्षिपसि) फैलाता है। (सर्वे) सब (पशवः) देखने वाले [जीव] (ताम्) उस [वाणी] का (उप) सहारा लेकर (जीवन्ति) जीते हैं, (तेनो) उसी ही [कारण] से (सा) वह (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) पराक्रम (पिपर्ति) भरती है ॥२०॥

भावार्थः—सर्वव्यापिनी वेदवाणी द्वारा ही सब प्राणी अपनी जीविका प्राप्त करके जीते हैं ॥२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र का पूर्वार्ध मन्त्र १० में आ चुका है, केवल (अधि) के स्थान पर (दिवि) है ॥

पृथिवी दण्डो३ऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत्
प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥२१॥

भाषार्थः—(पृथिवी) पृथिवी [उस परमेश्वर का] (दण्डः) दण्ड [दमन स्थान, न्यायालय समान], (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (गर्भः) गर्भ [आधार समान], (द्यौः) आकाश (कशा) वाणी [समान], (विद्युत्) बिजुली (प्रकशः) प्रकृष्ट गति [समान] और (हिरण्ययः) तेजोमय [सूर्य] (बिन्दुः) बिन्दु [छोटे चिह्न समान] है ॥२१॥

भावार्थः - पृथिवी के सब प्राणियों की व्यवस्था और अनेक लोक लोकान्तरों की रचना और परस्पर संबन्ध देखकर परमेश्वर की अनन्त महिमा प्रतीत होती है ॥२१॥

यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति । ब्राह्मणश्च
राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ॥२२॥

भाषार्थः – (यः) जो पुरुष (वै) निश्चय करके (कशायाः) वेद वाणी के (सप्त) सात (मधूनि) ज्ञानों को (वेद) जानता है, वह (मधुमान्) ज्ञानवान् (भवति) होता है। [जो] (ब्राह्मणः) वेदवेत्ता (च) और (राजा) राजा (च) और (धेनुः) तृप्त करने वाली गौ (च) और (अनड्वान्) अन्न पहुंचाने वाला बैल (च) और (व्रीहिः) चावल (च) और (यवः) जौ (च) और (सप्तमम्) सातवां (मधु) ज्ञान है ॥२२॥

भावार्थः—सूक्ष्मदर्शी, नीतिज्ञ पुरुष उपकारी जीवों और पदार्थों से वेदज्ञान द्वारा ज्ञानवान् होता है ॥२२॥

मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति ।
मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥२३॥

भाषार्थः—[वह पुरुष] (मधुमान्) ज्ञानवान् (भवति) होता है, (अस्य) उसका (आहार्यम्) ग्राह्य कर्म (मधुमत्) ज्ञान युक्त (भवति) होता है, [वह] (मधुमतः) ज्ञान वाले (लोकान्) लोकों [स्थानों] को (जयति) जीत लेता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—ब्रह्मनिष्ठ पुरुष ब्रह्म को सब में साक्षात् करके आनन्दित होता है ॥२३॥

यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति । तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति । अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥२४॥

भाषार्थः—(यत्) जैसे (वीध्रे) [चमकीले लोकों वाले] आकाश [वा वायु] में (स्तनयति) गर्जना होती है, (तत्) वैसे ही (प्रजापतिः) प्रजापति [सृष्टिपालक परमेश्वर] (एव) ही (प्रजाभ्यः) जीवों को (प्रादुर्भवति) प्रकट होता है । (तस्मात्) इसी [कारण] से (प्राचीनोपवीतः) प्राचीन [सब से पुराने परमेश्वर] में बड़ी प्रीति वाला मैं (तिष्ठे) विनती करता हूं, "(प्रजापते) हे प्रजापति [परमेश्वर !] (मा) मुझ पर (अनु बुध्यस्व) अनुग्रह कर, (इति) बस ।" (एनम्) उस [पुरुष] पर (प्रजाः) सब प्रजागण (अनु) अनुग्रह [करते हैं] और (प्रजापतिः) प्रजापति [जगदीश्वर] (अनु बुध्यते) अनुग्रह करता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥२४॥

भावार्थः— जैसे बोला हुआ शब्द आकाश और वायु में लहरा लहरा कर सब ओर फैलता है और विवेकी जन बिजुली आदि से उस शब्द को जहां चाहे वहां ग्रहण कर लेता है, वैसे ही परमात्मा सब काल और सब स्थान में निरन्तर फैल रहा है, ऐसा अनुभवी, श्रद्धालु, पुरुषार्थी योगी जन सब प्राणियों और परमेश्वर का प्रिय होता है ॥२४॥

सूक्तम् ॥२॥

१—२५ ॥ कामो देवता ॥ १, २, ३, ६, ९, १०, २४, २५, त्रिष्टुप्; ४ विराट् त्रिष्टुप्; ५, १६, अतिजगती; ७, १५, २०-२३ जगती; ८ भुरिगार्ची पङ्क्तिः; ११, १४ भुरिक् त्रिष्टुप्; १२ अनुष्टुप्, १३ द्विपदा जगती, १७, १८ स्वराट् त्रिष्टुप्, १९ ब्राह्म्युष्णिक् ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश ॥

सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन ।
नीचैःसपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण ॥१॥

भाषार्थः—(सपत्नहनम्) शत्रुनाशक, (ऋषभम्) बलवान् (कामम्) कामना योग्य [परमेश्वर] को (घृतेन) प्रकाश, (हविषा) भक्ति और (आज्येन) पूर्ण गति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गति के साथ (शिक्षामि) मैं सीखता हूं। (अभिष्टुतः) सब ओर से स्तुति किया गया (त्वम्) तू (महता) बड़ी (वीर्येण) वीरता से (मम) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (नीचैः) नीचे (पादय) पहुंचा ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्ण भक्ति से परमेश्वर का आश्रय लेकर अभिमान आदि शत्रुओं का नाश करे ॥१॥

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति ।
तद् दुःष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥२॥

भाषार्थः—(यत्) जो [दुष्टकर्म] (मे) मेरे (मनसः) मन का (न प्रियम्) प्रिय नहीं है और (न चक्षुषः) न नेत्र का, और (यत्) जो (मे) मेरा (बभस्ति) तिरस्कार करता है और (न) न (अभिनन्दति) कुछ आनन्द देता है। (तत्) उस (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न को (सपत्ने) शत्रु नाश के लिये (प्रति मुञ्चामि) मैं छोड़ता हूं, (कामम्) कमनीय परमेश्वर की (स्तुत्वा) स्तुति करके (अहम्) मैं (उत् भिदेयम्) ऊपर निकल जाऊं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य आत्मा और समाज के विरुद्ध दुष्टकर्मों को छोड़कर परमेश्वर-आज्ञा का पालन करके उन्नति करे ॥२॥

दुःष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम् ।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात् ॥३॥

भाषार्थः –(काम) हे कामना योग्य [परमेश्वर !] (दुष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न को, (च) और (काम) हे कामना योग्य [परमात्मन् !] (दुरितम्) विघ्न, (अस्वगताम्) निर्धनता से प्राप्त (अप्रजस्ताम्) प्रजा के अभाव और (अवर्तिम्) निर्जीविका को, (उग्रः) प्रबल और (ईशानः) ईश्वर होकर तू (तस्मिन्) उस पुरुष पर (प्रति मुञ्च) छोड़ दे, (यः) जो (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (अंहूरणा) पाप कर्मों को (चिकित्सात्) चाहे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्मात्माओं को दुःख देते हैं, वे ईश्वर नियम से बुद्धि हानि, विघ्न आदि कष्ट भोगते हैं ॥३॥

नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः ।
तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥४॥

भाषार्थः—(काम) हे कामना योग्य [परमेश्वर !] [हमें] (नुदस्व) बढ़ा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(काम) हे कमनीय ! (प्र णुदस्व) आगे बढ़ा, वे लोग (अवर्तिम्) निर्जीविका को (यन्तु) प्राप्त हों, (ये) जो (मम) मेरे (सपत्नाः) वैरी हैं। (अग्ने) हे तेजस्वी परमेश्वर ! (त्वम्) तू (अधमा) अति नीचे (तमांसि) अन्धकारों में (नुत्तानाम्) पड़े हुए (तेषाम्) उन [शत्रुओं] के (वास्तूनि) घरों को (निःदह) भस्म कर दे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न, पूर्वक उन्नति करके दुष्ट जनों और दुष्ट स्वभावों का नाश करें ॥४॥

सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचं कवयो विराजम् । तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥५॥

भाषार्थः—(काम) हे कमनीय परमात्मन् (सा) वह [हमारी कामनायें] (दुहिता) पूरण करनेवाली (ते) तेरी (धेनुः) वाणी (उच्यते) कही जाती है, (याम्) जिस (वाचम्) वाणी को (कवयः) बुद्धिमान् लोग (विराजम्) विविध ऐश्वर्यवाली (आहुः) कहते हैं। (तया) उस [वाणी] से (सपत्नान्) उन वैरियों को (परि वृङ्ग्धि) हटा दे, (ये) जो (मम, मेरे [शत्रु हैं] (एनान्) उन [शत्रुओं] को (प्राणः) प्राण, (पशवः) सब जीव और (जीवनम्) जीवनवृत्ति (परि वृणक्तु) त्याग देवे ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य सर्वश्रेष्ठ वेद वाणी का आश्रय लेते हैं, वे अपने शत्रुओं को निर्बल करने में समर्थ होते हैं ॥५॥

कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन । अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नाँछम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्य वाले, (वरुणस्य) श्रेष्ठ, (राज्ञः) राजा, (विष्णोः) सर्व व्यापक, (सवितुः) सर्व प्रेरक, (अग्नेः) सर्वज्ञ, (कामस्य) कामना योग्य [परमेश्वर] के (बलेन) बल से, (सवेन) ऐश्वर्य से और (होत्रेण) दान से (सपत्नान्) वैरियों को (प्र णुदे) मैं भगाता हूं, (इव) जैसे (धीरः) धीर (शम्बी) कर्णधार [नाव चलाने वाला] (नावम्) नाव को (उदकेषु) जलों के भीतर [चलाता है] ॥६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमेश्वर की महिमा को प्राप्त होकर अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहिरी और भीतरी वैरियों को ऐसा वश में रखता है जैसे चतुर नाविक गहरे जल में नाव को चलाता है ॥६॥

अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥७॥

भाषार्थः—"(**मम**) मेरा (**अध्यक्षः**) अध्यक्ष, (**वाजी**) पराक्रमी, (**उग्रः**) तेजस्वी, (**कामः**) कामना योग्य [परमेश्वर] (**मह्यम्**) मुझको (**एव**) अवश्य (**असपत्नम्**) विना शत्रु (**कृणोतु**) करे। (**विश्वे**) सब (**देवाः**) दिव्य गुण (**मम**) मेरे (**नाथम्**) ऐश्वर्य (**भवन्तु**) होवें," (**सर्वे**) सब (**देवाः**) दिव्य गुणवाले लोग (**मम**) मेरी (**इमम्**) इस (**हवम्**) पुकार को (**आ यन्तु**) आकर प्राप्त हों ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वस्वामी परमेश्वर का शरण लेकर और विद्वानों का सत्संग करके अपने दोषों का नाश करके ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥७॥

इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् ।
कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥८॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो!] (**इदम्**) इस (**घृतवत्**) प्रकाशयुक्त (**आज्यम्**) पूर्ण गति को (**जुषाणाः**) सेवन करते हुए, (**कामज्येष्ठाः**) कामना योग्य परमेश्वर को सब से बड़ा मानते हुए, (**मह्यम्**) मुझको (**एव**) अवश्य (**असपत्नम्**) विना शत्रु (**कृण्वन्तः**) करते हुए तुम (**इह**) यहां [हमें] (**मादयध्वम्**) तृप्त करो ॥८॥

भावार्थः विद्वान् लोग सब उपाय से ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों के सत्संग से आत्मदोष त्याग कर प्रसन्न होते हैं ॥८॥

इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः ।
तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥९॥

भाषार्थः—(**काम**) हे कमनीय [परमेश्वर!] [मेरे] (**इन्द्राग्नी**) वायु और अग्नि [प्राण वायु और शारीरिक बल] के साथ (**सरथम्**) एक रथ पर (**हि**) ही (**भूत्वा**) होकर (**मम**) मेरे (**सपत्नान्**) शत्रुओं को (**नीचैः**) नीचे (**पादयाथः**) पहुंचा। (**अग्ने**) हे तेजस्वी परमेश्वर! (**त्वम्**) तू (**अधमा**) अति नीच (**तमांसि**) अन्धकारों में (**पन्नानाम्**) पहुंचे हुए (**तेषाम्**) उन [शत्रुओं] के (**वास्तूनि**) घरों को (**अनुनिर्दह**) निरन्तर जला दे ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य सर्व शक्तिमान् परमेश्वर की महाशक्ति को विचारकर शारीरिक और आत्मिक बल के साथ काम क्रोध आदि शत्रुओं को उनके कारण सहित नाश करके आनन्द पावें ॥९॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऊपर मन्त्र ४ में कुछ भेद से आ चुका है ॥

जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥१०॥

भाषार्थः—(काम) हे कमनीय [परमेश्वर !] (त्वम्) तू (मम) मेरे (ये) जो (सपत्नाः) शत्रु हैं, (एनान्) उनको (जहि) नाश करदे और (अन्धा) बड़े भारी (तमांसि) अन्धकारों में (अव पादय) गिरा दे । (सर्वे ते) वे सब (निरिन्द्रियाः) निर्धन और (अरसाः) निर्वीर्य (सन्तु) हो जावें, और (कतमत् चन) कुछ भी (अहः) दिन (मा जीविषुः) न जीवें ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की प्रार्थना उपासना से आत्मिक बल बढ़ाकर शत्रुओं का सर्वथा नाश करें ॥१०॥

अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम् ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु ॥११॥

भाषार्थः—(कामः) कामना योग्य [परमेश्वर] ने [उनको] (अवधीत्) नष्ट कर दिया है (ये) जो (मम) मेरे (सपत्नाः) शत्रु हैं और (मह्यम्) मेरे लिये (उरुम्) चौड़ा, (एधतुम्) वृद्धि करने वाला (लोकम्) स्थान (अकरत्) किया है । (मह्यम्) मेरे लिये (चतस्रः) चारों [पूर्व, पश्चिम दक्षिण और उत्तर] (प्रदिशः) प्रधान दिशायें (नमन्ताम्) झुकें, (मह्यम्) मेरे लिये (षट्) छह [आग्नेयी, नैर्ऋति, वायवी, ऐशानी चारों मध्य दिशा और ऊपर नीचे की दोनों] (उर्वीः) फैली हुई [दिशाएं] (घृतम्) घृत [प्रकाश वा सार पदार्थ] (आ वहन्तु) लावें ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर के अनुग्रह से अपने विघ्नों का नाश करते हैं, वे विज्ञानपूर्वक उन्नति करके सब स्थानों और सब कालों में आनन्द भोगते हैं ॥११॥

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥१२॥

भाषार्थः—(ते) वे (अधराञ्चः) अधोगति वाले लोग (बन्धनात्) बन्धन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (छिन्ना) छूटी हुई (नौः इव) नाव के समान (प्र प्लवन्ताम्) बहते चले जावें। (सायकप्रणुत्तानाम्) तीर से ढकेले गये पदार्थों का (निवर्तनम्) लौटना (पुनः) फिर (न) नहीं (अस्ति) होता है ॥१२॥

भावार्थः—जो मनुष्य दृढ़ उपायों से विघ्नों को हटाते हैं, वे सहज में सदा निर्विघ्न रहते हैं ॥१२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है-अ० ३। ६। ७॥

अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः ।
यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ॥१३॥

भाषार्थः—(अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर (यवः) [अधर्म का] हटाने वाला, (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (यवः) [दुष्कर्म] मिटाने वाला (सोमः) सुख उत्पन्न करने वाला ईश्वर (यवः) [सुख का] मिलाने वाला है। (यवयावानः) यवनों [धर्मनिन्दकों] के निन्दा करनेवाले (देवाः) विद्वान् लोग (एनम्) इस [परमात्मा] को (यवयन्तु) मिलें ॥१३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग ईश्वरोक्त धर्म्मानुसार दुष्कर्मियों को दण्ड देकर परमेश्वर की आज्ञा में प्रवृत्त रहते हैं ॥१३॥

असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् । उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्र मृणत् सपत्नान् ॥१४॥

भाषार्थः—(असर्ववीरः) सब वीरों से रहित (प्रणुत्तः) बाहर निकाला गया (मित्राणाम्) मित्रों और (स्वानाम्) जातियों का (परिवर्ग्यः) त्यागा हुआ (द्वेष्यः) शत्रु (चरतु) फिरता रहे। (उत) और [जैसे] (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (विद्युतः) बिजुलियां (अव स्यन्ति) गिरती हैं [वैसे ही] (उग्रः) प्रबल (देवः) विजयी परमेश्वर (वः) तुम (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्र मृणत्) नाश कर डाले ॥१४॥

भावार्थः—धर्मात्मा विद्वान् लोग दुराचारियों को उनके मित्र आदिकों से पृथक् करके नष्ट कर देवें जैसे बिजुली गिर कर पृथिवी पर पदार्थों को नष्ट कर देती है, यह परमेश्वर का नियम है ॥१४॥

च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युद् बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान् । उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इयम्) यह (बृहती) बड़ी (विद्युत्) प्रकाशमान शक्ति [परमेश्वर] (च्युता) गिरे हुए [निर्बल] (च च) और (अच्युता) न गिरे हुए [प्रबल द्रव्यों] को (च) और (सर्वान्) सब (स्तनयित्नून्) शब्द करने वालों को (बिभर्ति) धारण करता है। (उद्यन्) उदय होता हुआ (सहस्वान्) बलवान् (आदित्यः) प्रकाशमान जगदीश्वर (द्रविणेन) बल से और (तेजसा) तेज से (मे) मेरे (सपत्नान्) बैरियों को (नीचैः) नीचे (नुदताम्) ढकेल देवे ॥१५॥

भावार्थः- सर्वपोषक, सर्वशक्तिमान्, परमेश्वर के नियम से पुरुषार्थी जन बल और प्रताप बढ़ाकर वैरियों का नाश करते हैं ॥१५॥

यत् तें काम शर्मं त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्मं विततमनतिव्याध्यं कृतम्। तेनं सपत्नान् परिं वृङ्ग्धि ये मम पर्यैनान् प्राणः पशवो जीवंनं वृणक्तु ॥१६॥

भाषार्थः—(काम) हे कामना योग्य [जगदीश्वर!] (यत्) जो (ते) तेरा (शर्म) सुखप्रद (त्रिवरूथम् तीन [शारीरिक आत्मिक और सामाजिक] रक्षा वाला (उद्भु) बलवान् (ब्रह्म, वेद (विततम्) फैला हुआ (अनतिव्याध्यम्) न कभी छेदने योग्य (वर्म) कवच (कृतम्) बना है। (तेन) उस [वेद] से (सपत्नान्) उन वैरियों को (परि वृङ्ग्धि) हटा दे। (ये) जो (मम) मेरे [शत्रु हैं] (एनान्) उन [शत्रुओं] को (प्राणः) प्राण (पशवः) सब जीव और (जीवनम्) जीवनवृत्ति (परि वृणक्तु) छोड़ देवे ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा मानकर शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करके सब शत्रुओं को निर्बल करें ॥१६॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से म० ५ में आ चुका है ॥

येनं देवा असुंरान् प्राणुंदन्त येनेन्द्रो दस्यूंनधमं तमों निनायं। तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुंदस्व दूरम् ॥१७॥

भाषार्थः -(येन) जिस [उपाय] से (देवाः) विजयी लोगों ने (असुरान्) असुरों [विद्वानों के विरोधियों] को (प्राणुदन्त) निकाल दिया है (येन) जिस [यत्न] से (इन्द्रः) महाप्रतापी पुरुष ने (दस्यून्) डाकुओं को (अधमम् तमः) नीचे अन्धकार में (निनाय) पहुंचाया था। (काम) हे कामना योग्य [परमेश्वर] (त्वम्) तू (मम) मेरे (ये) जो (सपत्नाः) शत्रु हैं (तेन) उसी [उपाय] से (तान्) उनको (अस्मात् लोकात्) इस स्थान से (दूरम्) दूर (प्र णुदस्व) निकाल दे ॥१७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर के ज्ञान रखनेवाले पूर्वज विद्वानों और वीरों के समान उपाय करके दुराचारियों का नाश करें ॥१७॥

यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे । तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥१८॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (देवाः) व्यवहार कुशल लोगों ने (असुरान्) असुरों [विद्वानों के विरोधियों] को (प्राणुदन्त) निकाल दिया है (यथा) जैसे (इन्द्रः) महाप्रतापी पुरुष ने (दस्यून्) डाकुओं को (अधमम् तमः) नीचे अन्धकार में (बबाधे) रोका था। (काम) हे कामना योग्य [परमेश्वर !] (त्वम्) तू (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं (तथा) वैसे ही (तान्) उनको (अस्मात् लोकात्) इस स्थान से (दूरम्) दूर (प्र णुदस्व) निकाल दे ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वदा परमेश्वर का आश्रय लेकर यथावत् व्यवहारों को समझ कर दुष्कर्मियों का नाश करें ॥१८॥

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः । ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि । १९॥

भाषार्थः—(कामः) कामना योग्य [परमेश्वर] (प्रथमः) पहिले ही पहिले [होकर] (जज्ञे) प्रकट हुआ (एनम्) इसको (न) न तो (पितरः) पालन शील (देवाः) चलने वाले लोकों [पृथिवी सूर्य आदि] और (न) न (मर्त्याः) मनुष्यों ने (आपुः) पाया। (ततः) उससे (त्वम्) तू (ज्यायान्) अधिक बड़ा (विश्वहा) सब प्रकार (महान्। महान् [पूजनीय] (असि) है (तस्मै ते) उस तुझको (इत्) ही (काम) हे कामना योग्य [परमेश्वर] (नमः) नमस्कार (कृणोमि) करता हूं ॥१९॥

भावार्थः—जो परमेश्वर अनादि, अनुपम, सर्वशक्तिमान् है, उसी की प्रार्थना उपासना सब मनुष्य करें ॥१९॥

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः । ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२०॥

भाषार्थः—(यावती) जितने कुछ (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूलोक (वरिम्णा) अपने फैलाव से हैं (यावत्) जहां तक (आपः) जल धारायें (सिस्यदुः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही हैं और (यावत्) जितना कुछ (अग्निः) अग्नि वा बिजुली है। (ततः) उससे (त्वम्) तू····· म० १९ ॥२०॥

भावार्थः—सूर्य, पृथिवी आदि पदार्थों का उत्पन्न करने वाला और जानने वाला परमेश्वर ही है ॥२०॥

यावती॒र्दिशः॑ प्र॒दिशो॒ विषू॑ची॒र्याव॑ती॒राशा॑ अभि॒चक्ष॑णा दि॒वः। तत॒स्त्वम॑सि॒ ज्यायां॑न् वि॒श्वहा॑ म॒हांस्तस्मै॑ ते काम॒ नम॒ इत् कृ॑णोमि ॥२१॥

भाषार्थः—(यावतीः) जितनी बड़ी (विषूचीः) फैली हुई (दिशः) दिशाएं और (प्रदिशः) मध्य दिशाएं, और (यावतीः) जितनी बड़ी (आशाः) सब भूमि और (दिवः) आकाश के (अभिचक्षणाः) दृश्य हैं। (ततः) उस से (त्वम्) तू······ म० १९ ॥२१॥

भावार्थः—परमेश्वर सब दिशाओं और सब दृश्यों की सीमा से बाहिर है ॥२१॥

याव॑ती॒र्भृङ्गा॑ ज॒त्वः॑ कु॒रूर॑वो॒ याव॑ती॒र्वघा॑ वृक्षस॒र्प्यो॑ ब॒भूवुः॑। तत॒स्त्वम॑सि॒ ज्यायां॑न् वि॒श्वहा॑ म॒हांस्तस्मै॑ ते काम॒ नम॒ इत् कृ॑णोमि ॥२२॥

भाषार्थः—(यावतीः) जितनी (कुरूरवः) कुत्सित ध्वनि वाली (भृङ्गाः) भ्रमरी आदि और (जत्वः) चिमगादर आदि और (यावतीः) जितनी (वघाः) टिड्डी आदि और (वृक्षसर्प्यः) वृक्षों पर रेंगने वाली [कीटादि पङ्क्तियां] (बभूवुः) हुई हैं (ततः) उस से (त्वम्) तू······म० १९ ॥२२॥

भावार्थः—वह परमात्मा छोटे छोटे जीवों की पहुंच से भी बाहर है ॥२२॥

ज्यायां॑न् नि॒मि॒ष॒तो॑ऽसि॒ तिष्ठ॑तो॒ ज्याया॑न्त्समु॒द्राद॑सि काम मन्यो। तत॒स्त्वम॑सि॒ ज्यायां॑न् वि॒श्वहा॑ म॒हांस्तस्मै॑ ते काम॒ नम॒ इत् कृ॑णोमि ॥२३॥

भाषार्थः—(काम) हे कामना योग्य ! (मन्यो) हे पूजनीय [परमेश्वर !] तू (निमिषतः) पलक मारने वाले [मनुष्य पशु पक्षी आदि] से और (तिष्ठतः) खड़े रहने वाले [वृक्ष पर्वत आदि] से (ज्यायान्) अधिक बड़ा (असि) है और (समुद्रात्) समुद्र [आकाश वा जलनिधि] से (ज्यायान्) अधिक बड़ा (असि) है (ततः) उससे (त्वम्) तू······१९ ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वह जगदीश्वर मनुष्य, पर्वत, आकाश आदि की भी सीमा में नहीं आता है ॥२३॥

न वै वातंश्चन कामंमाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमांः । ततस्त्वमंसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मैं ते काम नम इत् कृणोमि ॥२४ ।

भाषार्थः—(न वै चन) न तो कोई (वातः) पवन (कामम्) कामना योग्य [परमेश्वर] को (आप्नोति) पाता है (न) न (अग्निः) अग्नि और (सूर्य्यः) सूर्य (उत) और (न) (चन्द्रमाः) चन्द्रमा। (ततः) उस से (त्वम्) तू (ज्यायान्) अधिक बड़ा (विश्वहा) सब प्रकार (महान्) महान् [पूजनीय] (असि) है (तस्मै ते) उस तुझ को (इत्) ही (काम) हे कामना योग्य [परमेश्वर !] (नमः) नमस्कार (कृणोमि) करता हूं ॥२४॥

भावार्थः—उस परमात्मा को वायु, अग्नि, सूर्य आदि नहीं पहुंच सकते हैं, वह सब से बड़ा है ॥२४॥

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे । ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥२५॥

भाषार्थः—(काम) हे कामना योग्य [परमेश्वर !] (ते) तेरी (याः) जो (शिवाः) मङ्गलवती और (भद्राः) कल्याणी (तन्वः) उपकार शक्तियाँ हैं, (याभिः) जिनसे (सत्यम्) वह सत्य (भवति) होता है (यत्) जो कुछ (वृणीषे) तू चाहता है। (ताभिः) उन [उपकारशक्तियों] से (त्वम्) तू (अस्मान्) हम लोगों में (अभिसंविशस्व) प्रवेश करता रहे, (अन्यत्र) दूसरों [पापियों] में (पापीः धियः) पाप बुद्धियों को (अप वेशय) प्रवेश कर दे ॥२५॥

भावार्थः—परम उपकारी परमेश्वर अपने न्याय सामर्थ्य से धर्म्मात्माओं को पुरुषार्थ देता और दुष्टों को उनकी कुबुद्धि के कारण दण्ड देता है ॥२५॥

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥३॥

१—३१ ॥ शाला देवता ॥ १—५, ८—१४, १६, १८—२०, २२—२४ अनुष्टुप्; ६ पथ्या पङ्क्तिः, ७ परोष्णिक्, १५ भुरिक् शक्वरी, १७ निचृत् प्रस्तारपङ्क्तिः, २१ आस्तारपङ्क्तिः, २५, ३१ प्राजापत्या बृहती, २६ साम्नीत्रिष्टुप्, २७–३० प्रतिष्ठा गायत्री ॥

शालानिर्माणविध्युपदेशः—शाला बनाने की विधि का उपदेश ॥
[इस सूक्त का मिलान अथर्व काण्ड ३ सूक्त १२ से करो]

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।
शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥१॥

भाषार्थः—(विश्ववारायाः) सब ओर द्वारों वाली वा सब श्रेष्ठ पदार्थों वाली (शालायाः) शाला की (उपमिताम्) उपमायुक्त [देखने में सराहने योग्य], (प्रतिमिताम्) प्रतिमान युक्त [जिसके आमने सामने की भीतें, द्वार, खिड़की आदि एक माप में हों] (अथो) और भी (परिमिताम्) परिमाणयुक्त [चारों ओर से माप कर सम चौरस की हुई] [बनावट] को (उत) और (नद्धानि) बन्धनों [चिनाई, काष्ठ आदि के मेलों] को (वि चृतामसि) हम अच्छे प्रकार ग्रन्थित [बन्धन युक्त] करते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विचारपूर्वक प्रतिकृति अर्थात् चित्र बनाकर घरों को उत्तम सामग्री से भले प्रकार सुथरे, सुडौल, सुदृश्य, दिखनौत, और चित्तविनोदक बनावें ॥१॥

यह मन्त्र स्वामिदयानन्दकृतसंस्कारविधि-गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥
इस सूक्त के संस्कार विधि में आये सब मन्त्रों का अर्थ प्रशंसित महात्मा के आधार पर किया गया है ॥

यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः ।
बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥२॥

भाषार्थः—(विश्ववारे) हे सब उत्तम पदार्थों वाली ! (यत्) जिस कारण से (ते) तेरा (नद्धम्) बन्धन, (पाशः) जाल (च) और (ग्रन्थिः) गांठ (यः) जो (कृतः) बनाई गई है। (तत्) उसी कारण से (बृहस्पतिः इव) बड़े विद्वान् के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान (अहम्) मैं (बलम्) अन्नराशि को (वाचा) वाणी [विद्या] के साथ (वि) विशेष करके (स्रंसयामि) पहुंचाता हूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य शाला के सब अङ्गों को ठीक ठीक बना के अन्न आदि से भरपूर करें ॥२॥

आ य॑याम॒ सं ब॑बर्ह ग्र॒न्थीँश्च॑कार ते दृ॒ढान् ।
परूँ॑षि वि॒द्वांछस्ते॒वेन्द्रे॑ण॒ वि चृ॑तामसि ॥३॥

भाषार्थः—उस [शिल्पी] ने (ते) तेरी (ग्रन्थीन्) गाठों को (आ ययाम) फैलाया है, (सम् बबर्ह) मिलाया है और (दृढान्) दृढ़ (चकार) किया है। (परूंषि) जोड़ों को (विद्वान्) विद्वान् (शस्ता इव) चीड़ फाड़ करने वाले [वैद्य] के समान हम लोग (इन्द्रेण) ऐश्वर्य के साथ (वि) विशेष करके (चृतामसि) बांधते हैं ॥३॥

भावार्थः—शिल्पी लोग सब आवश्यक सामग्री एकत्र करके घरों को दृढ़ बनावें जिस प्रकार वैद्य टूटे अवयवों को जोड़ कर दृढ़ बनाता है ॥३॥

वं॒शानां॑ ते॒ नह॑नानां प्रा॒णा॒ह॒स्य॒ तृण॑स्य॒ च ।
प॒क्षाणां॑ विश्ववारे ते न॒द्धा॒नि॒ वि चृ॑तामसि ॥४॥

भाषार्थः—(विश्ववारे) हे सब उत्तम पदार्थों वाली ! (ते) तेरे (वंशानाम्) बांसों, (नहनानाम्) गांठों (च) और (प्राणाहस्य) बन्धन की (तृणस्य) घास के और (ते) तेरे (पक्षाणाम्) पक्खों [भीति आदि] के (नद्धानि) बन्धनों को (वि) अच्छे प्रकार (चृतामसि) हम गूंथते हैं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य घर बनाने में सब अङ्गों के जोड़ों को यथावत् दृढ़ करें ॥४॥

सं॒दं॒शानां॑ प॒ल॒दा॒नां॒ परि॑ष्वञ्जल्यस्य च ।
इ॒दं मान॑स्य॒ पत्न्या॑ न॒द्धा॒नि॒ वि चृ॑तामसि ॥५॥

भाषार्थः—(इदम्) अब (मानस्य) मान [सम्मान] की (पत्न्याः) रक्षा करनेवाली [शाला] के (संदंशानाम्) संडासियों [वा आंकड़ों] को (च) और (पलदानाम्) पल [अर्थात् सुवर्ण आदि की तोल और विघटिका मुहूर्त आदि] देने वाले [यन्त्रों] के (परिष्वञ्जल्यस्य) जोड़ के (नद्धानि) बन्धनों को (वि चृतामसि) हम भली भांति बांधते हैं ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य पदार्थ पकड़ने के साधनों और वैज्ञानिक तोल और समय जानने के यन्त्रों को अपने घरों में यथावत् बनावें ॥५॥

यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम् । प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव ॥६॥

भाषार्थः—(ते अन्तः) तेरे भीतर (यानि) जिन (शिक्यानि) छींकों को (कम्) सुख से (रण्याय) रमणीय वा सांग्रामिक कर्म के लिये (आबेधुः) उन [शिल्पियों] ने भली भांति बांधा है। (ते) तेरे लिये (तानि) उन सब को (प्र चृतामसि) हम भली भांति दृढ़ करते हैं, (मानस्य) सन्मान की (पत्नी) रक्षा करने वाली तू (नः) हमारे (तन्वे) उपकार के लिये (शिवा) कल्याणी और (उद्धिता) ऊंची उठी हुई (भव) हो ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य विज्ञानवृद्धि, मन बहलाव और युद्ध आदि के लिये कला यन्त्र आदिकों के लटकाने के लिये सुखदायक ऊंचे घर बनावें ॥६॥

**हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।
सदो देवानामसि देवि शाले ॥७॥**

भाषार्थः—(देवि) हे दिव्य कमनीय (शाले) शाला ! तू (हविर्धानम्) देने लेने योग्य पदार्थों [वा अन्न और हवन सामग्री] का घर, (अग्निशालम्) अग्नि [वा विजुली आदि] का स्थान, (पत्नीनाम्) रक्षा करने वाली स्त्रियों का (सदनम्) घर और (सदः) सभास्थान और (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों का (सदः) सभास्थान (असि) है ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसे घर बनाने चाहियें जो कला कौशल आदि कर्मों, कुटुम्बियों के रहने, स्त्री-सम्मेलन और पुरुष, सभा करने में सुखदायी हों ॥७॥

**अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति ।
अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥८॥**

भाषार्थः—(विषुवति) व्याप्ति वाले [ऊंचे] स्थान पर (विततम्) फैले हुए, (सहस्राक्षम्) सहस्रों व्यवहार वा झरोखे वाले (ओपशम्) उपयोगी, (ब्रह्मणा) वेदज्ञ विद्वान् करके (अवनद्धम्) अच्छे प्रकार छाये गये और (अभिहितम्) बताये गये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अक्षुम्) व्याप्ति वाले [सर्वदर्शक स्तम्भगृह] को (विचृतामसि) हम अच्छे प्रकार ग्रन्थित करते हैं ॥८॥

भावार्थः—विद्वान् लोग विद्वान् शिल्पियों की सम्मति से ऊंचे स्थान पर सर्वदर्शक स्तम्भ, अर्थात् ज्योतिष चक्र, प्रकाश लाट, घटिकाधान आदि सर्वोपयोगी स्थान बनावें ॥८॥

यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् ।
उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥९॥

भाषार्थः—(शाले) हे शाला ! (यः) जो (त्वा) तुझको (प्रतिगृह्णाति) अङ्गीकार करता है (च) और (येन) जिस करके (त्वम्) तू (मिता असि) बनाई गयी है। (मानस्य पत्नि) हे सन्मान की रक्षा करने वाली ! (तौ उभौ) वे दोनों (जरदष्टी) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वा भोजन वाले [होकर] (जीवताम्) जीते रहें ॥९॥

भावार्थः—शाला बनाने में ध्यान रहे कि बनाने वाले गृहस्वामी आदि और रहने वाले सुख से निर्वाह करें ॥९॥

अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता ।
यस्यास्ते विचृतमस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥१०॥

भाषार्थः—(दृढा) दृढ़ बनी हुई, (नद्धा) छायी हुई और (परिष्कृता) सजी हुई तू (अमुत्र) वहां पर (एनम्) इस [पुरुष] को (आ गच्छतात्) प्राप्त हो। (यस्याः ते) जिस तेरे (अङ्गमङ्गम्) अङ्ग अङ्ग और (परुष्परुः) पोरुये पोरुये को (विचृतामसि) हम अच्छे प्रकार ग्रन्थित करते हैं ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य शाला को दृढ़ बना कर सुसज्जित करें ॥१०॥

यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन् ।
प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥११॥

भाषार्थः—(शाले) हे शाला ! (यः) जिस [गृहस्थ] ने (त्वा) तुझे (निमिमाय) जमाया है और (वनस्पतीन्) सेवन करने वालों के रक्षक पदार्थों को (संजभार) एकत्र किया है। (शाले) हे शाला ! (परमेष्ठी) सब से उच्च पद पर रहने वाले (प्रजापतिः) उस प्रजापालक [गृहस्थ] ने (प्रजायै) प्रजा के सुख के लिये (त्वा) तुझे (चक्रे) बनाया है ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य ऐसी शाला बनावे जिसमें आप और सन्तान आदि सब सुखी रहें ॥११॥

नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः ।
नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥१२॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस (नमो दात्रे) अन्न देने वाले (च) और (शालापतये) शाला के स्वामी को (नमः) सत्कार (कृण्मः) हम करते हैं। (अग्नये) अग्नि [की सिद्धि] को (नमः) अन्न (च) और (प्रचरते) सेवा करने वाले (पुरुषाय) पुरुष के लिये (ते) तेरे हित के लिये (नमः) अन्न होवे ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य अन्न आदि के दाता गृहस्थों का आदर करते रहें और यज्ञ आदि के करने और पुरुषों के पोषण के लिये घर में अन्न आदि पदार्थ उपस्थित रहें ॥१२॥

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१३॥

भाषार्थः—(गोभ्यः) गौओं के लिये, (अश्वेभ्यः) घोड़ों के लिये और (यत्) जो कुछ (शालायाम्) शाला में (विजायते) उत्पन्न होवे, [उसके लिये] (नमः) अन्न [होवे]। (विजावति) हे विविध उत्पन्न पदार्थों वाली ! और (प्रजावति) हे उत्तम प्रजाओं वाली ! (ते) तेरे (पाशान्) बन्धनों को (विचृतामसि) हम अच्छे प्रकार ग्रन्थित करते हैं ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्यों को विविध पोषण सामग्री सुदृढ़ घरों में रखनी उचित है ॥१३॥

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१४॥

भाषार्थः—[हे शाला !] (अग्निम्) अग्नि को और (पुरुषान्) पुरुषों को (पशुभिः सह) पशुओं सहित (अन्तः) अपने भीतर (छादयसि) तू ढक लेती है। (विजावति) हे विविध उत्पन्न पदार्थों वाली ! और (प्रजावति) हे उत्तम प्रजाओं वाली ! (ते) तेरे (पाशान्) बन्धनों को (वि चृतामसि) हम अच्छे प्रकार ग्रन्थित करते हैं ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य यज्ञ आदि की सिद्धि और मनुष्य और पशुओं के लिये सुखदायी घर बनावें ॥१४॥

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् । यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः । तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥१५॥

भाषार्थः—(द्याम्) सूर्य [के प्रकाश] (च च) और (पृथिवीम् अन्तरा) पृथिवी के बीच (यत्) जो (व्यचः) खुला स्थान है, (तेन) उस [विस्तार] से (इमाम् शालाम्) इस शाला को [हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (प्रति गृह्णामि) मैं ग्रहण करता हूं । (यत्) जो (रजसः) घर का (अन्तरिक्षम्) अवकाश (विमानम्) विशेष मान परिमाण युक्त है, (तत्) उस [अवकाश] को (अहम्) मैं (शेवधिभ्यः) अनेक निधियों के लिए (उदरम्) पेट (कृण्वे) बनाता हूं । (तेन) उसी [कारण] से (तस्मै) उस [प्रयोजन] के लिए (शालाम्) शाला को (प्रति गृह्णामि) मैं ग्रहण करता हूं ॥१५॥

भावार्थः मनुष्यों को विचार और परिमाण करके शाला ऐसी बनानी चाहिये जिसमें प्रकाश और वायु का गमन आगमन रहे और जिस के भीतर कोष आदि रखने के लिये गुप्तघर, तल घर आदि हों ॥१५॥

१५—यह और अगला मन्त्र स्वामिदयानन्दकृतसंस्कारविधि, गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ।

ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥१६॥

भाषार्थः—(शाले) हे शाला ! (पृथिव्याम्) उचित भूमि पर (मिता) परिमाण युक्त (निमिता) जमाई गई, (ऊर्जस्वती) बल पराक्रम बढ़ाने वाली, (पयस्वती) जल और दुग्ध आदि से पूर्ण, (विश्वान्नम्) सम्पूर्ण अन्न को (बिभ्रती) धारण करती हुई तू (प्रतिगृह्णतः) ग्रहण करने हारों को (मा हिंसीः) मत पीड़ा दे ॥१६॥

भावार्थः—जो मनुष्य उचित भूमि पर सोच विचार कर घर बनाते हैं, वे बल पराक्रम बढ़ाकर दुग्ध, अन्न आदि संग्रह करके स्वस्थता के साथ सदा सुखी रहते हैं ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृणैरावृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥१७॥

भाषार्थः—(तृणैः) तृण आदि से (आवृता) छाई हुई, (पलदान्) पल [अर्थात् सुवर्ण आदि की तोल और विघटिका मुहूर्त आदि] देने वाले [यन्त्रों] को (वसाना) पहिने हुए (शाला) शाला तू (जगतः) संसार की (निवेशनी) सुख प्रवेश करने वाली (रात्री इव) रात्रि के समान [होकर] (पद्वती) पैरों वाली [चारों पैरों पर दृढ़ खड़ी हुई] (हस्तिनी इव) हथिनी के समान (पृथिव्याम्) उचितभूमि पर (मिता) बनाई हुई (तिष्ठसि) स्थित है ॥१७॥

भावार्थः— मनुष्य शाला को सुदृढ़ बनाकर अनेक कला कौशल आदि के यन्त्रों से उपयोगी करे ॥१७॥

इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन् ।
वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु ॥१८॥

भाषार्थः—[हे शाला!] (ते) तेरे (इटस्य) द्वार के (अपिनद्धम्) बन्धन को (अपोर्णुवन्) खोलता हुआ मैं (वि चृतामि) अच्छे प्रकार ग्रन्थित करता हूं । (वरुणेन) ढकने वाले अन्धकार से (समुब्जिताम्) दबाई हुई [तुझ] को (मित्रः) सर्वप्रेरक सूर्य (प्रातः) प्रातः काल (वि उब्जतु) खोल देवे ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्य घर के द्वारों में शृङ्खला चटकनी आदि ऐसी लगावें, जिससे अन्धकार के समय बन्द करने और प्रकाशके समय खोलने में सुभीता हो ॥१८॥

ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥१९॥

भाषार्थः—(अमृतौ) मरणरहित [सुखप्रद] (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि (ब्रह्मणा) चारों वेद जानने हारे विद्वान् करके (निमिताम्) जमाई हुई [नेव डाली गयी] (शालाम्) शाला की, (कविभिः) विद्वानों [शिल्पियों] करके (मिताम्) मापी गई और (निमिताम्) दृढ़ बनाई गयी (शालाम्) शाला, (सोम्यम्) ऐश्वर्य-युक्त (सदः) घर की (रक्षताम्) रक्षा करें ॥१९॥

भावार्थः—बड़े विद्वानों और शिल्पी विश्वकर्माओं की सम्मति से बनाये हुए घर वायुयन्त्र और अग्नियन्त्र आदि लगाने के योग्य हों ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र स्वामिदयानन्दकृत संस्कारविधि, गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है।

कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः ।

तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते ॥२०॥

भाषार्थः—[जैसे] **(कुलाये अधि)** घोंसले पर **(कुलायम्)** घोंसला और **(कोशे)** कोश [निधि] पर **(कोशः)** कोश [धन संचय] **(समुब्जितः)** यथावत् दबा होता है। [वैसे ही] **(तत्र)** वहां [शाला में **(मर्तः)** मनुष्य **(वि जायते)** विविध प्रकार प्रकट होता है, **(यस्मात्)** जिस [कारण] से **(विश्वम्)** सब [सन्तान समूह] **(प्रजायते)** उत्तमता से उत्पन्न होता है ॥२०॥

भावार्थः—जिस प्रकार पक्षी अपने घोंसलों में और अनेक धन धनों के द्वारा बढ़ते हैं, वैसे ही मनुष्य सुखप्रद घर में नीरोग रहकर उत्तम सन्तानों से उन्नति करते हैं ॥२०॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।

अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ॥२१॥

भाषार्थः **(या)** जो **(द्विपक्षा)** दो पक्ष वाली [अर्थात् जिसके मध्य में एक, और पूर्व पश्चिम में एक एक शाला हो], **(चतुष्पक्षा)** चार पक्ष वाली [जिसके मध्य में एक और पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में एक एक शाला हो], **(या)** जो **(षट्पक्षा)** छह पक्ष वाली [जिसके बीच में बड़ी शाला और दो दो पूर्व पश्चिम और एक एक उत्तर दक्षिण में शाला हों] **(निमीयते)** बनाई जाती है [उसको और] **(अष्टापक्षाम्)** आठ पक्ष वाली [जिसके बीच में एक और चारों ओर दो दो शाला हों] और **(दशपक्षाम्)** दश पक्ष वाली [जिसके मध्य में दो शाला और चारों दिशाओं में दो दो शाला हों], [उस] **(मानस्य)** सम्मान की **(पत्नीम्)** रक्षा करने हारी **(शालाम्)** शाला में **(अग्निः)** जाठराग्नि और **(गर्भः इव)** गर्भस्थ बालक के समान **(आ शये)** मैं ठहरता हूं ॥२१॥

भावार्थः—जैसे जाठराग्नि शरीर में और गर्भस्थ बालक गर्भाशय में सुरक्षित रहता है, इसी प्रकार मनुष्य अस्त्र, शस्त्र, शिल्प, कला, कौशल आदि के योग्य छोटे बड़े स्थानों को अनेक मान परिमाण युक्त बनाकर सुरक्षित रहें ॥२१॥

यह और अगला मन्त्र स्वामिदयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां पर द्विपदा आदि शालाओं के कुछ चित्र दिये जाते हैं, और भी इसके अनेक चित्र हो सकते हैं। चतुर बृहस्पति, विश्वकर्मा शिल्पाधिकारियों की सम्मति से सब लोग, वायु धूप आदि आने जाने योग्य स्तम्भ, द्वार खिड़की, छत आदि विचार-पूर्वक लगाकर शालाओं को सुदृढ़, रुचिर और सुखदायी बनावें ।।

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।
अग्निर्ह्यन्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ।।२२।।

भाषार्थः—(**शाले**) हे शाला! (**प्रतीचीनः**) [तेरे] सन्मुख चलता हुआ मैं (**प्रतीचीम्**) [मेरे] सन्मुख होती हुई, (**अहिंसतीम्**) न पीड़ा देती हुई (**त्वा**) तुझको (**प्र एमि**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता हूं। (**हि**) निश्चय करके (**अन्तः**) [तेरे] भीतर (**अग्निः**) अग्नि [का घर] और (**आपः**) जल [का स्थान] (**च**) और (**ऋतस्य**) सत्य [के ध्यान] का (**प्रथमा**) पहिला (**द्वाः**) द्वार है ।।२२।।

भावार्थः—जिस शाला में शिल्प आदि यज्ञों के लिये कार्यालय और सत्य असत्य विचारने के लिये वेदपठन स्थान होता है, वहां मनुष्य प्रसन्नता पूर्वक आते जाते हैं ।।२२।।

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ।।२३।।

भाषार्थः—(**इमाः**) इस (**अयक्ष्माः**) रोगरहित (**यक्ष्मनाशनीः**) रोग नाशक (**अपः**) जल को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**आ भरामि**) मैं लाता हूं। (**अमृतेन**) मृत्यु से बचाने वाले अन्न, घृत, दुग्धादि सामग्री और (**अग्निना सह**) अग्नि के सहित (**गृहान्**) घरों में (**उप=उपेत्य**) आकर (**प्र**) अच्छे प्रकार (**सीदामि**) मैं बैठता हूं ।।२३।।

भावार्थः—गृहपति रोगों से बचने और स्वास्थ्य बढ़ाने के लिये अपने घरों में शुद्ध जल, अग्नि आदि पदार्थों का सदा उचित प्रयोग करें ।।२३।।

यह मन्त्र पहिले आ चुका है—अ० ३। १२। ६ ।।

मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ।।२४।।

भाषार्थः—(**शाले**) हे शाला! तू (**नः**) हमारे लिये [अपने] (**पाशम्**)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर ॥

द्विपक्षा १

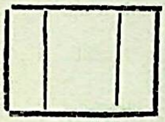

चतुष्पक्षा १

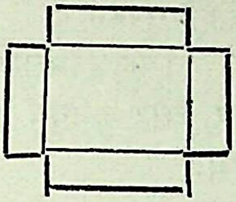

चतुष्पक्षा २

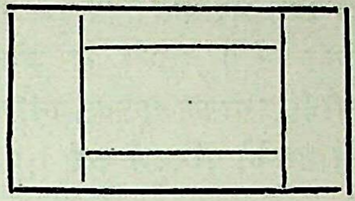

चतुष्पक्षा ३

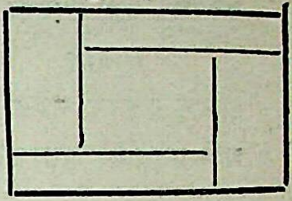

षट्पक्षा १

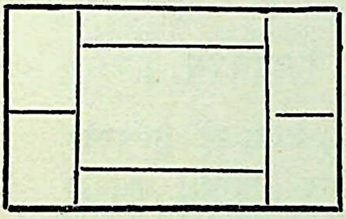

षट्पक्षा २

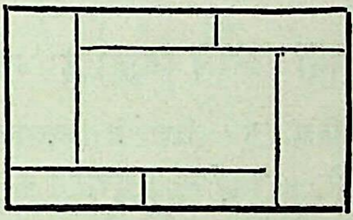

अष्टपक्षा १

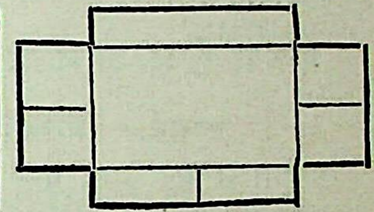

अष्टपक्षा २

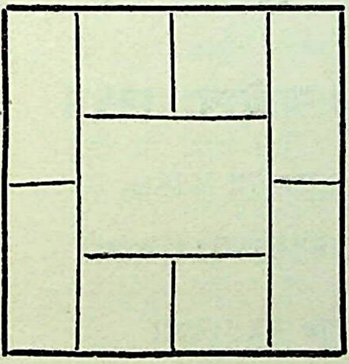

अष्टपक्षा ३

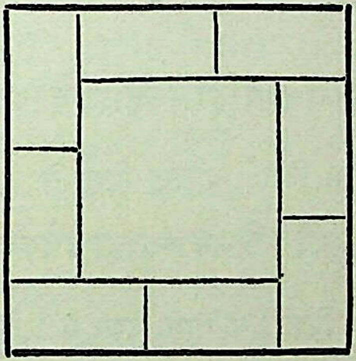

दशपक्षा १

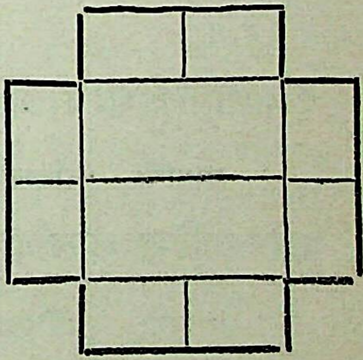

दशपक्षा २

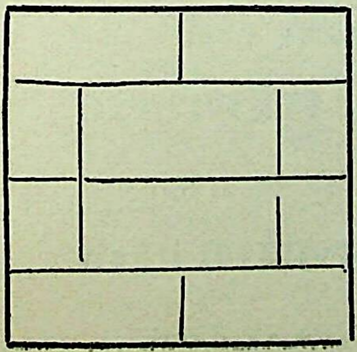

दशपक्षा ३

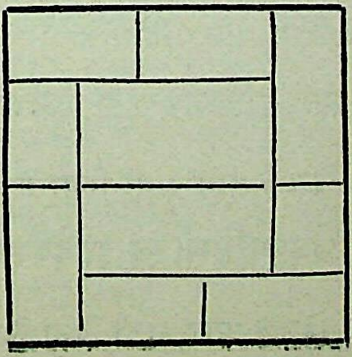

दशपक्षा ४

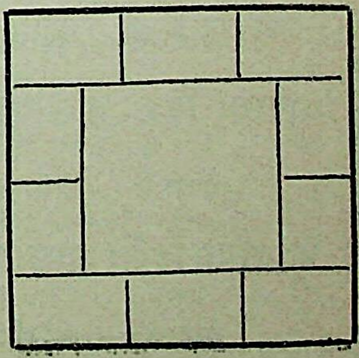

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्धन को (मा प्रति मुचः) मत कभी छोड़, (गुरुः) भारी (भारः) बोझ तू (लघुः) हलका (भव) हो जा, (वधूम् इव) वधू के समान (त्वा) तुझको (यत्र-कामम्) जहां कामना हो वहां (भरामसि) हम पुष्ट करते हैं ॥२४॥

भावार्थः - शिल्पी लोग शाला के जोड़ों को सुदृढ़ मिलावें, और अच्छे प्रकार लम्बी चौड़ी बनाकर सुखदायिनी करें, और कुलवधू के समान आवश्यकीय पदार्थों से उसको परिपूर्ण करें ॥२४॥

यह मन्त्र स्वामी दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

प्राच्या॑ दि॒शः शाला॑या॒ नमो॑ महि॒म्ने स्वाहा॑ दे॒वेभ्यः॑ स्वा॒ह्ये॑भ्यः ॥२५॥

भाषार्थः – (प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा से (शालायाः) शाला की (महिम्ने) महिमा के लिये (नमः) अन्न हो, (स्वाह्येभ्यः) सुवाणी के योग्य (देवेभ्यः) कमनीय विद्वानों के लिये (स्वाहा) सुवाणी [वेदवाणी] हो ॥२५॥

मन्त्र २५ से ३१ तक स्वामिदयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में आये हैं ॥

दक्षि॑णाया दि॒शः शाला॑या॒ नमो॑ महि॒म्ने स्वाहा॑ दे॒वेभ्यः॑ स्वा॒ह्ये॑भ्यः ॥२६॥

भाषार्थः—(दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा से...... म० २५ ॥२६॥

प्रती॒च्या॑ दि॒शः शाला॑या॒ नमो॑ महि॒म्ने स्वाहा॑ दे॒वेभ्यः॑ स्वा॒ह्ये॑भ्यः ॥२७॥

भाषार्थः—(प्रतीच्याः दिशः) पश्चिम दिशा से......म० २५ ॥२७॥

उदी॑च्या दि॒शः शाला॑या॒ नमो॑ महि॒म्ने स्वाहा॑ दे॒वेभ्यः॑ स्वा॒ह्ये॑भ्यः ॥२८॥

भाषार्थः—(उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा से..... म० २५ ॥२८॥

ध्रु॒वाया॑ दि॒शः शाला॑या॒ नमो॑ महि॒म्ने स्वाहा॑ दे॒वेभ्यः॑ स्वा॒ह्ये॑भ्यः ॥२९॥

भाषार्थः—(ध्रुवायाः दिशः) नीचे वाली दिशा से...म० २५ ॥२९॥

ऊ॒र्ध्वाया॑ दि॒शः शाला॑या॒ नमो॑ महि॒म्ने स्वाहा॑ दे॒वेभ्यः॑ स्वा॒ह्ये॑भ्यः ॥३०॥

भाषार्थः—(ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊपर वाली दिशा से...म० २५ ॥३०॥

दि॒शोदि॑शः शाला॑या॒ नमो॑ महि॒म्ने स्वाहा॑ दे॒वेभ्यः॑ स्वा॒ह्ये॑भ्यः ॥३१॥

भाषार्थः—(दिशोदिशः) प्रत्येक विदिशा से (शालायाः) शाला की (महिम्ने)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिमा के लिये (नमः) अन्न हो, (स्वाह्येभ्यः) सुवाणी के योग्य (देवेभ्यः) कमनीय विद्वानों के लिये (स्वाहा) सुवाणी [वेदवाणी] हो ॥३१॥

भावार्थः मनुष्यों को योग्य है कि पूर्वादि सब दिशाओं से पुष्कल अन्न आदि पदार्थ संग्रह करके शाला में रक्खें जिस में विद्वान् लोग वेदों का विचार करते रहें ॥२५ - ३१॥

सूक्तम् ॥४॥

१—२४ ॥ ऋषभो देवता ॥ १—५, ७, ९, १०, २२ त्रिष्टुप्, ६, २४ निचृज्जगती, ८ भुरिक् त्रिष्टुप्, ११, १३, १४, १६, १७, १९, २०, २३ अनुष्टुप्, १२, १५ भुरिगनुष्टुप्, १८ उपरिष्टाद् बृहती, २१ आस्तारपङ्क्तिः ॥

आत्मोन्नत्युपदेशः आत्मा की उन्नति का उपदेश ॥

साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत् ।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् ॥१॥

भाषार्थः—(साहस्रः) सहस्रों पराक्रम वाले, (त्वेषः) प्रकाशमान, (पयस्वान्) अन्नवान्, (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपवान् द्रव्यों को (वक्षणासु) अपनी छाती के अवयवों में (बिभ्रत्) धारण करते हुए, (दात्रे) दानशील (यजमानाय) यजमान [देव पूजा, संयोग, वियोग व्यवहार में चतुर] के लिये (भद्रम्) कल्याण (शिक्षन्) करने की इच्छा करते हुए (बार्हस्पत्यः) बृहस्पतियों [वेदरक्षक विद्वानों] से व्याख्या किये गये। (उस्रियः) सब के निवास, (ऋषभः) सर्वव्यापक वा सर्वदर्शक [परमेश्वर] ने (तन्तुम्) विस्तृत [जगत् रूप तन्तु] को (आ अतान्) सब ओर फैलाया है ॥१॥

भावार्थः मनुष्य प्रकाशस्वरूप, सर्वरचक, सर्वरक्षक आदि गुणयुक्त परमेश्वर की उपासना करके आनन्द प्राप्त करें ॥१॥

अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो [ईश्वर] (अग्रे) पहिले ही पहिले (अपाम्) व्याप्त प्रजाओं की (प्रतिमा) प्रत्यक्ष मान करने वाली [सब जानने वाली] शक्ति और (सर्वस्मै) सब [जगत्] के लिये (देवी) दिव्य गुणवाली (पृथिवी इव) पृथिवी के समान (प्रभूः) समर्थ (बभूव) हुआ है, वह (वत्सानाम्) निवास करने वालों का (पिता) पालनकर्ता और (अघ्न्यानाम्) अहिंसकों [प्रजापतियों] का (पतिः) स्वामी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[परमेश्वर] (साहस्रे) सहस्रों पराक्रमयुक्त (पोषे) पोषण में (नः) हमें (अपि) अवश्य (कृणोतु) करे ।।२।।

भावार्थः—अनादि, अनन्त, सर्वपालक परमात्मा के उपासक पुरुष पुरुषार्थपूर्वक सब प्रकार वृद्धि करते हैं ।।२।।

पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति ।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ।।३।।

भाषार्थः—(पुमान्) रक्षा करने वाला, (अन्तर्वान्) [सब को अपने] भीतर रखने वाला, (स्थविरः) स्थिर स्वभाव [ब्रह्म] (पयस्वान्) अन्नवान् (ऋषभः) सर्वव्यापक परमेश्वर (वसोः) निवास करने वाले [संसार] के (कबन्धम्) उदर को (बिभर्त्ति) भरता है। (तम् हुतम्) उस दाता को (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये (देवयानैः) विद्वानों के जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (जातवेदाः) बड़े ज्ञान वाला (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी पुरुष] (वहतु) प्राप्त करे ।।३।।

भावार्थः—जो परमात्मा सब संसार में भीतर और बाहिर व्यापक होकर सबका पालन करता है, ज्ञानी पुरुष उसी की उपासना से ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं ।।३।।

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः ।।४।।

भाषार्थः—(वत्सानाम्) निवास करने वालों का (पिता) पालनकर्ता और (अघ्न्यानाम्) अहिंसकों [प्रजापतियों] का (पतिः) स्वामी (अथो) और भी (महताम्) बड़े (गर्गराणाम्) उपदेश देनेवाले पुरुषों का (पिता) पिता [पालक परमेश्वर] है। (वत्सः) निवास, (जरायु) जेर [गर्भ की झिल्ली], (प्रतिधुक्) तुरन्त दुहा हुआ (पीयूषः) रुचिर दूध, (आमिक्षा) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध में दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (घृतम्) घी (तत्) यह [पदार्थ समूह] (अस्य) इस [परमेश्वर] का (उ) ही (रेतः) वीर्य [सामर्थ्य] है ।।४।।

भावार्थः संसार के भीतर संयोग वियोग से उत्पन्न सब पदार्थों का आदि कारण सर्वनियन्ता जगदीश्वर है ।।४।।

देवानां भाग उपनाह एषो३पां रस ओषधीनां घृतस्य ।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद् यच्छरीरम् ।।५।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (एषः) यह [परमेश्वर] (देवानाम्) दिव्य गुणों का (भागः) ऐश्वर्यवान् (उपनाहः) नित्य सम्बन्धी, और (अपाम्) जलों का (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न आदि पदार्थों] का और (घृतस्य) घृत का (रसः) रसरूप है। (शक्रः) उसी शक्तिमान् ने (सोमस्य) अमृत के (भक्षम्) भोग को [हमारे लिये] (अवृणीत) स्वीकार किया है और (यत्) जो [उसका] (शरीरम्) शरीर [अस्तित्व] है, वह (बृहन्) बड़ा (अद्रिः) कोठार (अभवत्) हुआ है ॥५॥

भावार्थः— सर्वव्यापी परमेश्वर ने अपनी सत्ता से उपयोगी पदार्थों को उत्पन्न करके सब प्राणियों को अन्न आदि पदार्थ देकर पुष्ट किया है ॥५॥

सोमे॑न पू॒र्णं क॒लशं॑ बिभर्षि॒ त्वष्टा॑ रू॒पाणां॑ जनि॒ता प॑शू॒नाम् । शि॒वास्ते॑ सन्तु प्रज॒न्व॑ इ॒ह या इ॒मा न्य॑१॒स्मभ्यं॑ स्वधिते यच्छ॒ या अ॒मूः ॥६॥

भाषार्थः—(रूपाणाम्) सब रूपों का (त्वष्टा) बनाने वाला और (पशूनाम्) सब जीवों का (जनिता) उत्पन्न करने वाला तू (सोमेन) अमृत से (पूर्णम्) पूर्ण (कलशम्) कलस (बिभर्षि) धारण करता है। (स्वधिते) हे स्वयं धारण करने वाले! (ते) तेरी (प्रजन्वः) प्रजनन शक्तियां (इह) यहां पर (शिवाः) कल्याणी (सन्तु) होवें, (याः) जो प्रजनन शक्तियां (इमाः) यह हैं और (याः) जो (अमूः) वे हैं [उन सब को] (अस्मभ्यम्) हमें (नि) नियम पूर्वक (यच्छ) दान कर ॥६॥

भावार्थः— मनुष्य परमेश्वर के महान् उपकारों को विचार कर पुरुषार्थपूर्वक संसार के समीपस्थ और दूरस्थ पदार्थों को उपयोगी बनावें ॥६॥

आज्यं॑ बिभर्ति घृ॒तम॑स्य॒ रेतः॑ साहस्रः॒ पोष॒स्तमु॑ य॒ज्ञमा॑हुः । इन्द्र॑स्य रू॒पमृ॑ष॒भो वसा॑नः॒ सो अ॒स्मान् दे॑वाः शि॒व ऐ॑तु द॒त्तः ॥७॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [परमेश्वर] का (घृतम्) प्रकाशयुक्त (रेतः) सामर्थ्य (आज्यम्) सब उपाय (बिभर्ति) धारण करता है, (साहस्रः) वह सहस्रों पराक्रम युक्त (पोषः) पोषक है, (तम् उ) उसको ही (यज्ञम्) यज्ञ [संयोजक वियोजक] (आहुः) कहते हैं। (देवाः) हे विद्वान् लोगो! (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य का (रूपम्) रूप (वसानः) धारण करता हुआ (शिवः) मङ्गलकारी, (दत्तः) दिया हुआ [हृदय में रक्खा गया] (सः) वह (ऋषभः) सर्वदर्शक परमेश्वर (अस्मान्) हम लोगों को (आ एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य सर्वपोषक परमेश्वर का आश्रय लेकर सर्वदा पुरुषार्थ करें ॥७॥

इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत् ।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ॥८॥

भाषार्थः—(**इन्द्रस्य**) सूर्य का (**ओजः**) बल, (**वरुणस्य**) जल का (**बाहू**) दो भुजा [समान], (**अश्विनोः**) दिन और रात का (**अंसौ**) दो कन्धों [समान] और (**मरुताम्**) प्राण अपान आदि पवनों की (**इयम्**) यह (**ककुत्**) सुख का शब्द करने वाली शक्ति [वह परमेश्वर है]। (**एतम्**) इसी को (**बृहस्पतिम्**) बड़े बड़े लोकों का स्वामी (**संभृतम्**) यथावत् पोषणकर्ता (**आहुः**) वे बताते हैं, (**ये**) जो (**धीरासः**) धीर (**कवयः**) बुद्धिमान् और (**ये**) जो (**मनीषिणः**) मन की गति वाले हैं ॥८॥

भावार्थः—वह परमेश्वर सब जगत् का आश्रय दाता है, उसको तत्त्वदर्शी लोग पहिचान कर आनन्द पाते हैं ॥८॥

दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥९॥

भाषार्थः—(**पयस्वान्**) अन्नवान् तू (**दैवीः**) दिव्यगुण वाली (**विशः**) प्रजाओं को (**आ**) सब ओर (**तनोषि**) फैलाता है, (**त्वाम्**) तुझको (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्यवान् (**त्वाम्**) तुझको (**सरस्वन्तम्**) महाज्ञानवान् (**आहुः**) वे कहते हैं। (**सः**) वह [ब्राह्मण] (**सहस्रम्**) सहस्र (**एकमुखाः**) एक [परमेश्वर] में मुख [मुख्यता] रखने वाली [विद्याओं] को (**ददाति**) देता है, (**यः**) जो (**ब्राह्मणे**) वेदज्ञान में (**ऋषभम्**) सर्वदर्शक परमेश्वर का (**आजुहोति**) सब ओर से ग्रहण करता है ॥९॥

भावार्थः— सर्वपोषक सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञान से ब्राह्मण वेदद्वारा अनेक विज्ञानों का उपदेश करता है ॥९॥

बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः ।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१०॥

भाषार्थः— [हे मनुष्य !] (**बृहस्पतिः**) सब लोकों के स्वामी (**सविता**) सर्वप्रेरक परमेश्वर ने (**ते**) तेरे लिये (**वयः**) अन्न [वा बल] (**दधौ**) दिया है, (**त्वष्टुः**) उसी विश्वकर्मा (**वायोः**) सर्वव्यापक परमेश्वर से (**ते**) तेरा (**आत्मा**)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा (परि) सब ओर (आभृतः) पुष्ट किया गया है। (अन्तरिक्षे) सब में दीखते हुए परमेश्वर के बीच (त्वा) तुझ को (मनसा) विज्ञान से (जुहोमि) मैं ग्रहण करता हूं, (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (ते) तेरे लिये (बर्हिः) वृद्धि (स्ताम्) होवें ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य सर्वनियन्ता परमेश्वर को सब स्थानों में साक्षात् करते हैं वे सर्वदा वृद्धि करते रहते हैं ॥१०॥

य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत् ।

तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥११॥

भाषार्थः (इन्द्र इव) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष के समान (देवेषु) विद्वानों के बीच, (यः) जो [परमेश्वर] (विवावदत्) अनेक प्रकार बोलता हुआ (गोषु) भूमि आदि लोकों में (एति) चलता है। (तस्य) उस (ऋषभस्य) सर्वव्यापक के (अङ्गानि) अङ्गों को (ब्रह्मा) ब्रह्मा [चारों वेद जानने वाला विद्वान्] (भद्रया) कल्याणी रीति से (सम्) भले प्रकार (स्तौतु) सत्कार से वर्णन करे ॥११॥

भावार्थः—जो परमेश्वर वेद द्वारा अनेक नियमों का उपदेश करता हुआ सर्वलोक नियन्ता है, विद्वान् पुरुष उसके गुणों की महिमा को यथावत् जाने ॥११॥

पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ ।

अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥१२॥

भाषार्थः—[परमेश्वर की] (पार्श्वे) दोनों कांखें [कक्षायें] (अनुमत्याः) अनुकूल बुद्धि की (आस्ताम्) थीं। (अनूवृजौ) [उसकी] दोनों कोखें (भगस्य) ऐश्वर्य की (आस्ताम्) थीं। (अष्ठीवन्तौ) [उसके] दोनों घुटनों को (मित्रः) प्राण ने (अब्रवीत्) बतलाया, "(एतौ) यह दोनों (केवलौ) केवल (मम) मेरे हैं, (इति) बस" ॥१२॥

भावार्थः—अलङ्कार से निराकार परमेश्वर में मनुष्य आदि के आकार की कल्पना करके उसके गुणों का वर्णन है। वह जगदीश्वर सर्वथा अनुकूल बुद्धि वाला परम ऐश्वर्यवान् और प्राण आदि का चलाने वाला है ॥१२॥

भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः ।

पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः —(भसत्) [परमेश्वर की] पेड़ू (आदित्यानाम्) अनेक सूर्यलोकों की (आसीत्) थी, [उसके] (श्रोणी) दोनों कूल्हे (बृहस्पतेः) बृहस्पति लोक के (आस्ताम्, थे। [उसकी] (पुच्छम्) पूंछ (देवस्य) गतिमान् (वातस्य) वायु की [थी], (तेन) उससे (ओषधीः) ओषधियों को (धूनोति) वह हिलाता है ॥१३॥

भावार्थः— इस मन्त्र में परमेश्वर को पूंछ वाले पक्षी पशु आदि के समान माना है। उस परमेश्वर में अनन्त सूर्य और बृहस्पति आदि लोक और वायुमण्डल रह कर उसी की शक्ति से चलते हैं ॥१३॥

गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥१४॥

भाषार्थः —[परमेश्वर की] (गुदाः) गुदा की नाड़ियां (सिनीवाल्याः) चौदस के साथ मिली हुई अमावस की (आसन्) थीं, [उसकी] (त्वचम्) त्वचा को (सूर्यायाः) सूर्य की धूप का (अब्रुवन्) उन्होंने बतलाया। (पदः) [उसके] पैरों को (उत्थातुः) उठने वाले [उत्साही पुरुष] का (अब्रुवन्) उन्होंने बतलाया, (यत्) जब (ऋषभम्) सर्वव्यापक परमेश्वर को (अकल्पयन्) उन्होंने कल्पना से माना ॥१४॥

भावार्थः —परमेश्वर अन्धकार और प्रकाश का जताने वाला और पुरुषार्थियों को चलाने वाला है, ऐसा विद्वान् लोग समझते हैं [चौदस के साथ मिली अमावस में प्रकाश थोड़ा और अन्धकार अधिक होता है] ॥१४॥

क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत् सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् ॥१५॥

भाषार्थः [परमेश्वर की] (क्रोडः) गोद (जामिशंसस्य) ज्ञानियों में प्रशंसा वाले पुरुष की (आसीत्) थी, [उसका] (कलशः) कलस [जलपात्र] (सोमस्य) अमृत का (धृतः) धरा हुआ [था]। (यत्) जब (सर्वे) सब (देवाः) विद्वानों ने (संगत्य) मिलकर (ऋषभम्) सर्वदर्शक परमेश्वर को (व्यकल्पयन्) विविध प्रकार कल्पना से माना ॥१५॥

भावार्थः - विद्वान् लोग निश्चय करके मानते हैं कि परमेश्वर विद्वानों का आश्रय और अमृतस्वरूप है ॥१५॥

ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान् ।
ऊवध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ते) उन्होंने [ऋषियों ने] (कुष्ठिकाः) [पदार्थों को] बाहिर निकालने [चुराने] की प्रकृतियां (सरमायै) सरक सरक कर चलने वाली कुतिया को, और (शफान्) हिंसक स्वभाव (कूर्मेभ्यः) हिंसा करने वाले वा जल में घसजाने वाले कछुओं को (अदधुः) दीये। (अस्य) उसका (ऊबध्यम्) कुपचा अन्न (श्ववर्तेभ्यः) कुत्तों [वा मृतक देहों में] रहने वाले (कीटेभ्यः) कीड़ों को (अधारयन्) उन्होंने रक्खा ॥१६॥

भावार्थः—ऋषियों ने निश्चय किया है कि कुतिये, कुत्ते, कछुए, कीट आदि जो हिंसक योनियां हैं, वे ईश्वरनियम से परपदार्थ हरने वाले प्राणियों के दुष्कर्मों के फल हैं ॥१६॥

शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥१७॥

भाषार्थः—[वह परमेश्वर] (शृङ्गाभ्याम्) दो प्रधानताओं [प्रजापालन और शत्रुनाशन] से (रक्षः) राक्षस [विघ्न] को (ऋषति) हटाता है, (चक्षुषा) नेत्र से (अवर्तिम्) निर्जीविका (हन्ति) नाश करता है। (कर्णाभ्याम्) दोनों कानों से (भद्रम्) कल्याण (शृणोति) सुनता है, (यः) जो (अघ्न्यः) अहिंसक प्रजापति (गवाम्) सब लोकों का (पतिः) स्वामी है ॥१७॥

भावार्थः—सर्वद्रष्टा, सर्वश्रोता परमेश्वर सब क्लेशों का नाश करके अपने भक्तों को आनन्द देता है ॥१७॥

शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः । जिन्वन्ति विश्वे
तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥१८॥

भाषार्थः—(यः) जो (ब्राह्मणः) ब्राह्मण [परमेश्वर और वेद जानने वाला] (ऋषभम्) श्रेष्ठ परमात्मा को (आजुहोति) अच्छे प्रकार प्रसन्न करता है, (सः) वह (शतयाजम्) शीघ्र सैकड़ों प्रकार से यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] करके (यजते) मिलता है, (एनम्) उसको (अग्नयः) तापें [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] (न) नहीं (दुन्वन्ति) तपाते हैं, (तम्) उसको (विश्वे) सब (देवाः) दिव्यगुण (जिन्वन्ति) तृप्त करते हैं ॥१८॥

भावार्थः—परमेश्वर का भक्त विद्वान् पुरुष संसार की भलाई में तत्पर होकर तीनों तापों से छूटकर आनन्द भोगता है ॥१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणेभ्य॑ ऋ॒ष॒भं द॒त्त्वा वरी॑यः कृणुते॒ मनः॑ ।
पुष्टिं॒ सो अ॒घ्न्याना॒ं स्वे गो॒ष्ठेऽव॑ पश्यते ॥१९॥

भाषार्थः—[जो आचार्य] (ब्राह्मणेभ्यः) ब्राह्मणों [ब्रह्म जिज्ञासुओं] को (ऋषभम्) श्रेष्ठ परमेश्वर [के बोध] को (दत्त्वा) देकर (मनः) मन (वरीयः) अधिक विस्तृत (कृणुते) करता है। (सः) वह पुरुष (स्वे) अपने (गोष्ठे) वाचनालय में (अघ्न्यानाम्) हिंसा न करने वालों की (पुष्टिम्) पुष्टि (अवपश्यते) देखता है ॥१९॥

भावार्थः—आचार्य को योग्य है कि ब्रह्मजिज्ञासुओं को यथावत् रीति से ब्रह्मज्ञान कराके उनके लिये सुखवृद्धि करे ॥१९॥

गावः॑ सन्तु प्र॒जाः सन्त्वथो॑ अस्तु तनूब॒लम् ।
तत् स॒र्वम॑नु मन्यन्तां दे॒वा ऋ॑ष॒भदा॑यिने ॥२०॥

भाषार्थः—(गावः) विद्याएं (सन्तु) होवें, (प्रजाः) प्रजाएं (सन्तु) होवें, (अथो) और भी (तनूबलम्) शरीर बल (अस्तु) होवे। (देवाः) विद्वान् लोग (ऋषभदायिने) सर्वदर्शक परमेश्वर के [ज्ञान] देने वाले के लिए (तत् सर्वम्) वह सब (अनु मन्यन्ताम्) स्वीकार करें ॥२०॥

भावार्थः—ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मोपदेशक जन को सब सुख प्राप्त होते हैं ॥२०॥

अ॒यं पि॑पा॒न इन्द्र॒ इद् र॒यिं द॑धातु चे॒तनी॑म् । अ॒यं धे॒नुं
सु॒दुघा॒ं नित्य॑वत्सां व॒शं दु॑हां विप॒श्चितं॒ प॒रो दि॒वः ॥२१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (पिपानः) प्रवृद्ध, बली (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (इत्) ही (चेतनीम्) चेताने वाली (रयिम्) लक्ष्मी (दधातु) देवे। (अयम्) यही [परमेश्वर] (सुदुघाम्) अच्छे प्रकार पूर्ण करने हारी, (नित्यवत्साम्) नित्य निवास देने वाली (धेनुम्) वाणी और (वशम्) प्रभुत्व को (दिवः) हिंसा वा मद से (परः) परे [रहने वाले] (विपश्चितम्) बुद्धिमान् पुरुष के लिये (दुहाम्) परिपूर्ण करे ॥२१॥

भावार्थः—अहिंसक, निरभिमानी विद्वान् पुरुष परमेश्वर की वेदवाणी द्वारा उन्नति करके आनन्द भोगते हैं ॥२१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।
आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥२२॥

भाषार्थः—(**पिशङ्गरूपः**) अवयवों का रूप करने वाला, (**नभसः**) सूर्य वा मेघ वा आकाश का (**वयोधाः**) जीवन धारण करने वाला, (**ऐन्द्रः**) बड़े ऐश्वर्य वालों का स्वामी, (**शुष्मः**) बलवान् और (**विश्वरूपः**) सब जगत् का रूप करने वाला [परमेश्वर] (**नः**) हम को (**आ अगन्**) प्राप्त हुआ है। (**च**) और (**अस्मभ्यम्**) हम को (**आयुः**) आयु (**च**) और (**प्रजाम्**) प्रजा [सन्तान आदि] (**दधत्**) देता हुआ वह (**रायः**) धन की (**पोषैः**) वृद्धियों से (**नः**) हमें (**अभि**) सब ओर से (**सचताम्**) सींचे ॥२२॥

भावार्थः—परमेश्वर व्यष्टिरूप और समष्टिरूप जगत् और सब लोकों का धारण करने वाला है, उस सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी की उपासना से मनुष्य अपनी वृद्धि करें ॥२२॥

उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः ।
उप ऋषभस्य यद् रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥२३॥

भाषार्थः—(**उपपर्चन**) हे समीप सम्बन्ध वाले [परमेश्वर !] (**इह**) यहां पर (**अस्मिन्**) इस (**गोष्ठे**) वाणियों के स्थान में (**नः**) हमें (**उप, उप**) अत्यन्त समीप से (**पृञ्च**) मिल। (**इन्द्र**) हे परमैश्वर्य वाले परमात्मा ! (**ऋषभस्य तव**) तुझ श्रेष्ठ का (**यत्**) जो (**रेतः**) पराक्रम और (**वीर्यम्**) वीरत्व है, [उसके साथ] (**उप उप**) अति समीप से [मिल] ॥२३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर से घनिष्ठ सम्बन्ध करके अपना बल पराक्रम बढ़ावे ॥२३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ६ सू० २८ म० ८ ॥

एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु । मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥२४॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (**वः**) तुम को (**एतम्**) इस (**युवानम् प्रति**) बलवान् [परमेश्वर] के प्रति (**दध्मः**) हम रखते हैं, (**अत्र**) यहां पर (**तेन**) उस [परमेश्वर] के साथ (**क्रीडन्तीः**) मन बहलाती हुई [तुम प्रजाओ !] (**वशान् अनु**) अनेक प्रभुताओं के साथ साथ (**चरत**) विचरो। (**सुभागाः**) हे बड़े ऐश्वर्य वाले !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमें (जनुषा) जनता [मनुष्यों] से (मा हासिष्ट) मत पृथक् करो, (च) और (रायः) धन की (पोषैः) वृद्धियों से (नः) हमें (अभि) सब ओर से (सचध्वम्) सींचो ॥२४॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के उपदेश से परमात्मा की आज्ञा में चलते हैं, वे मनुष्यों के बीच उत्तम सन्तान आदि और धन प्राप्त करके अनेक प्रकार प्रभुता करते हैं ॥२४॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥५॥

१–३८ ॥ मन्त्रोक्तोऽजः पञ्चौदनो देवता । १, २, ५, ६, ८, ९, ११, १२, १३, १५, १६, त्रिष्टुप्, ३ आर्ची जगती, ४ जगती, ७ १०, भुरिक् त्रिष्टुप्, १४, १७, २७—३० अनुष्टुप्, १९ त्रिपदा बृहती, १८, ३७ त्रिपदा त्रिष्टुप्, २०—२२ भुरिग् बृहती, २३ पुर उष्णिक्, २४ स्वराड् ज्योतिर्जगती, २५ पङ्क्तिः, २६ भरिग् जगती ज्योतिष्मती, ३१ सप्तपदाष्टिः, ३२—३५ दशपदा प्रकृतिः, ३६ दशपदाऽऽकृतिः, ३८ साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मज्ञानेन सुखोपदेशः—ब्रह्मज्ञान से सुख का उपदेश ॥

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् । तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥१॥

भावार्थः—[हे मनुष्य !] (एतम्) इस [जीवात्मा] को (आ नय) ला और (आ) भले प्रकार (रभस्व) उत्सुक [उत्साही] बन, (प्रजानन्) भले प्रकार जानता हुआ वह (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोकम्) दर्शनीय लोक को (अपि) ही (गच्छतु) प्राप्त हो। (बहुधा) अनेक प्रकार से (महान्ति) बड़े बड़े (तमांसि) अन्धकारों [अज्ञानों] को (तीर्त्वा) तरके (अजः) अजन्मा वा गतिशील अज अर्थात् जीवात्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तृतीयम्) तीसरे [जीव और प्रकृति से भिन्न] (नाकम्) सुखस्वरूप परमात्मा को (आ क्रमताम्) यथावत् प्राप्त करे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थ करके अपने आत्मा को अज्ञानों से हटाकर सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर को पाकर आनन्द भोगे ॥१॥

इस सूक्त का मिलान अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त १४ से करो ॥

यह मन्त्र स्वामिदयानन्दकृतसंस्कारविधि वानप्रस्थप्रकरण में व्याख्यात है उन्होंने (नाकम्) का अर्थ "दुःख रहित वानप्रस्थ" किया है, जो ब्रह्मचर्य और गृहाश्रम से तीसरा है ॥

इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम् ।
ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः ॥२॥

भाषार्थः—[हे अज, आत्मा!] (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संगतिकरण व्यवहार में (यजमानाय) यजमान [संगतिकर्ता] को (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये (त्वा) तुझे (सूरिम्) विद्वान् (भागम् परि) सेवनीय [परमात्मा] की ओर (नयामि) मैं लाता हूं। (ये) जो [दोष] (नः) हमें (द्विषन्ति) सताते हैं (तान्) उनको (अनु रभस्व) निरन्तर पकड़ [वश में कर], (यजमानस्य) श्रेष्ठ व्यवहार वाले के (वीराः) वीर पुरुष (अनागसः) निर्दोष [होवें] ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा में श्रद्धा करके अपने दोषों को मिटाते हैं, वे अपनी और संसार की उन्नति करते हैं ॥२॥

प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥३॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर!] [इसके] (पदः) पद [अधिकार] से (दुश्चरितम्) उस दुष्ट कर्म को (प्र) अच्छे प्रकार (अव नेनिग्धि) शुद्ध करदे, (यत्) जो कुछ (चचार) उस [जीव] ने किया है, (प्रजानन्) बड़ा ज्ञानवान् वह (शुद्धैः) शुद्ध (शफैः) सूक्ष्म विचारों से (आ क्रमताम्) ऊपर चढ़ जावे। (तमांसि) अन्धकारों को (तीर्त्वा) पार करके, (बहुधा) अनेक प्रकार से (विपश्यन्) दूर दूर देखता हुआ (अजः) अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा (तृतीयम्) तीसरे [जीव और प्रकृति से अलग] (नाकम्) सुखस्वरूप परमात्मा को (आ क्रमताम्) यथावत् प्राप्त करे ॥३॥

भावार्थः—योगी जन ज्ञान द्वारा अविद्या आदि अन्धकारों से छूटकर शुद्ध मुक्त स्वरूप परमात्मा की शरण लेकर बड़ा दूरदर्शी होकर आनन्द भोगता है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्व१ सिना माभि मंस्थाः ।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥४॥

भाषार्थः—(विशस्तः) हे अविद्या नाशक ! तू (एताम्) इस [हृदयस्थ] (त्वचम्) ढकने वाली [अविद्या] को (यथापरु) पूर्णता के साथ (श्यामेन) ज्ञान से और (असिना) गति अर्थात् उपाय से (अनु छ्य) काट डाल, और (मा अभि मंस्थाः) मत अभिमान कर। (परुशः) पालन का विचार करने वाला तू (मा अभि द्रुहः) मत द्रोह कर, (एनम्) इस [जीव] को (कल्पय) समर्थ कर और (तृतीये) तीसरे [जीव और प्रकृति से अलग] (नाके) सुखस्वरूप परमेश्वर में (एनम्) इसको (अधि) अधिकार पूर्वक (वि श्रय) फैलकर आश्रय दे ॥४॥

भावार्थः—आत्मदर्शी विवेक पूर्वक मिथ्या ज्ञान का नाश करके निरभिमानी, सर्वोपकारी और पराक्रमी होकर परमात्मा का आश्रय लेकर आनन्दित होता है ॥४॥

ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम् ।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥५॥

भाषार्थः—[हे जीवात्मा !] (ऋचा) वेदवाणी से (कुम्भीम्) बटलोही को (अग्नौ अधि) अग्नि पर (श्रयामि) मैं रखता हूँ, तू (उदकम्) जल (आ सिञ्च) सींच दे, (एनम्) इस [अन्न जैसे जीवात्मा] को (अव धेहि) तू धर दे। (शमितारः) हे विचारवानो ! (अग्निना) अग्नि से [अन्न जैसे उसको] (पर्याधत्त) तुम ढक दो (शृतः) परिपक्व [दृढ़ बुद्धि वाला] वह [वहां] (गच्छतु) जावे (यत्र) जहां (सुकृताम्) सुकर्मियों का (लोकः) दर्शनीय स्थान है ॥५॥

भावार्थः जैसे चतुर सूपकार आग पर बटलोही धर जल डालकर अन्न को आग द्वारा पका कर उपकारी बनाता है, वैसे ही योगी जन आचार्य्य की शिक्षा से ब्रह्मचर्य आदि तप करके वेद द्वारा शान्त और परिपक्व बुद्धि वाला होकर धर्म्मात्माओं के बीच धर्म्मात्मा होता है ॥५॥

उत्क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम् । अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥६॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (च) और (इत्) भी (अतप्तः) असन्तप्त [विना थका हुआ] तू (परि) सब ओर से (तप्तात्) तपाये हुए (अतः) इस (चरोः) चरु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[बटलोही] से (तृतीयम्) तीसरे [जीव और प्रकृति से भिन्न] (नाकम् अधि) सुख-स्वरूप जगदीश्वर की ओर (उत् क्राम) ऊपर चढ़। (अग्निः) ज्ञानवान् (अग्नेः) ज्ञानवान् परमेश्वर से (अधि) अधिकारपूर्वक (सम् बभूविथ) पराक्रमी हुआ है, (एतम्) इस (ज्योतिष्मन्तम्) प्रकाशयुक्त (लोकम् अभि) लोक की ओर (जय) जय कर ॥६॥

भावार्थः—समर्थ विद्वान् मनुष्य परिपक्व बुद्धि से परिपक्व अन्न के समान उपकारी होता हुआ परमात्मा में ध्यान लगाकर विज्ञानमय प्रकाश को प्राप्त होता है ॥६॥

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥७॥

भाषार्थः—(अजः) अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा (अग्निः) अग्नि [समान शरीर में] है, (अजम्) जीवात्मा को (उ) ही [शरीर के भीतर] (ज्योतिः) ज्योति (आहुः) वे [विद्वान्] बताते हैं, और (अजम्) जीवात्मा को (जीवता) जीते हुए पुरुष करके (ब्रह्मणे) ब्रह्म [परमेश्वर] के लिये (देयम्) देने योग्य (आहुः) कहते हैं। (श्रद्दधानेन) श्रद्धा रखने वाले पुरुष करके (दत्तः) दिया हुआ (अजः) जीवात्मा (अस्मिन् लोके) इस लोक में (तमांसि) अन्धकारों को (दूरम्) दूर (अप हन्ति) फैंक देता है ॥७॥

भावार्थः—जीता हुआ अर्थात् पुरुषार्थी योगी विद्या की प्राप्ति से परमात्मा में श्रद्धा करता हुआ अविद्यारूपी अन्धकारों को मिटा कर देदीप्यमान होता है ॥७॥

पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥८॥

भाषार्थः—(पञ्चौदनः) पांच भूतों [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश] से सींचा हुआ [जीवात्मा] (पञ्चधा) पांच प्रकार [गन्ध, रस, रूप, स्पर्श शब्द से] (त्रीणि) तीन [शरीर इन्द्रिय और विषय] (ज्योतींषि) ज्योतियों [दर्शन साधनों] को (आक्रंस्यमानः) पाने की इच्छा करता हुआ (विक्रमताम्) विक्रम [पराक्रम] करे। (ईजानानाम्) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण दान] कर चुकने वाले (सुकृताम्) सुकर्मियों के (मध्यम्) मध्य में (प्र) आगे बढ़कर (इहि) पहुंच, और (तृतीये) तीसरे [जीव प्रकृति से भिन्न] (नाके) सुखस्वरूप परमात्मा में (अधि) अधिकारपूर्वक (वि श्रयस्व) फैलकर विश्राम ले ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विवेकी पुरुष पृथिवी आदि पञ्च भूतों और उनके गन्ध आदि गुणों द्वारा संसार के शरीर इन्द्रिय और विषय का ज्ञान प्राप्त करके धर्म्मात्माओं में महाधर्मात्मा होकर परमात्मा की शरण लेता है ॥८॥

अजा रो॑ह सु॒कृतां॒ यत्र॑ लो॒कः श॑र॒भो न च॒त्तोऽति॑ दु॒र्गाण्येषः॑ ।

पञ्चौ॑दनो ब्र॒ह्मणे॑ दी॒यमा॑नः॒ स दा॒तारं॑ तृ॒प्त्या॑ तर्पयाति ॥९॥

भाषार्थः—(**अज**) हे अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा ! [वहां] (**आ रोह**) चढ़कर जा (**यत्र**) जहां (**सुकृताम्**) सुकर्मियों का (**लोकः**) लोक [स्थान] है, और (**शरभः न**) शत्रुनाशक [शूर] के समान (**चत्तः**) प्रार्थना किया गया तू (**दुर्गाणि**) संकटों को (**अति**) पार करके (**एषः**) चल । (**सः**) वह (**ब्रह्मणे**) ब्रह्म [परमेश्वर] को (**दीयमानः**) दिया जाता हुआ (**पञ्चौदनः**) पांच भूतों [पृथिव्यादि - म० ८] से सींचा हुआ [जीवात्मा] (**दातारम्**) दाता [अपने आप] को (**तृप्त्या**) तृप्ति [सुख की परिपूर्णता] से (**तर्पयाति**) तृप्त करे ॥९॥

भावार्थः जो मनुष्य पुरुषार्थ करके विघ्नों को हटाकर परमेश्वर की शक्ति में लवलीन होता है, वह मोक्ष सुख से तृप्त रहता है ॥९॥

अ॒जस्त्रि॑ना॒के त्रि॑दि॒वे त्रि॑पृ॒ष्ठे नाक॑स्य पृ॒ष्ठे द॑दि॒वांसं॑ दधाति ।

पञ्चौ॑दनो ब्र॒ह्मणे॑ दी॒यमा॑नो वि॒श्वरू॑पा धे॒नुः का॑म॒दुघा॒स्येका॑ ॥१०॥

भाषार्थः—"(**ब्रह्मणे**) ब्रह्म [परमेश्वर] को (**दीयमानः**) दिया जाता हुआ, (**पञ्चौदनः**) पांच भूतों [पृथिव्यादि—म० ८] से सींचा हुआ (**अजः**) अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा (**त्रिनाके**) तीन [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक] सुखों वाली, (**त्रिदिवे**) तीन [आय, व्यय और वृद्धि] व्यवहारों वाली, (**त्रिपृष्ठे**) तीन [धर्म, अर्थ और काम] से सींची हुई (**नाकस्य पृष्ठे**) सुख की सिचाई [वृद्धि] में (**ददिवांसम्**) दे चुकने वाले [अपने आत्मा] को (**दधाति**) धरता है" यह (**एका**) एक (**विश्वरूपा**) संसार को रूप देने वाली (**कामदुघा**) कामनायें पूरी करने वाली (**धेनुः**) तृप्त करने वाली वेदवाणी (**असि=अस्ति**) है ॥१०॥

भावार्थः वेद पुकार पुकार कहता है कि परोपकारी आत्मदानी मनुष्य सब प्रकार परमेश्वर की आज्ञा पालन में मोक्ष सुख पाता है ॥१०॥

ए॒तद् वो॒ ज्योतिः॑ पितरस्तृ॒तीयं॒ पञ्चौ॑दनं ब्र॒ह्मणे॒ऽजं द॑दाति ।

अ॒जस्तमां॒स्यप॑ हन्ति दू॒रम॒स्मिँल्लो॒के श्र॒द्दधा॑नेन द॒त्तः ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (**पितरः**) हे पालन करने वाले विद्वानो ! (**वः**) तुम्हारे लिये (**एतद्**) यह (**तृतीयम्**) तीसरी (**ज्योतिः**) ज्योति [परमेश्वर] (**ब्रह्मणे**) वेद ज्ञान के लिये (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि - म० ८] से सींचे हुए (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील जीवात्मा का (**ददाति**) दान करती है। (**श्रद्दधानेन**) श्रद्धा रखने वाले पुरुष करके (**दत्तः**) दिया हुआ (**अजः**) जीवात्मा (**अस्मिन् लोके**) इस लोक में (**तमांसि**) अंधकारों को (**दूरम्**) दूर (**अप हन्ति**) फैंक देता है ॥११॥

भावार्थः परमात्मा ने विद्वानों को वेद द्वारा उपकार के लिये उत्पन्न किया है। इस से वे ईश्वर की आज्ञा का पालन करके अविद्या का नाश करें ॥११॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऊपर म० ७। में आ चुका है ॥

ई॒जा॒नानां॑ सु॒कृतां॑ लो॒कमीप्स॑न् पञ्चौ॑दनं ब्र॒ह्मणे॒ऽजं द॑दाति । स व्य॑1प्तिम॒भि लो॒कं ज॑यै॒तं शि॒वो॒3॒॑स्मभ्यं॒ प्रति॑गृहीतो अस्तु ॥१२॥

भाषार्थः—(**ईजानानाम्**) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण, दान] कर चुकने वाले (**सुकृताम्**) सुकर्मियों के (**लोकम्**) लोक को (**ईप्सन्**) चाहता हुआ पुरुष (**ब्रह्मणे**) ब्रह्म [परमेश्वर] के लिये (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] से सींचे हुए (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील जीवात्मा का (**ददाति**) दान करता है। [इसलिये] (**सः**) वह तू (**व्याप्तिम् अभि**) [सुख की] पूर्ण प्राप्ति के लिये (**एतम् लोकम्**) इस लोक को (**जय**) जीत, [जिस से, परमेश्वर करके] (**प्रतिगृहीतः**) स्वीकार किया हुआ [जीवात्मा] (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**शिवः**) मङ्गलकारी (**अस्तु**) होवे ॥१२॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्रज आप्त विद्वानों के समान परमेश्वर की आज्ञा पालन में आत्मसमर्पण करके पुरुषार्थ करता है, वह सब के लिये मङ्गलकारी होता है ॥१२॥

अ॒जो ह्य॑1॒ग्नेरज॑निष्ट॒ शोका॒द् विप्रो॒ विप्र॑स्य॒ सह॑सो विप॒श्चित् । इ॒ष्टं पू॒र्तम॒भिपू॑र्तं॒ वष॑ट्कृत॒ तद् दे॒वा ऋ॑तु॒शः क॑ल्पयन्तु ॥१३॥

भाषार्थः—(**अजः**) अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा (**शोकाद्**) दीप्यमान (**अग्नेः**) सर्व व्यापक परमेश्वर से (**हि**) ही (**अजनिष्ट**) प्रकट हुआ है, [वह] (**विप्रः**) बुद्धिमान् [जीव] (**विप्रस्य**) बुद्धिमान् [परमेश्वर] के (**सहसः**) बल का (**विपश्चित्**) भले प्रकार विचारने वाला है। (**तत्**) इस लिये (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अभिपूर्तम्**) सम्पूर्ण (**वषट्कृतम्**) भक्ति से सिद्ध किये हुए (**इष्टम्**) यज्ञ, वेदा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्ययन आदि और (पूर्तम्) अन्नदानादि पुण्यकर्म को (ऋतुशः) प्रत्येक ऋतु में (कल्पयन्तु) समर्थ करें ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा को जानकर अपने सब उत्तम कर्मों को सब काल में सिद्ध करें ॥१३॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद आ चुका है—अ० ४। १४। १॥

अमोतं वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम् ।
तथा लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ॥१४॥

भाषार्थः—वह (अमोतम्) ज्ञान के साथ बुना हुआ (वासः) वस्त्र और (हिरण्यम्) सुवर्ण (अपि) भी (दक्षिणाम्) दक्षिणा (दद्यात्) देवे। (तथा) उससे वह [उन] (लोकान्) लोकों को (सम्) पूरा पूरा (आप्नोति) पाता है (ये) जो (दिव्याः) अन्तरिक्ष के (च) और (ये) जो (पार्थिवाः) पृथिवी के हैं ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य सुपात्रों का यथावत् उत्तम पदार्थों से सत्कार करके संसार में प्रतिष्ठा बढ़ावें ॥१४॥

एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः ।
स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठेधि सप्तरश्मौ ॥१५॥

भाषार्थः—(अज) हे जीवात्मा ! (त्वा) तुझको (एताः) ये सब (सोम्याः) अमृतमय, (देवीः) उत्तम गुण वाली, (घृतपृष्ठाः) प्रकाश [वा सार तत्त्व] से सींचने वाली, (मधुश्चुतः) मधुरपन बरसाने वाली (धाराः) धारण शक्तियां (उप) आदर से (यन्तु) प्राप्त हों। (सप्तरश्मौ) व्याप्त किरणों वाले, यद्वा, सात प्रकार की [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र] किरणों वाले सूर्य [पूर्ण प्रकाश] में (नाकस्य) सुख के (पृष्ठे) पीठ [आश्रय] में (अधि) अधिकार पूर्वक (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) अन्तरिक्ष लोक को (स्तभान) सहारा दे ॥१५॥

भावार्थः—उद्योगी पुरुष अनेक प्रकार से धारण शक्तियां प्राप्त करके सूर्य के समान ज्ञान में प्रकाशित होकर आनन्दपूर्वक संसार भर का उपकार करते हैं ॥१५॥

निरुक्त ४। २६ में कहा है—"सात फैली हुई संख्या है, सात सूर्य की किरणें हैं", और निरुक्त ४। २७। में वर्णन है—"सप्त नामा सूर्य है सात किरणें इसकी ओर रसों को झुकाती हैं, अथवा सात ऋषि [इन्द्रियां] इसकी स्तुति करते हैं॥"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजो३ स्यजं स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन् ।
तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् ॥१६॥

भाषार्थः—(अज) हे अजन्मे जीवात्मा ! (अजः असि) तू गतिशील है, (स्वर्गः असि) तू सुख प्राप्त करने वाला है, (त्वया) तेरे साथ (अङ्गिरसः) बुद्धिमानों ने (लोकम्) देखने योग्य परमात्मा को (प्र) अच्छे प्रकार (अजानन्) जाना है। (तम्) उस (पुण्यम्) पवित्र (लोकम्) देखने योग्य परमात्मा को (प्र ज्ञेषम्) मैं अच्छे प्रकार जानूं ॥१६॥

भावार्थः—ज्ञानी पुरुषों ने जीवात्मा को ज्ञानी बनाकर परमात्मा को पाया है, इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य ज्ञानवान् होकर सर्वव्यापक परमेश्वर के दर्शन से आनन्दित होवे ॥१६॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद—यजु० २० । २५ । में है ॥

येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥१७॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वन् ! (येन) जिस (येन) नियम से (सहस्रम्) बलवान् पुरुषों को (सर्ववेदसम्) सब प्रकार के ज्ञानों वा धनों से युक्त [यज्ञ] में (वहसि) तू ले जाता है। (तेन) उसी [नियम] से (नः) हमें (इमम्) इस (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य यज्ञ में (देवेषु) विद्वानों के बीच (स्वः) सुख (गन्तवे) पाने के लिये (वह) ले चल ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के बीच सुख प्राप्त करने के लिये सदा प्रयत्न करते रहें ॥१७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजु० १५ । ५५ है तथा स्वामिदयानन्दकृत संस्कारविधि संन्यासाश्रम प्रकरण में भी व्याख्यात है ॥

अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम ॥१८॥

भाषार्थः—(पक्वः) पक्का [दृढ़ स्वभाव], (पञ्चौदनः) पांच भूतों [पृथिवी आदि] से सींचा हुआ (निर्ऋतिम्) महाविपत्ति को (बाधमानः) हटाता हुआ (अजः) अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा (स्वर्गे) सुख प्राप्त कराने वाले (लोके) लोक में [आत्मा को] (दधाति) रखता है। (तेन) उसी [उपाय]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (सूर्यवतः) सूर्य [प्रकाश] वाले (लोकान्) लोकों को (जयेम) हम जीतें ॥१८॥

भावार्थः—जिस प्रकार निश्चल बुद्धिवाला मनुष्य महाविघ्नों को हटाकर सुख भोगता है, वैसे ही सब मनुष्य विद्या द्वारा पुरुषार्थ करके सुखी होवें ॥१८॥

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥१९॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (यम्) नियम को (ब्राह्मणे) ब्रह्म ज्ञानी में (च) और (अजस्य) [प्रत्येक] जीवात्मा के (ओदनानाम्) सेचन धर्म्मों की (याः) जिन (विप्रुषः) विविध पूर्तियों को (विक्षु) प्रजाओं के बीच (निदधे) उस [परमेश्वर] ने रक्खा है। (अग्ने) हे विद्वान् पुरुष! (नः) हमारे (तत् सर्वम्) उस सब को (सुकृतस्य लोके) सुकर्मी के लोक में (पथीनाम्) मार्गों के (संगमने) संगम पर (जानीतात्) तू जान ॥१९॥

भावार्थः ब्रह्मज्ञानी अपने में और सब सृष्टि में वृद्धियों के ईश्वर नियमों को विविध प्रकार विचार कर पुण्यात्माओं के मार्ग पर चलकर सुखी होवे ॥१९॥

अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद्द्यौः पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥२०॥

भाषार्थः—(अजः) अजन्मा वा गतिशील परमात्मा (वै) ही (अग्रे) पहिले ही पहिले (इदम्) इस [जगत्] में (वि अक्रमत) विचरता था, (तस्य) उसकी (उरः) छाती (इयम्) यह [भूमि] और (पृष्ठम्) पीठ (द्यौः) आकाश (अभवत्) हुआ। (मध्यम्) कटिभाग (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष, (दिशः) दिशायें (पार्श्वे) दोनों कांखें [कक्षायें] और (समुद्रौ) दोनों [अन्तरिक्ष और भूमि के] समुद्र (कुक्षी) दोनों कोखें [हुईं] ॥२०॥

भावार्थः—अनादि, अनन्त, परमेश्वर सृष्टि का कर्ता, सर्व नियन्ता और सर्वव्यापक है ॥२०॥

सत्यं च ऋतं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥२१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**सत्यम्**) सत्य [यथार्थस्वरूप वा अस्तित्व] (**च च**) और (**ऋतम्**) ऋत [वेद आदि यथार्थ शास्त्र] (**चक्षुषी**) [उसकी] दोनों आंखें, (**विश्वम्**) सब (**सत्यम्**) सत्य और (**श्रद्धा**) श्रद्धा (**प्राणः**) उसका प्राण, और (**विराट्**) विविध प्रकाशमान प्रकृति (**शिरः**) [उसका] शिर [हुआ]। (**यत्**) क्योंकि (**एषः वै**) यही (**अपरिमितः**) परिमाण रहित, (**यज्ञः**) पूजनीय (**अजः**) अजन्मा वा गतिशील परमात्मा (**पञ्चौदनः**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] का सींचने वाला है ॥२१॥

भावार्थः—सत्यस्वरूप, अनन्त, सब सृष्टि का स्वामी परमेश्वर सब का उपास्य देव है ॥२१॥

अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्द्धे ।
यो३ऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति । २२॥

भाषार्थः—वह [पुरुष] (**अपरिमितम्**) परिमाण रहित (**यज्ञम्**) पूजनीय परमेश्वर को (**एव**) ही (**आप्नोति**) पाता है, और (**अपरिमितम्**) तोल माप रहित (**लोकम्**) दर्शनीय परमात्मा को (**अव रुन्द्धे**) ध्यान में रखता है, (**यः**) जो पुरुष (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (**दक्षिणाज्योतिषम्**) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (**ददाति**) समर्पित करता है ॥२२॥

भावार्थः आत्मसमर्पक पुरुष पूर्ण भक्ति से उस अनन्त जगदीश्वर को पाता है ॥२२॥

नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् ।
सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् ॥२३॥

भाषार्थः—वह [रोग] (**अस्य**) इस [प्राणी] की (**अस्थीनि**) हड्डियों को (**न भिन्द्यात्**) नहीं तोड़ सकता और (**न**) न (**मज्ज्ञः**) मज्जाओं [हाड़ के भीतरी रसों] को (**निर्धयेत्**) निरन्तर पी सकता है। [जो] (**एनम्**) इस [ईश्वर] को (**समादाय**) ठीक ठीक ग्रहण करके (**सर्वम्**) सब प्रकार से (**इदमिदम्**) इस इस [प्रत्येक वस्तु] में (**प्रवेशयेत्**) प्रवेश करें ॥२३॥

भावार्थः—वह मनुष्य सब विपत्तियों से निर्भय रहता है जो परमात्मा को प्रत्येक वस्तु में साक्षात् करता है ॥२३॥

इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति । इषं मह ऊर्जमस्मै
दुहे यो३ऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**अस्य**) इस [परमेश्वर] का (**रूपम्**) रूप [सौन्दर्य] (**इदमिदम्**) इस इस [प्रत्येक वस्तु] में (**एव**) ही (**भवति**) पहुंचता है, [तभी वह सर्वव्यापक रूप] (**तेन**) उस [परमात्मा] के साथ (**एनम्**) इस जीवात्मा को (**सम् गमयति**) मिला देता है। वह [पुरुष] (**इषम्**) अन्न, (**महः**) बड़ाई (**ऊर्जम्**) और पराक्रम (**अस्मै**) इस के लिये [अपने लिये] (**दुहे**) दोहता है (**यः**) जो पुरुष (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (**दक्षिणाज्योतिषम्**) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (**ददाति**) समर्पित करता है ॥२४॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्ण भक्ति से परमात्मा के नियमों पर चलकर सब प्रकार के आनन्द और पराक्रम को प्राप्त होता है ॥२४॥

पञ्च॑ रु॒क्मा पञ्च॒ नवा॑नि॒ वस्त्रा॒ पञ्चा॑स्मै धे॒नवः॑ काम॒दुघा॑ भवन्ति ।
यो॒३॒॑ऽजं॒ पञ्चौ॑दनं॒ दक्षि॑णाज्योतिषं॒ ददा॑ति ॥२५॥

भाषार्थः—(**पञ्च**) विस्तृत (**रुक्मा**) रोचक वस्तुएं [सुवर्ण आदि,], (**पञ्च**) विस्तृत (**नवानि**) नवीन (**वस्त्रा**) वस्त्र, और (**पञ्च**) विस्तृत (**धेनवः**) तृप्त करने वाली वेद वाचायें [विद्यायें] (**अस्मै**) उस [पुरुष] के लिये (**कामदुघाः**) कामनायें पूरी करने वाली (**भवन्ति**) होती हैं। (**यः**) जो पुरुष (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (**दक्षिणाज्योतिषम्**) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (**ददाति**) समर्पित करता है ॥२५॥

भावार्थः—आत्मत्यागी मनुष्य परमेश्वर की भक्ति से सब प्रकार के सुख प्राप्त करता है ॥२५॥

पञ्च॑ रु॒क्मा ज्योति॑रस्मै भवन्ति॒ वर्म॒ वासां॑सि त॒न्वे॑ भवन्ति । स्व॒र्गं
लो॒कम॑श्नुते॒ यो॒३॒॑ऽजं पञ्चौ॑दनं॒ दक्षि॑णाज्योतिषं॒ ददा॑ति ॥२६॥

भाषार्थः—(**पञ्च**) विस्तृत (**रुक्मा**) रोचक वा चमकीले वस्तु [सुवर्ण आदि] (**अस्मै**) उस [पुरुष] के लिये (**ज्योतिः**) ज्योति (**भवन्ति**) होते हैं, (**वासांसि**) वस्त्र [उसके] (**तन्वे**) शरीर के लिये (**वर्म**) कवच (**भवन्ति**) होते हैं। वह (**स्वर्गम्**) स्वर्ग [सुख देने वाला] (**लोकम्**) लोक (**अश्नुते**) पाता है, (**यः**) जो पुरुष (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (**दक्षिणाज्योतिषम्**) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (**ददाति**) समर्पित करता है ॥२६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा में विश्वास रखता है, वह ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त करके स्वस्थ, दृढ़ और धनी होकर आनन्दित रहता है ॥२६॥

या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम् ।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥२७॥

भावार्थः—(या) जो स्त्री (पूर्वम्) पहिले (पतिम्) पति को (वित्त्वा) पाकर (अथ) उसके पीछे [मृत्यु आदि विपत्ति काल में] (अन्यम्) दूसरे (अपरम्) पिछले [पति] को (विन्दते) पाती है [उसी प्रकार जो पति मृत्यु आदि विपत्ति में दूसरी स्त्री को पाता है] । (तौ) वे दोनों (च) निश्चय करके (पञ्चौदनम्) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले (अजम्) अजन्मे वा गतिशील परमेश्वर को [अपने आत्मा में] (ददातः) समर्पित करें, (न वि योषतः) वे दोनों अलग न होवें ॥२७॥

भावार्थः—जैसे विपत्ति काल में स्त्री दूसरे पति को और पुरुष दूसरी स्त्री को प्राप्त होकर सुख पाते हैं, वैसे ही मनुष्य परमात्मा को पाकर दुःखों से छूटकर सुखी होते हैं ॥२७॥

समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
यो३ऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२८॥

भावार्थः—(अपरः) दूसरा (पतिः) पति (पुनर्भुवा) दूसरी वार विवाहित [वा नियोजित] स्त्री के साथ (समानलोकः) एक स्थान वाला (भवति) होता है । (यः) जो पुरुष (पञ्चौदनम्) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (दक्षिणाज्योतिषम्) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (अजम्) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (ददाति) समर्पित करता है ॥२८॥

भावार्थः—जैसे आत्मत्यागी परमेश्वरभक्त अपत्नीक पुरुष और धर्मात्मा विधवा स्त्री यथावत् विधि के साथ विपत्ति से छूटकर कर्तव्य पालन करते हैं, वैसे ही ब्रह्मज्ञानी पुरुष अविद्या से छूट कर परमात्मा से मिलकर आनन्द पाता है ॥२८॥

अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् ।
वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥२९॥

भावार्थः—(अनुपूर्ववत्साम्) यथाक्रम [एक के पीछे एक] बच्चे वाली (धेनुम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौ, (अनड्वाहम्) अन्न पहुँचाने वाला बैल, (उपबर्हणम्) वालिश [सिराहने का वस्त्र आदि], (वासः) वस्त्र, (हिरण्यम्) सुवर्ण (दत्त्वा) दान करके (ते) वे [धर्म्मात्मा लोग] (उत्तमाम्, उत्तम (दिवम्) गति (यन्ति) पाते हैं ॥२९॥

भावार्थः- धर्म्मात्मा मनुष्य सुपात्रों को विविध प्रकार दान करके उनकी उन्नति से अपनी उन्नति करते हैं ॥२९॥

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥३०॥

भाषार्थः—(आत्मानम्) आत्मबल, (पितरम्) पिता, (पुत्रम्) पुत्र, (पौत्रम्) पौत्र, (पितामहम्) दादा, (जायाम्) पत्नी, (जनित्रीम्) उत्पन्न करने वाली (मातरम्) माता को और (ये) जो (प्रियाः) प्रिय हैं, (तान्) उन सब को (उप ह्वये) मैं आदर से बुलाता हूं ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्य सब आत्मसम्बन्धियों के साथ यथावत् उपकार करके सदा सुखी रहें ॥३०॥

यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद ।
एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना
यो ३'जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३१॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (वै) निश्चय करके (नैदाघम्) अतिताप वाले (नाम) प्रसिद्ध (ऋतुम्) ऋतु को (वेद) जानता है। (एषः वै, वही (नैदाघः) अतिताप वाले (नाम) प्रसिद्ध (ऋतुः) ऋतु [के समान] (यत्) पूजनीय ब्रह्म (अजः) अजन्मा (पञ्चौदनः) पांच भूतों [पृथिवी आदि] का सींचने वाला [परमेश्वर] है। वह [मनुष्य अपने] (एव) निश्चय करके (अप्रियस्य) अप्रिय (भ्रातृव्यस्य) शत्रु की (श्रियम्) श्री को (निर्दहति) जला देता है, और (आत्मना) अपने आत्मबल के साथ (भवति) रहता है। (यः) जो [पुरुष] (पञ्चौदनम्) पांच भूतों [पृथिवी आदि) के सींचने वाले (दक्षिणाज्योतिषम्) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (अजम्) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (ददाति) समर्पित करता है ॥३१॥

भावार्थः—सूर्य और पृथिवी का घुमाव उष्ण, शीत आदि ऋतुओं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कारण है, उन सूर्य आदि लोकों का आदि कारण परमेश्वर है, ऐसा साक्षात् करने वाला पुरुष निर्विघ्न होकर आनन्द भोगता है ॥३१॥

यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद ।
कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना यो ३ जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३२॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (वै) निश्चय करके (कुर्वन्तम्) बनाने वाले (नाम) प्रसिद्ध (ऋतुम्) ऋतु को (वेद) जानता है। और [जो] (अप्रियस्य) अप्रिय (भ्रातृव्यस्य) शत्रु की (कुर्वतीं कुर्वतीम्) अच्छे प्रकार बनाने वाली (श्रियम्) श्री को (एव) निश्चय करके (आ दत्ते) ले लेता है। (एषः वै) वही (कुर्वन्) बनाने वाला (नाम) प्रसिद्ध···म० ३१ ॥३२॥

भावार्थः—वर्षा आदि ऋतु अन्न आदि उत्पन्न करके बुभुक्षा आदि कष्ट मिटाते हैं, उन ऋतुओं का आदि कारण परमेश्वर है ऐसा जानने वाला पुरुष निर्विघ्न रहता है ॥३२॥

यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद ।
संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै संयन्नामऋतुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना यो ३ जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३३॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (वै) निश्चय करके (संयन्तम्) [अन्न आदि] मिलाने वाले (नाम) प्रसिद्ध (ऋतुम्) ऋतु को (वेद) जानता है और [जो] (अप्रियस्य) अप्रिय (भ्रातृव्यस्य) शत्रु की (संयतीं संयतीम्) अत्यन्त एकत्र करने वाली (श्रियम्) लक्ष्मी को (एव) निश्चय करके (आ दत्ते) ले लेता है। (एषः वै) वही परमेश्वर (संयन्) एकत्र करने वाला (नाम) प्रसिद्ध··· म० ३१ ॥३३॥

भावार्थः—अन्न आदि वस्तुओं के पकाने वाले ऋतुओं का नियन्ता परमेश्वर है, शेष पूर्ववत् ॥३३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेदं । पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृंव्यस्य श्रियमा दंत्ते । एष वै पिन्वन्नाम पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृंव्यस्य श्रियं दहति भवंत्यात्मनां यो ३'जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददांति ॥३४॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (वै) निश्चय करके (पिन्वन्तम्) सींचने वाले (नाम) प्रसिद्ध (ऋतुम्) ऋतु को (वेद) जानता है और [जो] (अप्रियस्य) अप्रिय (भ्रातृव्यस्य) शत्रु की (पिन्वतीं पिन्वतीम्) अत्यन्त सींचने वाली (श्रियम्) श्री को (एव) अवश्य (आ दत्ते) ले लेता है। (एषः वै) वही [परमेश्वर] (पिन्वन्) सींचने वाला (नाम) प्रसिद्ध...म०३१ ॥३४॥

भावार्थः—अन्न आदि पुष्ट करने का नियम जानने वाला परमेश्वर है—अन्यत् पूर्ववत् ॥३४॥

यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेदं । उद्यतीमुंद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृंव्यस्य श्रियमा दंत्ते । एष वा उद्यन्नाम पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृंव्यस्य श्रियं दहति भवंत्यात्मनां यो ३'जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददांति ॥३५॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (वै) निश्चय करके (उद्यन्तम्) उदय होते हुए (नाम) प्रसिद्ध (ऋतुम्) ऋतु [वसन्त] को (वेद) जानता है। और [जो] (अप्रियस्य) अप्रिय (भ्रातृव्यस्य) शत्रु की (उद्यतीमुद्यतीम्) अत्यन्त उदय होती हुई (श्रियम्) श्री को (एव) अवश्य (आ दत्ते) लेलेता है। (एषः वै) वही परमेश्वर (उद्यन्) उदय होता हुआ (नाम) प्रसिद्ध.. स० ३१ ॥३५॥

भावार्थः—वसन्त आदि ऋतुओं का नियामक परमेश्वर है..... इत्यादि ॥३५॥

यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेदं । अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृंव्यस्य श्रियमा दंत्ते। एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः। निरेवाप्रियस्य भ्रातृंव्यस्य श्रियं दहति भवंत्यात्मनां । यो३'जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददांति ॥३६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (वै) निश्चय करके (अभिभुवम्) [दुःखों के] हराने वाले (नाम) प्रसिद्ध (ऋतुम्) ऋतु को (वेद) जानता है और [जो] (अप्रियस्य) अप्रिय (भ्रातृव्यस्य) शत्रु की (अभिभवन्तीमभिभवन्तीम्) अत्यन्त हरा देने वाली (श्रियम्) श्री को (एव) निश्चय करके (आ दत्ते) लेलेता है। (एषः वै) वही (अभि भूः) [शत्रुओं का] हरा देने वाला (नाम) प्रसिद्ध (ऋतुः) ऋतु [के समान] (यत्) पूजनीय ब्रह्म (अजः) अजन्मा (पञ्चौदनः) पञ्चभूतों [पृथिवी आदि] का सींचने वाला [परमेश्वर] है। वह [मनुष्य अपने] (एव) निश्चय करके (अप्रियस्य) अप्रिय (भ्रातृव्यस्य) शत्रु की (श्रियम्) श्री को (निर् दहति) जला देता है और (आत्मना) अपने आत्मबल के साथ (भवति) रहता है। (यः) जो [पुरुष] (पञ्चौदनम्) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (दक्षिणाज्योतिषम्) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (अजम्) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (ददाति) समर्पित करता है ॥३६॥

भावार्थः—जो मनुष्य दुःखहर्ता परमेश्वर की उपासना करते हैं वे दुःखों से छूटकर आनन्दयुक्त होते हैं ॥३६॥

अजं च पचत पञ्च चौदनान् । सर्वा दिशः संमनसः
सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ॥३७॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो!] (च) निश्चय करके (अजम्) अजन्मे वा गतिशील जीवात्मा को (च) और (पञ्च) पांच [भूतों से युक्त] (ओदनान्) सेचक पदार्थों को (पचत) पक्का [दृढ़] करो। (सान्तर्देशाः) अन्तर्देशों के सहित (सध्रीचीः) साथ साथ रहने वाली, (सर्वाः) सब (दिशः) दिशायें (संमनसः) एक मन होके (ते) तेरे लिये, (एतम्) इस [जीवात्मा] को (प्रति गृह्णन्तु) स्वीकार करें ॥३७॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर में परिपक्वबुद्धि होकर पदार्थों से उपकार लेते हैं, उनके लिये संसार के सब पदार्थ सुखदायी होते हैं ॥३७॥

इस मन्त्र का दूसरा पाद आ चुका है—अ० ६ । ८८ । ३ ॥

तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ॥३८॥

भाषार्थः—(ताः) वे सब [दिशायें] (ते) तेरे लिये, (तुभ्यम्) तेरे लिये (तव) तेरे (एतम्) इस [जीवात्मा] की (रक्षन्तु) रक्षा करें, (ताभ्यः) उन सब से (इदम्) इस (आज्यम्) प्रकाश करने योग्य (हविः) ग्राह्यकर्म को (जुहोमि) मैं ग्रहण करता हूं ॥३८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य सब पदार्थों से गुण ग्रहण करके संसार में विख्यात करें ॥३८॥

सूक्तम् ६ (पर्यायः १) ॥

१—१७ ॥ अतिथिरतिथिपतिश्च देवते ॥ १, २ गायत्री, ३, ७, ६ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्, ४ आर्च्यनुष्टुप्, ५ आसुरी गायत्री, ६ साम्नी जगती, ८ याजुषी त्रिष्टुप्, १० साम्नी भुरिग् बृहती, ११, १४, १५, १६, साम्न्यनुष्टुप्, १२ साम्नी पङ्क्तिः, १३, साम्नी निचृत् पङ्क्तिः, १७ आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः ॥

संन्यासिगृहस्थयोर्धर्मोपदेशः— संन्यासी और गृहस्थ के धर्म का उपदेश ॥

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ॥१॥

भाषार्थः—(यः) संयमी पुरुष [अथवा जो कोई विद्वान् हो वह] (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष करके (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] को (विद्यात्) जाने (यस्य) जिस [ब्रह्म] के (परूंषि) पालन सामर्थ्य (संभाराः) विविध संग्रह और (यस्य) जिसका (अनूक्यम्) अनुकूल वाक्य (ऋचः) ऋचायें [स्तुति योग्य वेद मन्त्र] हैं ॥१॥

भावार्थः— विद्वान् संयमी पुरुष सर्वपोषक, सर्वोपदेशक परमात्मा को साक्षात् कर सकते हैं ॥१॥

मन्त्र १—४ और ६ स्वामिदयानन्दकृत संस्कारविधि संन्यासाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥२॥

भाषार्थः—(सामानि) दुःखनाशक [मोक्ष विज्ञान] (यस्य) जिस [ब्रह्म] के (लोमानि) रोम [सदृश हैं], (यजुः) विद्वानों का सत्कार, विद्यादान और पदार्थों का संगतिकरण [जिसके] (हृदयम्) हृदय [के समान] और (परिस्तरणम्) सब ओर फैलाव (इत्) ही (हविः) ग्राह्यकर्म (उच्यते) कहा जाता है ॥२॥

भावार्थः— विद्वान् ही कर्म, उपासना और ज्ञान से परमेश्वर के उपकारों को साक्षात् करके आनन्दित होते हैं ॥२॥

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥३॥

भाषार्थः—(यद् वै) जब ही (अतिथिपतिः) अतिथियों का पालन करने हारा (अतिथीन्) अतिथियों [नित्य मिलने योग्य विद्वानों] को (प्रति-पश्यति) प्रतीक्षा से देखता है, वह (देवयजनम्) उत्तम गुणों का संगति करण (प्र ईक्षते) अच्छे प्रकार देखता है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः गृहस्थ लोग प्रीति से महामान्य विद्वानों का सत्कार करके उत्तम गुण प्राप्त करते हैं ।।३।।

यद॒भि व॒दति॑ दी॒क्षामु॑पै॒ति य॑दु॒द॒कं याच॑त्य॒पः प्र ण॑यति ।।४।।

भाषार्थः—(यत्) जब वह [गृहस्थ] (अभिवदति) अभिवादन करता है, वह (दीक्षाम्) दीक्षा [व्रत का उपदेश] (उप एति) आदरपूर्वक पाता है, (यत्) जब (उदकम्) जल को वह [गृहस्थ] (याचति) विनय करके देता है, वह [गृहस्थ] (अपः) जल (प्र णयति) [प्रणीता पात्र में] सन्मुख लाता है ।।४।।

भावार्थः—गृहस्थ लोग आदरपूर्वक अभिवादन आदि करके और पाद्य, अर्घ्य और पानीय जल आदि समर्पण करके अतिथियों से उत्तम शिक्षा ग्रहण करें ।।४।।

या ए॒व य॒ज्ञ आपः॑ प्रणी॒यन्ते॒ ता ए॒व ताः ।।५।।

भाषार्थः—(याः) जो (एव) ही (आपः) जल (यज्ञे) यज्ञ में (प्रणीयन्ते) आदर से लाये जाते हैं, (ताः) वे (एव) ही (ताः) वे [अतिथि] के लिये उपकारी होते हैं] ।।५।।

भावार्थः—संन्यासी लोग उपकारदृष्टि से ही जलपान आदि करते हैं ।।५।।

यत् त॒र्पण॑मा॒हर॑न्ति॒ य ए॒वाग्नी॑षो॒मीयः॑ प॒शुर्ब॒ध्यते॒ स ए॒व सः ।।६।।

भाषार्थः—(यत्) जब वे [घर के लोग] (तर्पणम्) तृप्ति कारक द्रव्य (आहरन्ति) लाते हैं, [तब] (यः) यो (एव) ही (अग्नीषोमीयः) ज्ञान और ऐश्वर्य के लिये हितकारी (पशुः) समदर्शी [अतिथि] (बध्यते) [प्रेम डोरी से] बांधा जाता है (सः एव सः) वही वह [अतिथि होता है] ।।६।।

भावार्थः—अतिथि संन्यासी गृहस्थ की सेवा इस प्रयोजन से स्वीकार करते हैं कि वे विद्वान् प्रेमपूर्वक संसार के लिये ज्ञान और ऐश्वर्य बढ़ावें ।।६।।

यदा॑वस॒थान् क॒ल्पय॑न्ति सदोहविर्धा॒नान्ये॒व तत् क॑ल्पयन्ति ।।७।।

भाषार्थः (यत्) जब वे [गृहस्थ लोग] (आवसथान्) निवास स्थानों को (कल्पयन्ति) बनाते हैं, (तत्) तब वे [अतिथि लोग] (सदोहविर्धानानि) यज्ञशाला और हवि [लेने देने योग्य कर्मों] के स्थानों को (एव) ही (कल्पयन्ति) विचारते हैं ।।७।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः गृहस्थों के बनाये स्थानों में संन्यासी महात्मा विद्यालय, अद्भुतालय, बिजुली, तार आदि स्थानों का विचार करते हैं ॥७॥

यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥८॥

भाषार्थः – (यत्) जो कुछ वे [गृहस्थ] (उपस्तृणन्ति) बिछोना करते हैं, (तत्) वह [संन्यासी के लिये[(बर्हिः) कुशासन (एव) ही होता है ॥८॥

भावार्थः - संन्यासी लोग अल्पमूल्य वस्तुओं में निर्वाह करके यज्ञ-सामग्री का ध्यान रखते हैं ॥८॥

यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे ॥९॥

भाषार्थः—(यत्) जैसे वे [गृहस्थ लोग] (उपरिशयनम्) ऊंचे शयन स्थान को (आहरन्ति) यथावत् प्राप्त होते हैं, (तेन) वैसे ही वह [संन्यासी] (स्वर्गम्) सुख देने वाले (लोकम्) दर्शनीय परमेश्वर को (एव) निश्चय करके (अव रुन्द्धे) प्राप्त होता है ॥९॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग तो शय्या आदि में विश्राम पाते हैं, किन्तु संन्यासी एक परमात्मा के आश्रय में सुखी रहता है ॥९॥

यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥१०॥

भाषार्थः—(यत्) जब (कशिपूपबर्हणम्) बिछौना और बालिश को वे [गृहस्थ लोग] (आहरन्ति) प्राप्त होते हैं, [संन्यासी के लिये] (ते) वे [प्रसिद्ध ईश्वर की] (एव) ही (परिधयः) सब ओर से धारण शक्तियां हैं ॥१०॥

भावार्थः—संन्यासी शारीरिक सुख की उपेक्षा करके परमेश्वर का अवलम्बन करता है ॥१०॥

यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥११॥

भाषार्थः—(यत्) जब (आञ्जनाभ्यञ्जनम्) चन्दन और तेल आदि के मर्दन को (आहरन्ति) वे [गृहस्थ लोग] प्राप्त होते हैं, (तत्) सब [संन्यासी के लिये] (आज्यम्) [संसार का] व्यक्त करने वाला ब्रह्म (एव) ही है ॥११॥

भावार्थः - संन्यासी पुरुष परमात्मा के चिन्तन में अपनी शरीर शोभा समझता है ॥११॥

यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ ॥१२॥

भाषार्थः—(यत्) जब वे [गृहस्थ लोग] (पुरा) पहिले (परिवेषात्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परोसकर (खादम्) भोजन को (आहरन्ति) खाते हैं। [तब संन्यासी के लिये] (तौ) वे (पुरोडाशौ) दो पुरोडाश [मुनि अन्न की दो रोटियां] (एव) ही हैं ॥१२॥

भावार्थः—संन्यासी लोग बहुमूल्य आहारों को छोड़कर थोड़े मुनि अन्न, नीवार, कन्द आदि का भोजन करते हैं ॥१२॥

पुरोडाश का वर्णन मनु० अ० ६। श्लो० ११ में इस प्रकार हैं॥

वासन्तशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः।
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥१॥

अपने हाथ से लाये हुए वसन्त और शरद् में उत्पन्न हुए पवित्र मुनियों के अन्नों से पुरोडाश और चरु को विधि के अनुसार अलग अलग फैलावे [परोसे] ॥

यदंशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्धवयन्ति ॥१३॥

भाषार्थः—(यत्) जब वे [गृहस्थ लोग] (अशनकृतम्) भोजन बनाने वाले को (ह्वयन्ति) बुलाते हैं, (तत्) तब वे [संन्यासी लोग] (हविष्कृतम्) देने और लेने योग्य व्यवहार करने हारे [परमेश्वर] को (एव) ही (ह्वयन्ति) बुलाते हैं ॥१३॥

भावार्थः—संन्यासी लोग गृहस्थों के समान सूपकार आदि की अपेक्षा न करके ईश्वर का ध्यान करते हुए आत्मावलम्बी होते हैं ॥१३॥

ये व्रीहयो यवा निरुप्यन्तेऽशव एव ते ॥१४॥

भाषार्थः—(ये) जो (व्रीहयः) चावल और (यवाः) जौ [गृहस्थों करके] (निरुप्यन्ते) फैलाये [परोसे] जाते हैं, (ते) वे (एव) ही [संन्यासी को] (अंशवः) सूक्ष्म विचार [होते हैं] ॥१४॥

भावार्थः—जब गृहस्थ लोग चावल जौ आदि बोकर भोजन करते हैं, संन्यासी लोग स्वयंसिद्ध मुनि-अन्नों से निर्वाह करके सूक्ष्म विचार करते हैं ॥१४॥

यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते ॥१५॥

भाषार्थः (यानि) जो [गृहस्थों के] (उलूखलमुसलानि) ओखली-मूसल हैं, (ते) वे [वैसे] (एव) ही [संन्यासियों के] (ग्रावाणः) शास्त्र उपदेश हैं ॥१५॥

भावार्थः जिस प्रकार गृहस्थ लोग ओखली मूसल से कूटकर अन्न का सार निकालते हैं, उसी प्रकार संन्यासी लोग तपश्चरण करके सत्य-शास्त्रों का उपदेश करते हैं ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः ।।१६।।

स्रुग् दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो वायव्यानि पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् ।।१७।।

भाषार्थः—(शूर्पम्) सूप [छाज], (पवित्रम्) चालनी, (तुषाः) वुसी (ऋजीषा) सोम का फोक [नीरस वस्तु], (अभिसवनीः) मार्जन वा स्नान के पात्र, (आपः) [यज्ञ का] जल। (स्रुक्) स्रुवा [घी चढ़ाने का पात्र], (दर्विः) चमचा, (नेक्षणम्) शूल, शलाका आदि, (आयवनम्) कढ़ाही, (द्रोणकलशाः) द्रोणकलश [यज्ञ के कलश], (कुम्भ्यः) कुम्भी [गर्गरी], (वायव्यानि) पवन करने के (पात्राणि) पात्र [गृहस्थों के हैं], (इयम्) यह [पृथिवी] (एव) ही [संन्यासियों को] (कृष्णाजिनम्) कृष्णसार हरिन की मृग छाला [के समान है] ।।१६, १७।।

भावार्थः गृहस्थ लोग अनेक प्रकार की सामग्री से यज्ञ आदि काम करते हैं, संन्यासी पुरुष जितेन्द्रिय होकर समस्त पृथिवी को, अपना सर्वस्व और विस्तर आदि समझ प्रसन्न रहते हैं ।।१६, १७।।

मनुस्मृति—अ० ६। श्लो० ४३ में इस प्रकार वर्णन है ।।

अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।
उपेक्षकोऽशङ्कुसुको मुनिर्भावसमाहितः ।।१।।

(उपेक्षकः) [बुरे कर्मों की] उपेक्षा करने वाला, (अशङ्कुसुकः) स्थिर बुद्धि, (भावसमाहितः) परमेश्वर की भावना में ध्यान लगाये हुए (मुनिः) मुनि अर्थात् संन्यासी (अनग्निः) आहवनीय आदि अग्नियों से रहित और (अनिकेतः) विना घर वाला (स्यात्) रहे और (अन्नार्थम्) अन्न के लिये (ग्रामम् आश्रयेत्) ग्राम का आश्रय ले ।।

सूक्तम् ६ (पर्यायः २) ।।

१—१३ ।। अतिथिरतिथिपतिश्च देवते ।। १ विराट् पुरस्ताद् बृहती, २, १२ साम्नी त्रिष्टुप् ३ याजुषी, जगती, ४ साम्न्युष्णिक् ५ साम्नी बृहती, ६, आर्च्यनुष्टुप्, ७, १० आर्ची त्रिष्टुप्, ८, ९ आसुरी गायत्री, ११ भुरिक् साम्नी बृहती, १३ आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः ।।

अतिथिसत्कारोपदेशः—अतिथि के सत्कार का उपदेश ।।

यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि प्रेक्षत इदं भूया३ इदा३मिति ।।१।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अतिथिपतिः) अतिथियों का पालन करने हारा [गृहपति] (यजमानब्राह्मणम्) यजमान के लिये [अपने लिये] ब्राह्मण [वेदवेत्ता संन्यासी] को (वै) निश्चय करके (एतत्) इस प्रकार (कुरुते) अपने लिये बनाता है, (यत्) जब वह [गृहस्थ] (आहार्याणि) स्वीकार करने योग्य कर्मों को (प्रेक्षते) निहारता है, "(इदम्) यह [ब्रह्म] (भूयाः ३) और अधिक है [वा] (इदा३म्) यही, (इति) वस" ॥१॥

भावार्थः– ब्रह्म जिज्ञासु ब्रह्मज्ञानी संन्यासी से प्रश्नोत्तर करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त करे ॥१॥

यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥२॥

भाषार्थः (यत्) जब वह [अतिथि] (आह) कहे—"[इस ब्रह्म को] (भूयः) और अधिक (उत् हर इति) उत्तमता से ग्रहण कर"—(तेन) उस से वह [गृहस्थ] (प्राणम्) अपने प्राण [जीवन] को (एव) निश्चय करके (वर्षीयांसम्) अधिक बड़ा (कुरुते) बनाता है ॥२॥

भावार्थः—गृहस्थ अतिथि संन्यासी से सर्वोत्तम परमात्मा का उपदेश लेकर अपने जीवन को अधिक उन्नत करे ॥२॥

उप हरति हवींष्या सादयति ॥३॥

भाषार्थः—वह [गृहस्थ] (हवींषि) हवन द्रव्यों को (उप हरति) भेंट करता है और (आ सादयति) समीप लाता है ॥३॥

भावार्थः – गृहस्थ हवन द्रव्यों को लाकर संन्यासी से हवन का लाभ पूंछता है ॥३॥

तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति ॥४॥

स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण । ५॥

भाषार्थः (अतिथिः) अतिथि [संन्यासी] (स्रुचा) स्रुचा [चमचा रूप] (हस्तेन) हाथ से (यूपे) जयस्तम्भरूप (प्राणे) प्राण पर (स्रुक्कारेण) स्रुचा की क्रिया से और (वषट्कारेण) आहुति की क्रिया से [जैसे हो वैसे] (आत्मन्) परमात्मा में (तेषाम्) उन आसन्नानाम्) समीप रक्खी हुई [हवन द्रव्यों] की (जुहोति) [मानो] आहुतियां देता है ॥४, ५॥

भावार्थः - संन्यासी उपदेश करता है कि जिस प्रकार हवन करके वायु आदि की शुद्धि से उपकार किया जाता है, वैसे ही मनुष्य परमात्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आज्ञा में आत्मदान से आत्मा की उन्नति करके अधिक अधिक उपकार करें ॥४, ५॥

म० ४, ५ और ६ स्वामिदयानन्दकृत संस्कारविधि संन्यासाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

ए॒ते वै प्रि॒याश्चाप्रि॑याश्च॒र्त्विजः॑ स्व॒र्गं लो॒कं ग॑मयन्ति॒ यदति॑थयः ॥६॥

भाषार्थः—(यत्) क्योंकि (एते) यह (एव) ही (प्रियाः) प्रिय माने गए (च) और (अप्रियाः) अप्रिय माने गए (च) भी (ऋत्विजः) सब ऋतुओं में यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान] करने वाले (अतिथयः) अतिथि [संन्यासी] जन (स्वर्गम्) सुख देने वाले (लोकम्) दर्शनीय लोक में [मनुष्य को] (गमयन्ति) पहुंचाते हैं ॥६॥

भावार्थः— संन्यासी लोग चाहे उनको कोई प्रिय माने वा अप्रिय माने, वे निर्भय होकर संसार का उपकार करते हैं ॥६॥

स य ए॒वं वि॒द्वान् न द्वि॒षन्न॑श्नीया॒न्न द्वि॑ष॒तोऽन्न॑मश्नीया॒न्न मीमांसितस्य॒ न मी॑मा॒ंसमा॑नस्य ॥७॥

भाषार्थः—(यः) जो (एवम्) इस प्रकार [पूर्वोक्त विधि से] (विद्वान्) ज्ञानवान् है, (सः) वह (द्विषन्) आप द्वेष करता हुआ (न) न (अश्नीयात्) खावे [नाश करे] और (न) न (द्विषतः) द्वेष करते हुए पुरुष का, और (न) न (मीमांसितस्य) संशय वाले का और (न) न (मीमांसमानस्य) विचार से तत्त्व निर्णय करते हुए का (अन्नम्) अन्न (अश्नीयात्) खावे [बिगाड़े] ॥७॥

भावार्थः—अतिथि संन्यासी राग द्वेष छोड़कर निष्पक्ष और निर्भय होकर पूर्वोक्त विधि से सब का उपकार करता हुआ भोजन करे, और विना उपकार किये कभी किसी का अन्न वृथा न खावे । ७॥

स॒र्वो वा ए॒ष ज॒ग्धपा॑प्मा॒ यस्यान्न॑मश्न॒न्ति॑ ॥८॥

भाषार्थः—(सर्वः) प्रत्येक (एषः वै) वही गृहस्थ (जग्धपाप्मा) भक्षण [नाश] किये हुए पाप वाला [होता है] (यस्य अन्नम्) जिसका अन्न (अश्नन्ति) वे [महामान्य] खाते हैं ॥८॥

भावार्थः—अतिथि संन्यासी भोजन करके गृहस्थ को उत्तम उपदेश देकर दुःखों से छुड़ाते हैं । इस से गृहस्थ भोजन दान करके संन्यासियों से शिक्षा लेकर सुखी होवें ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वो॑ वा एषोऽज॑ग्धपाप्मा॒ यस्यान्नं॒ नाश्नन्ति॑ ॥९॥

भावार्थः—(सर्वः) प्रत्येक (एषः वै) वही [गृहस्थ] (अजग्धपाप्मा) बिना भक्षण [नाश] किये हुए पाप वाला [होता है], (यस्य अन्नम्) जिसका अन्न (न अश्नन्ति) वे [अतिथि] नहीं खाते हैं ॥९॥

भावार्थः—जो गृहस्थ अतिथियों को अन्न नहीं देते, वे उत्तम शिक्षा न पाने से दुःखी रहते हैं ॥९॥

स॒र्व॒दा वा॒ ए॒ष यु॒क्तग्रा॑वा॒र्द्रप॑वित्रो॒ वित॑ताध्वर॒ आहृ॑तयज्ञक्रतु॒र्य उ॑प॒हर॑ति ॥१०॥

भाषार्थः (एषः वै) वही मनुष्य (सर्वदा) सर्वदा (युक्तग्रावा) सिल बट्टे ठीक किये हुए, (आर्द्रपवित्रः) [दूध घी छानने से] भीगे छन्नेवाला, (विततध्वरः) विस्तृत यज्ञ वाला और (आहृतयज्ञक्रतुः) स्वीकार किये हुए यज्ञ कर्म वाला [होता है], (यः) जो [अन्न] (उपहरति) भेंट करता है ॥१०॥

भावार्थः— अतिथियों को भोजन देने और उनसे शिक्षा ग्रहण करने से गृहस्थों का भण्डार आवश्यक पदार्थों से सदा भरा रहता है ॥१०॥

प्रा॒जा॒पत्यो॒ वा॑ ए॒तस्य॑ य॒ज्ञो वित॑तो॒ य उ॑प॒हर॑ति ॥११॥

भाषार्थः—(एतस्य) उस [गृहस्थ] का (एव) ही (प्राजापत्यः) प्रजापति परमात्मा की प्राप्ति कराने वाला [और प्रजापालक गृहस्थ का हितकारी] (यज्ञः) यज्ञ (विततः) विस्तृत [होता है], (यः) जो [अन्न] (उपहरति) दान करता है ॥११॥

भावार्थः—अतिथियों का सत्कारी गृहस्थ संसार में कीर्तिमान् होता है ॥११॥

यह और आगे के दोनों मन्त्र स्वामी दयानन्दकृत संस्कारविधि संन्यासाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

प्र॒जाप॑ते॒र्वा ए॒ष वि॑क्र॒मान॑नुवि॒क्रम॑ते॒ य उ॑प॒हर॑ति ॥१२॥

भाषार्थः—(एषः वै) वही [गृहस्थ] (प्रजापतेः) प्रजापति [प्रजापालक परमेश्वर वा मनुष्य] के (विक्रमान्) विक्रमों [पराक्रमों] का (अनुविक्रमते) अनुकरण करके विक्रम करता है, (यः) जो [अन्न] (उपहरति) भेंट करता है ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—अतिथि विद्वानों की सेवा करने वाला मनुष्य पुरुषार्थी होकर महापराक्रमी होता है ॥१२॥

योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥१३॥

भाषार्थः—(यः) जो (अतिथीनाम्) अतिथियों, [उत्तम संन्यासियों] का [संग है], (सः) वह [संन्यासियों के लिये] (आहवनीयः) आहवनीय [ग्राह्य अग्नि है, जिसमें ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्रह्मचारी होम करते हैं], और (यः) जो (वेश्मनि) घर में [अर्थात् अपने आश्रम में निवास है], (सः) वह [उसके लिये] (गार्हपत्यः) गार्हपत्य [गृहसम्बन्धी अग्नि है] और (यस्मिन्) जिसमें [अर्थात् जिस जाठराग्नि में अन्न आदि] (पचन्ति) पचाते हैं, (सः) वह [संन्यासियों के लिये] (दक्षिणाग्निः) दक्षिणाग्नि [अनुकूल अग्नि वानप्रस्थ सम्बन्धी है] ॥१३॥

भावार्थः—संन्यासी अपने आत्मा में सब अग्नियों का आरोपण करके सब आश्रमों का हित करता है ॥१३॥

सूक्तम् ६ (पर्यायः ३) ॥

१—६ ॥ अतिथिरतिथिपतिश्च देवते ॥ १ ६, ६ पिपीलिकामध्या गायत्री; ७ साम्नी बृहती; ८ आर्ष्युष्णिक् छन्दः ॥

अतिथिसत्कारोपदेशः—अतिथि के सत्कार का उपदेश ॥

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥१॥

भाषार्थः (एषः) वह [गृहस्थ] (वै) निश्चय करके (इष्टम्) इष्ट सुख [यज्ञ, वेदाध्ययन आदि] (च च) और (पूर्तम्) अन्न दान आदि को (गृहाणाम्) घरों के बीच (अश्नाति) भक्षण [अर्थात् नाश] करता है, (यः) जो (अतिथेः पूर्वः) अतिथि से पहिले (अश्नाति) खाता है ॥१॥

भावार्थः—गृहस्थों को उचित है कि अपने सुख वृद्धि के लिये उपस्थित अतिथियों को जिमाकर आप जीमें ॥१॥

यह मन्त्र स्वामिदयानन्दकृत संस्कारविधि संन्यासाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

पयश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥२॥

भाषार्थः—(एषः) वह [गृहस्थ] (एव) निश्चय कर (पयः) दूध [वा अन्न] (च च) और (रसम्) रस [स्वादिष्ट पदार्थ] को···म० १ ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥३॥

भाषार्थः—(एषः) वह [गृहस्थ] (वै) निश्चय करके (ऊर्जाम्) पराक्रम (च च) और (स्फातिम्) वृद्धि को···म० १ ॥३॥

प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥४॥

भाषार्थः—(एषः) वह [गृहस्थ] (वै) निश्चय करके (प्रजाम्) प्रजा (च च) और (पशून्) पशुओं को···म० १ ॥४॥

कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥५॥

भाषार्थः—(एषः) वह [गृहस्थ] (वै) निश्चय करके (कीर्तिम्) कीर्ति (च च) और (यशः) यश [अर्थात् प्रताप] को···म० १ ॥५॥

श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥६॥

भाषार्थः—(एषः) वह पुरुष (वै) निश्चय करके (श्रियम्) सेवनीय ऐश्वर्य (च च) और (संविदम्) और यथावत् बुद्धि को (गृहाणाम्) घरों के बीच (अश्नाति) भक्षण [अर्थात् नाश] करता है, (यः) जो (अतिथेः पूर्वः) अतिथि से पहिले (अश्नाति) खाता है ॥६॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग अतिथि का तिरस्कार करने से महाविपत्तियों में फंसते हैं ॥१—६॥

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ॥७॥

भाषार्थः—(यत्) क्योंकि (एषः वै) यही (अतिथिः) अतिथि (श्रोत्रियः) श्रोत्रिय [वेद जानने वाला पुरुष है], (तस्मात्) उस [अतिथि] से (पूर्वः) पहिले [गृहस्थ] (न) न (अश्नीयात्) जीमें ॥७॥

भावार्थः गृहस्थ का धर्म है कि अतिथि को भोजन कराके आप भोजन करे ॥७॥

अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥८॥

भाषार्थः—(अतिथौ अशितवति) अतिथि के भोजन कर लेने पर (अश्नीयात्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह [गृहस्थ] खावे, (यज्ञस्य) यज्ञ [देव पूजा, सङ्गतिकरण और दान] की (सात्मत्वाय) चैतन्यता के लिये और (यज्ञस्य) यज्ञ की (अविच्छेदाय) निरन्तर प्रवृत्ति के लिये (तत्) वह (व्रतम्) नियम है ॥८॥

भावार्थः—अतिथि का सत्कार करने से गृहस्थ के शुभकर्म निर्विघ्न होकर सदा चलते रहते हैं ॥८॥

एतद् वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात् ॥९॥

भाषार्थः (एतद् वै) यहां (उ) निश्चय करके (स्वादीयः) अधिक स्वादु है, (यत्) कि (तत् एव) उसी ही (अधिगवम्) अधिकृत जल, (वा) और (क्षीरम्) दूध (वा) और (मांसम्) मनन साधक [बुद्धिवर्धक] वस्तु को (न) अब [अतिथि के जीमने पर—म० ८] (अश्नीयात्) वह [गृहस्थ] खावे ॥९॥

भावार्थः—गृहस्थ को यही सुखदायी है कि अतिथि को अच्छे अच्छे रोचक बुद्धिवर्धक पदार्थ फल, वादाम, अक्षोट आदि जिमाकर आप जीमें, जिस से वह सत्कृत विद्वान् यथावत् उपदेश करे ॥९॥

सूक्तम् ६ (पर्यायः ४) ॥

१—१० ॥ अतिथिरतिथिपतिश्च देवते ॥ १, ३, ५, ७ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, २, ४, ६, ८ त्रिपदा गायत्री, ९ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १० निचृद् प्रस्तार-पङ्क्तिश्छन्दः ।

अतिथिसत्कारोपदेशः—अतिथि के सत्कार का उपदेश ॥

स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति ॥१॥

यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनावरुन्द्धे ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसा (विद्वान्) विद्वान् है, (सः) वह (क्षीरम्) दूध को (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेट करता है। (यावत्) जितना [फल] (सुसमृद्धेन) बड़ी सम्पत्ति वाले (अग्निष्टोमेन) अग्निष्टोम से [जो वसन्तकाल में सोम याग किया जाता है] (इष्ट्वा) यज्ञ करके (अवरुन्द्धे) [मनुष्य] पाता है, (तावत्) उतना [फल] (एनेन) इस [कर्म] से (अवरुन्द्धे) वह [विद्वान्] पाता है ॥१, २॥

भावार्थः जैसे विज्ञानी पुरुषों के यज्ञ और संगति करने से वसन्त काल आदि ऋतु में पुष्ट अन्न उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार विद्वान् संन्या-सियों की सेवा से उपदेश पाकर गृहस्थ सदा समृद्ध रहते हैं ॥१,२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति ॥३॥

यावदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनावरुन्द्धे ॥४॥

भाषार्थः (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसा (विद्वान्) विद्वान् है, (सः) वह (सर्पिः) घृत (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेट करता है। (यावत्) जितना [फल] (सुसमृद्धेन) बड़ी सम्पत्ति वाले (अतिरात्रेण) अतिरात्र से (इष्ट्वा) यज्ञ करके···म० १, २ ॥ ३, ४॥

भावार्थः—"अतिरात्र" जो रात्रि बिताकर सोमयाग वा अन्नेष्टि किया जाता है, जैसे होलिका, दीपावली। आगे ऊपर के समान है—म० १ २ ॥ ३, ४ ॥

स य एवं विद्वान् मधूपसिच्योपहरति ॥५॥

यावत् सत्त्रसद्येनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनावरुन्द्धे ॥ ६॥

भाषार्थः—(यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसा (विद्वान्) विद्वान् है, (सः) वह (मधु) मधु [मक्षिका रस] (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेट करता है। (यावत्) जितना [फल] (सुसमृद्धेन) बड़ी सम्पत्ति वाले (सत्त्रसद्येन) सत्र सद्य से [सोम याग विशेष से] (इष्ट्वा) यज्ञ करके···म० १, २ ॥५, ६॥

भावार्थः—ऊपर के समान है—म० १, २ ॥ ५, ६ ॥

स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ॥७॥

यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनावरुन्द्धे ॥८॥

भाषार्थः (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसा (विद्वान्) विद्वान् है, (सः) वह (मांसम्) मनन साधक [बुद्धिवर्धक वस्तु] को (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेट करता है। (यावत्) जितना [फल] (सुसमृद्धेन) बड़ी सम्पत्ति वाले (द्वादशाहेन) बारह दिन वाले [सोम याग] से (इष्ट्वा) यज्ञ करके (अवरुन्द्धे) [मनुष्य] पाता है, (तावत्) उतना [फल] (एनेन) इस [कर्म] से (अवरुन्द्धे) वह [विद्वान्] पाता है ॥७, ८॥

भावार्थः जैसे मनुष्य बड़े बड़े यज्ञों के करने से संसार का उपकार करके सुख पाता है, वैसे ही विद्वान् गृहस्थ विद्वान् अतिथियों के सत्संग से लाभ उठाकर आनन्द भोगता है ॥७, ८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥९॥

प्रजानां प्र जननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां

भवति य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥१०॥

भाषार्थः—(यः) जो [गृहस्थ] (एवम् विद्वान्) ऐसा विद्वान् है, (सः) वह (उदकम्) जल को (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेट करता है। वह (प्रजानाम्) सन्तानों के (प्रजननाय) उत्पन्न करने के लिये (प्रतिष्ठाम्) दृढ़ स्थिति (गच्छति) पाता है और (प्रजानाम्) सन्तानों का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है, (यः) जो (एवम्) ऐसा (विद्वान्) विद्वान् [गृहस्थ] (उदकम्) जल को (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेट करता है ॥९, १०॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वान् अतिथियों की सेवा से बलवान् और गुणवान् संतान प्राप्त करके सुख पाता है ॥९, १०॥

सूक्तम् ६ (पर्यायः ५) ॥

१-१० ॥ अतिथिरतिथिपतिश्च देवते ॥ १ साम्न्युष्णिक्, २ पुर उष्णिक्, ३, ५ उत्तरभागः, ७ उत्तरभागः, १० भुरिक् साम्नी बृहती, ४, ६, ९ साम्न्यनुष्टुप्, ५ पूर्वभागः, ७ पूर्वभागः, साम्नी त्रिष्टुप्, ८ विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ॥

अतिथिसत्कारोपदेशः—अतिथि के सत्कार का उपदेश ॥

तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति ॥१॥

बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम् ॥२॥

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥३॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [गृहस्थ] के लिये (उषाः) उषा [प्रभात वेला] (हिङ्) तृप्ति कर्म (कृणोति) करती है, (सविता) प्रेरणा करने वाला सूर्य (प्र) अच्छी भांति (स्तौति) स्तुति करता है। [उसके लिये] (बृहस्पतिः) बड़े सोम [अमृत रस] का रक्षक, वायु (ऊर्जया) प्राण शक्ति के साथ (उत् गायति) उद्गीथ [वेद गान] करता है, (त्वष्टा) [अन्न आदि] उत्पन्न करने वाला, मेघ (पुष्ट्या) पुष्टि के साथ (निधनम्) निधि (प्रति) प्रत्यक्ष (हरति) प्राप्त कराता है और (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण वाले पदार्थ [निधि प्रत्यक्ष प्राप्त कराते हैं]। [उस गृहस्थ के लिये] (भूत्याः) वैभव का, (प्रजायाः) प्रजा [सन्तान भृत्य आदि] का और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पशूनाम्) पशुओं [गौ, घोड़े, हाथी आदि] का (निधनम्) निधि (भवति) होता है, (यः) जो गृहस्थ (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है ॥१, २, ३॥

भावार्थः—जो मनुष्य पूर्वोक्त विधि से विद्वानों का सत्कार करता है, उसको सब कालों में सब पदार्थों से आनन्द मिलता है ॥१, २, ३॥

तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति संगवः प्र स्तौति ॥४॥

मध्यन्दिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तं यन्निधनम् । निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥५॥

भावार्थः—(तस्मै) उस [गृहस्थ] के लिये (उद्यन्) उदय होता हुआ (सूर्यः) सूर्य (हिङ्) तृप्ति कर्म (कृणोति) करता है, (संगवः) किरणों से संगति वाला [दोपहर से पहिले सूर्य] (प्र) अच्छी भांति (स्तौति) स्तुति करता है। (मध्यन्दिनः) मध्याह्न काल (उद् गायति) उद्गीथ [वेद गान] करता है, (अपराह्णः) तीसरा पहर (निधनम्) निधि (प्रति) प्रत्यक्ष (हरति) प्राप्त कराता है और (अस्तंयन्) डूबता हुआ [सूर्य, निधि प्रत्यक्ष प्राप्त कराता है]। [उसके लिये] (भूत्याः) वैभव का, (प्रजायाः) प्रजा···म० १—३ ॥४, ५॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वान् अतिथियों के सत्संग से पुरुषार्थ करके सब काल में आनन्द करता है ॥४, ५॥

तस्मा अभ्रो भवन् हिङ्कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति ॥६॥

विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्नुद्गायत्युद्गृह्णन् निधनम् । निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥७॥

भावार्थः—(तस्मै) उस [गृहस्थ] के लिये (भवन्) घिरा हुआ (अभ्रः) मेघ (हिङ्) तृप्ति कर्म (कृणोति) करता है, (स्तनयन्) गरजता हुआ (प्र) अच्छी भांति (स्तौति) स्तुति करता है। और (विद्योतमानः) [बिजुली से] चमचमाता हुआ (निधनम्) निधि (प्रति) प्रत्यक्ष (हरति) प्राप्त कराता है, और (वर्षन्) बरसता हुआ [मेघ, निधि को] (उद्गृह्णन्) थांभता हुआ (उद् गायति) उद्गीथ [वेदगान] करता है। [उसके लिये] (भूत्याः) वैभव का, (प्रजायाः) प्रजा······ म० १—३ ॥६,७॥

भावार्थः—मनुष्य तत्त्वदर्शी अतिथियों के ज्ञान से वर्षा का तत्त्वज्ञान प्राप्त करके सुखी होता है ॥६,७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति ॥८॥
उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् ॥९॥
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥१०॥

भाषार्थः—[जब] वह [गृहस्थ] (अतिथीन् प्रति) अतिथियों की ओर (पश्यति) देखता है, वह [अतिथि] (हिङ्) तृप्ति कर्म (कृणोति) करता है, [जब] वह [गृहस्थ] (अभि वदति) अभिवादन करता है, वह [अपने भाग्य की] (प्र स्तौति) अच्छी भांति स्तुति करता है, [जब] वह [गृहस्थ] (उदकम्) जल (याचति) विनय करके देता है, (उद् गायति) वह उद्गीथ [वेद गान] करता है। [जब] वह [गृहस्थ, भोजन] (उप हरति) भेट करता है, (उच्छिष्टम्) अतिशिष्ट [उत्तम] (निधनम्) निधि (प्रति हरति) [अतिथि] प्रत्यक्ष प्राप्त कराता है। [उस गृहस्थ के लिये] (भूत्याः) वैभव का, (प्रजायाः) प्रजा [सन्तान भृत्य आदि] का और (पशूनाम्) पशुओं [गौ, घोड़े, हाथी आदि] का (निधनम्) निधि (भवति) होता है, (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है ॥८,९,१०॥

भावार्थ:—"अतिथियों" शब्द आदरार्थ बहुवचन है। जो गृहस्थ विद्वान् अतिथि का यथावत् सत्कार करता है, वह उसके आशीर्वाद से सब प्रकार उन्नति कर आनन्द भोगता है ॥८, ९, १०॥

सूक्तम् ६ (पर्यायः ६) ॥

१—१४ ॥ अतिथिरतिथिपतिश्च देवते ॥ १ आसुरी गायत्री; २ साम्न्यनुष्टुप् ३, ५ आर्चीपङ्क्तिः, ४ प्राजापत्या गायत्री; ६—८ आर्ची बृहती; ९ प्राजापत्या पङ्क्तिः; १०, ११ स्वराट् साम्नी जगती; १२ आसुरी जगती, १३ याजुषी त्रिष्टुप्; १४ आसुर्युष्णिक् छन्दः ॥

अतिथिसत्कारोपदेशः—अतिथि के सत्कार का उपदेश ॥

यत् क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) जब वह [अतिथि] (क्षत्तारम्) कष्ट से तारने वाले [धर्म्मात्मा गृहस्थ] को (ह्वयति) बुलाता है, (तत्) तब वह [अतिथि] (एव) निश्चय करके (आ श्रावयति) आदेश सुनाता है ॥१॥

भावार्थः—अतिथि लोग गृहस्थों के पास परोपकार में सहायता के लिये आते हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत् ।२।

भाषार्थः—(तत्) जब वह [गृहस्थ] (प्रतिशृणोति) ध्यान से सुनता है, (तत्) तब (एव) ही वह [अतिथि] (प्रत्याश्रावयति) ध्यान से [उपदेश] सुनाता है ॥२॥

भावार्थः गृहस्थ लोग अतिथि से सावधानी के साथ उपदेश सुनें ॥२॥

यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते ।।३।।

तेषां न कश्चनाहोता ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) जब (पात्रहस्ताः) पात्र हाथ में लिये हुए (पूर्वे) अगले (च) और (अपरे) पिछले (च) भी (परिवेष्टारः) परोसने वाले पुरुष (प्रपद्यन्ते) आगे बढ़ते हैं, (ते) वे (एव) निश्चय करके (चमसाध्वर्यवः) अन्न के लिये हिंसा-रहित व्यवहार चाहने वाले [होते हैं] [क्योंकि] (तेषाम्) उनमें से (कश्चन) कोई भी (अहोता) अदानी (न) नहीं [होता है] ॥३,४॥

भावार्थः—बुद्धिमान् अन्नदाताओं के समान सब लोग अन्नदान करके वृद्धि प्राप्त करें ॥३, ४॥

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहानुपो-

दैत्यवभृथमेव तदुपावैति ।५॥

भाषार्थः (यत्) जब (वै) ही (अतिथिपतिः) अतिथियों की रक्षा करने वाला (अतिथीन्) अतिथियों को (परिविष्य) भोजन परसकर (गृहान्) घरों [घर वालों] में (उपोदैति) पहुंचता है, (तत्) तब वह (अवभृथम्) यज्ञ समाप्ति स्नान (एव) ही (उपावैति) प्राप्त करता है ॥५॥

भावार्थः—गृहस्थ अतिथियों का सत्कार करके और अपने घर वालों को तृप्त करके प्रसन्न होवे ॥५॥

यत् सभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत

उदवस्यत्येव तत् ॥६॥

भाषार्थः—(यत्) जब वह [गृहस्थ अन्न आदि] (सभागयति) बांटता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वह [अतिथि] (दक्षिणाः) वृद्धि क्रियाओं को (सभागयति) बांटता है [इस लिये] वह [गृहस्थ] (यत्) जब (अनुतिष्ठते) [शास्त्रोक्त कर्म] करता है, (तत्) तब वह [उसको] (एव) निश्चय करके (उदवस्यति) पूरा कर डालता है ॥६॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग विद्वानों से उपदेश लेकर शास्त्रोक्त कर्म पूरे करें ॥६॥

स उप॑हूतः पृथि॒व्यां भ॑क्षयत्युप॑हूत॒स्तस्मि॑न् यत्
पृ॑थि॒व्यां वि॒श्वरू॑पम् ॥७॥

भाषार्थः—(सः) वह [अतिथि जब] (उपहूतः) बुलाया गया (पृथिव्याम्) पृथिवी पर [वर्तमान अन्न आदि] (भक्षयति) भोगता है, (तस्मिन्) उस [अतिथि] के [भोग करने के] उपरान्त (उपहूतः) बुलाया गया वह [गृहस्थ] (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (यत्) जो कुछ (विश्वरूपम्) विविध रूप [वस्तु है, उसे भोगता है] ॥७॥

भावार्थः- अतिथि के सत्कार, सत्संग, उपदेश और आशीर्वाद से गृहस्थ पृथिवी के सब उत्तम गुणों के ज्ञान से लाभ उठाता है ॥७॥

स उप॑हूतो॒ऽन्तरि॑क्षे भक्षयत्युप॑हू॒तस्तस्मि॑न् यद॒न्तरि॑क्षे वि॒श्वरू॑पम् ॥८॥

भाषार्थः—(सः) वह [अतिथि जब] (उपहूतः) बुलाया गया (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में [वर्तमान वायु आदि] (भक्षयति) भोगता है, (तस्मिन्) उसके [भोग करने के] उपरान्त (उपहूतः) बुलाया गया वह [गृहस्थ] (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (यत्) जो कुछ (विश्वरूपम्) विविध रूप [वस्तु है, उसे भोगता है] ॥८॥

भावार्थः- जो अतिथि अन्तरिक्ष के वायु, मेघमण्डल आदि के धर्मों को साक्षात् कर चुका है, उसके शिष्टाचार से गृहस्थ अन्तरिक्ष के पदार्थों से उपकार लेता है ॥८॥

स उप॑हूतो दि॒वि भ॑क्षयत्युप॑हू॒तस्तस्मि॑न् यद् दि॒वि वि॒श्वरू॑पम् ॥९॥

भाषार्थः—(सः) वह [अतिथि जब] (उपहूतः) बुलाया गया (दिवि) सूर्य में [वर्तमान प्रकाश, धारण, आकर्षण आदि गुण] (भक्षयति) भोगता है, (तस्मिन्) उसके [भोग करने के] उपरान्त (उपहूतः) बुलाया गया वह [गृहस्थ] (दिवि) सूर्य लोक में (यत्) जो कुछ (विश्वरूपम्) विविध रूप [वस्तु है, उसे भोगता है] ॥९॥

भावार्थः—गृहस्थ तत्त्वज्ञानी ऋषियों से सूर्य मण्डल, तारागण आदि का ज्ञान प्राप्त करके आत्मा की उन्नति करे ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स उप॑हूतो दे॒वेषु॑ भक्षयत्युप॑हूत॒स्तस्मि॒न् यद् दे॒वेषु॑ वि॒श्वरू॑पम् ॥१०॥

भाषार्थः—(सः) वह [अतिथि जब] (उपहूतः) बुलाया गया (देवेषु) विद्वानों में [वर्तमान ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन, ईश्वर प्रणिधान आदि शुभ गुण] (भक्षयति) भोगता है, (तस्मिन्) उसके [भोग करने के] उपरान्त (उपहूतः) बुलाया गया वह [गृहस्थ] (देवेषु) विद्वानों में (यत्) जो कुछ (विश्वरूपम्) विविध रूप [वस्तु है, उसे भोगता है] ॥१०॥

भावार्थः—गृहस्थ ब्रह्मचारी ब्राह्मण से दीक्षा प्राप्त करके पूर्ण ब्रह्मचर्य से धर्मवृद्धि करके आनन्दित होवे ॥१०॥

स उप॑हूतो लो॒केषु॑ भक्षयत्युप॑हूत॒स्तस्मि॒न् यल्लो॒केषु॑ वि॒श्वरू॑पम् ॥११॥

भाषार्थः—(सः) वह [अतिथि जब] (उपहूतः) बुलाया गया (लोकेषु) [दीखते हुए] लोकों में [वर्तमान परस्पर सम्बन्ध को] (भक्षयति) भोगता है, (तस्मिन्) उसके [भोग करने के] उपरान्त (उपहूतः) बुलाया गया वह [गृहस्थ] (लोकेषु) लोकों में (यत्) जो कुछ (विश्वरूपम्) विविध रूप [वस्तु है, उसे भोगता है] ॥११॥

भावार्थः—गृहस्थ उत्तम विद्वानों द्वारा सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, मङ्गल, बुध, बृहस्पति आदि लोकों के परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करके आत्मोन्नति से महा उपकारी होवे ॥११॥

स उप॑हूत॒ उप॑हूतः ॥१२॥

आ॒प्नो॒ती॒मं लो॒कमा॒प्नो॒त्य॒मुम् ॥१३॥

भाषार्थः—(सः) वह [अतिथि जब] (उपहूतः) बुलाया गया है, [तब वह गृहस्थ] (उपहूतः) बुलाया गया, (इमम्) इस (लोकम्) लोक को (आप्नोति) पाता है और (अमुम्) उस [लोक] को (आप्नोति) पाता है ॥१२, १३॥

भावार्थः—सन्तुष्ट अतिथियों के आशीर्वाद अर्थात् ज्ञान दान से गृहस्थ दूरदर्शी सर्वोपकारी होकर इस लोक और परलोक में सुख भोगता है ॥१२,१३॥

ज्योति॑ष्मतो लो॒कान् जय॑ति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥१४॥

भाषार्थः—वह [गृहस्थ] (ज्योतिष्मतः) प्रकाशमय (लोकान्) लोकों को (जयति) जीतता है, (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—पूर्वोक्त प्रकार से अतिथिसेवा और विद्याप्राप्ति करके गृहस्थ ज्ञान प्रकाश के कारण सर्वत्रगति हो जाता है ॥१४॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥७॥

१–२६ ॥ प्रजापतिः परमेष्ठी देवता ॥ १ निचृदार्ची बृहती, २ आर्च्युष्णिक्, ३, ५ आर्च्यनुष्टुप्, ४, १४–१६ साम्नी बृहती, ६, ८ आसुरी गायत्री, पिपीलिकामध्या गायत्री, ९, १३ साम्नी गायत्री, १० निचृत् पुर उष्णिक्, ११, १२, १७, २५ साम्न्युष्णिक्, १८, २२ आसुरी जगती, १९ आसुरी पङ्क्तिः, २०, २१ याजुषी जगती, २३ आसुरी बृहती, २४ भुरिक् साम्नी बृहती, २६ साम्नी त्रिष्टुप् ॥

सृष्टिधारणविद्योपदेशः—सृष्टि की धारणविद्या का उपदेश ॥

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो
अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥१॥

भाषार्थः—(प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक] (च) और (परमेष्ठी) परमेष्ठी [सब से उच्च पद वाला परमेश्वर] (च) निश्चय करके (शृङ्गे) दो प्रधान सामर्थ्य [स्वरूप है], [इसी कारण से सृष्टि में] (इन्द्रः) सूर्य (शिरः) शिर, (अग्निः) [पार्थिव] अग्नि (ललाटम्) माथा, (यमः) वायु (कृकाटम्) कण्ठ की सन्धि [के समान है] ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर में दो प्रधान शक्तियां हैं, एक प्रजा अर्थात् सृष्टि की रक्षा और दूसरी परमेष्ठिता अर्थात् सर्वशक्तिमत्ता। इसी से दूरदर्शी जगदीश्वर ने सृष्टि में सूर्य, अग्नि, वायु आदि पदार्थ ऐसे उपयोगी बनाये हैं जैसे उसने हमारे शरीर में शिर, माथा, गला आदि उपयोगी अङ्ग रचे हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥२॥

भाषार्थः—[सृष्टि में] (राजा) शासक (सोमः) ऐश्वर्य [अथवा अमृत जल वा चन्द्रमा] (मस्तिष्कः) भेजा [कपाल की चिकनाई], (द्यौः) आकाश (उत्तरहनुः) ऊपर का जबाड़ा, (पृथिवी) पृथिवी (अधरहनुः) नीचे का जबाड़ा [के तुल्य है] ॥२॥

भावार्थः—जैसे भेजे की शक्ति का प्रभाव मनुष्य के शरीर और विचारों पर रहता है, अथवा जैसे जल और चन्द्रमा अन्न आदि के लिये उपयोगी हैं वैसे ही चक्राकार सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में ईश्वरत्व प्रधान गुण है ॥२॥

विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥३॥

भाषार्थः—[सृष्टि में] (विद्युत्) [लपक लेने वाली] बिजुली (जिह्वा) जीभ, (मरुतः) [दोषों के मारने वाले] पवन (दन्ताः) [दमन शील] दांत, (रेवतीः) रेवती आदि [चलने वाले नक्षत्र] (ग्रीवाः) गला, (कृत्तिकाः) कृत्तिका। आदि [छेदन शील नक्षत्र] (स्कन्धाः) कन्धे, (घर्मः) ताप [प्रकाश] (वहः) ले चलने वाले सामर्थ्य [के समान है] ॥३॥

भावार्थः—सृष्टि को एक शरीर विशेष और अवयवी और अवयव का सम्बन्ध समझ कर मन्त्र का भावार्थ पूर्ववत् लगा लो ॥३॥

विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥४॥

भाषार्थः [सृष्टि में] (विश्वम्) व्यापनसामर्थ्य (वायुः) वायु. (कृष्णद्रम्) आकर्षण का वेग (स्वर्गः) सुखदायक (लोकः) घर, (विधरणी) विविध धारणशक्ति (निवेष्यः) सेना ठहरने के स्थान [के समान है ॥४॥

भावार्थः मन्त्र ३ के समान है ॥४॥

श्येनः क्रोडो३'न्तरिक्षं पाजस्यं १ बृहस्पतिः
ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥५॥

भाषार्थः—[सृष्टि में] (श्येनः) [चलने वाला] सूर्य (क्रोडः) गोद (अन्तरिक्षम्) मध्य अवकाश (पाजस्यम्) [बल के लिये हितकारी] पेट (बृहस्पतिः) बृहस्पति [लोकविशेष] (ककुत्) शिखा, (बृहतीः) बड़ी दिशायें (कीकसाः) हंसली [गले] की हड्डियों [के समान है] ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मन्त्र ३ के समान है ।।५।।

देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ।।६।।

भाषार्थः—[सृष्टि में] (देवानाम्) दिव्यगुण वाले [अग्नि, वायु आदि] पदार्थों की (पत्नीः) पालन शक्तियां (पृष्टयः) पसलियों की हड्डियों, (उपसदः) सङ्ग रहने वाली [अग्नि वायु आदि की तन्मात्रायें] (पर्शवः) पसलियों [के समान हैं] ।।६।।

भावार्थः जैसे शरीर की मोटी हड्डियों में पसलियां लगी हैं, वैसे ही अग्नि आदि की स्थूल और सूक्ष्म अवस्था का सम्बन्ध सृष्टि के साथ ह ।।६।।

मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू । ७।।

भाषार्थः—[सृष्टि में] (मित्रः) प्राण वायु (च) और (वरुणः) अपान वायु (च) ही (अंसौ) दोनों कन्धे, (त्वष्टा) [अन्न जल आदि उत्पन्न करने वाला] मेघ (च) और (अर्यमा) सूर्य (च) ही (दोषणी) दो भुजदण्ड और (महा-देवः=—द्यौ) अधिक जीतने की इच्छा और स्तुति गुण (बाहू) दो भुजाओं [के तुल्य हैं] ।।७।।

भावार्थः जैसा शरीर और उसके अवयवों का परस्पर सम्बन्ध है, वैसा ही प्राण आदि का सम्बन्ध सृष्टि से है ।।७।।

इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ।।८।।

भाषार्थः—[सृष्टि में] (इन्द्राणी) इन्द्राणी [इन्द्र की पत्नी, सूर्य की धूप] (भसद्) कटिभाग, (वायुः) वायु (पुच्छम्) प्रसन्नता का साधन [वा पीछे का भाग], (पवमानः) शोधक पदार्थ [अग्नि जल आदि] (बालाः) [बालों अर्थात् केशों के समान आकार वाली] झाड़ुओं [कूचियों के समान है] ।।८।।

भावार्थः—मन्त्र ७ के समान है ।।८।।

ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू । ९ ।

भाषार्थः [सृष्टि में] (ब्रह्म) ब्राह्मणत्व (च) और (क्षत्रम्) क्षत्रियत्व (च) ही (श्रोणी) दोनों कूल्हों और (बलम्) बल (ऊरू) दोनों जंघाओं [के समान है] ।।९।।

भावार्थः—मन्त्र ७ के समान है ।।९।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धाता चं सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा
अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥१०॥

भाषार्थः—[सृष्टि में] (धाता) धारण करने वाला गुण (च) और (सविता) ऐश्वर्य करने वाला गुण (च) ही (अष्ठीवन्तौ) दोनों घुटने, (गन्धर्वाः) पृथिवी धारण करने वाले गुण (जङ्घाः) जङ्घायें (अप्सरसः) प्राणियों में व्यापक गुण (कुष्ठिकाः) [नख अङ्गुली आदि] बाहिरी अङ्गों [के समान] और (अदितिः) [अदीन वा अखण्डित] वेदवाणी (शफाः) शान्ति व्यवहार [हैं] ॥१०॥

भावार्थः—मन्त्र ७ के समान है ॥१०॥

चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥११॥

भाषार्थः—[सृष्टि में] (चेतः) विचार (हृदयम्) हृदय (मेधा) बुद्धि (यकृत्) [सङ्गति करने वाला] कलेजा (व्रतम्) व्रत [नियम] (पुरितत्) पुरीतत् [शरीर को फैलाने वाली सूक्ष्म आंत के समान है] ॥११॥

भावार्थः—मन्त्र ७ के समान है ॥११॥

क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥१२॥

भाषार्थः—[सृष्टि में] (क्षुत्) भूख (कुक्षिः) कोख, (इरा) अन्न (वनिष्ठुः) वनिष्ठु [अन्न रक्त आदि बांटने वाली आंत], (पर्वताः) मेघ (प्लाशयः) प्लाशियों [अन्न के आधार आँतों के समान हैं] ॥१२॥

भावार्थः—मन्त्र ७ के समान है ॥१२॥

क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥१३॥

भावार्थः –[सृष्टि में] (क्रोधः) क्रोध (वृक्कौ) दोनों वृक्क [दो कुक्षि गोलक,] (मन्युः) तेज (आण्डौ) दोनों अण्डकोष, और (प्रजा) प्रजा [वंशावली] (शेपः) प्रजनन सामर्थ्य [के समान है] ॥१३॥

भावार्थः—जैसे देह में दोनों वृक्क ["गुरदे"], दोनों अण्डकोष और सन्तानोत्पादन नाड़ी शरीरबल के सूचक हैं, वैसे ही क्रोध आदि सृष्टि में हैं ॥१३॥

इन नाड़ियों के लक्षण इस प्रकार हैं :—

वृक्कौ पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर्यवाहिशिराधारौ वृषणौ पौरुषावहौ ।
गर्भाधानकरं लिङ्गमयनं वीर्यमूत्रयोः ॥२॥

यह शार्ङ्गधर के वचन हैं – खण्ड १ अ० ५ श्लोक ४० वा ४१ ॥

(वृक्कौ) दोनों वृक्क अर्थात् कुक्षिगोलक [गुरदे] पेट में रहने वाले मेद पुष्ट करने वाले कहे जाते हैं ॥१॥

दोनों वृषण अर्थात् आण्ड वीर्यवाही नाड़ियों के आधार, पुरुषार्थ के देने वाले हैं, लिङ्ग गर्भाधान करने वाला, वीर्य और मूत्र का मार्ग है ॥२॥

नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥१४॥

भाषार्थः—[सृष्टि में] (नदी) नदी (सूत्री) जन्मदात्री [नाड़ी], (वर्षस्य पतयः) वर्षा के रक्षक [मेघ] (स्तनाः) स्तन [दूध के आधार], (स्तनयित्नुः) गर्जन (ऊधः) मेड़ [दूध के छिद्र स्थान के समान है] ॥१४॥

भावार्थः—सृष्टि और शरीर के अवयवों का परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट है ॥१४॥

विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥१५॥

भाषार्थः—[सृष्टि में] (विश्वव्यचाः) सर्वव्याप्त (चर्म) चर्म, (ओषधयः) ओषधें [अन्न आदि] (लोमानि) रोम, (नक्षत्राणि) नक्षत्र (रूपम्) रूप [के समान हैं] ॥१५॥

भावार्थः मन्त्र १४ के समान है ॥१५॥

देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥१६॥

भाषार्थः—[सृष्टि में] (देवजनाः) उन्मत्त लोग (गुदाः) गुदा [मल त्याग नाड़ियां], (मनुष्याः) मननशील मनुष्य (आन्त्राणि) आंतें, (अत्राः) [अतनशील] विज्ञानी पुरुष (उदरम्) पेट [के समान हैं] ॥१६॥

भावार्थः—मन्त्र १४ के समान है ॥१६॥

रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥१७॥

भाषार्थः—(रक्षांसि) राक्षस [दुष्ट जीव] (लोहितम्) रुधिर रोग, (इतरजनाः) पामर लोग (ऊबध्यम्) कुपचे अन्न [के समान हैं] ॥१७॥

भावार्थः—मन्त्र १४ के समान है ॥१७॥

अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[सृष्टि में] (अभ्रम्) मेघ (पीबः) मेद [शरीर के भीतर चिकनाई], (निधनम्) राशीकरण (मज्जा) मज्जा [हड्डियों की चिकनाई के समान है] ॥१८॥

भावार्थः—मन्त्र १४ के समान है ॥१८॥

अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥१९॥

भाषार्थः—[सृष्टि में वह प्रजापति] (आसीनः) बैठा हुआ (अग्निः) [पार्थिव वा जाठर] अग्नि, (उत्थितः) उठा हुआ वह (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा [के समान है] ॥१९॥

भावार्थः—जैसे अग्नि और सूर्य और चन्द्रमा अपने अपने लोकों के लिये उपकारी हैं वैसे ही परमेश्वर समस्त ब्रह्माण्ड का हितकारी है ॥१९॥

इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥२०॥

प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥२१॥

भाषार्थः—[वह परमेश्वर] (प्राङ्) पूर्व वा सन्मुख (तिष्ठन्) ठहरा हुआ (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान्, (दक्षिणा) दक्षिण वा दाहिनी ओर (तिष्ठन्) ठहरा हुआ (यमः) न्यायकारी (प्रत्यङ्) पश्चिम वा पीछे की ओर (तिष्ठन्) ठहरा हुआ (धाता) धारण करने वाला और (उदङ्) उत्तर वा बाईं ओर (तिष्ठन्) ठहरा हुआ (सविता) सब का चलाने वाला [है] ॥२०, २१॥

भावार्थः—वह प्रजापति परमेष्ठी परमेश्वर ही सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता और सर्वव्यापक है ॥२०, २१॥

तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥२२॥

भाषार्थः—[वह] (तृणानि) तृणों [सृष्टि के पदार्थों] में (प्राप्तः) प्राप्त होकर (राजा, सर्वशासक (सोमः) जन्म दाता है ॥२२॥

भावार्थः—परमेश्वर ही सृष्टिकर्ता और सर्वनियन्ता है ॥२२॥

मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥२३॥

भाषार्थः—[वह] (ईक्षमाणः) देखता हुआ (मित्रः) मित्र [हितकारी], (आवृत्तः) सन्मुख वर्तमान (आनन्दः) आनन्द [स्वरूप है] ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सर्वदर्शी सर्वव्यापक परमेश्वर सब का हितकारी है ॥२३॥

युज्यमा॑नो वैश्वदे॒वो यु॒क्तः प्र॒जाप॑ति॒र्विमु॑क्तः॒ सर्व॑म् ॥२४॥

भाषार्थः—[वह] (युज्यमानः) ध्यान किया जाता हुआ (वैश्वदेवः) सब विद्वानों का हितकारी, (युक्तः) समाधि किया गया वह (विमुक्तः) विविध मुक्त स्वभाव (प्रजापतिः) प्रजापालक परमेश्वर (सर्वम्) व्यापक ब्रह्म [है] ॥२४॥

भाषार्थः—परमात्मा की उपासना से मनुष्य सुखलाभ करते हैं ॥२४॥

ए॒तद् वै वि॒श्वरू॑पं स॒र्वरू॑पं गोरू॒पम् ॥२५॥

भाषार्थः—(एतत्) व्यापक ब्रह्म (वै) ही (विश्वरूपम्) जगत् का रूप देने वाला, (सर्वरूपम्) सब का रूप देने वाला और (गोरूपम्) [प्राप्ति योग्य] स्वर्ग [सुख विशेष] का रूप देने वाला [है] ॥२५॥

भावार्थः- सर्वस्रष्टा परमेश्वर प्राणियों को उनके कर्मानुसार सुख देता है ॥२५॥

उपै॑नं वि॒श्वरू॑पाः स॒र्वरू॑पाः प॒शव॑स्तिष्ठन्ति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥२६॥

भाषार्थः—(एनम्) उस [पुरुष] को (विश्वरूपाः) सब रूप [वर्ण] वाले और (सर्वरूपाः) सब आकार वाले (पशवः) [व्यक्त वाणी और अव्यक्त वाणी वाले] जीव (उप तिष्ठन्ति) पूजते हैं, (यः) जो (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है ॥२६॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा की महिमा विचार कर पूर्वोक्त प्रकार से उपासना करके अपनी उन्नति करता है, वह सब प्राणियों का शासक होता है ॥२६॥

सूक्तम् ॥८॥

१–२२ ॥ वैद्यो देवता ॥ १–११, १३, १४, १६, १७, १९, २० अनुष्टुप्, १२ विराडनुष्टुप्, १५, १८ निचृदनुष्टुप्, २१ विराद् पथ्या बृहती, २२ पथ्या-पङ्क्तिः ॥

सर्वशरीररोगनाशोपदेशः— समस्त शरीर के रोग नाश का उपदेश ॥

इस सूक्त का मिलान अ० का० २ सूक्त ३३ से करो ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥१॥

भाषार्थः—(शीर्षक्तिम्) शिर की पीड़ा, **(शीर्षामयम्)** शिर की व्यथा **(कर्णशूलम्)** कर्णशूल [कान की सूजन वा टीस] और **(विलोहितम्)** बिगड़े लोहू [सूजन आदि] को। **(सर्वम्)** सब **(ते)** तेरे **(शीर्षण्यम्)** शिर के **(रोगम्)** रोग को **(बहिः)** बाहिर **(निः मन्त्रयामहे)** हम विचार पूर्वक निकालते हैं ॥१॥

भावार्थ:—जैसे उत्तम वैद्य निदान पूर्वक बाहिरी और भीतरी रोगों का नाश करके मनुष्यों को हृष्ट पुष्ट बनाता है वैसे ही विद्वान् लोग विचार पूर्वक अविद्या को मिटा कर आनन्दित होते हैं ॥१॥

यही भावार्थ २ से २२ तक अगले मन्त्रों में जानो ॥

कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥२॥

भाषार्थः—(ते) तेरे **(कर्णाभ्याम्)** दोनों कानों से और **(कङ्कूषेभ्यः)** कङ्कूषों [फैली हुई कान की भीतरी नाड़ियों] से **(कर्णशूलम्)** कर्णशूल [कान की सूजन वा टीस] और **(विसल्पकम्)** विसल्प [विसर्प रोग, हड़ फूटन] को। **(सर्वम्)** सब **(ते)** तेरे······म० १ ॥२॥

यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥३॥

भाषार्थः - (यस्य) जिस [रोग] के **(हेतोः)** कारण से **(यक्ष्मः)** राजरोग [क्षयी आदि] **(कर्णतः)** कान से और **(आस्यतः)** मुख से **(प्रच्यवते)** फैलता है। **(सर्वम्)** सब **(ते)** तेरे···म० १ ॥३॥

यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥४॥

भाषार्थः—(यः) जो [रोग] **(पुरुषम्)** पुरुष को **(प्रमोतम्)** गूंगा [वा बहिरा] **(कृणोति)** करता है, [वा] **(अन्धम्)** अन्धा **(कृणोति)** करता है। **(सर्वम्)** सब **(ते)** तेरे···म० १ ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्गचं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥५॥

भाषार्थः—(अङ्गभेदम्) अङ्ग अङ्ग की फूटन, (अङ्गज्वरम्) अङ्ग अङ्ग के ज्वर और (विश्वाङ्ग्यम्) सर्वाङ्गव्यापी (विसल्पकम्) विसर्प रोग को (सर्वम्) सब (ते) तेरे (शीर्षण्यम्) शिर के (रोगम्) रोग को (बहिः) बाहिर (निः मन्त्रयामहे) हम विचार पूर्वक निकालते हैं ॥५॥

यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् ।
तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥६॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस [ज्वर] का (भीमः) भयानक (प्रतिकाशः) स्वरूप (पुरुषम्) पुरुष को (उद्वेपयति) कंपा देता है। [उस] (विश्वशारदम्) सब शरीर में चकत्ते करने वाले (तक्मानम्) ज्वर को (बहिः) बाहिर···म० ५ ॥६॥

य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके ।
यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।७॥

भाषार्थः—(यः) जो [राजरोग] (ऊरू) दोनों जंघाओं में (अनुसर्पति) रेंगता जाता है, (अथो) और भी (गवीनिके) पार्श्वस्थ दोनों नाड़ियों में (एति) पहुंचता है। [उस] (यक्ष्मम्) राजरोग को (ते) तेरे (अन्तः) भीतरी (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से (बहिः) बाहिर···म० ५ ॥७॥

यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि ।
हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥८॥

भाषार्थः—(यदि) यदि वह [बलास रोग] (कामात्) इच्छा से [अथवा] (अपकामात्) द्वेष के कारण (हृदयात्) हृदय से (परि) सब ओर (जायते) उत्पन्न होता है। (हृदः) हृदय के (बलासम्) वलास [बल के गिराने वाले, संनिपात, कफ़ादि रोग] को (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से (बहिः) बाहिर···म० ५ ॥८॥

हरिमाणं ते अङ्गेभ्यो ऽप्वामन्तरोदरात् ।
यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(हरिमाणम्) पीलिया [वा कामला रोग] को (ते) तेरे (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से, और (अप्वाम्) वायु गोला को (अन्तरा) भीतर (उदरात्) पेट से। (यक्ष्मोधाम्) राज रोग करने वाली [व्यथा] को (अन्तः) भीतर (आत्मनः) देह से (बहिः) बाहिर (निः मन्त्रयामहे) हम विचारपूर्वक निकालते हैं ॥९॥

आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत्।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१०॥

भाषार्थः—[यदि] (बलासः) बलास [बल का गिराने वाला सन्निपात, कफादि] (आसः) धनुष [अङ्ग को धनुष समान टेढ़ा करने वाला] (भवतु) हो जावे, [और उससे] (मूत्रम्) मूत्र (आमयत्) पीड़ा देने वाला (भवतु) हो जावे। (सर्वेषाम्) सब (यक्ष्माणाम्) क्षय रोगों के (विषम्) विष को (त्वत्) तुझ से (अहम्) मैंने (निः) निकालकर (अवोचम्) बता दिया है ॥१०॥

बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात्।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥११॥

भाषार्थः—(काहाबाहम्) खांसी लाने वाला (बिलम्) बिल [फूटन रोग] (तव उदरात्) तेरे पेट से (बहिः) बाहिर (निःद्रवतु) निकल जावे। (सर्वेषाम् यक्ष्माणाम्) सब क्षय रोगों के······म० १० ॥११॥

उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१२॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (उदरात्) उदर से, (क्लोम्नः) फेफड़े से, (नाभ्याः) नाभी से और (हृदयात् अधि) हृदय से भी। (सर्वेषाम्) सब (यक्ष्माणाम्) क्षय रोगों के (विषम्) विष को (त्वत्) तुझ से (अहम्) मैंने (निः) निकाल कर (अवोचम्) बता दिया है ॥१२॥

याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१३॥

भाषार्थः—(याः) जो (अर्षणीः) दौड़ने वाली [महापीड़ायें] (मूर्धानम् प्रति) मस्तक की ओर [चलकर] (सीमानम्) चांद [खोपड़ी] को (विरुजन्ति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फोड़ डालती हैं। वे (अहिंसन्तीः) न सताती हुई, (अनामयाः) रोगरहित होकर (बहिः) बाहिर (निः द्रवन्तु) निकल जावें, और (बिलम्) बिल [फूटन रोग भी, निकल जावे] ॥१३॥

या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१४॥

भाषार्थः—(याः) जो [महापीड़ायें] (हृदयम्) हृदय में (उपर्षन्ति) घुस जाती हैं और (कीकसाः) हंसली की हड्डियों में (अनुतन्वन्ति) फैलती जाती हैं। वे (अहिंसन्तीः) न सताती हुई···१३ ॥१४॥

याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१५॥

भाषार्थः—(याः) जो [महापीड़ायें] (पार्श्वे) दोनों कांखों में (उपर्षन्ति) घुस जाती हैं और (पृष्टीः) पसलियों को (अनुनिक्षन्ति) चुबा डालती हैं। वे (अहिंसन्तीः) न सताती हुई···१३ ॥१५॥

यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१६॥

भाषार्थः—(याः) जो (अर्षणीः) महापीड़ायें (तिरश्चीः) तिरछी होकर (ते) तेरी (वक्षणासु) छाती के अवयवों में (उपर्षन्ति) घुस जाती हैं। वे (अहिंसन्तीः) न सताती हुई···१३ ॥१६॥

या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१७॥

भाषार्थः—(याः) जो [महापीड़ायें] (गुदाः) गुदा की नाड़ियों में (अनुसर्पन्ति) रेंगती जाती हैं (च) और (आन्त्राणि) आंतों को (मोहयन्ति) गड़बड़ कर देती हैं। वे (अहिंसन्तीः) न सताती हुई···१३ ॥१७॥

या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः (याः) जो [महापीड़ायें] (मज्ज्ञः) मज्जाओं [हड्डीकी मींगों] को (निर्धयन्ति) चूस लेती हैं (च) और (परूंषि) जोड़ों को (विरुजन्ति) फोड़ डालती हैं। वे (अहिंसन्तीः) न सताती हुई, (अनामयाः) रोग रहित होकर (बहिः) बाहिर (निः द्रवन्तु) निकल जावें, और (बिलम्) बिल [फूटन रोग भी, निकल जावे] ॥१८॥

ये अङ्गा॑नि मृदय॑न्ति॒ यक्ष्मा॑सो रोप॒णास्तव॑ ।
यक्ष्मा॑णां॒ सर्वे॑षां वि॒षं निर॑वोचम॒हं त्वत् ॥१९॥

भावार्थः (ये) जो (रोपणाः) व्याकुल करने वाले (यक्ष्मासः) क्षयरोग (तव) तेरे (अंगानि) अङ्गों को (मदयन्ति) उन्मत्त कर देते हैं। (सर्वेषाम्) [उन] सब (यक्ष्माणाम्) क्षय रोगों के (विषम्) विष को (त्वत्) तुझ से (अहम्) मैंने (निः) निकालकर (अवोचम्) बता दिया है ॥१९॥

वि॒स॒ल्पस्य॑ विद्र॒धस्य॑ वातीका॒रस्य॑ वाल॒जेः ।
यक्ष्मा॑णां॒ सर्वे॑षां वि॒षं निर॑वोचम॒हं त्वत् ॥२०॥

भावार्थः—(विसल्पस्य) [विसर्प रोग, हड़फूटन] के, (विद्रधस्य) हृदय के फोड़े के, (वातीकारस्य) गठिया रोग के, (वा) और (अलजेः) अलजि [नेत्र रोग] के। (सर्वेषाम्) [इन] सब (यक्ष्माणाम्) क्षय रोगों के (विषम्) विष को (त्वत्) तुझ से (अहम्) मैंने (निः) निकालकर (अवोचम्) बता दिया है ॥२०॥

पादा॑भ्यां ते॒ जानु॑भ्यां॒ श्रोणि॑भ्यां॒ परि॒ भंस॑सः ।
अनू॑कादर्ष॒णीरु॒ष्णिहा॑भ्यः शी॒र्ष्णो रोग॑मनीनशम् ॥२१॥

भावार्थः—(ते) तेरे (पादाभ्याम्) दोनों पैरों से, (जानुभ्याम्) दोनों जानुओं से, (श्रोणिभ्याम्) दोनों कूल्हों से और (भंससः परि) गुह्य स्थान के चारों ओर से। (अनूकात्) रीढ़ से और (उष्णिहाभ्यः) गुद्दी की नाड़ियों से (अर्षणीः) महापीड़ाओं को और (शीर्ष्णः) शिर के (रोगम्) रोग को (अनीनशम्) मैं ने नाश कर दिया है ॥२१॥

सं ते॑ शी॒र्ष्णः क॒पाला॑नि॒ हृद॑यस्य॒ च॒ यो॒ विधुः । उ॒द्यन्ना॑दित्य
र॒श्मिभि॑ः शी॒र्ष्णो रोग॑मनीनशो॒ऽङ्गभे॒दम॑शीशमः ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—हे रोगी !] (ते) तेरे (शीर्ष्णः) शिर के (कपालानि) कपाल की हड्डियां (सम्) स्वस्थ [होवें], (च) और (हृदयस्य) हृदय की (यः) जो (विधुः) धड़क [है वह भी ठीक होवे]।

(आदित्य) हे सूर्य [समान तेजस्वी वैद्य !] (उद्यन्) उदय होते हुए तू ने (रश्मिभिः) [जैसे सूर्य अपनी] किरणों से (शीर्ष्णः) शिर के (रोगम्) रोग को (अनीनशः) नाश कर दिया है, और (अङ्गभेदम्) अङ्गों की फूटन को (अशीशमः) तू ने शान्त कर दिया है ॥२२॥

भावार्थः- जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार का नाश होता है, वैसे ही उत्तम वैद्यों की चिकित्सा से रोगों का निवारण होता है और इसी प्रकार विद्वान् पुरुष आत्मदोष की निवृत्ति करके आत्मोन्नति करता है ॥२२॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥९॥

१—२२ ॥ आत्मा देवता ॥ १-११, १३, १५, १९-२२ त्रिष्टुप्, १२, १६ जगती, १४, १८ निचृत् जगती, १७ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

जीवात्मपरमात्मज्ञानोपदेशः—जीवात्मा और परमात्मा के ज्ञान का उपदेश ॥

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥१॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [जगत्] के (वामस्य) प्रशंसनीय, (पलितस्य) पालनकर्ता, (होतुः) तृप्ति करने वाले (तस्य) उस [सूर्य] का (मध्यमः) मध्यवर्ती (भ्राता) भ्राता [भाई समान हितकारी] (अश्नः) [व्यापक] बिजुली (अस्ति) है। (अस्य) इस [सूर्य] का (तृतीयः) तीसरा (भ्राता) भ्राता (घृतपृष्ठः) घृतों [प्रकाश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले घी, काष्ठ आदि] से स्पर्श किया हुआ [पार्थिव अग्नि है], (अत्र) इस [सूर्य] में (सप्तपुत्रम्) सात [इन्द्रियों—त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] को शुद्ध करने वाले (विश्पतिम्) प्रजाओं के पालनकर्ता [जगदीश्वर] को (अपश्यम्) मैं ने देखा है ॥१॥

भावार्थः—संसार में सूर्य के तेजोरूप अंश बिजुली और अग्नि हैं और तीनों भाई के समान परस्पर भरण करते हैं, जिससे अनेक लोकों की स्थिति है। विज्ञानी पुरुष साक्षात् करते हैं वह परमात्मा अन्तर्यामी रूप से विराजकर उस सूर्य को भी अपनी शक्ति में रखता है ॥१॥

१—यह मन्त्र निरुक्त ४। २६। में व्याख्यात है ॥

२—मन्त्र १—२२ ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १६४ के मन्त्र १—२२ कहीं कहीं आगे पीछे और कुछ पाठ भेद से हैं ॥ मन्त्र १—४ ऋग्वेद में १—४ हैं ॥

स॒प्त यु॑ञ्जन्ति॒ रथ॒मेक॑चक्र॒मेको॒ अश्वो॑ वहति स॒प्तना॑मा ।
त्रि॒नाभि॑ च॒क्रम॒जर॑मन॒र्वं यत्रे॒मा विश्वा॒ भुव॒नाधि॑ त॒स्थुः ॥२॥

भाषार्थः—(सप्त) सात [इन्द्रियां त्वचा आदि—म०१] (एकचक्रम्) एक चक्रवाले [अकेले पहिले के समान काम करने वाले जीवात्मा से युक्त] (रथम्) रथ [वेगशील वा रथ समान, शरीर] को (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं, (एकः) अकेला (सप्तनामा) सात [त्वचा आदि इन्द्रियों] से झुकने वाला [प्रवृत्ति करने वाला] (अश्वः) अश्व [अश्वरूप व्यापक जीवात्मा] (त्रिनाभि) [सत्त्व, रज और तमोगुण रूप] तीन बन्धन वाले (अजरम्) चलने वाले [वा जीर्णता रहित], (अनर्वम्) न टूटे हुए (चक्रम्) चक्र [चक्र समान काम करने वाले अपने जीवात्मा] को [उस परमात्मा में] (वहति) ले जाता है (यत्र) जिस [परमात्मा] में (इमा) यह (विश्वा) सब (भुवना) लोक (अधि) यथावत् (तस्थुः) ठहरे हैं ॥२॥

भावार्थः—अकेला अपने पुरुषार्थ का भोगने वाला जो निश्चल ब्रह्मचारी त्वचा आदि सात इन्द्रियों से सम्पन्न होकर सत्त्वादि तीनों गुणों को साक्षात् कर लेता है, वह जगदीश्वर परमात्मा में पहुंच कर आनन्द पाता है ॥२॥

१—यह मन्त्र आगे आया है—अ० १३। ३। १८ ॥

२—भगवान् यास्कमुनि के अनुसार अर्थ—निरु० ४। २७ ॥

(सप्त) सात [किरण] (एकचक्रम्) अकेले चलने वाले (रथम्) रथ [रंहणशील सूर्य] को (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं, (एकः) अकेला (सप्तनामा) सप्तनामा [जिसके लिये सात किरणें रसों को झुकाती हैं] (अश्वः) अश्व [व्यापक सूर्य] (अजरम्) न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीर्ण होने वाले, (अनर्वम्) विना सहारे वाले (त्रिनाभि) तीन नाभियों [तीन ऋतुओं ग्रीष्म, वर्षा, और हेमन्त] वाले (चक्रम्) चक्र [संवत्सर] को (वहति) ले जाता है, (यत्र) जिसमें [अर्थात् संवत्सर में] (इमा विश्वा भुवना) यह सब भूत [प्राणी] (अभितस्थुः) यथावत् ठहरते हैं ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्तस्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त नामा ॥३॥

भाषार्थः—(ये) जो (सप्त) सात [इन्द्रियां त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (इमम्) इस (रथम्) रथ [वेगशील वा रथ समान शरीर] में (अधि तस्थुः) ठहरे हैं, [वेही] (सप्त) सात (अश्वाः) अश्व [व्यापनशील वा घोड़ों समान त्वचा, नेत्र आदि] [उस] (सप्तचक्रम्) सात चक्र वाले [चक्र समान काम करने वाले त्वचा, नेत्र आदि से युक्त रथ अर्थात् शरीर] को (वहन्ति) ले चलते हैं। [वही] (सप्त) सात (स्वसारः) अच्छे प्रकार चलने वाली, [वा शरीर को चलाने वाली वा बहिनों के समान हितकारी त्वचा, नेत्र आदि] (अभि) सब ओर से [वहां] (सम् नवन्त=० -न्ते) मिलती हैं (यत्र) जहां [हृदयाकाश में] (गवाम्) इन्द्रियों के (सप्त) सात (नाम=नामानि) झुकाव [स्पर्श, रूप, शब्द, रस, गन्ध, मनन और ज्ञान, सात आकर्षण] (निहिता) धरे गये हैं ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर ने शरीर में त्वचा नेत्र आदि सात इन्द्रियां [म० १] और स्पर्श, रूप आदि इनके सात गुण कैसे दिव्य बनाये हैं, जिनके द्वारा मनुष्य महाज्ञानी होकर मोक्ष सुख पाता है ॥३॥

(नवन्त) के स्थान पर ऋग्वेद में [नवन्ते] है ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥४॥

भाषार्थः—(कः) किस ने (प्रथमम्) पहिले ही पहिले (जायमानम्) उत्पन्न होते हुए (अस्थन्वन्तम्) हड्डियों वाले [देह] को (ददर्श) देखा था, (यत्) जिस [देह] को (अनस्था) विना हड्डियों वाला [विना शरीर वाला जीवात्मा अथवा विना शरीर वाली प्रकृति] (बिभर्ति) धारण करती है। (क्वस्वित्) कहां पर ही (भूम्याः) भूमि [संसार] का (असुः) प्राण, (असृक्) रक्त और (आत्मा) जीवात्मा [था], (कः) कौन सा पुरुष (एतत्) यह (प्रष्टुम्) पूंछने को (विद्वांसम्) विद्वान् के (उप गात्) समीप जावे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—इस बात को बड़े विद्वान् ही साक्षात् करते हैं कि सृष्टि की आदि में छोटे बड़े शरीर कैसे उत्पन्न हुए, और उन शरीरों पर विभु जीवात्मा अथवा संयोजक वियोजक प्रकृति का शासन किस प्रकार है और जगत् के रचने की प्राण वायु आदि सामग्री कहां से आई ॥४॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।

शीर्ष्णः क्षीरं दुहते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥५॥

भावार्थः—(अङ्ग) हे प्यारे ! (इह) इस [ब्रह्म विषय] में (ब्रवीतु) वह बोले, (यः) जो [पुरुष] (अस्य) इस (वामस्य) मनोहर (वेः) चलने वाले [वा पक्षी रूप सूर्य] के (निहितम्) ठहराये हुए (पदम्) मार्ग को (ईम्) सब प्रकार (वेद) जानता है। (गावः) किरणें (अस्य) इस [सूर्य] के (शीर्ष्णः) मस्तक से (क्षीरम्) जल को (दुह्लते) दुहती [देती] हैं, [जिस] (उदकम्) जल को (वव्रिम्) रूप [सूर्य के प्रकाश] को (वसानाः) ओढ़ती हुई [उन किरणों] ने (पदा) [अपने] पैर [नीचे भाग] से (अपुः) पिया था ॥५॥

भावार्थः—विज्ञानी पुरुष जानते हैं कि ईश्वरीय नियम से किरणों द्वारा जल सूर्यमण्डल में पहुंच कर फिर भूमि पर बरसता है, जिससे सब प्राणी अन्न आदि पाकर जीवन धारण करते हैं ॥५॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१।१६४।७॥

पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।

वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥६॥

भावार्थः—(अविजानन्) अविज्ञानी (पाकः) रक्षा के योग्य [बालक] मैं (देवानाम्) विद्वानों के (मनसा) मनन के साथ (निहिता) रक्खे हुए (एना) इन (पदानि) पदों [पद चिह्नों] को (पृच्छामि) पूंछता हूं। (कवयः) बुद्धिमानों ने (बष्कये) चलने योग्य (वत्से) निवास स्थान [संसार] के बीच (सप्त) [अपने] सात (तन्तून्) तन्तुओं [फैले हुए तन्तु रूप इन्द्रियों, त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] को (अधि) अधिक अधिक (ओतवै) बुनने के लिये (उ) ही (वि) विविध प्रकार (तत्निरे) फैलाया था ॥६॥

भावार्थः—विनीत ब्रह्मचारी जन आचार्यों से उन वेदविहित मार्गों को खोजें, जिन पर महात्माओं ने चल कर उन्नति की और उत्तराधिकारियों के लिये आगे बढ़ने का उदाहरण छोड़ा है ॥६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में ५ वां है, (तत्निरे) के स्थान पर वहां [तत्रिरे] है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मनो न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ।७।

भाषार्थः—(अचिकित्वान्) अज्ञानी मैं (चिकितुषः) ज्ञानवान् (कवीन्) बुद्धिमानों को (चित्) ही (अत्र) इस (ब्रह्म विषय) में (पृच्छामि) पूंछता हूँ, (विद्वान्) विद्वान् (विद्मनः) विद्वानों को (न) जैसे [पूंछता है] "(यः) जिस [परमेश्वर] ने (इमा) इन (षट्) छह [पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और ऊपर नीचे] (रजांसि) लोकों को (वि) अनेक प्रकार (तस्तम्भ) थांभा था, (अजस्य) [उस] जन्म रहित [परमेश्वर] के (रूपे) स्वरूप में (किम् स्वित्) कौन सा (अपि) निश्चय करके (एकम्) एक [सर्वव्यापक] ब्रह्म था"।

अथवा 'जिस सूर्य ने इन छह लोकों को थांभा था, (अजस्य) [उस] चलने वाले [सूर्य] के (रूपे) रूप [मण्डल] के भीतर कौन सा निश्चय करके एक [सर्वव्यापक ब्रह्म था]" ॥७॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् विद्वानों से पूछते हैं वैसे ही श्रद्धापूर्वक ब्रह्म जिज्ञासु ब्रह्मज्ञानियों से निश्चय करे कि क्या वह अकेला परब्रह्म है जिस ने इन सब लोकों को रचकर नियम में रक्खा है, अथवा वह अकेला परमात्मा इस सूर्य में भी शक्ति दे रहा है जो सूर्य अपने आकर्षण धारण में अनेक लोकों को थांभ रहा है, और वैसे ही जिस सूर्य को अनेक लोक थांभ रहे हैं ॥७॥

यह मन्त्र ऋग्वेद १।१६४।६ में है (विद्मनः) के स्थान पर वहां [विद्मने] है

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥८॥

भाषार्थः—(माता) निर्मात्री [पृथिवी] ने (ऋते) जल में [वर्तमान] (पितरम्) रक्षक [सूर्य] को (आ) मर्यादापूर्वक (बभाज) पृथक् किया, (हि) क्योंकि वह [पृथिवी] (अग्रे) पहिले [ईश्वरीय] (धीती) आधार और (मनसा) विज्ञान के साथ [सूर्य से] (सम् जग्मे) मिली हुई थी। [फिर] (सा) वह [पृथिवी, सूर्य] (बीभत्सुः) बन्धन की इच्छा करने वाली (गर्भरसा) रस [जलादि, उत्पादन सामर्थ्य] को गर्भ में रखने वाली और (निविद्धा) नियम अनुसार ताड़ी गयी [दूर हटाई गयी थी] [इसी प्रकार] (नमस्वन्तः) झुकाव रखने वाले [सूर्य का आकर्षण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने वाले दूसरे लोक] (इत्) भी (उपवाकम्) वाक्य अवस्था [पिण्ड बनने से नाम, स्थान आदि] को (ईयुः) प्राप्त हुए ॥८॥

भावार्थः – प्रलय में सब पदार्थ परमाणु रूप से प्रकृति में लीन रहते हैं। सृष्टि में पहिले जल होता है, सूर्य और पृथिवी एक पिण्ड में मिले रहते हैं, फिर दोनों अलग अलग हो जाते हैं। पृथिवी और सूर्य की पृथक्ता और आकर्षण से वर्षा, शीत और ग्रीष्म ऋतुएँ संसार को सुख पहुंचाते रहते हैं। यही नियम सूर्य लोक सम्बन्धी दूसरे लोकों का है ॥८॥

मनु भगवान् कहते हैं—अध्याय १। श्लोक ८, ९ ॥

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥८॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः ॥९॥

उस [परमात्मा] ने अपने शरीर [सत्ता] से नाना प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा करके ध्यानमात्र से पहिले जल उत्पन्न किया, उसमें बीज को छोड़ दिया ॥८॥

वह [बीज] चमकीला सहस्रों किरणों से पूर्ण प्रकाश वाला अण्डा हुआ, उस [अण्डे] में ब्रह्मा [परमात्मा] सब लोकों का पितामह अपने आप प्रकट हुआ [सब सृष्टि का आदि कारण परमात्मा ही जान पड़ा] ॥९॥

यु॒क्ता मा॒तासी॑द् धु॒रि दक्षि॑णाया॒ अति॑ष्ठ॒द् गर्भो॑ वृ॒जनी॑ष्व॒न्तः ।
अमी॑मेद् व॒त्सो अनु॒ गाम॑पश्यद् वि॒श्वरू॒प्यं॑ त्रि॒षु योज॑नेषु ॥९॥

भावार्थः—(माता) निर्माण करने वाली [पृथिवी] (दक्षिणायाः) [अपनी] शीघ्र गति के (धुरि) कष्ट में (युक्ता) युक्त (आसीत्) हुई, (गर्भः) गर्भ [के समान सूर्य] (वृजनीषु अन्तः) रोकने की शक्तियों [आकर्षणों] के भीतर (अतिष्ठत्) स्थिर हुआ। (वत्सः) निवास दाता [सूर्य] ने (विश्वरूप्यम्, सब रूपों [श्वेत, नील, पीत आदि सात वर्णों] में रहने वाली (गाम्) किरण को (त्रिषु) तीनों [ऊंचे, नीचे और मध्य] (योजनेषु) लोकों में (अनु) अनुकूलता से (अमीमेत्) फैलाया और [उन लोकों को] (अपश्यत्) बांधा [आकर्षित किया] ॥९॥

भावार्थः · दूरदर्शी परमेश्वर ने पृथिवी की गति विचल न होने के लिये सूर्य को ऐसा बनाया कि जैसे गर्भ का बालक माता के उदर को पकड़े रहता है वैसे ही सूर्य भूमि आदि लोकों को अपनी श्वेत, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र किरणों द्वारा अपने आकर्षण में रखता है ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिस्रो मातृस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् ॥१०॥

भाषार्थः—(**एकः**) एक [सर्वव्यापक परमेश्वर] (**तिस्रः**) तीन [सत्त्व, रज और तमोगुण रूप] (**मातॄः**) निर्माण शक्तियों और (**त्रीन्**) तीन [ऊंचे, नीचे और मध्य, अथवा भूत, भविष्यत् और वर्तमान] (**पितॄन्**) पालन करने वाले [लोकों वा कालों] को (**बिभ्रत्**) धारण करता हुआ (**ऊर्ध्वः**) ऊपर (**तस्थौ**) स्थित हुआ, (**ईम्**) इस [परमेश्वर] को वे [ऊपर कहे हुए] (**न अव ग्लपयन्त**=०—न्ति) कभी नहीं ग्लानि पहुंचाते हैं। (**विश्वविदः**) जगत् के जानने वाले लोग (**अमुष्य**) उस (**दिवः**) प्रकाशमान [सूर्य] के (**पृष्ठे**, पीठ [पीठ समान सहारा देने वाले ब्रह्म] के विषय में (**अविश्वविन्नाम्**) सब को न मिलने वाली (**वाचम्**) वाणी को (**मन्त्रयन्ते**) मनन करते हैं ॥१०॥

भावार्थः—एक परमात्मा ही संसार के सब कालों और सब लोकों का स्वामी, सूर्य आदि का रचने वाला है, उस परब्रह्म को सृष्टिविद्या जानने वाले विज्ञानी जानते हैं, सामान्य मनुष्य नहीं ॥१०॥

(ग्लापयन्त, विश्वविदः, अविश्वविन्नाम्) के स्थान पर [ग्लापयन्ति, विश्वविदम्, अविश्वमिन्वाम्] पद हैं—ऋ० १। १६४। १०॥

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न छिद्यते सनाभिः ॥११॥

भाषार्थः— (**पञ्चारे**) [पृथिवी आदि पांच तत्त्व रूप] पांच अरा वाले (**परिवर्तमाने**) सब ओर घूमते हुए (**यस्मिन्**) जिस (**चक्रे**) पहिये पर [पहिये समान जगत् में] (**विश्वा भुवनानि**) सब लोक (**आतस्थुः**) ठहरे हुए हैं। (**तस्य**) उस [चक्ररूप जगत्] का (**भूरिभारः**) बड़े बोझ वाला (**सनाभिः**) नाभि में लगा हुआ (**अक्षः**) धुरा [धुरा रूप परमेश्वर] (**सनात् एव**) सदा से ही (**न तप्यते**) न तो तपता है और (**न छिद्यते**) न टूटता है ॥११॥

भावार्थः पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश पांच भूतों से निर्मित जगत् में सब लोक स्थित हैं, उस जगत् का स्वामी अजर अमर परमात्मा है। और जैसे रथ में अधिक बोझ लादने से धुरा तपकर टूट जाता है, वैसे परमेश्वर इस सृष्टि का इतना बोझ अनादि से उठाने पर क्लेश नहीं पाता ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यस्मिन्, छिद्यते) के स्थान पर [तस्मिन्, शीयंते] हैं—ऋ० १। १६४। १३॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।

अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम्। १२॥

भाषार्थः—(**पञ्चपादम्**) पांच [पृथिवी आदि पांच तत्त्वों] में गति वाले, (**पितरम्**) पालन करने वाले, (**द्वादशाकृतिम्**) बारह [पांच ज्ञानेन्द्रिय कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका और पाँच कर्मेन्द्रिय वाक्, हाथ, पांव, पायु और उपस्थ और दो मन और बुद्धि] को आकार देने वाले, (**पुरीषिणम्**) पूर्तिवाले [परमेश्वर] को (**दिवः**) प्रत्येक व्यवहार की (**परे**) परम (**अर्धे**) ऋद्धि [वृद्धि] के बीच (**आहुः**) वे [ऋषि लोग] बताते हैं। (**अथ**) और (**इमे**) यह (**अन्ये**) दूसरे [विवेकी] (**उपरे**) उपरति [निवृति, विषयों से वैराग्य] वाले, (**सप्तचक्रे**) सात [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख अ० १०। २। ६] के द्वारा तृप्त होने वाले, (**षडरे**) छह [पूर्वादि चार ऊपर और नीचे की दिशाओं] में गति वाले (**विचक्षणे**) विविध देखने वाले [पंडित योगी] के भीतर [परमात्मा को] (**अर्पितम्**) जड़ा हुआ (**आहुः**) बताते हैं॥१२॥

भावार्थः योगी विद्वान् जन परमात्मा को अपने बाहिर और भीतर साक्षात् करके परम आनन्द पाते हैं॥१२॥

(विचक्षणे) के स्थान पर ऋग्वेद में [विचक्षणम्] पद है॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।

आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः॥१३॥

भाषार्थः -(**ऋतस्य**) सत्य [सत्य स्वरूप ब्रह्म] की (**जराय**) जरा [पुरानापन] करने के लिये (**द्याम् परि**) आकाश के सब ओर वर्तमान (**द्वादशारम्**) बारह [महीने रूप] अरे वाला (**तत्**) वह (**चक्रम्**) चक्र [संवत्सर अर्थात् काल] (**नहि**) नहीं (**वर्वर्ति**) कतरा कतरा कर घूमता है। (**अग्ने**) हे विद्वान्! (**अत्र**) इस [संवत्सर] में (**सप्त शतानि**) सात सौ (**च**) और (**विंशतिः**) बीस (**मिथुनासः**) जोड़े जोड़े (**पुत्राः**) पुत्र [संवत्सर के पुत्र रूप दिन और रात के जोड़] (**आ तस्थुः**) भले प्रकार खड़े हुए हैं॥१३॥

भावार्थः अनादि अनन्त परमेश्वर को आकाश में सब ओर घूमता हुआ काल वश में नहीं कर सकता जैसे वह संसार के अन्य पदार्थों को घात लगा लगाकर पकड़ लेता है॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र ऋग्वेद में ११ वां है ॥ इस मन्त्र का कुछ भाग–निरु० ४। २७। में व्याख्यात है ॥

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१४॥

भाषार्थः [उस ब्रह्म में] (सनेमि) एक सी पुट्ठी वाला [पहिये का बाहिरी भाग वा चलाने का बल एक सा रखनेवाला], (अजरम्) शीघ्रगामी (चक्रम्) चक्र [चक्र समान संवत्सर वा काल] (वि) खुला हुआ (ववृते=वर्तते) घूमता है, [उसी ब्रह्म में] (उत्तानायाम्) उत्तमता से फैली हुई [सृष्टि] के भीतर (दश) दस (युक्ताः) जुड़ी हुई [दिशायें] (वहन्ति) बहती हैं। [और उसी ब्रह्म में] (सूर्यस्य) सूर्य का (चक्षुः) नेत्र (रजसा) अन्तरिक्ष के साथ (आवृतम्) फैला हुआ (याति) चलता है, (यस्मिन्) जिस [ब्रह्म] के भीतर (विश्वा भुवनानि) सब लोक (आतस्थुः) यथावत् ठहरे हैं ॥१४॥

भावार्थः—जिस परमात्मा में सब लोक समष्टि रूप से स्थित हैं उसी में काल, दिशायें और सूर्य आदि व्यष्टि रूप से वर्तमान हैं ॥१४॥

(यस्मिन्, आतस्थुः) के स्थान पर ऋग्वेद में म० १४ [तस्मिन् आर्पिता] पद हैं ॥

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥१५॥

भाषार्थः (तान् उ) उन ही [जीवात्माओं] को (पुंसः) पुरुष और (स्त्रियः सतीः) स्त्रियां होते हुए (मे) मुझसे (आहुः) वे [तत्त्वदर्शी] कहते हैं (अक्षण्वान्) आँखों वाला [यह बात] (पश्यत्=०-ति) देखता है, (अन्धः) अन्धा (न) नहीं (वि चेतत्—० ति) जानता है। (यः) जो (पुत्रः) पुत्र (कविः) बुद्धिमान् है, (सः) उस ने (ईम्) इस [अर्थ वा जीवात्मा को] (आ, भली भांति (चिकेत) जान लिया है, (यः) जो [पुरुष] (ता=तानि) उन [तत्त्वों] को (विजानात्) जान लेता है, (सः) वह (पितुः) पिता का (पिता) पिता [उपदेशक] (असत्) होता है ॥१५॥

भावार्थः प्राणियों के आत्माओं में स्त्रीपन, पुरुषपन और नपुंसकपन नहीं है, जैसा शरीर होता है वैसा ही आत्मा भान होने लगता है। इसी प्रकार जगत्पिता परमात्मा में भी स्त्री पुरुष और नपुंसक का चिन्ह नहीं है। इस गूढ़ मर्म को तत्त्वदर्शी साक्षात् करते हैं ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र ऋग्वेद में १६ वां है और निरुक्त १४ । २० । में भी व्याख्यात है । इस मन्त्र के उत्तर भाग का मिलान अ० २ । १ । २ । में करो ॥

इस मन्त्र पर श्री सायणाचार्य ने यह श्लोक उद्धृत किया है ॥

नैव स्त्री न पुमानेष नैव चायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स चोद्यते ॥१॥

यह न तो स्त्री है न पुरुष है और न यह नपुंसक ही है । जिस जिस शरीर को पाता है उस उसके साथ वही कहा जाता है ॥१॥

साकं जानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १६॥

भाषार्थः—(**साकंजानाम्**) एक साथ उत्पन्न हुओं में से (**सप्तथम्**) सातवें [जीवात्मा] को (**एकजम्**) अकेला उत्पन्न हुआ (**आहुः**) वे [तत्त्वदर्शी] बताते हैं, [और कि] (**षट्**) छह [कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन] (**इत्**) ही (**यमाः**) नियम में चलाने वाले (**ऋषयः**) अपने विषयों को देखने वाली] इन्द्रिय (**देवजाः**) देव [गतिशील जीवात्मा] के साथ उत्पन्न होने वाले हैं, (**इति**) यह [वे बताते हैं] । (**तेषाम्**) उन, [इन्द्रियों] के (**विहितानि**) विहित [ईश्वर के ठहराये] (**विकृतानि**) विविध प्रकार वाले (**इष्टानि**) इष्ट कर्म (**स्थात्रे**) अधिष्ठाता [जीवात्मा] के लिये (**धामशः**) स्थान स्थान में और (**रूपशः**) प्रत्येक रूप में (**रेजन्ते**) चमकते हैं ॥१६॥

भावार्थः—कर्म फल के अनुसार अकेले जीवात्मा के साथ सब इन्द्रियां उत्पन्न होकर उसके वश में रहकर अनेक विषयों को प्रकाशित करती हैं । इसी से जितेन्द्रिय पुरुष परम आनन्द प्राप्त करते हैं ॥१६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में १५ है और निरु० १४ । १९ । में व्याख्यात है—"एक साथ उत्पन्न हुए छह इन्द्रियों में आत्मा सातवां है" ॥ और निरु० १२ । ३७ में वर्णन है—"सात ऋषि शरीर में रक्खे हुए छह इन्द्रियां और सातवीं विद्या आत्मा में" ॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् । सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥१७॥

भाषार्थः—(**वत्सम्**) [निवास स्थान] देह को (**बिभ्रती**) धारण करती हुई (**गौः**) गौ [गतिशील जीवरूप शक्ति] (**परेण**) ऊंचे (**पदा**) पद [अधिकार वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग] से (अवः) नीचे को, और (एना) इस (अवरेण) नीचे [पद] से (परः) ऊपर को (उत् अस्थात्) उठी है। (सा) वह [जीवरूप शक्ति] (कद्रीची) किस ओर चलती हुई, (कं स्वित्) कौन से (अर्धम्) ऋद्धि वाले [अर्थात् परमेश्वर] को (परा) पराक्रम से (अगात्) पहुंची है, (क्व स्वित्) कहां पर (सूते) उत्पन्न होती है, (अस्मिन्) इस [देहधारी] (यूथे) समूह में तो (नहि) नहीं [उत्पन्न होती] ॥१७॥

भावार्थः— मनुष्य को सदा विचारना चाहिये कि हमारे पूर्वज कैसे उच्च गति से नीच गति को और नीच गति से उच्च गति को पहुंचे। आत्मा किस उत्तम मार्ग पर चलकर समृद्धिशाली परमात्मा को पहुंचता है, यह सूक्ष्म आत्मा देह से नहीं उत्पन्न होता, फिर कहां से आता है ॥१७॥

(अस्मिन्) के स्थान पर ऋग्वेद मन्त्र १७ में [अन्तः] पद है ॥

अवः परेण पितरं यो अस्य वेदावः परेण पर एनावरेण।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८॥

भाषार्थः (यः) जो [पुरुष] (एना) इस (अवरेण) नीचे [मार्ग] से (परः) ऊपर [वर्तमान], (अस्य) इस [देह] के (पितरम्) पालक [आत्मा] को (परेण) ऊंचे [मार्ग] से (अवः) नीचे, (परेण) ऊंचे [मार्ग] से (अवः) नीचे (वेद) जानता है। (कवीयमानः) बुद्धिमान् का सा आचरण करने वाला (कः) कौन [पुरुष] (इह) इस [विषय] में (प्रवोचत्) बोले ? और (कुतः) कहां से [उस का] (देवम्) दिव्य गुण वाला (मनः) मन [मनन सामर्थ्य] (अधि) अधिकारपूर्वक (प्रजातम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न [होवे ?] ॥१८॥

भावार्थः - जो मनुष्य अपने आत्मा को अत्यन्त गिरा मानता है वह अपुरुषार्थी उन्नति का उपाय नहीं पा सकता ॥१८॥

(वेद, अवः, परेण) के स्थान पर ऋग्वेद मन्त्र १८ में [अनुवेद] पद है ॥

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९॥

भाषार्थः - [इस चक्र रूप संसार में] (ये) जो [लोक] (अर्वाञ्चः) नीचे जाने वाले हैं, (तान् उ) उन्हीं को (पराचः) ऊपर जाने वाले (आहुः) कहते हैं, और (ये) जो (पराञ्चः) ऊपर जाने वाले हैं (तान् उ) उन्हीं को (अर्वाचः) नीचे जाने वाले (आहुः) कहते हैं। (इन्द्रः) हे परमेश्वर ! (च) और (सोम) हे जीवात्मा ! (या) जिन [व्रतों] को (चक्रथुः) तुम दोनों ने बनाया था, (तानि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे [व्रत] (रजसः) संसार को (वहन्ति) ले चलते हैं (न) जैसे (धुरा) धुर [जूये] से (युक्ताः) जुते हुए [घोड़े आदि, रथ को ले चलते हैं] ॥१९॥

भावार्थः जैसे ईश्वर के आकर्षण और धारण विशेष से सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, नक्षत्र आदि एक दूसरे से ऊंचे वा नीचे दिखाई देते हैं, वैसे ही जीव भी अपने कर्मों के अनुसार ईश्वर नियम से एक दूसरे की अपेक्षा ऊंचे नीचे होते हैं। यह संसार इसी नियम पर चल रहा है, जैसे जूए में जुते घोड़े आदि से रथ चलता है ॥१९॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२०॥

भावार्थः—(द्वा) दोनों (ब्रह्म और जीव] (सुपर्णा) सुन्दर पालन वा पूर्ति वाले [अथवा सुन्दर पक्षों वाले पक्षी रूप], (सयुजा) एक साथ मिले हुए और (सखाया) [समान ख्याति वाले] मित्र होकर (समानम्) एक ही (वृक्षम्) स्वीकरणीय [कार्य कारण रूप वा पेड़ रूप संसार] में (परि) सब प्रकार (सस्वजाते) चिपटे रहते हैं। (तयोः) उन दोनों में से (अन्यः) एक [जीव] (स्वादु) चखने योग्य (पिप्पलम्) [पालन वा पूर्ति करने वाले] फल को (अत्ति) खाता है, (अनश्नन्) न खाता हुआ (अन्यः) दूसरा [परमात्मा] (अभि) सब ओर [सृष्टि और प्रलय में] (चाकशीति) चमकता रहता है ॥२०॥

भावार्थः—तीनों ब्रह्म और जीव और जगत् का कारण अनादि सनातन हैं। ब्रह्म और जीव व्यापक और व्याप्य भाव से संसार के बीच मित्र समान चले आते हैं। जीव कार्यरूप जगत् में शरीर धरकर पुण्य पाप का फल भोगता है। सर्वशासक परमेश्वर सृष्टि और प्रलय में एकरस बना रहता है ॥२०॥

यह मन्त्र निरुक्त १४। ३०। और मुण्डकोपनिषद्, मुण्डक ३ खण्ड १। मन्त्र १ में भी व्याख्यात है ॥

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥२१॥

भावार्थः—(यस्मिन्) जिस (वृक्षे) स्वीकरणीय [परमात्मा] में (मध्वदः) मधु [वेद ज्ञान] चखने वाले (विश्वे) सब (सुपर्णाः) सुन्दर पालने वाले [प्राण वा इन्द्रियां] (निविशन्ते) भीतर पैठ जाते हैं (च) और (अधि) ऐश्वर्य के साथ (सुवते) उत्पन्न [उदय] होते हैं। (तस्य) उस [परमात्मा] के (यत्) जिस (पिप्पलम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन करने वाले [मोक्षपद] को (अग्रे) सब से आगे [बढ़िया] (स्वादु) स्वादु [चखने योग्य] (आहुः) वे [तत्वज्ञानी] बताते हैं, (तत्) उस [मोक्षपद] को वह मनुष्य (न उत्) कभी नहीं (नशत्) पाता, (यः) जो (पितरम्) पिता [पालनकर्ता परमेश्वर] को (न) नहीं (वेद) जानता है ॥२१॥

भावार्थः—सबके आश्रयदाता स्वीकरणीय परमात्मा को जब मनुष्य अपने श्वास प्रश्वास में भीतर बाहिर साक्षात् करता है तब मोक्ष पद पाता है, उसको अज्ञानी पाखण्डी नहीं पा सकता ॥२१॥

(यत्) के स्थान पर [इत्] है, ऋग्वेद म० २२ ॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।

एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२२ ।

भाषार्थः—(यत्र) जिस (विदथा) ज्ञान के भीतर (सुपर्णाः) सुन्दर पालन करने वाले [वा सुन्दर गति वाले, प्राणी] (अमृतस्य) अमृतपन [मोक्षसुख] के (भक्षम्) भोग को (अनिमेषम्) लगातार (अभिस्वरन्ति) सब ओर से पाते हैं । (एना) इसी विज्ञान के साथ (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) संसार का (गोपाः) रक्षक (सः) वह (धीरः) धीर [बुद्धिमान् परमेश्वर] (पाकम्) पक्के मन वाले (मा) मुझ में (अत्र) इस [देह] के भीतर (आ) यथावत् (विवेश) पैठा है ॥२२॥

भावार्थः जिस प्रकार योगी जन परमात्मा के विज्ञान से मोक्षसुख भोगते हैं, वैसे ही प्रत्येक उपासक दृढ़ वुद्धि हो मोक्षसुख प्राप्त करे ।।२२॥

यह मन्त्र निरुक्त ३ । १२ । में भी व्याख्यात है ॥

(भक्षम्, एना) के स्थान पर [भागम्, इनः] पद हैं, ऋग्वेद मन्त्र २१ ॥

सूक्तम् ॥१०॥

१—२८ ॥ आत्मा देवता ॥ १, ७, १७ जगती, २—३, १०—१३, १५, १६, १९, २०, २२, २३, २५, २८, त्रिष्टुप्, ८ निचृत् त्रिष्टुप्, ९ पादनिचृत् त्रिष्टुप्, १४ स्वराट् त्रिष्टुप्, १८ निचृज्जगती, २१ अतिशक्वरी, २४ भुरिगतिजगती, २६, २७ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

जीवात्मपरमात्मलक्षणोपदेशः—जीवात्मा और परमात्मा के लक्षणों का उपदेश ॥

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत ।

यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) क्योंकि (गायत्रम्) स्तुति करने वालों का रक्षक [ब्रह्म] (गायत्रे) स्तुति योग्य गुण में (अधि) ऐश्वर्य के साथ (आहितम्) स्थापित है, (वा) और (त्रैष्टुभम्) तीन [सत्त्व, रज और तम] के बन्धन वाले [जगत्] को (त्रैष्टुभात्) तीन [कर्म, उपासना और ज्ञान] से पूजित [ब्रह्म] से (निरतक्षत) उन्होंने [ऋषियों ने] पृथक् किया है। (वा) और (यत्) क्योंकि (जगत्) जानने योग्य (पदम्) प्रापणीय [मोक्षपद] (जगति) संसार के भीतर (आहितम्) स्थापित है, (ये इत्) जो ही [पुरुष] (तत्) उस [ब्रह्म] को (विदुः) जानते हैं, (ते) उन्होंने (अमृतत्वम्) अमरपन (आनशुः) पाया है ॥१॥

भावार्थः—संसार के भीतर परमात्मा अपने गुणों से सर्वव्यापक है, जो योगी जन उसे साक्षात् करते हैं वे मोक्ष के भागी होते हैं ॥१॥

मन्त्र १—८ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं म० १ । १६४ । २३—३० ॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२॥

भाषार्थः—(गायत्रेण) स्तुति योग्य गुण से वह [योगी] (अर्कम्) पूजनीय [परमेश्वर] को (प्रति) प्रतीत के साथ (मिमीते) बोलता है, (अर्केण) पूजनीय ब्रह्म के साथ (साम) मोक्षविद्या को, (त्रैष्टुभेन) तीन [कर्म उपासना, ज्ञान] से स्तुति किये गये [ब्रह्म] के साथ (वाकम्) वेद वाक्य को [बोलता है]। (सप्त) सात [दो कान, दो नथने, दो नेत्र और एक मुख] से सम्बन्ध वाली [उसी की] (वाणीः) वाणियां (द्विपदा) दोपाये [मनुष्य आदि] और (चतुष्पदा) चौपाये [गौ आदि प्राणी] के साथ [वर्तमान] (वाकम्) वेद वाणी के स्वामी [परमेश्वर] को (अक्षरेण) सर्व व्यापक (वाकेन) वेद वाक्य के साथ (मिमते) उच्चारती हैं ॥२॥

भावार्थः जिज्ञासु तत्त्वदर्शी ब्रह्मचारी उत्तम उत्तम गुणों के द्वारा ब्रह्म से विद्या और विद्या से ब्रह्म को साक्षात् करके मोक्ष को प्राप्त होकर संसार में वेद द्वारा परमात्मा का उपदेश करता है ॥२॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्कभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥३॥

भाषार्थः—उस [प्रजापति] ने (जगता) संसार के साथ (रथन्तरे) रमणीय पदार्थों के तराने वाले (दिवि) आकाश में (सिन्धुम्) नदी [जल] और (सूर्यम्) सूर्य को (अस्कभायत्) थांभा और (परि) सब ओर से (अपश्यत्) देखा। (गायत्रस्य)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तुति योग्य ब्रह्म की (तिस्रः) तीनों [भूत, भविष्यत् और वर्तमान सम्बन्धी] (समिधः) प्रकाश शक्तियों को (आहुः) वे [ब्रह्मज्ञानी] बताते हैं, (ततः) उसी से उस [ब्रह्म] ने (मह्ना) अपनी महिमा और (महित्वा) सामर्थ्य से [सब लोकों को] (प्र) अच्छे प्रकार (रिरिचे) संयुक्त किया ॥३॥

भावार्थः - त्रिकालज्ञ परमेश्वर ने मेघ, सूर्य और सब लोकों को अपने सामर्थ्य से रचा है ॥३॥

(अस्कभायत्) के स्थान पर [अस्थभायत्] है—ऋ० १ । १६४ । २५ ॥

उप॑ ह्वये सु॒दुघां॑ धे॒नुमे॒तां सु॒हस्तो॑ गो॒धुगु॒त दो॑हदे॒नाम् ।
श्रेष्ठं॑ स॒वं स॑वि॒ता सा॑विषन्नो॒ऽभीद्धो॑ घ॒र्मस्तदु॒ षु प्र वो॑चत् ॥४॥

भाषार्थः—(सुदुघाम्) अच्छे प्रकार कामनायें पूरी करने वाली (एताम्) इस (धेनुम्) विद्या को (उप ह्वये) मैं स्वीकार करता हूं, (उत) वैसे ही (सुहस्तः) हस्त-क्रिया में चतुर (गोधुक्) विद्या को दोहने वाला [विद्वान्] (एनाम्) इस [विद्या] को (दोहत्) दुहे। (सविता) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ (सवम्) ऐश्वर्य को (नः) हमारे लिये (साविषत्) उत्पन्न करे। (अभीद्धः) सब ओर प्रकाशमान (घर्मः) प्रतापी परमेश्वर ने (तत् उ) उस सब को (सु) अच्छे प्रकार (प्रवोचत्) उपदेश किया है ॥४॥

भावार्थः—सब मनुष्य कल्याणी वेदवाणी का पठन पाठन करके ऐश्वर्य प्राप्त करें। जिस प्रकार परमेश्वर ने उसका उपदेश किया है ॥४॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ७ । ७३ । ३ (वोचत्) के स्थान पर [वोचम्] है, ऋग्वेद १ । १६४ । २६ । तथा निरुक्त ११ । ४३ ॥

हि॒ङ्कृ॒ण्व॒ती व॑सु॒पत्नी॒ वसू॑नां व॒त्समि॒च्छन्ती॒ मन॑साभ्या॒गा॑त् ।
दु॒हाम॒श्विभ्यां॒ पयो॒ अ॒घ्न्येयं सा व॑र्धतां मह॒ते सौभ॑गाय ॥५॥

भाषार्थः – (हिङ्कृण्वती) गति वा वृद्धि करने वाली, (वसुपत्नी) धन की रक्षा करने वाली, (वसूनाम्) श्रेष्ठों के बीच (वत्सम्) उपदेशक पुरुष को (इच्छन्ती) चाहने वाली [वेदवाणी] (मनसा) विज्ञान के साथ (अभ्यागात्) सब ओर से प्राप्त हुई है। (इयम्) यह (अघ्न्या) हिंसा न करने वाली विद्या (अश्विभ्याम्) दोनों चतुर स्त्री पुरुषों के लिये (पयः) विज्ञान को (दुहाम्) परिपूर्ण करे, (सा) वही [विद्या] (महते) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (वर्धताम्) बढ़े ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—यह जो वेदवाणी संसार का उपकार करती है, उसको सब स्त्री पुरुष प्राप्त होकर यथावत् वृद्धि करें ॥५॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ७। ७३। ८ (अभ्यागात्) के स्थान पर वहां [न्यागन्] पद है। पदपाठ में (अभि–आगात्) के स्थान पर [अभि। आ। अगात्] हैं—ऋग्वेद १। १६४। २७। तथा निरु० ११। ४५॥

गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उं।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥६॥

भावार्थः—(गौः) ब्रह्मवाणी ने (मिषन्तम्) आंखें मींचें हुए (वत्सम्) निवास स्थान [संसार] को (अभि) सब ओर (अमीमेत्) फैलाया और (मूर्धानम्) [लोकों से] बन्धन रखने वाले [मस्तक रूप सूर्य] को (मातवै) बनाने के लिये (उ) निश्चय करके (हिङ्) तृप्ति कर्म (अकृणोत्) बनाया। वह [ब्रह्मवाणी] (सृक्वाणम्) सृष्टिकर्ता (घर्मम्) प्रकाशमान [परमात्मा] की (अभि) सब ओर से (वावशाना) अति कामना करती हुई (मायुम्) शब्द (मिमाति) करती है और (पयोभिः) अनेक बलों के साथ (पयते) चलती है ॥६॥

भावार्थः—परमेश्वर ने प्रलय में लीन संसार को रचकर सूर्य आदि लोकों को परस्पर आकर्षण में ऐसा बनाया जैसे मस्तक और धड़ होते हैं और उसी ब्रह्म शक्ति द्वारा प्राणियों को सब प्रकार का बल मिलता है ॥६॥

इस मन्त्र के उत्तर भाग का मिलान करो – अ० ६। १। ८ (अभि) के स्थान पर [अनु] है—ऋ० १। १६४। २८। तथा निरु० ११। ४२॥

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान् विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥७॥

भावार्थः – (अयम्) यह [समीपस्थ] (सः) वही [दूरस्थ परमेश्वर] (शिङ्क्ते) गरजता सा है, (येन) जिस [परमेश्वर] करके (अभिवृता) सब ओर से घेरी हुई, (ध्वसनौ) अपनी परिधि में (अधि) ठीक ठीक (श्रिता) ठहरी हुई (गौः) भूमि (मायुम्) मार्ग को (मिमाति) बनाती है। और (सा) उस (भवन्ती) व्यापक (विद्युत्) बिजुली ने (मर्त्यान्) मनुष्यों को (हि) निश्चय करके (चित्तिभिः) चेतनाओं के साथ (नि) निरन्तर (चकार) किया है और (वव्रिम्) प्रत्येक रूप को (प्रति) प्रत्यक्ष (औहत) विचार योग्य बनाया है ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः परमेश्वर की शक्ति से यह पृथिवी अपनी परिधि में घूमती है और उसी की महिमा से बिजुली मनुष्यादि प्राणियों में व्यापकर कर्म करने के लिये शरीर के भीतर चेष्टा देती है ॥७॥

(मर्त्यान्) के स्थान पर [मर्त्यम्] है—ऋ० १। १६४। २६। तथा निरु० २। ६॥

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥८॥

भाषार्थः—(जीवम्) जीव को (अनत्) प्राण देता हुआ और (एजत्) चेष्टा कराता हुआ, (तुरगातु) शीघ्रगामी, (ध्रुवम्) निश्चल [ब्रह्म] (पस्त्यानाम्) घरों के (मध्ये) मध्य में (आ) सब ओर से (शये) सोता है [वर्तमान है]। (मृतस्य) मरण स्वभाव वाले [शरीर] का (अमर्त्यः) अमरण स्वभाव वाला (जीवः) जीव [आत्मा] (मर्त्येन) मरण धर्म वाले [जगत्] के साथ (सयोनिः) एकस्थानी होकर (स्वधाभिः) अपनी धारण शक्तियों से (चरति) चलता रहता है ॥८॥

भावार्थः—मन से अधिक वेग वाला [यजु० ४०। ४] सर्वव्यापक ब्रह्म सब में वर्तमान रहकर जीवात्मा को उसके कर्मानुसार संसार के भीतर शरीर धारण करा के पुण्य पाप का फल देता है ॥८॥

विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥९॥

भाषार्थः—(सलिलस्य) समुद्र की (पृष्ठे) पीठ पर (सन्तम्) वर्तमान, (विधुम्) काम करने वाले, (दद्राणम्) टेढ़े चलने वाले (युवानम्) बलवान पुरुष को (पलितः) पालन कर्त्ता [परमेश्वर] (जगार) निगल गया। (देवस्य) दिव्य गुण वाले [परमेश्वर] की (काव्यम्) चतुराई को (महित्वा) महत्त्व के साथ (पश्य) देख, (सः) वह [प्राणी] (अद्य) आज (ममार) मर गया [जो] (ह्यः) कल (सम् आन) जी रहा था ॥९॥

भावार्थः—संसार सागर में दुराचारी बलवान् पुरुष को जगत्पालक परमेश्वर इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे समुद्र में बुदबुदा, सो परमात्मा की न्यायकारिता और अपने शरीर की अनित्यता विचार कर मनुष्य धर्म में सदा प्रवृत्त रहे ॥९॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। ५५। ५। साम० पू० प्र० ४ द० ४ म० ३।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा उ० प्र० ६। १। ७। और निरुक्त १४। १८। (सलिलस्य पृष्ठे) के स्थान पर सब में समने [बहूनाम्] है ॥

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश ॥१०॥

भाषार्थः—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (ईम्) इस [प्राणी] को (चकार) बनाया है, (सः) वह [प्राणी] (अस्य) इस [परमेश्वर] को [यथावत्] (न) नहीं (वेद) जानता है, (यः) जिस [प्राणी] ने (ईम्) इस [परमेश्वर] को (ददर्श) देखा है, वह [परमेश्वर] (तस्मात्) उस [प्राणी] से (हिरुक्) गुप्त (इत् नु) अवश्य ही है। (मातुः) माता के (योना अन्तः) गर्भाशय के भीतर (परिवीतः) लपेटा हुआ [बालक जैसे] (सः) उस (बहुप्रजाः) अनेक प्रजाओं वाले [परमेश्वर] ने (निर्ऋतिः=०-तिम्) भूमि में (आ) सब प्रकार (विवेश) प्रवेश किया है ॥१०॥

भावार्थः कोई विवेकी प्राणी अनन्त सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की सीमा नहीं पा सकता है यद्यपि वह ईश्वर प्रत्येक वस्तु के भीतर ऐसा स्थित है जैसे माता के गर्भ में बालक होता है ॥१०॥

(निर्ऋतिः) के स्थान पर [निर्ऋतिम्] है--ऋ० १। १६४। ३२ ॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥११॥

भाषार्थः—(गोपाम्) भूमि वा वाणी के रक्षक, (अनिपद्यमानम्) न गिरने वाले [अचल], (पथिभिः) ज्ञान मार्गों से (आ चरन्तम्) समीप प्राप्त होते हुए (च) और (परा) दूर प्राप्त होते हुए (च) भी [परमेश्वर] को (अपश्यम्) मैंने देखा है (सः) वह [परमेश्वर] (सध्रीचीः) साथ मिली हुई [दिशाओं] को और (सः) वही (विषूचीः) नाना प्रकार से वर्तमान [प्रजाओं] को (वसानः) ढकता हुआ (भुवनेषु अन्तः) लोकों के भीतर (आ) अच्छे प्रकार (वरीवर्ति) निरन्तर वर्तमान है ॥११॥

भावार्थः– योगी जन सर्वव्यापी अन्तर्यामी परमेश्वर को सब स्थानों में बाहिर और भीतर साक्षात् करके सदा धर्म में लगे रहते हैं ॥११॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१। १६४। ३१। और १०। १७७। ३। तथा यजु० ३७। १७। तथा निरुक्त १४। ३ ॥

द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**द्यौः**) प्रकाशमान सूर्य (**नः**) हमारा (**पिता**) पालने वाला और (**जनिता**) उत्पन्न करने वाला है, (**अत्र**) इस [सूर्य] में (**नः**) हमारी (**नाभिः**) नाभि [प्रकाश वा जलरूप उत्पत्ति का मूल] है, (**इयम्**) यह (**मही**) बड़ी (**पृथिवी**) पृथिवी (**माता**) और (**बन्धुः**) बन्धु [के तुल्य] है। (**उतानयोः**) उत्तमता से फैले हुए (**चम्वोः**) [दो सेनाओं के समान स्थित] सूर्य और पृथिवी के (**अन्तः**) बीच (**योनिः**) [जो] घर [अवकाश] है, (**अत्र**) इस [अवकाश] में (**पिता**) पालने वाले [सूर्य वा मेघ] ने (**दुहितुः**) [रसों को खींचने वाली] पृथिवी के (**गर्भम्**) उत्पत्ति सामर्थ्य [जल] को (**आ**) यथाविधि (**अधात्**) धारण किया है ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा की महिमा से सूर्य और भूमि सब प्राणियों के पिता माता और बन्धु के समान हैं, उन दोनों के बीच अन्तरिक्ष में पृथिवी से किरणों द्वारा जल खिच कर मेघमण्डल में रहता है, फिर वही जल पृथिवी पर बरस कर नाना पदार्थ उत्पन्न करता और प्राणियों को जीवन-साधन देता है, उस जगदीश्वर की उपासना सब मनुष्यों को सदा करनी चाहिये ॥१२॥

(नः, नः) के स्थान में [मे, मे] है—ऋग्वेद १। १६४। ३३। तथा निरु० ४। २१ ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥१३॥

भाषार्थः—[हे विद्वान्!] (**त्वा**) तुझ से (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**परम्**) परले (**अन्तम्**) अन्त को (**पृच्छामि**) पूंछता हूं, (**वृष्णः**) पराक्रमी (**अश्वस्य**) बलवान् पुरुष के (**रेतः**) पराक्रम को (**पृच्छामि**) पूंछता हूं, (**विश्वस्य**) सब (**भुवनस्य**) संसार के (**नाभिम्**) नाभि [बन्धन कर्ता] को (**पृच्छामि**) पूंछता हूं, (**वाचः**) वाणी [विद्या] के (**परमम्**) परम (**व्योम**) [विविध रक्षा स्थान] अवकाश को (**पृच्छामि**) पूंछता हूं ॥१३॥

भावार्थः जिज्ञासु लोग इस प्रकार के विद्या सम्बन्धी प्रश्न किया करें १—पृथिवी की सीमा का आदि अन्त क्या है, २—पराक्रमी जन का बल क्या है, ३—जगत् का आकर्षण क्या है और ४—वाणी का पारगन्ता कौन है। इन चार प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में है ॥१३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१। १६४। ३४। तथा यजु० २३। ६१ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥१४॥

भाषार्थः—(**इयम्**) यह [प्रत्यक्ष] (**वेदिः**) वेदि [विद्यमानता का बिन्दु वा यज्ञभूमि] (**पृथिव्याः**) पृथिवी का (**परः**) परला (**अन्तः**) अन्त है, (**अयम्**) यह [प्रत्यक्ष] (**सोमः**) ऐश्वर्यवान् रस [सोम औषध वा अन्न आदि का अमृत रस] (**वृष्णः**) पराक्रमी (**अश्वस्य**) बलवान् पुरुष का (**रेतः**) वीर्य [पराक्रम] है। (**अयम्**) यह [प्रत्यक्ष] (**यज्ञः**) यज्ञ [परमाणुओं का संयोग वियोग व्यवहार] (**विश्वस्य**) सब (**भुवनस्य**) संसार की (**नाभिः**) नाभि [नियम में बाँधने वाली शक्ति] है, (**अयम्**) यह [प्रत्यक्ष] (**ब्रह्मा**) ब्रह्मा [चारों वेदों का प्रकाशक परमेश्वर] (**वाचः**) वाणी [विद्या] का (**परमम्**) उत्तम (**व्योम**) [विविध रक्षा स्थान] अवकाश है ॥१४॥

भावार्थः—१--पृथिवी गोल है, यदि मनुष्य किसी स्थान से सीधा विना मुड़े किसी ओर चलता जावे, तो वह चलते चलते फिर वहीं आ पहुंचेगा जहां से चला था। २—सब प्राणी सोम अर्थात् अन्न आदि के रस से बलवान् होते हैं। ३—परमाणुओं के संयोग वियोग अर्थात् आकर्षण अपकर्षण में सब संसार की नाभि अर्थात् स्थिति है। ४—परमेश्वर ही सब वाणियों अर्थात् विद्याओं का भण्डार है ॥१४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है--१। १६४। ३५। तथा यजु० २३। ६२। तथा महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ १४७ में भी व्याख्यात है ॥

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥१५॥

भाषार्थः - (**यत्–इव**) जो कुछ ही (**इदम्**) यह [कार्य रूप शरीर है, वही] (**अस्मि**) मैं हूं, (**न वि जानामि**) मैं कुछ नहीं जानता, (**निण्यः**) गुप्त और (**मनसा**) मन से (**सन्नद्धः**) जकड़ा हुआ मैं (**चरामि**) विचरता हूं। (**यदा**) जब (**ऋतस्य**) सत्य [स्वरूप परमात्मा] का (**प्रथमजाः**) प्रथम उत्पन्न [बोध] (**मा**) मुझको (**आ–अगन्**) आया है, (**आत इत्**) तभी (**अस्याः**) इस (**वाचः**) वाणी के (**भागम्**) सेवनीय परब्रह्म को (**अश्नुवे**) मैं पाता हूं ॥१५॥

भावार्थः—अज्ञानी पुरुष मूढ़बुद्धि होकर शरीर आत्मा को अलग २ नहीं जानता। जब वह वेद द्वारा विद्या प्राप्त करता है तब शरीर, आत्मा और परमात्मा को जान लेता है ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र ऋग्वेद में है--१ । १६४ । ३७ । और निरुक्त-७ । ३ । और १४ । २२ । में भी है ॥

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः । ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥१६॥

भाषार्थः—(स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (गृभीतः) ग्रहण किया हुआ (अमर्त्यः) अमरण स्वभाव वाला [जीव] (मर्त्येन) मरण स्वभाव वाले [शरीर] के साथ (सयोनिः) एक स्थानी होकर (अपाङ्) नीचे को जाता हुआ [वा] (प्राङ्) ऊपर को जाता हुआ (एति) चलता है । (ता) वे दोनों (शश्वन्ता) नित्य चलने वाले, (विषूचीना) सब ओर चलने वाले और (वियन्ता) दूर दूर चलने वाले हैं, [उन दोनों में से] (अन्यम् अन्यम्) एक एक को (नि चिक्युः) [विवेकियों ने] निश्चय करके जाना है [और मूर्खों ने] (न) नहीं (नि चिक्युः) निश्चय किया है ॥१६॥

भावार्थः—जीवात्मा अपने कर्मानुसार शरीर पाता और अधोगति वा ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है । जीवात्मा और शरीर के भेद को विद्वान् जानते हैं और मूर्ख नहीं जानते ॥१६॥

इस मन्त्र का मिलान ऊपर मन्त्र ८ से करो । यह मन्त्र ऋग्वेद में है — १ । १६४ । ३८ । तथा निरुक्त–१४ । २३ ॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि । ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥१७॥

भाषार्थः—(सप्त) सात (अर्धगर्भाः) समृद्ध गर्भ वाले [पूरे उत्पादन सामर्थ्य वाले, महत्तत्त्व, अहंकार, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश के परमाणु] (भुवनस्य) संसार के (रेतः) बीज होकर (विष्णोः) व्यापक परमात्मा की (प्रदिशा) आज्ञा से (विधर्मणि) विविध धारण सामर्थ्य में (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं । (ते ते) वे ही [सातों] (विपश्चितः) बुद्धिमान् [परमेश्वर] की (धीतिभिः) धारण शक्तियों और (मनसा) विचार के साथ (परिभुवः) घेरने वाले [शरीरों और लोकों] को (विश्वतः) सब ओर से (परि भवन्ति) घेरते हैं ॥१७॥

भावार्थः महत्तत्त्व, अहंकार आदि सात पदार्थ जगत् के कारण हैं, वे ईश्वरीय नियम से सृष्टि के सब शरीरधारी प्राणियों और लोकों में परिपूर्ण हैं ॥१७॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । १६४ । ३६ । तथा निरुक्त १४ । २१ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते अमी समासते ॥१८॥

भाषार्थः—(यस्मिन्) जिस (अक्षरे) व्यापक [वा अविनाशी] (परमे) सर्वोत्तम (व्योमन्) विविध रक्षक [वा आकाशवत् व्यापक] ब्रह्म में (ऋचः) वेद-विद्यायें और (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य पदार्थ [पृथिवी सूर्य आदि लोक] (अधि) ठीक ठीक (निषेदुः) ठहरे थे। (यः) जो [मनुष्य] (तत्) उस [ब्रह्म] को (न वेद) नहीं जानता, वह (ऋचा) वेदविद्या से (किम्) क्या [लाभ] (करिष्यति) करेगा, (ये) जो [पुरुष] (इत्) ही (तत्) उस [ब्रह्म] को (विदुः) जानते हैं (ते अमी) वे यही [पुरुष] (सम्) शोभा के साथ (आसते) रहते हैं ॥१८॥

भावार्थः—परमेश्वर सब सत्य विद्याओं और लोकों का आधार है, विद्वान् लोग वेद द्वारा उसका ज्ञान प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं और मूर्ख लोग उस आनन्द को नहीं पाते ॥१८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१। १६४। ३९। तथा निरुक्त १३। १०॥

ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत् ।
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥१९॥

भाषार्थः—(ऋचः) वेद वाणी से (पदम्) प्रापणीय ब्रह्म को (मात्रया) सूक्ष्मता के साथ (कल्पयन्तः) विचारते हुए [ऋषियों] ने (अर्धर्चेन) समृद्ध वेद-ज्ञान से (विश्वम्) संसार को (एजत्) चेष्टा कराते हुए [ब्रह्म] को (चक्लृपुः) विचारा। (त्रिपात्) तीन [भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल वा ऊंचे नीचे और मध्य-लोक] में गति वाला, (पुरुरूपम्) बहुत सौन्दर्य वाला (ब्रह्म) ब्रह्म (वि) विविध प्रकार से (तस्थे) ठहरा था (तेन) उस [ब्रह्म] के साथ (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (जीवन्ति) जीवन करती हैं ॥१९॥

भावार्थः—सूक्ष्मदर्शी ऋषि लोग वेद द्वारा ईश्वर की शक्तियों को अनुभव करते हैं कि वह तीनों काल तीनों लोकों में विराज कर सब सृष्टि का प्राण दाता है ॥१९॥

इस मन्त्र का केवल चौथा पाद ऋग्वेद—१। १६४। ४२। में है ॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥२०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे प्रजा, सब स्त्री पुरुषो !] (**सुयवसात्**) सुन्दर अन्न आदि भोगने वाली और (**भगवती**) बहुत ऐश्वर्य वाली (**हि**) ही (**भूयाः**) हो, (**अध**) फिर (**वयम्**) हम लोग (**भगवन्तः**) बड़े ऐश्वर्य वाले (**स्याम**) होवें। (**अघ्न्ये**) हे हिंसा न करने वाली प्रजा ! (**विश्वदानीम्**) समस्तदानों की क्रिया का (**आचरन्ती**) आचरण करती हुई तू [हिंसा न करने वाली गौ के समान] (**तृणम्**) घास [अल्प मूल्य पदार्थ] को (**अद्धि**) खा और (**शुद्धम्**) शुद्ध (**उदकम्**) जल को (**पिब**) पी ॥२०॥

भावार्थः—जैसे गौ अल्प मूल्य घास खाकर और शुद्ध जल पीकर दूध घी आदि देकर उपकार करती है, वैसे ही मनुष्य थोड़े व्यय से शुद्ध आहार विहार करके संसार का सदा उपकार करें ॥२०॥

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—अ० ७। ७३। ११। और (अध, के स्थान पर ऋग्वेद में [अथो] है—१। १६४। ४०। तथा नि० ११। ४४॥

गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः
समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥२१॥

भाषार्थः—(**सलिलानि**) बहुत ज्ञानों [अथवा समुद्र समान अथाह कर्मों] को (**तक्षती**) करती हुई (**गौः**) ब्रह्मवाणी ने (**इत्**) ही (**मिमाय**) शब्द किया है, (**सा**) वह (**एकपदी**) एक [ब्रह्म] के साथ व्याप्ति वाली, (**द्विपदी**) दो [भूत भविष्यत्] में गति वाली, (**चतुष्पदी**) चार [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,] में अधिकार वाली, (**अष्टापदी**) [छोटाई, हलकाई, प्राप्ति, स्वतन्त्रता, बड़ाई, ईश्वरपन, जितेन्द्रियता, और सत्य सङ्कल्प, आठ ऐश्वर्य] आठ पद प्राप्त कराने वाली (**नवपदी**) नौ [मन बुद्धि सहित दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] से प्राप्ति योग्य, (**सहस्राक्षरा**) सहस्रों [असंख्यात] पदार्थों में व्याप्ति वाली (**बभूवुषी**) होकर के (**भुवनस्य**) संसार की (**पंक्तिः**) फैलाव शक्ति है। (**तस्याः**) उस [ब्रह्मवाणी] से (**समुद्राः**) समुद्र [समुद्ररूप सब लोक] (**अधि**) अधिक अधिक (**वि**) विविध प्रकार से (**क्षरन्ति**) बहते हैं ॥२१॥

भावार्थः—जिस ब्रह्मवाणी, वेद विद्या से संसार के सब पदार्थ सिद्ध होते हैं और जिस की आराधना से योगी जन मुक्ति पाते हैं, वह वेदवाणी मनुष्यों को सदा सेवनीय है ॥२१॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ५। १६। ७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । १६४ । ४१, ४२ तथा निरुक्त-११ । ४०, ४१ ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदुः ॥२२॥

भाषार्थः—(हरयः) रस खींचने वाली, **(सुपर्णाः)** अच्छा उड़ने वाली किरणें **(अपः)** जल को **(वसानाः)** ओढ़कर **(कृष्णम्)** खींचने वाले, **(नियानम्)** नित्य गमन स्थान अन्तरिक्ष में होकर **(दिवम्)** प्रकाशमय सूर्यमण्डल को **(उत् पतन्ति)** चढ़ जाती हैं । **(ते)** वे **(इत्)** ही **(आत्)** फिर **(ऋतस्य)** जल के **(सदनात्)** घर [सूर्य] से **(आ अववृत्रन्)** लौट आती हैं, और उन्होंने **(घृतेन)** जल से **(पृथिवीम्)** पृथिवी को **(वि)** विविध प्रकार से **(ऊदुः)** सींच दिया है ॥२२॥

भावार्थः—जैसे सूर्य की किरणें पवन द्वारा भूमि से जल खींचकर और फिर बरसा कर उपकार करती हैं, वैसे ही मनुष्य विद्या प्राप्त करके संसार का उपकार करें । २२॥

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है-अ० ६ । २२ । १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १ । १६४ । ४७ । और निरुक्त ७ । २४ । में भी ॥

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति ॥२३॥

भाषार्थः—(पद्वतीनाम्) प्रशंसित विभागों वाली क्रियाओं में **(प्रथमा)** पहिली **(अपात्)** विना विभाग वाली [सब के लिये एक रस, वेदविद्या] **(एति)** चली आती है, **(मित्रावरुणा)** दोनों मित्रवरो ! [अध्यापक और शिष्य] **(वाम्)** तुम दोनों में **(कः)** किसने **(तत्)** उस [ज्ञान] को **(आ)** भले प्रकार **(चिकेत)** जाना है । **(गर्भः)** ग्रहण करने वाला पुरुष **(चित्)** ही **(अस्याः)** इस [वेदविद्या] के **(भारम्)** पोषण गुण को **(आ)** अच्छे प्रकार **(भरति)** धारण करता है, **(सत्यम्)** सत्य व्यवहार को **(पिपर्ति)** पूर्ण करता है और **(अनृतम्)** मिथ्या कर्म को **(नि)** नीचे **(पाति)** रखता है ॥२३॥

भावार्थः— आचार्य और ब्रह्मचारी वेदविद्या को यथावत् समझकर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करके संसार में उन्नति करें ॥२३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । १५२ । ३ । मन्त्र का अर्थ सहर्ष महर्षि दयानन्द भाष्य के आधार पर किया है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे
स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥२४॥

भाषार्थः—(**विराट्**) विराट् [विविध ऐश्वर्य वाला परमात्मा] (**वाक्**) वाक् [विद्या स्वरूप], (**विराट्**) विराट् (**पृथिवी**) पृथिवी [पृथिवी समान फैला हुआ], (**विराट्**) विराट् (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष [आकाश तुल्य व्यापक], (**विराट्**) विराट् (**प्रजापतिः**) प्रजापालक [सूर्य समान है], (**विराट्**) विराट् [परमेश्वर], (**मृत्युः**) दुष्टों का मृत्यु और (**साध्यानाम्**) परोपकार साधने वाले [साधु पुरुषों] का (**अधिराजः**) राजाधिराज (**बभूव**) हुआ है, **तस्य**) उस [परमेश्वर] के (**वशे**) वश में (**भूतम्**) अतीतकाल और (**भविष्यम्**) भविष्यत् काल है (**सः**) वह (**भूतम्**) अतीतकाल और (**भव्यम्**) भविष्यत् काल को (**मे**) मेरे (**वशे**) वश में (**कृणोतु**) करे ॥२४॥

भावार्थः— सर्वशासक परमात्मा के ज्ञानपूर्वक सब मनुष्य भूत काल के ज्ञान से दूरदर्शी होकर भविष्यत् का सुधार करें ॥२४॥

(विराट्) के लिये मिलान करें—अथर्व काण्ड ८ सूक्त १० ॥

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥२५॥

भाषार्थः—(**शकमयम्**) शक्ति वाले (**धूमम्**) कंपाने वाले [परमेश्वर] को (**आरात्**) समीप से (**एना**) इस (**विषुवता**) व्याप्ति वाले (**अवरेण**) नीचे [जीव] से (**परः**) परे [उत्तम] (**अपश्यम्**) मैंने देखा है। (**वीराः**) वीर लोगों ने [इसी कारण से] (**उक्षाणम्**) वृद्धि करने वाले (**पृश्निम्**) स्पर्श करने वाले [आत्मा] को (**अपचन्त**) परिपक्व [दृढ़] किया है, (**तानि**) वे (**धर्माणि**) धारण योग्य [ब्रह्मचर्य आदि धर्म] (**प्रथमानि**) मुख्य [प्रथम कर्तव्य] (**आसन्**) थे ॥२५॥

भावार्थः—योगीजन सर्वशक्तिमान् सब को चेष्टा देने वाले परमेश्वर को अल्पशक्ति जीव से अलग देखते हैं और उन्नति करते हैं जैसे वीर लोग परमात्मा के ज्ञान से अपने आत्मा को परिपक्व करके धर्म में प्रवृत्त रहते हैं ॥२५॥

इस मन्त्र का चतुर्थ पाद आ चुका है—अ० ७। ५। १ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१। १६४। ४३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ।२६॥

भाषार्थः -(त्रयः) तीन (केशिनः) प्रकाश वाले [अपने गुण जताने वाले, अग्नि, सूर्य और वायु] (ऋतुथा) ऋतु के अनुसार (संवत्सरे) संवत्सर [वर्ष] में (वि) विविध प्रकार (चक्षते) दीखते हैं, (एषाम्) इन में से (एकः) एक [अग्नि, ओषधियों को] (वपते) उपजाता है। (अन्यः) दूसरा [सूर्य] (शचीभिः) अपने कर्मों [प्रकाश, वृष्टि आदि]से (विश्वम्) संसार को (अभिचष्टे) देखता रहता है, (एकस्य) एक [वायु] की (ध्राजिः) गति (ददृशे) देखी गई है और (रूपम्) रूप (न) नहीं ॥२६॥

भावार्थः – पार्थिवाग्नि, सूर्य और वायु आदि पदार्थों के गुण और उपकारों से परमेश्वर की अद्भुत महिमा का अनुभव करके सब मनुष्य उसकी उपासना में तत्पर रहें ॥२६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१।१६४।४४। तथा निरुक्त-१२।२७॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥२७॥

भाषार्थः—(वाक्=वाचः) वाणी के (चत्वारि) चार [परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूप] (परिमिता) परिमाण युक्त (पदानि) जानने योग्य पद हैं, (तानि) उनको (ब्राह्मणाः) वे ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] (विदुः) जानते हैं (ये) जो (मनीषिणः) मननशील हैं। (गुहा) गुहा [गुप्त स्थान] में (निहिता) रक्खे हुए (त्रीणि) तीन [परा, पश्यन्ती और मध्यमा रूप पद] (न) नहीं (ईङ्गयन्ति) चलते [निकलते] हैं, (मनुष्याः) मनुष्य [साधारण लोग] (वाचः) वाणी के (तुरीयम्) चौथे [वैखरी रूप पद] को (वदन्ति) बोलते हैं ॥२७॥

भावार्थः वाणी की चार अवस्थायें हैं—परा पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। १—नादरूपा मूल आधार नाभि से निकलती हुई परा वाक् है, २—वही हृदय में पहुंचती हुई पश्यन्ती वाक् है, ३—वही बुद्धि में पहुंचकर उच्चारण से पहिले मध्यमा वाक् है, इन तीनों को योगी ही समझते हैं और ४—मुख में ठहरकर तालु, ओष्ठ आदि के व्यापार से बाहिर निकली हुई वैखरी वाक् है, जिस को सब साधारण मनुष्य समझते हैं। विद्वान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग अवधारण शक्ति बढ़ाकर प्राणियों के भीतरी भावों को जानकर आनन्द पावें ।।२७।।

पद पाठ में (ईङ्ख्यन्ति) के स्थान पर [इङ्ख्यन्ति] है—ऋक्० १ । १६४ । ४५ । तथा निरुक्त–१३ । ६ ।।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।२८।।

भाषार्थः—(**अग्निम्**) अग्नि [सर्वव्यापक परमेश्वर] को (**इन्द्रम्**) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला] (**मित्रम्**) मित्र, (**वरुणम्**) वरुण [श्रेष्ठ] (**आहुः**) वे [तत्त्वज्ञानी] कहते हैं, (**अथो**) और (**सः**) वह (**दिव्यः**) प्रकाशमय (**सुपर्णः**) सुन्दर पालन सामर्थ्यवाला (**गरुत्मान्**) स्तुति वाला [गुरु आत्मा महान् आत्मा] है (**विप्राः**) बुद्धिमान् लोग (**एकम्**) एक (**सत्**) सत्ता वाले [ब्रह्म] को (**बहुधा**) बहुत प्रकारों से (**वदन्ति**) कहते हैं, (**अग्निम्**) उसी अग्नि [सर्वव्यापक परमात्मा] को (**यमम्**) नियन्ता और (**मातरिश्वानम्**) आकाश में श्वास लेता हुआ [अर्थात् आकाश में व्यापक] (**आहुः**) वे बताते हैं ।।२८।।

भावार्थः—विद्वान् लोग परमात्मा के अनेक नामों से उसके गुण कर्म स्वभाव को जानकर और उसकी उपासना करके संसार में उन्नति करें ।।२८।।

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । १६४ । ४६ । और निरुक्त ७ । १८ ।।

इति पञ्चमोऽनुवाकः ।।

इति नवमं काण्डम् ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

दशमं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१॥

१—३२ ॥ कृत्यादूषणं देवता ॥ १ निचृद् महाबृहती, २ त्रिपाद् विराड्-गायत्री, ३, ५—८, १०, ११, १४, २१, २६, २७, ३०, ३१ अनुष्टुप्, ४ निचृदनुष्टुप्, ९ पथ्या पङ्क्तिः, १२ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्, १३, २५, उरोबृहती, १५, १९ जगती, १६, १८ त्रिष्टुप्, १७ भूरिक् प्रस्तारपङ्क्तिः, २०, २४ प्रस्तारपङ्क्तिः, २२ साम्नी त्रिष्टुप्, २३ स्वराड् गायत्री, २८ गायत्री, २९ ज्योतिष्मती जगती, ३२ अतिजगती ॥

राजकर्त्तव्यदण्डोपदेशः—राजा के कर्त्तव्य दण्ड का उपदेश ॥

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां
चिकित्सवः । सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥१॥

भाषार्थः—(याम्) जिस (विश्वरूपाम्) अनेक रूप वाली, (हस्तकृताम्) हाथों से की हुई [हिंसा क्रिया] को (चिकित्सवः) संशय करने वाले लोग (कल्पयन्ति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाते हैं, (इव) जैसे (वधूम्) वधू को (वहतौ) विवाह में। (सा) वह (आरात्) दूर (एतु) चली जावे, (एनाम्) इसको (अपनुदामः) हम हटाते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य छल करके देखने में सुखद और भीतर से दुःख-दायी काम करें, राजा उसका यथावत् प्रतीकार करे ॥१॥

शीर्षण्वतीं नस्वतीं कर्णिनीं कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥२॥

भाषार्थः—(शीर्षण्वती) शिर सम्बन्धी, (नस्वती) नाक सम्बन्धी, (कर्णिनी) कान सम्बन्धी [जो हिंसा क्रिया] (कृत्याकृता) हिंसा करने वाले पुरुष द्वारा (संभृता) साधी गई (विश्वरूपा) अनेक रूप वाली है। (सा) वह (आरात्) दूर (एतु) चली जावे, (एनाम्) इसको (अप नुदामः) हम हटाते हैं ॥२॥

भावार्थः—प्रजा के शरीरों को कष्ट देनेवाले उत्पातियों को यथावत् दण्ड दिया जावे ॥२॥

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥३॥

भाषार्थः—(शूद्रकृता) शूद्रों के लिये की हुई, (राजकृता) राजाओं के लिये की हुई, (स्त्रीकृता) स्त्रियों के लिये की हुई, (ब्रह्मभिः=ब्रह्मभ्यः) ब्राह्मणों के लिये (कृता) की हुई [हिंसा क्रिया] (कर्तारम्) हिंसक पुरुष को (बन्धु) बन्धन समान (ऋच्छतु) चली जावे, (इव) जैसे (पत्या) पति करके (नुत्ता) दूर की गई (जाया) पत्नी ॥३॥

भावार्थः—जो दुष्कर्मी शूद्र, क्षत्रिय, स्त्री और विद्वानों पर अत्याचार करें, राजा उनको इस प्रकार बन्धन में करे, जैसे पति से निकाली गयी व्यभिचारिणी स्त्री बन्धन में की जाती है ॥३॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥४॥

भाषार्थः—(अहम्) मैंने (अनया ओषध्या) इस ओषधि रूप [तापनाशक तुझ राजा] के साथ (सर्वाः कृत्याः) सब हिंसाओं को (अदूदुषम्) खण्डित कर दिया है, (याम्) जिस [हिंसा] को (क्षेत्रे) खेत में, अथवा (याम्) जिसको (गोषु) गौओं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में (वा) अथवा (याम्) जिसको (ते) तेरे (पुरुषेषु) पुरुषों में (चक्रुः) उन लोगों ने किया था ॥४॥

भावार्थ—जो दुष्ट लोग प्रजा को किसी प्रकार से सतावें, प्रजागण और राजपुरुष मिलकर दुष्टों का नाश करें ॥४॥

यह मन्त्र आचुका है—अ० ४। १८। ५॥

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥५॥

भाषार्थः (अघम्) बुराई (अघकृते) बुराई करने वाले को और (शपथः) शाप (शपथीयते) शाप करने वाले को (अस्तु) होवे। [उस दुष्ट कर्म को] (प्रत्यक्) पीछे की ओर (प्रतिप्रहिण्मः) हम हटा देते हैं (यथा) जिस से [वह दुष्ट कर्म] (कृत्याकृतम्) हिंसा करने वाले को (हनत्) मारे ॥५॥

भावार्थः—दुष्कर्मी कटुभाषी दुष्ट को यथानीति दण्ड दिया जावे ॥५॥

प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥६॥

भाषार्थः—(प्रतीचीनः) प्रत्यक्ष चलने वाला, (आङ्गिरसः) वेदों का जानने वाला (नः) हमारा (अध्यक्षः) अध्यक्ष और (पुरोहितः) पुरोहित [अग्रगामी] तू (कृत्याः) हिंसाओं को (प्रतीचीः) प्रतिकूलगति (आकृत्य) सर्वथा करके (अमून्) उन (कृत्याकृतः) हिंसाकारियों को (जहि) मार डाल ॥६॥

भावार्थः—वेदज्ञाता नीतिनिपुण पुरुष दुराचारियों को यथावत् अनुसंधान करके दण्ड देवे ॥६॥

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम्।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ॥७॥

भाषार्थः—(यः) जिस [दुष्ट] ने (त्वा) तुझ से (उवाच) कहा—"(उदाय्यम्) उदय को प्राप्त हुए (प्रतिकूलम्) विरुद्ध पक्षवाले शत्रु को (परा इहि इति) जाकर प्राप्त हो"। (कृत्ये) हे हिंसा क्रिया! (तम्) उसकी ओर (अभिनिवर्तस्व) लौटकर जा, (अस्मान्) हम (अनागसः) निर्दोषियों को (मा इच्छः) मत चाह ॥७॥

भावार्थः—जो दुष्ट जन धर्मात्माओं को शत्रु जान कर सतावें, उन्हें पूरा पूरा दण्ड मिले ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्ते परूँषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया ।
तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥८॥

भाषार्थः –[हे हिंसा क्रिया !] (यः) जिस [शत्रु] ने (ते) तेरे (परूंषि) जोड़ों को (सन्दधौ) जोड़ा था, (इव) जैसे (ऋभुः) बुद्धिमान् [शिल्पी] (रथस्य) रथ के [जोड़ों को] (धिया) अपनी बुद्धि से। (तम्) उसको (गच्छ) पहुंच, (तत्र) वहां पर (ते) तेरा (अयनम्) घर है, (अयम्) यह (जनः) पुरुष (ते) तेरा (अज्ञातः) अनजान [होवे] ॥८॥

भावार्थः – जो मनुष्य प्रपंच रचकर प्रजाजनों को गुप्त रीति से सतावें उन्हें दण्ड दिया जावे ॥८॥

ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शंभ्वी३ दं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥९॥

भाषार्थः –[हे हिंसा !] (ये) जिन (विद्वलाः) दुःखदायी, (अभिचारिणः) विरुद्ध आचरण वालों ने (त्वा) तुझे (कृत्वा) बनाकर (आलेभिरे) ग्रहण किया था। (इदम्) यह (शंभु) सुखदायी (कृत्यादूषणम्) हिंसा का खण्डन [उन के लिये] (पुनःसरम्) अवश्य ज्ञान कराने वाला (प्रतिवर्त्म) प्रत्यक्ष मार्ग है। (तेन) उसी [कारण] से (त्वा) तुझे (स्नपयामसि) हम शुद्ध करते हैं ॥९॥

भावार्थः – राजा दुराचारियों को ऐसी उत्तम नीति से सुधारे कि उनके आचार विचार फिर धार्मिक हो जावें ॥९॥

यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥१०॥

भाषार्थः—(यत्) यदि (दुर्भगाम्) दुर्भाग्य वाली, [अथवा] (स्नपिताम्) शुद्ध आचरण वाली, [अथवा] (मृतवत्साम्) मरे बच्चे वाली [शोकातुर स्त्री] के (उपेयिम) हम पास गये हैं। (सर्वम्) सब (पापम्) पाप (मत्) मुझ से (अप एतु) हट जावे, (द्रविणम्) बल (मा) मुझको (उप तिष्ठतु) प्राप्त हो ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य से दुष्कर्म हो जावे तो वह यथावत् दण्ड भोगकर धर्म में प्रवृत्त होकर सुखी होवे ॥१०॥

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्या३त् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) यदि (यज्ञे) यज्ञ [श्रेष्ठ कर्म करने] में (पितृभ्यः) पितरों [माता पिता आचार्य आदि] को (ददतः) दान करते हुए (ते) तेरा (नाम वा) नाम (जगृहुः) उन्होंने लिया है। (सर्वस्मात्) [उनके] प्रत्येक (संदेश्यात्) अभीष्ट (पापात्) पाप से (इमाः) यह (ओषधीः) ओषधियां [ओषधि रूप दुःखनाशक विद्वान् पुरुष] (त्वा) तुझको (मुञ्चन्तु) मुक्त करें ॥११॥

भावार्थः—यदि कोई पुरुष किसी सत्पुरुष को दान आदि शुभकर्म में मिथ्या दोष लगावें, विद्वान् लोग यथायोग्य अनुसन्धान करके उस दोष से उसे मुक्त करें ॥११॥

देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात् ।

मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥१२॥

भाषार्थः—(देवैनसात्) विजयी पुरुषों के लिये पाप से, (पित्र्यात्) पितरों [माता पिता गुरु आदि] के लिये पाप से, (संदेश्यात्) अभीष्ट और (अभिनिष्कृतात्) प्रतिकूल सिद्ध किये हुए (नामग्राहात्) नामग्रहण से (वीरुधः) ओषधें [ओषधि-समान उपकारी लोग] (त्वा) तुझ को (वीर्येण) अपने सामर्थ्य द्वारा, (ब्रह्मणा) तप द्वारा, (ऋग्भिः) वेदवाणियों द्वारा और (ऋषीणाम्) ऋषियों के (पयसा) ज्ञान द्वारा (मुञ्चन्तु) मुक्त करें ॥१२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग दुष्कर्मियों को धर्मानुसार दण्ड देकर और यथावत् वेदादि शास्त्रों के उपदेश से उनको उनके दुष्ट स्वभावों से छुड़ावें ॥१२॥

यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् ।

एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥१३॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (वातः) वायु (भूम्याः) भूमि से (रेणुम्) रेणु [धूलि] को (च) और (अन्तरिक्षात्) आकाश से (अभ्रम्) मेघ को (च्यावयति) सरका देता है। (एव) वैसे ही (मत्) मुझ से (सर्वम्) सब (ब्रह्मनुत्तम्) ब्राह्मणों द्वारा हटाया गया (दुर्भूतम्) पाप (अप अयति) दूर चला जावे ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्य सदुपदेश पाकर पाप कर्म छोड़ने में शीघ्रता करे ॥१३॥

अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।

कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(विनद्धा) खुली हुई, (गर्दभी इव) गदही के समान (नानदती) अति रेंकती हुई तू (अप क्राम) भाग जा। (वीर्यवता) पराक्रमी (ब्रह्मणा) ब्रह्मज्ञानी करके (इतः) यहां से (नुत्ता) निकाली हुई तू (कर्तॄन्) हिंसकों में (नक्षस्व) पहुंच ॥१४॥

भावार्थः—नीतिनिपुण लोगों के उपाय से हिंसक लोग आपस में विरोध करके निर्बल हो जावे ॥१४॥

अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनीं विश्वरूपा कुरूटिनीं ॥१५॥

भाषार्थः—"(कृत्ये) हे हिंसा! [अर्थात् हिंसक] (अयम् पन्थाः इति) यह मार्ग है"—(त्वा) तुझे (नयामः) हम ले चलते हैं, (अभिप्रहिताम्) [हमारे] प्रतिकूल भेजी हुई (त्वा) तुझ को (प्रति) उलटा (प्र हिण्मः) हम हटाते हैं। (तेन) उसी [मार्ग] से (भञ्जती) टूटती हुई तू [उन पर] (अभि याहि) चढ़ाई कर, (इव) जैसे (अनस्वती) बहुत रथों वाली, (विश्वरूपा) सब अङ्गों [हाथी, घोड़ों आदि] वाली (कुरूटिनी) बांकेपन से रोकनेवाली (वाहिनी) सेना [चढ़ाई करती है] ॥१५॥

भावार्थः—नीतिमान् सेनापति अपने पराक्रम से शत्रु सेना में शीघ्र हलचल मचा देवे कि वे आपस में लड़ने लगें ॥१५॥

परांक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या३ अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥१६॥

भाषार्थः—(पराक्) आगे की ओर (ते) तेरे लिये (ज्योतिः) ज्योति [अग्नि आदि प्रकाश] है, (अर्वाक्) इस ओर (ते) तेरे लिये (अपथम्) मार्ग नहीं है, (अस्मत्) हम से (अन्यत्र) दूसरे स्थान में [अपने] (अयना) मार्गों को (कृणुष्व) कर। (परेण) दूसरे [मार्ग] से (नवतिम्) नब्बे [अर्थात् अनेक] (दुर्गाः) बड़ी कठिन, (नाव्याः) नावों से उतरने योग्य (स्रोत्याः) नदियों को (अति) पार करके (इहि) जा, [हमको] (मा क्षणिष्ठाः) मत घायल कर, (परा इहि) हट जा ॥१६॥

भावार्थः—चतुर सेनापति उचित व्यूह रचना से शत्रु सेना को आग्नेय आदि अस्त्र शस्त्रों द्वारा आगे पीछे से रोक दे और अपने बचाने के लिये पार्श्व मार्ग से उसे निकल जाने दे ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातं इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्त्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥१७॥

भाषार्थः—(कर्तॄन्) हिंसकों को (नि मृणीहि) मार डाल और (पादय=पातय) गिरा दे, (वातः इव) जैसे वायु (वृक्षान्) वृक्षों को, (एषाम्) इनकी (गाम्), गौ, (अश्वम्) घोड़ा और (पुरुषम्) पुरुष को (मा उत् शिषः) मत छोड़। (कृत्ये) हे हिंसा शील! (इतः) यहां से (निवृत्य) लौट कर (अप्रजास्त्वाय) [उनकी] प्रजा [पुत्र, पौत्र, सेवक आदि] की हानि के लिये [उन्हें] (बोधय) जगा दे ॥१७॥

भावार्थः—सेनापति शत्रुओं को ऐसा हरा देवे कि वे सर्वथा उपाय-हीन और राज्यहीन हो जावें ॥१७॥

यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥१८॥
उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् । तदेतु यत
आभृतं तत्राश्व इव वि वर्तताम् हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥१९॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (याम् याम्) जिस जिस (कृत्याम्) हिंसा क्रिया को (वा) अथवा (वलगम्) गुप्त कर्म को (ते) तेरे (बर्हिषि) जल में, (श्मशाने) मरघट में [अथवा] (क्षेत्रे) खेत में (धीरतराः) धीरों के दबाने वालों ने (निचख्नुः) दबा दिया है। (वा) अथवा (गार्हपत्ये) गृहपतियों करके संयुक्त (अग्नौ) अग्नि में (पाकम्) परिपक्व स्वभाववाले, (सन्तम्) सन्त [सदाचारी] और (अनागसम्) निर्दोषी (त्वा) तेरे (अभिचेरुः) उन्होंने विरुद्ध आचरण किया है ॥१८॥

[उस] (अनुबुद्धम्) ताक लगाये गये, (उपाहृतम्) प्रयोग किये गये, (निखातम्) दबाये गये [सुरंग, गढ़े आदि में छिपाये गये] (वैरम्) वैर रूप (त्सारि) टेढ़े (कर्त्रम्) कटार को (अनु अविदाम) हमने ढूंढ़ लिया है। (तत्) वह (एतु) चला जावे, (यतः) जहां से (आभृतम्) लाया गया है, (तत्र) वहां पर (अश्वः इव) घोड़े के समान (वि वर्तताम्) लौट जावे, (कृत्याकृतः) हिंसा करने वाले की (प्रजाम्) प्रजा [पुत्र, पौत्र, भृत्य आदि] को (हन्तु) मारे ॥१९॥

भावार्थः—जो शत्रु लोग जल आदि के उपयोगी स्थान में प्रकट वा गुप्त खाई, सुरंग आदि बनाकर हानिकारक क्रिया करें, चतुर सेनापति उन का खोज लगाकर उनको वैसी ही क्रियाओं से विध्वंस करे ॥१८, १९॥

इन मन्त्रों का मिलान करो—अथर्व० ५। ३१। ८, ९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥२०॥

भाषार्थः—(स्वायसाः) सुन्दर रीति से लोहे की बनी (असयः) तलवारें (नः गृहे) हमारे घर में (सन्ति) हैं, (कृत्ये) हे हिंसा क्रिया ! (ते) तेरे (परूंषि) जोड़ों को, (यतिधा) जितने प्रकार के हैं, (विद्म) हम जानते हैं। (एव) बस (उत् तिष्ठ) खड़ी हो जा, (इतः) यहां से (परा इहि) चली जा, (अज्ञाते) हे अपरिचित! तू (इह) यहाँ (किम्) क्या (इच्छसि) चाहती है ॥२० ॥

भावार्थः—सेनापति अच्छे २ अस्त्र शस्त्रों से शत्रुओं के अस्त्र शस्त्र और सेना का नाश करे, और अनजान पुरुष को न आने दे ॥२०॥

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती ॥२१॥

भाषार्थः—(कृत्ये) हे हिंसा क्रिया ! (ते) तेरी (ग्रीवाः) ग्रीवा की नाड़ियों (च) और (पादौ) दोनों पैरों को (अपि) भी (कर्त्स्यामि) मैं काटूंगा, (निः द्रव) निकल जा। (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि [के समान राजा और मन्त्री] (अस्मान्) हमारी (रक्षताम्) रक्षा करें, (यौ) जो दोनों (प्रजानाम्) प्रजाओं के बीच (प्रजावती) श्रेष्ठ प्रजा वाली [माता के तुल्य हैं] ॥२१॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री दुराचारियों के गले और पादादि अङ्ग कटवा कर प्रजा की सदा रक्षा करें ॥२१॥

सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥२२॥

भाषार्थः—(सोमः) ऐश्वर्यवान् (राजा) राजा (अधिपाः) अधिक पालन करने वाला (च) और (मृडिता) सुख देने वाला है, (भूतस्य) संसार के (पतयः) पालन करने वाले [राजपुरुष] (नः) हमें (मृडयन्तु) सुख देते रहें ॥२२॥

भावार्थः—राजा और राजपुरुष प्रजा को सुख पहुंचाने में सदा तत्पर रहें ॥२२॥

भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते ।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥२३॥

भाषार्थः—(भवाशर्वौ) सुख देने वाले और दुःख नाश करने वाले [राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मन्त्री दोनों] (पापकृते) पाप करने वाले (कृत्याकृते) हिंसा करने वाले और (दुष्कृते) दुष्कर्मी पुरुष के लिये (देवहेतिम्) विद्वानों के बज्र (विद्युतम्) बिजुली [के शस्त्र] को (अस्यताम्) गिरावें ॥२३॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री दुष्टों को यथावत् दंड देकर प्रजा में शांति रक्खें ॥२३॥

यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतो३ऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥२४॥

भाषार्थः—(यदि) जो (कृत्याकृता) हिंसा करने वाले पुरुष द्वारा (संभृता) साधी गयी (विश्वरूपा) अनेक रूप वाली [हिंसा] (द्विपदी) दोनों [स्त्री पुरुष समूह] में गति वाली, (चतुष्पदी) चारों [ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासाश्रम] में पद वाली और (अष्टापदी) आठों [चार पूर्व आदि और चार आग्नेय आदि मध्य दिशाओं] में व्याप्ति वाली (भूत्वा) होकर (एयथ) तू आयी है। (सा) सो (दुच्छुने) हे दुष्टगति वाली ! तू (इतः) यहां से (पुनः) लौट कर (परा इहि) चली जा ॥२४॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों में हिंसा कर्म बढ़ने से आश्रम व्यवस्था टूटकर संसार में दुःख फैलता है, इससे बुद्धिमान् राजा हिंसा को सदा नष्ट करे ॥२४॥

अभ्य१क्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥२५॥

भाषार्थः—(अभ्यक्ता) मली गयी, (आक्ता) चिकनी की गयी, (स्वरङ्कृता) भले प्रकार सजाई गयी, (सर्वम्) प्रत्येक (दुरितम्) सङ्कट को (भरन्ती) धारण करती हुई तू (परा इहि) चली जा। (कृत्ये) हे हिंसा ! तू (कर्तारम्) अपने बनाने वाले को (जानीहि) जान, (इव) जैसे (दुहिता) पुत्री (स्वम् पितरम्) अपने पिता को [जानती है] ॥२५॥

भावार्थः—जो शत्रु लोग छल करके दुःख देने वाली क्रिया को सुखदायी दिखावें, विद्वान् उस भेद को जानकर दुष्टों को दंड देवें ॥२५॥

परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय ।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥२६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि कन्या महाविद्यालय पुस्तकालय

भावार्थः—(कृत्ये) हे हिंसा ! (परा इहि) चली जा, (मा तिष्ठः) मत खड़ी हो, (विद्धस्य) घायल के [पद से] (इव) जैसे (पदम्) ठिकाने को (नय) पाले ॥

[हे शूर !] (सः) वह [शत्रु] (मृगः) मृग [समान है], और (त्वम्) (मृगयुः) व्याध [समान है], वह (त्वा) तुझ को (न) नहीं (निकर्तुम् अर्हति) गिरा सकता है ॥२६॥

भावार्थः—राजा प्रयत्नपूर्वक अन्वेषण करके दुराचारियों की खोज लगावे, जैसे व्याध घायल आखेट के रुधिर चिन्ह से उसे ढूंढ़ लेता है ॥२६॥

मनु महाराज कहते हैं—अध्याय ८ श्लोक ४४ ॥

यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम् ।
नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥१॥

जैसे व्याध रुधिर के गिरने से मृग का ठिकाना पा लेता है, वैसे ही राजा अनुमान से धर्म का ठिकाना पावे ॥१॥

उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥२७॥

भाषार्थः—(अपरः) अति श्रेष्ठ [बड़ा सावधान पुरुष] (उत) ही (पूर्वासिनम्) पहिले [चोट] चलाने वाले को (प्रत्यादाय) उलटा पकड़कर (इष्वा) तीर से (हन्ति) मारता है। (अपरः) अति श्रेष्ठ (उत) ही (पूर्वस्य निघ्नतः) पहिले चोट मारने वाले का (प्रति) बदले में (नि) निरन्तर (हन्ति) हनन करता है ॥२७॥

भावार्थः—सावधान दूरदर्शी पुरुष शत्रु की चोट लगने से पहिले ही उसे मारता है, और वीर मनुष्य ही वैरी की चोट से बचकर उसका हनन करता है ॥२७॥

एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ ।
यस्त्वा चकार तं प्रति ॥२८॥

भाषार्थः—(मे) मेरे (एतत्) इस [निर्णय सूचक] (वचः) वचन को (हि) अवश्य (शृणु) सुन, (अथ) फिर (इहि) जा (यतः) जहां से (एयथ) तू आयी है। (यः) जिसने (त्वा) तुझे (चकार) बनाया है (तम् प्रति) उसके पास [जा] ॥२८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान तिथी संख्या

भावार्थः—राजा निर्णयपूर्वक अपराधी को दोष बलात्कार दोष के [अनु]सार दण्ड देवे ॥२८॥

[अनागो]हत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
[यत्रय]त्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥२९॥

भाषार्थः—(कृत्ये) हे हिंसा क्रिया ! (अनागोहत्या) निर्दोषी की हत्या (...) अवश्य (भीमा) भयानक है, (नः) हमारी (गाम्) गौ, (अश्वम्) घोड़े और (पुरुषम्) पुरुष को (मा वधीः) मत मार । (यत्रयत्र) जहां जहां पर तू (निहिता) [ग]ुप्त रक्खी गयी (असि) है, (ततः) वहां से (त्वा) तुझ को (उत् स्थापयामसि) हम उठाये देते हैं, तू (पर्णात्) पत्ते से (लघीयसी) अधिक हलकी (भव) हो जा ॥२९॥

भावार्थः—राजा विचारपूर्वक अनपराधियों के गुप्तरीति से सताने [वा]ले दुराचारियों को उचित दण्ड देकर अपने वश में रक्खे ॥२९॥

यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥३०॥

भाषार्थः—(यदि) जो तुम (तमसा) अन्धकार से (आवृता) ढक लेने वाले (जालेन) जाल से (अभिहिताः इव) बन्धी हुई के समान (स्थ) हो । (इतः) यहां से (सर्वाः) सब (कृत्याः) हिंसा क्रियाओं को (संलुप्य) काट डालकर (पुनः) फिर (कर्त्रे) बनाने वाले के पास (प्र हिण्मसि) हम भेजे देते हैं ॥३०॥

भावार्थः - जो छली मनुष्य दीन अज्ञानियों को फांसकर उनसे अप[राध] करावें, राजा खोज करके उन बहकाने वालों को उचित दण्ड [देवे] ॥३०॥

कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥३१॥

भाषार्थः—(कृत्ये) हे कर्तव्यकुशल [सेना !] (कृत्याकृतः) हिंसा करने [वा]ले (वलगिनः) गुप्त कर्म करने वाले और (अभिनिष्कारिणः) विरुद्ध यत्न करने [वा]ले की (प्रजाम्) प्रजा [सेवक आदि] को (मृणीहि) मार डाल, (मा उत् शिषः) [मत] छोड़, (अमून्) उन (कृत्याकृतः) हिंसा करने वालों को (जहि) नाश [कर] ॥३१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—चतुर सेनापति अपनी सुशिक्षित सेना द्वारा शत्रुओं को दल बल सहित नाश कर दे ॥३१॥

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥३२॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (सूर्यः) सूर्य (तमसः परि) अन्धकार में से (मुच्यते) छुटता है और (रात्रिम्) रात्रि (च) और (उषसः) उषा [प्रभात समय] के (केतून्) चिह्नों को (जहाति) त्यागता है। (एव) वैसे ही (अहम्) मैं (कृत्याकृता) हिंसा करने वाले करके (कृतम्) किये हुए (सर्वम्) सब (दुर्भूतम्) दुष्ट (कर्त्रम्) कर्म को (जहामि) त्यागता हूं, (इव) जैसे (हस्ती) हाथी (दुरितम्) कठिन (रजः) देश को [पार कर जाता है] ॥३२॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि अपनी तीव्र बुद्धि द्वारा दुष्टों की दुष्टता से पार होकर प्रकाशमान और प्रसन्न होवे, जैसे सूर्य अन्धकार को हटाकर प्रकाशमान होता है, अथवा जैसे हाथी कठिन स्थानों को पार कर जाता है ॥३२॥

सूक्तम् ॥२॥

१—३३ ॥ प्रजापतिर्ब्रह्म वा देवता ॥ १–३, ७, ८ त्रिष्टुप्, ४ निचृत् त्रिष्टुप्, ५, ६, १०, १२—२७, २९—३२ अनुष्टुप्, ६ निचृद् जगती, ११ जगती, २८ बृहती, ३३ निचृदनुष्टुप् ॥

मनुष्यशरीरमहिमोपदेशः—मनुष्य शरीर की महिमा का उपदेश ॥

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ । केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥१॥

भाषार्थः—(केन) किस करके (पुरुषस्य) मनुष्य की (पार्ष्णी) दोनों एड़ियां (आभृते) पुष्ट की गयीं, (केन) किस करके (मांसम्) मांस (संभृतम्) जोड़ा गया, (केन) किस करके (गुल्फौ) दोनों टकने। (केन) किस करके (पेशनीः) सुन्दर अवयवों वाली (अङ्गुलीः) अङ्गुलियां, (केन) किस करके (खानि) इन्द्रियां, (केन) किस करके (उच्छ्लङ्खौ) दोनों उच्छ्लङ्ख [पांव के तलवे, जोड़े गये], (कः) किस ने [भूगोल के] (मध्यतः) बीचों बीच (प्रतिष्ठाम्) ठिकाना [पांव रखने को, बनाया] ॥१॥

भावार्थः—मन्त्र १–४ प्रश्न हैं। जिज्ञासु सदा खोजता रहे कि मनुष्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अद्भुत शरीर, अद्भुत अंग, और स्थान आदि किस अद्भुत स्वरूप ने बनाये हैं ॥१॥

कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य । जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व स्विज्जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत ॥२॥

भाषार्थः—(कस्मात्) किस [पदार्थ] से (नु) अब (पुरुषस्य) मनुष्य के (अधरौ) नीचे के (गुल्फौ) दोनों टकने और (उत्तरौ) ऊपर के (अष्ठीवन्तौ) दोनों घुटने (अकृण्वन्) उन [ईश्वर गुणों] ने बनाये हैं। (जङ्घे) दोनों टांगों को (निर्ऋत्य) अलग अलग करके (क्व स्वित्) किसके भीतर (जानुनोः) दोनों घुटनों के (संधी) दोनों जोड़ों को (नि अदधुः) उन्होंने जमाया, (कः उ) किस ने ही (तत्) उसे (चिकेत) जाना है ॥२॥

भावार्थः—अब यह प्रश्न है कि किस वस्तु से, किस बुद्धिमत्ता से, किस ने मनुष्य देह के अद्भुत अंगों को एक दूसरे में जोड़ा है ॥२॥

चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् । श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ॥३॥

भाषार्थः—(चतुष्टयम्) चार प्रकार से (संहितान्तम्) सटे हुए सिरों वाला, (जानुभ्याम् ऊर्ध्वम्) दोनों घुटनों से ऊपर, (शिथिरम्) शिथिर [ढीला] (कबन्धम्) धड़ (युज्यते) जुड़ता है। (यत्) जो (श्रोणी) दोनों कूल्हे और (ऊरू) दोनों जांघें हैं, (कः उ) किसने ही (तत्) उनको (जजान) उत्पन्न किया, (याभ्याम्) जिन दोनों के साथ (कुसिन्धम्) [चिपचिपा] धड़ (सुदृढम्) बड़ा दृढ़ (बभूव) हुआ है ॥३॥

भावार्थः— अब यह प्रश्न है कि चार अर्थात् दोनों कूल्हे और दोनों जांघों पर जमे हुए जल वा रुधिर आदि रसों से संयुक्त इस ढीले शरीर को अनेक नाड़ियों में कसकर किसने ऐसा दृढ़ बनाया है ॥३॥

कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य । कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ॥४॥

भाषार्थः—(ते) वे (कति) कितने और (कतमे) कौन से (देवाः) दिव्य गुण (आसन्) थे, (ये) जिन्होंने (पुरुषस्य) मनुष्य के (उरः) छाती और (ग्रीवाः) गले को (चिक्युः) एकत्र किया। (कति) कितनों ने (स्तनौ) दोनों स्तनों को (वि अदधुः) बनाया, (कः) किसने (कफोडौ) दोनों कपोलों [गालों] को [बनाया],

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कति) कितनों ने (स्कन्धान्) कन्धों को और (कति) कितनों ने (पृष्टीः) पसलियों को (अचिन्वन्) एकत्र किया ॥४॥

भावार्थः – अब यह प्रश्न है कि कितने और किन गुणों के कारण से छाती ग्रीवा आदि अवयवों में अद्भुत गुण रक्खे गये हैं ॥४॥

को अस्य बाहू समभरद् वीर्यं करवादिति ।
अंसौ को अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥५॥

भाषार्थः – (कः) कर्ता [परमेश्वर] ने (अस्य) इस [मनुष्य] के (बाहू) दोनों भुजाओं को [इस लिये] (सम् अभरत्) यथावत् पुष्ट किया है – कि वह (वीर्यम्) वीर कर्म (करवात् इति) करता रहे। (तत्) इसीलिये (देवः) प्रकाशमान (कः) प्रजापति ने (अस्य) इस [मनुष्य] के (अंसौ) दोनों कन्धों को (कुसिन्धे) धड़ में (अधि) ऐश्वर्य से (आ) यथावत् (दधौ) धारण कर दिया है ॥५॥

भावार्थः—यहां से गत मन्त्रों का उत्तर है—सृष्टिकर्ता परमेश्वर ने इस मनुष्य को भुजा आदि अमूल्य अंग पुरुषार्थ करने के लिये दिये हैं ॥५॥

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् ।
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥६॥

भाषार्थः—(कः) कर्ता [परमेश्वर] ने [मनुष्य के] (शीर्षणि) मस्तक में (सप्त) सात (खानि) गोलक (वि ततर्द) खोदे, (इमौ कर्णौ) यह दोनों कान, (नासिके) दोनों नथने, (चक्षणी) दोनों आँखें और (मुखम्) एक मुख। (येषाम्) जिनके (विजयस्य) विजय की (मह्मनि) महिमा में (चतुष्पादः) चौपाये और (द्विपदः) दोपाये जीव (पुरुत्रा) अनेक प्रकार से (यामम्) मार्ग (यन्ति) चलते हैं ॥६॥

भावार्थः—कर्ता जगदीश्वर ने मस्तक के सातों गोलक अमूल्य पदार्थ बनाये हैं। जो प्राणी जितेन्द्रिय होकर इनको वेद विहित कर्मों में लगाते हैं वे सुखी होते हैं ॥६॥

हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥७॥

भाषार्थः—उसने (हि) ही [मनुष्य के] (हन्वोः) दोनों जावड़ों में (पुरूचीम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत चलने वाली (जिह्वाम्) जीभ को (अदधात्) धारण किया है, (अध) और [जीभ में] (महीम्) बड़ी [प्रभावशाली] (वाचम्) वाणी को (अधि शिश्राय) उपयुक्त किया है। (सः) वह (लोकेषु अन्तः) लोकों के भीतर (आ) सब ओर (वरीवर्ति) घूमता रहता है और (अपः) आकाश को (वसानः) ढकते हुए (कः उ) कर्ता परमेश्वर ने ही (तत्) उसे (चिकेत) जाना है ॥७॥

भावार्थः—जिस सृष्टिकर्ता ने मनुष्य को वेद आदि शास्त्रों के सूक्ष्म विचार जानने और प्रकाश करने के लिये जीभ दी है, वह परमात्मा सब स्थानों में व्यापक है ॥७॥

मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् ।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥८॥

भाषार्थः—(यतमः) जौनसा (प्रथमः) सब से पहिला (यः) नियन्ता (अस्य) इस (पुरुषस्य) मनुष्य के (मस्तिष्कम्) भेजे को, (ललाटम्) ललाट [माथे] को, (ककाटिकाम्) ककाटिका [शिर के पिछले भाग] को, (कपालम्) कपाल [खोपड़ी] को और (हन्वोः) दोनों जावड़ों के (चित्यम्) संचय को (चित्वा) संचय करके [वर्तमान है], (सः) वह (कतमः) कौन सा (देवः) देव [स्तुति योग्य] (दिवम्) प्रकाश को (रुरोह) चढ़ा है ॥८॥

भावार्थः प्रश्न है कि जिसने मनुष्य देह के अति सुखदायी अंग बनाये हैं, वह सब में कौन सा प्रकाशमान देव है ॥८॥

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यः ।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥९॥

भाषार्थः—(बहुला) बहुत से (प्रियाप्रियाणि) प्रिय और अप्रिय कर्मों, (स्वप्नम्) सोने, (संबाधतन्द्र्यः) बाधाओं और थकावटों, (आनन्दान्) आनन्दों, (च) और (नन्दान्) हर्षों को (उग्रः) प्रचण्ड (पुरुषः) मनुष्य (कस्मात्) किस [कारण] से (वहति) पाता हैं ॥९॥

भावार्थः - अब प्रश्न है कि भलाई बुराई, सुख दुःख आदि मनुष्य किस कारण से पाता है ॥९॥

आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः ।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पुरुषे) मनुष्य में (नु) अब (आर्तिः) पीड़ा, (अवर्तिः) दरिद्रता, (निर्ऋतिः) महामारी और (अमतिः) कुमति (कुतः) कहाँ से [हैं]। (राद्धिः) पूर्णता, (समृद्धिः) सम्पत्ति, (अव्यृद्धिः) अन्यूनता, (मतिः) बुद्धि और (उदितयः) उदय क्रियायें (कुतः) कहां से [हैं] ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य अपने दुःख सुख, हानि लाभ, कुमति सुमति आदि के कारणों को विचारता रहे ॥१०॥

को अस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥११॥

भाषार्थः –(कः) प्रजापति [परमेश्वर] ने (अस्मिन् पुरुषे) इस मनुष्य में (विषुवृतः) नाना प्रकार घूमने वाले, (पुरुवृतः) बहुत घूमने वाले, (सिन्धुसृत्याय) समुद्र समान बहने के लिये (जाताः) उत्पन्न हुए, (तीव्राः) तीव्र [शीघ्रगामी], (अरुणाः) बेंगनी, (लोहिनीः) लाल वर्णवाले (ताम्रधूम्राः) तांबे समान धूयें के वर्ण वाले, (ऊर्ध्वाः) ऊपर जानेवाले, (अवाचीः) नीचे की ओर चलने वाले और (तिरश्चीः) तिरछे बहने वाले (आपः=अपः) जलों [रुधिर धाराओं] को (वि अदधात्) बनाया है ॥११॥

भावार्थः—परमेश्वर ने मनुष्य शरीर में रुधिर के सञ्चार के लिए नाना वर्ण अनेक स्थूल सूक्ष्म नाड़ियां बनाई हैं जिसके कारण से मनुष्य अनेक चेष्टायें करके अपने मनोरथ सिद्ध करता है ॥११॥

को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्मानं च नाम च।
गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे ॥१२॥

भाषार्थः—(कः) कर्ता [परमेश्वर] ने (अस्मिन्) इस [मनुष्य] में (रूपम्) रूप, (कः) कर्ता ने (मह्मानम्) महत्त्व (च) और (नाम) नाम (च) भी (अदधात्) रक्खा है, (कः) कर्ता ने (अस्मिन्) इस (पुरुषे) मनुष्य में (गातुम्) गति [प्रवृत्ति], (कः) कर्ता ने (केतुम्) विज्ञान (च) और (चरित्राणि) अनेक आचरणों को [रक्खा है] ॥१२॥

भावार्थः –परमात्मा ने अपनी न्याय व्यवस्था से मनुष्य में पराक्रम करने के लिये अनेक शक्तियां दी हैं ॥१२॥

को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु।
समानमस्मिन् को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(**कः**) कर्ता [प्रजापति] ने (**अस्मिन्**) इस [मनुष्य] में (**प्राणम्**) प्राण [भीतर जाने वाले श्वास] को, (**कः**) प्रजापति ने (**अपानम्**) अपान [बाहिर आने वाले श्वास] को (**उ**) और (**व्यानम्**) व्यान [सब शरीर में घूमने वाले वायु] को (**अवयत्**) बुना है। (**देवः**) देव [स्तुति योग्य] (**कः**) प्रजापति ने (**अस्मिन्**) इस (**पुरुषे**) मनुष्य में (**समानम्**) समान [हृदयस्थ वायु] को (**अधि शिश्राय**) ठहराया है ॥१३॥

भावार्थः—परमेश्वर ने शरीर में प्राण आदि वायु का ताना तान कर मनुष्य को प्रबल बनाया है ॥१३॥

को अस्मिन् यज्ञमंदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।
को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥१४॥

भावार्थः—(**कः**) किस (**एकः**) एक (**देवः**) देव [स्तुति योग्य] ने (**अस्मिन् पुरुषे**) इस मनुष्य में (**यज्ञम्**) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान सामर्थ्य] को, (**कः**) किस ने (**अस्मिन्**) इस [मनुष्य] में (**सत्यम्**) सत्य [विधि] को, (**कः**) किस ने (**अनृतम्**) असत्य [निषेध] को (**अधि अदधात्**) रख दिया है। (**कुतः**) कहां से (**मृत्युः**) मृत्यु और (**कुतः**) कहां से (**अमृतम्**) अमरपन [आता है] ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य विधि और निषेध के मर्म को समझकर शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ाने में प्रयत्न करे ॥१४॥

को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् ।
बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ॥१५॥

भावार्थः—(**कः**) विधाता [परमेश्वर] ने (**अस्मै**) इस [मनुष्य] को (**वासः**) निवास स्थान (**परि**) सब ओर से (**अदधात्**) दिया है, (**कः**) विधाता ने (**अस्य**) इस [मनुष्य] का (**आयुः**) आयु [जीवन काल] (**अकल्पयत्**) बनाया है। (**कः**) विधाता ने (**अस्मै**) इस [मनुष्य] को (**बलम्**) बल (**प्र अयच्छत्**) दिया है, (**कः**) विधाता ने (**अस्य**) इस [मनुष्य] के (**जवम्**) वेग को (**अकल्पयत्**) रचा है ॥१५॥

भावार्थः—परमेश्वर ने मनुष्य के पुरुषार्थ अनुसार उसे उन्नति के अनेक साधन दिये हैं ॥१५॥

केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(केन) किस [सामर्थ्य] से उस [परमेश्वर] ने (आपः) जल को (अनु) लगातार (अतनुत) फैलाया है, (केन) किस [सामर्थ्य] से (अहः) दिन (रुचे) रुचने के लिये (अकरोत्) बनाया है। (केन) किस [सामर्थ्य] से उसने (उषसम्) प्रभात को (अनु) लगातार (ऐन्ध) चमकाया है, (केन) किस [सामर्थ्य] से उसने (सायंभवम्) सायंकाल की सत्ता को (ददे) दिया है ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्य को जानना चाहिये कि परमेश्वर ने किस सामर्थ्य से यह सृष्टि रची है ॥१६॥

को अस्मिन् रेतो न्यदधात् तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् को बाणं को नृतो दधौ ॥१७॥

भाषार्थः—(कः) प्रजापति [परमेश्वर] ने (अस्मिन्) इस [मनुष्य] में (रेतः) पराक्रम [इसलिये] (नि) निरन्तर (अदधात्) रख दिया है [कि उस का] (तन्तुः) तन्तु [तांता] (आ) चारों ओर (तायताम् इति) फैले। (कः) प्रजापति ने (मेधाम्) बुद्धि (अस्मिन्) इस [मनुष्य] में (अधि औहत्) लाकर दी है, (कः) प्रजापति ने (बाणम्) बोलना और (कः) प्रजापति ने (नृतः) नृत [शरीर चलाना] (दधौ) दिया है ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा ने मनुष्य को पराक्रम, बुद्धि आदि इसलिये दिये हैं कि मनुष्य सब से यथावत् उपकार लेकर आगे बढ़े ॥१७॥

केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद् दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥१८॥

भाषार्थः—(पुरुषः) मनुष्य ने (केन) प्रजापति [परमेश्वर] द्वारा (इमाम् भूमिम्) इस भूमि को (और्णोत्) ढका है, (केन) प्रजापति द्वारा (दिवम्) आकाश को (परि अभवत्) घेरा है। (केन) प्रजापति द्वारा (मह्ना) [अपनी] महिमा से (पर्वतान्) पर्वतों और (केन) प्रजापति द्वारा (कर्माणि) रचे हुए वस्तुओं को (अभि=अभि अभवत्) वश में किया है ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की उपासना से विवेक और आत्मिक बल द्वारा सृष्टि के सब पदार्थों को वश में करे ॥१८॥

केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।
केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मनः ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः - वह [मनुष्य] (केन) प्रजापति [परमेश्वर] द्वारा (पर्जन्यम्) सींचने वाले [मेघ] को, (केन) प्रजापति द्वारा (विचक्षणम्) दर्शनीय (सोमम्) अमृत रस को, (केन) प्रजापति द्वारा (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा संगतिकरण और दान] (च) और (श्रद्धाम्) श्रद्धा [सत्य धारण सामर्थ्यं] को (च) भी, और (केन) प्रजापति द्वारा (अस्मिन्) इस [शरीर] में (निहितम्) रक्खे हुए (मनः) मन को (अनु) लगातार (एति) पाता है ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की आराधना से अनेक सामर्थ्य प्राप्त करके अपने और दूसरों के मन को वश में करता है ॥१९॥

केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।
केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥२०॥

भाषार्थः—(पुरुषः) मनुष्य (केन) किसके द्वारा (श्रोत्रियम्) वेदज्ञानी [आचार्य] को, (केन) किसके द्वारा (इमम्) इस (परमेष्ठिनम्) सब से ऊंचे ठहरने वाले [परमेश्वर] को (आप्नोति) पाता है । उसने (केन) किसके द्वारा (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि [सूर्य, बिजुली और पार्थिव अग्नि] को, (केन) किसके द्वारा (संवत्सरम्) [अर्थात् काल] को (ममे) मापा है ॥२०॥

भावार्थः - मनुष्य विचारता रहे कि वह किस प्रकार से आचार्य और परमेश्वर की आज्ञा पूरण कर सकता है और सूर्य आदि पदार्थों से कैसे उपकार ले सकता है। इसका उत्तर आगामी मन्त्र में है ॥२०॥

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।
ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥२१॥

भाषार्थः—(पुरुषः) मनुष्य (ब्रह्म=ब्रह्मणा) ब्रह्म [वेद] द्वारा (श्रोत्रियम्) वेदज्ञानी [आचार्य] को और (ब्रह्म) वेद द्वारा (इमम्) इस (परमेष्ठिनम्) सबसे ऊपर ठहरने वाले [परमात्मा] को (आप्नोति) पाता है। उस [मनुष्य] ने (ब्रह्म) वेद द्वारा (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि [सूर्य, बिजुली और पार्थिव अग्नि] को, (ब्रह्म) वेद द्वारा (संवत्सरम्) संवत्सर [अर्थात् काल] को (ममे) मापा है ॥२१॥

भावार्थः—यह गत मन्त्र का उत्तर है। मनुष्य वेद द्वारा आचार्य और परमेश्वर की आज्ञा पालन करे और सूर्य और काल आदि से उपकार लेवे ॥२१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन॑ दे॒वाँ अनु॑ क्षियति॒ केन॒ दैव॑जनी॒र्विशः॑ ।
केने॒दम॒न्यन्नक्ष॑त्रं॒ केन॒ सत् क्ष॒त्रमु॑च्यते ॥२२॥

भाषार्थः—वह [मनुष्य] (केन) किस के द्वारा (देवान्) स्तुति योग्य गुणों, और (केन) किस के द्वारा (दैवजनीः) दैव [पूर्वजन्मके अर्जित कर्म] से उत्पन्न (विशः अनु) मनुष्यों में (क्षियति) रहता है। (केन) किस के द्वारा (इदम्) यह (सत्) सत्य (क्षत्रम्) राज्य, और (केन) किसके द्वारा (अन्यत्) दूसरा [भिन्न] (नक्षत्रम्) अराज्य (उच्यते) बताया जाता है ॥२२॥

भावार्थः—विचारशील मनुष्य उत्तम गुणों और उत्तम लोगों से मिलने, धर्मयुक्त राज्य की विधि और अधर्म युक्त कुराज्य के निषेध पर विचार करे। इस का उत्तर आगामी मन्त्र में है ॥२२॥

ब्रह्म॑ दे॒वाँ अनु॑ क्षियति॒ ब्रह्म॒ दैव॑जनी॒र्विशः॑ ।
ब्रह्मे॒दम॒न्यन्नक्ष॑त्रं॒ ब्रह्म॒ सत् क्ष॒त्रमु॑च्यते ॥२३॥

भाषार्थः—वह [मनुष्य] (ब्रह्म=ब्रह्मणा) ब्रह्म [परमेश्वर] द्वारा (देवान्) स्तुति योग्य गुणों, और (ब्रह्म) ब्रह्म द्वारा (दैवजनीः) दैव [पूर्व जन्म के अर्जित कर्म] से उत्पन्न (विशः अनु) मनुष्यों में (क्षियति) रहता है। (ब्रह्म) ब्रह्म द्वारा (इदम्) यह (सत्) सत्य (क्षत्रम्) राज्य और (ब्रह्म) ब्रह्म द्वारा (अन्यत्) दूसरा [भिन्न] (नक्षत्रम्) अराज्य (उच्यते) बताया जाता है ॥२३॥

भावार्थः—यह गत मन्त्र का उत्तर है। मनुष्य परमेश्वर से वेद द्वारा उत्तम गुणों उत्तम लोगों को पावे और वेद द्वारा ही धर्म्म राज्य की विधि और अधर्म्म कुराज्य का निषेध सीखे ॥२३॥

केने॒यं भूमि॒र्विहि॑ता॒ केन॒ द्यौरुत्त॑रा हि॒ता ।
केने॒दमू॒र्ध्वं ति॒र्यक् चा॒न्तरि॑क्षं॒ व्यचो॑ हि॒तम् ॥२४॥

भाषार्थः—(केन) किस करके (इयम् भूमिः) यह भूमि (विहिता) सुधारी गई है, (केन) किस करके (द्यौः) सूर्य (उत्तरा) ऊंचा (हिता) धरा गया है। (च) और (इदम्) यह (ऊर्ध्वम्) ऊंचा, (तिर्यक्) तिरछा, चलने वाला (व्यचः) फैला हुआ (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष [आकाश] (हितम्) धरा गया है ॥२४॥

भावार्थः—ब्रह्म जिज्ञासु के लिये इन प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्रों में है ॥२४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म॑णा भूमि॒र्विहि॑ता ब्रह्म॒ द्यौरुत्त॑रा हि॒ता ।
ब्रह्मे॒दमू॒र्ध्वं ति॒र्यक् चा॒न्तरि॑क्षं॒ व्यचो॑ हि॒तम् ॥२५॥

भाषार्थः—(ब्रह्मणा) ब्रह्म [परमेश्वर] करके (भूमिः) भूमि (विहिता) सुधारी गयी है, (ब्रह्म) ब्रह्म करके (द्यौः) सूर्य (उत्तरा) ऊंचा (हिता) धरा गया है। (च) और (ब्रह्म) ब्रह्म करके (इदम्) यह (ऊर्ध्वम्) ऊंचा, (तिर्यक्) तिरछा चलने वाला, (व्यचः) फैला हुआ (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष [आकाश] (हितम्) धरा गया है ॥२५॥

भावार्थः—ब्रह्म परमेश्वर ने सब ऊंचे, नीचे और मध्यलोक बनाये हैं ॥२५॥

मू॒र्धान॑मस्य सं॒सीव्या॑थ॒र्वा हृद॑यं॒ च यत् ।
म॒स्ति॒ष्का॒दू॒र्ध्वः प्रैर॑य॒त् पव॑मा॒नोऽधि॑ शीर्ष॒तः ॥२६॥

भाषार्थः—(पवमानः) शुद्ध स्वभाव (अथर्वा) निश्चल परमात्मा (अस्य) इस [मनुष्य] के (मूर्धानम्) शिर (च) और (यत्) जो कुछ (हृदयम्) हृदय है [उसको भी] (संसीव्य) आपस में सींकर, (मस्तिष्कात्) भेजे [मस्तक बल] से (ऊर्ध्वः) ऊपर होकर (शीर्षतः अधि) शिर से ऊपर (प्र ऐरयत्) बाहिर निकल गया ॥२६॥

भावार्थः—परमात्मा ने मनुष्य के शिर और हृदय को नाड़ियों द्वारा आपस में मिलाकर विवेक सामर्थ्य दिया है। परन्तु वह आप अनन्त अनादि सर्व शक्तिमान् होकर मनुष्य की समझ से बाहिर है ॥२६॥

तद् वा अ॑थ॒र्वणः॒ शिरो॑ दे॒वको॒शः सम॑ुब्जितः ।
तत् प्रा॒णो अ॒भि र॑क्षति॒ शिरो॒ अन्न॒मथो॒ मनः॑ ॥२७॥

भाषार्थः—(तत् वै) वही (शिरः) शिर (अथर्वणः) निश्चल परमात्मा के (देवकोशः) उत्तम गुणों का भण्डार [भाण्डागार] (समुब्जितः) ठीक ठीक बना है। (तत्) उस (शिरः) शिर की (प्राणः) प्राण [जीवन वायु] (अभि) सब ओर से (रक्षति) रक्षा करता है, (अन्नम्) अन्न (अथो) और (मनः) मन [रक्षा करता है] ॥२७॥

भावार्थः—मनुष्य शिर के भीतर ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान लगाकर पर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्मा की सत्ता का सूक्ष्म विचार करता है। वह शिर प्राण, अन्न और मन द्वारा रक्षित रहता है ॥२७॥

ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा३ः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥२८।

भाषार्थः—(नु) क्या (ऊर्ध्वः) ऊंचा (सृष्टा ३ः) उत्पन्न होता हुआ और (नु) क्या (तिर्यङ्) तिरछा (सृष्टा ३ः) उत्पन्न होता हुआ (पुरुषः) वह मनुष्य (सर्वाः दिशः) सब दिशाओं में (आ) यथावत् (बभूवा ३) व्यापा है? (यः) जो [मनुष्य] (ब्राह्मणः) ब्रह्म [परमात्मा] की (पुरम्) [उस] पूर्ति को (वेद) जानता है, (यस्याः) जिस [पूर्ति] से [वह परमेश्वर] (पुरुषः) पुरुष [परिपूर्ण] (उच्यते) कहा जाता है ॥२८॥

भावार्थः—अब यह प्रश्न है कि जो योगी परमात्मा को साक्षात् कर लेता है, क्या उसके भीतर सब संसार में व्यापने की शक्ति हो जाती है? इसका उत्तर अगले मन्त्र में है ॥२८॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥२९॥

भाषार्थः—(यः) जो [मनुष्य] (वै) निश्चय करके (ब्रह्मणः) ब्रह्म [परमात्मा] की (अमृतेन) अमरपन [मोक्षसुख] से (आवृताम्) छाई हुई (ताम्) उस (पुरम्) पूर्णता को (वेद) जानता है, (तस्मै) उस [मनुष्य] को (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] (च च) और (ब्राह्माः) ब्रह्म सम्बन्धी बोधों ने (चक्षुः) दृष्टि, (प्राणम्) प्राण [जीवन सामर्थ्य] और (प्रजाम्) प्रजा [मनुष्य आदि] दिये हैं ॥२९॥

भावार्थः—यह गत मन्त्र का उत्तर है। ब्रह्मज्ञानी पुरुष दिव्य दृष्टि वाला और महाबली होकर सब प्रकार से परिपूर्ण होता हुआ आनन्द भोगता है ॥२९॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥३०॥

भाषार्थः—(तम्) उस [मनुष्य] को (न वै) न कभी (चक्षुः) दृष्टि और (न) न (प्राणः) प्राण [जीवनसामर्थ्य] (जरसः पुरा) [पुरुषार्थ के] घटाव से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिले (जहाति) तजता है। (यः) जो मनुष्य (ब्रह्मणः) ब्रह्म [परमात्मा[की (पुरम्) [उस] पूर्ति को (वेद) जानता है, (यस्याः) जिस [पूर्ति] से वह [परमेश्वर] (पुरुषः) पुरुष [परिपूर्ण] (उच्यते) कहा जाता है ॥३०॥

भावार्थः— जो मनुष्य पूर्ण परमात्मा को जानता है, उस मनुष्य में दिव्यदृष्टि और आत्मबल सदा बना रहता है, जब तक वह पुरुषार्थ करता रहता है ॥३०॥

अ॒ष्टाच॑क्रा नव॑द्वारा दे॒वानां॒ पूर॑यो॒ध्या ।
तस्यां॑ हिर॒ण्यय॒ः कोश॑ः स्व॒र्गो ज्योति॒षावृ॑तः ॥३१॥

तस्मि॑न् हिर॒ण्यये॒ कोशे॒ त्र्य॑रे॒ त्रिप्र॑तिष्ठिते ।
तस्मि॑न् यद् य॒क्षमा॑त्म॒न्वत् तद् वै ब्र॑ह्म॒विदो॑ विदुः ॥३२॥

भाषार्थः—(अष्टाचक्रा) [योग के अङ्ग अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि, इन] आठों का कर्म [वा चक्र] रखनेवाली, (नवद्वारा) [सात मस्तक के छिद्र और मन और बुद्धिरूप] नवद्वार वाली (पूः) पूर्ति [पुरी देह] (देवानाम्) उन्मत्तों के लिये (अयोध्या) अजेय है। (तस्याम्) उस [पूर्ति] में (हिरण्ययः) अनेक बलों से युक्त (कोशः) कोश [भण्डार अर्थात् चेतन जीवात्मा] (स्वर्गः) सुख [सुखस्वरूप परमात्मा] की ओर चलने वाला (ज्योतिषा) ज्यो[illegible] [प्रकाश स्वरूप ब्रह्म] से (आवृताः) छाया हुआ है ॥३१॥

(तस्मिन् तस्मिन्) उसी ही (हिरण्यये) अनेक बलों से युक्त, (त्र्यरे) [स्थान. [illegible]न, जन्म इन] तीनों में गति वाले, (त्रिप्रतिष्ठिते) [कर्म, उपासना, ज्ञान इन] [illegible]तिष्ठा वाले (कोशे) कोश [भण्डार रूप जीवात्मा] में (यत्) जो (यक्षम्) [illegible] (आत्मन्वत्) आत्मा वाला [महापराक्रमी परब्रह्म] है, (तत् वै) उसको ही (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी लोग (विदुः) जानते हैं ॥३२॥

भावार्थः— शरीर की गति को अज्ञानी दुर्बलेन्द्रिय लोग नहीं समझते। शरीर के भीतर चेतन जीवात्मा है। जीवात्मा के बाहिर और भीतर ज्योतिस्वरूप परब्रह्म है। उस परब्रह्म को वेदवेत्ता योगीजन साक्षात् करते हैं ॥३१। ३२॥

प्र॒भ्राज॑मानां॒ हरि॑णीं॒ यश॑सा सं॒परी॑वृताम् ।
पुरं॑ हिर॒ण्यय॑ीं ब्रह्मा वि॑वे॒शाप॑राजिताम् ॥३३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] ने (भ्राजमानाम्) बड़ी प्रकाशमान (हरिणीम्) दुःख हरने वाली (यशसा) यश से (संपरिवृताम्) सर्वथा छायी हुई, (हिरण्ययीम्) अनेक बलों वाली, (अपराजिताम्) कभी न जीती गई (पुरम्) पूर्ति में (आ) सब ओर से (विवेश) प्रवेश किया है ॥३३॥

भावार्थः—विज्ञानी पुरुष सर्वथा अक्षय परिपूर्ण परमात्मा की उपासना से सदा आनन्द में मग्न रहते हैं ॥३३॥

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥३॥

१—२५ ॥ वरणो देवता १, ४, ७, ९, १०, १२ अनुष्टुप्, २, ३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५ निचृदनुष्टुप्, ८, १३, १४ पथ्या पङ्क्तिः, ११, १६ भुरिगनुष्टुप्, १५, १७—२५ षट्पदा जगती ॥

सर्वसम्पत्तिप्राप्त्युपदेशः – सब सम्पत्तियों के पाने का उपदेश ॥

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा ।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (मणिः) प्रशंसनीय (वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध, अथवा वरना वा वरुण औषध] (मे) मेरे (सपत्नक्षयणः) बैरियों का नाश करने वाला (वृषा) वीर्यवान् है। [हे प्राणी!] (तेन) उस से (त्वम्) तू (शत्रून्) शत्रुओं को (आ रभस्व) पकड़ ले, और (दुरस्यतः) दुराचारियों को (प्र मृणीहि) मार डाल ॥१॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य वरण आदि औषध द्वारा शरीर के रोगों का नाश करता है, वैसे ही विद्वान् वेदविद्या द्वारा आत्मिक दोष मिटावे ॥१॥

(वरणः) वरण ओषधिविशेष है, उसका वर्णन इस प्रकार है—देखो भावप्रकाश, पूर्वखण्ड, वटादिवर्ग, श्लोक ५६। ५७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरुण [के नाम] वरण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक हैं। वरना पित्तकारक, मल भेदक, और कफ़, मूत्रकृच्छ, पथरी, वात, गुल्म, वात से उत्पन्न रक्तविकार, और कृमि को मिटाता है, वह उष्ण, अग्नि को दीपन करने वाला, कसैला, मधुर, कड़वा, चर्परा, रूखा और हलका होता है ॥१, २ ॥

प्रैणान्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात् ।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः ॥२॥

भाषार्थः—(एनान्) इनको (प्रशृणीहि) कुचल डाल, (प्रमृण) मार डाल, (आ रभस्व) पकड़ले, (मणिः) प्रशंसनीय [वैदिक बोध] (ते) तेरा (पुर एता) अगुआ (पुरस्तात्) साम्हने (अस्तु) होवे। (देवाः) देवताओं [विजयी लोगों] ने (वरणेन) वरण [श्रेष्ठ वैदिक बोध वा वरना औषध] से (असुराणाम्) सुर विरोधी [दुष्टों] के (अभ्याचारम्) विरुद्ध आचरण को (श्वः श्वः) एक आगामी कल से दूसरी कल को [अर्थात् पहिले से ही] (अवारयन्त) रोका था ॥२॥

भावार्थः जैसे दूरदर्शी पूर्वज महात्माओं ने उत्तम ज्ञानों और उत्तम औषधों द्वारा आत्मिक और शारीरिक रोग मिटाये हैं, वैसे ही सब मनुष्य उत्तम गुणों और उत्तम ओषधियों के सेवन से उन्नति करें ॥२॥

अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति ॥३॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (मणिः) प्रशंसनीय (वरणः) वरण [वरणीय, मानने योग्य, वैदिक बोध वा वरना औषध] (विश्वभेषजः) समस्त भय जीतने वाला, (सहस्राक्षः) सहस्रों व्यवहार वाला, (हरितः) सिंह [समान] (हिरण्ययः) तेजोमय है। (सः) वह (ते) तेरे (शत्रून्) शत्रुओं को (अधरान्) नीचे (पादयाति) गिरावे, (पूर्वः) पहिले होकर तू (तान्) उन्हें (दभ्नुहि) दबा ले, (ये) जो (त्वा) तुझसे (द्विषन्ति) वैर करते हैं ॥३॥

भावार्थः—दूरदर्शी मनुष्य आत्मिक और शारीरिक रोग मिटाकर स्वस्थ होकर आनन्द भोगें ॥३॥

अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात् ।
अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ॥४॥

भाषार्थः—(अयम् अयम्) यही [वरण] (ते) तेरे लिये (विततान्) फैली

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई (कृत्याम्) हिंसा को (पौरुषेयात्) मनुष्य से किये हुए (भयात्) भय से, और (अयम्) यह (वरणः) वरण [वैदिक बोध वा वरना औषध ही] (त्वा) तुझ को (सर्वस्मात्) सब (पापात्) पापसे (वारयिष्यते) रोकेगा ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य वैदिक ज्ञान और पथ्य खान पान से बलवान् होवें ॥४॥

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥५॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (देवः) दिव्य गुण वाला (वनस्पतिः) सेवनीय गुणोंका रक्षक (वरणः) वरण [वैदिक बोध वा वरना औषध] [उस राजरोग को] (वारयातै) हटावे (यः) जो (यक्ष्मः) राजरोग (अस्मिन्) इस [पुरुष] में (आविष्टः) प्रवेश कर गया है, (तम्) उस को (उ) निश्चय करके (देवाः) व्यवहार जानने वाले विद्वानों ने (अवीवरन्) हटाया है ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्वज विद्वानों के समान प्रयत्न करके आत्मिक और शारीरिक रोगों का नाश करे ॥५॥

यह मन्त्र आ चुका है—अथर्व० ६ । ८५ । १ ॥

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुंष्टाम् ।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥६॥

भाषार्थः—(यदि) जो तू (सुप्त्वा) सोकर (पापम्) बुरे (स्वप्नम्) स्वप्न को (पश्यासि) देखे, (यति=यदि) जो (मृगः) बनैला पशु (अजुष्टाम्) अप्रिय (सृतिम्) मार्ग में (धावात्) दौड़े । (शकुनेः) पक्षी [गिद्ध वा चील्ह] के (परिक्षवात्) नाक के फुरफुराहट से और (पापवादात्) [मुख के] कठोर शब्द से (अयम्) यह (मणिः) प्रशंसनीय (वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (वारयिष्यते) रोकेगा ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य आत्मिक और शारीरिक बल बढ़ाकर कुस्वप्न आदि रोगों और हिंसक पशुओं और पक्षियों की दुष्टता से निर्भय रहें ॥६॥

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् ।
मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (त्वा) तुझ को (अरात्याः) कंजूसी से, (निर्ऋत्याः) महामारी से, (अभिचारात्) विरुद्ध आचरण से, (भयात्) भय से, (मृत्योः) मृत्यु [आलस्य आदि] से (अथो) और (ओजीयसः) अधिक बलवान् के (वधात्) वज्र से (वारयिष्यते) रोकेगा ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य विवेकी और बलवान् होकर सब विपत्तियों से बचे ॥७॥

यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ॥८॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ (एनः) पाप (मे माता) मेरी माता ने, (यत्) जो कुछ (मे पिता) मेरे पिता ने, (यत्) जो कुछ (मे भ्रातरः) मेरे भाईयों ने (च) और (स्वाः) ज्ञाति वालों ने और (यत्) जो कुछ (वयम्) हमने (चकृम) किया है (ततः) उस से (नः) हमको (अयम्) यह (देवः) दिव्य गुण वाला (वनस्पतिः) सेवनीय गुणों का रक्षक [पदार्थ] (वारयिष्यते) बचावेगा ॥८॥

भावार्थः मनुष्यों को योग्य है कि वे अपने बन्धुओं सहित सदा विवेकी और बलवान् रह कर पाप कर्म से बचें ॥८॥

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः ।
असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥९॥

भाषार्थः—(वरणेन) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] द्वारा (प्रव्यथिताः) पीड़ित किये गये (मे) मेरे (भ्रातृव्याः) वैरी लोग (सबन्धवः) अपने बन्धुओं सहित (असूर्तम्) न जाने योग्य (रजः) लोक [देश] में (अपि) ही (अगुः) गये हैं। (ते) वे लोग (अधमम्) अति नीचे (तमः) अन्धकार में (यन्तु) जावें ॥९॥

भावार्थः—सर्वनियन्ता परमेश्वर द्वारा और बलवान् राजा की नीति से दुष्ट लोग सदा बन्धीगृह आदि भोगते रहे हैं और सदा भोगते रहें ॥९॥

अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः ।
तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अहम्) मैं (अरिष्टः) न हारा हुआ, (अरिष्टगुः) न हारी हुई विद्या वाला, (आयुष्मान्) उत्तम जीवन वाला और (सर्वपुरुषः) सब पुरुषों वाला हूं। (तम्) उस (मा) मुझ को (अयम्) यह (मणिः) प्रशंसनीय (वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (दिशोदिशः) दिशा दिशा से (परि पातु) सब प्रकार बचावे ॥१०॥

भावार्थः– दृढ़ स्वभाव विद्वान् मनुष्य शरीर से बलवान् होकर परमेश्वर में विश्वास करके परस्पर रक्षा करें ॥१०॥

अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।

स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ॥११॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (राजा) राजा, (देवः) दिव्य गुण वाला (वनस्पतिः) सेवनीय गुणों का रक्षक (वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (मे) मेरे (उरसि) हृदय में है। (सः) वह (मे) मेरे (शत्रून्) शत्रुओं को (वि बाधताम्) हटा देवे, (इव) जैसे (इन्द्रः) इन्द्र [बड़ा ऐश्वर्यवान् पुरुष] (असुरान्) सज्जनों के विरोधी (दस्यून्) डाकुओं को [हटाता है] ॥११॥

भावार्थः– विद्वान् मनुष्य परमात्मा में श्रद्धा करके आत्मा और शरीर की उन्नति करता हुआ प्रतापी शूरों के समान शत्रुओं का नाश करे ॥११॥

इमं बिभर्मि वरणमायुष्मान्छतशारदः ।

स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥१२॥

भाषार्थः (आयुष्मान्) उत्तम जीवन वाला, (शतशारदः) सौ वर्ष जीवन वाला (इमम्) (वरणम्) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] को (बिभर्मि) धारण करता हूं। (सः) वह (मे) मेरे (राष्ट्रम्) राज्य (च) और (क्षत्रम्) क्षत्रिय धर्म को (च) और (पशून्) पशुओं (च) और (मे) मेरे (ओजः) बल को (दधत्) पुष्ट करे ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि आत्मिक और शारीरिक बल द्वारा संसार की रक्षा करें ॥१२॥

यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा । एवा सपत्नान्

मे भङ्ग्धि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यथा) जैसे (वातः) वायु (वनस्पतीन्) वनस्पतियों [बिना फूल फल देने वाले पीपल आदि] और (वृक्षान्) वृक्षों को (ओजसा) बल से (भनक्ति) तोड़ता है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं को (भङ्ग्धि) तोड़ डाल, (पूर्वान्) पहिले (जातान्) उत्पन्नों (उत) और (अपरान्) पिछलों को। (वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥१३॥

भावार्थः— मनुष्य आत्मिक और शारीरिक बल से वायु समान शीघ्रगामी होकर दोषों और शत्रुओं का नाश करे ॥१३॥

यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन्। एवा सपत्नान्
मे प्साहि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१४॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (वातः) वायु (च च) और (अग्निः) अग्नि (वृक्षान्) वृक्षों और (वनस्पतीन्) वनस्पतियों को (प्सातः) खाते हैं। (एव) वैसे ही (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्साहि) खा ले, (पूर्वान्) पहिले...... म० १३ ॥१४॥

भावार्थः—मन्त्र १३ के समान है ॥१४॥

यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः। एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र
क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१५॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (वातेन) वायु से (प्रक्षीणाः) नष्ट कर दिये गये और (न्यर्पिताः) झुकाये हुए (वृक्षाः) वृक्ष (शेरे=शेरते) सो जाते हैं। (एव) वैसे ही (मम) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (त्वम्) तू (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे और (नि अर्पय) झुका दे, (पूर्वान्) पहिले (जातान्) उत्पन्नों (उत) और (अपरान्) पिछलों को। (वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्यों को शत्रुओं के नाश करने में सदा उद्योग करना चाहिये ॥१५॥

तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥१६॥

भाषार्थः—(वरण) हे वरण! [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरना औषध] (त्वम्) तू (तान्) उन [शत्रुओं] को (दिष्टात्) नियुक्त [प्रण] से (पुरा) पहिले और (आयुषः) आयु [के अन्त] से (पुरा) पहिले और (प्र छिन्द्धि) काट डाल। (ये) जो (एनम्) इस [पुरुष] को (पशुषु) पशुओं के निमित्त (दिप्सन्ति) मार डालना चाहते हैं (च) और (ये) जो (अस्य) इसके (राष्ट्र-दिप्सवः) राज्य के हानिकारक हैं ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्य अपनी बुद्धि और बाहुबल से प्रजा और राज्य के हानिकारक शत्रुओं का नाश करे ॥१६॥

यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१७॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (सूर्यः) सूर्य (अतिभाति) बड़े प्रताप से चमकता है और (यथा) जैसे (अस्मिन्) इस [सूर्य] में (तेजः) तेज (आहितम्) स्थापित है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये (मणिः) श्रेष्ठ (वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य, वैदिक बोध वा वरना औषध] (कीर्तिम्) कीर्ति और (भूतिम्) विभूति [ऐश्वर्य, सम्पत्ति] को (नि यच्छतु) दृढ़ करे, (तेजसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (उक्षतु) बढ़ावे और (यशसा) यश के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) प्रकाशित करे ॥१७॥

भावार्थः - जैसे सूर्य अपने प्रताप से जगत् में विख्यात है, वैसें ही मनुष्य ईश्वर ज्ञान और शरीर बल से प्रतापी होकर संसार में अपनी कीर्ति बढ़ावे ॥१७॥

यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१८॥

भाषार्थः —(यथा) जैसा (यशः) यश (चन्द्रमसि) चन्द्रमा में (च) और (नृचक्षसि) मनुष्यों को देखने वाले (आदित्ये) सूर्य में है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये······मन्त्र १७ ॥१८॥

भावार्थः—मन्त्र १७ के समान है ॥१८॥

यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु

तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१९॥

भाषार्थः—(यथा) जैसा (यशः) यश (पृथिव्याम्) पृथिवी में और (यथा) जैसा (अस्मिन्) इस (जातवेदसि) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान [अग्नि] में है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिए······मन्त्र १७ ॥१६॥

भावार्थः—मन्त्र १७ के समान है ॥१६॥

यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु

तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२०॥

भाषार्थः—(यथा) जैसा (यशः) यश (कन्यायाम्) कामना योग्य [कन्या] में और (यथा) जैसा (अस्मिन्) इस (संभृते) सुन्दर बने (रथे) रथ में है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये···म० १७ ॥२०॥

भावार्थः—जैसे सुशीला गुणवती कन्या से माता पिता आदि कीर्ति पाते हैं और जैसे सुन्दर यान विमान आदि से बनाने वाले की शिल्पविद्या प्रख्यात होती है वैसे ही सब मनुष्य अपनी कीर्ति बढ़ावें ॥२०॥

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु

तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२१॥

भाषार्थः—(यथा) जैसा (यशः) यश (सोमपीथे) सोमरस पीने में और (यथा) जैसा (यशः) यश (मधुपर्के) मधुपर्क [मधु, दही, घी, जल और शर्करा के पञ्चमेल वा पञ्चामृत] में है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये···म० १७ ॥२१॥

भावार्थः जैसे सोमरस और मधुपर्क बल बढ़ाने में प्रसिद्ध हैं, वैसे ही मनुष्य अपनी कीर्ति फैलावे ॥२१॥

यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु

तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यथा) जैसा (यशः) यश (अग्निहोत्रे) अग्निहोत्र [अग्नि में सुगन्धित द्रव्य चढ़ाने वा अग्नि का शिल्प विद्या में प्रयोग करने] में और (यथा) जैसा (यशः) यश (वषट्कारे) दान कर्म में है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये···म० १७ ॥२२॥

भावार्थः—जैसे अग्निहोत्र से वायु शुद्धि और शिल्पविद्या की उन्नति होती है और जैसे सुपात्रों को दान देने से कीर्ति बढ़ती है वैसे ही मनुष्य अपना यश बढ़ावें ॥२२॥

यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२३॥

भाषार्थः—(यथा) जैसा (यशः) यश (यजमाने) यजमान [देवपूजक, सङ्गतिकारक और दानी] में और (यथा) जैसा [यश] (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ [देव पूजा, संगतिकरण और दान] में (आहितम्) स्थापित है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये···म० १७ ॥२३॥

भावार्थः—स्पष्ट है ॥२३॥

यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२४॥

भाषार्थः—(यथा) जैसा (यशः) यश (प्रजापतौ) प्रजापालक [राजा] में और (यथा) जैसा [यश] (अस्मिन्) इस (परमेष्ठिनि) सब से ऊंची स्थिति वाले [परमात्मा] में है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये···म० १७ ॥२४॥

भावार्थः—स्पष्ट है ॥२४॥

यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२५॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (देवेषु) विजय चाहने वालों में (अमृतम्) अमरपन [पुरुषार्थ] और (यथा) जैसा (एषु) इनमें (सत्यम्) सत्य (आहितम्) स्थापित है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये (मणिः) श्रेष्ठ (वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (कीर्तिम्) कीर्ति और (भूतिम्) विभूति [ऐश्वर्य, सम्पत्ति] को (नि यच्छतु) दृढ़ करे, (तेजसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (उक्षतु) बढ़ावे और (यशसा) यश के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) प्रकाशित करे ॥२५॥

भावार्थः—जैसे विजयी शूरों में पुरुषार्थ और सत्य व्रत धारण होता है वैसे ही मनुष्य ईश्वर ज्ञान और शरीर बल से प्रतापी होकर संसार में अपनी कीर्ति बढ़ावे ॥२५॥

सूक्तम् ॥४॥

१—२६ ॥ इन्द्रः प्रजापतिर्वा देवता ॥ १ पथ्यापङ्क्तिः, २ भुरिग्मध्या गायत्री, ३, ४ निचृत् पथ्या बृहती, ५, ६, ७, ९–११, १३—१५, १७–२०, २२, २४, २५ अनुष्टुप्, आर्ष्यनुष्टुप्, १२ भुरिग् गायत्री, १६, प्रतिष्ठा गायत्री, २१ विराडनुष्टुप्, २३ त्रिष्टुप्, २६ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

सर्परूपदोषनाशोपदेशः—सर्प रूप दोषों के नाश का उपदेश ॥

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथः स्थाणुमारदथार्षत् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] का (प्रथमः) पहिला (रथः) रथ है, (देवानाम्) विजयी [शूर मन्त्रियों] का (अपरः) दूसरा (रथः) रथ, और (वरुणस्य) वरुण [श्रेष्ठ वैद्य] का (तृतीयः) तीसरा (इत्) ही है (अहीनाम्) महाहिंसक [सांपों] का (अपमा) खोटा (रथः) रथ (स्थाणुम्) ठूंठ [सूखे पेड़] पर (आरत्) पहुंचा है, (अथ) अब (अर्षत्) वह चला जावे ॥१॥

भावार्थः—राजा, मन्त्री और वैद्य के प्रयत्न से सर्परूप कुठौर में वर्तमान दुष्ट लोग और दुष्ट रोग प्रजा में से नष्ट हो जावें ॥१॥

दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः ।
रथस्य बन्धुरम् ॥२॥

भाषार्थः—(दर्भः) दाभ घास [सर्पों का] (शोचिः) प्रकाश, (तरूणकम्) छोटी नवीन [दाभ] [उनके] (अश्वस्य) घोड़े की (वारः) पूंछ (परुषस्य) कड़े [दाभ] की (वारः) पूंछ [सिरा] [उनके] (रथस्य) रथ की (बन्धुरम्) बैठक है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे सांप आदि छिपकर रहते हैं वैसे ही चोर आदि दुष्कर्मी छिपे रहते हैं ॥२॥

अव॑ श्वेत प॒दा ज॑हि॒ पूर्वे॑ण॒ चाप॑रेण च ।
उ॒द॒प्लु॒तमि॑व॒ दार्वही॑नामर॒सं वि॒षं वारु॒ग्रम् ॥३॥

भाषार्थः—(श्वेत) हे प्रबुद्ध [मनुष्य !] तू (पूर्वेण) अगले (च च) और (अपरेण) पिछले (पदा) पाद [पैर की चोट] से (अव जहि) मार डाल । (उदप्लुतम्) जल में बही हुई (दारु इव) लकड़ी के समान (अहीनाम्) सर्पों का (उग्रम्) क्रूर (वाः) जल [अर्थात्] (विषम्) विष (अरसम्) नीरस होवे ॥३॥

भावार्थः—राजा के प्रबन्ध से दुष्ट लोग ऐसे निर्बल हो जावें जैसे उत्तम वैद्य के प्रयत्न से विष निकम्मा हो जाता है, जैसे लकड़ी जल में बहती बहती गलकर सारहीन हो जाती है ॥३॥

अ॒रं॒घु॒षो नि॒मज्यो॒न्मज्य॒ पुन॑रब्रवीत् ।
उ॒द॒प्लु॒तमि॑व॒ दार्वही॑नामर॒सं वि॒षं वारु॒ग्रम् ॥४॥

भाषार्थः—(अरंघुषः) पूरी घोषणा करने वाले [पुरुष] ने (निमज्य) डुबकी लगाकर और (उन्मज्य) उछल कर (पुनः) फिर (अब्रवीत्) कहा । "(उदप्लुतम्) जल में बही हुई (दारु इव) लकड़ी के समान (अहीनाम्) सर्पोंका (उग्रम्) क्रूर (वाः) जल [अर्थात्] (विषम्) विष (अरसम्) नीरस [होवे]" ॥४॥

भावार्थः—विवेकी जन घोषणा देकर विचारपूर्वक शत्रुओं को ऐसा निर्बल करे, जैसे वैद्य द्वारा विष जल में बही लकड़ी के समान निकम्मा हो जाता है ॥४॥

पै॒द्वो ह॑न्ति कस॒र्णील॑ पै॒द्वः श्वि॒त्रमु॒तासि॑तम् ।
पै॒द्वो र॑थ॒र्व्याः शिर॒ः सं बि॑भेद पृ॒दाक्वाः ॥५॥

भाषार्थः—(पैद्वः) शीघ्रगामी [पुरुष] (कसर्णीलम्) बुरे मार्ग में छिपे हुए और (पैद्वः) शीघ्रगामी ही (श्वित्रम्) श्वेत (उत) और (असितम्) काले [सांप] को (हन्ति) मारता है । (पैद्वः) शीघ्रगामी वे (रथर्व्याः) दौड़ती हुई (पृदाक्वाः) फुंसकारती हुई [सांपिनी] का (शिरः) शिर (सम् बिभेद) तोड़ डाला था ॥५॥

भावार्थः—फुरतीला वीर पुरुष पूर्वज शूरों के समान सांप और सांपिन रूप शत्रुओं और शत्रुसेना का नाश करे ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैद्व प्रेहि॑ प्रथ॒मोऽनु॑ त्वा व॒यमेम॑सि ।

अहीन् व्य॑स्यतात् प॒थो ये॑न॑ स्मा व॒यमे॒म॒सि॑ ।।६।।

भाषार्थः—(पैद्व) हे शीघ्रगामी [पुरुष] (प्रथमः) आगे होकर (प्र इहि) बढ़ा चल, (त्वा अनु) तेरे पीछे पीछे (वयम्) हम (आ ईमसि) आते हैं। (अहीन्) महाहिंसक [सांपों] को (पथः) उस मार्ग से (वि अस्यतात्) मार गिरा (येन) जिस से (वयम्) हम (स्म) ही (आ—ईमसि) आते हैं ।।६।।

भावार्थः—अग्रगामी शूर को शत्रुओं के नाश करने में सब लोग सहाय करें ।।६।।

इ॒दं पै॒द्वो अ॑जायते॒दम॑स्य प॒राय॑णम् ।

इ॒मान्यर्व॑तः प॒दाहि॒घ्न्यो वा॒जिनी॑वतः ।।७।।

भाषार्थः—(इदम्) अब (पैद्वः) शीघ्रगामी पुरुष (अजायत) प्रकट हुआ है, (इदम्) यह (अस्य) इसका (परायणम्) पराक्रम का मार्ग है। (अर्वतः) शीघ्रगामी (अहिघ्न्यः) महाहिंसक [सांपों] के मारनेवाले (वाजिनीवतः) अन्नयुक्त क्रिया वाले [पुरुष] के (इमानि) यह (पदा) पदचिह्न हैं ।।७।।

भावार्थः—पूर्वज महात्माओं के चरित्रों पर चलकर मनुष्य आगे बढ़ें ।।७।।

संय॑तं॒ न वि ष्प॑रद् व्यात्तं॒ न सं य॑मत् ।

अ॒स्मिन् क्षेत्रे॒ द्वावही॒ स्त्री च॒ पुमां॑श्च॒ तावु॒भाव॑र॒सा ।।८।।

भाषार्थः—वह [सांप] (संयतम्) मुंदे हुए मुख को (न) न (वि स्परत्) खोले और (व्यात्तम्) खुले मुख को (न) न (सम् यमत्) मूंदे। (अस्मिन्) इस (क्षेत्रे) खेत [संसार] में (द्वौ) दो (अही) महाहिंसक [सांप] (स्त्री) स्त्री (च च) और (पुमान्) नर हैं, (तौ) वे (उभौ) दोनों (अरसा) नीरस [हो जावें] ।।८।।

भावार्थः—विद्वान् पुरुष ऐसा प्रयत्न करें कि सर्पिणी सर्प समान स्त्री और पुरुष रूप दोनों प्रकार की प्रजायें उपद्रव न मचावें ।।८।।

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध—अ० ६। ५६। १। के उत्तर भाग में आ चुका है ।।

अ॒र॒सास॑ इ॒हाह॑यो॒ ये अन्ति॒ ये च॑ दूर॒के ।

घ॒नेन॑ हन्मि॒ वृश्चि॑क॒महिं॑ द॒ण्डेनाग॑तम् ।।९।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इह) यहां पर (अहयः) महाहिंसक [सांप] (अरसासः) नीरस हों, (ये) जो (अन्ति) पास (च) और (ये) जो (दूरके) दूर हैं। (आगतम्) आये हुए (वृश्चिकम्) डंक मारने वाले बिच्छू और (अहिम्) महाहिंसक [सांप] को (घनेन) सोंटे वा मोंगरे से और (दण्डेन) दण्डे से (हन्मि) मैं मारता हूं ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य सांप रूप दुःखदायियों को यथावत् दण्ड देवें ॥९॥

अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च ।
इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् ॥१०॥

भाषार्थः—(उभयोः) दोनों, (अघाश्वस्य) अघाश्व [कष्ट फैलाने वाले सर्प विशेष] का (च) और (स्वज्यस्य) स्वज [लिपट जाने वाले सर्प विशेष] का (इदम्) यह (भेषजम्) औषध है। (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाले (पैद्वः) शीघ्रगामी [पुरुष] ने (मे) मेरे लिये (अघायन्तम्) बुरा चीतने वाले (अहिम्) महाहिंसक (अहिम्) सांप को (अरन्धयत्) मारा है ॥१०॥

भावार्थः—जैसे वैद्यराज बड़े बड़े विषैले सांपों को वश में करता है वैसे ही राजा दुष्टों को वश में करे ॥१०॥

पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः ।
इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥११॥

भाषार्थः—(स्थिरस्य) स्थिर स्वभाव वाले (स्थिरधाम्नः) स्थिर तेज वाले (पैद्वस्य) शीघ्रगामी [पुरुष] का (वयम्) हम (मन्महे) चिन्तन करते हैं। (इमे) यह (प्रदीध्यतः) क्रीड़ा करते हुए (पृदाकवः) फुंसकारने वाले [सांप] (पश्चा) पीछे (आसते) बैठते हैं ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य कुटिल सांप के समान छिपे उपद्रवियों का खोज लगाते हैं, वे संसार में स्मरणीय होते हैं ॥११॥

नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा ।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥१२॥

भाषार्थः—(वज्रिणा) वज्रधारी (इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] करके (हताः) मारे गये [सांप] (नष्टासवः) प्राणों से नष्ट और (नष्टविषाः) विष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से नष्ट [होवें]। (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] ने [सांपों को] (जघान) मारा था, और (वयम्) हम ने (जघ्निम) मारा था ॥१२॥

भावार्थः—दुष्टों के मारने में पूर्वजों के समान सब लोग शूर का साथ देवें ॥१२॥

हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥१३॥

भाषार्थः – (तिरश्चिराजयः) तिरछी धारी वाले (पृदाकवः) फुंसकारने वाले [सांप] (हताः) मार डाले गये और (निपिष्टासः) कुचिल डाले गये [हों]। (दर्भेषु) दाभों में (दर्विम्) फन को (करिक्रतम्) बड़ा करने वाले, (श्वित्रम्) श्वेत और (असितम्) काले [सांप] को (जहि) मार डाल ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्य महाउपद्रवियों को सांपों के समान मारें॥१३॥

कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ।
हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥१४॥

भाषार्थः -(सका) वह [प्रसिद्ध] (कैरातिका) चिरायता और (कुमारिका) कुवारपाठा, (औषधम्) ओषधि (हिरण्ययीभिः) तेजोमयी [चमकीली, उजली] (अभ्रिभिः) खुरपियों से (गिरीणाम्) पहाड़ों की (सानुषु उप) समभूमियों के ऊपर (खनति=खन्यते) खोदी जाती है ॥१४॥

भावार्थः वैद्य लोग दूर दूर से मंगाकर उपकारी ओषधियों का प्रयोग करते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग विद्या प्राप्त करके मूर्खता का नाश करें ॥१४॥

यह (कैरातिका) शब्द कैरात वा किरातक अर्थात् चिरायते के लिये और [कुमारिका) शब्द कुमारी अर्थात् गुआरपाठे [घी कुआर] के लिये आया है ॥

चिरायते के संक्षिप्त नाम और गुण इस प्रकार हैं भावप्रकाश, हरीतक्यादिवर्ग, श्लोक १४४, १४६ ॥ किराततिक्त, कैरात, कटुतिक्त और किरातक चिरायते के नाम हैं। वह सन्निपातज्वर, श्वास, कफ, पित्त, रुधिरविकार और दाहनाशक तथा खांसी, सूजन, प्यास, कुष्ठ, ज्वर, व्रण और कृमिरोग-नाशक है ॥

गुआरपाठे के संक्षिप्त नाम और गुण—भावप्रकाश, गुडूच्यादिवर्ग, श्लोक २१३, २१४ ॥ कुमारी, गृहकन्या, कन्या, घृतकुमारिका घी कुवार के नाम हैं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घीकुवार रेचक, शीतल, कड़वी, नेत्रों को हितकारी, रसायनरूप, मधुर, पुष्टिकारक, बलकारक, वीर्यवर्धक और वात, विष नाशक है ॥

आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः ।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥१५॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (युवा) युवा (पृश्निहा) स्पर्श करने वाले [सर्प] का नाश करने वाला, (अपराजितः) न हारा हुआ (भिषक्) वैद्य (आ अगन्) आया है। (सः) वह (वै) निश्चय करके (उभयोः) दोनों (स्वजस्य) स्वज [लिपट जाने वाले सर्प विशेष] (च) और (वृश्चिकस्य) डंक मारने वाले बिच्छू का (जम्भनः) नाश करने वाला है ॥१५॥

भावार्थः—बलवान् चतुर वैद्य सब प्रकार के विषैले जीवों का नाश करे ॥१५॥

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च । वातापर्जन्योऽभा ॥१६॥

भाषार्थः—मित्रः) सूर्य [के समान] (च च) और (वरुणः) जल [के समान] और (उभा) दोनों (वातापजन्या) वायु और मेघ [के समान गुण वाले] (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष ने (मे) मेरे लिये (अहिम्) महाहिंसक [सर्प] को (अरन्धयत्) मारा है ॥१६॥

भावार्थः—परोपकारी विद्वान् वैद्य संसार के उपकार के लिये विषैले जीवों को वश में करे ॥१६॥

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् ।
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥१७॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष ने (मे) मेरे लिये (पृदाकुम्) फुंसकारने वाले (अहिम्) सांप (च) और (पृदाक्वम्) फुंसकारती हुई सांपिन को, (स्वजम्) स्वज [लिपट जाने वाले], (तिरश्चिराजिम्) तिरछी धारा वाले, (कसर्णीलम्) बुरे मार्ग में छिपे हुए और (दशोनसिम्) काटकर हानि पहुंचाने वाले [सांप] को (अरन्धयत्) नाश किया है ॥१७॥

भावार्थः—मन्त्र १६ के समान है ॥१७॥

इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव ।
तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित् तेषामसद् रसः ॥१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अहे) हे महाहिंसक [साँप !] (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष ने (तव) तेरे (जनितारम्) जन्म दाता को (प्रथमम्) पहिले (जघान) मारा था। (तेषाम् तेषाम्) उनहीं (तृह्यमाणानाम्) छिदे हुओं का (उ) ही (कः स्वित्) कौनसा (रसः) रस [पराक्रम] (असत्) होवे ॥१८॥

भावार्थः—बलवान् प्रतापी पुरुष हिंसक जीवों के बड़े और छोटों को नाश करे ॥१८॥

सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम्।
सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् ॥१९॥

भाषार्थः—(हि) क्योंकि [सांपों के] (शीर्षाणि) शिरों को (सम् अग्रभम्) मैं ने पकड़ लिया है, (पौञ्जिष्ठः इव) जैसे महा ओजस्वी पुरुष (कर्वरम्) व्याघ्र को [पकड़ लेता है]। (सिन्धोः) नदी के (मध्यम्) मध्य में (परेत्य) दूर जाकर (अहेः) महाहिंसक [सांप] के (विषम्) विषको (वि अनिजम्) मैं ने धो डाला है ॥१९॥

भावार्थः जैसे पराक्रमी मनुष्य व्याघ्र आदि को पकड़ लेता है, वैसे ही बलवान् गुणवान् पुरुष उपद्रवियों की दुष्टता को इस प्रकार नष्ट कर दे, जैसे मल आदि को नदी में बहा देते हैं ॥१९॥

अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः।
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥२०॥

भाषार्थः—(सिन्धवः) नदियां (सर्वेषाम्) सब (अहीनाम्) महाहिंसक [सांपों] के (विषम्) विष को (परा वहन्तु) दूर बहा ले जावें (तिरश्चिराजयः) तिरछी धारी वाले, (पृदाकवः) फुंसकारने वाले सांप (हताः) मार डाले गये और (निपिष्टासः) कुचिल डाले गये [हों] ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्य सर्प समान दुःखदायी दुर्गुणों को ऐसा नष्ट करे जैसे मल आदि को पानी में बहा देते हैं ॥२०॥

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया।
नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् ॥२१॥

भाषार्थः—(ओषधीनाम्) ओषधियों में से (उर्वरीः इव) बड़ोंको मिलने योग्य [ओषधियों] को (साधुया) योग्यता से (अहम्) मैं (वृणे) अङ्गीकार करता हूं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (अर्वतीः इव) बड़ी बुद्धिमती [स्त्रियों] के समान (नयामि) मैं लाता हूं, (अहे) हे महाहिंसक [सांप!] (ते विषम्) तेरा विष (निरैतु) निकल आवे ॥२१॥

भावार्थः—वैद्य लोग रोग निवृत्ति के लिये उत्तम ओषधियों को ऐसे आदर से ग्रहण करें, जैसे विद्वान् गुणवती बुद्धिमती स्त्रियों का मान करते हैं ॥२१॥

यद॒ग्नौ सूर्ये॑ वि॒षं पृ॑थि॒व्यामोष॑धीषु॒ यत् ।
का॒न्दा॒वि॒षं क॒नक्न॑कं नि॒रैत्वैतु॑ ते वि॒षम् ॥२२॥

भाषार्थः—[हे सर्प!] (यत् विषम्) जो विष (अग्नौ) अग्नि में, (सूर्ये) सूर्य में, (पृथिव्याम्) पृथिवी में, और (यत्) जो (ओषधीषु) ओषधियों [अन्न आदि पदार्थों] में है। (कान्दाविषम्) मेघ से उत्पन्न [ओषधियों] में व्यापक, (कनक्नकम्) गति [उद्योग] नाशक (ते विषम्) तेरा विष (निरैतु) निकल आवे (आ एतु) [निकल] आवे ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों में अति वृद्धि वा अति न्यूनता के कारण सर्प के विष के समान रोगकारक क्रिया को त्याग कर विचारपूर्वक समता ग्रहण करके स्वस्थ रहें ॥२२॥

ये अ॑ग्नि॒जा ओ॑षधि॒जा अही॑नां॒ ये अ॑प्सु॒जा वि॒द्युत॑ आबभू॒वुः ।
येषां॑ जा॒तानि॑ बहु॒धा म॒हान्ति॒ तेभ्य॑: स॒र्पेभ्यो॒ नम॑सा विधेम ॥२३॥

भाषार्थः—(अहीनाम्) सर्पों में से (ये) जो (अग्निजाः) अग्नि में उत्पन्न, (ओषधिजाः) ओषधियों [अन्न आदि] में उत्पन्न, (ये) जो (अप्सुजाः) जल में उत्पन्न होकर (विद्युतः) बिजुलियों [समान] (आबभूवुः) सब ओर हुए हैं। (येषाम्) जिनके (जातानि) समूह (बहुधा) बहुधा [नाना प्रकार से] (महान्ति) बड़े बड़े हैं, (तेभ्यः सर्पेभ्यः) उन सर्पों के [नाश के] लिये (नमसा) वज्र से (विधेम) हम शासन करें ॥२३॥

भावार्थः—मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों में से सर्प रूप हानिकारक अवगुणों को नाश करके स्वास्थ्य बढ़ावें ॥२३॥

तौ॒दी नामा॑सि क॒न्या॑ घृ॒ताची॒ नाम॒ वा अ॑सि ।
अ॒ध॒स्प॒देन॑ ते प॒दमा द॑दे वि॒ष॒दूष॑णम् ॥२४॥

भाषार्थः—(तौदी) वृद्धि [बलवृद्धि] वाली (कन्या) कामना योग्य [कन्या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् गुग्रारपाठा] (नाम) नाम वाली (असि) तू है, (घृताची) घृत [समान रस] पहुंचाने वाली (नाम) नाम वाली (वै) ही (असि) तू है। (अधस्पदेन) [शत्रु के] नीचे पद के कारण (ते) तेरे (विषदूषणम्) विष खण्डक (पदम्) पद को (आ ददे) मैं ग्रहण करता हूं ॥२४॥

भावार्थः - गुग्रारपाठा ओषधि पुष्टिकारक और विषनाशक हैं, टिप्पणी मन्त्र १४ देखो। मनुष्य गुग्रारपाठे आदि ओषधियों द्वारा रोगों का नाश करके स्वस्थ रहें ॥२४॥

अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय ।
अधा विषस्य यत् तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ॥२५॥

भाषार्थः—[हे ओषधि !] (अङ्गादङ्गात्) अङ्ग अङ्ग से [विष को] (प्र च्यवय) सरका दे और (हृदयम्) हृदय को [उस से] (परि वर्जय) त्याग करा दे। (अध) फिर (विषस्य) विष का (यत् तेजः) जो तेज [प्रचण्डता] है, (तत्) वह (ते) तेरे लिये (अवाचीनम्) नीचे (एतु) जावे ॥२५॥

भावार्थः-- मनुष्य सब रोगों को ओषधि द्वारा शान्त करके प्रसन्न रहें ॥२५॥

आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ।
अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।
दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत ॥२६॥

भाषार्थः—वह [विष] (आरे) दूर (अभूत्) हुआ है, [क्योंकि] उस [वैद्य] ने (विषम्) विष को (अरौत्) रोक दिया है, और (विषे) विष में (विषम्) विष को (अपि) भी (अप्राक्) मिला दिया है। (सोमः) ऐश्वर्यवान् (अग्निः) ज्ञानी [पुरुष] ने (अहेः) महाहिंसक [सांप के] (विषम्) विष को (निः अध त) निकाल लिया है और (निः अनयीत्) बाहिर पहुंचा दिया है। (विषम्) विष (दंष्टारम् अनु) काटने वाले के साथ (अगात्) गया है और (अहिः) सांप (अमृत) मर गया है ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र का मिलान अ० ७। ८८। १। से भी करो। जैसे सद्वैद्य विष ओषधि द्वारा विष रोग को हटाता है, वैसे ही विद्वान् एक इन्द्रिय को वश में करके दूसरे इन्द्रिय-दोष को मिटावे ॥२६॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ५ ॥ मन्त्राः १—५० ॥

विभागः १ । मन्त्राः १—२४ ॥ आपो देवता ॥ १ ५, ११, १४ आर्षी पङ्क्तिः, ६ आर्षी जगती, ७—१०, १२, १३ आर्षी बृहती, १५—१८, २१ अतिधृतिः, १९, २० कृतिः, २२, २३ अनुष्टुप्; २४ त्रिपदा त्रिष्टुप्, ॥

विदुषां कर्तव्योपदेशः—विद्वानों के कर्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥१॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम **(इन्द्रस्य)** आत्मा के **(ओजः)** पराक्रम **(स्थ)** हो, **(इन्द्रस्य)** आत्मा के **(सहः)** पुरुषार्थ **(स्थ)** हो, **(इन्द्रस्य)** आत्मा के **(बलम्)** बल **(स्थ)** हो, **(इन्द्रस्य)** आत्मा की **(वीर्यम्)** वीरता **(स्थ)** हो । **(इन्द्रस्य)** आत्मा की **(नृम्णम्)** शूरता **(स्थ)** हो । **(जिष्णवे)** विजयी **(योगाय)** संयोग के लिये **(ब्रह्मयोगैः)** ब्रह्मयोगों [परमात्मा के ध्यानों] से **(वः)** तुम को **(युनज्मि)** मैं जोड़ता हूं ॥१॥

भावार्थः— जो मनुष्य परमात्मा के गुणों में चित्त लगाते हैं, वे सब प्रकार आत्मोन्नति करके अनेक प्रकार से ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥१॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि ॥२॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम **(इन्द्रस्य)** आत्मा के **(ओजः)** पराक्रम··· म० १ । **(जिष्णवे)** विजयी **(योगाय)** संयोग के लिये **(क्षत्रयोगैः)** राज्य के ध्यानों से **(वः)** तुमको **(युनज्मि)** मैं जोड़ता हूं ॥२॥

भावार्थः- मन्त्र १ समान है ॥२॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ॥३॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम **(इन्द्रस्य)** आत्मा के **(ओजः)** पराक्रम··· म० १ । **(जिष्णवे)** विजयी **(योगाय)** संयोग के लिये **(इन्द्रयोगैः)** आत्मा के ध्यानों से **(वः)** तुम को **(युनज्मि)** मैं जोड़ता हूं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ।।३।।

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं १

स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ।।४।।

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (इन्द्रस्य) आत्मा के (ओजः) पराक्रम··· म० १। (जिष्णवे) विजयी (योगाय) संयोग के लिये (सोमयोगैः) ऐश्वर्य के ध्यानों से (वः) तुमको (युनज्मि) मैं जोड़ता हूं ।।४।।

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ।।४।।

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं १

स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ।।५।।

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (इन्द्रस्य) आत्मा के (ओजः) पराक्रम··· म० १ (जिष्णवे) विजयी (योगाय) संयोग के लिये (अप्सुयोगैः) प्राणों में ध्यान के साथ (वः) तुमको (युनज्मि) मैं जोड़ता हूं ।।५।।

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ।।५।।

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं १ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता मे आप स्थ ।।६।।

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (इन्द्रस्य) आत्मा के (ओजः) पराक्रम (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के (सहः) पुरुषार्थ (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के (बलम्) बल (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा की (वीर्यम्) वीरता (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा की (नृम्णम्) शूरता (स्थ) हो। (जिष्णवे) विजयी (योगाय) संयोग के लिये (विश्वानि) सब (भूतानि) उत्पन्न वस्तुयें (मा) मुझे (उप तिष्ठन्तु) सेवें, (आपः) हे सब विद्याओं में व्यापक विद्वानो ! तुम (मे) मेरे लिये (युक्ताः) योगाभ्यासी [पुरुष] (स्थ) हो ।।६।।

भावार्थः—मनुष्य यती विद्वानों के सत्सङ्ग द्वारा संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर कार्य सिद्ध करें ।।६।।

अग्नेर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ।।७।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (अग्नेः) अग्नि का (भागः) अंश (स्थ) हो [अर्थात् तेजस्वी हो]। (देवीः) हे उत्तम गुण वाली (आपः) विदुषी प्रजाओ ! (अपाम्, विद्वानों के बीच (अस्मासु) हम में (शुक्रम्) वीरता और (वर्चः) तेज (धत्त) धारण करो। (वः) तुमको (प्रजापतेः) प्रजापति [परमेश्वर] के (धाम्ना) धर्म [नियम] से (अस्मै) इस (लोकाय) लोक [के हित] के लिये (सादये) मैं बैठाता हूं ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य अग्नि आदि के समान तेजस्वी आदि गुणवान् होकर ईश्वर नियम पर चल कर संसार का उपकार करें ॥७॥

इन्द्रस्य भाग स्थं। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥८॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (इन्द्रस्य) सूर्य के (भागः) अंश (स्थ) हो [अर्थात् प्रतापी हो]...म० ७ ॥८॥

भावार्थः—मन्त्र ७ के समान है ॥८॥

सोमस्य भाग स्थं। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकायं सादये ॥९॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (सोमस्य) चन्द्रमा के (भागः) अंश (स्थ) हो [अर्थात् शान्त स्वभाव हो]...म० ७ ॥९॥

भावार्थः—मन्त्र ७ के समान है ॥९॥

वरुणस्य भाग स्थं। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकायं सादये ॥१०॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (वरुणस्य) जल के (भागः) अंश (स्थ) हो [अर्थात् गम्भीर स्वभाव हो]...म० ७ ॥१०॥

भावार्थः—मन्त्र ७ के समान है ॥१०॥

मित्रावरुणयोर्भाग स्थं। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकायं सादये ॥११॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (मित्रावरुणयोः) प्राण और अपान के (भागः) अंश (स्थ) हो [अर्थात् महाबली हो]...म० ७ ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः– मन्त्र ७ के समान है ॥११॥

यमस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१२॥

भावार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (यमस्य) न्याय के (भागः) अंश (स्थ) हो [अर्थात् महान्यायकारी हो]···म० ७ ॥१२॥

भावार्थः—मन्त्र ७ के समान है ॥१२॥

पितृणां भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१३॥

भावार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (पितृणाम्) पालन करने वाले गुणों के (भागः) अंश (स्थ) हो [अर्थात् महापालक हो]···म० ७ ॥१३॥

भावार्थः—मन्त्र ७ के समान है ॥१३॥

देवस्य सवितुर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१४॥

भावार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (देवस्य) प्रकाशमान (सवितुः) परमेश्वर के (भागः) अंश (स्थ) हो [अर्थात् परमेश्वर में व्याप्त हो] । (देवीः) हे उत्तम गुण वाली (आपः) विदुषी प्रजाओ ! (अपाम्) विद्वानों के बीच (अस्मासु) हम में (शुक्रम्) वीरता और (वर्चः) तेज (धत्त) धारण करो । (वः) तुमको (प्रजापतेः) प्रजापति [परमेश्वर] के (धाम्ना) धर्म [नियम] से (अस्मै) इस (लोकाय) लोक [के हित] के लिये (सादये) मैं बैठाता हूं ॥१४॥

भावार्थः—मन्त्र ७ के समान है ॥१४॥

यो व आपोऽपां भागो३ऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यतिसृजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं
स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१५॥

भावार्थः—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (भागः) अंश (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच (यजुष्यः) पूजा योग्य और (देवयजनः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों करके संगति योग्य है। (इदम्) अब (तम्) उस [तुम्हारे पूजनीय अंश] को (अति) आदर पूर्वक (सृजामि) मैं सिद्ध करता हूं, (तम्) उस [अंश] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं न धो डालूं [न नष्ट करूं]। (तेन) उस [पूजनीय अंश] से (तम्) उस [शत्रु] को (अभ्यतिसृजामः) हम हराकर छोड़ते हैं, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) कुप्रीति करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) कुप्रीति करते हैं। (अनेन ब्रह्मणा) इस वेद ज्ञान से, (अनेन कर्मणा) इस कर्म से और (अनया मेन्या) इस वज्र से (तम्) उस [दुष्ट] को (वधेयम्) मैं मारूं और (तम्) उसको (स्तृषीय) में ढक लूं ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि दृढ़तापूर्वक विद्वानों से उत्तम शिक्षा ग्रहण करके और उनके उपकारों पर पानी न फेर कर वेद विद्या द्वारा बाहिरी और भीतरी शत्रुओं का नाश करें ॥१५॥

यो वं आपोऽपामूर्मिरप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यति-
सृजामो यो३'स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं
स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१६॥

भाषार्थः—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (ऊर्मिः) वेग (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच…मन्त्र १५ ॥१६॥

भावार्थः—मन्त्र १५ के समान है ॥१६॥

यो वं आपोऽपां वत्सो३'प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यति- ।
सृजामो यो३'स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं
स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१७॥

भाषार्थः—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (वत्सः) निवास (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच…म० १५ ॥१७॥

भावार्थः—मन्त्र १५ के समान है ॥१७॥

यो वं आपोऽपां वृषभो३'प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१८॥

भाषार्थः—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (वृषभः) महापराक्रमी स्वभाव (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच......म० १५ ॥१८॥

भावार्थः—मन्त्र १५ के समान है ॥१८॥

यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भो३ऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यतिसृजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१९॥

भाषार्थः—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (हिरण्यगर्भः) कामना योग्य [तेजों] का आधार (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच... म० १५ ॥१९॥

भावार्थः—मन्त्र १५ के समान है ॥१९॥

यो व आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्यो३ऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यतिसृजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२०॥

भाषार्थः—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (दिव्यः) दिव्य (अश्मा) व्यापक गुण (पृश्निः) सूर्य [समान] (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच...म० १५ ॥२०॥

भावार्थः—मन्त्र १५ के समान है ॥२०॥

ये व आपोऽपामग्नयोऽप्स्व१न्तर्यजुष्या देवयजनाः । इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैस्तमभ्यतिसृजामो यो३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२१॥

भाषार्थः—(आपः) हे विद्वानो ! (ये) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों के (अग्नयः) ज्ञान प्रकाश (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच (यजुष्यः) पूजा योग्य और (देवयजनाः) विद्वानों करके सङ्गति योग्य हैं। (इदम्) अब (तान्) उन [तुम्हारे ज्ञान प्रकाशों] से (अति) आदर पूर्वक (सृजामि) मैं सिद्ध करता हूं, (तान्) उन [ज्ञान प्रकाशों] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं न धो डालूं [न नष्ट करूं]। (तैः) उन ज्ञान प्रकाशों] से (तम्) उस [शत्रु] को (अभ्यतिसृजामः) हम हराकर छोड़ते हैं। (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) कुप्रीति करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) कुप्रीति करते हैं। (अनेन ब्रह्मणा) इस वेद ज्ञान से, (अनेन कर्मणा) इस कर्म से और (अनया मेन्या) इस वज्र से (तम्) उस [दुष्ट] को (वधेयम्) मैं मारूं और (तम्) उसको (स्तृषीय) ढक लूं ॥२१॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के सत्संग से सुशिक्षित होकर दृढ़ चित्त रहते और उनके उपकारों पर पानी नहीं फेरते, वे दुष्ट शत्रु को जीतने में समर्थ होते हैं॥२१॥

यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥२२॥

भाषार्थः—(त्रैहायनात्) तीन उद्योगों [परमेश्वर के कर्म, उपासना और ज्ञान] से [अलग होकर] (यत् किम् च) जो कुछ भी (अर्वाचीनम्) नीच कर्म में होने वाले (अनृतम्) झूंठ को (ऊदिम) हम बोले हैं। (आपः) विद्वान् लोग (मा) मुझ को (तस्मात् सर्वस्मात्) उस सब (दुरितात्) कठिन (अंहसः) अपराध से (पान्तु) बचावें ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग द्वारा परमेश्वर के कर्म उपासना और ज्ञान की प्राप्ति से मिथ्या कथन आदि दुराचारों को छोड़कर धर्मात्मा होवें ॥२२॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग आ चुका है—अ० ७। ६४। १॥

समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन ।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (वः) तुम्हें (समुद्रम्) प्राणियों के यथावत् उदय करने हारे [परमात्मा] की ओर (प्र हिणोमि) मैं आगे बढ़ाता हूँ, (अरिष्टाः) विना हारे हुए (सर्वहायसः) सब ओर गति वाले तुम (स्वाम्) अपने (योनिम्) कारण को (अपि) ही (इतन) प्राप्त हो, (च) और (नः) हमें (किम् चन) कोई भी [दुःख] (मा आममत्) न पीड़ा देवे ॥२३॥

भावार्थः– मनुष्य सब के आदि कारण जगदीश्वर की यथावत् भक्ति करके सब दुःखों से छूटें ॥२३॥

इस मन्त्र का पिछला पाद आ चुका है—अ० ६ । ५७ । ३ ॥

अरिप्रा आपो अपं रिप्रमस्मत् ।
प्रास्मदेनों दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुःष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥२४ ।

भाषार्थः—(अरिप्राः) निर्दोष (आपः) विद्वान् लोग (रिप्रम्) पाप को (अस्मत्) हम से (अप) दूर [पहुंचावें] (सुप्रतीकाः) बड़ी प्रतीति वाले वा सुन्दर रूप वाले लोग (अस्मत्) हम से (दुरितम्) कठिन (एनः) पाप को (प्र) दूर (दुस्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न को (प्र) दूर और (मलम्) मलिनता को (प्र) दूर (वहन्तु) पहुंचावें ॥२४॥

भावार्थः—विद्वान् लोग घोर पापों से बचकर दूसरों को पापों से छुड़ा कर सुखी करते हैं ॥२४॥

विभागः २ । मन्त्राः २५—३६ ॥ विष्णुर्देवता ॥ २५, २७—३५ शक्वरी; २६ अतिशक्वरी, ३६ अष्टिः ॥

विदुषां कर्तव्योपदेशः—विद्वानों के कर्तव्य का उपदेश ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः । पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२५॥

भाषार्थः—तू (विष्णोः) विष्णु [सर्व व्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रम युक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने हारा, (पृथिवीसंशितः) पृथिवी से तीक्ष्ण किया गया, (अग्नितेजाः) अग्नि से तेज पाया हुआ (असि) है। (पृथिवीम् अनु) पृथिवी के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूं, (पृथिव्याः) पृथिवी से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भाग रहित करते हैं, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥२५॥

भावार्थः—परमेश्वर की दी हुई अद्भुत शक्तियों से मनुष्य पृथिवी और अग्नि के उपकारों को विचार कर अपने दोषों और शत्रुओं का नाश करके आनन्दित होवे ॥२५॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः । अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो यो३'स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२६॥

भाषार्थः— तू (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रम युक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने हारा, (अन्तरिक्षसंशितः) अन्तरिक्ष [मध्य लोक] से तीक्ष्ण किया गया, (वायुतेजाः) प्राण आदि वायु से तेज पाया हुआ (असि) है। (अन्तरिक्षम् अनु) अन्तरिक्ष के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूं, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भाग रहित करते हैं······म० २५ ॥२६॥

भावार्थः– मनुष्य अन्तरिक्ष और वायु के उपकारों को विचारकर संसार में उपकारी बने ॥२६॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः । दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो यो३'स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२७॥

भाषार्थः—तू (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रम युक्त, (सपत्नहा) बैरियों का नाश करने हारा (द्यौसंशितः) आकाश से तीक्ष्ण किया गया, (सूर्यतेजाः) सूर्य से तेज पाया हुआ (असि) है। (दिवम् अनु) आकाश के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (दिवः) आकाश से (तम्) उस [शत्रु] को······म० २५ ॥२७॥

भावार्थः—मनुष्य संसार के आधार आकाश और वृष्टि आदि के कारण सूर्य के उपकारों को विचार कर संसार में उपकार करें ॥२७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः । दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२८॥

भाषार्थः तू (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से, (क्रमः) पराक्रम युक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने हारा (दिक्संशितः) दिशाओं से तीक्ष्ण किया गया, (मनस्तेजाः) मन से तेज पाया हुआ (असि) है। (दिशः अनु) दिशाओं के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूं, (दिग्भ्यः) दिशाओं से (तम्) उस [शत्रु] को····· म० २५ ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्य दिशाओं के और मन के ज्ञान से उपकार लेकर उपकारी होवें ॥२८॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः । आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२९॥

भाषार्थः—तू (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रम-युक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने हारा, (आशासंशितः) मध्य दिशाओं से तीक्ष्ण किया गया, (वाततेजाः) पवन से तेज पाया हुआ (असि) है। (आशाः अनु) मध्यदिशाओं के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूं, (आशाभ्यः) मध्य-दिशाओं से (तम्) उस शत्रु को······म० २५ ॥२९॥

भावार्थः—मन्त्र २८ के समान है ॥२९॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नह ऋक्संशितः सामतेजाः । ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३०॥

भाषार्थः—तू (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रम युक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने हारा, (ऋक्संशितः) वेद वाणियों से तीक्ष्ण किया गया, (सामतेजाः) दुःखनाशक मोक्ष ज्ञान से तेज पाया हुआ (असि) है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऋचः अनु) वेद वाणियों के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (ऋग्भ्यः) वेद वाणियों से (तम्) उस शत्रु को······म० २५ ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्य वेदविद्याओं और मोक्षविद्याओं द्वारा दुःख से छूट कर सुख प्राप्त करे ॥३०॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः। यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३१॥

भाषार्थः—तू (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रम-युक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने हारा, (यज्ञसंशितः) शुभ कर्म से तीक्ष्ण किया गया और (ब्रह्मतेजाः) ब्रह्म [परमेश्वर] से तेज पाया हुआ (असि) है। (यज्ञम् अनु) शुभ कर्म के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूं, (यज्ञात्) शुभकर्म से (तम्) उस [शत्रु] को···म० २५ ॥३१॥

भावार्थः—मनुष्य शुभ कर्म द्वारा ईश्वर से तेज प्राप्त करके सुखी होवे ॥३१॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः। ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३२॥

भाषार्थः—तू (विष्णोः) विष्णु [सर्व व्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रम युक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने हारा (ओषधीसंशितः) ओषधियों से तीक्ष्ण किया गया, (सोमतेजाः) सोम [अमृत रस] से तेज पाया हुआ (असि) है। (ओषधीः अनु) ओषधियों के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूं, (ओषधीभ्यः) ओषधियों से (तम्) उस [शत्रु] को···म० २५ ॥३२॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम ओषधियों और सोम आदि के रस के प्रयोग से बलवान् होकर प्रसन्न रहें ॥३२॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः। अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—तू (विष्णोः) विष्णु [सर्व व्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रम युक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने हारा, (अप्सुसंशितः) जलों से तीक्ष्ण किया गया (वरुणतेजाः) मेघ से तेज पाया हुआ (असि) है। (अपः अनु) जलों के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (अद्भ्यः) जलों से (तम्) उस [शत्रु] को…म० २५ ॥३३॥

भावार्थः – मनुष्य जल विद्याओं में निपुण होकर मेघ समान उपकारी होवे ॥३३॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः। कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३४॥

भाषार्थः—तू (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रम युक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने हारा, (कृषिसंशितः) खेती से तीक्ष्ण किया गया और (अन्नतेजाः) अन्न से तेज पाया हुआ (असि) है। (कृषिम् अनु) खेती के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (कृष्याः) खेती से (तम्) उस [शत्रु] को…म० २५ ॥३४॥

भावार्थः- मनुष्य खेती और अन्न के प्रयोग से ऐश्वर्यवान् होवें ॥३४॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः। प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३५॥

भाषार्थः—तू (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रम युक्त, (सपत्नहा) शत्रुओं का नाश करने हारा, (प्राणसंशितः) प्राण से तीक्ष्ण किया गया और (पुरुषतेजाः) पुरुष [आत्मा] से तेज पाया हुआ (असि) है। (प्राणम् अनु) प्राण के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूं, (प्राणात्) प्राण से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं। (सः) वह (माजीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥३५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य प्राण [जीवन साधन वायु] और आत्मा [परमात्मा और जीवात्मा] के बोध से संसार में उन्नति करे ॥३५॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः । इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥३६॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया गया (अस्माकम्) हमारा [हो], (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ (अस्माकम्) हमारा [हो], (विश्वाः) सब (पृतनाः) [शत्रुओं की] सेनाओं और (अरातीः) कञ्जूसियों को (अभि अस्थाम्) मैं ने रोक दिया है। (इदम्) अब (अहम्) मैं (आमुष्यायणस्य) अमुक पुरुष के और (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रस्य) पुत्र का (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) लपेटे लेता हूं, (इदम्) अब (एनम्) इसको (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) गिराता हूं ॥३६॥

भावार्थः—प्रजापालक शूर वीर पुरुष एक शत्रु को जीतकर उसकी आय से सुप्रबन्ध करे और दूसरे प्रसिद्ध प्रसिद्ध बैरियों को इसी प्रकार अधीन करे ॥३६॥

विभागः ३ । मन्त्राः ३७—४१ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ ३७ अनुष्टुप्, ३८ पुरउष्णिक्; ३९, ४१ गायत्री; ४० विराड् गायत्री छन्दः ॥

विदुषां कर्तव्योपदेशः—विद्वानों के कर्तव्य का उपदेश ॥

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम् ।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३७॥

भावार्थः—(सूर्यस्य) सूर्य की (आवृतम्) परिपाटी [रीति पर] (अन्वावर्ते) मैं चला चलता हूं [उसकी] (दक्षिणाम्) वृद्धियुक्त (आवृतम् अनु) परिपाटी पर। (सा) वह [परिपाटी] (मे) मुझे (द्रविणम्) बल और (सा) वह (मे) मुझे (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] का प्रताप (यच्छतु) देवे ॥३७॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य के समान ईश्वरकृत नियम पर चलकर बल और ब्रह्मविद्या प्राप्त करे ॥३७॥

दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते ।
ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ज्योतिष्मतीः) प्रकाशमयी (दिशः) दिशाओं की ओर (अभ्यावर्ते) मैं घूमता हूं। (ताः) वे [दिशायें] (मे) मुझे (द्रविणम्) बल और (ताः) वे (मे) मुझे (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] का प्रताप (यच्छन्तु) देवें ॥३८॥

भावार्थः—मनुष्य सब दिशाओं से विज्ञान द्वारा बल प्राप्त करके ईश्वर आज्ञा का पालन करे ॥३८॥

सप्तऋषीनभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३९॥

भाषार्थः—(सप्तऋषीन्) सात व्यापन शीलों वा दर्शन शीलों [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि, अथवा दो कान, दो नथने, दो आंख और मुख इन सात छिद्रों] की ओर (अभ्यावर्ते) मैं घूमता हूं। (ते) वे (मे) मुझे (द्रविणम्) बल और (ते) वे (मे) मुझे (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] का प्रताप (यच्छन्तु) देवें ॥३९॥

भावार्थः—मनुष्य इन्द्रियों से यथावत् उपकार लेकर बली और ब्रह्मवर्चसी होवें ॥३९॥

ब्रह्माभ्यावर्ते। तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४०॥

भाषार्थः—(ब्रह्म) ब्रह्म [परमेश्वर] की ओर (अभ्यावर्ते) मैं घूमता हूं। (तत्) वह [ब्रह्म] (मे) मुझे (द्रविणम्) बल और (तत्) वह (मे) मुझे (ब्राह्मण-वर्चसम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] का प्रताप (यच्छतु) देवे ॥४०॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मज्ञान से ब्राह्मण समान बलवान् और प्रतापी होवें ॥४०॥

ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४१॥

भाषार्थः—(ब्राह्मणान्) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] की ओर (अभ्यावर्ते) मैं घूमता हूं। (ते) वे (मे) मुझे (द्रविणम्) बल और (ते) वे (मे) मुझे (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] का प्रताप (यच्छन्तु) देवें ॥४१॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मज्ञानियों के सत्संग से ऐश्वर्य और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करे ॥४१॥

विभागः ४। मन्त्राः ४२—५०॥ प्रजापतिर्देवता॥ ४२, ४३, ४६, ४७, अनुष्टुप्; ४४ आर्चीपङ्क्तिः; ४५ भुरिगनुष्टुप् ४८, ४९ भुरिक् त्रिष्टुप्; ५० निचृत् त्रिष्टुप्॥

शत्रुनाशोपदेशः—शत्रुओं के नाश का उपदेश॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहै ।

व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ॥४२॥

भाषार्थः—(यम्) जिस [शत्रु] को (वयम्) हम (मृगयामहे) ढूंढते हैं, (तम्) उसको (वधैः) वज्रों से (स्तृणवामहै) हम विनाशें। (परमेष्ठिनः) सब से ऊंचे पद वाले [राजा] के (व्यात्ते) खुले मुख [वश] में (ब्रह्मणा) ब्रह्मज्ञान से (तम्) उसको (आ=आनीय) लाकर (अपीपदाम) हमने गिरा दिया है ॥४२॥

भावार्थः—सब शूरवीर शुभचिन्तक मनुष्य दुष्टों को पकड़ कर राजा के वशीभूत करें ॥४२॥

वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि ।

इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद् देवी सहीयसी ॥४३॥

भाषार्थः—(वैश्वानरस्य) सब नरों का हित करने हारे [राजा] के (दंष्ट्राभ्याम) [प्रजा रक्षण और शत्रुनाशन रूप] दोनों डाढ़ों से (हेतिः) वज्र ने (तम्) उस [शत्रु] को (सम् अभि अधात्) दबोच लिया है। (इयम्) यह (आहुतिः) आहुति [होम का चढ़ावा], (देवी) उत्तम गुण वाली (सहीयसी) अधिक बल वाली (समित्) समिधा [काष्ठ घृत आदि] (तम्) उसको (प्सातु) खा जावे ॥४३॥

भावार्थः—प्रजापालक राजा उपद्रवियों को सदा वश में रक्खे और उन को ऐसा नष्ट कर देवे जैसे हवन में उत्तम सामग्री और काष्ठ आदि से रोगकारक दुर्गन्ध आदि नष्ट हो जाते हैं ॥४३॥

राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि ।

सो३ऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ॥४४॥

भाषार्थः—[हे सेनापति !] तू (वरुणस्य) श्रेष्ठ (राज्ञः) राजा का [शत्रुओं के लिये] (बन्धः) बन्धन (असि) है। (सः) सो तू (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पिता के पुत्र और (अमुष्याः) अमुक माता के (पुत्रम्) पुत्र को (अन्ने) अन्न में और (प्राणे) श्वास में (बधान) बांध ले ॥४४॥

भावार्थः—मन्त्री, सेनापति आदि राजपुरुषों को योग्य है कि माता पिता आदि के नाम से पता लगाकर दुराचारी को अन्न और वायु की रोक के साथ कारागार में बन्ध कर दें ॥४४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु ।
तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥४५॥

भाषार्थः—(भुवः पते) हे भूपति [राजन् !] (यत्) जो (ते) तेरा (अन्नम्) अन्न (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (आक्षियति) रहा करता है। (भुवः पते) हे भूपति ! (प्रजापते) हे प्रजापति [राजन् !] (त्वम्) तू (नः) हमें (तस्य) उस [अन्न] का (संप्रयच्छ) दान करता रहे ॥४५॥

भावार्थः—राजा अपने सुप्रबन्ध से अन्न आदि पदार्थों को खेत और भाण्डागार में सुरक्षित रखकर प्रजा पालन करे ॥४५॥

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥४६॥

भाषार्थः—(दिव्याः) दिव्य गुण स्वभाव वाले (अपः) जलों [के समान शुद्ध करने वाले विद्वानों] को (अचायिषम्) मैं ने पूजा है (रसेन) पराक्रम से (सम् अपृक्ष्महि) हम संयुक्त हुए हैं। (अग्ने) हे विद्वान् ! (पयस्वान्) गतिवाला मैं (आ अगमम्) आया हूं (तम्) उस (मा) मुझ को (वर्चसा) [वेदाध्ययन आदि के] तेज से (सम् सृज) संयुक्त कर ॥४६॥

भावार्थः—मनुष्य उद्योग करके विद्वानों से और वेद आदि शास्त्रों से विद्या प्राप्त करके यशस्वी होवें ॥४६॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ७। ८९। १॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥४७॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् ! (मा) मुझ को (वर्चसा) [ब्रह्म विद्या के] तेज से (सम्) अच्छे प्रकार (प्रजया) प्रजा से (सम्) अच्छे प्रकार, और (आयुषा) जीवन से (सम् सृज) अच्छी प्रकार संयुक्त कर। (देवाः) विद्वान् लोग (अस्य) इस (मे) मुझ को (विद्युः) जानें, (इन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान् आचार्य (ऋषिभिः सह) ऋषियों के साथ [मुझे] (विद्यात्) जाने ॥४७॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम विद्या पाकर संसार के सुधार से अपना जीवन सफल करके विद्वानों और गुरुजनों में प्रतिष्ठा पावें ॥४७॥

यह मन्त्र आचुका है—अ० ७। ८९। २॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद॑ग्ने अ॒द्य मि॑थु॒ना शपा॑तो य॒द्वाच॒स्तृ॒ष्टं ज॒नय॑न्त रे॒भाः ।
म॒न्योर्मन॑सः शर॒व्या॒३॒॑ जाय॑ते॒ या तया॑ विध्य॒ हृद॑ये यातु॒धाना॑न् ॥४८॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन्!] (यत्) जो (अद्य) आज (मिथुना) दो हिंसक मनुष्य [सतपुरुषों से] (शपातः) कुवचन बोलते हैं, और (यत्) जो (रेभाः) शब्द करने वाले [शत्रु लोग] (वाचः) वाणी की (तृष्टम्) कठोरता (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं, (मन्योः) क्रोध से (मनसः) मन की (या) जो (शरव्याः) बाणों की झड़ी (जायते) उत्पन्न होती है, (तया) उस से (यातुधानान्) दुःखदायिओं को (हृदये) हृदय में (विध्य) तू बेध ले ॥४८॥

भावार्थः राजा दुर्वचनभाषियों को विचारपूर्वक दण्ड देता रहे॥४८॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ८ । ३ । १२ ॥

परा॑ शृणीहि॒ तप॑सा यातु॒धाना॒न् परा॑ग्ने॒ रक्षो॒ हर॑सा शृणीहि ।
परा॒र्चिषा॒ मूर॑देवाञ्छृणीहि॒ परा॑सु॒तृपः॒ शोशु॑चतः शृणीहि ॥४९॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन्!] (तपसा) अपने तप [ऐश्वर्य वा प्रताप] से (यातुधानान्) दुःखदायिओं को (परा शृणीहि) कुचल डाल, (रक्षः) राक्षसों [दुराचारियों वा रोगों] को (हरसा) अपने बल से (परा शृणीहि) मिटा दे। (अर्चिषा) अपने तेज से (मूरदेवान्) मूढ़ [निर्बुद्धि] व्यवहार वालों को (परा शृणीहि) नाश कर दे, (शोशुचतः) अत्यन्त दमकते हुए, (असुतृपः) [दूसरों के] प्राणों से तृप्त होने वालों को (परा शृणीहि) चूर चूर कर दे ॥४९॥

भावार्थः—राजा अत्यन्त क्लेशदायक प्राणियों के नाश करने में सदा उद्यत रहे ॥४९॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ८ । ३ । १३ ॥

अ॒पाम॑स्मै॒ वज्रं॒ प्र ह॑रामि॒ चतु॑र्भृष्टिं शीर्ष॒भिद्या॑य वि॒द्वान् ।
सो अ॒स्याङ्गा॑नि॒ प्र शृ॑णातु॒ सर्वा॒ तन्मे॑ दे॒वा अनु॑ जानन्तु॒ विश्वे॑ ॥५०॥

भाषार्थः—(विद्वान्) विद्वान् मैं (अस्मै) इस [शत्रु पर] (शीर्षभिद्याय) शिर तोड़ने के लिये (अपाम्) जलों का (चतुर्भृष्टिम्) चौफाले (वज्रम्) वज्र [अस्त्र] को (प्र हरामि) चलाता हूं। (सः) वह [वज्र] (अस्य) उस के (सर्वा) सब (अङ्गानि) अङ्गों को (प्र शृणातु) चूर चूर कर डाले, (मे) मेरे (तत्) उस [कर्म] को (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अनु जानन्तु) मान लेवें ॥५०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा चारों ओर चोट करने वाले वारुणेय [जल में छुटने वाले] अस्त्र [इसी प्रकार आग्नेय वायव्य अस्त्र] से शत्रु का नाश करके विद्वानों में कीर्ति पावे ॥५०॥

सूक्तम् ॥६॥

१—३५ ॥ बृहस्पतिः प्रजापतिर्वा देवता ॥ १, ४, २१ गायत्री; २, ३, १८, १९, २२, २८, २९, ३०, ३३, ३४ अनुष्टुप्; ५, ३५ आर्षी जगती, ६, १२—१७ शक्वरी; ७, ८, ९ अष्टिः; १० धृतिः; ११, २०, २३—२७ पथ्या पङ्क्तिः; ३१ भुरिज्जगती; ३२ भुरिगनुष्टुप् छन्दः ॥

सर्वकामसिद्ध्युपदेशः—सब कामनाओं की सिद्धि का उपदेश ॥

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः ।
अपि वृश्चाम्योजसा ॥१॥

भाषार्थः—(अरातीयोः) कंजूसी करने वाले, (भ्रातृव्यस्य) भ्रातृभाव से रहित, (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले (द्विषतः) द्वेषी के (शिरः) शिर को (ओजसा) बल के साथ (अपि वृश्चामि) मैं काटे देता हूं ॥१॥

भावार्थः—प्रतापी मनुष्य शत्रुओं के मारने में सदा समर्थ होवे ॥१॥

वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥२॥

भाषार्थः—(फालात्) फल के [देने में] ईश्वर [परमात्मा] से (जातः) उत्पन्न हुआ (अयम्) यह (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मह्यम्) मेरे लिये (वर्म) कवच (करिष्यति) बनावेगा। (मन्थेन) मथन [सूक्ष्म विचार] से (पूर्णः) पूर्ण [वह वैदिक नियम] (मा) मुझ को (रसेन) बल और (वर्चसा सह) प्रताप के साथ (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर प्रणीत वेद के सूक्ष्म विचार से बली और प्रतापी होवे ॥२॥

यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥३॥

भाषार्थः—(यत्) यदि (शिक्वः) छीलने वाले, (तक्षा) दुर्बल करने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[शत्रु] ने (हस्तेन) अपने हाथ से (वास्या) कुल्हाड़ी द्वारा (त्वा) तुझ को (परा-अवधीत्) मार गिराया है। (जीवलाः) जीवन दाता, (शुचयः) शुद्ध स्वभाव वाले (आपः) विद्वान् लोग (शुचिम् त्वा) तुझ पवित्र को (तस्मात्) उस [कष्ट] से (पुनन्तु) शुद्ध करें ॥३॥

भावार्थः—परोपकारी धर्मात्मा विद्वान् लोग उत्पातियों से निर्बलों की रक्षा करें ॥३॥

हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत्।

गृहे वसतु नोऽतिथिः ॥४॥

भाषार्थः—(हिरण्यस्रक्) कामना योग्य [तेजों] का उत्पन्न करने वाला (अतिथिः) सदा मिलने योग्य (अयम्) यह (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (श्रद्धाम्) श्रद्धा [सत्य धारण], (यज्ञम्) श्रेष्ठ कर्म, (महः) बड़प्पन (दधत्) देता हुआ (नः) हमारे (गृहे) घर में (वसतु) वसे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य वेदों के नित्य विचार से श्रद्धावान्, यशस्वी और परोपकारी होवें ॥४॥

तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे। स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयःश्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥५॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [वैदिक नियम की प्राप्ति] के लिये (मधु) मधु-विद्या [यथार्थ ज्ञान], (सुराम्) ऐश्वर्य, (घृतम्) तेज और (अन्नमन्नम्) अन्न पर अन्न को (क्षदामहे) हम बांटते हैं। (सः) वह (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (देवेभ्यः) विद्वानों से (एत्य) आकर (नः) हमें, (पिता इव) पिताके समान (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये, (श्रेयःश्रेयः) कल्याण के पीछे कल्याण को (भूयोभूयः) बहुत बहुत, (श्वः श्वः) कल के पीछे कल [नित्य आगामी काल में] (चिकित्सतु) वैद्यरूप से बतावे ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य वेद विद्या की प्राप्ति के लिये अपनी शरीर रक्षा करके दूसरों को विद्यादान आदि करते हैं, वे संसार में नित्य नये आनन्द भोगते हैं ॥५॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमात्मा] ने (यम्) जिस (फालम् फल के ईश्वर, (घृतश्चुतम्) प्रकाश की बरसा करने वाले, (उग्रम्) बलवान्, (खदिरम्) स्थिर गुण वाले (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (ओजसे) बल के लिये (अबध्नात्) बांधा है [बनाया है]। (तम्) उस [नियम] को (अग्निः) अग्नि [अग्नि समान तेजस्वी पुरुष] ने (प्रति अमुञ्चत) स्वीकार किया है, (सः) वह [नियम] (अस्मै) इस [तेजस्वी] के लिये (आज्यम्) पाने योग्य पदार्थ को (भूयोभूयः) बहुत, बहुत, (श्वःश्वः) कल के पीछे कल [नित्य आगामी काल में] (दुहे) पूरा करता है, (तेन) उस [वैदिक नियम] से (त्वम्) तू (द्विषतः) वैरियों को (जहि) मार ॥६॥

भावार्थः—जिस ईश्वर नियम से अग्नि पदार्थों में व्यापकर बल बढ़ाता है उस वैदिक नियम को विद्वान् लोग परम्परा मान कर अपना कर्तव्य करते आये हैं, उसी नियम को प्रत्येक मनुष्य ग्रहण करके सब शत्रुओं को नाश करे ॥६॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम्। सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥७॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिः) बृहस्पती [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (यम्) जिस ''' म० ६। (तम्) उस [वैदिक नियम] को (इन्द्रः) इन्द्र [मेघ समान उपकारी पुरुष] ने (ओजसे) बल के लिये और (वीर्याय) पराक्रम के लिये (कम्) सुख से (प्रति अमुञ्चत) स्वीकार किया है। (सः) वह [वैदिक नियम] (अस्मै) इस [उपकारी] के लिये (इत) ही (बलम्) बल को (भूयोभूयः) बहुत बहुत''' म० ६ ॥७॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर की आज्ञा से मेघ वृष्टि द्वारा अन्न आदि उत्पन्न करके संसार में पुष्टि करता है, उसी परमात्मा की उपासना से बल प्राप्त करके विद्वान् लोग सदा उपकार करते रहे हैं और करते रहें ॥७॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे। सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर ने (यम्) जिस ··म० ६। (तम्) उस [वैदिक नियम] को (सोमः) सोम [सोमरस, अन्न आदि अमृत समान सुख उत्पन्न करने वाले पुरुष] ने (महे) महत्त्व के लिये, (श्रोत्राय) श्रवण सामर्थ्य के लिये और (चक्षसे) दर्शन सामर्थ्य के लिये (प्रति अमुञ्चत) स्वीकार किया है। (सः) वह [वैदिक नियम] (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (इत्) ही (वर्चः) तेज (भूयोभूयः) बहुत बहुत···म० ६ ॥८॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर के नियम से अन्न आदि अमृत पदार्थ शरीर को पुष्ट कर इन्द्रियों को स्वस्थ रखते हैं, उसी परमात्मा के ज्ञान से पूर्वजों के समान दूरदर्शी होकर सब लोग सुख वृद्धि करें ॥८॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः। सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥९॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (यम्) जिस···म० ६ (तम्) उस [वैदिक नियम] को (सूर्यः) सूर्य [सूर्य समान राज्य चलाने वाले वीर] ने (प्रति अमुञ्चत) स्वीकार किया है, (तेन) उस [वैदिक नियम] से (इमाः दिशः) इन दिशाओं को (अजयत्) जीता है। (सः) वह [वैदिक नियम] (अस्मै) इस [वीर पुरुष] के लिये (इत्) ही (भूतिम्) विभूति [सम्पत्ति] (भूयोभूयः) बहुत बहुत···म० ६ ॥९॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने परिधि के लोकों को आकर्षण द्वारा मर्यादा में चलाता है, उसी प्रकार नीतिनिपुण राजा परमेश्वरनियम से प्रजा का सुख बढ़ा कर अपना अभ्युदय करे ॥९॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः। सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमात्मा] ने (यम्) जिस (फालम्) फल के ईश्वर, (घृतश्चुतम्) प्रकाश की बरसा करने वाले, (उग्रम्) वलवान्, (खदिरम्) स्थिर गुण वाले (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (ओजसे) बल के लिये (अबध्नात्) बांधा है [बनाया है]। (तम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस (मणिम्) मणि [वैदिक नियम] को (बिभ्रत्) धारण करने वाले (चन्द्रमाः) चन्द्रमा [चन्द्रमा समान आनन्दकारी पुरुष] ने (असुराणाम्) असुरों [देवताओं के विरोधियों] और (दानवानाम्) दानवों [छेदनस्वभाव वाले दुष्टों] की (हिरण्ययीः) सुवर्णमयी (पुरः) नगरियों को (अजयत्) जीता है, (सः) वह [वैदिक नियम] (अस्मै) इस [आनन्दकारी पुरुष] के लिये (इत्) ही (श्रियम्) श्री [सेवनीय सम्पत्ति] (भूयोभूयः) बहुत बहुत···म० ८ ॥१०॥

भावार्थः—जैसे चन्द्रमा अपने शीतलता आदि गुण से प्राणियों को पुष्ट करता है, उसी प्रकार पूर्व महात्माओं के समान परमेश्वर की महिमा को साक्षात् करके दूरदर्शी विवेकी पुरुष संसार में सुख वृद्धि करे ॥१०॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयो-भूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥११॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (वाताय) गमन शील (आशवे) भोक्ता [प्राणी] के लिये (अबध्नात्) बांधा है। (सः) वह [वैदिक नियम] (अस्मै) इस [प्राणी] के लिये (वाजिनम्) बल (भूयोभूयः) बहुत बहुत··· म० ६ ॥११॥

भावार्थः—अनुभवी विद्वानों के समान पुरुषार्थी मनुष्य वैदिक नियम से यथावत् बल बढ़ा कर विघ्नों को हटावे ॥११॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तेने मां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः । स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयो भूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१२॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को··· म० ११ (अबध्नात्) बांधा है। (तेन) उस (मणिना) मणि [प्रशंसनीय वैदिकनि यम] से (इमाम् कृषिम्) इस खेती की (अश्विनौ) कामों में व्याप्ति वाले दोनों [स्त्री पुरुष] (अभि रक्षतः) रक्षा करते रहते हैं (सः) वह [वैदिक नियम] (भिषग्भ्याम्) उन दोनों वैद्यों के लिये (महः) बड़ाई (भूयो भूयः) बहुत बहुत···म० ६ ॥१२॥

भावार्थः—वैदिक विज्ञान द्वारा स्त्री पुरुष खेती रूप इस संसार के व्यवहार को सिद्ध कर के सुख भोगें ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः । सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१३॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिकनियम] को··· म० ११ (अबध्नात्) बांधा है। (तम्) उस (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (बिभ्रत्) धारण करके (सविता) सब के चलाने वाले [मनुष्य] ने (तेन) उस [वैदिक नियम] द्वारा (इदम् स्वः) यह सुख (अजयत्) जीता है। (सः) वह [वैदिक नियम] (अस्मै) इस [प्राणी] के लिये (सूनृताम्) प्रिय सत्य वाणी को (भूयोभूयः) बहुत बहुत···म० ६ ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्य वेद द्वारा सुशिक्षा प्राप्त करके सत्य और हित वचन बोलकर आनन्दित होवे ॥१३॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः । स आभ्योऽमृतमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१४॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को··· म० ११ (अबध्नात्) बांधा है। (तम्) उस (मणिम्) [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (बिभ्रतीः) धारण करती हुई (आपः) प्रजायें (अक्षिताः) अक्षीण होकर (सदा) सदा (धावन्ति) दौड़ती हैं। (सः) वह [वैदिक नियम] (आभ्यः) इन [प्रजाओं] के लिये (इत्) ही (अमृतम्) अमृत [पुरुषार्थ] को (भूयोभूयः) बहुत बहुत··· म० ६ ॥१४॥

भावार्थः—सब प्राणी वैदिक ज्ञान से निरालसी और स्वस्थ रहकर सदा प्रयत्न करते रहें ॥१४॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् । सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१५॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम को··· म० ११] (अबध्नात्) बांधा है। (तम्) उस (शंभुवम्) शान्तिकारक (मणिम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) राजा ने (प्रति अमुञ्चत) स्वीकार किया है। (सः) वह [वैदिक नियम] (अस्मै) इस [राजा] के लिये (इत्) ही (सत्यम्) सत्य को (भूयोभूयः) बहुत बहुत… म० ६ ॥१५॥

भावार्थः—राजा प्राचीन इतिहासों को विचार कर वैदिक शिक्षा स्वीकार करके सत्य के प्रचार में सदा प्रवृत्त रहे ॥१५॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वांल्लोकान् युधाजयन्। स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१६॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को… म० ११ (अबध्नात्) बांधा है। (तम्) उस (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (देवाः) विजयी लोगों ने (सर्वान् लोकान्) सब लोकों को (युधा) युद्ध से (अजयन्) जीता है। (सः) वह [वैदिक नियम] (एभ्यः) इन [विजयी लोगों] के लिये (इत्) ही (जितिम्) जीत (भूयोभूयः) बहुत बहुत… म० ॥१६॥

भावार्थः— जिस प्रकार पुरुषार्थी लोगों ने ईश्वर नियम पर चलकर विजय पाया है, वैसे ही सब मनुष्य वेद विद्या द्वारा निरालसी होकर दुःखों से अलग होवें ॥१६॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम्। स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१७॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (वाताय) गमनशील (आशवे) भोक्ता [प्राणी] के लिये (अबध्नात्) बांधा है। (तम् इमम्) उस ही (शंभुवम्) शान्तिकारक (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (देवताः) देवताओं [विद्वानों] ने (प्रति अमुञ्चन्त) स्वीकार किया है। (सः) वह [वैदिक नियम] (आभ्यः) इन [देवताओं] के लिये (इत्) ही (विश्वम्) प्रत्येक वस्तु (भूयोभूयः) बहुत बहुत, (श्वः श्वः) कल के पीछे कल [अर्थात् नित्य आगामी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय में] (दुहे) पूरा करता है, (तेन) उस [वैदिक नियम] से (त्वम्) तू (द्विषतः) बैरियों को (जहि) मार ॥१७॥

भावार्थः—ईश्वर विहित वैदिक नियम को विद्वान् मानकर सदा आनन्द पाते रहे हैं, इसी प्रकार सब मनुष्य वेदमार्ग पर चलकर आनन्द भोगें ॥१७॥

ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत ।
संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥१८॥

भाषार्थः—(ऋतवः) ऋतुओं ने (तम्) उस [मणि, वैदिक नियम] को (अबध्नत) बांधा है, (आर्तवाः) ऋतुओं के अवयवों ने (तम्) उसको (अबध्नत) बांधा [माना] है, (संवत्सरः) संवत्सर [वर्ष वा काल] (तम्) उसको (बद्ध्वा) बांधकर (सर्वम्) सब (भूतम्) जगत् को (वि) विविध प्रकार (रक्षति) पालता है ॥१८॥

भावार्थः—कारण और कार्य रूप काल परमात्मा के नियम से संसार का उपकार करता है ॥१८॥

अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत ।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधराँ अकः ॥१९॥

भाषार्थः—(अन्तर्देशाः) अन्तर्देशों ने (अबध्नत) [वैदिक नियम को] बांधा है, (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं ने (तम्) उस [वैदिक नियम] को (अबध्नत) बांधा है। (प्रजापतिसृष्टः) प्रजापति [परमात्मा] के उत्पन्न किये हुए (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] ने (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (अधरान्) नीचे (अकः) किया है ॥१९॥

भावार्थः—सब स्थानों के पदार्थ ईश्वर नियम अनुसार मनुष्य का उपकार करते है ॥१९॥

अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत । तैर्मेदिनो
अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥२०॥

भाषार्थः—(अथर्वाणः) निश्चल स्वभाव वाले [ऋषियों] ने [वैदिक नियम] (अबध्नत) बांधा [माना] है, (आथर्वणाः) निश्चल परमात्मा के जानने वाले [विवेकियों] ने [उसे] (अबध्नत) बांधा है। (तैः) उन [विवेकियों] के साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मेदिनः) स्नेही वा बुद्धिमान् (अङ्गिरसः) ऋषियों ने (दस्यूनाम्) डाकुओं की (पुरः) नगरियों को (बिभिदुः) तोड़ा था, (तेन) उस [वैदिक नियम] से (त्वम्) तू (द्विषतः) बैरियों को (जहि) मार ॥२०॥

भावार्थः— जैसे ईश्वर नियम पर चल कर विद्वानों की सहायता से दूसरे विद्वानों ने संसार में जीत पाई है, उसी प्रकार सब मनुष्य परस्पर सहायक होकर विघ्नों का नाश करें ॥२०॥

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् ।
तेन त्वं द्विषतो जहि ॥२१॥

भाषार्थः—(तम्) उस [वैदिक नियम] को (धाता) धारण कर्त्ता [राजा] ने (प्रति अमुञ्चत) स्वीकार किया है, और (सः) उसने (भूतम्) जगत् को (वि अकल्पयत्) संभाला है । (तेन) उस [वैदिक नियम] से (त्वम्) तू (द्विषतः) बैरियों को (जहि) मार ॥२१॥

भावार्थः—जैसे राजा वेद द्वारा राज्य का प्रबन्ध करता है वैसे ही प्रत्येक मनुष्य करे ॥२१॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥२२॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक [वैदिक नियम] को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (देवेभ्यः) विजयी लोगों के लिये (अबध्नात्) बांधा है । (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (रसेन) पराक्रम और (वर्चसा सह) प्रताप के साथ (आ अगमत्) प्राप्त हुआ ॥२२॥

भावार्थः—परमात्मा के बांधे नियम पर चलकर सब मनुष्य बल और कीर्ति बढ़ावें ॥२२॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं
मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥२३॥

भाषार्थः —(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक .....म० २२ । (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (गोभिः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौओं और (अजाविभिः सह) बकरी और भेड़ों के साथ, (अन्नेन) अन्न और (प्रजया सह) प्रजा [सन्तान] के साथ (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥२३॥

भावार्थः– मनुष्य ईश्वर-नियम पर चलकर गौ आदि प्राणियों से उपकार लेकर सुखी रहे ॥२३॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं
मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥२४॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक···म० २२ । (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (व्रीहियवाभ्याम् सह) चावल और यव के साथ और (महसा) बड़ाई और (भूत्या सह) विभूति [सम्पत्ति] के साथ (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥२४॥

भावार्थः– मनुष्य धर्म से अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके यश और ऐश्वर्य बढ़ावें ॥२४॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं
मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह ॥२५॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक···म० २२ । (सः अयम्) वह (मणिः) प्रशंसनीय (मणिः) मणि [वैदिक नियम] (मा) मुझे (मधोः) मधुर रस की और (घृतस्य) घृत की (धारया) धारा से (कीलालेन सह) अच्छे पके अन्न के सहित (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥२५॥

भावार्थः– मनुष्य धर्म से अन्न आदि पदार्थ लाकर निर्वाह करें ॥२५॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं
मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह ॥२६॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक·····म० २२ । (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (ऊर्जया) पराक्रम और (पयसा सह) ज्ञान के साथ [तथा] (द्रविणेन) धन और (श्रिया सह) श्री [सेवनीय सम्पत्ति] के सहित (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥२६॥

भावार्थः—मनुष्य धर्म्मानुसार पराक्रमी, ज्ञानी, धनी और ऐश्वर्यवान् होवें ॥२६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं
मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह ॥२७॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक…म० २२। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (तेजसा) तेज और (त्विष्या सह) शोभा के साथ [तथा] (यशसा) यश और (कीर्त्या सह) कीर्त्ति के साथ (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥२७॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर नियम से पुरुषार्थी होकर प्रतापी और यशस्वी होवें ॥२७॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥२८॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुर नाशक [वैदिक नियम] को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (देवेभ्यः) विजयी लोगों के लिये (अबध्नात्) बांधा है। (यः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (सर्वाभिः) सब प्रकार की (भूतिभिः सह) सम्पत्तियों सहित (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा के नियम पर चलकर सब प्रकार की सम्पत्तियां प्राप्त करें ॥२८॥

तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये ।
अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥२९॥

भाषार्थः—(देवताः) देवता [विद्वान् जन] (मह्यम्) मुझे (पुष्टये) पुष्टि [वृद्धि] के लिये (तम् इमम्) उस ही (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम], (अभिभुम्) [शत्रुओं को] हराने वाले, (क्षत्रवर्धनम्) राज्य बढ़ाने वाले, (सपत्नदम्भनम्) बैरियों के दबाने वाले (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (ददतु) दान करें ॥२९॥

भावार्थः मनुष्य विद्वानों के सत्संग से वैदिक मार्ग पर चल कर सब के पालन पोषण के लिये राज्य आदि व्यवहार सिद्ध करें ॥२९॥

ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधराँ अकः ॥३०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ब्रह्मणा) वेद द्वारा (तेजसा सह) प्रकाश के साथ (मे) अपने लिये (शिवम्) शिव [मङ्गलकारी परमात्मा] को (प्रति मुञ्चामि) मैं स्वीकार करता हूं। (असपत्नः) शत्रु रहित, (सपत्नहा) शत्रुनाशक [परमेश्वर] ने (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं को (अधरान्) नीचे (अकः) कर दिया है ॥३०॥

भावार्थः—वेद द्वारा परमात्मा के विचार से जिनकी बुद्धि प्रकाशमयी हो जाती है वे अपने शत्रुओं को नाश करके सुख पाते हैं ॥३०॥

उत्त॑रं द्विष॒तो माम॒यं म॒णिः कृ॑णोतु दे॒व॒जाः ।
यस्य॑ लो॒का इ॒मे त्रय॒ः पयो॑ दु॒ग्धमु॒पास॑ते ।
स मा॒यमधि॑ रोहतु म॒णिः श्रैष्ठ्या॑य मू॒र्धतः ॥३१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (देवजाः) देव [परमेश्वर] से उत्पन्न (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझ को (द्विषतः) वैरी से (उत्तरम्) अधिक ऊंचा (कृणोतु) करे। (इमे) यह (त्रयः) तीनों [सृष्टि, स्थिति और प्रलय] (लोकाः) लोक (यस्य) जिस [वैदिक नियम] के (दुग्धम्) पूर्ण (पयः) ज्ञान को (उपासते) भजते हैं। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझ को (मूर्धतः) शिर पर से (श्रैष्ठ्याय) प्रधान पद के लिये (अधि) ऊपर (रोहतु) चढ़ावे ॥३१॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर प्रणीत सत्य नियम को मानकर संसार में प्रधान पद प्राप्त करे ॥३१॥

यं दे॒वाः पि॒तरो॑ मनु॒ष्या॑ उपजीव॑न्ति स॒र्वदा ।
स मा॒यमधि॑ रोहतु म॒णिः श्रैष्ठ्या॑य मू॒र्धतः ॥३२॥

भाषार्थः—(देवाः) व्यवहार जानने वाले, (पितरः) पालन करने वाले और (मनुष्याः) मनन करने वाले लोग (यम्) जिस [वैदिक नियम] के (सर्वदा) सर्वदा (उपजीवन्ति) आश्रय में रहते हैं। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझ को (मूर्धतः) शिर पर से (श्रैष्ठ्याय) प्रधान पद के लिये (अधि) ऊपर (रोहतु) चढ़ावे ॥३२॥

भावार्थः—सब उत्तम पुरुष परमेश्वर के आश्रय से संसार में उच्चपद प्राप्त करें ॥३२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति ।
एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ॥३३॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (बीजम्) बीज (उर्वरायाम्) ऊपजाऊ धरती में (फालेन) फाल [हल की कील] से (कृष्टे) जोते हुए [खेत] में (रोहति) उपजता है। (एव) वैसे ही (मयि) मुझ में (प्रजा) प्रजा [सन्तान आदि], (पशवः) पशु [गौ घोड़ा आदि] और (अन्नमन्नम्) अन्न के ऊपर अन्न (वि) विविध प्रकार (रोहतु) उत्पन्न होवे ॥३३॥

भावार्थः—यह बात प्रसिद्ध है कि उत्तम अन्न उपजाऊ धरती में क्रिया विशेष द्वारा बोये बीज से उत्तम अन्न आदि उत्पन्न होते हैं, वैसे ही सुशिक्षित गुणी पुरुषों के सुविचारित कर्म से बड़े बड़े उपकारी लाभ होते हैं ॥३३॥

यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥३४॥

भाषार्थः—(यज्ञवर्धन) हे श्रेष्ठ व्यवहार बढ़ाने वाले (मणे) मणि! [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (यस्मै) जिस [पुरुष] के लिये (शिवम् त्वा) तुझ मङ्गलकारी को (प्रत्यमुचम्) मैंने स्वीकार किया है। (शतदक्षिण) हे सैकड़ों वृद्धि वाले (मणे) मणि! [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (त्वम्) तू (तम्) उस [पुरुष] को (श्रैष्ठ्याय) श्रेष्ठ पद के लिये (जिन्वतात्) तृप्त कर ॥३४॥

भावार्थः—मनुष्य वेदज्ञान से अनेक प्रकार वृद्धि करके योग्यता पूर्वक श्रेष्ठ पद प्राप्त करे ॥३४॥

एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः । तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥३५॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि! [अग्नि समान तेजस्वी मनुष्य] (एतम्) इस (समाहितम्) ध्यान किये गए (इध्मम्) प्रकाशस्वरूप [परमेश्वर] को, (जुषाणः) प्रसन्न होकर तू (होमैः) दोनों [आत्मसमर्पणों] से (प्रतिहर्य) प्रत्यक्ष प्रीतिकर। (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान से (समिद्धे) प्रकाशित (तस्मिन्) उस (जातवेदसि) उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले [परमात्मा] में (सुमतिम्) सुमति, (स्वस्ति) सुसत्ता [कुशल],

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(**प्रजाम्**) प्रजा [सन्तान आदि] (**चक्षुः**) दृष्टि और (**पशून्**) पशुओं को (**विदेम**) हम पावें ॥३५॥

भावार्थः—मनुष्य प्रीतिपूर्वक परमात्मा का ध्यान रखकर सब पदार्थों से उपकार लेकर आनन्द भोगें ॥३५॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ७ [स्कम्भसूक्तम्] ॥

१—४४ ॥ स्कम्भो ज्येष्ठं ब्रह्म देवता ॥ १, १७, ३५, जगती, २, ४, ५, ६, ८, ९, भुरिक् त्रिष्टुप्, ३, ३८, ४२, ४३, त्रिष्टुप्, ७, १३, परोष्णिक्, १०, १४, १६, १८, १९ उपरिष्टाद् बृहती, ११, १२, १५, २०, २२ उपरिष्टाद् ज्योतिर्जगती, २१ भुरिगनुष्टुप्, २३—३०, ३७, ४०, अनुष्टुप्, ३१, आर्षी जगती, ३२—३४, ३६ विराडुपरिष्टाद् बृहती, ३९, भुरिगुपरिष्टाद् ज्योतिर्जगती, ४१ गायत्री, ४४ आर्च्यनुष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मस्वरूपनिरूपणोपदेशः—ब्रह्म के स्वरूप के विचार का उपदेश ॥

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम् ।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥१॥

भाषार्थः—(**अस्य**) इस [सर्वव्यापक ब्रह्म] के (**कस्मिन् अङ्गे**) कौन से अङ्ग में (**तपः**) तप [ब्रह्मचर्य आदि तपश्चरण वा ऐश्वर्य] (**अधि तिष्ठति**) जमकर ठहरता है, (**अस्य**) इसके (**कस्मिन् अङ्गे**) किस अङ्ग में (**ऋतम्**) सत्य शास्त्र [वेद] (**अधि**) दृढ़ (**आहितम्**) स्थापित है। (**अस्य**) इसके (**क्व**) कहां पर (**व्रतम्**) व्रत [नियम], (**क्व**) कहां पर (**श्रद्धा**) श्रद्धा [सत्य में दृढ़ विश्वास] (**तिष्ठति**) स्थित है, (**अस्य**) इसके (**कस्मिन् अङ्गे**) कौन से अङ्ग में (**सत्यम्**) सत्य [यथार्थ कर्म] (**प्रतिष्ठितम्**) ठहरा हुआ है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—ब्रह्म जिज्ञासु के प्रश्नों का उत्तर आगे मन्त्र ४ में है। अर्थात् सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, निराकार परमात्मा की सत्ता मात्र में सब तप, वेद आदि और अग्नि, वायु आदि ठहरे हैं ॥१॥

कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा। कस्मादङ्गाद् वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥२॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [सर्वव्यापक ब्रह्म] के (कस्मात् अङ्गात्) कौन से अङ्ग से (अग्निः) अग्नि (दीप्यते) चमकता है, (कस्मात् अङ्गात्) कौन से अङ्ग से (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला [वायु] (पवते) झोके लेता है। (कस्मात् अङ्गात्) कौन से अङ्ग से (महः) विशाल (स्कम्भस्य) स्कम्भ [धारण करने वाले परमात्मा] के (अङ्गम्) अङ्ग [स्वरूप] को (मिमानः) मापता हुआ (चन्द्रमा) चन्द्रमा (वि) विविध प्रकार (अधि मिमीते) [अपना मार्ग] मापता रहता है ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥२॥

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम्। कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥३॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [सर्वव्यापक ब्रह्म] के (कस्मिन् अङ्गे) कौन से अङ्ग में (भूमिः) भूमि (तिष्ठति) ठहरती है, (कस्मिन् अङ्गे) कौन से अङ्ग में (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (तिष्ठति) ठहरता है। (कस्मिन् अङ्गे) कौन से अङ्ग में (आहिता) ठहराया हुआ (द्यौः) सूर्य (तिष्ठति) ठहरता है, (कस्मिन् अङ्गे) किस अङ्ग में (दिवः) सूर्य से (उत्तरम्) ऊंचा स्थान (तिष्ठति) ठहरता है ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥३॥

क्व॑ प्रेप्स॑न् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व॑ प्रेप्स॑न् पवते मातरिश्वा। यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥४॥

भाषार्थः—(क्व) कहां को (प्रेप्सन्) पाने की इच्छा करता हुआ, (ऊर्ध्वः) ऊंचा होता हुआ (अग्निः) अग्नि (दीप्यते) चमकता है, (क्व) कहां को (प्रेप्सन्) पाने की इच्छा करता हुआ (मातरिश्वा) आकाश में गति वाले [वायु] (पवते) झोके लेता है। (यत्र) जहां (प्रेप्सन्तीः) पाने की इच्छा करती हुई (आवृतः) अनेक घूमें (अभियन्ति) सब ओर से मिलती हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय करके है ? [इसका उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥४॥

भावार्थः—अग्नि, वायु और अन्य प्राकृतिक पदार्थ कार्य और कारण रूप से परमात्मा में ही आश्रित होकर रहते हैं ॥४॥

क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥५॥

भाषार्थः—(क्व) कहां (अर्धमासाः) आधे महीने [पखवाड़े] और (क्व) कहां (मासाः) महीने (संवत्सरेण सह) वर्ष के साथ (संविदानाः) मिलते हुए (यन्ति) जाते हैं ! (यत्र) जहां (ऋतवः) ऋतुयें और (आर्तवाः) ऋतुओं के अवयव (यन्ति) जाते हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर की ही आज्ञा में यह काल अपने अवयवों सहित वर्तमान है ॥५॥

क्व१ प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥६॥

भाषार्थः—(क्व) कहां (प्रेप्सन्ती) पाने की इच्छा करती हुई (युवती) दो मिलने वाली और अलग हो जाने वाली शक्तियां, (विरूपे) विरुद्ध रूपवाले, (संविदाने) आपस में मिले हुए (अहोरात्रे) दिन और रात (द्रवतः) दौड़ते हैं ? (यत्र) जहां (प्रेप्सन्तीः) मिलने की इच्छा करती हुई (आपः) सब प्रजायें (अभियन्ति) चारों ओर से आती हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥६॥

भावार्थः—यह दिन रात और सब प्राणी परमेश्वर के ही नियमबद्ध रहते हैं ॥६॥

यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वां अधारयत् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥७॥

भाषार्थः—(यस्मिन्) जिस में (प्रजापतिः) प्रजापति [सूर्य वा आकाश] ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सर्वान् लोकान्) सब लोकों को (स्तब्ध्वा) रोककर (अधारयत्) धारण किया है। (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके हैं? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥७॥

भावार्थः—उस परमेश्वर की अनन्त शक्ति से सूर्य वा आकाश सब लोकों को अपने आकर्षण में रखता है ॥७॥

यत् पर॒मम॑व॒मं यच्च॑ मध्य॒मं प्र॒जाप॑तिः ससृ॒जे वि॒श्वरू॑पम् ।
किय॑ता स्क॒म्भः प्र वि॑वेश॒ तत्र॒ यन्न प्रावि॑श॒त् किय॒त् तद् ब॑भूव ॥८॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ (परमम्) अति ऊंचा, (अवमम्) अति नीचा (च) और (यत्) जो कुछ (मध्यमम्) अति मध्यम (विश्वरूपम्) नाना रूप [जगत्] (प्रजापतिः) प्रजापति [परमेश्वर] ने (ससृजे) रचा था। (कियता) कहां तक (स्कम्भः) स्कम्भ [धारण करने वाले परमेश्वर] ने (तत्र) उस [जगत्] में (प्र विवेश) प्रवेश किया था, (यत्) जितने में उस [परमेश्वर] ने (न) नहीं (प्राविशत्) प्रवेश किया है, (तत्) वह (कियत्) कितना (बभूव) था ॥८॥

भावार्थः—परमेश्वर ने उत्तम, मध्यम और नीच स्वभाव वाला इतना बड़ा ब्रह्माण्ड प्राणियों के कर्मानुसार रचा है, और वह जगदीश्वर इतना बड़ा है कि सारे ब्रह्माण्ड के अङ्ग अङ्ग में निरन्तर रम रहा है ॥८॥

यह मन्त्र ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृ० १३५ में व्याख्यात है ॥

किय॑ता स्क॒म्भः प्र वि॑वेश भू॒तं किय॑द् भवि॒ष्यद॒न्वाश॑येऽस्य ।
एकं॒ यद॒ङ्गमकृ॑णोत् सह॒स्रधा किय॑ता स्क॒म्भः प्र वि॑वेश॒ तत्र॑ ॥९॥

भाषार्थः—(कियता) कहां तक (भूतम्) भूत काल में (स्कम्भः) स्कम्भ [धारण करने वाले परमेश्वर] ने (प्र विवेश) प्रवेश किया था, (कियत्) कितना (भविष्यत्) भविष्यत् काल (अस्य) इस [परमेश्वर] के (अन्वाशये) निरन्तर आशय [आधार] में है। (यत्) जो कुछ (एकम्) एक (अङ्गम्) अङ्ग [अर्थात् थोड़ा सा जगत्] (सहस्रधा) सहस्रों प्रकार से (अकृणोत्) उस [परमेश्वर] ने रचा है, (कियता) कहां तक (तत्र) उसमें (स्कम्भः) स्कम्भ [धारण करने वाले परमेश्वर] ने (प्र विवेश) प्रवेश किया था ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर का न तो कोई आदि और न कोई अन्त जानता है, और जितनी कुछ ईश्वर की रचना है, उस सब में वह परमात्मा परिपूर्ण हो रहा है ॥९॥

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असंच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०॥

भाषार्थः—(यत्र ब्रह्म) जिस ब्रह्म में (आपः) विद्वान् (जनाः) जन (लोकान्) सब लोकों को (च च) और (कोशान्) सब कोशों [निधियों वा आधारों] को (विदुः) जानते हैं। (तत्र अन्तः) जिस के भीतर (असत्) असत् [अनित्य कार्यरूप जगत्] (च च) और (सत्) सत् [नित्य अर्थात् जगत् का कारण] है, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१०॥

भावार्थः जिस के सामर्थ्य में सब लोक और उन के धारण और आकर्षण और सब कार्य और कारण रूप जगत् है, वही परमात्मा है ॥१०॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० ३०८ में व्याख्यात है ॥

यत्र तपः पराक्रम्यं व्रतं धारयत्युत्तरम् । ऋतं च यत्र श्रद्धा
चापो ब्रह्मं समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥११॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस [ब्रह्म] में (तपः) तप [ऐश्वर्य वा सामर्थ्य] (पराक्रम्य) पराक्रम करके (उत्तरम्) उत्तम (व्रतम्) व्रत [वरणीय कर्म] को (धारयति) धारण करता है। (यत्र ब्रह्म) जिस ब्रह्म में (ऋतम्) सत्य शास्त्र, (च) और (श्रद्धा) श्रद्धा [सत्य धारण विश्वास] (च) और (आपः) सब प्रजायें (समाहिताः) मिलकर स्थापित हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उस को (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥११॥

भावार्थः– परमेश्वर के सामर्थ्य से नियम धारण, वेद, शास्त्र आदि सब पदार्थ स्थित हैं ॥११॥

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता । यत्राग्निश्चन्द्रमाः
सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (यस्मिन्) जिस में (भूमिः) भूमि, (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष और (यस्मिन्) जिस में (द्यौः) आकाश (अधि आहिता) दृढ़ स्थापित है। (यत्र) जिस में (अग्निः) अग्नि, (चन्द्रमाः) चन्द्रमा, (सूर्यः) सूर्य और (वातः) वायु (आर्पिताः) भली भांति जमे हुए (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उस को (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१२॥

भावार्थः—परमेश्वर में ही सब भूमि आदि लोक और पदार्थ स्थित हैं ॥१२॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः ।

स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१३॥

भाषार्थः—(यस्य) जिसके (अङ्गे) अङ्ग में (सर्वे) सब (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस (देवाः) देवता [दिव्य पदार्थ] (समाहिताः) मिलकर स्थापित हैं। (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१३॥

भावार्थः—परमेश्वर के सामर्थ्य से ही वसु आदि पदार्थ संसार का धारण करते हैं। तेतीस देवता यह हैं,—८ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः वा प्रकाश चन्द्रमा और नक्षत्र;—११ रुद्र अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय यह दश प्राण और ग्यारवां जीवात्मा,—१२ आदित्य अर्थात् महीने, १ इन्द्र अर्थात् बिजुली,—प्रजापति अर्थात् यज्ञ ॥१३॥

महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ ६६—६८॥

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही । एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१४॥

भाषार्थः (यत्र) जिस [परमेश्वर] में (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न (ऋषयः) ऋषि [मन्त्रों के अर्थ जानने वाले महात्मा], (ऋचः) स्तुति विद्यायें [ऋग्वेद] (साम) मोक्ष विद्या [सामवेद], (यजुः) सत्सङ्ग विद्या [यजुर्वेद] और (मही) पूजनीय वाणी [ब्रह्मविद्या अर्थात् अथर्ववेद] वर्तमान है। (यस्मिन्) जिसमें (एकर्षिः) एकदर्शी [समदर्शी स्वभाव] (आर्पितः) भली भांति जमा हुआ है, (सः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१४॥

भावार्थः- परमेश्वर की सत्ता से सृष्टि की आदि में उत्पन्न वेदार्थ द्रष्टा ऋषि और समस्त वेद विद्यायें और समदर्शी स्वभाव स्थित हैं। सृष्टि की आदि में जिनको वेदों का प्रकाश हुआ था वे चार ऋषि ये हैं अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा ॥१४॥

महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० १६ ॥

यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते । समुद्रो यस्य नाड्य१ः
पुरुषेऽधि समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१५॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस [परमेश्वर] में (पुरुषे अधि) मनुष्य के निमित्त (मृत्युः) मृत्यु [आलस्य आदि] (च च) और (अमृतम्) अमरपन आदि [पुरुषार्थ] (समाहिते) दोनों यथावत् स्थापित हैं। (समुद्रः) समुद्र [अन्तरिक्ष, अवकाश] (यस्य) जिसकी (समाहिताः) यथावत् स्थापित (नाड्यः) नाड़ियों [के समान] (पुरुषे अधि) मनुष्य के लिये है, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौनसा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१५॥

भावार्थः - परमेश्वर ने मनुष्य के लिये मृत्यु के कारण आलस्य आदि का निषेध और अमरपन अर्थात् पुरुषार्थ आदि की विधि, और कार्य करने को अन्तरिक्ष वा अवकाश स्थापित किया है ॥१५॥

यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्य१स्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।
यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१६॥

भाषार्थः—(चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशायें (यस्य) जिस [परमेश्वर] की (प्रथमाः) मुख्य (नाड्यः) नाड़ियां [समान] (तिष्ठन्ति) हैं। (यत्र) जिस में (यज्ञः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (पराक्रान्तः) पराक्रमयुक्त है (सः) वह (कतमःस्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१६॥

भावार्थः—परमात्मा सब दिशाओं में व्यापकर श्रेष्ठ व्यवहार करने वाले पुरुष को पराक्रमी बनाता है ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥१७॥

भाषार्थः—(ये) जो लोग (पुरुषे) मनुष्य में (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] को (विदुः) जानते हैं। (ते) वे (परमेष्ठिनम्) परमेष्ठी [सब से ऊपर स्थित परमात्मा] को (विदुः) जानते हैं। (यः) जो [उस को] (परमेष्ठिनम्) परमेष्ठी (वेद) जानता है, (च) और (यः) जो [उस को] (प्रजापतिम्) प्रजापति [प्राणियों का रक्षक] (वेद) जानता है। और (ये) जो लोग [उसको] (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [सब से बड़ा वा सबसे श्रेष्ठ] (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] (विदुः) जानते हैं, (ते) वे सब (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाले परमात्मा] को (अनुसंविदुः) पूर्ण रूप से पहिचानते हैं ॥१७॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा को अपने भीतर और बाहिर उसके अचल उच्च गुणों से साक्षात् करते हैं, वे अपने आत्मा को उच्च बनाते हैं ॥१७॥

यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् । अङ्गानि
यस्य यातवः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१८॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस [परमेश्वर] के (शिरः) शिर [के तुल्य] (वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी गुण [है], (चक्षुः) नेत्र [के तुल्य] (अङ्गिरसः) अनेक ज्ञान (अभवन्) हुए हैं। (यस्य) जिसके (अङ्गानि) अङ्गों [के समान] (यातवः) प्रयत्न हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा को सर्वहितकारी, सर्वज्ञ और परम पुरुषार्थयुक्त जानकर उन्नति करे ॥१८॥

यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत । विराजमूधो
यस्याहुः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१९॥

भाषार्थः—(ब्रह्म) ब्रह्माण्ड को (यस्य) जिस [परमेश्वर] का (मुखम्) मुख [समान] (उत) और (मधुकशाम्) मधुविद्या [वेदवाणी] को (जिह्वाम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिह्वा [समान] (आहुः) वे [ऋषि लोग] कहते हैं। (विराजम्) विराट् [विविध शक्ति वाली प्रकृति] को (यस्य) जिसका (ऊधः) सेचन साधन [वा दूध का आधार] (आहु) बताते हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय कर के है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१९॥

भावार्थः महात्मा लोग जानते हैं कि यह सब ब्रह्माण्ड, वेदविद्या और जगत् की सामग्री परमात्मा के सामर्थ्य में वर्तमान हैं ॥१९॥

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् । सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥२०॥

भाषार्थः—(यस्मात्) जिस से [प्राप्त करके] (ऋचः) ऋग् मन्त्रों [स्तुति विद्याओं] को (अप-अतक्षन्) उन्होंने [ऋषियों ने] सूक्ष्म किया [भले प्रकार विचारा], (यस्मात्) जिससे [प्राप्त करके] (यजुः) यजुर्ज्ञान [सत्कर्मों के बोध] को (अप अकषन्) उन्होंने कस अर्थात् कसौटी पर रक्खा। (सामानि) मोक्ष विद्यायें (यस्य) जिस के (लोमानि) रोम [समान व्यापक] हैं और (अथर्व-अङ्गिरसः) अथर्व मन्त्र [निश्चल ब्रह्म के ज्ञान] (मुखम्) मुख [तुल्य हैं], (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥२०॥

भावार्थः—ऋषियों ने निश्चय किया है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ईश्वरकृत और समस्त संसार के कल्याण कारक हैं ॥२०॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ९ में व्याख्यात है ॥

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः ।
उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते ॥२१॥

भाषार्थः—(जनाः) पामर जन (प्रतिष्ठन्तीम्) फैलती हुई (असच्छाखाम्) असत् [अनित्य कार्य रूप जगत्] की व्याप्ति को (परमम् इव) परम उत्कृष्ट पदार्थ के समान (विदुः) जानते हैं। (उतो) और (ये) जो (अवरे) पीछे होने वाले, कार्य रूप जगत्] में (सत्) सत् [नित्य कारण] को (मन्यन्ते) मानते हैं, वे [लोग] (ते) तेरी (शाखाम्) व्याप्ति को (उपासते) भजते हैं ॥२१॥

भावार्थः—अज्ञानी मनुष्य कार्य रूप संसार को परम अवधि मानते हैं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु ज्ञानी मनुष्य कार्य रूप जगत् में कारण को खोजकर आदि कारण परमात्मा की व्याप्ति को साक्षात्कार करते हैं ॥२१॥

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः । भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥२२॥

भाषार्थः –(यत्र) जिस [परमेश्वर] में (आदित्याः) प्रकाशमान [सूर्य आदि लोक] (च च) और (रुद्राः) गति देने वाले पवन (च) और (वसवः) निवास करने वाले [प्राणी] (समाहिताः] परस्पर ठहराए गए हैं। (यत्र) जिसमें (भूतम्) भूतकाल (च) और (भव्यम्) भविष्यत् काल (च) और (सर्वे) सब (लोकाः) लोक (प्रतिष्ठिताः) ठहरे हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्)[कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥२२॥

भावार्थः—ये सब सूर्य, वायु, प्राणी आदि जगत् परमात्मा की महिमा से परस्पर आकर्षण द्वारा स्थित हैं ॥२२॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥२३॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस [परमेश्वर] के (निधिम्) कोष [संसार] को (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस (देवाः) देव [दिव्य पदार्थ] (सर्वदा) सर्वदा (रक्षन्ति) रखाते हैं। (तम्) उस (निधिम्) कोष को (अद्य) आज (कः) कौन (वेद) जानता है, (यम्) जिस को, (देवाः) हे देवो ! [दिव्यपदार्थों] (अभिरक्षथ) तुम सर्वदा रखवाली करते हो ॥२३॥

भावार्थः—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, एक इन्द्र और एक प्रजापति [मन्त्र १३ देखो] परमेश्वर के नियम से संसार के व्यवहार सदा सिद्ध करते हैं ॥२३॥

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥२४॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां पर (देवाः) विजयी (ब्रह्मविदः) ब्रह्म ज्ञानी पुरुष (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [सब से बड़े वा सब से श्रेष्ठ] (ब्रह्म) ब्रह्म को (उपासते) भजते हैं। [वहां] (यः) जो (वै) ही (तान्) उन [ब्रह्मज्ञानियों] को (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके (विद्यात्) जान लेवे, (सः) वह (ब्रह्मा) ब्रह्मा [महापण्डित] (वेदिता) ज्ञाता [जानकार] (स्यात्) होवे ॥२४॥

भावार्थः—जो विद्वान् ब्रह्मज्ञानियों से ईश्वर ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे ही संसार में तत्त्वदर्शी विद्वान् होते हैं ॥२४॥

बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥२५॥

भाषार्थः—(ते) वे [कारण रूप] (देवाः) दिव्य पदार्थ (नाम) अवश्य (बृहन्तः) बड़े हैं, (ये) जो (असतः) असत् [अनित्य कार्य रूप जगत्] से (परि जज्ञिरे) सब ओर प्रकट हुए हैं। (जनाः) लोग (परः) परे [कारण से परे] (तत्) उस (असत्) असत् [अनित्य कार्य रूप जगत्] को (स्कम्भस्य) स्कम्भ [धारण करने वाले परमात्मा] का (एकम्) एक (अङ्गम्) अङ्ग (आहुः) वे [विद्वान्] बताते हैं ॥२५॥

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी लोग जानते हैं कि कार्य रूप जगत् से कारण रूप जगत् अति अधिक है और परमेश्वर उससे भी अधिक है ॥२५॥

यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत् ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ॥२६॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां [जिस काल में] [कार्य रूप जगत् को] (प्रजनयन्) उत्पन्न करते हुए (स्कम्भः) स्कम्भ [धारण करने वाले परमात्मा] ने (पुराणम्) पुराने [कारण] को (व्यवर्तयत्) चक्राकार घुमाया, (तत्) उस (पुराणम्) पुराने [कारण] को (स्कम्भस्य) स्कम्भ [धारण करने वाले परमेश्वर] का (एकम् अङ्गम्) एक अङ्ग वे [तत्त्ववेत्ता] (अनुसंविदुः) पूर्ण रीति से जानते हैं ॥२६॥

भावार्थः—कारण रूप पदार्थ कार्यरूप जगत् से पुरातन है। उस कारण रूप पदार्थ को विविध प्रकार चेष्टा देकर उसके जिस अङ्ग से सब जगत् रचा गया है, वह परमात्मा के सामर्थ्य का छोटा अंश है ॥२६॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे ।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥२७॥

भाषार्थः—(यस्य) यजनीय [पूजनीय परमेश्वर] के (अङ्गे) अङ्ग में [वर्तमान] (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस (देवाः) देवों [दिव्य पदार्थों] ने (गात्रा) अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गातों को (विभेजिरे) अलग अलग बांटा था। (तान् वै) उन्हीं (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस (देवान्) देवों को (एके) कोई कोई (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी (विदुः) जानते हैं ॥२७॥

भावार्थः—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, एक इन्द्र और एक प्रजापति [भावार्थ मन्त्र १३ तथा २३ देखो] परमात्मा में वर्तमान रहकर जगत् के सब प्राणियों का पालन पोषण और धारण विविध प्रकार करते हैं, इस मर्म को विरले तत्त्ववेत्ता जानते हैं ॥२७॥

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः ।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥२८॥

भाषार्थः—(जनाः) लोग (हिरण्यगर्भम्) तेज के गर्भ [आधार परमेश्वर] को (परमम्) सर्वोत्कृष्ट [प्रणव वा ओ३म्] और (अनत्युद्यम्) सर्वथा अकथनीय [ईश्वर] (विदुः) जानते हैं। (स्कम्भः) उस स्कम्भ [धारण करने वाले परमात्मा] ने (अग्रे) पहिले ही पहिले (तत्) उस (हिरण्यम्) तेज को (लोके अन्तरा) संसार के भीतर (प्र असिञ्चत्) सींच दिया है ॥२८॥

भावार्थः– सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के गुण और सामर्थ्य मनुष्य की कथन शक्ति से बाहिर हैं। सृष्टि के प्रादुर्भाव में केवल परमेश्वर का ही तेज अर्थात् सामर्थ्य दीख पड़ता है ॥२८॥

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम् ।
स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥२९॥

भाषार्थः—(स्कम्भे) स्कम्भ [धारण करने वाले परमेश्वर] में (लोकाः) सब लोक (स्कम्भे) स्कम्भ में (तपः) तप [ऐश्वर्य वा सामर्थ्य], (स्कम्भे अधि) स्कम्भ में ही (ऋतम्) सत्यशास्त्र (आहितम्) यथावत् स्थापित है। (स्कम्भ) हे स्कम्भ! [धारण करने वाले परमात्मन्!] (त्वा) तुझ को (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (वेद) मैं जानता हूं, (इन्द्रे) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् तुझ] में (सर्वम्) सब [जगत्] (समाहितम्) परस्पर धरा हुआ है ॥२९॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर के नाम स्कम्भ और इन्द्र हैं, उसके सामर्थ्य में सब लोक आदि ठहरे हैं ॥२९॥

इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम् ।
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**इन्द्रे**) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] में (**लोकाः**) सब लोक, (**इन्द्रे**) इन्द्र में (**तपः**) तप [ऐश्वर्य वा सामर्थ्य] (**इन्द्रे अधि**) इन्द्र में ही (**ऋतम्**) सत्य शास्त्र (**आहितम्**) सब प्रकार ठहरा है। (**त्वा**) तुझ को (**इन्द्रम्**) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान्] (**प्रत्यक्षम्**) प्रत्यक्ष (**वेद**) जानता हूं, (**स्कम्भे**) स्कम्भ [धारण करने वाले, तुझ] में (**सर्वम्**) सब [जगत्] (**प्रतिष्ठितम्**) परस्पर ठहरा है ॥३०॥

भावार्थः– इन्द्र अर्थात् परमेश्वर में सब सूर्य आदि लोक और सब पदार्थ वर्तमान हैं, उसी को मनुष्य स्कम्भ कहते हैं ॥३०॥

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः। यदजः प्रथमं
संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥३१॥

भाषार्थः—वह [मनुष्य] (**सूर्यात्**) सूर्य से (**पुरा**) पहिले और (**उषसः**) उषा [प्रभात] से (**पुरा**) पहिले [वर्तमान] (**नाम**) एक नाम [परमेश्वर] को (**नाम्ना**) दूसरे नाम [इन्द्र, स्कम्भ, अज आदि] से (**जोहवीति**) पुकारता रहता है। (**यत्**) क्योंकि (**अजः**) अजन्मा [परमेश्वर] (**प्रथमम्**) पहिले ही पहिले (**संबभूव**) शक्तिमान् हुआ, (**सः**) उसने (**ह**) ही (**तत्**) वह (**स्वराज्यम्**) स्वराज्य [स्वतन्त्र राज्य] (**इयाय**) पाया, (**यस्मात्**) जिस [स्वराज्य] से (**परम्**) बढ़कर (**अन्यत्**) दूसरा (**भूतम्**) द्रव्य (**न अस्ति**) नहीं है ॥३१॥

भावार्थः– परमेश्वर कार्य रूप काल और उस के अवयवों के पहिले सृष्टि के आदि में प्रलय में भी वर्तमान था। गुण कर्म स्वभाव के अनुसार उसके अनन्त नाम हैं। वह अपनी सर्वशक्तिमत्ता से अनन्यजित स्वराज्य करता है। उसी की उपासना सब मनुष्य करें ॥३१॥

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३२॥

भाषार्थः—(**भूमिः**) भूमि (**यस्य**) जिस [परमेश्वर] के (**प्रमा**) पादमूल [के समान] (**उत**) और (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष [पृथिवी और सूर्य के बीच का आकाश] (**उदरम्**) उदर [समान] है। (**दिवम्**) सूर्य को (**यः**) जिसने (**मूर्धानम्**) मस्तक [समान] (**चक्रे**) रचा, (**तस्मै**) उस (**ज्येष्ठाय**) ज्येष्ठ [सब से बड़े वा सब से श्रेष्ठ] (**ब्रह्मणे**) ब्रह्म [परमात्मा] को (**नमः**) नमस्कार है ॥३२॥

भावार्थः- जैसे जीवात्मा शरीर के सब अङ्गों में व्यापक है, वैसे ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा जगत् के सब लोकों में निरन्तर व्यापक है, उसको हम सदा मस्तक झुकाते हैं ।।३२।।

मन्त्र ३२–३४ महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० ४ में व्याख्यात हैं ।।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं १ तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।३३।।

भाषार्थः - (पुनर्णवः) [सृष्टि के आदि में] वारंवार नवीन होने वाला (सूर्यः) सूर्य (च) और (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (यस्य) जिसके (चक्षुः) नेत्र [समान] हैं। (यः) जिसने (अग्निम्) अग्नि को (आस्यम्) मुख [समान] (चक्रे) रचा है, (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) ज्येष्ठ [सब से बड़े वा सबसे श्रेष्ठ] (ब्रह्मणे) ब्रह्मा [परमात्मा] को (नमः) नमस्कार है ।।३३।।

भावार्थः—परमात्मा सूर्य चन्द्र आदि पदार्थों को सृष्टि के आदि में रचकर सब में व्यापक है ।।३३।।

ऋग्वेद—म० १० । सू० १९० । मन्त्र ३ में वर्णन है—(सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्) सूर्य और चन्द्रमा को धाता ने पहिले के समान रचा ।।

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।३४।।

भाषार्थः - (वातः) वायु (यस्य) जिसके (प्राणापानौ) प्राण और अपान [के समान] और (अङ्गिरसः) प्रकाश करने वाली किरणें (चक्षुः) नेत्र [समान] (अभवन्) हुए। (दिशः) दिशाओं को (यः) जिस ने (प्रज्ञानीः) व्यवहार जताने वाली (चक्रे) बनाया, (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) [सब से बड़े वा सब से श्रेष्ठ] (ब्रह्मणे) ब्रह्मा [परमात्मा] को (नमः) नमस्कार है ।।३४।।

भावार्थः– जो जगदीश्वर, वायु, किरणों और दिशाओं में व्यापक है उसको सब नमस्कार करें ।।३४।।

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वं१न्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ।।३५।।

भाषार्थः—(स्कम्भः) स्कम्भ [धारण करने वाले परमेश्वर] ने (इमे उभे) इन दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (दाधार) धारण किया था, (स्कम्भः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कम्भ ने (उरु) विस्तृत (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (दाधार) धारण किया। (स्कम्भः) स्कम्भ ने (षट्) छह [पूर्वादि चार और एक ऊपर और एक नीचे की] (उर्वीः) विस्तृत (प्रदिशः) दिशाओं को (दाधार) धारण किया, (स्कम्भे) स्कम्भ में (इदम्) यह (विश्वम्) सब (भुवनम्) सत्ता मात्र [जगत्] (आ) सब ओर से (विवेश) प्रविष्ट हुआ है ॥३५॥

भावार्थः इस सूर्य, पृथिवी, आदि जगत् को परमेश्वर रचकर धारण करता है और यह सब संसार उसके बीच व्याप्त है ॥३५॥

यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३६।

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (श्रमात्) [अपने] श्रम [प्रयत्न] से और (तपसः) तप [सामर्थ्य] से (जातः) प्रसिद्ध होकर (सर्वान् लोकान्) सब लोकों में (समानशे) पूरा पूरा व्यापा। (यः) जिस ने (सोमम्) ऐश्वर्य को (केवलम्) केवल [अपना ही] (चक्रे) बनाया, (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) ज्येष्ठ [सब से बड़े वा सब से श्रेष्ठ] (ब्रह्मणे) ब्रह्मा [परमात्मा] को (नमः) नमस्कार है ॥३६॥

भावार्थः—जो परमात्मा परम पुरुषार्थी, परम पराक्रमी और परम ऐश्वर्यवान् होकर सब जगत् का अधिष्ठाता है, उस को हम सब का नमस्कार है ॥३६॥

कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥३७॥

भाषार्थः—(कथम्) कैसे (वातः) वायु (न) नहीं (इलयति) सोता है, (कथम्) कैसे (मनः) मन (न) नहीं (रमते) ठहरता है। (किम्) क्यों (आपः) प्रजायें वा जल (सत्यम्) सत्य [ईश्वर नियम] को (प्रेप्सन्तीः) पाने की इच्छा करते हुए (कदा चन) कभी भी (न) नहीं (इलयन्ति) सोते हैं ॥३७॥

भावार्थः यह वायु, मन, सब प्राणी वा जल आदि क्यों अपना कर्तव्य करते रहते हैं, इसलिये कि एक परब्रह्म संसार में व्याप कर सबको चला रहा है—अगला मन्त्र देखो ॥३७॥

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे । तस्मिन्
छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥३८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(महत्) बड़ा (यक्षम्) यक्ष [पूजनीय ब्रह्म] (भुवनस्य मध्ये) जगत् के बीच (तपसि) [अपने] सामर्थ्य में (क्रान्तम्) पराक्रमयुक्त होकर (सलिलस्य) अन्तरिक्ष की (पृष्ठे) पीठ पर [वर्तमान है]। (तस्मिन्) उस [ब्रह्म] में, (ये उ के च देवाः) जो कोई भी दिव्य लोक हैं, वे (श्रयन्ते) ठहरते हैं (इव) जैसे (वृक्षस्य शाखाः) वृक्ष की शाखायें (स्कन्धः परितः) [धड़ वा पीठ] के चारों ओर ॥३८॥

भावार्थः-अनन्त आकाश के बीच परमेश्वर की महिमा में पृथ्वी आदि लोक ठहरें हैं, जैसे पेड़ की टहनियां पेड़ में लगी होती हैं—गत मन्त्र देखो ॥३८॥

यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा। यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥३९॥

भाषार्थः—(यस्मै) जिस [परमेश्वर] को, (यस्मै) जिस [परमेश्वर] को (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से, (पादाभ्याम्) दोनों पैरों से, (वाचा) वाणी से, (श्रोत्रेण) श्रोत्र से और (चक्षुषा) दृष्टि से (देवाः) विद्वान् लोग (विमिते) विविध प्रकार मापे गये [जगत] में (अमितम्) अपरिमित (बलिम्) सन्मान (सदा) (प्रयच्छन्ति) देते हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥३९॥

भावार्थः—विद्वान् लोग हाथ पांव आदि अमूल्य उपकारी अङ्गों को पाकर संसार में उपकार करके परमात्मा का अत्यन्त आदर करते हैं ॥३९॥

अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना।
सर्वाणि तस्मिन् ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥४०॥

भाषार्थः—(तस्य) उस [परमेश्वर] से (तमः) अन्धकार (अप हतम्) सर्वथा नष्ट है, (सः) वह (पाप्मना) पाप से (व्यावृत्तः) विमुक्त है। (तस्मिन् प्रजापतौ) उस प्रजापालक [परमेश्वर] में (सर्वाणि) सब (ज्योतींषि) ज्योति हैं, (यानि) जो (त्रीणि) तीन [संयोग, वियोग और स्थिति रूप, यद्वा सत्त्व रज और तम रूप हैं] ॥४०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—प्रकाशस्वरूप, निष्पाप, परमात्मा की महिमा से परमाणुओं के संयोग वियोग और स्थिति द्वारा, यद्वा, सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों द्वारा यह संसार स्थित है ॥४०॥

यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद ।
स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥४१॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (सलिले) अन्तरिक्ष में (तिष्ठन्तम्) ठहरे हुए (हिरण्ययम्) तेजोमय (वेतसम्) परस्पर बुने हुए [संसार] को (वेद) जानता है। (सः वै) वह ही (गुह्यः) गुप्त (प्रजापतिः) प्रजापालक है ॥४१॥

भावार्थः– जो परमात्मा समस्त संसार का पालन करता है वह सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी है ॥४१॥

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥४२॥

भाषार्थः—(एके) अकेली अकेली दो (युवती) युवा स्त्रियां [वा संयोग वियोग स्वभाव वाली] (विरूपे) विरुद्ध स्वरूप वाली [दिन और रात्रि की वेलायें] (अभ्याक्रामम्) परस्पर चढ़ाई करके (षण्मयूखम्) छह [पूर्वादि चार और ऊपर नीचे की दो दिशाओं] में परिमाण वा गति वाले (तन्त्रम्) तन्त्र [जाल अर्थात् काल] को (वयतः) बुनती हैं। (अन्या) कोई एक (तन्तून्) तन्तुओं [तागों अर्थात् प्रकाश वा अन्धकार] को (प्र तिरते) फैलाती है, (अन्या) दूसरी [उन्हें] (धत्ते) समेट धरती है। वे दोनों [उन्हें] (न अप वृञ्जाते) न छोड़ बैठती हैं (न) न (अन्तम्) अन्त तक (गमातः) पहुंचती हैं ॥४२॥

भावार्थः—जैसे दिन और रात्रि की वेलायें परस्पर विरुद्ध अर्थात् श्वेत और काली होकर भी प्रीतिपूर्वक परमेश्वर की आज्ञा में चलकर संसार में परिगणनीय काल बनाती हैं वैसे ही सब मनुष्य परस्पर मित्र होकर ईश्वर की आज्ञापालन में सदा तत्पर रहें ॥४२॥

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात् ।
पुमानेनद् वयत्युद्गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि नाके ॥४३॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (न वि जानामि) कुछ नहीं जानता हूं—(परिनृत्यन्त्योः इव) इधर उधर नाचती हुई जैसे, (तयोः) उन दोनों [स्त्रियों] में से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यतरा) कौन सी (परस्तात्) [दूसरी से] परे है। (पुमान्) पुरुष [रक्षक परमेश्वर] (एनत्) इस [तन्त्र] को (वयति) बुनता है और (उत् गृणत्ति) निगल लेता है, (पुमान्) पुरुष ने (एनत्) इसको (नाके अधि) आकाश के भीतर (वि जभार) फैलाया था ॥४३॥

भावार्थः – मनुष्य को यह नहीं जान पड़ता कि काल चक्र में दिन और रात्रि में से कौन सा पहिले है। परमेश्वर ही इनको बनाता बिगाड़ता है और उसी ने सृष्टि की आदि में इन्हें प्रकट किया था ॥४३॥

इ॒मे म॒यूखा॒ उप॑ तस्तभु॒र्दिवं॒ सामा॑नि च॒क्रुस्तस॑राणि॒ वात॑वे ॥४४॥

भाषार्थः—(इमे) इन (मयूखाः) ज्ञानप्रकाशों ने (दिवम्) आकाश [ब्रह्माण्ड] को (उप तस्तभुः) धारण किया था और (तसराणि) विस्तारों को (वातवे) पाने के लिये (सामानि) मोक्ष ज्ञानों को (चक्रुः) बनाया था ॥४४॥

भावार्थः – सूक्तोक्त ईश्वरीय ज्ञानों द्वारा यह सब संसार स्थित है, और इन्हीं की पूर्ण प्राप्ति से मनुष्य मोक्ष सुख द्वारा अपना विस्तार करते हैं ॥४४॥

सूक्तम् ॥८॥

१–४४ ॥ आत्मा देवता ॥ १ उपरिष्टाद् विराड् बृहती; २, ५ भुरिगनुष्टुप्, ३, ३५, ३६ निचृत् त्रिष्टुप्; ४, १३, ३० भुरिक् त्रिष्टुप्,६, १, ४, १६, १९–२१, २३, २५, २९, ३१–३४,३७, ३८ ४१, ४३ अनुष्टुप्; ७ विराट् त्रिष्टुप्; ८, ९, १८, २४, २८, ४०, ४४, त्रिष्टुप्; १० अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्; ११ निचृज्जगती, १२ आर्षी पङ्क्तिः, १५ भुरिग् बृहती; १७, ३९ स्वराट् त्रिष्टुप्, २२ पुरउष्णिक्, २६ निचृदनुष्टुप्, २७ भुरिगार्षी बृहती; ४२ त्रिपदा त्रिष्टुप् ॥

परमात्मजीवात्मस्वरूपोपदेशः —परमात्मा और जीवात्मा के स्वरूप का उपदेश ॥

यो भू॒तं च॒ भव्यं॑ च॒ सर्वं॒ यश्चा॑धि॒तिष्ठ॑ति ।
स्व॑१॒र्यस्य॑ च॒ केव॑लं॒ तस्मै॑ ज्ये॒ष्ठाय॒ ब्रह्म॑णे॒ नमः॑ ॥ १॥

भाषार्थः (यः) जो [परमेश्वर] (भूतम्) भूतकाल (च च) और (भव्यम्) भविष्यत् काल का (च) और (यः) जो (सर्वम्) सब [जगत्] का (अधितिष्ठति) अधिष्ठाता है। (च) और (स्वः) सुख (यस्य) जिसका (केवलम्) केवल स्वरूप है, (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) ज्येष्ठ [सबसे बड़े वा सब से श्रेष्ठ] (ब्रह्मणे) ब्रह्म [महान् परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—तीनों कालों और सब जगत् के स्वामी सुखस्वरूप परमात्मा को हम सब का नमस्कार है ॥१॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ ४ में व्याख्यात है।

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।

स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणन्निमिषच्च यत् ॥२॥

भावार्थः—(**स्कम्भेन**) स्कम्भ [धारण करने वाले परमात्मा] करके (**विष्टभिते**) विविध प्रकार थांभे गये (**इमे**) यह दोनों (**द्यौः**) सूर्य (**च च**) और (**भूमिः**) भूमि (**तिष्ठतः**) स्थित हैं। (**स्कम्भे**) स्कम्भ [परमेश्वर] में (**इदम्**) यह (**सर्वम्**) सब (**आत्मन्वत्**) आत्मा वाला [जगत्] वर्तमान है, (**यत्**) जो कुछ (**प्राणत्**) श्वास लेता हुआ [चैतन्य] (**च**) और (**यत्**) जो (**निमिषत्**) आंखें मूंदे हुए [जड़] है ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर के सामर्थ्य से आकर्षण द्वारा सूर्य, पृथिवी आदि लोक अपने अपने स्थान पर और आत्मा वाला जङ्गम और स्थावर जगत् वर्तमान है ॥२॥

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्य१न्या अर्कमभितोऽविशन्त।

बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ॥३॥

भावार्थः—(**तिस्रः**) तीनों [ऊंची, नीची और मध्यम] (**ह**) ही (**प्रजाः**) प्रजा [कार्यरूप उत्पन्न पदार्थ] (**अत्यायम्**) नित्य गमन आगमन को (**आयन्**) प्राप्त हुए, (**अन्याः**) दूसरे [कारण रूप पदार्थ] (**अर्कम् अभि**) पूजनीय [परमात्मा] के आस पास (**नि अविशन्त**) ठहरे। (**रजसः**) संसार का (**बृहन् ह**) बड़ा ही (**विमानः**) विविध प्रकार मापने वाला [वा विमान रूप आधार, परमेश्वर] (**तस्थौ**) खड़ा हुआ और (**हरितः**) दुःख हरने वाले [हरि, परमात्मा] ने (**हरिणीः**) दिशाओं में (**आ विवेश**) सब ओर प्रवेश किया ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर के नियम से पदार्थ कार्य दशा प्राप्त करके आगमन गमन करते हैं, और दूसरे नित्य कारण रूप पदार्थ परमात्माके सामर्थ्य में रहते हैं। इन सब पदार्थों की इयत्ता वही परमात्मा सब दिशाओं में व्याप कर जानता है ॥३॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।

तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(द्वादश) बारह (प्रधयः) प्रधि [पुट्ठी अर्थात् महीने], (एकम् चक्रम्) एक पहिया [वर्ष], (त्रीणि) तीन (नभ्यानि) नाभि के अङ्ग [ग्रीष्म, वर्षा और शीत] हैं, (कः उ) किसने ही (तत्) इस [मर्म] को (चिकेत) जाना है। (तत्र) उस [पहिये, वर्ष] में (त्रीणि) तीन (शतानि) सौ (च) और (षष्टिः) साठ (शङ्कवः) शङ्कु [कांटे] और (खीलाः) खीले [बड़े छोटे दिन] (आहताः) लगे हुए है, (ये) जो (अविचाचलाः) टेढ़े होकर विचल नहीं होते ॥४॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर ने अपने अपने प्रयोजन के लिये वर्ष के महीने, ऋतुयें और दिन आदि बनाये हैं, वैसे ही मनुष्य यान, विमान नौका आदि में कलायन्त्र आदि लगाकर जाना आना आदि व्यवहार किया करें ॥४॥

यह मन्त्र भेद से ऋग्वेद में है—म० १। सू० १६४। म० ४८, और निरुक्त ४। २७ में भी व्याख्यात है ॥

इदं सवितर्वि जानीहि षड् यमा एकं एकजः ।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेकं एकजः ॥५॥

भाषार्थः—(सवितः) हे ऐश्वर्यवान् [विद्वान् !] (इदम्) इस [बात] को (वि जानीहि) विज्ञान पूर्वक जान [कि] (षट्) छह (यमाः) यम [नियम से चलने चलाने वाले पांच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन] और (एकः) एक [जीवात्मा] (एकजः) [अपने कर्मानुसार] अकेला उत्पन्न होने वाला है। (तस्मिन्) उस [जीवात्मा] में (ह) ही (अपित्वम्) बन्धुपन को (इच्छन्ते) वे [छह इन्द्रिय] प्राप्त करते हैं, (यः) जो [जीवात्मा] (एषाम्) इन [छह] के बीच (एकः) एक (एकजः) अकेला उत्पन्न होने वाला है ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य को खोजना चाहिये कि इस शरीर में कौन से शुभ और अशुभ संस्कारों के कारण जीवात्मा के साथ पांच ज्ञानेन्द्रिय अर्थात् कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका और छठे मनका संबन्ध है ॥५॥

आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ॥६॥

भाषार्थः—(आविः) प्रकट, (जरत्) स्तुति योग्य, (नाम) प्रसिद्ध (महत्) पूजनीय, (पदम्) पाने योग्य (सत्) अविनाशी ब्रह्म (गुहा) हृदय में (निहितम्) दृढ़ स्थापित है। (तत्र) उसी [ब्रह्म] में (अर्पितम्) जमा हुआ (इदम् सर्वम्) यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब (एजत्) चेष्टा करता हुआ और (प्राणत्) श्वास लेता हुआ (प्रतिष्ठितम्) प्रत्यक्ष स्थित है ॥६॥

भावार्थः—वह परब्रह्म सब सृष्टि के भीतर और बाहिर व्यापकर सबको नियम में चलाता है ॥६॥

एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व१ तद् बभूव ॥७॥

भाषार्थः—(एकचक्रम्) एक चक्र वाला और (एकनेमि) एक नेमी [नियम] वाला (सहस्राक्षरम्) सहस्रों प्रकार से व्याप्ति वाला [ब्रह्म] (प्र) भली भाँति (पुरः) आगे और (नि) निश्चय करके (पश्चा) पीछे (वर्तते) वर्तमान है। उस ने (अर्धेन) आधे [खण्ड] से (विश्वम्) सब (भुवनम्) अस्तित्व [जगत्] को (जजान) उत्पन्न किया और (यत्) जो (अस्य) इस [ब्रह्म] का (अर्धम्) [दूसरा कारण रूप] आधा है, (तत्) वह (क्व) कहां (बभूव) रहा ॥७॥

भावार्थः– वह परब्रह्म अपने अटूट नियम से सब जगत् में व्यापकर सब से पहिले और पीछे निरन्तर वर्तमान है। उसने अपने थोड़े से सामर्थ्य से यह बहुत बड़ा ब्रह्माण्ड रचा है और जिस कारण से वह रचता चला जाता है उसका परिमाण मनुष्य नहीं कर सकता ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आगे है—अ० ११।४।२२॥

पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥८॥

भाषार्थः- (पञ्चवाही) पांच [पृथिवी आदि तत्त्व] को ले चलने वाला [परमेश्वर] (एषाम्) इन [सब लोकों] के (अग्रम्) आगे आगे (वहति) चलता है (प्रष्टयः) प्रश्न करने योग्य पदार्थ (युक्ताः) संयुक्त होकर (अनुसंवहन्ति) [उसके] पीछे चले चलते हैं। (अस्य) इस परमेश्वर का (अयातम्) न जाना [निकट रहना, विद्वानों करके] (ददृशे) देखा गया है और (यातम्) जाना [दूर होना] (न) नहीं, (अवरम्) सर्वोत्तम (परम्) पर ब्रह्म [विद्वानों से] (नेदीयः) अधिक निकट और [अविद्वानों से] (दवीयः) अधिक दूर है ॥८॥

भावार्थः परमात्मा पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश पांच तत्त्वों को रचकर नियम में चलाता है। विद्वान् लोग उसको अपने भीतर जानकर प्रबल, और मूर्ख उसे दूर समझकर निर्बल रहते हैं ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥९॥

भाषार्थः—(**तिर्यग्बिलः**) तीरछे बिल [छिद्र] वाला, (**ऊर्ध्वबुध्नः**) ऊपर को बन्धन वाला (**चमसः**) पात्र [अर्थात् मस्तक] है, (**तस्मिन्**) उस [पात्र] में (**विश्वरूपम्**) सम्पूर्ण (**यशः**) यश [व्याप्ति वाला ज्ञान सामर्थ्य] (**निहितम्**) स्थापित है (**तत्र**) उस [पात्र] में (**सप्त**) सात (**ऋषयः**) ऋषि [ज्ञान कारक वा मार्गदर्शक इन्द्रियां] (**साकम्**) मिलकर (**आसते**) बैठते हैं, (**ये**) जो (**अस्य**) इस (**महतः**) बड़े [शरीर] के (**गोपाः**) रक्षक (**बभूवुः**) हुए हैं ॥९॥

भावार्थः—परमेश्वर ने मस्तक की विचित्र रचना की है, उसमें अद्भुत रचना वाले कान आदि गोलक तिरछे और केश ऊपर को हैं, उस में दो कान, दो नेत्र, दो नथने और एक मुख, इन सातों के द्वारा प्राणी ज्ञान प्राप्त करके शरीर की रक्षा करता है ॥९॥

या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद् या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चा ॥१०॥

भाषार्थः—(**या**) जो [वाणी] (**पुरस्तात्**) पहिले से (**च**) और (**या**) जो (**पश्चात्**) पीछे से (**युज्यते**) संयुक्त है, (**या**) जो (**विश्वतः**) सब ओर से (**च**) और (**या**) जो (**सर्वतः**) सब काल से (**युज्यते**) संयुक्त है। (**यया**) जिस [वाणी] करके (**यज्ञः**) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] (**प्राङ्**) आगे (**तायते**) फैलता है (**ताम्**) उस [वाणी] को (**त्वा**) तुझ से (**पृच्छामि**) पूंछता हूं—"(**ऋचाम्**) वाणियों में से (**सा**) वह (**कतमा**) कौन सी [वाणी] है" ॥१०॥

भावार्थः—जो परमेश्वर सृष्टि के पहिले, पीछे और वर्तमान में है और जो सब जगत् का कर्ता है, वह ओ३म् वा ब्रह्म है जिसका वर्णन अगले मन्त्रों में है। गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग, प्रथम प्रपाठक, खण्ड २२ में इस मन्त्र की प्रतीक देकर ओङ्कार का विशेष वर्णन है ॥१०॥

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत् ।
तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव ॥११॥

भाषार्थः—(**यत्**) जो कुछ [जगत्] (**एजति**) चेष्टा करता है, (**पतति**) उड़ता है, (**च**) और (**यत्**) जो कुछ (**तिष्ठति**) ठहरता है, (**प्राणत्**) श्वास लेता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ, (अप्राणत्) न श्वास लेता हुआ, (च) और (यत्) जो कुछ (निमिषत्) आंख मूंदे हुए (भुवत्) विद्यमान है । (विश्वरूपम्) सब को रूप देने वाले (तत्) विस्तृत [ब्रह्म] ने [उस सबको और] (पृथिवीम्) पृथिवी को (दाधार) धारण किया था, (तत्) वह [ब्रह्म] (संभूय) शक्तिमान् होकर (एकम् एव) एक ही (भवति) रहता है ॥११॥

भावार्थः—एक अद्वितीय ब्रह्म विविध प्रकार जगत् को रचकर सब का धारण पोषण करता है ।॥११॥

अनन्तं वितंतं पुरुत्रानन्तमन्तंवच्चा समन्ते ।

ते नांकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यंमस्य ॥१२॥

भाषार्थः—(अनन्तम्) अन्त रहित (पुरुत्रा) बहुत प्रकार (विततम्) फैला हुआ [ब्रह्म अर्थात्] (नाकपालः) मोक्ष सुख का स्वामी [परमात्मा] (समन्ते) परस्पर सीमा युक्त (ते) उन [दोनों अर्थात्] (अनन्तम्) अन्तरहित [कारण] (च) और (अन्तवत्) अन्त वाले [कार्य जगत्] को (विचिन्वन्) अलग अलग करता हुआ और (अस्य) इस [ब्रह्माण्ड] का (भूतम्) भूतकाल (उत) और (भव्यम्) भविष्यत् काल को (विद्वान्, जानता हुआ (चरति) विचरता है ॥१२॥

भावार्थः—अनन्त मोक्षस्वरूप परमात्मा कारण कार्य रूप जगत् तथा भूत भविष्यत् और वर्तमान काल को जानता हुआ सदा वर्तमान है ॥१२॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।

अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥१३॥

भाषार्थः --(प्रजापतिः) प्रजा [सब जगत्] का पालने वाला (गर्भे) गर्भ [गर्भ रूप आत्मा] के (अन्तः) भीतर (चरति) विचरता है और (अदृश्यमानः) न दीखता हुआ वह (बहुधा) बहुत प्रकार (वि जायते) विशेष कर के प्रकट होता है । उसने (अर्धेन) आधे खण्ड से (विश्वम्) सब (भुवनम्) अस्तित्व [जगत्] को (जजान) उत्पन्न किया, और (यत्) जो (अस्य) इस [ब्रह्म] का (अर्धम्) [दूसरा कारणरूप] आधा है, (सः) वह (कतमः) कौन सा (केतुः) चिह्न है ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा अज्ञानियों को नहीं दीखता, उसको विवेकी जन सूक्ष्मदृष्टि से सब के भीतर व्यापक पाते हैं । उसी ईश्वर की सामर्थ्य से यह जगत् उत्पन्न हुआ है और उसी की शक्ति में अनन्त कारणरूप पदार्थ वर्तमान हैं ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध यजुर्वेद में है—अ० ३१ । म० १९ । और तीसरा पाद ऊपर मन्त्र ७ में आ चुका है ॥

ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥१४॥

भाषार्थः—(कुम्भेन) घड़े से (उदकम्) जल को (ऊर्ध्वम्) ऊपर (भरन्तम्) भरते हुए (उदहार्यम्) जल लाने वाले को (इव) जैसे, [उस परमेश्वर को] (सर्वे) सब लोग (चक्षुषा) आंख से (पश्यन्ति) देखते हैं, (सर्वे) (मनसा) मन से (न) नहीं (विदुः) जानते हैं ॥१४॥

भावार्थः—प्रायः मनुष्य परमेश्वर को उसकी स्थूल रचनाओं से देखते हैं जैसे कूप में से घड़े द्वारा जल खींचने वाले को। परन्तु विवेकी पुरुष उस उन्नतिकर्ता ईश्वर को उसकी सूक्ष्म रचनाओं से अनुभव करते हैं ॥१४॥

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥१५॥

भाषार्थः—(महत्) बड़ा (यक्षम्) पूजनीय [ब्रह्म] (भुवनस्य मध्ये) संसार के बीच (दूरे) दूर में [वर्तमान होकर] (पूर्णेन) पूर्ण [पूरे विद्वान्] के साथ वसति) वसता है, और (ऊनेन) हीन [अधूरे पुरुष] के साथ (दूरे) दूर देश में (हीयते) त्यागा जाता है, (तस्मै) उस [ब्रह्म] को (राष्ट्रभृतः) राज्य धारण करने वाले लोग (बलिम्) सन्मान (भरन्ति) धारण करते हैं ॥१५॥

भावार्थः—परमात्मा को विद्वान् लोग सब स्थान में पाकर बली होकर आनन्द भोगते हैं, और मूर्ख जन उसे न जान कर सदा दुःखी रहते हैं। उसी महाराजाओं के महाराजा की सब उपासना करें ॥१५॥

यतः सूर्यं उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥१६॥

भाषार्थः—(यतः) जिस से (सूर्यः) सूर्य (उदेति) उदय होता है, (च) और (यत्र) जिसमें (अस्तम्) अस्त को (गच्छति) प्राप्त होता है। (तत् एव) उसे ही (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [सब से बड़ा] (अहम्) मैं (मन्ये) मानता हूं, (तत् उ) उस से (किं चन) कोई भी (न अति एति) बढ़कर नहीं है ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस परमात्मा से सृष्टि समय में सूर्य आदि उत्पन्न होते और प्रलय काल में वे सब जिसमें लय हो जाते हैं, उस महान् की उपासना सब लोग करें ॥१६॥

ये अर्वाङ् मध्यं उत वां पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥१७॥

भाषार्थः—(**ये**) जो [विद्वान्] (**अर्वाङ्**) अवर [इस काल वा लोक] में, (**मध्ये**) मध्य में (**उत वा**) अथवा (**पुराणम्**) पुराने काल में [वर्तमान] (**वेदम्**) वेद के (**विद्वांसम्**) जानने वाले [परमात्मा] को (**अभितः**) सब ओर से (**वदन्ति**) बखानते हैं। (**ते सर्वे**) वे सब [विद्वान्, उस] (**आदित्यम्**) खण्डन रहित [परमात्मा] को (**एव**) ही (**अग्निम्**) अग्नि [प्रकाश स्वरूप] (**च**) और (**द्वितीयम्**) दूसरा [दूसरे नाम वाला] (**त्रिवृतम्**) तीनों [कर्म, उपासना और ज्ञान] को स्वीकार करने वाला (**हंसम्**) हंस [सर्वव्यापक वा सर्वज्ञानी] (**परि**) निरन्तर (**वदन्ति**) बताते हैं ॥१७॥

भावार्थः—जो परमात्मा तीनों काल तीनों लोक में वर्तमान और सत्यज्ञानी है, उसको विवेकी जन वेदविहित कर्म, उपासना और ज्ञान से प्राप्त होकर मुक्तिसुख भोगते हैं ॥१७॥

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥१८॥

भाषार्थः—(**स्वर्गम्**) मोक्षसुख को (**पततः**) प्राप्त हुए (**अस्य**) इस [सर्वत्र वर्तमान] (**हरेः**) हरि [दुःख हरनेवाले] (**हंसस्य**) हंस [सर्वव्यापक परमेश्वर] के (**पक्षौ**) दोनों पक्ष [ग्रहण करने योग्य कार्य कारण रूप व्यवहार] (**सहस्राह्ण्यम्**) सहस्रों दिनों वाले [अनन्त देश काल] में (**वियतौ**) फैले हुए हैं। (**सः**) वह [परमेश्वर] (**सर्वान्**) सब (**देवान्**) दिव्यगुणों को [अपने] (**उरसि**) हृदय में (**उपदद्य**) लेकर (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोकों को (**संपश्यन्**) निरन्तर देखता हुआ (**याति**) चलता रहता है ॥१८॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर अन्तर्यामी रूप से अनन्त कार्य कारण रूप जगत् की निरन्तर सुधि रखता है, वैसे ही मनुष्य परमेश्वर का विचार करता हुआ सब कामों में सदा सावधान रहे ॥१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स॒त्येनो॒र्ध्वस्त॑पति॒ ब्रह्म॑णा॒र्वाङ् वि प॑श्यति ।
प्रा॒णेन॑ ति॒र्यङ् प्राण॑ति॒ यस्मि॑न् ज्ये॒ष्ठमधि॑ श्रि॒तम् ॥१९॥

भाषार्थः—वह [पुरुष] (**सत्येन**) सत्य [मनकी सचाई] से (**ऊर्ध्वः**) ऊंचा होकर (**तपति**) प्रतापी होता है, (**ब्रह्मणा**) वेद ज्ञान से (**अर्वाङ्**) अवर [इस ओर] होकर (**वि**) विविध प्रकार (**पश्यति**) देखता है। (**प्राणेन**) प्राण [आत्मबल] के साथ (**तिर्यङ्**) आड़ा तिरछा होकर (**प्र**) अच्छी रीति से (**अनति**) जीता है, (**यस्मिन्**) जिस [पुरुष] के भीतर (**ज्येष्ठम्**) ज्येष्ठ [सब से बड़ा ब्रह्म] (**अधि श्रितम्**) निरन्तर ठहरा हुआ है ॥१९॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने में परमात्मा को देखता है, वह सत्यव्रत धारण करके ज्ञान द्वारा आत्मबल प्राप्त करके उपकारी होकर जीवन सुफल करता है ॥१९॥

यो वै ते वि॒द्याद॒रणी॒ याभ्यां॒ निर्म॒थ्यते॒ वसु॑ ।
स वि॒द्वान् ज्येष्ठं॑ मन्येत॒ स वि॑द्या॒द् ब्राह्म॑णं म॒हत् ॥२०॥

भाषार्थः—(**यः**) जो [पुरुष] (**वै**) निश्चय करके (**ते**) उन दोनों (**अरण**) अरणियों [रगड़ कर अग्नि निकालने की दो लकड़ियों] को (**विद्यात्**) जान लेवे, (**याभ्याम्**) जिन दोनों से (**वसु**) अग्नि (**निर्मथ्यते**) मथकर निकाला जाता है। (**सः**) वह (**विद्वान्**) विद्वान् (**ज्येष्ठम्**) ज्येष्ठ [सब से बड़े ब्रह्म] को (**मन्येत**) समझ लेगा, और (**सः**) वह (**महत्**) बड़े (**ब्राह्मणम्**) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञान] को (**विद्यात्**) जानेगा ॥२०॥

भावार्थः- जैसे दो लकड़ियों को रगड़ कर आग निकालते हैं, वैसे ही विद्वान् कार्य कारण की सूक्ष्मता को समझ कर परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करते हैं ॥२०॥

अ॒पाद॑ग्रे॒ सम॑भव॒त् सो अग्रे॒ स्व॑१राभ॑रत् ।
चतु॑ष्पाद् भू॒त्वा भोग्यः॒ सर्व॒माद॑त्त॒ भोज॑नम् ॥२१॥

भाषार्थः—(**अपात्**) विभाग रहित [परमात्मा] (**अग्रे**, पहिले (**सम् अभवत्**) समर्थ हुआ, (**सः**) उस ने (**अग्रे**) पहिले (**स्वः**) मोक्ष सुख (**आ**) सब ओर से (**अभरत्**) धारण किया। (**चतुष्पात्**) चारों दिशाओं में स्थिति वा गति वाले [उस परमेश्वर] ने (**भोग्यः**) [सुखों से] भोगने [अनुभव करने] योग्य (**भूत्वा**)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर (सर्वम्) सब (भोजनम्) सुख वा ऐश्वर्य को (आ अदत्त) ग्रहण किया ॥२१॥

भावार्थः—परमात्मा सृष्टि के आदि से सब संसार में व्याप कर सब सुखों का भण्डार है ॥२१॥

भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु ।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ॥२२॥

भाषार्थः—वह (भोग्यः) [सुखों से] अनुभव योग्य (भवत्) होगा (अथो) और भी (बहु) बहुत (अन्नम्) अन्न [जीवन साधन] (अदत्) भोगेगा। (यः) जो [मनुष्य] (उत्तरवन्तम्) अति उत्तम गुण वाले (सनातनम्) सनातन [नित्य स्थायी] (देवम्) देव [स्तुति योग्य परमेश्वर] को (उपासातै) पूजेगा ॥२२॥

भावार्थः—वह मनुष्य अनेक सुखों से युक्त होकर बहुत अन्नवान् होगा, जो जगत्पिता परमेश्वर की उपासना करेगा ॥२२॥

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥२३॥

भाषार्थः—(एनम्) इस [सर्वव्यापक] को (सनातनम्) सनातन [नित्य स्थायी परमात्मा] (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं, (उत) और वह (अद्य) आज [प्रतिदिन] (पुनर्णवः) नित्य नवा (स्यात्) होता जावे। (अहोरात्रे) दिन और रात्रि दोनों (अन्यो अन्यस्य) एक दूसरे के (रूपयोः) दो रूपों में से (प्र जायेते) उत्पन्न होते हैं ॥२३॥

भावार्थः—नित्यस्थायी परमात्मा के गुण जिज्ञासुओं को नित्य नवीन विदित होते जाते हैं, जैसे दिन रात्रि से और रात्रि दिन से नित्य नवीन उत्पन्न होते हैं ॥२३॥

शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन् निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥२४॥

भाषार्थः—(शतम्) सौ, (सहस्रम्) सहस्र, (अयुतम्) दस सहस्र, (न्यर्बुदम्) दस करोड़, (असंख्येयम्) बे गिनती (स्वम्) धन (अस्मिन्) इस [परमात्मा] में (निविष्टम्) रक्खा हुआ है। (अस्य) इस (अभिपश्यतः) सब ओर देखते हुए [परमात्मा] के (तत्) उस [धन] को (एव) निश्चय करके वे [सब प्राणी]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ्नन्ति) पाते हैं, (तस्मात्) उस [कारण] से (एषः) यह (देवः) देव [स्तुति-योग्य परमात्मा] (एतत्) अब (रोचते) रुचता है [प्रिय लगता है] ॥२४॥

भावार्थः—परमात्मा के अनन्त कोश से अनन्त प्राणी अपने पुरुषार्थ के अनुसार धन आदि पाकर बलवान् होते हैं, इसी से वह जगदीश्वर सब को सदा प्रिय लगता है ॥२४॥

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते ।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥२५॥

भाषार्थः—(एकम्) एक वस्तु (बालात्) बाल [केश] से (अणीयस्कम्) अधिक सूक्ष्म है, (उत) और (एकम्) एक वस्तु (नेव) नहीं भी (दृश्यते) दीखती है। (ततः) उस [बड़ी सूक्ष्म वस्तु] से (परिष्वजीयसी) अधिक चिपटने वाला (सा) वह (देवता) देवता [परमेश्वर] (मम प्रिया) मेरा प्रिय है ॥२५॥

भावार्थः—परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होकर प्राणियों के भीतर रम कर उनको बल देता है, इसी से वह सब प्राणियों का प्रिय है ॥२५॥

इयं कल्याण्य १ जरा मर्त्यस्यामृता गृहे ।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥२६॥

भाषार्थः (इयम्) यह (कल्याणी) कल्याणी [आनन्दकारिणी, प्रकृति जगत् की सामग्री] (अजरा) अजर, (अमृता) अमर होकर (मर्त्यस्य) मरण धर्मी [मनुष्य] के (गृहे) घर में है। (यस्मै) जिस के लिये [जिस ईश्वर की आज्ञा मानने के लिये] (कृता) वह सिद्ध की गई है, (सः) वह [परमेश्वर, उस प्रकृति में] (शये) सोता है, (यः) जिस ने [उस प्रकृति को] (चकार) सिद्ध किया था, (सः) वह [परमेश्वर] (जजार) स्तुति योग्य हुआ ॥२६॥

भावार्थः—प्रकृति जगत् का कारण प्रत्येक मनुष्य आदि प्राणी के शरीर में है। परमेश्वर ने प्रकृति को अनेक उपकारों के लिए कार्यरूप जगत् में परिणत किया है, वह परमात्मा सब का उपास्य देव है ॥२६॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥२७॥

भाषार्थः—[हे जीवात्मा !] (त्वम्) तू (स्त्री) स्त्री, (त्वम्) तू (पुमान्) [पुरुष, (त्वम्) तू (कुमारः) कुमार [लड़का], (उत वा) अथवा (कुमारी) कुमारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[लड़की] (असि) है। (त्वम्) तू (जीर्णः) स्तुति किया गया [होकर] (दण्डेन) दण्ड [दमन सामर्थ्य] से (वञ्चसि) चलता है, (त्वम्) तू (विश्वतो मुखः) सब ओर मुख वाला [बड़ा चतुर होकर] (जातः) प्रसिद्ध (भवसि) होता है ॥२७॥

भावार्थः जैसे परमात्मा में कोई लिङ्गविशेष नहीं है, वैसे ही जीवात्मा में विशेष चिह्न नहीं है। वह शरीर के सम्बन्ध से स्त्री पुरुष लड़का लड़की आदि होता है और शत्रुओं का दमन करके सब ओर दृष्टि करता हुआ धर्मात्मा होकर स्तुति और कीर्ति पाता है ॥२७॥

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥२८॥

भाषार्थः—यह [जीवात्मा] (एषाम्) इन [प्राणियों] का (उत) अथवा (पिता) पिता, (उत वा) अथवा (एषाम्) इनका (पुत्रः) पुत्र है, (उत) अथवा (एषाम्) इनका (ज्येष्ठः) ज्येष्ठ भ्राता [सबसे बड़ा भाई] (उत वा) अथवा (कनिष्ठः) कनिष्ठ भ्राता [सबसे छोटा भाई है]। (एकः ह) एक ही (देवः) देव [सर्व व्यापक परमात्मा] (मनसि) ज्ञान में (प्रविष्टः) प्रविष्ट होकर (प्रथमः) सब से पहिले (जातः) प्रसिद्ध हुआ, (सः उ) वही (गर्भ अन्तः) गर्भ के भीतर [प्राणियों के अन्तःकरण में] है ॥२८॥

भावार्थः—नित्य जीवात्मा शरीर के सम्बन्ध से पिता पुत्रादि कहाता है। इस जीवात्मा से भी सूक्ष्म ज्ञानस्वरूप परमात्मा सब में व्यापक है ॥२८॥

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥२९॥

भाषार्थः—(पूर्णात्) पूर्ण [ब्रह्म] से (पूर्णम्) सम्पूर्ण [जगत्] (उत् अचति) उदय होता है। (पूर्णेन) पूर्ण [ब्रह्म] करके (पूर्णम्) संपूर्ण [जगत्] (सिच्यते) सींचा जाता है। (उतो) और भी (तत्) उस [कारण] को (अद्य) आज (विद्याम) हम जानें, (यतः) जिस कारण से (तत्) वह [सम्पूर्ण जगत्] (परिषिच्यते) सब प्रकार सींचा जाता है ॥२९॥

भावार्थः - यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा से उत्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त होता है। उसी परब्रह्म की उपासना सब लोग करें ॥२९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।
मही देव्यु१ षसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥३०॥

भाषार्थः – (एषा) यह [शक्ति अर्थात् परमेश्वर] (सनम् एव) सदा से ही (सनत्नी) भक्तों की नेत्री [आगे बढ़ाने वाली] (जाता) प्रसिद्ध है, (एषा) इस (पुराणी) पुरानी ने (सर्वम्) सब [जगत्] को (परिबभूव) घेर लिया है। (उषसः) प्रभात वेलाओं को (विभाती) प्रकाशित करने वाली (सा) वह (मही) बड़ी (देवी) देवी [दिव्य शक्ति] (एकेनैकेन) एक एक (मिषता) पलक मारने से [सब को] (वि चष्टे) देखती रहती है ॥३०॥

भावार्थः महान् शक्ति परमात्मा सर्वव्यापक और सर्वप्रकाशक होकर अपने भक्तों की बढ़ती करता और समस्त संसार की सुधि रखता है ॥३०॥

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥३१॥

भाषार्थः—(अविः) रक्षक (वै) ही (नाम) नाम (देवता) देवता [दिव्य शक्ति, परमात्मा] (ऋतेन) सत्यज्ञान से (परिवृता) घिरा हुआ (आस्ते) स्थित है। (तस्याः) उस [देवता] के (रूपेण) रूप [स्वभाव] से (इमे) यह (हरिताः) हरे (वृक्षाः) वृक्ष (हरितस्रजः) दाख [समान फलों] की माला वाले हैं ॥३१॥

भावार्थः—ज्ञानस्वरूप परमात्मा सर्वरक्षक प्रसिद्ध है उसी की दया से यह हरे हरे वृक्ष आदि प्राणियों को फल आदि से सुखदायक होते हैं ॥३१॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥३२॥

भाषार्थः—[जो विद्वान्] (अन्ति) समीप में (सन्तम्) वर्तमान [देव परमात्मा] को (न) नहीं (जहाति) छोड़ता है और (अन्ति) समीप में (सन्तम्) वर्तमान (न) जैसे [उसको] (पश्यति) देखता है। (देवस्य) देव [दिव्यगुण वाले परमात्मा] की (काव्यम्) बुद्धिमत्ता (पश्य) देख—वह [विद्वान्] (न ममार) न तो मरा और (न जीर्यति) न जीर्ण [निर्बल] होता है ॥३२॥

भावार्थः—जो विद्वान् दृढ़ चित्त से परमात्मा को प्रत्यक्ष जानता है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह कभी दुःखी नहीं होता, उसका आतमबल सदा बढ़ता रहता है—यह ईश्वर नियम है ॥३२॥

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥३३॥

भाषार्थः—(अपूर्वेण) अपूर्व [कारण रहित परमात्मा करके] (इषिताः) भेजी हुई (ताः) वे (वाचः) वाचायें (यथायथम्) जैसे का तैसा (वदन्ति) बोलती हैं। (वदन्तीः) बोलती हुई वे [वाचायें] (यत्र) जहां (गच्छन्ति) पहुंचती हैं। (तत्) उसको (महत्) बड़ा (ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञान (आहुः) वे [विद्वान्] बताते हैं ॥३३॥

भावार्थः—कारणशून्य परमात्मा ने वेद द्वारा सत्य धर्म का उपदेश किया है, और वे वेदवाणी परमात्मा का ही यथावत् ज्ञान जनाती हैं ॥३३॥

यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः ।
अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ॥३४॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस [तन्मात्राओं के विकाश] में (देवाः) दिव्य लोक वा पदार्थ (च) और (मनुष्याः) मनुष्य (च) भी (श्रिताः) आश्रित हैं, (इव) जैसे (नाभौ) [पहिये की] नाभि में (अराः) अरे [लगे होते हैं]। [हे विद्वान् !] (त्वा) तुझ से (अपाम्) व्यापक तन्मात्राओं के (पुष्पम्) पुष्प [फूल, विकाश] को (पृच्छामि) पूछता हूं, (यत्र) जिस [विकाश] में (तत्) वह ब्रह्म (मायया) बुद्धि के साथ (हितम्) स्थित है ॥३४॥

भावार्थः—मनुष्य उस ब्रह्म का निश्चय करे जो अन्तर्यामी होकर व्यापक सूक्ष्म तन्मात्राओं में चेष्टा देकर संयोग द्वारा स्थूल लोक और मनुष्य आदि के शरीर रचता है ॥३४॥

येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः ।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥३५॥

भाषार्थः—(येभिः) जिन [संयोग वियोग आदि दिव्य गुणों] करके (इषितः) प्रेरा गया (वातः) वायु (प्रवाति) चलता रहता है, (ये) जो दिव्य गुण (सध्रीचीः) आपस में मिली हुई, (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्त्वों से सम्बन्ध वाली] (दिशः) दिशाओं का (ददन्ते) दान करते हैं। (ये) जिन (देवाः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवों [संयोग, वियोग आदि दिव्य गुणों] ने (आहुतिम्) आहुति [दान क्रिया, उपकार] को (अत्यमन्यन्त) अतिशय करके माना [स्वीकार किया] था, (ते) वे (अपाम्) प्रजाओं के (नेतारः) नेता [संचालक दिव्य गुण] (कतमे) कौन से (आसन्) थे ॥३५॥

भावार्थः—विवेकी को विचारना चाहिये कि किन गुणों से वायु ऊपर नीचे चलता है, सब दिशाओं में पृथिवी आदि तत्त्व कैसे स्थित हैं, किस गुण से क्या उपकार होता है जिससे यह पृथिवी ठहरी है ॥३५॥

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥३६॥

भाषार्थः—(एषाम्) इन [दिव्य पदार्थों] में से (एकः) एक [जैसे अग्नि] (इमाम्) इस (पृथिवीम्) पृथिवी को (वस्ते) ढकता है, (एकः) एक [जैसे वायु] ने (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष [मध्य लोक] को (परि बभूव) घेर लिया है । (एषाम्) इन में (यः) जो (विधर्ता) विविध प्रकार धारण करने वाला है [जैसे वायु], वह (दिवम्) प्रकाश को (ददते) देता है, (एकः) कोई एक [दिव्य पदार्थ] (विश्वाः) सब (आशाः प्रति) दिशाओं में (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं ॥३६॥

भावार्थः—यह गत मन्त्र का उत्तर है । यद्यपि विशेष करके अग्नि पृथिवी का, वायु अन्तरिक्ष का और सूर्य प्रकाश का रक्षक है, तथापि यह अन्य सब चन्द्र नक्षत्र आदि लोकों के परस्पर रक्षक हैं ॥३६॥

भगवान् यास्कमुनि ने निरु० ७ । ५ । में लिखा है—"निरुक्त ज्ञाता मानते हैं कि तीन ही देवता हैं, अग्नि पृथिवी स्थानी, वायु वा इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानी, सूर्य द्यु स्थानी । उनकी बड़ी महिमा के कारण एक एक के बहुत नाम होते हैं । अथवा कर्म के अलग अलग होने से जैसे होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता यह एक के होने से [एक ही के बहुत नाम हैं] अथवा वे अलग अलग होवें, क्यों कि [उनकी] अलग अलग स्तुतियाँ हैं, वैसे ही [अलग अलग] नाम हैं" ॥

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥३७॥

भाषार्थः—(यः) जो [विवेकी] (विततम्) फैले हुए (सूत्रम्) सूत्र [तागे समान कारण] को (विद्यात्) जान लेवे, (यस्मिन्) जिस सूत्र वा कारण में (इमाः) यह (प्रजाः) प्रजायें [कार्य रूप] (ओताः) ओत प्रोत हैं । (यः) जो [विवेकी]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सूत्रस्य) सूत्र [कारण] के (सूत्रम्) सूत्र [कारण] को (विद्यात्) जान लेवे, (सः) वह (महत्) बड़े (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञान] को (विद्यात्) जान लेवे ॥३७॥

भावार्थः—मनुष्य कार्यरूप जगत् के कारण प्रकृति आदि को, और कारण के आदि कारण परमात्मा को जानकर ब्रह्मज्ञानी होता है ॥३७॥

इस मन्त्र का चौथा पाद मन्त्र २० में आया है ॥

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥३८॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (विततम्) फैले हुए (सूत्रम्) सूत्र [तागे समान कारण को (वेद) जानता हूं, (यस्मिन्) जिस [सूत्र वा कारण] में (इमाः) ये (प्रजाः) प्रजायें (ओताः) ओत प्रोत हैं। (अथो) और भी (अहम्) मैं (सूत्रस्य) सूत्र [कारण] के (सूत्रम्) सूत्र [कारण] को (वेद) जानता हूं (यत्) जो (महत्) बड़ा (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञान] है ॥३८॥

भावार्थः—मनुष्य कार्य, कारण और आदि कारण ब्रह्म को साक्षात् करके ब्रह्मज्ञान का उपदेश करे ॥३८॥

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः ।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥३९॥

भाषार्थः—(यत्) जब (द्यावापृथिवी अन्तरा) सूर्य और पृथिवी के बीच (प्रदहन्) दहकता हुआ (विश्वदाव्यः) सब का जलाने वाला (अग्निः) अग्नि (ऐत्) प्राप्त हुआ। (यत्र) जहां [सूर्य और पृथिवी के बीच] (एकपत्नीः) एक [सूर्य] को पति [रक्षक वा स्वामी] रखने वाली [दिशायें] (परस्तात्) दूर तक (अतिष्ठन्) ठहरी थीं, (तदानीम्) तब (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला [वायु वा सूत्रात्मा] (क्व) कहां (इव) निश्चय कर के (आसीत्) था ॥३९॥

भावार्थः—विद्वान् विचार करे कि संसार के बीच प्रलय समय में अग्नि तत्त्व के साथ वायुतत्त्व वा सूत्रात्मा कहां था ॥३९॥

अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ॥४०॥

भाषार्थः—(मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला [वायु वा सूत्रात्मा] (अप्सु) अन्तरिक्ष [वा तन्मात्राओं] में (प्रविष्टः) प्रवेश किये हुए (आसीत्) था,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(देवः) [अन्य] दिव्य पदार्थ (सलिलानि) समुद्रों में [अगम्य कारणों में] (प्रविष्टाः) प्रवेश किये हुए (आसन्) थे। (रजसः) संसार का (बृहन् ह) बड़ा ही (विमानः) विविध प्रकार मापने वाला [वा विमान रूप आधार, परमेश्वर] (तस्थौ) खड़ा था और (पवमानः) शुद्धि करने वाले [परमेश्वर] ने (हरितः) सब दिशाओं में (आ विवेश) प्रवेश किया था ॥४०॥

भावार्थः—प्रलय में वायु और अन्य सब पदार्थ अपने अपने कारणों में लीन थे, उस समय एक ही परमेश्वर का अनुभव होता था ॥४०॥

मन्त्र का तीसरा पाद ऊपर मन्त्र ३ में आया है ॥

उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे ।

साम्ना ये साम संविदुरजस्तद् ददृशे क्व ॥४१॥

भाषार्थः—(उत्तरेण) उत्तम गुण से (इव=एव) ही (अमृते) अमृत [मोक्ष सुख] में (अधि) अधिकार करके वह परमेश्वर (गायत्रीम्) गायत्री [स्तुति] की ओर (वि) विविध प्रकार (चक्रमे) आगे बढ़ा। (ये) जो [विद्वान्] (साम्ना) मोक्षज्ञान [के अभ्यास] से (साम) मोक्षज्ञान को (संविदुः) यथावत् जानते हैं [वे मानते हैं कि] (अजः) अजन्मा [परमेश्वर] (तद्) तब [मोक्ष सुख पाता हुआ] (क्व) कहां (ददृशे) देखा गया ॥४१॥

भावार्थः—मोक्षस्वरूप परमात्मा ही अपने अनुपम श्रेष्ठ गुणों से स्तुति योग्य है। उस मोक्ष दशा का अनुभव ब्रह्मज्ञानी ही कर सकते हैं ॥४१॥

निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा ।

इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥४२॥

भाषार्थः—(वसूनाम्) निवासों [पृथिवी आदि लोकों] का (निवेशनः) ठहराने वाला और (सगमनः) चलाने वाला, (सत्यधर्मा) सत्य धर्म वाला [परमेश्वर] (धनानाम्) धनों के लिये [हमारे] (समरे) संग्राम में (देवः) प्रकाशमान (सविता इव) चलाने वाले सूर्य के समान और (इन्द्रः न) वायु के समान (तस्थौ) स्थित हुआ ॥४२॥

भावार्थः—हम लोग सङ्ग्राम अर्थात् कठिनाई के समय सत्यस्वभाव, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर का ध्यान करते हुए सूर्य समान प्रतापी और वायु समान शीघ्रगामी होकर यथावत् प्रयत्न करें ॥४२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र भेद से ऋग्वेद १० । १३९ । ३ और यजु० १२ । ६६ में है ॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥४३॥

भाषार्थः—(**नवद्वारम्**) [सात शिर के और दो नीचे के छिद्र] नव द्वार वाला (**पुण्डरीकम्**) पुण्य का साधन [यह शरीर] (**त्रिभिः**) तीन [रज, तम और सत्त्व] (**गुणेभिः**) गुणों से (**आवृतम्**) ढका हुआ है। (**तस्मिन्**) उस [शरीर] में (**आत्मन्वत्**) जीवात्मा का स्वामी (**यत्**) जो (**यक्षम्**) पूजनीय [ब्रह्म] है, (**तत्**) उसको (**वै**) ही (**ब्रह्मविदः**) ब्रह्मज्ञानी (**विदुः**) जानते हैं ॥४३॥

भावार्थः—मनुष्य शरीर, कान, नाक आदि इन्द्रियों, तीनों गुणों, जीवात्मा और परमात्मा के यथावत् ज्ञान से ब्रह्मज्ञानी होते हैं ॥४३॥

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥४४॥

भाषार्थः—(**अकामः**) निष्काम, (**धीरः**) धीर [धैर्यवान्] (**अमृतः**) अमर, (**स्वयंभूः**) अपने आप वर्तमान वा उत्पन्न, (**रसेन**) रस [वीर्य वा पराक्रम] से (**तृप्तः**) तृप्त अर्थात् परिपूर्ण [परमात्मा] (**कुतः चन**) कहीं से भी (**ऊनः**) न्यून (**न**) नहीं है। (**तम् एव**) उस ही (**धीरम्**) धीर [बुद्धिमान्], (**अजरम्**) अजर [अक्षय], (**युवानम्**) युवा [महा बली] (**आत्मानम्**) आत्मा [परमात्मा] को (**विद्वान्**) जानता हुआ पुरुष (**मृत्योः**) मृत्यु [मरण वा दुःख] से (**न**) नहीं (**बिभाय**) डरा है ॥४४॥

भावार्थः—जो मनुष्य निष्काम, बुद्धिमान्, धैर्यवान् आदि गुण विशिष्ट परमात्मा को जान लेते हैं, वे परोपकारी धीर वीर पुरुष मृत्यु वा विपत्ति से निर्भय होकर आनन्द भोगते हैं ॥४४॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥९॥

१—२७॥ शतौदना देवता ॥ १ भुरिक् त्रिष्टुप्; २—११, १३—१७, १९, २१-२५ अनुष्टुप्; १२ निचृत् पथ्यापङ्क्तिः; १८, २० निचृदनुष्टुप्; २६ आर्षी जगती, २७ शक्वरी छन्दः ॥

वेदवाणी महिमोपदेशः—वेदवाणी की महिमा का उपदेश ॥

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥१॥

भाषार्थः —[हे वेदवाणी!] (अघायताम्) बुरा चीतने वालों के (मुखानि) मुखों को (अपि नह्य) बांध दे, (सपत्नेषु) वैरियों पर (एतम् वज्रम्) इस वज्र को (अर्पय) छोड़। [तू] (इन्द्रेण) परमेश्वर करके (दत्ता) दी हुई, (प्रथमा) पहिली (शतौदना) सैकड़ों प्रकार सींचने वाली [वेदवाणी] (भ्रातृव्यघ्नी) शत्रु को नाश करने वाली (यजमानस्य) यजमान [श्रेष्ठकर्म करने वाले] का (गातुः) मार्ग [है] ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जिस सर्वहितकारिणी वेदवाणी को परमेश्वर ने सृष्टि की आदि में दिया है, उस के द्वारा सुशिक्षित होकर अपने व्यवहारों को सुधारें ॥१॥

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥२॥

भाषार्थः -[हे वेदवाणी!] (चर्म) [मेरा] चर्म (ते) तेरे लिये (वेदिः) वेदि [यज्ञभूमि] (भवतु) होवे, [मेरे] (यानि लोमानि) जो लोम हैं [वे] (ते) तेरे लिये (बर्हिः) यज्ञासन [होवें]। (एषा) [मेरी] इस (रशना) जीभ ने (त्वा) तुझे (अग्रभीद्) ग्रहण किया है (एषः) यह (ग्रावा) शास्त्रों का उपदेशक [विद्वान्] (त्वा) तुझ को (अधि) अधिकारी करके (नृत्यतु) अङ्गों को हिलावे ॥२॥

भावार्थः - मनुष्य वेदविद्या के लिये अपने चर्म अर्थात् शरीर को वेदि समान और अपने रोमों को कम्बल आदि आसन तुल्य बनावे अर्थात् अपने अङ्ग अङ्ग में और रोम रोम में वेदवाणी को व्यापक जाने और जिह्वा से अभ्यास करके संसार में विविध चेष्टा करे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥३॥

भाषार्थः—(**अघ्न्ये**) हे न मारने वाली शक्ति ! [वेदवाणी] (**ते**) तेरी (**प्रोक्षणीः**) शोधन शक्तियां [मेरे लिये] (**बालाः**) बाल [कूची समान] (**सन्तु**) होवें, [मेरी] (**जिह्वा**) जीभ (**सम्**) यथावत् (**मार्ष्टु**) शुद्ध होवे । (**शतौदने**) हे सैकड़ों प्रकार सींचने वाली ! [वेदवाणी] (**त्वम्**) तू (**शुद्धा**) शुद्ध और (**यज्ञिया**) यज्ञ योग्य (**भूत्वा**) होकर (**दिवम्**) प्रकाश को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**इहि**) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सदा रक्षा और वृद्धि करने हारी वेदवाणी द्वारा सत्य भाषण आदि से शुद्ध होकर वेद विद्या का प्रकाश करे ॥३॥

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥४॥

भाषार्थः—(**यः**) जो [मनुष्य] (**शतौदनाम्**) सैकड़ों प्रकार सींचने वाली [वेदवाणी] को (**पचति**) पक्का [दृढ़] करता है, (**सः**) वह (**कामप्रेण**) कामनायें पूर्ण करने हारे व्यवहार से (**कल्पते**) समर्थ होता है । (**हि**) क्योंकि (**अस्य**) इस [मनुष्य] के (**सर्वे**) सब (**ऋत्विजः**) ऋत्विक् लोग [ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वाले] (**प्रीताः**) सन्तुष्ट होकर (**यथायथम्**) जैसे का तैसा (**यन्ति**) पाते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य वेदविद्या को हृदय में दृढ़ करके व्यवहार करता है, वह अपनी शुभ कामनायें सिद्ध करके सब यज्ञकर्ताओं को प्रसन्न रखता है ॥४॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥५॥

भाषार्थः—(**सः**) वह [पुरुष] (**स्वर्गम्**) स्वर्ग [सुख विशेष] को (**आ रोहति**) ऊंचा होकर पाता है, (**यत्र**) जहां पर (**दिवः**) विजय के (**अदः**) उस (**त्रिदिवम्**) तीन [आय, व्यय, वृद्धि] के व्यवहार का स्थान है । (**यः**) जो (**शतौदनाम्**) सैकड़ों प्रकार सींचने वाली [वेदवाणी] को (**अपूपनाभिम्**) अक्षीण-बन्धु (**कृत्वा**) बनाकर (**ददाति**) दान करता है ॥५॥

भावार्थः—जहां पर विद्या का लाभ, दान और वृद्धि का व्यवहार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, और जो मनुष्य पूर्ण हितकारिणी वेदवाणी का प्रचार करते हैं, वे उन्नति करके सुख विशेष पाते हैं ।।५।।

स ताँल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ।।६।।

भाषार्थः—(सः) वह [मनुष्य] (तान्) उन (लोकान्) दर्शनीय लोगों [जनों] को (सम्) यथावत् (आप्नोति) पाता है, (ये) जो [लोग] (दिव्याः) व्यवहार जानने वाले (च) और (ये) जो (पार्थिवाः) चक्रवर्ती राजा हैं। (यः) जो (शतौदनाम्) सैकड़ों प्रकार सींचने वाली [वेदवाणी] को (हिरण्यज्योतिषम्) सुवर्ण [वा वीर्य अर्थात् पराक्रम] को प्रकाश करने वाली (कृत्वा) करके (ददाति) दान करता है ।।६।।

भावार्थः—जो मनुष्य वेद द्वारा धनी और पराक्रमी होते हैं, वे व्यवहार कुशल और सार्वभौम राजा बनते हैं ।।६।।

ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ।।७।।

भाषार्थः—(देवि) हे देवी! [विजयिनी वेदवाणी] (ये) जो (ते) तेरे (शमितारः) विचारने वाले (च) और (ये जनाः) जो जन (ते) तेरे (पक्तारः) पक्के [निश्चय] करने वाले हैं। (ते सर्वे) वे सब (त्वा) तेरी (गोप्स्यन्ति) रक्षा करेंगे, (शतौदने) हे सैकड़ों प्रकार सींचने वाली वेदवाणी (एभ्यः) इन [शत्रुओं] से (मा भैषीः) मत भय कर ।।७।।

भावार्थः—विचारवान् और दृढ़ विश्वासी पुरुष वेदविद्या की रक्षा करके शत्रुओं से निर्भय रहते हैं ।।७।।

वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।
आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ।।८।।

भाषार्थः - (वसवः) श्रेष्ठ पुरुष (त्वा) तुझ को (दक्षिणतः) दाहिनी ओर से, (मरुतः) शूर पुरुष (त्वा) तुझ को (उत्तरात्) ऊंचे वा बायें स्थान से, (आदित्याः) आदित्य [अखण्ड ब्रह्मचारी लोग] (पश्चात्) पीछे से (गोप्स्यन्ति) बचावेंगे, (सा) सो तू (अग्निष्टोमम्) सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति को (अति) अत्यन्त करके (द्रव) शीघ्र प्राप्त हो [ग्रहण कर] ।।८।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः सब विद्वान् शूरवीर पुरुष वेद की रक्षा करें जिससे ईश्वर के गुणों का अत्यन्त प्रकाश हो ॥८॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥९॥

भाषार्थः—(**देवाः**) विजय चाहने वाले, (**पितरः**) पालन करने वाले (**मनुष्याः**) मनन करने वाले, (**च**) और (**ये**) जो (**गन्धर्वाप्सरसः**) गन्धर्व [पृथिवी धारण करने वाले] और अप्सर लोग [आकाश में विमान आदि से चलने वाले, विवेकी लोग] हैं। (**ते सर्वे**) वे सब (**त्वा**) तेरी (**गोप्स्यन्ति**) रक्षा करेंगे, (**सा**) सो तू (**अतिरात्रम्**) उत्कृष्ट दान क्रिया को (**अति**) उत्तमरीति से (**द्रव**) शीघ्र प्राप्त हो [ग्रहण कर] ॥९॥

भावार्थः—विद्वान् सर्वोपकारी विवेकी जन वेद की रक्षा करके अत्यन्त दानशील होते हैं ॥९॥

अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः ।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥१०॥

भाषार्थः—(**सः**) वह [मनुष्य] (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष, (**दिवम्**) सूर्य लोक, (**भूमिम्**) भूमि, (**आदित्यान्**) अखण्ड ब्रह्मचारियों, (**मरुतः**) शूरों, (**दिशः**) आदेष्टाओं [शासकों], [अर्थात्] (**सर्वान्**) सब (**लोकान्**) दर्शनीय जनों को (**आप्नोति**) पाता है, (**यः**) जो (**शतौदनाम्**) सैकड़ों प्रकार सींचने वाली [वेदवाणी] का (**ददाति**) दान करता है ॥१०॥

भावार्थः—सर्वहितकारिणी वेदविद्या के प्रचार से मनुष्य ज्ञान और यान विमान आदि द्वारा नीचे, ऊपर और मध्य लोक में गति करके उत्तम उत्तम पुरुषों के सङ्ग से अति आनन्द पाता है ॥१०॥

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥११॥

भाषार्थः—(**घृतम्**) घृत [तत्त्व पदार्थ] (**प्रोक्षन्ती**) सींचती हुई, (**सुभगा**) बड़े ऐश्वर्य वाली (**देवी**) देवी [विजयिनी वेदवाणी] (**देवान्**) विद्वानों को (**गमिष्यति**) पहुंचेगी। (**अघ्न्ये**) हे न मारने वाली ! [वेदवाणी] (**पक्तारम्**) [अपने] पक्के [दृढ़] करने वाले को (**मा हिंसीः**) मत मार, (**शतौदने**) हे सैकड़ों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार सींचने वाली! (दिवम्) प्रकाश को (प्र) अच्छे प्रकार (इहि) प्राप्त हो ॥११॥

भावार्थः—विद्वान् लोग वेद विद्या के तत्त्व को जानकर पुरुषार्थी होकर शुभ मनोरथ सिद्ध करें ॥११॥

ये दे॒वा दि॑वि॒षदो॑ अन्तरिक्ष॒सद॑श्च॒ ये ये चे॒मे भूम्या॒मधि॑ ।
तेभ्य॒स्त्वं धु॑क्ष्व॒ सर्व॒दा क्षी॒रं स॒र्पिरथो॒ मधु॑ ॥१२॥

भाषार्थः -(ये) जो (देवाः) दिव्य गुण (दिविषदः) सूर्य में वर्तमान (च) और (ये) जो (अन्तरिक्षसदः) अन्तरिक्ष में व्याप्ति वाले (च) और (ये) जो (इमे) यह (भूम्याम् अधि) भूमि पर हैं। (त्वम्) तू (तेभ्यः) उन सब से (सर्वदा) सर्वदा (क्षीरम्) दूध (सर्पिः) घी (अथो) और भी (मधु) मधुविद्या [ब्रह्मज्ञान] (धुक्ष्व) भरपूर कर ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य वेद द्वारा संसार के सब पदार्थों से यथावत् उपकार लेकर दुग्ध, घृत आदि पदार्थ शरीर पुष्टि के लिये और ब्रह्मज्ञान, आत्म-तुष्टि के लिये सदा प्राप्त करें ॥१२॥

यत् ते॒ शिरो॒ यत् ते॒ मुखं॒ यौ कर्णौ॒ ये च॑ ते॒ हनू॑ ।
आ॒मिक्षां॑ दुह्रतां दा॒त्रे क्षी॒रं स॒र्पिरथो॒ मधु॑ ॥१३॥

भाषार्थः—(यत्) जो (ते) तेरा (शिरः) शिर, (यत्) जो (ते) तेरा (मुखम्) मुख, (यौ) जो (कर्णौ) दो कान, (च) और (ये) जो (ते) तेरे (हनू) दो जावड़े हैं। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध में दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (क्षीरम्) दूध, (सर्पिः) घी (अथो) और भी (मधु) मधु ज्ञान [ब्रह्मविद्या] (दात्रे) दाता को (दुह्रताम्) भरपूर करें ॥१३॥

भावार्थः—यहां से मन्त्र २४ तक वेदवाणी को गौ आदि के समान आकार वाली मानकर वर्णन है। तात्पर्य्य यह है कि जैसे शरीर के अङ्ग प्राणियों के लिये अनेक प्रकार उपकारी बने हैं, वैसे ही वेदवाणी से अनेक उपकार लेकर मनुष्य शारीरिक और आत्मिक पुष्टि करें ॥१३॥

यौ त॒ ओष्ठौ॒ ये नासि॑के॒ ये शृङ्गे॒ ये च॒ तेऽक्षि॑णी ।
आ॒मिक्षां॑ दुह्रतां दा॒त्रे क्षी॒रं स॒र्पिरथो॒ मधु॑ ॥१४॥

भाषार्थः -(यौ) जो (ते) तेरे (ओष्ठौ) दो ओठ, (ये) जो (नासिके)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो नथने, (ये) जो (शृङ्गे) दो सींग (च) और (ये) जो (ते) तेरे तेरी (अक्षिणी) दो आंखें हैं। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा ··म० १३ ॥१४॥

भावार्थः—मन्त्र १३ के समान है ॥१४॥

यस्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१५॥

भाषार्थः—(यत्) जो (ते) तेरा (क्लोमा) फेफड़ा, (यत्) जो (हृदयम्) हृदय और (सहकण्ठिका) कण्ठ के सहित (पुरीतत्) पुरीतत् [शरीर को फैलाने वाली सूक्ष्म आंत] है। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा····· म० १३ ॥१५॥

भावार्थः—मन्त्र १३ के समान है ॥१५॥

यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१६॥

भाषार्थः—(यत्) जो (ते) तेरा (यकृत्) कलेजा, (ये) जो (मतस्ने) दो मतस्ने [गुर्दे], (यत्) जो (आन्त्रम्) आंत (च) और (याः) जो (ते) तेरी (गुदाः) गुदा [मल त्याग नाड़ियां] हैं। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा······ म० १३ ॥१६॥

भावार्थः—मन्त्र १३ के समान है ॥१६॥

यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१७॥

भाषार्थः—(यः) जो (ते) तेरी (प्लाशिः) प्लाशि [अन्न की आधार आंत], (यः) जो (वनिष्ठुः) वनिष्ठु [अन्न, रक्त आदि बांटने वाली आंत], (यौ) जो (कुक्षी) दो कोखें (च) और (यत्) जो (ते) तेरा (चर्म) चर्म है। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा···म० १३ ॥१७॥

भावार्थः—मन्त्र १३ के समान है ॥१७॥

यस्ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम्।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१८॥

भाषार्थः—(यत्) जो (ते) तेरी (मज्जा) मज्जा [हड्डी की मींग] (यत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो (अस्थि, हड्डी, (यत्) जो (मांसम्) मांस (च) और (यत्) जो (लोहितम्) रक्त है। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा...मन्त्र १३ ॥१८॥

भावार्थः मन्त्र १३ के समान है ॥१८॥

यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत्।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१९॥

भाषार्थः—(यौ) जो (ते) तेरी (बाहू) दो भुजायें (ये), जो (दोषणी) दो भुजदण्ड, (यौ) जो (अंसौ) दो कन्धे (च) और (या) जो (ते) तेरा (ककुत्) कूबर [कुब्ब] है। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा...मन्त्र १३ ॥१९॥

भावार्थः—मन्त्र १३ के समान है ॥१९॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२०॥

भाषार्थः—(याः) जो (ते) तेरी (ग्रीवाः) गले की नाड़ियां, (ये) जो (स्कन्धाः) कन्धे की हड्डियां, (या) जो (पृष्टीः) छोटी पसलियां (च) और (याः) जो (पर्शवः) बड़ी पसलियां हैं, वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा...... म० १३ ॥२०॥

भावार्थः—मन्त्र १३ के समान है ॥२०॥

यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत्।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२१॥

भाषार्थः—(यौ) जो (ते) तेरे (ऊरू) दो घुटने और (अष्ठीवन्तौ) घुटने के दो जोड़, (ये) जो (श्रोणी) दो कूल्हे (च) और (या) जो (ते) तेरा (भसत्) पेडू है। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा...म० १३ ॥२१॥

भावार्थः—मन्त्र १३ के समान है ॥२१॥

यत् ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२२॥

भाषार्थः—(यत्) जो (ते) तेरी (पुच्छम्) पूंछ, (ये) जो (ते) तेरे (बालाः) बाल, (यत्) जो (ऊधः) मेड़ [दूध का छिद्रस्थान] (च) और (ये) जो (ते)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरे (स्तनाः) स्तन [दूध के आधार] हैं। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा...... म० १३ ॥२२॥

भावार्थः—मन्त्र १३ के समान है ॥२२॥

यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः ।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२३॥

भाषार्थः (याः) जो (ते) तेरी (जङ्घाः) जङ्घायें, (यः) जो (कुष्ठिकाः) कुष्ठिकायें [नख अङ्गुली आदि बाहिरी अङ्ग] और (ऋच्छराः) ऋच्छरायें [खुरों के ऊपर के भाग] (च) और (ये) जो (ते) तेरे (शफाः) खुर हैं। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा...म० १३ ॥२३॥

भावार्थः—मन्त्र १३ के समान है ॥२३॥

यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२४॥

भाषार्थः—(शतौदने) हे सैकड़ों प्रकार सींचने वाली ! और (अघ्न्ये) हे न मारने वाली ! [वेदवाणी] (यत्) जो (ते) तेरा (चर्म) चर्म और (यानि) जो (लोमानि) लोम हैं। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध में दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (क्षीरम्) दूध, (सर्पिः) घी (अथो) और भी (मधु) मधु-ज्ञान [ब्रह्मविद्या] (दात्रे) दाता को (दुहताम्) भरपूर करें ॥२४॥

भावार्थः—मन्त्र १३ के समान है ॥२४॥

क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥२५॥

भाषार्थः—(ते) तेरी (क्रोडौ) दो गोदें (आज्येन) घी से (अभिघारितौ) चुपड़ी हुई। (पुरोडाशौ) दो रोटियां [मुनि अन्न की पवित्र रोटियां] (स्ताम्) होवें। (देवि) हे देवी ! [विजयिनी वेदविद्या] (सा) सो तू (तौ) उन दोनों [गोदों] को (पक्षौ) दो पंख (कृत्वा) बनाकर (पक्तारम्) अपने पक्के [दृढ़] करने वाले को (दिवम्) प्रकाश में (वह) पहुंचा दे ॥२५॥

भावार्थः—मनुष्य वेदवाणी के एक विद्यादायक और दूसरे पुरुषार्थ वर्धक गुणों को शीघ्र प्राप्त करके आत्मा को प्रकाश युक्त करे, जैसे बालक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता की दोनों गोदों में रहकर दुग्ध आदि से शीघ्र पुष्ट होता हुआ उत्तम मार्ग पर चलता है ॥२५॥

उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२६॥

भाषार्थः –(यः) जो (तण्डुलः) चावल [वा] (कणः) कनी [चावल का टुकड़ा] (उलूखले) ओखली में (मुसले) मूसल में (च) और (चर्मणि) चर्म [मृग छाला वा बाघम्बर] में (वा) अथवा (यः) जो (शूर्पे) सूप में है। (वा) अथवा (यम्) जिसको (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाले (पवमानः) शोधने वाले (वातः) वायु ने (ममाथ) मथा था, (होता) दाता (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (तत्) उस को (सुहुतम्) धार्मिक रीति से स्वीकार किया हुआ (कृणोतु) करे ॥२६॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य अन्न को एक एक बीज करके अनेक प्रकार कूट फटककर उपयोगी बनाते हैं, वैसे ही मनुष्य वेदवाणी को ब्रह्मचर्य आदि अनेक तप से प्राप्त करके परमेश्वर के आश्रय से संसार में उपकारी बनें ॥२६॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद अथर्व० ६ । ७१ । २ । में आ चुका है ॥

अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२७॥

भाषार्थः—(देवीः) देवी [विजयिनी] (मधुमतीः) श्रेष्ठ मधुविद्या [ब्रह्मज्ञान] वाली, (घृतश्चुतः) घृत [सारतत्त्व] बरसाने वाली (अपः) व्यापनशील [वेद-वाणियों] को (ब्रह्मणाम्) ब्रह्माओं [वेदवेत्ताओं] के (हस्तेषु) हाथों में (प्रपृथक्) नाना प्रकार से (सादयामि) मैं रखता हूं। [हे विद्वानो !] (यत्कामः) जिस उत्तम कामना वाला (अहम्) मैं (इदम्) इस समय (वः) तुम्हारा (अभिषिञ्चामि) अभिषेक करता हूं, (तत् सर्वम्) वह सब (मे) मेरे लिये (सम् पद्यताम्) सम्पन्न हो, (वयम्) हम (रयीणाम्) अनेक धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥२७॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सर्वगुणसम्पन्न वेदविद्या को विद्वानों के साथ विचार कर उत्तम शिक्षा प्राप्त करें, जिस से सब लोग विद्याधन और सुवर्ण आदि धन पाकर आनन्द भोगें ॥२७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र के पाद दो और तीन अथर्व ६ । १२२, ५ । में आये हैं ।।

सूक्तम् ।।१०।।

१—३४ ।। वशा देवता ।। १, २, ३, ६, ७, ८, ११—२२, २५, २८, ३०, ३१, ३३ अनुष्टुप्, ४, ९ निचृदनुष्टुप्, ५, २३ आर्षी, बृहती, १०, २७ विराडनुष्टुप्, २४, ३२ स्वराडनुष्टुप्, २६ विराट् पङ्क्तिः, २९ त्रिपदा विराड् गायत्री, ३४, भुरिगनुष्टुप् ।।

ईश्वरशक्तिमहिमोपदेशः—ईश्वर शक्ति की महिमा का उपदेश ।।

नम॑स्ते जाय॑मानायै जा॒ताया॑ उ॒त ते॒ नमः॑ ।
बाले॑भ्यः श॒फेभ्यो॑ रू॒पाया॑घ्न्ये ते॒ नमः॑ । १।।

भाषार्थः—(ते जायमानायै) तुझ प्रकट होती हुई को (नमः) नमस्कार (उत) और (ते जातायै) तुझ प्रकट हो चुकी को (नमः) नमस्कार है । (अघ्न्ये) हे न मारने वाली [परमेश्वर शक्ति !] (वालेभ्यः) बलों के लिये और (शफेभ्यः) शान्ति व्यवहारों के लिये (ते) तेरे (रूपाय) स्वरूप [फैलाव] को (नमः) नमस्कार है ।।१।।

भावार्थः– परमेश्वर के जिन गुणों को बुद्धिमान् लोग जानते जाते हैं और जिनको जान चुके हैं, विवेकी जन उन अद्भुत गुणों को साक्षात् करके बल वृद्धि और शान्ति प्रचार के लिये परमेश्वर को सदा नमस्कार करें ।।१।।

यो वि॒द्यात् स॒प्त प्र॒वतः॑ स॒प्त वि॒द्यात् प॑रा॒वतः॑ ।
शिरो॑ य॒ज्ञस्य॒ यो वि॒द्यात् स व॒शां प्रति॑ गृह्णीयात् ।।२।।

भाषार्थः—(यः) जो [विद्वान्] (सप्त) सात [२ हाथ, २ पांव, १ पायु, १ उपस्थ और १ उदर] (प्रवतः) उत्तम गति वाले [लोकों] को (विद्यात्) जाने, और (सप्त) सात [२ कान, २ नथने, २ आखें और १ मुख] (परावतः) दूर गति वाले [लोकों] को (विद्यात्) जान जावे । (यः) जो (यज्ञस्य) यज्ञ [श्रेष्ठकर्म] के (शिरः) शिर [प्रधान अपने आत्मा] को (विद्यात्) जान लेवे, (सः) वह [पुरुष] (वशाम्) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] को (प्रति) प्रतीति से (गृह्णीयात्) ग्रहण करे ।।२।।

भावार्थः—जो मनुष्य अपने शरीर के सात नीचे और सात ऊंचे, चौदह लोकों अर्थात् इन्द्रियों की अद्भुत शक्तियों को अपने आत्मा के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध के सहित जान लेवे, वही पुरुष सब के निर्माता परमेश्वर की शक्ति को साक्षात् करके अपनी शक्ति बढ़ावे ॥२॥

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः ।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥३॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (सप्त) सात [मन्त्र २] (प्रवतः) उत्तम गति वाले [लोकों] को (वेद) जानता हूं, (सप्त) सात [मन्त्र २] (परावतः) दूर गति वाले [लोकों] को (वेद) जानता हूं। (अहम्) मैं (यज्ञस्य) यज्ञ [श्रेष्ठ कर्म] के (शिरः) शिर [प्रधान अपने आत्मा] को (च) और (अस्याम्) इस [कमनीय शक्ति मन्त्र २] में वर्तमान (विचक्षणम्) विविध द्रष्टा [महापण्डित] (सोमम्) सर्वप्रेरक [परमात्मा] को (वेद) जानता हूं ॥३॥

भावार्थः—जब मनुष्य अपने शरीर के चौदह भुवन और अपने आत्मा की विचित्र गति को जान लेता है, वह परमेश्वर को और उसकी शक्ति को जानने में समर्थ होता है—मन्त्र २ देखो ॥३॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥४॥

भाषार्थः—(यया) जिस [शक्ति] करके (द्यौः) सूर्य, (यया) जिस करके (पृथिवी) पृथिवी और (यया) जिस करके (इमाः) यह (आपः) प्रजायें (गुपिताः) रक्षित हैं। (सहस्रधाराम्) सहस्रों पदार्थों को धारण करने वाली (वशाम्) [उस] वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (अच्छावदामसि) हम आदर से बुलाते हैं ॥४॥

भावार्थः—हम लोग वेद द्वारा परमेश्वर की सर्वरक्षक शक्ति को यथावत् जानकर अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥४॥

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥५॥

भाषार्थः—(शतम्) सौ [बहुत से] (कंसाः) कामना करने वाले, (शतम्) सौ (दोग्धारः) दोहने वाले, (शतम्) सौ (गोप्तारः) रक्षा करने वाले [पुरुष] (अस्याः) इस [शक्ति] की (पृष्ठे) पीठ पर [सहारे में] (अधि) अधिकार पूर्वक हैं। और (ये) जो (देवाः) विद्वान् लोग (तस्याम्) उस [शक्ति] में (प्राणन्ति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन करते हैं, (ते) वे लोग (वशाम्) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] को (एकधा) एक प्रकार से [सत्य रीति से] (विदुः) जानते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो जो पुरुष कामना करके खोज लगाते हुए परमेश्वर की शक्ति का आश्रय लेकर पुरुषार्थ से जीवन करते हैं, वे ही उस के सत्य ज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥५॥

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥६॥

भाषार्थः—(यज्ञपदी) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] में स्थिति वाली, (इराक्षीरा) अन्न और जल वाली, (स्वधाप्राणा) अपनी धारण शक्ति से जाने वाली, (महीलुका) बड़ी दीप्ति वाली, (पर्जन्यपत्नी) मेघ की पालने वाली (वशा) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (देवान्) विद्वानों को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (अपि एति) पहुंच जाती है ॥६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग श्रेष्ठ कामों से वेद द्वारा ईश्वर शक्ति का ज्ञान प्राप्त करते हैं ॥६॥

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥७॥

भाषार्थः—(वशे) हे वशा ! [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (त्वा अनु) तेरे पीछे पीछे (अग्निः) अग्नि ने [पदार्थों में], (त्वा अनु) तेरे पीछे पीछे (सोमः) प्रेरणा करने वाले [जीवात्मा] ने [शरीर में], (प्र अविशत्) प्रवेश किया है। (भद्रे) हे कल्याणी ! (वशे) वशा ! (पर्जन्यः) मेघ (ते) तेरा (ऊधः) मेड़ [दुग्ध के छिद्र स्थान के समान] और (विद्युतः) बिजुलियें (ते) तेरे (स्तनाः) स्तन [दुग्ध के आधारों के समान] हैं ॥७॥

भावार्थः—परमेश्वर की ही शक्ति से अग्नि, जीवात्मा, मेघ, बिजुली आदि अपना अपना काम करते हैं ॥७॥

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपराः वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥८॥

भाषार्थः—(वशे) हे वशा ! [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (त्वम्) तू (प्रथमाः) प्रधान और (अपराः) अप्रधान (अपः) प्रजाओं को (उर्वराः) उपजाऊ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमियों से (धुक्षे) भरपूर करती है। (वशे) हे वशा ! [कामना योग्य शक्ति] (त्वम्) तू (अन्नम्) अन्न, (क्षीरम्) जल और (तृतीयम्) तीसरे (राष्ट्रम्) राज्य से [संसार] को (धुक्षे) भरपूर करती है ॥८॥

भावार्थः—परमेश्वर की शक्ति से ही बड़े छोटे तथा मध्यम जीवों के लिये भोजन उत्पन्न होते हैं, और संसार में अन्न, जल और राज्य-व्यवस्था चलती है ॥८॥

यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे ॥९॥

भाषार्थः—(ऋतावरि) हे सत्य शीला ! (यत्) जब (आदित्यैः) आदित्यों [अखण्ड ब्रह्मचारियों] करके (हूयमाना) पुकारी गई तू (उपातिष्ठः) पास पहुंची। (वशे) हे वशा ! [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (इन्द्रः) इन्द्र [परमेश्वर] ने (सहस्रम्) सहस्र [अनेक] (पात्रान्) रक्षणीय दान योग्य पुरुषों को (सोमम्) मोक्ष-रूपी अमृत (त्वा=त्वया) तुझ से (अपाययत्) पान कराया है ॥९॥

भावार्थः विद्वान् लोग ईश्वर शक्ति को पहिचानते हैं और वे सब पुरुष परमेश्वर के नियम अनुसार दुःखों से छूटकर आनन्द भोगते हैं ॥९॥

यदनूचीन्द्रमैरात् त्वं ऋषभोऽह्वयत् ।
तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद् वशे ॥१०॥

भाषार्थः—(यत्) जब (इन्द्रम् अनूची) जीवात्मा के पीछे चलती हुई तू (ऐः) गयी है, (आत्) तब (ऋषभः) सूक्ष्मदर्शी परमेश्वर ने (त्वा) तुझे (अह्वयत्) बुलाया। (वशे) हे वशा ! [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (तस्मात्) उस [पुरुष] से (ते) तेरे लिये (क्रुद्धः) क्रुद्ध (वृत्रहा) अन्धकार नाशक [परमेश्वर] ने (पयः) अन्न और (क्षीरम्) जल को (अहरत्) ले लिया ॥१०॥

भावार्थः जो मनुष्य परमेश्वर की सर्वव्यापक शक्ति में झगड़ा करके हाथ बढ़ाना चाहता है, वह मनुष्य मतिभ्रष्ट होकर दुःख भोगता है ॥१०॥

यत् ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥११॥

भाषार्थः—(वशे) हे वशा ! [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (यत्) जब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क्रुद्धः) क्रुद्ध (धनपतिः) धनों के स्वामी [परमेश्वर] ने (ते) तेरे लिये (क्षीरम्) जल [उत्पत्ति साधन] को (आअहरत्) [दुष्ट जन से] ले लिया। (तत्) तब (इदम्) जल को (अद्य) आज (नाकः) क्लेश शून्य [आनन्दस्वरूप परमात्मा] (त्रिषु) तीन [ऊंचे नीचे और मध्य] (पात्रेषु) रक्षा के आधार [लोकों] में (रक्षति) रक्षित रखता है ।।११।।

भावार्थः—परमात्मा की महिमा को न मानने वाले पुरुष को [मन्त्र १० देखो] वह क्रुद्ध जगदीश्वर निर्बल करके उत्पत्ति साधन आदि द्रव्य को यथानियम ऊपर नीचे और मध्य लोकों में विभाग करके देता है ।।११।।

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यंहरद् वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ।।१२।।

भाषार्थः—(त्रिषु) तीन [ऊंचे, नीचे और मध्य] (पात्रेषु) रक्षा के आधार [लोकों] में वर्तमान (तम्) उस (सोमम्) सर्व प्रेरक [परमेश्वर] को (देवी) विजयिनी (वशा) [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] ने (आ) सब प्रकार (अहरत्) स्वीकार किया। (यत्र) जहां [तीनों लोकों] में (दीक्षितः) नियमवान् (अथर्वा) निश्चल परमात्मा (हिरण्यये) तेजोमय (बर्हिषि) वृद्धि के बीच (आस्त) बैठा है ।।१२।।

भावार्थः—बुद्धिमान् लोग ईश्वर शक्ति को त्रिलोकवर्त्ती परमेश्वर के आधीन जानते हैं, जो तेजोमय सदा प्रवृद्ध स्वतन्त्र परमात्मा सब का स्वामी है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर और ईश्वर शक्ति में नित्य सम्बन्ध है ।।१२।।

सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह ।।१३।।

भाषार्थः—(वशा) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (हि) ही (सोमेन) ऐश्वर्य के साथ (उ) और (सर्वेण) प्रत्येक (पद्वता) पांव वाले [चलते फिरते पुरुषार्थी] के साथ (सम् सम् अगत) निरन्तर संयुक्त हुई है, और (गन्धर्वैः) पृथिवी धारण करने वाले और (कलिभिः सह) गणना करने वाले [गुणों] के साथ (समुद्रम्) अन्तरिक्ष की (अधि अस्थात्) अधिष्ठात्री हुई है ।।१३।।

भावार्थः—प्रत्येक पुरुषार्थी जीव अपने पुरुषार्थ के अनसार ईश्वर-शक्ति से फल पाता है ।।१३।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं हि वाते नागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥१४॥

भाषार्थः—(ऋचः) स्तुति योग्य [वेद वाणियों] और (सामानि) मोक्ष ज्ञानों को (बिभ्रती) रखती हुई (वशा) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (हि) ही (वातेन) वायु से (उ) और (सर्वैः) सब (पतत्रिभिः) पक्षियों से (सम् सम् अगत) निरन्तर मिली है, और उसने (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (प्र) अच्छे प्रकार (अनृत्यत्) अङ्ग फड़कायें हैं ॥१४॥

भावार्थः—ईश्वर शक्ति ईश्वर वाणी को मानती हुई वायु, पक्षियों और सब लोकों को अन्तरिक्ष में चलाती हुई विराजमान है ॥१४॥

सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशा समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥१५॥

भाषार्थः—(भद्रा) उत्तम (ज्योतींषि) ज्योतियों को (बिभ्रती) रखती हुई (वशा) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (हि) ही (सूर्येण) सूर्य के साथ (उ) और (सर्वेण) प्रत्येक (चक्षुषा) दृष्टि के साथ (सम् सम् अगत) निरन्तर मिली है और उसने (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (अति) अत्यन्त करके (अख्यत्) प्रकाशित किया है ॥१५॥

भावार्थः—ईश्वर की शक्ति से ही सूर्य में, और सूर्य द्वारा आंख में और अन्तरिक्ष के सब लोकों को प्रकाश पहुंचता है ॥१५॥

अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद् वशे त्वा ॥१६॥

भाषार्थः—(ऋतावरि) हे सत्यशील ! (यत्) जब (हिरण्येन) तेज वा पराक्रम से (अभिवृता) घिरी हुई तू (अतिष्ठः) खड़ी हुई। (वशे) हे वशा ! [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (समुद्रः) [प्राणियों के अच्छे प्रकार चलने का आधार] परमेश्वर (अश्वः) व्यापक (भूत्वा) होकर (त्वा) तुझ को (अधि) अधिकार-पूर्वक (अस्कन्दत्) प्राप्त हुआ ॥१६॥

भावार्थः—परमेश्वर अपनी शक्ति को अपने वश में रख कर यथा-समय उसका प्रकाश करता है ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१७॥

भाषार्थः—(तत्) वहां (भद्राः) श्रेष्ठ गुण (सम् अगच्छन्त) मिले हैं, और (देष्ट्री) शासन करने वाली (वशा) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (अथो) और (स्वधा) अन्न [मिले हैं]। (यत्र) जहां (दीक्षितः) नियमवान् (अथर्वा) निश्चल परमात्मा (हिरण्यये) तेजोमय (बर्हिषि) वृद्धि के बीच (आस्त) बैठा है ॥१७॥

भावार्थः—विज्ञानी पुरुष अनन्त श्रेष्ठ गुणों और अन्न आदि को परमेश्वर की शक्ति के साथ पाकर परमात्मा की महिमा को ध्यान में रखते हैं ॥१७॥

इस मन्त्र का दूसरा भाग—मं० १२ में आ चुका है ॥

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥१८॥

भाषार्थः—(वशा) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (राजन्यस्य) शासन कर्ता की (माता) माता [निर्मात्री], और (स्वधे) हे अन्न ! (वशा) वशा (तव) तेरी (माता) माता [जननी] है। (यज्ञे) यज्ञ [श्रेष्ठ कर्म] में (वशायाः) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] का (आयुधम्) जीवन धारक कर्म है। (ततः) उससे (चित्तम्) चित्त [विचार सामर्थ्य] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥१८॥

भावार्थः—ईश्वर शक्ति के ज्ञान से मनुष्य को शासन शक्ति, अन्न प्राप्ति, जीवन धारण और विचार सामर्थ्य होता है ॥१८॥

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि ।
ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥१९॥

भाषार्थः—(ऊर्ध्वः) ऊंचा (बिन्दुः) बिन्दु [थोड़ा अंश] (ब्रह्मणः) ब्रह्म [परमेश्वर] की (ककुदात्) प्रधानता से (अधि) अधिकार पूर्वक (उत् अचरत्) ऊंचा गया। (ततः) उससे (वशे) हे वशा ! [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (त्वम्) तू (जज्ञिषे) उत्पन्न हुई थी, (ततः) और उसी से (होता) पुकारने वाला [यह जीवात्मा] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर के बिन्दु अर्थात् थोड़े सामर्थ्य से संसार में यह दृश्यमान शक्ति और सब प्राणी प्रकट हैं ॥१९॥

आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।
पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥२०॥

भाषार्थः—(वशे) हे वशा ! [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (ते) तेरे (आस्नः) मुख से (गाथाः) गाथायें [गाने योग्य वेदवाणियां] (अभवन्) हुई हैं और (उष्णिहाभ्यः) उष्णिहों [गले की हड्डियों] से (बलम्) बल [हुआ है] । (तव) तेरे (पाजस्यात्) उदर से (यज्ञः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (जज्ञे) उत्पन्न हुआ था, (स्तनेभ्यः) स्तनों [दूध के आधारों] से (रश्मयः) किरणें ॥२०॥

भावार्थः—परमेश्वर की शक्ति से ही वेदविद्यायें, बल, यज्ञ और प्रकाश उत्पन्न हुए हैं ॥२०॥

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥२१॥

भाषार्थः—(वशे) हे वशा ! [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (तव) तेरी (ईर्माभ्याम्) दोनों ईर्म [टांगों वा गोड़ों] से (च) और (सक्थिभ्याम्) दोनों जंघाओं से (अयनम्) सूर्य का दक्षिण और उत्तर मार्ग (जातम्) उत्पन्न हुआ है । (आन्त्रेभ्यः) आंतों से (अत्राः) भोजन पदार्थ और (उदरात्) पेट से (वीरुधः) विविध उगने वाली ओषधियाँ (अधि जज्ञिरे) उत्पन्न हुई थीं ॥२१॥

भावार्थः—ईश्वर शक्ति से सूर्य के दक्षिणायन और उत्तरायण मार्ग, जिनसे तीन तीन ऋतुएँ बनती हैं, सब भोजन पदार्थ और रोगनाशक पदार्थ उत्पन्न हुए हैं ॥२१॥

यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव ॥२२॥

भाषार्थः—(वशे) हे वशा ! [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (यत्) जब [प्रलय में] (वरुणस्य) वरुण [सब के ढकने वाले परमेश्वर] के (उदरम्) पेट में (अनुप्राविशथाः) तू ने प्रवेश किया । (ततः) फिर [सृष्टिकाल में] (त्वा) तुझे (ब्रह्मा) ब्रह्मा [महाविद्वान् परमेश्वर] ने (उत् अह्वयत्) ऊपर बुलाया, (हि) क्योंकि (सः) उस ने (ते) तेरा (नेत्रम्) नायकपन (अवेत्) जाना था ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः सर्वनेता परमेश्वर अपनी शक्ति को प्रलय समय में अपने भीतर लय और सृष्टि समय में संसार के भीतर प्रकट करता है ॥२२॥

सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बन्धुः ॥२३॥

भाषार्थः—(सर्वे) सब [ऋषि] (असूस्वः) सत्ता की उत्पन्न करने वाली [परमेश्वर शक्ति] के (जायमानात्) उत्पन्न होते हुए (गर्भात्) गर्भ [संसार] से (अवेपन्त) थरथराये। (हि) क्योंकि (ताम्) उस [शक्ति] को (आहुः) वे [ब्रह्मज्ञानी] बताते हैं कि—"(वशा) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] ने (ससूव इति) उत्पन्न किया था," (हि) क्योंकि (ब्रह्मभिः) वेदज्ञानों से (क्लृप्तः) समर्थ (सः) वह [परमेश्वर] (अस्याः) इस [शक्ति] का (बन्धुः) बन्धु [संबन्ध वाला] है ॥२३॥

भावार्थः—ऋषि लोग बड़ा आश्चर्य मानते हैं कि महाबली परमेश्वर की महाबलवती शक्ति है जिसने यह महान् संसार रचा है ॥२३॥

युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद् वशी ।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद् वशा ॥२४॥

भाषार्थः—(एकः) एक [परमेश्वर] (युधः) लड़ाकों [परस्पर विरोधी, सुख दुःख, अग्नि जल, सिंह बकरी, आदि] को (सम्) यथावत् (सृजति) उत्पन्न करता है, (यः) जो [परमेश्वर] (एकः इत्) एक ही (अस्याः) इस [शक्ति] का (वशी) वश करने वाला है। [परमेश्वर के] (तरांसि) पराक्रम (यज्ञाः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (अभवन्) हुए हैं, और (वशा) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (तरसाम्) [उन] पराक्रमों की (चक्षुः) नेत्र (अभवत्) हुई है ॥२४॥

भावार्थः—परमेश्वर अपनी शक्ति और पराक्रम से समस्त संसार को रचकर सब की यथावत् सुधि रखता है ॥२४॥

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत् ।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥२५॥

भाषार्थः—(वशा) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] ने (यज्ञम्) यज्ञ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[संगति योग्य संसार] को (प्रति अगृह्णात्) ग्रहण कर लिया है, (वशा) वशा ने (सूर्यम्) सूर्य को (अधारयत्) धारण किया है। (वशायाम् अन्तः) वशा के भीतर (ओदनः) सींचने वाले [मेघ] ने (ब्रह्मणा सह) अन्न के साथ (अविशत्) प्रवेश किया है ॥२५॥

भावार्थः—परमेश्वर की ही शक्ति में यह सब संसार सूर्य आदि लोकों और सब पालन साधनों सहित वर्तमान है ॥२५॥

वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः ॥२६॥

भाषार्थः—(वशाम्) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] को (एव) ही (अमृतम्) अमृत [अमरपन] (आहुः) वे [ऋषि] बताते हैं, (वशाम्) वशा को (मृत्यम्) मृत्यु [समान] (उप आसते) वे मानते हैं। (वशा) वशा (इदम् सर्वम्) इस सब में (अभवत्) व्यापक हुई है, और (देवाः) देव [विजयी] (मनुष्यः) मनुष्य [मननशील], (असुराः) असुर [बुद्धिमान्], (पितरः) पितर [पालन करने वाले] और (ऋषयः) ऋषि [सूक्ष्मदर्शी लोग] जो हैं [उन सब में वह व्यापक हुई है] ॥२६॥

भावार्थः—ईश्वर शक्ति से प्राणी अपने कर्मानुसार अमृत अर्थात् मोक्ष और मृत्यु अर्थात् बन्धन पाते हैं। वही ईश्वर शक्ति समस्त जगत् में व्यापक है, जितेन्द्रिय विचारशील पुरुष उस शक्ति का अनुभव करते हैं ॥२६॥

य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।
तथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥२७॥

भाषार्थः—(यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (विद्यात्) जाने, (सः) वह (वशाम्) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] को (प्रति) प्रतीति से (गृह्णीयात्) ग्रहण करे। (हि) क्योंकि (तथा) उसी प्रकार से (सर्वपात्) पूर्ण स्थिति वाला (अनपस्फुरन्) निश्चल रहता हुआ (यज्ञः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (दात्रे) दाता को (दुहे) भरपूर रहता है ॥२७॥

भावार्थः जो मनुष्य दृढ़ निश्चय से ईश्वर शक्ति को साक्षात् करता है, उसको उत्तम कर्मों के अभ्यास से उत्तम फल मिलता रहता है ॥२७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥२८॥

भाषार्थः—(वरणस्य) वरुण [श्रेष्ठ परमेश्वर] के (आसनि अन्तः) मुख के भीतर (तिस्रः) तीन [सत्त्व, रज और तम रूप] (जिह्वाः) जीभें (दीद्यति=०—न्ति) चमकती हैं। (तासाम्) उन [जीभों] के (मध्ये) बीच में (या) जो (राजति) राज करती है (सा) वह (दुष्प्रतिग्रहा) पाने में कठिन (वशा) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] है ॥२८॥

भावार्थः—परमेश्वर के मुखरूप सृष्टि में सत्त्व गुण, रजोगुण और तमोगुण रूप तीन जिह्वा हैं। इन तीनों की अधिष्ठात्री विशाल परमेश्वर-शक्ति है, जिसका प्रभाव समझना मनुष्य को बड़ा कठिन है ॥२८॥

चतुर्धा रेतो अभवद् वशायाः ।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥२९॥

भाषार्थः—(वशायाः) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] का (रेतः) वीर्य [वा सामर्थ्य] (चतुर्धा) चार प्रकार पर (अभवत्) हुआ है। (आपः) व्यापक तन्मात्रायें (तुरीयम्) एक चौथाई (अमृतम्) अमृत [अमरपन] (तुरीयम्) एक चौथाई, (यज्ञः) यज्ञ [संगति किया हुआ संसार] (तुरीयम्) एक चौथाई और (पशवः) दृष्टि वाले [सब प्राणी] (तुरीयम्) एक चौथाई खण्ड हैं ॥२९॥

भावार्थः—ईश्वर शक्ति चार प्रकार से प्रकट है—एक सूक्ष्म तन्मात्राओं में, दूसरे उनके अमृत अर्थात् अविनाश में, तीसरे संगतिकरण व्यवहार अर्थात् पृथिवी सूर्य आदि की रचना में, और चौथे चराचर प्राणियों की पालन पोषण क्रिया में ॥२९॥

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥३०॥

भाषार्थः—(वशा) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] (द्यौः) आकाश में, (वशा) वशा (पृथिवी) पृथिवी में, (वशा) वशा (प्रजापतिः) प्रजापालक (विष्णुः) व्यापक सूर्य में है। (वशायाः) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] की (दुग्धम्) पूर्णता को (अपिबन्) उन्होंने पान किया है, (ये) जो (साध्याः) परोपकार साधने वाले [साधु] (च) और (वसवः) श्रेष्ठ स्वभाव वाले हैं ॥३०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः सर्वव्यापिनी परमेश्वरशक्ति के सुख दान का अनुभव करके परोपकारी ऋषि महात्मा लोग आनन्द पाते हैं ॥३०॥

वशायां दुग्धं पीत्वा साध्या वसंवश्च ये ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥ ३१॥

भाषार्थः—(ये) जो लोग (साध्याः) परोपकार साधने वाले [साधु] (च) और (वसवः) श्रेष्ठ स्वभाव वाले हैं। (ते वै) वे ही (वशायाः) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] की (दुग्धम्) पूर्णता को (पीत्वा) पान करके (ब्रध्नस्य) नियन्ता [महान् परमेश्वर] के (विष्टपि) सहारे में (अस्याः) इस [परमेश्वर शक्ति] के (पयः) ज्ञान का (उप आसते) सेवन करते हैं ॥३१॥

भावार्थः—परोपकारी साधु महात्मा परमेश्वर की सूक्ष्म शक्तियों के ध्यान से अपना ज्ञान और बल बढ़ाकर सुखी होते हैं ॥३१॥

सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥३२॥

भाषार्थः—(एके) कोई कोई [महात्मा] (एनाम्) इससे (सोमम्) ऐश्वर्य को (दुह्रे) दुहते हैं, (एके) कोई कोई [इस के] (घृतम्) तत्त्व का (उप आसते) सेवन करते हैं। (ये) जिन्हों ने (एवम्) ऐसे (विदुषे) विद्वान् को (वशाम्) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] का (ददुः) दान किया है, (ते) वे (दिवः) विजय के (त्रिदिवम्) तीन [आय, व्यय, वृद्धि] के व्यवहार स्थान में (गताः) पहुँचे हैं ॥३२॥

भावार्थः ऋषि लोग ईश्वर शक्ति के विचार से अपना ऐश्वर्य और ज्ञान बढ़ाते और अन्य विद्वानों को उपदेश करके संसार में विजय सीमा तक पहुंचते हैं ॥३२॥

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाँल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥३३॥

भाषार्थः—(ब्राह्मणेभ्यः) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] को (वशाम्) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] का (दत्त्वा) दान करके (सर्वान् लोकान्) सब लोकों [दर्शनीय पदों] को [यह प्राणी] (सम्) ठीक ठीक (अश्नुते) पाता है। (हि) क्योंकि (अस्याम्) इस [परमेश्वर शक्ति] में (ऋतम्) सत्य व्यवहार (अपि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (ब्रह्म) वेदज्ञान (अथो) और (तपः) तप [ऐश्वर्य] (आर्पितम्) स्थापित है ॥३३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग ईश्वर के सत्यज्ञान से दूसरे विद्वानों की उन्नति करके अनेक प्रकार अपनी उन्नति करते हैं ॥३३॥

वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥३४॥

भाषार्थः—(देवाः) देव [विजयी जन] (वशाम्) वशा [कामना योग्य परमेश्वर शक्ति] के, (उत) और (मनुष्याः) मनुष्य [मननशील लोग] (वशाम्) वशा के (उप जीवन्ति) आश्रय से जीते हैं। (वशा) वशा (इदम् सर्वम्) इस सब में (अभवत्) व्यापक हुई है, (यावत्) जितना कुछ (सूर्यः) सूर्य [सर्व प्रेरक परमात्मा] (विपश्यति) विविध प्रकार देखता है ॥३४॥

भावार्थः—परमात्मा की समस्त सृष्टि में उसकी शक्ति से सब पुरुषार्थी और विवेकी लोग बल प्राप्त करके आनन्दित रहते हैं ॥३४॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

इति दशमं काण्डम् समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

एकादशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१॥

१—३७ ॥ ब्रह्मौदनो देवता ॥ १, २, ५, विराट् त्रिष्टुप्; ३ शक्वरी गर्भा त्रिष्टुप्, ४, ६, १३, १४, १६, २१, २३, २९–३१, ३६, भुरिक् त्रिष्टुप्, ७, १२, १९, २२, २६, २८, ३२–३४ त्रिष्टुप्, ८ विराड् गायत्री, ९, ११ जगती, १०, १५ स्वराट् त्रिष्टुप्, १७, ३७ विराड् जगती, १८, २५ भुरिग् जगती, २० स्वराड् जगती, २४ निचृदार्षी जगती, २७ आर्षी जगती, ३५ निचृदुष्णिक् ॥

ब्रह्मज्ञानेनोन्नत्युपदेशः—ब्रह्मज्ञान से उन्नति का उपदेश ॥

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥१॥

भावार्थः—(अग्ने) हे तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! (जायस्व) प्रसिद्ध हो, [जैसे] (इयम्) यह (नाथिता) पति वाली, (पुत्रकामा) पुत्रों की कामना वाली (अदितिः) अदिति [अखण्ड व्रत वाली वा अदीन स्त्री] (ब्रह्मौदनम्) ब्रह्म–ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन के बरसाने वाले परमात्मा] को (पचति) पक्का [मन में दृढ़] करती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। [वैसे ही] (ते) वे (भूतकृतः) उचित कर्म करने वाले (सप्तऋषयः) सात ऋषि [व्यापन शील वा दर्शन शील अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (इह) यहां पर (प्रजया सह) प्रजा के साथ [मनुष्यों के सहित] (त्वा) तुझ [विद्वान्] को (मन्थन्तु) मथें [प्रवृत्त करें] ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्य जैसे माता वेद आदि शास्त्रों में प्रवीण होकर सन्तान से प्रीति करती हुई परमेश्वर की आज्ञा पालन में तत्पर होती है, वैसे ही तू अपनी इन्द्रियों मन और बुद्धि से उपकार लेकर सन्तान सहित पुरुषार्थ कर ॥१॥

कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥२॥

भाषार्थः—(वृषणः) हे ऐश्वर्य वाले (सखायः) सखाओ ! (धूमम्) कम्पन [चेष्टा] (कृणुत) करो, (वाचम् अच्छ) [अपने] वचन का लक्ष्य करके (अद्रोघाविता) निर्द्रोहियों [शुभाचार्यों] का रक्षक (पृतनाषाट्) संग्रामों का जीतने वाला, (सुवीरः) उत्तम वीरों वाला (अयम्) यह (अग्निः) तेजस्वी वीर है, (येन) जिस [वीर] के साथ (देवाः) देवों [विजयी जनों] ने (दस्यून्) डाकुओं को (असहन्त) जीता है ॥२॥

भावार्थः—सब मनुष्य मित्रभाव से रहकर सुपरीक्षित शूरवीर विद्वान् पुरुष को सेनापति बनाकर शत्रुओं का नाश करें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ३ सू० २६। म० ६॥

अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥३॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञान वाले (अग्ने) तेजस्वी वीर ! (महते) बड़े (वीर्याय) वीरत्व [पाने] के लिये (ब्रह्मौदनाय पक्तवे) ब्रह्मओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन बरसाने वाले परमात्मा] के पक्का [मन में दृढ़] करने को (अजनिष्ठाः) तू उत्पन्न हुआ है। (ते) उन (भूतकृतः) उचित कर्म करने वाले (सप्तऋषयः) सात ऋषियों [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] ने (त्वा) तुझ [शूर] को (अजीजनन्) प्रसिद्ध किया है, (अस्यै) इस [प्रजा म० १] को (सर्ववीरम्) सब वीरों से युक्त (रयिम्) धन (नि) नियम से (यच्छ) दे ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्य पराक्रम के साथ परमेश्वर की आज्ञा का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन करे और मन बुद्धि द्वारा श्रेष्ठ कर्मों से प्रसिद्ध होकर प्रजा पालन में तत्पर रहे ॥३॥

समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः । तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥

भाषार्थः (अग्ने) हे तेजस्वी पुरुष ! (समिधा) काष्ठ आदि से (समिद्धः) प्रकाशित [अग्नि के समान] (सम् इध्यस्व) प्रकाश कर, (यज्ञियान्) पूजा योग्य (देवान्) देवों [विजयी जनों] को (विद्वान्) जानता हुआ तू (इह) यहां [उत्तम पद पर] (आ वक्षः) लाता रहे। (जातवेदः) हे प्रसिद्ध धन वाले (तेभ्यः) उनके लिये (हविः) दातव्य वस्तु को (श्रपयन्) पक्का [दृढ़] करता हुआ तू (इमम्) इस [प्राणी वा प्रजागण] को (उत्तमम्) श्रेष्ठ (नाकम्) आनन्द में (अधि) ऊपर (रोहय) चढ़ा ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या और पराक्रम से तेजस्वी होकर पूजनीय विद्वानों का यथावत् आदर करके अपने और प्रजागण के लिये उत्तम सुख बढ़ावे ॥४॥

त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितृणां मर्त्यानाम् । अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (त्रेधा) तीन प्रकार से, (देवानाम्) देवताओं [विजयी जनों] का, (पितृणाम्) पितरों [पालक पुरुषों] का और (मर्त्यानाम्) मर्त्यो [मरणधर्मियों] का, (यः) जो (वः) तुम्हारे लिये (भागः) भाग (पुरा) पहिले से (निहितः) ठहराया हुआ है। (जानीध्वम्) तुम जानो कि (तान् अंशान्) उन भागों को (वः) तुम्हारे लिये (वि भजामि) मैं [परमेश्वर] बांटता हूं, (यः) जो [भाग] (देवानाम्) देवताओं का है, (सः) वह (इमाम्) इस [प्रजा —म० १] को (पारयति) पार लगावे ॥५॥

भावार्थः—ईश्वर नियम से अनादि काल से कर्मानुसार मनुष्य तीन प्रकार के हैं—एक उत्तम देवसंज्ञक दूसरे मध्यम पितृसंज्ञक और तीसरे निकृष्ट मर्त्यसंज्ञक। देवसंज्ञक, श्रेष्ठ पुरुष ही अपनी प्रजा को यथावत् सुख पहुंचाने में समर्थ होते हैं ॥५॥

अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् । इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**अग्ने**) हे तेजस्वी शूर ! (**सहस्वान्**) बलवान् और (**अभि भूः**) [वैरियों का] हराने वाला तू (**इत्**) ही (**अभि असि**) [शत्रुओं को] हराता है, (**नीचः**) नीच (**द्विषतः**) द्वेष करने वाले (**सपत्नान्**) शत्रुओं को (**नि उब्ज**) नीचे गिरादे। (**इयम्**) यह (**मीयमाना**) मापी जाती हुई (**च**) और (**मिता**) मापी गई (**मात्रा**) मात्रा [परिमाण] (**ते**) तेरे (**सजातान्**) सजातियों [साथियों] को (**बलिहृतः**) [शत्रुओं से] बलि [उपहार वा कर] लाने वाला (**कृणोतु**) करे ॥६॥

भावार्थः—शूर वीर पुरुष शत्रुओं को वश में करके नियमपूर्वक अपने विश्वासपात्र मित्रों द्वारा शत्रुओं से कर एकत्र करे ॥६॥

साकं स॒जा॒तैः पय॑सा स॒हैध्युदु॑ब्जैनां मह॒ते वी॒र्या॑य । ऊ॒र्ध्वो नाक॒स्याधि॑ रोह वि॒ष्टपं॑ स्व॒र्गो लो॒क इ॒ति यं वद॑न्ति ॥७॥

भाषार्थः—[हे शूर !] (**सजातैः साकम्**) सजातियों [साथियों] के साथ (**पयसा सह**) अन्न के सहित (**एधि**) वर्तमान हो, (**एनाम्**) इस [प्रजा—म० १] को (**महते**) बड़े (**वीर्याय**) वीर कर्म के लिये (**उत् उब्ज**) ऊंचा उठा। (**ऊर्ध्वः**) ऊंचा होकर तू (**नाकस्य**) [उस] आनन्द के (**विष्टपम्**) स्थान पर (**अधि रोह**) ऊंचा चढ़, (**यम्**) जिस [आनन्द] को (**वदन्ति**) वे [विद्वान्] बताते हैं—"(**स्वर्गः लोकः इति**) यह स्वर्ग लोक है" ॥७॥

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुष अपने भाई बन्धुओं का अन्न आदि से सत्कार करके प्रजा की उन्नति करें और उनकी उन्नति से अपनी उन्नति करके पूर्ण आनन्द भोगे, जिसका नाम स्वर्ग लोक है ॥७॥

इ॒यं म॒ही प्रति॑ गृह्णातु॒ चर्म॑ पृथि॒वी दे॒वी सु॑मन॒स्यमा॑ना । अथ॑ गच्छेम सुकृ॒तस्य॑ लो॒कम् ॥८॥

भाषार्थः—(**इयम्**) यह (**मही**) बड़ी (**देवी**) श्रेष्ठगुण वाली, (**सुमनस्यमाना**) प्रसन्न मन वाली [प्रजा] (**पृथिवी**) पृथिवी पर (**चर्म**) विज्ञान (**प्रति गृह्णातु**) ग्रहण करे। (**अथ**) फिर (**सुकृतस्य**) धर्म के (**लोकम्**) समाज में (**गच्छेम**) हम जावें ॥८॥

भावार्थः—प्रशस्त विज्ञानी लोग धर्मात्माओं के समाज में प्रतिष्ठा पाकर आनन्दयुक्त होवें ॥८॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग आ चुका है—अथर्व० ६।१२१।१ और ७।८३।४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु। अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥९॥

भाषार्थः—[हे सेना!] (एतौ) इन दोनों (सयुजा) आपस में मिले हुए (ग्रावाणौ) सिल बट्टों को (चर्मणि) विज्ञान में [होकर] (युङ्ग्धि) मिला और (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ कर्म करने वाले] के लिये (अंशून्) कणों को (साधु) सावधानी से (निः भिन्द्धि) कूट डाल। (अवघ्नती) मारती हुई तू [उन लोगों को] (नि जहि) मार डाल, (ये) जो (इमाम् प्रजाम्) इस प्रजा पर (पृतन्यवः) सेना चढ़ाने वाले हैं और [प्रजा को] (ऊर्ध्वम्) ऊंची ओर (उद्भरन्ती) उठाती हुई तू (उत् ऊह) ऊंचा विचार कर ॥९॥

भावार्थः—सेनापति को योग्य है कि जैसे सिल बट्टे से अन्न आदि कूटकर निःसार वस्तु निकालकर ससार पदार्थ ग्रहण करते हैं, वैसे ही सेना द्वारा शत्रुओं को मारकर श्रेष्ठों की रक्षा करे ॥९॥

गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥१०॥

भाषार्थः—(वीर) हे वीर! (सकृतौ) मिलकर काम करने वाले दोनों (ग्रावाणौ) सिलबट्टों को (हस्ते) हाथ में (गृहाण) ले, (यज्ञियाः) पूजा योग्य (देवाः) देवता [विजयी लोग] (ते) तेरे (यज्ञम्) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार में] (आ अगुः) आये हैं। (त्रयः) तीन [स्थान नाम और जन्म] (वराः) वरदान हैं, (यतमान्) जिन जिन को (त्वम्) तू (वृणीषे) मांगता है, (ते) तेरे लिये (ताः) उन (समृद्धीः) समृद्धियों को (इह) यहां [संसार में] (राधयामि) मैं सिद्ध करता हूं ॥१०॥

भावार्थः—जो पराक्रमी पुरुष सिल बट्टे के समान मिलकर काम करे, सब पुण्यात्मा विजयी पुरुष उसका साथ देवें और वह अपने स्थान वा स्थिति, नाम वा कीर्ति और जन्म वा मनुष्य जन्म को सफल करे ॥१०॥

भगवान् यास्कमुनि का वचन है "धाम तीन होते हैं, स्थान नाम और जन्म" निरु० ९। २८ ॥

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे वीर !] (इयम्) यह (ते) तेरी (धीतिः) धारणशक्ति [वा कर्म] (उ) और (इदम्) यह (ते) तेरा (जनित्रम्) जन्म [मनुष्यजन्म] (त्वाम्) तुझे (गृह्णातु) सहारा देवे, [जैसे] (शूरपुत्रा) शूर पुत्रों वाली (अदितिः) अदिति [अखण्ड व्रतवाली माता सन्तान का हित करती है]। (परा पुनीहि) [उन्हें] धो डाल [उन पर पानी फेर दे] (ये) जो [शत्रु] (इमाम्) इस [प्रजा] पर (पृतन्यवः) चढ़ाई करने वाले हैं, (अस्यै) इस [प्रजा] को (सर्ववीरम्) सब वीरों से युक्त (रयिम्) धन (नि) नित्य (यच्छ) दे ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य के शुभ कर्म और शुभ विचार सदा उसका सहाय करते हैं, जैसे ब्रह्मचारिणी माता सन्तान का हित करती है। और वह आत्मावलम्बी वीर सन्तान शत्रुओं का नाश करके प्रजा को धनी और बली बनाता है ॥११॥

इस मन्त्र का चतुर्थ पाद—म० ३ में आ चुका है ॥

उपश्वसे द्रुवयें सीदता यूयं वि विंच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया संमानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥१२॥

भाषार्थः—(यज्ञियासः) हे पूजनीय पुरुषो ! (उपश्वसे) उत्तम जीवन वाले (द्रुवये) उद्योग के लिये (यूयम्) तुम (सीदत) बैठो और (तुषैः) तुष [बुस] से (वि विच्यध्वम्) अलग हो जाओ। (सर्वान्) सब (समानान्) समानों [तुल्य गुण वालों] से (श्रिया) लक्ष्मी द्वारा (अति स्याम) हम बढ़ जावें, (द्विषतः) शत्रुओं को (अधस्पदम्) पैरों के तले (पादयामि) मैं गिरा दूं ॥१२॥

भावार्थः—सब वीर पुरुष मिलकर पराक्रम के साथ दोषों का नाश करें और शत्रुओं को मिटाकर अधिक अधिक सम्पत्ति बढ़ावें ॥१२॥

परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय । तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥१३॥

भाषार्थः—(नारि) हे नरों की शक्ति वाली स्त्री ! तू (परा) पराक्रम के साथ (इहि) चल, (पुनः) अवश्य (क्षिप्रम्) शीघ्र (आ इहि) आ (अपाम्) विद्या में व्याप्त स्त्रियों के (गोष्ठः) समाज ने (भराय) पोषण के लिये (त्वा) तुझे (अधि अरुक्षत्) ऊपर चढ़ाया है। (तासाम्) उन [स्त्रियों] में (यतमाः) जो जो (यज्ञियाः) पूजा योग्य [स्त्रियां] (असन्) होवें, [उन्हें] (गृह्णीतात्) ग्रहण कर और (धीरी) बुद्धिमती तू (इतराः) दूसरी [स्त्रियों] को (विभाज्य) अलग करके (जहीतात्) छोड़ दे ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सब स्त्रियां विदुषी समाज बनाकर अधिक गुणवती स्त्री को अपनी प्रधाना बनावें, और प्रधाना की सम्मति से विदुषी स्त्रियों को चुनकर कार्य्यकर्त्री सभा स्थापित करें ॥१३॥

एमा अंगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥१४॥

भाषार्थः—(इमाः) ये सब (शुम्भमानाः) शुभगुणों वाली (योषितः) सेवा योग्य स्त्रियां (आ अगुः) आई हैं, (नारि) हे शक्तिमती स्त्री ! (उत् तिष्ठ) खड़ी हो, (तवसम्) बलयुक्त व्यवहार को (रभस्व) आरम्भ कर । (पत्या) [श्रेष्ठ] पति के साथ (सुपत्नी) श्रेष्ठ पत्नी, (प्रजया) [उत्तम] सन्तान के साथ (प्रजावती) उत्तम सन्तान वाली [तू है], (यज्ञः) श्रेष्ठ व्यवहार (त्वा) तुझ को (आ अगन्) प्राप्त हुआ है, तू (कुम्भम्) भूमि को पूरण करने वाले [शुभव्यवहार] को (प्रति गृभाय) स्वीकार कर ॥१४॥

भावार्थः—जिस गुणवती स्त्री को गुणवती स्त्रियां प्रधाना बनावें, वह अपने गुणी पति और सन्तानों के साथ आनन्द करती हुई सब को सुखी रक्खे ॥१४॥

ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः । अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥१५॥

भाषार्थः—[हे विदुषी स्त्रियो यही] (ऊर्जः) पराक्रम का (भागः) सेवनीय व्यवहार है, (यः) जो (पुरा) पहिले (वः) तुम्हारे लिये (निहितः) ठहराया गया है, [हे प्रधाना !] (ऋषि प्रशिष्टा) ऋषियों [माता, पिता और आचार्य्यों] से शिक्षित तू (एताः) इन (अपः) विद्या में व्याप्तस्त्रियों को (आ) सब ओर से (भर) पुष्टकर । [हे स्त्रियो !] (अयम्) यह (उग्रः) तेजस्वी (यज्ञः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (गातुवित्) मार्ग देनेवाला, (नाथवित्) ऐश्वर्य पहुंचाने वाला, (प्रजावित्) प्रजायें देनेवाला, (पशुवित्) [गौ घोड़ा आदि] पशुओं का पहुंचाने वाला, (वीरवित्) वीरों का लाने वाला (वः) तुम्हारे लिये (अस्तु) होवे ॥१५॥

भावार्थः - विदुषी सुशिक्षित स्त्रियां ईश्वर नियम से समाज द्वारा सब प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥१५॥

अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् ! (यज्ञियः) पूजा योग्य (चरुः) ज्ञान ने (त्वा) तुझे (अधि अरुक्षत्) ऊंचा चढ़ाया है, (शुचिः) शुद्ध आचरण वाला, (तपिष्ठः) अतिशय तप वाला तू (तपसा) [ब्रह्मचर्य आदि] तप से (एनम्) इस [ज्ञान] को (तप) तपा [उपकार में ला]। (आर्षेयाः) ऋषियों में विख्यात, (दैवाः) उत्तम गुणवाले (तपिष्ठाः) बड़े तपस्वी लोग (अभिसंगत्य) सर्वथा मिलकर (इमम्) इस (भागम्) सेवनीय [ज्ञान] को (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (तपन्तु) तपावें [उपकार में लावें] ॥१६॥

भावार्थः– जैसे विद्वान् ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता आदि तपश्चरण से प्रख्यात होकर उपकार करके उन्नति करते आये हैं, वैसे ही सब विद्वान् लोग मिलकर संसार में शुभगुणों से उपकार करें ॥१६॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥१७॥

भाषार्थः—(शुद्धाः) शुद्धस्वभाव वाली, (पूताः) पवित्र आचरण वाली, (यज्ञियाः) पूजनीय (योषितः) सेवा योग्य, (शुभ्राः) शुभ चरित्र वाली (इमाः) यह (आपः) विद्या में व्याप्त स्त्रियां (चरुम्) ज्ञान को (अव) निश्चय करके (सर्पन्तु) प्राप्त हों। इन [शिक्षित स्त्रियों] ने (नः) हमें (प्रजाम्) सन्तान और (बहुलान्) बहुविध (पशून्) [गौ भैंस आदि] पशु (अदुः) दिये हैं, (ओदनस्य) सुख बरसाने वाले [वा मेघ रूप परमेश्वर] का (पक्ता) पक्का [मन में दृढ़] करने वाला मनुष्य (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोकम्) समाज को (एतु) पहुंचे ॥१७॥

भावार्थः—गुणवती स्त्रियों के शुभ प्रबन्ध से उत्तम सन्तान और उत्तम गौ, भैंस, बकरी आदि उपकारी पशु घर में होते हैं और परमेश्वर की आज्ञा पालने वाला पुरुष अवश्य प्रतिष्ठा पाता है ॥१७॥

इस मन्त्र का पहिला पाद आ चुका है—अ० ६। १२२। ५॥

ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥१८॥

भाषार्थः—(ब्रह्मणा) वेद द्वारा (शुद्धाः) शुद्ध किये गये (उत) और (घृतेन) ज्ञानप्रकाश से (पूताः) पवित्र किये हुए, (सोमस्य) ऐश्वर्य के (अंशवः) बांटने वाले (यज्ञियाः) पूजनीय, (तण्डुलाः) दुःख भञ्जक (इमे) यह तुम (अपः) प्रजाओं में (प्र विशत) प्रवेश करो, (चरुः) ज्ञान (वः) तुमको (प्रतिगृह्णातु) ग्रहण करे, (इमम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस [ज्ञान] को (पक्त्वा) पक्का करके (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोकम्) समाज को (एत) जाओ ॥१८॥

भावार्थः—जो मनुष्य वैदिक ज्ञान से शुद्ध आचरण वाले होकर संसार में प्रवेश करते हैं, वे पुण्यात्माओं के साथ आनन्द पाते हैं ॥१८॥

उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥१९॥

भावार्थः—[हे परमात्मन् !] (महता) बड़ी (महिम्ना) महिमा से (उरुः) विस्तृत और (सहस्रपृष्ठः) सहस्रों स्तोत्र वाला तू (सुकृतस्य) सुकर्म के (लोके) समाज में (प्रथस्व) प्रसिद्ध हो। (पितामहाः) पितामह [पिता के पिता] आदि, (पितरः) पिता आदि [सब गुरुजन], (प्रजा) सन्तान और (उपजा) सन्तान के सन्तान [ये हैं] (पञ्चदशः) [पांच प्राण, अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान+पांच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण+पांच भूत अर्थात् भूमि, जल, अग्नि, वायु, और आकाश इन] पन्द्रह पदार्थ वाला जीवात्मा (अहम्) मैं (ते) तेरा (पक्ता) पक्का [अपने हृदय में दृढ़] करने वाला (अस्मि) हूं ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि परमेश्वर की आज्ञा पालन करके संसार में अपने बड़ों और छोटों के साथ सुकर्मी होकर आनन्द भोगें ॥१९॥

सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥२०॥

भावार्थः—(सहस्रपृष्ठः) सहस्रों स्तोत्र वाला (शतधारः) बहुविध जगत् का धारण करने वाला, (अक्षितः) क्षय रहित, (देवयानः) विद्वानों से पाने योग्य, (स्वर्गः) आनन्द पहुंचाने वाला, (ब्रह्मौदनः) ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन का बरसाने वाला, तू परमात्मा है]। (अमून्) उन [वैरियों] को (ते) तुझे (आ दधामि) सौंपता हूं, (एनान्) इन [शत्रुओं] को (प्रजया) [उनकी] प्रजा सहित (रेषय) नाश करा (मह्यम्) मुझे (बलिहाराय) सेवा विधि स्वीकार करने के लिये (एव) ही (मृडतात्) सुख दे ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा के दिव्य गुणों को अनेक प्रकार साक्षात् करके अपने दोषों को उनकी प्रजा सहित, अर्थात्, दोषों से उत्पन्न दोषों सहित, विचारपूर्वक नाश करके संसार की सेवा करे ॥२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदेहि वेदिं प्रजयां वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥२१॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (वेदिम्) वेदी पर [यज्ञभूमिरूप हृदय में] (उदेहि) उदय हो (प्रजया) सन्तान के साथ (एनाम्) इस [प्रजा अर्थात् मुझ] को (वर्धय) बढ़ा, (रक्षः) राक्षस [विघ्न] को (नुदस्व) हटा, (एनाम्) इस [प्रजा अर्थात् मुझ] को (प्रतरम्) अधिक उत्तमता से (धेहि) पुष्ट कर। (सर्वान्) सब (समानान्) समानों [तुल्य गुण वालों] से (श्रिया) लक्ष्मी द्वारा (अति स्याम) हम बढ़ जावें, (द्विषतः) शत्रुओं को (अधस्पदम्) पैरों के तले (पादयामि) मैं गिरा दूं ॥२१॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा को अपने हृदय में विद्यमान जानते हैं, वे अपने सन्तानों सहित उन्नति करके विघ्नों को हटाकर सुख पाते हैं ॥२१॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध—म० १२ में आ चुका है ॥

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि रांज ॥२२॥

भाषार्थः—[हे जीव !] (पशुभिः सह) सब दृष्टि वाले प्राणियों के साथ [मिलकर] (एनाम्) इस [प्रजा अर्थात् आत्मा] की ओर (अभ्यावर्तस्व) आकर घूम, (देवताभिः सह) जय की इच्छाओं के साथ (एनाम्) इस [प्रजा अपने आत्मा] की ओर (प्रत्यङ्) आगे बढ़ता हुआ तू (एधि) वर्तमान हो। [हे प्रजा !] (त्वा) तुझको (मा) न तो (शपथः) शाप (प्र आपत्) प्राप्त होवे और (मा) न (अभिचारः) विरुद्ध आचरण, (स्वे) अपने (क्षेत्रे) खेत [अधिकार] में (अनमीवा) नीरोग होकर (वि) विविध प्रकार (राज) राज्यकर ॥२२॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब प्राणियों को अपने आत्मा से मिलाकर उन्नति करता जाता है, वह विजयी होकर पूरा आधिपत्य पाता है और धर्मात्मा होने के कारण उसको दुष्ट जन वाचिक और कायिक क्लेश नहीं दे सकते ॥२२॥

ऋतेनं तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुपं धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**ऋतेन**) सत्य ज्ञान करके (**तष्टा**) बनाई गई, (**मनसा**) विज्ञान द्वारा (**हिता**) धरी गई (**ब्रह्मौदनस्य**) ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन के बरसाने वाले परमात्मा] की (**एषा**) यह (**वेदिः**) वेदी [यज्ञभूमि अर्थात् हृदय] (**अग्रे**) पहिले से (**विहिता**) बताई गयी है। (**नारि**) हे शक्तिमती [प्रजा!] (**शुद्धाम्**) शुद्ध (**अंसद्रीम्**) अंसदी [कन्धों वा कानों वाली कढ़ाही अर्थात् बुद्धि] को (**उप धेहि**) चढ़ा दे, (**तत्र**) उस में (**देवानाम्**) उत्तम गुणवाले पुरुषों के (**ओदनम्**) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्न रूप परमेश्वर] को (**सादय**) बैठा दे ॥२३॥

भावार्थः—योगी मन की वेदी अर्थात् यज्ञकुण्ड पर बुद्धि की कढ़ाही में अन्नरूप परमात्मा को सावधानी से धरे ॥२३॥

अदि॑तेर्हस्तां॒ स्रुच॑मे॒तां द्वि॒तीयां॑ सप्तऋ॒षयो॑ भूत॒कृतो॒ याम॑कृण्वन् ।
सा गात्रा॑णि वि॒दुष्यो॑द॒नस्य॒ दर्वि॒र्वेद्या॒मध्ये॑नं चिनोतु ॥२४॥

भाषार्थः—(**भूतकृतः**) उचित कर्म करने वाले (**सप्तऋषयः**) सात ऋषियों [व्यापन शील वा दर्शन शील, अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] ने (**अदितेः**) अदिति [अखण्ड व्रत वाली प्रजा] के (**याम्**) जिस (**हस्ताम्**) खिली हुई [मनोहर], (**एताम्**) इस (**द्वितीयाम्**) दूसरी [शारीरिक से भिन्न मानसिक] (**स्रुचम्**) स्रुचा [डोई अर्थात् चित्त वृत्ति] को (**अकृण्वन्**) बनाया है। (**ओदनस्य**) ओदन [सुख की वर्षा करने वाले अन्नरूप परमात्मा] के (**गात्राणि**) अङ्गों [गुणों के तत्त्वों] को (**विदुषी**) जानती हुई (**सा**) वह (**दर्विः**) करछी [चित्त वृत्ति] (**वेद्याम्**) वेदी पर [हृदय] में (**एनम्**) इस [अन्न रूप परमात्मा] को (**अधि**) अधिक अधिक (**चिनोतु**) एकत्र करे ॥२४॥

भावार्थः—इन्द्रियों द्वारा विषयों के ज्ञान से बाहिरी और भीतरी दो वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। बाहिरी वृत्ति भीतरी वृत्ति के आधीन है। योगी को उचित है कि भीतरी वृत्तियों को परमात्मा के गुणों में लगाकर उस जगदीश्वर को अपने हृदय में बैठावे, जैसे वेदी पर चढ़ी बटलोही के घृत आदि को करछी से संभाल संभाल कर उपकारी बनाते हैं ॥२४॥

शृ॒तं त्वा॑ ह॒व्यमुप॑ सीदन्तु दे॒वा नि॒ःसृप्या॒ग्नेः पुन॑रेनान् प्र सी॑द ।
सोमे॑न पू॒तो ज॒ठरे॑ सीद ब्र॒ह्मणा॑मार्षे॒यास्ते॒ मा रि॑षन् प्राशि॒तारः॑ ॥२५॥

भाषार्थः—[हे ओदन] (**देवाः**) उत्तम गुण वाले पुरुष (**शृतम्**) परिपक्व, (**हव्यम्**) ग्रहण करने योग्य (**त्वा उप**) तेरे समीप (**सीदन्तु**) बैठें, (**अग्नेः**) अग्नि से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(निःसृप्य) निकलकर (पुनः) अवश्व (एनान्) इन [पुरुषों] को (प्रसीद) प्रसन्न कर। (सोमेन) अमृत रस से (पूतः) शोधा हुआ तू (ब्रह्मणाम्) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] के (जठरे) पेट में (सीद) बैठ, (ते) तेरे (प्राशितारः) भोग करने वाले (आर्षेयाः) ऋषियों में विख्यात पुरुष (मा रिषन्) न दुःखी होवे ॥२५॥

भावार्थः— जो मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि तप से परमात्मा को अपने हृदय में दृढ़ करके बैठालते हैं, वे क्लेशों से छूटकर आनन्द भोगते हैं, जैसे मनुष्य परिपक्व उत्तम अन्न को अग्नि पर से उतार कर परोसते और भोजन करके भूख से निवृत्त होकर तृप्त होते हैं ॥२५॥

सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥२६॥

भाषार्थः—(सोम) हे सर्वप्रेरक (राजन्) राजन्! [परमात्मन्] (संज्ञानम्) चेतन्यता (एभ्यः) उनके लिये (आ वप) फैला दे, (यतमे) जो जो (सुब्राह्मणाः) अच्छे अच्छे ब्राह्मण [बड़े ब्रह्मज्ञानी] (त्वा) तुझ को (उपसीदान्) प्राप्त होवें। (तपसः) तप से (अधि) अधिकार पूर्वक (जातान्) प्रसिद्ध (ऋषीन्) ऋषियों और (आर्षेयान्) ऋषियों में विख्यात पुरुषों को (ब्रह्मौदने) ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन के बरसाने वाले परमेश्वर] के विषय में (सुहवा) सुन्दर बुलावे से (जोहवीमि) मैं पुकार पुकार कर बुलाता हूं ॥२६॥

भावार्थः—मनुष्य बड़े ब्रह्मज्ञानी ऋषि महात्माओं से आदरपूर्वक ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके आनन्द पावे ॥२६॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥२७॥

भाषार्थः—(शुद्धाः) शुद्ध स्वभाव वाली, (पूताः) पवित्र आचरण वाली, (यज्ञियाः) पूजनीय (इमाः) इन (योषितः) सेवा योग्य [प्रजाओं] को (ब्रह्मणाम्) ब्रह्मज्ञानियों के (हस्तेषु) हाथों में [विज्ञान के बलों में] (प्रपृथक्) नाना प्रकार से (सादयामि) मैं बिठलाता हूँ। [हे प्रजाओ!] (यत्कामः) जिस उत्तम कामना वाला (अहम्) मैं (इदम्) इस समय (वः) तुम्हारा (अभिषिञ्चामि) अभिषेक करता हूँ, (सः) वह (मरुत्वान्) दोष नाशक गुणों वाला (इन्द्रः) संपूर्ण ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर (इदम्) वह वस्तु (मे) मुझे (ददात्) देवे ॥२७॥

भावार्थः –सब प्रजायें अर्थात् स्त्री पुरुष महात्माओं के सत्संग से ईश्वर ज्ञान द्वारा शुद्ध आचरण करके उन्नति करें ॥२७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र कुछ भेद से आचुका है-अ० ६ । १२२ । ५ । और दूसरा, तीसरा पाद-अ० १० । ६ । २७ ॥

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥२८॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (मे) मेरा (ज्योतिः) चमकता हुआ (अमृतम्) मृत्यु से बचाने वाला (हिरण्यम्) सुवर्ण, (क्षेत्रात्) खेत से [लाया गया] (पक्वम्) पका हुआ [अन्न], और (एषा) यह (मे) मेरी (कामदुघा) कामना पूरी करने वाली [कामधेनु गौ] है । (इदम्) इस (धनम्) धन को (ब्राह्मणेषु) ब्रह्मज्ञानों में [वेद प्रचार व्यवहारों में] (नि दधे) मैं धरता हूं, और (पन्थाम्) मार्ग को (कृण्वे) मैं बनाता हूं, (यः) जो (पितृषु) पालन करने वाले [विज्ञानियों] के बीच (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाला है ॥२८॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपना सर्वस्व परमेश्वर को समर्पण करके सत्यज्ञान द्वारा संसार का उपकार करते हैं, वे विद्वानों के बीच कीर्ति पाते हैं ॥२८॥

अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥२९॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (तुषान्) तुष [भुस] को (जातवेदसि) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (अग्नौ) अग्नि के बीच (आ वप) फैला दे, (कम्बूकान्) कम्बूकों [छिलकों] को (परः) बहुत (दूरम्) दूर (अप मृड्ढि) धोकर फेंक दे । (एतम्) इसको (गृहराजस्य) घर के राजा [गार्हपत्य अग्नि] का (भागम्) भाग (शुश्रुम) हमने सुना है, (अथो) और भी (निर्ऋतेः) पृथिवी का (भागधेयम्) भाग (विद्म) हम जानते हैं ॥२९॥

भावार्थः—अन्न का जो चोकर भूसी कुछ आग में और कुछ धो धाकर पृथिवी पर दूर फेंक देते हैं, उस सब में अर्थात् तुच्छ पदार्थ में भी विज्ञानी पुरुष परमेश्वर की महिमा देखते हैं ॥२९ ।

श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम् ।
येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥३०॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] (श्राम्यतः) श्रमी [ब्रह्मचारी आदि तपस्वी] का,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पचतः) पक्का करने वाले [दृढ़ निश्चय करने वाले], (सुन्वतः) तत्त्व निचोड़ने वाले [विज्ञानी पुरुष] का (विद्धि) तू ज्ञान कर और (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले (पन्थाम्) मार्ग में (एनम्) इस [जीव] को (अधि) उपर (रोहय) चढ़ा। (येन) जिस [मार्ग] से वह [जीव] (यत्) जो (परम्) बड़ा उच्च (वयः) जीवन है, [उसको] (आपद्य) पाकर (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) सुख स्वरूप (परमम्) सर्वोत्कृष्ट (व्योम) विविध रक्षक [परब्रह्म ओ३म्] को (रोहात्) ऊंचा होकर पावे ॥३०॥

भावार्थः—जो मनुष्य तपस्वी, दृढ़विश्वासी और विवेकी होकर अपना जीवन सुधारते हैं, वे ही सर्वरक्षक, [ओ३म्] परमात्मा को पाते अर्थात् उस की आज्ञा पालकर संसार का सुधार करते हैं ॥३०॥

बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान्।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥३१॥

भाषार्थः—(अध्वर्यो) हे हिंसा के न करने वाले पुरुष! (बभ्रेः) पोषण करने वाले [अन्नरूप परमेश्वर] के (एतत्) इस (मुखम्) मुख [भोजन के ऊपरी भाग] को (वि मृड्ढि) सवार ले, (प्रविद्वान्) बड़ा ज्ञानवान् तू (आज्याय) घी के लिये (लोकम्) स्थान (कृणुहि) बना। (घृतेन) घी से (सर्वा) सब (गात्रा) अङ्गों को (अनु) निरन्तर [देख भाल करके] (वि मृड्ढि) शोध ले, (पन्थाम्) मार्ग (कृण्वे) मैं बनाता हूं (यः) जो [मार्ग] (पितृषु) पालन करने वाले [विज्ञानियों] के बीच (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाला है ॥३१॥

भावार्थः—जैसे थाली में चावल आदि भोजन परोसकर और संवार कर ऊपर घृत आदि छोड़कर स्वादिष्ट बनाते हैं, वैसे ही योगी भोजन रूप परमात्मा को [थाली रूप] हृदय में धारण करके [घृत रूप] ज्ञान से विचारता हुआ विज्ञानियों में आनन्द पावे ॥३१॥

बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥३२॥

भाषार्थः—(बभ्रे) हे पोषक! [अन्नरूप परमात्मन्] (रक्षः) विघ्न और (समदम्) लड़ाई (एभ्यः) उनके लिये (आ वपः) फैला दे, (यतमे) जो (अब्राह्मणाः) अब्राह्मण [अब्रह्मज्ञानी] (त्वा) तुझको (उपसीदान्) प्राप्त होवें। (पुरीषिणः) पूर्ति रखने वाले, (पुरस्तात्) आगे आगे (प्रथमानाः) फैलते हुए, (आर्षेयाः) ऋषियों में विख्यात (ते) तेरे (प्राशितारः) भोग करने वाले पुरुष (मा रिषन्) न दुःखी होवें ॥३२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे कुपथ्यभोजी प्राणी रोगी हो जाते हैं, वैसे ही, नास्तिक पाखंडी लोग क्लेश पाते हैं। और जैसे सुपथ्य भोजी तृप्त होकर बली होते हैं, वैसे ही ऋषि मुनि परमात्मा की आज्ञा पालने में आनन्द पाते हैं ॥३२॥

इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध का मिलान पूर्वार्द्ध—म० २६ से और उत्तरार्द्ध का उत्तरार्द्ध—म० २५ से करो ॥

आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥३३॥

भावार्थः—(ओदन) हे ओदन! [सुख की बरसा करने वाले, अन्नरूप परमेश्वर] (आर्षेयेषु) ऋषियों में विख्यातों के बीच (त्वा) तुझको (निदधे) मैं धरता हूँ, (अनार्षेयाणाम्) ऋषियों में विख्यातों से भिन्न लोगों का [भाग] (अत्र) इसमें (अपि) कभी (न) नहीं (अस्ति) है। (मे) मेरा (गोप्ता) रक्षक (अग्निः) अग्नि [शारीरिक अग्नि] (च) और (सर्वे) सब (मरुतः) प्राण वायु [प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान] और (विश्वे) सब (देवाः) इन्द्रियां (पक्वम्) पक्के [दृढ़ स्वभाव परमात्मा] का (अभि) सब ओर से (रक्षन्तु) रक्खें ॥३३॥

भावार्थः—ऋषि महात्मा लोग ही परमात्मा के गुणों को जान सकते हैं, इतर लोग नहीं। मनुष्य अपने शरीरस्थ अग्नि, वायु आदि और इन्द्रियों के सूक्ष्म संगठन और कर्मों के भीतर परमेश्वर की महिमा को विचारें ॥३३॥

यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥३४॥

भावार्थः—[हे परमात्मन्!] (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] को, (प्रपीनम्) बढ़े हुए [समृद्ध] (पुमांसम्) रक्षक [पुरुषार्थी] को, (धेनुम्) तृप्त करने वाली [वाणी अर्थात् विद्या, वा गौ] को (रयीणाम्) धनों के (सदनम्) घर को, (प्रजामृतत्वम्) प्रजा [जनता वा सन्तान] के अमरण को, (उत) और (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) जीवन को (च) निश्चय करके (रायः) धन की (पोषैः) पुष्टियों से (सदम् इत्) सदा ही (दुहानम्) पूर्ण करते हुए (त्वा) तुझ को (उप) आदर से (सदेम) हम प्राप्त होवें ॥३४॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर की उपासना में तत्पर रहते हैं, वे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम व्यवहार, समृद्ध पुरुषों, विद्या, गौ, धन के कोष, प्रजा और सन्तान की वृद्धि और दीर्घ जीवन को प्राप्त होकर आनन्द भोगते हैं ॥३४॥

वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥३५॥

भाषार्थः –[हे परमात्मन् !] तू (वृषभः) महाबली और (स्वर्गः) सुख पहुँचाने वाला (असि) है, (ऋषीन्) ऋषियों [सूक्ष्मदर्शियों] को और (आर्षेयान्) ऋषियों में विख्यात पुरुषों को (गच्छ) प्राप्त हो। (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोके) समाज में (सीद) बैठ, (तत्र) वहां (नौ) हम दोनों का (संस्कृतम्) संस्कार होवे [अर्थात् मैं तेरी उपासना करूं और तू मुझे बल देवे] ॥३५॥

भावार्थः—जो मनुष्य जगदीश्वर की उपासना करके पुण्यात्माओं के समान व्यवहार करते हैं, वे बली और सुखी होते हैं ॥३५॥

समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥३६॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (देवयानान्) देवताओं [विजय चाहने वालों] के चलने योग्य (पथः) मार्गों को (समाचिनुष्व) चौरस करके ठीक ठीक सुधार, [उनपर] (अनु संप्रयाहि) निरन्तर यथाविधि आगे बढ़, [और उन्हें दूसरों के लिये] (कल्पय) बना। (एतैः) इन (सुकृतैः) सुन्दर [विचार से] बनाये हुए [मार्गों] द्वारा (सप्तरश्मौ) सात किरणों वाले (नाके) [लोकों वा प्रकाश आदि के चलाने वाले] सूर्य पर (अधि) राजा होकर (तिष्ठन्तम्) ठहरे हुए (यज्ञम्) पूजनीय [परमात्मा] को (अनु) निरन्तर (गच्छेम) पावें ॥३६॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि वे वेदद्वारा विचार पूर्वक अपना आचरण ऐसा धार्मिक बनावें, जिसके अनुकरण से सब मनुष्य सूर्य आदि के प्रकाशक परमात्मा को प्राप्त होकर शुभगुणों से प्रकाशमान होवें। सूर्य की किरणों में शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र, ये सात वर्ण हैं ॥३६॥

येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥३७॥

भाषार्थः—(येन ज्योतिषा) जिस ज्योति द्वारा (देवाः) देवता [विजय चाहने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले लोग (ब्रह्मौदनम्) ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन के बरसाने वाले परमेश्वर] को (पक्त्वा) पक्का [मन में दृढ़] करके (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (द्याम्) प्रकाशमान (लोकम्) लोक [समाज] को (उदायन्) ऊपर पहुंचे हैं। (तेन) उसी [ज्योति] से (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) दु;ख रहित (स्वः) सुख स्वरूप परब्रह्म को (अभि=अभिलक्ष्य) लखकर (आरोहन्तः) चढ़ते हुए हम (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (लोकम्) समाज को (गेष्म) खोजें ॥३७॥

भावार्थः—जिस वैदिक ज्योति द्वारा विजयी महात्मा लोगों ने चलकर परमात्मा को पाया है, उसी वैदिक ज्योति द्वारा परमात्मा को देखते हुए हम सब पुण्यात्माओं के बीच सुख पावें ॥३७॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आचुका है - अ० ४।१४।६॥

सूक्तम् ॥२॥

१-३१॥ भवाशर्वौ रुद्रश्च देवताः। १ स्वराट् त्रिष्टुप्, २ स्वराडार्षी त्रिष्टुप्, ३ भुरिगुष्णिक्, ४, ५, ७, १३, १५, १६, २१ अनुष्टुप्, ६ गायत्री, ८ महाबृहती, ९, २८ त्रिष्टुप्, १० ब्राह्म्युष्णिक्, ११ पञ्चपदा शक्वरी, १२ भुरिक् त्रिष्टुप् १४, १७, १८, १९, २३, २६, २७ विराड् गायत्री, २० भुरिग् गायत्री, २२ स्वराड् विराड् गायत्री, २४ भुरिग् जगती, २५ पञ्चपदाऽतिशक्वरी, २९ निचृज् जगती, ३० उष्णिक्, ३१ षट्पदा जगती॥

शान्त्यर्थः पुरुषार्थोपदेशः—शान्ति के लिये पुरुषार्थ का उपदेश॥

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम्।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१॥

भाषार्थः—(भवाशर्वौ) हे भव और शर्व ! [भव, सुख उत्पन्न करने वाले और शर्व, शत्रुनाशक परमेश्वर के तुम दोनों गुणों] (मृडतम्) प्रसन्न हो, (मा अभियातम्) [हमारे] विरुद्ध मत चलो, (भूतपती) हे सत्ता के पालको ! (पशुपती) हे सब दृष्टि वालों के रक्षको ! (वाम्) तुम दोनों को (नमः) नमस्कार है। (प्रतिहिताम्) लक्ष्य पर लगाई हुई और (आयताम्) तानी हुई [इषु, तीर] को (मा वि स्राष्टम्) तुम दोनों मत छोड़ो, (मा) न (नः) हमारे (द्विपदः) दोपायों और (मा) न (चतुष्पदः) चौपायों को (हिंसिष्टम्) मारो ॥१॥

भावार्थः- जैसे एक ही मनुष्य अपने अधिकारों से गुरुकुल में आचार्य और यज्ञ में ब्रह्मा आदि होता है, वैसे ही एक परमेश्वर अपने गुणों से (भव) सुख उत्पन्न करने वाला और (शर्व) शत्रुनाशक कहाता है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् गुणों के वर्णन से गुणी परमात्मा का ग्रहण है। कहीं (भवाशर्वौ, भवारुद्रौ) द्विवचनान्त और कहीं (भव, शर्व, रुद्र,) आदि एक वचनान्त पद हैं। मन्त्र का आशय यह है कि मनुष्य परमेश्वर के गुणों के ज्ञान से सब उपकारी पदार्थों और प्राणियों की रक्षा करके धर्म में प्रवृत्त रहे, जिससे परमेश्वर उस पर क्रुद्ध न होवे ॥१॥

इस सूक्त का मिलान अ० ४। २८ से करो ॥

शुने॑ क्रोष्ट्रे मा शरी॑राणि कर्त॑मलिक्ल॑वेभ्यो गृध्रे॑भ्यो ये च॑ कृष्णा अ॑विष्यवः॑। मक्षि॑कास्ते पशुपते वयां॑सि ते विघसे मा वि॑दन्त ॥२॥

भाषार्थः—(शुने) कुत्ते के लिये, (क्रोष्ट्रे) गीदड़ के लिये, (अलिक्लवेभ्यः) अपने बल से भय देने वाले [श्येन, चील आदियों] के लिये, (गृध्रेभ्यः) खाऊ [गिद्ध आदिकों] के लिये (च) और (ये) जो (अविष्यवः) हिंसाकारी (कृष्णाः) कौवे हैं [उनके लिये] (शरीराणि) [हमारे] शरीरों को (मा कर्तम्) तुम दोनों मत करो। (पशुपते) हे दृष्टिवाले [जीवों] के रक्षक! (ते) तेरी [उत्पन्न] (मक्षिकाः) मक्खियां और (ते) तेरे [उत्पन्न] (वयांसि) पक्षी (विघसे) भोजन पर (मा विदन्त) [हमें] न प्राप्त होवें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य सावधान रहें कि कुत्ते आदि उन्हें न सतावें और न मक्खी आदि भोजन को बिगाड़ें ॥२॥

क्रन्दा॑य ते प्राणाय याश्च॑ ते भव रोप॑यः।
नम॑स्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षाया॑मर्त्य ॥३॥

भाषार्थः—(भव) हे भव! [सुख उत्पन्न करने वाले] (रुद्र) हे रुद्र! [दुःखनाशक] (अमर्त्य) हे अमर! [जगदीश्वर] (सहस्राक्षाय) सहस्रों कर्मों में दृष्टि वाले (ते) तुझको (क्रन्दाय) [अपना] रोदन मिटाने के लिये (ते) तुझे (प्राणाय) [अपना] जीवन बढ़ाने के लिये (च) और (ते) तुझे (याः) जो (रोपयः) [हमारी] पीड़ायें हैं [उन्हें हटाने के लिये] (नमः कृण्मः) हम नमस्कार करते हैं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की भक्ति से सब ओर दृष्टि करके और भीतरी क्लेश मिटाकर अपना जीवन सुफल करे ॥३॥

पुरस्ता॑त् ते नमः॑ कृण्म उत्त॒रादध॒रादुत।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरि॑क्षाय ते नमः॑ ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] (ते) तुझे (पुरस्तात्) आगे से, (उत्तरात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नीचे से (नमः) नमस्कार, (ते) तुझे (दिवः) आकाश के (अभिविर्गात् परि) अवकाश से (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष लोक को जानने के लिये (नमः कृण्मः) हम नमस्कार करते हैं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर को सर्वत्र व्यापक जानकर विद्या की प्राप्ति से सब दिशाओं और अन्तरिक्ष के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके अपनी रक्षा करें ॥४॥

मुखा॑य ते पशुपते॒ यानि॒ चक्षूं॑षि ते भव ।
त्वचे॑ रू॒पाय॑ सं॒दृशे॑ प्रती॒चीना॑य ते॒ नमः॑ ॥५॥

भाषार्थः—(पशुपते) हे दृष्टि वालों के रक्षक! (ते) तुझे (मुखाय) [हमारे] मुख के हितके लिये, (भव) हे सुख उत्पादक! (ते) तुझे (यानि) जो (चक्षूंषि) [हमारे] दर्शन साधन हैं [उनके लिये]। (त्वचे) [हमारी] त्वचा के लिये (रूपाय) सुन्दरता के लिये, (संदृशे) आकार के लिये (प्रतीचीनाय) प्रत्यक्ष व्यापक (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है ॥५॥

भावार्थः मनुष्य परमेश्वर की उपासनापूर्वक अपने मुख आदि इन्द्रियों और त्वचा आदि को उपयोगी बनाकर पुरुषार्थी होवें ॥५॥

अङ्गे॑भ्यस्त उ॒दरा॑य जि॒ह्वायां॑ आ॒स्या॑य ते ।
द॒द्भ्यो ग॒न्धाय॑ ते॒ नमः॑ ॥६॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] (ते) तुझे (अङ्गेभ्यः) [हमारे] अङ्गों के हित के लिये, (उदराय) उदर के हित के लिये, (ते) तुझे (जिह्वायै) [हमारी] जिह्वा के हित के लिये और (आस्याय) मुख के हित के लिये (ते) तुझे (दद्भ्यः) [हमारे] दाँतों के हित के लिये और (गन्धाय) गन्ध ग्रहण करने के लिये (नमः) नमस्कार है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य अपने अङ्गों को यथावत् उपकारी बनाकर परमेश्वर की भक्ति करें ॥६॥

अ॒स्त्रा नील॑शिखण्डेन सहस्रा॒क्षेण॑ वा॒जिना॑ ।
रु॒द्रेणा॑र्धकघा॒तिना॒ तेन॒ मा सम॑रामहि ॥७॥

भाषार्थः—(अस्त्रा) प्रकाश करने वाले, (नीलशिखण्डेन) नीलों [निधियों]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पहुंचाने वाले, (सहस्राक्षेण) सहस्रों कर्मों में दृष्टिवाले (वाजिना) बलवान् (अर्धकघातिना) हिंसकों के मारने वाले (तेन) उस (रुद्रेण) रुद्र [दुःख नाशक परमात्मा] के साथ (मा सम् अरामहि) हम समर [युद्ध] न करें ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य स्वयंप्रकाशमान, सर्वहितकारी, महाबली परमात्मा की आज्ञा में रहकर सदा सुखी रहे ॥७॥

स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः । मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥८॥

भाषार्थः—(सः) वह (भवः) भव [सुख उत्पन्न करने वाला परमेश्वर] (नः) हमें [दुष्ट कर्मों से] (विश्वतः) सब ओर (परि वृणक्तु) बरजता [रोकता] रहे. (इव) जैसे (आपः) जल और (अग्निः) अग्नि [एक दूसरे को रोकते हैं, वैसे ही] (भवः), भव [सुख उत्पन्न करने वाला परमेश्वर] (नः) हमें (परि वृणक्तु) बरजाता रहे । (नः) हमें (मा अभि मांस्त) वह न सतावे, (अस्मै) इस [परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥८॥

भावार्थः— जैसे जल अग्नि से और अग्नि जल से पृथक् होते हैं, वैसे ही हम दुष्ट कर्मों से पृथक् रहकर परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके सुरक्षित रहें ॥८॥

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दश कृत्वः पशुपते नमस्ते । तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९॥

भाषार्थः—(भवाय) भव [सुखोत्पादक परमेश्वर] को (चतुः) चार वार, (अष्टकृत्वः) आठ वार (नमः) नमस्कार है, (पशुपते) हे दृष्टि वाले [जीवों] के रक्षक ! (ते) तुझे (दश कृत्वः) दस वार (नमः) नमस्कार है । (तव) तेरे ही (विभक्ताः) बांटे हुए (इमे) यह (पञ्च) पांच (पशवः) दृष्टिवाले [जीव] (गावः) गौवें, (अश्वाः) घोड़े, (पुरुषाः) पुरुष और (अजावयः) बकरी और भेड़ें हैं ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर को चार वार [ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चार आश्रमों का ध्यान करके], आठ वार [यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, आठ योग के अङ्गों का आश्रय लेकर—योगदर्शन, पाद २ सूत्र २९] और दस वार [पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय को वश में करके] नमस्कार करे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर ही कर्मानुसार गौ आदि पदार्थों को मनुष्यों के लिये बाँटता है ॥९॥

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वऽन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥१०॥

भाषार्थः—(उग्र) हे तेजस्वी ! [परमेश्वर] (तव) तेरी (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें हैं, (तव) तेरा (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य, (तव) तेरी (पृथिवी) फैली हुई भूमि, (तव) तेरा (इदम्) यह (उरु) चौड़ा (अन्तरिक्षम्) आकाश लोक है। (तव) तेरा ही (इदम्) यह (सर्वम्) सब है, (यत्) जो (आत्मन्वत्) आत्मा वाला और (प्राणत्) प्राण वाला [जगत्] (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर है ॥१०॥

भावार्थः—यह सब चराचर जगत् और पृथिवी आदि सब लोक परमेश्वर के आधीन हैं ॥१०॥

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः । स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥११॥

भाषार्थः—[परमेश्वर !] (तव) तेरा (अयम्) यह (उरुः) चौड़ा (कोशः) कोश [निधि] (वसुधानः) श्रेष्ठ पदार्थों का आधार है, (यस्मिन् अन्तः) जिसके भीतर (इमा विश्वा) ये सब (भुवनानि) भुवन [सत्तायें] हैं। (पशुपते) हे दृष्टि वाले [जीवों] के रक्षक ! (सः) सो तू (नः) हमें (मृड) सुखी रख, (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार हो, (क्रोष्टारः) चिल्लाने वाले गीदड़, (अभिभाः) सन्मुख चमकती हुई विपत्तियां, (श्वानः) घूमने वाले कुत्ते (परः) दूर और (विकेश्यः) केश फैलाये हुए [भयानक] (अघरुदः) पाप की पीड़ायें (परः) दूर (यन्तु) चली जावें ॥११॥

भावार्थः—परमेश्वर के आश्रय भण्डार से यह सब लोक पलते हैं, उसी के आश्रय से सब मनुष्य पुरुषार्थ के साथ अनेक विपत्तियों और विघ्नों से बचकर आनन्दित होवें ॥११॥

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**शिखण्डिन्**) हे परम उद्योगी ! [रुद्र परमेश्वर] (**हरितम्**) शत्रुनाशक, (**हिरण्ययम्**) बलयुक्त, (**सहस्रघ्नि**) सहस्रों [शत्रुओं] के मारने वाले, (**शतवधम्**) सैकड़ों हथियारों वाले, (**धनुः**) धनुष को तू (**बिभर्षि**) धारण करता है। (**रुद्रस्य**) रुद्र [दुःख नाशक परमेश्वर] का (**इषुः**) बाण (**देवहेतिः**) दिव्य [अद्‌भुत] वज्र (**चरति**) चलता रहता है, (**अस्यै**) उस [बाण] के रोकने के लिये (**इतः**) यहां से (**यतमस्याम् दिशि**) चाहे जौन सी दिशा हो उसमें (**नमः**) नमस्कार है ॥१२॥

भावार्थः- जैसे शूर पुरुष अनेक प्रकार के सहस्राघ्नि, शतघ्नी, शतवध आदि अस्त्र शस्त्र बना के शत्रुओं को मारता है, वैसे ही सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपने अनन्त सामर्थ्य से पापियों का नाश कर देता है। इससे हम लोग उसकी आज्ञा का उल्लंघन न करके उसकी शरण में रहें ॥१२॥

यो३ऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥१३॥

भाषार्थः—(**यः**) जो [दुष्कर्मी] (**अभियातः**) हारा हुआ (**निलयते**) छिप जाता है, और (**रुद्र**) हे रुद्र ! [दुःखनाशक] (**त्वा**) मुझे (**निचिकीर्षति**) हराना चाहता है। (**पश्चात्**) पीछे पीछे (**तम्**) उसका (**अनुप्रयुङ्क्षे**) तू अनुप्रयोग करता है। [यथा अपराध दण्ड देता है], (**इव**) जैसे (**विद्धस्य**) घायल का (**पदनी**) पद खोजिया ॥१३॥

भावार्थः—जो दुष्ट गुप्त रीति से भी परमेश्वर की आज्ञा का भङ्ग करता है, परमेश्वर उसे दण्ड ही देता है, जैसे व्याध घायल आखेट के रुधिर आदि चिह्न से खोज लगा कर उसे पकड़ लेता है ॥१३॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० १०।१।२६॥

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥१४॥

भाषार्थः—(**सयुजा**) समान संयोग वाले, (**संविदानौ**) समान ज्ञान वाले, (**उग्रौ**) तेजस्वी (**उभौ**) दोनों (**भवारुद्रौ**) भव और रुद्र [सुखोत्पादक और दुःखनाशक गुण] (**वीर्याय**) वीरता देने को (**चरतः**) विचरते हैं। (**इतः**) यहां से (**यतमस्याम् दिशि**) चाहे जौन सी दिशा हो उसमें (**ताभ्याम्**) उन दोनों को (**नमः**) नमस्कार है ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः चाहे हम कहीं होवें, परमेश्वर को सर्वज्ञ और सर्वव्यापक जानकर अपना वीरत्व बढ़ावें ।।१४।।

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।

नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ।।१५।।

भाषार्थः—(आयते) आते हुए [पुरुष] के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (अस्तु) होवे, (परायते) दूर जाते हुए के हित के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (रुद्र) हे रुद्र ! [दु:खनाशक] (तिष्ठते) खड़े होते हुए के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (उत) और (आसीनाय) बैठे हुए के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है ।।१५।।

भावार्थः— मनुष्य आते, जाते, उठते, बैठते परमेश्वर का स्मरण करके पुरुषार्थ करे ।।१५।।

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।

भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ।।१६।।

भाषार्थः —(सायम्) सायं काल में (नमः) नमस्कार (प्रातः) प्रातः काल में (नमः) नमस्कार (रात्र्या) रात्रि में (नमः) नमस्कार, (दिवा) दिन में (नमः) नमस्कार। (भवाय) भव [सुख उत्पन्न करने वाले] (च च) और (शर्वाय) शर्व [दु:ख नाश करने वाले] (उभाभ्याम्) दोनों [गुणों] को (नमः अकरम्) मैं ने नमस्कार किया है ।।१६।।

भावार्थः—मनुष्य प्रत्येक समय महाशक्तिमान् परमेश्वर का ध्यान करके सदा पराक्रम करता रहे ।।१६।।

सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।

मोपाराम जिह्वयेयमानम् ।।१७।।

भाषार्थः—(सहस्राक्षम्) सहस्रों कामों में दृष्टि वाले, (पुरस्तात्) सन्मुख से (अतिपश्यम्) आड़े बेंड़े देखनेवाले, (बहुधा) अनेक प्रकार से [पापों को] (अस्यन्तम्) गिराने वाले, (विपश्चितम्) महाबुद्धिमान्, (जिह्वया) जयशक्ति के साथ (ईयमानम्) चलते हुए (रुद्रम्) रुद्र [दु:ख नाशक परमेश्वर] से (मा उप अराम) हम विरोध न करें ।।१७।।

भावार्थः—परमात्मा सब व्यवहारों को भली भांति देखता हुआ सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कर्मों का फल यथावत् देता है। हम उसकी आज्ञा का सदा पालन करें ॥१७॥

श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥१८॥

भाषार्थः—(श्यावाश्वम्) ज्ञान में व्याप्ति वाले, (कृष्णम्) आकर्षण करने वाले (असितम्) बन्धन रहित (मृणन्तम्) मारते हुए (भीमम्) डरावने, (केशिनः) क्लेशकारी के (रथम्) रथ को (पादयन्तम्) गिराते हुए [अथवा, (केशिनः) किरणों वाले सूर्य के (रथम्) रथ को (पादयन्तम्) चलाते हुए] [रुद्र परमेश्वर] को (पूर्वे) हम पहिले होकर (प्रति) प्रत्यक्ष (इमः) मिलते हैं, (अस्मै) उसे (नमः अस्तु) नमस्कार होवे ॥१८॥

भावार्थः—जो सर्वज्ञ, अनन्त सामर्थ्य युक्त परमेश्वर दुष्टों को दण्ड देता और सूर्य आदि लोकों को रचता है, उसकी उपासना से हम अपना बल बढ़ावें ॥१८॥

मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥१९॥

भाषार्थः—(पशुपते) हे दृष्टि वाले [जीवों] के रक्षक ! (नः) हमारे लिये (देवहेतिम्) दिव्य [अद्‌भुत] वज्र, (मत्यम्) अपनी मुट्ठी [घूंसा] को (मा अभि स्राः) ताककर मत छोड़, (नः) हम पर (मा क्रुधः) मत क्रोध कर, (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है। (अस्मत्) हमसे (अन्यत्र) दूसरों [दुष्टों] पर (दिव्याम्) दिव्य (शाखाम्) भुजा को (वि धूनु) हिला ॥१९॥

भावार्थः—हम सदा धर्म में प्रवृत्त रहकर परमेश्वर की आज्ञा का पालन करें, जिस से वह हम पर क्रोध न करे और न भय दिखावे ॥१९॥

मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः ।
मा त्वया समरामहि ॥२०॥

भाषार्थः—[हे रुद्र परमेश्वर !] (नः) हमें (मा हिंसीः) मत कष्ट दे, (नः) हमें (अधि) ईश्वर होकर (ब्रूहि) उपदेश कर, (नः) हमें [पाप से] (परि वृङ्ग्धि) सर्वथ अलग रख, (मा क्रुधः) क्रोध मतकर। (त्वया) तेरे साथ (मा सम् अरामहि) हम समर [युद्ध] न करें ॥२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा में चलते हैं, वे पुरुषार्थी पुरुष अपराध से बचकर सदा सुखी रहते हैं ॥२०॥

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥२१॥

भाषार्थः—[हे रुद्र परमात्मन् !] (मा) न तो (नः) हमारी (गोषु) गौओं में और (पुरुषेषु) पुरुषों में, और (मा) न (नः) हमारी (अजाविषु) बकरी और भेड़ों में [मारनेकी] (मा गृधः) अभिलाषा कर। (उग्र) हे बलवान् ! (अन्यत्र) दूसरे [वैरियों] में (विवर्तय) घूम जा, और (पियारूणाम्) हिंसकों की (प्रजाम्) प्रजा [जनता] को (जहि) मार ॥२१॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य परमेश्वर की शरण लेकर उपकारी दोपाये और चौपायों की रक्षा करके शत्रुओं का नाश करें ॥२१॥

यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥२२॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस [रुद्र] का (हेतिः) वज्र (तक्मा) तुच्छ जीवन करने वाला [ज्वर] और (कासिका) खांसी (एकम्) एक [उपद्रवी] को (एति) प्राप्त होती है, (इव) जैसे (वृषणः) बलवान् (अश्वस्य) घोड़े के (क्रन्दः) हिनहिनाने का शब्द। (अभिपूर्वम्) एक एक को यथाक्रम (निर्णयते) निर्णय करने वाले (अस्मै) इस [रुद्र] को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥२२॥

भावार्थः—प्रत्येक उपद्रवी मनुष्य परमेश्वर के नियम से ज्वर आदि अनेक पीड़ायें प्राप्त करता है ॥२२॥

यो३ऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥२३॥

भाषार्थः—(यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (विष्टभितः) दृढ़ जमा हुआ [परमेश्वर] (अयज्वनः) यज्ञ न करने वाले [दुर्जन] (देवपीयून्) विद्वानों के हिंसकों को (प्रमृणन्) मारता हुआ (तिष्ठति) ठहरता है। (दशभिः) दस (शक्वरीभिः) शक्तिवाली [दिशाओं] के साथ [वर्तमान] (तस्मै) उस [परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार है ॥२३॥

भावार्थः- जो परमात्मा आकाश में और सब दिशा विदिशाओं में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ऊपर नीचे व्यापक है, सब मनुष्य उसका आश्रय लेकर दुष्ट विघ्नों और शत्रुओं का नाश करें ॥२३॥

तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥२४॥

भाषार्थः—(**तुभ्यम्**) तेरे [शासन मानने] के लिये (**आरण्याः**) बनैले (**पशवः**) पशु [जीव], (**मृगाः**) हरिण आदि (**हंसाः**) हंस, (**सुपर्णाः**) बड़े उड़ने वाले [गरुड़ आदि], (**शकुनाः**) शक्तिवाले [गिद्ध चील्ह आदि] (**वयांसि**) पक्षी (**वने**) वन में (**हिताः**) स्थापित हैं । (**पशुपते**) हे दृष्टि वाले [जीवों] के रक्षक [परमेश्वर] (**तव**) तेरा (**यक्षम्**) पूजनीयस्वरूप (**अप्सु अन्तः**) तन्मात्राओं के भीतर है, (**तुभ्यम्**) तेरे [शासन मानने] के लिये (**दिव्याः**) दिव्य [अद्भुत] (**आपः**) तन्मात्रायें (**वृधे**) वृद्धि करने को (**क्षरन्ति**) चलती हैं ॥२४॥

भावार्थः- संसार के भीतर सब भयानक और शीघ्रगामी प्राणी परमेश्वर के आज्ञा पालक हैं और अणु अणु में संयोग वियोग उसीकी शक्ति से है ॥२४॥

शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं
पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् समुद्रे ॥२५॥

भाषार्थः—(**अजगराः**) अजगर [सर्प विशेष], (**शिशुमाराः**) शिशुमार [सूसमार, जलजन्तु], (**पुरीकयाः**) पुरीकय [जलचर विशेष], (**जषाः**) जष [झष, मछली विशेष] और (**रजसाः**) जलमें रहनेवाले (**मत्स्याः**) मच्छ हैं, (**येभ्यः**) जिन से (**अस्यसि=अससि**) तू प्रकाशमान है । (**भव**) हे भव [सुखोत्पादक परमेश्वर] (**ते**) तेरे लिये (**दूरम्**) कुछ दूर (**न**) नहीं है और (**न**) न (**ते**, तेरे लिये (**परिष्ठा**) रोक टोक (**अस्ति**) है, और (**सर्वान्**) सबों को (**सद्यः**) तुरन्त ही (**परि पश्यसि**) तू देख भाल लेता है, और (**पूर्वस्मात्**) पूर्वी [समुद्र] से (**उत्तरस्मिन् समुद्रे**) उत्तरी समुद्र में (**भूमिम्**) भूमि को (**हंसि**) तू पहुंचाता है ॥२५॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! इन सब बड़े बड़े थलचर और जलचर जन्तुओं के देखने से तेरी अनन्त महिमा जान पड़ती है । तू सब स्थानों में विद्यमान रहकर क्षण भर में इधर के जगत् को उधर कर देता है ॥२५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा नो॑ रुद्र त॒क्मना॒ मा वि॒षेण॒ मा नः॒ सं स्रा॑ दि॒व्येना॒ग्निना॑।
अ॒न्यत्रा॒स्मद् वि॒द्युतं॑ पातयै॒ताम् ॥२६॥

भाषार्थः—(रुद्र) हे रुद्र ! [दुःख नाशक परमेश्वर] (मा) न तो (नः) हमें (तक्मना) दुःखी जीवन करने वाले [ज्वर आदि] से, (मा) न (विषेण) विष से और (मा) न (नः) हमें (दिव्येन) सूर्य के (अग्निना) अग्नि से (सं स्राः) संयुक्त कर। (अस्मत्) हम से (अन्यत्र) दूसरों [अर्थात् दुराचारियों] पर (एताम्) इस (विद्युतम्) लपलपाती [बिजुली] को (पातय) गिरा ॥२६॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक परमेश्वर का ध्यान रखकर कुपथ छोड़ कर रोगों और उत्पातों से सुरक्षित रहें ॥२६॥

भ॒वो दि॒वो भ॒व ईशे पृथि॒व्या भ॒व आ प॑प्र उ॒र्व॑१न्तरि॑क्षम्।
तस्मै॒ नमो॑ यत॒मस्यां॑ दि॒शी३॒॑तः ॥२७॥

भाषार्थः—(भवः) भव [सुख उत्पन्न करने वाला परमेश्वर] (दिवः) सूर्य का, (भवः) भव (पृथिव्याः) पृथिवी का (ईशे) राजा है, (भवः) भव ने (उरु) विस्तृत (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आ पप्रे) सब ओर से पूरण किया है। (इतः) यहां से (यतमस्याम् दिशि) चाहे जौनसी दिशा हो उसमें (तस्मै) उस [भव] को (नमः) नमस्कार है ॥२७॥

भावार्थः—जो परमात्मा सब सूर्य आदि लोकों का स्वामी है, उसको हम सब स्थानों में नमस्कार करके अपना ऐश्वर्य बढ़ावें ॥२७॥

भव॑ राजन् यज॑मानाय मृड पशू॒नां हि प॑शु॒पति॑र्ब॒भूथ॑।
यः श्र॒द्दधा॑ति॒ सन्ति॑ दे॒वा इति॒ चतु॑ष्पदे द्वि॒पदे॑ऽस्य मृड ॥२८॥

भाषार्थः—(भव) हे भव ! [सुखोत्पादक] (राजन्) राजन् ! [परमेश्वर] (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ कर्म करने वाले] को (मृड) सुख दे, (हि) क्योंकि (पशूनाम्) दृष्टि वाले जीवों की [रक्षा के लिये] (पशुपतिः) दृष्टि वाले [जीवों] का रक्षक (बभूथ) तू हुआ है। (यः) जो [पुरुष] (श्रद्दधाति) श्रद्धा रखता है कि "(देवाः सन्ति इति) [परमेश्वर के] उत्तम गुण हैं," (अस्य) उसके (द्विपदे) दोपाये और (चतुष्पदे) चौपाये को (मृड) तू सुख दे ॥२८॥

भावार्थः—सर्वरक्षक परमेश्वर श्रद्धालु सत्पुरुष को उत्तम मनुष्य आदि दोपायों और गौ आदि चौपायों को बहुतायत से सुखी रखता है ॥२८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कं मा न॒ो वह॑न्तमु॒त मा नो॑ वक्ष्य॒तः ।
मा नो॑ हिंसीः पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च॒ स्वां त॒न्वं॑ रुद्र॒ मा री॑रिषो नः ॥२९॥

भाषार्थः—(रुद्र) हे रुद्र! [ज्ञानदाता परमेश्वर] (मा) न तो (नः) हमारे (महान्तम्) पूजनीय [वयोवृद्ध वा विद्यावृद्ध] को (उत) और (मा) न (नः) हमारे (अर्भकम्) बालक को, (मा) न (नः) हमारे (वहन्तम्) ले चलते हुए [युवा] को (उत) और (मा) न (नः) हमारे (वक्ष्यतः) भावी ले चलने वालों [होनहार सन्तानों] को (मा) न (नः) हमारे (पितरम्) पालने वाले पिता को (च) और (मातरम्) मान करने वाली माता को (हिंसीः) मार, और (मा) न (नः) हमारे (स्वाम्) अपने ही (तन्वम्) शरीर को (रीरिषः) नाश कर ॥२९॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की प्रार्थना करते हुए शुभ कर्मों का अनुष्ठान करके अपने सब सम्बन्धियों की और अपनी रक्षा करें ॥२९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१। ११४। ७ तथा यजुर्वेद—अ० १६। म० १५ ॥

रु॒द्रस्यै॑लबका॒रेभ्यो॑ऽसंसूक्तगि॒लेभ्यः॑ ।
इ॒दं म॒हास्ये॑भ्यः॒ श्वभ्यो॑ अकर॒ं नमः॑ ॥३०॥

भाषार्थः -(ऐलबकारेभ्यः) लगातार भों भों ध्वनि करने वाले (असंसूक्तगिलेभ्यः) अमङ्गल शब्द बोलने वाले, (महास्येभ्यः) बड़े बड़े मुंह वाले (श्वभ्यः) कुत्तों के रोकने के लिये (रुद्रस्य) रुद्र [दुःखनाशक परमेश्वर] को (इदम्) यह (नमः) नमस्कार (अकरम्) मैं ने किया है ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करें कि चोर आदि दुर्जन इधर उधर न घूमें, जिनके न होने से चौकसी के कुत्ते भयानक शब्द न करें ॥३०॥

नम॑स्ते घो॒षिणी॑भ्यो॒ नम॑स्ते के॒शिनी॑भ्यः ।
नमो॒ नम॑स्कृता॒भ्यो॒ नमः॑ सं॒भुञ्ज॒तीभ्यः॑ ।
नम॑स्ते दे॒व सेना॑भ्यः स्व॒स्ति न॒ो अभ॑यं च नः ॥३१॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर!] (घोषिणीभ्यः) बड़े कोलाहल करने वाली [सेनाओं] के पाने को (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (केशिनीभ्यः) प्रकाश करने वाली [सेनाओं] के पाने को (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है। (नमस्कृताभ्यः) नमस्कार की हुई [सेनाओं] के पाने को (नमः) नमस्कार, (संभुञ्जतीभ्यः) मिल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर भोग [आनन्द] करने वाली (सेनाभ्यः) सेनाओं के पाने को (नमः) नमस्कार है। (देव) हे विजयी ! [परमेश्वर] (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है, (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) स्वस्ति [कल्याण] (च) और (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय हो ॥३१॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा की उपासना करके अपना सामर्थ्य बढ़ाते हैं, वे उत्तम, बलवती, सुशिक्षित थलचर, जलचर, नभचर आदि सेनायें रख कर प्रजा की रक्षा कर सकते हैं ॥३१॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ३ (पर्यायः १) ॥

१–३१ ॥ ओदनो देवता ॥ १, १४ आसुरी गायत्री, २, ११ भुरिगार्षी गायत्री, ३, ६, ९, १० आसुरी पङ्क्तिः, ४, ८ साम्न्यनुष्टुप्, ५, १३, १५, २५ साम्न्युष्णिक्, ७, १९–२२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १२, २७ याजुषी जगती, १६, २३ आसुरी बृहती, १७, १८, आसुर्यनुष्टुप्, २४ प्राजापत्या बृहती, २६ आर्च्युष्णिक्, २८, २९ साम्नी बृहती, ३० याजुषी त्रिष्टुप्, ३१ याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः ॥

सृष्टिपदार्थज्ञानोपदेशः—सृष्टि के पदार्थों के ज्ञान का उपदेश ॥

तस्यौ॒द॒नस्य॒ बृह॒स्पतिः॒ शिरो॒ ब्रह्म॒ मुख॑म् ॥१॥

भाषार्थः—(तस्य) उस [प्रसिद्ध] (ओदनस्य) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] का (शिरः) शिर (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े जगत् का रक्षक वायु वा मेघ] और (मुखम्) मुख (ब्रह्म) अन्न है ॥१॥

भावार्थः—जैसे शरीर के लिये शिर और मुख आदि उपकारी हैं, वैसे ही परमात्मा ने अपनी सत्ता से वायु, मेघ और अन्न आदि रचकर सब संसार के साथ उपकार किया है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥२॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी (श्रोत्रे) [परमेश्वर के] दो कान, (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा (अक्षिणी) [उसकी] दो आंखें, और (प्राणापानाः) प्राण और अपान [वायुसंचार, उसके] (सप्तऋषयः) सात ऋषि [पांच ज्ञानेन्द्रिय त्वचा, नेत्र, श्रवण, जिह्वा, नासिका, मन और बुद्धि] हैं ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर ने संसार में आकाश, पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा को शरीर की स्थूल इन्द्रियों के समान और वायु संचार को सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों मन बुद्धि के समान रचा है ॥२॥

चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥३॥

भाषार्थः—(चक्षुः) [उसकी] दर्शन शक्ति (मुसलम्) मूसल [समान], [उसकी] (कामः) कामना (उलूखलम्) ओखली [समान] है ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर संसार में दृष्टि मात्र से कूटने आदि व्यवहार करता और इच्छा मात्र से सूक्ष्म बनाकर यथावत् रखने की क्रिया करता है, अर्थात् स्थूल भूतों से सूक्ष्म समीचीन रचना करना उसी के वश में है ॥३॥

दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥४॥

भाषार्थः—(दितिः) परमेश्वर की खण्डन शक्ति (शूर्पम्) सूप [समान] है, (अदितिः) [उसकी] अखण्डन शक्ति ने (शूर्पग्राही) सूप पकड़ने वाले [के समान] (वातः–वातेन) पवन से (अप अविनक्) [शुद्ध और अशुद्ध पदार्थ को] अलग अलग किया है ॥४॥

भावार्थः—जैसे लोग सूप से वायु द्वारा अशुद्ध वस्तु को निकालकर शुद्ध वस्तु को ले लेते हैं, वैसे ही परमेश्वर अपने सामर्थ्य से प्रकृति द्वारा परमाणुओं का संयोग वियोग करके जगत् को रचता है और वैसे ही विवेकी पुरुष विद्या द्वारा अवगुण छोड़कर गुण ग्रहण करता है ॥४॥

अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥५॥

भाषार्थः—(अश्वाः) घोड़े (कणाः) कण [समान], (गावः) गौवें (तण्डुलाः) चावल [समान] और (मशकाः) माछड़ (तुषाः) भुसी [समान] हैं ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः घोड़े आदि जीव परमेश्वर की महिमा के बहुत छोटे अंश हैं ॥५॥

कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥६॥

भाषार्थः—(कब्रु) विचित्र रङ्ग वाला [जगत्] (फलीकरणाः) [उसका] फटकन [भुसी आदि] और (अभ्रम्) बादल (शरः) [उसका] घास फूंस [समान] है ॥६॥

भावार्थः श्वेत पीत आदि वर्ण युक्त जगत् और मेघ आदि परमेश्वर की अति छोटी वस्तु हैं ॥६॥

श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥७॥

भाषार्थः—(श्यामम्) श्याम वर्ण (अयः) लोहा (अस्य) इसके (मांसानि) मांस के अवयव [तुल्य] हैं और (लोहितम्) रक्त वर्ण वाला [लोहा अर्थात् तांबा] (अस्य) इसके (लोहितम्) रुधिर [समान] है ॥७॥

भावार्थः लोहा तांबा आदि धातु परमेश्वर की सत्ता से उत्पन्न हुए हैं ॥७॥

त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥८॥

भाषार्थः—(त्रपु) सीसा वा रांग (भस्म) भस्म [उसकी राख समान], (हरितम्) सुवर्ण (वर्णः) [उसका] रङ्ग [समान] और (पुष्करम्) कमल का फूल (अस्य) इसका (गन्धः) गन्ध [समान] है ॥८॥

भावार्थः—सीसा सुवर्ण और कमल आदि वस्तु परमेश्वर से उत्पन्न हैं ॥८॥

खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥९॥

भाषार्थः—(खलः) खलियान [धान्यमर्दन स्थान] (पात्रम्) [उसका] पात्र [बासन समान,] (स्फ्यौ) दो फाने [लकड़ी की खपच] (अंसौ) [उसके] दो कन्धे, (ईषे) दोनों मूठ और हरस [हलके अवयव] (अनूक्ये) [उसकी] रीढ़ की दो हड्डियां हैं ॥९॥

भावार्थः खलियान आदि स्थान और हल के अवयव आदि परमेश्वर के उपदेश से बनाये जाते हैं ॥९॥

आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(जत्रवः) जोते [बैलों की ग्रीवा के रस्से] (आन्त्राणि) [उसकी] आंतें और (वरत्राः) वरत्र [बरत, हल के बैलों के बड़े रस्से] (गुदाः) [उसकी] गुदायें [उदर की नाड़ी विशेष] हैं ॥१०॥

भावार्थः—बैल आदि का बांधना और उपयोग ईश्वर से सिखाया गया है ॥१०॥

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥११॥

भाषार्थः—(इयम् एव) यही (पृथिवी) फैली हुई भूमि (राध्यमानस्य) पकते हुए (ओदनस्य) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] की (कुम्भी) बटलोही और (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य (अपिधानम्) ढकनी [समान] (भवति) है ॥११॥

भावार्थः—परमेश्वर इतना बड़ा है कि वह इन पृथिवी सूर्य आदि लोकों में निरन्तर व्यापक है ॥११॥

सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥१२॥

भाषार्थः—(सीताः) जोतने की रेखायें (पर्शवः) [उसकी] पसलियां और (सिकताः) बालू (ऊबध्यम्) [उसके] कुपचे अन्न [समान] है ॥१२॥

भावार्थः—ईश्वर प्रत्येक परमाणु में व्यापक है ॥१२॥

ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥१३॥

भाषार्थः—(ऋतम्) सत्यज्ञान (हस्तावनेजनम्) [उसके] हाथ धोने का जल, और (कुल्या) सब कुलों के लिये हितकारी [नीति] (उपसेचनम्) [उसका] उपसेचन [छिड़काव] है ॥१३॥

भावार्थः—जैसे जल द्वारा प्राणियों में शुद्धि और वृद्धि होती है, वैसे ही परमेश्वर ने वेद रूप सत्यज्ञान और सत्यनीति द्वारा संसार का उपकार किया है ॥१३॥

श्री सायणाचार्य ने (ऋतम्) का अर्थ "जल अर्थात् संसार में विद्यमान सब जल" और (कुल्या) का अर्थ "छोटी नदी" किया है ॥

ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥१४॥

भाषार्थः—(कुम्भी) कुम्भी [छोटा पात्र] (ऋचा) वेद वाणी के साथ (अधिहिता) ऊपर चढ़ाई गई और (आर्त्विज्येन) ऋत्विजों [सब ऋतुओं में यज्ञ करनेवालों] के कर्म से (प्रेषिता) भेजी गई है ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः – जैसे जल आदि के लिये कुम्भी उपकारी होती है, वैसे ही वेदवाणी विद्वानों द्वारा प्रचरित होकर हित करती है ॥१४॥

ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥१५॥

भाषार्थः—(ब्रह्मणा) ब्रह्मा [वेदज्ञाता] करके (परिगृहीता) ग्रहण की गई वह [कुम्भी] (साम्ना) दुःखनाशक [मोक्ष ज्ञान] द्वारा (पर्यूढा) सब ओर ले जायी गयी है ॥१५॥

भावार्थः – ब्रह्मज्ञानी लोग वेद वाणी को ग्रहण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥१५॥

बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥१६॥

भाषार्थः—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (आयवनम्) [उस परमेश्वर का] सब ओर से मिलाने का चमचा, और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों द्वारा पार लगाने वाला जगत्] (दर्विः) [उसकी] डोयी [परोसने की करछी है] ॥१६॥

भावार्थः—यह सब आकाश और सब जगत् परमेश्वर के लिये ऐसे छोटे पदार्थ हैं जैसे गृहस्थ के चमचे आदि पात्र होते हैं ॥१६॥

ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥१७॥

भाषार्थः—(ऋतवः) ऋतुयें और (आर्तवाः) ऋतुओं के अवयव [महीने दिन राति आदि] (पक्तारः) पाक कर्ता होकर [अग्नि को] (सम्) यथा नियम (इन्धते) जलाते हैं ॥१७॥

भावार्थः—ऋतुयें और महीने आदि ईश्वर नियम से संसार में पचन क्रिया करते हैं ॥१७॥

चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मो३ऽभीन्धे ॥१८॥

भाषार्थः—(घर्मः) तपने वाला सूर्य (पञ्चबिलम्) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश रूप] बिल [छिद्र] वाले (चरुम्) पकाने के बर्तन, (उखम् अभि) हांडी के आस पास (इन्धे) जलता है ॥१८॥

भावार्थः—परमेश्वर के नियम से सूर्य अन्य लोकों को तपाकर आनन्द देता है ॥१८॥

ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**ओदनेन**) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] द्वारा (**यज्ञवचः**) यज्ञों [श्रेष्ठकर्मों] से बताये गये (**सर्वे**) सब (**लोकाः**) स्थान (**समाप्याः**) यथावत् पाने योग्य हैं ॥१९॥

भावार्थः परमेश्वर की आराधना से मनुष्य सब उत्तम उत्तम अधिकार पा सकता है॥१९॥

यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥२०॥

भाषार्थः—(**यस्मिन्**) जिस [ओदन, परमेश्वर] में (**द्यौः**) सूर्य, (**समुद्रः**) अन्तरिक्ष और (**भूमिः**) भूमि, (**त्रयः**) तीनों [लोक] (**अवरपरम्**) नीचे ऊपर (**श्रिताः**) ठहरे हैं ॥२०॥

भावार्थः· मन्त्र २२ के साथ ॥२०॥

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥२१॥

भाषार्थः—(**यस्य**) जिस [परमेश्वर] के (**उच्छिष्टे**) सब से बड़े श्रेष्ठ [वा प्रलय में भी बचे] सामर्थ्य में (**देवाः**) [सूर्य आदि] दिव्य लोक और (**षट्**) छह [पूर्व आदि चार और नीचे ऊपर की] (**अशीतयः**) व्यापक दिशायें (**अकल्पन्त**) रची हैं॥२१॥

भावार्थः—मन्त्र २२ के साथ ॥२१॥

तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥२२।

भाषार्थः—[हे आचार्य !] (**त्वा**) तुझसे (**ओदनस्य**) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] की (**तम्**) उस [महिमा] को (**पृच्छामि**) मैं पूछता हूं, (**यः**) जो (**अस्य**) उस की (**महान्**) बड़ी (**महिमा**) महिमा है ॥२२॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर के सामर्थ्य में सब लोक और सब दिशायें वर्तमान हैं, मनुष्य उसकी महिमा को खोज कर अपना सामर्थ्य बढ़ावे, म० २०—२२॥

स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥२३॥

नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति ॥२४॥

भाषार्थः—(**यः**) जो [योगी जन] (**ओदनस्य**) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] की (**महिमानम्**) महिमा को (**विद्यात्**) जानता हो (**सः**) वह (**ब्रूयात्**) कहे "(**न अल्पः इति**) वह [परमेश्वर] थोड़ा नहीं हैं [अर्थात् बड़ा है],

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(न अनुपसेचनः इति) वह उपसेचन रहित नहीं है [अर्थात् सेचन वा वृद्धि करने वाला है], (च) और (न इदम् किम् च इति) न वह यह कुछ वस्तु है [अर्थात् ब्रह्म में अङ्गुली का निर्देश नहीं हो सकता]" ॥२३, २४॥

भावार्थः—मनुष्य जैसे जैसे परमेश्वर को खोजता है, उसका सामर्थ्य बढ़ता जाता है, तो भी उसका परिमाण, आदि सीमा नहीं जानता और न उसका यथावत् वर्णन कर सकता है ॥२३, २४॥

याव॑द् दाताभि॑मनस्येत॒ तन्नाति॑ वदेत् ॥२५॥

भाषार्थः—(यावत्) जितना [ब्रह्मज्ञान] (दाता) दाता [ज्ञान दाता] (अभिमनस्येत) मन से विचारे, (तत्) उस को (अति) अधिक करके वह [ज्ञान दाता] (न वदेत) न बोले ॥२५॥

भावार्थः—उपदेशक गुरु विचारपूर्वक ब्रह्मज्ञान का सत्य सत्य उपदेश करे, कदापि मिथ्या न बोले ॥२५॥

ब्रह्मवादिनो॑ वदन्ति॒ परा॑ञ्चमोद॒नं प्राशी३ः प्र॒त्यञ्चा३मिति॑ ॥२६॥

भाषार्थः—(ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मवादी [ईश्वर वा वेद को विचारनेवाले] (वदन्ति) कहते हैं—"[हे मनुष्य ! क्या] (पराञ्चम्) दूरवर्ती (ओदनम्) ओदन [सुख बरसानेवाले अन्न रूप परमेश्वर] को (प्र आशी३ः) तू ने खाया है, [अथवा] (प्रत्यञ्चा३म् इति) प्रत्यक्ष वर्ती को ?" ॥२६॥

भावार्थः—प्रश्न है कि क्या परमेश्वर किसी दूर वा प्रत्यक्ष स्थान-विशेष में मिलता है ? इसका उत्तर आगे मन्त्र २८ तथा २९ में है ॥२६॥

त्वमो॑द॒नं प्राशी३स्त्वामो॑द॒ना३ इति॑ ॥२७॥

भाषार्थः—क्या (त्वम्) तू ने (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्न रूप परमेश्वर] को (प्र आशीः ३) खाया है, [अथवा] (त्वा) तुझ को (ओदना३ः इति) ओदन [सुखवर्षक अन्न रूप परमेश्वर] ने ? ॥२७॥

भावार्थः—प्रश्न है कि क्या मनुष्य परमेश्वर को अन्न समान खाता है, वा परमेश्वर मनुष्य को अन्न तुल्य खाता है। इस का उत्तर मन्त्र ३० तथा ३१ में है ॥२७॥

परा॑ञ्चं चैनं॒ प्राशी॑ः प्रा॒णास्त्वा॑ हास्यन्तीत्येनमाह ॥२८॥

भाषार्थः—"(च) यदि (पराञ्चम्) दूरवर्ती (एनम्) इस [ओदन] को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्राशीः) तू ने खाया है, (प्राणाः) श्वास के बल (त्वा) तुझे (हास्यन्ति) त्यागेंगे" (इति) ऐसा वह [आचार्य] (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) कहता है ॥२८॥

भावार्थः – मन्त्र २९ के साथ ॥२८॥

प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्यैनमाह ॥२९॥

भाषार्थः—"(च) यदि (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्षवर्ती (एनम्) इस [ओदन] को (प्राशीः) तूने खाया है। (अपानाः) प्रश्वासबल (त्वा) तुझे (हास्यन्ति) त्यागेंगे" (इति) ऐसा वह [आचार्य] (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) कहता है ॥२९॥

भावार्थः—मन्त्र २६ का उत्तर है। आचार्य उपदेश करता है जो मनुष्य परमेश्वर को दूरवर्ती वा समीपवर्ती अर्थात् एक स्थानी मानता है, वह श्वास और प्रश्वास से हीन होकर निर्बल हो जाता है॥ २८, २९॥

नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥३०॥

भाषार्थः—(न एव) न तो (अहम्) मैंने (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्न रूप परमेश्वर] को [खाया है] और (न) न (माम्) मुझको (ओदनः) ओदन [सुख बरसाने वाले परमेश्वर] ने [खाया] है ॥३०॥

भावार्थः—यह मन्त्र मन्त्र २७ का उत्तर है। जीवात्मा और परमात्मा दोनों अनादि, अन्त रहित और अविनाशी हैं ॥३०॥

ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥३१॥

भाषार्थः—(ओदनः) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] ने (एव) ही (ओदनम्) ओदन [सुखवर्षक स्थूल जगत्] को (प्र आशीत्) खाया है ॥३१॥

भावार्थः—परमेश्वर अपने सामर्थ्य से सृष्टि के समय स्थूल जगत् को उत्पन्न करता और प्रलय के समय सबको सूक्ष्म कारण में लीन करदेता है। जीवात्मा के लिये स्थूल जगत् में स्थूल शरीर मुक्ति का साधन है ॥३१॥

सूक्तम् ॥३॥ (पर्यायः २)

३२—४९॥ ओदनो देवता ॥ ततश्चैनं० ३२, सर्वाङ्ग एव० ३२—४९ साम्नी त्रिष्टुप्, ज्येष्ठतस्ते ३२, तं वा अहं० ३२, ४९, ताभ्यामेनं० ३३, ३४, ४४–४८ आसुरी गायत्री, बृहस्पतिना ३२, समुद्रेण ४३, सवितुः ४७ दैवी जगती, मुखतस्ते ३५, राजयक्ष्मः ३९, ज्वरदारः ४२, ऊरुते ४४ ब्रह्मचारी ४६, आसुर्युष्णिक्, एष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा ओदनः ३२–४६, अप्रतिष्ठा नः ४६भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्, ततश्चैनम० ३३ – ३६, ३८–४९ आर्च्यनुष्टुप्, ततश्चैनम० ३७ आर्च्युष्णिक्, बधिरो भवि० ३३, अन्धोभवि० ३४, जिह्वाते० ३६, दन्तास्ते० ३७, विद्युत् त्वा० ४०, कृष्या न ४१, अप्सुमरि० ४३, स्नामो भवि० ४५, सर्पस्त्वा० ४७, ब्राह्मणं० ४८ आसुरी पङ्क्तिः, द्यावापृथिवी० ३५, सूर्याचन्द्रम० ३४ याजुषी त्रिष्टुप्, ब्राह्मणं० ३५, सत्येनो० ४२, त्वष्टुर० ४५, अश्विनो० ४६, ऋतस्य० ४८, सत्ये० ४९ याजुषी गायत्री, अग्ने ३६, ऋतुभिः० ३७, दिवा ४०, पृथिव्यो० ४१ दैवी पंक्तिः, सप्तऋषिभि० ३८, अन्तरिक्षेण० ३९ प्राजापत्या गायत्री, मित्रावरुणयोः० ४४ आसुरी जगती, तेनैनं० ३२, ३५, तयैनं० ३६, ३७, ३८ तेनैनम्० ३९–४३, तयैनं० ४९ आसुर्यनुष्टुप् छन्दः, ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्मविद्या का उपदेश ॥

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । बृहस्पतिना शीर्ष्णा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३२॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन, अन्न रूप परमेश्वर] को (ततः) उससे (अन्येन) भिन्न (शीर्ष्णा) शिर से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [शिर] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। (ज्येष्ठतः) अति बड़े से लेकर (ते) तेरे (प्रजा) [राज्य की] प्रजा (मरिष्यति) मरेगी, (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया है]। (तेन) उसी [ऋषियों के समान] (बृहस्पतिना) बड़े ज्ञानों के रक्षक (शीर्ष्णा) शिर से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उसी से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः) यह (वै) ही (ओदनः) ओदन [सुख वर्षक अन्न समान परमेश्वर]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला, (सर्वपरुः) सब पालनों वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारों वाला है। वह [मनुष्य] (एव) ही (सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला, (सर्वपरुः) सब पालनों वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारों वाला (सम् भवति) हो जाता है, (यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥३२॥

भावार्थः—आचार्य उपदेश करे—हे शिष्य तू वेदानुगामी ऋषियों के समान परमेश्वर में प्रीति कर, यदि उस से विरुद्ध चलेगा तो शरीर और आत्मा से गिर कर संसार का अपकार करेगा। तब शिष्य परमात्मा में पूर्ण भक्ति से प्रतिज्ञा करके आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक बल बढ़ावे ॥३२॥

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बधिरो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३३॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [कानों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (श्रोत्राभ्याम्) दो कानों से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। तू (बधिरः) बहिरा (भविष्यसि) हो जावेगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (ताभ्याम्) उन (द्यावापृथिवीभ्याम्) आकाश और पृथिवी रूप (श्रोत्राभ्याम्) दोनों कानों से [अर्थात् पदार्थ ज्ञान के श्रवण मनन से] (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है॥

(एषः वै) यह ही······मं० ३२ ॥३३॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥३३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततश्चैनमन्याभ्यांमक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अन्धो भविष्यसीत्यैनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सूर्याचन्द्रमसाभ्यांमक्षीभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३४॥

भावार्थः—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [नेत्रों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (अक्षीभ्याम्) दो नेत्रों से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। तू (अन्धः) अन्धा (भविष्यसि) हो जावेगा - (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर] - (अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (ताभ्याम्) उन दोनों (सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्) सूर्य और चन्द्रमा रूप [उन के समान नियम में चलकर] (अक्षीभ्याम्) दो नेत्रों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यह ही······म० ३२। ३४॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥३४॥

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येनं चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्यैनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। ब्रह्मणा मुखेन। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३५॥

भावार्थः—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर] को (ततः) उस [मुख] से (अन्येन) भिन्न (मुखेन) मुखसे (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [मुख] से (च) ही (एनम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। (मुखतः) मुख के बल (ते) तेरे (प्रजा) [राज्य की प्रजा] (मरिष्यति) मरेगी--(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान, और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर को [खाया अर्थात् अनुभव किया है,] (तेन) उस (ब्रह्मणा) वेद रूप (मुखेन) मुख से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उस [मुख] से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यही···म० ३२ ॥३५॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥३५॥

ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। अग्नेर्जिह्वया। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३६॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु!] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [जीभ] से (अन्यया) भिन्न (जिह्वया) जीभ से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (यया) जिस [जीभ] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। (ते) तेरी (जिह्वा) जीभ (मरिष्यति) मर जावेगी [असमर्थ हो जावेगी]—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहनेवाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्त्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है] । (अग्नेः) अग्नि की [अग्नि समान लहराती हुई] (तया) उस (जिह्वया) जीभ से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (तया) उस [जीभ] से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ।।

(एषः वै) यही···म० ३२ । ३६ ।।

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ।।३६।।

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ऋतुभिर्दन्तैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद । ३७ ।

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दांतों] से (अन्यैः) भिन्न (दन्तैः) दांतों से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (यैः) जिन [दांतों] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था । (ते) तेरे (दन्ताः) दांत (शत्स्यन्ति) गिर पड़ेंगे—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ।।

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (ऋतुभिः) ऋतुओं के तुल्य [आपस में मिले हुए] (तैः) उन (दन्तैः) दांतों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तैः) उन से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ।।

[एषः वै) यही···म० ३२ ।।३७।।

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ।।३७।।

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सप्तर्षिभिः प्राणापानैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३८॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [प्राण और अपानों] से (अन्यैः) भिन्न (प्राणापानैः) प्राण और अपानों से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (यैः) जिनसे (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। (प्राणापानाः) प्राण और अपान (त्वा) तुझको (हास्यन्ति) छोड़ देंगे (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (सप्तऋषिभिः) सात ऋषियों [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] रूप (तैः) उन (प्राणापानैः) प्राण और अपानों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तैः) उन से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही···म० ३२ ॥३८॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥३८॥

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । अन्तरिक्षेण व्यचसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३९॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [व्यापकपन] से (अन्येन) भिन्न (व्यचसा) व्यापकपन से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिससे (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनभव किया] था। [तब] (राजयक्ष्मः) राजरोग [व्यापक क्षयरोग] (त्वा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझे (हनिष्यति) मारेगा (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (अन्तरिक्षेण) आकाश रूप (तेन) उस (व्यचसा) व्यापकपन से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उससे (एनम्) इस को (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही······म० ३२ ॥३९॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥३९॥

ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। दिवा पृष्ठेन। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४०॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु!] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [पीठ से] (अन्येन) भिन्न (पृष्ठेन) पीठ से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [पीठ] से (च) ही (एनम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। (तब) (विद्युत्) बिजुली (त्वा) तुझे (हनिष्यति) मारेगी—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात अनभव किया है]। (दिवा) आकाशरूप (तेन) उस (पृष्ठेन) पीठ से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] हैं, (तेन) उस से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही······म० ३२ ॥४०॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥४०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। पृथिव्योरसा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४१॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [छाती] से (अन्येन) भिन्न (उरसा) छाती से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [छाती] से (च) ही (एनम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। [तब] (कृष्या) खेती से (न रात्स्यसि) तू न बढ़ेगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (पृथिव्या) पृथिवी रूप [पृथिवी समान सहनशील] (तेन) उस (उरसः) छाती से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उससे (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही···म० ३२ ॥४१॥

भावार्थः मन्त्र ३२ के समान ॥४१॥

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्येनोदरेण। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४२॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [पेट] से (अन्येन) भिन्न (उदरेण) पेट से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [पेट] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। [तब] (उदरदारः) उदर रोग [अतीसार आदि] (त्वा) तुझे (हनिष्यति) मारेगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया हैं]। (सत्येन) सत्य [यथार्थ कथनरूप] (तेन) उस (उदरेण) पेट से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उससे (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यह······म० ३२ ॥४२॥

भावार्थः– मन्त्र ३२ के समान ॥४२॥

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अप्सु मरिष्यसीत्यैनमाह तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। समुद्रेण वस्तिना। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४३॥

भाषार्थः [हे जिज्ञासु!] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [वस्ति] से (अन्येन) भिन्न (वस्तिना) वस्ति [पेडू, नाभि से नीचे भाग] से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [वस्ति] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। [तब] (अप्सु) जल के भीतर (मरिष्यसि) तू मरेगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]–(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (समुद्रेण) समुद्ररूप (तेन) उस (वस्तिना) वस्ति [पेड़ू] से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है। (तेन) उस से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एषः वै) यही······म० ३२ ॥४३॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥४३॥

ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। मित्रावरुणयोरूरुभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४४॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु!] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दो जांघों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (ऊरुभ्याम्) दो जंघाओं से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तब] (ते) तेरे (ऊरू) दोनों जंघायें (मरिष्यतः) मरेंगी (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (मित्रावरुणयोः) दोनों प्रेरणा करने वाले, और श्रेष्ठ गुण वाले [आचार्य और शिष्य] के (ताभ्याम्) उन (ऊरुभ्याम्) दोनों जंघाओं से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इस को (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही······म० ३२ ॥४४॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥४४॥

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। स्रामो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनम-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीगमम् । एष वा ओ॒द॒नः सर्वा॑ङ्गः सर्व॑परुः सर्व॑तनूः । सर्वा॑ङ्ग ए॒व सर्व॑परु॒ सर्व॑तनू॒ः सं भ॑वति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥४५॥

भावार्थः [हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दोनों घुटनों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (अष्ठीवद्भ्याम्) दोनों घुटनों से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों [घुटनों] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। [तब] (स्रामः) फोड़े का रोगी (भविष्यसि) तू होगा (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (त्वष्टुः) विश्वकर्मा [सब कामों में चतुर मनुष्य] के (ताभ्याम्) उन दोनों (अष्ठीवद्भ्याम्) घुटनों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही······३२ ॥४५॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥४५॥

तत॑श्चैनम॒न्याभ्यां॒ पादा॑भ्यां॒ प्राशी॒र्याभ्यां॑ च॒ैतं पूर्व॑ ऋ॒षय॑ः प्राश्न॑न् । बहुचा॒री भ॑विष्यसी॒त्यैन॑माह । तं वा अ॒हं नार्वाञ्चं॒ न परा॑ञ्चं॒ न प्र॒त्यञ्च॑म् । अ॒श्विनो॑ः पादा॑भ्याम् । ताभ्या॑मेनं॒ प्राशि॑षं॒ ताभ्या॑मेनम॒जीगमम् । ए॒ष वा ओ॒द॒नः सर्वा॑ङ्ग॒ः सर्व॑परुः सर्व॑तनूः । सर्वा॑ङ्ग ए॒व सर्व॑परुः सर्व॑तनू॒ः सं भ॑वति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥४६॥

भावार्थः—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दो पैरों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (पादाभ्याम्) दोनों पैरों से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तब] (बहुचारी) बहुत घूमने वाला (भविष्यसि) तू होगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (अश्विनोः) दोनों चतुर माता पिता के (ताभ्याम्) उन (पादाभ्याम्) दोनों पैरों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इस को (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यही म० ३२ ॥४६॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान है ॥४६॥

ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सवितुः प्रपदाभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४७॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु!] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दोनों पैर के पञ्जों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (प्रपदाभ्याम्) दोनों पैरों के पञ्जों से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तब] (सर्पः) सर्प (त्वा) तुझको (हनिष्यति) मारेगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर] (अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (सवितुः) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (ताभ्याम्) उन (प्रपदाभ्याम्) दोनों पैरों के पञ्जों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही .... म० ३२ ॥४७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥४७॥

ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। ऋतस्य हस्ताभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः। सं भवति य एवं वेद ॥४८॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु!] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दोनों हाथों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तब] (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता पुरुष] को (हनिष्यसि) तू मारेगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (ताभ्याम्) उन (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इस को (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही······म० ३२ ॥४८॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥४८॥

ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्ये प्रतिष्ठाय। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम] परमेश्वर को (ततः) उस [प्रतिष्ठा] से (अन्यया) भिन्न (प्रतिष्ठया) प्रतिष्ठा [कीर्ति] से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (यथा) जिस [प्रतिष्ठा] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तब] (अप्रतिष्ठानः) कीर्ति रहित और (अनायतनः) और बिना घर होकर (मरिष्यसि) तू मरेगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (सत्ये) सत्य [सत्य स्वरूप परमात्मा] में (प्रतिष्ठाय) प्रतिष्ठा [आदर] पाकर (तया) उसी [ऋषियों के समान प्रतिष्ठा] से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (तया) उसी [प्रतिष्ठा] से (एनम्) इस परमेश्वर को (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः) यह (वै) ही (ओदनः) ओदन [सुख वर्षक अन्न समान परमेश्वर] (सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला, (सर्वपरुः) सब पालनों वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारों वाला है। वह [मनुष्य] (एवः) ही (सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला, (सर्वपरुः) सब पालनों वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारों वाला (सम् भवति) हो जाता है, (यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥४९॥

भावार्थः—मन्त्र ३२ के समान ॥४९॥

सूक्तम् ३ (पर्यायः ३ ॥)

५०—५६ ॥ ओदनो देवता ॥ ५० आसुर्यनुष्टुप्; ५१ आर्च्युष्णिक्; ५२ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्; ५३ आसुरी बृहती; ५४ भुरिक् साम्नी बृहती; ५५ साम्न्युष्णिक्; ५६ प्राजापत्या बृहती छन्दः ॥

ब्रह्मज्ञानेन मोक्षोपदेशः—ब्रह्मज्ञान से मोक्ष का उपदेश ॥

एतद् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥५०॥

भाषार्थः—(एतत्) यह (वै) ही (ब्रध्नस्य) महान् [पृथिवी आदि के आकर्षक सूर्य] का (विष्टपम्) आश्रय (यत्) यजनीय [पूजनीय ब्रह्म], (ओदनः) ओदन [सुख बरसाने वाला अन्नरूप परमेश्वर] है ॥५०॥

भावार्थः—परमात्मा के ही आश्रय अर्थात् धारण आकर्षण सामर्थ्य से सूर्य आदि लोक स्थित हैं ॥५०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥५१॥

भाषार्थः— वह [मनुष्य] (**ब्रध्नलोकः**) महान् [सब के नियामक परमेश्वर] में निवास वाला (**भवति**) होता है और [उसी] (**ब्रध्नस्य**) महान् [सर्व नियामक परमेश्वर] के (**विष्टपि**) सहारे में (**श्रयते**) आश्रय लेता है, (**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥५१॥

भावार्थः—जो ज्ञानी पुरुष परमात्मा का आश्रय लेता है, वह पुरुषार्थी आनन्द पाता है ॥५१॥

एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान्

निरमिमीत प्रजापतिः ॥५२॥

भाषार्थः—(**एतस्मात्**) इस (**वै**) ही (**ओदनात्**) [अपने] ओदन [सुख बरसाने वाले अन्न रूप सामर्थ्य] से (**त्रयस्त्रिंशतम्**) तेतीस (**लोकान्**) लोकों [दर्शनीय देवताओं] को (**प्रजापतिः**) प्रजापति [सृष्टिपालक परमेश्वर] ने (**निः अमिमीत**) निर्माण किया है ॥५२॥

भावार्थः— परमेश्वर ने अपने सर्वपोषक सामर्थ्य से जगदुपकारक तेतीस देवताओं को रचा है। वे तेतीस देवता ये हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ महीने, १ बिजुली, १ यज्ञ—देखो अथर्व० ६ । १३९ । १ ॥५२॥

तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥५३॥

भाषार्थः—उस [परमेश्वर] ने (**तेषाम्**) उन [तेतीस देवताओं के सामर्थ्य] के (**प्रज्ञानाय**) प्रकृष्ट ज्ञान के लिये (**यज्ञम्**) यज्ञ [परस्पर संगत संसार] को (**असृजत**) सृजा ॥५३॥

भावार्थः— परमात्मा ने उन वसु आदि देवताओं से यह संसार इसलिये रचा है कि मनुष्य परमात्मा के संगठन सामर्थ्य को जानकर परस्पर बल बढ़ावें ॥५३॥

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥५४॥

भाषार्थः—(**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसे [बड़े] (**विदुषः**) विद्वान् [सर्वज्ञ परमेश्वर] का (**उपद्रष्टा**) उपद्रष्टा [सूक्ष्मदर्शी वा साक्षात् कर्ता] (**भवति**) होता है, (**सः**) वह (**प्राणम्**) [अपने] प्राण [जीवन] को (**रुणद्धि**) रोकता है ॥५४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव को सूक्ष्म बुद्धि से साक्षात् करता है, वह जितेन्द्रिय होकर अपना जीवन और यश बढ़ाता है ॥५४॥

न च॑ प्राणं रु॒णद्धि॑ सर्वज्या॒निं जीयते ॥५५॥

भाषार्थः—**(च)** यदि वह **(प्राणम्)** [अपने] प्राण को **(न)** नहीं **(रुणद्धि)** रोकता है, वह **(सर्वज्यानिम्)** सब हानि से **(जीयते**, निर्बल हो जाता है ॥५५॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर के सामर्थ्य को देखते हुए भी जितेन्द्रिय नहीं होता, वह मनुष्यपन से गिरकर बलहीन होजाता है ॥५५॥

न च॑ सर्वज्या॒निं जीयते पु॒रैनं ज॒रसः॑ प्रा॒णो ज॑हाति ॥५६॥

भाषार्थः—वह **(सर्वज्यानिम्)** सब हानि से **(च)** ही **(न)** नहीं **(जीयते)** हीन होता है, [किन्तु] **(एनम्)** इस [मनुष्य] को **(जरसः)** जरा [स्तुति वा बुढ़ापा पाने] से **(पुरा)** पहिले **(प्राणः)** [जीवन व्यापार] **(जहाति)** छोड़ देता है ॥५६॥

भावार्थः—परमेश्वर का विरोधी मनुष्य निर्बल, अपकीर्ति वाला, अल्पजीवी और दुर्बलेन्द्रिय होता है ॥५६॥

सूक्तम् ॥४॥

१–२६ ॥ प्राणो देवता ॥ १ शङ्कुमती, २—७, १०-१३, १६—१९, २३, २५ अनुष्टुप्, ८ पथ्या पङ्क्तिः, ९, १४, २४ निचृदनुष्टुप्, १५, २६ भुरिगनुष्टुप्, २० निचृद् त्रिष्टुप्, २१ मध्ये ज्योतिर्जगती, २२ त्रिष्टुप् ॥

प्राणमहिमोपदेशः—प्राण की महिमा का उपदेश ॥

प्रा॒णाय॒ नमो॒ यस्य॒ सर्व॑मि॒दं वशे॑ ।
यो भू॒तः सर्व॑स्येश्व॒रो यस्मि॒न्त्सर्वं॒ प्रति॑ष्ठितम् ॥१॥

भाषार्थः—**(प्राणाय)** प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] को **(नमः)** नमस्कार है, **(यस्य)** जिसके **(वशे)** वश में **(सर्वम्)** सब **(इदम्)** यह [जगत्] है । **(भूतः)** सदा वर्तमान **(यः)** जो **(सर्वस्य)** सब का **(ईश्वरः)** ईश्वर है और **(यस्मिन्)** जिसके भीतर **(सर्वम्)** सब **(प्रतिष्ठितम्)** अटल ठहरा है ॥१॥

भावार्थः—सर्वपोषक, सर्वशक्तिमान् प्राण नाम जगदीश्वर की उपासना करके मनुष्य अपने प्राणों के बल को सदा बढ़ाते रहें ॥१॥

परमेश्वर का प्राण नाम है देखो प्रश्नोपनिषद् खण्ड २ श्लोक ६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥१॥

अरों के समान रथ की नाभि में, प्राण के बीच सब जड़ा हुआ है—ऋचायें [स्तुति विद्यायें], यजुर्मन्त्र [ईश्वर पूजा के मन्त्र] और साम मन्त्र [मोक्षविद्यायें—अर्थात् कर्म, उपासना और ज्ञान] यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] राज्य और धन ॥

और देखो मनु अध्याय १२ श्लोक १२३ ।

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥१॥

इस [परमेश्वर] को कोई अग्नि, कोई मनु और प्रजापति, कोई इन्द्र, कोई प्राण और कोई नित्य ब्रह्म कहते हैं ॥१॥

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥२॥

भाषार्थः—(प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (क्रन्दाय) दहाड़ने के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (स्तनयित्नवे) बादल की गर्जन के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है। (प्राण) हे प्राण ! [परमेश्वर] (विद्युते) बिजुली के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (प्राण) हे प्राण ! [परमेश्वर] (वर्षते) वर्षा के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है ॥२॥

भावार्थः - मनुष्य परमेश्वर की दया को विचारकर ऐसा प्रयत्न करें कि वर्षा सम्बन्धी सब क्रियायें सर्वथा उपकारी होवें ॥२॥

इस मन्त्र का मिलान अथर्व०का० १ सू० १३ म० १ से करो ॥

यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः ।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥३॥

भाषार्थः (यत्) जब (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (स्तनयित्नुना) बादल की गर्जन द्वारा (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदि] को (अभिक्रन्दति) बल से पुकारता है। [तब] वे (प्र) अच्छे प्रकार (वीयन्ते) गर्भवती होती हैं और (गर्भान्) गर्भों को (दधते) पुष्ट करती हैं; (अथो) फिर भी (बह्वीः) बहुत सी होकर (वि जायन्ते) उत्पन्न हो जाती हैं ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर के सामर्थ्य से सूर्य द्वारा मेघ से वर्षा और गर्जन होकर ग्रामों और वनों में अनेक औषधें उगती हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) जब (प्राणः) प्राण [जीवन दाता परमेश्वर] (ऋतौआगते) ऋतु काल आने पर (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदि] को (अभिक्रन्दति) बल से पुकारता है। (तदा) तब (सर्वम्) सब [जगत्] (प्र मोदते) बड़ा आनन्द मानता है, (यत् किम् च) जो कुछ भी (भूम्याम् अधि) पर है ॥४॥

भावार्थः—उचित समय पर वर्षा होने से सब चर और अचर जगत् बल प्राप्त करके प्रसन्न होता है ॥४॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥५॥

भाषार्थः—(यदा) जब (प्राणः) [जीवनदाता परमेश्वर] ने (वर्षेण) वर्षा द्वारा (महीम्) विशाल (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभ्यवर्षीत्) सींच दिया। (तत्) तब (पशवः) जीव जन्तु (प्रमोदन्ते) बड़ा हर्ष मनाते हैं—"(नः) हमारी (महः) बढ़ती (वै) अवश्य (भविष्यति) होगी" ॥५॥

भावार्थः परमेश्वर की शक्ति से वृष्टि होने पर सब प्राणी बल वृद्धि कर के उत्सव मनाते हैं ॥५॥

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥६॥

भाषार्थः—(अभिवृष्टाः) सींची हुई (ओषधयः) ओषधें [अन्न आदि] (प्राणेन) प्राण [जीवन दाता परमेश्वर] से (सम्) मिलकर (अवादिरन्) बोलीं—"(नः) हमारी (आयुः) आयु को (वै) निश्चय करके (प्र अतीतरः) तू ने बढ़ाया है, (नः सर्वाः) हम सबको (सुरभीः) सुगन्धित (अकः) तू ने बनाया है" ॥६॥

भावार्थः—वृष्टि से सब अन्न वृक्ष आदि पदार्थ उत्पन्न और पुष्ट होकर संसार का उपकार करते हुए परमेश्वर को धन्यवाद देते हैं ॥६॥

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥७॥

भाषार्थः—(आयते) आते हुए [पुरुष] के हित के लिये (ते) तुझे (नमः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमस्कार (अस्तु) हो, (परायते) जाते हुए के हित के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो। (प्राण) हे प्राण! [जीवनदाता परमेश्वर] (तिष्ठते) खड़े होते हुए के हित के लिये (नमः) नमस्कार, (उत) और (आसीनाय) बैठे हुए के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो ।।७।।

भावार्थः—मनुष्य अपनी चेष्टाओं से उपकार लेता हुआ परमेश्वर का धन्यवाद करे ।।७।।

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते। पराचीनाय ते नमः
प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ।।८।।

भाषार्थः—(प्राण) हे प्राण [जीवन दाता परमेश्वर] (प्राणते) श्वास लेते हुए [पुरुष] के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (अपानते) प्रश्वास लेते हुए के हित के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे। (पराचीनाय) बाहिर जाते हुए [पुरुष] के हित के लिए (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (प्रतीचीनाय) सन्मुख जाते हुए के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (सर्वस्मै) सब के हित के लिये (ते) तुझे (इदम्) यह (नमः) नमस्कार हो ।।८।।

भावार्थः—मनुष्य प्रत्येक श्वास प्रश्वास आदि चेष्टा करते हुए संसार का हित करके परमेश्वर को धन्यवाद देवे ।।८।।

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ।।९।।

भाषार्थः—(प्राण) हे प्राण! [जीवनदाता परमेश्वर] (ते) तेरी (या) जो (प्रिया) प्रीति करने वाली (यो) और जो, (प्राण) हे प्राण! (ते) तेरी (प्रेयसी) अधिक प्रीति करने वाली (तनूः) उपकार क्रिया है। (अथो) और भी (यत्) जो (तव) तेरा (भेषजम्) भय निवारक कर्म है, (तस्य) उसका (नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लिये (धेहि) दान कर ।।९।।

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर के उपकारों को ध्यान में रखकर कार्य करते हैं, वह अपना जीवन बढ़ाते हैं ।।९।।

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ।।१०।।

भाषार्थः—(प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (प्रजाः) सब उत्पन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणियों को (अनु) निरन्तर (वस्ते) ढक लेता है, (इव) जैसे (पिता) पिता (प्रियम्) प्रिय (पुत्रम्) पुत्र को [वस्त्र आदि से]। (प्राणः) प्राण [परमेश्वर] (ह) ही (सर्वस्य) सब का (ईश्वरः) ईश्वर है, (यत् च) जो कुछ भी (प्राणति) श्वास लेता है, (यत् च) और जो (न) नहीं श्वास लेता है ॥१०॥

भावार्थः– मनुष्य जगत् स्वामी परमेश्वर को सब चर और अचर सृष्टि में व्यापक जानकर अपना ऐश्वर्य बढ़ावे ॥१०॥

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥११॥

भाषार्थः – (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (मृत्युः) मृत्यु और (प्राणः) प्राण (तक्मा) जीवन को कष्ट देने वाला [ज्वर आदि रोग] है, (प्राणम्) प्राण की (देवाः) विद्वान् लोग (उप आसते) उपासना करते हैं। (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (ह) ही (सत्यवादिनम्) सत्यवादी को (उत्तमे लोके) उत्तम लोक पर (आ दधत्) स्थापित कर सकता है ॥११॥

भावार्थः—ईश्वरीय नियम से विरुद्ध चलने पर मनुष्य मृत्यु और रोग को पाते हैं। विद्वान् लोग इस लिये परमात्मा की उपासना करते और जितेन्द्रिय होकर अपने श्वास प्रश्वास को वश में करते हैं कि वे सत्यवादी होकर श्रेष्ठ पद पावें ॥११॥

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥१२॥

भाषार्थः—(प्राणः) प्राण [जीवन दाता परमेश्वर] (विराट्) विराट् [विविध प्रकार ईश्वर] और (प्राणः) प्राण [परमेश्वर] (देष्ट्री) मार्ग दर्शिका शक्ति है, (प्राणम्) प्राण [परमेश्वर] की (सर्वे) सब (उप आसते, उपासना करते हैं (प्राणः) प्राण [परमेश्वर] (ह) ही (सूर्यः) प्रेरणा करने वाला और (चन्द्रमाः) आनन्द दाता है, (प्राणम्) प्राण [परमेश्वर] को (प्रजापतिम्) प्रजापति [सृष्टि पालक] (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं ॥१२॥

भावार्थः सब मनुष्य परमात्मा की उपासना करके विविध प्रकार समर्थ होकर आनन्द पाते हैं ॥१२॥

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(प्राणापानौ) प्राण और अपान [श्वास और प्रश्वास] (व्रीहियवौ) चावल और जौ [के समान पुष्टिकारक] हैं, (प्राणः) प्राण [जीवन दाता परमेश्वर] (अनड्वान्) जीवन का चलाने वाला (उच्यते) कहा जाता है। (यवे) जौ में (ह) भी (प्राणः) प्राण [श्वासवायु] (आहितः) रक्खा हुआ है, (अपानः) अपान [प्रश्वास वायु] (व्रीहि) चावल (उच्यते) कहा जाता है ॥१३॥

भावार्थः—परमेश्वर ने प्राणियों के भीतर श्वास प्रश्वास को चावल जौ अन्न आदि के समान पुष्टिकारक बनाया है ॥१३॥

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥१४॥

भाषार्थः—(पुरुषः) पुरुष (गर्भे अन्तरा) गर्भ के भीतर (प्र अनति) श्वास लेता है और (अप अनति) प्रश्वास [बाहिर को श्वास] लेता है। (यदा) जब (त्वम्) तू, (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (जिन्वसि) तृप्त करता है, (अथ) तब (सः) वह [पुरुष] (पुनः) फिर (जायते) उत्पन्न होता है ॥१४॥

भावार्थः—परमेश्वर के सामर्थ्य से प्राणी गर्भ के भीतर श्वास प्रश्वास लेता और पूरे दिन होने पर उत्पन्न होता है ॥१४॥

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

भाषार्थः—(प्राणम्) प्राण [जीवन दाता परमेश्वर] को (मातरिश्वानम्) आकाश में व्यापक [सूत्रात्मा वायु के समान] (आहुः) वे बताते हैं, (वातः) वायु (ह) भी (प्राणः) [जीवन दाता परमेश्वर] (उच्यते) कहा जाता है। (प्राणे) प्राण [परमेश्वर] में (ह) ही (भूतम्) बीता हुआ (च) और (भव्यम्) होनहार [वस्तु] और (प्राणे) प्राण [परमेश्वर] में (सर्वम्) सब [जगत्] (प्रतिष्ठितम्) टिका हुआ है ॥१५॥

भावार्थः—महात्मा लोग अनुभव करते हैं कि परमात्मा ही सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर और सर्वव्यापक है ॥१५॥

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥१६॥

भाषार्थः—(आथर्वणीः) निश्चल स्वभाव वाले महर्षियों की प्रकाशित की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई और (आङ्गिरसीः) विज्ञानियों की बताई हुई (दैवीः) देव [मेघ] से उत्पन्न (उत) और (मनुष्यजाः) मनुष्यों से उत्पन्न (ओषधयः) औषधें (प्र जायन्ते) उत्पन्न हो जाती हैं, (यदा) जब (त्वम्) तू, (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] [उन को] (जिन्वसि) तृप्त करता है ॥१६॥

भावार्थः—मेघ द्वारा स्वयं उत्पन्न और मनुष्य द्वारा खेती आदि से उत्पन्न अन्न और औषधें परमेश्वर के सामर्थ्य से वृष्टि होने पर उत्पन्न होती हैं, जिनका प्रचार अनुभवी महात्मा लोग संसार में करते हैं ॥१६॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥१७॥

भाषार्थः—(यदा) जब (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] ने (वर्षेण) वर्षा द्वारा (महीम्) विशाल (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभ्यवर्षीत्) सींच दिया। (अथो) तब ही (ओषधयः) अन्न आदि पदार्थ (च) और (याः काः) जो कोई (वीरुधः) जड़ी बूटी हैं, वे भी (प्र जायन्ते) बहुत उत्पन्न होती हैं ॥१७॥

भावार्थः—परमेश्वर के नियम से वृष्टि होने पर ग्राम्य और आरण्य पदार्थ उत्पन्न होकर संसार का उपकार करते हैं ॥१७॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध ऊपर मन्त्र ५ में आया है ॥

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे ॥१८॥

भाषार्थः—(प्राणः) हे प्राण ! [जीवन दाता परमेश्वर] (यः) जो [पुरुष] (ते) तेरे (इदम्) इस [महत्त्व] को (वेद) जानता है, (च) और (यस्मिन्) जिस [पुरुष] में तू (प्रतिष्ठितः) दृढ़ ठहरा हुआ (असि) है। (सर्वे) सब [प्राणी] (अमुष्मिन्) उस (उत्तमे) उत्तम (लोके) लोक [स्थान] पर [वर्तमान] (तस्मै) उस [पुरुष] के लिये (बलिम्) बलि [उपहार] (हरान्) लावें ॥१८॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर के महत्त्व को साक्षात् करके उसे अपने हृदय में दृढ़ करता है, वह पुरुष संसार में सब से उच्च स्थान पाता है ॥१८॥

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(प्राण) हे प्राण ! [परमेश्वर] (यथा) जैसे (तुभ्यम्) तेरे लिये (इमाः) यह (सर्वाः) सब (प्रजाः) प्रजायें (बलिहृतः) भक्ति रूप उपहार देने वाली हैं। (एव) वैसे ही (तस्मै) उस [पुरुष] के लिये (बलिम्) बलि [उपहार] (हरान्) वे लावें, (यः) जो पुरुष, (सुश्रवः) हे बड़ी कीर्ति वाले [परमेश्वर] (त्वा) तुझ को (शृणवत्) सुने ॥१९॥

भावार्थः—परमेश्वर की आज्ञा मानने वाला पुरुष सब प्राणियों को अपने वश में कर लेता है ॥१९॥

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उं जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥२०॥

भाषार्थः—(सः उ) वही [परमेश्वर] (आभूतः) सब ओर से व्याप्त और (भूतः) वर्तमान होकर (देवतासु अन्तः) सब दिव्य पदार्थों के भीतर (गर्भः) गर्भ [के समान] (चरति) विचरता है और (पुनः) फिर (जायते) प्रकट होता है। (सः) उस (भूतः) वर्तमान [परमेश्वर] ने (भव्यम्) होनहार (भविष्यत्) आगामी जगत् में (शचीभिः) अपने कर्मों से (प्र विवेश) प्रवेश किया है, [जैसे] (पिता) पिता (पुत्रम्) पुत्र में [उत्तम शिक्षा दान से प्रवेश करता है] ॥२०॥

भावार्थः—नित्य अनादि परमेश्वर सब पदार्थों के भीतर और बाहिर परिपूर्ण होकर भूत भविष्यत् और वर्तमान में सब का उपकार करता है, जैसे पिता पुत्र को शिक्षा दान करता है ॥२०॥

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् । यदङ्ग स तमुत्खिदे-
न्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥२१॥

भाषार्थः—(हंसः) हंस [सर्वव्यापक वा सर्वज्ञानी परमात्मा] (सलिलात्) समुद्र [समुद्र समान अपने अगम्य सामर्थ्य] से (उच्चरन्) उदय होता हुआ (एकम्) एक [सत्य वा मुख्य] (पादम्) पाद [स्थिति नियम] को (न) नहीं (उत् खिदति) उखाड़ता है। (अङ्ग) हे विद्वान् ! (यत्) जो (सः) वह [परमात्मा] (तम्) उस [नियम] को (उत्खिदेत्) उखाड़ देवे, (न एव) न तो (अद्य) आज, (न) न (श्वः) कल्य (स्यात्) होवे, (न) न (रात्री) रात्री, (न) न (अहः) दिन (स्यात्) होवे, (न) न (कदा चन) कभी भी (वि उच्छेत्) प्रभात होवे ॥२१॥

भावार्थः—जैसे हंस परमात्मा अपने अचल नियम से विचल न होकर सूर्य आदि को अपने केन्द्र पर ठहरा कर सब संसार का उपकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है, वैसे ही परमहंस, जितेन्द्रिय, विज्ञानी पुरुष सब प्राणियों का हित करता है ॥२१॥

(हंस) शब्द का मिलान—अथर्व० १० । ८ । १७ तथा १८ में करो ॥

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।

अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥२२॥

भाषार्थः—(अष्टाचक्रम्) आठ [दिशाओं] में चक्र वाला, (एकनेमि) एक नेमि [नियम वाला] और (सहस्राक्षरम्) सहस्र प्रकार से व्याप्ति वाला [ब्रह्म] (प्र) भली भांति (पुरः) आगे और (नि) निश्चय करके (पश्चा) पीछे (वर्तते) वर्तमान है, उसने (अर्धेन) आधे खण्ड से (विश्वम्) सब (भुवनम्) अस्तित्व [जगत्] को (जजान) उत्पन्न किया, और (यत्) जो (अस्य) इस [ब्रह्म] का (अर्धम्) [दूसरा कारण रूप] आधा है, (सः) वह (कतमः) कौन सा (केतुः) चिह्न है ॥२२॥

भावार्थः वह परब्रह्म अपने अटूट नियम से सब जगत् में व्यापकर सबसे पहिले और पीछे निरन्तर वर्तमान है, उसी की सामर्थ्य से यह सब जगत् उत्पन्न हुआ है और उसी की शक्ति में अनन्त कारण रूप पदार्थ वर्तमान है ॥२२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है, देखो—अथर्व० १० । ८ । ७ तथा १३ ॥

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।

अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥२३॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (अस्य) इस (विश्वजन्मनः) विविध जन्म वाले और (विश्वस्य) सब (चेष्टतः) चेष्टा करने वाले [कार्यरूप] जगत् का (ईशे) ईश्वर है। [इनसे] (अन्येषु) भिन्न [परमाणु रूप पदार्थों] पर (क्षिप्रधन्वने) शीघ्र व्यापक होने वाले (तस्मै) उस (ते) तुझ को, (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (नमः अस्तु) नमस्कार हो ॥२३॥

भावार्थः—परमेश्वर सब कार्यरूप और कारण रूप जगत् का स्वामी है उस जगदीश्वर को हमारा नमस्कार है ॥२३॥

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।

अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥२४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (अस्य) इस (सर्वजन्मनः) विविध जन्म वाले और (सर्वस्य) सब (चेष्टतः) चेष्टा करने वाले [कार्यरूप जगत्] का (ईशे) ईश्वर है। [वह] (अतन्द्रः) आलस रहित, (धीरः) धीर [बुद्धिमान्] (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (ब्रह्मणा) वेदज्ञान द्वारा (मा अनु) मेरे साथ साथ (तिष्ठतु) ठहरा रहे ।।२४।।

भावार्थः—मनुष्य सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता परमेश्वर की महिमा जानकर निरालसी, धीर, वीर होकर पुरुषार्थ करे ।।२४।।

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध कुछ भेद ऊपर मन्त्र २३ में आया है ।।

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पंद्यते ।

न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनुं शुश्राव कश्चन ।।२५।।

भाषार्थः—(सुप्तेषु) सोते हुए [प्राणियों]पर वह [प्राण, परमात्मा] (ऊर्ध्वः) ऊपर रहकर (जागार) जागता है, और (ननु) कभी नहीं (तिर्यङ्) तिरछा [होकर] (नि पद्यते) गिरता है। (कः चन) किसी ने भी (सुप्तेषु) सोते हुओं में (अस्य) इस [प्राण परमात्मा] का (सुप्तम्) सोना (न अनु शुश्राव) कभी [परम्परा से] नहीं सुना ।।२५।।

भावार्थः—जैसे परमात्मा चैतन्य रह कर सर्वदा सब प्राणियों की सुधि रखता है, वैसे ही मनुष्यों को निरालस होकर पुरुषार्थ करना चाहिये ।।२५।।

प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।

अपां गर्भमिव जीवसे प्राणं बध्नामि त्वा मयिं ।।२६।।

भाषार्थः—(प्राण) हे प्राण! [जीवनदाता परमेश्वर] (मत्) मुझ से (पर्यावृतः) पृथक् वर्तमान (मा) मत [हो] तू, (मत्) मुझ से (अन्यः) अन्य (न भविष्यसि) न होगा। (प्राण) हे प्राण! [जीवनदाता परमेश्वर] (अपाम्) प्राणियों [वा जल] के (गर्भम् इव) गर्भ के समान (त्वा) तुझको (जीवसे) [अपने] जीवन के लिये (मयि) अपने में (बध्नामि) बांधता हूं ।।२६।।

भावार्थः—जैसे गर्भ प्राणियों में और अग्नि, जल के भीतर चेष्टा करता है, वैसे ही मनुष्य परमात्मा को हृदय में धारण करके उन्नति करे ।।२६।।

इति द्वितीयोऽनुवाकः ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥५॥

१—२६ ॥ ब्रह्मचारी देवता ॥ १, ९, २३ आर्षीत्रिष्टुप्, २ भुरिगतिजगती, ३ भुरिगार्षी त्रिष्टुप्, ४, ५, २४ त्रिष्टुप्, ६ स्वराड् जगती, ७ विराड् जगती, ८ स्वराट् त्रिष्टुप्, १० भुरिक् त्रिष्टुप्, ११, १३ जगती, १२ भुरिगार्षी जगती, १४, १६—२२ अनुष्टुप्, १५ पुरस्ताद् ज्योतिस्त्रिष्टुप्, २५ आर्च्युष्णिक्, २६ भुरिक् पथ्या पङ्क्तिः ॥

ब्रह्मचर्यमाहात्म्योपदेशः—ब्रह्मचर्य के महत्त्व का उपदेश ॥

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं१ तपसा पिपर्ति ॥१॥

भाषार्थः—(**ब्रह्मचारी**) ब्रह्मचारी [वेदपाठी और वीर्यनिग्राहक पुरुष] (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) सूर्य और पृथिवी को (**इष्णन्**) लगातार खोजता हुआ (**चरति**) विचरता है, (**तस्मिन्**) उस [ब्रह्मचारी] में (**देवाः**) विजय चाहने वाले पुरुष (**संमनसः**) एक मन (**भवन्ति**) होते हैं। (**सः**) उस ने (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**च**) और (**दिवम्**) सूर्य लोक को (**दाधार**) धारण किया है [उपयोगी बनाया है], (**सः**) वह (**आचार्यम्**) आचार्य [साङ्गोपाङ्ग वेदों के पढ़ाने वाले पुरुष] को (**तपसा**) अपने तप से (**पिपर्ति**) परिपूर्ण करता है ॥१॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन रूप तपोबल से सब सूर्य, पृथिवी आदि स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान पाकर और सब से उपकार लेकर विद्वानों को प्रसन्न करता हुआ वेद विद्या के प्रचार से आचार्य का इष्ट सिद्ध करता है ॥१॥

१—भगवान् पतञ्जलि मुनि ने इस सूक्त का सारांश लेकर कहा है—[ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः—योगदर्शन, पाद २ सूत्र ३८] (**ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायाम्**) ब्रह्मचर्य [वेदों के विचार और जितेन्द्रियता] के अभ्यास में (**वीर्यलाभः**) वीर्य [वीरता अर्थात् धैर्य, शरीर, इन्द्रिय और मनके निरतिशय सामर्थ्य] का लाभ होता है ॥

२—भगवान् मनु ने आचार्य का लक्षण इस प्रकार किया है। [उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते--मनुस्मृति, अध्याय २ श्लोक १४०] ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो द्विज [ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य] शिष्य का उपनयन करके कल्प [यज्ञ आदि संस्कार विधि] और रहस्य [उपनिषद् आदि ब्रह्मविद्या] के साथ वेद पढ़ावे, उसको "आचार्य" कहते हैं ॥

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे । गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥२॥

भाषार्थः—(सर्वे) सब (देवाः) व्यवहार कुशल, (पितरः) पालन करने वाले, (देवजनाः) विजय चाहने वाले पुरुष (पृथक्) नाना प्रकार से (ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी [मन्त्र १] के (अनुसंयन्ति) पीछे पीछे चलते हैं । (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस, (त्रिशताः) तीन सौ और (षट्सहस्राः) छह सहस्र [६, ३३३ अर्थात् बहुत से] (गन्धर्वाः) पृथिवी के धारण करने वाले [पुरुषार्थी पुरुष] (एनम् अनु) इस [ब्रह्मचारी] के साथ साथ (आयन्) चले हैं, (सः) वह (सर्वान्) सब (देवान्) विजय चाहने वालों को (तपसा) [अपने] तप से (पिपर्ति) भर पूर करता है ॥२॥

भावार्थः—सब विद्वान् पुरुषार्थी जन पूर्व काल से जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी के अनुशासन में चलकर आनन्द पाते आये हैं और पाते हैं ॥२॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः । तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥३॥

भाषार्थः – (ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी [वेदपाठी और जितेन्द्रिय पुरुष] को (उपनयमानः) समीप लाता हुआ [उपनयनपूर्वक वेद पढ़ाता हुआ] (आचार्यः) आचार्य (अन्तः) भीतर [अपने आश्रम में उसको] (गर्भम्) गर्भ [के समान] (कृणुते) बनाता है । (तम्) उस [ब्रह्मचारी] को (तिस्रः रात्रीः) तीन रात्रि (उदरे) उदर में [अपने शरण में] (बिभर्ति) रखता है, (जातम्) प्रसिद्ध हुए (तम्) उस [ब्रह्मचारी] को (द्रष्टुम्) देखने के लिये (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंयन्ति) मिल कर जाते हैं ॥३॥

भावार्थः—उपनयन संस्कार कराता हुआ आचार्य ब्रह्मचारी को, उसके उत्तम गुणों की परीक्षा लेने और उत्तम शिक्षा देने के लिये, तीन दिन रात्रि अपने समीप रखता है और ब्रह्मचर्य और विद्या पूर्ण होने पर विद्वान् लोग ब्रह्मचारी का आदर मान करते हैं ॥३॥

मन्त्र ३–७ महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, वर्णाश्रम विषय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृ० २३५-२३७ में, और मन्त्र ३, ४, ६, संस्कारविधि वेदारम्भ प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥४॥

भाषार्थः—(इयम्) यह [पहिली] (समित्) समिधा (पृथिवी) पृथिवी, (द्वितीया) दूसरी [समिधा] (द्यौः) सूर्य [समान है], (उत) और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को [तीसरी] (समिधा) समिधा से (पृणाति) वह पूर्ण करता है। (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (समिधा) समिधा से [यज्ञानुष्ठान से], (मेखलया) मेखला से [कटिबद्ध होने के चिन्ह से] (श्रमेण, परिश्रम से और (तपसा) तप से [ब्रह्मचर्यानुष्ठान से] (लोकान्) सब लोकों को (पिपर्ति) पालता है ॥४॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी हवन में तीन समिधायें छोड़ कर और कटिबन्धन आदि से उद्योग का अभ्यास प्रकट करके व्रत करता है कि वह ब्रह्मचर्य के साथ पृथिवी, सूर्य और अन्तरिक्ष विद्या को जानकर संसार का उपकार करेगा ॥४॥

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥५॥

भाषार्थः—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी [मन्त्र १] (ब्रह्मणः) वेदाभ्यास [के कारण] से (पूर्वः) प्रथम [गणना में पहिला] (जातः) प्रसिद्ध होकर (घर्मम्) प्रताप (वसानः) धारण करता हुआ (तपसा) [अपने ब्रह्मचर्य रूप] तपस्या से (उत् अतिष्ठत्) ऊंचा ठहरा है। (तस्मात्) उस [ब्रह्मचारी] से (ज्येष्ठम्) सर्वोत्कृष्ट (ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञान और (ब्रह्म) वृद्धिकारक धन (जातम्) प्रकट [होता है], (च) और (सर्वे देवाः) सब विद्वान् लोग (अमृतेन साकम्) अमरपन [मोक्ष सुख] के साथ [होते हैं] ॥५॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी वेदों के अभ्यास और जितेन्द्रियता आदि तपोबल के कारण बड़ा सत्कार पाकर सब को धर्म और सम्पत्ति का मार्ग दिखाकर विद्वानों को परमानन्द पहुंचाता है ॥५॥

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (समिधा) [विद्या के] प्रकाश से (समिद्धः) प्रकाशित, (कार्ष्णम्) कृष्ण मृग का चर्म (वसानः) धारण किये हुए (दीक्षितः) दीक्षित होकर [व्रत धारण करके] (दीर्घश्मश्रुः) बड़े बड़े दाढ़ी मूछ रखाये हुए (एति) चलता है। (सः) वह (सद्यः) अभी (पूर्वस्मात्) पहिले [समुद्र] से [अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम से] (उत्तरम् समुद्रम्) पिछले समुद्र [गृहाश्रम] को (एति) प्राप्त होता है और (लोकान्) लोगों को (संगृभ्य) संग्रह करके (मुहुः) वारम्वार (आचरिक्रत्) अतिशय करके पुकारता रहे ॥६॥

भावार्थः— ब्रह्मचारी वस्त्र और केश आदि शारीरिक बाहिरी बनावट की उपेक्षा करके सत्य धर्म और ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण करके गृहाश्रम में प्रवेश करता हुआ लोगों में सत्य का प्रचार करे ॥६॥

ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥७॥

भाषार्थः—(ब्रह्म) वेद विद्या (अपः) प्राणों, (लोकम्) संसार और (प्रजापतिम्) प्रजापालक (परमेष्ठिनम्) सबसे ऊंचे मोक्ष पद में स्थिति वाले (विराजम्) विविध जगत् के प्रकाशक [परमात्मा] को (जनयन्) प्रकट करते हुए (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी ने (अमृतस्य) अमरपन [अर्थात् मोक्ष] की (योनौ) योनि [उत्पत्ति स्थान अर्थात् ब्रह्मविद्या] में (गर्भः) गर्भ (भूत्वा) होकर [गर्भ के समान नियम से रहकर] और (ह) निस्सन्देह (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला [अथवा सूर्य समान प्रतापी] (भूत्वा) होकर (असुरान्) असुरों [दुष्ट पाखण्डियों] को (ततर्ह) नष्ट किया है ॥७॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी वेदविद्या, प्राणविद्या, लोकविद्या, और ईश्वर स्वरूप का प्रकाश करके मोक्ष मार्ग में दृढ़ होकर ऐश्वर्य प्राप्त करता और पाखण्डों को नष्ट करता है ॥७॥

आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥८॥

भाषार्थः—(आचार्यः) आचार्य [साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ाने वाले] ने (उभे) दोनों (इमे) इन (नभसी) परस्पर बंधी हुई, (उर्वी) चौड़ी, (गम्भीरे) गहरी (पृथिवीम्) पृथिवी (च) और (दिवम्) सूर्य को (ततक्ष) सूक्ष्म बनाया है [उपयोगी किया है]। (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तपसा) तप से (ते) उन दोनों की (रक्षति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा करता है, (तस्मिन्) उस [ब्रह्मचारी] में (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (संमनसः) एकमन (भवन्ति) होते हैं ॥८॥

भावार्थः—आचार्य और ब्रह्मचारी श्रवण, मनन और निदिध्यासन से विद्या प्राप्त करके संसार के पृथिवी सूर्य आदि सब पदार्थों का तत्त्व जानकर उन्हें उपयोगी बनाते हैं ॥८॥

इस मन्त्र का चौथा पाद प्रथम मन्त्र के दूसरे पाद में आ चुका है ॥

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥९॥

भाषार्थः—(इमाम्) इस (पृथिवीम्) चौड़ी (भूमिम्) भूमि (च) और (दिवम्) सूर्य को (प्रथमः) पहिले [प्रधान] (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी ने (भिक्षाम्) भिक्षा (आ जभार) लिया था। (ते) उन दोनों को (समिधौ) दो समिधा [के समान] (कृत्वा) बनाकर (उप आस्ते) [ईश्वर की] उपासना करता है, (तयोः) उन दोनों में (विश्वा) सब (भुवनानि) भुवन (आर्पिताः) स्थापित हैं ॥९॥

भावार्थः—महाविद्वान् पुरुष पृथिवी और सूर्य आदि के तत्त्वों को जानकर और उपयोगी बनाकर, होमीय अग्नि में दो काष्ठ छोड़कर उन [भूमि और सूर्य] को लक्ष्य में रखता है कि वह इस प्रकार सब संसार का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करे ॥९॥

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥१०॥

भाषार्थः—(ब्राह्मणस्य) ब्रह्मज्ञान के (निधी) दो निधि [कोश] (गुहा) गुहा [गुप्त दशा] में (निहितौ) गढ़े हैं, (अन्यः) एक (अर्वाक्) समीपवर्ती और (अन्यः) दूसरा (दिवः) सूर्य की (पृष्ठात्) पीठ [उपरिभाग] से (परः) परे [दूर] है। (तौ) उन दोनों [निधियों] को (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तपसा) अपने तप से (रक्षति) रखता है, (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] को (विद्वान्) जानता हुआ वह (तत्) उस [ब्रह्म] को (केवलम्) केवल [सेवनीय, निश्चित] (कृणुते) कर लेता है ॥१०॥

भावार्थः—परमेश्वर का ज्ञान निकट और दूर अवस्था में रहकर सब स्थानों में वर्तमान है, अनन्यवृत्ति, ब्रह्मचारी योगी तप की महिमा से ब्रह्म का साक्षात् करके और उसकी शरण में रहकर अपनी शक्तियाँ बढ़ाता है ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्तानां तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥११॥

भाषार्थः – (अग्नी) दो अग्नि (इमे) इन दोनों (नभसी अन्तरा) परस्पर बंधे हुए सूर्य और पृथिवी के बीच (समेतः) मिलती हैं, (अन्यः) एक [अग्नि] (अर्वाक्) समीपवर्ती और (अन्यः) दूसरी (इतः पृथिव्याः) इस पृथिवी से [दूर] है। (तयोः) उन दोनों की (रश्मयः) किरणें (दृढाः) दृढ़ होकर (अधि) अधिकार पूर्वक [पदार्थों में] (श्रयन्ते) ठहरती हैं, (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तपसा) तप से (तान्) उन [किरणों] में (आतिष्ठति) ऊपर बैठता है ॥११॥

भावार्थः—पृथिवी और सूर्य की दोनों अग्नि मिलकर पदार्थों में बल प्रदान करती हैं। ब्रह्मचारी योगी सूक्ष्म दृष्टि [अथवा अणिमा लघिमा सिद्धियों] द्वारा उन किरणों में प्रवेश करता है ॥११॥

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिश-श्चतस्रः ॥१२॥

भाषार्थः– (अभिक्रन्दन्) सब ओर शब्द करता हुआ, (स्तनयन्) गरजता हुआ, (शितिङ्गः) प्रकाश और अन्धकार में चलने वाला, (अरुणः) गतिमान् [वा सूर्य के समान प्रतापी पुरुष] (भूमौ) भूमि पर (बृहत्) बड़ा (शेपः) उत्पादन सामर्थ्य (अनु) निरन्तर (जभार) लाया है। (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (पृथिव्याम्) पृथिवी के ऊपर (सानौ) पहाड़ के सम स्थान पर (रेतः) बीज (सिञ्चति) सींचता है, (तेन) उस से (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (जीवन्ति) जीवन करती हैं ॥१२॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुषार्थी ब्रह्मचारी यन्त्र, कला, नौका, यान, विमान आदि वृद्धि के अनेक साधनों से पृथिवी के जल, थल और पहाड़ों को उपजाऊ बनाता है ॥१२॥

इस मन्त्र का चौथा पाद—अथर्व० ९।१०।१९, के पाद ४, तथा ऋग्वेद १।१६४।४२, पाद २ में है ॥

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्य१प्सु समिधमा दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥१३॥

भाषार्थः—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (अग्नौ) अग्नि में, (सूर्ये) सूर्य में, (चन्द्र-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मसि) चन्द्रमा में, (मातरिश्वन्) आकाश में चलने वाले पवन में और (अप्सु) जल धाराओं में (समिधम्) समिधा [प्रकाशसाधन] को (आ दधाति) सब प्रकार से धरता है। (तासाम्) उन [जलधाराओं] की (अर्चींषि) ज्वालायें (पृथक्) नाना प्रकार से (अभ्रे) मेघ में (चरन्ति) चलती हैं, (तासाम्) उन [जल धाराओं] का (आज्यम्) घृत [सार पदार्थ] (पुरुषः) पुरुष, (वर्षम्) वृष्टि और (आपः) सब प्रजायें हैं ॥१३॥

भावार्थः ब्रह्मचारी अपने विद्याबल से अग्नि, सूर्य आदि के तत्त्वों को जान लेता है और उस जल का भी ज्ञान प्राप्त करता है जो बिजुली के संसर्ग से वृष्टि होकर मनुष्य, जल, और सब प्राणी आदि की सृष्टि का कारण होता है ॥१३॥

आचार्यों मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम् ॥१४॥

भाषार्थः—(आचार्यः) आचार्य (मृत्युः) मृत्यु [रूप] (वरुणः) जल [रूप], (सोमः) चन्द्र [रूप], (ओषधय) ओषधें [अन्न आदिरूप] और (पयः) दूध [रूप] हुआ है। (जीमूताः) अनावृष्टि जीतने वाले, मेघ [उस के लिये] (सत्वानः) गतिशील वीर [रूप] (आसन्) हुए हैं, (तैः) उन के द्वारा (इदम्) यह (स्वः) मोक्षसुख-(आभृतम्) लाया गया है ॥१४॥

भावार्थः—आचार्य, साङ्गोपाङ्ग और सरहस्य वेदों का पढ़ाने वाला पुरुष, दोषों के नाश करने को मृत्यु रूप और सद्गुणों के बढ़ाने को जल, चन्द्र आदि रूप होकर संसार में मेघों के समान सुख बढ़ाता है ॥१४॥

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः ॥१५॥

भाषार्थः—(वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (आचार्यः) आचार्य (भूत्वा) होकर [उस वस्तु को] (अमा) घर में (घृतम्) प्रकाशित और (केवलम्) केवल [सेवनीय] (कृणुते) करता है, (यद्यत्) जो (प्रजापतौ) प्रजापति [प्रजापालक परमेश्वर] के विषय में (ऐच्छत्) उस ने चाहा है। और (तत्) उसको (मित्रः) स्नेही (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी ने (आत्मनः) अपने से (अधि) अधिकार पूर्वक (स्वान्) ज्ञाति के लोगों को (प्र अयच्छत्) दिया है ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी होकर ब्रह्मविद्या का उपार्जन करे और उसको आत्मीय वर्गों में यथावत् फैलावे ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥१६॥

भाषार्थः— (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (आचार्यः) आचार्य, और (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी [ही] (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य, होता है] । और (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक होकर] (वि) विविध प्रकार (राजति) राज्य करता है, (विराट्) विराट् [बड़ा राजा] (वशी) वश में करने वाला, [शासक] (इन्द्रः) इन्द्र, [बड़े ऐश्वर्य वाला] (अभवत्) हुआ है ॥१६॥

भावार्थः– ब्रह्मचारी सर्वशिक्षक, और प्रजापालन नीति में चतुर होकर प्रजा का पालन और शासन करके बड़ा प्रतापी होता है, यह नियम पहिले से चला आता है ॥१६॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥१७॥

भाषार्थः —(ब्रह्मचर्येण) वेद विचार और जितेन्द्रियता रूपी (तपसा) तप से (राजा) राजा (राष्ट्रम्) राज्य को (वि) विशेष करके (रक्षति) पालता है । (आचार्यः) आचार्य [अङ्गों, उपाङ्गों और रहस्य सहित वेदों का अध्यापक] (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेद विद्या और इन्द्रिय दमन] से (ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी [वेद विचारने वाले जितेन्द्रिय पुरुष] को (इच्छते) चाहता है ॥१७॥

भावार्थः– ब्रह्मचर्य रूप तपस्या धारण करने वाला राजा प्रजापालन में निपुण होता है और ब्रह्मचर्य के कारण आचार्य, विद्या वृद्धि के लिये ब्रह्मचारी से प्रीति करता है ॥१७॥

मन्त्र १७, १८, १९ स्वामी दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वर्णाश्रम विषय पृष्ठ २३७ और मन्त्र १७, १८ संस्कारविधि वेदारम्भ प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या ३ युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥१८॥

भाषार्थः—(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन और इन्द्रियनिग्रह] से (कन्या) कन्या [कामना योग्य पुत्री] (युवानम्) युवा [ब्रह्मचर्य से बलवान्] (पतिम्) पति [पालनकर्ता वा ऐश्वर्यवान् भर्ता] को (विन्दते) पाती है । (अनड्वान्) [रथ ले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलने वाला] बैल और (अश्वः) घोड़ा (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के साथ [नियम से ऊर्ध्वरेता होकर] (घासम्=घासेन) घास से (जिगीर्षति) सींचना [गर्भाधान करना] चाहता है ॥१८॥

भावार्थः—कन्या ब्रह्मचर्य से पूर्ण विदुषी और युवती होकर पूर्ण ब्रह्मचारी विद्वान् युवा पुरुष से विवाह करे, और जैसे बैल घोड़े आदि बलवान् और शीघ्रगामी पशु घास तिनके खाकर ब्रह्मचर्य नियम से समय पर बलवान् सन्तान उत्पन्न करते हैं, वैसे ही मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचारी, विद्वान् युवा होकर अपने सदृश कन्या से विवाह करके नियम पूर्वक बलवान्, सुशील सन्तान उत्पन्न करें ॥१८॥

वैदिक यन्त्रालय अजमेर, और गवर्नमेंट बुकडिपो बम्बई के पुस्तकों में (जिगीर्षति) पद है जिसका अर्थ [सींचना चाहता है,] है, और सेवकलाल कृष्णदास वाले पुस्तक और महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में (जिगीषति) है जिसका अर्थ [जीतना चाहता है] है ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१ राभरत् ॥१९॥

भाषार्थः—(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन], (तपसा) तप से (देवाः) विद्वानों ने (मृत्युम्) मृत्यु [मृत्यु के कारण निरुत्साह, दरिद्रता आदि] को (अप) हटाकर (अघ्नत) नष्ट किया है। (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [नियम पालन] से (ह) ही (इन्द्रः) सूर्य ने (देवेभ्यः) उत्तम पदार्थों के लिये (स्वः) सुख अर्थात् प्रकाश को (आ अभरत्) धारण किया है ॥१९॥

भावार्थः—विद्वान् लोग वेदों को पढ़ने और इन्द्रियों को वश में करने से आलस्य, निर्धनता आदि दूर करके मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं, और सूर्य, ईश्वर नियम पूरा करके, अपने प्रकाश से संसार में उत्तम उत्तम पदार्थ प्रकट करता है ॥१९॥

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२०॥

भाषार्थः—(ओषधयः) ओषधें [अन्न आदि पदार्थ] और (वनस्पतिः) वनस्पति [पीपल आदि वृक्ष], (भूतभव्यम्) भूत और भविष्यत् जगत्, (अहोरात्रे) दिन और रात्रि। (ऋतुभिः सह) ऋतुओं के सहित (संवत्सरः) वर्ष [जो हैं] (ते) वे सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी [वेदपाठी और इन्द्रिय निग्राहक पुरुष] से (जाताः) प्रसिद्ध [होते हैं] ॥२०॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी पिछले मनुष्यों के उदाहरण से भविष्यत् सुधार कर ओषधि और समय आदि से उपकार लेकर उन्हें प्रसिद्ध करता है ॥२०॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२१॥

भाषार्थः—(पार्थिवाः) पृथिवी के और (दिव्याः) आकाश के पदार्थ और (ये) जो (आरण्याः) वन के (च) और (ग्राम्याः) गांव के (पशवः) पशु हैं। (अपक्षाः) विना पंख वाले (च) और (ये) जो (पक्षिणः) पंख वाले जीव हैं, (ते) वे (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी से (जाताः) प्रसिद्ध [होते हैं] ॥२१॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी ही पृथिवी आदि के पदार्थों और जीवों के गुणों को प्रकाशित करता है ॥२१॥

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥२२॥

भाषार्थः—(सर्वे, सब (प्राजापत्याः) प्रजापति [परमात्मा] के उत्पन्न किये प्राणी (प्राणान्) प्राणों को (आत्मसु) अपने में (पृथक्) अलग अलग (बिभ्रति) धारण करते हैं। (तान् सर्वान्) उन सब [प्राणियों] को (ब्रह्मचारिणि) ब्रह्मचारी में (आभृतम्) भर दिया गया (ब्रह्म) वेदज्ञान (रक्षति) पालता है ॥२२॥

भावार्थः—परमेश्वर के नियम से सब प्राणी शरीर धारण करके ब्रह्मचर्य क पालन से उन्नति करते हैं ॥२२॥

देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥२३॥

भाषार्थः—(देवानाम्) प्रकाशमान लोकों का (परिषूतम्) सर्वथा चलाने वाला, (अनभ्यारूढम्) कभी न हराया गया, (रोचमानम्) प्रकाशमान (एतत्) यह [व्यापक ब्रह्म] (चरति) विचारता है, (तस्मात्) उस [ब्रह्मचारी] से (ज्येष्ठम्) सर्वोत्कृष्ट (ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञान और (ब्रह्म) वृद्धिकारक धन (जातम्) प्रकट [होता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है], (च) और (सर्वे देवाः) सब विद्वान् (अमृतेन साकम्) अमरपन [मोक्षसुख] के साथ [होते हैं] ॥२३॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी सर्व प्रेरक सर्वशक्तिमान् परमात्मा के गुणों को प्रकट करके संसार में ज्ञान और धन बढ़ाकर सबको मोक्ष सुख का अधिकारी बनाता है ॥२३॥

इस मन्त्र का तीसरा, और चौथा पाद मन्त्र ५ में आ चुका है ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजंद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥२४॥

भाषार्थः—(भ्राजत्) प्रकाशमान (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी [वेद पाठक और वीर्य निग्राहक पुरुष] (ब्रह्म) वेदज्ञान को (बिभर्ति) धारण करता है, (तस्मिन्) उस [ब्रह्मचारी] में (विश्वे देवाः) सब उत्तम गुण (अधि) यथावत् (समोताः) ओत प्रोत होते हैं। वह [ब्रह्मचारी] (प्राणापानौ) प्राण और अपान [श्वास प्रश्वास विद्या] को, (आत्) और (व्यानम्) व्यान [सर्वशरीरव्यापक वायु विद्या] को, (वाचम्) वाणी [भाषण विद्या] को, (मनः) मन [मनन विद्या] को, (हृदयम्) हृदय [के ज्ञान] को, (ब्रह्म) ब्रह्म [परमेश्वर ज्ञान] को और (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को (जनयन्) प्रकट करता हुआ [वर्तमान होता है] ॥२४॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी वेदों के शब्द, अर्थ और सम्बन्ध जानकर और सम्पूर्ण उत्तम गुणों से सम्पन्न होकर अनेक विद्याओं का प्रकाश करता और बुद्धि का चमत्कार दिखाता है ॥२४॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि वेदारम्भ प्रकरण में व्याख्यात है ॥

चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥२५॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्मचारी !] (अस्मासु) हम लोगों में (चक्षुः) नेत्र, (श्रोत्रम्) कान, (यशः) यश (अन्नम्) अन्न, (रेतः) वीर्य, (लोहितम्) रुधिर और (उदरम्) उदर [की स्वस्थता] (धेहि) धारण कर ॥२५॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि वेदवेत्ता विवेकी विद्वान् से नेत्रादि की स्वस्थता की शिक्षा प्राप्त करके आत्मा की शुद्धि से यशस्वी बलवान् होवें ॥२५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥२६॥**

भाषार्थः—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तानि) उन [कर्मों] को (कल्पत्) करता हुआ (समुद्रे) समुद्र [के समान गम्भीर ब्रह्मचर्य] में (तपः तप्यमानः) तप तपता हुआ [वीर्यनिग्रह आदि तप करता हुआ] (सलिलस्य पृष्ठे) जल के ऊपर [विद्यारूप जल में स्नान करने के लिये] (अतिष्ठत्) स्थित हुआ है। (सः) वह (स्नातः) स्नान किये हुये [स्नातक ब्रह्मचारी] (बभ्रुः) पोषण करने वाला और (पिङ्गलः) बलवान् होकर (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (बहु) बहुत (रोचते) प्रकाशमान होता है ॥२६॥

भावार्थः—तपस्वी ब्रह्मचारी वेदपठन, वीर्यनिग्रह, और आचार्य की सन्तुष्टि से विद्या में स्नातक होकर और समावर्तन करके अपने उत्तम गुण कर्म से संसार का उपकार करता हुआ यशस्वी होता है ॥२६॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि समावर्तन प्रकरण में व्याख्यात है ॥

सूक्तम् ॥६॥

१—२३ ॥ मन्त्रोक्ताग्न्यादयो देवताः ॥ १—५, ७–११, १३, १६, १७, १९–२२ अनुष्टुप्, ६, १२, १४, १५ निचृदनुष्टुप्, १८, निचृत्पथ्या पङ्क्तिः, २३ भुरिगनुष्टुप् ॥

कष्टनिवारणायोपदेशः—कष्ट हटाने के लिये उपदेश ॥

**अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः ।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥**

भाषार्थः—(अग्निम्) अग्नि, (वनस्पतीन्) वनस्पतियों [बड़े वृक्षों] (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदिकों], (उत) और (वीरुधः) [विविध प्रकार उगने वाली] जड़ी बूटियों, (इन्द्रम्) इन्द्र [मेघ] और (बृहस्पतिम्) बड़े बड़े लोकों के पालन करने वाले (सूर्यम्) सूर्य का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१॥

भावार्थः—विद्वानों को योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों के गुण जानकर उनसे यथावत् उपकार लेकर दुःखों का नाश करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२॥

भाषार्थः—(वरुणम्) श्रेष्ठ (राजानम्) राजा, (मित्रम्) मित्र, (विष्णुम्) कर्मों में व्यापक विद्वान् (अथो) और (भगम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (अंशम्) विभाग करने वाले और (विवस्वन्तम्) विविध स्थान में निवास करने वाले पुरुष का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥२॥

भावार्थः—धार्मिक राजा और सब विद्वान् पुरुष मिलकर परस्पर रक्षा करके यश प्राप्त करें ॥२॥

ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥३॥

भाषार्थः—(देवम्) विजयी, (सवितारम्) प्रेरक, (धातारम्) धारण करने वाले (उत) और (पूषणम्) पोषण करने वाले पुरुष को (ब्रूमः) हम पुकारते हैं। (अग्रियम्) अग्रगामी (त्वष्टारम्) सूक्ष्मदर्शी पुरुष को (ब्रूमः) हम पुकारते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥३॥

भावार्थः—जहां पर शूरवीर विद्वान् पुरुष होते हैं, वे परस्पर रक्षा करते हैं ॥३॥

गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४॥

भाषार्थः—(गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्वों [पृथिवी के धारण करने वालों और अप्सरों [आकाश में चलने वाले पुरुषों] को और (अश्विना) कामों में व्यापक रहने वाले दोनों [माता पिता के समान हितकारी] (ब्रह्मणः पतिम्) वेद के रक्षक [आचार्य आदि] को (ब्रूमः) हम पुकारते हैं। (यः) जो (अर्यमा) न्यायकारी (नाम) प्रसिद्ध (देवः) विजयी पुरुष है [उसको भी], (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥४॥

भावार्थः हम विविध विद्या निपुण पुरुषों से सहाय लेकर परस्पर रक्षा करें ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥५॥

भाषार्थः—(इदम्) अब (अहोरात्रे) दिन और राति का और (उभा) दोनों (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (विश्वान्) सब (आदित्यान्) प्रकाशमान विद्वानों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्सङ्ग से सूर्य और चन्द्रमा की विद्या और नियम जानकर अपने समय का सुप्रबन्ध करें ॥५॥

वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः ।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥६॥

भाषार्थः—(वातम्) वायु, (पर्जन्यम्) मेघ, (अन्तरिक्षम्) आकाश (अथो) और (दिशः) दिशाओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (च) और (सर्वाः) सब (आशाः) विदिशाओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे [पदार्थ] (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥६॥

भावार्थः– मनुष्य वायु, मेघ, अन्तरिक्ष, दिशा और विदिशाओं के पदार्थों से उपकार लेकर सुखी होवें ॥६॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥७॥

भाषार्थः—(अहोरात्रे) दिन और रात्रि (अथो) और (उषाः) उषा [प्रभात वेला] (मा) मुझे (शपथ्यात्) शपथ में होने वाले दोष से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें। (देवः) उत्तम गुण वाला (सोमः) ऐश्वर्यवान्, (यम्) जिसको, "(चन्द्रमाः इति) यह चन्द्रमा है"—(आहुः) कहते हैं, (मा) मुझे (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य दिन रात्रि और प्रातः सायं चन्द्रमा के समान शान्त स्वभाव होकर सत्य शपथ आदि वचन करके आनन्द भोगें ॥७॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥८॥

भाषार्थः – (ये) जो (पार्थिवाः) पृथिवी के, (दिव्याः) आकाश के (पशवः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणी (उत) और (आरण्याः) जंगल के (मृगाः) जन्तु हैं [उनको]। और (शकुन्तान्) शक्ति वाले (पक्षिणः) पक्षियों को (ब्रूमः) हम पुकारते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥८॥

भावार्थः मनुष्य प्रयत्न करें कि पृथिवी, जङ्गल और आकाश के सब प्राणी सुखदायक होवें ॥८॥

इस मन्त्र का मिलान—अथर्व० ११। ५। २१। से करो॥

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ॥९॥

भाषार्थः (इदम्) अब (भवाशर्वौ) भव [सुखोत्पादक] और शर्व [दुःखनाशक दोनों पुरुषों] को (च) और (रुद्रम्) रुद्र [ज्ञान दाता पुरुष] को, (यः) जो (पशुपतिः) प्राणियों का रक्षक है, (ब्रूमः) हम पुकारते हैं। [इसलिये कि] (एषाम्) इन सब के (याः इषूः) जिन तीरों को (संविद्म) हम पहिचानते हैं, (ताः) वे (नः) हमारे लिये (सदा) सदा (शिवाः) कल्याणकारी (सन्तु) होवें ॥९॥

भावार्थः- जिन पुरुषों के अस्त्रशस्त्रधारी योद्धा पुरुष सहायक होते हैं; वे शत्रुओं का नाश करके सुख पाते हैं ॥९॥

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१०॥

भाषार्थः—(दिवम्) आकाश, (नक्षत्राणि) नक्षत्रों, (भूमिम्) भूमि, (यक्षाणि) पुण्य स्थानों, और (पर्वतान्) पर्वतों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (समुद्राः) सब समुद्र, (नद्यः) नदियां और (वेशन्ताः) सरोवर [जो हैं उनका भी], (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१०॥

भावार्थः मनुष्य आकाश, नक्षत्र, भूमि आदि पदार्थों के गुण कर्म जानकर और उनका यथावत् उपयोग करके आनन्दित रहें ॥१०॥

सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११॥

भाषार्थः—(इदम्) अब (वै) निश्चय करके (सप्तर्षीन्) सात ऋषियों [व्यापनशील वा दर्शनशील अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि] का (देवीः) [उनकी] दिव्य गुणवाली (अपः) व्याप्तियों का और (प्रजापतिम्) प्रजापति [प्रजा पालक आत्मा] का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (यमश्रेष्ठान्) यम नियमों को श्रेष्ठ [प्रधान] रखने वाले (पितॄन्) पालन करने वाले गुणों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य सब इन्द्रियों, मन, बुद्धि, उनकी शक्तियों, आत्मा और यम नियमों से पाने योग्य उत्तम गुणों का यथावत् विचार करके दुःख से निवृत्ति पावें ॥११॥

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।
पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१२॥

भाषार्थः—(ये) जो (देवाः) दिव्य गुण (दिविषदः) सूर्य में वर्तमान (च) और (ये) जो (अन्तरिक्षसदः) अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं। और (ये) जो (शक्राः) शक्ति वाले गुण (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (श्रिताः) स्थित हैं, (ते) (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य आदि के गुणों को साक्षात् करके सुख प्राप्त करें ॥१२॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध—अथर्व० १० । ६ । १२ में आ चुका है ॥

आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३॥

भाषार्थः (दिवि) विजय की इच्छा में [वर्तमान] (आदित्याः) प्रकाशमान, (रुद्राः) दुःखनाशक, (वसवः) निवास कराने वाले, (देवाः) व्यवहार कुशल (अथर्वाणः) निश्चल स्वभाव, (अङ्गिरसः) ज्ञानी और (मनीषिणः) बुद्धिमान् लोग [जो हैं] (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१३॥

भावार्थः—तेजस्वी, महर्षि महात्मा लोग इन्द्रियदमन आदि से बाहिरी और भीतरी दोषों का नाश करते हैं ॥१३॥

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१४॥

भाषार्थः—(यज्ञम्) यज्ञ [सङ्गतिकरण आदि व्यवहार], (यजमानम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजमान [सङ्गतिकरण आदि व्यवहार करने वाले], (ऋचः) ऋचाओं [स्तुति विद्याओं] और (भेषजा) भय निवारक (सामानि) मोक्ष ज्ञानों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (यजूंषि) सत्कर्मों के ज्ञानों और (होत्राः) [दान करने और ग्रहण करने योग्य] वेद विद्याओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे [पदार्थ] (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है यज्ञ, यज्ञकर्त्ता और पदार्थों के गुण और मोक्ष विद्याओं आदि के तत्त्वज्ञान से आनन्द प्राप्त करें ॥१४॥

पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५॥

भाषार्थः—(वीरुधाम्) जड़ी बूटियों के (सोमश्रेष्ठानि) सोम [ओषधि विशेष] को प्रधान रखने वाले (पञ्च) पांच [पत्ता, डंडी, फूल, फल और जड़ रूप] (राज्यानि) राज्यों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। [रोगों का] (दर्भः) चीर फाड़ना, (भङ्गः) नाश करना, (यवः) मिलाना [भर देना] और (सहः) बल [यह उनके गुण हैं], (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्य सोम आदि जड़ी बूटियों के पत्ते आदि के गुणों से यथोचित उपकार लेकर रोग निवृत्ति करके हृष्ट पुष्ट रहें ॥१५॥

अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१६॥

भाषार्थः—(अरायान्) अदाताओं, (रक्षांसि) राक्षसों, (सर्पान्) सर्पों [सर्प समान क्रूर स्वभावों], (पुण्यजनान्) पुण्यात्माओं और (पितॄन्) पालनकर्ताओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (एकशतम्) एक सौ एक [अपरिमित] (मृत्यून्) मृत्युओं [मृत्यु के कारणों] का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्य दुःखदायी दुष्टों के त्याग से और पुण्यात्माओं के सत्सङ्ग से मृत्यु के कारणों से बचकर सदा आनन्द भोगें ॥१६॥

ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (ऋतून्) ऋतुओं, (ऋतुपतीन्) ऋतुओं के स्वामियों [सूर्य, वायु आदिकों], (आर्तवान्) ऋतुओं से उत्पन्न होने वाले (हायनान्) पाने योग्य चावल आदि पदार्थों, (संवत्सरान्) बरसों, (मासान्) महीनों (उत) और (समाः) सब अनुकूल क्रियाओं का (ब्रूमः) हम कथन करते है, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१७॥

भावार्थः ज्ञानी पुरुष ज्योतिष आदि विद्या से वसन्त आदि ऋतुओं, और उनके कारणों सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथिवी आदि और उनकी अनुकूल क्रियाओं से सब काल में उपकार लेकर आनन्द पावें। १७॥

यह मन्त्र बहुत कुछ—अथर्व० ३। १०। ६ से मिलता है॥

एतं देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्चं उदेत । पुरस्तादु-

त्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१८॥

भाषार्थः—(देवाः) हे देवताओ! [वीर पुरुषो] (दक्षिणतः) दक्षिण से (आ इत) आओ (पश्चात्) पश्चिम से, (पुरस्तात्) पूर्व से (उत्तरात्) उत्तर से, (शक्राः) शक्तिमान् (विश्वे) सब (देवाः) महात्माओ तुम (समेत्य) मिलकर (प्राञ्चः) आगे बढ़ते हुए (उदेत) ऊपर आओ, (ते) वे [आप] (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) बचावें ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्य सब देशों के वीर विद्वानों से विद्या प्राप्त करके विपत्तियों को हटावें ॥१८॥

विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।

विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१९॥

भाषार्थः—(इदम्) अब (विश्वान्) सब (देवान्) विजय चाहने वालों, (सत्यसंधान्) सत्य प्रतिज्ञा वालों और (ऋतवृधः) सत्य ज्ञान के बढ़ाने वालों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। [अपनी] (विश्वाभिः) सब (पत्नीभिः सह) पत्नियों [वा पालन शक्तियों] के साथ (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्य वीर, सत्यवक्ता, सत्यकर्मी और सत्य विद्याओं के प्रचारक स्त्री पुरुषों के सत्संग और सहाय से सुख बढ़ावें ॥१९॥

सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।

सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इदम्) अब (सर्वान्) सब (देवान्) व्यवहार जानने वालों, (सत्यसंधान्) सत्य के खोजने वालों, और (ऋतवृधः) सत्य ज्ञान से बढ़ने वालों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। [अपनी] (सर्वाभिः) सब (पत्नीभिः सह) पत्नियों [वा पालन शक्तियों] के साथ, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) बचावें ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्य सब व्यवहारकुशल, सत्यशील, धर्म्मात्मा स्त्री पुरुषों से शिक्षा प्राप्त करके आनन्दित होवें ॥२०॥

भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२१॥

भाषार्थः—(भूतम्) ऐश्वर्यवान्, विचारशील [योगीन्द्र] का, (भूतपतिम्) प्राणियों के पालन कर्ता का, (उत) और (भूतानाम्) तत्त्वों [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश द्रव्यों] को (यः) जो (वशी) वश में करने वाला पुरुष है [उसका] (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (सर्वा) सब (भूतानि) प्राणियों से (संगत्य) मिलकर (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥२१॥

भावार्थः—मनुष्य जितेन्द्रिय, सर्वहितैषी तत्त्ववेत्ता जनों से गुण ग्रहण करके क्लेश का नाश करें ॥२१॥

या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ॥२२॥

भाषार्थः—(याः) जो (देवीः) उत्तम गुण वाली (पञ्च) पांच [पूर्वादि चार और एक उपर-नीचे की] (प्रदिशः) बड़ी दिशायें और (ये) जो (देवाः) उत्तम गुण वाले (द्वादश) बारह [मन, बुद्धि सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय रूप] (ऋतवः) ऋतुएं [चलने वाले पदार्थ] हैं। और (संवत्सरस्य) वर्ष काल के (ये) जो (दंष्ट्राः) डंसने वाले गुण हैं, (ते) वे (नः) हमारे लिये (सदा) सदा (शिवाः) कल्याणकारी (सन्तु) होवें ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्य सब स्थानों और सब कालों में मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा शुभ काम करके विघ्नों से बचे ॥२२॥

यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मातली) इन्द्र [जीव] का रथवान् [मन] (रथक्रीतम्) रथ [शरीर] द्वारा पाये हुए (यत्) जिस (भेषजम्) भयनिवारक (अमृतम्) अमृत [अमरपन, मोक्षसुख] को (वेद) जानता है। (तत्) उस [अमृत] को (इन्द्रः) इन्द्र [परमेश्वर] ने (अप्सु) सब प्रजाओं में (प्र अवेशयत्) प्रवेश किया है, (आपः) हे प्रजाओ! (तत्) उस (भेषजम्) भय निवारक वस्तु [मोक्षसुख] का (दत्त) दान करो ॥२३॥

भावार्थः—जो मोक्षसुख शरीर द्वारा प्राप्त होकर मन से अनुभव किया जाता है, वह मोक्ष सुख ईश्वर नियम से सब प्राणियों को प्राप्य है। उसके पाने का प्रत्येक मनुष्य प्रयत्न करे ॥२३॥

इस मन्त्र का मिलान अथर्व० ८।९।५ से करो ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥७॥

१—२७ ॥ उच्छिष्टो देवता ॥ १—५, ७—१०, १२—२०, २३—२७ अनुष्टुप्, ६, २१ भुरिगनुष्टुप्, ११ पथ्या पङ्क्तिः, २२ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥

सर्वजगत्कारणपरमात्मोपदेशः—सब जगत् के कारण परमात्मा का उपदेश ॥

उच्छिष्टे नाम॑ रू॒पं चोच्छिष्टे लो॒क आहि॑तः ।
उच्छिष्ट॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॒ विश्व॑म॒न्तः स॒माहि॑तम् ॥१॥

भाषार्थः—(उच्छिष्टे) शेष [उत्पत्ति और प्रलय से बचे हुए अनन्त परमेश्वर] में [संसार के] (नाम) नाम (च) और (रूपम्) रूप हैं, (उच्छिष्टे) शेष [परमात्मा] में (लोकः) दृश्यमान संसार (आहितः) रक्खा हुआ है। (उच्छिष्टे अन्तः) शेष [जगदीश्वर] के भीतर (इन्द्रः) मेघ (च) और (अग्निः) अग्नि [सूर्य आदि] (च) भी और (विश्वम्) प्रत्येक पदार्थ (समाहितम्) बटोरा हुआ है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः – परमात्मा के सामर्थ्य में यह सब विविध दृश्यमान संसार वर्तमान है ॥१॥

परमेश्वर का नाम (उच्छिष्ट) अर्थात् शेष इसलिये है कि वह नित्य, अनादि, अनन्त और निर्विकार होकर उत्पत्ति और प्रलय से तथा स्थूल और सूक्ष्म रचना से बचा रहता है ॥

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥२॥

भाषार्थः—(उच्छिष्टे) शेष [अनन्त परमेश्वर] में (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी और (विश्वम्) प्रत्येक (भूतम्) सत्ता वाला (समाहितम्) एकत्र किया गया है। (उच्छिष्टे) शेष [जगदीश्वर] में (आपः) जलधारायें (समुद्रः) समुद्र (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (वातः) पवन (आहितः) रक्खा गया है ॥२॥

भावार्थः – स्पष्ट है ॥२॥

सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः ।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥३॥

भाषार्थः—(उच्छिष्टे) शेष [मंत्र १। परमात्मा] में (उभौ) दोनों (सन्) सत्तावाला [दृश्यमान, स्थूल] और (च) (असन्) असत्तावाला [अदृश्यमान परमाणु रूप संसार], (मृत्युः) मृत्यु (वाजः) पराक्रम और (प्रजापतिः) प्रजापालक गुण [हैं]। (उच्छिष्टे) शेष [परमेश्वर] में (लौक्याः) लौकिक पदार्थ (आयत्ताः) वशीभूत हैं, (च) और (व्रः) समूह [समष्टि रूप संसार] (च) और (द्रः) व्यक्ति [पृथक् पृथक् विशेष पदार्थ] (अपि) भी (मयि) मुझ [प्राणी] में [वर्तमान] (श्रीः) सम्पत्ति [परमात्मा में है] ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा के सामर्थ्य में ही यह सब स्थूल और परमाणु रूप जगत्, मृत्यु आदि और सब प्राणियों की (श्रीः) उत्तम सेवनीय शक्ति वर्तमान है ॥३॥

दृढो दृंहस्थिरोन्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश ।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥४॥

भाषार्थः—(दृढः) दृढ़, (दृंहस्थिरः) वृद्धि के साथ स्थिर और (न्यः) नायक [गुण] (ब्रह्म) वेदज्ञान और (दश) दस [आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पांच भूत, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच तन्मात्रायें] (विश्वसृजः) संसार बनाने वाले (देवताः) दिव्य पदार्थ (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] में (आश्रिताः) आश्रित हैं, (इव) जैसे (नाभिम् सर्वतः) नाभि के सब ओर (चक्रम्) पहिया [पहिये का प्रत्येक अरा लगा होता है] ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा की शक्ति में संसार के उत्तम उत्तम अचल नियम और पञ्चभूत और पञ्चतन्मात्रा आदि वर्तमान है ॥४॥

ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् ।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥५॥

भाषार्थः (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] में [वर्तमान] (ऋक्) वेदवाणी, (साम) मोक्ष विज्ञान, (यजुः) विद्वानों की पूजा, (उद्गीथः) उत्तम गान [वेदध्वनि आदि], (प्रस्तुतम्) प्रकरण अनुकूल (स्तुतम्) स्तोत्र [गुणों का व्याख्यान]। (उच्छिष्टे) शेष [जगदीश्वर] में [वर्त्तमान] (हिङ्कारः) वृद्धिकारक व्यवहार (स्वरः) स्वर [उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद] (च) और (साम्नः) सामवेद [मोक्षज्ञान] की (मेडिः) वाणी, (तत्) वह [सब] (मयि) मुझ [उपासक] में [होवे] ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य वेद द्वारा मोक्षज्ञान आदि सब उत्तम विद्यायें प्राप्त करके संसार में उपदेश करता हुआ कल्याण पावे ॥५॥

ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम् ।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ॥६॥

भाषार्थः—(ऐन्द्राग्नम्) इन्द्र [मेघ] और अग्नि [सूर्य, बिजुली आदि] का ज्ञान, (पावमानम्) शुद्धिकारक वायु का ज्ञान, (महानाम्नीः) बड़े नामों वाली [वेद विद्यायें] और (महाव्रतम्) महाव्रत और (यज्ञस्य) यज्ञ [देव पूजा, सङ्गतिकरण और दान व्यवहार] के (अङ्गानि) सब अङ्ग (उच्छिष्टे) शेष [म० १। परमात्मा] में हैं, (इव) जैसे (मातरि अन्तः) माता के [उदर के] भीतर (गर्भः) गर्भ [रहता है] ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर रचित पदार्थों और नियमों के ज्ञान को अपने में धारण करके वृद्धि करे, जैसे माता गर्भ को उदर में रखकर बढ़ाती है ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः ।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥७॥

भाषार्थः—(राजसूयम्) राजसूय [राजतिलक यज्ञ], (वाजपेयम्) वाजपेय [विज्ञान और बल का रक्षक यज्ञ] (अग्निष्टोमः) अग्निष्टोम [आग वा परमेश्वर वा विद्वान् के गुणों की स्तुति], (तत्) तथा (अध्वरः) सन्मार्ग देने वाला वा हिंसारहित व्यवहार, (अर्काश्वमेधौ) पूजनीय विचार और अश्वमेध [चक्रवर्ती राज्य पालन की मेधा अर्थात् बुद्धि वाला व्यवहार] और [अन्य] (मदिन्तमः) अत्यन्त हर्षदायक (जीवबर्हिः) जीवों की बढ़ती वाला व्यवहार (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमेश्वर] में हैं ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर की आराधना करते हुए राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध आदि यज्ञों से समस्त प्राणियों को आनन्द देवें ॥७॥

अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह ।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥८॥

भाषार्थः—(अग्न्याधेयम्) अग्न्याधान [अग्नि की स्थापना] (अथो) और (दीक्षा) दीक्षा [नियम पालन व्रत] (छन्दसा सह) वेद के साथ (कामप्रः) कामना पूरक व्यवहार, (उत्सन्नाः) ऊंचे चढ़े हुए (यज्ञाः) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] और (सत्राणि) बैठकें (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में (अधि) अधिकार पूर्वक (समाहिताः) एकत्र किये गये हैं ॥८॥

भावार्थः - परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से मनुष्य को यथावत् उन्नति करने के लिये वेद के साथ सत्यव्रत धारण आदि नियमों का उपदेश किया है ॥८॥

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः ।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥९॥

भाषार्थः (अग्निहोत्रम्) अग्निहोत्र [अग्नि में हवन] (च) और (श्रद्धा) श्रद्धा [भक्ति], (च) और (वषट्कारः) दानकर्म, (व्रतम्) व्रत [नियम] (तपः) तप [चित्त की एकाग्रता], (दक्षिणा) दक्षिणा [प्रतिष्ठा] (इष्टम्) वेदाध्ययन,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतिथ्य आदि (च) और (पूर्तम्) अन्नदानादि पुण्य कर्म (उच्छिष्टे) शेष [म० १। परमात्मा] में (अधि) अधिकार पूर्वक (समाहिताः) एकत्र किये गये हैं ॥९॥

भावार्थः—हवन और शिल्प आदि व्यवहारों में अग्नि का प्रयोग ईश्वर और वेद में श्रद्धा आदि कर्म परमेश्वर ने जगत् के हित के लिए नियत किये हैं ॥९॥

एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥१०॥

भाषार्थः—(एक रात्रः) एक रात्रि वाला, (द्विरात्रः) दो रात्रि वाला, (सद्यः क्रीः) तुरन्त ही मोल लिया गया, (प्रक्रीः) मोल लेने योग्य (उक्थ्यः) प्रशंसनीय [व्यवहार वा यज्ञ], [यह सब] (उच्छिष्टे) शेष [म० १। परमात्मा] में (ओतम्) ओत प्रोत [भली भांति बुना हुआ] (निहितम्) रक्खा हुआ है, और (विद्यया) विद्या के साथ (यज्ञस्य) [ईश्वर पूजा आदि] के (अणूनि) सूक्ष्म रूप [रक्खे हैं] ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा को सर्वव्यापक जानकर एक दिन वा दो दिन में वा तुरन्त, अथवा क्रय विक्रय आदि से समाप्ति योग्य कर्मों को विचार कर अपना कर्त्तव्य सिद्ध करे ॥१०॥

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षडारात्रश्चोभयः सह । षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥११॥

भाषार्थः—(चतूरात्रः) चार रात्रि [तक रहने] वाला, (पञ्चरात्रः) पांच रात्रि वाला, (षड्रात्रः) छह रात्रि वाला, (च) और (सह) मिलकर (उभयः) दूने समय [८+१०+१२=३० रात्रि] वाला। (षोडशी) सोलह [रात्रि] वाला (च) और (सप्तरात्रः) सात रात्रि वाला [यज्ञ वा व्यवहार] (उच्छिष्टात्) शेष [म० १। परमेश्वर] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं, [और वे भी] (ये) जो (सर्वे) सब (यज्ञाः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (अमृते) अमरपन [पौरुष वा मोक्ष पद] में (हिताः) स्थापित हैं ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा ने बताया है कि मनुष्य पहिले से ही चार दिन, पांच दिन आदि काल का विचार करके मोक्ष पर्यन्त अपना कर्तव्य व्यवहार साधे ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।
साह्वातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥१२॥

भाषार्थः—(प्रतीहारः) प्रत्युपकार, (निधनम्) कुल [कुलवृद्धि] (च) और (विश्वजित्) संसार का जीतने वाला (च) और (यः) जो (अभिजित्) सब ओर से जीतने वाला [यज्ञ वा व्यवहार है, वह] (साह्वातिरात्रौ) उसी दिन पूरा होने वाला और रात्रि बिता कर पूरा होने वाला और (द्वादशाहः) बारह दिन में पूरा होने वाला [यज्ञ वा व्यवहार] (अपि) भी (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में हैं, (तत्) वह (मयि) मुझ [उपासक] में [होवे] ॥१२॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा में आत्मसमर्पण करते हैं, वे संसार में परस्पर उपकार, कुलवृद्धि, जय और विविध समय का उपयोग करके उत्तम सुख भोगते हैं ॥१२॥

सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥१३॥

भाषार्थः (सूनृता) प्रिय सत्य वाणी, (संनतिः) यथावत् नम्रता, (क्षेमः) रक्षा, (स्वधा) अन्न, (ऊर्जा) पराक्रम, (सहः) बल और (अमृतम्) अमृत [मृत्यु वा दुःख से बचना अर्थात् पुरुषार्थ] । (सर्वे) [इन] सब (कामाः) कामना योग्य विषयों ने (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में (प्रत्यञ्चः) व्याप कर (कामेन) इष्ट फल के साथ [मनुष्य को] (ततृपुः) तृप्त किया है ॥१३॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रिय सत्य वचन आदि के साथ आत्मिक और शारीरिक बल बढ़ाते हैं, वे परमात्मा के अनुग्रह से सब उत्तम कामनायें सिद्ध करते हैं ॥१३॥

नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥१४॥

भाषार्थः—(नव) नौ [हमारे दो कान, दो आंख, दो नथने, मुख, पायु और उपस्थ इन नौ अर्थात् सब इन्द्रियों से जाने गये] (भूमीः) भूमि के देश, (समुद्राः) अन्तरिक्ष के लोक और (दिवः) प्रकाशमान लोक (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में (अधि) अधिकार पूर्वक (श्रिताः) ठहरे हैं । (सूर्यः) सूर्य (उच्छिष्टे) शेष [परमेश्वर] में (आ) सब ओर (भाति) चमकता है, और (अहोरात्रे) दिन रात्रि (अपि) भी, (तत्) वह [उनका सुख] (मयि) मुझ [उपासक] में [होवे] ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य अपनी इन्द्रियों से विद्या द्वारा परमेश्वर रचित भूमि आदि से यथावत् उपकार लेकर सुखी होवें ।।१४।।

उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ।१५।।

भाषार्थः—(उपहव्यम्) प्राप्ति योग्य (विषुवन्तम्) व्याप्ति वाले [बाहरी उत्तम गुण] को (च) और (ये) जो (यज्ञाः) श्रेष्ठ गुण (गुहा) बुद्धि के भीतर (हिताः) रक्खे हैं, [उनको भी] (विश्वस्य) सब का (भर्त्ता) पोषक, (जनितुः) जनक [हमारे उत्पन्न करने वाले] का (पिताः) पिता [पालक] (उच्छिष्टः) शेष [म० १ । परमात्मा] (बिभर्ति) धारण करता है ।।१५।।

भावार्थः—मनुष्य अनादि सर्वपोषक परमेश्वर के ज्ञान द्वारा अपने बाहिरी और भीतरी गुणों का ज्ञान प्राप्त करे ।।१५।।

पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ।।१६।।

भाषार्थः—(उच्छिष्टः) शेष [म० १ । परमात्मा] (जनितुः) जनक [हमारे उत्पादक] का (पिता) पिता और (असोः) प्राण [हमारे जीवन] का (पौत्रः) पोता [पुत्र के पुत्र समान पीछे वर्तमान] और (पितामहः) दादा [पिता के पिता समान पहिले वर्तमान] है । (सः) वह (विश्वस्य) सबका (ईशानः) ईश्वर, (वृषाः) महापराक्रमी [परमात्मा] (भूम्याम्) भूमि पर (अतिघ्न्यः) विना हराया हुआ (क्षियति) बसता है ।।१६।।

भावार्थः—सर्वजनक, अनादि, अनन्त परमेश्वर सर्व विजयी है, उसकी उपासना सब मनुष्य करें ।।१६।।

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ।।१७।।

भाषार्थः—(ऋतम्) सत्य शास्त्र, (सत्यम्) सत्यवचन, (तपः) तप [इन्द्रियदमन], (राष्ट्रम्) राज्य, (श्रमः) परिश्रमः (च) और (धर्मः) धर्म [पक्षपात रहित न्याय और सत्य आचरण] (च) और (कर्म) कर्म । (भूतम्) उत्पन्न हुआ और (भविष्यत्) उत्पन्न होने वाला जगत्, (वीर्यम्) वीरता, (लक्ष्मीः) लक्ष्मी [सर्व-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पत्ति] और (बले) बल के भीतर [वर्तमानम्] (बलम्) बल (उच्छिष्टे) शेष [म० १। परमात्मा] में हैं ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की उपासना से सत्य व्यवहार वीरता आदि करके लक्ष्मीवान् होवें ॥१७॥

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥१८॥

भाषार्थः—(समृद्धिः) समृद्धि [सर्वथा वृद्धि] (ओजः) पराक्रम (आकूतिः) संकल्प [मन में विचार] (क्षत्रम्) हानि से रक्षक [क्षत्रियपन] (राष्ट्रम्) राज्य और (षट्) छह (उर्व्यः) फैली [दिशायें]। (संवत्सरः) वर्ष (इडा) वाणी, (प्रैषाः) प्रेरणायें, (ग्रहाः) अनेक प्रयत्न और (हविः) ग्राह्य वस्तु (उच्छिष्टे) शेष [म० १। परमात्मा] में (अधि) अधिकार पूर्वक हैं ॥१८॥

भावार्थः—परमेश्वर में पूर्ण विश्वास से मनुष्य दिशाओं अर्थात् देश और संवत्सर अर्थात् काल का विचार करके सदा प्रयत्न के साथ राज्य आदि व्यवहार करें ॥१८॥

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥१९॥

भाषार्थः—(चतुर्होतारः) चार [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चार वर्णों] से ग्राह्य व्यवहार, (चातुर्मास्यानि) चार महीनों में सिद्ध होने वाले कर्म (आप्रियः) सर्वथा प्रीति उत्पन्न करने वाली क्रियायें और (निविदः) निश्चित विद्यायें, (यज्ञाः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार], (होत्राः) देने लेने योग्य [वेद वाचायें] (पशुबन्धाः) प्राणियों के प्रबन्ध (तत्) तथा (इष्टयः) इष्ट क्रियायें (उच्छिष्टे) शेष [म० १। ५ परमात्मा] में हैं ॥१९॥

भावार्थः— सर्वविद्यामय, सर्वाधार परमेश्वर की उपासना से मनुष्य अपने अपने योग्य कर्मों में प्रवृत्ति करें ॥१९॥

अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥२०॥

भाषार्थः—(अर्धमासाः) आधे महीने (च) और (मासाः) महीने (च) और (ऋतुभिः सह) ऋतुओं के साथ (आर्तवाः) ऋतुओं के पदार्थ, (घोषिणीः) शब्द करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली (आपः) जल धारायें, (स्तनयित्नुः) मेघ की गर्जन, (श्रुतिः) सुनने योग्य [वेद वाणी] और (मही) भूमि (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में हैं ॥२०॥

भावार्थः—परमेश्वर ने मनुष्य के सुख के लिये पखवाड़े, महीने, ऋतुएँ और ऋतुओं की उपज और अन्य सब पदार्थ उत्पन्न किये हैं ॥२०॥

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥२१॥

भाषार्थः—(शर्कराः) कंकड़ आदि (अश्मानः) पत्थर, (सिकताः) बालू, (ओषधयः) ओषधें [अन्नादि], (वीरुधः) जड़ी बूटियां, (तृणा) घासें, (अभ्राणि) बादल, (विद्युतः) बिजुलियां, (वर्षम्) बरसात, (संश्रिता) [वे सब] परस्पर आश्रित द्रव्य (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में (श्रिता) ठहरे हैं ॥२१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा को विचार कर कंकड़ पत्थर आदि पदार्थों से यथायोग्य कार्य सिद्ध करें ॥२१॥

राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः ।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥२२॥

भाषार्थः—(राद्धिः) अर्थ सिद्धि, (प्राप्तिः) प्राप्ति [लाभ], (समाप्तिः) समाप्ति [पूर्त्ति], (व्याप्तिः) व्याप्ति [फैलाव], (महः) बड़ाई, (एधतुः) बढ़ती, (अत्याप्तिः) अत्यन्त प्राप्ति (च) और (आहिता) सब ओर से रक्खी हुई और (निहिता) गहरी रक्खी हुई (भूतिः) विभूति [सम्पत्ति] (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में (हिता) रक्खी हैं ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के आश्रय से अर्थ सिद्धि आदि प्राप्त करके ऐश्वर्यवान् होवें ॥२२॥

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२३॥

भाषार्थः—(च) और (यत्) जो कुछ (प्राणेन) प्राण [श्वास प्रश्वास] के साथ (प्राणति) जीता है, (च) और (यत्) जो कुछ (चक्षुषा) नेत्र से (पश्यति) देखता है । [वह सब और] (दिवि) आकाश में [वर्तमान] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुए (सर्वे) सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ । परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर ने सब प्राण वाले जगत् और सब लोकों को सूर्य के आकर्षण में रखकर मनुष्य क सुख के लिये उत्पन्न किया है ॥२३॥

ऋचः सामा॑नि॒ च्छन्दां॑सि पु॒रा॒णं यजु॑षा स॒ह ।
उच्छि॑ष्टाज्जज्ञि॒रे सर्वे॑ दि॒वि दे॒वा दि॑वि॒श्रितः॑ ॥२४॥

भाषार्थः—(**ऋचः**) स्तुति विद्यायें [वा ऋग्वेद मन्त्र] (**सामानि**) मोक्ष ज्ञान [वा साम वेद मन्त्र] और (**यजुषा सह**) विद्वानों के सत्कार सहित [वा यजुर्वेद सहित] (**छन्दांसि**) आनन्द प्रद कर्म [वा अथर्ववेद मन्त्र] और (**पुराणम्**) पुराण [पुरातन वृत्तान्त] । [यह सब और] (**दिवि**) आकाश में [वर्तमान] (**दिविश्रितः**) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुए (**सर्वे**) सब (**देवाः**) गतिमान् लोक (**उच्छिष्टात्**) शेष [म० १ । परमात्मा] से (**जज्ञिरे**) उत्पन्न हुए हैं ॥२४॥

भावार्थः परमेश्वर ने सब उत्तम कर्म और वेद आदि शास्त्र और सब पदार्थ मनुष्य के सुख के लिये प्रकट किये हैं ॥२४॥

प्रा॒णा॒पा॒नौ चक्षुः॒ श्रोत्र॒मक्षि॑ति॒श्च क्षि॑ति॒श्च या ।
उच्छि॑ष्टाज्जज्ञि॒रे सर्वे॑ दि॒वि दे॒वा दि॑वि॒श्रितः॑ ॥२५॥

भाषार्थः—(**प्राणापानौ**) प्राण और अपान [भीतर और बाहिर जाने वाले श्वास], (**चक्षुः**) नेत्र, (**श्रोत्रम्**) कान (**च**) और (**या**) जो (**अक्षितिः**) [तत्त्वों की] निर्हानि [बढ़ती] (**च**) और (**क्षितिः**) [तत्त्वों की हानि] । [यह सब और] (**दिवि**) आकाश में [वर्तमान] (**दिविश्रितः**) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुए (**सर्वे**) सब (**देवाः**) गतिमान् लोक (**उच्छिष्टात्**) शेष [म० १ परमात्मा] से (**जज्ञिरे**) उत्पन्न हुए हैं ॥२५॥

भावार्थः—परमात्मा ने शरीर में पृथिवी आदि तत्त्वों के बढ़ाव घटाव से मनुष्य को जीवधारण, देखने और सुनने आदि के साधन देकर और सृष्टि के पदार्थों का साक्षात् कराकर सुख बढ़ाने का उपदेश किया है ॥२५॥

आ॒न॒न्दा मोदाः॑ प्र॒मुदो॑ऽभिमोद॒मुद॑श्च॒ ये ।
उच्छि॑ष्टाज्जज्ञि॒रे सर्वे॑ दि॒वि दे॒वा दि॑वि॒श्रितः॑ ॥२६॥

भाषार्थः—(**आनन्दाः**) आनन्द, (**मोदाः**) हर्ष, (**प्रमुदः**) बड़े आनन्द (**च**) और (**ये**) जो (**अभिमोदमुदः**) बड़े उत्सवों से हर्ष देने वाले पदार्थ हैं । [यह सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और] (दिवि) आकाश में [वर्तमान] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुए (सर्वे) सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं ॥२६॥

भावार्थः—परमेश्वर ने मनुष्य को अनेक प्रकार से आनन्द पाने के लिये अनेक आनन्द साधन प्रदान किये हैं ॥२६॥

दे॒वाः पि॒तरो॑ मनु॒ष्या॑ गन्धर्वाप्स॒रश्च॒ ये ।
उच्छि॑ष्टाज्जज्ञि॒रे सर्वे॑ दि॒वि दे॒वा दि॑वि॒श्रितः॑ ॥२७॥

भाषार्थः—(देवाः) विद्वान् लोग, (पितरः) ज्ञानी लोग, (मनुष्याः) मननशील लोग (च) और (ये) जो (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व [पृथिवी के धारण करने वाले] और अप्सर [आकाश में चलने वाले पुरुष] हैं। [वह सब और] (दिवि) आकाश में [वर्तमान] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुए (सर्वे) सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १। परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं ॥२७॥

भावार्थः—परमात्मा के सामर्थ्य से अनेक विद्वान् लोग और अनेक पदार्थ संसार में सुख बढ़ाने के लिये उत्पन्न हुए हैं ॥२७॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ १३५, १३६ में व्याख्यात है ॥

सूक्तम् ॥८॥

१—३४ ॥ मन्युर्देवता ॥ १—२८, ३०—३२, ३४ अनुष्टुप्; २९ विराडनुष्टुप्, ३३ पथ्या पङ्क्तिः ॥

शरीररचनोपदेशः—शरीर की रचना का उपदेश ।

यन्म॒न्युर्जा॒याामाव॑हत् संक॒ल्पस्य॑ गृ॒हादधि॑ ।
क आ॑सं॒जन्याः॒ के व॒राः क उ॑ ज्येष्ठ॒वरो॑ऽभवत् ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) जब (मन्युः) सर्वज्ञ [परमेश्वर] (जायाम्) सृष्टि की क्रिया को (संकल्पस्य) संकल्प [मनोविचार] के (गृहात्) ग्रहण [स्वीकार करने] से (अधि) अधिकार पूर्वक (आवहत्) सब ओर लाया [प्रकट किया]। (के) कौन (जन्याः) उत्पत्ति में साधक [योग्य] पदार्थ और (के) कौन (वराः) वर [वरणीय, इष्टफल] (आसन्) थे, (कः उ) कौन ही (ज्येष्ठवरः) सर्वोत्तम वरों [इष्टफलों] का देने वाला (अभवत्) हुआ ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जब ईश्वर ने सृष्टि को रचना चाहा, तब यह प्रश्न उत्पन्न हुए—किन पदार्थों से सृष्टि की जावे, किस प्रयोजन के लिये वह होवे, और कौन उसका स्वामी हो। इस का उत्तर आगे है ॥१॥

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।

त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥२॥

भाषार्थः—(तपः) तप [ईश्वर का सामर्थ्य] (च च) और (कर्म) कर्म [प्राणियों के कर्म का फल] (एव) ही (महति अर्णवे अन्तः) बड़े समुद्र [परमेश्वर के गम्भीर सामर्थ्य] के भीतर (आस्ताम्) दोनों थे। [तप और कर्म ही] (ते) वे [प्रसिद्ध] (जन्याः) उत्पत्ति में साधन [योग्य] पदार्थ और (ते) वे ही (वराः) वर [वरणीय इष्टफल] (आसन्) थे, (ब्रह्म) ब्रह्म [सब से बड़ा परमात्मा] (ज्येष्ठवरः) सर्वोत्तम वरों [इष्ट फलों] का दाता (अभवत्) हुआ ॥२॥

भावार्थः—अनादि चक्र रूप संसार में परमात्मा अपने सामर्थ्य से प्राणियों के कर्मानुसार सृष्टि रचकर आप ही सर्वनियन्ता हुआ। यह गत मन्त्र के तीनों प्रश्नों का उत्तर है। मन्त्र ३ तथा ४ में इसी का विवरण है ॥२॥

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।

यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥३॥

भाषार्थः (दश देवाः) दस दिव्य पदार्थ [पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय] (पुरा) पूर्व काल में [वर्तमान] (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों [कर्म फलों] से (साकम्) परस्पर मिले हुए (अजायन्त) उत्पन्न हुये। (यः) जो पुरुष (वै) निश्चय करके (तान्) उनको (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (विद्यात्) जान लेवे, (सः) वह (वै) ही (अद्य) आज (महत्) महान् [ब्रह्म] को (वदेत्) बतलावे ॥३॥

भावार्थः—फिर उस ब्रह्म के सामर्थ्य से प्राणियों के पूर्वसंचित कर्म अनुसार पांच ज्ञानेन्द्रिय, कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका और पांच कर्मेन्द्रिय वाक्, हाथ, पांव, पायु, उपस्थ, कर्मों के जानने और करने के लिये उत्पन्न हुए। सूक्ष्मदर्शी पुरुष ही इसको जानकर परमात्मा का उपदेश करते हैं ॥३॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।

व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(प्राणापानौ) प्राण और अपान [भीतर और बाहिर जाने वाला श्वास], (चक्षुः) नेत्र, (श्रोत्रम्) कान, (च) और (या) जो (अक्षितिः) [सुख की] निर्हानि (च) और (क्षितिः) [दुःख की] हानि। (व्यानोदानौ) व्यान [सब नाड़ियों में रस पहुंचाने वाला वायु] और उदान [ऊपर को चढ़ने वाला वायु] और (वाक्) वाणी और (मनः) मन, (ते) इन सब ने (वै) निश्चय करके (आकूतिम्) संकल्प [प्राणी के मनोविचार] को (आ) सब ओर से (अवहन्) प्राप्त कराया ॥४॥

भावार्थः—प्राणियों के विहित कर्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर ने प्राण, अपान आदि बनाये। मन्त्र १ का उत्तर समाप्त हुआ ॥४॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आ चुका है—अ० ११।७।२५॥

अजा॑ता आस॒न्नृत॒वोऽथो॑ धा॒ता बृह॒स्पतिः॑।
इ॒न्द्रा॒ग्नी अ॒श्विना॒ तर्हि॒ कं ते ज्ये॒ष्ठमुपा॑सत ॥५॥

भाषार्थः—(ऋतवः) ऋतुएं (अजाताः) अनुत्पन्न (आसन्) थे, (अथो) और भी (धाता) धाता [धारण करने वाला आकाश], (बृहस्पतिः) [बड़े पदार्थों का रक्षक वायु], (इन्द्राग्नी) इन्द्र [मेघ] और अग्नि [सूर्य आदि] और (अश्विना) दिन और रात्रि [अनुत्पन्न थे], (तर्हि) तब (ते) उन्होंने [ऋतु आदिकों ने] (कम् ज्येष्ठम्) कौन से सर्वश्रेष्ठ को (उप आसत) पूजा है ॥५॥

भावार्थः—जब वसन्त आदि ऋतुएँ और आकाश वायु आदि पदार्थ स्थूल दशा में नहीं थे, तब उनका अधिष्ठाता कौन था। इस प्रश्न का उत्तर अगले मन्त्र में है ॥५॥

तप॑श्चै॒वास्तां॒ कर्म॑ चा॒न्तर्म॑ह॒त्य॑र्ण॒वे।
तपो॑ ह ज॒ज्ञे कर्म॑ण॒स्तत् ते ज्ये॒ष्ठमुपा॑सत ॥६॥

भाषार्थः—(तपः) तप [ईश्वर का सामर्थ्य] (च च) और (कर्म) कर्म [प्राणियों के कर्म का फल] (एव) ही (महति अर्णवे अन्तः) बड़े समुद्र [परमेश्वर के गम्भीर सामर्थ्य] के भीतर (आस्ताम्) दोनों थे। (तपः) तप [ईश्वर का सामर्थ्य] (ह) निश्चय करके (कर्मणः) कर्म [कर्म के फल अनुसार शरीर, स्वभाव आदि रचना] से (जज्ञे) प्रकट हुआ है, (तत्) सो (ते) उन्हों ने [ऋतु आदिकों ने—म० ५] (ज्येष्ठम्) सर्वश्रेष्ठ परमात्मा को (उप आसत) पूजा है ॥६॥

भावार्थः प्रलय में प्राणियों के कर्म फल और ईश्वर सामर्थ्य भी ईश्वर सामर्थ्य में रक्षित थे। फिर सृष्टि काल में कर्म फलों के अनुसार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणियों के विविध प्रकार शरीर और स्वभाव प्रकट हुए। उससे परमात्मा ही सर्व नियन्ता प्रतीत हुआ ॥६॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध ऊपर म० २ में आ चुका है ॥

येत आसीद् भूमिः पूर्वा याम॑द्धातय इद् विदुः ।
यो वै तां विद्यान्नामथा स म॑न्येत पुराणवित् ॥७॥

भाषार्थः—(इतः) इस [दीखती हुई भूमि] से (पूर्वा) पहिली [पहिले कल्प वाली] (या भूमिः) जो भूमि (आसीत्) थी और (याम्) जिस [भूमि] को (अद्धातयः) सत्य ज्ञानी पुरुष (इत्) ही (विदुः) जानते हैं। (यः) जो (वै) निश्चय करके (ताम्) उस [पहिले कल्प वाली भूमि] को (नामथा) नाम द्वारा [तत्त्वतः] (विद्यात्) जान लेवे, (सः) वह (पुराणवित्) पुराणवेत्ता [पिछले वृत्तान्त जानने वाला] (मन्येत) माना जावे ॥७॥

भावार्थः—वर्तमान सृष्टि में एक से साधन उपस्थित हो जाने पर भी किसी को ज्ञानी, किसी को अज्ञानी, किसी को धनी, किसी को निर्धनी, आदि विचित्रता देखकर बुद्धिमान् लोग पूर्व सृष्टि का अनुभव करते और उसके मर्म को साक्षात् करते हैं ॥७॥

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो॑ अग्निर॑जायत ।
कुतस्त्वष्टा सम॑भवत् कुतो॑ धाताजा॑यत ॥८॥

भाषार्थः—(कुतः) कहां से [किस कारण से] (इन्द्रः) इन्द्र [मेघ], (कुतः) कहां से (सोमः) सोम [प्रेरक वायु], (कुतः) कहां से (अग्निः) अग्नि [सूर्य आदि तेज] (अजायत) उत्पन्न हुआ है। (कुतः) कहां से (त्वष्टा) त्वष्टा [शरीर आदि का कारण पृथिवी तत्त्व] (सम् अभवत्) उत्पन्न हुआ है, (कुतः) कहां से (धाता) धाता [धारण करने वाला आकाश] (अजायत) प्रकट हुआ, है ॥८॥

भावार्थः—मेघ आदि पदार्थ किस कारण से उत्पन्न हुए हैं। इन प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में है ॥८॥

इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो॑ अग्नेरग्निर॑जायत ।
त्वष्टा॑ ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजा॑यत ॥९॥

भाषार्थः—(इन्द्रात्) इन्द्र [पूर्वकल्पवर्ती मेघ] से (इन्द्रः) इन्द्र [मेघ], (सोमात्) सोम [प्रेरक वायु] से (सोमः) सोम [प्रेरक वायु], (अग्नेः) अग्नि [सूर्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि तेज] से (अग्निः) अग्नि [सूर्य आदि तेज] (अजायत) उत्पन्न हुआ है। (त्वष्टा) त्वष्टा [शरीर आदि का कारण पृथिवी तत्त्व] (ह) निश्चय करके (त्वष्टुः) त्वष्टा [शरीर आदि के कारण पृथिवी तत्त्व] से (जज्ञे) प्रकट हुआ है और (धातुः) धाता [धारण करने वाले आकाश] से (धाता) धाता [धारण करने वाला आकाश] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥९॥

भावार्थः– जो पदार्थ प्रलय में परमाणु रूप थे, वे पूर्व कल्प के समान इस कल्प में भी ईश्वर सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं ॥९॥

ऋग्वेद १० । १९० । ३ । में ऐसा वर्णन है – (सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा-पूर्वमकल्पयत्) सूर्य और चन्द्रमा को धाता [सर्वधारक परमेश्वर] ने पूर्वकल्प के समान रचा है ॥

ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥१०॥

भाषार्थः (ये ते) जो वे (दश देवाः) दस दिव्य गुण [दस इन्द्रियों के विषय ग्राहक गुण] (पुरा) पूर्वकाल में [वर्तमान] (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों [कर्म फलों] से (जाताः) उत्पन्न हुए (आसन्) थे। (ते) वे (पुत्रेभ्यः) पुत्रों [पुत्र रूप इन्द्रियों के गोलकों] को (लोकम्) स्थान [दर्शन वा विषय ग्रहण सामर्थ्य] (दत्त्वा) देकर (कस्मिन् लोके) कौन से स्थान में (आसते) बैठते हैं ॥१०॥

भावार्थः—पूर्व कल्प के अनुसार आंख, कान आदि अपने अपने गोलकों में दर्शन, श्रवण आदि गुणों के प्रवेश करने से विषयों का ग्रहण सामर्थ्य होता है। फिर वे दर्शन आदि गुण कहां रहते हैं। इसका उत्तर अन्य प्रश्नों के साथ आगे मन्त्र १३ में हैं ॥१०॥

इस मन्त्र का मिलान—मन्त्र ३ से करो ॥

यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनु प्राविशत् ॥११॥

भाषार्थः --(यदा) जब [प्राणी के] (केशान्) केशों, (अस्थि) हड्डी, (स्नाव) सूक्ष्म नाड़ी [वायु ले चलने वाली नस], (मांसम्) मांस (मज्जानम्) मज्जा [हड्डियों के भीतर के रस] को (आभरत्) उस [कर्ता परमेश्वर] ने लाकर धरा। और (पादवत्) पैरों वाला [हाथ पांव आदि अङ्गों वाला] (शरीरम्) शरीर (कृत्वा) बनाकर (कम् लोकम्) कौन से स्थान में उस [परमेश्वर] ने (अनु) पीछे (प्र अविशत्) प्रवेश किया ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः प्राणी के केश आदि धातु उपधातुओं और हाथ पैर आदि अङ्गों वाले शरीर को रच कर वह परमेश्वर कहां रहता है। इस दूसरे प्रश्न का भी उत्तर मन्त्र १३ में है ॥११॥

कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥१२॥

भाषार्थः –(**कुतः**) किससे [किस उपादेय कारण से प्राणियों के] (**केशान्**) केशों को, (**कुतः**) कहां से (**स्नाव**) सूक्ष्मनाड़ी [वायु ले चलने वाली नस], (**कुतः**) कहां से (**अस्थीनि**) हड्डियों को (**आ अभरत्**) उस [कर्त्ता परमेश्वर] ने लाकर धरा। (**अङ्गों**) अङ्गों, (**पर्वाणि**) जोड़ों, (**मज्जानम्**) मज्जा [हड्डी के भीतर के रस], और (**मांसम्**) मांस को (**कः**) कर्ता [प्रजापति परमेश्वर] ने (**कुतः**) कहां से (**आ अभरत्**) लाकर धरा ॥१२॥

भावार्थः—परमेश्वर प्राणियों के शरीर के बड़े और छोटे अवयव किस सामग्री से बनाता है। इस का भी उत्तर अगले मन्त्र में है ॥१२॥

यह मन्त्र १०, ११ तथा १२ का उत्तर है ॥

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१३॥

भाषार्थः—(**संसिचः**) परस्पर सींचने वाले (**नाम**) प्रसिद्ध (**ते**) वे (**देवाः**) दिव्य पदार्थ [पृथिवी आदि पंचभूत] हैं, (**ये**) जिन्होंने (**संभारान्**) [उन] संग्रहों [उपकरण द्रव्यों] को (**समभरन्**) मिलाकर भरा है। (**देवाः**) [उन] दिव्य पदार्थों ने (**सर्वम्**) सब (**मर्त्यम्**) मरण धर्मी [शरीर] को (**संसिच्य**) परस्पर सींचकर (**पुरुषम्**) पुरुष में [आत्मा सहित शरीर में] (**आ अविशन्**) प्रवेश किया है ॥१३॥

भावार्थः—परमेश्वर के सामर्थ्य से पूर्व कल्प के समान पृथिवी, जल आदि पांचों तत्त्व आपस में मिलकर शरीर के इन्द्रिय आदि अवयवों को बना कर स्वयम् भी प्राणियों के शरीर में प्रवेश कर रहे हैं ॥१३॥

ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः ॥१४॥

भाषार्थः—(**ऊरू**) दोनों जंघाओं, (**अष्ठीवन्तौ**) दोनों घुटनों, (**पाद**) दोनों पैरों, (**हस्तौ**) दोनों हाथों, (**अथो**) और भी (**शिरः**) शिर, (**मुखम्**) मुख,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्टीः) पसलियों, (बर्जह्ये) दोनों कुच की टीपनी, (पार्श्वे) दोनों कोखों को (तत्) तब (कः) किस (ऋषिः) ऋषि [ज्ञानवान्] ने (सम् अदधात्) मिला दिया ॥१४॥

भावार्थः—शरीर के भीतर जंघा आदि को किस चतुर ज्ञानी ने आपस में जोड़कर जमा दिया है। इसका उत्तर अगले मन्त्र में है ॥१४॥

शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही ॥१५॥

भाषार्थः—(हस्तौ) दोनों हाथों, (शिरः) शिर, (अथो) और भी (मुखम्) मुख, (जिह्वाम्) जीभ, (ग्रीवाः) गले की नाड़ियों, (च) और (कीकसाः) हंसली की हड्डियों। (तत् सर्वम्) इस सबको (त्वचा) खाल से (प्रावृत्य) ढक कर (मही) बड़ी (संधा) जोड़ने वाली [शक्ति, परमेश्वर] ने (सम् अधात्) मिला दिया ॥१५॥

भावार्थः—परमेश्वर ने तत्त्वों के संयोग वियोग से प्राणियों के अङ्गों को बनाकर और ऊपर से खाल में लपेट कर एक दूसरे में मिला दिया है। यह गत मन्त्र का उत्तर है ॥१५॥

यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥१६॥

भाषार्थः—(यत्) जब (संधया) जोड़ने वाली [शक्ति, परमेश्वर] करके (संहितम्) जोड़ा हुआ (तत्) वह (महत्) महान् [समर्थ] (शरीरम्) शरीर (अशयत्) पड़ा हुआ था। [तब] (येन) जिस [रंग] से (इदम्) यह [शरीर] (अद्य) आज (रोचते) रुचता है, (कः) किसने (अस्मिन्) इस [शरीर] में (वर्णम्) वर्ण [रंग] (आ अभरत्) सब ओर से भर दिया ॥१६॥

भावार्थः—जब शरीर अवयवों सहित चर्म में लपेटकर रख दिया गया, फिर उस पर गोरा, काला, पीला आदि रंग किसने चढ़ाया। इस मन्त्र का उत्तर अगले मंत्र में है ॥१६॥

सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् ॥१७॥

भाषार्थः—(सर्वे) सब (देवाः) दिव्य पदार्थों [तत्त्वों के गुणों] ने (उप)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपकारीपन से (अशिक्षन्) समर्थ [सहायक] होना चाहा, (तत्) उस [कर्म] को (सती) सत्यव्रता (वधूः) चलाने वाली [परमेश्वर शक्ति] (अजानात्) जानती थी। (वशस्य) वश करने वाले [परमेश्वर] की (या) जो (ईशा) ईश्वरी (जाया) उत्पन्न करने वाली शक्ति है, (सा) उसने (अस्मिन्) इस [शरीर] में (वर्णम्) रङ्ग (आ) सब ओर से (अभरत्) भर दिया ॥१७॥

भावार्थः—तत्त्वों के संयोग वियोग क्रिया जानने वाले महारासायनिक, सर्वनियन्ता, सत्यव्रती, परमेश्वर ने अपनी शक्ति से व्यक्ति व्यक्ति को विशेष करके जानने के लिये शरीर पर गोरा, काला, पीला आदि रंग चढ़ा दिया ॥१७॥

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१८॥

भाषार्थः—(यः) जो (त्वष्टुः) कर्मकर्ता [जीव] का (उत्तरः) अधिक उत्तम (पिता) पिता [पालक] है, (यदा) जब (त्वष्टा) विश्वकर्ता [उस सृष्टि कर्ता परमेश्वर] ने [जीव के शरीर में] (व्यतृणत्) विविध छेद किये। [तब] (देवाः) दिव्य पदार्थों [इन्द्रिय की शक्तियों] ने (मर्त्यम्) मरणधर्मी [नश्वर शरीर] को (गृहम्) घर (कृत्वा) बनाकर (पुरुषम्) पुरुष [पुरुष शरीर] में (आ अविशन्) प्रवेश किया ॥१८॥

भावार्थः—जब जगत् पिता परमेश्वर ने शरीर में नेत्र, कान आदि गोलक बनाये, तब उसने उनमें उन की शक्तियों को प्रवेश कर दिया ॥१८॥

स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥१९॥

भाषार्थः—(स्वप्नः) नींद (वै) और भी (तन्द्रीः) थकावटें, (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि], (नाम), अर्थात् (पाप्मानः) पाप व्यवहार, (देवताः) दुःखदायी इच्छायें, (जरा) बुढ़ापा (खालत्यम्) गंजापन, (पालित्यम्) केशों के भूरेपन ने (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥१९॥

भावार्थः—प्राणियों के दुष्टकर्मों के फल से उनके शरीर में निर्बलता के कारण निद्रा आदि दोष घुस पड़ते हैं ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२०॥

भाषार्थः—(स्तेयम्) चोरी, (दुष्कृतम्) दुष्टकर्म, (वृजिनम्) पाप, (सत्यम्) सत्य [यथार्थ कथन कर्म आदि], (यज्ञः) यज्ञ [देव पूजा आदि] और (बृहत्) वृद्धिकारक (यशः) यश, (बलम्) बल (च) और (ओजः) पराक्रम (च) और (क्षत्रम्) हानि से रक्षक गुण [क्षत्रियपन] ने (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्य के दुष्ट विचारों से चोरी आदि दुष्ट कर्म और उनके नरक आदि बुरे फल और शुभ विचारों से सत्य कर्म आदि उत्तम कर्म और उनके मोक्ष आदि उत्तम फल शरीर द्वारा प्राप्त होते हैं ॥२०॥

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२१॥

भाषार्थः—(भूतिः) सम्पत्ति, (च वै) और भी (अभुतिः) निर्धनता (च) और (रातयः) दानशक्तियां, (च) और (याः) जो (अरातयः) कंजूसी की बातें [हैं, उन्होंने] (च) और (क्षुधः) भूखा (च) और (सर्वाः) सब (तृष्णाः) तृष्णाओं ने (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२१॥

भावार्थः—मन की स्थिरता से सम्पत्ति आदि सुख, और उसकी चञ्चलता से निर्धनता आदि कष्ट प्राणी को शरीर द्वारा प्राप्त होते हैं ॥२१॥

निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥२२॥

भाषार्थः—(निन्दाः) निन्दाएं [गुणों में दोष लगाने] (च च वै) और भी (अनिन्दाः) अनिन्दाएं [स्तुति, गुणों के कथन] (च) और (यत्) जो कुछ (हन्त) "हां"—(इति) ऐसा, (च) और (न) "ना"—(इति) ऐसा है और (दक्षिणा) दक्षिणा [प्रतिष्ठा], (श्रद्धा) श्रद्धा [सत्य ईश्वर और वेद में विश्वास] (च) और (अश्रद्धा) अश्रद्धा [ईश्वर और वेद में भक्ति न होना] [इन सब ने] (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्य विहित कर्मों के करने और निषिद्ध कर्मों को छोड़ने से सुसंस्कार के कारण शरीर द्वारा सुख प्राप्त करता है ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥२३॥

भाषार्थः—(विद्याः) विद्याएं [तत्त्वज्ञान] (च च वै) और भी (अविद्याः) अविद्याएं [मिथ्या कल्पनाएं] (च) और (यत्) जो कुछ (अन्यत्) दूसरा (उपदेश्यम्) उपदेश योग्य कर्म [विद्या और अविद्या से सम्बन्ध वाला विषय है, वह] और (ब्रह्म) ब्रह्म [ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय संयम आदि तप] (ऋचः) ऋचाएं [पदार्थों की गुण प्रकाशक विद्यायें] (साम=सामानि) साम ज्ञान [मोक्ष विद्यायें] (अथो) और भी (यजुः=यजूंषि) यजुर्ज्ञान [ब्रह्म निरूपक विद्याएं], [इस सब ने] (शरीरम्) शरीर में (प्र अविशत्) प्रवेश किया ॥२३॥

भावार्थः—मनुष्य आचार्य द्वारा विद्या और अविद्या के ज्ञान और ब्रह्मचर्य के धारण करने से चारों वेदों में वर्णित कर्म, उपासना, ज्ञान—त्रयीविद्या में निष्ठा करके आनन्द पाता है ॥२३॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥२४॥

भाषार्थः—(आनन्दाः) आनन्द, (मोदाः) हर्ष, (प्रमुदः) बड़े आनन्द (च) और (ये) (अभिमोदमुदः) बड़े उत्सवों से हर्ष देने वाले पदार्थ हैं [वे सब और]। (हसः) हंसी, (नृत्तानि) नाचों और (नरिष्टा) मङ्गल कामों [खेल कूद आदि] [इन सब ने] (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२४॥

भावार्थः—मनुष्य शरीर द्वारा अनेक शुभ कर्म करके अनेक मङ्गल मनावें ॥२४॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आ चुका है—अ० ११ । ७ । २६ ॥

आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥२५॥

भाषार्थः—(आलापाः) आलाप [सार्थक बातें] (च) और (प्रलापाः) प्रलाप [अनर्थक बातें, बकवाद] (च च) और (ये) जो (अभिलापलपः) व्याख्यानों के कथन व्यवहार हैं, [उन सब ने और] (आयुजः) उद्योगों, (प्रयुजः) प्रयोजनों और (युजः) योगों [समाधि क्रियाओं], (सर्वे) इन सब ने (शरीरम्) शरीर में (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—उत्साह के बढ़ाने वाले आलाप आदि व्यवहार शरीर के साथ मनुष्य को सुखदायक होते हैं ॥२५॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥२६॥

भाषार्थः—(प्राणापानौ) प्राण और अपान [भीतर और बाहिर जाने वाला श्वास], (चक्षुः) नेत्र, (श्रोत्रम्) कान, (च) और (या) जो (अक्षितिः) [सुख की] निर्हानि (च) और (क्षितिः) [दुःख की] हानि । (व्यानोदानौ) व्यान [सब नाड़ियों में रस पहुंचाने वाला वायु] और उदान [ऊपर को चढ़ने वाला वायु], (वाक्) वाणी और (मनः) मन, (ते) ये सब (शरीरेण) शरीर के साथ (ईयन्ते) चलते हैं ॥२६॥

भावार्थः—जीवों में प्राण अपान आदि सब व्यापार शरीर के साथ होते हैं ॥२६॥

इस मन्त्र के पहिले तीन पाद ऊपर मन्त्र ४ में आ चुके हैं ॥

आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥२७॥

भाषार्थः—(आशिषः) आशीर्वादों [हित प्रार्थनाओं], (च) और (प्रशिषः) उत्तम शासनों (च) और (संशिषः) यथावत् प्रबन्धों (च) और (याः) जो (विशिषः) विशेष परामर्श हैं [उन्होंने], (चित्तानि) अनेक विचारों और (सर्वे) सब (सङ्कल्पाः) सङ्कल्पों [मनोरथों] ने (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२७॥

भावार्थः–मनुष्य शरीर के सम्बन्ध से ज्ञान प्राप्त करके हित प्रार्थनाओं और शासन आदि क्रियाओं को दृढ़ सङ्कल्पी होकर सिद्ध करे ॥२७॥

आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥२८॥

भाषार्थः—(आस्तेयीः) अस्ति [रुधिर] में रहने वाले (च) और (वास्तेयीः) वस्ति [पेडू वा मूत्राशय] में रहने वाले (च) और (त्वरणाः) शीघ्र चलने वाले (च) और (कृपणाः) दुर्बल [पतले], (स्थूलाः) गाढ़े (गुह्याः) गुहा [शरीर के गुप्त स्थान] में रहने वाले और (शुक्राः) वीर्य [वा रज] में रहने वाले (याः) जो [जल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं], (ताः अपः) उन जलों को (बीभत्सौ) परस्पर बंधे हुए [शरीर] में (असादयन्) उन [ईश्वर नियमों] ने पहुंचाया ॥२८॥

भावार्थः—परमेश्वर ने नाड़ियों द्वारा वायु की गति से जल को विविध प्रकार पहुंचा कर शरीर को काम करने योग्य बनाया है ॥२८॥

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥२९॥

भाषार्थः—(आपः) व्यापक (देवाः) दिव्य गुणों [ईश्वर नियमों] ने (तद्) फिर (अस्थि) हड्डी को (समिधम्) समिधा [इन्धन समान पाक साधन] (कृत्वा) बनाकर और (रेतः) वीर्य [वा स्त्री रज] को (आज्यम्) घृत [घृत समान पुष्टि-कारक] (कृत्वा) बनाकर (अष्ट) आठ प्रकार से [रस अर्थात् खाये अन्न का सार, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, वीर्य, वा स्त्री रज इन सात धातुओं और मन के द्वारा] (पुरुषम्) पुरुष [प्राणी के शरीर] को (असादयन्) चलाया, और [उस में] (आ अविशन्) उन्होंने प्रवेश किया ॥२९॥

भावार्थः—सर्वव्यापक परमेश्वर ने अपनी शक्ति के प्रवेश से प्रधानता से हड्डियों को काष्ठ रूप अन्न आदि के पाक का साधन और पुरुष के वीर्य वा स्त्री के रज को घृत समान पुष्टिकारक बनाकर रस, रक्त, मांस आदि सात धातुओं और मन के द्वारा प्राणियों के शरीर को कार्य-योग्य किया है ॥२९॥

या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥३०॥

भाषार्थः—(याः) जो (आपः) व्यापक [इन्द्रियों की शक्तियां] (च) और (याः) जो (देवताः) दिव्य गुण वाले [इन्द्रियों के गोलक] हैं, और (या) जो (विराट्) विराट् [विविध प्रकार शोभायमान प्रकृति] (ब्रह्मणा सह) ब्रह्म [परमात्मा] के साथ है। [इस सब ने और] (ब्रह्म) अन्न ने (शरीरम्) शरीर में (प्र अविशत्) प्रवेश किया, और (प्रजापतिः) प्रजापति [इन्द्रिय आदि प्रजाओं का स्वामी, जीवात्मा] (शरीरे) शरीर में (अधि) अधिकार पूर्वक [ठहरा] ॥३०॥

भावार्थः—परमात्मा ने जीव के शरीर में इन्द्रियों को उनकी शक्तियों सहित प्रकृति द्वारा रचा और शरीर पुष्टि के लिये अन्न आदि पदार्थ देकर सब का अधिष्ठाता जीवात्मा को किया ॥३०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥३१॥

भाषार्थः --(सूर्यः) सूर्य ने (पुरुषस्य) [जीवात्मा] के (चक्षुः) नेत्र को, (वातः) वायु ने (प्राणम्) प्राण [उसके श्वास प्रश्वास] को (वि) विशेष करके (भेजिरे=भेजे) स्वीकार किया । (अथ) फिर (देवाः) दिव्य पदार्थों [दूसरे इन्द्रिय आदि] ने (अस्य) इस [जीवात्मा] का (इतरम्) दूसरा (आत्मानम्) शरीर का अवयव समूह (अग्नये) अग्नि को (प्र अयच्छन्) दान किया ॥३१॥

भावार्थः—ईश्वर नियम से जैसे शरीर में सूर्य का प्रधानत्व नेत्र पर और वायु का श्वास प्रश्वास पर है, इसी प्रकार अग्नि तत्त्व की विशेषता शरीर के अन्य सब अङ्गों में है ॥३१॥

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥३२॥

भाषार्थः—(तस्मात्) उस से [ब्रह्म से उत्पन्न] (वै) निश्चय करके (पुरुषम्) पुरुष [पुरुष शरीर] को (विद्वान्) जानने वाला [मनुष्य] "(ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] (इदम्) परम ऐश्वर्य वाला है" (इति) ऐसा (मन्यते) मानता है । (हि) क्योंकि (अस्मिन्) इस [परमात्मा] में (सर्वाः) सब (देवताः) दिव्य पदार्थ [पृथिवी, सूर्य आदि लोक] (आसते) ठहरते हैं, (इव) जैसे (गावः) गौएं (गोष्ठे) गोशाला में [सुख से रहती] हैं ॥३२॥

भावार्थः—मनुष्य अपने शरीर में परमात्मा की अद्भुत स्थूल और सूक्ष्म रचना देखकर समस्त ब्रह्माण्ड का कर्ता, धर्ता और आधार उसको जाने ॥३२॥

प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ॥३३॥

भाषार्थः—(प्रथमेन) पहिले [मरण समय के पहिले] से और (प्रमारेण) मरण के साथ (त्रेधा) तीन प्रकार पर (विष्वङ्) नाना गति से वह [प्राणी] (वि गच्छति) चला चलता है । वह [प्राणी] (एकेन) एक [शुभ कर्म] से (अदः) उस [मोक्ष सुख] को (गच्छति) पाता है, (एकेन) एक [पापकर्म] से (अदः) उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[नरक स्थान] को (गच्छति) पाता है, (एकेन) एक [पुण्य पाप के साथ मिले कर्म] से (इह) यहां पर [मध्य अवस्था में] (नि सेवते) नियम से रहता है ॥३३॥

भावार्थः – मनुष्य जीवनकाल और परलोक में अपने शुभ कर्म से मोक्ष, अशुभ कर्म से नरक, और दोनों पुण्य पाप की मध्य अवस्था में मोक्ष और नरक की मध्य अवस्था भोगता है ॥३३॥

अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिं छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥३४॥

भाषार्थः—(स्तीमासु) बाफ वाले, (वृद्धासु) बढ़े हुए (अप्सु अन्तरा) अन्तरिक्ष के भीतर (शरीरम्) शरीर (हितम्) रक्खा हुआ है। (तस्मिन् अन्तरा) उस [शरीर] के भीतर (शवः) बल [गति कारक वा वृद्धिकारक जीवात्मा] (अधि) अधिकारपूर्वक है, (तस्मात्) उस [जीवात्मा] से (अधि) ऊपर (शवः) बल [गतिकारक वा वृद्धिकारक परमात्मा] (उच्यते) कहा जाता है ॥३४॥

भावार्थः— विशाल आकाश के भीतर मेघ, वायु आदि पदार्थ हैं। उस आकाश के भीतर सब शरीर हैं, शरीरों में चेतन्य जीवात्मा अधिष्ठाता है उस जीवात्मा का भी अधिष्ठाता सर्व नियन्ता परमात्मा है ॥३४॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥६॥

१—२६ ॥ अर्बुदिर्देवता ॥ १ त्र्यवसाना सप्तपदा विराट्शक्वरी, २, ५—८, १०, १२, १३, १८—२१ अनुष्टुप्, ३ परोष्णिक्, ४ त्र्यवसाना स्वराडार्षी जगती, ९, ११, १४, २३ आस्तारपङ्क्तिः, १५ अतिजगती, १६ त्र्यवसाना ब्राह्म्युष्णिक्, १७ गायत्री, २२, २४, २५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी, २६ प्रस्तार पङ्क्तिः ॥

राजप्रजा कृत्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च ।
असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१॥

भाषार्थः—(ये) जो (बाहवः) भुजाएं, (याः) जो (इषवः) बाण, (च) और (धन्वनाम्) धनुषों के (वीर्याणि) वीर कर्म हैं [उनको]। (असीन्) तलवारों, (परशून्) परसाओं [कुल्हाड़ों] (आयुधम्) अस्त्र शस्त्र को, (च) और (यत्) जो कुछ (हृदि) हृदय में (चित्ताकूतम्) विचार और सङ्कल्प है। (तत् सर्वम्) उस सब [कर्म] को (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के लिये देखने को (कुरु) कर, (च) और (उदारान्) [हमें अपने] बड़े उपायों को (प्र दर्शय) दिखादे ॥१॥

भावार्थः—सेनापति राजा अपने योद्धाओं, अस्त्र शस्त्रों, हृदय के विचारों, और मनोरथों को दृढ़ करके शत्रुओं को रोके और प्रजा की यथावत् रक्षा करे ॥१॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥२॥

भाषार्थः—(मित्राः) हे प्रेरक (देवजनाः) विजयी जनो ! (यूयम्) तुम (उत् तिष्ठत) उठो और (सम् नह्यध्वम्) कवचों को पहिनो। (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति-म० १] (या) जो (नः) हमारे (मित्राणि) मित्र हैं, [वे सब] (वः) तुम लोगों के (संदृष्टा) देखे हुए और (गुप्ता) रक्षित (सन्तु) होवें ॥२॥

भावार्थः—सेनापति राजा आदि लोग अपने विजयी वीर सैनिकों और सहायक मित्रों को सावधान और अस्त्र शस्त्रों से सजाकर निरीक्षण करें और व्यूह रचना से उन की रक्षा करें ॥२॥

उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् ।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥३॥

भाषार्थः—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [हे शूर सेनापति राजन् और प्रजागण] तुम दोनों (उत् तिष्ठतम्) खड़े हो जाओ, (आदानसन्दानाभ्याम्) दोनों पकड़ने और बांधने के यन्त्रों से [युद्ध] (आ रभेथाम्) आरम्भ करो, और (अमित्राणाम्) वैरियों की (सेनाः) सेनाओं को (अभि धत्तम्) तुम दोनों बांध लो ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सेनापति राजा और सब प्रजागण मिलकर वीरता के साथ अनेक यन्त्र समूहों से शत्रुओं को घेर लेवें ।।३।।

अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः ।
याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ।।४।।

भाषार्थः—(**अर्बुदिः**) अर्बुदि [शूर सेनापति राजा], (**यः**) जो (**नाम**) प्रसिद्ध (**देवः**) विजयी पुरुष है, (**च**) और [जो] (**ईशानः**) ऐश्वर्यवान् (**न्यर्बुदिः**) न्यर्बुदि [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण] है। (**याभ्याम्**) जिन दोनों से (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष (**आवृतम्**) घिरा हुआ है (**च**) और (**इयम्**) यह (**मही**) बड़ी (**पृथिवी**) पृथिवी [घिरी है]। (**ताभ्याम्**) उन दोनों (**इन्द्रमेदिभ्याम्**) जीवों के स्नेहियों के द्वारा (**सेनया**) [अपनी] सेना से (**जितम्**) जीते हुए [प्रयोजन] को (**अहम्**) मैं [प्रजागण] (**अनु**) निरन्तर (**एमि**) पाऊं ।।४।।

भावार्थः—राजा और प्रजाजन पृथिवी, आकाश और जल में भी राज्य बढ़ाकर प्रजागण को जीते हुए देशों में विद्या प्रचार और वाणिज्य आदि से लाभ पहुंचावें ।।४।।

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ।।५।।

भाषार्थः—(**देवजन**) हे विजयी जन ! (**अर्बुदे**) अर्बुदि [शूर सेनापति राजन्] (**त्वम्**) तू (**सेनया सह**) [अपनी] सेना के साथ (**उत् तिष्ठ**) खड़ा हो। (**अमित्राणाम्**) अमित्रों की (**सेनाम्**) सेना को (**भञ्जन्**) पीसता हुआ तू (**भोगेभिः**) भोग व्यूहों [सांप की कुण्डली के समान सेना की रचनाओं] से (**परि वारय**) घेर ले ।।५।।

भावार्थः—सेनापति अपनी सेना को अस्त्र शस्त्रों से सजाकर भोग-व्यूह, चक्रव्यूह, दण्डव्यूह, शकटव्यूह, आदि बनाकर शत्रु सेना को चूर चूर करके घेर लेवे ।।५।।

सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् ।
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठसेनया ।।६।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण] (उदाराणाम्) बड़े उपायों में से (सप्त) सात (जातान्) उत्तम [उपायों अर्थात् राज्य के अङ्गों] को (समीक्षयन्) दिखाता हुआ तू (तेभिः सर्वैः) उन सब [शत्रुओं] के साथ [जैसे अग्नि में] (आज्ये हुते) घी चढ़ने पर, (त्वम्) तू (सेनया) [अपनी] सेना सहित (उत् तिष्ठ) खड़ा हो ॥६॥

भावार्थः—जैसे अग्नि घी डालने से प्रचण्ड होता है वैसे ही शत्रु से भारी युद्ध ठनने पर सब प्रजागण राज्य के सात अङ्गों को दृढ़ करके टूट पड़ें ॥६॥

राज्य के सात अङ्ग शब्दकल्पद्रुम में इस प्रकार हैं [स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रञ्च दुर्गं कोषो बलं सुहृत् । परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥१॥] १—स्वामी अर्थात् राजा, और २—मन्त्री और ३—राजधानी आदि राज्य, ४—गढ़, ५ सुवर्ण आदि कोष, ६—सैन्य दल, और ७—मित्र, परस्पर उपकारी सात अङ्गों वाला यह राज्य कहा जाता है ॥

प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥७॥

भाषार्थः—(प्रतिघ्नाना) [शिर आदि] धुनती हुई, (अश्रुमुखी) मुख पर आंसू बहाती हुई, (कृधुकर्णी) मन्द कानों वाली (च) और (विकेशी) केश बिखरे हुए [शत्रु की माता, पत्नी बहिन आदि] (पुरुषे हते) [अपने] पुरुष के मारे जाने में, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने फोड़ने पर (क्रोशतु) रोवे ॥७॥

भावार्थः—शूर सेनापति शत्रुओं को ऐसा मारे कि उनकी स्त्रियां अति व्याकुल होकर विलाप करें ॥७॥

संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती ।
पतिं भ्रातरमात्स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥८॥

भाषार्थः—(करूकरम्) कार्य कर्ता (पुत्रम्) पुत्र (पतिम्) पति, (भ्रातरम्) भाई (आत्) और (स्वान्) बन्धुओं को (संकर्षन्ती) समेटती हुई और (मनसा) मन से (इच्छन्ती) चाहती हुई [माता, पत्नी, भगिनी आदि स्त्री] (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति--म० १] (ते) तेरे (रदिते) तोड़ने फोड़ने पर, [रोवे—म० ७] ॥८॥

भावार्थः—शूर सेनापति से शत्रुओं के मारे जाने पर उनकी स्त्रियां अपने घरों के कार्यकर्ताओं के विना अत्यन्त दुःखी होवें ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः । ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥९॥

भाषार्थः—(अलिक्लवाः) अपने बल से भय देने वाले [चील आदि] (जाष्कमदाः) हिंसा में सुख मनाने वाले [सारस आदि], (गृध्राः) खाऊ [गिद्ध], (श्येनाः) श्येन [बाज], (ध्वाङ्क्षाः) कौवे, (शकुनयः) चीलें, (पतत्रिणः) पक्षीगण (तृप्यन्तु) तृप्त होवें, [जिन पक्षियों को] (अमित्रेषु) अमित्रों पर (समीक्षयन्) दिखाता हुआ, तू (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) अपने (रदिते) तोड़ फोड़ कर्म में [वर्तमान हो] ॥९॥

भावार्थः—शूर सेनापति शत्रुओं को युद्ध में मारकर गिरा दे और चील आदि मांस भक्षक पक्षी उनकी लोथों को नोंच नोंच कर खावें ॥९॥

अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः । पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥१०॥

भाषार्थः—(अथो) और भी (सर्वम्) सब (श्वापदम्) कुत्ते के से पैर वाले [सियार आदि हिंसकों का समूह], (मक्षिका) मक्खी और (क्रिमिः) कीड़ा (पौरुषेये) पुरुषों की (कुणपे अधि) लोथों के ऊपर, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने फोड़ने पर (तृप्यतु) तृप्त होवे ॥१०॥

भावार्थः—शूर सेनापति के विध्वंस करने पर शत्रुओं की लोथों से हिंसक पशु पक्षी पेट भरें ॥१०॥

आ गृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे । निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् । रदिते अर्बुदे तव ॥११॥

भाषार्थः—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण और शूर सेनापति राजन्] [शत्रुओं को] (आ गृह्णीतम्) तुम दोनों घेर लो, और [उनके] (प्राणापानान्) श्वास प्रश्वासों को (सम् बृहतम्) उखाड़ दो । (निवाशाः) लगातार बोले हुए (घोषाः) घोषणा शब्द (सम् यन्तु) गूंज उठें, [जिन घोषणाओं को] (अमित्रेषु) अमित्रों पर (समीक्षयन्) दिखाता हुआ तू (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) अपने (रदिते) तोड़ फोड़ कर्म में [वर्तमान हो] ॥११॥

भावार्थः—प्रजाजन राजगणों के सहायक होकर शत्रुओं को घेर कर व्याकुल कर देवें ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज ।
उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥१२॥

भाषार्थः – [उन्हें] (उद् वेपय) कंपा दे, (सविजन्ताम्) वे घबड़ाकर चले जावें, (अमित्रान्) अमित्रों को (भिया) भय के साथ (सं सृज) संयुक्त कर। (न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण] (उरुग्राहैः) चौड़ी पकड़ वाले (बाह्वङ्कैः) भुज बन्धनों से (अमित्रान्) अमित्रों को (विध्य) बेध ले ॥१२॥

भावार्थः – युद्ध चतुर प्रजागण शत्रुओं को पकड़ने और मारने में उत्साह करें ॥१२॥

मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥१३॥

भाषार्थः—(एषाम्) इन [शत्रुओं] की (बाहवः) भुजाएं (मुह्यन्तु) निकम्मी हो जावें, (च) और (यत्) जो कुछ (हृदि) हृदय में (चित्ताकूतम्) विचार और सङ्कल्प हैं, (एषाम्) इनका (किं चन) वह कुछ भी, (अर्बुदे) हे अर्बुदि [शूर सेनापति राजन्] (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने फोड़ने पर (मा उत् शेषि) न बचा रहे ॥१३॥

भावार्थः—युद्ध विशारद सेनापति की वीरता प्रकट होने पर शत्रुदल और उनके विचार और मनोरथ निष्फल पड़ जावें ॥१३॥

प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः । अघारिणी-
र्विकेश्यो रुदत्यः१ः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥१४॥

भाषार्थः—(उरः) छाती और (पटूरौ) दोनों पटूरों [छाती के दोनों ओर के भागों] को (प्रतिघ्नानाः) धुनती हुई और (आघ्नानाः) पीटती हुई, (अघारिणीः) विना तेल लगाये, (विकेश्यः) केश बिखेरे हुए, (रुदत्यः) रोती हुई [स्त्रियां] (पुरुषे हते) [अपने] पुरुष के मारे जाने में, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने फोड़ने पर (संधावन्तु) दौड़ती फिरें ॥१४॥

भावार्थः रणक्षेत्र में शत्रुओं के मारे जाने पर उनकी स्त्रियां व्याकुल होकर इधर उधर फिरती फिरें ॥१४॥

इस मन्त्र का मिलान ऊपर मन्त्र ७ से करो ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे ।
अन्तः पात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१५॥

भाषार्थः—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (श्वन्वतीः) वृद्धि वाली (उत) और (अप्सरसः) प्रजाओं में व्यापने वाली (रूपकाः) सुन्दरतायें जताने वाली क्रियाओं को [मित्रों के लिये] (अन्तः पात्रे) भीतरले पात्र [अन्तः करण] में (रेरिहतीम्) अत्यन्त युद्ध करने वाली (दुर्णिहितैषिणीम्) दुष्ट प्रयोजन को खोजने वाली (रिशाम्) पीड़ा को, (ताः सर्वाः) उन सब [पीड़ाओं] को, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के लिये देखने को (कुरु) कर, (च) और [हमें अपने] (उदारान्) बड़े उपायों को (प्रदर्शय) दिखादे ॥१५॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि शिष्टों के साथ उनके श्रेष्ठ व्यवहारों के अनुसार श्रेष्ठ व्यवहार करे और दुष्टों को खोजकर उनकी दुष्टता के अनुसार दण्ड देवे जिससे राजा की उत्तम नीति का प्रभाव सब को विदित हो जावे ॥१५॥

मन्त्र के अन्तिम भाग के लिये मन्त्र १ तथा २२ और २४ देखो ॥

खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥१६॥

भाषार्थः—(खडूरे) खड्ग [तलवार] पर (अधिचङ्क्रमाम्) निधड़क चढ़ जाने वाली, (खर्विकाम्) अभिमानिनी, (खर्ववासिनीम्) खर्वों [बहुत गिनती मनुष्यों] में रहने वाली [सेना] को और (ये) जो (उदाराः) उदार [दानशील] (च) और (ये) जो (अन्तर्हिताः) अन्तःकरण से हितकारी (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व [पृथिवी के धारण करने वाले] और अप्सर [प्रजाओं वा आकाश में चलने वाले विवेकी लोग हैं, उनको, दिखा—म० १५] और [जो] (सर्पाः) सर्प [के समान हिंसक], और (इतरजनाः) पामरजन (रक्षांसि) राक्षस हैं [उनको, कंपा दे—म० १८] ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (दर्शय) [दिखा] मन्त्र १५ से और (उत्वेपय (कंपा दे) क्रिया पद मन्त्र १८ से लाया गया है। राजा अपनी सुनीति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सुशिक्षित वीर सेना और हितैषी, भूमिविद्या और आकाशविद्या जानने वाले विज्ञानियों द्वारा दुष्टों को दण्ड देवे, जिससे शत्रु लोग पृथिवी वा आकाश मार्ग से कष्ट न दे सकें ॥१६॥

चतुर्दंष्ट्रांछ्यावदंतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान् ।
स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ।१७॥

भाषार्थः—(चतुर्दंष्ट्रान्) चार डाढ़ें वालों [बड़े हाथियों] और (श्यावदतः) काले दांतों वाले, (कुम्भमुष्कान्) कुम्भसमान [घड़ा समान बड़े] अंडकोश वाले (असृङ्मुखान्) रुधिर मुखों [सिंह आदि जीवों] को (च) और (ये) जो (स्वभ्यसाः) स्वभाव से भयानक [और जो] (उद्भ्यसाः) ऊपरी [आकार से] भयानक हैं [उनको, कंपा दे म० १८] ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (उत् वेपय) [कंपा दे] क्रिया पद-मन्त्र १८ से आता है। राजा भयानक हिंसक जीवों और उनके समान दुष्ट मनुष्यों को राज्य से हटाकर प्रजापालन करें। १७॥

उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः ।
जयांश्च जिष्णुश्चामित्राँ जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥१८॥

भाषार्थः—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्राणाम्) शत्रुओं की (अमूः) उन (सिचः) सेचनशील [उमड़ती हुई सेनाओं] को (उत् वेपय) कंपा दे। (जयन्) जीतता हुआ [प्रजागण] (च च) और (जिष्णुः) विजयी [राजा], (इन्द्रमेदिनौ) जीवों के स्नेही आप दोनों (अमित्रान्) वैरियों को (जयताम्) जीतें ॥१८॥

भावार्थः—परस्पर प्रसन्नचित्त प्रजागण और राजगण शत्रुओं की सहायक सेनाओं को तुरन्त जीत लेवें ॥१८॥

प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥१९।

भाषार्थः—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण] (प्रब्लीनः) घिरा हुआ, (मृदितः) कुचला हुआ (हतः) मारा गया (अमित्रः) वैरी (शयाम्) सो जावे। (अग्निजिह्वाः) अग्नि की जीभें [लपटें] और (धूमशिखाः) धुयें की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोटियां [आग्नेय शस्त्रों से] (सेनया) सेना द्वारा (जयन्तीः) जीतती हुई (यन्तु) चलें ॥१९॥

भावार्थः—धर्मात्माओं के सेना दल आग्नेय आदि शस्त्रों को जल, थल और आकाश से इस प्रकार छोड़ें कि शत्रु लोग रुन्ध खुंद कर मर जावें ॥१९॥

तयार्बुदे प्रणुंत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।
अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥ २०॥

भाषार्थः—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (शचीपतिः) वाणियों, कर्मों और बुद्धियों के पालने वाले. (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले आप] (तया) उस [सेना के द्वारा] (प्रणुत्तानाम्) बाहिर हटाये गये (अमित्राणाम्) वैरियों में से (वरंवरम्) अच्छे अच्छे को (हन्तु) मारे । (अमीषाम्) इनमें से (कःचन) कोई भी (मा मोचि) न छुटे ॥२०॥

भावार्थः – युद्ध कुशल (शचीपति) यथार्थ बोलने वाला, यथार्थ कर्म वाला और यथार्थ बुद्धि वाला सेनापति शत्रुओं के सब नायकों को मार कर परास्त कर देवे ॥२०॥

देखो—अथर्व० ६ । ६७ । २ । और-अथर्व० ३ । १९ । ८॥

उत्कंसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यमनु वर्ततामभित्रान् मोत मित्रिणः ॥२१॥

भाषार्थः – [शत्रुओं के] (हृदयानि) हृदय (उत् कसन्तु) उकस जावें [हिल-जावें] (प्राणः) प्राण [श्वास प्रश्वास] (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर (उत् ईषतु) चढ़ जावे । (शौष्कास्यम्) मुख की सुखाई (अमित्रान् अनु) शत्रुओं को (वर्तताम्) व्यापे, (उत) और (मित्रिणः) [हमारे लिये] मित्र रखने वाले जनों को (मा) न [व्यापे] ॥२१॥

भावार्थः—जो लोग अपने मित्रों सहित हमारे सहायक होते हैं, उन वीरों के भय से शत्रुदल व्याकुल होकर कष्ट पावें और धर्मात्मा लोग सुख पावें ॥२१॥

ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।
तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जो (धीराः) धीर [धैर्यवान्] (च च) और (ये) जो (अधीराः) अधीर [चंचल], (पराञ्चः) हट जाने वाले (च) और (ये) जो (बधिराः) बहिरे [शिक्षा न सुनने वाले] हैं। (च) और (ये) जो (तमसाः) अन्धकार युक्त, (तूपराः) हिंसक (अथो) और (वस्ताभिवासिनः) उद्योगों में रहने वाले हैं। (तान्) (सर्वान्) इन सब [लोगों] को, (अर्बुदे) हे अर्बुदि! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के लिये देखने के लिये (कुरु) कर (च) और [हमें अपने] (उदारान्) बड़े उपायों को (प्र दर्शय) दिखादे ॥२२॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि वह धीर-अधीर, शूर-कातर, उद्योगी-अनुद्योगी आदि पुरुषों की विवेचना करके शत्रुओं को अपनी सुनीति का निश्चय करादे ॥२२॥

मन्त्र के अन्तिम भाग के लिये मन्त्र १। १५ तथा २४ देखो ॥

अर्बु॑दिश्च त्रि॒षं॑धिश्चा॒मित्रा॑न् नो॒ वि वि॑ध्यताम् ।
यथै॑षामिन्द्र वृत्रह॒न् हना॑म शचीपते॒ ऽमित्रा॑णां सह॒स्रशः॑ ॥२३॥

भाषार्थः—(अर्बुदिः) अर्बुदि [शूर सेनापति राजा] (च च) और (त्रिषन्धिः) त्रिसन्धि [तीनों कर्म, उपासना और ज्ञान में मेल अर्थात् प्रीति रखने वाला विद्वान् पुरुष, आप दोनों] (नः) हमारे (अमित्रान्) शत्रुओं को (वि विध्यताम्) छेद डालें। (यथा) जिससे (वृत्रहन्) हे अंधकार नाशक! (शचीपते) वाणियों, कर्मों और बुद्धियों के पालने वाले (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (एषाम्) इन (अमित्राणाम्) शत्रुओं को (सहस्रशः) सहस्र सहस्र करके (हनाम) हम मारें ॥२३॥

भावार्थः बलवान् राजगण और त्रयी विद्या में कुशल, अर्थात् कर्म अपने कर्तव्य, उपासना ईश्वर भक्ति और ज्ञान सूक्ष्मदर्शिता वाले विद्वान् जन परस्पर मिलकर शत्रुओं को हराकर प्रजापालन करें ॥२३॥

व॒नस्पती॑न् वानस्प॒त्यानोष॑धीरु॒त वी॒रुधः॑ ।
ग॒न्ध॒र्वा॒प्स॒रसः॑ स॒र्पान् दे॒वान् पु॑ण्यज॒नान् पि॒तॄन् ।
स॒र्वांस्ताँ अ॑र्बुदे॒ त्वम॒मित्रे॑भ्यो दृ॒शे कु॑रू॒दारां॑श्च॒ प्र द॑र्शय ॥२४॥

भाषार्थः—(वनस्पतीन्) सेवनीय शास्त्रों के पालन करने वाले पुरुषों (वानस्पत्यान्) सेवनीय शास्त्रों के पालन करने वालों के सम्बन्धी पदार्थों (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों, (उत) और (वीरुधः) जड़ी बूटियों को, (गन्धर्वाप्सरसः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्धर्वों [पृथिवी के धारण करने वालों] और अप्सरों [आकाश में चलने वालों] (सर्पान्) सर्पों [सर्पों के समान तीव्र दृष्टि वालों] (देवान्) विजय चाहने वालों, (पुण्यजनान्) पुण्यात्मा (पितॄन्) पितरों [महाविद्वानों] (तान् सर्वान्) इन सब लोगों को (अर्बुदे) हे अर्बुदि [शूरसेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के लिये देखने को (कुरु) कर (च) और [हमें अपने] (उदारान्) बड़े उपायों को (प्र दर्शय) दिखादे ॥२४॥

भावार्थः—राजा वेद वेत्ताओं, उत्तम अन्न आदि पदार्थों, विश्वकर्मा शिल्पियों और वैज्ञानिक आदि लोगों का संग्रह करके शत्रुओं को अपना वैभव दिखावे ॥२४॥

इस मन्त्र का पहिला और दूसरा भाग अ० ८। ८। १४। तथा १५ में और तीसरा भाग इस सूक्त के मन्त्र २२ में आया है ॥

ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥२५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (मरुतः) शूर लोग, (देवः) विजयी, (आदित्यः) आदित्य [अखण्ड ब्रह्मचारी] और (ब्रह्मणः पतिः) वेद का रक्षक पुरुष (वः) तुम्हारे (ईशाम्) शासक [हुये हैं।] (इन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान्, (अग्निः) तेजस्वी, (धाता) धारणकर्ता (च) और (मित्रः) प्रेरक (च) और (प्रजापतिः) प्रजापालक मनुष्य (वः) तुम्हारे (ईशाम्) शासक [हुये हैं]। (ऋषयः) ऋषि लोग [महाज्ञानी पुरुष] (वः) तुम्हारे (ईशांचक्रुः) शासक हुये हैं, [जिन विद्वानों को] (अमित्रेषु) वैरियों पर (समीक्षयन्) दिखाता हुआ, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) अपने (रदिते) तोड़ फोड़ कर्म में [तू वर्तमान हुआ है] ॥२५॥

भावार्थः जैसे पूर्वकाल में शूर वीर और महर्षियों के सत्संग से राजा लोग शासन विद्या में चतुर हुए हैं, वैसे ही सब मनुष्य पूर्वजों के अनुकरण से कार्य सिद्धि करें ॥२५॥

अन्तिम भाग का मिलान मन्त्र ९ के अन्तिम भाग से करो ॥

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥२६॥

भाषार्थः—(तेषां सर्वेषाम्) उन सबों के (ईशानाः) शासक होकर, (मित्राः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे प्रेरक (देवजनाः) विजयी जनो! (यूयम्) तुम (उत् तिष्ठत) उठो और (संनह्यध्वम्) कवचों को पहिनो। (इमं सङ्ग्रामम्) इस संग्राम को (संजित्य) जीतकर (यथालोकम्) अपने अपने लोकों [स्थानों] को (वि तिष्ठध्वम्) फैलकर ठहरो ॥२६॥

भावार्थः—सब मनुष्य कर्म कुशल और पुरुषार्थी होकर अपने अपने कर्तव्य करके अपने अपने पद पर आनन्दित होवें ॥२६॥

सूक्तम् ॥१०॥

१—२७॥ त्रिषन्ध्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १, २२ स्वराडनुष्टुप्, २ त्र्यवसाना विराडतिजगती, ३, विराडास्तारपङ्क्तिः, ४, १९, २७ निचृदनुष्टुप्, ५–७, १०, ११, १४, १५, १८, २०, २३, २४ अनुष्टुप्, ८ विराट् त्रिष्टुप्, ९ स्वराट् पथ्या पङ्क्तिः, १२, १७ पथ्या पङ्क्तिः, १३ षट्पदा जगती, १६, त्र्यवसाना शक्वरी, २१ गायत्री, २५, ककुबुष्णिक्, २६ प्रस्तारपङ्क्तिः ॥

राजप्रजयोः कर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥१॥

भाषार्थः—(उदाराः) हे उदार पुरुषो! [बड़े अनुभवी लोगो] (उत् तिष्ठत) उठो और (केतुभिः सह) झंडों के साथ (संनह्यध्वम्) कवचों को पहिनो [जो] (सर्पाः) सर्प [सर्पों के समान] हिंसक (इतरजनाः) पामर जन (रक्षांसि) राक्षस हैं, (अमित्रान् अनु) [उन] शत्रुओं पर (धावत) धावा करो ॥१॥

भावार्थः—महानुभवी शूर वीर पुरुष कवच आदि पहिन कर और ध्वजा पताका अस्त्र शस्त्र लेकर शत्रुओं पर चढ़ें ॥१॥

इस मन्त्र का मिलान—अथर्व० ११। ९। २ तथा १६ से करो ॥

ईशां वो वेद राज्यं त्रिषंधे अरुणैः केतुभिः सह।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः।
त्रिषंधेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥२॥

भाषार्थः—(त्रिषन्धे) हे त्रिसन्धि! [तीनों कर्म, उपासना और ज्ञान में मेल रखने वाले, सेनापति] (वः) तुम्हारी (ईशाम्) शासन शक्ति और (राज्यम्) राज्य [राज के विस्तार] को [तुम्हारे] (अरुणैः) रक्त वर्ण [डरावने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप] वाले (केतुभिः सह) झंडों के साथ (वेद) मैं [प्रजाजन] जानता हूं। (ये) जो (मानवाः) ज्ञानियों के बताये हुए (दुर्णामानः) दुर्नामा [दुष्ट नाम वाले दोष] (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (ये) जो (दिवि) सूर्य में (च) और (ये) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी पर हैं, (ते) वे [सब दोष] (त्रिषन्धेः) [त्रिसन्धि] [त्रयीकुशल विद्वान्] के (चेतसि) चित्त में (उप) हीन होकर (आसताम्) रहें ॥२॥

भावार्थः—(वः) तुम्हारी—आदरार्थ बहुवचन है। प्रजागण त्रिसन्धि अर्थात् अपने कर्त्तव्य, ईश्वर भक्ति और यथार्थ ज्ञान में प्रीति वाले राजा का आदर सत्कार करें। वह दूरदर्शी पुरुष आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विपत्तियों से आप बचे और सब को बचावे ॥२॥

अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः । क्रव्यादो

वातरंहस आ संजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषंधिना ॥३॥

भाषार्थः—(अयोमुखाः) लोहे समान [कठोर] मुख वाले, (सूचीमुखाः) सुई के तुल्य [पैंने] मुख वाले, (विकङ्कतीमुखाः) शमी वृक्षों के से [कंटीले] मुख वाले, (क्रव्यादः) मांस खाने वाले (अथो) और (वातरंहसः) पवन के से वेग वाले [पशु पक्षी] (त्रिषन्धिना) त्रिसन्धि [म० २। विद्वान्] करके (वज्रेण) वज्र से [मारे गये] (अमित्रान्) बैरियों को (आ सजन्तु) चिपट जावें ॥३॥

भावार्थः - वीर सेनापति सब शत्रुओं को मार कर गिरा देवे कि उनकी लोथों को गीदड़ गिद्ध आदि चींथ चींथ कर खा जावें ॥३॥

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।

त्रिषंधेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥४॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे उत्तम ज्ञान वाले! (आदित्य) हे आदित्य! [अखण्ड ब्रह्मचारी] (बहु) बहुत (कुणपम्) लोथों को (अन्तः) [रणक्षेत्र के] बीच में (धेहि) रख। (मेरी) (इयम्) यह (सुहिता) अच्छे ढङ्ग से स्थापित (सेना) सेना (त्रिषन्धे) त्रिसन्धि [म० २। विद्वन् सेनापति] के (वशे) वश में (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थः—जिस समय प्रधान सेनापति रण भूमि में शत्रुदलन करे, अन्य वीर सैन्य पुरुष अपनी सुव्यूढ सेना से उसका सहाय करें ॥४॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।

अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषंधेराहुतिः प्रिया ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देवजन) हे विजयी जन! (अर्बुदे) अर्बुदि [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (सेनया सह) [अपनी] सेना के साथ (उत् तिष्ठ) खड़ा हो। (अयम्) यह (बलिः) बलि [धर्म युद्ध की भेट] (वः) तुम्हारे लिये (आहुतः) यथावत् दी गयी है। (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [म० २। विद्वान् सेनापति] की यही (प्रिया) पियारी (आहुतिः) आहुति [बलि वा भेट] है ॥५॥

भावार्थः—धर्मयुद्ध के लिये शूर सेनापति के साथ सब प्रजागण प्रसन्न होकर सन्नद्ध होवें ॥५॥

शितिपदी सं द्यतु शरव्ये३यं चतुष्पदी ।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषंधेः सह सेनया ॥६॥

भाषार्थः—(शितिपदी) उजाले और अंधेरे में गतिवाली (चतुष्पदी) चारों [धर्म अर्थ काम मोक्ष] में अधिकार वाली (इयम्) यह (शरव्या) वाण विद्या में चतुर [सेना] (संद्यतु) [शत्रुओं को] काट डाले। (कृत्ये) हे छेदनशील [सेना]! (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [म० २। त्रयी कुशल सेनापति] की (सेनया सह) सेना के साथ (अमित्रेभ्यः) शत्रुओं के मारने को (भव) वर्तमान हो ॥६॥

भावार्थः—सब वीर सेनायें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के लिये प्रधान सेनापति के आधिपत्य में मिलकर शत्रुओं को जीतें ॥६॥

धूमाक्षी सं पंततु कृधुकर्णी चं क्रोशतु ।
त्रिषंधेः सेनया जिते अंरुणाः सन्तु केतवः ॥७॥

भाषार्थः—(धूमाक्षी) धुयें भरी आंखों वाली, (कृधुकर्णी) मन्द कानों वाली [शत्रु सेना] (सं पततु) गिर जावे (च) और (क्रोशतु) रोवे। (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [म० २ त्रयीकुशल सेनापति] की (सेनया) सेना द्वारा (जिते) जीतने पर (अरुणाः) रक्तवर्ण [डरावने रूप] वाले (केतवः) झंडे (सन्तु) होवें ॥७॥

भावार्थः वीर सेनापति के आग्नेय आदि शस्त्रों से वैरियों की आंखें धुंधला जावें और ढोल आदि की ध्वनि से उनके कान बहरे हो जावें, इस प्रकार जीत होने पर अन्य दुष्टों को डराने को सेनापति अपनी जयपताका ऊंची करे ॥७॥

अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिंक्षे दिवि ये चरन्ति ।
श्वापदो मक्षिकाः सं रंभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**वयांसि**) वे गति वाले [प्राणी] (**अव अयन्ताम्**) उतरें, (**ये**) जो (**पक्षिणः**) पंख वाले हैं और (**ये**) जो (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष के भीतर (**दिवि**) प्रकाश में (**चरन्ति**) चलते हैं। (**श्वापदः**) कुत्ते के से पैर वाले [सियार आदि], (**मक्षिकाः**) मक्खियां (**सं रभन्ताम्**) चढ़ें, (**आमादः**) मांसाहारी (**गृध्राः**) गिद्ध (**कुणपे**) लोथ पर (**रदन्ताम्**) नोचें खरोचें ॥८॥

भावार्थः—पूरी हार होने से शत्रुओं की लोथों को मांसाहारी पशु पक्षी खैंच खैंच कर खावें ॥८॥

यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥९॥

भाषार्थः—(**बृहस्पते**) हे बृहस्पति ! [बड़े बड़ों के रक्षक राजन्] (**यां सन्धाम्**) जिस प्रतिज्ञा को (**इन्द्रेण**) प्रत्येक जीव के साथ (**च**) और (**ब्रह्मणा**) ब्रह्म [परमात्मा] के साथ (**समधत्थाः**) तू ने ठहराया है। (**अहम्**) मैं [प्रजाजन] (**तया**) उस (**इन्द्रसन्धया**) प्राणियों के साथ प्रतिज्ञा से (**सर्वान्**) सब (**देवान्**) विजय चाहने वाले लोगों को (**इह**) यहां (**हुवे**) बुलाता हूं—"(**इतः**) इस ओर से (**जयत**) जीतो, (**अमुतः**) उस ओर से (**मा**) मत [जीतो]" ॥९॥

भावार्थः जैसे राजा प्राणियों की रक्षा के लिये परमात्मा को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता है, वैसे ही प्रजागण निष्कपट होकर अपने वीरों से उसका सहाय करें और वैरियों से न मिलें ॥९॥

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।
असुरक्षयणं वधं त्रिषंधिं दिव्याश्रयन् ॥१०॥

भाषार्थः—(**आङ्गिरसः**) विद्वानों के शिष्य (**बृहस्पतिः**) बृहस्पति [बड़े बड़ों के रक्षक राजा] ने और (**ब्रह्मसंशिताः**) वेदज्ञान से तीक्ष्ण किये गए (**ऋषयः**) ऋषियों [धर्मदर्शकों] ने (**दिवि**) विजय की इच्छा में (**असुरक्षयणम्**) असुर नाशक (**वधम्**) शस्त्ररूप (**त्रिषन्धिम्**) त्रिसन्धि [म० २। त्रयीकुशल सेनापति] का (**आ अश्रयन्**) आश्रय लिया है ॥१०॥

भावार्थः—सुशिक्षित राजा और विद्वानों को योग्य है कि पूर्वजों के समान धार्मिक, आस्तिक, विज्ञानी, पुरुष का आश्रय लेकर विजय पावें ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
त्रिषंधिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥११॥

भाषार्थः—(येन) जिस [सेनापति] करके (गुप्तः) रक्षित (असौ) वह (आदित्यः) आदित्य [अखण्ड ब्रह्मचारी] (च) और (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला पुरुष], (उभौ) दोनों (तिष्ठतः) ठहरते हैं। [उस] (त्रिषन्धिम्) त्रिसन्धि [म० २। त्रयीकुशल सेनापति] को (देवाः) विजय चाहने वालों ने (ओजसे) पराक्रम (च च) और (बलाय) बल के लिये (अभजन्त) भेजा है ॥११॥

भावार्थः—पहिले महात्माओं के अनुकरण से अखण्ड ब्रह्मचर्य और परम ऐश्वर्य धारण करके धर्मात्मा सेनापति के आश्रय से आत्मिक और शारीरिक बल बढ़ावें ॥११॥

सर्वांल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥१२॥

भाषार्थः—(सर्वान् लोकान्) सब लोकों [दृश्यमान पदार्थों] को (देवाः) विजय चाहने वालों ने (अनया) इस (आहुत्या) आहुति [बलि वा भेट] से (सम्) सर्वथा (अजयन्) जीता है। (आङ्गिरसः) विद्वानों के शिष्य (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े बड़ों के रक्षक राजा] ने (यम्) जिस (असुरक्षयणम्) असुरनाशक (वधम्) शस्त्र (वज्रम्) वज्ररूप [सेनापति] को (असिञ्चत) सींचा है [बढ़ाया है] ॥१२॥

भावार्थः—जिस धर्मात्मा सेनापति का आश्रय लेकर विद्वानों ने शत्रुओं का नाश किया है, उसी से प्रीति करके चतुर मनुष्य सब विघ्नों को हटावें ॥१२॥

बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥१३॥

भाषार्थः—(आङ्गिरसः) विद्वानों के शिष्य (बृहस्पतिः) [बड़े बड़ों के रक्षक राजा] ने (यम्) जिस (असुरक्षयणम्) असुर नाशक (वधम्) शस्त्र (वज्रम्) वज्ररूप [सेनापति] को (असिञ्चत) सींचा है [बढ़ाया है]। (तेन) उसी [सेनापति] के साथ, (बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़े बड़ों के रक्षक राजन्] (अहम्) मैं [वीर पुरुष] (ओजसा) पराक्रम से (अमूम् सेनाम्) उस सेना पर (नि लिम्पामि) पोता फेरता हूं और (अमित्रान्) वैरियों को (हन्मि) मारता हूं ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः जैसे माली जल सींच कर वृक्षों को बढ़ाता है, वैसे ही धर्मज्ञ राजा वीरों को बढ़ावे और शत्रुओं का नाश करे ॥१३॥

सर्वे॑ दे॒वा अ॒त्याय॑न्ति॒ ये अ॒श्नन्ति॒ वष॑ट्कृतम् ।
इ॒मां जु॑षध्वमाहु॑ति॒मितो॒ जय॑त॒ मामुतः॑ ॥१४।

भाषार्थः—(सर्वे) वे सब (देवाः) विजयी जन (अत्यायन्ति) यहां चले आते हैं, (ये) जो (वषट्कृतम्) भक्ति से सिद्ध किये हुए [अन्न आदि] को (अश्नन्ति) खाते हैं। [वे तुम]। (इमाम्) इस (आहुतिम्) आहुति [बलि वा भेट] को (जुषध्वम्) सेवन करो—"(इतः) इस ओर से (जयत) जीतो, (अमुतः) उस ओर से (मा) मत [जीतो]" ॥१४॥

भावार्थः—जिस राज्य में सब लोग धर्म से अन्न आदि भोगते हों, वहां सब मिलकर शत्रुओं को न आने दें ॥१४॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद—म० ९ में आया है ॥

सर्वे॑ दे॒वा अ॒त्याय॑न्तु॒ त्रिष॑न्धे॒ राहु॑तिः प्रि॒या ।
सं॒धां म॑ह॒तीं र॑क्षत॒ यथाग्रे॒ असु॑रा जि॒ताः ॥१५॥

भाषार्थः—(सर्वे) सब (देवाः) व्यवहार कुशल लोग (अत्यायन्तु) यहां चले आवें, (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [म० २। त्रयीकुशल सेनापति] की (प्रिया) यह पियारी (आहुतिः) आहुति [बलि वा भेट] है। "[हे वीरो !] (महतीम्) उस बड़ी (सन्धाम्) प्रतिज्ञा को (रक्षत) रखलो, (यया) जिस [प्रतिज्ञा] से (अग्रे) पहिले (असुराः) असुर लोग (जितः) जीते गये हैं" ॥१५॥

भावार्थः—तत्त्वज्ञ पुरुष दृढ़ प्रतिज्ञा करके धर्मात्मा राजा के सहायक होकर अपना कर्तव्य पालन करें ॥१५॥

वा॒युर॒मित्रा॑णामिष्व॒ग्राण्याञ्च॑तु ।
इन्द्र॑ एषां बा॒हून् प्रति॑ भनक्तु॒ मा श॑कन् प्रति॒धामिषु॑म् ।
आ॒दि॒त्य ए॑षाम॒स्त्रं वि ना॑शयतु च॒न्द्रमा॑ युताम॒गत॑स्य॒ पन्था॑म् ॥१६॥

भाषार्थः—(वायुः) वायु [बलवान् वा वायु समान शीघ्रगामी राजा] (अमित्राणाम्) वैरियों के (इष्वग्राणि) बाणों के सिरों को (आ अञ्चतु) झुका देवे। (इन्द्रः) इन्द्र [बड़ा प्रतापी सेनानी] (एषाम्) इन [शत्रुओं] के (बाहून्) भुजाओं को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रति भनक्तु) तोड़ डाले, वे [शत्रु] (इषुम्) बाण (प्रतिधाम्) लगाने को (मा शकन्) न समर्थ होवें। (आदित्यः) आदित्य [अखण्ड ब्रह्मचारी, वा सूर्य समान तेजस्वी सेनाध्यक्ष] (एषाम्) इनके (अस्त्रम्) अस्त्रों [भाले बाण तलवार आदि] को (वि नाशयतु) नष्ट कर देवे, (चन्द्रमाः) चन्द्रमा [आनन्द दाता व चन्द्र समान शान्तिप्रद सेनापति] (पन्थाम् अगतस्य) मार्ग पर न चलने वाले [शत्रु] का (युताम्) बन्धन करे ॥१६॥

भावार्थः—राजा आदि सब सेनापति लोग अपने अपने घातों से शत्रुओं के विनाश का प्रयत्न करें ॥१६॥

यदिं प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।

तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥१७॥

भाषार्थः—(यदि) जो [शत्रुओं ने] (देवपुराः) राजा के नगरों पर (प्रेयुः) चढ़ाई की है, और (ब्रह्म) हमारे धन को (वर्माणि) अपने रक्षा साधन (चक्रिरे) बनाया है। (तनूपानम्) हमारे शरीर रक्षा साधन को (परिपाणम्) अपना रक्षा साधन (कृण्वानाः) बनाते हुए उन लोगों ने (यत्) जो कुछ (उपोचिरे) डींग मारी है, (तत् सर्वम्) उस सब को (अरसम्) नीरस वा फीका (कृधि) कर दे ॥१७॥

भावार्थः—राजा उपद्रवी शत्रुओं को जीत कर प्रजा की सदा रक्षा करे ॥१७॥

यह मन्त्र आ चुका है—अथर्व० ५।८।६॥

क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् ।

त्रिषंधे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥१८॥

भाषार्थः—(त्रिषन्धे) हे त्रिसन्धि ! [म० २। त्रयीकुशल राजन्] [शत्रुओं के लिये] (क्रव्यादा) मांस भक्षक [कष्ट] (च) और (मृत्युना) मृत्यु के साथ (पुरोहितम्) [अग्रगामी पुरुष] का (अनुवर्तयन्) अनुवर्त्ती होकर तू (सेनया) अपनी सेना के साथ (प्र इहि) चढ़ाई कर, (अमित्रान्) वैरियों को (जय) जीत और (प्र पद्यस्व) आगे बढ़ ॥१८॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि आप्त सत्य प्रतिज्ञा वाले पुरुषों के समान शत्रुओं के कष्ट देने और मारने के अस्त्र शस्त्र आदि साधन संग्रह करके चढ़ाई करे ॥१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिषंधे तमसा त्वममित्रान् परि वारय ।
पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥१९॥

भाषार्थः—(त्रिषन्धे) हे त्रिसन्धि ! [म० २ । त्रयीकुशल राजन्] (त्वम्) तू (तमसा) अन्धकार से (अमित्रान्) वैरियों को (परि वारय) घेर ले । (पृषदाज्यप्रणुत्तानाम्) दही घृत [आदि खाद्य वस्तुओं] से हटाये गये (अमीषाम्) इन [शत्रुओं] में से (कश्चन) कोई भी (मा मोचि) न छुटे ॥१९॥

भावार्थः—राजा आग्नेय आदि अस्त्र शस्त्रों से अचेत और खान पान आदि पदार्थों से शून्य करके शत्रुओं को हरा देवे ॥१९॥

अन्तिम पाद आचुका है—अ० ३ । १९ । ८ । तथा ११ । ९ । २० ॥

श्वितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥२०॥

भाषार्थः—(श्वितिपदी) उजाले और अन्धकार में गति वाली [सेना] (अमित्राणाम्) वैरियों की (अमूः) उन (सिचः) सींचने वाली [सहायक सेनाओं] पर (सं पततु) टूट पड़े । (न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [नित्य पुरुषार्थी राजन्] (अद्य) आज (अमित्राणाम्) वैरियों की (अमूः) वे (सेनाः) सेनायें (मुह्यन्तु) अचेत हो जावें ॥२०॥

भावार्थः—चतुर सेनापति शत्रुओं की सहायक सेनाओं को तुरन्त रोककर व्याकुल कर देवे ॥२०॥

मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् ।
अनया जहि सेनया ॥२१॥

भाषार्थः—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [नित्य पुरुषार्थी राजन्] (अमित्राः) वैरी (मूढाः) घबड़ाये हुये हैं, (एषाम्) इनमें से (वरंवरम्) अच्छे को (जहि) मार । (अनया सेनया) इस सेना से [उन्हें] (जहि) मार ॥२१॥

भावार्थः—सेनापति अपनी सेना से शत्रुओं को अचेत करके उन के बड़े-बड़े वीरों को मारे ॥२१॥

यश्च कवची यश्चाकवचो३ऽमित्रो यश्चाज्मनि ।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(य. च) जो कोई (कवची) कवच वाला है, (च) और (यः) जो कोई (अकवचः) विना कवच वाला है, (च) और (यः) जो (अमित्रः) वैरी (अज्मनि) दौड़ झपट में है। (ज्यापाशैः) धनुषों की डोरी के फन्दों से और (कवचपाशैः) कवचों के फन्दों से (अज्मना) दौड़ झपट के साथ (अभिहतः) मार डाला गया वह [शत्रु] (शयाम्) सोवें ॥२२॥

भावार्थः—संग्राम के बीच सेनापति दौड़ झपट करके दौड़ते झपटते शत्रुओं को घेरकर मारे ॥२२॥

ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे हताञ्छ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥२३॥

भाषार्थः—(ये) जो (अमित्राः) शत्रु लोग (वर्मिणः) वर्म [कवच विशेष] वाले हैं, (ये) जो (अवर्माणः) विना वर्म वाले हैं, (च) और (ये) जो (वर्मिणः) झिलम वाले हैं। (अर्बुदे) हे अर्बुदि [शूर सेनापति] (तान् सर्वान्) उन सब (हतान्) मारे गयों को (श्वानः) कुत्ते (भूम्याम्) रणभूमि पर (अदन्तु) खावें ॥२३॥

भावार्थः—शूर सेनापति से मारे गये सब शत्रुओं की लोथों को कुत्ते आदि खावें ॥२३॥

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥२४॥

भाषार्थः—(ये) जो [शत्रु] (रथिनः) रथ वाले हैं, (ये) जो (अरथाः) विना रथ वाले हैं, (ये) जो (असादाः) विना वाहन वाले [पैदल] हैं, (च) और जो (सादिनः) वाहन वाले [घुड़चढ़े, हाथी आदि पर चढ़े हुए] हैं। (तान् सर्वान्) उन सब (हतान्) मारे गयों को (गृध्राः) गिद्ध (श्येनाः) श्येन [बाज आदि] (पतत्रिणः) पक्षीगण (अदन्तु) खावें ॥२४॥

भावार्थः—रणक्षेत्र में मर कर पड़े हुए शत्रु के सेनादलों को मांसाहारी पक्षी खावें ॥२४॥

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् ।
विविद्धा ककजाकृता ॥२५॥

भाषार्थः—(वधानाम्) हथियारों की (समरे) मारामार में (विविद्धा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छेद डाली गयी, (ककजाकृता) प्यास की उत्पत्ति से सतायी गयी, (सहस्रकुणपा) सहस्रों लोथों वाली (आमित्री) वैरियों की (सेना) सेना (शेताम्) सो जावे ॥२५॥

भावार्थः—वीरों की मार धाड़ से शत्रु सेना अनेक प्रकार से व्याकुल होकर मृत्यु पावे ॥२५॥

मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥२६॥

भाषार्थः—(सुपर्णैः=सुपर्णाः) शीघ्रगामी पक्षी [गिद्ध आदि] (मर्माविधम्) मर्म स्थानों में छिदे हुए, (रोरुवतम्) चिल्लाते हुए (मृदितम्) कुचले हुए, (शयानम्) पड़े हुए, (दुश्चितम्) उस दुष्ट विचार वाले को (अदन्तु) खावें। (यः) जो (अमित्रः) शत्रु (नः) हमारी (इमाम्) इस (प्रतीचीम्) प्रत्यक्ष प्राप्त हुई (आहुतिम्) [बलि वा भेट] को (युयुत्सति) झगड़ना चाहता है ॥२६॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रत्यक्ष सत्य धर्म के विरुद्ध आचरण करें, वे युद्धस्थल में वध किये जावें, जिससे अन्य दुष्ट दुराचार न करें ॥२६॥

यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥२७॥

भाषार्थः—(याम्) जिस [आहुति म० २६] को (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (अनुतिष्ठन्ति) अनुष्ठान करते हैं, (यस्याः) जिस [आहुति] की (विराधनम्) निष्फलता (न अस्ति) नहीं है। (तया) उस [आहुति] से (वृत्रहा) अन्धकार नाशक (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला पुरुष] (त्रिषन्धिना) त्रिसन्धि [म० २। त्रयीकुशल सेनापति] के साथ (वज्रेण) वज्रद्वारा [शत्रुओं को] (हन्तु) मारे ॥२७॥

भावार्थः—जैसे अचूक नीति और प्रतिज्ञारूप आहुति को शूरवीर पुरुष परोपकार में दान करते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान में कुशल और पुरुषार्थी जन के सहाय से विघ्नों का नाश करें ॥२७॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

इत्येकादशं काण्डम् समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

द्वादशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१॥ [पृथिवी सूक्तम्] ॥

१—६३ ॥ पृथिवी देवता ॥ १, ५५, भुरिक् त्रिष्टुप्, २, ३, ४, २९, ३१, ६०, ६१, ६२, त्रिष्टुप्, ५, ४४, ४५ निचृज् जगती. ६ जगती, ७ प्रस्तारपङ्क्तिः, ८ षट्पदा विराडष्टिः, ९ निचृत् त्रिष्टुप्, १०, ३८ षट्पदा जगती, ११ अतिशक्वरी, १२, १३, १५, २५, ३७ शक्वरी, १४, १७ महाबृहती, १६, २१ साम्नी त्रिष्टुप्, १८ निचृदतिशक्वरी, १९ उरोबृहती, २०, २६, २७, २८, ३३, ३५, ३९, ४०, ५०, ५३, ५४, ५६, ५९, ६३, अनुष्टुप्, २२ स्वराडतिजगती, २३ विराडतिजगती, २४ पञ्चपदा भुरिज्जगती, ३० विराड् गायत्री, ३२ त्रिष्टुप् ज्योतिष्मती, ३४, ५२ अतिजगती, ३६ आर्षी पङ्क्तिः, ४१, ४६ विराट् शक्वरी, ४२ भुरिगनुष्टुप्, ४३ विराडास्तारपङ्क्तिः, ४७, ५१ स्वराट् शक्वरी, ४८ ब्राह्मयुष्णिक्, ४९, ५७ जगती, ५८ निचृद्बृहती छन्दः ॥

राज्यरक्षोपदेशः—राज्य की रक्षा का उपदेश ॥

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**बृहत्**) बड़ा हुआ (**सत्यम्**) सत्य कर्म, (**उग्रम्**) उग्र (**ऋतम्**) सत्यज्ञान, (**दीक्षा**) दीक्षा [आत्मनिग्रह], (**ब्रह्म**) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन, वीर्यनिग्रह रूप] (**तपः**) तप [व्रत धारण] और (**यज्ञः**) यज्ञ [देवपूजा, सत्संग और दान] (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**धारयन्ति**) धारण करते हैं। (**नः**) हमारे (**भूतस्य**) बीते हुए और (**भव्यस्य**) होनेवाले [पदार्थ] की (**पत्नी**) पालन करने वाली (**सा पृथिवी**) वह पृथिवी (**उरुम्**) चौड़ा (**लोकम्**) स्थान (**नः**) हमारे लिये (**कृणोतु**) करे ॥१॥

भावार्थः– सत्यकर्मी, सत्यज्ञानी, जितेन्द्रिय, ईश्वर और विद्वानों से प्रीति करने वाले चतुर पुरुष पृथिवी पर उन्नति करते हैं। यह नियम भूत और भविष्यत् के लिये समान है ॥१॥

इस सूक्त का नाम "पृथिवी सूक्त" है। इसमें वर्णित धर्म और नीति के पालने से राजा प्रजा और प्रत्येक गृहस्थ और मनुष्य मात्र का कल्याण होता है ॥

इस सूक्त का संस्कृत और भाषा में सविस्तार भाष्य "वैदिक राष्ट्रगीत" नामक श्रीयुत पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर सुखप्रकाश, अनारकली लाहौर का बनाया बड़ा उत्तम है। पाठकवृन्द उसे भी पढ़ें, मैं उनका बहुत धन्यवाद करता हूं ॥

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२॥

भाषार्थः—(**मानवानाम्**) मान वालों वा मननशीलों के (**असंबाधम्**) गति रोकने वाले व्यवहार को (**बध्यतः**) मिटाती हुई (**यस्याः**) जिस [पृथिवी] के [मध्य] (**उद्वतः**) ऊंचे और (**प्रवतः**) नीचे देश और (**बहु**) बहुत से (**समम्**) सम स्थान हैं। (**या**) जो (**नानावीर्याः**) अनेक वीर्य [बल] वाली (**ओषधीः**) ओषधियों [अन्न, सोम लता आदि] को (**बिभर्ति**) रखती है, (**पृथिवी**) वह पृथिवी (**नः**) हमारे लिये (**प्रथताम्**) चौड़ी होवे और (**नः**) हमारे लिये (**राध्यताम्**) सिद्धि करे ॥२॥

भावार्थः—विचारशील मनुष्य पृथिवी पर ऊंचे, नीचे और सम स्थानों में विघ्नों को मिटाकर अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके कार्यसिद्धि करते जाते हैं ॥२॥

(**बध्यतः**) शब्द के स्थान पर गवर्नमेन्ट बुकडिपो बम्बई के पद पाठ में [मध्यतः] शब्द है। हम ने अजमेर वैदिक यन्त्रालय और सेवकलाल कृष्णदास के संहिता पाठ के अनुसार (बध्यतः) पद मानकर अर्थ किया है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३॥

भाषार्थः—(यस्याम्) जिस [भूमि] पर (समुद्रः) समुद्र (उत) और (सिन्धुः) नदी और (आपः) जलधारायें [झरने कूप आदि] हैं, (यस्याम्) जिस पर (अन्नम्) अन्न और (कृष्टयः) खेतियां (संबभूवुः) उत्पन्न हुई हैं। (यस्याम्) जिस पर (इदम्) यह (प्राणत्) श्वास लेता हुआ और (एजत्) चेष्टा करता हुआ [जगत्] (जिन्वति) चलता है, (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमें (पूर्वपेये) श्रेष्ठों से रक्षा योग्य पद पर (दधातु) ठहरावे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य समुद्र, नदी, कूप और वृष्टि के जल तथा अन्य खेती आदि से नौका, यान, कला यन्त्र आदि में अनेक प्रकार उपकार लेते हैं, वे सब जगत् को आनन्द देकर श्रेष्ठ पद पाते हैं ॥३॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

भाषार्थः—(यस्याः पृथिव्याः) जिस पृथिवी की (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें हैं, (यस्याम्) जिस में (अन्नम्) अन्न और (कृष्टयः) खेतियां (संबभूवुः) उत्पन्न हुई हैं। (या) जो (बहुधा) अनेक प्रकार से (प्राणत्) श्वास लेते हुए और (एजत्) चेष्टा करते हुए [जगत्] को (बिभर्ति) पोषती है, (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमें (गोषु) गौओं में (अपि) और भी (अन्ने) अन्न में (दधातु) रक्खे ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब ओर दृष्टि फैलाकर अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके सब प्राणियों की रक्षा करते हैं, वे इस भूमि पर गौ, बैल, अश्व आदि और अन्न आदि पदार्थों से परि ूर्ण रहते हैं ॥४॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५॥

भाषार्थः—(यस्याम्) जिस [पृथिवी] पर (पूर्वे) पूर्वकाल में (पूर्वजनाः) पूर्वजों ने (विचक्रिरे) बढ़कर कर्तव्य किये हैं, (यस्याम्) जिस पर (देवाः) देवताओं [विजयी जनों] ने (असुरान्) असुरों [दुष्टों] को (अभ्यवर्तयन्) हराया है। (गवाम्) गौओं, (अश्वानाम्) अश्वों (च) और (वयसः) अन्न की (विष्ठा) चौकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ठिकाना], (पृथिवी) वह पृथिवी (नः) हम को (भगम्) ऐश्वर्य और (वर्चः) तेज (दधातु) देवे ॥५॥

भावार्थः—जिस प्रकार पूर्वजों ने विघ्नों को हटाकर कर्तव्य करके ऐश्वर्य पाया है, उसी प्रकार मनुष्य पुरुषार्थ करके ऐश्वर्यवान् और प्रतापवान् होवें ॥५॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।

वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥

भाषार्थः—(विश्वम्भरा) सब को सहारा देने वाली, (वसुधानी) धनों की रखने वाली (प्रतिष्ठा) दृढ़ आधार (हिरण्यवक्षाः) सुवर्ण छाती में रखने वाली, (जगतः) चलने वाले [उद्योगी] की (निवेशनी) सुख देने वाली, (वैश्वानरम्) सब नरों के हितकारी (अग्निम्) अग्नि [समान प्रतापी मनुष्य] की (बिभ्रती) पोषण करने वाली (इन्द्रऋषभा) इन्द्र [परमात्मा वा मनुष्य वा सूर्य] को प्रधान मानने वाली (भूमिः) भूमि (द्रविणे) बल [वा धन] के बीच (नः) हम को (दधातु) रक्खे ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य उद्योग करते हैं, वे भूपति होकर इस वसुधा पृथिवी पर सोना चांदी आदि की प्राप्ति से बली और धनी होकर सुख पाते हैं ॥६॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।

सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥७॥

भाषार्थः—(याम्) जिस (विश्वदानीम्) सब कुछ देने वाली (भूमिम्) भूमि [आश्रय स्थान], (पृथिवीम्) पृथिवी [फैले हुए धरातल] को (अस्वप्नाः) विना सोते हुए (देवाः) देवता [विजयी पुरुष] (अप्रमादम्) विना चूक (रक्षन्ति) बचाते हैं। (सा) वह (नः) हमको (प्रियम्) प्रिय (मधु) मधु [मधुविद्या, पूर्णविज्ञान] (दुहाम्) दुहा करे, (अथो) और भी (वर्चसा) तेज [बल पराक्रम] के साथ (उक्षतु) बढ़ावे ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य निरालसी और अप्रमादी होकर भूमि की रक्षा करते हैं, वे इस पृथिवी पर विज्ञानी और तेजस्वी होते हैं ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥८॥

भाषार्थः—(या) जो [भूमि] (अर्णवे अधि) जल से भरे समुद्र के ऊपर (सलिलम्) जल [भाप] (अग्रे) पहिले (आसीत्) थी, (मनीषिणः) मननशील लोग (मायाभिः) अपनी बुद्धियों से (याम् अन्वचरन्) जिस [भूमि] के पीछे पीछे चले हैं [सेवा करते रहे हैं]। (यस्याः पृथिव्याः) जिस पृथिवी का (हृदयम्) हृदय [भीतरी बल] (परमे) बहुत बड़े (व्योमन्) विविध रक्षक [आकाश] में (सत्येन) सत्य [अविनाशी परमात्मा] से (आवृतम्) ढका हुआ (अमृतम्) विना मरा [सदा उपजाऊ] है। (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हम को (त्विषिम्) तेज और (बलम्) बल वा सेना (उत्तमे) सब से श्रेष्ठ (राष्ट्रे) राज्य के बीच (दधातु) दान करे ॥८॥

भावार्थः—सृष्टि के आदि में जल के मध्य यह पृथिवी बुदबुदे के समान थी, वह आकाश में ईश्वर नियम से दृढ़ हो कर अनेक रत्नों की खानि है पहिले विचारवानों के समान सब मनुष्य पराक्रम से पृथिवी की सेवा करके बड़े राज्य के भीतर तेजस्वी और बली होकर बढ़ती करें ॥८॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥९॥

भाषार्थः—(यस्याम्) जिस भूमि पर (परिचराः) सेवाशील वाले (समानीः) एक से स्वभाव वाली (आपः) आप्त प्रजाएं [सत्य वक्ता लोग] (अहोरात्रे) दिन रात्रि (अप्रमादम्) विना चूक (क्षरन्ति) बहते हैं। (भूरिधारा) अनेक धारण शक्तियों वाली (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमको (पयः) अन्न (दुहाम्) दुहा करे, (अथो) और भी (वर्चसा) तेज के साथ (उक्षतु) बढ़ावे ॥९॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि समदर्शी परोपकारी महात्माओं के समान दृढ़चित्त होकर परस्पर सेवा करते हुए पृथिवी पर अन्न आदि के लाभ से बल वीर्य बढ़ावें ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे । इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः । सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१०॥

भाषार्थः—(याम्) जिस [भूमि] को (अश्विनौ) दिन और राति ने (अमिमाताम्) मापा है, (यस्याम्) जिस [भूमि] पर (विष्णुः) व्यापक सूर्य ने (विचक्रमे) पांव रक्खा है। (याम्) जिस [भूमि] को (शचीपतिः) वाणियों, कर्मों और बुद्धियों में चतुर (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] ने (आत्मने) अपने लिये (अनमित्राम्) शत्रु रहित (चक्रे) किया है। (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमारे [हम सब के] हित के लिये (मे) मुझ को (पयः) अन्न [वा दूध] (वि) विविध प्रकार (सृजताम्) देवे, [जैसे] (माता) माता (पुत्राय) पुत्र को [अन्न वा दूध देती है] ॥१०॥

भावार्थः—जिस पृथिवी को दिन और राति अपने गुणों से उपजाऊ बनाते हैं, जिस को सूर्य अपने आकर्षण, प्रकाश और वृष्टि आदि कर्म से स्थिर रखता है, और जिस पर यथार्थवक्ता, यथार्थकर्मा और यथार्थज्ञाता पुरुष विजय पाते हैं, उस पृथिवी को उपयोगी बनाकर प्रत्येक मनुष्य सब का हित करे ॥१०॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु । बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् । अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥११॥

भाषार्थः—(पृथिवि) हे पृथिवी ! [हमारे लिये] (ते) तेरी (गिरयः) पहाड़ियां और (हिमवन्तः) हिम वाले (पर्वताः) पहाड़, और (ते) तेरा (अरण्यम्) वन भी (स्योनम्) मनभावना (अस्तु) होवे। (बभ्रुम्) पोषण करने वाली, (कृष्णाम्) जोतने योग्य, (रोहिणीम्) उपजाऊ, (विश्वरूपाम्) अनेक [सुनैले, रुपैले आदि] रूप वाली, (ध्रुवाम्) दृढ़ स्वभाव वाली, (भूमिम्) आश्रय स्थान, (पृथिवीम्) फैली हुई, (इन्द्रगुप्ताम्) इन्द्रों [ऐश्वर्यशाली वीर पुरुषों] से रक्षा की गई (पृथिवीम्) पृथिवी का (अजीतः) विना जीर्ण हुए, (अहतः) विना मारे गये और (अक्षतः) विना घायल हुए (अहम्) मैं (अधि अस्थाम्) अधिष्ठाता बना हूं ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य कला, यन्त्र, यान, विमान आदि से दुर्गम्य स्थानों में निर्विघ्न पहुंचकर पृथिवी को उपजाऊ बनावें ॥११॥

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः । तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२॥

भाषार्थः—(पृथिवि) हे पृथिवी ! (यत्) जो (ते) तेरा (मध्यम्) न्याययुक्त कर्म है, (च) और (यत्) जो (नभ्यम्) क्षत्रियों का हितकारी कर्म है, और (याः) जो (ऊर्जः) बलदायक [अन्न आदि] पदार्थ (ते) तेरे (तन्वः) शरीर से] (संबभूवुः) उत्पन्न हुए हैं। (तासु) उन सब [क्रियाओं] के भीतर (नः) हम को (धेहि) तू रख, और (नः) हमें (अभि) सब ओर से (पवस्व) शुद्ध कर, (भूमिः) भूमि (माता) [मेरी] माता [तुल्य है], (अहम्) मैं (पृथिव्याः) पृथिवी के (पुत्रः) पुत्र [नरक, महाकष्ट से बचाने वाला हूं]। (पर्जन्यः) सींचने वाला मेघ (पिता) [मेरे] पिता [तुल्य पालक है], (सः) वह (उ) भी (नः) हमें (पिपर्तु) पूर्ण करे ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य नीतिविद्या, भूगर्भ विद्या, भूतल विद्या और मेघ विद्या आदि में निपुण होकर पृथिवी को उपकारी और सुखदायक बनावें ॥१२॥

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः । यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् । सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥१३॥

भाषार्थः—(यस्याम् भूम्याम्) जिस भूमि पर (विश्वकर्माणः) विश्वकर्मा [सब कामों में चतुर] लोग (वेदिम्) वेदी [यज्ञ स्थान] को (परिगृह्णन्ति) घेर लेते हैं, (यस्याम्) जिस [भूमि] पर (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान व्यवहार] को (तन्वते) फैलाते हैं। (यस्याम् पृथिव्याम्) जिस पृथिवी पर (ऊर्ध्वाः) ऊंचे और (शुक्राः) उजले (स्वरवः) विजय स्तम्भ (आहुत्याः) आहुति [पूर्णाहुति, यज्ञपूर्ति] से (पुरस्तात्) पहिले (मीयन्ते) गाड़े जाते हैं। (सा) वह (वर्धमाना) बढ़ती हुई (भूमिः) भूमि (नः) हमें (वर्धयत्) बढ़ाती रहे ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि कर्मकुशल लोगों के समान अपना कर्त्तव्य पूरा करके संसार में दृढ़ कीर्ति स्थापित करें ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥१४॥

भाषार्थः—(पृथिवि) हे पृथिवी ! (यः) जो [दुष्ट] (नः) हम से (द्वेषत्) वैर करे, (यः) जो (पृतन्यात्) सेना चढ़ावे, (यः) जो (मनसा) मन से, (यः) जो (वधेन) मारू हथियार से (अभिदासात्) सतावे । (पूर्वकृत्वरि) हे श्रेष्ठों के लिये काम करने वाली (भूमे) भूमि ! (तम्) उस को (नः) हमारे लिये (रन्धय) नाश कर ॥१४॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्म से सत्कार पूर्वक पृथिवी की रक्षा करते हैं, वे शत्रुओं को नाश कर सकते हैं ॥१४॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५॥

भाषार्थः—(त्वत्) तुझ से (जाताः) उत्पन्न हुए (मर्त्याः) मनुष्य (त्वयि) तुझ पर (चरन्ति) चलते हैं, (त्वम्) तू (द्विपदः) दो पायों को और (त्वम्) तू (चतुष्पदः) चौपायों को (बिभर्षि) आश्रय देती है। (पृथिवि) हे पृथिवी ! (इमे) यह सब (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पांच तत्त्व से] संबन्ध वाले (मानवाः) मनुष्य (तव) तेरे हैं, (येभ्यः मर्त्येभ्यः) जिन मनुष्यों के लिये (उद्यन्) उदय होता हुआ (सूर्यः) सूर्य (अमृतम्) विना मरी हुई (ज्योतिः) ज्योति (रश्मिभिः) अपनी किरणों से (आतनोति) सब ओर फैलाता है ॥१५॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी पर उत्पन्न होकर उद्योग करते हैं, वे सब प्राणियों की रक्षा करके सूर्य की पुष्टिकारक किरणों से वृष्टि आदि द्वारा सदा आनन्द पाते हैं ॥१५॥

ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६॥

भाषार्थः (समग्राः) सब (ताः) वे (प्रजाः) प्रजायें (नः) हमें (सम् दुहताम्) मिलकर भरपूर करें, (पृथिवि) हे पृथिवी ! (वाचः) वाणी की (मधु) मधुरता (मह्यम्) मुझ को (धेहि) दे ॥१६॥

भावार्थः—जो मनुष्य वाणी की मधुरता अर्थात् सत्य वचन आदि से सब प्राणियों से उपकार लेते हैं, वे सुख पाते हैं ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥१७॥

भाषार्थः—(विश्वस्वम्) सब उत्पन्न करने वाली, (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न सोमलता आदि] की (मातरम्) माता, (ध्रुवाम्) दृढ़, (भूमिम्) आश्रय स्थान, (धर्मणा) धर्म [धरने योग्य स्वभाव वा कर्म] से (धृताम्) धारण की गयी, (शिवाम्) कल्याणी, (स्योनाम्) मनभावनी (पृथिवीम् अनु) पृथिवी के पीछे (विश्वहा) अनेक प्रकार (चरेम) हम चलें ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्य धर्म के साथ भूमि का शासन करके समस्त उत्तम गुणों और पदार्थों से सुख प्राप्त करें ॥१७॥

महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे । महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् । सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१८॥

भाषार्थः—(महती) बड़ी होकर तू (महत्) बड़ा (सधस्थम्) सहवास (बभूविथ) हुयी है, (ते) तेरा (वेगः) वेग, (एजथुः) चलना और (वेपथुः) हिलना (महान्) बड़ा है। (महान्) बड़ा (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (अप्रमादम्) विना चूक (त्वा रक्षति) तेरी रक्षा करता है। (सा) सो तू, (भूमे) हे भूमि ! (नः) हमें (हिरण्यस्य इव) सुवर्ण के जैसे (संदृशि) रूप में (प्ररोचय) प्रकाशमान करदे, (कश्चन) कोई भी (नः) हम से (मा द्विक्षत) न द्वेष करे ॥१८॥

भावार्थः—पुरुषार्थी पुरुष अनेक प्रयत्नों के साथ पृथिवी पर सब से मिलकर विद्या द्वारा सुवर्ण आदि धन प्राप्त करके तेजस्वी होते हैं ॥१८॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥१९॥

भाषार्थः—(भूम्याम्) भूमि में [वर्तमान] (अग्निः) अग्नि [ताप] (ओषधीषु) ओषधियों [अन्न सोमलता आदि] में है, (अग्निम्) अग्नि को (आपः) जल (बिभ्रति) धारण करते हैं, (अग्निः) अग्नि (अश्मसु) पत्थरों [वा मेघों] में है। (अग्निः) अग्नि (पुरुषेषु अन्तः) पुरुषों के भीतर है, (अग्नयः) अग्नि [के ताप] (गोषु) गौओं में और (अश्वेषु) घोड़ों में हैं ॥१९॥

भावार्थः—ईश्वर नियम से पृथिवी में का अग्निताप अन्न आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थों और प्राणियों में प्रवेश करके उन में बढ़ने तथा पुष्ट होने का सामर्थ्य देता है ॥१६॥

यहां पर अथर्व० ३ । २१ । १, २ भी देखो ॥

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्व१न्तरिक्षम् ।

अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥२०॥

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि [ताप] (दिवः) सूर्य से (आ तपति) आकर तपता है, (देवस्य) कामना योग्य (अग्नेः) अग्नि का (उरु) चौड़ा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष [अवकाश] है । (हव्यवाहम्) हव्य [आहुति के द्रव्य अथवा नाड़ियों में अन्न के रस] को ले चलने वाले, (घृतप्रियम्) घृत के चाहने वाले (अग्निम्) अग्नि को (मर्तासः) मनुष्य लोग (इन्धते) प्रकाशमान करते हैं ॥२०॥

भावार्थः—यह अग्नि ताप भूमि में [म० १६] सूर्य से आता है, तथा आकाश के पदार्थों में प्रवेश करके उन्हें बलयुक्त करता है । उस अग्नि को मनुष्य आदि प्राणी भोजन आदि से शरीर में बढ़ा कर पुष्ट और बलवान् होते हैं । तथा उसी अग्नि को हव्यद्रव्यों से प्रज्वलित करके मनुष्य वायु, जल और अन्न को शुद्ध निर्दोष करते हैं ॥२०॥

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥२१॥

भाषार्थः—(अग्निवासाः) अग्नि के साथ निवास करने वाली [अथवा अग्नि के वस्त्र वाली], (असितज्ञूः) बन्धन रहित कर्म को जताने वाली (पृथिवी) पृथिवी (मा) मुझ को (त्विषिमन्तम्) तेजस्वी और (संशितम्) तीक्ष्ण [फुरतीला] (कृणोतु) करे ॥२१॥

भावार्थः—जैसे भूमि भीतर और बाहिर सूर्य ताप से बल पाकर अपने मार्ग पर बेरोक चलती रहती है, वैसे ही मनुष्य भीतरी और बाहिरी बल बढ़ा कर सुमार्ग में बढ़ता चले ॥२१॥

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् । भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः । सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२॥

भाषार्थः—(भूम्याम्) भूमि पर (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (मनुष्याः) मनुष्य (हव्यम्) देने लेने योग्य, (अरंकृतम्) शोभित करने वाले वा शक्तिमान् करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले (यज्ञम्) संगतिकरण व्यवहार को (ददति) दान करते हैं। (भूम्याम्) भूमि पर (मर्त्याः) मनुष्य (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (अन्नेन) अन्न द्वारा (जीवन्ति) जीवते हैं। (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हम को (प्राणम्) प्राण [आत्मबल] और (आयुः) आयु [जीवन] (दधातु) देवे, और [वही] (पृथिवी) पृथिवी (मा) मुझ को (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वा भोजन वाला (कृणोतु) करे ॥२२॥

भावार्थः—जिस प्रकार मनुष्य उत्तम पुरुषों से मिलकर श्रेष्ठ श्रेष्ठ गुण प्राप्त करते और दूसरों को प्राप्त कराते हैं, उसी प्रकार हम उत्तम गुण प्राप्त करके अपना जीवन श्रेष्ठ बनावें ॥२२॥

यस्ते॑ ग॒न्धः पृ॑थिवि संब॒भूव॒ यं बिभ्र॒त्योष॑धयो॒ यमापः॑। यं ग॑न्ध॒र्वा अ॑प्स॒रस॑श्च भेजि॒रे तेन॑ मा सुर॒भिं कृ॑णु॒ मा नो॑ द्विक्षत॒ कश्च॒न ॥२३॥

भाषार्थः—(पृथिवि) हे पृथिवी! (यः) जो (ते) तेरा (गन्धः) गन्ध [अंश] (संबभूव) उत्पन्न हुआ है, (यम्) जिस [अंश] को (ओषधयः) ओषधें [अन्न, सोमलता आदि] और (यम्) जिसको (आपः) जल (बिभ्रति) धारण करते हैं। (यम्) जिसको (गन्धर्वाः) पृथिवी [के अंश] को धारण करने वाले [प्राणियों] ने (च) और (अप्सरसः) आकाश में चलने वाले [जीवों और लोकों] ने (भेजिरे) भोगा है, (तेन) उस [गन्ध वा अंश] से (मा) मुझे (सुरभिम्) ऐश्वर्यवान् (कृणु) तू कर, (कश्चन) कोई भी [प्राणी] (नः) हम से (मा द्विक्षत) न वैर करे ॥२३॥

भावार्थः - गन्धवती पृथिवी का आश्रय लेकर अनेक प्रकार से सब प्राणी और सब लोक आकार धारण करके ठहरते हैं। मनुष्य उस पृथिवी के तत्त्व ज्ञान से सब कार्य सिद्ध करके ऐश्वर्यवान् होवें ॥२३॥

यस्ते॑ ग॒न्धः पुष्क॑रमावि॒वेश॒ यं सं॑ज॒भ्रुः सू॒र्याया॑ विवा॒हे। अम॑र्त्याः पृथिवि ग॒न्धमग्रे॒ तेन॑ मा सुर॒भिं कृ॑णु॒ मा नो॑ द्विक्षत॒ कश्च॒न ॥२४॥

भाषार्थः—(पृथिवि) हे पृथिवी! (यः) जो (ते) तेरा (गन्धः) [अंश] (पुष्करम्, पोषक पदार्थ [वा कमल] में (आविवेश) प्रविष्ट हुआ है, (यं गन्धम्) जिस गन्ध को (सूर्यायाः) सूर्य की चमक के (विवाहे) ले चलने में (अमर्त्याः) अमर [पुरुषार्थी] लोगों ने (अग्रे) पहिले (संजभ्रुः) समेटा है, (तेन) उसी [अंश] से (मा) मुझको (सुरभिम्) ऐश्वर्यवान् (कृणु) तू कर, (कश्चन) कोई भी [प्राणी] (नः) हम से (मा द्विक्षत) न वैर करे ॥२४॥

भावार्थः पृथिवी का गन्ध अर्थात् अंश प्रविष्ट होकर पदार्थों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्ट करता और सूर्य के ताप द्वारा देश देशान्तरों में पहुंचता है। उस पृथिवी से तत्त्ववेत्ता लोग उपकार लेकर प्रसन्न होते हैं ॥२४॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः। यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु। कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५॥

भाषार्थः—(यः) जो (ते) तेरा (गन्धः) गन्ध [अंश] (पुरुषेषु) अग्रगामी (पुंसु) रक्षक मनुष्यों में और (स्त्रीषु) स्त्रियों में (भगः) सेवनीय ऐश्वर्य और (रुचिः) कान्ति है। (यः) जो [गन्ध] (वीरेषु) वेगवान् (अश्वेषु) घोड़ों में (उत) और (यः) जो (मृगेषु) हरिणों में और (हस्तिषु) हाथियों में है और (यत्) जो (वर्चः) तेज (कन्यायाम्) चमकती हुई कन्या [कन्या आदि राशि ज्योतिश्चक्र] में है, (भूमे) हे भूमि! (तेन) उस [तेज] के साथ (अस्मान् अपि) हमें भी (सं सृज) मिला, (कश्चन) कोई भी [प्राणी] (मा) मुझ से (मा द्विक्षत) वैर न करे ॥२५॥

भावार्थः— पृथिवी का आश्रय लेकर संसार के देहधारी मनुष्य आदि सब प्राणी और अन्तरिक्ष के तारागण आदि सब लोक स्थित हैं, वैसे ही मनुष्य सब प्रकार उपकारी और तेजस्वी होकर विघ्नों का नाश करें ॥२५॥

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥२६॥

भाषार्थः—(भूमिः) भूमि (शिला) शिला, (अश्मा) पत्थर और (पांसुः) धूलि है, (सा) वह (संधृता) यथावत् धारण की गई (भूमिः) भूमि (धृता) धरी हुई है। (तस्यै) उस (हिरण्यवक्षसे) सुवर्ण आदि धन छाती में रखने वाली (पृथिव्यै) पृथिवी के लिये (नमः अकरम्) मैंने अन्न किया [खाया] है ॥२६॥

भावार्थः—जिस भूमि पर अनेक बड़े छोटे पदार्थ हैं और जिस में अनेक रत्न भरे हैं, उस पृथिवी के हित के लिये मनुष्य अन्न जल आदि पदार्थ खावें ॥२६॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥२७॥

भाषार्थः—(यस्याम्) जिस [पृथिवी] पर (वानस्पत्याः) वनस्पतियों [बड़े बड़े पेड़ों] से उत्पन्न हुए (वृक्षाः) वृक्ष (ध्रुवाः) दृढ़ होकर (विश्वहा) अनेक प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तिष्ठन्ति) ठहरते हैं (विश्वधायसम्) [उस] सब की धारण करने वाली, (घृताम्) [वीरों से] धारण की गयी (पृथिवीम्) पृथिवी का (अच्छावदामसि) स्वागत करके हम आवाहन करते हैं ॥२७॥

भावार्थः—जिस पृथिवी पर हमारे उपकार के लिये फल फूल पत्र आदि वाले वृक्ष उत्पन्न होते हैं, उसकी सावधानी हम सदा करते रहें ॥२७॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥२८॥

भाषार्थः—(उदीराणाः) उठते हुए (उत) और (आसीनाः) बैठे हुए (तिष्ठन्तः) खड़े होते हुए और (प्रक्रामन्तः) चलते फिरते हुए हम (दक्षिणसव्याभ्याम्) दोनों सीधे और डेरे (पद्भ्याम्) पाँवों से (भूम्याम्) भूमि पर (मा व्यथिष्महि) न डगमगावें ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्य पृथिवी पर सावधान और स्वस्थ रहकर सदा सब को सुख देवें ॥२८॥

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥२९॥

भाषार्थः—(विमृग्वरीम्) विविध खोजने योग्य, (पृथिवीम्) चौड़ी, (क्षमाम्) सहन शील, (ब्रह्मणा) ब्रह्म [वेदज्ञान, अन्न वा धन] द्वारा (वावृधानाम्) बढ़ी हुई (भूमिम्) भूमि को (आ वदामि) मैं आवाहन करता हूं। "(भूमे) हे भूमि! (ऊर्जम्) बलकारक पदार्थ, (पुष्टम्) पोषण, (अन्नभागम्) अन्न के विभाग और (घृतम्) घी को (बिभ्रतीम्) धारण करती हुई (त्वा अभि) तुझ पर (नि षीदेम) हम बैठें" ॥२९॥

भावार्थः—विज्ञानी लोग भूगर्भविद्या, भूतलविद्या आदि द्वारा भूमि को खोजकर अनेक प्रकार के उपकारी पदार्थ प्राप्त करके स्वस्थ पुष्ट होवें ॥२९॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥३०॥

भाषार्थः—(शुद्धाः) शुद्ध (आपः) जल (नः) हमारे (तन्वे) शरीर के लिये (क्षरन्तु) बहें, (यः) जो (नः) हमारा (सेदुः) नाश करने का व्यवहार है, (तम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस [व्यवहार] को (अप्रिये) [अपने] अप्रिय [शत्रु] पर (नि दध्मः) हम डालते हैं। (पृथिवि) हे पृथिवी ! (पवित्रेण) शुद्ध व्यवहार से (मा) अपने को (उत् पुनामि) सर्वथा शुद्ध करता हूं ॥३०॥

भावार्थः—जैसे निर्मल जल से शरीर शुद्ध करके मल का नाश करते हैं, वैसे ही मनुष्य अन्तःकरण का मल दूर करके पृथिवी पर धार्मिक व्यवहार से आत्मा की शुद्धि करें ॥३०॥

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात्।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१॥

भाषार्थः - (भूमे) हे भूमि ! (याः) जो (ते) तेरी (प्राचीः) सन्मुख वाली (प्रदिशः) बड़ी दिशायें, (याः) जो (उदीचीः) ऊपर वाली, (याः) जो (ते) तेरी (अधरात्) नीचे की ओर (च) और (याः) जो (पश्चात्) पीछे की ओर हैं। (ताः) वे सब (मह्यम् च ते) मुझ विचरते हुए के लिये (स्योनाः) सुख देने वाली (भवन्तु) होवें, (भुवने) संसार में (शिश्रियाणः) ठहरा हुआ मैं (मा नि पप्तम्) न गिर जाऊं ॥३१॥

भावार्थः जो मनुष्य चलते फिरते रहकर पुरुषार्थ करते रहते हैं, वे पृथिवी पर सब दिशाओं में सुख भोगते हैं ॥३१॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥३२॥

भाषार्थः—(भूमे) हे भूमि ! (नः) हम को (मा) न तो (पश्चात्) पीछे से, (मा) न (पुरस्तात्) आगे से, (मा) न (उत्तरात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नीचे से (नुदिष्ठाः) ढकेल, (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याणी (भव) हो, (परिपन्थिनः) बटमार लोग [हम को] (मा विदन्) न पावें, (वधम्) मारू हथियार को (वरीयः) बहुत दूर (यावय) हटा दे ॥३२॥

भावार्थः मनुष्य सब दिशाओं में सावधान रहकर दुराचारियों के फन्दों से बचें ॥३२॥

यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥३३॥

भाषार्थः—(भूमे) हे भूमि ! (यावत्) जब तक (मेदिना) स्नेही (सूर्येण)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य के साथ (अभि) सब ओर (ते विपश्यामि) तेरा विविध प्रकार दर्शन करूं। (तावत्) तब तक (मे) मेरी (चक्षुः) दृष्टि (उत्तरामुत्तराम्) उत्तम उत्तम (समाम्) अनुकूल क्रिया को (मा मेष्ट) नहीं नाश करे ॥३३॥

भावार्थः—मनुष्य ऐसा प्रयत्न करें कि विद्या बल पूर्वक ईश्वर की अद्भुत रचनाओं से सदा उत्तम उत्तम क्रियायें करते रहें, जैसे सूर्य प्रकाश आदि से उपकार करता है ॥३३॥

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥३४॥

भाषार्थः—(भूमे) हे भूमि ! (यत्) जब (शयानः) सोता हुआ मैं (दक्षिणम्) दाहिने [वा] (सव्यम्) बायें (पार्श्वम् अभि) करवट से (पर्य्यावर्ते) लेटता हूं। (यत्) जब (उत्तानाः) चित होकर हम (प्रतीचीम्) प्रत्यक्ष मिलती हुई (त्वा) तुझ पर (पृष्टीभिः) [अपनी] पसलियों से (अधिशीमहे) सोते हैं। (सर्वस्य प्रतिशीवरि) हे सब को शयन देने वाली (भूमे) भूमि ! (तत्र) उस [काल] में (नः) हमको (मा हिंसीः) मत कष्ट दे ॥३४॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी को समचौरस बनाकर रहते हैं, वे सुख पाते हैं ॥३४॥

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥३५॥

भाषार्थः—(भूमे) हे भूमि ! (यत्) जो कुछ (ते) तेरा (विखनामि) मैं खोद डालूं, (तत्) वह (क्षिप्रम् अपि) शीघ्र ही (रोहतु) उगे। (विमृग्वरि) हे खोजने योग्य ! (मा) न तो (ते) तेरे (मर्म) मर्म स्थल को और (मा) न (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय को (अर्पिपम्) मैं हानि करूं ॥३५॥

भावार्थः—भूतल विद्या और भूगर्भ विद्या में चतुर लोग भूमि को उचित रीति से खोदकर और हल से जोतकर रत्न और अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करें ॥३५॥

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥३६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(भूमे) हे भूमि ! (ते) तेरे (ग्रीष्मः) घाम ऋतु [ज्येष्ठ-आषाढ़] (वर्षाणि) वर्षा [श्रावण-भाद्र], (शरत्) शरद् ऋतु [आश्विन-कार्तिक], (हेमन्तः) शीतकाल [अग्रहायण--पौष], (शिशिरः) उतरता हुआ शीतकाल [माघ-फाल्गुन] और (वसन्तः) वसन्त काल [चैत्र-वैशाख] (ऋतवः) ऋतु हैं, [उनको] (पृथिवि) हे पृथिवी ! (विहिताः) विहित [स्थापित] (हायनीः) वर्षों तक (ते) तेरे (अहोरात्रे) दिन रात्रि [दोनों] (नः) हमारे लिये (दुहाताम्) पूर्ण करें ॥३६॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि पृथिवी पर सब ऋतुओं में उचित कर्म करके पूर्ण आयु भोगें ॥३६॥

इस मन्त्र का मिलान करो-अ० ६ । ५५ । २ ॥

यापं सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्व१न्तः । परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् । शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥३७॥

भाषार्थः—(या) जो (विमृग्वरी) विविध प्रकार खोजने योग्य [पृथिवी] (अप सर्पम्) सरक कर (विजमाना) चलने वाली है, (यस्याम्) जिस [पृथिवी] पर (अग्नयः) वे अग्नि ताप (आसन्) हैं (ये) जो (अप्सु अन्तः) प्राणियों के भीतर हैं। (देवपीयून्) विद्वानों के सताने वाले (दस्यून्) दुष्टों को (परा ददती) दूर छोड़ती हुई, [इस प्रकार] (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (वृणाना) [चाहती हुई] और (वृत्रम्) शत्रु को (न) न [चाहती हुई] (पृथिवी) पृथिवी (शक्राय) शक्तिमान्, (वृषभाय) बलवान्, (वृष्णे) वीर्यवान् पुरुष के लिये (दध्रे) धारण की गयी है ॥३७॥

भावार्थः—जो मनुष्य आगे की चलती हुई पृथिवी को खोजकर अपने भीतर पुरुषार्थ रूप तेज धारण करते हैं, उन विघ्ननाशक वीरों के लिये यह पृथिवी सुखदायिनी और दुराचारी दुष्टों को दुःखदायिनी होती है ॥३७॥

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते । ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः । युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥३८॥

भाषार्थः—(यस्याम्) जिस [भूमि] पर (सदोहविर्धाने) सभा और अन्न स्थान हैं, (यस्याम्) जिसपर (यूपः) जयस्तम्भ (निमीयते) गाड़ा जाता है । (यस्याम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसपर (ब्रह्माणः) ब्रह्मा [वेद वेत्ता] लोग (ऋग्भिः) ऋचाओं [वेद वाणियों] से और (यजुर्वेदः) यजुर्वेदी [परमात्मा देव की पूजा जानने वाले] लोग (साम्ना) मोक्ष ज्ञान के साथ [परमात्मा को] (अर्चन्ति) पूजते हैं। (यस्याम्) जिस पर (ऋत्विजः) सब ऋतुओं में यज्ञ [परमात्मा का पूजन] करने वाले [योगी जन] (इन्द्राय) इन्द्र [ऐश्वर्ययुक्त जीव] के लिये (सोमम्) सोम [अमृत, मोक्षसुख] (पातवे) पान करने को (युञ्जन्ते) समाधि लगाते हैं ॥३८॥

भावार्थः—जिस भूमि पर जितेन्द्रिय वीर पुरुष शत्रुओं को जीतते हैं, और वेदज्ञानी, योगीन्द्र परमात्मा के तत्त्वज्ञान से मोक्ष आनन्द भोगते हैं, उस भूमि पर हम अपना इष्ट सिद्ध करें॥ मन्त्र ३८ और ३९ का अन्वय मन्त्र ४० के साथ है ॥३८॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्त्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥३९॥

भाषार्थः -(यस्याम्) जिस [भूमि] पर (पूर्वे) निवासस्थान [शरीर] में [वर्तमान] (भूतकृतः) यथार्थ कर्म करने वाले, (वेधसः) ज्ञानवान् (सप्त) सात (ऋषयः) विषय प्राप्त करनेवाले ऋषियों [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] ने (सत्त्रेण) सत्पुरुषों के रक्षक (यज्ञेन) यज्ञ [देव पूजा, संगति करण और दान] और (तपसा सह) [ब्रह्मचर्य आदि] तप के साथ (गाः) वेद वाणियों को (उत्) उत्तमता से (आनृचुः) पूजा है ॥३९॥

भावार्थः जिस भूमि पर मनुष्य अपने शरीर की इन्द्रियों द्वारा वेद-ज्ञान प्राप्त करके आत्मोन्नति करते हैं, उस भूमि पर हम पुरुषार्थ करके सुख प्राप्त करें—मन्त्र ४० देखो ॥३९॥

यजुर्वेद ३४। ५५ में वर्णन है—(सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) सात ऋषि अर्थात् शब्द आदि विषय को प्राप्त करने वाले पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि शरीर में प्रतीति के साथ ठहरे हुए हैं ॥

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥४०॥

भाषार्थः – (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमको (धनम्) वह धन (आ) यथावत् (दिशतु) देवे, (यत्) जिसे (कामयामहे) हम चाहते हैं। (भगः) ऐश्वर्य [हमें] (अनुप्रयुङ्क्ताम्) निरन्तर मिले, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (पुरोगवः) अग्र-गामी होकर (एतु) चले ॥४०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—इस मन्त्र का अन्वय मन्त्र ३८ और ३९ के साथ है। मनुष्य पृथिवी पर वीर, महात्मा ब्राह्मणों योगियों के अनुकरण से वेदविद्या प्राप्त करके ऐश्वर्यवान् होकर अग्रगामी होवें ॥४०॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः। युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः। सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१॥

भाषार्थः—(यस्यां भूम्याम्) जिस भूमि पर (व्यैलबाः) विविध प्रकार वाणियों के बोलने वाले (मर्त्याः) मनुष्य (गायन्ति) गाते हैं और (नृत्यन्ति) नाचते हैं। (यस्यां भूम्याम्) जिस भूमि पर (आक्रन्दः) कोलाहल करने वाले [योद्धा] (युध्यन्ते) लड़ते हैं, (यस्याम्) जिस पर (दुन्दुभिः) ढ़ोल (वदति) बजता है। (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमारे (सपत्नान्) वैरियों को (प्र णुदताम्) हटा देवे, (पृथिवी) पृथिवी (मा) मुझ को (असपत्नम्) विना शत्रु (कृणोतु) करे ॥४१॥

भावार्थः—जिस पृथिवी पर मनुष्य ऊंचे, नीचे और मध्यम स्वर से गाते, नाचते और बजाकर युद्ध करते हैं, वहां पर धर्मात्मा लोग निर्विघ्न होकर सुख प्राप्त करें ॥४१॥

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्यां इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥४२॥

भाषार्थः—(यस्याम्) जिस [भूमि] पर (अन्नम्) अन्न, (व्रीहियवौ) चावल और जौ हैं, (यस्याः) जिसके [ऊपर] (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश] से सम्बन्ध वाले (इमाः) यह (कृष्टयः) मनुष्य हैं। (वर्षमेदसे) वर्षा से स्नेह रखने वाली, (पर्जन्यपत्न्यै) मेघ से पालन की गयी (भूम्यै) उस भूमि के लिये (नमः अस्तु) [हमारा] अन्न होवे ॥४२॥

भावार्थः—मनुष्य पृथिवी के हित के लिये पृथिवी आदि पांच तत्त्वों से उपकार लेकर अन्न आदि प्राप्त करें ॥४२॥

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्यां विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥४३॥

भाषार्थः—(यस्याः) जिसके (पुरः) नगर [राजभवन, गढ़ आदि] (देवकृताः) विद्वानों के बनाये हैं, (यस्याः) जिसके (क्षेत्रे) खेत में [मनुष्य] (विकुर्वते) विविध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म करते हैं। (प्रजापतिः) प्रजापति [परमेश्वर] (विश्वगर्भाम्) सब के गर्भ (पृथिवीम्) पृथिवी को (आशामाशाम्) दिशा दिशा में (नः) हमारे लिये (रण्याम्) रमणीय (कृणोतु) करे ।।४३।।

भावार्थः जिस भूमि पर धर्मात्मा पुरुष राजभवन, कार्यालय आदि बनाकर अनेक प्रकार से उन्नति के काम करते हैं और जिस में से अनेक रत्न उत्पन्न होते हैं, उस पर परमात्मा हमें धर्म में स्थिर रखकर सर्वत्र प्रसन्न रक्खे ।।४३।।

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ।।४४।।

भाषार्थः –(गुहा) अपनी गुहा [गढ़े] में (निधिम्) निधि [धन का कोश] (बहुधा, अनेक प्रकार (बिभ्रती) रखती हुई (पृथिवी) पृथिवी (मे, मुझे (वसु) धन (मणिम्) मणि और (हिरण्यम्) सुवर्ण (ददातु) देवे। (वसुदाः) धन देने वाली, (वसूनि) धनों को (रासमाना) देती हुई (देवी) वह देवी [उत्तम गुण वाली पृथिवी] (सुमनस्यमाना) प्रसन्न मन होकर (नः दधातु) हमारा पोषण करे ।।४४।।

भावार्थः– जो विद्वान् मनुष्य पृथिवी को खोजते हैं, वे खानों में से अनेक रत्न और सुवर्ण आदि पाकर प्रसन्नचित्त होते हैं ।।४४।।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।।४५।।

भाषार्थः (विवाचसम्, विशेष वचन सामर्थ्य वाले, (नानाधर्माणम्, अनेक गुण वाले (जनम्) जन [मनुष्य समूह] को (यथौकसम्) स्थान के अनुसार (बहुधा) बहुत प्रकार से (बिभ्रती, धारण करती हुई (पृथिवी, पृथिवी, (ध्रुवा; दृढ़ स्वभाव वाली, (अनपस्फुरन्ती, निश्चल (धेनुः इव) गौ के समान, मे) मेरे लिये (द्रविणस्य) धन की (सहस्रम्) सहस्र (धाराः) धारायें (दुहाम्) दुहे ।।४५।।

भावार्थः—जैसे गौ अल्प मूल्य तृण आदि खाकर गोपाल की चतुराई के अनुसार बहुमूल्य दूध देती है, वैसे ही मनुष्य परिश्रम से अनेक विद्यायें और अनेक गुण प्राप्त करके पृथिवी पर अपनी योग्यता के अनुसार बहुत प्रकार से धनवान् होवें ।।४५।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये । क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥४६॥

भाषार्थः (यः) जो (तृष्टदंश्मा) डंक मारने से पियास उत्पन्न करने वाला (सर्पः) साँप [वा] (वृश्चिकः) बिच्छू (हेमन्तजब्धः) ठंड से ठिठरा हुआ, (भृमलः) भ्रमल [घबड़ाता हुआ] (ते) तेरे (गुहा) गढ़े में (शये) सोता है। (क्रिमिः) [जो] कीड़ा और (यद्यत्) जो जो (प्रावृषि) वर्षा ऋतु में (जिन्वत्) प्रसन्न होता हुआ (एजति) रेंगता है, (पृथिवि) हे पृथिवि ! (तत्) वह (सर्पत्) रेंगता हुआ [जन्तु] (नः) हम पर (मा उप सृपत्) आकर न रेंगे, (यत्) जो कुछ (शिवम्) मङ्गल है (तेन) उस से (नः) हमें (मृड) सुखी कर ॥४६॥

भावार्थः—मनुष्य सदा सावधान रहें कि सब ऋतुओं में दुष्ट जीव-जन्तुओं से उन्हें क्लेश न होवे ॥४६॥

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे । यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥४७॥

भाषार्थः—(ये) जो (ते) तेरे (बहवः) बहुत से (पन्थानः) मार्ग (जनायनाः) मनुष्यों के चलने योग्य हैं, [और जो] (रथस्य) रथ के (च) और (अनसः) छकड़े [वा अन्न] के (यातवे) चलने के लिये (वर्त्म) मार्ग है। (यैः) जिनसे (उभये) दोनों (भद्रपापाः) भले और बुरे [प्राणी] (संचरन्ति) चले चलते हैं, (तम्) उस (अनमित्रम्) शत्रु रहित और (अतस्करम्) तस्कर शून्य (पन्थानम्) मार्ग को (जयेम) हम जीतें, (यत्) जो कुछ (शिवम्) मङ्गल है (तेन) उससे (नः) हमें (मृड) सुखी कर ॥४७॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी पर ऊंचे नीचे, भले बुरे मार्गों का विचार करके सुमार्ग पर चलते हैं, वे कुमार्गियों से बचकर सदा सुखी रहते हैं ॥४७॥

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः । वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥४८॥

भाषार्थः -(मल्वम्) धारण सामर्थ्य को और (गुरुभृत्) गुरुत्व [भारीपन]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने वाले सामर्थ्य को (बिभ्रती) धारण करने वाली (भद्रपापस्य) भले और बुरे के (निधनम्) कुल [समूह] को (तितिक्षुः) सहनेवाली, (वराहेण) मेघ के साथ (संविदाना) मिली हुई (पृथिवी) पृथिवी (सूकराय) सुन्दर [सुखद] किरणों वाला, (मृगाय) गमनशील सूर्य के लिये (वि) विविध प्रकार (जिहीते) प्राप्त होती है ॥४८॥

भावार्थः पृथिवी अपने धारण आकर्षण से सब पदार्थों को अपने पर रखती है और सूर्य के सन्मुख चलने से जल आकाश में चढ़ता और बरसता है। उस पृथिवी को उपयोगी बनाने में मनुष्य प्रयत्न करें ॥४८॥

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति। उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥४९॥

भाषार्थः—(ये ते) जो वे (आरण्याः) वन में उत्पन्न हुए (पशवः) पशु (हिताः) हितकारी (मृगाः) हरिण आदि और (पुरुषादः) मनुष्यों के खाने वाले (सिंहाः) [हिंसक] सिंह और (व्याघ्राः) [सूंघ कर मारने वाले] बाघ आदि (वने) वन के बीच (चरन्ति) चरते फिरते हैं। [उनमें से] (पृथिवि) हे पृथिवी ! (उलम्) [उष्ण स्वभाव वाले] वनबिलाव, (वृकम्) भेड़िये को और (दुच्छुनाम्) दुष्ट गति वाली (ऋक्षीकाम्) [हिंसक] रीछनी आदि, (रक्षः) राक्षस [दुष्ट जीवों] को (इतः) यहां पर (अस्मत्) हम से (अप बाधय) हटा दे ॥४९॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि हितकारी पशुओं की रक्षा करके हिंसक प्राणियों का नाश करें ॥४९॥

इस मन्त्र के प्रथम पाद का मिलान अ० ११। २। २४ के प्रथम पाद से करो ॥

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥५०॥

भाषार्थः—(ये) जो (गन्धर्वाः) दुःखदायी हिंसक (अप्सरसः) विरुद्ध चलने वाले हैं, (च) और (ये) जो (अरायाः) कंजूस (किमीदिनः) लुतरे पुरुष हैं। (भूमे) हे भूमि ! (तान्) उन (पिशाचान्) पिशाचों [मांसभक्षकों, पीड़ाप्रदों] और (सर्वा) सब (रक्षांसि) राक्षसों को (अस्मत्) हम से (यावय) अलग रख ॥५०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विवेकी मनुष्यों को योग्य है कि पृथिवी पर के दुष्ट प्राणियों और रोगों का नाश करके धर्मात्माओं को सुखी रक्खें ॥५०॥

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि । यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् । वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥५१॥

भाषार्थः—(याम्) जिस पर (द्विपादः) दो पांव वाले (पक्षिणः) पक्षी [अर्थात्] (हंसाः) हंस, (सुपर्णाः) बड़े उड़ने वाले, [गरुड़ आदि], (शकुनाः) शक्ति वाले [गिद्ध चील आदि] (वयांसि) पक्षीगण (संपतन्ति) उड़ते रहते हैं। (यस्याम्) जिस पर (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला (वातः) वायु (रजांसि) जल वाले बादलों को (कृण्वन्) बनाता हुआ (च, और (वृक्षान्) वृक्षों को (च्यावयन्) हिलाता हुआ (ईयते) चलता है। और (अर्चिः) प्रकाश (वातस्य) वायु के (प्रवाम्) फैलाव और (उपवाम् अनु) संकोच के साथ साथ (वाति) चलता है ॥५१॥

भावार्थः मनुष्य पक्षियों, वायु, मेघ, प्रकाश आदि के ज्ञान और गुणों से लाभ उठाकर आनन्दित होवें—इस मन्त्र का अन्वय अगले मन्त्र ५२ के साथ है ॥५१॥

इस मन्त्र का दूसरा पाद अ० ११ । २ । २४ के दूसरे पाद में आया है ॥

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि । वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनि-धामनि ॥५२॥

भाषार्थः—(यस्यां भूम्याम् अधि) जिस भूमि के ऊपर (अरुणम्) सूर्य वाले (च) और (कृष्णम्) काले वर्ण वाले (संहिते) आपस में मिले हुए (अहोरात्रे) दिन और रात्रि (विहिते) विधान पूर्वक ठहराये गये हैं। (वर्षेण) मेह से (वृता) लपेटी हुई और (आवृता) ढकी हुई (सा) वह (पृथिवी) चौड़ी (भूमिः) भूमि [आश्रय स्थान] (नः) हमको (भद्रया) कल्याणी मति के साथ (प्रिये धामनिधामनि) प्रत्येक रमणीय स्थान में (दधातु) रक्खे ॥५२॥

भावार्थः—ईश्वर नियम से जिस प्रकार दिन रात्रि मिले हुए हैं और पृथिवी मेघ मण्डल से छायी है, वैसे ही मनुष्य पृथिवी पर उत्तम बुद्धि के साथ रहकर सब स्थानों में आनन्द करें ॥५२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्यौश्च॑ म इ॒दं पृ॑थि॒वी चा॒न्तरि॑क्षं च मे॒ व्यच॑: ।
अ॒ग्निः सूर्य॒ आपो॑ मे॒धां विश्वे॑ दे॒वाश्च॒ सं द॑दुः ॥५३॥

भाषार्थः—(मे) मुझ को (द्यौः) प्रकाश (च) और (पृथिवी) पृथिवी (च च) और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष ने (इदम्) यह (व्यचः) विस्तार [दिया है], (मे) मुझको (अग्निः) अग्नि, (सूर्यः) सूर्य, (आपः) जल (च) और (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम पदार्थों ने (मेधाम्) धारणावती बुद्धि (सम्) ठीक ठीक (ददुः) दी है ॥५३॥

भावार्थः—जो मनुष्य संसार के पदार्थों में विज्ञान पूर्वक फैलते चले जाते हैं, वे ही विज्ञानी बुद्धि बढ़ाकर संसार को सुख देते हैं ॥५३॥

अ॒हम॑स्मि॒ सह॑मान॒ उत्त॑रो॒ नाम॒ भूम्या॑म् ।
अ॒भी॒षाड॑स्मि विश्वा॒षाडाशा॑माशां विषा॒सहिः॑ ॥५४॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं [मनुष्य] (सहमानः) जीतने वाला और (भूम्याम्) भूमि पर (नाम) नाम के साथ (उत्तरः) अधिक ऊंचा (अस्मि) हूं। मैं (अभीषाट्) विजयी, (विश्वाषाट्) सर्व विजयी और (आशामाशाम्) प्रत्येक दिशा में (विषासहिः) हरा देने वाला (अस्मि) हूं ॥५४॥

भावार्थः—जब मनुष्य योग्यता प्राप्त करके आगे बढ़ता जाता है, तब संसार में कीर्ति बढ़ाकर सब में उच्च पद पाता है ॥५४॥

अ॒दो यद् दे॑वि॒ प्रथ॑माना पु॒रस्ता॑द् दे॒वैरु॒क्ता व्यस॑र्पो महि॒त्वम् ।
आ त्वा॑ सु॒भूत॑मविशत् त॒दानी॑मक॒ल्पयथाः प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः ॥५५॥

भाषार्थः—(देवि) हे देवी! [उत्तम गुणवाली पृथिवी] (यत्) जब (पुरस्तात्) आगे को (प्रथमाना) फैलती हुई और (देवैः) व्यवहार कुशलों करके (उक्ता) कही गयी तू ने (अदः) उस (महित्वम्) महिमा को (व्यसर्पः) फैलाया। (तदानीम्) तब (सुभूतम्) सुभूति [सुन्दर ऐश्वर्य] ने (त्वा) तुझ में (आ) सब ओर से (अविशत्) प्रवेश किया, और (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं को (अकल्पयथाः) तू ने समर्थ बनाया ॥५५॥

भावार्थः—जब मनुष्य पृथिवी की विस्तृत महिमा को खोजते हुए आगे बढ़ते हैं, वे ऐश्वर्यवान् होकर सब दिशाओं से समर्थ होते हैं ॥५५॥

ये ग्रामा॒ यदर॑ण्यं॒ याः स॒भा अधि॒ भूम्या॑म् ।
ये सं॑ग्रा॒माः समि॑तय॒स्तेषु॒ चारु॑ वदेम ते ॥५६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये ग्रामाः) जो गांव, (यत् अरण्यम्) जो वन, (याः सभाः) जो सभायें (भूम्याम् अधि) भूमि पर हैं। (ये संग्रामाः) जो संग्राम और (समितयः) समितियें [सम्मेलन] हैं, (तेषु) उन सब में (ते) तेरा (चारु) सुन्दर यश (वदेम) हम कहें ॥५६॥

भावार्थः— मनुष्यों को उचित है कि सब स्थानों, सब अवस्थाओं और राजसभा, न्यायसभा, धर्मसभा आदि में पृथिवी के गुणों की महिमा जानकर और बखानकर देशभक्ति करें ॥५६॥

अश्वं इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजा- यत । मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७॥

भाषार्थः —(यात्) जब से (अजायत) वह उत्पन्न हुई है [तब से], (अश्वः इव) जैसे घोड़ा (रजः) धूलि को, [वैसे ही] (मन्द्रा) हर्षदायिनी, (अग्रेत्वरी) अग्र- गामिनी, (भुवनस्य) संसार की (गोपाः) रक्षा कारिणी, (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों [पीपल आदि] और (ओषधीनाम्) ओषधियों [सोमलता अन्न आदि] की (गृभिः) ग्रहण स्थान उस [पृथिवी] ने (तान् जनान्) उन मनुष्यों को (वि दुधुवे) हिला दिया है, (ये) जिन्होंने (पृथिवीम्) पृथिवी को (आक्षियन्) सताया है ॥५७॥

भावार्थः—जिन अभिमानियों ने पृथिवी पर अत्याचार करके मस्तक उठाया है वे ईश्वर नियम से सदा नष्ट हुए हैं, जैसे घोड़ा थकावट उतारने को पृथिवी पर लौटकर शरीर की मलिन धूलि हिलाकर गिरा देता है ॥५७॥

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥५८॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ (वदामि) मैं बोलता हूं, (तत्) वह (मधुमत्) उत्तम ज्ञान युक्त (वदामि) बोलता हूं, (यत्) जो कुछ (ईक्षे) मैं देखता हूं, (तत्) उसको (मा) मुझे (वनन्ति) वे [ईश्वर नियम] सेवते हैं। मैं (त्विषिमान्) तेजस्वी, (जूतिमान्) वेगवान् (अस्मि) हूं, (दोधतः) क्रोधी (अन्यान्) दूसरे [शत्रुओं] को (अव हन्मि) मार गिराता हूं ॥५८॥

भावार्थः - जो मनुष्य समझ बूझ कर बोलते, देखते और काम करते हैं, वे ईश्वर नियम से प्रतापी और फुरतीले होकर विघ्नों को मिटाते हैं ॥५८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥५९॥

भाषार्थः—(शन्तिवा) शान्ति वाली, (सुरभिः) ऐश्वर्य वाली, (स्योना) सुखदा, (कीलालोध्नी) अमृतमय स्तन वाली, (पयस्वती) दुधैल, (भूमिः) सर्वाधार (पृथिवी) पृथिवी (पयसा सह) अन्न के साथ (मे) मेरे लिये (अधि ब्रवीतु) अधिकारपूर्वक बोले ॥५९॥

भावार्थः—उद्योगी पुरुष परस्पर उपदेश करके पृथिवी से अनेक सुख प्राप्त करते और कराते हैं ॥५९॥

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं१ पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥६०॥

भाषार्थः—(विश्वकर्मा) विश्वकर्मा [सब कर्मों में चतुर मनुष्य] ने (हविषा) देने लेने योग्य गुण के साथ [वर्तमान], (अर्णवे) जल वाले (रजसि अन्तः) अन्तरिक्ष के भीतर (प्रविष्टाम्) प्रवेश की हुई (याम्) जिस [पृथिवी] को (अन्वैच्छत्) खोजा। (भुजिष्यम्) भोजन योग्य (पात्रम्) पात्र [रक्षा साधन] (गुहा) [पृथिवी के] गढ़े में (यत्) जो (निहितम्) रक्खा था [वह] (मातृमद्भ्यः) माताओं वाले [प्राणियों] के लिये (भोगे) आहार [वा पालन] में (आविः अभवत्) प्रकट हुआ है ॥६०॥

भावार्थः—जैसे जैसे मनुष्य मेघ मण्डल से घिरी पृथिवी को खोजते जाते हैं, उसमें अधिक अधिक पालन शक्तियों को पाते हैं, जैसे माताओं में प्राणियों के पालन के लिये दुग्ध प्रकट होता है ॥६०॥

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥६१।

भाषार्थः—[हे पृथिवी !] (त्वम्) तू (आवपनी) बड़ी उपजाऊ होकर] (जनानाम्) मनुष्यों की (अदितिः) अखण्डव्रता, (कामदुघा) कामना पूरी करने वाली (पप्रथाना) प्रख्यात (असि) है। (यत्) जो (ते) तेरा (ऊनम्) न्यून है, (ऋतस्य) यथावत् नियम का (प्रथमजाः) पहिले उत्पन्न करने वाला (प्रजापतिः) प्रजापति [जगत् पालक परमेश्वर] (ते) तेरे (तत्) उस [न्यून भाग] को (आ) सब प्रकार (पूरयाति) पूरा करे ॥६१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे परमेश्वर ने पृथिवी में अन्न आदि से प्राणियों की पालन शक्ति दी है, वैसे ही प्राणी जो कुछ खाते पीते हैं, वह न्यूनता ईश्वर नियम से वृष्टि आदि द्वारा पूर्ण हो जाती है ॥६१॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥६२॥

भाषार्थः—(पृथिवि) हे पृथिवी ! (ते) तेरी (उपस्थाः) गोदें (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (अनमीवाः) नीरोग और (अयक्ष्माः) राजरोग रहित (प्रसूताः) उत्पन्न (सन्तु) होवें । (नः) अपने (आयुः) आयु [जीवन] को (दीर्घम्) दीर्घकालतक (प्रतिबुध्यमानाः) जगाते हुए (वयम्) हम (तुभ्यम्) तेरे लिये (बलिहृतः) बलि [सेवा धर्म] देने वाले (स्याम) रहें ॥६२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक पृथिवी पर स्वस्थ और चेतन्य रहकर धर्म के साथ परस्पर पालन करें ॥६२॥

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥६३॥

भाषार्थः—(भूमे मातः) हे धरती माता ! (मा) मुझ को (भद्रया) कल्याणी मति के साथ (सुप्रतिष्ठितम्) बड़ी प्रतिष्ठा वाला (नि धेहि) बनाये रख । (कवे) हे गतिशीले ! [जो चलती है वा जिस पर हम चलते हैं] (दिवा) प्रकाश के साथ (संविदाना) मिली हुई तू (मा) मुझ को (श्रियाम्) श्री [सम्पत्ति] में और (भूत्याम्) विभूति [ऐश्वर्य] में (धेहि) धारण कर ॥६३॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम भाव से पृथिवी पर अपना कर्तव्य पालते हैं, वे बड़ी प्रतिष्ठा पाकर ऐश्वर्यवान् और श्रीमान् होते हैं ॥६३॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥२॥

१–५५ ॥ अग्निर्मन्त्रोक्ताश्च देवताः ॥ १,४, ९, ११, २१–३३, ४१, ४८, ५३, त्रिष्टुप्, २, ५, १२-२०, ३४-३६, ३८,३९, ४३, ५१, ५४ अनुष्टुप्, ३ आस्तारपङ्क्तिः ६ भुरिग् विराट् [पङ्क्तिर्वा], ७ निचृज् जगती,, ८, ४९ भुरिक्, त्रिष्टुप्, १०, ५५ विराड् त्रिष्टुप्, ३७ पुरस्ताद् बृहती, ४० विराडनुष्टुप्, ४२ आर्ची गायत्री, ४४ आर्ची बृहती, ४५, ४७, स्वराट् त्रिष्टुप्, ४६, साम्नी त्रिष्टुप्, ५० उपरिष्टाद् विराड् बृहती, ५२ विराड् बृहती छन्दः ॥

राजप्रजयोः कर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥१॥

भाषार्थः —[हे दुष्ट !] (नडम्) बन्धन [वा नरकट समान तीक्ष्ण शस्त्र] पर (आ रोह) चढ़ जा, (ते) तेरे लिये (अत्र) यहां (लोकः) स्थान (न) नहीं है, (इदम्) यह (सीसम्) [हमारा] बन्धन नाशक विधान (ते) तेरा (भागधेयम्) सेवनीय कर्म है, (आ इहि) तू आ। (यः) जो (गोषु) गौओं में (यक्ष्मः) राजरोग और (पुरुषेषु) पुरुषों में (यक्ष्मः) राजरोग है, (तेन साकम्) उसके साथ (त्वम्) तू (अधराङ्) नीचे की ओर (परा इहि) चला जा ॥१॥

भावार्थः—राजा को उचित है कि दुराचारी दुष्टों को तीक्ष्ण शस्त्रों से कठिन दण्ड देकर नाश करे और नीचा दिखावे, जिस से प्रजा के पशुओं और पुरुषों में कोई क्लेश न होवे ॥१॥

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥२॥

भाषार्थः —(अघशंसदुःशंसाभ्याम्) दोनों बुरा चीतने वाले और खोटी करनी वाले पुरुषों के नाश के लिये (तेन) उस (करेण) कर [लेने] से (च) और (अनुकरेण) अनुकूल कर्म से (इतः) यहां से (सर्वम्) सब (यक्ष्मम्) राजरोग (च च) और (मृत्युम्) मृत्यु को (निः अजामसि) हम बाहिर निकालते हैं ॥२॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि दूत आदि द्वारा कुमार्गियों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुविचारों और कुकर्मों को जानकर उनसे कर लेकर और शिक्षा देकर प्रजा में से कुरोग और कुमृत्यु को हटावे ॥२॥

निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि । यो नो द्वेष्टि

तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥३॥

भाषार्थः—(इतः) यहां से (मृत्युम्) मृत्यु और (निर्ऋतिम्) महामारी को (निः) बाहिर और (अरातिम्) अदान को (निः) बाहिर (अजामसि) हम [प्रजागण] निकालते हैं। (यः) जो [दुष्ट] (नः) हम से (द्वेष्टि) वैर करता है, (तम्) उस को, (अक्रव्याद्) हे मांस न खाने वाले ! [प्रजारक्षक] (अग्ने) अग्नि [समान तेजस्वी राजन् !] (अद्धि) खा [नाशकर], (उ) और (यम्) जिस से (द्विष्मः) हम वैर करते हैं, (तम् उ) उसको भी (ते) तेरे [सन्मुख] (प्र सुवामसि) हम भेज देते हैं ॥३॥

भावार्थः—प्रजागणों को चाहिये कि प्रजापालक राजा से मिलकर दुष्टों को दण्ड दिलाते रहें ॥३॥

यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।

तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥४॥

भाषार्थः—(यदि) यदि (क्रव्याद्) मांसभक्षक (अग्निः) अग्नि [समान सन्तापक], (यदि वा) अथवा यदि (अन्योकाः) अपनी मांद से निकले हुए (व्याघ्रः) बाघ [समान दुष्ट पुरुष] ने (इमम्) इस (गोष्ठम्) गोष्ठ [वार्तालाप स्थान] में (प्रविवेश) प्रवेश किया है। (तम्) उस [दुष्ट जन] को (माषाज्यम्) वध के साथ संयुक्त (कृत्वा) कर के (दूरम्) दूर (प्र हिणोमि) भेजता हूं, (सः) वह [दुष्ट] (अप्सुषदः) प्राणों में कष्ट देने वाले (अग्नीन्) अग्नियों [अग्नि के सन्तापों] को (अपि) ही (गच्छतु) पावे ॥४॥

भावार्थः—जो दुराचारी छल बल करके प्रजा के समाज, विद्यालय आदि उन्नति स्थान में विघ्न डाले, उसको धार्मिक राजा दण्ड द्वारा अनेक सन्ताप देवे ॥४॥

यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।

सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे अपराधी !] (यत्) यदि (त्वा) तुझ को (क्रुद्धाः) क्रोधित पुरुषों ने (पुरुषे मृते) पुरुष के मरने पर (मन्युना) कोप से (प्रचक्रुः) निकाल दिया था। (अग्ने) हे अग्नि ! [समान सन्तापकारी पुरुष] (तत्) वह (त्वया) तेरे साथ (सुकल्पम्) सुन्दर विचार युक्त विधान है, (पुनः) फिर (त्वा) तुझ को [सुकर्म के लिये] (उत् दीपयामसि) हम उत्तेजित करते हैं ॥५॥

भावार्थः—राजपुरुषों को उचित है कि यदि अपराधी पुरुष दण्ड भोगने से सुधरे तो उस से अनुकूल व्यवहार करके सुकर्म के लिये उसका उत्साह बढ़ावें ॥५॥

पुन॑स्त्वादि॒त्या रु॒द्रा वस॑वः॒ पुन॑र्ब्र॒ह्मा वसु॑नीतिरग्ने ।

पुन॑स्त्वा॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॒राधा॑द् दीर्घायु॒त्वाय॑ श॒तशा॑रदाय ॥६॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन् !] (पुनः) निश्चय करके [विद्वत्ता शूरता आदि गुण देखकर] (त्वा) तुझ को (आदित्याः) अखण्डव्रती ब्रह्मचारियों, (रुद्राः) ज्ञान वालों और (वसवः) श्रेष्ठ पुरुषों ने, [तथा] (पुनः) निश्चय करके (वसुनीतिः) श्रेष्ठ गुण प्राप्त कराने वाले (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदों के ज्ञाता] ने, और (पुनः) निश्चय करके (त्वा) तुझ को (ब्रह्मणस्पतिः) धन के रक्षक पुरुष ने (शतशारदाय) सौ वर्षों वाले (दीर्घायुत्वाय) चिरकाल जीवन के लिये (आ) भले प्रकार (अधात्) धारण किया है ॥६॥

भावार्थः—सब चतुर विद्वान् लोग सद्गुणों की भली भांति परीक्षा करके महापुरुषार्थी सुयोग्य पुरुष को राजा बनावें, जो प्रजागणों को सुख पहुंचाकर दीर्घ जीवन युक्त करे ॥६॥

इस मन्त्र का मिलान करो—यजु० १२। ४४॥

यो अ॒ग्निः क्र॒व्यात् प्र॑वि॒वेश॑ नो गृ॒हमि॒मं पश्य॒न्नित॑रं जा॒तवे॑दसम् ।

तं ह॑रामि पितृय॒ज्ञाय॑ दू॒रं स घ॒र्ममि॑न्धां पर॒मे स॒धस्थे॑ ॥७॥

भाषार्थः—(यः) जिस (क्रव्यात्) मांस भक्षक (अग्निः) अग्नि [समान सन्तापक पुरुष] ने (नः) हमारे (गृहम्) घर में (प्रविवेश) प्रवेश किया है, [सो] (इमम्) इस (इतरम्) दूसरे [उससे भिन्न शुभगुणी] (जातवेदसम्) ज्ञानवान् राजा को (पश्यन्) देखता हुआ (पितृयज्ञाय) पितरों [रक्षक विद्वानों] के सत्कार के लिये (तम्) उस [दुष्ट] को (दूरम्) दूर (हरामि) भेजता हूं और (सः) वह [राजा] (परमे) बड़े उत्कृष्ट (सधस्थे) समाज में (घर्मम्) यज्ञ को (इन्धाम्) प्रकाशित करे ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—प्रजागण चतुर नीतिज्ञ राजा के सहाय से क्रूर सन्तापकारी जन को निकाल देवें, जिससे सत्पुरुषों के सद्गुण संसार में फैलें और विजय पाने से राजा की कीर्त्ति बढ़े ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से है—ऋग्वेद १० । १६ । १० ॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिंणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥८॥

भाषार्थः—(क्रव्यादम्) मांसभक्षक [क्रूर] (अग्निम्) अग्नि [समान सन्तापक मनुष्य] को (दूरम्) दूर (प्र हिणोमि) बाहिर पहुंचाता हूं, (रिप्रवाहः) वह पाप का ले चलने वाला पुरुष (यमराज्ञः) न्यायाधीश राजा के पुरुषों में (गच्छतु) जावे। (इह) यहां पर (अयम्) यह (इतरः) दूसरा [पापी से भिन्न धर्मात्मा], (जातवेदाः) वेदों का ज्ञाता, (देवः) विजय चाहने वाला राजा (हव्यम्) देने लेने योग्य पदार्थ को (प्रजानन्) भले प्रकार जानता हुआ (देवेभ्यः) विजय चाहने वाले पुरुषों के लिये (वहतु) पहुंचावे ॥८॥

भावार्थः—जब प्रजागण राजा से मिल कर अत्याचारियों को दण्ड दिलाते हैं, तब वह ज्ञानी राजा धर्मात्माओं के सत्कार करने में समर्थ होता है ॥८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १६ । ९ और यजुर्वेद ३५ । १९ ॥

क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितृणां लोकेऽपि भागो अस्तु ॥९॥

भाषार्थः (इषितः) [प्रजाओं का] भेजा हुआ मैं [राजा] (जनान्) मनुष्यों में (मृत्युम्) मृत्यु को (दृंहन्तम्) बढ़ाते हुए (क्रव्यादम्) मांस भक्षक (अग्निम्) अग्नि [समान सन्तापक मनुष्य] को (वज्रेण) [अपने] वज्र से (हरामि) नाश करता हूं। (विद्वान्) विद्वान् मैं (तम्) उस [सत्कर्मी पुरुष] को (गार्हपत्येन) घर के स्वामियों से सम्बन्धी कर्म द्वारा (नि) निरन्तर (शास्मि) शिक्षा देता हूँ, [जिस पुरुष का] (भागः) भाग (पितृणाम्) पितरों [रक्षक विद्वानों] के (लोके) समाज में (अपि) ही (अस्तु) होवे ॥९॥

भावार्थः—जिस राजा को प्रजागणों ने स्वीकार किया है, वह दुष्टों को नाश करके संसार के शुभचिन्तकों को धर्मकार्य में प्रवृत्त रक्खे ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं १ प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥१०॥

भाषार्थः—(पितृयाणैः) पितरों [रक्षक विद्वानों] के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से [चलता हुआ] मैं (क्रव्यादम्) मांस भक्षक (अग्निम्) अग्नि [समान सन्तापकारी मनुष्य] को (शशमानम्) उछलकर चलते हुए [उद्योगी] (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय पुरुष से (प्र हिणोमि) बाहिर भेजता हूँ। [हे दुष्कर्मी !] तू (देवयानैः) विद्वानों के मार्गों से [रोकने को] (पुनः) फिर (मा आ गाः) मत आ, [हे सत्कर्मी !] (त्वम्) तू (अत्र एव) यहां ही (एधि) रह, और (पितृषु) पितरों [रक्षक विद्वानों] के बीच (जागृहि) जागता रहे ॥१०॥

भावार्थः—धर्मज्ञ पुरुषार्थी राजा दुष्टों को सत्पुरुषों से पृथक् कर दे, जिस से धर्मात्माओं के कार्य में विघ्न न पड़े और धर्म की उन्नति सदा होती रहे ॥१०॥

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥११॥

भाषार्थः—(शुद्धाः) [अन्तःकरण से] शुद्ध, (शुचयः) [बाहिरी आचरण से] पवित्र और (पावकाः) [दूसरों के] पवित्र करने वाले (भवन्तः) होते हुए मनुष्य (संकसुकम्) यथावत् शासक पुरुष को (स्वस्तये) अच्छी सत्ता [कल्याण] के लिये (सम्) यथाविधि (इन्धते) प्रकाशमान करते हैं। (समिद्धः) ठीक ठीक प्रकाशित (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी पुरुष] (रिप्रम्) पाप को (जहाति) छोड़ता है, (एनः) दोष को (अति) उल्लंघन कर के (एति) चलता है और (सुपुना) सुन्दर शुद्धि करने वाले कर्म से [दूसरों को] (पुनाति) शुद्ध करता है ॥११॥

भावार्थः—जब धर्मात्मा विद्वान् लोग भीतर और बाहिर से अपना आचरण शुद्ध कर के मनुष्य को विद्या आदि सद्गुणों से तेजस्वी बनाते हैं, तब वे पुरुष पाप से बच कर दूसरों को शुभ मार्ग पर चलाते हैं ॥११॥

देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् ।
मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥१२॥

भाषार्थः—(देवः) विजय चाहने वाला, (संकसुकः) ठीक ठीक शासन कर्ता (अग्निः) अग्नि [समान प्रतापी मनुष्य] (दिवः) आनन्द के (पृष्ठानि) पीठों पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आ अरुहत्) चढ़ा है। (एनसः) कष्ट से (निः मुच्यमानः) निरन्तर छुटते हुए उसने (अस्मान्) हम को (अशस्त्याः) अपकीर्ति से (अमोक्) छुड़ाया है ॥१२॥

भावार्थः - पुरुषार्थी विद्वान् पुरुष बड़े आनन्द के साथ आप कष्टों से छुट कर दूसरों को विपत्ति से छुड़ाते हैं ॥१२॥

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१३॥

भाषार्थः—(अस्मिन्) इस (संकसुके) यथावत् शासक (अग्नौ) अग्नि [समान प्रतापी राजा] में [अर्थात् उसके आश्रय से] (रिप्राणि) पापों को (वयम्) हम (मृज्महे) धोते हैं। हम (यज्ञियाः) संगति के योग्य (शुद्धाः) शुद्ध आचरण वाले (अभूम) हो गए हैं, वह (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्र तारिषत्) बढ़ा देवे ॥१३॥

भावार्थः मनुष्यों को योग्य है कि धर्मात्मा शासक के अनुशासन में रह कर विद्या और पुरुषार्थ से परस्पर मेल के साथ अपने जीवनों को सुफल करें ॥१३॥

संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः ।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥१४॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (संकसुकः) यथावत् शासक, [जो] (विकसुकः) विशेष करके शासक, [जो] (निर्ऋथः) निरन्तर ज्ञानवान् (च) और [जो] (निस्वरः) सदा उपदेश करने वाला है। (ते) उन सब (सवेदसः) समान लाभ पहुंचाने वाले पुरुषों ने (ते) तेरे (यक्ष्मम्) राजरोग को (दूरात् दूरम्) दूर से दूर (अनीनशन्) नाशकर दिया है ॥१४॥

भावार्थः जिस राज्य में अनेक प्रकार के पुरुषार्थी विद्वान् रहते हैं, वहां पर लोग कष्ट में नहीं पड़ते ॥१४॥

यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु ।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥१५॥

भाषार्थः—(यः) जो [दुष्ट] (नः) हमारे (अश्वेषु) घोड़ों में और (वीरेषु) वीरों में, (यः) जो (नः) हमारी (गोषु) गौओं में और (अजाविषु) भेड़ बकरियों में और (यः) जो (अग्निः) अग्नि [समान सन्तापकारी दुष्ट] (जनयोपनः) मनुष्यों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का व्याकुल करने वाला है, [उस] (क्रव्यादम्) मांसभक्षक [पिशाच] को (निः नुदामसि) हम निकाले देते हैं ॥१५॥

भावार्थः—सब धर्मात्मा लोग मिलकर परस्पर सुख वृद्धि के लिये दुराचारी दुःखदायी पुरुष को निकाल देवें ॥१५॥

अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥१६॥

भाषार्थः—(यः) जो (अग्निः) अग्नि [समान सन्तापकारी] (जीवितयोपनः) जीवन को व्याकुल करने वाला पुरुष है, [उस] (क्रव्यादम्) मांस भक्षक (त्वा) तुझ को (अन्येभ्यः) जीते हुए (पुरुषेभ्यः) पुरुषों से और (त्वा) तुझ को (गोभ्यः) गौओं से और (अश्वेभ्यः) घोड़ों से (निः नुदामसि) हम निकाले देते हैं ॥१६॥

भावार्थः—सज्जन पुरुष दुःखदायी दुष्टों के निकालने में सदा प्रयत्न करें ॥१६॥

यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥१७॥

भाषार्थः—(यस्मिन्) जिस [ज्ञान] में (देवाः) विजय चाहने वाले (उत) और (यस्मिन्, जिस [ज्ञान] में (मनुष्याः) मननशील पुरुष (अमृजत) शुद्ध हुए हैं। (तस्मिन्) उस [ज्ञान] में (मृष्ट्वा) शुद्ध होकर, (अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन्!] (घृतस्तावः) ज्ञान प्रकाश की स्तुति करने वाला (त्वम्) तू (दिवम्) आनन्द में (आ रुह) ऊंचा हो ॥१७॥

भावार्थः जो मनुष्य पूर्वज महात्माओं के अनुकरण से आत्मा को शुद्ध करते हैं, वे अत्यन्त आनन्द पाते हैं ॥१७॥

समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥१८॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी पुरुष!] (सः) सो तू (समिद्धः) यथावत् प्रकाशित और (आहुतः) आहुति दिया गया [भक्ति किया गया] होकर (नः) हमें (मा अभ्यपक्रमीः) छोड़कर मत जा, (अत्र एव) यहां ही [इस जन्म में] (द्यवि) प्रत्येक व्यवहार में [वर्तमान] (सूर्यम्) सूर्य [सब के चलाने वाले परमेश्वर] के (दृशे)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने के लिये (ज्योक्) बहुत काल तक (च) निश्चय करके (दीदिहि) प्रकाशमान हो ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्य को उचित है कि परमात्मा के ज्ञानपूर्वक विद्या शूरता आदि गुणों से तेजस्वी होकर कीर्ति प्राप्त करे ॥१८॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद आ चुका है—अ० १। ६। ३॥

सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत्।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥१९॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो!] (सीसे) बन्धन नाशक विधान में (नडे) बन्धन [वा नरकट समान तीक्ष्ण शस्त्र] में (च) और (संकसुके) सम्यक् शासक (अग्नौ) अग्नि [समान तेजस्वी पुरुष] में, (यत्) जो कुछ [शिर पीड़ा है उसे] (मृड्ढ्वम्) तुम शुद्ध करो। (अथो) और भी (रामायाम्) रमण कराने वाली [सुख देने वाली] (अव्याम्) रक्षा करने वाली प्रकृति [सृष्टि] के भीतर [वर्तमान] (उपबर्हणे) सुन्दर वृद्धि में [आने वाली] (शीर्षक्तिम्) शिर पीड़ा [रोक] को (मृड्ढ्वम्) शुद्ध करो ॥१९॥

भावार्थः—जो पुरुष शुभ कर्मों और शुभ मनुष्यों में आने वाले विघ्नों को मिटाते हैं, वे अपने कार्य सिद्ध करते हैं ॥१९॥

सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥२०॥

भाषार्थः—(सीसे) बन्धन नाशक विधान में [आने वाले] (मलम्) दोष को (सादयित्वा) मिटाकर और (असिक्न्याम्) बन्धन रहित (अव्याम्) रक्षा करने वाली प्रकृति [सृष्टि] में [वर्तमान] (उपबर्हणे) सुन्दर वृद्धि के भीतर [आने वाली] (शीर्षक्तिम्) शिर की पीड़ा [रोक] को (मृष्ट्वा) शोधकर, तुम लोग (शुद्धाः) शुद्ध आचरण वाले, (यज्ञियाः) संगति योग्य (भवत) हो जाओ ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्य संसार के बीच स्वतन्त्रता और उन्नति में आजाने वाली बाधाओं को हटाकर आनन्दित होवें ॥२०॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥२१॥

भाषार्थः—(मृत्यो) हे मृत्यु! [मृत्युरूप दुर्बलेन्द्रिय पुरुष] (यः) जो (ते)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरा (एषः) यह (देवयानात्) विद्वानों के मार्ग से (इतरः) भिन्न [बुरा मार्ग है उस बुरे मार्ग से] (परम्) उत्तम (पन्थाम् अनु) मार्ग पर (परा इहि) पराक्रम से चल। (चक्षुष्मते) उत्तम नेत्रवाले (शृण्वते) सुनते हुए (ते) तेरे लिये (ब्रवीमि) मैं उपदेश करता हूं, (इह) यहां (इमे) यह सब (वीराः) वीर लोग (बहवः) बहुत से (भवन्तु) होवें ॥२१॥

भावार्थः जो दुर्बलेन्द्रिय आत्मघाती कुमार्गी पुरुष हैं, वे आँखों और कानों को खोलकर उपदेश सुनें और दुराचारों को छोड़ कर विद्वानों के समान वीरों की संख्या बढ़ावें ॥२१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १८ । १ । तथा यजु० ३५ । ७ ॥

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥२२॥

भाषार्थः—(इमे) ये सब (जीवाः) जीवते हुए [पुरुषार्थी जन] (मृतैः) मृतकों [दुर्बलेन्द्रियों] से (वि) पृथक् होकर (आ अववृत्रन्), लौट आये हैं (देवहूतिः) विद्वानों की वाणी (नः) हमारे लिये (अद्य) आज (भद्रा) कल्याणी (अभूत्) हुई है। (नृतये) नृत्य [हाथ पैर चलाने] के लिये और (हसाय) हंसने [आनन्द भोगने] के लिये (प्राञ्चः) आगे बढ़ते हुए हम (अगाम) पहुंचे हैं, (सुवीरासः) अच्छे वीरों वाले हम (विदथम्) विज्ञान का (आ वदाम) उपदेश करें ॥२२॥

भावार्थः जब पुरुषार्थी जन दुर्बलेन्द्रियों के कुमार्गों से हटकर सुमार्ग पर चलते हैं तब विद्वान् लोग अनेक उद्योगों से आनन्द भोगते हुए पुत्र पौत्र सेवक आदि को वीर बनाते हुए विद्या की उन्नति करते हैं ॥२२॥

इस मन्त्र के पहिले तीन पाद ऋग्वेद १० । १८ । ३ । में और चौथा ऋ० १ । ११७ । २५ में है ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥२३॥

भाषार्थः—(एषाम्) इन [प्राणियों] के बीच (जीवेभ्यः) जीवते हुए [पुरुषार्थी] लोगों के लिये (इमम्) यह (परिधिम्) मर्यादा (दधामि) मैं [परमेश्वर] ठहराता हूं, (अपरः) दूसरा [मरा हुआ, दुर्बलेन्द्रिय] (एतम्) इस (अर्थम्) पाने योग्य पदार्थ [सुख] को (नु मा गात्) कभी न पावे। (शतम्) सौ और (पुरूचीः) बहुत सी (शरदः) बरसों तक (जीवन्तः) जीवते हुए लोग (मृत्युम्) मृत्यु [मरण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा दुःख] को (पर्वतेन) [विज्ञान की] पूर्णता से (तिरः दधताम्) तिरोहित करें [ढक देवें] ॥२३॥

भावार्थः – जो मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि परमेश्वर कृत नियमों पर चलते हैं, वे बहुत कालतक जीकर सुख भोगते हैं और दुर्बलेन्द्रिय लोग नरक में पड़कर शीघ्र मर जाते हैं ॥२३॥

यह मन्त्र ऋषि दयानन्दकृत संस्कारविधि जातकर्म प्रकरण में और कुछ भेद से ऋग्वेद १० । १८ । ४ । और यजुर्वेद ३५ । १५ में है ॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥२४॥

भावार्थः—[हे मनुष्यो !] (यति स्थ) जितने तुम हो, [वे तुम] (अनुपूर्वम्) लगातार (यतमानाः) यत्न करते हुए (जरसम्) स्तुतियुक्त (आयुः) जीवन (वृणानाः) चाहते हुए (आ रोहत) ऊंचे चढ़ो । (सुजनिमा) सुन्दर जन्म देने वाला (सजोषाः) समान प्रीतिवाला (त्वष्टा) कर्ता [परमेश्वर] (तान् वः) उन तुम को (सर्वम् आयुः) पूर्ण आयु (जीवनाय) उत्तम जीवन के लिये (नयतु) प्राप्त करावे ॥२४॥

भावार्थः—जो मनुष्य निरन्तर उपाय करके परोपकार से संसार में कीर्त्ति बढ़ाते हैं, वे शूर परमात्मा के नियम से उच्च पद पाते जाते हैं ॥२४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है १० । १८ । ६ ॥

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥२५॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (अहानि) दिन (अनुपूर्वम्) एक के पीछे एक (भवन्ति) होते रहते हैं, (यथा) जैसे (ऋतवः) ऋतुएं (ऋतुभिः साकम्) ऋतुओं के साथ (यन्ति) चलते हैं । [वैसे ही] (यथा) जिस कारण से (अपरः) पिछला [पुत्र आदि] (पूर्वम्) पहिले [पिता आदि] को (न) न (जहाति) छोड़े, (एव) उसी कारण से, (धातः) हे विधाता ! [परमेश्वर] (एषाम्) इन के (आयूंषि) जीवनों को (कल्पय) समर्थ कर ॥२५॥

भावार्थः—जैसे सूर्य आदि पदार्थ ईश्वर नियम से परिपक्व होकर दिन रात्रि आदि को यथानियम बनाते हैं, वैसे ही जो मनुष्य ब्रह्मचर्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि नियमों का यथावत् पालन करते हैं, उन के पुत्र पौत्र आदि पूर्ण आयु भोगते हुए अपने पूर्वजों की सेवा करते रहते हैं ॥२५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है–१० । १८ । ५ ॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२६॥

भाषार्थः—(**सखायः**) हे मित्रो ! (**अश्मन्वती**) बहुत पत्थरों वाली [नदी] (**रीयते**) चलती है, (**सं रभध्वम्**) मिलकर उत्साह करो, (**वीरयध्वम्**) वीर बनो और (**प्र तरत**) पार हो जाओ, (**ये**) जो (**अत्र**) यहां [इस जगह वा समय] (**दुरेवाः**) दुर्गम मार्ग [वा विघ्न] (**असन्**) होवें, [उन्हें] (**जहीत**) छोड़ो, [पार करो], (**अनमीवान्**) रोग रहित (**वाजान् अभि**) अन्न आदि भोगों की ओर (**उत् तरेम**) हम उतरें ॥२६॥

भावार्थः—जैसे बड़ी बड़ी दुस्तर नदी, समुद्र आदि को सेतु नौका आदि से पार करते हैं, वैसे ही वीर विद्वान् पुरुष मिलकर उत्तम प्रयत्नों से संसार के विघ्नों को हटाकर आनन्द पाते हैं ॥२६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋषि दयानन्दकृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में और ऋग्वेद में १० । ५३ । ८ और यजुर्वेद ३५ । १० में है ॥

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२७॥

भाषार्थः (**सखायः**) हे मित्रो ! (**उत् तिष्ठत**) उठो, और (**प्र तरत**) उतर चलो, (**इयम्**) यह (**अश्मन्वती**) [बहुत पत्थरों वाली] [दुस्तर] (**नदी**) नदी (**स्यन्दते**) बहती है । (**ये**) जो [पदार्थ] (**अत्र**) यहां [इस जगह वा समय] (**अशिवाः**) अमङ्गलकारी (**असन्**) होवें, [उन्हें] (**जहीत**) छोड़ो, (**शिवान्**) मङ्गलकारी और (**स्योनान्**) आनन्दकारी (**वाजान् अभि**) अन्न आदि भोगों की ओर (**उत्तरेम**) हम उतरें ॥२७॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य बड़े दुर्गम्य समुद्र आदि को नौका आदि से पार करते हैं, वैसे ही उद्योगी मनुष्य प्रयत्न करके शुभ आचरणों के साथ दुःख से पार होकर आनन्द पाते हैं ॥२७॥

इस मन्त्र में मन्त्र २६ में वर्णित के कुछ भाग हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥२८॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (**वैश्वदेवीम्**) सब विद्वानों के हित करने वाली [वेदवाणी] को (**वर्चसे**) तेज पाने के लिये तुम (**शुद्धाः**) शुद्ध, (**शुचयः**) पवित्र (**पावकाः**) शुद्ध करने वाले (**भवन्तः**) होते हुए (**आ रभध्वम्**) आरम्भ करो। (**दुरिता**) कठिन [कष्ट दायक] (**पदानि**) पगडंडियों को (**अतिक्रामन्तः**) लांघते हुए, (**सर्ववीराः**) सब को वीर रखते हुए हम (**शतम्**) सौ (**हिमाः**) शीत ऋतुओं वाली [स्थितियों] तक (**मदेम**) सुख भोगें ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि वेदवाणी के निरन्तर विचार से बाहिर और भीतर से शुद्ध होकर और दूसरों को शुद्ध करके कुमार्गों को त्याग कर सब को वीर बनाते हुए पूर्ण आयु भोगें ॥२८॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ६। ६२। ३॥

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥२९॥

भाषार्थः—(**उदीचीनैः**) ऊंचे चलते हुए, (**वायुमद्भिः**) शुद्ध वायु वाले, (**परेभिः**) उत्तम (**पथिभिः**) मार्गों से (**अवरान्**) निकृष्ट [मार्गों] को (**अतिक्रामन्तः**) लाँघते हुए, (**परेताः**) पराक्रम पाये हुए (**ऋषयः**) ऋषियों ने (**त्रिः**) तीन वार [मनसा वाचा कर्मणा] (**सप्त कृत्वः**) सात वार [दो कान, दो नथने, दो आंख और एक मुख द्वारा] (**मृत्युम्**) मृत्यु को (**पदयोपनेन**) पद [चाल] रोक देने से (**प्रति औहन्**) उलटा मारा है ॥२९॥

भावार्थः—जैसे ऋषियों ने निकृष्ट कर्म छोड़ कर ब्रह्मचर्य आदि इन्द्रियदमन से सत्यसंकल्पी, सत्यवादी और सत्यकर्मी होकर मृत्यु को वश में किया है, वैसाही सब मनुष्य करें ॥२९॥

मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥३०॥

भाषार्थः—[हे वीरो !] (**मृत्योः**) मृत्यु के (**पदम्**) पद [चाल] को (**योपयन्तः**) रोकते हुए, (**द्राघीयः**) अधिक दीर्घ और (**प्रतरम्**) अधिक प्रकृष्ट (**आयुः**) जीवन को (**दधानाः**) धारण करते हुए तुम (**आ इत**) आओ। (**सधस्थे**)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्थान [समाज] में **(आसीनाः)** बैठे हुए तुम **(मृत्युम्)** मृत्यु को **(नुदत)** ढकेलो, **(अथ)** फिर **(जीवासः)** जीवते हुए हम **(विदथम्)** विज्ञान का **(आ वदेम)** उपदेश करें ॥३०॥

भावार्थः—जब विद्वान् लोग उत्तम कर्म करके अपनी कीर्ति बढ़ाते हैं, उन्हें देखकर अन्य पुरुष भी उत्तम कर्म करने लगते हैं ॥३०॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-१० । १८ । २ ॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥३१॥

भाषार्थः—**(इमाः)** यह [विदुषी] **(नारीः)** नारियां **(अविधवाः)** सधवा [मनुष्यों वाली] और **(सुपत्नीः)** धार्मिक पतियों वाली होकर **(आञ्जनेन)** यथावत् मेल से और **(सर्पिषा)** घी आदि [सार पदार्थ] से **(सं स्पृशन्ताम्)** संयुक्त रहें। **(अनश्रवः)** विना आसुओं वाली, **(अनमीवाः)** विना रोगों वाली, **(सुरत्नाः)** सुन्दर सुन्दर रत्नों वाली **(जनयः)** मातायें **(अग्रे)** आगे आगे **(योनिम्)** मिलने के स्थान [घर, सभा आदि] में **(आ रोहन्तु)** चढ़ें ॥३१॥

भावार्थः—जो विदुषी स्त्रियां ब्रह्मचर्य आदि शुभ गुण वाली होती हैं, वे अपने विद्वान् सुयोग्य कुटुम्बियों, पतियों और पुत्र आदि के साथ शरीर और आत्मा से स्वस्थ रहकर बहुत धनवती और सुखवती होकर अग्रगामिनी बनती हैं ॥३१॥

यह मन्त्र आगे है—अ० १८ । ३ । ५७ । और कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १८ । ७ ॥

व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्य१हं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥३२॥

भाषार्थः - **(अहम्)** मैं [परमेश्वर] **(हविषा)** देने लेने योग्य कर्म के साथ **(एतौ)** इन दोनों [स्त्री पुरुष समूह] को **(व्याकरोमि)** व्याख्यात करता हूं, **(तौ)** उन दोनों को **(ब्रह्मणा)** वेद ज्ञान के साथ **(अहम्)** मैं **(वि)** विविध प्रकार **(कल्पयामि)** समर्थ करता हूं। **(पितृभ्यः)** पितरों [रक्षक विद्वानों] के लिये **(अजराम्)** अक्षय **(स्वधाम्)** आत्मधारण शक्ति को **(करोमि)** करता हूं [देता हूं], **(दीर्घेण)** दीर्घ **(आयुषा)** जीवन के साथ **(इमान्)** इन सब को **(सं सृजामि)** संयुक्त करता हूं ॥३२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः- परमेश्वर सृष्टि के बीच स्त्री पुरुषों को समान अधिकार देकर वेदज्ञान से समर्थ बनाता और परोपकारी विद्वान् जनों को आत्मबल देकर चिरंजीवी करता है ।।३२।।

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ।।३३।।

भाषार्थः—(पितरः) हे पितरो ! [रक्षक ज्ञानियो] (यः) जो (अग्निः) प्रकाशस्वरूप [परमेश्वर] (मर्त्येषु) मरण धर्मियों में [मनुष्य आदि विकारवान् पदार्थों] में (अमृतः) अमर [होकर] (नः) हमारे (हृत्सु) हृदयों में (अन्तः) भीतर (आविवेश) प्रविष्ट हुआ है । (अहम्) मैं [मनुष्य] (तम्) उस (देवम्) प्रकाशमान [परमात्मा] को (मयि) अपने में (परि) सब ओर (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं, (सः) वह (अस्मान्) हम से (मा द्विक्षत) द्वेष न करे, और (वयम्) हम (तम्) उससे (मा) न [द्वेष करें] ।।३३।।

भावार्थः - जब योगी जन विद्वानों के सत्सङ्ग से उस अविनाशी जगदीश्वर को सब सृष्टि में और अपने में भीतर साक्षात् करता है, तब परमात्मा उस से और वह परमात्मा से प्रीति करता है ।।३३।।

अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ।।३४।।

भाषार्थः—(गार्हपत्यात्) गृहपति से संयुक्त ज्ञान से [विरुद्ध वर्तमान] (क्रव्यादा) मांस भक्षक [अज्ञान] के साथ [ठहरने से] (अपावृत्य) हटकर (दक्षिणा) सरल [सीधे वा वृद्धिकारक] मार्ग में (प्र इत) चले चलो और (आत्मने) अपने लिये और (पितृभ्यः) पितर [रक्षक] (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्माओं [वेदज्ञानियों] के लिये (प्रियम्) प्रिय और (प्रियम्) प्रीतिकारक कर्म (कृणुत) करो ।।३४।।

भावार्थः—मनुष्य शरीर और आत्मा के विरोधी अज्ञान से बचकर वेदमार्ग में चलकर अपना और सब विद्वानों का हित करे ।।३४।।

द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या ।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ।।३५।।

भाषार्थः—(यः) जो (क्रव्यात्) मांस भक्षक (अग्निः) अग्नि [समान सन्तापकारी दोष] (अनिराहितः) नहीं निकाला गया है, वह [दोष] (ज्येष्ठस्य)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ (पुत्रस्य) संशोधक पुरुष के (द्विभागधनम्) दोनों [संचित और क्रियमाण] भाग वाले धन को (आदाय) छीनकर (अवर्त्या) वृत्ति [जीविका] के विना [उसको] (प्र क्षिणाति) नाश कर डालता है ।।३५।।

भावार्थः—जो बड़े बड़े महात्मा अपने दोष को नहीं मिटाते, वे पूर्व जन्म के और इस जन्म के पुण्य को नाश करके अपना मनुष्य जीवन नाश कर देते हैं ।।३५।।

यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ।।३६।।

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ [मनुष्य] (कृषते) खेती करता है, (यत्) जो कुछ (वनुते) मांगता है, (च) और (यत्) जो कुछ (वस्नेन) मूल्य से (विन्दते) पाता है। (तत् सर्वम्) वह सब (मर्त्यस्य) मनुष्य का (न अस्ति) नहीं है, (च इत्=चेत्) यदि (क्रव्यात्) मांसभक्षक [दोष] (अनिराहितः) नहीं निकाला गया है ।।३६।।

भावार्थः—जब तक मनुष्य अपने आत्मघाती दोषों को नहीं नाश करता, अज्ञान के कारण उसके सब पुण्य कर्म और उद्योग निष्फल हो जाते हैं ।।३६।।

अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते ।।३७।।

भाषार्थः—वह पुरुष (अयज्ञियः) संगति के अयोग्य, (हतवर्चाः) नष्ट तेजवाला (भवति) हो जाता है, (एनेन) इस कारण से [उसे] (हविः) ग्राह्य अन्न (अत्तवे) खाना (न) नहीं [होता]। [उस को] (क्रव्यात्) मांस भक्षक [दोष वा रोग] (कृष्याः) खेती से, (गोः) गौ से और (धनात्) धन से (छिनत्ति) काट देता है, वह [मांसभक्षक] (यम् अनुवर्तते) जिस पुरुष के पीछे पड़ जाता है ।।३७।।

भावार्थः— खोटे कुकर्मी मनुष्य से न कोई मिलता है और न वह अन्न आदि पदार्थ पा सकता है, तब वह दुराचारी महा दुःखी होता है।।३७।।

मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य ।
क्रव्याद् याननिरन्तिकादनुविद्वान् । वितावति ।।३८।।

भाषार्थः—(मर्त्यः) [वह] मनुष्य (आर्तिम्) बिपत्ति में (नीत्य) नीचे जाकर (गृध्यैः) लोभियों से (मुहुः) बार बार (वदति) बातचीत करता है, (यान्=

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यम्) जिस [मनुष्य] को (क्रव्यात्) मांसभक्षक (अग्निः) अग्नि [समान सन्ताप कारी दोष आदि] (अन्तिकात्) निकट से (अनुविद्वान्) निरन्तर जानता हुआ (वितावति) सता डालता है ॥३८॥

भावार्थः—दुराचारी पुरुष अपनी विपत्ति वार वार उन दुष्टों से कहता है जिन के फन्दे में पड़कर यह सब कष्ट पाया है ॥३८॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आगे मन्त्र ५२ में है ॥

ग्राह्यां गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।

ब्रह्मैव विद्वानेष्यो ३ यः क्रव्यादं निरादधत् ॥३९॥

भाषार्थः—(गृहाः) घर (ग्राह्या) ग्राही [जकड़ने वाली शृङ्खला आदि बन्धन] से (संसृज्यन्ते) संयुक्त हो जाते है, (यत्) जब (स्त्रियाः) स्त्री का (पतिः) पति (म्रियते) प्राण छोड़ देता है [निरुद्यमी हो जाता है] [इस लिये] (ब्रह्मा) ब्रह्मा [चारों वेदवेत्ता पुरुष] (एव) ही (विद्वान्) विद्वान् [पति] (एष्यः) खोजना चाहिये, (यः) जो (क्रव्यादम्) मांस भक्षक [दोष] को (निरादधत्) हटा देवे ॥३९॥

भावार्थः—विदुषी स्त्री के अविद्वान् निरुद्यमी पति होने से घर में विपत्ति आजाती है, इस लिये स्त्री विदुषी होकर पूर्ण विद्वान् से विवाह करके आपत्ति से बच कर सदा सुखी रहे ॥३९॥

यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।

आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ॥४०॥

भाषार्थः—(संकसुकात्) यथावत् शासक (अग्नेः) अग्नि [समान तेजस्वी पुरुष] से पृथक् होकर (यत्) जो कुछ (रिप्रम्) पाप (च) और (यत्) जो कुछ (शमलम्) भ्रष्ट व्यवहार (च) और (यत्) जो कुछ (दुष्कृतम्) दुष्ट कर्म (चकृम) हमने किया है, (आपः) आप्त प्रजायें [यथार्थ वक्ता लोग] (मा) मुझको (तस्मात्) उस [पापादि] से पृथक् करके (शुम्भन्तु) शोभायमान करें ॥४०॥

भावार्थः—यदि मनुष्य सुसंगति छोड़ कर पाप कर्म करे, तो वह विद्वानों यथार्थ उपदेशकों का आश्रय लेकर अपने को फिर शुद्ध पवित्र बनावे ॥४०॥

ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।

पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥४१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अधरात्) नीचे से (उदीचीः) ऊंची चलती हुई, (प्रजानतीः) बहुत जानने वाली (ताः) वे [आप्त प्रजायें—म० ४०] (देवयानैः) विद्वानों के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (आ अववृत्रन्) घूम कर आई हैं। (वृषभस्य) बरसते हुए (पर्वतस्य) पहाड़ की (पृष्ठे अधि) पीठ के ऊपर (नवाः) नवीन (सरितः) नदियां (पुराणीः) पुरानी [नदियों] को (चरन्ति) चली जाती हैं ॥४१॥

भावार्थः सब मनुष्य वेद शास्त्रों की मर्यादा पर चलकर, छोटी दशा से बड़े होते हैं, जैसे बरसते हुए पहाड़ से छोटी छोटी नवीन नदियां निकल कर पुरानी बड़ी नदियों में मिल कर बड़ी होती जाती हैं ॥४१॥

अग्नें अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥४२॥

भाषार्थः—(अक्रव्यात्) हे अमांस भक्षक ! [शान्त स्वभाव] (अग्ने) अग्नि [समान तेजस्वी पुरुष !] (क्रव्यादम्) मांस भक्षक [दोष] को (निः नुद) बाहिर ढकेल दे, और (देवयजनम्) विद्वानों के सत्कार योग्य व्यवहार को (आ वह) यहां ला ॥४२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग दुष्ट व्यवहारों को छोड़ कर वैदिक व्यवहारों का प्रचार करें ॥४२॥

इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् ।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥४३॥

भाषार्थः – (क्रव्यात्) मांस भक्षक [दोष] ने (इमम्) इस [पुरुष] में (आ विवेश) आकर प्रवेश किया है, [अथवा] (अयम्) यह [पुरुष] (क्रव्यादम् अनु) मांस भक्षक [दोष] के पीछे पीछे (अगात्) चला है। (व्याघ्रौ) इन दोनों व्याघ्रों [दोषों] को (नानानम्) पृथक् पृथक् (कृत्वा) करके (तम्) उस (शिवापरम्) मङ्गल से भिन्न [अमङ्गलकारी दोष] को (हरामि) नाश करता हूं ॥४३॥

भावार्थः – यदि दुराचारी मनुष्य शिष्टों में जा मिले वा शिष्ट दुराचारियों में जा पड़ें, दोनों दशाओं को विचार कर शिष्ट पुरुष दुष्ट व्यवहार से प्रयत्नपूर्वक छुटे ॥४३॥

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्नि-
र्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥४४॥

भाषार्थः—[जो] (देवानाम्) उत्तम गुणों का और (मनुष्याणाम्) [मननशील] मनुष्यों का (अन्तर्धिः) भीतर से धारण करनेवाला और (परिधिः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब ओर से धारण करने वाला है, [वह] (गार्हपत्यः) गृहपतियों से संयुक्त (अग्निः) ज्ञान स्वरूप [परमेश्वर] (उभयान् अन्तरा) दोनों पक्षों [उत्तम गुणों और मनुष्यों] के भीतर (श्रितः) ठहरा है ॥४४॥

भावार्थः—परमात्मा सब के भीतर और बाहिर व्यापक होकर सर्वनियन्ता है, उसे गृहपति विद्वान् लोग साक्षात् करके सुख पाते हैं ॥४४॥

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥४५॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप ! [परमेश्वर] (त्वम्) तू (जीवानाम्) जीवतों [पुरुषार्थियों] का (आयुः) जीवन (प्र तर) बढ़ा (ये) जो (मृताः) प्राण छोड़े हुए [पुरुषार्थ हीन] हैं, वे (अपि) भी (पितॄणाम्) पितरों [रक्षक ज्ञानियों] के (लोकम्) समाज में (गच्छन्तु) पहुँचें। (सुगार्हपत्यः) सुन्दर गृहपतियों से युक्त तू [परमेश्वर] (अरातिम्) वैरी को (वितपन्) तपाता हुआ (श्रेयसीम्) अधिक कल्याणकारी (उषामुषाम्) प्रत्येक उषा [प्रभातवेला] (अस्मै) इस [उपासक] को (धेहि) धारण कर ॥४५॥

भावार्थः—परमेश्वर के नियम से पुरुषार्थी अपना जीवन सुफल करते हैं, इससे पुरुषार्थहीन पुरुष शिष्टों के सत्संग से अपना जीवन सदा सुधार कर नित्य नवीन सुख प्राप्त करें ॥४५॥

सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥४६॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप ! [परमेश्वर] (सर्वान्) सब (सपत्नान्) वैरियों को (सहमानः) हराता हुआ तू (एषाम्) इनके (ऊर्जम्) अन्न और (रयिम्) धन को (अस्मासु) हम [धर्मात्माओं] में (आ धेहि) सब प्रकार धारण कर ॥४६॥

भावार्थः—परमेश्वर के नियम से धर्मात्मा लोग अधर्मियों को सदा नीचा रखते हैं ॥४६॥

इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात्।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥४७॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो] (वह्निम्) सब को चलानेवाले, (पप्रिम्) पूर्ण करने वाले (इमम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] का (अन्वारभध्वम्) निरन्तर सहारा लो, (सः) वह (वः) तुम को (अवद्यात्) निन्दा से और (दुरितात्) कष्ट से (निः वक्षत्) निकालेगा। (तेन) उस [परमेश्वर] के साथ ही,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आपतन्तम्) आ पड़ते हुए (शरुम्) वज्र को (अप हत) नष्ट कर दो, (तेन) उसी के साथ, (रुद्रस्य) ज्ञाननाशक [शत्रु] के (अस्ताम्) चलाये हुए [तीर] को (परि पात) पृथक् रक्खो ॥४७॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर अपना कर्त्तव्य करते हैं, वे बुराइयों से बचकर दुष्टों के फन्दों में नहीं फंसते ॥४७॥

अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।

आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥४८॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (अनड्वाहम्) जीवन के ले चलने वाले (प्लवम्) [डोंगी रूप] [परमेश्वर] का (अन्वारभध्वम्) निरन्तर सहारा लो, (सः) वह (वः) तुमको (अवद्यात्) निन्दा से और (दुरितात्) कष्ट से (निः वक्षत्) निकालेगा। (सवितुः) चलाने वाले [चतुर नाविक वा मांझी] की (एनाम् नावम्) इस नाव पर (आ रोहत) चढ़ो, (षड्भिः) छह (उर्वीभिः) चौड़ी [दिशाओं] से (अमतिम्) विपत्ति को (तरेम) हम पार करें ॥४८॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट निन्दित कर्म छोड़कर दुःख को पार करें, जैसे चतुर मांझी की नाव द्वारा सब ऊपर नीचे और पूर्व आदि दिशाओं में सुरक्षित रह कर समुद्र पार करते हैं ॥४८॥

अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।

अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥४९॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (क्षेम्यः तिष्ठन्) सकुशल ठहरता हुआ, (प्रतरणः) बढ़ाता हुआ और (सुवीरः) महावीर होकर (अहोरात्रे) दिन राति (अनु) निरन्तर (एषि) चलता है। (तल्प) हे सहारा देने वाले [ईश्वर !] (नः) हमको (ज्योक्) बहुत काल तक (एव) निश्चय करके (अनातुरान्) नीरोग और (सुमनसः) प्रसन्नचित्त (बिभ्रत्) रखता हुआ तू (पुरुषगन्धिः) पुरुषों को शोभा देने वाला (एधि) हो ॥४९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर को सर्व सुख दाता जान कर प्रयत्न करें कि वे सदा स्वस्थ और प्रसन्न चित्त रहकर मनुष्यों के बीच शोभा बढ़ावें ॥४९॥

ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा ।

क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥५०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ते) वे लोग (देवेभ्यः) विद्वानों के पास से (आ वृश्चन्ते) कट जाते हैं [अलग हो जाते हैं], और (पापम्) पाप के साथ (सर्वदा) सदा (जीवन्ति) जीवते हैं। (यान्) जिन को (क्रव्याद्) मांस भक्षक (अग्निः) अग्नि [समान सन्तापकारी पाप] (अन्तिकात्) निकट से (अनुवपते) काट गिराता है, (अश्व इव) जैसे घोड़ा (नडम्) नरकट घास को [कुचल डालता है] ॥५०॥

भावार्थः—जो पापी मनुष्य विद्वानों से पृथक् रहते हैं, वे मतिभ्रष्ट हो कर अपने को गिराते हैं ॥५०॥

ये॒ऽश्र॒द्धा ध॑नका॒म्या क्र॒व्यादा॑ स॒मास॑ते ।

ते वा अ॒न्येषां॑ कु॒म्भीं प॒र्याद॑धति स॒र्वदा॑ ॥५१॥

भावार्थः—(ये) जो (अश्रद्धाः) श्रद्धाहीन (धनकाम्या) धन की कामना से (क्रव्यादा) मांस भक्षक [पाप] के साथ (समासते) मिलकर बैठते हैं। (ते) वे लोग (वै) निश्चय कर के (अन्येषाम्) दूसरों की (कुम्भीम्) हांडी को (सर्वदा) सदा (पर्यादधति) चढ़ाते हैं ॥५१॥

भावार्थः—जो लोग परमेश्वर में श्रद्धा नहीं रखते और कुकर्मों में फंस कर पाप करते हैं, वे निर्धनी होकर पराधीन होते हैं ॥५१॥

प्रेव॑ पिपतिषति॒ मन॑सा मु॒हुरा व॑र्तते॒ पुनः॑ ।

क्र॒व्याद्॒ यान॒ग्निर॑न्तिकाद॑नुवि॒द्वान् वि॒ताव॑ति ॥५२॥

भाषार्थः—वह [मनुष्य] (मनसा) अपने मन से (प्र इव) आगे बढ़ता हुआ सा (पिपतिषति) ऐश्वर्यवान् होना चाहता है और (मुहुः) वारंवार (पुनः) पीछे को (आ वर्तते) लौट आता है। (यान्=यम्) जिस [मनुष्य] को (क्रव्याद्) मांस भक्षक (अग्निः) अग्नि [समान सन्तापकारी दोष आदि] (अन्तिकात्) निकट से (अनुविद्वान्) निरन्तर जानता हुआ (वितावति) सता डालता है ॥५२॥

भावार्थः—पापी मनुष्य यद्यपि अपने को ऐश्वर्यवान् बनाने की चेष्टा करता है, परन्तु सत्य बल न होने से गिरता ही जाता है ॥५२॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध पीछे—म० ३८ में आ चुका है ॥

अविः॑ कृ॒ष्णा भा॑ग॒धेयं॑ प॒शूनां॒ सीसं॑ क्र॒व्याद॒पि॑ च॒न्द्रं त॑ आहुः ॥

माषाः॑ पि॒ष्टा भा॑ग॒धेयं॑ ते ह॒व्यम॑र॒ण्यान्या॒ गह्व॑रं सचस्व ॥५३॥

भाषार्थः—(कृष्णा) आकर्षण करने वाली (अविः) रक्षिका प्रकृति [सृष्टि]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पशूनाम्) सब जीवों का (भागधेयम्) सेवनीय पदार्थ है। (क्रव्याद्) हे मांस भक्षक! [पाप] (ते) तेरे (चन्द्रम्) सुवर्ण को (अपि) भी (सीसम्) सीसा [जस्ता आदि निकृष्ट धातु समान] (आहुः) वे [विद्वान् लोग] बताते हैं। [हे पाप!] (पिष्टाः) चूर्ण किये हुए (माषाः) वध व्यवहार [संग्राम आदि] (ते) तेरा (हव्यम्) ग्राह्य (भागधेयम्) भाग होता है, (अरण्यान्याः) बड़े वन की (गह्वरम्) गुहा का (सचस्व) सेवन कर ॥५३॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सृष्टि नियम सब प्राणियों के लिये हितकारी बनाये हैं। उन से विरुद्धगामी पुरुष मृगतृष्णा में फंसकर परस्पर युद्ध में अपना जीवन निष्फल करते हैं। ऐसे दुष्ट पाप से सब मनुष्य पृथक् रहें ॥५३॥

इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम्।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥५४॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] ने (जरतीम्) स्तुति योग्य (इषीकाम्) प्राप्ति योग्य [वेद वाणी] (इष्ट्वा) देकर और (तिल्पिञ्जम्) गति अर्थात् प्रयत्न के निवास वाले (दण्डनम्) दण्ड व्यवहार और (नडम्) प्रबन्ध व्यवहार को (इध्मम्) प्रकाशमान (कृत्वा) करके (यमस्य) न्यायाधीश के (तम्) उस (अग्निम्) प्रताप को (निरादधौ) निश्चय करके ठहराया है ॥५४॥

भावार्थः—परमात्मा ने वेद द्वारा समस्त विद्याओं और नियमों का प्रकाश करके बताया है कि जो न्यायी मनुष्य ईश्वर नियम पर चलते हैं, वे जगत् में प्रतापी होते हैं ॥५४॥

प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥५५॥

भाषार्थः—(प्रत्यञ्चम्) सन्मुख चलते हुए (अर्कम्) सूर्य को (प्रत्यर्पयित्वा) प्रत्यक्ष स्थापित करके (प्रविद्वान्) बड़े विद्वान् मैं [परमेश्वर] ने (हि) ही (पन्थाम्) मार्ग में (वि) विविध प्रकार (आविवेश) प्रवेश किया है। (अमीषाम्) इन सब [प्राणियों और लोकों] के (असून्) प्राणों को (परा) पराक्रम से (दिदेश) मैंने आज्ञा में रक्खा है, (दीर्घेण आयुषा) दीर्घ आयु के साथ (इमान्) इन सब [प्राणियों और लोकों] को (सं सृजामि) संयुक्त करता हूं ॥५५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे परमात्मा सूर्य आदि लोकों को बनाकर नियमबद्ध करके चिरकाल तक ठहरता है, वैसे ही, हे मनुष्यो! तुम ब्रह्मचर्य आदि नियमों पर चलकर अपना जीवन बड़ा बनाओ ॥५५॥

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥ ३ ॥ [स्वर्गसूक्तम्]

१—६० ॥ स्त्रीपुरुषौ दम्पती वा देवते; अग्न्योदनस्वर्गादिमन्त्रोक्ताश्च देवताः ॥ १, ८, ११, १६, २१, ३५, ४३ भुरिक् त्रिष्टुप्; २—७; १३, १४, १५, १७, १८, २०, २३, २६-३४, ३६, ३७, ३८, ४०, ४२, ४४, ४५, ४६, ४८, ५१—५४ त्रिष्टुप्; ९, १०, १९, २५, ४७, ५० निचृत् त्रिष्टुप्; १२, २२ निचृज् जगती; २४ विराड् जगती, ३९ ४१ विराट् त्रिष्टुप्; ४९ त्रिष्टुप्, प्रियमिति, विराट्, धेनुरिति स्वराट्; ५५, ५७, ५८ अतिधृतिः; ५६ कृतिः; ५९ भुरिक् कृतिः; ६० भुरिगतिधृतिश्छन्दः ॥

परस्परोन्नतिकरणोपदेशः—परस्पर उन्नति करने का उपदेश ॥

पुमा॑न् पुं॒सोऽधि॑ तिष्ठ॒ चर्मे॑हि॒ तत्र॑ ह्वयस्व॒ यत॒मा प्रि॒या ते॑ ।
याव॑न्ताव॒ग्रे॑ प्रथ॒मं स॑मे॒यथु॒स्तद् वां॒ वयो॑ यम॒राज्ये॑ समा॒नम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे प्राणी!] तू (पुमान्) रक्षक [पुरुष होकर] (पुंसः) रक्षक [पुरुषों] पर (अधि तिष्ठ) अधिष्ठाता हो, (चर्म) ज्ञान (इहि) प्राप्त कर, (तत्र) वहां [ज्ञान के भीतर] [उस शक्ति को] (ह्वयस्व) बुला, (यतमा) जौन सी [शक्ति अर्थात् परमेश्वर] (ते) तेरे लिये (प्रिया) प्रिय करने वाली है। (यावन्तौ) जितने [पराक्रमी] तुम दोनों ने (अग्रे) पहिली अवस्था में (प्रथमम्) प्रधान कर्म (समेयथुः) मिलकर पाया है, (तत्) उतना ही (वाम्) तुम दोनों का (वयः) जीवन (यमराज्ये) न्यायाधीश [परमेश्वर] के राज्य में (समानम्) समान है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को योग्य है कि प्रथम अवस्था में ब्रह्मचर्य सेवन से मनुष्यों में उत्तम ज्ञान प्राप्त करके अपने अपने पुरुषार्थ के अनुसार जीवन भर सुखी रहें ॥१॥

तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥२॥

भाषार्थः—(वाम्) तुम दोनों की (तावत्) उतनी [पूर्व कर्म अनुसार] (चक्षुः) दृष्टि है, (तति) उतने (वीर्याणि) वीर कर्म हैं, (तावत्) उतना (तेजः) तेज और (ततिधा) उतने प्रकार से (वाजिनानि) पराक्रम हैं, (यदा) जिस समय में वह [जीव] (शरीरम्) शरीर को (सचते) मिलता है, [जैसे] (अग्निः) अग्नि (एधः) इन्धन को [मिलता है], (अध) सो, (मिथुना) हे तुम दोनों बुद्धिमानो ! (पक्वात्) परिपक्व [ज्ञान] से (सम् भवाथः) शक्तिमान् हो जाओ ॥२॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष जन्म समय पर अपने अपने पूर्वकृत कर्म के अनुसार उत्तम उत्तम साधन पाते हैं, जैसे अग्नि इन्धन पाकर प्रज्वलित होता है ॥२॥

समस्मिल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ॥३॥

भाषार्थः (अस्मिन् लोके) इस लोक [संसार वा जन्म] में (सम्) मिलकर, (देवयाने) विद्वानों के मार्ग में (उ) ही (सम्) मिलकर और (यमराज्येषु) न्यायाधीश [परमात्मा] के राज्यों [राज्य नियमों] में (सम् स्म) अवश्य मिलकर (समेतम्) तुम दोनों साथ साथ चलो । (पवित्रैः) पवित्र कर्मों से (पूतौ) पवित्र तुम दोनों (तत्) उस [बल] को (उप ह्वयेथाम्) आदर से बुलाओ, (यद्यत्) जो जो (रेतः) वीर्य [बल] (वाम् अधि) तुम दोनों में अधिकार पूर्वक (संबभूव) उत्पन्न हुआ है ॥३॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि संसार के बीच विद्वानों के मार्ग से परमात्मा के नियमों पर चलकर धार्मिक व्यवहार से दोनों मिलकर उस सामर्थ्य का प्रकाश करें जिस को उन्होंने ब्रह्मचर्य आदि से पाया है ॥३॥

आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ॥४॥

भाषार्थः—(पुत्रासः) हे पुत्रो ! [नरक से बचाने वालो !] (जीवधन्याः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवों में धन्य [बड़ाई योग्य] तुम सब ! (इमम् जीवम्) इस जीवते [जीवात्मा] से (समेत्य) समागम करके, (आपः=अपः) आप्त प्रजाओं में (अभि) सब ओर (सम्) मिलते हुए (विशध्वम्) प्रवेश करो। (तासाम्) उन [प्रजाओं] के बीच (अमृतम्) उस अमर [परमात्मा] को (भजध्वम्) तुम सब सेवो, (यम्) जिसको (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाला वा मेघरूप परमेश्वर] (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं, (यम्) जिसको (वाम्) तुम दोनों की (जनित्री) उत्पन्न करने वाली [जन्म व्यवस्था] (पचति) परिपक्व [दृढ़] करती है ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम अपने जीवित पुरुषार्थी आत्मा को पहिचान कर प्रजाओं को कष्टों से छुड़ाओ, और अविनाशी परमात्मा का सदा ध्यान रक्खो, उसने अपनी न्याय व्यवस्था से तुम को उत्तम स्त्री और पुरुष बनाया है ॥४॥

यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ॥५॥

भाषार्थः—(यम्) जिस [परमेश्वर] को (वाम्) तुम दोनों का (पिता) पिता (च) और (यम्) जिस को (माता) तुम्हारी माता (रिप्रात्) पाप से (च) और (शमलात्) भ्रष्ट व्यवहार से (निर्मुक्त्यै) छुटने के लिये (वाचः) अपनी वाणियों द्वारा (पचति) पक्का [दृढ़] करती है। (सः) वह (शतधारः) सैकड़ों धारण शक्तियों वाला, (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाला (ओदनः) ओदन [सुख बरसाने वाला परमेश्वर] (महित्वा) अपने महत्त्व से (उभे) दोनों (नभसी) सूर्य और पृथिवी [प्रकाशमान और अप्रकाशमान] लोकों में (वि आप) व्यापक हुआ है ॥५॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! जिस परमात्मा को तुम्हारे विद्वान् माता पिता ने पाप से छुटने के लिये साक्षात् किया है, वैसा ही तुम जानो ॥५॥

उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः । तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥६॥

भाषार्थः—(ये) जो [लोक] (यज्वनाम्) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] करने वालों के (अभिजिताः) सब ओर से जीते हुए और (स्वर्गाः) सुख पहुंचाने वाले हैं, (तेषाम्) उन [लोकों] के मध्य (यः) जो [परमेश्वर] (अग्रे) पहिले से (ज्योतिष्मान्) प्रकाशमय और (मधुमान्) ज्ञानमय है, (तस्मिन्) उस [परमेश्वर] में [वर्तमान] (उभे) दोनों (नभसी) सूर्य और पृथिवी [प्रकाशमान और अप्रकाशमान] लोकों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(च) और (उभयान्) दोनों [स्त्री पुरुष] समूह वाले (लोकान्) लोकों [समाजों वा घरों] को (पुत्रैः) अपने पुत्रों [दुःख से बचाने वालों] के साथ (जरसि) स्तुति में रहकर (सं श्रयेथाम्) तुम दोनों [स्त्री पुरुष] मिलकर सेवो ॥६॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि विद्वानों के समान परमात्मा के रचे पदार्थों से यथावत् उपकार लेकर अपने विद्वान् धीर सन्तानों के साथ कीर्तिमान् होकर आनन्द पावें ॥६॥

प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम् ॥७॥

भाषार्थः—(प्राचींप्राचीम्) प्रत्येक आगे वाली (प्रदिशम्) बड़ी दिशा को (आ रभेथाम्) तुम दोनों आरम्भ करो, (एतम्) इस [आगे बढ़ाने वाले] (लोकम्) दर्शनीय पद को (श्रद्दधानाः) श्रद्धा रखने वाले लोग (सचन्ते) सेवते हैं। (यत्) जो कुछ (वाम्) तुम दोनों का (पक्वम्) परिपक्व [दृढ़ ज्ञान] (अग्नौ) प्रकाश-स्वरूप [परमात्मा] में (परिविष्टम्) प्रविष्ट है, (तस्य) उस [ज्ञान] की (गुप्तये) रक्षा के लिये (दम्पती) हे पति पत्नी ! (सं श्रयेथाम्) तुम दोनों मिलकर आश्रय लो ॥७॥

भावार्थः—जिस प्रकार परमात्मा में श्रद्धा वाले पुरुष शुभकामों में बढ़ते जाते हैं, उसी प्रकार विद्वान् पति पत्नी उस जगदीश्वर में पूर्ण विश्वास करके परस्पर प्रीति से ज्ञान की रक्षा और वृद्धि करें ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आचुका है—अ० ६ । १२२ । ३ ॥

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् । तस्मिन्
वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात् ॥८॥

भाषार्थः—(दक्षिणाम्) दाहिनी (दिशम् अभि) दिशा की ओर (नक्षमाणौ) चलते हुए तुम दोनों (एतत्) इस (पात्रम् अभि) रक्षा साधन [ब्रह्म] की ओर (पर्यावर्तेथाम्) घूमते हुए वर्तमान हो। (तस्मिन्) उस [ब्रह्म] में (वाम्) तुम दोनों का (यमः) नियम (पितृभिः) रक्षक [विद्वानों] के साथ (संविदानः) मिला हुआ (पक्वाय) परिपक्व [दृढ़ ज्ञान] के लिये (बहुलम्) बहुत (शर्म) आनन्द (नि) निरंतर (यच्छात्) देवे ॥८॥

भावार्थः दाहिनी दिशा को भी चलते हुए स्त्री पुरुष परमात्मा को साक्षात् करके विद्वानों के सत्संग से ब्रह्मचर्य आदि नियम पालते हुए ज्ञान के साथ आनन्द प्राप्त करें ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीचीं दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥९॥

भाषार्थः—(दिशाम्) दिशाओं के मध्य (इयम्) यह (प्रतीची) पीछे वाली [दिशा] (इत् भी (वरम्) श्रेष्ठ है, (यस्याम्) जिस [दिशा] में (सोमः) जगत् का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (अधिपाः) अधिष्ठाता (च) और (मृडिता) सुखदाता है। (तस्याम्) उस [दिशा] में (सुकृतः) सुकर्मी लोगों का (श्रयेथाम्) तुम दोनों आश्रय लो और (सचेथाम्) संसर्ग करो, (अध) सो, (मिथुना) हे तुम दोनों विद्वानो! (पक्वात्) परिपक्व [ज्ञान] से (सं भवाथः) शक्तिमान् हो जाओ ॥९॥

भावार्थः—अन्य दिशाओं के समान पीछे की दिशा में भी परमेश्वर को साक्षी जानकर विद्वानों से मिलकर स्त्री पुरुष ज्ञानपूर्वक आनन्दित होवें ॥९॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद ऊपर मन्त्र २ में आ चुका है ॥

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥१०॥

भाषार्थः—(दिशाम्) दिशाओं के बीच (उदीची) बायीं [दिशा] (नः) हमारे (उत्तरम्) अधिक उत्तम (राष्ट्रम्) राज्य को (प्रजया) प्रजा के साथ (उत्तरावत्) अधिक उत्तम व्यवहार वाला और (अग्रम्) अगुआ (कृणवत्) करे। (पुरुषः) पुरुष ने (पाङ्क्तम्) विस्तार वा गौरव से युक्त (छन्दः) स्वतन्त्रता को (बभूव) पाया है, (विश्वाङ्गैः) सब उपायों वाले (विश्वैः सह) सब [विद्वानों] के साथ (सं भवेम] हम शक्तिमान् होवें ॥१०॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष अन्य दिशाओं के समान बायीं दिशा में धर्म से राज्य बढ़ाकर कीर्ति और स्वतन्त्रता के साथ विद्वानों के समागम से कीर्तिमान् होवें ॥१०॥

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥११॥

भाषार्थः—(ध्रुवा=ध्रुवायाम्) नीचे वाली [दिशा] में (इयम्) यह (विराट्) विराट् [विविध ऐश्वर्य वाली शक्ति परमेश्वर] है (अस्यै) उस [शक्ति परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, वह (पुत्रेभ्यः) पुत्रों [नरक से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचाने वालों] को (उत) और (मह्यम्) मुझको (शिवा) मङ्गलकारी (अस्तु) होवे। (सा) सो तू, (देवि) हे देवी! उत्तम गुण वाली], (अदिते) हे अखण्ड व्रत वाली! (विश्ववारे) हे सब श्रेष्ठ गुणों वाली! [शक्ति परमेश्वर] (इर्यः) फुरतीले (गोपाः इव) गोप [ग्वाला] के समान (पक्वम् अभि) परिपक्व [दृढ़ ज्ञान] में (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कर ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य अन्य दिशाओं के समान नीची तथा उपलक्षण से ऊंची दिशा में परमेश्वर को व्यापक जान कर ज्ञानसहित सब की रक्षा करें ॥११॥

पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥१२॥

भाषार्थः—[हे विराट् परमेश्वर] (नः) हमें (अभि सं स्वजस्व) भले प्रकार गले लगा, (पिता इव) जैसे पिता (पुत्रान्) पुत्रों [नरक से बचाने वालों] को, (नः) हमारे लिये (शिवाः) मङ्गलकारी (वाताः) पवनें (इह) यहां (भूमौ) भूमि पर (वान्तु) चलें। (यम्) जिस (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाले परमेश्वर] को (देवते) दो देवता [स्त्री पुरुष] (इह) यहां [हम सब में] (पचतः) परिपक्व [दृढ़] करते हैं, (तम्) उस [परमेश्वर] को (नः) हमारा (तपः) तप [ब्रह्मचर्य आदि व्रत] (उत) और (सत्यम्) सत्य [निष्कपट व्यवहार] (च) निश्चय करके (वेत्तु) जाने ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर को पिता के समान हितकारी जानकर अपने सब व्यवहारों को स्वस्थ रक्खें और ब्रह्मचर्य आदि तप और सत्य व्यवहार से ईश्वर ज्ञान में तत्पर रहें ॥१२॥

यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद्वा दास्या३र्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥१३॥

भाषार्थः—(यद्यत्) जब कभी (कृष्णः) कुरेदने वाला (शकुनः) चिल्ल आदि पक्षी [समान दुष्ट पुरुष] (इह) यहां (आ गत्वा) आकर (विषक्तम्) विरुद्ध मेल से (त्सरन्) टेढ़ा चलता हुआ (बिले) बिल [हमारे घर आदि] में (आससाद) आया है। (वा) अथवा (यत्) यदि (आर्द्रहस्ता) भीगे हाथ वाली (दासी) हिंसक स्त्री (उलूखलम्) ओखली और (मुसलम्) मूसल को (समङ्क्ते) लिथेड़ देती है, (आपः) हे आप्त प्रजाओ! [उस दोष को] (शुम्भत) नाश करो ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—यदि कोई कपटी दुष्ट पुरुष हमारे व्यवहारों में अथवा कोई कुटिला स्त्री हमारे घर के वस्त्र बासन आदि में बखेड़ा डाले, विद्वान् स्त्री पुरुष उस दोष का प्रतीकार करें ॥१३॥

अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दंपती पौत्रमघं नि गाताम् ॥१४॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (ग्रावा) शास्त्रों का उपदेशक (पृथुबुध्नः) विस्तृत ज्ञान वाला, (वयोधाः) जीवन धारण करने वाला, (पवित्रैः) शुद्ध व्यवहारों से (पूतः) पवित्र किया हुआ [पुरुष] (रक्षः) राक्षस [विघ्न] को (अप हन्तु) नाश कर दे। [हे विद्वान् !] (चर्म) ज्ञान में (आ रोह) ऊंचा हो, (महि) बड़ा (शर्म) सुख (यच्छ) दे, (दम्पती) पति पत्नी (पौत्रम्) पुत्र सम्बन्धी (अघम्) दुःख को (मा नि गाताम्) कभी न पावें ॥१४॥

भावार्थः—जहां पर स्त्री पुरुष विद्वानों से सुशिक्षित होकर अपना कर्तव्य करते हैं, वहां उनके सन्तान धार्मिक होकर माता पिता को सुख देते हैं ॥१४॥

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयाते प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वान् जयेम ॥१५॥

भाषार्थः—(वनस्पतिः) सेवनीय शास्त्र का रक्षक [विद्वान् पुरुष] (रक्षः) राक्षस [विघ्न] और (पिशाचान्) मांस भक्षक [मनुष्य रोग आदिकों] को (अपबाधमानः) हटाता हुआ (देवैः सह) अपने उत्तमगुणों के साथ (नः) हम में (आ अगन्) आया है। (सः) वह (उत् श्रयातै) ऊंचा चढ़े और (वाचम्) वेदवाणी का (प्र वदाति) उपदेश करे, (तेन) उस [विद्वान्] के साथ (सर्वान् लोकान्) सब लोकों को (अभि) सब ओर से (जयेम) हम जीतें ॥१५॥

भावार्थः—जब ब्रह्मचारी विद्वान् लोग अपने अज्ञान आदि दोषों को हटाकर विद्या से उच्च पद पाकर उपदेश करते हैं, तब लोग कष्टों से छूटकर सुखी होते हैं ॥१५॥

सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥१६॥

भाषार्थः—(पशवः) सब जीवों ने (सप्त) सात [त्वचा, नेत्र कान, जिह्वा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाक, मन और बुद्धि] (मेधान्) परस्पर मिले हुए [पदार्थों] को (परि अगृह्णन्) ग्रहण किया है, (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस [वसु आदि] (देवता) देवता (तान्) उन [जीवों] को (सचन्ते) सेवते हैं, (यः) जो [पुरुष] (एषाम्) इन [जीवों] में से (ज्योतिष्मान्) तेजस्वी है, (उत) और (यः) जिसने [विज्ञान को] (चकर्श) सूक्ष्म किया है, (सः) वह तू (नः) हमको (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले (लोकम् अभि) समाज में (नेष) पहुंचा ॥१६॥

भावार्थः—सब मनुष्यों में त्वचा, नेत्र, कान आदि समान हैं और सब पर वसु आदि प्राकृत पदार्थों का समान प्रभाव है, परन्तु विज्ञानी पुरुष ही आप सुखी रहते और सब को सुखी रखते हैं ॥१६॥

सप्त मेधान् के विषय में (सप्तऋषयः) पद देखो—अ० ४। ११। ९। और तेतीस देवता यह हैं—८ वसु ११ रुद्र, १२ आदित्य वा महीने, १ इन्द्र वा बिजुली, १ प्रजापति वा यज्ञ—इन की विशेष व्याख्या अ० १०। ७। १३। के भावार्थ में देखो ॥

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥१७॥

भाषार्थः - [हे विद्वान्!] (स्वर्गम्) सुख पहुँचाने वाले (लोकम् अभि) समाज में (नः) हमको (नयासि) तू पहुंचा, हम (जायया) पत्नी के साथ और (पुत्रैः सह) पुत्रों [दुःख से बचाने वालों] के साथ (सं स्याम) मिले रहें। मैं [प्रत्येक मनुष्य] (हस्तम्) [प्रत्येक का] हाथ (गृह्णामि) पकड़ता हूं, वह (अत्र) यहां (मा अनु) मेरे साथ साथ (आ एतु) आवे, (नः) हमको (मा) न तो (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी [दरिद्रता] (मो) और न (अरातिः) कंजूसी (तारीत्) दबावे ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से उत्तम स्त्री और सन्तानों में रहकर अपना घर स्वर्गलोक बनावें और परस्पर सहाय करके धनी और दानी होवें ॥१७॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद भेद से आ चुका है—अथर्व० ६। १३४। ३॥

ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥१८॥

भाषार्थः—(ग्राहिम्) जकड़ने वाली [गठिया आदि शारीरिक पीड़ा] और (पाप्मनाम्) पाप [मिथ्या कथन आदि मानसिक रोग] को (अति) लांघ कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तान्) उन [पुत्र आदि] को (अयाम) हम प्राप्त करें, [हे विद्वान्!] (तमः) अन्धकार को (वि) अलग (अस्य) फेंक दे और (वल्गु) सुन्दर (प्र वदासि) उपदेश कर। तू (वानस्पत्यः) सेवनीय शास्त्रों के पालने वालों का हितकारी और (उद्यतः) उद्यमी होकर [हमें] (मा जिहिंसीः) मत दुःख दे और (देवयन्तम्) विद्वानों के स्नेही (तण्डुलम्) चावल [अन्न] की राशि को (मा वि शरीः) मत इतर वितर कर ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्य शारीरिक और मानसिक रोग मिटाकर हित का उपदेश करें और परस्पर सुख बढ़ाकर अन्न आदि पदार्थों का संग्रह करें ॥१८॥

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम्।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु ॥१९॥

भाषार्थः—[हे विद्वान्!] (विश्वव्यचाः) सब व्यवहारों में फैला हुआ. (घृतपृष्ठः) प्रकाश से सींचता हुआ और (सयोनिः) समान घर वाला (भविष्यन्) भविष्यत् में होता हुआ तू (एतम्) इस (लोकम्) लोक [व्यवहार मण्डल] में (उप याहि) पहुँच। (वर्षवृद्धम्) वरणीय गुणों से बढ़े हुए (शूर्पम्) सूप को (उप यच्छ) ले, (तत्) तब [आप] (तुषम्) बुसी और (पलावान्) तिनके आदि को (अप विनक्तु) फटक डालें ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे जैसे वे बढ़ते जावें, भलीभांति देख भालकर दोषों का त्याग और गुणों का ग्रहण करें, जिस प्रकार सूप से कूड़ा करकट फटक कर अन्न आदि सार पदार्थ ले लेते हैं ॥१९॥

इस मन्त्र का पूर्व भाग आगे मन्त्र ५३ में है॥

त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम्।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥२०॥

भाषार्थः—(ब्राह्मणेन) ब्राह्मण [ब्रह्म ज्ञानी] करके (त्रयः लोकाः) तीनों लोक [उत्तम निकृष्ट और मध्यम अवस्थायें] (संमिताः) यथावत् मापे गये हैं, [जैसे] (असौः) वह (एव) ही (द्यौः) सूर्य लोक, (पृथिवी) पृथिवी लोक और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष [मध्य लोक] हैं। [हे स्त्री पुरुषो!] (अंशून्) सूक्ष्म पदार्थों को (गृभीत्वा) ग्रहण करके [अपना कर्तव्य] (अन्वारभेथाम्) तुम दोनों आरम्भ करते रहो, वे [सूक्ष्म द्रव्य] (आ प्यायन्ताम्) फैलें और (पुनः) फिर फिर (शूर्पम्) सूप में (आ यन्तु) आवें ॥२०॥

CC-0.Paṇini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे ब्रह्मज्ञानी पुरुष ऊंच, नीच, मध्य तीनों दशाओं को हस्तामलक कर लेता है, वैसे ही सब स्त्री पुरुष परीक्षा करके सार पदार्थ ग्रहण करें, जैसे सूप में द्रव्य को वार वार फैला कर और शुद्ध करके ग्रहण करते हैं ॥२०॥

पृथग्रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा ॥२१॥

भाषार्थः—(पृथक्) अलग अलग (रूपाणि) रूप [आकार आदि] (बहुधा) प्रायः (पशूनाम्) जीवों के होते हैं, [हे विद्वान्] (समृद्ध्या) समृद्धि [पूर्ण सिद्धि] के साथ (एकरूपः) एक स्वभाव वाला [दृढ़चित्त] होकर तू (सं भवसि) शक्तिमान् होता है। (एताम्) इस और (ताम्) उस (लोहिनीम्) लोहिनी [लोहे की बनी जैसे कठिन] (त्वचम्) ढकनी [अविद्या] को (नुदस्व) हटा, (ग्रावा) शास्त्रों का उपदेशक [उसको] (शुम्भाति) शुद्ध करे, (मलग इव) जैसे धोबी (वस्त्रा) वस्त्रों को ॥२१॥

भावार्थः मनुष्यों में प्रायः पृथक् पृथक् आकार होते हैं, परन्तु वेद-ज्ञान की पूर्णता से अविद्या रूप आवरण को हटाकर समान दृढ़चित्त होकर निर्दोष हो जाते हैं जैसे चतुर धोबी के धोने से वस्त्र उजले होते हैं ॥२१॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा ।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥२२॥

भाषार्थः—[हे प्रजा ! स्त्री वा पुरुष] (पृथिवीम् त्वा) तुझ प्रख्यात को (पृथिव्याम्) प्रख्यात [विद्या] के भीतर (आ वेशयामि) मैं [परमेश्वर] प्रवेश करता हूं, (एषा) यह (ते) तेरी (विकृता) भिन्न रूप वाली (तनूः) आकृति (समानी) समान [हो जावे]। (यद्यत्) जो जो (अर्पणेन) कुव्यवहार से (द्युत्तम्) जल गया और (लिखितम्) खरोंचा गया है, (तेन) उस [कारण] से (मा सुस्रोः) तू मत बह जा, (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (अपि) ही (तत्) उस को (वपामि) मैं [बीज समान] फैलाता हूं ॥२२॥

भावार्थः स्त्री पुरुषों की आकृति एक दूसरे से भिन्न भिन्न है, परन्तु परमेश्वर ने शक्ति दी है कि वे वेदद्वारा अपनी हानि को पूरा करके समान गुण वाले होवें जैसे बीज के बोने से घटी पूरी हो जाती है ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥२३॥

भाषार्थः—[हे प्रजा ! स्त्री वा पुरुष] (प्रति) निश्चय करके (हर्यासि) [परस्पर] प्यार कर, (जनित्री इव) जैसे माता (सूनुम्) पुत्र को, (पृथिवीम् त्वा) तुझ प्रख्यात को (पृथिव्या) प्रख्यात [विद्या] के साथ (सं दधामि) मैं [परमेश्वर] संयुक्त करता हूं। (वेद्याम्) वेदी [अंगीठी आदि] के ऊपर (यज्ञायुधैः) यज्ञ के शस्त्रों से (आज्येन) घी के साथ (अतिषक्ता) दृढ़ जमाई हुई (उखा) हांडी [वा] (कुम्भी) बटलोयी [के समान] (मा व्यथिष्ठाः) तू मत डगमगा ॥२३॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष वेद द्वारा विद्या प्राप्त करके परस्पर प्रीतिपूर्वक रहें और कठिनायी पड़ने पर निरन्तर धर्म में जमे रहें, जैसे दृढ़ जमाई हुई कढ़ाही आदि भट्टे चूल्हे आदि पर निरन्तर ठहरी रहती है ॥२३॥

अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥२४॥

भाषार्थः—(अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (त्वा) तुझ को (पचन्) परिपक्व [दृढ़] करता हुआ (पुरस्तात्) पूर्व वा सन्मुख से (रक्षतु) बचावे, (मरुत्वान्) प्रशस्त धनवाला (इन्द्रः) पूर्ण ऐश्वर्य वाला [परमेश्वर] (दक्षिणतः) दक्षिण वा दाहिने से (रक्षतु) बचावे। (वरुणः) सब में उत्तम परमेश्वर (त्वा) तुझको (धरुणे) धारण सामर्थ्य के बीच (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली [दिशा] से (दृंहात्) दृढ़ करे, (सोमः) सब जगत् का उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर (त्वा) तुझको (उत्तरात्) उत्तर वा बायें से (सं ददातै) संभाले ॥२४॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष परमात्मा को सर्वत्र व्यापक जानकर पापों से बचकर धर्म में प्रवृत्त रहें ॥२४॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अथर्व० ३। २७। १—४॥

पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥२५॥

भाषार्थः—(पवित्रैः) शुद्ध व्यवहारों से (पूताः) शुद्ध किये गये [प्रजाजन—मन्त्र २७] (अभ्रात्) उपाय से (पवन्ते) [दूसरों को] शुद्ध करते हैं, वे (दिवम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय की इच्छा को (च) और (पृथिवीम्) प्रख्यात विद्या को (च) और (लोकान्) दर्शनीय घरों को (यन्ति) प्राप्त होते हैं। (ताः) उन (जीवलाः) जीवते हुए, (जीवधन्या.) जीवों में धन्य, (प्रतिष्ठाः) दृढ़ जमे हुए, (पात्रे) रक्षा साधन [ब्रह्म] में (आसिक्ताः) भली भांति सींचे हुए [प्रजाजनों] को (अग्निः) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर (परि) सब ओर से (इन्धाम्) प्रकाशमान करे ॥२५॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष अपने शुद्ध आचरणों से जय पाने के लिये उत्तम विद्यायें और उत्तम गुण प्राप्त करते हैं, उन पुरुषार्थी प्रशंसनीय जनों को परमेश्वर अपने नियम से कीर्तिमान् करता है ॥२५॥

आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥२६॥

भाषार्थः—[वे प्रजाजन—मन्त्र २७] (दिवः) विजय की इच्छा से (पृथिवीम्) प्रख्यात [विद्या] को (आ यन्ति) प्राप्त होते हैं और (सचन्ते) सेवते हैं, (भूम्याः) [अन्तःकरण की] शुद्धि से (अधि) अधिकार पूर्वक (अन्तरिक्षम्) भीतर दीखते हुए [परब्रह्म] को (सचन्ते) सेवते हैं। (ताः) वे (शुद्धाः) शुद्ध (सतीः) होकर, (उ) ही [दूसरों को] (एव) भी (शुम्भन्ते) शुद्ध करते हैं, (ताः) वे [प्रजायें] (नः) हमको (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले (लोकम् अभि) दर्शनीय समाज में (नयन्तु) पहुंचावें ॥२६॥

भावार्थः—विद्वान् स्त्री पुरुष परमेश्वर को साक्षात् करके आत्म-बल बढ़ाते हुए सब को धर्म में प्रवृत्त करके सुखी रक्खें ॥२६॥

उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥२७॥

भाषार्थः—(उत इव) और जैसी (प्रभ्वीः) प्रबल, (उत) और (संमितासः) सन्मान की गयी, (च) और (शुक्राः) वीर्यवाली, (शुचयः) शुद्ध आचरण वाली, (च) और (अमृतासः) अमर [सदा पुरुषार्थ युक्त], (प्रशिष्टाः) बड़ी शिष्ट [वेद वाक्य में विश्वास करनेवाली वा सुबोध], (शिक्षन्तीः) उपकार करती हुई (ताः) वे तुम सब, (आपः) हे आप्त प्रजाओ! (सुनाथाः) हे बड़ी ऐश्वर्यवालियो! (दम्पतिभ्याम) दोनों पति पत्नी के लिये (ओदनम्) सुख बरसाने वाले [परमेश्वर] को (पचत) परिपक्व करो, [हृदय में दृढ़ करो] ॥२७॥

भावार्थः पति पत्नी के हित के लिये अर्थात् गृहाश्रम की सिद्धि के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये, तुम सब प्रकार से समर्थ और उपकारी होकर परमात्मा पर सदा विश्वास रक्खो ॥२७॥

संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥२८॥

भाषार्थः—(संख्याताः) समान ख्याति वाले, (स्तोकाः) प्रसन्न चित्त वाले, (प्राणापानैः) प्राण और अपान व्यवहारों से और (ओषधीभिः) ओषधियों [अन्न सोम लता आदि] से (संमिताः) सन्मान किये गये लोग (पृथिवीम्) प्रख्यात [भूमि अर्थात् राज्यश्री] को (सचन्ते) सेवते हैं। (असंख्याताः) निर्व्याकुलता [दृढ़ स्वभाव] से प्रसिद्ध, (ओप्यमानाः) यथाविधि [बीज समान] फैलते हुए, (सुवर्णाः) सुन्दर [ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य] वर्ण वाले, (शुचयः) शुद्ध आचार वाले पुरुषों ने (सर्वम्) सब में (शुचित्वम्) पवित्रता को (वि आपुः) फैलाया है ॥२८॥

भावार्थः—जो पुरुष प्रत्येक श्वास प्रश्वास पर शुभ कर्म करके अन्न आदि प्राप्त करते हैं, वे सन्मानित और प्रसन्नचित्त लोग विद्या वा राजश्री को भोगते हैं, जैसे पूर्वज दृढ़ स्वभाव वालों ने बाहिर भीतर शुद्ध होकर संसार को शुद्ध बनाया है ॥२८॥

उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायै तैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥२९॥

भाषार्थः—वे [जल] (तप्ताः) तप्त होकर (उत् योधन्ति) भिड़ जाते हैं, (अभि) सब ओर को (वल्गन्ति) फुदकते हैं, (फेनम्) फेन को (च) और (बहुलान्) बहुत से (बिन्दून्) बिन्दुओं को (अस्यन्ति) फेंकते हैं। (आपः) हे आप्त प्रजाओ! (एतैः) इन (तण्डुलैः) चावलों [अन्न आदि] के साथ (सं भवत) तुम शक्तिमान् बनो, (इव) जैसे (योषा) सेवा योग्य पत्नी (ऋत्वियाय) ऋतु [गर्भधारण योग्य काल] पाने के लिये (पतिम्) पति को (दृष्ट्वा) देखकर [शक्तिवाली होती है] ॥२९॥

भावार्थः—जैसे जल अग्नि के संयोग से खौलने लगता है, अथवा जैसे पत्नी ऋतुकाल में पति को प्राप्त होकर अभीष्ट सन्तान उत्पन्न करती है, वैसे ही सब पुरुषों को पुरुषार्थ के साथ अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहिये ॥२९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥३०॥

भाषार्थः—[हे वीर !] (बुध्ने) तले पर (सीदतः) बैठे हुए (एनान्) इन [चावलों] को (उत् स्थापय) ऊंचा उठा, वे [चावल] (अद्भिः) जल के साथ (आत्मानम्) अपने को (अभि) सब प्रकार (सं स्पृशन्ताम्) मिला देवें। (पात्रैः) पात्रों [चमचे आदि] से, (यत्) जो कुछ (एतत्) यह (उदकम्) जल है, [उसे] (अमासि) मैं ने माप लिया है, (यदि) यदि (तण्डुलाः) चावल (इमाः प्रदिशः) इन दिशाओं में [बटलोही के भीतर] (मिताः) मापे गये हैं ॥३०॥

भावार्थः—जैसे रसोईया बटलोही के पैंदे में बैठे हुए चावलों को उठाकर जल से मिलाता है, और बार बार जल और चावलों को माप कर ठीक ठीक पकाता है, वैसे ही मनुष्य यथावत् उपाय से दूसरों को उन्नत करके योग्य बनावें ॥३०॥

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥३१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (पर्शुम्) हंसिया [दरांती] को (प्र यच्छ) लें, (त्वरय=०—या) वेग से (आ हर) ले आ, (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदि] को (अहिंसन्तः) हानि न करते हुए वे [लावा लोग] (पर्वन्) गांठ पर (ओषम्) झट पट (दान्तु) काटें। (यासाम्) जिन [अन्न आदि] के (राज्यम्) राज्य को (सोमः) चन्द्रमा [वा जल] ने (परि बभूव) घेर लिया था, (अमन्युताः) क्रोध को न फैलाती हुई (वीरुधः) वे ओषधें [अन्न आदि] (नः) हमें (भवन्तु) प्राप्त होवें ॥३१॥

भावार्थः—जैसे जब खेती चन्द्रमा और जल के संयोग से पक जाती है तब किसान चतुर कटवैइयों से यथाविधि कटवा कर अन्न आदि पाता है, वैसे ही विद्वान् पुरुष विद्वानों के संयोग से ईश्वरज्ञान प्राप्त करके सुखी होता है ॥३१॥

पदपाठ में (त्वरय) के स्थान पर [त्वरया] सुबन्त मान कर हम ने अर्थ किया है। यदि तिङन्त होता तो [तिङ्ङतिङः। पा० ८। १। २८।] इस सूत्र से वह सब अनुदात्त होता ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥३२॥

भाषार्थः —[हे मनुष्यो !] (**नवम्**) नवीन (**बर्हिः**) आसन (**ओदनाय**) भात [रंधे चावल जीमने] के लिये (**स्तृणीत**) बिछाओ, वह [आसन] (**हृदः**) हृदय का (**प्रियम्**) प्रिय और (**चक्षुषः**) नेत्र का (**वल्गु**) रमणीय (**अस्तु**) होवे । (**तस्मिन्**) उस [आसन] पर (**देवाः**) देवता [विद्वान् लोग] और (**देवीः**) देवियां [विदुषी स्त्रियां] (**सह**) साथ साथ (**विशन्तु**) बैठें और (**ऋतुभिः**) सब ऋतुओं के साथ (**निषद्य**) बैठकर (**इमम्**) इस [भात] को (**प्र अश्नन्तु**) स्वाद से जीमें ॥३२॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य रुचिर भोजन को रमणीक स्थान में ऋतुओं के अनुसार जीमकर प्रसन्न होते हैं, वैसे ही योगी जन शुद्ध अन्तःकरण में परमात्मा के अनुभव से मोक्ष सुख पाते हैं ॥३२॥

वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥३३॥

भाषार्थः —(**वनस्पते**) हे सेवनीय शास्त्र के रक्षक विद्वान् ! तू (**स्तीर्णम्**) फैले हुए (**बर्हिः**) आसन पर (**आ सीद**) बैठ जा, तू (**अग्निष्टोमैः**) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की स्तुतियों से और (**देवताभिः**) व्यवहार कुशल पुरुषों से (**संमितः**) सम्मान किया गया है । (**एना**) इस [पुरुष] करके (**एहाः**) चेष्टायें (**पात्रे**) पात्र में [चित्त में] (**परि**) सब ओर से (**ददृश्राम्**) देखी जावें, (**त्वष्ट्रा इव**) जैसे शिल्पी करके (**स्वधित्या**) बसूले आदि से (**सुकृतम्**) सुन्दर बनाया गया (**रूपम्**) वस्तु [देखा जाता है] ॥३३॥

भावार्थः- जब मनुष्य ईश्वर के यथार्थ ज्ञान से और विद्वानों के सत्सङ्ग से संसार में मान्य और स्वस्थ होकर बैठता है, तब वह चित्त की वृत्तियों को ऐसा स्पष्ट देखता है जैसे शिल्पी अपने बनाये पदार्थ को निरखता है ॥३३॥

षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥३४॥

भावार्थः—(**षष्ट्याम्**) साठ [बहुत] (**शरत्सु**) बरसों में (**निधिपाः**) निधियों का रक्षक [मनुष्य] (**स्वः**) सुख की (**पक्वेन**) परिपक्व [ज्ञान] के साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अभि इच्छात्) सब ओर खोजे और (अभि) सब प्रकार (अश्नवातै) प्राप्त करे। (पितरः) पितर [रक्षक ज्ञानी] (च) और (पुत्राः) पुत्र [कष्ट से बचाने वाले लोग] (एनम्) इस [वीर] के (उप जीवान्) आश्रय से जीवते रहें, [हे परमेश्वर!] (एतम्) इस [वीर को] (अग्नेः) ज्ञान के (अन्तम्) अन्त [सीमा] (स्वर्गम्) सुख समाज में (गमय) पहुंचा ॥३४॥

भावार्थः—जो मनुष्य बड़े अभ्यास से परिपक्व ज्ञानी होकर मोक्षसुख पाता है, उस विद्वान् वीर पुरुष का सब विद्वान् लोग आश्रय लेते हैं, और वह परमेश्वर के अनुग्रह से सब का अग्रगामी होकर आनन्दित होता है ॥३४॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद आगे मन्त्र ४१ में है ॥

धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद् वासयातः पर्यग्निधानात् ॥३५॥

भाषार्थः [हे वीर!] तू (धर्ता) धर्ता [धारण करने वाला] होकर (पृथिव्याः) पृथिवी के (धरुणे) धारण में (ध्रियस्व) दृढ़ रह, (अच्युतम् त्वा) तुझ निश्चल को (देवताः) देवता [विद्वान् लोग] (च्यवयन्तु) सहन करें। (तम् त्वा) उस तुझको (जीवन्तौ) जीवते हुए [पुरुषार्थी] (जीवपुत्रौ) जीवते [पुरुषार्थी] पुत्रों वाले (दम्पती) दोनों पति पत्नी (परि) सब ओर से (अग्निधानात्) ज्ञान के आधार [होने के कारण] से (उत्) उत्कर्षता से (वासयातः) निवास करावें ॥३५॥

भावार्थः—जो विद्वान् पराक्रमी दृढ़स्वभाव पुरुष प्रजापालन में चतुर हो, विद्वान् लोग उसका आश्रय लेवें, और ऐसे पुत्र से माता पिता पुत्रवान् होकर उसको उच्च बनावें ॥३५॥

सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥३६॥

भाषार्थः—[हे वीर!] (सर्वान् लोकान्) सब लोकों को (अभिजित्य) भले प्रकार जीतकर (समागाः) तू आकर मिला है, (यावन्तः) जितनी (कामाः) कामनायें हैं, (तान्) उन सब को (सम्) यथावत् (अतीतृपः) तू ने तृप्त किया है। (आयवनम्) मन्थन दण्डी (च) और (दर्विः) चमचा [दोनों] (एकस्मिन् पात्रे) एक पात्र में (वि गाहेथाम्) डूबें [हे वीर!] (एनम्) इस [आत्मा] को (अधि) अधिकार पूर्वक (उत् हर) ऊंचा ले चल ॥३६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि सब विघ्नों को पार करके शुभ कामनाओं को पूरा करे और एक परमात्मा में वा जगत् की रक्षा में तत्पर होकर आत्मा की उन्नति करता रहे, जैसे एक बटलोही में शाक आदि को दण्डी से कूटकर सिद्ध करते और चमचे से निकालते हैं ॥३६॥

उप॑स्तृणीहि प्र॒थय॑ पु॒रस्ता॑द् घृ॒तेन॒ पात्र॑म॒भि घा॑रयै॒तत् ।
वा॒श्रेवो॒स्रा तरु॑णं स्तन॒स्युमि॒मं दे॒वासो॑ अ॒भिहिङ्कृ॑णोत ॥३७॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (एतत्) इस (पात्रम्) पात्र [योग्य पुरुष] को (उप स्तृणीहि) फैला, (पुरस्तात्) आगे को (प्रथय) प्रसिद्ध कर, और (घृतेन) सार पदार्थ [तत्त्वज्ञान] से (अभि) भले प्रकार (धारय) प्रकाशमान कर। (देवासः) हे विद्वानो ! (इमम्) इस [आत्मा] को (अभिहिङ्कृणोत) बहुत वृद्धि वाला करो, (इव) जैसे (वाश्रा) रंभाती हुई (उस्रा) गाय (तरुणम्) नवीन (स्तनस्युम्) थन चाहने वाले [बछड़े] को ॥३७॥

भावार्थः—आचार्य को उचित है कि सुयोग्य ब्रह्मचारियों को उत्तम विद्या देकर बढ़ावे, जैसे गौ नवोत्पन्न बच्चे को दूध से बढ़ाती है ॥३७॥

उपा॑स्तरी॒रक॑रो लो॒कमे॒तमु॒रुः प्र॑थताम॒समः॑ स्व॒र्गः ।
तस्मि॑ञ्छ्रयातै महि॒षः सु॑प॒र्णो दे॒वा ए॑नं दे॒वता॑भ्यः॒ प्र य॑च्छान् ॥३८॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] तू ने (एतम्) इस [पुरुष] को (उपअस्तरीः) बढ़ाया और (लोकम्) दर्शनीय (अकरः) बनाया है, (उरुः) विस्तृत (असमः) व्याकुलता रहित (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाला व्यवहार (प्रथताम्) बढ़े। (तस्मिन्) उस [सुख व्यवहार] में (महिषः) महान् (सुपर्णः) बड़ी पूर्ति वाला [वह पुरुष] (श्रयातै) आश्रय लेवे, (देवाः) विद्वान् लोग (एनम्) इस [सुख व्यवहार] को (देवताभ्यः) आनन्दों के लिये (प्र यच्छान्) देवें ॥३८॥

भावार्थः—विद्वानों का कर्तव्य है कि संसार में सुख के साधनों को फैलाकर सब को सुखी करके आप भी सुखी होवें ॥३८॥

यद्य॑ज्जा॒या पच॑ति॒ त्वत् परः॒परः पति॒र्वा जा॑ये॒ त्वत् ति॒रः ।
सं तत् सृ॑जेथां स॒ह वां तद॑स्तु संपा॒दय॑न्तौ स॒ह लो॒कमेक॑म् ॥३९॥

भाषार्थः—[हे पति !] (यद्यत्) जो कुछ [वस्तु] (जाया) पत्नी (त्वत्) तुझ से (परः परः) अलग अलग (पचति) पकाती है, (वा) अथवा, (जाये) हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी ! (पतिः) पति (त्वत्) तुझ से (तिरः) गुप्त गुप्त [कुछ पकाता है।] (एकम्) एक (लोकम्) घर को (सह) मिलकर (सम्पादयन्तौ) बनाते हुए तुम दोनों (तत्) उस [गृह कर्म] को (सं सृजेथाम्) मिलाओ, (तत्) वह [गृहकर्म] (वाम्) तुम दोनों का (सह) मिलकर (अस्तु) होवे ॥३९॥

भावार्थः— पति पत्नी परस्पर विरोध न करें, सदा एकमत होकर ही प्रसन्नता पूर्वक गृहाश्रम पूरा करें ॥३९॥

यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥४०॥

भावार्थः—(अस्याः) इस [पत्नी] के (यावन्तः) जितने (पुत्राः) पुत्र (पृथिवीम्) पृथिवी को (सचन्ते) सेवते हैं, और (ये) जो [पुत्र] (अस्मत् परि) हम से पृथक् (संबभूवुः) उत्पन्न हुए हैं। (तान् सर्वान्) उन सब को (पात्रे) रक्षणीय व्यवहार में (उप ह्वयेथाम्) तुम दोनों निकट बुलाओ, (नाभिम्) बन्धुधर्म (जानानाः) जानते हुए (शिशवः) वे बालक (समायान्) मिलकर चलें ॥४०॥

भावार्थः—चाहे कोई सन्तान विवाह विधि से वा नियोग विधि से उत्पन्न हों, वे सब दाय भाग में यथावत् भाग पावें ॥४०॥

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥४१॥

भावार्थः – (वसोः) श्रेष्ठ गुण की (याः धाराः) जो धारायें (मधुना) विज्ञान [मधुविद्या] से (प्रपीनाः) बढ़ी हुई और (घृतेन) सार [तत्त्वज्ञान] से (मिश्राः) मिली हुई (अमृतस्य) अमृत [मोक्ष सुख] की (नाभयः) नाभियें [मध्य-भाग] हैं। (ताः सर्वाः) उन सब [धाराओं] को (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाला [पुरुष] (अव रुन्धे) चौकसी से रख लेता है, और [उन को] (षष्ट्याम्) साठ [अनेक] (शरत्सु) बरसों में (निधिपाः) निधियों का रक्षक [मनुष्य] (अभि इच्छात्) खोजे ॥४१॥

भावार्थः श्रेष्ठ गुण संसार में ईश्वर के विज्ञान और सृष्टि के तत्त्व-ज्ञान से मनुष्य को बड़े प्रयत्न और बड़े अभ्यास से प्राप्त होते हैं ॥४१॥

इस मन्त्र का चौथा पाद ऊपर मन्त्र ३४ में आ चुका है ॥

निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु ये३'न्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ॥४२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः – (**निधिपाः**) निधियों का रक्षक [पुरुष] (**एनम्**) इस (**निधिम्**) निधि [अर्थात् मोक्ष] को (**अभि इच्छात्**) खोजे, (**ये**) जो (**अन्ये**) दूसरे [वेद-विरोधी] हैं, वे (**अभितः**) सब ओर से (**अनीश्वराः**) विना ऐश्वर्य (**सन्तु**) होवें। (**अस्माभिः**) हम [धर्मात्माओं] से (**दत्तः**) रक्षित, (**निहितः**) स्थापित (**स्वर्गः**) सुख पहुंचाने वाला [मनुष्य[(**त्रिभिः**) तीन [मानसिक, वाचिक और शारीरिक] (**काण्डैः**) कामना योग्य कर्मों से (**त्रीन्**) तीन [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधि-दैविक] (**स्वर्गान्**) स्वर्गों [सुख पहुंचाने वाले व्यवहारों] को (**अरुक्षत्**) ऊंचा चढ़ा है ॥४२॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वरनियमों पर चलकर ऐश्वर्य पाते हैं, अधर्मी लोग नहीं पाते, पहिले भी मनुष्यों ने मन, वाणी और शरीर के उत्तम उपयोगों से आध्यात्मिक आदि सुख पाये हैं ॥४२॥

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥४३॥

भाषार्थः—(**अग्निः**) अग्नि [समान तेजस्वी पुरुष] (**रक्षः**) उस राक्षस को (**तपतु**) जलावे (**यत्**) जो (**विदेवम्**) विरुद्ध व्यवहारी (**क्रव्यात्**) मांस खाने वाला है, (**पिशाचः**) पिशाच [मांस खाने वाला पुरुष] (**इह**) यहां पर (**मा प्र पास्त**) [जलादि] पान न करे। (**एनम्**) इस [पिशाच] को (**अस्मत्**) अपने से (**नुदामः**) हम हटाते हैं और (**अप रुध्मः**) निकाले देते हैं. (**आदित्याः**) आदित्य [अखण्ड ब्रह्म-चारी] (**अङ्गिरसः**) ऋषि लोग (**एनम्**) इस [तेजस्वी पुरुष] को (**सचन्ताम्**) मिलते रहें ॥४३॥

भावार्थः विद्वान् तेजस्वी पुरुष कलहकारी दुराचारियों को निकालें और महात्मा लोग विद्वान् का सहाय करें ॥४३॥

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥४४॥

भाषार्थः—(**आदित्येभ्यः**) अखण्डब्रह्मचारी (**अङ्गिरोभ्यः**) ऋषियों के लिये (**घृतेन**) सार [तत्त्वज्ञान] से (**मिश्रम्**) मिले हुए (**इदम्**) इस (**मधु**) विज्ञान [मधुविद्या] को (**प्रति वेदयामि**) मैं [ईश्वर[जताये देता हूं [हे पति पत्नी !] तुम दोनों (**शुद्धहस्तौ**) शुद्ध हाथों वाले और (**सुकृतौ**) सुकर्मी होकर (**ब्राह्मणस्य**, वेद वा ब्रह्माण्ड के स्वामी [परमेश्वर] के (**एतम्**) इस (**स्वर्गम्**) सुख पहुंचाने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार को (अनिहत्य) नष्ट न करके [सदा मानकर] (अपि इतम्] चलते चलो ॥४४॥

भावार्थः—परमेश्वर पूर्ण विदुषी स्त्रियों और पूर्ण विद्वान् पुरुषों को आज्ञा देता है कि वे सदा धर्मात्मा रहकर ईश्वर की आज्ञा मानें और उन्नति करते जावें ॥४४॥

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥४५॥

भावार्थः—(इदम्) यह (उत्तमम्) उत्तम (काण्डम्) कामना योग्य पद (अस्य) उस [समाज] का (प्र आपम्) मैं [ब्रह्मचारी] ने पाया है, (यस्मात्) जिस (लोकात्) समाज से (परमेष्ठी) बड़े ऊंचे पद वाले [ब्रह्मचारी] ने [उत्तम पद को] (समाप) पूरा पूरा पाया था। [हे आचार्य !] तू (घृतवत्) प्रकाश युक्त (सर्पिः) ज्ञान को (आ सिञ्च) सब ओर सींच और (सम्) ठीक ठीक (अङ्ग्धि) प्रकट कर, (अङ्गिरसः) विद्वान् [आचार्य] का (एषः) यह (भागः) सेवनीय व्यवहार (नः) हमारे लिये (इह) यहां [संसार में] [होवे] ॥४५॥

भावार्थः ब्रह्मचारिणी और ब्रह्मचारी पूर्व विद्यार्थियों के समान नियम पूर्वक विद्या का अभ्यास करें और आचार्य से विद्या के लिये प्रार्थना किया करें ॥४५॥

सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत् ॥४६॥

भावार्थः—(सत्याय) सत्य [यथार्थ कर्म करने] के लिये (च) और (तपसे) तप [ऐश्वर्य बढ़ाने] के लिये (देवताभ्यः) विजय चाहने वाले [ब्रह्मचारियों] को (एतम्) यह (शेवधिम्) सुखदायक (निधिम्) निधि [विद्याकोश] (परिदद्मः) हम [आचार्य लोग] सौंपते हैं। (नः) हमारा वह [निधि] (द्यूते) जुये में (मा अव गात्) न चला जावे और (मा) न (समित्याम्) संग्राम में और (मा स्म) न कभी वह [निधि] (अन्यस्मै) अन्य [अधर्मी] पुरुष को (मत्) मुझ [धर्मात्मा] से (पुरा) आगे होकर (उत् सृजत) छुट जावे ॥४६॥

भावार्थः—आचार्य ब्रह्मचारियों को उपदेश करे कि इस विद्याकोश को धर्म की वृद्धि के लिये हम तुम्हें देते हैं, हमारे उपदेश से विरुद्ध इस विद्यारत्न कोश को जुये आदि खोटे कामों में मत बिगाड़ो ॥४६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहं पंचाम्यहं दंदामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अंजनिष्ट पुत्रो३' न्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥४७॥

भाषार्थः—(**अहम्**) मैं [आचार्य] [विद्याकोश को मन्त्र ४६] (**पचामि**) पक्का [दृढ़] करता हूं, और (**अहम्**) मैं (**ददामि**) देता हूं, (**मम**) मेरी (**जाया**) पत्नी (**इत्**) भी (**उ**) निश्चय करके (**करुणे**) करुणायुक्त (**कर्मन्**) कर्म में (**अधि**) अधिकृत है। (**कौमारः**) उत्तम कुमारियों वाला और (**पुत्रः**) उत्तम पुत्रों वाला (**लोकः**) यह लोक (**अजनिष्ट**) हुआ है, [हे कुमारी कुमारो !] तुम दोनों (**उत्तरावत्**) अधिक उत्तम गुण वाला (**वयः**) जीवन (**अन्वारभेथाम्**) निरन्तर आरम्भ करो ॥४७॥

भावार्थः—आचार्य और आचार्याणी विद्या का उपदेश दृढ़ता से करें जिससे कुमारी और कुमार संसार में धर्म के उदाहरण बनकर सदा श्रेष्ठ जीवन बितावें ॥४७॥

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः समममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥४८॥

भाषार्थः—(**अत्र**) इस [हमारे समाज] में (**न**) न तो (**किल्बिषम्**) कोई दोष, (**न**) न (**आधारः**) गिर पड़ने का व्यवहार (**अस्ति**) है और (**न**) न [वह कर्म है] (**यत्**) जिससे (**मित्रैः**) मित्रों के साथ (**समममानः**) बहुत पीड़ा देने वाला व्यवहार (**एति**) चलता है। (**एतत्**) यह (**नः**) हमारा (**पात्रम्**) पात्र [हृदय] (**अनूनम्**) विना रीता [परिपूर्ण] (**निहितम्**) रक्खा हुआ है, (**पक्वः**) परिपक्व [दृढ़ बोध] (**पक्तारम्**) दृढ़ करने वाले पुरुष में (**पुनः**) निश्चय करके (**आ विशाति**) प्रवेश करेगा ॥४८॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने और अपने सम्बन्धियों के दोषों को हटाकर सब को उत्तम गुणी बनाता है, तब उनके हृदयों में परिपक्व ज्ञान प्रवेश करता है ॥४८॥

प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥४९॥

भाषार्थः—(**प्रियाणाम्**) अपने प्यारों का हम (**प्रियम्**) प्रिय [कर्म] (**कृणवाम**) करें (**ते**) वे [दुष्ट] (**तमः**) अन्धकार [कारागार] में (**यन्तु**) जावें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यतमे) जो कोई (द्विषन्ति) [हम से] वैर करते हैं। (धेनुः) दुर्बल गाय, (अनड्वान्) छकड़ा ले चलने वाला बैल और (आयत्) आता हुआ (वयोवयः) प्रत्येक अन्न (एव) निश्चय करके (पौरुषेयम्) पुरुष की (मृत्युम्) मृत्यु को (अप नुदन्तु) ढकेल देवें ॥४९॥

भावार्थः—धर्मात्मा लोग धर्मात्मा हितकारियों से प्रिय व्यवहार करें और दुष्टों को कष्ट देते रहें, जिससे गौ, बैल, अन्न आदि आवश्यक पदार्थ बढ़कर संसार की वृद्धि करें ॥४९॥

सम॒ग्नयो॑ विदुर॒न्यो अ॒न्यं य ओष॑धीः॒ सच॑ते॒ यश्च॒ सिन्धू॑न् ।
याव॑न्तो दे॒वा दि॒व्या३॒॑तप॑न्ति॒ हिर॑ण्यं॒ ज्योति॑ः॒ पच॑तो बभूव ॥५०॥

भाषार्थः—(अग्नयः) सब आग [के ताप] (अन्यो अन्यम्) परस्पर (सं विदुः) मिलते हैं, (यः) जो [ताप] (ओषधीः) ओषधियों [अन्न सोमलता आदि] को (च) और (यः) जो (सिन्धून्) [पृथिवी और अन्तरिक्ष के] समुद्रों को (सचते) सेवता है। (यावन्तः) जितने (देवाः) चमकते हुए लोक (दिवि) आकाश में (आतपन्ति) सब ओर तपते हैं, [वैसे ही] (पचतः) सब के परिपक्व करने वाले वा विस्तारक [परमेश्वर] के (हिरण्यम्) कमनीय प्रकाश ने (ज्योतिः) [प्रत्येक] ज्योति में (बभूव) मेल किया है ॥५०॥

भावार्थः—जैसे भौतिक अग्नि, बिजुली आदि के रूप से सब पदार्थों और सब लोकों को सहारता और चमकाता है, वैसे ही जगत्स्रष्टा परमात्मा प्रत्येक अग्नि आदि को सहारता और चमकाता है ॥५०॥

ए॒षा त्व॒चां पुरु॑षे॒ सं ब॑भूवान॒ग्नाः सर्वे॑ प॒शवो॒ ये अ॒न्ये ।
क्ष॒त्रेणा॒त्मानं॒ परि॑ धापयाथोऽमो॒तं वासो॒ मुख॑मोद॒नस्य॑ ॥५१॥

भाषार्थः—(त्वचाम्) त्वचाओं [शरीर की खालों] में से (एषा) यह (पुरुषे) पुरुष [शरीर] पर (सम् बभूव) मिली है, और (ये) जो (अन्ये) दूसरे (पशवः) जीव हैं, (सर्वे) वे सब [भी] (अनग्नाः) विना नंगे [खाल वाले] हैं। [हे स्त्री पुरुषो!] तुम दोनों (क्षत्रेण) हानि से बचाने वाले बल से (आत्मानम्) अपने को (परि धापयाथः) ढंपवाओ, [जैसे] (अमोतम्) ज्ञान से बुना हुआ (वासः) कपड़ा (ओदनस्य) अन्न आदि का (मुखम्) मुख्य [रक्षासाधन] है ॥५१॥

भावार्थः—मनुष्यों में मनुष्य शरीर और अन्य जीवों में अन्य प्रकार के शरीर व्यक्ति सूचक हैं, किन्तु मनुष्य ही परमात्मा के ज्ञान से मनुष्यत्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकर उन्नति करते हैं, जैसे समझ बूझकर बनाया हुआ वस्त्र पदार्थों के रखने में समर्थ होता है ॥५१॥

यद॒क्षेषु॑ व॒दा यत् समि॑त्यां॒ यद्वा॒ वदा॒ अनृ॑तं वित्तका॒म्या ।
स॒मा॒नं तन्तु॑म॒भि सं॒वसा॑नौ॒ तस्मि॒न्त्सर्वं॒ शम॑लं सादयाथः ॥५२॥

भाषार्थः—[हे स्त्री वा पुरुष !] (यत्) जो कुछ [झूठ] (अक्षेषु) अभियोगों [राजगृह के विवादों] में, [अथवा] (यत्) जो कुछ [झूठ] (समित्याम्) संग्राम में (वदाः) तू बोले, (वा) अथवा (यत्) जो कुछ (अनृतम्) झूठ (वित्तकाम्या) धन की कामना से (वदाः) तू बोले। (समानम्) एक ही (तन्तुम् अभि) तन्तु [वस्त्र] में (संवसानौ) ढके हुए तुम दोनों [स्त्री पुरुषो] (तस्मिन्) उस [झूठ] में (सर्वम्) सब (शमलम्) भ्रष्ट कर्म को (सादयाथः) स्थापित करोगे ॥५२॥

भावार्थः– सब स्त्री पुरुषों को योग्य है कि एक दूसरे को अपने सदृश समझ कर कठिन से कठिन आपत्ति में भी असत्य न बोलें, असत्य ही सब पापों का मूल है ॥५२॥

व॒र्षं व॑नु॒ष्वापि॑ गच्छ दे॒वांस्त्व॒चो धू॒मं पर्यु॒त्पा॑तयासि ।
वि॒श्वव्य॑चा घृ॒तपृ॑ष्ठो भवि॒ष्यन्त्सयो॑निर्लो॒कमुप॑ या॒ह्येत॒म् ॥५३॥

भाषार्थः—[हे पुरुष !] तू (वर्षम्) वरणीय [श्रेष्ठ] कर्म का (वनुष्व) सेवन कर, (देवान्) कामना योग्य गुणों को (अपि) अवश्य (गच्छ) प्राप्त हो, (त्वचः) अपनी खाल [देह] से (धूमम्) धुयें [मैल] को (परि) सब ओर (उत् पातयासि) उड़ा दे। (विश्वव्यचाः) सब व्यवहारों में फैला हुआ, (घृतपृष्ठः) प्रकाश से सींचता हुआ और (सयोनिः) समान घर वाला (भविष्यन्) भविष्यत् में होता हुआ तू (एतम्) इस (लोकम्) लोक [व्यवहार मण्डल] में (उप याहि) पहुंच ॥५३॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष शुभ कर्म और शुभ गुणों को प्राप्त होकर अज्ञान को दूर फेंकें, जैसे प्रकाश के बल से धुआं इतर बितर हो जाता है। और वे ज्ञानी पुरुष संसार के सब काम साधने में साधु होवें ॥५३॥

इस मन्त्र का दूसरा भाग ऊपर मन्त्र १९ में आचुका है ॥

तन्वं॑ स्व॒र्गो ब॑हु॒धा वि च॑क्रे॒ यथा॑ वि॒द आ॒त्मन्न॒न्यव॑र्णाम् । अपा॑जैत्
कृ॒ष्णां रुश॑तीं पुना॒नो या लोहि॑नी॒ तां ते॑ अ॒ग्नौ जु॑होमि ॥५४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**स्वर्गः**) सुख पहुंचाने वाले [परमेश्वर] ने (**तन्वम्**) इस फैलावट [सृष्टि] को (**बहुधा**) बहुत प्रकार से (**वि**) विशेष करके (**चक्रे**) बनाया है, (**यथा**) जैसा (**आत्मन्**) परमात्मा के भीतर (**अन्यवर्णाम्**) भिन्नवर्ण [रूप] वाली [सृष्टि] को (**विदे**) मैं पाता हूं। (**कृष्णाम्**) काली [अन्धकार युक्त] (**रुशतीम्**) कष्ट देने वाली [फैलावट] को (**पुनानः**) शुद्ध करने वाले [परमेश्वर] ने (**अप अजैत्**) जीत लिया है, (**या**) जो (**लोहिनी**) लोहमयी [कठोर फैलावट] है, (**ताम्**) उस [फैलावट] को (**ते**) तेरे (**अग्नौ**) ज्ञान पर (**जुहोमि**) मैं छोड़ता हूँ ॥५४॥

भावार्थः—परमात्मा ने विविध सृष्टि को हमारे सुख के लिये रच-कर अपने वश में रक्खा है और सब रुकावटों को हटाया है मनुष्यों को जितना जितना ज्ञान होता जाता है, उतना उतना ही वह परमेश्वर पर विश्वास करता है ॥५४॥

प्राच्यै त्वा दिशे३ऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते। एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः। दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५५॥

भाषार्थः—(**प्राच्यै दिशे**) पूर्व वा सन्मुख वाली दिशा में जाने के निमित्त (**अग्नये**) ज्ञानस्वरूप, (**अधिपतये**) अधिष्ठाता, (**असिताय**) बन्धन रहित, (**रक्षित्रे**) रक्षक परमेश्वर को (**इषुमते**) बाण वाले (वा हिंसा वाले] (**आदित्याय**) सूर्य के [ताप] रोकने के लिये (**एतम्**) इस (**त्वा**) तुझे [जीवात्मा को] (**परिदद्मः**) हम सौंपते हैं। (**तम्**) उस [जीवात्मा] को (**नः**) हमारे अर्थ, (**अस्माकम्**) हमारी (**ऐतोः**) सब ओर गति के लिये (**आ**) सब ओर से (**गोपायत**) तुम [विद्वानो] बचाओ। वह [परमेश्वर] (**नः**) हमें (**अत्र**) यहां [संसार में] (**दिष्टम्**) नियत कर्म की ओर (**जरसे**) स्तुति के लिये (**नि नेषत्**) ले ही चले। और (**जरा**) स्तुति [ही] (**नः**) हमें (**मृत्यवे**) मृत्यु को (**परि ददातु**) सौंपे [अर्थात् हम स्तुति के साथ मरें]। (**अथ**) सो (**पक्वेन सह**) परिपक्व [दृढ़] स्वभाव वाले परमात्मा के साथ (**सं भवेम**) हम समर्थ होवें ॥५५॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि पूर्व वा सन्मुख वाली तथा दूसरी दिशाओं में चलते हुए वे उस सर्वज्ञ, सर्वस्वामी, सर्वरक्षक परमात्मा को ध्यान में रखकर विद्वानों के सत्संग से अपनी गति बढ़ावें और वेद-विहित कर्म करके संसार में कीर्तिमान् होवें और प्रयत्न करके कीर्ति के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही वे शरीर को छोड़ें। यही प्रार्थना परमात्मा से सदा करते रहें। यही भावार्थ अगले मन्त्रों में लगा लें ॥५५॥

मन्त्र ५५–६० के प्रथम भागों का मिलान – अथर्व० का ३ सू० २७ म० १ – ६ प्रथम भागों से यथाक्रम करें (अथ पक्वेन...) अन्तिम भाग अथर्व० ६। ११९। २ के अन्त में आया है॥

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते। एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः। दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५६॥

भाषार्थः—(दक्षिणायै दिशे) दक्षिण वा दाहिनी दिशाओं में जाने के निमित्त (इन्द्राय) पूर्ण ऐश्वर्य वाले, (अधिपतये) अधिष्ठाता, (तिरश्चि—राजये) तिरछे चलने वाले [कीट पतङ्ग बिच्छू आदि] की पंक्ति हटाने के अर्थ (रक्षित्रे) रक्षक परमेश्वर को (इषुमते) बाण वाले [वा हिंसा वाले] (यमाय) मृत्यु के रोकने के लिये (एतम्) इस (त्वा) तुझे [जीवात्मा को]...[मन्त्र ५५] ॥५६॥

भावार्थः—मन्त्र ५५ देखो ॥५६॥

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते। एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः। दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५७॥

भाषार्थः—(प्रतीच्यै दिशे) पश्चिम वा पीछे वाली दिशा में जाने के निमित्त (वरुणाय) सब में उत्तम, (अधिपतये) अधिष्ठाता, (पृदाकवे) बड़े बड़े अजगर सर्प आदि [विषधारी प्राणियों] के समूह हटाने के अर्थ (रक्षित्रे) रक्षा करने वाले परमेश्वर को (इषुमते) बाण वाले [वा हिंसा वाले] (अन्नाय) अन्न रोकने के लिये (एतम्) इस (त्वा) तुझे [जीवात्मा को]...[म० ५५] ॥५७॥

भावार्थः मन्त्र ५५ देखो ॥५७॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै। एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः। दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(उदीच्यै दिशे) उत्तर वा बाईं दिशा में जाने के निमित्त (सोमाय) सब जगत् के उत्पन्न करने वाले, (अधिपतये) अधिष्ठाता, (स्वजाय) अच्छे प्रकार अजन्मे [अथवा सब में चिपटे हुए] (रक्षित्रे) रक्षक परमेश्वर को (इषुमत्यै) तीरवाली [वा हिंसावाली] (अशन्यै) बिजुली हटाने के लिये (एतम्) इस (त्वा) तुझे [जीवात्मा को]···[मन्त्र ५५] ॥५८॥

भावार्थः—मन्त्र ५५ देखो ॥५८॥

ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५९॥

भाषार्थः—(ध्रुवायै दिशे) नीचे वाली दिशा में जाने के निमित्त (विष्णवे) सर्वव्यापक, (अधिपतये) अधिष्ठाता, (कल्माषग्रीवाय) हरित रंग वाले [वृक्ष आदि] की ग्रीवा वाले, [रक्षित्रे] रक्षक परमेश्वर को (इषुमतीभ्यः) बाण वाली [विषैली] (ओषधीभ्यः) ओषधियों के हटाने के लिये (एतम्) इस (त्वा) तुझे [जीवात्मा को]···[मन्त्र ५५] ॥५९॥

भावार्थः—मन्त्र ५५ देखो ॥५९॥

ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥६०॥

भाषार्थः—(ऊर्ध्वायै दिशे) ऊपर वाली दिशा में जाने के निमित्त (बृहस्पतये) बड़ी वाणी अर्थात् वेदशास्त्र और बड़े आकाश आदि के स्वामी, (अधिपतये) अधिष्ठाता, (श्वित्राय) ज्ञानमय (रक्षित्रे) रक्षा करने वाले परमेश्वर को (इषुमते) बाण वाली [वा हिंसा वाली] (वर्षाय) बरसा रोकने के लिये (एतम्) इस (त्वा) तुझे [जीवात्मा को] (परि दद्मः) हम सौंपते हैं···[मन्त्र ५५] ॥६०॥

भावार्थः—मन्त्र ५५ देखो ॥६०॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥४॥

१—५३ ॥ वशा देवता ॥ १—६, ८—१३, १७—१६, २१—२३, २६—३१, ३३, ३६—३८, ४०, ४१, ४५, ४८, ५१—५३ अनुष्टुप्; ७, ३२, ३४, ३६, ४२—४४, ४६, ४७ भुरिगनुष्टुप्; १४, १५, २०, २४, ४६; निचृदनुष्टुप्; १६, ५० विराडनुष्टुप्; ३५ निचृदार्च्यनुष्टुप् छन्दः ॥

वेदवाणीप्रकाशनसद्गुणोपदेशः—वेद वाणी के प्रकाश करने के श्रेष्ठ गुणों का उपदेश ॥

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचंद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥१॥

भाषार्थः—"(वशाम्) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (याचद्भ्यः) मांगने वाले (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्माओं [वेद जिज्ञासुओं] को (ददामि) मैं देता हूँ, (च) निश्चय करके (एनाम्) इस [वेदवाणी] को (अनु) ध्यान देकर (अभुत्सत) उन [पूर्व ऋषियों] ने जाना है, (तत्) यह [विद्यादान] (प्रजावत्) श्रेष्ठ प्रजाओं वाला [और] (अपत्यवत्) उत्तम सन्तानों वाला है"—(इति) बस (एव) ऐसा (ब्रूयात्) वह [आचार्य] कहे ॥१॥

भावार्थः—आचार्य अधिकारी ब्रह्मचारियों को निश्चय करावे कि पूर्व ऋषियों ने वेद को मनन करके माना है कि वेदविद्या के अभ्यास से संसार के सब मनुष्य और सन्तान उत्तम होते हैं, उसी का उपदेश तुम को मैं करता हूँ ॥१॥

इस वशा सूक्त का मिलान—अथर्व० का० १० सू० १० [वशा सूक्त] से करो ॥

प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचंद्भ्यो देवानां गां न दित्संति ॥२॥

भाषार्थः—(सः) वह पुरुष (प्रजया) अपने सन्तान [पुत्र पुत्री आदि] के साथ (वि क्रीणीते) बिक जाता है (च) और (पशुभिः) अपने पशुओं [गाय घोड़े आदि] के साथ (उप दस्यति) नष्ट हो जाता है। (यः) जो पुरुष (याचद्भ्यः) मांगते हुए (आर्षेयेभ्यः) ऋषि सन्तानों को (देवानाम्) विजय चाहने वालों के बीच (गाम्) वेद वाणी (न) नहीं (दित्सति) देना चाहता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो विद्वान् विद्वानों के बीच जिज्ञासुओं को वेदविद्या नहीं देता, वह निर्धन होकर अपने आप और उसके सन्तान पराधीन होकर कष्ट सहते हैं ॥२॥

इस मन्त्र का दूसरा आधा भाग आगे मन्त्र १२ में आया है ॥

कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणयां काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥३॥

भाषार्थः—(कूटया) [वेद वाणी के] नहीं देने से (अस्य) उस पुरुष के (गृहाः) घर (सं शीर्यन्ते) सर्वथा नष्ट किये जाते हैं, और (बण्डया) ढक देने से (दह्यन्ते) जलाये जाते हैं, (श्लोणया) बटोर रखने से (काटम्) अपनी प्रसिद्धता को (अर्दति) वह नष्ट करता है, और (काणया) मूद रखने से (स्वम्) [उसका] सर्वस्व (दीयते) घट जाता है ॥३॥

भावार्थः—वेदवाणी के उपदेश और प्रचार के विना मनुष्य तनक्षीण, मनमलीन और धनहीन होकर महाकष्ट पाते हैं ॥३॥

विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्यु१च्यसे ॥४॥

भाषार्थः—(अधिष्ठानात्) [ब्रह्मचर्य के] प्रभाव से (विलोहितः) विविध उगा हुआ, (शक्नः) शक्तिमान् पुरुष (गोपतिम्) पृथिवी की पालने वाली [वेद वाणी] को (विन्दति) पाता है। (तथा) वैसा ही (वशायाः) वशा [वश में करने वाली वा कामना योग्य वेदवाणी] का (संविद्यम्) जानने योग्य नाम है—"(हि) क्योंकि (दुरदभ्ना) कभी भी न दबने वाली (उच्यसे) तू कही जाती है" ॥४॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मनुष्य उच्च होकर वेदवाणी जानकर पृथिवी की रक्षा कर सकता है, इसी से उसका नाम (वशा) वश में करने वाली है ॥४॥

पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥५॥

भाषार्थः—(अस्याः) इस [वेदवाणी] के (पदोः) स्थिर वा पाने योग्य (अधिष्ठानात्) प्रभाव से (विक्लिन्दुः) विगत शोक मनुष्य (नाम) नाम [बड़ाई] (विन्दति) पाता है। [वेदवाणी के] (अनामनात्) यथावत् न विचारने से वे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्रजायें, मनुष्य] (सं शीर्यन्ते) सर्वथा नष्ट किये जाते हैं, (याः) जो [प्रजाजन] (मुखेन) मुख से [उस को] (उपजिघ्रति) तुच्छपन के साथ ग्रहण करते हैं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि वेदवाणी के विचार से प्रधानता पाकर क्लेशों से छूटकर सुख भोगें। जो वेदवाणी को विना विचारे दिखावे के लिये रटते हैं वे कष्ट पाते हैं ॥५॥

यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्मं कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥६॥

भाषार्थः—(यः) जो मनुष्य (अस्याः) इस [वेदवाणी] के (कर्णौ) दो विज्ञानों [अभ्युदय और निःश्रेयस अर्थात् तत्त्वज्ञान और मोक्षज्ञान] को (आस्कुनोति) ढक देता है, (सः) वह (देवेषु) स्तुति योग्य गुणों में (आ) सब ओर से (वृश्चते) कतर जाता है। "(लक्ष्म) प्रधान कर्म (कुर्वे) मैं करता हूं"–(इति) ऐसा [जो] (मन्यते) मानता है, वह [पुरुष] (स्वम्) अपना सर्वस्व (कनीयः) अधिक थोड़ा (कृणुते) करता है ॥६॥

भावार्थः—जो नास्तिक पाखण्डी मनुष्य वेदवाणी के तत्त्वज्ञान और मोक्षज्ञान को न मानकर आडम्बर रचता है, वह तुच्छ हो जाता है ॥६॥

यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति ।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥७॥

भाषार्थः—(यत्) यदि (कस्मैचित्) किसी ही (भोगाय) कुटिलता के लिये (अस्याः) इस [वेदवाणी] के (बालान्) बलों को (कश्चित्) कोई पुरुष (प्रकृन्तति) कतर लेता है। (ततः) उस [कुटिलता] से (किशोराः) किशोर [तरुण अवस्था वाले] (म्रियन्ते) मर जाते हैं, (च) और (वृकः) वह भेड़िया [समान हिंसक] (वत्सान् घातुकः) [बोलते हुए] बच्चों का हत्यारा [होता है] ॥७॥

भावार्थः—जो कुटिल कुचाली मनुष्य पवित्र वेदवाणी को चोरी, डकैती, व्यभिचार आदि कुनीति में लगाता है, वह अपने प्रिय सम्बन्धियों को भी मारकर नरक में पड़ता है ॥७॥

यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) यदि (गोपतौ) वेदवाणी के रक्षक [ब्रह्मचारी] में (सत्याः) वर्तमान (अस्याः) इस [वेदवाणी] के (लोम) गमन को (ध्वाङ्क्षः) कांव कांव करने वाले [कौवे समान दुष्ट मनुष्य] ने (अजीहिडत्) तुच्छ माना है। (ततः) उस कारण से (कुमाराः) कुमार [शत्रुमारक बालक] (म्रियन्ते) मर जाते हैं, और (अनामनात्) यथावत् न विचारने से [उस कुमार्गी को] (यक्ष्मः) राजरोग (विन्दति) पकड़ लेता है ॥८॥

भावार्थः—जब कुकर्मी मनुष्य सर्वरक्षक वेद आज्ञा से उलटा चलता है, वह आप और उसके बच्चे आदि महा विपत्ति में पड़ते हैं ॥८॥

यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति ।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥९॥

भाषार्थः—(यत्) यदि (अस्याः) इस [वेदवाणी] के (शकृत्) शक्ति वाले (पल्पूलनम्) ज्ञान समूह को (दासी) हिंसक प्रजा [स्त्री वा पुरुष] (समस्यति) फेंक देती है। (ततः) तो (तस्मात् एनसः) उस पाप से [उस पापी को] (अव्येष्यत्) न दूर होने वाला (अपरूपम्) कुरूप [कलङ्क का टीका] (जायते) हो जाता है ॥९॥

भावार्थः—जब कोई दुराचारी वेद आज्ञा न मानकर भारी पाप कर बैठता है, तो उसका सारा जीवन कलङ्कित हो जाता है ॥९॥

जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥१०॥

भाषार्थः—(जायमाना) प्रकट होती हुई (वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (सब्राह्मणान्) ब्राह्मणों [वेद जिज्ञासुओं] सहित (देवान् प्रति) विजय चाहने वालों को (जायते) प्रकट होती है। (तस्मात्) इसलिये (एषा) यह [वेदवाणी] (ब्रह्मभ्यः) वेद जिज्ञासुओं को (देया) देनी चाहिये, (तत्) उस [कर्म] को (स्वस्य) सर्वस्व का (गोपनम्) रक्षण (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं ॥१०॥

भावार्थः—परोपकारी ब्रह्मजिज्ञासु शूर पराक्रमी वेदवाणी को प्राप्त करके संसार का सुधार करते हैं, वैदिक उपदेश से सब के सर्वस्व की रक्षा होती है ॥१०॥

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जो पुरुष (वनिम्) सेवनीय (एनाम्) इस [वेदवाणी] को (आयन्ति) प्राप्त करते हैं, (वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (तेषाम्) उनकी (देवकृता) विजय इच्छा सिद्ध करने वाली है। (तत्) यह [वचन] (ब्रह्मज्येयम्) ब्रह्माओं [वेद वेत्ताओं] के हानि करने योग्य [पुरुष] से (अब्रुवन्) उन [विद्वानों] ने कहा है, (यः) जो (एनाम्) इस [वेदवाणी] को (निप्रियायते) तुच्छपन से प्रिय सा मानता है ॥११॥

भावार्थः—जो ब्रह्मचारी श्रम करके वेद विद्या प्राप्त करते हैं, वे विजयी होते हैं, और दम्भी पाखण्डी पण्डित मन्यमानी मनुष्य को विद्वान् लोग त्याग देते हैं, ऐसा निश्चय करना चाहिये ॥११॥

य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥१२॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (याचद्भ्यः) मांगते हुए (आर्षेयेभ्यः) ऋषि सन्तानों को (देवानाम्) विजय चाहने वालों के बीच (गाम्) वेदवाणी (न) नहीं (दित्सति) देना चाहता है। (सः) वह (देवेषु) स्तुति योग्य गुणों में (आ) सब ओर से (वृश्चते) कट जाता है, (च) और (ब्राह्मणानाम्) ब्राह्मणों [वेद ज्ञानियों] के (मन्यवे) क्रोध के लिये [होता है] ॥१२॥

भावार्थः—जो मनुष्य योग्य ब्रह्मचारियों को वेदवाणी देने में बाधा डालता है, वह अपने शुभ गुणों में हेटा होकर विद्वानों के बीच अनादर पाता है ॥१२॥

इस मन्त्र का प्रथम आधा भाग ऊपर मन्त्र २ में आचुका है ॥

यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥१३॥

भाषार्थः—(यः) जो मनुष्य (अस्य) अपनी (वशाभोगः) वेदवाणी का सुख पाने वाला (स्यात्) होना चाहे, (तर्हि) तब (सः) वह (अन्याम्) जीवन देने वाली [वेदवाणी] को (इच्छेत) चाहे। (अदत्ता) न दी हुई [वेदवाणी] (पुरुषम्) [उस] पुरुष को (च) अवश्य (हिंस्ते) मार डालती है, [जो] (याचिताम्) मांगी हुई [वेदवाणी] को (न) नहीं (दित्सति) देना चाहता है ॥१३॥

भावार्थः—वेद विज्ञान को प्रीति से खोजता हुआ और प्रकाश करता हुआ मनुष्य सुख भोगता है, और जो उसकी प्रवृत्ति को रोकता है, वह आत्मा को संकुचित करने से दुःख पाता है ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ।१४।।

भाषार्थः—(यथा) जैसे (निहितः) नियम से रक्खा हुआ (शेवधिः) निधि [सुखदायक पदार्थ] होता है, (तथा) वैसे ही (वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (ब्राह्मणानाम्) ब्राह्मणों [वेद ज्ञानियों] की है। (एतत्) इसीलिये (ताम्) उस [वेदवाणी] को (अच्छ—आयन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं, (यस्मिन् कस्मिन् च) चाहे जिस किसी में (जायते) वह होवे ।।१४।।

भावार्थः—यह वेदवाणी ईश्वर ने वेदवेत्ताओं को संसार के सुख के लिये निधि के समान सौंपी है। मनुष्य उसको वेद द्वारा परमाणु से लेकर ईश्वर पर्यन्त खोजकर प्राप्त करें ।।१४।।

स्वमेतदच्छायन्ति तद् वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ।१५।।

भाषार्थः—(ब्राह्मणाः) ब्राह्मण [ब्रह्मचारी लोग] (वशाम्) वशा [कामना-योग्य वेदवाणी] को (अभि) सब ओर से (अच्छ—आयन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं, (यत्) क्योंकि (एतत्) यह (स्वम्) [उनका] सर्वस्व है, [और] (यथा) क्योंकि (एनान्) इन [ब्रह्मचारियों] को (अन्यस्मिन्) भिन्नकर्म [अधर्म] में (जिनीयात्) मनुष्य हानि करे, [वह] (अस्याः) इस [वेदवाणी] का (निरोधनम्) रोक देना (एव) ही है ।।१५।।

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानियों का धर्म है कि वेदवाणी को ही अपना कोश समझकर प्राप्त करें और प्रकाश करें और जो पुरुष अधर्म के कारण उसको रोकते हैं वे आत्मघाती होने से नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।।१५।।

चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ।।१६।।

भाषार्थः—(अविज्ञातगदा) नहीं जाना गया है दोष जिसमें ऐसी [निर्दोष], (सती) सद्‌गुणों वाली [वेदवाणी] (आ त्रैहायणात्) तीन उद्योगों [परमेश्वर के कर्म, उपासना, ज्ञान] तक (एव) अवश्य (चरेत्) विचरती रहे। (नारद) हे नारद ! [नीति, यथार्थ ज्ञान, देने वाले विद्वान्] (वशाम्) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] को (च) निश्चय करके (विद्यात्) [मनुष्य] जाने, (तर्हि) तब (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण [पूरे वेद ज्ञाता लोग] (एष्याः) ढूंढने योग्य हैं ।।१६।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः - वेदवाणी सर्वथा निर्दोष और श्रेष्ठगुण वाली है, मनुष्य पूर्ण विद्वानों द्वारा उसको प्राप्त करके ईश्वर के कर्म, उपासना और ज्ञान से अपनी उन्नति करे ॥१६॥

य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥१७॥

भाषार्थः—**(यः)** जो [मूर्ख] **(देवानाम्)** विजय चाहने वालों के **(निहितम्)** नियम से रक्खे हुए **(निधिम्)** निधि, **(एनाम्)** इस [वेदवाणी] को **(अवशाम्)** नहीं कामना योग्य [वा असमर्थ] **(आह)** बताता है। **(तस्मै)** उस [पुरुष] के लिये **(उभौ)** दोनों **(भवाशर्वौ)** भव [सुख देने वाला प्राण] और शर्व [दोष मिटाने वाला अपान वायु] **(परिक्रम्य)** घूम घूमकर **(इषुम्)** तीर [अर्थात् पीड़ा] **(अस्यतः)** फेंकते हैं ॥१७॥

भावार्थः—जो मनुष्य वेदवाणी के गुण न जानकर अपने आत्मा को दूषित करता है, श्वास प्रश्वास की असावधानी से उसकी शारीरिक अवस्था भी बिगड़ जाती है ॥१७॥

यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥१८॥

भाषार्थः—**(यः)** जो [विद्वान्] **(अस्याः)** इस [वेदवाणी] के **(ऊधः)** सींचने को, **(अथो उत)** और भी **(अस्याः)** इसके **(स्तनान्)** गर्जनशब्दों [बड़े उपदेशों] को **(न)** अब [विद्या प्राप्त करके] **(वेद)** जानता है। वह [वेदवाणी] **(उभयेन)** दोनों [इस लोक और परलोक के सुख] से **(एव)** ही **(अस्मै)** इस [ब्रह्मज्ञानी] को **(दुहे)** भर देती है, **(च, इत=चेत्)** जो **(वशाम्)** वशा [कामना-योग्य वेदवाणी] **(दातुम् अशकत्)** दे सका है ॥१८॥

भावार्थः - जब मनुष्य वेदों के पवित्र लाभों और उपदेशों को समझ लेता है और संसार में प्रकाश करता है, वह इस जन्म और दूसरे जन्म का आनन्द पाता है ॥१८॥

दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥१९॥

भाषार्थः—**(दुरदभ्ना)** कभी न दबने वाली [वह वेदवाणी **(एनम्)** इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[मनुष्य] पर (आ शये) आ पड़ती है, (च) यदि वह (याचिताम् मांगी हुई [वेदवाणी] को (न) नहीं (दित्सति) देना चाहता है। (अस्मै) इस [मनुष्य] के लिये (कामाः) वे कामनायें (न) नहीं (सम् ऋध्यन्ते) सिद्ध होती हैं, [जिन कामनाओं को] (याम् अदत्त्वा) जिस [वेदवाणी] के न देने पर (चिकीर्षति) पूरा करना चाहता है ॥१९॥

भावार्थः—वेदवाणी के प्रसिद्ध करने में जो लोग बाधा डालते हैं, उनकी कामनायें कभी पूरी नहीं होती हैं॥१९॥

देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामदद्द्धेडं न्येति मानुषः ॥२० ।

भाषार्थः—(देवाः) विजय चाहने वालों ने (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञानी] को (मुखम्) मुख [मुखिया] (कृत्वा) बनाकर (वशाम्) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] को (अयाचन्) मांगा है। (अददत्) [वेदवाणी] न देता हुआ (मानुषः) मनुष्य (तेषां सर्वेषाम्) उन सब [विद्वानों] के (हेडम्) क्रोध को (नि) निश्चय करके (एति) पाता है ॥२०॥

भावार्थः—सब मनुष्य विजय पाने के लिये निर्भय पूर्ण विद्वान् द्वारा वेदों का उपदेश चाहते हैं, इस लिये उसके बाधक को सब विद्वान् धिक्कारते हैं ॥२०॥

हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥२१॥

भाषार्थः—(ब्राह्मणेभ्यः) ब्राह्मणों [ब्रह्मचारियों] को (वशाम्) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (अददत्) न देता हुआ पुरुष (पशूनाम्) सब प्राणियों का (हेडम्) क्रोध (नि) निश्चय करके (एति) पाता है। (च इत्=चेत्) यदि (मर्त्यः) मनुष्य (देवानाम्) विजय चाहने वालों के (निहितम्। नियम से रक्खे हुए (भागम्) ऐश्वर्यों के समूह [वेदवाणी] को (निप्रियायते) ओछेपन से प्रिय सा मानता है ॥२१॥

भावार्थः - जो मनुष्य संकुचित मन होकर वेदवाणी के प्रकाश करने में विघ्न डालता है, वह सब ही प्राणियों का शत्रु होता है ॥२१॥

यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) यदि (ब्राह्मणाः=ब्राह्मणेभ्यः) ब्राह्मणों [ब्रह्मचारियों] से (अन्ये) दूसरे [निर्बलेन्द्रिय] (शतम्) सौ [पुरुष] (गोपतिम्) पृथिवी की पालने वाली (वशाम्) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] को (याचेयुः) मांगें। (अथ) तौ (देवाः) देवताओं [विद्वानों] ने (एनाम्) इस [वेदवाणी] को (अब्रुवन्) बताया है—"(एवम्) इस प्रकार [पूरे पूरे] (विदुषः) विद्वान् की (ह) ही (वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] है" ॥२२॥

भावार्थः—दुर्बलेन्द्रिय अश्रद्धालु मनुष्य सैकड़ों मिल कर भी वेदवाणी से उपकार नहीं कर सकते, परन्तु पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी अकेला ही संसार भर को लाभ पहुंचाता है ॥२२॥

य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम्।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥२३॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (एवम्) इस प्रकार (विदुषे) विद्वान् को (अदत्त्वा) न देकर (अथ) फिर (अन्येभ्यः) दूसरों [दुर्बलेन्द्रियों] को (वशाम्) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (ददत्) देता हुआ है। (तस्मै) उस पुरुष के लिये (अधिष्ठाने) प्रभाव के बीच (सहदेवता) देवताओं विद्वानों सहित (पृथिवी) पृथिवी (दुर्गा) दुर्गम [कठिन] होती है ॥२३॥

भावार्थः—जो पुरुष अधिकारी ब्रह्मचारियों का अनादर करके दुर्बलेन्द्रिय लम्पटों को वेदविद्या का अधिकार देता है, वह तो न पृथिवी का राज्य कर सकता है और न विद्वानों में आदर पा सकता है ॥२३॥

देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥२४॥

भाषार्थः—(देवाः) विजय चाहने वालों ने (वशाम्) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] को [उस परमेश्वर से] (अयाचन्) मांगा है, (यस्मिन्) जिस [परमेश्वर] में (अग्रे) पहिले ही पहिले (अजायत) वह उत्पन्न हुई। (ताम्) उस [दूर वर्तमान] और (एताम्) इस [समीप वर्तमान वेदवाणी] को (नारदः) नारद [नीति, यथार्थ ज्ञान देने वाला विद्वान्] (विद्यात्) जान लेवे, वह [वेदवाणी] (देवैः सह) दिव्य गुणों के सहित (उद् आजत) उदय हुई है ॥२४॥

भावार्थः—परमेश्वर की वाणी वेद को विद्वानों ने भक्तिपूर्वक परमेश्वर से पाया है, उस वेदवाणी को प्रत्येक विद्वान् जानकर उसके दिव्य गुणों का प्रकाश करे ॥२४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनपत्यमल्पंपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥२५॥

भाषार्थः—(वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (पुरुषम्) पुरुष को (अनपत्यम्) बिन सन्तान और (अल्पपशुम्) थोड़े पशुओं [गौ आदि] वाला (कृणोति) कर देती है। (अथ च) यदि वह [पुरुष] (ब्राह्मणैः) ब्राह्मण [ब्रह्मचारियों] करके (याचिताम्) मांगी हुई (एनाम्) इस [वेदवाणी] को (निप्रियायते) ओछेपन से प्रिय सा मानता है ॥२५॥

भावार्थः—जो मनुष्य वेदवाणी को संकुचित करके योग्य ब्रह्मचारियों की उन्नति रोककर अपनी ही उन्नति चाहता है, वह दुर्बलेन्द्रिय पुरुष अपना सर्वस्व नाश कर देता है ॥२५॥

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥२६॥

भाषार्थः—(कामाय) इष्ट पदार्थ पाने के लिये (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और जल, (मित्राय) प्राण (च) और (वरुणाय) अपान वायु, (तेभ्यः) इन सब की सिद्धि के लिये (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण [ब्रह्मचारी लोग] (याचन्ति) [वेदवाणी को] मांगते हैं, (अददत्) न देता हुआ पुरुष (तेषु) उन [विद्वानों] में (आ) सब ओर से (वृश्चते) छिन्न हो जाता है ॥२६॥

भावार्थः ब्रह्मचारी अग्निविद्या, जलविद्या, वायु के उतार चढ़ाव की विद्या और अन्य विद्वानों की सिद्धि के लिये वेदविद्या में परिश्रम करते हैं। ऐसे शुभ कर्म में विघ्नकारी मनुष्य कष्ट में पड़ते हैं ॥२६॥

यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥२७॥

भाषार्थः—(गोपतिः) वेदवाणी का रक्षक [ब्रह्मचारी] (यावत्) जब तक (स्वयम्) सुन्दर रीति से (अस्याः) इस (ऋचः) स्तुति योग्य [वेदवाणी] का (न) न (उपशृणुयात्) यथाविधि श्रवण कर लेवे, (तावत्) तब तक (अस्य) इस [परमेश्वर] की (गोषु) वाणियों में (चरेत्) चलता रहे, और (श्रुत्वा) श्रवण करके (अस्य) अपने (गृहे) घर में (न) अब (वसेत्) बसे ॥२७॥

भावार्थः—जब ब्रह्मचारी, पुत्र वा पत्री, यथाविधि श्रवण, मनन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और निदिध्यासन से वेदविद्या प्राप्त कर चुके, तब समावर्तन करके गृहाश्रम में प्रवेश करे ॥२७॥

यो अस्या ऋचं उपश्रुत्याथ गोष्वचींचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥२८॥

भाषार्थः—(अथ) यदि (यः) जिस [मनुष्य] ने (अस्याः) इस (ऋचः) स्तुति योग्य वेदवाणी का (उपश्रुत्य) यथाविधि श्रवण करके (गोषु) इन्द्रियों में [इन्द्रियों के कुविषयों में अपने को] (अचीचरत्) चलाया है। (देवाः) देवता [विद्वान् लोग] (हीडिताः) क्रुद्ध होकर (तस्य) उस [पुरुष] का (आयुः) जीवन (च) और (भूतिम्) ऐश्वर्य (च) भी (वृश्चन्ति) काट देते हैं ॥२८॥

भावार्थः—जो विद्वान् वेदवाणी को जानकर कुविषयों में फंसता है, वह विद्वानों का क्रोधपात्र होकर संसार में उन्नति नहीं करता ॥२८॥

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥२९॥

भाषार्थः—(देवानाम्) विद्वानों का (निहितः) नियम से रक्खा हुआ (निधिः) निधि, [अर्थात्] (बहुधा) नाना प्रकार से (चरन्ती) विचरती हुई (वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] तू (रूपाणि) रूपों [तत्त्वज्ञानों] को (आविः कृणुष्व) प्रकट कर, (यदा) जब वह [ब्रह्मचारी] (स्थाम) ठिकाने पर (जिघांसति) जाना चाहता है ॥२९॥

भावार्थः—जब ब्रह्मचारी कटिबद्ध होकर वेदवाणी का उपार्जन करता है। तब ही वह तत्त्वज्ञानों को जानता चला जाता है ॥२९॥

आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याच्ञायाय कृणुते मनः ॥३०॥

भाषार्थः—वह [वेदवाणी] (आत्मानम्) अपने स्वरूप [तत्त्वज्ञान] को (आविः कृणुते) प्रकट करती है, (यदा) जब वह [ब्रह्मचारी] (स्थाम) ठिकाने पर (जिघांसति) जाना चाहता है। (अथो ह) तब ही (वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्मचारियों के पाने को (याच्ञाय) मांगने के लिये (मनः) मनन (कृणुते) करती है ॥३०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः - जैसे जैसे ब्रह्मचारी प्रयत्न करता है वेदवाणी भी उसको वैसे वैसे ही अधिक अधिक मिलती चली जाती है ॥३०॥

मनसा सं कल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥३१॥

भाषार्थः—वह [वेदवाणी] (मनसा) मनन के साथ (देवान्) विजय चाहने वाले [ब्रह्मचारियों] को (सम्) यथावत् (कल्पयति) समर्थ करती है, (तत्) तब [उनको] (अपि गच्छति) अवश्य मिलती है। (तथा ह) इसी कारण से (ब्रह्माणः) ब्रह्मचारी लोग (वशाम्) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] के (याचितुम्) मांगने के लिये (उपप्रयन्ति) पहुँचते जाते हैं ॥३१॥

भावार्थः—जैसे जैसे ब्रह्मचारी लोग वेदवाणी के लिये प्रयत्न करते हैं, वैसे वैसे ही वेदवाणी उन्हें समर्थ करके मिलती जाती है ॥३१॥

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति ॥३२॥

भाषार्थः—(राजन्यः) ऐश्वर्यवान् [राजा] (पितृभ्यः) पालन करने वाले [विज्ञानियों] और (देवताभ्यः) विजय चाहने वाले [शूरवीरों] को (स्वधाकारेण) स्वधारण सामर्थ्य देने से (यज्ञेन) सत्कार से और (दानेन) दान से (वशायाः) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] (मातुः) माता के (हेडम्) क्रोध को (न) नहीं (गच्छति) पाता है ॥३२॥

भावार्थः— जहां राजा विद्वानों के दान मान से वेदविद्या का प्रकाश करता है वह राज्य चिरस्थायी होता है ॥३२॥

वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः ।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥३३॥

भाषार्थः—(वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (राजन्यस्य) ऐश्वर्यवान् [राजा] की (माता) माता [मान करने वाली] है, (तथा) वैसा ही (अग्रशः) पहिले से (संभूतम्) ठहरा हुआ [कर्म] है। (तस्याः) उस [वेदवाणी] का (अनर्पणम्) अत्याग (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं, (यत्) जब कि (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्मचारियों को (प्रदीयते) वह दे दी जाती है ॥३३॥

भावार्थः—परमेश्वर का नियम है कि विद्या के दान से राजा का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान बढ़ता है और विद्या भी अधिक अधिक प्रचार से अधिक अधिक बढ़ती है ।।३३।।

यथाऽऽज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ।।३४।।

भाषार्थः—(यथा) जैसे (प्रगृहीतम्) फैला कर लिया गया (आज्यम्) घी (स्रुचः) स्रुचा [चमचा] से (अग्नये) अग्नि को (आलुम्पेत्) छोड़ दिया जावे। (एव ह) वैसे ही (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्मचारियों को (वशाम्) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (अददत्) न देता हुआ पुरुष (अग्नये) अग्नि [सन्ताप] पाने के लिये (आ वृश्चते) छिन्न भिन्न हो जाता है ।।३४।।

भावार्थः—जैसे प्रज्वलित हवन अग्नि में छोड़ा हुआ घी शीघ्र भस्म हो जाता है, वैसे ही वेदविद्या के रोकने से संसार की हानि करके मनुष्य क्लेश में पड़कर नष्ट हो जाता है ।।३४।।

पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ।।३५।।

भाषार्थः—(पुरोडाशवत्सा) बढ़कर दान करने [वा उत्तम अन्न पाने] के लिये उपदेश करने वाली, (सुदुघा) सुन्दर रीति से पूर्ण करने वाली (वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (लोके) संसार में (अस्मै) उस पुरुष के लिये (उप तिष्ठति) उपस्थित होती है। (सा) वह (अस्मै) इस (प्रददुषे) बड़े दानी के लिये (सर्वान्) सब (कामान्) श्रेष्ठ कामनायें (दुहे) पूरी करती है ।।३५।।

भावार्थः—मनुष्य सब गुणों की खान वेदविद्या के अभ्यास और प्रकाश से धार्मिक होकर अपनी सब कामनायें पूरी करता है ।।३५।।

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ।।३६।।

भाषार्थः—(वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (यमराज्ये) न्यायकारी [परमेश्वर] के राज्य में (प्रददुषे) अपने बड़े दानी के लिये (सर्वान्) सब (कामान्) श्रेष्ठ कामनायें (दुहे) पूरी करती है। (अथ) और (याचिताम्) उस मांगी हुई को (निरुन्धानस्य) रोकने वाले का (लोकम्) लोक [घर] (नरकम्) नरक [महाकष्ट-स्थान] (आहुः) वे [विद्वान्] बताते हैं ।।३६।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा की व्यवस्था समझ कर वेदवाणी का प्रकाश करते हैं, वे अपने सब अभीष्ट सुख पाते हैं, और उसके रोकने वाले मूर्ख अज्ञान बढ़ने से क्लेश में पड़ते हैं ॥३६॥

प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥३७॥

भाषार्थः—(प्रवीयमाना) फेंकी जाती हुई (वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (गोपतये) पृथिवी पालक [राजा] के लिये (क्रुद्धा) क्रुद्ध होकर (चरति) विचरती है। "(मा) मुझ को (वेहतम्) गर्भघातिनी स्त्री [के समान रोगिणी] (मन्यमानः) मानता हुआ [वह राजा] (मृत्योः) मृत्यु के (पाशेषु) फन्दों में (बध्यताम्) बांधा जावे" ॥३७॥

भावार्थः—जिस राजा के राज्य में वेदवाणी प्रचार से रोकी जाती है, वह राजा अपने राज्य सहित अधर्म बढ़ने से नष्ट हो जाता है ॥३७॥

यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥३८॥

भाषार्थः—(च) और (वशाम्) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] को (वेहतम्) गर्भघातिनी स्त्री [के समान रोगिणी] (मन्यमानः) मानता हुआ (यः) जो पुरुष (अमा) अपने घर में [उसकी निन्दा] (पचते) विख्यात करता है। (बृहस्पतिः) बड़े बड़े लोकों का स्वामी [परमेश्वर] (अस्य) उस पुरुष के (पुत्रान्) पुत्रों (च) और (पौत्रान्) पौत्रों को (अपि) भी (याचयते) भिखारी बना देता है ॥३८॥

भावार्थः—जो मनुष्य वृथा दोष लगाकर वेदवाणी से अपने सन्तानों को रोकता है, वह उन्हें अविवेकी करके निर्धनी और नीच बनाता है ॥३८॥

महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥३९॥

भाषार्थः—(एषा) यह (गौः) प्राप्तियोग्य [वेदवाणी] (गोषु) सब भूमि प्रदेशों में (अपि) ही (चरन्ती) विचारती हुई (महत्) बहुत (अव) निश्चय करके (तपति) प्रताप [ऐश्वर्य] वाली होती है। (अथो ह) और कि (वशा) वशा [वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामनायोग्य वेदवाणी] (अदद्रुषे) [उसके] न देने वाले (गोपतये) भूपति [राजा] के लिये (विषम्) विष [महाकष्ट] (दुहे) पूर्ण करती है ॥३९॥

भावार्थः— वेदवाणी की प्रवृत्ति होने से संसार में ऐश्वर्य बढ़ता है, और जो दुष्ट राजा उसे रोकता है, वह नष्ट हो जाता है ॥३९॥

प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ॥४०॥

भाषार्थः—(पशूनाम्) सब प्राणियों का (प्रियम्) प्रिय [हित] (भवति) होता है, (यत्) जब (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्मचारियों को (प्रदीयते) वह दी जाती है। (अथो) और (तत्) यह (वशायाः) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] का (प्रियम्) प्रिय [हित] है, (यत्) कि वह [वेदवाणी] (देवत्रा) विद्वानों में (हविः) ग्राह्य वस्तु (स्यात्) होवे ॥४०॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य आदि विधि से वेदविद्या के दान और ग्रहण से सब संसार का हित होता है ॥४०॥

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥४१॥

भाषार्थः – (याः) जिन (वशाः) कामना योग्य [शक्तियों] को (देवाः) विजय चाहने वाले [जिज्ञासुओं] ने (यज्ञात्) यज्ञ [परमेश्वर की पूजा, संगतिकरण और दानव्यवहार] से (उदेत्य) ऊंचे होकर (उदकल्पयन्) उत्तम माना है। (तासाम्) उन [शक्तियों] के बीच (विलिप्त्यम्) विशेष वृद्धि वाली और (भीमाम्) भयानक [वेदवाणी] को (नारदः) नीति देने वाले [आचार्य] ने (उदाकुरुत) स्वीकार किया है ॥४१॥

भावार्थः—सदा से विद्वानों ने अनेक शक्तियों की कल्पना करके यही निश्चय किया है कि संसार में शिष्टों की वृद्धि करने वाली और दुष्टों को ताड़ने वाली इस वेणवाणी के तुल्य अन्य कोई शक्ति नहीं है ॥४१॥

तां देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति ।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥४२॥

भाषार्थः (देवाः) विजय चाहने वाले [जिज्ञासुओं] ने (ताम्) उस [वेदवाणी] को (अमीमांसन्त) विचारा—"(इयम्) यह [वेदवाणी] (वशा) कामना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य है, [अथवा] (अवशा इति) कामना योग्य नहीं है" (ताम्) उसके विषय में (नारदः) नीति बताने वाले [आचार्य] ने (अब्रवीत्) कहा—"(एषा) यह [वेद-वाणी] (वशानाम्) सब कामना योग्य [शक्तियों] में (वशतमा इति) अत्यन्त कामना योग्य है" ।।४२।।

भावार्थः—प्रथम से जिज्ञासु ब्रह्मचारियों ने परस्पर प्रश्नोत्तर और परीक्षा करके निश्चय किया है कि यह वेदवाणी ही संसार भर में ऐसी है कि जिसके अभ्यास से मनुष्य सब इष्ट पदार्थ पा लेता है ।.४२।।

कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ।।४३।।

भाषार्थः—"(नारद) हे नीति बताने वाले [आचार्य] ! (कति नु) कितनी ही (वशाः) कामना योग्य [शक्तियां] हैं, (याः) जिनको (मनुष्यजाः) मननशीलों में उत्पन्न हुआ (त्वम्) तू (वेत्थ) जानता है, (ताः) उन को (विद्वांसम्) जानने वाले (त्वा) तुझसे (पृच्छामि) मैं पूछता हूं, (अब्राह्मणः) अब्रह्मचारी [ब्रह्मचर्य न रखता हुआ पुरुष] (कस्याः) कौनसी [शक्ति] का (न) नहीं (अश्नीयात्) भोग [अनुभव] कर सकता" ।।४३।।

भावार्थः—जिज्ञासु बहुश्रुत विद्वान् से निश्चय करे कि जितनी शक्तियां आप जानते हैं, उनमें वह कौनसी है जिससे मनुष्य विना ब्रह्मचर्य धारण किये सुख पा लेवे । इस प्रश्न का उत्तर आगे है ।।४३।।

विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ।।४४।।

भाषार्थः—"(बृहस्पते) हे बड़ी वेदवाणियों के रक्षक [जिज्ञासु] ! (या) जो (च) निश्चय करके (सूतवशा) उत्पन्न जगत् को वश में करने वाली (वशा) कामना योग्य [वेदवाणी] है, (तस्याः) उस (विलिप्त्याः) विशेष वृद्धि वाली का (न अश्नीयात्) वह भोग [अनुभव] नहीं कर सकता, (यः) जो (अब्राह्मणः) अब्रह्मचारी [ब्रह्मचर्य न रखने वाला पुरुष] (भूत्याम्) ऐश्वर्य में (आशंसेत) इच्छा करे" ।।४४।।

भावार्थः—जिस वेदवाणी के वश में सब संसार है, उसको वही मनुष्य पाकर प्रभुता कर सकता है, जो पूरा ब्रह्मचारी हो, अन्यथा नहीं । यह गत मन्त्र का उत्तर है ।।४४।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥४५॥

भाषार्थः—"(नारद) हे नीति बताने वाले [ऋषि] ! (अनुष्ठु) अनुष्ठान [कर्मारम्भ] (विदुषे) जानते हुए (ते) तुझ को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे। (आसाम्) इन [संसार की शक्तियों] में से (कतमा) कौनसी (वशा) कामना योग्य शक्ति (भीमतमा) अत्यन्त भयानक है, (याम्) जिस को (अदत्त्वा) न देकर (पराभवेत्) [मनुष्य] हार पावे" ॥४५॥

भावार्थः—जिज्ञासु विद्वान् से प्रश्न करे कि संसार के बीच शक्तियों में से वह कौन सी शक्ति है जिसकी प्रवृत्ति रोकने से मनुष्य गिरकर कष्ट पाता है ॥४५॥

विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥४६॥

भाषार्थः—"(बृहस्पते) हे बड़ी वेदवाणियों के रक्षक ! (या) जो (विलिप्ती) विशेष वृद्धि वाली (अथो) और भी (सूतवशा) उत्पन्न जगत् को वश में करने वाली (वशा) कामना योग्य [वेदवाणी] है। (तस्याः) उस [वेदवाणी] का (न अश्नीयात्) वह भोग [अनुभव] नहीं कर सकता, (यः) जो (अब्राह्मणः) अब्रह्मचारी [ब्रह्मचर्य न रखने वाला पुरुष] (भूत्याम्) ऐश्वर्य में (आशंसेत) इच्छा करे ॥४६॥

भावार्थः—संसार का हित करने वाली वेदवाणी को मनुष्य विना ब्रह्मचर्य कभी नहीं पा सकता और न ऐश्वर्यवान् हो सकता है। यह गत मन्त्र का उत्तर है ॥४६॥

इस मन्त्र का मिलान ऊपर मन्त्र ४४ से करो ॥

त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥४७॥

भाषार्थः—(त्रीणि) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] (वै) ही (वशाजातानि) कामना योग्य [वेदवाणी] के प्रसिद्ध कर्म हैं, (विलिप्ती) वह विशेष वृद्धि वाली (सूतवशा) उत्पन्न जगत् को वश में करने वाली (वशा) कामना योग्य [वेदवाणी] है। (सः)। वह [विद्वान्] (प्रजापतौ) प्रजापालक [परमेश्वर] में (अनाव्रस्कः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छेद्य [अति दृढ़] होकर (ताः=ताम्) उसे (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्मचारियों को (प्र यच्छेत्) दान करे ।।४७।।

भावार्थः—मनुष्य सर्वनियन्त्री वेदवाणी द्वारा कर्म, उपासना, ज्ञान प्राप्त करके आस्तिक बुद्धि से ब्रह्मचारियों को विद्या दान करे ।।४७।।

एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ।।४८।।

भाषार्थः—"(ब्राह्मणाः) हे ब्रह्मचारियो ! (एतत्) यह (वः) तुम्हारा (हविः) ग्राह्य द्रव्य है"—(इति) ऐसा (याचितः) जिससे [वेदवाणी] माँगी जावे वह [विद्वान्] (मन्वीत) माने । (वशाम्) कामना योग्य [वेदवाणी] को (च इत्) ही (एनाम्) इस [विद्वान्] से (याचेयुः) वे [ब्रह्मचारी] मांगें, (या) जो [वेदवाणी] (अददुषः) दान न करने वाले के (गृहे) घर में (भीमा) डरावनी है ।।४८।।

भावार्थः—विद्वान् को चाहिये कि ब्रह्मचारियों को वेदवाणी का दान करके संसार का उपकार करे । विद्या की रोक से अविद्या के कारण विपत्तियां फैलती हैं ।।४८।।

देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ।।४९।।

भाषार्थः—(हीडिताः) क्रोधित (देवः) विद्वान् लोग (एताभिः) इन (ऋग्भिः) स्तुति योग्य वेदवाणियों द्वारा (भेदम्) फूट डालने वाले से (परि) घिर कर (अवदन्) बोले—"(वशाम्) कामना योग्य [वेदवाणी] (नः) हमको (न अदात्) उसने नहीं दी है, (इति) सो (तस्मात् वै) इससे ही (सः) वह (परा अभवत्) हारा है" ।।४९।।

भावार्थः—विद्वान् लोग निश्चय कर देते हैं कि वेदवाणी का रोकने वाला पुरुष अज्ञान बढ़ने से क्लेश में पड़ता है ।।४९।।

उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ।।५०।।

भाषार्थः—(उत) और (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् [ब्रह्मचारी] से (याचितः) याचना किये हुए (भेदः) फूट डालने वाले ने (एनाम्) इस (वशाम्) [कामना योग्य वेदवाणी] को (न अददात्) नहीं दिया । (देवाः) विद्वानों ने (तस्मात्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगसः) उस पाप से (अहमुत्तरे) संग्राम में [जहां अपनी अपनी बड़ाई के लिये झगड़ते हैं] (तम्) उस [वेद शत्रु] को (अवृश्चन्) छिन्न भिन्न किया है ॥५०॥

भावार्थः—जो मनुष्य वेदविद्या के दान को रोकता है, विद्वान् लोग उस जगत् के हानिकारक को नष्ट कर देते हैं ॥५०॥

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥५१॥

भाषार्थः—(ये) जो (परिरापिणः) बतबने लोग (वशायाः) कामना योग्य [वेदवाणी] के (अदानाय) न दान करने के लिये (वदन्ति) कहते हैं। (जाल्माः) वे क्रूर (अचित्त्या) अज्ञान से (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (मन्यवे) क्रोध के कारण (आ) सब ओर से (वृश्चन्ते) छिन्न भिन्न होते हैं ॥५१॥

भावार्थः—जो लोग वेदवाणी के प्रकाश रोकने के लिये दूसरों को बहकाते हैं, उन दुष्टों को प्रतापी मनुष्य नष्ट कर देवे ॥५१॥

ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥५२॥

भाषार्थः—(अथ) और (ये) जो (गोपतिम्) भूपति [राजा] को (पराणीय) बहका कर (आहुः) कहते हैं—"(मा ददाः इति) मत दे।" (ते) वे लोग (अचित्त्या) अज्ञान से (रुद्रस्य) दुःख नाशक शूर पुरुष के (अस्ताम्) चलाये हुए (हेतिम्) वज्र को (परि) सब ओर से (यन्ति) पाते हैं ॥५२॥

भावार्थः—जो दुष्ट दुर्बलेन्द्रिय राजा को कुमार्ग में डालकर वेद-वाणी के प्रचार में रुकावट डाले, उसको शूरवीर पुरुष यथावत् दण्ड देवे ॥५२॥

यदि हुतां यद्यहुतामना च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥५३॥

भाषार्थः—(यदि) यदि (हुताम्) दान की हुई [आचार्य से सीखी हुई], (यदि) यदि (अहुताम्) न दान की हुई [बल से ली हुई] (वशाम्) कामना योग्य [वेदवाणी] को (अमा) अपने घर में (च) ही (पचते) मनुष्य विख्यात करता है। (सब्राह्मणान्) ब्रह्मचारियों सहित (देवान्) विद्वानों को (ऋत्वा) दुखाकर (जिह्मः) वह कुटिल (लोकात्) समाज से (निःऋच्छति) निकल जाता है ॥५३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो पुरुष वेदविद्या को प्राप्त करके या छल कपट से लेकर उसके प्रचार से विद्वानों को रोके, उस दुःखदायी को विद्वान् लोग पद से गिरा देवें ॥५३॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥५॥

१—७३ ॥ सप्त पर्यायाः ॥ ब्रह्मगवी देवता ॥

वेदवाणी निरोधनदोषोपदेशः—वेदवाणी रोकने के दोषों का उपदेश ॥

पर्याय ॥१॥

१—६ ॥ १, ६ प्राजापत्यानुष्टुप्, २ भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्, ३ स्वराडुष्णिक्, ४, आसुर्यनुष्टुप्, ५ साम्नी पङ्क्तिः ॥

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तऋते श्रिता ॥१॥

सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥२॥

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता

यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥३॥

ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥४॥

तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥५॥

अप क्रामति सूनृता वीर्यं१ पुण्या लक्ष्मीः ॥६॥

भाषार्थः—[जो वेदवाणी] (श्रमेण) प्रयत्न के साथ और (तपसा) तप [ब्रह्मचर्य आदि धर्मानुष्ठान] के साथ (सृष्टा) उत्पन्न की गयी, (ब्रह्मणा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचारी करके (वित्ता) पायी गयी, (ऋते) सत्यज्ञान में (श्रिता) ठहरी हुई है ॥१॥

भाषार्थः—[जो वेदवाणी] (**सत्येन**) सत्य [यथार्थ नियम] से (**आवृता**) सब प्रकार स्वीकार की गई, (**श्रिया**) श्री [चक्रवर्ती राज्य आदि लक्ष्मी] से (**प्रावृता**) भले प्रकार अङ्गीकार की गई और (**यशसा**) यश [कीर्ति] के साथ (**परीवृता**) सब ओर से मान की गई है ॥२॥

भाषार्थः—[जो वेदवाणी] (**स्वधया**) अपनी धारण शक्ति से (**परिहिता**) सब ओर धारण की गई, (**श्रद्धया**) श्रद्धा [ईश्वर विश्वास] से (**पर्यूढा**) अति दृढ़ की गयी, (**दीक्षया**) दीक्षा [नियम, व्रत, संस्कार] से (**गुप्ता**) रक्षा की गई, (**यज्ञे**) यज्ञ [विद्वानों के सत्कार, शिल्प विद्या और शुभ गुणों के दान] में (**प्रतिष्ठिता**) प्रतिष्ठा [सन्मान] की गई है, और [जिस वेदवाणी का] (**लोकः**) यह संसार (**निधनम्**) स्थिति स्थान है ॥३॥

भाषार्थः—(**ब्रह्म**) वेद [ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद] [जिस वेदवाणी का] (**पदवायम्**) प्राप्तियोग्य ज्ञान और (**ब्राह्मणः**) ब्रह्म [ब्रह्माण्ड का जानने वाला] परमेश्वर [जिसका] (**अधिपतिः**) अधिपति [परम स्वामी] है ॥४॥

भाषार्थः—(**ताम्**) उस (**ब्रह्मगवीम्**) वेदवाणी को (**आददानस्य**, छीनने वाले, (**ब्राह्मणम्**) ब्राह्मण [ब्रह्मचारी] को (**जिनतः**) सताने वाले (**क्षत्रियस्य**) क्षत्रिय की ॥५॥

भाषार्थः— (**सूनृता**) प्रिय सत्य वाणी [वा सुकीर्ति] (**अप क्रामति**) चली जाती है, (**वीर्यम्**) वीरता और (**पुण्या**) मङ्गलमयी (**लक्ष्मीः**) लक्ष्मी [चक्रवर्त्ति राज्य आदि सामग्री] [भी चली जाती है] ॥६॥

भावार्थः—जिस वेदवाणी की प्रवृत्ति से संसार में सब प्राणी आनन्द पाते हैं, उस वेदवाणी को जो कोई अन्यायी राजा प्रचार से रोकता है, उसके राज्य में मूर्खता फैलती है और वह धर्महीन राजा संसार में निर्बल और निर्धन हो जाता है ॥ १—६॥

टिप्पणी १—मन्त्र १, २, ३ महर्षि दयानन्द कृत, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका वेदोक्त धर्मविषय पृष्ठ १०१—२ में तथा संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

टिप्पणी २—इस सूक्त का सम्बन्ध गत सूक्त ४ से यह है कि सूक्त ४ में वेदवाणी के प्रचार करने से लाभ का वर्णन है और इस सूक्त ५ में वेदवाणी के प्रचार रोकने से हानि का व्याख्यान है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्याय ॥२॥

७—११ ॥ ७ साम्नी त्रिष्टुप्, ८ भुरिगार्च्यनुष्टुप्, ९ आर्च्यनुष्टुप्, १० आर्ष्युष्णिक्, ११ निचृदार्ची पङ्क्तिः ॥

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं
च श्रीश्च धर्मश्च ॥७॥
ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च
यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥८॥
आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चा-
पानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥९॥
पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं चेष्टं
च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥१०॥
तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य
जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥११॥

भाषार्थः—(च) और (ओजः) पराक्रम, (च) और (तेजः) तेज [प्रगल्भता, निर्भयता], (च) और (सहः) सहन सामर्थ्य, (च) और (बलम्) बल [शरीर की दृढ़ता] (च) और (वाक्) विद्या, (च) और (इन्द्रियम्) इन्द्रिय [मन सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय], (च) और (श्रीः) श्री [लक्ष्मी, सम्पत्ति, अर्थात् चक्रवर्ति राज्य की सामग्री], (च) और (धर्मः) धर्म [वेदोक्त पक्षपात रहित न्याय का आचरण] ॥७॥

भाषार्थः—(च) और (ब्रह्म) ब्राह्मण [सब में उत्तम विद्वान् और सद्गुण प्रचारक जन], (च) (क्षत्रम्) क्षत्रिय [विद्वान् चतुर शूरवीर पुरुष] (च) (राष्ट्रम्) राज्य [न्याय से प्रजापालन], (च) और (विशः) प्रजाजन, (च) और (त्विषिः) कान्ति [शरीर की आरोग्यता और आत्मबल], (च) और (यशः) यश [शूरता आदि की प्रख्याति], (च) और (वर्चः) ब्रह्मवर्चस [वेद का विचार और प्रचार], (च) और (द्रविणम्) धन [सम्पत्ति की रक्षा और वृद्धि] ॥८॥

भाषार्थः—(च) और (आयुः) जीवन [ब्रह्मचर्य सेवन और वीर्यरक्षण से जीवन का बढ़ाना], (च) और (रूपम्) रूप [शरीर पुष्टि से सुन्दरता], (च) और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नाम) नाम [सत्कर्मों से प्रसिद्धि], (च) और (कीर्तिः) कीर्ति [श्रेष्ठ गुणों के ग्रहण के लिये ईश्वर के गुणों का कीर्तन और विद्या दान आदि सत्य आचरणों से प्रशंसा को स्थिर रखना], (च) और (प्राणः) प्राण वायु (च) और (अपानः) अपान वायु (च) और (चक्षुः) दृष्टि [प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमान प्रमाण], (च) और (श्रोत्रम्) श्रवण [शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, संभव और अभाव प्रमाण] ॥९॥

भाषार्थः—(च) और (पयः) दूध, जल आदि (च) और (रसः) रस [घृत, मधु, सोमरस आदि], (च) और (अन्नम्) अन्न [गेहूं, जौ, चावल आदि], (च) और (अन्नाद्यम्) खाने योग्य पदार्थ [दाल, शाक, फल आदि], (च) और (ऋतम्) वेदज्ञान, (च) और (सत्यम्) सत्य [हृदय, वाणी और शरीर से यथार्थ कर्म] (च) और (इष्टम्) यज्ञ [अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, अतिथिसत्कार आदि], (च) और (पूर्तम्) पूर्णता [सर्वोपकारी कर्म, कूप, तड़ाग, आराम, वाटिका, आदि], (च) और (प्रजाः) प्रजायें [सन्तान आदि और राज्य जन] (च) और (पशवः) सब पशु [हाथी, घोड़े, गायें आदि जीव] ॥१०॥

भाषार्थः —(तानि सर्वाणि) ये सब (ब्रह्मगवीम्) वेदवाणी को (आददानस्य) छीनने वाले, (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [ब्रह्मचारी] को (जिनतः) सताने वाले (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय के (अप क्रामन्ति) चले जाते हैं ॥११॥

भावार्थः - जो राजा के कुप्रबन्ध से वेदविद्या प्रचार से रुक जाती है, अविद्या के फैलने से वह राजा और उसका राज्य सब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है ॥७-११॥

१ - मन्त्र ११ का मिलान ऊपर मन्त्र ५, ६ से करो ॥

२ — मन्त्र ७ -१० महर्षि दयानन्दकृत, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदोक्त धर्म-विषय पृष्ठ १०२ — ३ में तथा संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

पर्यायः ॥३॥

१२—२७ ॥ १२ विराडार्षी गायत्री; १३ आसुर्यनुष्टुप्; १४, २६ साम्न्युष्णिक्; १५ आर्षी गायत्री; १६, १७, १९, २० प्राजापत्याऽनुष्टुप्; १८ याजुषी जगती; २१, २५ साम्न्यनुष्टुप्; २२ भुरिक् साम्नी बृहती; २३ याजुषी त्रिष्टुप्; २४ आसुरी गायत्री; २७ आर्च्युष्णिक् ॥

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यं१ घविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥१२॥

भाषार्थः —(सा एषा) वह यही (ब्रह्मगवी) वेदवाणी [वेदनिन्दक को] (भीमा) डरावनी (अघविषा) महाघोर विषैली, (साक्षात्) साक्षात् [प्रत्यक्ष] (कृत्या)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंसा रूप और (कूल्बजम्) भूमि पर दाह उपजाने वाली वस्तु रूप [हो जाती है, जब वह] (आवृता) रोक दी गयी हो ॥१२॥

भावार्थः—शान्तिकारक वेदविद्या के रोक देने से अधर्म बढ़ने पर संसार में बड़े बड़े उपद्रव फैलते हैं ॥१२॥

इस मन्त्र का मिलान मन्त्र ५३ से करो ॥

सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥१३॥

भाषार्थः—(अस्याम्) इस [वेदवाणी] में [रोके जाने पर—मन्त्र १२] [वेद निरोधक को] (सर्वाणि) सब (घोराणि) घोर [महाभयानक] कर्म (च) और (सर्वे) सब प्रकार के (मृत्यवः) मृत्यु होते हैं ॥१३॥

सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥१४॥

भाषार्थः—(अस्याम्) इस [वेदवाणी] में [रोकने वाले को] (सर्वाणि) सब (क्रूराणि) क्रूर [निठुर] कर्म और (सर्वे) सब प्रकार के (पुरुषवधाः) मनुष्य वध होते हैं ॥१४॥

भावार्थः—धर्मनिरूपक वेदवाणी में रोक डालने से संसार में घोर पाप छा जाता है, और सब प्राणी महाकष्ट पाते हैं ॥१३, १४॥

सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना।
मृत्योः पड्वीश आ द्यति ॥१५॥

भाषार्थः—(सा) वह (आदीयमाना) छीनी जाती हुई (ब्रह्मगवी) वेदवाणी (ब्रह्मज्यम्) ब्रह्मचारियों के हानिकारक, (देवपीयुम्) विद्वानों के सताने वाले पुरुष को (मृत्योः) मृत्यु की (पड्वीशे) बेड़ी में (आ द्यति) बांध देती है ॥१५॥

भावार्थः—आप्त वैदिक विद्वानों को रोकने वाला पुरुष मूर्खता के कारण महा विपत्तियों में पड़ता है ॥१५॥

मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥१६॥

भाषार्थः (सा) वह [वेदवाणी] (हि) निश्चय करके (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारियों के हानिकारक की (शतवधा) शतघ्नी [सैकड़ों को मारने वाली] (मेनिः) वज्र, (सा हि) वह ही [उसकी] (क्षितिः) नाश शक्ति है ॥१६॥

भावार्थः—जो मनुष्य वेदप्रचारकों को हानि पहुंचाता है, वह संसार की हानि करके आप भी अनेक विपत्तियों में पड़ता है ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्माद् वै ब्राह्मणानां गोर्दुराधर्षा विजानता ॥१७॥

भाषार्थः—(तस्मात्) इस लिये (वै) ही (ब्राह्मणानाम्) ब्रह्मचारियों की [हितकारिणी] (गौः) वेदवाणी (विजानता) विरुद्ध जानने वाले करके (दुराधर्षा) कभी न जीतने योग्य है ॥१७॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय पुरुष ही वेदवाणी से आनन्द पाते हैं और दुरात्मा अत्याचारी उसे कभी नहीं प्राप्त कर सकते ॥१७॥

वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥१८॥

भाषार्थः—(धावन्ती) दौड़ती हुई वह [वेदवाणी] [दुष्ट के लिये] (वज्रः) वज्र रूप, और (उद्वीता) ऊंची हुई वह [सज्जन के लिये] (वैश्वानरः) सर्वनायक पुरुष [के समान हितकारी] है ॥१८॥

भावार्थः—वेदवाणी की प्रवृत्ति से संसार में पापियों का नाश और धर्मात्माओं को आनन्द का प्रकाश होता है ॥१८॥

हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवो३ऽपेक्षमाणा ॥१९॥

भाषार्थः—वह [वेदवाणी] [पापी के] (शफान्) शान्ति व्यवहारों को (उत्खिदन्ती) नाश करती हुई (हेतिः) वज्ररूप है, और (अपेक्षमाणा) सब ओर दृष्टि फैलाती हुई वह (महादेवः) बड़े विजय चाहने वाले [शूर पुरुष के समान] है ॥१९॥

भावार्थः—वेदवाणी की प्रवत्ति में विघ्नकारी पुरुष मूर्खता के कारण सर्वथा नष्ट हो जाता है ॥१९॥

क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥२०॥

भाषार्थः—(ईक्षमाणा) देखती हुई वह [वेदवाणी] [रोकने वाले को] (क्षुरपविः) छुरा [कटार आदि] की धार [समान] होती है, (वाश्यमाना) शब्द करती हुई वह (अभि) सब ओर (स्फूर्जति) गरजती है ॥२०॥

भावार्थः—वेदवाणी के शुभ गुण प्रकट होने पर दुष्टों की दुष्टता सर्वथा नष्ट हो जाती है ॥२०॥

मृत्युर्हिङ्कृण्वत्यु१ग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥२१॥

भाषार्थः—वह [वेदवाणी] (हिङ्कृण्वती) [ब्रह्मचारी की] वृद्धि करती हुई (मृत्युः) [रोकने वाले को] मृत्यु होती है, [उसकी] (पुच्छम्) मूल को (पर्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्यन्ती) फेंक देती हुई वह (उग्रः) तेजस्वी (देवः) विजय चाहने वाले [शूर के समान] होती है ॥२१॥

भावार्थः— जैसे जैसे मनुष्य उग्र तप करके वेद का प्रकाश करते हैं, वैसे वैसे भूल करने वाले पाखण्डियों का नाश होता जाता है ॥२१॥

सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥२२॥

भाषार्थः—(मेहन्ती) [विद्वानों को] सींचती हुई और [वेद निरोधक के] (कर्णौ) दो विज्ञानों [अभ्युदय और निःश्रेयस अर्थात् तत्त्वज्ञान और मोक्षज्ञान] को (वरीवर्जयन्ती) सर्वथा रोकती हुई [वदवाणी] [उसके लिये] (सर्वज्यानिः) सब हानि करने वाले (राजयक्ष्मः) राजरोग [के समान] होती है ॥२२॥

भावार्थः—जब संसार में वेदों का विज्ञान बढ़ता है तब पाखण्ड मत नष्ट हो जाता है, जैसे उपाय न करने पर राजरोग से रोगी का नाश हो जाता है ॥२२॥

इस मन्त्र का मिलान—अथर्व० १२।४।६ से करो ॥

मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥२३॥

भाषार्थः - वह [वेदवाणी] (दुह्यमाना) [विद्वानों करके] दुही जाती हुई [वेदनिरोधक को] (मेनिः) वज्ररूप और (दुग्धा) दुही गयी वह (शीर्षक्तिः) [उस को] मस्तक पीड़ा होती है ॥२३॥

भावार्थः. जैसे जैसे लोग अभ्यास करके वेदविद्या का प्रचार करते हैं, वैसे वैसे ही वेदनिरोधक लोग संकट में पड़ते हैं ॥२३॥

सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥२४॥

भाषार्थः—वह [वेदवाणी] (उपतिष्ठन्ती) [विद्वानों के] समीप ठहरती हुई [वेदनिरोधक को] (सेदिः) महामारी आदि क्लेश, और (परामृष्टा) [विद्वानों से] परामर्श की गयी [विचारी गयी] वह (मिथोयोधः) [दुष्टों में] परस्पर संग्राम रूप होती है ॥२४॥

भावार्थः—पक्षपात रहित न्यायकारिणी वेदविद्या की प्रवृत्ति से दुराचारी लोग महाक्लेश पाते हैं ॥२४॥

शरव्या ३ मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥२५॥

भाषार्थः (मुखे अपिनह्यमाने) मुख बांधे जाने पर वह [वेदवाणी] [वेद-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरोधक के लिये] (शरव्या) बाणविद्या में चतुर सेना [के समान] और (हन्यमाना) ताड़ी जाती हुई वह (ऋतिः) आपत्ति रूप होती है ।।२५।।

भावार्थः—विद्वानों को वेदवाणी के प्रचार से रोकने वाले पुरुष अज्ञान के कारण विपत्तियां झलते हैं ।।२५।।

अघ विषा निपतन्ती तमो निपतिता ।।२६।।

भाषार्थः—(निपतन्ती, नीचे गिरती हुई वह [वेदवाणी] (अघविषा) वेद-निरोधक को] महाघोर विषैली और (निपतिता) नीचे गिरी हुई वह (तमः) [उस को] अन्धकार होती है ।।२६।।

भावार्थः – वेदवाणी के गुणों का अपमान करने वाला मूर्खता के कारण घोर नरक में पड़ता है ।।२६।।

अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ।।२७।।

भाषार्थः—(अनुगच्छन्ती) निरन्तर चलती हुई (ब्रह्मगवी) वेदवाणी (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारियों के हानिकारक के (प्राणान्) प्राणों को (उप दासयति) दबोच डालती है ।।२७।।

भावार्थः—वेदों के निरन्तर अभ्यासी पुरुष वेद विरोधियों को अवश्य हराते हैं ।।२७।।

पर्यायः ।।४।।

२८—३८ ।।२८ आसुरी गायत्री, २९, ३७ आसुर्यनुष्टुप् ३० साम्न्यनुष्टुप्, ३१ याजुषी त्रिष्टुप्, ३२ साम्नी गायत्री, ३३, ३४ साम्नी बृहती, ३५ भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्, ३६ साम्न्युष्णिक्, ३८ प्रतिष्ठा गायत्री ।।

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ।।२८।।

भाषार्थः—वह [वेदवाणी] (विकृत्यमाना) कतरी जाती हुई [वेद निन्दक के लिये] (वैरम्) वैर [शत्रुतारूप], और (विभाज्यमाना) टुकड़े टुकड़े की जाती हुई [उसके] (पौत्राद्यम्) पुत्र आदि सन्तानों का भक्षण [नाश रूप] होती है ।।२८।।

भावार्थः जो लोग कुमति के कारण वेदों के उत्तम गुणों को नष्ट भ्रष्ट करते हैं, तत्त्वज्ञानी पुरुष उनके शत्रु बन जाते हैं और उनके सन्तान भी दुराचारी होकर नष्ट हो जाते हैं ।।२८।।

देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ।।२९।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः - वह [वेदवाणी] (**ह्रियमाणा**) पकड़ी जाती हुई [वेद निन्दक के लिये] (**देवहेतिः**) इन्द्रियों का हनन, और (**हृता**) पकड़ी गयी (**व्यृद्धिः**) [उस को] अवृद्धि [हानिरूप] होती है ॥२९॥

भावार्थः —जो मनुष्य वेदज्ञानियों को पकड़कर कष्ट देते हैं, वे दुर्बलेन्द्रिय अपनी इष्ट कामनायें पूरी नहीं कर सकते ॥२९॥

पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥३०॥

भाषार्थः—वह [वेदवाणी] (**अधिधीयमाना**) उठायी जाती हुई [वेद विरोधी के लिये] (**पाप्मा**) अनर्थ, और (**अवधीयमाना**) गिराई जाती हुई (**पारुष्यम्**) [उसको] निठुराई [क्रूरता रूप] होती है ॥३०॥

भावार्थः—क्रूर वेदनिरोधक लोग अपना अनर्थ करके संसार का भी अनर्थ करते हैं ॥३०॥

विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥३१॥

भाषार्थः वह [वेदवाणी] (**प्रयस्यन्ती**) क्लेश में पड़ती हुई [वेद विरोधी को] (**विषम्**) विष, और (**प्रयस्ता**) क्लेश में डाली गयी (**तक्मा**) जीवन के कष्टदायक [ज्वररूप] होती है ॥३१॥

भावार्थः—तपस्वी वेदानुगामियों का दुःखदायी पुरुष अज्ञान बढ़ाकर घोर नरक में पड़ता है ॥३१॥

अघं पच्यमाना दुःष्वप्न्यं पक्वा ॥३२॥

भाषार्थः वह [वेदवाणी] (**पच्यमाना**) पचायी जाती हुई [वेद निरोधक को] (**अघम्**) महा दुःख, और (**पक्वा**) पचायी गयी (**दुष्वप्न्यम्**) दुष्ट स्वप्न होती है ॥३२॥

भावार्थः—वेदविद्या का नाश करने वाला अधर्मी होकर दिन राति व्याकुल रहता है ॥३२॥

मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥३३॥

भाषार्थः वह [वेदवाणी] (**पर्याक्रियमाणा**) अनादर से रूपान्तर की जाती हुई [वेद निरोधक के लिये] (**मूलबर्हणी**) जड़ उखाड़ देने वाली शक्ति, और (**पर्याकृता**) अनादर से रूपान्तर की गयी (**क्षितिः**) नाश शक्ति है ॥३३॥

भावार्थः वेदनिन्दक पुरुष अनर्थकर्मी होने से आप ही अपना शत्रु हो जाता है ॥३३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ।।३४।।

भाषार्थः—(गन्धेन) [वेदवाणी के] नाश से (असंज्ञा) असंगति [संसार में फूट] होती है, वह (उद्ध्रियमाणा) उखाड़ी जाती हुई (शुक्) शोक और (उद्धृता) उखाड़ी गयी (आशीविषः) फण में विष वाले [सांप के समान] है ।।३४।।

भावार्थः— वेदविद्या के नाश से संसार में फूट पड़कर बड़े बड़े क्लेश होते हैं ।।३४।।

अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ।।३५।।

भाषार्थः—वह [वेदवाणी] (उपह्रियमाणा) छीनी जाती हुई [वेद निरोधक के लिये] (अभूतिः) अनैश्वर्य [असमर्थता], और (उपहृता) छीन ली गयी (पराभूतिः) पराजय [हार] होती है ।।३५।।

भावार्थः—अत्याचारी पुरुष वेदविद्या के रोकने से हार ही पाता है ।।३५।।

शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ।।३६।।

भाषार्थः—वह [वेदवाणी] (पिश्यमाना) खण्ड खण्ड की जाती हुई [वेद निन्दक के लिये] (क्रुद्धः) क्रोध करते हुए (शर्वः) हिंसक [पुरुष के समान], और (पिशिता) खण्ड खण्ड की गयी (शिमिदा) विहित कर्म नाश करने वाली होती है ।।३६।।

भावार्थः—नास्तिक जन वेद का खण्डन करने के कारण आत्म हिंसक और सत्कर्म नाशक हो जाता है ।।३६।।

अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ।।३७।।

भाषार्थः—वह [वेदवाणी] (अश्यमाना) खायी जाती हुई [वेद निन्दक के लिये] (अवर्तिः) निर्धनता, और (अशिता) खायी गई (निर्ऋतिः) महामारी होती है ।।३७।।

भावार्थः—अन्यायी लोग वेदविद्या के नाश करने से निर्धनी होकर महाकष्ट भोगते हैं ।।३७।।

अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ।।३८।।

भाषार्थः—(अशिता) खायी गई (ब्रह्मगवी) वेदवाणी (ब्रह्मज्यम्) ब्रह्म-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारियों के हानिकारक को (अस्मात् लोकात्) इस लोक से (च) और (अमुष्मात्) उस [लोक] से (च) भी (छिनत्ति) काट डालती है ॥३८॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचारियों पर अत्याचार करके वेदविरुद्ध चलता है, उसके यह लोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं ॥३८॥

पर्यायः ॥५॥

३९—४६ ॥ ३९ साम्नी पङ्क्तिः; ४० याजुष्यनुष्टुप्; ४१, ४६ भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्; ४२ आसुरी बृहती; ४३ साम्नी बृहती; ४४ आर्ष्यनुष्टुप्; ४५ आर्षी बृहती ॥

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥३९॥

भाषार्थः—(तस्याः) उस [वेदवाणी] का (आहननम्) ताड़ना [वेद निन्दक के लिये] (कृत्या) हिंसा क्रिया, (आशसनम्) [उसका] पीड़ा देना (मेनिः) [उसके लिये] वज्र, और (ऊबध्यम्) [उसका] दुष्ट बन्धन (वलगः) [उसके लिये] दुःख है ॥३९॥

भावार्थः—वेद निन्दक लोग अपने कुस्वभाव और कुव्यवहार के कारण दुःख भोगते हैं ॥३९॥

अस्वगता परिह्णुता ॥४०॥

अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥४१॥

भाषार्थः—(परिह्णुता) चुरा ली गई [वेदवाणी] (अस्वगता) [वेद निरोधक के लिये] निर्धनता रूप है ॥४०॥ (ब्रह्मगवी) वेदवाणी (क्रव्यात्) मांसभक्षक [मृतकदाहक] (अग्निः) अग्नि [समान] (भूत्वा) होकर (ब्रह्मज्यम्) ब्रह्मचारियों के हानिकारक में (प्रविश्य) प्रवेश करके (अत्ति) खा लेती है ॥४१॥

भावार्थः—जैसे चिता की प्रज्वलित अग्नि प्रवेश करके मृतक शरीर को भस्म कर देती है, वैसे ही वेदविरोधी अपने दुष्ट गुणों के कारण निर्धनी होकर अपने आप धूलि में मिल जाता है ॥४०, ४१॥

सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥४२॥

छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥४३॥

भाषार्थः—वह [चुरा ली गई वेदवाणी—म० ४०] (अस्य) इस [वेदनिन्दक के] (सर्वा) सब (अङ्गा) अङ्गों को, (पर्वा) जोड़ों को और (मूलानि) जड़ों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (वृश्चति) काट देती है ॥४२॥ वह (अस्य) इसके (पितृबन्धु) पैतृक सम्बन्ध को (छिनत्ति) काट देती है और [इसके] (मातृबन्धु) मातृक सम्बन्ध को (पराभावयति) विध्वंस कर देती है ॥४३॥

भावार्थः—वेद निन्दक के सब भीतरी और बाहिरी उपयोगी व्यवहार नष्ट हो जाते हैं और वैदिक मर्यादा भङ्ग होने से सब सम्बन्धी लोग उस के बिगड़ बैठते हैं ॥४२, ४३॥

वि॒वा॒हां ज्ञा॒तीन्त्सर्वा॒नपि॑ क्षापयति ब्रह्मग॒वी ब्र॒ह्म॒ज्यस्य॑
क्ष॒त्रि॒येणापु॑नर्दीयमाना ॥४४ ।

भाषार्थः—(क्षत्रियेण) क्षत्रिय करके (अपुनर्दीयमाना, फिर नहीं दी गयी (ब्रह्मगवी) वेदवाणी (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारियों के हानिकारक के (सर्वान्) सब (विवाहान्) विवाहों और (ज्ञातीन्) भाई बन्धुओं को (अपि) भी (क्षापयति) नाश करती है ॥४४॥

भावार्थः—जो पुरुष वेदविद्या को रोककर विद्वानों की हानि करता है, वह गृहाश्रम से गिरकर अपने भाई बन्धुओं को भी नष्ट कर देता है ॥४४॥

अ॒वा॒स्तुमे॑न॒मस्व॑ग॒मप्र॑जसं करोत्यपरापर॒णो भ॑वति क्षी॒यते॑ ॥४५॥
य ए॒वं वि॒दुषो॑ ब्राह्म॒णस्य॑ क्ष॒त्रियो॒ गामा॑द॒त्ते । ४६॥

भाषार्थः – वह [वेदवाणी] (एनम्) उस [क्षत्रिय] को (अवास्तुम्) विना घर का, (अस्वगम्) निर्धनी और (अप्रजसम्) निर्वंशी (करोति) करती है, वह [मनुष्य] (अपरापरणः) प्राचीन और अर्वाचीन विना [पुराने और नवे पुरुष विना] (भवति) हो जाता है, और (क्षीयते) नाश को प्राप्त होता है ॥४५॥ (यः क्षत्रियः) जो क्षत्रिय (एवम्) ऐसे (विदुषः) जानकार (ब्राह्मणस्य) ब्रह्मचारीकी [हितकारिणी (गाम्) वेदवाणी को (आदत्ते) छीन लेता है ॥४६॥

भावार्थः—जो राजा विद्वान् ब्रह्मचारियों को सताकर वेदविद्या को रोकता है, वह अज्ञान बढ़ने से अपना सर्वस्व और वंश नाश करके आप भी नष्ट हो जाता है ॥४५, ४६॥

(अपरापरणः) के (अपरा–परणः) के पद पाठ के स्थान पर (अ+पर+अपर—नः) मानकर हम ने अर्थ किया है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्यायः ॥६॥

४७—६१ ॥ ४७, ४६, ५१—५३, ५७, ५८, ६१ प्राजापत्यानुष्टुप्; ४८ आर्च्यनुष्टुप्; ५० साम्नी बृहती; ५४, ५५ प्राजापत्योष्णिक्; ५६, ५९ आसुरी गायत्री; ६० आर्षी गायत्री ॥

क्षिप्रं वै तस्याहननें गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥४७॥

भाषार्थः—(क्षिप्रम्) शीघ्र (वै) निश्चय करके (तस्य) उस [वेद निन्दक] के (आहनने, मार डालने पर (गृध्राः) गिद्ध आदि (ऐलबम्) कलकल शब्द (कुर्वते) करते हैं ॥४७॥

भावार्थः—वेद निन्दक पुरुष ऐसे बे ठिकाने संग्राम आदि में मारे जाते हैं कि उनकी लोथों को गिद्ध आदि चींथ चींथ कर खाते हैं ॥४७॥

क्षिप्रं वै तस्यादहनं परिं नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः
पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ॥४८॥

भाषार्थः -(क्षिप्रम्) शीघ्र (वै) निश्चय करके (तस्य) उस [वेद निन्दक] के (आदहनं परि) दाह स्थान के आस पास (केशिनीः) लम्बे केशों वाली स्त्रियां (पाणिना) हाथ से (उरसि) छाती (आघ्नानाः) पीटती हुई और (पापम्) अशुभ (ऐलबम्) विलाप ध्वनि (कुर्वाणाः) करती हुयीं (नृत्यन्ति) डोलती हैं ॥४८॥

भावार्थः जब वेदनिन्दक पुरुष खोटे कर्मों के कारण क्लेश के साथ मृत्यु पाता है, तब स्त्री आदि उसके सब कुटुम्बी क्लेश में पड़ते हैं ॥४८॥

क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् । ४९॥

भाषार्थः—(क्षिप्रम्) शीघ्र (वै) निश्चय करके (तस्य) उस [वेद निन्दक] के (वास्तुषु) घरों में (वृकाः) भेड़िये आदि (ऐलबम्) कलकल शब्द (कुर्वते) करते हैं ॥४६॥

भावार्थः—कुकर्म के कारण वेद विरोधियों की बस्तियां ऊजड़ हो जाती हैं और वहां जंगली जन्तु बसने लगते हैं ॥४६॥

क्षिप्रं वैं तस्यं पृच्छन्ति यत् तदासी३दिदं नु ता३दिति ॥५०॥

भाषार्थः—(क्षिप्रम्) शीघ्र (वै) निश्चय करके (तस्य) उस [वेद निन्दक] के विषय में (पृच्छन्ति) लोग पूछते हैं—"(नु) क्या (इदम्) यह [स्थान] (ता३त् इति) वही है, (यत्) जो (तत्) वह (आसी३त्) [पहिले] था" ॥५०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जब वेद निन्दक क्षणिक वृद्धि पाकर खोटे कर्मों से नष्ट हो जाता है, जिज्ञासु लोग उसका कारण खोजकर सत्य धर्म में दृढ़ होते हैं ॥५०॥

छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥५१॥

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥५२॥

भाषार्थः—(छिन्धि) तू काट, (आ च्छिन्धि) काटे जा, (प्र च्छिन्धि) काट डाल, (क्षापय) नाश कर, (अपि क्षापय) विनाश कर ॥५१॥ (आङ्गिरसि) हे अङ्गिरा [परमज्ञानी परमेश्वर] से उपदेश की गयी [वेदवाणी !] (आददानम्) [तुझे] छीनने वाले (ब्रह्मज्यम्) ब्रह्मचारियों के हानिकारक पर (उप सादय) चढ़ाई कर ॥५२॥

भावार्थः—जो जितेन्द्रिय वेदज्ञानी पुरुष निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं, वे वेदविरुद्ध दोषों और शत्रुओं को नाश कर सकते हैं ॥५१,५२॥

वैश्वदेवी ह्यु१च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥५३॥

भाषार्थः—(हि) क्योंकि (वैश्वदेवी) सब विद्वानों की हित करने वाली तू [वेदनिन्दक के लिये] (कृत्या) हिंसा रूप और (कूल्बजम्) भूमि पर दाह उपजाने वाली वस्तु रूप (उच्यसे) कही जाती है [जब कि तू] (आवृता) रोक दी गयी हो ॥५३॥

भावार्थः—जो विद्वान् वेदवाणी का सहारा लेते हैं, वे पाखण्डी उपद्रवियों के नाश करने में समर्थ होते हैं ॥५३॥

इस मन्त्र का मिलान ऊपर मन्त्र १२ से करो ॥

ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥५४॥

भाषार्थः—(ओषन्ती) जलाती हुई, (समोषन्ती) भस्म कर देती हुई, तू [वेदनिन्दक के लिये] (ब्रह्मणः) ब्रह्म [परमेश्वर] का (वज्रः) वज्र रूप है ॥५४॥

भावार्थः—वेदानुयायी सत्यवीर पुरुष नास्तिकों का नाश करें ॥५४॥

क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥५५॥

भाषार्थः—[हे वेदवाणी !] (त्वम्) तू [वेद निन्दक के लिये] (क्षुरपविः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुरा [कटार आदि] की धार [समान], (मृत्युः) मृत्युरूप (भूत्वा) होकर (वि) इधर उधर (धाव) दौड़ ॥५५॥

भावार्थः—सत्य वैदिक धर्म के स्थापन में विद्वानों को सदा पूरा प्रयत्न करना चाहिये ॥५५॥

आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥५६॥

भाषार्थः –[हे वेदवाणी !] (जिनताम्) हानिकारकों का (वर्चः) तेज, (इष्टम्) यज्ञ [अग्नि होत्र, वेदाध्ययन, अतिथिसत्कार आदि], (पूर्तम्) पूर्णता [सर्वोपकारी कर्म कूप, तड़ाग, आराम, वाटिका आदि], (च) और (आशिषः) इच्छाओं को (आ दत्से) तू हर लेती है ॥५६॥

भावार्थः - जो मनुष्य वैदिक रीति से विरुद्ध चलकर अग्निहोत्र, वेदाध्ययन आदि छल से करना चाहता है, उससे उसकी इष्टसिद्धि नहीं होती ॥५६॥

आदाय जीतं जीताय लोके३ऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥५७॥

भाषार्थः—[हे वेदवाणी !] (जीतम्) हानिकारक पुरुष को (आदाय) लेकर (जीताय) हानि किये गए पुरुष के वश में (अमुष्मिन् लोके) उस लोक में [आगामी समय वा जन्म में] (प्र यच्छसि) तू देती है ॥५७॥

भावार्थः जो कोई वेदविरोधी वेदानुयायी को क्लेश देता है, वह परमेश्वर नियम से इस जन्म वा पर जन्म में उस सत्पुरुष के अधीन होता है, अर्थात् सत्य धर्म का सदा विजय होता है ॥५७॥

अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥५८॥

भाषार्थः –(अघ्न्ये) हे अवध्य ! [न मारने योग्य, प्रबल वेदवाणी] (अभिशस्त्या) सब ओर स्तुति के साथ (ब्राह्मणस्य) ब्रह्मचारी की (पदवीः) प्रतिष्ठा (भव) हो ॥५८॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी होकर बलवती वेदवाणी को प्राप्त करके संसार में प्रतिष्ठित होवें ॥५८॥

मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥५९॥

भाषार्थः—[हे वेदवाणी !] तू [वेदनिन्दक के लिये] (मेनिः) वज्र, (शरव्या) बाणविद्या में चतुर सेना (भव) हो और (अघात्) [उसके] पाप के कारण से (अघविषा) महाघोर विषैली (भव) हो ॥५९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य अज्ञानी होकर वेदविरुद्ध कुकर्म करे, उसको विद्वान् लोग पूरा दण्ड देवें ॥५९॥

अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥६०॥

भाषार्थः—(अघ्न्ये) हे अवध्य! [न मारने योग्य, प्रबल वेद वाणी] (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारियों के हानिकारक, (कृतागसः) अपराध करने वाले, (देवपीयोः) विद्वानों के सताने वाले, (अराधसः) अदानशील पुरुष के (शिरः) शिर को (प्र जहि) तोड़ डाल ॥६०॥

भावार्थः—जो मनुष्य बलवती वेदवाणी के विरुद्ध आचरण करे, उसको यथावत् दण्ड मिले ॥६०॥

त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥६१॥

भाषार्थः—[हे वेदवाणी!] (त्वया) तुझ करके (प्रमूर्णम्) बांध लिये गये, (मृदितम्) कुचले गये (दुश्चितम्) अनिष्ट चिन्तक को (अग्निः) आग (दहतु) जला डाले ॥६१॥

भावार्थः—वेद विरोधी दुराचारी पुरुष को न्याय व्यवस्था से जला कर भस्म कर डाले ॥६१॥

पर्यायः ॥७॥

६२—७३ ॥ ६२—६४, ६६, ६८—७० प्राजापत्यानुष्टुप्, ६५ आर्षी गायत्री, ६७ प्राजापत्यागायत्री, ७१ आसुरी पङ्क्तिः, ७२ प्राजापत्यात्रिष्टुप्, ७३ आसुर्युष्णिक् ॥

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥६२॥

भाषार्थः—[वेदवाणी!] तू [वेद निन्दक को] (वृश्च) काट डाल, (प्र वृश्च) चीर डाल, (सं वृश्च) फाड़ डाल, (दह) जला दे, (प्र दह) फूंक दे, (सं दह) भस्म कर दे ॥६२॥

भावार्थः—धर्मात्मा लोग अधर्मियों के नाश करने में सदा उद्यत रहें ॥६२॥

ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ॥६३॥

यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥६४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देवी) हे देवी ! [उत्तम गुणवाली] (अघ्न्ये) हे अवध्य ! [न मारने योग्य, प्रबल वेदवाणी] (ब्रह्मज्यम्) ब्रह्मचारियों के हानिकारक को (आ मूलात्) जड़ से (अनुसंदह) जलाये जा ॥६३॥ (यथा) जिस से वह (यमसदनात्) न्यायगृह से (परावतः) दूर देश वाले (पापलोकान्) पापियों के लोकों [कारागार आदि स्थानों] को (अयात्) चला जावे ॥६४॥

भावार्थः—राजा को उचित है कि वेद व्यवस्था के अनुसार अधर्मी वेद विरोधियों को दूर कारागार में रक्खे ॥६३, ६४॥

एवा त्वं दे॑व्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य॑ कृतागसो देवपीयोर॑राधसः ॥६५॥

वज्रे॑ण शतप॑र्वणा तीक्ष्णेन॑ क्षुरभृ॑ष्टिना ॥६६॥

प्र स्कन्धान् प्र शिरो॑ जहि ॥६७॥

भाषार्थः—(देवि) हे देवी ! [उत्तम गुणवाली], (अघ्न्ये) हे अवध्य ! [न मारने योग्य, प्रबल वेदवाणी] (त्वम्) तू (एव) इसी प्रकार (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारियों के हानिकारक, (कृतागसः) अपराध करने वाले, (देवपीयोः) विद्वानों के सताने वाले, (अराधसः) अदानशील पुरुष के ॥६५॥ (शतपर्वणा) सैकड़ों जोड़ वाले, (तीक्ष्णेन) तीक्ष्ण, (क्षुरभृष्टिना) छुरे की सी धार वाले (वज्रेण) वज्र से ॥ ६६ ॥, (स्कन्धान्) कन्धों और (शिरः) शिर को (प्र प्र जहि) तोड़ तोड़ दे ॥६७॥

भावार्थः—वेदानुयायी धर्मात्मा राजा वेदविरोधी दुष्टाचारियों को प्रचण्ड दण्ड देवे ॥६५—६७॥

मन्त्र ६५ का मिलान मन्त्र ६० से करो ॥

लोमा॑न्यस्य सं छि॑न्धि त्वच॑मस्य वि वे॑ष्टय ॥६८॥

मांसान्य॑स्य शातय स्नावा॑न्यस्य सं वृ॑ह ॥६९॥

अस्थी॑न्यस्य पीडय मज्जान॑मस्य निर्जे॑हि ॥७०॥

सर्वा॑स्याङ्गा पर्वा॑णि वि श्रथय ॥७१॥

भाषार्थः—(अस्य) उस [वेदविरोधी] के (लोमानि) लोमों को (सं छिन्धि) काट डाल, (अस्य) उसकी (त्वचम्) खाल (वि वेष्टय) उतार ले ॥ ६८ ॥ (अस्य) उसके (मांसानि) मांस के टुकड़ों को (शातय) बोटी बोटी कर दे, (अस्य) उसके (स्नावानि) नसों को (सं वृह) ऐंठ दे ॥६९॥ (अस्य) उसकी (अस्थीनि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हड्डियां (पीडय) मिसल डाल, (अस्य) उसकी (मज्जानम्) मींग (निर्जहि) निकाल दे ॥७०॥ (अस्य) उसके (सर्वा) सब (अङ्गा) अङ्गों और (पर्वाणि) जोड़ों को (वि श्रथय) ढीला कर दे ॥७१॥

भावार्थः नीति निपुण धर्मज्ञ राजा वेद मार्ग पर चलकर वेदविमुख अत्याचारी लोगों को विविध प्रकार दण्ड देकर पीड़ा देवे ॥ ६८ ७१ ॥

अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्त-
रिक्षान्महतो वरिम्णः ॥७२॥
सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥७३॥

भाषार्थः—(क्रव्यात्) मांसभक्षक [शवदाहक] (अग्निः) अग्नि (एनम्) इस [वेदनिन्दक] को (पृथिव्याः) पृथिवी से (नुदताम्) निकाल देवे, और (उत् ओषतु) जला डाले, (वायुः) वायु (महतः) बड़े (वरिम्णः) विस्तार, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से [वैसा ही करे] ॥ ७२ ॥ (सूर्यः) सूर्य (एनम्) इसको (दिवः) प्रकाश से (प्र णुदताम्) ढकेल देवे और (नि ओषतु) गिराकर जला देवे ॥७३॥

भावार्थः—दुरात्मा वेदविरोधी पुरुष मूर्खता के कारण सब स्थानों में सब प्रकार से कष्ट में डाला जाता है ॥७२, ७३॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

इति द्वादशं काण्डम् समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

✽ ओ३म् ✽

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

—:०✽:०✽:०✽०✽:—

त्रयोदशं काण्डम् ॥

- ✽:०✽:०✽:०✽ -

प्रथमोऽनुवाकः ॥

—: ✽ :—

सूक्तम् ॥१॥

१—६० ॥ रोहितो देवता ॥ १, ६, ७, ८, १०, २०, २२, २३, २४, २५, २७, ३३, त्रिष्टुप्, २, ३४, ३८, निचृत् त्रिष्टुप्, ३, ४, १२, ४२, निचृज् जगती, ५, ११, ४१, भुरिक् त्रिष्टुप्, ९ जगती, १३ अतिशक्वरी, १४, आर्षी पङ्क्ति, १५ आर्षी जगती, १६ निचृद् बृहती, १७, ३१, आर्षी जगती, १८ भुरिगतिजगती, १९ निचृदतिजगती, २१ गायत्री, २६ विराट् परोष्णिक्, २८ भुरिगनुष्टुप्, २९, ३०, ३२, ३९, ४०, ४५—५१, ५३, ५४, ५६, ५८ अनुष्टुप्, ३५ निचृद् ब्राह्मी गायत्री, ३६, ४३, भुरिगार्ची त्रिष्टुप्, ३७, विराडतिजगती, ४४, निचृत् परोष्णिक्, ५२ पथ्या पङ्क्तिः, ५५ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, ५७ विराडनुष्टुप् ५९, ६० गायत्री ॥

अध्यात्मोपदेशः—जीवात्मा और परमात्मा का उपदेश ॥

उदेहि वाजिन् यो अप्स्व१न्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**वाजिन्**) हे बलवान्! [सेनापति] (**उदेहि**) ऊंचा हो, (**सूनृतावत्**) सुनीत से युक्त (**इदम्**) इस (**राष्ट्रम्**) राज्य में (**प्र विश**) प्रवेश कर। (**यः**) जो (**रोहितः**) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (**अप्सु अन्तः**) प्रजाओं के भीतर है, और (**यः**) जिस [परमेश्वर] ने (**इदम्**) यह (**विश्वम्**) विश्व [जगत्] (**जजान**) उत्पन्न किया है, (**सः**) वह [परमेश्वर] (**सुभृतम्**) बड़े पोषण करने वाले (**त्वा**) तुझको (**राष्ट्राय**) राज्य करने के लिये (**बिभर्तु**) धारण करे ॥१॥

भावार्थः—जिस पराक्रमी धर्मात्मा राजा को प्रजागण स्वीकार करें, वह राज्य कार्य्य ग्रहण करके सर्वव्यापक, सर्वजनक, सर्वपोषक परमात्मा के आश्रय से अपना बल बढ़ावे और प्रजा का पालन करे ॥१॥

उद्वाज आ गन् यो अप्स्व१न्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः ।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥२॥

भाषार्थः—(**वाजः**) वह बलवान् [परमेश्वर] (**उत्**) उत्तमता से (**आ गन्**) प्राप्त हुआ है, (**यः**) जो (**अप्सु अन्तः**) प्रजाओं के भीतर है, [हे राजन्!] (**विशः**) उन प्रजाओं पर (**आ रोह**) ऊंचा हो, (**याः**) जो [प्रजायें] (**त्वद्योनयः**) तुझ से मेल रखने वाली हैं। (**सोमम्**) ऐश्वर्य, (**अपः**) कर्म्म, (**ओषधीः**) ओषधियों [अन्न, सोमलता आदि] और (**गाः**) गौ आदि को (**दधानः**) धारण करता हुआ तू (**चतुष्पदः**) चौपायों और (**द्विपदः**) दोपायों को (**इह**) यहां [प्रजाओं में] (**आ वेशय**) प्रवेश करा ॥२॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि सर्वनियामक परमेश्वर को ध्यान में रख कर अपनी प्रजा का पालन करे और योग्यता और कार्य्यदक्षता से अपनी और प्रजा की आवश्यक सम्पत्ति, जैसे अन्न, गौ, घोड़ा, हाथी मनुष्य आदि को बढ़ावे ॥२॥

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥३॥

भाषार्थः—(**पृश्निमातरः**) हे पूंछने योग्य वेदवाणी को माता समान मान करने वाले, (**उग्राः**) प्रचंड (**मरुतः**) शूर लोगो! (**यूयम्**) तुम (**इन्द्रेण**) बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति (**युजा**) मित्र के साथ (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**प्र मृणीत**) मार डालो। (**सुदानवः**) हे बड़े दानियो! (**त्रिषप्तासः**) हे तीन [कर्म, उपासना और ज्ञान] के साथ सात [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नासिका, मन और बुद्धि] को रखने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्वादुसंमुदः) हे भोजन योग्य अन्न में मिल कर आनन्द पाने वाले ! (मरुतः) हे शूर पुरुषो ! (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (वः) तुम्हारी [प्रार्थना] (आ) सब प्रकार (शृणवत्) सुने ॥३॥

भावार्थः—जो सेना गण शिल्प विद्या द्वारा आकाश आदि में जाते हैं, और जितेन्द्रिय होकर प्रीति के साथ मिल कर रहते हैं, वे परमेश्वर से बल पाकर शूर सेनापति की सहायता से शत्रुओं को मारते हैं ॥३॥

इस मन्त्र का पहिला भाग आ चुका है—अ० । ५ । २१ । ११ ॥

रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥४॥

भाषार्थः—(रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (रुहः) सृष्टि की सामग्रियों को (रुरोह) उत्पन्न किया, और (जनीनाम्) उत्पन्न करने की शक्तियों का (गर्भः) गर्भ [आधार वह परमेश्वर] (जनुषाम्) उत्पन्न होने वाले पदार्थों की (उपस्थम्) गोद में (आ रुरोह) चढ़ गया । (ताभिः) उन [उत्पन्न करने वाली शक्तियों] से (संरब्धम्) मिले हुए [उस परमेश्वर] को (षट्) छह [ऊपर, नीचे, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर] (उर्वीः) चौड़ी [दिशाओं] ने (अनु) निरन्तर (अविन्दन्) पाया है, (गातुम्) मार्ग (प्रपश्यन्) आगे देखते हुए उस [परमेश्वर ने] (इह) यहां पर (राष्ट्रम्) अपना राज्य (आ) सब ओर से (अहाः) अङ्गीकार किया है ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर सब सृष्टि के पदार्थों का उत्पादक और नियन्ता होकर दूर और समीप सब स्थान में वर्तमान रहकर राज्य करता है ॥४॥

इस मन्त्र में (रुह) धातु से बने शब्दों में अनुप्रास अलङ्कार है ॥

आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत्
तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ॥५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (रोहितः) सबका उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राज्य को (इह) यहां [संसार में] (आ अहार्षीत्) लाया है और उसने (मृधः) हिंसक [शत्रुओं] को (वि आस्थत्) गिरा दिया है, (ते) तेरे लिये (अभयम्) अभय (अभूत्) हो गया है । (तस्मै ते) उस तेरे लिये (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और पृथिवी दोनों (रेवतीभिः) धन वाली (शक्वरीभिः) शक्तियों के साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कामम्) कामना को (इह) यहां [इस राज्य में] (दुहाथाम्=०—ताम्) पूरी करें ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा में तत्पर होकर राज्य चलाता है, उसको आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक क्लेश नहीं होते ॥५॥

रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान ।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ।६॥

भाषार्थः—(रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (द्यावा-पृथिवी) सूर्य्य और पृथिवी को (जजान) उत्पन्न किया, (तत्र) उस में (परमेष्ठी) सब से ऊंचे पद वाले [उस परमेश्वर] ने (तन्तुम्) तन्तु [सूत्रात्मा वायु] को (ततान) फैलाया। (तत्र) उसमें (अजः) वह अजन्मा (एकपादः) एक डग वाला [सब जगत् में एक रस व्यापक] (शिश्रिये) ठहरा, उसने (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और पृथिवी को (बलेन) अपने बल से (अदृंहत्) दृढ़ किया ॥६॥

भावार्थः जैसे परमात्मा ने सब सूर्य्य पृथ्वी आदि लोकों को उत्पन्न करके, और उनके भीतर सूत्रात्मा वायु वा आकर्षण रख कर सब को नियम में बांधा है, वैसे ही बलवान् पुरुष अपने इन्द्रियों और सब लोगों को विविध प्रकार अपने वश में रक्खे ।।६॥

रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्वः स्तभितं तेन नाकः ।
तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥७॥

भाषार्थः—(रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (द्यावा-पृथिवी) सूर्य्य और भूमि को (अदृंहत्) दृढ़ किया. (तेन) उसी करके (स्वः) सामान्य सुख [अभ्युदय] (स्तभितम्) थांभा गया है, (तेन) उसी करके (नाकः) विशेष सुख [निःश्रेयस मोक्ष सुख, थांभा गया है]। (तेन) उसी करके (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष और (रजांसि) सब लोक (बिमिता) नाप डाले गये हैं, (तेन) उस से ही (देवाः) विद्वानों ने (अमृतम्) अमरपन [उत्साह वर्धक मोक्ष सुख] (अनु) निरन्तर (अविन्दन्) पाया है ॥७॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने सब सृष्टि रची है और जो सब का नियन्ता है, उसी जगदीश्वर के ज्ञान से मनुष्य उन्नति करके आनन्द पाते हैं ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥८॥

भाषार्थः—(रुहः) सृष्टि की सामग्रियों (च) और (प्ररुहः) सृष्टि की वस्तुओं को (समाकुर्वाणः) एकत्र करते हुए (रोहितः) सब उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (विश्वरूपम्) जगत् के रूप को (वि अमृशत्) विचारा वह (परमेश्वर) (महता) अपनी विशाल (महिम्ना) महिमा से (दिवम्) विजय की इच्छा में (रूढ्वा) ऊंचा होकर (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राज्य को (पयसा) अन्न से और (घृतेन) जल से (सम् अनक्तु) संयुक्त करे ॥८॥

भावार्थः—जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सब के कार्य्य और कारण को जानता है, उसी की महिमा के विचार से मनुष्य उन्नति करके अन्न जल आदि पदार्थ प्राप्त करें ॥८॥

यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥९॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (ते) तेरे लिये (याः) जो (रुहः) सृष्टि की सामग्री और (प्ररुहः) सृष्टि की वस्तुयें हैं और (याः) जो (ते) तेरे लिये (आरुहः) सृष्टि की स्थितियां हैं, (याभिः) जिनसे (दिवम्) आकाश और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आपृणासि=०—ति) सब ओर से वह [ईश्वर] भरता है। (तासाम्) उनके (ब्रह्मणा) अन्न और (पयसा) जल से (वावृधानः) बढ़ता हुआ तू (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] के (राष्ट्रे) राज्य में (विशि) प्रजा पर (जागृहि) जागता रह ॥९॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अपने राज्य में मनुष्य को सब सृष्टि से उत्तम बनाया है। मनुष्य प्रत्येक पदार्थ के कारण, कार्य्य और स्थिति को विचारकर उसे उपयोगी बनावे ॥९॥

यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥१०॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (याः) जो (विशः) प्रजायें (ते, तेरे लिये (तपसः) ऐश्वर्यरूप [परमेश्वर] से (संबभूवुः) उत्पन्न हुई हैं, ताः) वे सब (वत्सम्) बड़े उपदेशक [परमेश्वर] और (गायत्रीम् अनु) पूजा योग्य वेदवाणी के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे पीछे (इह) यहां (आ अगुः) आई हैं। (ताः) वे सब (शिवेन) तेरे आनन्दकारी (मनसा) मनन से (त्वा) तुझ में (आ विशन्तु) प्रवेश करें, (संमाता) समान माता [जननी] (वत्सः) बड़ा उपदेशक (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (अभि) सब ओर से (एतु) प्राप्त हो ॥१०॥

भावार्थः - सब के माता पिता परमात्मा ने जो जो पदार्थ मनुष्य के लिये उत्पन्न किये हैं, उनसे धर्मात्मा विज्ञानी लोग आनन्द प्राप्त करके परमेश्वर की महिमा जानते हैं ॥१०॥

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः। तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥११॥

भाषार्थः —(युवा) बली, (कविः) ज्ञानी (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों [सृष्टि के पदार्थों] को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (नाके) मोक्ष सुख में (अधि) अधिकार पूर्वक (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर (अस्थात्) ठहरा है। (अग्निः) प्रकाशस्वरूप [परमेश्वर] (तिग्मेन) तीक्ष्ण (ज्योतिषा) ज्योति के साथ (वि) विविध प्रकार (भाति) चमकता है, उसने (तृतीये) तीसरे [रजोगुण और तमोगुण से भिन्न, सत्त्व] (रजसि) लोक में [वर्त्तमान हो कर] (प्रियाणि) प्रिय वस्तुओं को (चक्रे) बनाया है ॥११॥

भावार्थः—जिस सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ परमेश्वर ने सब संसार को रचा है, विद्वान् लोग उसकी महिमा को प्रत्येक पदार्थ में देखकर अपनी उन्नति करते हैं ॥११॥

सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः। मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥१२॥

भाषार्थः—(सहस्रशृङ्गः) बड़े तेज वाला, (वृषभः) महाशक्तिमान्, (जातवेदाः) वेदों का उत्पन्न करने वाला, (घृताहुतः) प्रकाश का देने वाला, (सोमपृष्ठः) ऐश्वर्य का सींचने वाला, (सुवीरः) बड़ा वीर (नाथितः) प्रार्थना किया गया [परमेश्वर] (मा) मुझको (मा हासीत्) न छोड़े। (त्वा) तुझको (न इत्) कभी नहीं (जहानि) मैं छोड़ूं, (मे) मुझको (गोपोषम्) विद्याओं की वृद्धि (च च) और (वीरपोषम्) वीरों की पुष्टि (धेहि) दान कर ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः मनुष्य उस महातेजस्वी, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की उपासना से अपने ज्ञानों और वीरों की वृद्धि करें ॥१२॥

रोहि॑तो य॒ज्ञस्य॑ जनि॒ता मुखं॑ च॒ रोहि॑ताय वा॒चा श्रोत्रे॑ण॒ मन॑सा जुहोमि। रोहि॑तं दे॒वा य॑न्ति सु॒मन॒स्यमा॑ना॒ः स मा॒ रोहैः॑ साम॒ित्यै रो॑हयतु ॥१३॥

भावार्थः—(रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (यज्ञस्य) यज्ञ [देवपूजा, संगति करण और दान व्यवहार] का (जनिता) उत्पन्न करने वाला (च) और (मुखम्) मुख [मुखिया] है, (वाचा) वाणी से, (श्रोत्रेण) श्रवण से और (मनसा) मन से (रोहिताय) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर की सेवा] के लिये (जुहोमि) मैं भोजन करता हूं। (सुमनस्यमानाः) शुभचिन्तक (देवाः) विजय चाहने वाले लोग (रोहितम्) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] को (यन्ति) प्राप्त होते हैं, (स) वह [परमेश्वर] (मा) मुझको (रोहैः) ऊंचाइयों के साथ (सामित्यै) समिति [संगति] के लिये (रोहयतु) ऊंचा करे ॥१३॥

भावार्थः जो मनुष्य सब श्रेष्ठ व्यवहारों के उपदेशक परमेश्वर की पूरी भक्ति करते हैं, वे शूर वीरों के समान अनेक प्रकार उन्नति करके श्रेष्ठ सभापति होते हैं ॥१३॥

रोहि॑तो य॒ज्ञं व्य॑दधाद् वि॒श्वक॑र्मणे॒ तस्मा॑त् तेजां॒स्युप॑ मे॒ मान्याग॑ुः। वो॒चेयं॑ ते॒ नाभि॒ भुव॑नस्याधि॑ म॒ज्मनि॑ ॥१४॥

भावार्थः—(रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (यज्ञम्) यज्ञ [संगति योग्य व्यवहार] को [विश्वकर्मणे] सब कर्मों में चतुर [मनुष्य] के लिये (वि अदधात्) उत्पन्न किया है, (तस्मात्) उस [परमेश्वर] से (इमानि) यह सब (तेजांसि) तेज (मा) मुझको (उप) समीप से (आ अगुः) प्राप्त हुए हैं। [हे परमेश्वर!] (ते) तेरे (नाभिम्) सम्बन्ध को (भुवनस्य) संसार के (मज्मनि) बल के भीतर (अधि) अधिकार पूर्वक (वोचेयम्) मैं बतलाऊँ ॥१४॥

भावार्थः—परमेश्वर ने मनुष्य के हित के लिये सब श्रेष्ठ कर्म उत्पन्न किये हैं, जो विद्वान् उसकी महिमा के प्रकाश को प्रत्येक पदार्थ में देखते हैं वे बलवान् होते हैं ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ त्वा॑ रुरोह बृह॒त्यु॒३॒॑त प॒ङ्क्तिरा क॒कुब् वर्च॑सा जातवेदः। आ त्वा॑ रुरोहोष्णिहाक्ष॒रो व॑षट्का॒र आ त्वा॑ रुरोह॒ रोहि॑तो॒ रेत॑सा स॒ह ॥१५॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञानवाले पुरुष ! (त्वा) तुझको (बृहती) विशाल विद्या ने (उत) और (पङ्क्तिः) कीर्त्ति ने (आ) सब ओर से और (ककुप्) सुख फैलाने वाली शोभा ने (वर्चसा) प्रताप के साथ (आ) सब ओर से (रुरोह) ऊंचा किया है। (त्वा) तुझको (उष्णिहाक्षरः) बड़ी प्रीति से फैलने वाले, (वषट्-कारः) दान व्यवहार ने (आ) सब ओर से (रुरोह) ऊंचा किया है। और (त्वा) तुझको (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (रेतसा सह) पराक्रम के साथ (आ) सब प्रकार से (रुरोह) ऊंचा किया है ॥१५॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों को धारण करते हैं, परमेश्वर उनको संसार में पराक्रमी करता है ॥१५॥

अ॒यं व॑स्ते॒ गर्भं॑ पृथि॒व्या दिवं॑ वस्ते॒ऽयम॒न्तरि॑क्षम्।
अ॒यं ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपि॒ स्व॑र्लो॒कान् व्या॑नशे ॥१६॥

भाषार्थः—(अयम्) यह [परमेश्वर] (पृथिव्याः) पृथिवी के (गर्भम्) गर्भ [उदर] को (वस्ते) ढकता है, (अयम्) यह (दिवम्) आकाश और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (वस्ते) ढकता है। (अयम्) यह (ब्रध्नस्य) नियम के (विष्टपि) आश्रय पर (स्वः) सुख से (लोकान्) लोकों में (वि आनशे) व्यापा है ॥१६॥

भावार्थः—जो परमेश्वर पृथिवी आदि की सीमा के परिमाण से अधिक बड़ा है, मनुष्य उसकी उपासना से अपनी वृद्धि करके आनन्द पावें ॥१६॥

वाच॑स्पते पृथि॒वी नः॑ स्यो॒ना स्यो॒ना योनि॒स्तल्पा॑ नः सु॒शेवा॑। इ॒हैव प्रा॒णः स॒ख्ये नो॑ अस्तु॒ तं त्वा॑ परमेष्ठि॒न् पर्य॒ग्निरा॒युषा॒ वर्च॑सा दधातु ॥१७॥

भाषार्थः—(वाचः पते) हे वेदवाणी के स्वामी [परमेश्वर !] (नः) हमारे लिये (पृथिवी) पृथिवी (स्योना) सुखदायक, (योनिः) घर (स्योना) सुख-दायक और (तल्पा) खाट (नः) हमारे लिये (सुशेवा) बड़ी सुखदायक [होवे]।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इह एव) यहां ही [इसी मनुष्य जन्ममें] (प्राणः) प्राण [जीवन वायु] (नः) हमारी (सख्ये) मित्रता में (अस्तु) होवे, (परमेष्ठिन्) हे बड़े ऊंचे पद वाले [परमेश्वर !] (तम् त्वा) उस तुझको (अग्निः) ज्ञानवान् [यह पुरुष] (आयुषा) आयु के साथ और (वर्चसा) प्रताप के साथ (परि) सब ओर से (दधातु) धारण करे ॥१७॥

भावार्थः—परमेश्वर का ध्यान करते हुए हम लोग विद्या और पुरुषार्थ द्वारा संसार के पदार्थों को उपयोगी बनावें ॥१७॥

वाचंस्पत ऋतवः पञ्चं ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः । इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥१८॥

भाषार्थः –(वाचः पते) हे वेदवाणी के स्वामी [परमेश्वर !] (ये ये) जो ही (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पांच तत्त्वों से संबन्ध वाले वसंत आदि छह] (ऋतवः) ऋतुयें (नौ) हमदोनों [स्त्री पुरुष] के लिये (वैश्वकर्मणाः) सब कर्मों के हितकारी (परि) सब ओर से (संबभूवुः) प्राप्त हुए हैं। (इह एव) यहां ही [इसी मनुष्य जन्म में] (प्राणः) प्राण [जीवन वायु] (नः) हमारी (सख्ये) मित्रता में (अस्तु) होवे, (परमेष्ठिन्) हे बड़े ऊंचे पद वाले [परमेश्वर !] (तम् त्वा) उस तुझको (रोहितः) उत्पन्न हुआ [यह मनुष्य] (आयुषा) आयु के साथ और (वर्चसा) प्रताप के साथ (परि) सब ओर से (दधातु) धारण करे ॥१८॥

भावार्थः– जो मनुष्य वसंत आदि छह ऋतुओं को पृथिवी आदि पांच तत्त्वों के साथ उपयोगी बनाते हैं, वे परमात्मा के गुणों को जान कर अपने जीवन भर स्वस्थ और प्रतापी रहकर उन्नति करते हैं ॥१८॥

वाचंस्पते सौमनसं मनंश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः । इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥१९॥

भाषार्थः—(वाचः पते) हे वेदवाणी के स्वामी [परमेश्वर !] (सौमनसम्) शुभचिन्तकता, (मनः) मनन, (गाः) वाणियों [नीतों] (च) और (प्रजाः) प्रजाओं [पुत्र, पौत्र, राज्य जनों] को (नः) हमारी (गोष्ठे) गोष्ठ [बातों के स्थान] में और (योनिषु) घरों में (जनय) उत्पन्न कर। (इह एव) यहां ही [इसी मनुष्य जन्म में] (प्राणः) प्राण [जीवन, वायु] (नः) हमारी (सख्ये) मित्रता में (अस्तु) होवे,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(परमेष्ठिन्) हे बड़े ऊंचे पद वाले [परमेश्वर !] (तम् त्वा) उस तुझको (अहम्) मैं [मनुष्य] (आयुषा) आयु के साथ और (वर्चसा) प्रताप के साथ (परि) सब ओर से (दधामि) धारण करता हूं ॥१९॥

भावार्थः - जो मनुष्य परमेश्वर की वेदोक्त आज्ञा पर चलकर अपनी सभा और घर को सुनीतिज्ञ बना कर परस्पर हित करते हैं, वे ही संसार में यशस्वी होते हैं ॥१९॥

परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥२०॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (सविता) प्रेरक, (देवः) प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि [सूर्य्य आदि] ने (वर्चसा) तेज के साथ [वर्त्तमान] (त्वा) तुझको (परि) सब ओर से (धात्) धारण किया है और (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु ने (त्वा) तुझको (अभि) सब ओर से [धारण किया है] ।

[हे सेनापते राजन् !] (सर्वाः) सब (अरातीः) वैरी दलों को (अवक्रामन्) लतियाता हुआ तू (आ इहि) आ, (इदम् राष्ट्रम्) इस राज्य को तू ने (सूनृतावत्) सुन्दर नीति युक्त (अकरः) बनाया है ॥२०॥

भावार्थः—जिस प्रकार परमेश्वर सब अग्नि, सूर्य्य, वायु आदि पदार्थों को वश में करके सृष्टि का राज्य करता है, इसी प्रकार मनुष्य जितेन्द्रिय होकर विघ्नों को हटाकर आनन्द करे ॥२०॥

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित । शुभा यासि रिणन्नपः ॥२१॥

भाषार्थः—(रोहित) हे सबके उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर !] (यम् त्वा) जिस तुझको (प्रष्टिः) प्रश्न योग्य (पृषती) सींचने वाली [प्रकृति] (रथे) रमण योग्य [संसार] में (वहति) प्राप्त होती है। वह तू (अपः) प्रजाओं को (शुभा) शोभा के साथ (रिणन्) चलाता हुआ (यासि) चलता है ॥२१॥

भावार्थः—खोजने से विवेकी लोग निश्चय करते हैं कि सर्वव्यापक सर्वनियन्ता परमेश्वर के सामर्थ्य से असीम प्रकृति में संयोग वियोग होने से संसार का प्रादुर्भाव होता है ॥२१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ८ । ७ । २८ ॥

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः । तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**रोहितस्य**) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] की (**अनुव्रता**) आज्ञा में चलने वाली (**रोहिणी**) उत्पत्ति शक्ति [प्रकृति] (**सूरिः**) प्रेरणा करने वाली, (**सुवर्णा**) अच्छे प्रकार स्वीकार योग्य, (**बृहती**) विशाल और (**सुवर्चाः**) बहुत अन्नवाली [वा बहुत चमकीली] है। (**तया**) उस [प्रकृति] के द्वारा (**विश्वरूपान्**) सब प्रकार के (**वाजान्**) बलों को (**जयेम**) हम जीतें, (**तया**) उस [प्रकृति] के द्वारा (**विश्वाः**) सब (**पृतनाः**) संग्रामों को (**अभि ष्याम**) हम परास्त करें ॥२२॥

भावार्थः—परमेश्वर ने प्रकृति में अनेक श्रेष्ठ रत्न पदार्थों के उत्पन्न करने की शक्ति दी है। जो मनुष्य पुरुषार्थ करके उससे ज्ञानपूर्वक उपयोग लेते हैं, वे विघ्नों को हटा कर सब कार्य्य सिद्ध करते हैं ॥२२॥

इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥२३॥

भाषार्थः—(**रोहिणी**) उत्पत्ति शक्ति [प्रकृति] (**इदम्**) यहां (**रोहितस्य**) उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] का (**सदः**) प्राप्ति योग्य पद है, (**असौ**) वही (**पन्थाः**) मार्ग है, (**येन**) जिस से (**पृषती**) सींचने वाली [प्रकृति] (**याति**) चलती है। (**ताम्**) उस [प्रकृति] को (**गन्धर्वाः**) पृथिवी वा जल धारण करने वाले [मेघ] और (**कश्यपाः**) रस पीने वाले [किरण] (**उत् नयन्ति**) ऊंचा करते हैं, (**ताम्**) उस [प्रकृति] को (**कवयः**) बुद्धिमान् लोग (**अप्रमादम्**) विना चूके (**रक्षन्ति**) पालते हैं ॥२३॥

भावार्थः—प्रकृति की चाल के ज्ञान से मनुष्य परमात्मा की महिमा जानकर अनेक लाभ उठाते हैं, जैसे मेघ जल बरसाकर और किरणें जल खींचकर और प्रकाश करके प्रकृति के उत्तम गुणों को दिखाते हैं। बुद्धिमान् लोग इसी प्रकृति को निरन्तर खोजते हुए नवीन नवीन आविष्कार करते हैं ॥२३॥

सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥२४॥

भाषार्थः—(**सूर्यस्य**) सब के चलाने वाले [परमेश्वर] के (**अश्वाः**) व्यापक (**केतुमन्तः**) विज्ञानमय (**अमृताः**) अमर [अविनाशी वा पुरुषार्थी] (**हरयः**) स्वीकार योग्य गुण (**रथम्**) रमण योग्य संसार को (**सुखम्**) सुख से (**सदा**) सदा (**वहन्ति**) ले चलते हैं। (**घृतपावा**) सेचन सामर्थ्य [वृद्धि] की रक्षा करने वाले (**भ्राजमानः**)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशमान (देवः) ज्ञानवान् (रोहितः) सब को उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (विवम्) व्यवहार कुशल (पृषतीम्) सींचने वाली [प्रकृति] में (आ विवेश) प्रवेश किया है ।।२४।।

भावार्थः—जिस परमात्मा के नियमों से यह संसार चल रहा है वही परमात्मा प्रकृति में प्रवेश करके उसे चेष्टा देता है ।।२४।।

यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव । यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ।।२५।।

भाषार्थः—(यः) जो (वृषभः) महाशक्तिमान् (तिग्मशृङ्गः) तीव्र तेजवाले (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (अग्निम्) अग्नि को (परि) सब ओर से और (सूर्यम्) सूर्य को (परि) सब ओर से (बभूव) प्राप्त किया है । (यः) जो [परमेश्वर] (पृथिवीम्) पृथिवी (च) और (दिवम्) आकाश को (विष्टभ्नाति) विविध प्रकार थांमता है, (तस्मात्) उसी [परमेश्वर] से (देवाः) दिव्य नियम (सृष्टीः) सृष्टियों को (अधि) अधिकार पूर्वक (सृजन्ते) उत्पन्न करते हैं ।।२५।।

भावार्थः—परमेश्वर ने प्रत्यक्ष अग्नि, सूर्य आदि और सब लोकों को अपने नियम से उत्पन्न किया है, उसी की उपासना सब मनुष्य करें ।।२५।।

रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात् । सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ।।२६।।

भाषार्थः—(रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (महतः) विशाल (अर्णवात्) समुद्र [अगम्य सामर्थ्य] में से (दिवम्) व्यवहार को (परि) सब ओर से (आ अरुहत्) प्रकट किया है । (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (सर्वाः) सब (रुहः) उत्पन्न करने की सामग्रियों को (रुरोह) उत्पन्न किया है ।।२६।।

भावार्थः—परमेश्वर ने प्रत्येक कार्य का आदि कारण होकर सब को उत्पन्न किया है ।।२६।।

वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा । इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ।।२७।।

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (पयस्वतीम्) उत्तम अन्नवाली और (घृताचीम्) जल पहुंचाने वाली [प्रकृति] को (वि) विविध प्रकार (मिमीष्व) माप, (एषा) यह (देवानाम्) विद्वानों की (अनपस्पृक्) न रोकने वाली (धेनुः) तृप्ति करने वाली

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[गौ के समान] है। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् [यह मनुष्य] (सोमम्) अमृत (पिबतु) पान करे, (क्षेमः) सकुशल (अस्तु) होवे, और (अग्निः) ज्ञानवान् [यह पुरुष] (प्र स्तौतु) स्तुति करे, तू (मृधः) वैरियों को (वि नुदस्व) निकाल दे ॥२७॥

भावार्थः– जो मनुष्य सृष्टि के बीच खोज लगाते चले चलते हैं, वे निर्विघ्न होकर ऐश्वर्य प्राप्त करके सकुशल रहके और परमात्मा के गुण गाते हुए शत्रुओं का नाश करते हैं ॥२७॥

समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥२८॥

भाषार्थः—[जैसे] (समिद्धः) प्रकाशमान किया गया और (समिधानः) प्रकाशमान होता हुआ (घृताहुतः) घी चढ़ाया गया और (घृतवृद्धः) घी से बढ़ा हुआ (अग्निः) अग्नि हो। [वैसे ही] (अभीषाट्) सब ओर से जीतने वाला, (विश्वाषाट्) सब को हराने वाला (अग्निः) तेजस्वी [शूर पुरुष] (सपत्नान्) वैरियों को (हन्तु) मारे, (ये) जो (मम) मेरे हैं ॥२८॥

भावार्थः - जैसे अग्नि घृत आदि हव्य पदार्थ से प्रज्वलित होकर रोग-कारक दोष को नाश करता है, वैसे ही मनुष्य विद्या और वीरता से प्रतापी होकर शत्रुओं को नाश करे, यह ईश्वर का नियम है ॥२८॥

हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥२९॥

भाषार्थः – वह [शूर पुरुष] (एनान्=एनम्) उसको (हन्तु) मारे, (प्र दहतु) जला देवे, (यः अरिः) जो वैरी (नः) हम पर (पृतन्यति) सेना चढ़ाता है। (क्रव्यादा) मांस भक्षक [मृतक दाहक] (अग्निना) अग्नि से [जैसे, वैसे] (वयम्) हम (सपत्नान्) वैरियों को (प्र दहामसि) जलाये देते हैं ॥२९॥

भावार्थः - ज्ञानवान् शूर पुरुष अपने शत्रु दोषों को इस प्रकार भस्म कर दे, जैसे अग्नि से मृतक शरीर भस्म किया जाता है। यह ईश्वर नियम सब मनुष्यों को मानना चाहिये ॥२९॥

अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥३०॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ! (बाहुमान्) बलवान् भुजाओं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला तू (वज्रेण) वज्र से (अवाचीनान्) नीचों [अधार्मिकों] को (अव जहि) मार गिरा। (अध) फिर (मामकान्) अपने (सपत्नान्) वैरियों को (अग्निः) अग्नि के (तेजोभिः) तेजों से (आ अदिषि) मैंने पकड़ लिया है ॥३०॥

भावार्थः - प्रजागण बली, पराक्रमी, प्रतापी राजा को स्वीकार करके शत्रुओं के मारने में सहायक होवें। सब मनुष्य इस ईश्वर नियम का पालन करें ॥३०॥

अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥३१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे प्रतापी राजन्! (सपत्नान्) वैरियों को (अस्मत्) हमसे (अधरान्) नीचे (पादय) गिरा दे, (बृहस्पते) हे बड़ी विद्याओं के स्वामी! [राजन्] (उत्पिपानम्) टेढ़े चढ़ते हुए (सजातम्) समान जन्म वाले [भाई बन्धु] को (व्यथय) पीड़ा दे। (इन्द्राग्नी) हे सूर्य और बिजुली [के समान प्रताप और स्फूर्ति वाले] (मित्रावरुणौ) हे प्राण और अपान! [के समान सुखदायक और दुःखनाशक पुरुष] (अप्रतिमन्यूयमानाः) [हमारे] प्रतिकूल क्रोध न कर सकने योग्य [शत्रु लोग] (अधरे) नीचे होकर (पद्यन्ताम्) गिर जावें ॥३१॥

भावार्थः—विद्वान् प्रतापी राजा पक्षपात छोड़कर धर्म विरोधी दुराचारी बन्धु आदि को भी अवश्य दण्ड देकर वश में रक्खे ॥३१॥

उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥३२॥

भाषार्थः—(देव) हे विजय चाहने वाले! (सूर्य) हे सर्वप्रेरक राजन्! (उद्यन् त्वम्) ऊंचा चढ़ता हुआ तू (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (अव जहि) मार गिरा। (एनान्) इन [शत्रुओं] को (अश्मना) पत्थर [आदि गिराने] से (अव जहि) मार गिरा, (ते) वे लोग (अधमम्) बड़े नीचे (तमः) अन्धकार में (यन्तु) जावें ॥३२॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि न्याय व्यवहार में प्रकाशमान होकर शत्रुओं को यथापराध दण्ड देकर कारागार में पीड़ा देवें ॥३२॥

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम्।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥३३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वत्सः) उपदेश करने वाला, (विराजः) बड़े ऐश्वर्य वाला, (शुक्रपृष्ठः) वीरता बढ़ाने वाला (वृषभः) बड़ी शक्ति वाला [पुरुष] (मतीनाम्) बुद्धिमानों के (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती दृश्य पर (आ रुरोह) ऊंचा हुआ है। वे [बुद्धिमान् लोग] (घृतेन) प्रकाश के साथ [वर्तमान] (अर्कम्) पूजनीय, (वत्सम्) उपदेश करने वाले [परमेश्वर] को (अभि) सब ओर से (अर्चन्ति) पूजते हैं और (सन्तम्) सेवनीय (ब्रह्म) ब्रह्म [सब से बड़े परमेश्वर] को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं [सराहते हैं] ॥३३॥

भावार्थः— जिस परमेश्वर ने बड़े बड़े पराक्रमी शूर वीर पुरुष बनाये हैं, उसकी महिमा को ज्ञानी लोग जानकर संसार में प्रकट करते हैं ॥३३॥

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥३४॥

भाषार्थः - [हे राजन् !] (दिवम्) व्यवहार को (च) निश्चय करके (रोह) प्रकट कर, (च) और (पृथिवीम्) पृथिवी [की विद्या] को (रोह) प्रकट कर, (च) और (राष्ट्रम्) राज्य को (रोह) प्रकट कर, (च) और (द्रविणम्) धन को (रोह) प्रकट कर। (च) और (प्रजाम्) प्रजा [पुत्र पौत्र राज्य जन] को (रोह) प्रकट कर, (च) और (अमृतम्) अमरपन [पुरुषार्थ] के (रोह) प्रकट कर, (रोहितेन) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] के साथ (तन्वम्) अपने विस्तार को (सं स्पृशस्व) संयुक्त कर ॥३४॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रत्येक व्यवहार और विद्या में कुशल होता है, वह राज्य की सब प्रकार वृद्धि करता हुआ परमेश्वर की महिमा में अपने आत्मा को ऊंचा बनाता है ॥३४॥

ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥३५॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (ये) जो (राष्ट्रभृतः) राज्य पोषक (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (सूर्यम्) सब के चलाने वाले [परमेश्वर] को (अभितः) सब ओर से (यन्ति) प्राप्त होते हैं। (तैः) उनसे (संविदानः) मिलता हुआ, (सुमनस्यमानः) प्रसन्न चित्त (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राज्य को (दधातु) पुष्ट करे ॥३५॥

भावार्थः—जिस राज्य में विद्वान् लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं, वह राज्य सदा बढ़ता रहता है ॥३५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत् त्वां यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम् ॥३६॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (त्वा) तुझ को (ब्रह्मपूताः) ब्रह्माओं [वेद वेत्ताओं] द्वारा शुद्ध किये गये (यज्ञाः) यज्ञ [संगतियोग्य व्यवहार] (उत्) उत्तमता से (वहन्ति) प्राप्त होते हैं, (अध्वगतः) [वेद विहित] मार्ग पर चलने वाले (हरयः) मनुष्य (त्वा) तुझ को (वहन्ति) पाते हैं। (अर्णवम्) जल से भरे (समुद्रम्) समुद्र को (तिरः) तिरस्कार करके तू (अति) अत्यन्त करके (रोचसे) प्रकाशमान होता है ॥३६॥

भावार्थः—परमेश्वर में सब पदार्थ व्याप्त हैं, वेदानुयायी पुरुष उसको बहुत खोज कर अगम्य स्थानों में भी पाकर आनन्दित होते हैं ॥३६॥

रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥३७॥

भाषार्थः—(वसुजिति) निवास स्थानों के जीतने वाले, (गोजिति) विद्याओं के जीतने वाले, (संधनजिति) संपूर्ण धन के जीतने वाले (रोहिते) सबके उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] में (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (अधि) अधिकार पूर्वक (श्रिते) ठहरे हुए हैं। (यस्य) जिस [परमेश्वर] के (सहस्रम्) सहस्र [असंख्य] (जनिमानि) उत्पन्न करने के कर्म (च) निश्चय करके (सप्त) सात [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] के साथ हैं, [हे परमेश्वर !] (ते) तेरे (नाभिम्) सम्बन्ध को (भुवनस्य) संसार के (मज्मनि) बल के भीतर (अधि) अधिकार पूर्वक (वोचेयम्) मैं बतलाऊं ॥३७॥

भावार्थः—वह सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सब लोकों का स्वामी है, उसने शरीरों को इन्द्रियों सहित बनाया है, उसी को जितेन्द्रिय योगी जन प्राप्त होकर सुखी होते हैं ॥३७॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद ऊपर मन्त्र १४ में आया है ॥

यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥३८॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (यशाः) यशस्वी तू (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(च) और (विशः) मध्य दिशाओं में (यासि) चलता है, और तू (पशूनाम्) पशुओं [गौ सिंह आदिकों] (उत) और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (यशाः) यशस्वी है। (अहम्) मैं (पृथिव्याः) पृथिवी की और (अदित्याः) अखण्ड वेदवाणी की (उपस्थे) गोद में (यशाः) यशस्वी होकर (सविता इव) सब के चलाने वाले शूर [अथवा सूर्य] के समान (चारुः) शोभायमान (भूयासम्) होऊं ॥३८॥

भावार्थः— जैसे परमेश्वर अपनी महिमा से समस्त लोकों का राजा है, वैसे ही मनुष्य ईश्वर की उपासना से पृथिवी पर प्रिय होकर अपनी उन्नति करते रहें ॥३८॥

अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।

इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥३९॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (अमुत्र) वहां पर (सन्) रहता हुआ तू (इह) यहां (वेत्थ) जानता है, (इतः) इधर (सन्) रहता हुआ (तानि) उन [वस्तुओं] को (पश्यसि) देखता है। (इतः) यहां से (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (रोचनम्) चमकने वाले (विपश्चितम्) बुद्धिमान् (सूर्यम्) सब के चलाने वाले [परमेश्वर] को (पश्यन्ति) वे [विद्वान्] देखते हैं ॥३९॥

भावार्थः परमेश्वर समीप और दूर से सर्वव्यापी होकर सर्व-नियन्ता है, ऐसा विचार कर बुद्धिमान् लोग अपने व्यवहारों में उन्नति करते हैं ॥३९॥

देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।

समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥४०॥

भाषार्थः —[हे परमेश्वर !] (देवः) विद्वान् तू (देवान्) उत्तम गुणों को (मर्चयसि) बतलाता है, (अर्णवे अन्तः) समुद्र [संसार] के बीच (चरसि) तू विचरता है। (समानम्) समान [एकरस] (तम्) उस (अग्निम्) ज्ञानवान् [परमेश्वर] को (परे) बड़े (कवयः) बुद्धिमान् लोग (विदुः) जानते हैं और (इन्धते) प्रकाशित होते हैं ॥४०॥

भावार्थः—जो परमेश्वर संसार में व्यापक रहकर सदा शुभ गुणों का उपदेश करता है, बुद्धिमान् लोग उसी का उपदेश करके संसार में यश पावें ॥४०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्। सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥४१॥

भाषार्थः—(परेण) दूर स्थान से (अवः) इधर और (एना) इस (अवरेण) अवर [समीप स्थान] से (परः) परे [दूर वर्तमान] (वत्सम्) सब के निवास देने वाले वा उपदेश करने वाले [परमेश्वर] को (पदा) पद [अधिकार] के साथ (बिभ्रती) धारण करती हुई (गौः) वेदवाणी (उत् अस्थात्) ऊंची उठी है। (सा) वह [वेदवाणी] (कद्रीची) किस ओर चलती हुई, (कं स्वित्) कौन से (अर्धम्) ऋद्धिवाले परमेश्वर को (परा) पराक्रम से (अगात्) पहुंची है, (क्व स्वित्) कहां पर (सूते) उत्पन्न होती है, (अस्मिन्) इस [देहधारी] (यूथे) समूह में (नहि) नहीं [उत्पन्न होती है] ॥४१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमेश्वर के सर्वव्यापकता आदि गुणों को, विचारते हुए अपौरुषेय वेदवाणी को उसके ज्ञान का आधार समझ कर उसके विषय में जो प्रश्न करें, उसका उत्तर आगे के मन्त्र में है ॥४१॥

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—अ० ९।९।१७ और ऋग्वेद में भी कुछ भेद से है—म० १।१६४।१७॥

एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी। सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥४२॥

भाषार्थः—(सा) वह [वेदवाणी] (एकपदी) एक [ब्रह्म] के साथ व्याप्ति वाली, (द्विपदी) दो [भूत भविष्यत्] में गतिवाली, (चतुष्पदी) चार [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] में अधिकार वाली, (अष्टापदी) आठ पद [छोटाई, हलकाई, प्राप्ति, स्वतन्त्रता, बड़ाई, ईश्वरपन, जितेन्द्रियता और सत्यसङ्कल्प, आठ ऐश्वर्य] प्राप्त कराने वाली, (नवपदी) नौ [मन बुद्धि सहित दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] से प्राप्ति योग्य, (सहस्राक्षरा) सहस्रों [असंख्यात] पदार्थों में व्याप्ति वाली (बभूवुषी) होकर के (भुवनस्य) संसार की (पङ्क्तिः) फैलाव शक्ति है, (तस्याः) उस [वेदवाणी] से (समुद्राः) समुद्र [समुद्र रूप सब लोक] (अधि) अधिक अधिक (वि) विविध प्रकार से (क्षरन्ति) बहते हैं ॥४२॥

भावार्थः—यह मन्त्र गत मन्त्र का उत्तर है। वेदवाणी परमेश्वर से उत्पन्न होकर संसार में सब उत्तम ज्ञानों का भण्डार है, उसी को विचार कर विद्वान् लोग आनन्द भोगते हैं ॥४२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र पहिले आ चुका है—अ० ९। १०। २१। और कुछ भेद से ऋग्वेद में भी है—म० १। १६४। ४१, ४२॥

आरोहन् द्यामृमृतः प्राव मे वचः । उत त्वा युज्ञा

ब्रह्मंपूता वहन्त्यध्वगतो हर॑यस्त्वा वहन्ति ॥४३॥

भाषार्थः - (द्याम्) प्रकाश के ऊपर (आरोहम्) चढ़ता हुआ (अमृतः) अमर तू (मे वचः) मेरे वचन को (प्र) भले प्रकार (अव) सुन। [हे परमेश्वर!] (त्वा) तुझ को (ब्रह्मपूताः) ब्रह्माओं [वेदवेत्ताओं] द्वारा शुद्ध किये गये (यज्ञाः) यज्ञ [संगति योग्य व्यवहार] (उत्) उत्तमता से (वहन्ति) प्राप्त होते हैं, (अध्वगतः) [वेद विहित] मार्ग पर चलने वाले (हरयः) मनुष्य (त्वा) तुझ को (वहन्ति) पाते हैं ॥४३॥

भावार्थः— योगी जन प्रकाशस्वरूप जगदीश्वर का ध्यान करके तपश्चरण के साथ उसे प्राप्त करके आनन्द पाते हैं ॥४३॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग ऊपर मन्त्र ३६ में आ चुका है ॥

वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि ।

यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥४४॥

भाषार्थः—(अमर्त्य) हे अमर! [अविनाशी परमेश्वर] (ते) तेरे (तत्) उस को (वेद) मैं जानता हूं, (यत्) जो (ते) तेरा (आक्रमणम्) चढ़ाव [व्याप्ति] (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में है और (यत्) जो (ते) तेरा (सधस्थम्) सह स्थान (परमे) सब से बड़े (व्योमन्) विविध रक्षा साधन [मोक्ष पद] में है ॥४४॥

भावार्थः— योगी को योग्य है कि उस नित्य शुद्ध परमात्मा को प्रत्येक पदार्थ में साक्षात् करके मोक्ष सुख प्राप्त करे ॥४४॥

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।

सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥४५॥

भाषार्थः—(सूर्यः) सब का चलाने वाला [परमेश्वर] (द्याम्) प्रकाशमान सूर्य को (सूर्यः) वह सर्वप्रेरक (पृथिवीम्) पृथिवी को, (सूर्यः) वह सर्वनियामक (आपः) प्रत्येक काम को (अति पश्यति) निहारता है। (सूर्यः) वह सर्वनियन्ता (भूतस्य) संसार का (एकम्) एक (चक्षुः) नेत्र [नेत्र रूप जगदीश्वर] (दिवम्) आकाश पर और (महीम्) पृथिवी पर (आ रुरोह) ऊंचा हुआ है ॥४५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वह समदर्शी जगदीश्वर सब संसार और सब कामों को देखता हुआ सब को नियम में रखता है ।।४५।।

उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ।।४६।।

भाषार्थः—[संसार में] (उर्वीः) चौड़ी [दिशायें] (परिधयः) परकोटा रूप (आसन्) हुईं, (भूमिः) भूमि (वेदिः) वेदि [यज्ञ कुण्ड] रूप (अकल्पत) बनायी गई । (तत्र) उस में (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर ने (एतौ) इन (अग्नी) दो अग्नियों [सूर्य और चन्द्रमा] को (घ्रंसम्) ताप (च) और (हिमम्) शीत रूप (आ अधत्त) स्थापित किया ।।४६।।

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर के बनाये दिशाओं, भूमि, सूर्य, चन्द्र, ताप, शीत आदि से विज्ञान पूर्वक उपकार लेवें ।।४६।।

हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।
वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ।।४७।।

भाषार्थः—(हिमम्) शीत (च) और (घ्रंसम्) ताप को (आधाय) स्थापित करके, (पर्वतान्) पर्वतों को (यूपान्) जयस्तम्भ रूप (कृत्वा) बनाकर, (वर्षाज्यौ) वृष्टि को घी रूप रखने वाले (अग्नी) दोनों अग्नियों [सूर्य और चन्द्रमा] ने (स्वर्विदः) सुख पहुंचाने वाले (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के लिये (ईजाते) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] को किया है ।।४७।।

भावार्थः—परमेश्वर के सामर्थ्य से सूर्य चन्द्र आदि लोक नियमित होकर ताप, शीत, वृष्टि, पर्वत आदि की उत्पत्ति और स्थिति के कारण होते हैं ।।४७।।

स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।
तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञोऽजायत ।।४८।।

भावार्थः—(स्वर्विदः) सुख पहुंचाने वाले (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान द्वारा (अग्नि) अग्नि [सूर्य आदि] (सम् इध्यते) यथावत् प्रकाशित होता है । (तस्मात्) उसी [परमेश्वर] से (घ्रंसः) ताप (तस्मात्) उसी से (हिमः) शीत और (तस्मात्) उसी से (यज्ञः) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ।।४८।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः-परमेश्वर के सामर्थ्य से ही सूर्य चन्द्र आदि पदार्थ उत्पन्न होकर ताप शीत, संयोग वियोग द्वारा संसार का उपकार करते हैं ॥४८॥

ब्रह्म॑णा॒ग्नी वा॑वृधा॒नौ ब्रह्म॑वृद्धौ॒ ब्रह्मा॑हुतौ ।
ब्रह्मे॑द्धाव॒ग्नी ई॑जाते॒ रोहि॑तस्य स्व॒र्विदः॑ ॥४९॥

भाषार्थः—(अग्नी) दोनों अग्नि [सूर्य और चन्द्रमा] (ब्रह्मणा) वेदज्ञानद्वारा (वावृधानौ) बढ़ते हुए, (ब्रह्मवृद्धौ) अन्न से बढ़े हुए, (ब्रह्माहुतौ) जलकी आहुति [ग्रहण और दान] वाले हैं। (ब्रह्मेद्धौ) धन के साथ प्रकाश किये गये (अग्नी) उन दोनों अग्नियों ने (स्वर्विदः) सुख पहुंचाने वाले (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के लिये (ईजाते) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] को किया है ॥४९॥

भावार्थः—ईश्वर की शक्ति से यह सूर्य और चन्द्रमा प्राणियों के लिये अन्न, वृष्टि और धन के कारण होते हैं ॥४९॥

स॒त्ये अ॒न्यः स॒माहि॑तो॒ऽप्स्व॒१ न्यः समि॑ध्यते ।
ब्रह्मे॑द्धाव॒ग्नी ई॑जाते॒ रोहि॑तस्य स्व॒र्विदः॑ ॥५०॥

भाषार्थः—(अन्यः) एक [परमाणुरूप पदार्थ] (सत्ये) सत्य [नित्यपन] में (समाहितः) सर्वथा ठहरा हुआ है, (अन्यः) दूसरा [कार्यरूप पदार्थ] (अप्सु) प्रजाओं [जीवधारियों] के बीच (सम् इध्यते) यथावत् प्रकाशित होता है। (ब्रह्मेद्धौ) धन के साथ प्रकाशित किये गये......मन्त्र ४९ ॥५०॥

भावार्थः संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं, एक नित्य परमाणु रूप और दूसरे अनित्य कार्य रूप। यह सब ईश्वर की आज्ञा से संसार का उपकार करते हैं ॥५०॥

यं वातः॒ परि॑ शुम्भ॑ति॒ यं वेन्द्रो॒ ब्रह्म॑णस्पतिः॑ ।
ब्रह्मे॑द्धाव॒ग्नी ई॑जाते॒ रोहि॑तस्य स्व॒र्विदः॑ ॥५१॥

भावार्थः—(यम्) जिस [परमेश्वर] को (वातः) पवन, और (यम्) जिसको (वा) निश्चय करके (ब्रह्मणः) अन्न का (पतिः) रक्षक (इन्द्रः) मेघ (परि शुम्भति) सब ओर से प्रकाशित करता है। (ब्रह्मेद्धौ) धन के साथ प्रकाशित किये गये...... मन्त्र ४९ ॥५१॥

भावार्थः— आदि कारण परमात्मा के उपकारों को कार्यरूप पवन,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघ, सूर्य, चन्द्र आदि उपकारी पदार्थों द्वारा साक्षात् करके विद्वान् लोग उन्नति करते हैं ।।५१।।

वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् । ध्रंसं तदग्निं
कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ।।५२।।

भाषार्थः—(भूमिम्) भूमि को (वेदिम्) वेदि [यज्ञकुण्ड] रूप (कल्पयित्वा) रचकर, (दिवम्) आकाश को (दक्षिणाम्) दक्षिणा [प्रतिष्ठा का दान] रूप (कृत्वा) बनाकर, (तत्) फिर (अग्निम्) अग्नि को (ध्रंसम्) तापरूप (कृत्वा) सिरजकर, (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (वर्षेण) वृष्टि रूप (आज्येन) घी से (आत्मन्वत्) आत्मा वाला (विश्वम्) सब जगत् (चकार) बनाया ।।५२।।

भावार्थः—परमात्मा ने भूमि, आकाश आदि आधार और अग्नि आदि पदार्थ बनाकर सब जगत् को आत्म बल देकर पुरुषार्थी बनाया है । उसी सर्वशक्तिमान् की भक्ति से पुरुषार्थी मनुष्य उच्च पद पावें ।।५२।।

वर्षमाज्यं ध्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ।।५३।।

भाषार्थः—(वर्षम्) वृष्टि (आज्यम्) घीरूप, (ध्रंसः) ताप (अग्निः) अग्निरूप, (भूमिः) भूमि (वेदिः) वेदिरूप (अकल्पत) बनाई गयी । (तत्र) उस [भूमि] पर (एतान् पर्वतान्) इन पर्वतों का (अग्निः) तेज स्वरूप [परमेश्वर वा पार्थिव ताप] ने (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (ऊर्ध्वान्) ऊंचा (अकल्पयत्) बनाया ।।५३।।

भावार्थः—जैसे यज्ञ के लिये घृत आदि हव्य पदार्थ होते हैं, वैसे ही वृष्टि आदि बनाकर प्राणियों के सुख के लिये पार्थिव ताप द्वारा ईश्वर नियम से पहाड़ बने हैं ।।५३।।

गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।५४।

भाषार्थः—(गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (ऊर्ध्वान्) ऊंचे ऊंचे पहाड़ों को (कल्पयित्वा) रचकर (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (भूमिम्) भूमि से (अब्रवीत्) बोला —"(त्वयि) तुझ पर (इदम् सर्वम्) यह सब (जायताम्) उत्पन्न होवे, (यत्) जो कुछ (भूतम्) उत्पन्न है, (च) और (यत्) जो कुछ (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला है" ।।५४।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर ने अपने नित्य वेद ज्ञानद्वारा सब पर्वत आदि बनाकर सृष्टि के निवास के लिये भूमि को बनाया ।।५४।।

स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत । तस्माद्ध जज्ञ इदं
सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ।।५५।।

भाषार्थः—(सः) वह (प्रथमः) सब से पहिला (भूतः) वर्तमान हुआ और (भव्यः) आगे वर्तमान रहने वाला (यज्ञः) पूजनीय [परमेश्वर] (अजायत) प्रकट हुआ । (तस्मात् ह) उस से ही (इदं सर्वम्) यह सब (जज्ञे) उत्पन्न हुआ (यत् किं च) जो कुछ भी (इदम्) यह [जगत्] (ऋषिणा) ऋषि [बड़े ज्ञानी] (रोहितेन) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] करके (आभृतम्) सब ओर से पाला गया (विरोचते) झलकता है ।।५५।।

भावार्थः—जो अविनाशी परमात्मा भूत और भविष्यत् में वर्तमान रहता है, उसी ने अपने सामर्थ्य से यह सब जगत् रचा है । बुद्धिमान् लोग ऐसा निश्चय करके अपना सामर्थ्य बढ़ावें ।।५५।।

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ।।५६।।

भाषार्थः—(यः) जो कोई (प्रत्यङ्) प्रतिकूलगामी पुरुष (गाम्) वेदवाणी को (पदा) पग से [तिरस्कार के साथ] (स्फुरति) ठोकर मारता है, (च च) और (सूर्यम्) सूर्य [समान प्रतापी विद्वान् मनुष्य] को (मेहति=मेधति) सताता है । (तस्य ते) उस तेरी (मूलम्) जड़ को (वृश्चामि) मैं काटता हूं, तू (छायाम्) छाया [अन्धकार वा अविद्या] को (अपरम्) फिर (न) न (करवः) फैलावे ।।५६।।

भावार्थः—जो मनुष्य सत्य वेदवाणी का तिरस्कार करके विद्वानों को कष्ट देवे, उस को लोग दण्ड देकर नाश करें ।।५६।।

यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ।।५७।।

भाषार्थः—(यः) जो तू (माम्) मेरे (च च) और (अग्निम् अन्तरा) अग्नि [अग्नि समान ज्ञान प्रकाश] के बीच [होकर] (अभिच्छायम् मा) मुझ तेज पाये हुए को (अत्येषि) उलांघता है । (तस्य ते) उस तेरी (मूलम्) जड़ को (वृश्चामि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं काटता हूं, तू (छायाम्) छाया [अन्धकार वा अविद्या] को (अपरम्) फिर (न) न (करवः) फैलावे ॥५७॥

भावार्थः—जैसे जलते हुए अग्नि का प्रकाश किसी वस्तु पर पड़ता है और कोई दोनों के बीच में पड़ कर प्रकाश को रोक दे, ऐसे ही जो दुराचारी वेदविद्या और ब्रह्मचारी के बीच विघ्न डालकर उत्तम व्यवहार के प्रचारों को रोके, उसे लोग दण्ड देकर नाश करें ॥५७॥

यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।

दुःष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे । ५८ ।

भाषार्थः—(देव) हे प्रकाशमान ! (सूर्य) सूर्य [सूर्य समान तेजस्वी विद्वान् !] (यः) जो कोई [शत्रु] (अद्य) आज (त्वाम्) तेरे (च च) और (माम् अन्तरा) मेरे बीच (अयति) चले । (तस्मिन्) उस विषय में [आये हुए] (दुःष्वप्न्यम्) बुरे स्वप्न, (शमलम्) मलिन व्यवहार (च) और (दुरितानि) दुर्गतियों को (मृज्महे) हम शुद्ध करते हैं ॥५८॥

भावार्थः—जो मनुष्य दुष्टता के कारण शुभ गुणों के प्रकाशों को रोके, विद्वान् लोग उन सब विघ्नों को हटाने के लिये प्रयत्न करें ॥५८॥

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।

मान्त स्थुर्नो अरातयः ।५९॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर ! (पथः, वैदिक मार्ग से (वयम्) हम (मा प्र गाम) कभी दूर न जावें, और (मा) न (सोमिनः) ऐश्वर्य युक्त (यज्ञात्) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान व्यवहार] से [दूर जावें] । (अरातयः) अदानी लोग (नः अन्तः) हमारे बीच (मा स्थुः) न ठहरें ॥५९॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमात्मा की उपासना करते हुए सदा वैदिक मार्ग पर चल कर श्रेष्ठ कर्म करें और सुपात्रों को योग्य दान देते रहें ॥५९॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—म० १० । ५७ । १ ॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतमशीमहि ।६०॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमात्मा] (यज्ञस्य) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण, दानव्यवहार] का (प्रसाधनः) बड़ा साधक (तन्तुः) तन्तु [सूत्रात्मा रूप] होकर (देवेषु) देवों [इन्द्रियों, लोकों और विद्वानों] में (आततः) निरन्तर फैला है । (तम्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आहुतम्) उस सब ओर से ग्रहण किये गये [परमेश्वर] को (अशीमहि) हम प्राप्त होवें ॥६०॥

भावार्थः—मनुष्य उस जगत् पिता, सर्वनियन्ता, सर्वव्यापक परमात्मा को ध्यान में रखकर अपनी उन्नति करें ॥६०॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १० । ५७ । २ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥२॥

१—४६ ॥ सविता रोहितो देवता ॥ १, १२—१५, २९, ३९—४१ अनुष्टुप्, २, ८, २७, ४३ निचृज् जगती, ३ जगती, ४—७, ९, ३१—३३, ३५, ३६, ३८, ४६ त्रिष्टुप्, १० निचृदास्तारपङ्क्तिः, ११ विराट् त्रिष्टुप्, १६—२४ गायत्री, २५ भुरिग् ब्राह्मी गायत्री, २६ भुरिग् जगती, २८ आर्षी त्रिष्टुप्, ३० स्वराडार्षी जगती, ३४ पङ्क्तिः, ३७ आर्षी जगती, ४२ भुरिक् त्रिष्टुप्, ४४ भुरिगार्षी जगती, ४५ आर्षी जगती ॥

आध्यात्मोपदेशः— परमात्मा और जीवात्मा के विषय का उपदेश ॥

उद॑स्य के॒तवो॑ दि॒वि शु॒क्रा भ्राज॑न्त ईरते ।

आ॒दि॒त्यस्य॑ नृ॒चक्ष॑सो म॒हिव्र॑तस्य मी॒ढुषः॑ ॥१॥

भाषार्थः (अस्य) इस (नृचक्षसः) मनुष्यों के देखने वाले (महिव्रतस्य) बड़े नियम वाले, (मीढुषः) सुख बरसाने वाले (आदित्यस्य) अविनाशी परमात्मा के (शुक्राः) पवित्र (भ्राजन्तः) चमकते हुए (केतवः) विज्ञान (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (उत् ईरते) उदय होते हैं ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! वह सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अपनी महिमा से प्रत्येक व्यवहार में वर्तमान है, तुम उस को खोजकर अपना विज्ञान बढ़ाओ ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे ।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिशं आभाति सर्वाः ॥२॥

भाषार्थः—(**प्रज्ञानाम्**) बड़े ज्ञान कराने वाली (**दिशाम्**) दिशाओं का (**अर्चिषा**) अपने पूजनीय कर्म से (**स्वरयन्तम्**) उपदेश करने वाले (**सुपक्षम्**) सुन्दर रीति से ग्रहण करने वाले, (**आशुम्**) सर्वव्यापक, (**अर्णवे**) समुद्ररूप संसार में (**पतयन्तम्**) ऐश्वर्य करने वाले (**भुवनस्य**) संसार के (**गोपाम्**) रक्षक (**सूर्यम्**) सब के नायक परमेश्वर की (**स्वताम**) हम स्तुति करें। (**यः**) जो [परमेश्वर] (**सर्वाः**) सब (**दिशः**) दिशाओं में (**रश्मिभिः**) अपनी व्याप्तियों से (**आभाति**) निरन्तर चमकता है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सर्वव्यापक, सर्वरक्षक परमेश्वर की उपासना कर के अपनी उन्नति करें ॥२॥

यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहंनी कर्षि मायया ।
तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥३॥

भाषार्थः—(**यत्**) जिस कारण से कि तू (**प्राङ्**) सन्मुख [वा पूर्व में] जाता हुआ और (**प्रत्यङ्**) पीछे [वा पश्चिम में] जाता हुआ (**स्वधया**) अपनी धारण शक्ति से (**शीभम्**) शीघ्र (**यासि**) चलता है, और (**मायया**) अपनी बुद्धिमत्ता से (**नानारूपे**) विरुद्ध रूप वाले (**अहनी**) दोनों दिन राति को (**कर्षि**, तू बनाता है। (**तत्**) उसी कारण से, (**आदित्य**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! (**तत्**) वह (**ते**) तेरी (**महि महि**) बड़ी बड़ी (**श्रवः**)कीर्ति है, (**यत्**) कि (**एकः**) एक ही तू (**विश्वम्**) सब (**भूम परि**) बहुतायत [संसार] में सब ओर से (**जायसे**) प्रकट होता है ॥३॥

भावार्थः—अद्वितीय परमात्मा सृष्टि के आदि अन्त और स्थिति में वर्तमान रहकर विरुद्ध स्वभाव वाले प्रकाश और अन्धकार युक्त दिन रात्रि को बनाता है, वैसे ही वह जड़ और चैतन्य जगत् को रचकर सब का पोषण करता है, उसी प्रकार मनुष्य विघ्नों को हटा कर आत्मबल बढ़ा कर पुरुषार्थ करें ॥३॥

विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।
स्रुताद् यमत्त्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥४॥

भाषार्थः—(**यम्**) जिस (**विपश्चितम्**) विविध प्रकार [पार्थिव रस] एकत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले, (भ्राजमानम्) प्रकाशमान, (तरणिम्) [अन्धकार से] पार करने वाले सूर्य को (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र वर्ण वाली] (बह्वीः) बहुत [भिन्न भिन्न प्रकार वाली] (हरितः) आकर्षक किरणें (वहन्ति) ले चलती हैं। (यम्) जिस [सूर्य] को (अत्रिः) नित्य ज्ञानी [परमात्मा] ने (स्रुतात्) बहते हुए [प्रकृतिरूप समुद्र] से (दिवम्) आकाश में (उन्निनाय) ऊंचा किया है, (तम् त्वा) उस तुझ [सूर्य] को (आजिम्) मर्यादा पर (परियान्तम्) सर्वथा चलता हुआ (पश्यन्ति) वे [विद्वान्] देखते हैं ॥४॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने प्रलय के पीछे अनेक लोकों के धारक आकर्षक सूर्य को रचकर दृढ़ता से आकाश में चलाया है, विद्वान् लोग परमेश्वर की उस बड़ी महिमा को विचार कर वैदिक मार्ग पर दृढ़ होकर चलते हैं ॥४॥

इस मन्त्र से मन्त्र २४ तक सूर्य का वर्णन करके परमेश्वर की महिमा का वर्णन किया है। मन्त्र २४ की टिप्पणी देखो ॥

मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम्।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥५॥

भाषार्थः—[हे सूर्य!] (आजिम्) मर्यादा पर (परियान्तम्) सब ओर से चलते हुये (त्वा) तुझ को वे [विघ्न] (मा दभन्) न दबावें, (दुर्गान्) विघ्नों को (अति) उलाँघ कर (स्वस्ति) आनन्द के साथ (शीभम्) शीघ्र (याहि) चल। (यत्) क्योंकि (सूर्य) हे सूर्य! [लोकों के चलाने वाले पिण्डविशेष] (दिवम्) आकाश (च च) और (देवीम्) चलने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को (अहोरात्रे) दिन राति (विमिमानः) विविध प्रकार मापता हुआ (एषि) तू चलता है ॥५॥

भावार्थः - जिस प्रकार ईश्वर नियम से सूर्य अन्धकार आदि विघ्नों को मिटाकर जगत् का उपकार करता है, वैसे ही मनुष्य दोषों को त्याग कर सबको सुख पहुंचाने में प्रयत्न करें ॥५॥

स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥६॥

भाषार्थः (सूर्य) हे सूर्य! [लोकों के चलाने वाले पिण्डविशेष] (ते) तेरे (रथाय) रथ [गति विधान] के लिये (चरसे) चलने को (स्वस्ति) कल्याण है, (येन) जिसके कारण से तू (उभौ) दोनों (अन्तौ) अन्तों [आगे पीछे दोनों ओर, अथवा उत्तरायण और दक्षिणायन मार्ग] को (सद्यः) तुरन्त (परियासि) घूमता चलता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। (यम्) जिस [रथ] को (ते) तेरी (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि वर्ण वाली—मन्त्र४] (बह्वीः) बहुतसी [भिन्न भिन्न वर्ण वाली] (बहिष्ठाः) अत्यन्त बहने वाली [शीघ्रगामी] (हरितः) आकर्षक किरणें (यदि वा) अथवा (शतम्) सौ [असंख्य] (अश्वाः) व्यापक गुण [घोड़े समान] (वहन्ति) ले चलते हैं ॥६॥

भावार्थः—सूर्य गोल पिण्ड है, उसका प्रकाश आगे पीछे सब ओर होता है और वह उत्तरायण और दक्षिणायन मार्ग पर चलता और किरणों द्वारा आकर्षण और वृष्टि आदि करके लोकों का धारण पोषण करता है, उसी प्रकार मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान होकर आगा पीछा सोचकर संसार में अपना कर्तव्य पूरा करे ॥६॥

सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥७॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य! [लोकों के चलाने वाले पिण्डविशेष] (सुखम्) सुख से चलने वाले, (अंशुमन्तम्) तेजोमय, (स्योनम्) आनन्द दायक (सुवह्निम्) भले प्रकार ले चलने वाले, (वाजिनम्) बल वाले (रथम्) रथ [गति विधान] पर (अधि तिष्ठ) अधिष्ठाता हो। (यम्) जिस [रथ] को (ते) तेरी (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत, आदि वर्ण वाली—मन्त्र ४] (बह्वीः) बहुत सी [भिन्न भिन्न वर्णों वाली], (बहिष्ठाः) अत्यन्त बहने वाली [शीघ्र गामी] (हरितः) आकर्षक किरणें, (यदि वा) अथवा (शतम्) सौ [असंख्य] (अश्वाः) व्यापक गुण [घोड़े समान] (वहन्ति) ले चलते हैं ॥७॥

भावार्थः– सृष्टिकर्ता परमेश्वर ने जैसे प्रत्येक सूर्य मण्डल को अनेक लोकों की स्थिति के लिये रचा है, वैसे ही उसने मनुष्य को अनेक प्राणियों के पालन के लिये बनाया है ॥७॥

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥८॥

भाषार्थः—(सूर्यः) सूर्य [लोकों के चलाने वाले पिण्ड विशेष] ने (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि वर्ण वाली—म०४], (हिरण्यत्वचसः) तेज की त्वचा ढक्कन] रखने वाली, (बृहतीः) बड़ी [दूर दूर जाने वाली] (हरितः) आकर्षक किरणों को (रथे) अपने रथ [गति विधान] में (यातवे) चलने के लिये (अयुक्त) जोड़ा है। (शुक्रः) तेजस्वी वह (रजसः) धुन्धलेपन से (परस्तात्) दूर (अमोचि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ा गया है और (देवः) प्रकाशमान [सूर्य] (तमः) अन्धकार को (विधूय) हिला डालकर (दिवम्) आकाश में (आ अरुहत्) ऊंचा हुआ है ॥८॥

भावार्थः—जैसे सूर्य दूर पहुंचाने वाली किरणों द्वारा अन्धकार को नाश करके अनेक लोकों को आकर्षण में रखकर ऊंचा ठहरा है, वैसे ही मनुष्य अविद्या मिटाकर विद्या का प्रकाश करके प्रतिष्ठा प्राप्त करे ॥८॥

उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥९॥

भाषार्थः—(देवः) प्रकाशमान सूर्य (बृहता केतुना) बड़ी सजधज से (उत् आ अगन्) ऊंचा होकर आया है, उसने (तमः) अन्धकार को (अप अवृक्) हटा दिया है। और (ज्योतिः अभि) ज्योति को प्राप्त करके (अश्रैत्) ठहरा है। (दिव्यः) आकाशनिवासी, (सुपर्णः) सुन्दर नीति से पालन करने वाला, (अदितेः) अखण्ड प्रकृति के (पुत्रः) पुत्र [समान], (सः) उस (वीरः) वीर [विविध गति वाले सूर्य] ने (विश्वा, सब (भुवनानि) लोकों को (वि अख्यत्) प्रसिद्ध किया है ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य ने प्रकृति से उत्पन्न होकर अन्धकार मिटाकर संसार में उजाला फैलाया है, वैसेही तुम ब्रह्मचर्य आदि शुभ गुणों से तेजस्वी होकर कीर्ति बढ़ाओ ॥९॥

उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि । उभा समुद्रौ
क्रतुना वि भासि सर्वांल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥१०॥

भाषार्थः—[हे सूर्य !] (उद्यन्) ऊंचा होता हुआ तू (रश्मीन्) किरणों को (आ) सब ओर से (तनुषे) फैलाता है, और (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों [वस्तुओं] को (पुष्यसि) पुष्ट करता है। (उभौ) दोनों (समुद्रौ) समुद्रों [जड़ चेतन रूप संसार] को, (सर्वान् लोकान्) सब लोकों के (परिभूः) चारों ओर घूमता हुआ और (भ्राजमानः) चमकता हुआ तू (केतुना) अपने कर्म से (वि भासि) प्रकाशित कर देता है ॥१०॥

भावार्थः – जिस प्रकार सूर्य ऊंचा होकर सृष्टि को प्रकाशित करके पुष्ट करता है, वैसे ही सब मनुष्य विद्या से सुभूषित होकर परोपकार करें ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥११॥

भाषार्थः - (एतौ) यह दोनों [सूर्य चन्द्रमा] (पूर्वापरम्) आगे पीछे (मायया) बुद्धि से [ईश्वर नियम से] (चरतः) विचरते हैं, (क्रीडन्तौ) खेलते हुए (शिशू) दो बालक [जैसे] (अर्णवम्) अन्तरिक्ष में (परि) सब ओर (यातः) चलते हैं। (अन्यः) एक [सूर्य] (विश्वा) सब (भुवना) भुवनों को (विचष्टे) देखता है, (अन्यम्) दूसरे [चन्द्रमा] को (हरितः) [सूर्य की] आकर्षण किरणें (हैरण्यैः) तेजोमय [ना सुनैले] कामों के द्वारा (वहन्ति) ले चलती हैं ॥११॥

भावार्थः-- सूर्य और चन्द्रमा ईश्वर नियम से उत्पन्न हुए हैं, तेजस्वी सूर्य प्रकाश रहित चन्द्रमा को अपने आकर्षण में रख कर प्रकाशित और उपकारी करता है, वैसे ही मनुष्य शुभ गुणों से प्रतापी होकर दूसरों को गुणवान् करें ॥११॥

इस मन्त्र के प्रथम तीन पाद कुछ भेद से—ऋ० १० । ८५ । १८ में हैं, और पीछे-अथर्व० ७ । ८१ । १ में आ चुके हैं, और आगे—अ० १४ । १ । २३ में हैं ॥

दिवि त्वात्त्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥१२॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य ! [लोकों के चलाने वाले रवि मण्डल] (अत्त्रिः) सदा ज्ञानवान् [परमात्मा] ने (मासाय) महीना [काल विभाग] (कर्तवे) करने के लिये (त्वा) तुझ को (दिवि) आकाश में (अधारयत्) धारण किया है। (सः) वह तू (सुधृतः) अच्छी प्रकार धारण किया गया, (तपन्) तपता हुआ और (विश्वा भूता) सब प्राणियों को (अवचाकशत्) निहारता हुआ (एषि) चलता है ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा ने सूर्य को बहुत से लोकों पर आकर्षण, ताप, वृष्टि आदि पहुंचाने के लिये बनाया है, मनुष्य उसी प्रकार तेजस्वी होकर परस्पर पुरुषार्थ करें ॥१२॥

उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव ।
नन्वे३'तदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे सूर्य !] तू (उभौ) दोनों (अन्तौ) अन्तों [पूर्व पश्चिम अथवा आगे पीछे दोनों ओर] को (सम्) ठीक ठीक (अर्षसि) पहुंचता है, (इव) जैसे (वत्सः) बालक (संमातरौ) दो सामान्य [मिली हुई] माताओं को। (ननु) निश्चय करके (एतत्) इस (ब्रह्म) ईश्वर ज्ञान को (इतः पुरा) इस [समय] के पहिले से (अमी) यह (देवाः) विद्वान् लोग (विदुः) जानते हैं ॥१३॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सूर्य को ऐसी उचित रीति से बनाया है कि वह निरन्तर घूमकर सृष्टि का उपकार करे, पूर्वज विद्वान् लोग ईश्वर के ऐसे नियमों को जानकर सुधार करते रहे हैं ॥१३॥

यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ।
अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥१४॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ (समुद्रम् अनु) समुद्र [संसार] में (श्रितम्) ठहरा हुआ है, (तत्) उस को (सूर्यः) सूर्य [लोकों का चलाने वाला रवि] (सिषासति) सेवा करना चाहता है। (अस्य) उस [सूर्य] का (अध्वा) मार्ग (विततः) फैला हुआ और (महान्) बड़ा है, (यः) जो [मार्ग] (पूर्वः) आगे (च च) और (अपरः) पीछे [अथवा पूर्व और पश्चिम] है ॥१४॥

भावार्थः—यह सूर्य अपने घेरे के भीतर सब लोगों को आकर्षण, वृष्टि आदि से सेवता है, उस नियम को निरख कर विद्वान् लोग मर्यादा पर चलें ॥१४॥

तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते ॥१५॥

भाषार्थः—(तम्) उस [मार्ग] को (जूतिभिः) अपने वेगों से (सम् आप्नोति) वह [सूर्य] समाप्त करता रहता है, (ततः) उस मार्ग से (न अप चिकित्सति) वह भूल नहीं करता। (तेन) उसी कारण से (देवानाम्) विजय चाहने वालों के (अमृतस्य) अमरपन [जीवन साधन] के (भक्षम्) सेवन को (न अव रुन्धते) वे [विघ्न] नहीं रोकते हैं ॥१५॥

भावार्थः—सूर्य निरन्तर घूम कर संसार में प्रकाश करता रहता है, उसी से सब पुरुषार्थी जन जीवन सामग्री पाते हैं ॥१५॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(केतवः) किरणें (त्यम्) उस (जातवेदसम्) उत्पन्न पदार्थों को प्राप्त करने वाले, (देवम्) चलते हुए (सूर्यम्) रविमण्डल को (विश्वाय दृशे) सब के देखने के लिये (उ) अवश्य (उत् वहन्ति) ऊपर ले चलती हैं ॥१६॥

भावार्थः—जिस प्रकार सूर्य किरणों के आकर्षण से ऊंचा होकर सब पदार्थों को प्रकट करता है, वैसे ही मनुष्य विद्या और धर्म से उन्नति करके सब का उपकार करें ॥१६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । ५० । १, यजु० ७ । ४१, ८ । ४१, ३३ । ३१ तथा सामवेद पू० १ । ३ । ५ । तथा निरु० १२ । १५ में व्याख्यात है ॥

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥१७॥

भाषार्थः—(विश्वचक्षसे) सब के दिखाने वाले (सूराय) सूर्य के लिये (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ (नक्षत्रा) चलने वाले तारागण (अप यन्ति) भाग जाते हैं, (यथा) जैसे (त्ये) वे (तायवः) चोर [भाग जाते हैं] ॥१७॥

भावार्थः—सूर्य के प्रकाश से रात्रि का अन्धकार मिट जाता है, मन्द चमकने वाले नक्षत्र छिप जाते हैं और चोर लोग भाग जाते हैं, वैसे ही वेद-विज्ञान फैलने से अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि होती है ॥१७॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । ५० । २, और सामवेद में पू० ६ । १४ । ७॥

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१८॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [सूर्य] की (केतवः) जताने वाली (रश्मयः) किरणें (जनान् अनु) प्राणियों में (वि) विविध प्रकार से (अदृश्रन्) देखी गयी हैं। (यथा) जैसे (भ्राजन्तः) दहकते हुए (अग्नयः) अंगारे ॥१८॥

भावार्थः- जैसे सूर्य की किरणें धूप, बिजुली और अग्नि के रूप से संसार में फैलती हैं, वैसे ही सब मनुष्य शुभ गुण कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होकर आत्मा और समाज की उन्नति करें ॥१८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ५० । ३ । यजु० ८ । ४० । और सामवेद पू० ६ । १४ । ८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमा भासि रोचन ॥१९॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य ! तू (तरणिः) अन्धकार से पार करने वाला (विश्वदर्शतः) सब का दिखाने वाला और (ज्योतिष्कृत्) [चन्द्र आदि में] प्रकाश करने वाला (असि) है । (रोचन) हे चमकने वाले तू (विश्वम्) सब को (आ) भले प्रकार (भासि) चमकाता है ॥१६॥

भावार्थः—जैसे यह सूर्य अग्नि, बिजुली, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि पर अपना प्रकाश डालकर उन्हें चमकीला बनाता है, वैसे ही परमात्मा अपने सामर्थ्य से सब सूर्य आदि को रचता है और वैसे ही विद्वान् लोग विद्या के प्रकाश से संसार को आनन्द देते हैं ॥१६॥

इस मन्त्र पर ऋग्वेद में सायणाचार्य का लेख इस प्रकार है—"रात्रि में जलमय चन्द्र आदि बिम्बों पर सूर्य की किरणें लौटकर अन्धकार को हटाती हैं, जैसे द्वार पर रक्खे दर्पण पर गिरायी गई सूर्य की किरणें घर के भीतर के अन्धकार को हटाती हैं" ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ५० । ४, यजुर्वेद ३३ । ३६, और सामवेद पू० ६ । १४ । ६ ॥

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥२०॥

भाषार्थः—[हे सूर्य !] (देवानाम्) गतिशील [चन्द्र आदि लोकों] की (विशः) प्रजाओं को (प्रत्यङ्) सन्मुख होकर, (मानुषीः) मानुषी मनुष्य संबन्धी [पार्थिव प्रजाओं] को (प्रत्यङ्) सन्मुख होकर, और (विश्वम्) सब जगत् को (प्रत्यङ्) सन्मुख होकर (स्वः) सुख से (दृशे) देखने के लिये (उत्) ऊंचा होकर (एषि) तू प्राप्त होता है ॥२०॥

भावार्थः—सूर्य गोल आकार बहुत बड़ा पिण्ड है, इसलिये वह सब लोकों को सन्मुख दीखता है, और सब लोक उसके आकर्षण प्रकाशन आदि से सुख पाते हैं, ऐसे ही परमात्मा के सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान् होने से उसके नियम पर चलकर सब सुखी रहते हैं ॥२०॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ५० । ५, और सामवेद—पू० ६ । १४ । १० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥२१॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः ।
पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥२२॥

भाषार्थः—(पावक) हे पवित्र करने वाले ! (वरुण) हे उत्तम गुण वाले ! [सूर्य, रविमण्डल] (येन) जिस (चक्षसा) प्रकाश से (भुरण्यन्तम्) धारण और पोषण करते हुए [पराक्रम] को (जनान् अनु) उत्पन्न प्राणियों में (त्वम्) तू (पश्यसि) दिखाता है ॥२१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में हैं—१ । ५० । ६, यजुर्वेद ३३ । ३२, और साम पू० ६ । १४ । ११ ॥

भाषार्थः—[उस प्रकाश से] (सूर्य) हे सूर्य ! [रविमण्डल] (अहः) दिन को (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ (मिमानः) बनाता हुआ और (जन्मानि) उत्पन्न वस्तुओं को (पश्यन्) दिखाता हुआ तू (द्याम्) आकाश में (पृथु) फैले हुए (रजः) लोक को (वि) विविध प्रकार (एषि) प्राप्त होता है ॥२२॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से वृष्टि आदि द्वारा अपने घेरे के सब प्राणियों और लोकों को धारण पोषण करता है, वैसेही मनुष्य सर्वोपरि विराजमान परमात्मा के ज्ञान से परस्पर सहायक होकर सुखी होवें ॥२१, २२॥

मन्त्र २२ कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ५० । ७ और सामवेद पू० ६ । १४ । १२ ॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥२३॥

भाषार्थः—(देव) हे चलने वाले (सूर्य) सूर्य ! [रविमण्डल] (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि—म० ४] (हरितः) आकर्षक किरणें (शोचिष्केशम्) पवित्र प्रकाश वाले (विचक्षणम्) विविध प्रकार दिखाने वाले (त्वाम्) तुझ को (रथे) रथ [गमन विधान] में (वहन्ति) ले चलती हैं ॥२३॥

भावार्थः—यह प्रकाशमान सूर्यलोक शुक्ल, नील, पीत आदि सात किरणों द्वारा अपनी धुरी पर अपने घेरे में घूमता है। इस नियम का बनाने वाला वह परमेश्वर है ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । ५० । ८, और सामवेद पू० ६ । १४ । १४ ॥

अयु॑क्त स॒प्त शु॒न्ध्युव॒ः सूरो॒ रथ॑स्य न॒प्त्य॑ः ।
ताभि॑र्याति॒ स्वयु॑क्तिभिः ॥२४॥

भाषार्थः—(सूरः) सूर्य [लोकप्रेरक रविमण्डल] ने (रथस्य) रथ [अपने चलने के विधान] की (नप्त्यः) न गिराने वाली (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि म० ४] (शुन्ध्युवः) शुद्ध करने वाली किरणों को (अयुक्त) जोड़ा है। (ताभिः) उन (स्वयुक्तिभिः) धन से संयोग वाली [किरणों के साथ] (याति) वह चलता है ॥२४॥

भावार्थः—जो सूर्य अपनी परिधि के लोकों को अपने आकर्षण में रखकर चलाता है और जिसकी किरणें रोगों को हटाकर प्रकाश और वृष्टि आदि से संसार को धनी बनाती हैं, उस सूर्य को जगदीश्वर परमात्मा ने बनाया है ॥२४॥

मन्त्र ४ से इस मन्त्र तक सूर्य के गुणों का वर्णन करके परमेश्वर की महिमा का वर्णन किया है। अब फिर वही प्रकरण परमेश्वर विषयक चलता है ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ५० । ९ और सामवेद-पू० ६ । १४ । १३ ॥

रोहि॑तो॒ दि॒वमारु॑हत् तप॑सा तप॒स्वी । स योनि॒मैति॒
स उं जाय॒ते पुन॒ः स दे॒वाना॒मधि॑पतिर्बभूव ॥२५॥

भाषार्थः—(तपस्वी) ऐश्वर्यवान् (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (तपसा) अपने सामर्थ्य से (दिवम्) प्रत्येक व्यवहार में (आ) सब ओर से (अरुहत्) प्रकट हुआ है। (सः) वह (योनिम्) प्रत्येक कारण [कारण के कारण] को (आ एति) प्राप्त होता है, (सः उ) वह ही (पुनः) फिर (जायते) बाहिर दीखता है, (सः) वही (देवानाम्) चलने वाले लोकों का (अधिपतिः) बड़ा स्वामी (बभूव) हुआ है ॥२५॥

भावार्थः—परमेश्वर अपने सामर्थ्य से कारणों का आदि कारण होकर और बाहिर से भी सब कार्यरूप जगत् का नियन्ता बनकर सब लोकों का स्वामी है ॥२५॥

यो वि॒श्वच॑र्षणिरु॒त वि॒श्वतो॑मुखो॒ यो वि॒श्वत॑स्पाणिरु॒त वि॒श्वत॑स्पृथः ।
सं बा॒हुभ्यां॒ भर॑ति॒ सं पत॑त्रै॒र्द्यावा॑पृथि॒वी ज॒नय॑न् दे॒व एक॑ः ॥२६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (विश्वचर्षणिः) सब का देखने वाला, (उत) और (विश्वतोमुखः) सब ओर से मुख [मुख्यव्यवहार वा उपाय] वाला, (यः) जो (विश्वतस्पाणिः) सब ओर से हाथ के व्यवहार वाला, (उत) और (विश्वतस्पृथः) सब ओर से पूर्तिवाला है। (एकः) वह अकेला (देवः) प्रकाशस्वरूप [परमात्मा] (बाहुभ्याम्) दोनों [धारण आकर्षण रूप] भुजाओं से (पतत्रैः सम्) गमनशील परमाणुओं के साथ (द्यावापृथिवी) सूर्य पृथिवी को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (सम्) यथावत् (भरति) पुष्ट करता है ॥२६॥

भावार्थः—निराकार सर्वशक्तिमान् अकेले जगदीश्वर ने सब आगा पीछा देख, सब प्रकार के संयोग वियोग आदि उपायों से परमाणुओं में धारण आकर्षण सामर्थ्य देकर कुम्भकार के समान सब जगत् को रचा है, उसकी उपासना सब मनुष्य करें ॥२६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है १० । ८१ । ३, और यजुर्वेद १७ । १९ ॥

एक॑पाद् द्विप॑दो भूयो॒ वि च॑क्रमे॒ द्विपा॑त् त्रिपा॑दम॒भ्ये॑ति प॒श्चात् ।
द्विपा॑द्ध षट्प॑दो भूयो॒ वि च॑क्रमे॒ त एक॑पद॒स्त॒न्वं॑१ सम॑ासते ॥२७॥

भाषार्थः—(एकपात्) एक रस व्यापक परमेश्वर (द्विपदः) दो प्रकार की स्थितिवाले [जङ्गल स्थावर जगत्] से (भूयः) अधिक आगे (वि) फैलकर (चक्रमे) चला गया, (द्विपाद्) दो [भूत भविष्यत्] में गति वाला परमात्मा (पश्चात्) फिर (त्रिपादम्) तीन [प्रकाशमान और अप्रकाशमान और मध्य लोकों] में व्याप्ति वाले संसार में (अभि) सब ओर से (एति) प्राप्त होता है, (द्विपात्) दो [जङ्गम और स्थावर जगत्] में व्यापक ईश्वर (ह) निश्चय करके (षट्पदः) छह [पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर ऊंची और नीची दिशाओं] में स्थिति वाले ब्रह्माण्ड से (भूयः) अधिक आगे (विचक्रमे) निकल गया, (ते) वे [योगी जन] (एकपदः) एक रस व्यापक परमेश्वर की (तन्वम्) उपकार क्रिया को (सम्) निरन्तर (आसते) सेवते हैं ॥२७॥

भावार्थः—वह अकेला सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् परमात्मा जङ्गम स्थावर, भूत भविष्यत्, प्रकाशमान और अप्रकाशमान और दोनों के मध्यस्थ लोकों और पूर्व आदि दिशाओं की सीमा से बहुत बड़ा है। ऐसे परमात्मा की उपासना से महात्मा लोग अपने आत्मा की उन्नति करते हैं ॥२७॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से ऋग्वेद-१० । ११७ । ८ का पूर्वार्द्ध है, और पूरा मन्त्र ऋग्वेद का आगे अ० १३ । ३ । २५ में है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥२८॥

भाषार्थः—(यत्) जब (अतन्द्रः) निरालसी वह [परमेश्वर] (यास्यन्) चलने की इच्छा करने वाला [होता है], वह (हरितः) आकर्षक दिशाओं में (आ—अस्थात्) आकर ठहरता है, (रोचमानः) प्रकाशमान वह [जगदीश्वर] (द्वे) दो (रूपे) रूप [जड़ और चेतन जगत्] को (कृणुते) बनाता है। (आदित्य) हे अखण्ड! [परमेश्वर] (केतुमान्) ज्ञानवान् (उद्यन्) चढ़ता हुआ, और (रजांसि) लोकों को (सहमानः) जीतता हुआ तू (विश्वाः) सब (प्रवतः) आगे बढ़ने की क्रियाओं को (वि भासि) चमका देता है ॥२८॥

भावार्थः—बुद्धिमान् लोग खोज करके परमात्मा को प्रत्येक दिशा में व्यापक और सब सृष्टि का कर्ता साक्षात् करते हैं। मनुष्य उस जगदीश्वर की उपासना करके अपनी उन्नति का प्रयत्न करें ॥२८॥

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥२९॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे चराचर प्रेरक [परमेश्वर!] तू (बट्) सत्य सत्य (महान्) महान् [बड़ा] (असि) है, (आदित्य) हे अविनाशी! तू (बट्) ठीक ठीक (महान्) महान् [पूजनीय] (असि) है। (महतः ते) तुझ बड़े की (महिमा) महिमा (महान्) बड़ी है, (आदित्य) हे प्रकाश स्वरूप! (त्वम्) तू (महान्) बड़ा (असि) है ॥२९॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के बड़े होने को संसार में बड़े से बड़े भी मानते हैं, हे मनुष्यो! उसकी उपासना करके प्रयत्न से अपने को बढ़ाओ ॥२९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—८।१०१।११, यजु० ३३। ३९, और साम० पू० ३।९।४ तथा उ० ९।१।९॥

रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्व१न्तः । उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥३०॥

भाषार्थः—(पतङ्ग) हे ऐश्वर्यवान् [जगदीश्वर!] तू (दिवि) प्रकाशमान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सूर्य आदि] लोक में (रोचसे) चमकता है, तू (अन्तरिक्षे) मध्य लोक में (रोचसे) चमकता है, तू (पृथिव्याम्) पृथिवी [अप्रकाशमान] लोक में (रोचसे) चमकता है, तू (अप्सु अन्तः) प्रजाओं [प्राणियों] के भीतर (रोचसे) चमकता है। (उभा) दोनों (समुद्रौ) समुद्रों [जड़ चेतन समूहों] में (रुच्या) अपनी रुचि [प्रीति] से (वि आपिथ) तू व्यापा है, (देव) हे प्रकाश स्वरूप! (देवः) तू व्यवहार जानने वाला (महिषः) महान् और (स्वर्जित्) सुख का जिताने वाला (असि) है ॥३०॥

भावार्थः—जैसे परमात्मा अपने ऐश्वर्य से प्रत्येक लोक और पदार्थ में प्रकाशमान होकर सबका धारण पोषण करता है, वैसे ही हे मनुष्यो! तुम अपने विद्याबल से व्यवहार कुशल होकर सब को सुख पहुंचाओ ॥३०॥

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥३१॥

भाषार्थः—(परस्तात्) दूर से लेकर (अर्वाङ्) समीप में वर्तमान, (व्यध्वे) विविध मार्ग में (प्रयतः) फैला हुआ, (आशुः) शीघ्रगामी, (विपश्चित्) बुद्धिमान्, (पतयन्) पराक्रम करता हुआ, पतङ्गः) ऐश्वर्यवान्, (विष्णुः) सर्वव्यापक (विचित्तः) विविध प्रकार अनुभव किया गया, (शवसा) बल से (अधितिष्ठन्) अधिष्ठाता होता हुआ [परमेश्वर] (केतुना) अपनी बुद्धिमत्ता से (एजत्) चेष्टा करते हुए (विश्वम्) सब [जगत्] को (प्र सहते) जीत लेता है ॥३१॥

भावार्थः—हे विद्वानो! उस सर्वत्र वर्तमान महाबलवान् परमात्मा की उपासना से व्यवहारकुशल होकर अपने आत्मा को बली और महान् बनाओ ॥३१॥

चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥३२॥

भाषार्थः—(चित्रः) अद्भुत, (चिकित्वान्) समझ वाला, (महिषः) महान् (सुपर्णः) बड़ा पालन करने वाला [परमेश्वर] (रोदसी) दोनों सूर्य और पृथिवी [प्रकाशमान अप्रकाशमान लोकों] और (अन्तरिक्षम्) [उनके] मध्य लोक को (आरोचयन्) चमका देता हुआ [वर्तमान है]। (सूर्यम्) सूर्य लोक को (परि) सब ओर से (वसाने) ओढ़े हुए (अहोरात्रे) दोनों दिन और रात्रि (अस्य) इस [परमात्मा] के (विश्वा) व्यापक (वीर्याणि) वीर कर्मों को (प्र तिरतः) बढ़ाते हैं [प्रसिद्ध करते हैं] ॥३२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर बड़ा आश्चर्य स्वरूप सब सृष्टि का कर्ता है। उसी के नियम अनुसार सूर्य और पृथिवी के घुमाव से दिन रात्रि उत्पन्न होकर हमें पुरुषार्थ के योग्य बनाते हैं, हे विद्वानो ! उसी परमेश्वर को पहिचान कर अपने को बढ़ाओ ॥३२॥

तिग्मो विभ्राजन् तन्वं१ शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः । ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥३३॥

भाषार्थः—(तिग्मः) तीव्र स्वभाव, (विभ्राजन्) बड़ा चमकता हुआ, (तन्वम्) उपकार शक्ति को (शिशानः) सूक्ष्म करता हुआ, (अरंगमासः) पूरी प्राप्तियोग्य (प्रवतः) आगे बढ़ने की क्रियाओं को (रराणः) देता हुआ (ज्योतिष्मान्) प्रकाशमय, (पक्षी) पक्ष [सहारे] वाला (महिषः) महान् (वयोधाः) जीवन धारण करने वाला (कल्पमानः) समर्थ होता हुआ [जगदीश्वर] (विश्वाः) सब (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं में (आ) आकर (अस्थात्) ठहरा है ॥३३॥

भावार्थः—वह परमेश्वर तेजोमय सर्वकामनासाधक, भक्तपालक है, हे मनुष्यो ! उसी के पक्ष में रहकर अपना पक्ष बढ़ाओ ॥३३॥

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्यं उद्यन् । दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥३४॥

भाषार्थः—(चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) जीवनदाता [ब्रह्म], (देवानाम्) गतिमान् लोकों के (केतुः) जताने वाले, (ज्योतिष्मान्) तेजोमय (सूर्यः) सर्वप्रेरक [परमात्मा] (प्रदिशः) सब दिशाओं में (उद्यन्) ऊंचे होते हुए, (दिवाकरः) दिन को रचने वाले [सूर्य रूप], (शुक्रः) वीर्यवान् [परमेश्वर] ने (द्युम्नैः) अपने प्रकाशों से (तमांसि) अन्धकारों को (अति) लांघकर (विश्वा) सब (दुरितानि) कठिनाइयों को (अतारीत्) पार किया है ॥३४॥

भावार्थः – जैसे यह सूर्य अन्धकार नाश करके दिन बनाकर प्रकाशमान है, वैसे ही वह परमेश्वर सूर्य आदि लोकों को रचकर धारण आकर्षण द्वारा सब की रक्षा करता है, वैसे ही मनुष्य विद्या से प्रकाशमान होकर विघ्नों को हटावें ॥३४॥

यह और अगला मन्त्र आगे हैं—अ० २०। १०७। १३, १४॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देवानाम्) गतिमान् लोकों का (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) जीवनदाता, (मित्रस्य) सूर्य [वा प्राण] का, (वरुणस्य) चन्द्रमा [अथवा जल वा अपान] का और (अग्नेः) बिजुली का (चक्षुः) दिखाने वाला [ब्रह्म] (उत्) सर्वोपरि (अगात्) व्यापा है। (सूर्यः) सर्वप्रेरक, (जगतः) जङ्गम (च) और (तस्थुषः) स्थावर संसार के (आत्मा) आत्मा [निरन्तर व्यापक परमात्मा] ने (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमि [प्रकाशमान अप्रकाशमान लोकों] और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब प्रकार से (अप्रात्) पूर्ण किया है ॥३५॥

भावार्थः—जो अद्भुत स्वरूप परमात्मा सूर्य, चन्द्र, वायु आदि द्वारा सब प्राणियों को सुख देता है, मनुष्य उसको उपासना द्वारा जानकर आत्मोन्नति करें ॥३५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१। ११५। १ यजु:० ७। ४२ तथा १३। ४३, और साम पू० ६। १४। ३॥

उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् ।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥३६॥

भाषार्थः—(उच्चा) ऊंचे (पतन्तम्) ऐश्वर्यवान् होते हुए, (अरुणम्) सर्वव्यापक, (सुपर्णम्) बड़े पालने वाले, (दिवः) व्यवहार के (मध्ये) मध्य (तरणिम्) पार करने वाले (भ्राजमानम्) प्रकाशमान, (सवितारम्) सर्वप्रेरक (त्वा) तुझ [परमेश्वर] को (पश्याम) हम देखें, (यम्) जिसको (अजस्रम्) निरन्तर (ज्योतिः) ज्योति (आहुः) वे [विद्वान् लोग] बताते हैं, (यत्) जिस [ज्योति] को (अत्रिः) निरन्तर ज्ञानी [योगी पुरुष] ने (अविन्दत्) पाया है ॥३६॥

भावार्थः—जिस सर्वोपरि विराजमान, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर का ध्यान करके योगी जन आनन्द पाते हैं, उसी की आराधना करके हम पुरुषार्थ के साथ उन्नति करें ॥३६॥

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥३७॥

भाषार्थः—(नाथकामः) नाथ [ईश्वर] को चाहने वाला, (भीतः) डरा हुआ मैं (दिवः) आकाश की (पृष्ठे) पीठ पर (धावमानम्) दौड़ते हुए, (सुपर्णम्) बड़े पालने वाले, (अदित्याः) अखण्ड वेदवाणी के (पुत्रम्) शोधने वाले [परमेश्वर] को (उप) आदर से (यामि) पहुंचता हूं। (सः) सो तू, (सूर्य) हे सर्वप्रेरक ! [जग-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीश्वर] (नः) हमारे लिये (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) जीवन समय को (प्र तिर) बढ़ादे, (मा रिषाम) हम दुःखी न होवें, (ते) तेरी (सुमतौ) सुमति में (स्याम) हम रहें ॥३७॥

भावार्थः- मनुष्यों को योग्य है कि आकाश को भी वश में रखने वाले, सर्वपालक, शुद्ध वेदवाणी के देने वाले परमेश्वर की आज्ञा में रहकर अपने जीवन को यशस्वी बनावें और विघ्नों को हटा कर सदा आनन्द से रहें ॥३७॥

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।

स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥३८॥

भाषार्थः—(स्वर्गम्) मोक्ष सुख को (पततः) प्राप्त हुए (अस्य) इस [सर्वत्र वर्तमान] (हरेः) हरि [दुःख हरने वाले] (हंसस्य) हंस [ज्ञानी वा व्यापक परमेश्वर] के (पक्षौ) दोनों पक्ष [ग्रहण करने योग्य कार्य और कारण रूप व्यवहार] (सहस्राह्ण्यम्) सहस्रों दिनों वाले [अनन्त देश काल] में (वियतौ) फैले हुए हैं। (सः) वह [परमेश्वर] (सर्वान्) सब (देवान्) दिव्य गुणों को [अपने] (उरसि) हृदय में (उपदद्य) लेकर (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (संपश्यन्) निहारता हुआ (याति) चलता रहता है ॥३८॥

भावार्थः- जैसे परमेश्वर अन्तर्यामी रूप से अनन्त कार्य और कारण रूप जगत् की निरन्तर सुधि रखता है, वैसे ही मनुष्य परमेश्वर का विचार करता हुआ सब कामों में सदा सावधान रहे ॥३८॥

यह मन्त्र आ चुका है—अथर्व० १० । ८ । १८, और आगे फिर है—अ० १३ । ३ । १४ ॥

रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः ।

रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वर्राभरत् ॥३९॥

भाषार्थः– (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (अग्रे) पहिले से [वर्तमान होकर] (कालः) काल वाला [तीनों कालों का स्वामी], और (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमात्मा] (प्रजापतिः) प्रजाओं [उत्पन्न पदार्थों] का पालने वाला (अभवत्) हुआ। (रोहितः) सर्वोत्पादक [ईश्वर] (यज्ञानाम्) संयोग वियोग व्यवहारों का (मुखम्) मुखिया [प्रधान] है, (रोहितः) सर्वजनक [परमात्मा] ने (स्वः) आनन्द को (आ) सब प्रकार (अभरत्) धारण किया है ॥३९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सर्वोत्पादक अनादि अनन्त परमेश्वर परमाणुओं के संयोग वियोग से सृष्टि बनाकर सब का कारण हुआ है, सब लोग उसी की भक्ति कर के पुरुषार्थपूर्वक सुखी रहें ॥३९॥

रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम् ।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥४०॥

भाषार्थः—(रोहितः) सर्वजनक [परमेश्वर] (लोकः) लोकों वाला [सब लोकों का स्वामी] (अभवत्) हुआ, (रोहितः) सर्वोत्पादक [ईश्वर] ने (दिवम्) सूर्य को (अति) अत्यन्त करके (अतपत्) ताप वाला किया। (रोहितः) सर्वस्रष्टा [ईश्वर] ने (रश्मिभिः) [सूर्य की] किरणों से (भूमिम्) भूमि और (समुद्रम्) अन्तरिक्ष [आकाशस्थ चन्द्र तारागण आदि लोक समूह] को (अनु) अनुकूलता से (सं चरत्) संसार वाला किया ॥४०॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सब लोकों का स्वामी होकर सूर्य द्वारा उन में ताप पहुंचाकर उनमें घूमने और चलने की शक्ति दी है ॥४०॥

सर्वा दिशः समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिवः ।
दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥४१॥

भाषार्थः—(दिवः) प्रकाश के (अधिपतिः) अधिपति [बड़े स्वामी], (रोहितः) सर्वजनक [परमेश्वर] ने (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में (सम् अचरत्) संचार किया है। (दिवम्) सूर्य, (समुद्रम्) अन्तरिक्ष (आत्) और (भूमिम्) भूमि और (सर्वम्) सब (भूतम्) सत्ता वाले [जगत्] की (वि) विविध प्रकार (रक्षति) रक्षा करता है ॥४१॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सब में व्यापक होकर सब की रक्षा करता है, सब मनुष्य उन की उपासना करें ॥४१॥

आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः । चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद् विभाति ॥४२॥

भाषार्थः—(शुक्रः) वीर्यवान्, (अतन्द्रः) निरालसी, (रोचमानः) प्रकाशमान [परमेश्वर] (बृहतीः) बड़ी [दिशाओं] में (आरोहन्) ऊंचा होता हुआ (द्वे) दो (रूपे) रूपों [जंगम और स्थावर जगत्] को (कृणुते) बनाता है, (यत्) जब [(चित्रः) अद्भुत (चिकित्वान्) समझने वाला, (महिषः) महान् (वातमायाः) वायु में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याप्ति वाला [परमेश्वर] [उन] (लोकान् अभि) लोकों पर [व्यापक है] (यावत्) जिनको (विभाति) वह चमकाता है ॥४२॥

भावार्थः—वह जगदीश्वर सब दिशाओं में सर्वश्रेष्ठ होकर, पवन आदि में चेष्टा देता हुआ सब का अधिष्ठाता है, सब मनुष्य उसी की आज्ञा पर चलें ॥४२॥

अभ्य१न्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥४३॥

भाषार्थः—(अन्यत्) एक कोई [उजाला] (अभि) सन्मुख (एति) चलता है, (अन्यत्) दूसरा [अन्धेरा] (परि) सब ओर (अस्यते) फेंका जाता हे, [इस प्रकार] (महिषः) महान् [सूर्य लोक] (अहोरात्राभ्याम्) दिन और रात्रि [बनाने] के लिये (कल्पमानः) समर्थ होता हुआ [वर्तमान है]। (रजसि) सब लोक में (क्षियन्तम्) रहते हुए, (गातुविदम्) मार्ग जानने वाले (सूर्यम्) सर्व प्रेरक [परमेश्वर] को (नाधमानाः) प्रार्थना करते हुए (वयम्) हम लोग (हवामहे) बुलाते हैं ॥४३॥

भावार्थः—सूर्य के सर्वथा प्रकाशमान गोले के साथ घूमते हुए पृथिवी आदि लोक एक ही समय दो काम करते हैं—प्रकाश को आगे बढ़ाना और अन्धकार को पीछे की ओर बढ़ाना और आगे को हटाना, अर्थात् सूर्य न कभी अस्त और न कभी उदय होता है, पृथिवी के आधे गोले पर प्रत्येक समय प्रकाश और दूसरे आधे पर अन्धकार रहता है, ध्रुव के समीप भी सूर्य और पृथिवी के घुमाव से दिन और रात्रि अधिक बड़े होते हैं। मनुष्य ऐसी अद्भुत रचना करने वाले परमेश्वर की उपासना सदा करें ॥४३॥

पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव ।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४४॥

भाषार्थः—(पृथिवीप्रः) पृथिवी का भरपूर करने वाला, (महिषः) महान्, (नाधमानस्य) प्रार्थना करते हुए पुरुष के (गातुः) मार्ग, (अदब्धचक्षः) वे चूकदृष्टि वाले [परमेश्वर] ने (विश्वम्) सब को (परिबभूव) घेर लिया है। (विश्वम्) सब को (संपश्यन्) निहारता हुआ (सुविदत्रः) बड़ा लाभ पहुंचाने वाला (यजत्रः) सर्व पूजनीय [परमेश्वर] (इदम्) इस [वचन] को (शृणोतु) सुने, (यत्) जो (अहम्) मैं (ब्रवीमि) कहता हूं ॥४४॥

भावार्थः—सर्वान्तर्यामी, भक्तवत्सल मार्गदर्शक परमात्मा की आराधना से मनुष्य तत्त्वदर्शी, परोपकारी होकर परस्पर सुख बढ़ावें ॥४४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम् । सर्वं सं पश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४५॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [परमेश्वर] की (महिमा) महिमा (पृथिवीम्) पृथिवी और (समुद्रम्) [पृथिवी के] समुद्र से (परि) आगे है, (ज्योतिषा) ज्योति से (विभ्राजन्) विविध प्रकार चमकती हुई [वह महिमा] (द्याम्) सूर्य और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष से (परि) आगे है। (सर्वम्) सब को (संपश्यन्) निहारता हुआ, (सुविदत्रः) बड़ा लाभ पहुंचाने वाला, (यजत्रः) सर्व पूजनीय [परमेश्वर] (इदम्) इस [वचन] को (शृणोतु) सुने, (यत्) जो (अहम्) मैं (ब्रवीमि) कहता हूं ॥४५॥

भावार्थः—जिस परमात्मा की बड़ाई पृथिवी, समुद्र, सूर्य और अन्तरिक्ष आदि की सीमा से अधिक है, मनुष्य उसी जगदीश्वर के नियमों में चलकर आनन्द पावें ॥४५॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् । यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥४६॥

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि [जैसे] (जनानाम्) प्राणियों में (समिधा) प्रज्वलित करने के साधन [काष्ठ घृत अन्न आदि] से (अबोधि) जगाया गया है, [अथवा] (इव) जैसे (उषसं प्रति) उषा समय [प्रातः सायं सन्धि वेला] में (आयतीम्) आती हुई (धेनुम्) दुधैल गौ को [लोग प्राप्त होते हैं]। [अथवा] (इव) जैसे (उज्जिहानाः) ऊंचे चलते हुए (यह्वाः) बड़े पुरुष (वयाम्) उत्तम नीति को (प्र) अच्छे प्रकार [प्राप्त होते हैं], [वैसे ही] (भानवः) प्रकाशमान लोग (नाकम्) सुख स्वरूप [परमात्मा] को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र सिस्रते) प्राप्त होते रहते हैं ॥४६॥

भावार्थः—जैसे प्राणियों को भोज्य अन्न आदि से यथाविधि उत्तेजित अग्नि प्रिय होता है, जैसे गौ दूध के लिये प्रिय होती है और जैसे विचारशीलों को उचित नीति अर्थात् वेदवाणी प्रिय होती है, वैसे ही सब मनुष्य समर्थ होकर सुखस्वरूप परमात्मा को पाकर आनन्दित होवें ॥४६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—५।१।१, यजुर्वेद में १५।२४ और सामवेद में—पू० १।८।१। और उ० ८।३।१३॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥३॥

१–२६ ॥ रोहितादित्यो देवता ॥ १, १४, १८ चतुरवसानाऽष्टपदाऽऽकृतिः, १ त्र्यवसानाषट्पदा भुरिगष्टिः, ३ त्र्यवसाना षट्पदाऽष्टिः, ४ त्र्यवसाना षट्पदा धृतिः, ५, ६ चतुरवसाना सप्तपदा प्रकृतिः, ७ चतुरवसाना सप्तपदाऽतिधृतिः, ८, २२ त्र्यवसानाषट्पदा विराडत्यष्टिः, ९—१२ चतुरवसाना सप्तपदा भुरिगतिधृतिः, १३, २३ चतुरवसानाऽष्टपदा विकृतिः, १५ चतुरवसाना सप्तपदा निचृदतिधृतिः, १६, १९ चतुरवसानाऽष्टपदा भुरिगाकृतिः, १७ त्र्यवसाना सप्तपदाकृतिः, २० त्र्यवसाना षट्पदाऽत्यष्टिः, २१ चतुरवसानाऽष्टपदा निचृदाकृतिः, २४ त्र्यवसाना सप्तपदा विराट् कृतिः, २५ चतुरवसानाऽष्टपदा विराड् विकृतिः, २६ अनुष्टुप् ॥

अध्यात्मोपदेशः—परमात्मा और जीवात्मा का उपदेश ॥

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते । यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति तस्य देवस्य । क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१॥

भाषार्थः—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (इमे) इन दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (जजान) उत्पन्न किया है, (यः) जो (भुवनानि) सत्ता वाले [लोकों] को (द्रापिम्) वस्त्र [समान] (कृत्वा) बनाकर (वस्ते) ओढ़ता है। (यस्मिन्) जिस [परमेश्वर] में (षट्) छह [पूर्वादि चार और ऊपर नीचे वाली] (उर्वीः) चौड़ी (प्रदिशः) दिशायें (क्षियन्ति) रहती हैं, (याः अनु) जिनकी ओर (पतङ्गः) ऐश्वर्यवान् [परमेश्वर] (विचाकशीति) चमकता चला जाता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर !] [उस शत्रु को] (उद् वेपय) कंपा दे, (प्रक्षिणीहि) नाशकर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दों को (प्रति मुञ्च) बांध दे ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर सर्वोत्पादक, सर्वव्यापक, सर्वशासक है, वेद का उपदेश करने वाला पुरुष ईश्वर व्यवस्था से अविद्या के कारण कष्ट

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठाता है। हे मनुष्यो ! तुम उस जगत् पिता को अपना उपास्य देव जानो ॥१॥

यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति तस्य देवस्य । क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२॥

भाषार्थः—(यस्माद्) जिस [परमेश्वर] से (वाताः) पवन (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार (पवन्ते) शुद्ध करते हैं, (यस्मात्) जिससे (समुद्राः) समुद्र (अधि) मर्यादा से (विक्षरन्ति) बहते रहते हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [परमेश्वर] के लिये…[म० १] ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥२॥

यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (मारयति) मारता है, और (प्राणयति) जिलाता है, (यस्मात्) जिससे (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्ता वाले (प्राणन्ति) जीवते हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [परमेश्वर] के लिये…[म० १] ॥३॥

भावार्थः—जो परमेश्वर प्राणियों को कर्मानुसार दुःख सुख देता है और सब लोकों की रक्षा करता है, हे मनुष्यो ! तुम उसकी उपासना करो ॥३॥

यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥४॥

भाषार्थः—(यः) जो (प्राणेन) प्राण से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि को (तर्पयति) तृप्त करता है और (यः) जो (अपानेन) अपान वायु से (समुद्रस्य) समुद्र के (जठरम्) पेट को (पिपर्ति) भरता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [परमेश्वर] के लिये…[म० १] ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ।।४।।

यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः । यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ।५।।

भाषार्थः—(यस्मिन्) जिस [परमेश्वर] में (विराट्) विविध प्रकाशमान (परमेष्ठी) बड़ी स्थिति वाला [आकाश], (प्रजापतिः) प्रजापालक [सूर्य] और (वैश्वानरः) सब नायकों [रस ले चलने वाली नाड़ी आदिकों] का हितकारी (अग्निः) अग्नि [जाठर अग्नि] (पङ्क्त्या सह) अपनी पङ्क्ति [श्रेणि] के सहित (श्रितः) ठहरा है, (यः) जिस [परमेश्वर] ने (परस्य) दूर पदार्थ के (प्राणम्) प्राण को और (परमस्य) सब से ऊंचे पदार्थ के (तेजः) तेज को (आददे) अपने में ग्रहण किया है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये··· [म० १] ।।५।।

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ।।५।।

यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः । यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ।।६।।

भाषार्थः—(यस्मिन्) जिस [परमेश्वर] में (षट्) छह [पूर्वादि चार और नीचे ऊपर वाली] (उर्वीः) चौड़ी (दिशः) दिशायें (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पांच तत्त्वों] के सहित, (चतस्रः) चार प्रकार की [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्ररूप] (आपः) प्रजायें और (यज्ञस्य) [संयोग वियोग वाले संसार] के (त्रयः) तीनों [सत्त्व, रज, तम] (अक्षराः) व्यापक गुण (अधि) यथावत् (श्रिताः) ठहरे हैं। (यः) जिस ने (क्रुद्धः) क्रुद्ध होकर (रोदसी अन्तरा) दोनों सूर्य और भूमि [प्रकाशमान और अप्रकाशमान लोकों] के बीच (चक्षुषा) अपने नेत्र से (ऐक्षत) देखा है [वश में किया है]। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये···[म० १] ।।६।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥६॥

इस मन्त्र के गणिताङ्कों में छह से लेकर दो तक एक एक घटता गया है ॥

यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः। भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥७॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (अन्नादः) अन्न का खिलाने वाला, (अन्नपतिः) अन्न का स्वामी, (उत) और (यः) जो (ब्रह्मणः) वेद ज्ञान का (पतिः) रक्षक (बभूव) हुआ है, (यः) जो (भुवनस्य) संसार का (भूतः) अतीत काल में रहने वाला और (भविष्यत्) आगे रहने वाला (पतिः) स्वामी है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये··· [मन्त्र १] ॥७॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥७॥

अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥८॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (अहोरात्रैः) दिन और रातों के साथ (विमितम्) मापे गये, (त्रिंशदङ्गम्) तीस अङ्गों वाले [अर्थात् ऋग्वेद आदि चारों वेद+ब्राह्मण आदि चारों वर्ण+ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रम+अणिमा-आदि आठ ऐश्वर्य+पृथिवी आदि पांच भूत+उछालना, गिराना, सकोड़ना, फैलाना और चलना पांच कर्म जिसमें हैं] और (त्रयोदशम्) तेरह पदार्थ वाले [अर्थात् कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका—पांच ज्ञानेन्द्रिय, गुदा, उपस्थ वा मूत्रमार्ग, हाथ, पांव, वाणी—पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन बुद्धि और जीव के स्थान] (मासम्) मापने योग्य [संसार] को (निर्मिमीते) बनाता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये··· [मन्त्र १] ॥८॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने खोजने योग्य संसार में मनुष्य के सुख के लिये वेद आदि और इन्द्रिय आदि पदार्थ रचे हैं, हे मनुष्यो! उसी को इष्टदेव जानकर पुरुषार्थी बन कर उन्नति करो ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति । त आवं-वृत्रन्त्सदनादृतस्य । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् । ९॥

भाषार्थः –(हरयः) जल खींचने वाली (सुपर्णाः) अच्छे प्रकार उड़ने वाली किरणें, (अपः) जल को (वसानाः) ओढ़कर, (कृष्णम्) खींचने वाले (नियानम्) नित्य गमन स्थान अन्तरिक्ष में [होकर] (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य मण्डल को (उत् पतन्ति) चढ़ जाती हैं। (ते) वे [किरणें] (ऋतस्य) जल के (सदनात्) स्थान [सूर्य] से (आ अववृत्रन्) [ईश्वर नियम के अनुसार] लौट आती हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिए······[मन्त्र १] ॥९॥

भावार्थः – जिस ईश्वर ने सूर्य की किरणों को सूर्य तक जल खींचने, मेघ द्वारा बरसाने और सृष्टि के लिये उपकारी होने का सामर्थ्य दिया है, सब मनुष्य उसकी उपासना करें ॥९॥

इस मन्त्र का (कृष्ण·· ऋतस्य) यह भाग आ चुका है—अ० ६ । २२ । १ तथा ९ । १० । २२ और ऋग्० १ । १६४ । ४७ ॥

यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु । यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम् । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१०॥

भाषार्थः—(कश्यप) हे सर्वदर्शक ! [परमेश्वर] (यत्) जो (ते) तेरा (चन्द्रम्) आनन्द कर्म (रोचनवत्) बड़ी रुचि वाला है, और (यत्) जो (संहितम्) एकत्र किया हुआ, (चित्रभानु) विचित्र प्रकाश वाला (पुष्कलम्) पोषण कर्म हैं। (यस्मिन्) जिस [परमेश्वर के नियम] में (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्ररूप वाली] (सूर्याः) सूर्य की किरणें (साकम्) साथ साथ (आर्पिताः) जड़ी हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये······[मन्त्र १] ॥१०॥

भावार्थः –जो परमेश्वर सर्वदर्शक आनन्ददाता और पोषणप्रद है, सब लोग उसकी उपासना करें ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहदे॑नमनु॑ वस्ते पुरस्ता॑द् रथन्तरं प्रति॑ गृह्णाति पश्चात् । ज्योति॑र्वसा॑ने सद॒मप्र॑मादम् । तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रुद्धस्यैतदागो य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ । उद् वे॑पय रोहित प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च पाशा॑न् ॥११॥

भाषार्थः—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (पुरस्तात्) आगे से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (अनु) निरन्तर (वस्ते) ओढ़ता है, (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों द्वारा पार लगाने वाला जगत्] (पश्चात्) पीछे से [परमेश्वर को] (प्रति) प्रत्यक्ष (गृह्णाति) ग्रहण करता है। [दोनों, आकाश और जगत्] (अप्रमादम्) विना चूक (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप [परमात्मा] को (सदम्) सदा (वसाने) ओढ़े हुए [रहते हैं]। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये··· [म० १] ॥११॥

भावार्थः—वह परमात्मा इतना बड़ा है कि उसके भीतर यह सब आकाश और सब जगत् समा रहा है, उसकी उपासना तुम करो ॥११॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ८। १० (२)॥ ६॥

बृहद॒न्यतः॑ प॒क्ष आसी॑द् रथन्त॒रम॒न्यतः॒ सब॑ले स॒ध्रीची॑ । यद् रोहि॑तमज॑नयन्त दे॒वाः । तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रुद्धस्यैतदागो य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ । उद् वे॑पय रोहित प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च पाशा॑न् ॥१२॥

भाषार्थः—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (अन्यतः) एक ओर से (पक्षः) [उस परमेश्वर का] ग्रहण सामर्थ्य (आसीत्) था, और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों द्वारा पार लगाने वाला जगत्] (अन्यतः) दूसरी ओर से—[दोनों] (सबले) तुल्य बल वाले और (सध्रीची) साथ साथ गति वाले [थे], (यत्) जब (रोहितम्) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] को (देवाः) [उसके] उत्तम गुणों ने (अजनयन्त) प्रकट किया। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये······[म० १] ॥१२॥

भावार्थः—परस्पर मिले हुए और बहुत बड़े आकाश और जगत् परमात्मा के सामर्थ्य से वर्तमान हैं, इस बात को उसके गुणों से साक्षात् करके आत्मोन्नति करो ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स वरु॑णः सा॒यम॒ग्निर्भ॑वति॒ स मि॒त्रो भ॑वति प्रा॒तरु॒द्यन्। स स॑वि॒ता भू॒त्वान्तरि॑क्षेण याति॒ स इन्द्रो॑ भू॒त्वा त॑पति मध्य॒तो दिव॑म्। तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदा॒गो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑। उद् वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥१३॥

भाषार्थः—(सः) वह (वरुणः) श्रेष्ठ परमात्मा (सायम्) सायंकाल में (अग्निः) अग्नि [अग्नि समान तेजस्वी] (भवति) होता है, (सः) वह [परमेश्वर] (प्रातः) प्रातःकाल (उद्यन्) उदय होते हुए (मित्रः) स्नेहवान् सूर्य [के समान] (भवति) होता है। (सः) वह [परमेश्वर] (सविता) प्रेरणा करने वाला सूर्य के समान (भूत्वा) होकर (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष के साथ (याति) चलता है, (सः) वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान (भूत्वा) होकर (मध्यतः) बीच से (दिवम्) सूर्य लोक को (तपति) तपाता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये··· [म० १] ॥१३॥

भावार्थः जो परमेश्वर सायंकाल के अग्नि, और प्रातःकाल और मध्याह्न के सूर्य समान प्रतापी है, वही इन सब में अन्तर्यामी है। उसके गुणों को जान कर आगे बढ़ो ॥१३॥

स॒ह॒स्रा॒ह्ण्यं वि॑यतावस्य प॒क्षौ हरे॑र्ह॒ंसस्य॑ पत॑तः स्व॒र्गम्। स दे॒वान्त्सर्वा॒नुर॑स्युप॒दद्य॑ सं॒पश्य॑न् याति॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑। तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदा॒गो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑। उद् वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥१४॥

भाषार्थः—(स्वर्गम्) मोक्ष सुख को (पततः) प्राप्त होते हुए (अस्य) इस [सर्वत्र वर्तमान] (हरेः) हरि [दुःख हरने वाले] (हंसस्य) हंस [सर्वव्यापक परमेश्वर] के (पक्षौ) दोनों पक्ष [ग्रहण करने योग्य कार्य और कारण रूप व्यवहार] (सहस्राह्ण्यम्) सहस्रों दिनों वाले [अनन्त देशकाल] में (वियतौ) फैले हुए हैं। (सः) वह [परमेश्वर] (सर्वान्) सब (देवान्) दिव्यगुणों को [अपने] (उरसि) हृदय में (उपदद्य) लेकर (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (संपश्यन्) निरन्तर देखता हुआ (याति) चलता रहता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये······[म० १] ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः जैसे परमेश्वर अन्तर्यामी रूप से अनन्त कार्य कारण रूप जगत् की निरन्तर सुधि रखता है, वैसे ही मनुष्य परमेश्वर का विचार करता हुआ सब कामों में सदा सावधान रहे ॥१४॥

आवृत्ति छोड़कर यह मन्त्र आ चुका है- अ० १०।८।१८ तथा १३।२।३८॥

अयं स देवो अप्स्व१न्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्त्रिः। य इदं विश्वं भुवनं जजान। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१५॥

भाषार्थः—(**अयम्**) यह (**सः**) वही (**देवः**) प्रकाशमान, (**सहस्रमूलः**) सहस्रों [अनगणित] कारणों में रहने वाला, (**पुरुशाकः**) बहुत शक्तियों वाला (**अत्त्रिः**) नित्यज्ञानी [परमेश्वर[(**अप्सु**) प्रजाओं में (**अन्तः**) भीतर है। (**यः**) जिस ने (**इदम्**) इस (**विश्वम्**) सब (**भुवनम्**, सत्ता को (**जजान**) उत्पन्न किया है। (**तस्य**) उस (**क्रुद्धस्य**) क्रुद्ध (**देवस्य**) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये······[मन्त्र १] ॥१५॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वजनक परमात्मा को प्रत्येक कारण में आदि कारण खोजकर उसकी भक्ति करें ॥१५॥

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम्। यस्योर्ध्वा दिवं तन्व१स्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१६॥

भाषार्थः—(**रघुष्यदः**) शीघ्रगामी (**हरयः**) अज्ञान नाशक मनुष्य (**शुक्रम्**) वीर्यवान्, (**देवम्**) ज्ञानवान्, (**दिवि**) प्रत्येक व्यवहार में (**वर्चसा**) तेज से (**भ्राजमानम्**) प्रकाशमान [परमेश्वर] को (**वहन्ति**) पाते हैं। (**यस्य**) जिस [परमेश्वर] के (**ऊर्ध्वाः**) ऊंचे (**तन्वः**) उपकार (**दिवम्**) सूर्य को (**तपन्ति**) तपाते हैं, (**अर्वाङ्**) समीपवर्ती वह (**सुवर्णैः**) बड़े श्रेष्ठ (**पटरैः**) प्रकाशों के साथ (**वि भाति**) चमकता जाता है। (**तस्य**) उस (**क्रुद्धस्य**) क्रुद्ध (**देवस्य**) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये ·· [मन्त्र १] ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—बुद्धिमान् मनुष्य निरालसी होकर परमेश्वर की उपासना से पराक्रमी और प्रतापी होवें ॥१६॥

येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः । यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१७॥

भाषार्थः—(येन) जिस [परमेश्वर] के साथ (हरितः) दिशायें (आदित्यान्) आदित्य [अखण्ड] ब्रह्मचारियों को (संवहन्ति) मिलकर ले चलती हैं, (येन) जिस [परमेश्वर] के साथ (यज्ञेन, पूजनीय कर्म से (बहवः) बहुत से (प्रजानन्तः) भविष्य-ज्ञानी लोग (यन्ति) चलते हैं। (यद्) जो (एकम्) एक (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप परमात्मा (बहुधा) बहु प्रकार से [प्रत्येक वस्तु में] (विभाति) चमकता रहता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये...... [मन्त्र १] ॥१७॥

भावार्थः—सब मनुष्य उस अद्वितीय प्रकाशस्वरूप परमात्मा को प्रत्येक स्थान में पाकर भविष्यवेत्ता होकर सामर्थ्य बढ़ावें ॥१७॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा । त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१८॥

भाषार्थः—(सप्त) सात [इन्द्रियां—त्वचा, नेत्र, कान, जीभ, नाक, मन और बुद्धि] (एकचक्रम्) एक चक्र वाले [अकेले पहिये के समान काम करने वाले जीवात्मा से युक्त] (रथम्) रथ [वेगशील वा रथ समान, शरीर को (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं, (एकः) अकेला (सप्तनामा) सात [त्वचा आदि इन्द्रियों] से झुकने वाला [प्रवृत्ति करने वाला] (अश्वः) अश्व [अश्व रूप व्यापक जीवात्मा] (त्रिनाभि)[सत्त्व रज और तमो-गुण रूप] तीन बन्धन वाले (अजरम्) चलने वाले [वा जीर्णता रहित,] (अनर्वम्) न टूटे हुए (चक्रम्) चक्र [चक्र समान काम करने वाले अपने जीवात्मा] को [उस परमात्मा में] (वहति) ले जाता है, (यत्र) जिस [परमात्मा] में (इमा) यह (विश्वा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब (भुवना) सत्तायें (अधि) यथावत् (तस्थुः) ठहरी हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये······[मन्त्र १] ॥१८॥

भावार्थः—यह जीवात्मा इन्द्रियों द्वारा पुरुषार्थ करके संसार के सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों के यथावत् ज्ञान से जगदीश्वर को जानकर आनन्द पावे ॥१८॥

आवृत्ति छोड़कर यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—अ० ९। ९। २ और ऋग्वेद १। १६४। २॥ में है—

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम्। ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१९॥

भाषार्थः—(अष्टधा) आठ प्रकार से [यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि—योग के आठ अङ्गों द्वारा] (युक्तः) ध्यान किया गया, (उग्रः) प्रचण्ड (वह्निः) ले चलने वाला, (देवानाम्) गतिमान् [पृथिवी आदि] लोकों का (पिता) पिता [रक्षक] और (मतीनाम्) बुद्धिमानों का (जनिता) उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर, संसार को] (वहति) ले चलता है। (ऋतस्य) सत्यज्ञान के (तन्तुम्) तांते [श्रेणी] को (मनसा) अपने विज्ञान से (मिमानः) मापता हुआ, (मातरिश्वा) आकाश में गति वाला [परमेश्वर] (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में (पवते) चलता है [व्यापता है]। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये······[मन्त्र १] ॥१९॥

भावार्थः—जो परमेश्वर सर्वस्वामी, सर्वान्तर्यामी, सर्वनियन्ता है, सब मनुष्य योगद्वारा उसकी उपासना करके आनन्द पावें ॥१९॥

सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। तद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२०॥

भाषार्थः—(सम्यञ्चम्) आपस में मिले हुये (तन्तुम् अनु) तांते के साथ (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशायें (अमृतस्य) अमर [परमात्मा] के (गर्भे) गर्भ में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[वर्तमान] (गायत्र्याम् अन्तः) गाने योग्य वेदवाणी के भीतर [हैं]। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये......[मन्त्र १] ॥२०॥

भावार्थः जिस सर्वव्यापक परमेश्वर के सामर्थ्य से सब लोक लोकान्तर परस्पर आकर्षण में ठहरे हैं, हे मनुष्यो! तुम उसकी उपासना से उन्नति करो ॥२०॥

निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः। विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२१॥

भाषार्थः—(निम्रुचः) नीच गतियां [मानसिक, वाचिक और कायिक भेद से] (तिस्रः) तीन और (व्युषः) उच्च गतियां (ह) भी [मानसिक, वाचिक और कायिक भेद से] (तिस्रः) तीन हैं, (रजांसि) लोक [भूत भविष्यत् और वर्तमान भेद से] (त्रीणि) तीन और (दिवः) व्यवहार क्रियायें (अङ्ग) भी [धर्म, अर्थ और काम इन पुरुषार्थ भेदों से] (तिस्रः) तीन हैं। (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! [कर्म, उपासना और ज्ञान द्वारा] (त्रेधा) तीन प्रकार से (ते) तेरे (जनित्रम्) प्रत्यक्षपन को (विद्म) हम जानते हैं, [सत्त्व, रज और तमोगुण के भेद से] (त्रेधा) तीन प्रकार पर (देवानाम्) गति वाले लोकों के (जनिमानि) प्रादुर्भावों को (विद्म) हम जानते हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये...... [मन्त्र १] ॥२१॥

भावार्थः - मनुष्यों को योग्य है कि मानसिक, वाचिक और कायिक अवनति अर्थात् नीच गति को छोड़ कर मानसिक वाचिक और कायिक उन्नति करके भूत भविष्यत् और वर्तमान का विचार करें और पुरुषार्थ पूर्वक परमात्मा के तत्त्वज्ञान से आनन्द पावें ॥२१॥

वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२२॥

भाषार्थः—(यः) जिस (जायमानः) प्रत्यक्ष होते हुए [परमेश्वर] ने (पृथिवीम्) पृथिवी को (वि और्णोत्) फैलाया, और (समुद्रम्) समुद्र को (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में (आ) सब ओर से (अदधात्) ठहराया। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये······[मन्त्र १] ॥२२॥

भावार्थः— विद्वान् लोग परमात्मा को पृथिवी आदि लोकों का कर्ता साक्षात् करके धर्म में सदा उन्नति करें ॥२२॥

त्वम॑ग्ने क्रतु॑भिः के॒तुभि॑र्हि॒तो॒३॑ऽर्कः समि॑द्ध॒ उद॑रोचथा दि॒वि। किम॒भ्या॑र्चन्म॒रुतः॒ पृश्नि॑मातरो॒ यद् रोहि॑त॒मज॑नयन्त दे॒वाः। तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदा॒गो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्रा॒ह्म॒णं जि॒नाति॑। उद् वे॑पय रोहि॒त प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मु॒ञ्च॒ पाशा॑न् ॥२३॥

भावार्थः— (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (त्वम्) तू (क्रतुभिः) अपने कर्मों से और (केतुभिः) बुद्धियों से (हितः) हितकारी होकर (समिद्धः) प्रकाशित (अर्कः) सूर्य के समान (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (उत्) ऊपर (अरोचथाः) चमका है। (पृश्निमातरः) पूंछने योग्य वेदवाणी को माता समान मान करने वाले (मरुतः) शूर पुरुषों ने (किम्) किसको [अर्थात् ब्रह्म को ही] (अभि) सब ओर से (आर्चन्) पूजा है, (यत्) जब (रोहितम्) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] को (देवाः) [उसके] उत्तम गुणों ने (अजनयन्त) प्रकट किया है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये······[मन्त्र १] ॥२३॥

भावार्थः—वेदवेत्ता पराक्रमी लोग सर्वहितकारी परमेश्वर को उसके गुण कर्म स्वभाव से जानकर सदा आनन्द पाते हैं ॥२३॥

इस मन्त्र का चौथा पाद ऊपर मन्त्र १२ में आ चुका है। इस मन्त्र का मिलान करो—अ० १३।१।३॥

य आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑ उ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः। यो॒३॑ऽस्येशे॑ द्वि॒पदो॒ यश्चतु॑ष्पदः। तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदा॒गो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्रा॒ह्म॒णं जि॒नाति॑। उद् वे॑पय रोहि॒त प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मु॒ञ्च॒ पाशा॑न् ॥२४॥

भावार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (आत्मदाः) प्राण दाता और (बलदाः) बल दाता है, (यस्य यस्य) जिसके ही (प्रशिषम्) उत्तम शासन को (विश्वे) सब (देवाः) गतिमान् सूर्य चन्द्र आदि लोक (उपासते) मानते हैं। (यः) जो (अस्य) इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(द्विपदः) दो पाये [समूह] का और (यः) जो (चतुष्पदः) चौपाये [समूह] का (ईशे=ईष्टे) ईश्वर है। (तस्य) वह (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये···[मन्त्र १] ॥२४॥

भावार्थः—जिस जगदीश्वर के शासन से सब सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि लोक परस्पर धारण आकर्षण द्वारा अपने अपने मार्ग पर चलते हैं, और मनुष्य गौ आदि सब प्राणी मर्यादा में रहते हैं, उस परमात्मा की भक्ति से मनुष्य आत्मबल बढ़ावें ॥२४॥

आवृत्ति छोड़ कर यह मन्त्र आ चुका है। अ० ४। २। १ और कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १२१। २, ३॥ और यजु० २५। १३, ११॥

एकंपाद् द्विंपदो भूयो वि चंक्रमे द्विपात् त्रिपांदमभ्येति पश्चात्। चतुंष्पाच्चक्रे द्विपंदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तिमुंपतिष्ठमानः। तस्यं देवस्यं क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेंपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२५॥

भाषार्थः—(एकपात्) एक रस व्यापक परमेश्वर (द्विपदः) दो प्रकार की स्थिति वाले [जङ्गम स्थावर जगत्] से (भूयः) अधिक आगे (वि) फैलकर (चक्रमे) चला गया, (द्विपात्) दो [भूत भविष्यत्] में गति वाला परमात्मा (पश्चात्) फिर (त्रिपादम्) तीन लोक में [सूर्य, भूमि अर्थात् प्रकाशमान और अप्रकाशमान और मध्यलोक में] (अभि) सब ओर से (एति) प्राप्त होता है। (चतुष्पाद्) चारों [पूर्व आदि चारों दिशाओं] में व्यापक परमेश्वर ने (द्विपदाम्) दो प्रकार की स्थिति वाले [जङ्गम और स्थावरों] के (अभिस्वरे) सब ओर से पुकारने पर (उपतिष्ठमानः) समीप ठहरते हुए और (पङ्क्तिम्) पांति [सृष्टि की श्रेणी] को (संपश्यन्) निहारते हुए (चक्रे) [कर्तव्य को] किया है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद् वेपय) कंपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दों को (प्रति मुञ्च) बांध दे ॥२५॥

भावार्थः—जो सर्वव्यापक परमात्मा सदा वर्तमान रहकर सब संसार का पालन करता है, सब मनुष्य उस की उपासना पूर्वक विघ्नों से बचकर आनन्द पावें ॥२५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र के प्रथम दो पाद आ चुके हैं—अ० १३। २। २७ और आवृत्ति छोड़ कर शेष मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है–१०। ११७। ८॥

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥२६॥

भाषार्थः—(कृष्णायाः) कृष्ण वर्णवाली (रात्र्याः) रात्रि से [प्रलय की रात्रि के पीछे] (पुत्रः) शुद्ध करने वाला, (अर्जुनः) रस प्राप्त करने वाला, (वत्सः) निवास देनेवाला सूर्य [जिस परमेश्वर के नियम से] (अजायत) प्रकट हुआ है। (सः ह) वही (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (द्याम् अधि) उस सूर्य में (रोहति) प्रकट होता है, उस ने (रुहः) सृष्टि की सामग्रियों को (रुरोह) उत्पन्न किया है ॥२६॥

भावार्थः—जिस सर्वव्यापक परमेश्वर के नियम से प्रलय के पीछे सूर्य आदि लोक उत्पन्न होते हैं, मनुष्य उस की आराधना कर के सदा सुखी रहें ॥२६॥

इस मन्त्र का चौथा पाद आ चुका है—अ० १३। १। ४॥

इति तृतीयोऽनुवाकः॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः॥

सूक्तम् ॥४॥ [षट् पर्यायाः]॥

१—५६॥ रोहितादित्यो देवता॥

आध्यात्मोपदेशः—परमात्मा और जीवात्मा के विषय का उपदेश॥

पर्यायः॥ १॥

१—१३॥ १, २, ४–११ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ३ निचृत् प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १२ साम्नी पङ्क्तिः, १३ आसुर्यनुष्टुप्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥१॥

भाषार्थः—(सः) वह (सविता) सब का प्रेरक [परमेश्वर] (दिवः) आकाश [वा व्यवहार] की (पृष्ठे) पीठ पर [वर्तमान होकर] (अवचाकशत्) देखता हुआ (स्वः) आनन्द को (एति) प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर अत्यन्त सूक्ष्म और अत्यन्त विशाल आकाश से भी सूक्ष्म और विशाल होकर और प्रत्येक व्यवहार में वर्तमान रहकर सर्व-नियन्ता और आनन्द स्वरूप है ॥१॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥२॥

भाषार्थः—(महेन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान् (आवृतः) सब ओर से ढका हुआ [अन्तर्यामी परमेश्वर] (रश्मिभिः) किरणों द्वारा (आभृतम्) सब प्रकार पुष्ट किये हुए (नभः) मेघमण्डल में (एति) व्यापक है ॥२॥

भावार्थः—अन्तर्यामी परमात्मा के नियम से जल किरणों द्वारा खिंच कर मेघमण्डल में वृष्टि के लिये वर्तमान होता है ॥२॥

मन्त्र ३, ४, ५, ६ और ७ के पीछे आवृत्ति का चिह्न गवर्नमेन्ट बुकडिपो बम्बई और वैदिक यन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों में दिया है, अर्थात् मन्त्र २ की आवृत्ति मानी है। परन्तु यह चिह्न प० सेवक लाल वाले पुस्तक में नहीं है और न कुछ लेख इसके विषय में ग्रिफ़िथ साहिब और ह्विटनी साहिब के अनुवाद में है ॥

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥३॥

भाषार्थः—(सः) वह [परमेश्वर] (धाता) पोषण करने वाला और (सः) वह (विधर्ता) विविध प्रकार धारण करने वाला है, (सः) वह (वायुः) व्यापक [वा महाबली परमात्मा] और (उच्छ्रितम्) ऊंचा वर्तमान (नभः) प्रबन्धकर्ता [वा नायक ब्रह्म] है ॥३॥

भावार्थः उस सर्वपोषक सर्वधारक परमात्मा की उपासना से मनुष्य आत्मा की उन्नति करें ॥३॥

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सः) वह [परमेश्वर] (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाला, (सः) वह (वरुणः) श्रेष्ठ, (सः) वह (रुद्रः) ज्ञानवान् और (सः) वह (महादेवः) महादानी है ॥४॥

भावार्थः—मन्त्र ३ के समान है ॥४॥

सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥५॥

भाषार्थः—(सः) वह [परमेश्वर] (अग्निः) व्यापक (सः उ) वही (सूर्यः) प्रेरक, (सः उ) वही (एव) निश्चय करके (महायमः) बड़ा न्यायकारी है ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र ३ के समान है ॥५॥

तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥६॥

भाषार्थः – (तम्) उस [परमात्मा] को (एकशीर्षाणः) एक [परमात्मा] को शिर [प्रधान] मानने वाले (दश) दस [चार दिशाओं, चार मध्य दिशाओं और ऊपर नीचे की दिशाओं से सम्बन्ध वाले] (युताः) मिले हुए (वत्साः) निवास स्थान [सब लोक] (उप तिष्ठन्ति) सेवते हैं ॥६॥

भावार्थः जो परमात्मा सूर्य आदि सब लोकों को धारण आकर्षण द्वारा अपनी आज्ञा में रखता है, उसकी भक्ति सब मनुष्य करें ॥६॥

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥७॥

भाषार्थः—वे [सब लोक] [परमात्मा के] (पश्चात्) पीछे (प्राञ्चः) आगे बढ़ते हुए (आ) सब ओर से (तन्वन्ति) फैलते हैं, (यत्) जब वह (उदेति) उदय होता है और (वि भासति) विविध प्रकार चमकता है ॥७॥

भावार्थः – विवेकी योगी जन अनुभव करते हैं कि यह सब लोक परमात्मा के ही धारण आकर्षण नियमों में चलते हैं ॥७॥

तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥८॥

भाषार्थः—(तस्य) उस का [परमेश्वर का बनाया हुआ] (एषः) यह (मारुतः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यों का (गणः) समूह है, [क्योंकि] (सः) वह [परमेश्वर] (शिक्याकृतः) छींके में किये हुए सा (एति) व्यापक है ॥८॥

भावार्थः - परमेश्वर मनुष्यों को उन के कर्मानुसार बनाता है, वह सब में ऐसा व्यापक है जैसे कोई पदार्थ छींके के भीतर रक्खा हो ॥८॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः । ९॥

भाषार्थः—(महेन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान् (आवृतः) सब ओर से ढका हुआ [अन्तर्यामी परमेश्वर] (रश्मिभिः) किरणों द्वारा (आभृतम्) सब प्रकार पुष्ट किये हुए (नभः) मेघ मण्डल में (एति) व्यापक है ॥९॥

भावार्थः—मन्त्र २ के समान है ॥९॥

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—मन्त्र २ ॥

तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥१०॥

भाषार्थः—(तस्य) उस [परमेश्वर] के (हिताः) धरे हुए [शरीर के] (इमे) यह (नव) नौ [दो कान, दो आँख, दो नथने, एक मुख, एक गुदा और एक उपस्थ] (कोशाः) आधार, (विष्टम्भाः) विशेष स्तम्भ [आलम्ब, सहारे] [अपनी शक्तियों सहित] (नवधा) नव प्रकार से हैं ॥१०॥

भावार्थः—परमेश्वर ने नव द्वार वाले शरीर में श्रोत्रादि अद्भुत गोलक बनाकर उन में श्रवण आदि नव अद्भुत शक्तियां रक्खी हैं ॥१०॥

स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥११॥

भाषार्थः—(सः) वह [परमेश्वर] (प्रजाभ्यः) उत्पन्न जीवों के हित के लिये [उन सब को] (वि) विविध प्रकार (पश्यति) देखता है, (यत्) जो (प्राणति) श्वास लेता है (च च) और (यत्) जो (न) नहीं [श्वास लेता है] ॥११॥

भावार्थः - जो परमात्मा जङ्गम और स्थावर जगत् की यथावत् सुधि लेकर सब का पालन करता है, उसकी उपासना सब मनुष्य करें ॥११॥

इसका मिलान आगे मन्त्र १९ से करो ॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥१२॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (सहः) सामर्थ्य (तम्) उस [परमात्मा] को (निगतम्) निश्चय करके प्राप्त है, (सः एषः) वह आप (एकः) एक, (एकवृत्) अकेला वर्तमान, (एकः एव) एक ही है ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—उस अद्वितीय परमात्मा में पूर्वोक्त अद्‌भुत सामर्थ्य है, कोई दूसरा न तो उसके तुल्य है और न उस से अधिक है, वही सब जगत् का स्वामी है ।।१२।।

एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ।।१३।।

भाषार्थः—(अस्मिन्) इस [परमात्मा] में (एते) यह सब (देवाः) चलने वाले [पृथिवी आदि लोक] (एकवृतः) एक [परमात्मा] में वर्तमान (भवन्ति) रहते हैं ।।१३।।

भावार्थः—यह सब जगत् प्रलय में कारण रूप से और सृष्टि में कार्य रूप से उसी परमात्मा के सामर्थ्य के बीच विद्यमान रहता है ।।१३।।

पर्यायः ।।२।।

१४—२१ ।। १४ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्, १५ आसुरी पङ्क्तिः, १६, १९ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १७, १८ आसुरी गायत्री, २० साम्नी पङ्क्तिः, २१ आसुर्यनुष्टुप् ।।

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं

चान्नं चान्नाद्यं च ।।१४।

य एतं देवमेकवृतं वेद ।।१५।।

भाषार्थः—(कीर्तिः) कीर्ति [ईश्वर गुणों के कीर्त्तन और विद्या आदि गुणों से बड़ाई] (च) और (यशः) यश [शूरता आदि से नाम] (च) और (अम्भः) पराक्रम (च) और (नभः) प्रबन्ध सामर्थ्य (च) और (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्रह्मज्ञान का तेज (च) और (अन्नम्) अन्न (च च) और (अन्नाद्यम्) अन्न के समान खाने योग्य द्रव्य [उस पुरुष के लिये होते हैं] ।।१४।।

(यः) जो (एतम्) इस (देवम्) प्रकाशमय (एकवृतम्) अकेले वर्तमान [परमात्मा] को (वेद) जानता है ।।१५।।

भावार्थः जो पुरुष सर्वशक्तिमान् अद्वितीय परमात्मा के प्रकाशमय स्वरूप को साक्षात् करता है, वह संसार में उन्नति करके सब प्रकार का आनन्द पाता है ।।१४, १५।।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।

य एतं देवमेकवृतं वेद ।।१६।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥१७॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥१८॥

भाषार्थः वह [अकेला वर्तमान—म० १५] (न) न (द्वितीयः) दूसरा, (न) न (तृतीयः) तीसरा, (न) न (चतुर्थः) चौथा (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है ॥१६॥

वह (न) न (पञ्चमः) पांचवां, (न) न (षष्ठः) छठा, (न) न (सप्तमः) सातवां (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है ॥१७॥

वह (न) न (अष्टमः) आठवां, (न) न (नवमः) नवां, (न) न (दशमः) दसवां (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है ॥१८॥

भावार्थः—परमेश्वर एक है, उस से भिन्न कोई भी दूसरा, तीसरा आदि ईश्वर नहीं है, सब लोग उसी की उपासना करें। इन मन्त्रों में दो से लेकर दस तक दूसरे ईश्वर होने का निषेध इसलिये किया है कि सब संख्या का मूल एक[१] अङ्क है, इसी एक को दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ और नौ वार गणने से २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ और ९ अङ्क बनते हैं, और एक पर शून्य देने से १० दस का अङ्क बनता है। उस से वेद ने एक ईश्वर का निश्चय कराके दूसरे ईश्वर होने का सर्वथा निषेध किया है, अर्थात् उस के एकपने में भी भेद नहीं और वह शून्य भी नहीं, किन्तु वह सच्चिदानन्द गुणयुक्त एकरस परमात्मा है ॥१६-१८॥

१—यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ब्रह्म विद्या विषय पृ० ९०, ९१ में व्याख्यात हैं, और उन्हीं के अर्थ से यहां अर्थ किया गया है ॥

२—मन्त्र १६ से लेकर २२ तक मन्त्रों के पीछे आवृत्ति का चिह्न गवर्नमेन्ट बुक डिपो बम्बई और वैदिक यन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों में दिया है, अर्थात् मन्त्र १५ की आवृत्ति मानी है। परन्तु यह चिह्न पं० सेवक लाल वाले पुस्तक में नहीं है और न कुछ इस के विषय में ग्रिफ्फिथ साहिब और ह्विटनी साहिब के अनुवाद में है और न महर्षि दयानन्द कृत उक्त पुस्तक में आवृत्ति का चिह्न है ॥

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सः) वह [परमेश्वर] (सर्वस्मै) सब [जगत्] के हित के लिये [उस सब को] (वि) विविध प्रकार (पश्यति) देखता है, (यत्) जो (प्राणति) श्वास लेता है, (च च) और (यत्) जो (न) नहीं [श्वास लेता है] ॥१९॥

भावार्थः—ऊपर मन्त्र ११ देखो, उसी के समान भावार्थ है ॥१९॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥२०॥

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥२१॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (सहः) सामर्थ्य (तम्) उस [परमात्मा] को (निगतम्) निश्चय करके प्राप्त है, (सः एषः) वह आप (एकः) एक, (एकवृत्) अकेला वर्तमान, (एकः एव) एक ही है ॥२०॥

(अस्मिन्) इस [परमात्मा] में (सर्वे) सब (देवाः) चलने वाले [पृथिवी आदि लोक] (एकवृतः) एक [परमात्मा] में वर्त्तमान (भवन्ति) रहते हैं ॥२१॥

भावार्थः ऊपर मन्त्र १२ और १३ देखो और वही भावार्थ समझो । ॥२०, २१ ॥

यह दोनों मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ब्रह्मविद्या विषय पृ० ९०, ९१ में व्याख्यात हैं ॥

पर्यायः ॥३॥

२२—२८ ॥ २२ भुरिक् प्राजापत्या त्रिष्टुप्, २३ आर्ची गायत्री, २४ आसुरी पङ्क्तिः, २५ आसुरी गायत्री, २६ आर्च्यनुष्टुप्, २७, २८ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ॥

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च । य एतं देवमेकवृतं वेद ।२२॥

भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च । २३।

य एतं देवमेकवृतं वेद । २४॥

भाषार्थः—(ब्रह्म) वेद (च) और (तपः) ऐश्वर्य (च) और (कीर्तिः) [ईश्वर गुणों के कीर्तन और विद्या आदि गुणों से बड़ाई] (च) और (यशः) यश [शूरता आदि से नाम] (च) और (अम्भः) पराक्रम (च) और (नभः) प्रबन्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्यं (च) और (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्रह्मज्ञान का तेज (च) और (अन्नम्) अन्न (च च) और (अन्नाद्यम्) अन्न के समान खाने योग्य द्रव्य ॥२२॥ (भूतम्) अतीत वस्तु (च) और (भव्यम्) होनहार वस्तु (च) और (श्रद्धा) श्रद्धा [विश्वास] (च) और (रुचिः) रुचि [प्रीति] (च) और (स्वर्गः) स्वर्ग [आनन्द] (च च) और (स्वधा) आत्मधारण शक्ति [उस पुरुष के लिये होते हैं] ॥२३॥ (यः) जो (एतम्) इस (देवम्) प्रकाशमय (एकवृतम्) अकेले वर्तमान [परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२४॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा के गुणों को साक्षात् करते हैं, वे ही संसार में अनेक प्रकार आत्मोन्नति करके अनेक आनन्द पाते हैं ॥२२-२४॥

मन्त्र २२ के लिये ऊपर मन्त्र १४ और २४ के लिये मन्त्र १५ देखो ॥

स एव मृत्युः सो३ऽमृतं सो३ऽभ्वं१ स रक्षः ॥२५॥

भाषार्थः—(सः एव) वही [परमेश्वर] (मृत्युः) मरण करने वाला (सः) वही (अमृतम्) अमरपन का कारण, (सः) वही (अभ्वम्) महान् (सः) वही (रक्षः) रक्षा करने वाला [परब्रह्म] है ॥२५॥

भावार्थः—परमात्मा की उपासना करके मनुष्य क्लेशों से बचकर सुख पाते हुए महान् रक्षक बनें ॥२५॥

स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ॥२६॥

भाषार्थः—(सः) वह (रुद्रः) ज्ञान दाता, (वसुवनिः) श्रेष्ठों का उपकारी [परमेश्वर] (वसुदेये) श्रेष्ठों करके देने योग्य (नमोवाके) नमस्कार वचन में (वषट्कारः) दान करने वाला (अनु) निरन्तर (संहितः) स्थापित है ॥२६॥

भावार्थः—वह परमात्मा वेद द्वारा ज्ञान देकर श्रेष्ठों का मान करता है और उपासकों को सदा सुख देता है ॥२६॥

तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥२७॥

भाषार्थः—(इमे सर्वे) यह सब (यातवः) चलने वाले [पृथिवी आदि लोक और प्राणी] (तस्य) उस [परमेश्वर] के (प्रशिषम्) उत्तम शासन को (उप आसते) मानते हैं ॥२७॥

भावार्थः—परमात्मा के ही नियम में सब लोक और सब प्राणी चलते हैं ॥२७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥२८॥

भाषार्थः—(तस्य) उस [परमात्मा] के (वशे) वश में (अमू) वे (सर्वा) सब (नक्षत्रा) नक्षत्र [चलनेवाले तारा गण] (चन्द्रमसा सह) चन्द्रमा के साथ [वर्तमान हैं] ॥२८॥

भावार्थः—उस परमात्मा के आकर्षण धारण नियम में यह सब तारा-गण आदि ठहरे रहकर घूमते हैं ॥२८॥

पर्यायः ॥४॥

२९—४५, ॥ २९, ३३, ३९, ४०, ४५ आसुरी गायत्री; ३०, ३२, ३५, ३६, ४२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ३१, साम्नी पङ्क्तिः, ३४, ३७, ३८ साम्न्युष्णिक्, ४१ साम्नी बृहती, ४३ आर्षी गायत्री, ४४ साम्न्यनुष्टुप् ॥

स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ॥२९॥

भाषार्थः—(सः) वह [कारण रूप परमात्मा] (वै) अवश्य (अह्नः) [कार्यरूप] दिन से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारण रूप] से (अहः) [कार्यरूप] दिन (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥२९॥

भावार्थः—कार्यरूप जगत् को देखकर विद्वान् लोग निश्चय करते हैं कि सब दिन आदि सृष्टि का बनाने वाला सर्वशक्तिमान् अन्तर्यामी परमेश्वर है ॥२९॥

स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥३०॥

भाषार्थः—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (रात्र्याः) [कार्य-रूप] रात्रि से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारण रूप] से (रात्रिः) रात्रि (अजायत) उत्पन्न हुई है ॥३०॥

भावार्थः—मन्त्र २९ के समान है ॥३०॥

स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥३१॥

भाषार्थः—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (अन्तरिक्षात्) [कार्य रूप] अन्तरिक्ष से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारण रूप] से (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३१॥

भावार्थः—मन्त्र २९ के समान ॥३१॥

स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥३२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सः) वह [कारण रूप ईश्वर] (वै) अवश्य (वायोः) कार्यरूप पवन से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (वायुः) पवन (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३२॥

भावार्थः—मन्त्र २९ के समान है ॥३२॥

स वै दि॒वो᳚ऽजायत॒ तस्मा॑द् द्यौर॒ध्य॑जायत ॥३३॥

भाषार्थः—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (दिवः) [कार्यरूप] सूर्य से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (द्यौः) सूर्य (अधि) यथाविधि (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३३॥

भावार्थः—मन्त्र २९ के समान ॥३३॥

स वै दि॒ग्भ्यो᳚ऽजायत॒ तस्मा॑द् दिशो᳚ऽजायन्त ॥३४॥

भाषार्थः—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (दिग्भ्यः) [कार्य-रूप] दिशाओं से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारण रूप] से (दिशः) दिशायें (अजायन्त) उत्पन्न हुई हैं ॥३४॥

भावार्थः—मन्त्र २९ के समान ॥३४॥

स वै भूमे॑रजायत॒ तस्मा॑द् भूमि॑रजायत ॥३५॥

भाषार्थः—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (भूमेः) [कार्यरूप] भूमि से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (भूमिः) भूमि (अजायत) उत्पन्न हुई है ॥३५॥

भावार्थः—मन्त्र २९ के समान ॥३५॥

स वा अ॒ग्नेर॑जायत॒ तस्मा॑द॒ग्निर॑जायत ॥३६॥

भाषार्थः—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (अग्नेः) [कार्य-रूप] अग्नि से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (अग्निः) अग्नि [सूर्य, बिजुली आदि तेज] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३६॥

भावार्थः—मन्त्र २९ के समान ॥३६॥

स वा अ॒द्भ्यो᳚ऽजायत॒ तस्मा॑दा॒पो᳚ऽजायन्त ॥३७॥

भाषार्थः—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (अद्भ्यः) [कार्य-रूप] जल से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (आपः) जल [वृष्टि नदी कूप आदि के] (अजायन्त) उत्पन्न हुए हैं ॥३७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मन्त्र २९ के समान ।।३७।।

स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ।।३८।।

भाषार्थः—(सः) वह [परमात्मा] (वै) अवश्य (ऋग्भ्यः) ऋचाओं [स्तुति योग्य वेद वाणियों] से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [परमात्मा] से (ऋचः) ऋचायें (अजायन्त) उत्पन्न हुई हैं ।।३८।।

भावार्थः—परमात्मा के सत्यगुण वेदों से जाने जाते हैं, जिनको उसने मनुष्यों के हित के लिये उत्पन्न किया है ।।३८।।

स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ।।३९।।

भाषार्थः—(सः) [परमात्मा] (वै) अवश्य (यज्ञात्) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [परमात्मा] से (यज्ञः) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ।।३९।।

भावार्थः—परमात्मा ने परमाणुओं के संयोग वियोग से सृष्टि रचकर अपनी महिमा दिखायी है ।।३९।।

स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् । ४०।।

भाषार्थः—(सः) वह [परमात्मा] (यज्ञः) संयोग वियोग करने वाला है, (तस्य) उस [परमात्मा] का (यज्ञः) संयोग वियोग व्यवहार है (सः) वह [परमात्मा] (यज्ञस्य) संयोग वियोग व्यवहार का (शिरः) शिर [प्रधान] (कृतम्) किया गया है ।।४०।।

भावार्थः—परमात्मा संसार में परमाणुओं का संयोग वियोग करने से सृष्टि और प्रलय का आदि कारण है, ऐसा विद्वान् मानते हैं ।।४०।।

स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ।।४१।।
पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ।।४२।।

भाषार्थः—(सः) वह [परमात्मा] (भद्राय) श्रेष्ठ (पुरुषाय) पुरुष के लिये (वा) अवश्य (वि) विविध प्रकार (द्योतते) प्रकाशमान होता है, (सः) वह (पापाय) पापी के लिये (वा) अवश्य (स्तनयति) मेघ समान [भयानक] गरजता है, (सः उ) वही (असुराय) असुर [विद्वानों के विरोधी] के लिये (वा) अवश्य (अश्मानम्) पत्थर (अस्यति) गिराता है ।।४१, ४२।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से श्रेष्ठ धर्मात्माओं को आनन्द और दुष्ट छली कपटी लोगों को कष्ट देता है ।।४१, ४२।।

यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ।।४३।।

तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ।।४४।।

उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ।।४५।।

भाषार्थः—(**यत्**) क्योंकि [हे परमेश्वर !] तू (**वा**) अवश्य (**ओषधीः**) ओषधियों [सोमलता अन्नादिकों] को (**कृणोषि**) बनाता है, (**यत्**) क्योंकि तू (**वा**) अवश्य (**भद्रया**) उत्तमता से (**वर्षसि**) मेह बरसाता है, और (**यत्**) क्योंकि तू ने (**वा**) अवश्य (**जन्यम्**) उत्पन्न होते हुए [जगत्] को (**अवीवृधः**) बढ़ाया है ।।४३।। [उसी से,] (**मघवन्**) हे महाधनी ! [परमेश्वर] (**तावान्**) उतनी [बड़ी] (**ते**) तेरी (**महिमा**) महिमा है, (**उपो**) और भी (**ते**) तेरी (**तन्वः**) उपकार शक्तियां (**शतम्**) सौ [असंख्य] हैं ।।४४।। (**उपो**) और भी (**ते**) तेरे (**बध्वे**) नियम में [सब सत्ता वाले] (**बद्धानि**) बंधे हुए हैं, (**यदि**) क्योंकि तू (**वा**) अवश्य (**न्यर्बुदम्**) निरन्तर व्यापक [ब्रह्म] (**असि**) है ।।४५।।

भावार्थः—परमेश्वर वृष्टि द्वारा सोमलता अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न करके सब प्राणियों का पालन करता हुआ अगणित उपकार करता है, और वह सर्वव्यापक होकर सब संसार को नियम में रखता है ।।४३--४५।।

पर्यायः ।।५।।

४६—५१ ।। ४६ आसुरी गायत्री , ४७, भुरिगार्षीगायत्री, ४८ साम्न्युष्णिक्, ४९ निचृत् साम्नी बृहती, ५० प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ५१ साम्नी पङ्क्तिः ।।

भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ।।४६।।

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (**इन्द्रः**) परमऐश्वर्यवान् तू (**नमुरात्**) न मरने वाले [नित्य परमाणुरूप जगत्] से (**भूयान्**) अधिक बलवान् है, (**इन्द्र**) हे परम ऐश्वर्यवाले ! तू (**मृत्युभ्यः**) मरण वालों से [अनित्य कार्य रूप जगत्] से (**भूयान्**) अधिक बलवान् (**असि**) है ।।४६।।

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर दोनों प्रकार के नित्य कारण रूप और अनित्य कार्य रूप जगत् को अपने वश में रखता है ।।४६।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूयानरात्या शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः

प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥४७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले [परमात्मन् !] (त्वम्) तू (अरात्याः) शत्रु से (भूयान्) अधिक बलवान्, (शच्याः) वाणी, कर्म वा बुद्धि का (पतिः) पति, (विभूः) व्यापक और (प्रभूः) समर्थ (असि) है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥४७॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि पूर्ण बली सर्वस्वामी जगदीश्वर की उपासना से आत्मबल बढ़ावें ॥४७॥

मन्त्र ४७—५१ महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासना विषय पृ० १६०–१६१ में व्याख्यात हैं ॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥४८॥

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥४९॥

भाषार्थः—(पश्यत) हे देखने वाले [जगदीश्वर !] (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (पश्यत) हे देखने वाले ! (मा) मुझको (अन्नाद्येन) भोजन योग्य अन्न आदि के साथ, (यशसा) यश [शूरता आदि से पाये हुए नाम] के साथ, (तेजसा) तेज [निर्भयता, प्रताप] के साथ और (ब्राह्मणवर्चसा) वेदज्ञान के बल के साथ (पश्य) देख ॥४८, ४९॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वद्रष्टा परमात्मा की उपासना से पुरुषार्थ और विवेक पूर्वक सब आवश्यक पदार्थ पाकर आनन्द भोगें ॥४८, ४९॥

अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५०॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] तू (अम्भः) व्यापक, (अमः) ज्ञानस्वरूप, (महः) पूज्य और (सहः) सहनस्वभाव [ब्रह्म] है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥५०॥

भावार्थः—मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण से परमात्मा की उपासना करके उन्नति करें ॥५०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र से लेकर मन्त्र ५३ तक बम्बई गवर्नमेन्ट बुकडिपो और अजमेर वैदिक यन्त्रालय के पुस्तकों में मन्त्र के पीछे आवृत्ति का चिह्न देकर मन्त्र ४८ और ४९ की आवृत्ति मानी है, परन्तु अन्य पुस्तकों में आवृत्ति का चिह्न नहीं है ॥

अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपासमहे वयम् ।

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५१॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (अम्भः) व्यापक, (अरुणम्) ज्ञानस्वरूप, (रजतम्) प्रीति का हेतु आनन्द स्वरूप, (रजः) ज्योतिःस्वरूप और (सहः) सहनशील [ब्रह्म] है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥५१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सर्वव्यापक सर्वज्ञ आदि परमेश्वर की उपासना वार वार आदर पूर्वक करके पुरुषार्थ करें ॥५१॥

पर्यायः ॥६॥

५२—५६ ॥ ५२, ५३ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५४ आर्षी गायत्री; ५५ साम्न्युष्णिक्, ५६ निचृत्साम्नी बृहती ॥

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपासमहे वयम् ।

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५२॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (उरुः) विशाल, (पृथुः) विस्तृत, (सुभूः) अच्छे प्रकार वर्तमान [ईश्वर] और (भुवः) व्यापक वा शुद्ध ब्रह्म है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥५२॥

भावार्थः—परमात्मा सब में विशाल सर्वशक्तिमान् आदि गुण युक्त है, ऐसा जान कर मनुष्य उस की उपासना करें और संसार में कीर्ति बढ़ावें ॥५२॥

मन्त्र ५२ और ५३ महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासना विषय पृष्ठ १६१, १६२ में व्याख्यात हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५३॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] तू (प्रथः) प्रसिद्ध, (वरः) श्रेष्ठ, (व्यचः) यथावत् मिला हुआ [ब्रह्म] और (लोकः) देखने योग्य [ईश्वर] है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥५३॥

भावार्थः—मनुष्य सुप्रसिद्ध आदि जगदीश्वर की उपासना से अपने को सुप्रसिद्ध, श्रेष्ठ, सर्वसम्बन्धी और दर्शनीय बनावें ॥५३॥

भवद्वसुरिदद्वसुः सं यद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥५४॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (भवद्वसुः) धन प्राप्त कराने वाला, (इदद्-वसुः) श्रेष्ठ पुरुषों को ऐश्वर्यवान् करने वाला, (संयद्वसुः) पृथिवी आदि लोकों को नियम में रखने वाला और (आयद्वसुः) निवास साधनों का फैलाने वाला है (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥५४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! परमेश्वर की उपासना से परस्पर सुधार करो, उसने तुम्हारे लिये सुवर्ण आदि धन, श्रेष्ठ पुरुष, पृथिवी आदि लोक और अनेक सुख के साधन उत्पन्न किये हैं ॥५४॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥५५॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५६॥

भाषार्थः—(पश्यत) हे देखने वाले [जगदीश्वर !] (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (पश्यत) हे देखने वाले (मा) मुझ को (अन्नाद्येन) भोजन योग्य अन्न आदि के साथ, (यशसा) यश [शूरता आदि से पाये हुए नाम] के साथ, (तेजसा) तेज [निर्भयता, प्रताप] के साथ (ब्राह्मणवर्चसा) वेद ज्ञान के साथ (पश्य) देख ॥५५, ५६॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वद्रष्टा परमात्मा की उपासना से पुरुषार्थ और विवेक पूर्वक सब आवश्यक पदार्थ पाकर आनन्द भोगें ॥५५, ५६॥

इति त्रयोदशं काण्डम् ॥

त्रयोदशं काण्डम् समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

चतुर्दशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१॥

१—६४ ॥ १—५ सोमो देवता, ६—१६ सूर्या देवता, १७—६४ दम्पती देवते ॥ १—१३, १६, १८, २२, २५—२८, ३०, ४१, ४२, ४४, ५१, ५२, ६३ अनुष्टुप्, १४ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः, १५ निचृदास्तारपङ्क्तिः, १७, ३६ भुरिगनुष्टुप्, १९, २०, २४, ३३, ३७, ३९, ४७, ५०, ५३, ५६, ५७, ६१ त्रिष्टुप्, २१ [अन्त्यपादौ निचृत्], ४६ जगती, २३, ३१, ५९ आर्षी त्रिष्टुप्, २९ निचृत् पुरस्ताद् बृहती, ३२, ४०, ४५, ५४, ६४ भुरिक् त्रिष्टुप्. ३४, ६० आर्षी पङ्क्तिः, ३५, ४३, ६२ निचृदनुष्टुप् ३८ आर्ष्युष्णिक्, ४८ पथ्या पङ्क्तिः, ४९ विराट् त्रिष्टुप्, ५५ विराट् पुरस्ताद् बृहती, ५८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

मन्त्राः—१—५, प्रकाश्यप्रकाशकविषयोपदेशः—मन्त्र १—५, प्रकाश करने योग्य और प्रकाशक के विषय का उपदेश ॥

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सत्येन) सत्यस्वरूप परमेश्वर करके (भूमिः) भूमि (उत्तभिता) [आकाश में] उत्तमता से थांभी गयी है, और (सूर्येण) सूर्य लोक करके (द्यौः) प्रकाश (उत्तभिता) उत्तम रीति से थांभा गया है। (ऋतेन) सत्य नियम द्वारा (आदित्याः) प्रकाशमान किरणें [वा अखण्ड सूक्ष्म परमाणु] (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं, और (दिवि) [सूर्य के] प्रकाश में (सोमः) चन्द्रमा (अधि) यथावत् (श्रितः) ठहरा हुआ है ॥१॥

भावार्थः – लोक दो प्रकार के हैं एक प्रकाश करने वाले जैसे सूर्य आदि और दूसरे अप्रकाशमान जैसे पृथिवी चन्द्र आदि। परमेश्वर के नियम से प्रकाशक सूर्य आदि लोक प्रकाश्य पृथिवी चन्द्र आदि लोकों को अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हैं ॥१॥

१—मन्त्र १ तथा २ महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रकाश्य प्रकाशक विषय पृ० १४३, १४४ में व्याख्यात हैं।

२—मन्त्र १—३ ऋग्वेद में हैं—१०। ८५। १—३। मन्त्र ३ भेद से है ॥

सोमे॑नादि॒त्या ब॒लिनः॒ सोमे॑न पृथि॒वी म॒ही।

अथो॒ नक्ष॑त्राणामे॒षामु॒पस्थे॒ सोम॒ आहि॑तः ॥२॥

भाषार्थः—(सोमेन) चन्द्रमा के साथ (आदित्याः) सूर्य की किरणें (बलिनः) बलवान् [होती हैं] और (सोमेन) चन्द्रमा [के प्रकाश] के साथ (पृथिवी) पृथिवी (मही) बलवती अर्थात् पुष्ट [होती है]। (अथो) और भी (एषाम्) इन (नक्षत्राणाम्) चलने वाले तारागणों के (उपस्थे) समीप में (सोमः) चन्द्रमा (आहितः) ठहराया गया है ॥२॥

भावार्थः—चन्द्रमा शीतल स्वभाव है, सूर्य की किरणें उसके ऊपर गिर कर शीतल हो जाती हैं, और जब वे चन्द्रमा से उलटकर वायु से मिल कर पृथिवी पर पड़ती हैं, तब शीतलता के कारण पृथिवी के अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करती हैं। इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा का प्रभाव नक्षत्रों पर होता है ॥२॥

सोमं॑ मन्यते पपि॒वान् यत् सं॑पिं॒षन्त्योष॑धिम्।

सोमं॒ यं ब्र॒ह्माणो॑ वि॒दुर्न तस्या॑श्नाति॒ पार्थि॑वः ॥३॥

भाषार्थः—(सोमम्) चन्द्रमा [के अमृत] को (पपिवान्) मैंने पी लिया, [यह बात मनुष्य] (मन्यते) मानता है, (यत्) जब (ओषधिम्) ओषधि [अन्न, सोमलता आदि] को (संपिषन्ति) वे [मनुष्य] पीसते हैं। (यम्) जिस (सोमम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत्स्रष्टा परमात्मा को (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानी लोग (विदुः) जानते हैं, (तस्य) उसका [अनुभव] (पार्थिवः) पृथिवी [के विषय] में आसक्त पुरुष (न) नहीं (अश्नाति) भोगता है ॥३॥

भावार्थः- चन्द्रमा से पुष्ट हुए अन्न सोमलता आदि के सेवने से मनुष्य शरीर पुष्टि करते हैं, परन्तु जो मनुष्य विद्वानों का सत्संग करके ईश्वर ज्ञान से आत्मा को पुष्ट करते हैं, वे शरीर पोषकों की अपेक्षा अधिक आनन्द पाते हैं ॥३॥

यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥४॥

भावार्थः– (सोम) हे चन्द्रमा ! (यत्) जब (त्वा) तुझ को (प्रपिबन्ति) वे [किरणें] पी जाती हैं, (ततः) तब (पुनः) फिर (आ प्यायसे) तू परिपूर्ण होजाता है। (वायुः) पवन (सोमस्य) चन्द्रमा का (रक्षिता) रक्षक है और (मासः) सब का परिमाण करने वाला [परमेश्वर] (समानाम्) अनुकूल क्रियाओं का (आकृतिः) बनाने वाला है ॥४॥

भावार्थः—जब चन्द्रमा के रस को सूर्य की किरणें खींच लेती हैं, वह रस पृथिवी पर किरणों द्वारा आता और पदार्थों को पुष्ट करता है, फिर वह पार्थिव रस किरणों से वायु द्वारा खिचकर चन्द्रमा को पहुंचता है। इस प्रकार चन्द्रमा ईश्वर नियम से प्राणियों को सदा उपकारी होता है ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ८५। ५॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥५॥

भावार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर (आच्छद्विधानैः) ढक लेने वाले विधानों से (गुपितः) गुप्त [अन्तर्धान] किया गया और (बार्हतैः) वेदवाणियों द्वारा कहे गये नियमों से (रक्षितः) रक्षा किया गया, (ग्राव्णाम्) विद्वानों की [प्रार्थना] (इत्) अवश्य (शृण्वन्) सुनता हुआ तू (तिष्ठसि) ठहरता है, (पार्थिवः) पृथिवी [के विषयों] में आसक्त पुरुष (ते) तेरे [अनुभव को] (न) नहीं (अश्नाति) भोगता है ॥५॥

भावार्थः—सर्वव्यापक परमात्मा अपने अनन्त सर्वश्रेष्ठ नियमों से सुरक्षित रह कर बड़े उपकार करता है, उस को विद्वान् ही जानते हैं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य मनुष्य नहीं जान सकते। इस लिये सब मनुष्य विद्वान् होकर ईश्वर ज्ञान से उन्नति करें ॥५॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ४ ॥

मन्त्राः—६—६४ । विवाहसंस्कारोपदेशः—विवाह संस्कार का उपदेश ॥

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।

द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥६॥

भाषार्थः—(चित्तिः) चेतना [कन्या की] (उपबर्हणम्) छोटी ओढ़नी [समान] (आः) होवे (चक्षुः) दर्शन सामर्थ्य (अभ्यञ्जनम्) उबटन [शरीर पर मलने के द्रव्य के तुल्य] (आः) होवे। (द्यौः) आकाश और (भूमिः) भूमि (कोशः) निधि-मञ्जूषा [पेटी पिटारी समान] (आसीत्) होवे, (यत्) जब (सूर्या) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या (पतिम्) पति को (अयात्) प्राप्त होवे ॥६॥

भावार्थः—जब कन्या बाहिरी उपकरणों की उपेक्षा करके भीतरी विद्याबल से चेतन्य स्वभाव, और पदार्थों को दिव्य दृष्टि से देखने वाली, और आकाश और भूमि से सुवर्ण आदि प्राप्त करने कराने वाली हो तब सुयोग्य पति से विवाह करे ॥६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ७ ॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।

सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥७॥

भाषार्थः—(रैभी) वेदवाणी (सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या की (अनुदेयी) साथिन [समान] और (नाराशंसी) मनुष्यों के गुणों की स्तुति (न्योचनी) नौची [छोटी सहेली समान] (आसीत्) हो। और (भद्रम्) शुभ कर्म (इत्) ही (वासः) वस्त्र [समान] हो [क्योंकि वह] (गाथया) गाने योग्य वेद विद्या से (परिष्कृता) सजी हुई (एति) चलती है ॥७॥

भावार्थः—कन्या वेदों और इतिहासों को पढ़कर विचार कर शुभ कर्म करती हुई उत्तम विद्या से अपनी शोभा बढ़ावे ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ।।८।।

भाषार्थः—(स्तोमाः) स्तुति योग्य गुण (सूर्यायाः) प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या के (प्रतिधयः) वस्त्रों के अंचल [समान] (आसन्) हों, (कुरीरम्) कर्तव्य कर्म और (छन्दः) आनन्दप्रद वेद (ओपशः) मुकुट [समान हो] और (अग्निः) अग्नि [शारीरिक और बाहिरी अग्नि द्वारा स्वास्थ्य, शिल्प, यज्ञ आदि विधान] (पुरोगवः) अग्रगामी [पुरोहित समान] (आसीत्) हो, [जब कि] (अश्विना) विद्या को प्राप्त दोनों [वधू वर] (वरा) परस्पर चाहने वाले [वा श्रेष्ठ गुण वाले] हों ।।८।।

भावार्थः—जब कन्या ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त करके स्वास्थ्य आदि विधान में निपुण हो और जब वैसा ही वर ब्रह्मचारी विद्वान् हो, तब दोनों परस्पर विवाह की कामना करें ।।८।।

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । ८५ । ८—१३ ।।

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ।।९।।

भाषार्थः—(सोमः) शुभगुणयुक्त ब्रह्मचारी (वधूयुः) वधू की कामना करने हारा (अभवत्) हो, (उभा) दोनों (अश्विना) विद्या को प्राप्त [वधू वर] (वरा) परस्पर चाहने वाले [वा श्रेष्ठ गुण वाले] (आस्ताम्) हों, (यत्) जब (पत्ये) पति के लिये (मनसा) मनसे (संशन्तीम्) गुण कीर्तन करती हुई (सूर्याम्) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या को (सविता) जगत् का उत्पादक परमात्मा (अददात्, देवे ।।९।।

भावार्थः—ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी पूर्ण विद्या प्राप्त करके परस्पर गुणों की परीक्षा करके कराके गृहाश्रम में प्रवेश करें और परमेश्वर को धन्यवाद दें कि बड़े भाग्य से तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले स्त्री पुरुषों का जोड़ा मिलता है ।।९।।

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ।।

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ।।१०।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मनः) मन (अस्याः) इस [ब्रह्मचारिणी] का (अनः) रथ [समान] (आसीत्) होवे, (उत) और (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (छदिः) छत्तर [समान] (आसीत्) होवे। (शुक्रौ) दोनों वीर्यवान् [वधूवर] (अनड्वाहौ) रथ चलाने वाले दो बैल [के समान] (आस्ताम्) होवें, (यत्) जब (सूर्या) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या (पतिम्) पति को (अयात्) प्राप्त होवे ॥१०॥

भावार्थः—जब कन्या वेद आदि शास्त्र पढ़कर मननशील, ताप आदि सहने योग्य हो और जब वैसा ही सुयोग्य पति हो, तब गृहाश्रम के चलाने में समर्थ होकर दोनों प्रीतिपूर्वक विवाह करें ॥१०॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम्।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥

भाषार्थः—(ऋक्सामाभ्याम्) पदार्थों की स्तुति विद्या और मोक्षज्ञान द्वारा (अभिहितौ) कहे गये [दो प्रकार के बोध] (गावौ) दो बैल [रथ के दो बैलों के समान] (ते) तेरे (सामनौ=समानौ) अनुकूल (ऐताम्) चलें। (ते) तेरे (श्रोत्रे) दोनों कान (चक्रे) दो पहिये [समान] (आस्ताम्) होवें, (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (पन्थाः) मार्ग (चराचरः) चलाचल [रहे] ॥११॥

भावार्थः—कन्या वेद विहित कर्मों में प्रवीण होकर श्रवण मनन द्वारा संसार के पदार्थों से गुण ग्रहण करके गृहाश्रम के व्यवहार चलाने में समर्थ होवे ॥११॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥१२॥

भाषार्थः—(यात्याः ते) तुझ चलती हुई के (शुची) दो शुद्ध [कान मन्त्र ११] (चक्रे) दो पहिये [समान हों] और (व्यानः) व्यान [सर्वशरीर व्यापक वायु] (अक्षः) धुरा [समान] (आहतः) [पहियों में] लगा हो। (पतिम्) पति के पास को (प्रयती) चलती हुई (सूर्या) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या (मनस्मयम्) मनोमय [विचार रूप] (अनः) रथ पर (आ अरोहत्) चढ़े ॥१२॥

भावार्थः—जब कन्या श्रवण मनन द्वारा व्यान वायु अर्थात् इन्द्रियों को दमन कर सके, तब पति के समीप रहकर गृहाश्रम की गाड़ी को चलावे ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यायां वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते ॥१३॥

भाषार्थः—(सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [या सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या का (वहतुः) दाय [यौतुक, कन्या को दिया पदार्थ] (प्र अगात्) सन्मुख चले, (यम्) जिस [पदार्थ] को (सविता) जन्मदाता पिता (अव असृजत्) दान करे। (मघासु) सत्कार क्रियाओं में (गावः) वाचायें (हन्यन्ते) चलें, और वह [वधू] (फल्गुनीषु) सफल क्रियाओं के बीच (वि उह्यते) ले जाई जावे ॥१३॥

भावार्थः—पिता को योग्य है कि विवाह के समय कन्या को स्त्रीधन अर्थात् योग्य वस्त्र, अलंकार, धन दान करे और सब लोग आशीर्वाद बोल कर उस क्रिया को सफल करें ॥१३॥

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१४॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे विद्या को प्राप्त [दोनों स्त्री पुरुष समूह !] (यत्) जब (सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या के (वहतुम्) विवाह को (पृच्छमानौ) पूंछते हुए [तुम दोनों] (त्रिचक्रेण) अपने तीन पहिये वाले [कर्म, उपासना, और ज्ञान वाले रथ] से (अयातम्) पहुँचो। (क्व) कहां पर (वाम्) तुम दोनों का (एकम्) एक [आत्मबोधरूप] (चक्रम्) पहिया (आसीत्) रहे, (क्व), कहां पर (देष्ट्राय) उपदेश के लिए (तस्थथुः) आप दोनों ठहरें ॥१४॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष विवाह उत्सव पर एकत्र होकर परस्पर आत्मोन्नति और परस्पर उपकार में स्थिति का विचार करें। आगे मन्त्र १६ देखो ॥१४॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। ८५। १४, १५ ॥]

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥१५॥

भाषार्थः—(शुभः पती) हे शुभ क्रिया के पालन करनेवाले [स्त्री पुरुष समूह !] तुम दोनों (यत्) जब (सूर्याम्=सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या के (वरेयम्) श्रेष्ठ कर्म में (उप) आदर से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अयातम्) पहुंचो। (विश्वे देवाः) सब विद्वान् लोग (वाम्) तुम दोनों के (तत्) उस [कर्म] में (अनु अजानन्) सम्मति दें [कि] (पूषा) पोषण करने वाला (पुत्रः) पुत्र (पितरम्) पिता को (अवृणीत) स्वीकार करे ॥१५॥

भावार्थः—शुभचिंतक स्त्रीपुरुष विवाह में आकर प्रयत्न करें कि विद्वान् लोग प्रसन्न होकर आशीर्वाद दें कि उन वधू वर का पुत्र पोषण करनेवाला विद्वान् पराक्रमी होवे ॥१५॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। ८५। १४, १५॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥१६॥

भाषार्थः—(सूर्ये) हे प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या! (ते) तेरे (द्वे) दो [कर्म और उपासना रूप] (चक्रे) पहियों को (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानी लोग (ऋतुथा) सब ऋतुओं में (विदुः) जानते हैं। (अथ) और (एकम्) एक [ज्ञानरूप] (चक्रम्) पहिया (यत्) जो (गुहा) हृदय में है, (तत्) उस को (अद्धातयः) सत्य ज्ञान वाले पुरुष (इत्) हि (विदुः) जानते हैं ॥१६॥

भावार्थः—वेदवेत्री कन्या और वेदवेत्ता वर के कर्म, उपासना, ज्ञान की योग्यता को विद्वान् लोग विचारें। पीछे मन्त्र १४ देखो ॥१६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। ८५। १६॥

अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥१७॥

भाषार्थः—(सुबन्धुम्) सुन्दर बन्धु, (पतिवेदनम्) रक्षक पति के ज्ञान कराने हारे वा देने हारे (अर्यमणम्) श्रेष्ठों के मान करने हारे परमात्मा को (यजामहे) हम पूजते हैं। (उर्वारुकम् इव) ककड़ी को जैसे (बन्धनात्) लता बन्धन से, [वैसे दोनों वधू वर को] (इतः) इस [वियोग पाश] से (प्र मुञ्चामि) मैं [विद्वान्] छुड़ाता हूं, (अमुतः) उस [प्रेम पाश] से (न) नहीं [छुड़ाता] ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा की महती कृपा का ध्यान करके विद्वान् लोग वधू वर को वियोग के कष्ट से छुड़ाकर परस्पर प्रेमास्पद बनावें ॥१७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—७। ५९। १२ और यजुर्वेद में—३। ६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥१८॥

भाषार्थः—(इतः) इस [वियोग पाश] से [इस वधू को] (प्र मुञ्चामि) मैं [वर] अच्छे प्रकार छुड़ाता हूं,(अमुतः) उस [प्रेम पाश] से (न) नहीं [छुड़ाता], (अमुतः) उस [प्रेम पाश] में [इस वधू] को (सुबद्धाम्) अच्छे बन्धनयुक्त (करम्) मैं करता हूं। (यथा) जिस से, (मीढ्वः) हे सुख की वर्षा करने वाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्य वाले परमात्मन्! (इयम्) यह [वधू] (सुपुत्रा) सुन्दर पुत्रों वाली और (सुभगा) बड़े ऐश्वर्य वाली (असति) होवे ॥१८॥

भावार्थः—वधू वर को चाहिये कि आपस में बड़े प्रेम का बरताव करें, और परमात्मा की उपासना करके प्रयत्नपूर्वक घर में श्रेष्ठ सन्तान और ऐश्वर्य प्राप्त करके दोनों आनन्दित रहें ॥१८॥

मन्त्र १८, १९ ऋग्वेद में कुछ भेद से हैं—१०। ८५। २४, २५, और दोनों मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में उद्धृत हैं और विनियोग इस प्रकार है कि वर इन दोनों मन्त्रों को बोलकर वधू के बंधे हुए केशों को छोड़े ॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥१९॥

भाषार्थः—[हे वधू!] (त्वा) तुझे (वरुणस्य) रुकावट के (पाशात्) बन्धन से (प्र मुञ्चामि) मैं [वर] अच्छे प्रकार छुड़ाता हूं, (येन) जिसके साथ (त्वा) तुझे (सुशेवाः) अत्यन्त सेवा योग्य (सविता) जन्मदाता पिता ने (अबध्नात्) बांधा है। (ऋतस्य) सत्य नियम के (योनौ) घर में और (सुकृतस्य) सुकृत [पुण्य कर्म] के (लोके) समाज में (सहसम्भलायै) सहेलियों सहित वर्तमान (ते) तेरे लिये (स्योनम्) आनन्द (अस्तु) होवे ॥१९॥

भावार्थः—जिस कन्या को पिता ने योग्य पति मिलने तक रोका था, उस को पिता के घर से प्रसन्नता के साथ लेकर वर बड़े प्रेम से रक्खे और घर के सब धर्मात्मा विद्वान् स्त्री पुरुष श्रेष्ठ व्यवहार करके उसे सुख देते रहें ॥१९॥

मन्त्र १८ की टिप्पणी देखो ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२०॥

भाषार्थः—[हे वधू !] (भगः) ऐश्वर्यवान् वर (त्वा) तुझे (इतः) यहां से (हस्तगृह्य) हाथ पकड़ कर (नयतु) ले चले, (अश्विना) विद्या को प्राप्त दोनों [स्त्री पुरुष समूह] (त्वा) तुझे (रथेन) रथ द्वारा (प्र वहताम्) अच्छे प्रकार ले चलें। (गृहान्) घरों में (गच्छ) पहुँच, (यथा) जिससे (गृहपत्नी) गृहपत्नी [घर की स्वामिनी] (असः) तू होवे और (वशिनी) वश में करने वाली (त्वम्) तू (विदथम्) सभागृह में (आ वदासि) बातचीत करे ॥२०॥

भावार्थः—प्रतापी वर गुणवती वधू को आदर से ले चले, विद्वान् स्त्री पुरुष उसे रथ पर चढ़ावें। सभ्या वधू पतिगृह में पहुंच कर अपनी विद्वत्ता और शुभ गुणों के कारण प्रिय वचन और बरताव से सब को प्रसन्न करे ॥२०॥

मन्त्र २०, २१, भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । ८५ । २६, २७ ॥

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं १ सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥२१॥

भाषार्थः—[हे वधू !] (इह) इस [पति कुल] में (ते) तेरा (प्रियम्) हित (प्रजायै) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के लिये (सम्) अच्छे प्रकार (ऋध्यताम्) बढ़े, (अस्मिन् गृहे) इस घर में (गार्हपत्याय) गृहपत्नी के कार्य के लिये (जागृहि) तू जागती रह [सावधान रह]। (एना पत्या) इस पति के साथ (तन्वम्) श्रद्धा को (सं स्पृशस्व) संयुक्त कर, (अथ) और (जिर्विः) स्तुति योग्य तू (विदथम्) सभागृह में (आ वदासि) बातचीत कर ॥२१॥

भावार्थः- वधू को योग्य है कि पतिकुल में पहुंच कर प्रसन्न चित्त होकर सन्तान, सेवक आदि का यथावत् पालन करके घर के कामों में सावधान रहे, और पति से भक्ति करके संसार में कीर्ति बढ़ावे ॥२१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से महर्षि दयानन्द कृत संस्कार विधि विवाह प्रकरण में उद्धृत है—घर पहुंचकर वधू को रथ से उतारना आदि कर्म करके वर इस मन्त्र को बोलकर वधू को सभामण्डप में ले जावे ॥

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे वधूवर !] (इह एव) यहां [गृहाश्रम के नियम में] ही (स्तम्) तुम दोनों रहो, (मा वि यौष्टम्) कभी अलग मत होओ, और (पुत्रैः) पुत्रों के साथ तथा (नप्तृभिः) नातियों के साथ (क्रीडन्तौ) क्रीडा करते हुए, (मोदमानौ) हर्ष मनाते हुए और (स्वस्तकौ) उत्तम घरवाले तुम दोनों (विश्वम् आयुः) सम्पूर्ण आयु को (वि अश्नुतम्) प्राप्त होओ ।।२२।।

भावार्थः—स्त्री पुरुष दोनों दृढ़ प्रतिज्ञा करके प्रसन्नतापूर्वक पुत्र पौत्र आदि के साथ धर्म से रहकर पूर्ण आयु भोगकर यशस्वी होवें ।।२२।।

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ४२, और महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका विवाह विषय पृष्ठ २०८ में व्याख्यात है ।।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ।।२३।।

भाषार्थः—(एतौ) यह दोनों [सूर्य, चन्द्रमा] (पूर्वापरम्) आगे पीछे (मायया) बुद्धि से [ईश्वर नियम से] (चरतः) विचरते हैं, (क्रीडन्तौ) खेलते हुए (शिशू) दो बालक [जैसे] (अर्णवम्) अन्तरिक्ष में (परि) सब ओर (यातः) चलते हैं । (अन्यः) एक [सूर्य] (विश्वा) सब (भुवना) भुवनों को (विचष्टे) देखता है, (अन्यः) दूसरा तू [चन्द्रमा] (ऋतून्) ऋतुओं को [अपनी गति से] (विदधत्) बनाता हुआ [शुक्ल पक्ष में] (नवः) नवीन (जायसे) प्रकट होता है ।।२३।।

भावार्थः—सूर्य और चन्द्रमा आकाश में घूमते हैं । चन्द्र आदि लोकों को सूर्य प्रकाश पहुंचाता है । चन्द्रमा शुक्लपक्ष में एक एक कला बढ़ता और वसन्त आदि ऋतुओं को बनाता है । हे स्त्री पुरुषो ! जैसे यह सूर्य चन्द्रमा ईश्वर नियम पर चलकर संसार का उपकार करते हैं, वैसे ही तुम दोनों उपकार करो ।।२३।।

मन्त्र २३, २४ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । ८५ । १८, १९ और ऊपर आ चुके हैं—अ० ७ । ८१ । १, २, तथा मन्त्र २३ के तीन पाद फिर आये हैं—अ० १३ । २ । ११ ।।

नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ।।२४।।

भाषार्थः—(चन्द्रमः) हे चन्द्रमा ! तू [शुक्ल पक्ष में] (नवोनवः) नया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नया (**जायमानः**) प्रकट होता हुआ (**भवसि**) रहता है, और (**अह्नाम्**) दिनों का (**केतुः**) जताने वाला तू (**उषसाम्**) उषाओं [प्रभात वेलाओं] के (**अग्रम्**) आगे (**एषि**) चलता है और (**आयन्**) आता हुआ तू (**देवेभ्यः**) उत्तम पदार्थों को (**भागम्**) सेवनीय उत्तम गुण (**वि दधासि**) विविध प्रकार देता है और (**दीर्घम्**) लम्बे (**आयुः**) जीवन काल को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**तिरसे**) पार लगाता है ॥२४॥

भावार्थः—चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में एक एक कला बढ़कर नया नया होता है और दिनों अर्थात् प्रतिपदा आदि चान्द्र तिथियों को बनाता, और पृथिवी के पदार्थों में पुष्टि देकर प्राणियों का जीवन बढ़ाता है, इसी प्रकार स्त्री पुरुष संसार में उपकार करके अपना जीवन सुफल करें ॥२४॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥२५॥

भाषार्थः—[हे वर !] (**शामुल्यम्**) [हृदय की] मलीनता (**परा देहि**) दूर कर दे, (**ब्रह्मभ्यः**) विद्वानों को (**वसु**) सुन्दर वस्तु (**विभज**) बांट । (**एषा**) यह (**कृत्या**) कर्तव्य कुशल (**जाया**) पत्नी (**पद्वती**) ऐश्वर्यवती (**भूत्वा**) होकर (**पतिम्**) पति में (**आविशते**) आकर प्रवेश करती है ॥२५॥

भावार्थः— गृहपति शुद्ध अन्तःकरण से विदुषी स्त्रियों और विद्वानों का यथावत् आदर सत्कार करे जिन के शिक्षा आदि प्रयत्न से स्त्री रत्न उसको मिली है ॥२५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । २९ ॥

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२६॥

भाषार्थः—(**नीललोहितम्**) निधियों का प्रकाश (**भवति**) होता है, [जब कि] (**कृत्या=कृत्यायाः**) कर्तव्य कुशल [पत्नी] की (**आसक्तिः**) प्रीति (**वि अज्यते**) प्रसिद्ध होती है । (**अस्याः**) इस [वधू] के (**ज्ञातयः**) कुटुम्बी लोग (**एधन्ते**) बढ़ते हैं, और (**पतिः**) पति (**बन्धेषु**) [वधू के साथ प्रेम के] बन्धनों में (**बध्यते**) बंध जाता है ॥२६॥

भावार्थः—जिस कुल में कर्मकुशल बुद्धिमती स्त्री धन का लाभ व्यय आदि विचारकर कर्तव्य करती है, वहां धन सम्पत्ति बढ़ती है । उस की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समृद्धि से माता पिता आदि और सब कुटुम्बी वृद्धि करते हैं और पति उस से हार्दिक प्रीति करता है ॥२६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ८५ । २८ ॥

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद् वध्वो३ वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥२७॥

भाषार्थः—(रुशती) चमकता हुआ (तनूः) रूप (अमुया) उस (पापया) पाप क्रिया से (अश्लीला) अश्लील [हतश्री] (भवति) हो जाता है, (यत्) जब कि (पतिः) पति (वध्वः) वधू के (वाससः) वस्त्र से (स्वम् अङ्गम्) अपने अङ्ग को (अभ्यूर्णुते) ढक लेता है ॥२७॥

भावार्थः - जब पति पुरुषार्थ छोड़कर कुकामी होकर बुरी स्त्रियों के समान कुचेष्टा करता हैं, तब उस दुर्बलेन्द्रिय का रूप बिगड़ जाता है और वह लज्जा को प्राप्त होता है ॥२७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ३० ॥

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥२८॥

भाषार्थः –(सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या की (आशसनम्) आशंसा [अप्राप्त के पाने की इच्छा], (विशसनम्) विशंसा [प्राप्त का शुभ कर्मों में व्यय] (अथो) और भी (अधिविकर्तनम्) अधिकार पूर्वक विघ्नों का छेदन, (रूपाणि) इन रूपों [सुन्दर लक्षणों] को (पश्य) तू देख, (तानि) उन [सुन्दर लक्षणों] को (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदवेत्ता पति] (उत) ही (शुम्भति) शोभायमान करता है ॥२८॥

भावार्थः—जब वधूवर परस्पर शुभ गुणों और मर्यादाओं का मान करते हैं, तब उत्तम प्रबन्ध से उस गृहाश्रम की शोभा बढ़ती है ॥२८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ३५ ॥

तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥२९॥

भाषार्थः—(एतत्) यह [पूर्वोक्त शुभ लक्षण वधू वर के विरोध में] (तृष्टम्) दाह जनक, (कटुकम्) कड़वा [अप्रिय], (अपाष्ठवत्) अपस्थान [अपमान] युक्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (विषवत्) विष समान [होता है] (एतत्) यह [विरुद्धपन] (अत्तवे) प्रबन्ध करने के लिये (न) नहीं [होता]। (यः) जो (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदवेत्ता पति] (सूर्याम्) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या को (वेद) जानता है, (सः इत्) वही (वाधूयम्) विवाह कर्म के (अर्हति) योग्य होता है ॥२९॥

भावार्थः जहां पर वधू वर परस्पर विरोधी निर्गुणी होते हैं, वहां गृहाश्रम में विपत्ति रहती है, और जब दोनों पूर्ण विद्वान् और युवा होकर परस्पर गुण जानकर विवाह करते हैं, तब वे गृहाश्रम में आनन्द भोगते हैं ॥२९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०।८५।३४॥

य इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम्।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥३०॥

भाषार्थः—(सः इत्) वही (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेद वेत्ता पति] (तत्) तब (स्योनम्) सुखदायक और (सुमङ्गलम्) बड़े मङ्गलमय (वासः) वस्त्र आदि [घर में] (हरति) लाता है, (यः) जो [पति] (प्रायश्चित्तिम्) प्रायश्चित क्रिया को (अध्येति) जानता है, (येन) जिस के कारण (जाया) पत्नी (न रिष्यति) कष्ट नहीं पाती ॥३०॥

भावार्थः—जब मनुष्य विद्वान् दूरदर्शी होकर गृहाश्रम में प्रवेश करता है, वही परिश्रम करके वस्त्र आदि आवश्यक पदार्थ लाकर घर में पत्नी सहित आनन्द पाता है ॥३०॥

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥३१॥

भाषार्थः—[हे वधू वर!] (ऋतोद्येषु) सत्य वचनों के बीच (ऋतम्) सत्य (वदन्तौ) बोलते हुए (युवम्) तुम दोनों (समृद्धम्) अधिक सम्पत्ति वाले (भगम्) ऐश्वर्य को (सम्) मिलकर (भरतम्) धारण करो। (ब्रह्मणः पते) हे वेद के रक्षक [परमेश्वर!] (अस्यै) इस [वधू] के लिये (पतिम्) पति को (रोचय) आनन्दित कर—(एताम् वाचम्) इस वचन को (संभलः) यथार्थवक्ता पुरुष (चारु) मनोहर रीति से (वदतु) बोले ॥३१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमेश्वर से प्रार्थना करके आशीर्वाद देवें कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह दोनों स्त्री पुरुष अपनी प्रतिज्ञाओं में दृढ़ रहकर सम्पत्ति और ऐश्वर्य प्राप्त करके सदा प्रसन्न रहें ॥३१॥

इहेदंसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ ।
शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥३२॥

भाषार्थः—(गावः) हे गतिशील [पुरुषार्थी कुटुम्बी लोगो !] (इह इत्) यहां पर ही [हम में] (असाथ) तुम रहो, (परः) दूर (न गमाथ) मत जाओ, और (इमम्) इस [पुरुष] को (प्रजया) प्रजा [पुत्र, पौत्र, सेवक आदि] से (वर्धयाथ) बढ़ाओ। (शुभम्) शुभ रीति से (यतीः) चलती हुई (उस्रियाः) निवास करने वाली स्त्रियां और (सोमवर्चसः) ऐश्वर्य के साथ प्रताप वाले (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग [अर्थात् घर के विद्वान् स्त्री पुरुष] (वः) तुम्हारे (मनांसि) मनों को (इह) यहां [गृह कार्य में] (क्रन्) करें ॥३२॥

भावार्थः—सब कुटुम्बी लोग पुरुषार्थ करके मिलकर धैर्य से घर में रहें और सन्तान आदि को शिक्षा दान से बढ़ावें और सम्पत्ति और ऐश्वर्य बढ़ाकर गृहाश्रम को शोभायमान करें ॥३२॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद आ चुका है—अ० ३ । ८ । ४ ॥

इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥३३॥

भाषार्थः—(गावः) हे गतिशील [पुरुषार्थी कुटुम्बियो !] (इमम्) इस [पुरुष] में (प्रजया) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के साथ (सम्) मिलकर (विशाथ) तुम प्रवेश करो, (अयम्) यह [पुरुष] (देवानाम्) विद्वानों के (भागम्) भाग को (न) नहीं (मिनाति) नाश करता है। (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (वः) तुम को (पूषा) पोषक वैद्य (च) और (सर्वे) सब (मरुतः) शूर पुरुष, और (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (वः) तुमको (धाता) धारण करने वाला (सविता) प्रेरक आचार्य (सुवाति) आगे बढ़ावे ॥३३॥

भावार्थः—कुटुम्बियों को योग्य है कि सब सन्तानों और उपयोगी पुरुषों सहित मिलकर विद्वान् प्रधान पुरुष का आदर मान करें ॥३३॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥३४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अनृक्षराः) विना कांटों वाले (ऋजवः) सीधे (पन्थानः) मार्ग (सन्तु) होवें, (येभिः) जिन से (नः) हमारे (सखायः) मित्र लोग (वरेयम्=वरेण्यम्) सुन्दर विधान से (यन्ति) चलते हैं। (धाता) धारण करने वाला [परमेश्वर] (भगेन सम्) ऐश्वर्य के साथ, (अर्यम्णा सम्) श्रेष्ठों के मान करने वाले व्यवहार के साथ और (वर्चसा सम्) प्रताप के साथ [हम को] (सृजतु) संयुक्त करे ॥३४॥

भावार्थः—सब घर के लोग परमेश्वर की उपासना के साथ विद्वानों के समान विघ्नों का नाश करके श्रेष्ठों के सन्मान से ऐश्वर्यवान् और प्रतापी होवें ॥३४॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । २३ ॥

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।
यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥३५॥

भाषार्थः—(यत्) जो (वर्चः) तेज (अक्षेषु) व्यवहार कुशलों में (च च) और (यत्) जो [तेज] (सुरायाम्) ऐश्वर्य [वा लक्ष्मी] में (आहितम्) रक्खा गया है। (यत्) जो (वर्चः) तेज (गोषु) गतिशील [पुरुषार्थी] लोगों में है, (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनों [स्त्री पुरुष समूहो !] (तेन वर्चसा) उस तेज से (इमाम्) इस [वधू] को (अवतम्) शोभायमान करो ॥३५॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष प्रयत्न करके शिक्षा देवें कि विद्वान् पति पत्नी अपने कर्तव्यों को सकुशल सिद्ध करके तेजस्वी होवें ॥३५॥

येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥३६॥

भाषार्थः—(येन) जिस [तेज] के कारण (महानघ्न्याः) अत्यन्त निर्दोष स्त्री के (जघनम्) पौरुष, (येन) जिस के कारण (सुरा) ऐश्वर्य [लक्ष्मी], (वा) और (येन) जिस करके (अक्षाः) सब व्यवहार (अभ्यषिच्यन्त) सींचे जाते हैं [बढ़ाये जाते हैं], (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनों [स्त्री पुरुष समूहो !] (तेन वर्चसा) उस तेज से (इमाम्) इस [वधू] को (अवतम्) शोभायमान करो ॥३६॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष मिलकर उपाय करें कि वधू बड़ी बड़ी स्त्रियों के समान पौरुष, ऐश्वर्य और व्यवहार बढ़ाकर तेजस्विनी होवे ॥३६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो अ॒निध्मो दी॒दय॑द॒प्स्व१॒न्तर्यं विप्रा॑स॒ ईड॑ते अध्व॒रेषु॑ ।
अपां नपा॒न्मधु॑मतीर॒पो दा॒ याभि॒रिन्द्रो॑ वावृ॒धे वी॒र्या॑वान् ॥३७॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (अनिध्मः) बिना चमकता हुआ [अन्तर्यामी] रहकर (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के भीतर (दीदयत्) चमकता है, (यम्) जिस [परमेश्वर] की, (विप्रास) बुद्धिमान् लोग (अध्वरेषु) सन्मार्ग बताने वाले व्यवहारों में (ईडते) बड़ाई करते हैं, [सो तू] (अपाम्) प्रजाओं के मध्य (नपात्) नाशरहित [परमेश्वर !] (मधुमतीः) मधु विद्या से युक्त [पूर्ण विज्ञान-वती] (अपः) प्रजायें (दाः) दे, (याभिः) जिन [प्रजाओं] से (इन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्य-वान् मनुष्य (वीर्यवान्) वीर्यवान् [धीर, वीर, शरीर, इन्द्रिय, और मन की अतिशय शक्तिवाला] होकर (वावृधे) बढ़ता है ॥३७॥

भावार्थः—वधू वर को उचित है कि विद्वानों के समान सर्वान्तिर्यामी सर्वनियन्ता परमात्मा की उपासना करके ब्रह्मचर्यादि से विद्वान् सन्तान, सेवक आदि प्राप्त करें और वेदविद्या द्वारा बढ़ाकर सदा उन्नति करते रहें ॥३७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ३० । ४, और निरुक्त १० । १९ में भी व्याख्यात है ॥

इ॒दम॒हं रुश॑न्तं ग्रा॒भं त॑नू॒दूषि॒मपो॑हामि ।
यो भ॒द्रो रो॑च॒नस्तमुद॑चामि ॥३८॥

भाषार्थः—(इदम्) अब [गृहस्थ होने पर] (अहम्) मैं [स्त्री वा पुरुष] (रुशन्तम्) सताने वाले, (तनूदूषिम्) शरीर को दोष लगाने वाले (ग्राभम्) ग्राही [मलबन्धक रोग वा दुष्ट व्यवहार] को (अप ऊहामि) हटा देता हूं । (यः) जो (भद्रः) मङ्गलमय, (रोचनः) रोचक व्यवहार है, (तम्) उसको (उत्) उत्तमता से (अचामि) प्राप्त होता हूं ॥३८॥

भावार्थः—वधूवर पीडाप्रद रोगकारक कर्म और स्वभाव छोड़कर स्वास्थ्यवर्धक व्यवहार करके गृहाश्रम में आनन्द बढ़ावें ॥३८॥

आस्यै॑ ब्राह्म॒णाः स्नप॑नीर्हरन्त्ववी॑रघ्नी॒रुद॑जन्त्वापः॑ ।
अ॒र्य॒म्णो अ॒ग्निं पर्ये॑तु पूषन् प्रती॑क्षन्ते॒ श्वशु॑रो दे॒वर॑श्च ॥३९॥

भाषार्थः—(अस्यै) इस [वधू] के लिये (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण [विद्वान् लोग]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्नपनीः) शुद्धिकारक सामग्रियों को (आ हरन्तु) लावें, (अवीरघ्नीः) वीरों की हितकारी (आपः) प्रजायें (उत्) उत्तमता से (अजन्तु) प्राप्त होवें। (पूषन्) हे पुष्टिकारक [विद्वान्!] (अर्यम्णः) श्रेष्ठों के मान करने वाले [पति] की (अग्निम्) अग्नि की [प्रत्येक पति पत्नी] (परि एतु) परिक्रमा करे, (श्वशुरः) ससुर [पति का पिता] (च) और (देवरः) देवर लोग [पति के छोटे बड़े भ्राता (प्रति ईक्षन्ते) बाट देखते हैं ॥३९॥

भावार्थः—वर के घर पहुंचकर वधूवर विद्वानों की आज्ञानुसार शुद्ध जल आदि से स्नान करके अग्निहोत्रादि करके यज्ञकुण्ड की परिक्रमा करें और सब कुटुम्बी लोग सन्मान से स्वागत करें ॥३९॥

शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥४०॥

भाषार्थः—[हे वधू!] (ते) तेरे लिये (हिरण्यम्) सोना [द्रव्य, आभूषण आदि] (शम्) सुखदायक [हो], (उ) और (आपः) प्रजायें [सन्तान, सेवक आदि] (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें, (मेथिः) पशु बांधने का काष्ठदण्ड (शम्) आनन्दप्रद और (युगस्य) जूये का (तर्द्म) छिद्र (शम्) शान्तिदायक (भवतु) होवे। (ते) तेरे लिये (शतपवित्राः) सैकड़ों प्रकार शुद्ध करने वाले (आपः) जल (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) होवें, (शम्) शान्ति के लिये (उ) ही (पत्या) पति के साथ (तन्वम्) अपनी श्रद्धा को (सं स्पृशस्व) संयुक्त कर ॥४०॥

भावार्थः—सासु ससुर आदि स्वागत करके सुवर्ण आभूषण आदि जो कुछ पदार्थ देवें, वधू उन्हें प्रसन्न होकर स्वीकार करे और घर के सन्तान, सेवक, पशुओं, अन्न, जल आदि के प्रबन्ध में प्रवृत्त होकर आनन्द पावे और पति में सदा पूर्ण प्रीति रक्खे ॥४०॥

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥४१॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों प्रकार की बुद्धियों वा कर्मों वाले! (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले [पति!] (रथस्य) रथ [रथ रूप शरीर] के (खे) गमन [चेष्टा] में, (अनसः) जीवन के (खे) गमन [उपाय] में और (युगस्य) योग [ध्यान] के (खे) गमन [चलने] में (अपालाम्=अपाराम्) अपार गुणवाली [ब्रह्मवादिनी पत्नी] को (त्रिः) तीन वार [कर्म, उपासना और ज्ञान से] (पूत्वा) शोधकर (सूर्यत्वचम्) सूर्य के समान तेजवाली [अकृणोः] तू कर ॥४१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः -- बुद्धिमान् विद्वान् पति प्रयत्न करे कि विदुषी पत्नी वेदज्ञान से शुद्ध होकर शरीर को उचित चेष्टा में, जीवन को सुन्दर उपाय में, और मन को ईश्वर भक्ति में लगाकर संसार में कीर्ति पावे ।।४१।।

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—सायण भाष्य ८ । ८० । ७ और अजमेर वैदिक यन्त्रालय पुस्तक ८ । ९१ । ७ ।।

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ।।४२।।

भाषार्थः—[हे वधू !] (सौमनसम्) मन की प्रसन्नता, (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि], (सौभाग्यम्) बड़ी भाग्यवाली और (रयिम्) धन को (आशासाना) चाहती हुई तू (पत्युः) पति के (अनुव्रता) अनुकूल कर्म वाली (भूत्वा) होकर (अमृताय) अमर पन [पुरुषार्थ और कीर्ति] के लिये (कम्) सुख से (सं नह्यस्व) सन्नद्ध होजा [युद्ध के लिये कवच धारण कर] ।।४२।।

भावार्थः – सब कुटुम्बी लोग वधू को शिक्षा दें कि वह विदुषी वधू योग्यता के साथ पति से प्रीति करके प्रसन्नतापूर्वक गृहकार्यों को सिद्ध करे ।।४२।।

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ।।४३।।

भाषार्थः—(यथा) जैसे (वृषा) बलवान् (सिन्धुः) समुद्र ने (नदीनाम्) नदियों का (साम्राज्यम्) साम्राज्य [चक्रवर्ती राज्य, अपने लिये] (सुषुवे) उत्पन्न किया है । [हे वधू !] (एव) वैसे ही (त्वम्) तू (पत्युः) पति के (अस्तम्) घर (परेत्य) पहुंचकर (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी [चक्रवर्ती रानी] (एधि) हो ।।४३।।

भावार्थः—बड़े लोगों की शिक्षा और आशीर्वाद से वधू सावधानी के साथ घर के सब कामों को अपने हाथ में लेकर महारानी बनकर रहे ।।४३।।

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु ।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ।।४४।।

भाषार्थः—[हे वधू !] तू (श्वशुरेषु) अपने ससुर आदि [मेरे पिता आदि गुरु जनों] के बीच (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी, (उत) और (देवृषु) अपने देवरों [मेरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े व छोटे भाइयों] के बीच (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी (एधि) हो। (ननान्दुः) अपनी ननद [मेरी बहिन] की (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी, (उत) और (श्वश्र्वाः) अपनी सासु [मेरी माता] की (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी (एधि) हो ॥४४॥

भावार्थः—वधू विद्या और बुद्धि के बल से अपने कर्तव्यों में ऐसी चतुर हो कि ससुर, सासु, देवर, ननद आदि सब बड़े छोटे जन उस की बड़ी प्रतिष्ठा करें ॥४४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ८५। ४६। और महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में पति के घर पहुंचकर, वधू वर के हवन करने में व्याख्यात है ॥

या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त ।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥४५॥

भाषार्थः—(याः) जिन [स्त्रियों] ने (अकृन्तन्) काता है, (च) और (याः) जिन्हों ने (तत्निरे) तन्तुओं को फैलाया है, और (अवयन्) बुना है, और (याः देवीः) जिन देवियों ने (अन्तान्) [वस्त्र के] आँचल (अभितः) सब प्रकार से (अददन्त) दिये हैं। [हे वधू!] (ताः) वे सब स्त्रियां (त्वा) तुझे (जरसे) बड़ाई के लिये (सं व्ययन्तु) वस्त्र पहिनावें, (आयुष्मती) बड़ी आयु वाली तू (इदं वासः) इस वस्त्र को (परि धत्स्व) धारण कर ॥४५॥

भावार्थः—बड़ी बड़ी गुणवती स्त्रियां आदर करके सुन्दर सुन्दर वस्त्र वधू को देकर पहिनावें और आशीर्वाद देवें कि वह प्रसन्न रहकर बड़ा यश प्राप्त करे ॥४५॥

जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥४६॥

भाषार्थः—(नरः) नर [नेता लोग] (जीवम्) [संसार के] जीवन के लिये [प्रेम से] (रुदन्ति) आंसू बहाते हैं, (अध्वरम्) हिंसा रहित व्यवहार को (वि) विविध प्रकार (नयन्ति) ले चलते हैं, और (दीर्घाम्) लम्बी (प्रसितिम् अनु) प्रबन्ध क्रिया के साथ (दीध्युः) प्रकाशमान होते हैं। (ये) जिन [पुरुषार्थियों ने (पितृभ्यः) पिता आदि मान्य लोगों के लिये (इदम्) यह (वामम्) श्रेष्ठ पदार्थ (समीरिरे) पहुंचाया है, (पतिभ्यः) उन रक्षक पुरुषों के लिये [पति से] (जनये परिष्वजे) पत्नी का मिलना (मयः) सुखदायक है ॥४६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—करुणाशील, शूरवीर पुरुष गृहाश्रम में हिंसा त्यागकर दृढ़ प्रबन्ध करके यश पाते हैं। जो मनुष्य इस श्रेष्ठ सिद्धान्त को विद्वानों में फैलाते हैं, वे विद्वान् गृहाश्रमी स्त्री पुरुषों से विद्यावृद्धि में सुख पाते हैं ॥४६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ४० । १०, और महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में वधू को पितृ गृह छोड़ते समय आंख में आंसू भर लाने पर वर के बोलने में लिखा है ॥

स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥४७॥

भाषार्थः—(**स्योनम्**) सुखदायक, (**ध्रुवम्**) दृढ़ (**अश्मानम्**) पत्थर को (**देव्याः**) दिव्य गुण वाली (**पृथिव्याः**) पृथिवी की (**उपस्थे**) गोद में (**प्रजायै**) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के निमित्त (**ते**) तेरे लिये (**धारयामि**) मैं [पति] रखता हूँ। (**अनुमाद्या**) निरन्तर हर्ष मनाती हुई और (**सुवर्चाः**) बड़ी प्रताप वाली तू (**तम्**) उस [पत्थर] पर (**आ तिष्ठ**) खड़ी हो, (**सविता**) सबका उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (**ते**) तेरी (**आयुः**) आयु को (**दीर्घम्**) लम्बी (**कृणोतु**) करे ॥४७॥

भावार्थः—जिस प्रकार पृथिवी पर पत्थर पहाड़ दृढ़ होकर रहते हैं, इसी प्रकार वधूवर दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ गृहाश्रम को सिद्ध करके आनन्द पावें ॥४७॥

इस मन्त्र से वधू को वर शिला पर खड़ा करावे। महर्षि दयानन्दकृत संस्कार विधि विवाह प्रकरण में वधू के लिये शिला पर चढ़ाना अन्य मन्त्र से लिखा है ॥

येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् । तेन गृह्णामि
ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥४८॥

भाषार्थः—(**येन**) जिस [सामर्थ्य] से (**अग्निः**) तेजस्वी पुरुष ने (**अस्याः भूम्याः**) इस भूमि [प्रत्यक्ष भूमि के समान धैर्यवती अपनी पत्नी] का (**दक्षिणम्**) बड़े बल वाले वा गति वाले [अथवा दाहिने] (**हस्तम्**) हाथ को (**जग्राह**) पकड़ा है। (**तेन**) उसी [सामर्थ्य] से (**ते हस्तम्**) तेरे हाथ को (**गृह्णामि**) मैं [पति] पकड़ता हूं; (**मया सह**) मेरे साथ रहकर (**प्रजया**) प्रजा [सन्तान सेवक आदि] के साथ (**च च**) और (**धनेन**) धन के साथ (**मा व्यथिष्ठाः**) व्यथा को मत प्राप्त हो ॥४८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस प्रकार पूर्वज लोग पाणिग्रहण करके उपकार करते आये हैं, इसी प्रकार वधूवर पाणिग्रहण करके प्रीति के साथ परस्पर हित करते हुए सन्तान आदि का पालन और धन की वृद्धि करें ॥४८॥

देवस्ते सविताहस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥४९॥

भाषार्थः—(देवः) व्यवहार में चतुर, (सविता) सर्वप्रेरक [परमेश्वर] (ते हस्तम्) तेरे हाथ को (गृह्णातु) पकड़े [सहाय करे], (राजा) ऐश्वर्यवान् (सोमः) सर्वोत्पादक [परमात्मा] (सुप्रजसम्) सुन्दर सन्तान वाली (कृणोतु) करे। (जातवेदाः) धनों का प्राप्त कराने वाला (अग्निः) सर्वव्यापक [जगदीश्वर] (पत्ये) पति के लिये (पत्नीम्) पत्नी को (सुभगाम्) बड़े ऐश्वर्य वाली और (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वाली वा भोजन वाली (कृणोतु) करे ॥४९॥

भावार्थः—वधू वर सदा परमेश्वर की उपासना करके परस्पर सहाय करने, सन्तान को सुशिक्षित बलवान् बनाने, और धनों के सङ्ग्रह करने में तत्पर रहकर संसार में कीर्तिमान् होवें ॥४९॥

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥५०॥

भाषार्थः—[हे वधू !] (सौभगत्वाय) सौभाग्य [अर्थात् गृहाश्रम में सुख] के लिये (ते हस्तम्) तेरे हाथ को (गृह्णामि) मैं [पति] पकड़ता हूँ, (यथा) जिससे (मया पत्या) मुझ पति के साथ (जरदष्टिः) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वाली वा भोजन वाली (असः) तू रह। (भगः) सकल ऐश्वर्य वाले, (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाले, (सविता) सब को प्रेरणा करने वाले, (पुरन्धिः) सब जगत् का धारण करने वाले [परमेश्वर] और (देवाः) सब विद्वानों ने (मह्यम्) मुझ को (त्वा) तुझे (गार्हपत्याय) गृहकार्य के लिये (अदुः) दिया है ॥५०॥

भावार्थः—वधूवर परमेश्वर और विद्वानों को साक्षी करके परस्पर हाथ पकड़ कर दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि हम दोनों निष्कपट परस्पर सहायक होकर परमेश्वर और विद्वानों की मर्यादा पर चलकर गृहाश्रम का कर्तव्य सिद्ध करेंगे ॥५०॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ८५। ३६, और महर्षि दयानन्द-कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका विवाह विषय पृष्ठ २०८ में व्याख्यात है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥५१॥

भाषार्थः - (भगः) ऐश्वर्यवान् [परमात्मा] ने (ते) तेरा (हस्तम्) हाथ (अग्रहीत्) पकड़ा है [सहाय किया है], (सविता) सर्वोत्पादक जगदीश्वर ने (हस्तम्) हाथ (अग्रहीत्) पकड़ा है। (धर्मणा) धर्म से, (त्वम्) तू (पत्नी) [मेरी] पत्नी [पालन करने वाली] (असि) है, (अहम्) मैं (तव) तेरा (गृहपतिः) गृहपति [घर का पालन करने वाला हूँ] ॥५१॥

भावार्थः—पति पत्नी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि परमेश्वर के अनुग्रह से हम दोनों मिलकर गृहाश्रम में धर्म मार्ग पर चलेंगे और परस्पर सहाय करेंगे ॥५१॥

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥५२॥

भाषार्थः—(इयम्) यह [पत्नी] (मम) मेरे (पोष्या) पोषण योग्य (अस्तु) होवे, (मह्यम्) मुझ को (त्वा) तुझे (बृहस्पतिः) बड़े लोकों के स्वामी [परमात्मा] ने (अदात्) दिया है। (प्रजावति) हे श्रेष्ठ प्रजा वाली ! तू (मया पत्या) मुझ पति के साथ (सम्) मिलकर (शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (जीव) जीती रहे ॥५२॥

भावार्थः—पति को योग्य है कि वस्त्र, अलंकार आदि पदार्थों से पत्नी का सम्मान करता रहे, जिससे दम्पती प्रसन्न रहकर सन्तान आदि का पालन पोषण करते हुए पूर्ण आयु भोगें ॥५२॥

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥५३॥

भाषार्थः—(त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी [आचार्य] (बृहस्पतेः) बड़ी वेदवाणियों की रक्षिका [बृहस्पति पदवी वाली स्त्री] के (शुभे) शुभ [आनन्द] के लिये (कवीनाम्) बुद्धिमानों की (प्रशिषा) अनुमति से (कम्) आनन्द के साथ (वासः) वस्त्र [वेष] (वि) विशेष करके (अदधात्) दिया है। (तेन) इस कारण से (सूर्याम् इव) सूर्य की चमक के समान [शोभायमान] (इमाम् नारीम्) इस नारी [नर की पत्नी] को (सविता) प्रेरक विद्वानों का समूह (च) और (भगः) ऐश्वर्यवान् पति, दोनों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रजया) प्रजा [सन्तान सेवक आदि] के साथ (परि) सब ओर से (धत्ताम्) धारण करें ॥५३॥

भावार्थः—जिस विदुषी स्त्री ने विद्या प्राप्त करके विद्वानों के समाज में बृहस्पति, स्नातक आदि पदवी लेकर विद्यासूचक वस्त्र अर्थात् वेष प्राप्त किया हो, विद्वान् लोग और पति उसकी सदा प्रतिष्ठा करें जिससे वह उत्तम प्रजा वाली होवे ॥५३॥

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥५४॥

भाषार्थः—(इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अग्नि, (द्यावापृथिवी) सूय और भूमि, (मित्रावरुणा) प्राण और अपान, (उभा) दोनों (अश्विना) दिन और रात्रि, (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला [सूत्रात्मा वायु,], (बृहस्पतिः) बड़े लोकों का रक्षक [आकाश], (सोमः) चन्द्रमा, (भगः) सेवनीय यश, (ब्रह्म) अन्न, और (मरुतः) विद्वान् लोग (इमाम् नारीम्) इस नारी को (प्रजया) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] से (वर्धयन्तु) बढ़ावें ॥५४॥

भावार्थः—विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष को योग्य है कि संसार के सब पदार्थों को उपयोगी बनाकर सन्तान आदि को वृद्धि युक्त करें ॥५४॥

बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥५५॥

भाषार्थः—(प्रथमः) पहिले से ही वर्तमान (बृहस्पतिः) बड़े बड़े लोकों के स्वामी [परमेश्वर] ने (सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या के (शीर्षे) मस्तक पर (केशान्) केशों को (अकल्पयत्) बनाया है। (तेन) इस [कारण] से (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनों [स्त्री पुरुषों के समाज !] (इमाम् नारीम्) इस नारी को (पत्ये) पति के लिये (सम्) ठीक ठीक (शोभयामसि) हम शोभायमान करते हैं ॥५५॥

भावार्थः—परमेश्वर ने शिर के केशों और वैसे ही शरीर के अंगों को अपने अपने प्रयोजन के लिये सुडौल बनाया है। गुरुजनों को योग्य हैं कि वधू वर को संसार के हित के लिये विद्या सुशीलता आदि से सुशिक्षित करें कि वे अपने शरीर के अंगों को सुडौल और हृष्ट पुष्ट रक्खें ॥५५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥५६॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (तत्) वह (रूपम्) रूप [सुन्दरता व स्वभाव] है, (यत्) जिसको (योषा) सेवनीय (वधू) ने (अवस्त) धारण किया है, (मनसा) विज्ञान के साथ (चरन्तीम्) चलती हुई (जायाम्) पत्नी को (जिज्ञासे) मैं जानना चाहता हूं। (नवग्वैः) स्तुति योग्य चरित्र वाले अथवा नवीन नवीन विद्या को प्राप्त करने और कराने हारे (सखिभिः) मित्रों के सहित (ताम् अनु) उस [पत्नी] के साथ साथ (अतिष्ये) मैं चलूंगा (विद्वान्) विद्वान् (कः) प्रजापति [परमेश्वर] ने (इमान् पाशान्) इन [अविद्या के] फंदों को (वि चचर्त) खोल दिया है ॥५६॥

भावार्थः—विद्या सुशीलता आदि गुणों से सुभूषित पतिपत्नी सुयोग्य इष्ट मित्रों सहित शुभ गुणों का आदर करके परस्पर हित करें और परमेश्वर को धन्यवाद दें कि जिसके अनुग्रह से ऐसा शुभ अवसर मिला है ॥५६॥

अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥५७॥

भाषार्थः—(अस्याः) इस [पत्नी] के (रूपम्) रूप [स्वभाव वा सौन्दर्य] को (मनसः) अपने मन का (कुलायम्) आधार (वेदत्) जानता हुआ और (पश्यन्) देखता हुआ (इत्) ही (अहम्) मैं [वर] (मयि) अपने में (वि ष्यामि) निश्चय करके धारण करता हूं। (स्तेयम्) चोरी के पदार्थ को (न) नहीं (अद्मि) खाता हूं, (मनसा) विज्ञान के साथ (वरुणस्य) रुकावट [अर्थात् विघ्न] के (पाशान्) फन्दों को (स्वयम्) अपने आप [अर्थात् पुरुषार्थ से] (श्रथ्नानः) ढीला करता हुआ (उत् अमुच्ये) मैं छुट गया हूं ॥५७॥

भावार्थः—विद्वान् पति पत्नी परस्पर उत्तम गुण स्वभाव को हृदय में धारण करके विचार पूर्वक विघ्नों को हटाकर निष्कपट होकर उन्नति करें ॥५७॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥५८॥

भाषार्थः—[हे वधू !] (त्वा) तुझे (वरुणस्य) रुकावट [विघ्न] के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पाशात्) बन्धन से (प्र मुञ्चामि) मैं [वर] अच्छे प्रकार छुड़ाता हूं, (येन) जिसके साथ (त्वा) तुझे (सुशेवाः) अत्यन्त सेवा योग्य (सविता) जन्मदाता पिता ने (अबध्नात्) बांधा है। (वधु) हे वधू ! (सहपत्न्यै) पति के साथ वर्तमान (तुभ्यम्) तेरे लिये (अत्र) यहां [गृहाश्रम में] (उरुम्) चौड़ा (लोकम्) घर और (सुगम्) सुगम (पन्थाम्) मार्ग (कृणोमि) मैं [पति] बनाता हूं ॥५८॥

भावार्थः—जिस कन्या को पिता ने योग्य पति के मिलने तक रोका था, वह कन्या योग्य पति के साथ सुखपूर्वक सुप्रबन्ध करके गृहाश्रम का कर्तव्य करे और उसी प्रकार पति भी पुरुषार्थ करके पत्नी के साथ प्रीति से रहे ॥५८॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध ऊपर मन्त्र १९ में आ चुका है ॥५८॥

उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥५९॥

भाषार्थः—[हे वीरो ! शस्त्रों को] (उत् यच्छध्वम्) उठाओ, (रक्षः) राक्षस को (अप हनाथ) मार हटाओ, (इमां नारीम्) इस नारी [नर की पत्नी] को (सुकृते) सुकृत [पुण्य कर्म] में (दधात) धारण करो। (विपश्चित्) बुद्धिमान् (धाता) धारण करने वाले [परमेश्वर] ने (अस्यै) इस [वधू] के लिये (पतिम्) पति (विवेद) प्राप्त कराया हैं, (प्रजानन्) पहिले से जानने वाला (राजा) प्रकाशमान (भगः) ऐश्वर्यवान् [परमात्मा] (पुरः) आगे (एतु) प्राप्त होवे ॥५९॥

भावार्थः—धर्मात्मा वीर लोग प्रयत्न के साथ विघ्नों से पृथक् करके वर वधू को धर्म में प्रवृत्त रक्खें, और परमात्मा का सदा ध्यान करें कि जिस ने कृपा करके विद्वान् पति पत्नी को मिलाया है, वही उनका सदा सहाय करे ॥५९॥

भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥६०॥

भाषार्थः—(भगः) भगवान् [ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] ने (चतुरः) चार [धर्म अर्थ काम मोक्ष रूप] (पादान्) प्राप्ति योग्य पदार्थ (ततक्ष) रचे हैं, (भगः) भगवान् ने (चत्वारि) चार [ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम रूप] (उष्पलानि) हिंसा से बचाने वाले कर्म (ततक्ष) बनाये हैं। (त्वष्टा) विश्वकर्मा [परमेश्वर] ने (मध्यतः) बीच में [स्त्री पुरुषों के भीतर] (वर्ध्रान्) वृद्धिव्यवहारों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की (अनु) अनुकूल (पिपेश) व्यवस्था की है, (सा) वह [वधू] (नः) हमारे लिये (सुमङ्गली) सुमङ्गली [बड़ी आनन्द देने वाली] (अस्तु) होवे ॥६०॥

भावार्थः—परमेश्वर ने वेदों द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और उनके साधन ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों का उपदेश कर के संसार के उपकार के लिये स्त्री पुरुषों को ज्ञान और बुद्धि का सामर्थ्य दिया है ।६०॥

सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥६१॥

भाषार्थः—(सूर्ये) हे प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] वधू ! (सुकिंशुकम्) अच्छे चमकने वाले [अग्नि वा बिजुली वाले] वा बहुत प्रशंसनीय चाल वाले, (विश्वरूपम्) नाना रूपों वाले [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, आदि वर्णों वाले, अथवा ऊंचे नीचे मध्यम स्थान वाले], (हिरण्यवर्णम्) सुवर्ण के लिये चाहने योग्य, (सुवृतम्) अच्छे घूमने वाले [सब ओर मुड़ जाने वाले], (सुचक्रम्) सुन्दर [दृढ़, शीघ्रगामी] पहियों वाले (वहतुम्) रथ पर [गृहाश्रम रूप गाड़ी पर] (त्वम्) तू (आ रोह) चढ़, और (पतिभ्यः) पति कुल वालों के लिये (वहतुम्) [अपने] पहुंचने को (अमृतस्य) अमरपन [पुरुषार्थ] का (स्योनम्) सुखदायक (लोकम्) लोक [संसार वा स्थान] (कृणु) बना ॥६१॥

भावार्थः—जैसे चतुर महारथी धन धान्य से परिपूर्ण सुदृढ़ रथ पर अपने साथियों सहित चढ़ कर इच्छानुसार विचार कर कार्य सिद्धि करता है, वैसे ही समझदार स्त्री तथा पुरुष गृहाश्रम में प्रवेश कर के सुप्रबन्ध से अपने कुटुम्बियों सहित सुख भोगें ॥६१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । २०, तथा महर्षि दयानन्द-कृत संस्कार विधि विवाह प्रकरण में रथ पर वधू को वर के चढ़ा ले जाने में विनियुक्त है, और निरुक्त १२ । ८ में व्याख्यात है ॥

अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते ।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥६२॥

भाषार्थः—(वरुण) हे श्रेष्ठ ! (बृहस्पते) हे वेदवाणी के रक्षक ! (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले ! (सवितः) हे प्रेरणा करने वाले [वर !] (अभ्रातृघ्नीम्) भाइयों को न सताने वाली, (अपशुघ्नीम्) पशुओं को न मारने वाली, (अपतिघ्नीम्) पति को न दुःख देने वाली और (पुत्रिणीम्) श्रेष्ठ पुत्रों की उत्पन्न करने वाली [वधू] को (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (आ वह) तू ले चल ॥६२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः– सब विद्वान् लोग आशीर्वाद देवें कि विद्वान् समर्थ वर विदुषी व्यवहारकुशल वधू को गृहाश्रम की सिद्धि के लिये आदर पूर्वक ग्रहण करें ॥६२॥

इस मन्त्र का मिलान करो—ऋग्वेद १० । ८५ । ४४ ॥

मा हिंसिष्टं कुमार्यं १ स्थूणे देवकृते पथि ।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥६३॥

भाषार्थः—(स्थूणे) हे दोनों स्थिर स्वभाव वाली [स्त्री पुरुषों की पङ्क्ति !] (कुमार्यम्) कुमारी [कन्या अर्थात् वधू] को (देवकृते) विद्वानों के बनाये (पथि) मार्ग में (मा हिंसिष्टम्) मत कष्ट पाने दो । (देव्याः) व्यवहार योग्य (शालायाः) शाला के (स्योनम्) सुखदायक (द्वारम्) द्वार को (वधूपथम्) वधू का मार्ग (कृण्मः) हम बनाते हैं ॥६३॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष प्रयत्न करें कि पितृकुल से पृथक् होकर वधू प्रसन्न रहे और जैसे सुन्दर स्वच्छ शाला के सुन्दर स्वच्छ द्वार में होकर जाने आने में सुख होता है, वैसे ही सुप्रबन्ध वाले गृहाश्रम में वध को सुख मिले ॥६३॥

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥६४॥

भाषार्थः—(ब्रह्म) ब्रह्म [परब्रह्म परमात्मा] (पूर्वम्) पहिले, (ब्रह्म) ब्रह्म (अपरम्) पीछे, (ब्रह्म) ब्रह्म (अन्ततः) अन्त में और (मध्यतः) मध्य में, और (ब्रह्म) ब्रह्म (सर्वतः) सर्वत्र (युज्यताम्) ध्यान किया जावे । [हे वधू !] (अनाव्याधाम्) छेदन रहित [अटूट, दृढ़] (देवपुराम्) देवताओं [विद्वानों] के गढ़ में (प्रपद्य) पहुंचकर (शिवा) कल्याणकारिणी और (स्योना) सुखदायिनी तू (पतिलोके) पतिलोक [पति के समाज] में (वि राज) विराजमान हो ॥६४॥

भावार्थः—वधू तथा वर को योग्य है कि परमात्मा को सब स्थानों और सब कालों में प्रत्यक्ष जानकर वीरता और निर्विघ्नता से गृहाश्रम में अपने कर्तव्यों को प्रसन्न होकर पूरा करें ॥६४॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥२॥

१—७५ ॥ दम्पती देवते । १—४, ७, ८, १०, ११, १५, १६, २१—२३, २७—३०, ५३ —५८, ६३ —६६, ७२, ७३, अनुष्टुप् ५ जगती, ६ निचृज् जगती, ९ त्र्यवसाना षट्पदा, भुरिगष्टिः, १२ निचृदार्षी जगती, १३, ३५, ४३ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, १४, १७—१९, ३४, ३८, ४२, ७०, ७४, ७५ त्रिष्टुप्; २० स्वराडनुष्टुप्, २४ विराट् त्रिष्टुप्, २५, ३६, ४१, ४९, निचृत् त्रिष्टुप्, २६ त्रिपदा विराड् गायत्री, ३१, ३९ स्वराट् त्रिष्टुप्, ३२, ३७ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३३ भुरिगुपरिष्टाद्; बृहती; ४० स्वराड् जगती; ४४ निचृत् प्रस्तारपङ्क्तिः, ४५, ४६, ५१, ६७ भुरिगनुष्टुप्; ४७ पथ्या बृहती; ४८ आर्षी पङ्क्ति; ५० निचृदुपरिष्टाद् बृहती; ५२ विराट् परोष्णिक्; ५९, ६०, ६२ पथ्या पङ्क्तिः, ६१ भुरिक् पथ्या पङ्क्तिः; ६८, पुर उष्णिक्, ६९ त्र्यवसाना षट्पदाऽतिशक्वरी; ७१ निचृत्पथ्या पङ्क्तिश्छन्दः ॥

गृहाश्रमोपदेशः—गृह आश्रम का उपदेश ॥

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (अग्रे) पहिले से वर्तमान (तुभ्यम्) तेरे लिये [तेरी आज्ञा पालन के लिये] (सूर्याम्) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या को (वहतुना सह दाय [यौतुक, अर्थात् विवाह में दिये हुए पदार्थ] के साथ (परि) सब प्रकार से (अवहन्) वे [विद्वान् लोग] लाये हैं, (सः) सो तू [हे परमेश्वर !] (नः पतिभ्यः) हम पतिकुल वालों के हित के लिये (जायाम्) इस पत्नी को (प्रजया सह) प्रजा [सन्तान सेवक आदि] के साथ (दाः) दे ॥१॥

भावार्थः— अनादि परमात्मा की उपासना कर के विद्वान् लोग गुणवती कन्या को यौतुक आदि के साथ पति कुल में आनन्द से रहने के लिये आशीर्वाद देवें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ३८, और महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में वधू वर के यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करने में उद्धृत है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥२॥

भाषार्थः—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (आयुषा) आयु और (वर्चसा सह) तेज के साथ (पत्नीम्) पत्नी को (पुनः) निश्चय करके (अदात्) दिया है। (अस्याः) इस [पत्नी] का (यः) जो (पतिः) पति है, [वह] (दीर्घायुः) दीर्घ आयु वाला होकर (शतम् शरदः) सौ वर्षों तक (जीवाति) जीता रहे ॥२॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर के अनुग्रह से आयुष्मती पुण्यवती वधू प्राप्त हुई है, उस परमात्मा से बुद्धिमान् लोग प्रार्थना करें कि उसका पति भी यश और कीर्ति के साथ पूर्ण आयु भोगे ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। ८५। ३९॥

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥३॥

१—सामान्य अर्थ ॥

भाषार्थः—[हे वधू!] (सोमस्य) सोम [शान्ति आदि शुभ गुण] की (जाया) उत्पत्ति स्थान (प्रथमम्) पहिले [पहिली अवस्था में] [तू है], (गन्धर्वः) गन्धर्व [वेदवाणी का धारण करने वाला गुण] (ते) तेरा (अपरः) दूसरा (पतिः) पति [रक्षक] है। (अग्निः) अग्नि [अर्थात् विद्या और शरीर का तेज] (ते) तेरा (तृतीयः) तीसरा (पतिः) पति [रक्षक] है, और (मनुष्यजाः) मनुष्य [अर्थात् मनन शीलों में उत्पन्न विद्वान् युवा पुरुष] (ते) तेरा (तुरीयः) चौथा [पति] है ॥३॥

भावार्थः—जब कन्या ब्रह्मचर्य से पहली, दूसरी और तीसरी अवस्था में क्रम से माता, पिता और आचार्या से सुशिक्षा पाकर और शरीर से स्वस्थ युवती होकर तेजस्विनी हो, तब अपने सदृश मातृमान् पितृमान् और आचार्यवान् नीरोग ब्रह्मचारी पुरुष से विवाह करे ॥३॥

इस मन्त्र का अर्थ श्रीमान् पण्डित काली प्रसाद शर्मा आचार्य की सम्मति से किया गया है जिन को बहुत धन्यवाद देता हूं ॥३॥

२—नियोग विषयक अर्थ ॥

भावार्थः—[हे स्त्री! तू] (सोमस्य) सोम [अर्थात् ऐश्वर्यवान् विवाहित पुरुष] की (जाया) पत्नी (प्रथमम्) पहिली वार [होती है], (गन्धर्वः) गन्धर्व [अर्थात् वेदवाणी का धारण करने वाला नियुक्त पुरुष] (ते) तेरा (अपरः) दूसरा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पतिः) पति अर्थात् रक्षक [होता है], (अग्निः) अग्नि [अर्थात् ज्ञानी नियुक्त पुरुष] (ते) तेरा (तृतीयः) तीसरा (पतिः) पति [होता है] और (मनुष्यजाः) मनुष्य [मननशीलों में उत्पन्न नियुक्त पुरुष] (ते) तेरा (तुरीयः) चौथा [पति होता है] ॥३॥

भावार्थः—स्त्री को योग्य है कि विपत्तिकाल में अर्थात् विवाहित पति के रोगी होने वा मर जाने पर अन्य तीन पतियों तक एक दूसरे के पीछे नियोग करके सन्तान उत्पन्न करे, पहिले विवाहित पति का नाम सोम होता है और अन्य तीन जो नियोग के पति हैं, क्रम से गन्धर्व, अग्नि और मनुष्य कहाते हैं। इसी प्रकार विवाहित स्त्री सोम्या, और नियोग की तीनों स्त्रियां क्रम से गन्धर्वी, आग्नेयी और मानुषी कहाती हैं ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ८५। ४०। और महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास नियोगविषय और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका नियोगविषय में व्याख्यात है। इस मन्त्र का पाठ और शब्दार्थ इस प्रकार है—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

[हे स्त्री !] (सोमः) सोम [अर्थात् शान्ति आदि शुभ गुण, वा ऐश्वर्यवान् पुरुष] (प्रथमः) पहिला (ते) तेरा (पतिः) पति [रक्षक] (विविदे) [विद सत्तायाम्—लडर्थे लिट्] होता है, (उत्तरः) दूसरा (गन्धर्वः) गन्धर्व [अर्थात् वेदवाणी का धारण करने वाला गुण वा पुरुष], (तृतीयः) तीसरा (अग्निः) अग्नि [अर्थात् विद्या और शरीर का तेज वा ज्ञानी पुरुष], और (मनुष्यजाः) मनुष्य [मननशीलों में उत्पन्न हुआ पुरुष] (ते) तेरा (तुरीयः) चौथा [पति] (विविदे) होता है ॥

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद॒ग्नये।
र॒यिं च॑ पु॒त्रांश्चा॑दाद॒ग्निर्मह्य॒मथो॑ इ॒माम् ॥४॥

१—सामान्य अर्थ ॥

भाषार्थः—(सोमः) सोम [शान्ति आदि शुभ गुण] (गन्धर्वाय) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करने वाले गुण] के लिये [कन्या को] (ददत्) देता है, (गन्धर्वः) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करने वाला गुण] (अग्नये) अग्नि [विद्या और शरीर के तेज] के लिये (ददत्) देता है। (अथो) फिर (अग्निः) अग्नि [विद्या और शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का तेज] (इमाम्) इस [स्त्री] को (च) और (रयिम्) धन को, (च) और (पुत्रान्) पुत्रों को (मह्यम्) मुझ [युवा ब्रह्मचारी] को (अदात्) देता है ॥४॥

भावार्थः—जब कन्या माता पिता और आचार्या से यथाक्रम सुशिक्षित होकर युवती हो जावे, तब यथाक्रम माता पिता और आचार्य से शिक्षा पाया हुआ युवा ब्रह्मचारी वैसी गुणवती कन्या से विवाह करके धनवान् और पुत्रवान् होवे ॥४॥

२—नियोगविषयक अर्थ ॥

भाषार्थः—(सोम) सोम [ऐश्वर्यवान् विवाहित पति] (गन्धर्वाय) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करने वाले दूसरे नियुक्त पुरुष] के लिये [स्त्री को] (ददत्) छोड़ता है। (गन्धर्वः) गन्धर्व [वेदवाणी का धारण करने वाला दूसरा नियुक्त पुरुष] (अग्नये) अग्नि [ज्ञानी तीसरे नियुक्त पुरुष] के लिये (ददत्) छोड़ता हैं। (अथो) फिर (अग्निः) अग्नि [ज्ञानी तीसरा नियुक्त पुरुष] (इमाम्) इस [स्त्री] को, (च) और (रयिम्) धन को (च) और (पुत्रान्) पुत्रों को (मह्यम्) मेरे लिये [अर्थात् चौथे नियुक्त पुरुष के लिये] (अदात्) छोड़ता है ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि सदा एक स्त्रीव्रत रहे चाहे वह विवाहित हो वा नियुक्त हो, और विवाहित स्त्री के मरजाने वा रोगी हो जाने पर आपत् काल में ही एक दूसरे के पीछे अन्य तीन स्त्रियों तक नियोग करके धन और सन्तान प्राप्त करे। इसी प्रकार स्त्री भी एक विवाहित पति के मर जाने वा रोगी हो जाने पर आपत् काल में ही अन्य तीन नियुक्त पतियों के साथ एक दूसरे के पीछे रह कर धन और सन्तान की रक्षा करे ॥४॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ४१ ॥

आ वा॑मगन्त्सुम॒तिर्वा॑जिनीवसू॒ न्य॑श्विना हृ॒त्सु कामा॑ अरंसत ।
अभू॑तं गो॒पा मि॑थु॒ना शु॑भस्पती प्रि॒या अ॑र्य॒म्णो दुर्याँ॑ अशीमहि ॥५॥

भाषार्थः—(वाजिनीवसू) हे बहुत वेग वाली वा अन्न वाली क्रियाओं में निवास करने वाले दोनों [स्त्री पुरुषो !] (वाम्) तुम दोनों को (सुमतिः) सुमति (आ) सब ओर से (अगन्) प्राप्त होवे, (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनों (हृत्सु) [तुम्हारे] हृदयों में (कामाः) शुभ कामनायें (नि) निरन्तर (अरंसत) रमण करें [रहें]। (शुभः पती) हे शुभ क्रिया के रक्षको ! (मिथुना) तुम दोनों (गोपा) रक्षक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अभूतम्) होओ, (प्रियाः) हम लोग प्रिय होकर (अर्यम्णः) श्रेष्ठों के मान करने वाले पुरुष के (दुर्यान्) घरों को (अशीमहि) प्राप्त करें ॥५॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि फुरती से सुमतिपूर्वक अन्न आदि सामग्री प्राप्त करके शुभ कामनायें सिद्ध करते हुए सब के रक्षक बनें, जिस से विद्वान् लोग प्रीति करके उनका आश्रय लेवें ॥५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ४०। १२॥

सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥६॥

भाषार्थः—[हे वधू !] (सा) सो तू (मन्दसाना) आनन्द करती हुई (शिवेन) कल्याणयुक्त (मनसा) मन के साथ (सर्ववीरम्) सब वीरों वाले (वचस्यम्) स्तुति योग्य (रयिम्) धन को (धेहि) धारण कर (शुभः पती) हे शुभ क्रिया के रक्षक तुम दोनों ! (सुगम्) सुख से जाने योग्य, (सुप्रपाणम्) सुन्दर पानी वाले (तीर्थम्) तीर्थ [उतरने के घाट] को [धारण करो], और (पथिष्ठाम्) मार्ग में खड़े हुये (स्थाणुम्) ठूठ [झाड़ झंकड़ आदि समान] (दुर्मतिम्) दुर्मति को (अप हतम्) नाश करो ॥६॥

भावार्थः—जहां पर गुणवती स्त्री प्रसन्न होकर धन का प्रबन्ध करके सन्तानों को शूर, वीर, यशस्वी बनाती है, वहां पर दोनों पति पत्नी विघ्नों को हटाकर गृहाश्रम को ऐसा सुखदायी करते हैं, जैसे विद्वान् शिल्पी मार्ग के कण्टक आदि मेंटकर नदी का सुगम तीर्थ अर्थात् घाट बनाता है जिस पर होकर सब सुख से उतरते और जल से स्नान पान करके आनन्द पाते हैं ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ४०। १३॥

या ओषधयो या नद्यो३ यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥७॥

भाषार्थः—(याः) जो (ओषधयः) ओषधियां [अन्न, सोमलता आदि], (याः) जो (नद्यः) नदियां, (यानि) जो (क्षेत्राणि) खेत और (या) जो (वना) वन [वृक्ष वाटिका आदि] हैं। (ताः) वे सब [ओषधि आदि], (वधु) हे वधू ! (त्वा प्रजावतीम्) तुझ श्रेष्ठ सन्तान वाली को (पत्ये) पति के लिये (रक्षसः) राक्षस [विघ्न] से (रक्षन्तु) बचावें ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—गृहाश्रमी स्त्री पुरुषों को योग्य है कि अन्न, ओषधि, नदियों, वन उपवन आदि आवश्यक पदार्थों का यथावत् उपयोग करके कष्टों से बचकर सुखी रहें ॥७॥

एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥८॥

भाषार्थः—(इमम्) इस [वैदिक] (सुगम्) सुख से चलने योग्य, (स्वस्तिवाहनम्) आनन्द पहुंचाने वाले (पन्थाम्) मार्ग पर (आ अरुक्षाम) हम चढ़ें । (यस्मिन्) जिस [मार्ग] में (वीरः) वीर पुरुष (न रिष्यति) कष्ट नहीं पाता है, और (अन्येषाम्) दूसरे [अधर्मियों] का (वसु) धन [दण्ड द्वारा] (विन्दते) लेता है ॥८॥

भावार्थः—गृहस्थियों को चाहिये कि धार्मिक वैदिक मार्ग पर चलकर वीरपन से अधर्मियों को दण्ड दें और धन वृद्धि करें ॥८॥

इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥९॥

भाषार्थः—(नरः) हे नरो ! (इदम्) अब (मे) मेरी [बात] (सु) अच्छे प्रकार (शृणुत) सुनो, (यया आशिषा) जिस आशीर्वाद से (दम्पती) पति पत्नी दोनों (वामम्) श्रेष्ठ पदार्थ (अश्नुतः) पाते हैं । (ये) जो (गन्धर्वाः) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करने वाले पुरुष] (च) और (अप्सरसः) कामों में व्यापक रहने वाली (देवीः) देवियां [बड़ी गुणवती स्त्रियां] हैं, और (ये) जो पुरुष (एषु) इन (वानस्पत्येषु) सेवनीय शास्त्र के रक्षक जन से संबन्ध वाले पुरुषों में (अधि) ऊंचे (तस्थुः) ठहरते हैं । वे सब [हे वधू !] (ते अस्यै वध्वै) तुझ इस वधू के लिये (स्योनाः) सुखदायक (भवन्तु) होवें, वे (उह्यमानम्) चलते हुए (वहतुम्) रथ [रथ समान गृह कार्य] को (मा हिंसिषुः) न हानि पहुँचावें ॥९॥

भावार्थः—सब निपुण विद्वान् पुरुष और गृहकार्य में चतुर स्त्रियां मिल कर ऐसा प्रयत्न करें कि वे दोनों स्त्री पुरुष गृहाश्रम में यथावत् सिद्धि प्राप्त करें, और कभी चलते हुए गृह कार्य में विघ्न न पड़ने पावें ॥९॥

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जो (यक्ष्माः) क्षय रोग (जनान् अनु) मनुष्यों में वर्तमान (वध्वः) वधू के (चन्द्रम्) आनन्द देने वाले [वा सुनहले] (वहतुम्) रथ को (यन्ति) प्राप्त होवें। (तान्) उन [रोगों] को (यज्ञियाः) पूजा योग्य (देवाः) विद्वान् लोग (पुनः) अवश्य [वहां] (नयन्तु) पहुंचावें, (यतः) जहां से [जिस कारण से] (आगताः) वे [रोग] आये हैं ॥१०॥

भावार्थः—जब कभी मार्ग आदि स्थान में स्त्री वा पुरुष को रोग का उपद्रव आ पड़े, विद्वान् वैद्य लोग कारण जानकर उसका प्रतिकार करें ॥१०॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ८५। ३१॥

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥११॥

भाषार्थः—(ये) जो (परिपन्थिनः) बटमार लोग (दम्पती) पति पत्नी को (आसीदन्ति) घात में आकर बैठते हैं, (मा विदन्) वे न मिलें। (सुगेन) सुगम [मार्ग] से (दुर्गम्) कठिन स्थान को (अति) पार करके (इताम्) दोनों चले जावें और (अरातयः) शत्रु लोग (अप द्रान्तु) भाग जावें ॥११॥

भावार्थः—मार्ग चलने में स्त्री पुरुष सावधानी से प्रबन्ध कर लें कि डाकू लुटेरे आदि के उपद्रवों से बचकर कुशल से ठिकाने पर पहुंचे ॥११॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ८५। ३२, और महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि विवाहप्रकरण में चोर आदि से भय वा भयङ्कर स्थान होने पर बोलने के लिये उद्धृत है। इस मन्त्र का चौथा पाद ऊपर आ चुका है—अ० ६। १२६। १—३॥

सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥१२॥

भाषार्थः—(ब्रह्मणा) वेदज्ञान द्वारा (गृहैः) घरों के [पदार्थों] सहित [विराजमान] (वहतुम्) वधू को (अघोरेण) अक्रूर [कोमल], (मित्रियेण) मित्रता युक्त (चक्षुषा) नेत्र से (सम् काशयामि) मैं यथावत् दिखाता हूं, (यत्) जो कुछ पदार्थ (विश्वरूपम्) सब प्रकार का (पर्याणद्धम्) सब ओर बंधा हुआ (अस्ति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, (सविता) सब का प्रेरक [परमात्मा] (तत्) उस को (पतिभ्यः) पतिकुल वालों के लिये (स्योनम्) सुखदायक (कृणोतु) करे ॥१२॥

भावार्थः—विद्वान् वर घर में आयी विदुषी वधू के साथ श्रेष्ठ व्यवहार करता रहे, जिससे सब कुटुम्बी लोग घर के पदार्थों में आनन्द पावें ॥१२॥

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥१३॥

भाषार्थः—(इयम्) यह (शिवा) मङ्गलदायिनी (नारी) नारी [नर की पत्नी] (अस्तम्) घर में (आ अगन्) प्राप्त होवे, (धाता) सर्वपोषक [परमात्मा] ने (अस्यै) इस [वधू] को (इमम्) यह (लोकम्) लोक [समाज] (दिदेश) दिया है। (ताम्) उस [वधू] को (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाला [राजा], (भगः) ऐश्वर्यवान् [आचार्य], (उभा) दोनों (अश्विना) विद्या को प्राप्त [स्त्री पुरुषों के समाज], और (प्रजापतिः) प्रजापालक [परमेश्वर] (प्रजया) उत्तम सन्तान से (वर्धयन्तु) बढ़ावें ॥१३॥

भावार्थः—जब परमात्मा की कृपा से उत्तम वधू उत्तम वर को प्राप्त हो, राजा की व्यवस्था, आचार्य की शिक्षा, विद्वान् स्त्री पुरुषों की सत्संगति और परमात्मा की भक्ति से वधू वर दोनों गुणवान् श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करें ॥१३॥

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥१४॥

भाषार्थः—(आत्मन्वती) आत्मा [भीतरी बल] वाली (उर्वरा) उपजाऊ धरती [के समान], (इयम्) यह (नारी) नारी [नर की पत्नी] (आ अगन्) आयी है, (नरः) हे नर ! [वर] (तस्याम्) उस (अस्याम्) ऐसी [गुणवती वधू] में (बीजम्) बीज (वपत) बो। (सा) वह [नारी] (ऋषभस्य) वीर्यवान् पुरुष के (दुग्धम्) दूध समान (रेतः) वीर्य को (बिभ्रती) धारण करती हुयी (वक्षणाभ्यः) अपने पेट की नाड़ियों से (वः) तेरे लिये (प्रजाम्) सन्तान (जनयत्) उत्पन्न करे ॥१४॥

भावार्थः—जैसे बलवती उपजाऊ भूमि में विधि पूर्वक जोतकर उत्तम बीज बोने से उत्तम अन्न उत्पन्न होता है, वैसे ही पूर्ण ब्रह्मचारिणी बल-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वती स्त्री के साथ पूर्ण ब्रह्मचारी वीर्यवान् ऋतुगामी पुरुष का यथाविधि संयोग होने से उत्तम सन्तान उत्पन्न होते हैं ॥१४॥

प्रति॑ तिष्ठ वि॒राड॑सि वि॒ष्णुरि॑वे॒ह सर॑स्वति ।
सिनी॑वालि॒ प्र जा॑यतां॒ भग॑स्य सुम॒ताव॑सत् ॥१५॥

भाषार्थः—(सरस्वति) हे सरस्वती ! [श्रेष्ठ विज्ञान वाली] (प्रति तिष्ठ) दृढ़ रह, (विष्णुः इव) व्यापक सूर्य के समान तू (इह) यहां पर [गृहाश्रम में] (विराट्) विविध प्रकार ऐश्वर्य वाली (असि) है। (सिनीवालि) हे अन्न वाली पत्नी ! [तुझसे] (प्र जायताम्) उत्तम सन्तान उत्पन्न होवे और वह [सन्तान] (भगस्य) भगवान् [ऐश्वर्यवान् परमात्मा] की (सुमतौ) सुमति में (असत्) रहे ॥१५॥

भावार्थः—गर्भवती स्त्री विज्ञानपूर्वक समर्थ होकर वेदादि शास्त्रों के स्वाध्याय और बड़े बड़े पुरुषों के चरित्रों के विचार से श्रेष्ठ धर्मात्मा ईश्वर भक्त सन्तान उत्पन्न करे ॥१५॥

उद्व॑ ऊ॒र्मिः शम्या॑ ह॒न्त्वापो॒ योक्त्रा॑णि मुञ्चत ।
मादु॑ष्कृतौ॒ व्ये॑नसाव॒घ्न्याव॑शु॒नमा॑रताम् ॥१६॥

भाषार्थः—[हे स्त्री पुरुषो !] (वः) तुम्हारी (ऊर्मिः) उत्साह रूपी लहर (उत् हन्तु) ऊंची चले, (आपः) हे आप्त प्रजाओ ! (शम्याः) कर्म कुशल होकर तुम (योक्त्राणि) निन्दित कर्मों को (मुञ्चत) छोड़ो। (अदुष्कृतौ) दुष्ट आचरण न करने वाले, (व्येनसौ) पाप रहित, (अघ्न्यौ) नहीं मारने योग्य [दोनों स्त्री पुरुष] (अशुनम्) दुःख (मा आ अरताम्) कभी न पावें ॥१६॥

भावार्थः—सब कर्मकुशल स्त्री पुरुष निन्दित कर्मों को छोड़कर शुभ कर्मों में अपना उत्साह बढ़ावें, जिन के अनुकरण से यह दम्पती पापों से मुक्त रहकर धर्मात्मा होते हुए उत्तम सन्तानों के साथ सुख भोगें। १६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—३ । ३३ । १३ ॥

अघो॑रचक्षु॒रप॑तिघ्नी स्यो॒ना श॒ग्मा सु॒शेवा॑ सु॒यमा॑ गृ॒हेभ्यः॑ ।
वी॒र॒सूर्दे॒वृका॑मा॒ सं त्वयै॑धिषीमहि सुमन॒स्यमा॑ना ॥१७॥

भाषार्थः—[हे वधू !] तू (गृहेभ्यः) घर वालों के लिये (अघोरचक्षुः) प्रिय दृष्टि वाली, (अपतिघ्नी) पति को न सताने वाली, (स्योना) सुखदायिनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शग्मा) कार्यकुशला, (सुशेवा) सुन्दर सेवा योग्य, (सुयमा) अच्छे नियमों वाली, (वीरसूः) वीरों की उत्पन्न करने वाली, (देवृकामा) देवरों [पति के छोटे भाइयों] से प्रीति रखने वाली और (सुमनस्यमाना) प्रसन्न चित्त वाली [रह], (त्वया) तेरे साथ (सम् एधिषीमहि) हम मिल कर बढ़ते रहें ॥१७॥

भावार्थः गृहपत्नी कर्मकुशल होकर शुद्ध अन्तःकरण से सदा सब का हित करे, जिस से सब घर वृद्धि करता जावे ॥१७॥

यह और आगे का मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । ८५ । ४४, और यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि विवाहप्रकरण में वधू वर के यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा करने में और फिर वर के घर पहुंचकर उनके आज्याहुति देने में व्याख्यात है ॥

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसुर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥१८॥

भाषार्थः- [हे वधू !] (इह) यहां [गृहाश्रम में] (अपतिघ्नी) पति को न सताने वाली, (अदेवृघ्नी) देवरों को न कष्ट देने वाली, (शिवा) मङ्गल करने वाली, (पशुभ्यः) पशुओं के लिये (सुयमा) सुन्दर नियमों वाली (सुवर्चाः) बड़े तेज वाली (एधि) हो । (प्रजावती) श्रेष्ठ प्रजाओं [सेवक आदि] रखने वाली, (वीरसूः) वीरों की उत्पन्न करने वाली, (देवृकामा) देवरों से प्रीति करने वाली, (स्योना) सुख युक्त तू (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि को (सपर्य) सेवन कर ॥१८॥

भावार्थः— गृहिणी को चाहिये कि अपने पति और सब कुटुम्बियों और पशुओं को प्रसन्न रखकर उत्तम सन्तान उत्पन्न करे और गृहकार्य की सिद्धि के लिये शिल्पकर्म, हवनकर्म और पाकक्रिया आदि में अग्नि का यथावत् प्रयोग करती रहे ॥१८॥

उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥१९॥

भाषार्थः—(निर्ऋते) हे अलक्ष्मी ! [दरिद्रता आदि] (इतः) यहां से [सुप्रबन्धयुक्त घर से] (उत् तिष्ठ) उठ, (किम्) क्या [बुरा] (इच्छन्ती) चाहती हुई (इदम्) इस [घर] में (आ अगः) तू आयी है, (अभिभूः) विजयी (अहम्) मैं (त्वा) तुझे (स्वात् गृहात्) अपने घर से (ईडे=ईरे) निकालता हूँ । (शून्यैषी)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शून्य [निर्जनपन] चाहने वाली (या) जो तू (आजगन्थ) आयी है, (अराते) हे कंजूसिन (उत् तिष्ठ) उठ, (प्र पत) चलती हो, (इह) यहाँ (मा रंस्थाः) मत ठहर ॥१९॥

भावार्थः—जिस घर में स्त्री पुरुष विद्वान् चतुर कार्यकुशल होते हैं, वहां पर दरिद्रता, कंजूसी आदि दुर्विघ्न नहीं रहते, वह घर धन धान्य से भरा पूरा सदा मङ्गलमय रहता है ॥१९॥

यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥२०॥

भाषार्थः—(यदा) जब (इयम् वधूः) इस वधू ने (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्नि को (पूर्वम्) पहिले से (असपर्यैत्) सेवन किया है। (अध) इसलिये (नारि) हे नारी ! (सरस्वत्यै) सरस्वती [विज्ञान के भण्डार परमेश्वर] को (च) और (पितृभ्यः) पितरों [पिता समान मान्य पुरुषों] को (नमः) नमस्कार (कुरु) कर ॥२०॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर की और जिन महान् पुरुषों की कृपा से इस वधू ने हवन, शिल्प, अन्न, ओषधि आदि में अग्नि की विद्या को यथावत् जाना है, उस परमेश्वर और उन बड़े लोगों को वह कुलवधू सदा धन्यवाद देती रहे ॥२०॥

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥२१॥

भाषार्थः—[हे विद्वान्]! (एतत्) यह [गृहकार्यरूप] (शर्म) सुखदायक (वर्म) कवच (अस्यै नार्यै) इस नारी को (उपस्तरे) ओढ़ने के लिये (आ हर) ला। (सिनीवालि) हे अन्न वाली पत्नी ! [तुझ से] (प्र जायताम्) उत्तम सन्तान उत्पन्न होवे, और वह [सन्तान] (भगस्य) भगवान् [ऐश्वर्यवान् परमात्मा] की (सुमतौ) सुमति में (असत्) रहे ॥२१॥

भावार्थः—पति आदि सब वधू को गृह कार्य में सदा सहाय देवें, जैसे योद्धा को कवच रणक्षेत्र में सहाय देता है, और सब पुरुष उस वधू के वीर ईश्वरभक्त सन्तान से सुख प्राप्त करें ॥२१॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऊपर मन्त्र १५ में आ चुका है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन ।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥२२॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (यम्) जिस (बल्वजम्) बल्वज [तृण विशेष के आसन] को (न्यस्यथ) तुम बिछाते हो (च) और (चर्म) [मृग सिंह आदि का चर्म, उस पर] (उपस्तृणीथम) तुम फैलाते हो। (सुप्रजाः) सुन्दर जन्म वाली (कन्या) वह कन्या [कमनीया वधू] (तत्) उस पर (आ रोहतु) ऊंची बैठे, (या) जो (पतिम्) पति को (विन्दते) पाती है ॥२२॥

भावार्थः—घर के विद्वान् लोग योग्य आसन आदि से पतिव्रता कुलवधू का आदर सत्कार करते रहें ॥२२॥

(बल्वज) एक तृण विशेष मूंज वा कुश का भेद है जिस से मूंज न मिलने पर मेखला बनाने को मनु० २। ४३ में भी लिखा है ॥

उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥२३॥

भाषार्थः—(रोहिते) रोहित [हरिण विशेष] के (चर्मणि अधि) चर्म पर (बल्वजम्) बल्वज [तृण विशेष का आसन] (उप स्तृणीहि) तू फैला। (तत्र) उस पर (सुप्रजाः) सुन्दर जन्म वाली वधू (उपविश्य) बैठकर (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि [व्यापक परमेश्वर वा भौतिक अग्नि] की (सपर्यतु) सेवा करे ॥२३॥

भावार्थः—विद्वानों के दिये आसन पर बैठकर कुलवधू परमेश्वर की उपासना और यज्ञ आदि में अग्नि का प्रयोग करे ॥२३॥

आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः ॥२४॥

भाषार्थः—[हे वधू !] (चर्म) चर्म [मृग सिंह आदि के चर्म] पर (आ रोह) ऊंची बैठ, (अग्निम्) अग्नि [व्यापक परमात्मा वा भौतिक अग्नि] की (उप सीद) सेवा कर, (एषः देवः) यह देवता (सर्वा) सब (रक्षांसि) राक्षसों [विघ्नों] को (हन्ति) नाश करता है। (इह) यहां [गृहाश्रम में] (अस्मै पत्ये) इस पति के लिये (प्रजाम्) सन्तान (जनय) उत्पन्न कर (एषः) यह (ते पुत्रः) तेरा पुत्र (सुज्यैष्ठ्यः) बड़े ज्येष्ठपन वाला [आयु में वृद्ध और पद में श्रेष्ठ] (भवत्) होवे ॥२४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वधू सावधान और प्रसन्नचित्त होकर परमेश्वर की उपासना और हवन आदि क्रिया करे और विद्वान् लोग चिरजीवी पुरुषार्थी सन्तान उत्पन्न करने के लिये वधू को हित शिक्षा और आशीर्वाद देवें ।।२४।।

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ।।२५।।

भाषार्थः—(अस्याः मातुः) इस माता की (उपस्थात्) गोद से (नानारूपाः) नाना स्वभाव वाले, (जायमानाः) प्रसिद्ध होते हुए (पशवः) दृष्टिवाले विद्वान् लोग (वि) विविध प्रकार (तिष्ठन्ताम्) उपस्थित हों । (सुमङ्गली) बड़ी मङ्गल वाली तू (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि [व्यापक परमेश्वर वा भौतिक अग्नि] की (उप सीद) सेवा कर, और (संपत्नी) पति सहित तू (इह) यहां [गृहाश्रम में] (देवान् प्रति) विद्वानों के लिये (भूष) शोभायमान हो ।।२५।।

भावार्थः—विद्वान् लोग उपाय पूर्वक आशीर्वाद दें कि उस वधू की पूरी ध्यानक्रिया के कारण अनेक दूरदर्शी वीर कीर्तिमान् सन्तान उत्पन्न होवें, और वह सौभाग्यवती विद्वानों का मान करके शोभा प्राप्त करे ।।२५।।

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ।।२६।।

भाषार्थः—[हे वधू !] (सुमङ्गली) बड़ी मङ्गल वाली, (गृहाणाम्) घरों [घर वालों] की (प्रतरणी) बढ़ाने वाली, (पत्ये) पति के लिये (सुशेवा) बड़ी सुख देने वाली, (श्वशुराय) ससुर के लिये (शंभूः) शान्ति देने वाली और (श्वश्र्वै) सासु के लिये (स्योना) आनन्द देने वाली तू (इमान् गृहान्) इन घरों [अर्थात् गृहकार्य्यों] में (प्र विश) प्रवेश कर ।।२६।।

भावार्थः—वधू को योग्य है कि सब प्रकार चतुर होकर घर वालों की उन्नति करती हुई पति, सासु, ससुर आदि को प्रसन्न रखकर घर के कामों में प्रवेश करे ।।२६।।

मन्त्र २६ और २७ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥२७॥

भाषार्थः—[हे वधू !] तू (श्वशुरेभ्यः) ससुर आदि के लिये (स्योना) सुख देने वाली, (पत्ये) पति के लिये और (गृहेभ्यः) घर वालों के लिये (स्योना) सुख देनेवाली (भव) हो। (अस्यै) इस (सर्वस्यै विशे) सब प्रजा के लिये (स्योना) सुख देने वाली और (एषाम्) इनके (पुष्टाय) पोषण के लिये (स्योना) सुख देने वाली (भव) हो ॥२७॥

भावार्थः—उत्तम वधू पालन पोषण करके सब कुटुम्बियों को प्रसन्न रक्खे ॥२७॥

मन्त्र २६ देखो ॥

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥२८॥

भाषार्थः—हे विद्वानो !] (इयम् वधूः) यह वधू (सुमङ्गलीः) बड़े मङ्गल वाली है, (समेत) मिलकर आओ और (इमाम्) इसे (पश्यत) देखो। (अस्यै) इस [वधू] को (सौभाग्यम्) सुभागपन [पति की प्रीति] (दत्त्वा) देकर (दौर्भाग्यैः) दुर्भगिपनों से [इस को] (विपरेतन) पृथक् रक्खो ॥२८॥

भावार्थः—सब विद्वान् लोग मिलकर आशीर्वाद देवें कि वधू पति की प्राणप्रिया होकर सदा आनन्द से रहे और कभी कष्ट न उठावे ॥२८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ८५। ३३, और महर्षि दयानन्द-कृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में आशीर्वाद देने के लिये विवाह में आये लोगों के बुलाने में विनियुक्त है ॥

या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्व१स्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥२९॥

भाषार्थः—(याः) जो तुम (युवतयः) हे युवा स्त्रियो ! (च) और (याः) जो तुम (जरतीः) हे वृद्ध स्त्रियो ! (अपि) भी (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाली (इह) यहां पर हो। वे तुम (अस्यै) इस [वधू] को (वर्चः) अपना तेज (नु) शीघ्र (सम् दत्त) दे डालो, (अथ) फिर (अस्तम्) अपने अपने घर (विपरेतन) चली जाओ ॥२९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो दुष्ट स्त्रियां घर में आ जावें, वधू अपनी चतुराई से उन्हें ऐसा परास्त करे कि वे अपने तेज गंवाकर चली जावें और फिर कभी न आवें ॥२९॥

इस मन्त्र का चौथा पाद ऋग्वेद १० । ८५ । ३२ में चौथा पाद है। यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥३०॥

भाषार्थः—(रुक्मप्रस्तरणम्) सुवर्ण के बिछौने वाले, (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों [उत्तम मध्यम नीच आकार वा बैठकों] को (बिभ्रतम्) धारण करने वाले (वह्यम्) [गृहाश्रम रूप] गाड़ी पर (सावित्री) सविता [सर्व जनक परमात्मा] को अपना देवता मानने वाली (सूर्या) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] वधू (बृहते) बड़े (सौभगाय) सौभाग्य [पति की प्रीति, बहुत ऐश्वर्य आदि सुख] पाने के लिये (कम्) सुख से (आ अरुहत्) चढ़ी है ॥३०॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! यह ब्रह्मवादिनी तेजस्विनी वधू गृहाश्रम में प्रविष्ट हुई है, हम ऐसा उपाय करें कि वह पतिप्रिया और ऐश्वर्यवती होकर सदा सुख भोगे ॥३०॥

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥३१॥

भाषार्थः—[हे वधू !] तू (सुमनस्यमाना) प्रसन्नचित्त होकर (तल्पम्) पर्यङ्क पर (आ रोह) चढ़, और (इह) यहां [गृहाश्रम में] (अस्मै पत्ये) इस पति के लिये (प्रजाम्) सन्तान (जनय) उत्पन्न कर। (इन्द्राणी इव) इन्द्राणी [बड़े ऐश्वर्य-वान् मनुष्य की पत्नी वा सूर्य की कान्ति] के समान, (सुबुधा) सुन्दर ज्ञान वाली (बुध्यमाना) सावधान तू (ज्योतिरग्राः) ज्योति को आगे रखने वाली (उषसः प्रति) प्रभात वेलाओं में (जागरासि) जागती रहे ॥३१॥

भावार्थः—वधू को योग्य है कि प्रसन्न चित्त होकर पति के साथ उच्च पद पर विराज कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करे और सावधान रहकर सूर्योदय से पहिले उठकर शारीरिक और आत्मिक उन्नति करे ॥३१॥

मन्त्र ३१ और ३२ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥३२॥

भाषार्थः—(देवाः) विद्वान् लोग (अग्रे) पहिले (पत्नीः) अपनी पत्नियों को (नि) निश्चय करके (अपद्यन्त) प्राप्त हुए हैं, और उन्होंने (तन्वः) शरीरों को (तनूभिः) शरीरों से (सम्) यथाविधि (अस्पृशन्त) स्पर्श किया है। [वैसे ही] (नारि) हे नारी ! तू (सूर्या इव) सूर्य की कान्ति के समान (महित्वा) अपने महत्त्व से (विश्वरूपा) समस्त सुन्दरता वाली, (प्रजावती) उत्तम सन्तान को प्राप्त होने हारी तू (पत्या) अपने पति से (इह) यहाँ [गृहाश्रम में] (सं भव) मिल ॥३२॥

भावार्थः—पूर्वज महात्माओं के समान पति पत्नी आपस में प्रीति से प्रयत्न करके उत्तम सन्तान उत्पन्न करें और गृहाश्रम के बीच सुख बढ़ावें ॥३२॥

मन्त्र ३१ की टिप्पणी देखो ॥

उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा । जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥३३॥

भाषार्थः—(विश्वावसो) हे समस्त धन वाले वर ! (इतः) [अपने] इस स्थान से (उत् तिष्ठ) उठ, (नमसा) आदर के साथ (त्वा) तुझ से (ईडामहे) हम यह चाहते हैं। (पितृषदम्) पितृकुल में रहती हुई (न्यक्ताम्) नियम से तैल आदि लगाये हुए [विवाह संस्कार किये हुए] (जामिम्) कुलवधू से (इच्छ) प्रीति कर, (जनुषा) जन्म [मनुष्य जन्म] के कारण (सः) यह (ते) तेरा (भागः) सेवनीय पदार्थ है, (तस्य) इसका (विद्धि) तू ज्ञान कर ॥३३॥

भावार्थः—पूर्व मन्त्र में वर के साथ मिलने के लिये वधू से कहा गया था, अब वर से कहा है कि अपनी विवाहित स्त्री से यथाशास्त्र मिलकर सन्तान उत्पन्न करके मनुष्य जन्म सुफल करे ॥३३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । २१, २२ ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥३४॥

भाषार्थः—(अप्सरसः) अप्सरायें [कामों में व्यापक स्त्रियां] (हविर्धानम्) ग्राह्य पदार्थों के आधार [वधू] (च) और (सूर्यम् अन्तरा) प्रेरणा करने वाले [वर]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास **(सधमादम्)** परस्पर आनन्द **(मदन्ति)** मनाती हैं। [हे वधू वा वर!] **(ताः)** वे [स्त्रियां] **(ते)** तेरे **(जनित्रम्)** जन्म का कारण हैं, **(ताः अभि)** उनके सामने होकर **(परा)** निकट **(इहि)** जा **(गन्धर्वर्तुना)** विद्या धारण करने वाले मनुष्य के ऋतु से [यथार्थ समय के विचार से] **(ते)** तेरे लिये **(नमः)** आदर **(कृणोमि)** मैं करता हूँ ॥३४॥

भावार्थः—कुलस्त्रियां शान्तिकरण, स्वस्तिवाचन आदि गान से आनन्द मनावें, सादर प्रेरणा किये हुए वधू वर उनको सविनय नमस्कार करें ॥३४॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आचुका है—अथर्व० ७। १०९। ३॥

नमो॑ गन्धर्वस्य॑ नम॑से नमो॒ भामा॑य चक्षु॑षे च कृण्मः।

विश्वा॑वसो ब्रह्म॑णा ते॒ नमो॒ऽभि जा॒या अ॑प्स॒रसः॒ परे॑हि ॥३५॥

भाषार्थः—**(गन्धर्वस्य)** विद्या धारण करने वाले पुरुष के **(नमसे)** अन्न [भोजन] के लिये **(नमः)** [यह] अन्न है, **(च)** और **(भामाय)** प्रकाश युक्त **(चक्षुषे)** नेत्र [अर्थात् इन्द्रियों के हित] के लिये **(नमः)** अन्न **(कृण्मः)** हम बनाते हैं। **(विश्वावसो)** हे समस्त धन वाले वर! **(ते)** तेरे लिये **(ब्रह्मणा)** जल सहित **(नमः)** अन्न है, **(जायाः)** जन्म के कारणों, **(अप्सरसः अभि)** अप्सराओं [कामों में व्यापक स्त्रियों] के सामने **(परा इहि)** निकट जा ॥३५॥

भावार्थः–सुन्दर स्वच्छ रोचक खान पान से वधू वर को सन्तुष्ट करें और वे दोनों सब बड़े कार्य कुशल स्त्री-पुरुषों का उपकार मान कर उनका सत्कार करें ॥३५॥

राया व॒यं सु॒मन॑सः स्यामो॒दि॒तो ग॑न्ध॒र्वमा॑वी॑वृताम।

अग॑न्त्स दे॒वः प॑र॒मं स॑ध॒स्थमग॑न्म॒ यत्र॑ प्रति॒रन्त॒ आयुः॑ ॥३६॥

भाषार्थः—**(राया)** धन के साथ **(वयम्)** हम **(सुमनसः)** प्रसन्न चित्त **(स्याम)** होवें, **(इतः)** यहां से [अपने बीच से] **(गन्धर्वम्)** विद्या धारण करने वाले पुरुष को **(उत् आ अवीवृताम)** हम सब प्रकार ऊंचा वर्तमान करें। **(सः देवः)** वह विद्वान् **(परमम्)** सब से ऊंचे **(सधस्थम्)** सभा स्थान को **(अगन्)** प्राप्त हो, **(अगन्म)** हम [उस पद पर] पहुंचें **(यत्र)** जहां [लोग] **(आयुः)** जीवन को **(प्रतिरन्ते)** अच्छे प्रकार पार करते हैं ॥३६॥

भावार्थः–सब विद्वान् लोग मिलकर आशीर्वाद देवें कि वह विद्वान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर अपने उत्तम गुणों से बड़ा धनी और ऊंचे पद वाला होकर महात्माओं के समान अपना उच्च जीवन बनावे ।।३६।।

इस मन्त्र का चौथा पाद ऋग्वेद में है—१ । ११३ । १६ तथा ८ । ४८ । ११ ।।

सं पि॑तरा॒वृत्वि॑ये सृजेथां मा॒ता पि॒ता च॒ रेत॑सो भवाथः ।
मर्यं॑ इव॒ योषा॒मधि॑रोहयैनां प्र॒जां कृ॑ण्वाथामि॒ह पु॑ष्यतं र॒यिम् ।।३७।।

भाषार्थः—(पितरौ) हे [होने वाले] माता पिता ! (ऋत्विये) ऋतुकाल [गर्भाधान योग्य समय] को प्राप्त दो वस्तु [के समान] (संसृजेथाम्) तुम दोनों मिलो, (च) और (रेतसः) वीर्य से [वीर्य और रज के मेल से] तुम दोनों (माता पिता) माता पिता (भवाथः) होओ। (मर्यः इव) नर के समान [हे पति !] (एनाम्) इस (योषाम्) अपनी पत्नी के (अधि रोहय) ऊपर हो, और (प्रजाम्) सन्तान को (कृण्वाथाम्) तुम दोनों उत्पन्न करो, और (इह) यहां [गृहाश्रम में] (रयिम्) धन को (पुष्यतम्) बढ़ाओ ।।३७।।

भावार्थः—जैसे वृक्ष आदि के बीज के मिले हुए दो टुकड़े वर्षा ऋतु में पृथिवी के संयोग से अङ्कुर उत्पन्न करते हैं, वैसे ही युवा पति पत्नी गर्भाधान विधि के अनुसार रतिक्रिया करके वीर्य और रज के संयोग से सन्तान उत्पन्न करें और धनी होकर सुखी होवें ।।३७।।

मन्त्र ३७ और ३८ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात हैं ।।

तां पू॑षं छि॒वत॑मा॒मेर॑यस्व॒ यस्यां॒ बीजं॑ म॒नुष्या॒ ३॒ वप॑न्ति ।
या नं॑ ऊ॒रू उ॑श॒ती वि॒श्रया॑ति॒ यस्या॑मु॒शन्त॑ः प्र॒हरे॑म॒ शेप॑ः ।।३८।।

भाषार्थः—(पूषन्) हे पोषक पति ! (ताम्) उस (शिवतमाम्) अतिशय कल्याण करने हारी पत्नी को (आ ईरयस्व) प्रेरणा कर (यस्याम्) जिस [पत्नी] में (मनुष्याः) मनुष्य लोग [मैं पति] (बीजम्) वीर्य (वपन्ति) बोवें । (या) जो (नः) हमारी (उशती) कामना करती हुई (ऊरू) दोनों जंघाओं को (विश्रयाति) फैलावे, और (यस्याम्) जिस में (उशन्तः) [उसकी] कामना करते हुए हम लोग (शेपः) उपस्थेन्द्रिय का (प्रहरेम) प्रहरण करें ।।३८।।

भावार्थः—मन्त्र में बहुवचन विद्वत्ता बलवत्ता और प्रीति के सूचनार्थ है। युवा पति पत्नी दोनों परस्पर कामना करते हुए प्रसन्नवदन होकर गर्भाधान के लिये अपने अङ्गों को यथाविधि ठीक करें ।।३८।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है १० । ८५ । ३७ । ऊपर मन्त्र ३७ भी देखो ॥

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥३९॥

भाषार्थः—[हे पति !] तू (ऊरुम्) जंघा के (आ रोह) ऊपर आ, (हस्तम्) हाथ का (उप धत्स्व) सहारा दे, और (सुमनस्यमानः) प्रसन्न चित्त होकर तू (जायाम्) पत्नी का (परि ष्वजस्व) आलिङ्गन करे । [हे स्त्री पुरुषो !] (इह) यहां [गर्भाधान क्रिया में] (मोदमानौ) हर्ष मनाते हुए तुम दोनों (प्रजाम्) सन्तान को (कृण्वाथाम्) उत्पन्न करो, (सविता) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (वाम्) तुम दोनों का (आयुः) आयु (दीर्घम्) दीर्घ (कृणोतु) करे ॥३९॥

भावार्थः—पति पत्नी दोनों प्रसन्न वदन होकर मुख के सामने मुख, नासिका के सामने नासिका आदि अङ्गों को यथायोग्य सूधा रक्खें । पुरुष के प्रक्षिप्त वीर्य को खैंचकर स्त्री गर्भाशय में स्थिर करे जिस से गर्भाधान क्रिया सफल होवे, और परमेश्वर के अनुग्रह से उत्तम सन्तान उत्पन्न करके वे दोनों अपने जीवन में प्रसन्न रहें ॥३९॥

आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४०॥

भाषार्थः—[हे वधू वर !] (प्रजापतिः) प्रजापालक, (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाला, [परमात्मा] (वाम्) तुम दोनों को (प्रजाम्) सन्तान (आ जनयतु) उत्पन्न करे और (अहोरात्राभ्याम्) दिन और रात्रि के साथ [सब को] (सम् अनक्तु) संयुक्त करे । [हे वधू !] (अदुर्मङ्गली) दुष्ट लक्षण रहित तू (इमम्) इस (पतिलोकम्) पति लोक [पति कुल] में (आ विश) प्रवेश कर, और (नः) हमारे (द्विपदे) दोपायों के लिये (शम्) सुखदायक और (चतुष्पदे) चौपायों के लिये (शम्) सुखदायक (भव) हो ॥४०॥

भावार्थः—जगत्पालक परमेश्वर की उपासना करके युक्त आहार विहार ऋतुगमन आदि योग्य क्रिया के साथ पति पत्नी चिरजीवी सन्तान उत्पन्न करें, जिससे पति कुल में उस वधू के शुभागमन से सब मनुष्य और गौ आदि पशु बढ़कर प्रसन्न रहें ॥४०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ८५ । ४७ ॥

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥४१॥

भाषार्थः—(यः) जो [विद्वान् पिता आदि] (मनुना साकम्) मननशील राजा के साथ (देवैः) विद्वानों करके (दत्तम्) दिया हुआ (एतत्) यह (वाधूयम्) विवाह का (वासः) पहिरने योग्य (वस्त्रम्) वस्त्र [योग्यता का चिह्न] (चिकितुषे) ज्ञानवान् (ब्रह्मणे) ब्रह्मा [वेदवेत्ता वर] को (च) और (वध्वः=वध्वै) वधू को (ददाति) देता है, (सः इत्) वही (तल्पानि) प्रतिष्ठा [सम्मान, गौरव] में होने वाले (रक्षांसि) दोषों को (हन्ति) नष्ट करता है ॥४१॥

भावार्थः— पिता आदि गुरुजनों को योग्य है कि राजव्यवस्था के अनुसार आचार्या और आचार्य से सुशिक्षित ब्रह्मचारी, विद्यासूचक वस्त्र आदि से सुभूषित वधू वर का विवाह करें जिससे संसार में उन सब की निर्विघ्न प्रतिष्ठा बढ़े ॥४१॥

यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥४२॥

भाषार्थः—(यम्) जो (ब्रह्मभागम्) ब्रह्मा [वेदवेत्ता] का भाग [अर्थात्] (वाधूयम्) विवाह का (वासः) पहिरने योग्य (वस्त्रम्) वस्त्र [योग्यता का चिह्न] (वधूयोः=वधूयवे) वधू की कामना करने वाले (मे) मुझ (ब्रह्मणे) ब्रह्मा [वेद-वेत्ता वर] को (च) और (वध्वः=वध्वै) वधू को (दत्तः) वे दोनों [वर और वधू के पक्ष वाले] देते हैं। (बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी विद्या के रक्षक आचार्य] (च) और (इन्द्रः) हे बड़े ऐश्वर्यवाले राजन् ! (साकम्) साथ साथ (अनुमन्यमानौ) अनुमति देते हुए (युवम्) तुम दोनों [वह वस्त्र] (दत्तम्) देओ ॥४२॥

भावार्थः—जब वधू वर के पक्ष वाले युवा युवती का विवाह निश्चित करें, तब वे राजव्यवस्था और गुरुकुल आदि की शिक्षा के अनुसार दोनों की आयु, विद्या, स्वस्थता, सुशीलता आदि योग्यता को अवश्य विचार लेवें ॥४२॥

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥४३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे स्त्री पुरुषो !] (स्योनात्) सुखदायक (योनेः) घर से (अधि) अच्छे प्रकार (बुध्यमानौ) जागते हुए, (हसामुदौ) हंसी और आनन्द करते हुए (महसा) बड़े प्रेम से (मोदमानौ) हर्ष मनाते हुए, (सुगू) सुन्दर चाल चलन वाले [वा उत्तम गौओं वाले] (सुपुत्रौ) श्रेष्ठ पुत्रों वाले, (सुगृहौ) श्रेष्ठ गृह सामग्री वाले, (जीवौ) प्राणों को धारण करते हुए तुम दोनों (विभातीः) सुन्दर प्रकाश युक्त (उषसः) बहुत प्रभात वेलाओं को (तराथः) पार करो ।।४३।।

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को उचित है कि अपने घरों को आवश्यक गृह सामग्रियों से भरपूर रक्खें और पुत्र पौत्र आदि के साथ प्रसन्न रहकर चिरजीवी होकर यशस्वी होवें ।।४३।।

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ।।

नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।

आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ।।४४।।

भाषार्थः—(नवम्) स्तुति को (वसानः) धारण करता हुआ, (सुरभिः) ऐश्वर्यवान्, (सुवासाः) सुन्दर निवास वाला, (जीवः) जीव [जीवता हुआ] मैं (विभातीः) सुन्दर प्रकाशयुक्त (उषसः) प्रभात वेलाओं में (उदागाम्) उदय होता रहूं । (आण्डात्) अण्डे से (पतत्री इव) पक्षी के समान (विश्वस्मात्) सब (एनसः) कष्ट से (परि) सर्वथा (अमुक्षि) छूट जाऊं ।।४४।।

भावार्थः—मनुष्य गृहाश्रम में प्रवेश करके प्रयत्न करे कि वह प्रभात के सूर्य के समान उदय होता हुआ तेजस्वी, प्रशंसित, बलवान्, धनवान्, चिरजीवी होकर सुख भोगता रहे ।।४४।।

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।

आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।४५।।

भाषार्थः (शुम्भनी) शोभायमान (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक (अन्तिसुम्ने) [अपनी] गतियों से सुख देने वाले और (महिव्रते) बड़े व्रत [नियम] वाले हैं । (देवीः) उत्तम गुण वाली (सप्त) सात (आपः) व्यापनशील इन्द्रियां [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] (सुस्रुवुः) [हमें] प्राप्त हुई हैं, (ताः) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ।।४५।।

भावार्थः—जैसे सूर्य और पृथिवी लोक ईश्वर नियम से अपनी अपनी गति पर चलकर वृष्टि अन्न आदि से उपकार करते हैं, वैसे ही मनुष्य इन्द्रियों को नियम में रखकर अपराधों से बचें ।।४५।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—अ० ७। ११२। १॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥४६॥

भाषार्थः—(सूर्यायै) बुद्धिमानों का हित करने वाली विद्या के लिये, (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के पाने के लिये (च) और (वरुणाय) श्रेष्ठ (मित्राय) मित्र की प्राप्ति के लिये (ये) जो पुरुष (भूतस्य) उचित कर्म के (प्रचेतसः) जानने वाले हैं (तेभ्यः) उनके लिये (इदम्) यह (नमः) नमस्कार (अकरम्) करता हूं ॥४६॥

भावार्थः - जो मनुष्य विद्या प्राप्त करके उत्तम गुणों और श्रेष्ठ मित्रों को प्राप्त करते हैं, वे संसार में प्रशंसनीय होते हैं ॥४६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ८५। १७॥

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥४७॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (पुरा) पहिले से [वर्तमान] (ऋते) सत्य नियम में (चित्) ही (अभिश्रिषः) चिपकाने के साधन [वीर्य के बिन्दु] से (जत्रुभ्यः) ग्रीवा आदि जोड़ों के [बनाने के] लिये (आतृदः) [रुधिर के] सब ओर टकराने [घूमने] से (सन्धिम्) हड्डी के जोड़ को (संधाता) जोड़ देने वाला है, (मघवा) वह पूज्य (पुरुवसुः) बहुत श्रेष्ठ गुणों वाला [परमात्मा] (विह्रुतम्) टेढ़े हुए अंग को (पुनः) फिर (निष्कर्ता) ठीक करने वाला है ॥४७॥

भावार्थः—परमेश्वर के अनादि सत्य नियम के अनुसार, बीज चाहे सीधा पड़े चाहे टेढ़ा, वह पृथिवी की भीतरी गति से ऐसा ठीक होजाता है कि उससे ऊपर को अङ्कुर और नीचे को जड़ उपजती है, इसी प्रकार वीर्य गर्भाशय में ठीक होकर नाभि से सम्बन्ध करता है, तब रुधिर के संचार से बालक के अङ्ग सीधे होकर पूरे और पुष्ट होते हैं ॥४७॥

यह मन्त्र सामवेद में है—पू० ३। ६। २, तथा कुछ भेद से ऋग्वेद में है ८—१। १२॥

अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत्।
निर्दहनी या पृषातक्य१स्मिन् तां स्थाणावध्या संजामि ॥४८॥

भाषार्थः—(अस्मत्) हमसे (तमः) अन्धकार (अप उच्छतु) बाहिर जावे,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उत) और [वह भी], (यत्) जो कुछ (नीलम्) नीला, (पिशङ्गम्) पीला और (लोहितम्) रक्त वर्ण [अशुद्ध वस्तु] है। (निर्दहनी) जला देने वाली (या) जो (पृषातकी) वृद्धि बांधने वाली [पीड़ा] (अस्मिन्) इस (स्थाणौ) स्थिर चित्त वाले मनुष्य में है, (ताम्) उस [पीड़ा] को (अधि) अधिकार पूर्वक (आ सजामि) मैं बांधता [रोकता] हूं ॥४८॥

भावार्थः—मनुष्य स्थिर चित्त होकर अपने शारीरिक, मानसिक और सामाजिक अशुद्धि, रोग आदि विघ्नों को हटावें ॥४८॥

यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ॥४९॥

भावार्थः—(उपवासने) निवास स्थान [ग्राम आदि] में (राज्ञः) ऐश्वर्यवान् पुरुष की (वरुणस्य) रोक की (यावतीः) जितनी (कृत्याः) पीड़ाएं और (यावन्तः) जितने (पाशाः) फन्दे हैं। और (याः) जो (व्यृद्धयः) निर्धनतायें और (याः) जो (असमृद्धयः) असिद्धियां (अस्मिन्) इस (स्थाणौ) स्थिर चित वाले मनुष्य में हैं, (ताः) उन [सब बाधाओं] को (अधि) अधिकार पूर्वक (सादयामि) मैं मिटाता हूं ॥४६॥

भावार्थः—ग्राम आदि देशों में जो विद्वानों की वृद्धि रोकने वाले विघ्न उपस्थित होवें उनका प्रतीकार शीघ्र करना चाहिये ॥४६॥

या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥५०॥

भाषार्थः—[हे वीर!] (या) जो (मे) मेरा (प्रियतमा) अत्यन्त प्रिय (तनूः) शरीर है, (सा) वह (मे) मेरा शरीर (वाससः) हिंसा कर्मसे (बिभाय) डरता है। (वनस्पते) हे सेवनीय व्यवहार के रक्षक! (त्वम्) तू (अग्रे) पहिले से (तस्य) उस [हिंसा कर्म] का (नीविम्) बन्धन (कृणुष्व) कर, (वयम्) हम लोग (मा रिषाम) कभी न कष्ट पावें ॥५०॥

भावार्थः— विद्वान् गृहस्थों का कर्तव्य है कि दूसरों को सताकर अपने को दूषित न करें और उसका पहिले से विचार करके राजदण्ड आदि के पश्चात्ताप से बच कर सुखी रहें ॥५०॥

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥५१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जो (अन्ताः) वस्त्र के आंचल, (यावतीः) जितनी (सिचः) कोरें, (ये) जो (ओतवः) बुनावटें, (च) और (ये) जो (तन्तवः) तन्तु [तांते] हैं। (यत्) जो (वासः) वस्त्र (पत्नीभिः) पत्नियों करके (उतम्) बुना गया है, (तत्) वह (नः) हम से (स्योनम्) सुख के साथ (उप स्पृशात्) चिपटा रहे ॥५१॥

भावार्थः—जैसे विदुषी चतुर स्त्रियों के बुने और बनाये वस्त्र शरीर को सुख देते हैं, वैसे ही विद्वानों के विचारपूर्वक किये काम उपकारी होते हैं ॥५१॥

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥५२॥

भाषार्थः—(इमाः) यह (उशतीः) कामना करती हुई (कन्यलाः) शोभावती कन्यायें (पितृलोकात्) पितृलोक [पितृकुल] से (पतिम्) अपने अपने पति कुल को (यतीः) जाती हुई (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ (दीक्षाम्) दीक्षा [नियम व्रत की शिक्षा] को (अव सृक्षत) दान करें ॥५२॥

भावार्थः—गुणवती विदुषी स्त्रियां विवाह करके घर के सुप्रबन्ध से सन्तान आदि को वेद द्वारा उत्तम नियम और कर्म सिखावें ॥५२॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५३॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक आचार्य] करके (अवसृष्टाम्) दी हुई [दीक्षा, नियम व्रत की शिक्षा—मन्त्र ५२] को (विश्वे देवाः) सब विद्वानों ने (अधारयन्) धारण किया है। (यत्) जो (वर्चः) प्रताप (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है, (तेन) उससे (इमाम्) इस [प्रजा, स्त्री सन्तान आदि] को (सं सृजामसि) हम संयुक्त करते हैं ॥५३॥

भावार्थः—जिस प्रकार आचार्य से सुशिक्षा पाकर पूर्वज विद्वानों ने उत्तम पद पाये हैं, वैसे ही मनुष्य अपने लोगों को सुशिक्षा देकर उन्नत करें ॥५३॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(बृहस्पतिना) बृहस्पति……। (यत्) जो (तेजः) तेज (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है, (तेन) उस से……[मन्त्र ५३] ॥५४॥

भावार्थः—मन्त्र ५३ के समान है ॥५४॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥५५॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिना) बृहस्पति…। (यः) जो (भगः) सेवनीय प्रभाव [ऐश्वर्य] (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टः) प्रविष्ट है, (तेन) उस से……[मन्त्र ५३] ॥५५॥

भावार्थः—मन्त्र ५३ के समान ॥५५॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५६॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिना) बृहस्पति……। (यत्) जो (यशः) यश [दान शूरता आदि से बड़ा नाम] (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है, (तेन) उस से ……[म० ५३] ॥५६॥

भावार्थः— मन्त्र ५३ के समान है ॥५६॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५७॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिना) बृहस्पति…। (यत्) जो (पयः) विज्ञान (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है, (तेन) उससे…[म० ५३] ॥५७॥

भावार्थः – मन्त्र ५३ के समान है ॥५७॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥५८॥

भाषार्थः – (बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी वेद वाणी के रक्षक आचार्य] करके (अवसृष्टाम्) दी हुई [दीक्षा, नियम व्रत की शिक्षा – म० ५२] को (विश्वे देवाः) सब विद्वानों ने (अधारयत्) धारण किया है। (यः) जो (रसः) रस [वीर्य वा वीर रस] (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टः) प्रविष्ट है, (तेन) उस से (इमाम्) इस [प्रजा, स्त्री, सन्तान आदि] को (सं सृजामसि) हम संयुक्त करते हैं ॥५८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य पूर्वज विद्वानों के समान अपने लोगों को सुशिक्षित करके वीर बनाते हैं, वे सुप्रतिष्ठित होकर सुख भोगते हैं ।।५८।।

यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तो३ऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्रमुञ्चताम् ।।५९।।

भाषार्थः—(यदि) यदि (इमे) यह (केशिनः) क्लेश युक्त (जनाः) मनुष्य (ते गृहे) तेरे घर में (रोदेन) विलाप के साथ (अघम्) दुःख (कृण्वन्तः) करते हुए (समनर्तिषुः) मिलकर इधर उधर फिरें। (अग्निः) तेजस्वी (च) और (सविता) प्रेरक मनुष्य (त्वा) तुझे (तस्मात एनसः) उस कष्ट से (प्र) सर्वथा (मुञ्चताम्) छुड़ावे ।।५९।।

भावार्थः—यदि घर के लोग रोग वा दरिद्रता आदि के कारण से क्लेश उठावें, प्रधान पुरुष अपने मानसिक और शारीरिक उत्साह और परमेश्वर में विश्वास से तेजस्वी होकर उनका दुःख दूर करें ।।५९।।

यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्य१घम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्रमुञ्चताम् ।।६०।।

भाषार्थः—[हे गृहस्थ !] (यदि) यदि (इयम्) यह (तव) तेरी (दुहिता) पुत्री (विकेशी) बाल बिखेरे हुए, (रोदेन) विलाप के साथ (अघम्) दुःख (कृण्वती) करती हुई (गृहे) घर में (अरुदत्) रोवे। (अग्निः) तेजस्वी (च) और···म० ५९ ।।६०।।

भावार्थः—[मन्त्र ५९] के समान है ।।६०।।

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्रमुञ्चताम् ।।६१।।

भाषार्थः—(यत्) जो (जामयः) कुल स्त्रियां और (यत्) जो (युवतयः) युवा स्त्रियां (ते गृहे) तेरे घर में (रोदेन) विलाप के साथ (अघम्) कष्ट (कृण्वतीः) करती हुयीं (समनर्तिषुः) मिलकर इधर उधर फिरें। (अग्निः) तेजस्वी (च) और··· [म० ५९] ।।६१।।

भावार्थः—मन्त्र ५९ के समान है ।।६१।।

यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ।।६२।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे गृहस्थ!] (यत्) यदि (ते) तेरी (प्रजायाम्) प्रजा [जनपद के लोगों] में, (पशुषु) पशुओं में, (वा) अथवा (यत्) यदि (गृहेषु) घरों में (अघकृद्भिः) दुःख करने वाले [रोगों वा मनुष्यों] करके (कृतम्) किया गया (अघम्) दुःख (निष्ठितम्) स्थिर कर दिया गया है। (अग्निः) तेजस्वी (च) और (सविता) प्रेरक पुरुष (त्वा) तुझे (तस्मात् एनसः) उस कष्ट से (प्र) सर्वथा (मुञ्चताम्) छुड़ावे ॥६२॥

भावार्थः—यदि प्रजा के लोगों, पशुओं वा शिल्पशाला आदि घरों में रोगों से वा दुष्ट मनुष्यों से कष्ट उपस्थित हो, तो विद्वान् लोग विद्याबल से और परमेश्वर के सहाय से उस कष्ट को हटावें ॥६२॥

इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥६३॥

भाषार्थः—(इयम्) यह (नारी) नारी [नर की पत्नी] (पूल्यानि) संगति के कर्मों को [बीज समान] (आवपन्तिका) बो देती हुई (उप ब्रूते) बोलती है—"(मे) मेरा (पतिः) पति (दीर्घायुः) लम्बी आयु वाला (अस्तु) होवे और (शतं शरदः) सौ वर्षों (जीवाति) जीता रहे" ॥६३॥

भावार्थः—पत्नी प्रयत्न करके परमात्मा की प्रार्थना करे कि उस का पति सुख से पूर्ण आयु भोगे और इसी प्रकार पति भी पत्नी की पूर्ण आयु के लिये पुरुषार्थ करे ॥६३॥

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥६४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त राजन्! (इह) यहां [संसार में] (इमौ) इन दोनों (चक्रवाका इव) चकवा चकवी के समान (दम्पती) पति पत्नी को (सं नुद) यथावत् प्रेरणा कर (प्रजया) प्रजा के साथ (एनौ) इन दोनों (स्वस्तकौ) उत्तम घर वालों को (विश्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (वि अश्नुताम्) प्राप्त होवे ॥६४॥

भावार्थः—राजा व्यवस्था करे कि पति पत्नी चकवा चकवी के समान बड़े प्रेम से मिलकर रहें और ब्रह्मचर्य के पालन और धनादि के रक्षण से बलवान् और सुखी होकर पूर्ण आयु भोगें ॥६४॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥६५॥

भाषार्थः—(यत्) जिस (कृतम्) हिंसित कर्म को (आसन्द्याम्) सिंहासन में, (उपधाने) गद्दी में, (वा) अथवा (यत्) जिस [हिंसित कर्म] को (उपवासने) छत्र में, और (याम्) जिस (कृत्याम्) दुष्टक्रिया को (आस्नाने) स्नानगृह में (विवाहे) विवाह के बीच (चक्रुः) [वे दुष्ट लोग] करें, (ताम्) उस [दुष्टक्रिया] को (नि दध्मसि) हम नीचे धरें ॥६५॥

भावार्थः—यदि विवाह कर्म में कोई दुष्ट पुरुष विघ्न डालें, चतुर लोग उस का प्रतीकार करके विवाह को निर्विघ्न समाप्त करें ॥६५॥

यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥६६॥

भाषार्थः—(यत्) जो (दुष्कृतम्) दुष्ट कर्म (च) और (यत्) जो (शमलम्) मलिनता (विवाहे) विवाह में [अथवा] (यत्) जो (वहतौ) विवाह में दिये पदार्थ में [होवे]। (तत्) उस (दुरितम्) खोट को (संभलस्य) आपस में समझा देने वाले पुरुष के (कम्बले) कामना योग्य कर्म पर (वयम्) हम (मृज्महे) शोध लेवें ॥६६॥

भावार्थः—जो कोई दोष विवाह की प्रवृति वा समाप्ति में आ पड़े, बुद्धिमान् लोग समझ बूझ कर उसका निबटेरा कर लें ॥६६॥

संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६७॥

भाषार्थः—(संभले=संभलस्य) आपस में समझा देने वाले पुरुष के (कम्बले) कामना योग्य कर्म पर (मलम्) मलिनता और (दुरितम्) खोट को (सादयित्वा) मिटा कर (वयम्) हम (यज्ञियाः) पूजा योग्य और (शुद्धाः) शुद्ध (अभूम) होवें, [और यह कर्म] (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्रतारिषत्) बढ़ावें ॥६७॥

भावार्थः—चतुर विद्वान् पुरुष के निर्णय पर परस्पर ग्लानि मिटाकर वधू वर के पक्ष वाले प्रसन्न होवें ॥६७॥

कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥६८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(कृत्रिमः) शिल्पी का बनाया हुआ, (शतदन्) सौ [बहुत] दांतों वाला (यः एषः) जो यह (कण्टकः) कांटों वाला [कंघा आदि] है। वह (अस्याः) इस [प्रजा अर्थात् स्त्री पुरुषों] के (केश्यम्) केश के और (शीर्षण्यम्) शिर के (मलम्) मल को (अप अप लिखात्) सर्वथा खरोंच डाले ॥६८॥

भावार्थः—जैसे शिल्पी के बनाये कंघा ककई से काढ़ने पर केश शुद्ध होते और शिर का क्लेश दूर होता है, वैसे ही अनेक प्रयत्नों से अज्ञान के मिटने पर आत्मा की शुद्धि होती है ॥६८॥

अङ्गा॑दङ्गाद् व॒यम॒स्या अप॒ यक्ष्मं॒ नि द॑ध्मसि। तन्मा प्राप॑त् पृथि॒वीं मोत दे॒वान् दिवं॒ मा प्राप॑दु॒र्व॑१॒न्तरि॑क्षम्। अ॒पो मा प्राप॒न्मल॑मे॒तद॑ग्ने य॒मं मा प्राप॑त् पि॒तॄँश्च॒ सर्वा॑न् ॥६९॥

भावार्थः—(अस्याः) इस [प्रजा अर्थात् स्त्री पुरुषों] के (अङ्गादङ्गात्) अङ्ग अङ्ग से (वयम्) हम (यक्ष्मम्) क्षय रोग को (नि) निश्चय करके (अप दध्मसि) बाहिर डालते हैं। (तत्) वह (देवान्) नेत्र आदि इन्द्रियों में (मा प्र आपत्) न पहुंचे, (उत) और (मा) न (पृथिवीम्) भूमि में, (मा) न (दिवम्) धूप में और (उरु) चौड़े (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (प्र आपत्) पहुँचे। (अग्ने) हे विद्वान्! (एतत्) यह (मलम्) मैल (अपः) जलों में (मा प्र आपत्) न पहुंचे, और (यमम्) वायु में (च) और (सर्वान्) सब (पितॄन्) ऋतुओं में (मा प्र आपत्) न पहुंचे ॥६९॥

भावार्थः—विद्वान् राजा और सब लोग हवन और अन्न-शोधन क्रियाओं से नगर ग्राम आदि में से रोगजनक दुर्गन्ध आदि दोषों को हटाकर अपने प्रजा जनों को नीरोग स्वस्थ रक्खें ॥६९॥

सं त्वा॑ नह्यामि॒ पय॑सा पृथि॒व्याः सं त्वा॑ नह्यामि॒ पय॒सौष॑धीनाम्। सं त्वा॑ नह्यामि प्र॒जया॒ धने॑न॒ सा संन॑द्धा सनुहि॒ वाज॑मे॒मम् ॥७०॥

भावार्थः—[हे प्रजा!] (त्वा) तुझे (पृथिव्याः) पृथिवी के (पयसा) ज्ञान से (सं नह्यामि) मैं कवचधारी करता हूं, (त्वा) तुझे (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न सोमलता आदि] के (पयसा) ज्ञान से (सं नह्यामि) कवचधारी करता हूँ। (त्वा) तुझे (प्रजया) प्रजा [सन्तान सेवक आदि] से और (धनेन) धन से (सं नह्यामि) मैं कटिबद्ध करता हूं, (सा) सो तू [हे प्रजा!] (सन्नद्धा) सन्नद्ध [कटिबद्ध] होकर (इमम्) यह (वाजम्) बल (आ) सब ओर से (सनुहि) दे ॥७०॥

भावार्थः—राजा को योग्य है ऐसे ऐसे विद्यालयों को बनावे, जिन में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजागण भूगर्भ विद्या, भूतल विद्या, अन्नविद्या, ओषधिविद्या आदि प्राप्त करके सन्तान और धन से बढ़ती करें और राजा को भी यथायोग्य सहायता देकर समर्थ बनावें ॥७०॥

अमो॑ऽहम॑स्मि सा त्वं सामा॒हम॒स्म्यृक् त्वं द्यौर॒हं पृ॑थिवी त्वम् ।

तावि॒ह सं भ॑वाव प्र॒जामा ज॑नयावहै ॥७१॥

भाषार्थः—[हे वधू !] (अहम्) मैं [वर] (अमः) ज्ञानवान् (अस्मि) हूं, (सा) सो (त्वम्) तू [ज्ञानवती है], (अहम्) मैं (साम) सामवेद [मोक्ष ज्ञान के समान सुखदायक] (अस्मि) हूं, (त्वम्) तू (ऋक्) ऋग्वेद की ऋचा [पदार्थों के गुणों की बड़ाई बताने वाली विद्या के तुल्य आनन्द देने वाली] है, (अहम्) मैं (द्यौः) सूर्य [वृष्टि आदि करने वाले रवि के समान उपकारी] हूं, और (त्वम्) तू (पृथिवी) पृथिवी [अन्न आदि उत्पन्न करने वाली भूमि के समान उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाली] है। (तौ) वे हम दोनों (इह) यहां [गृहाश्रम में] (सं भवाव) पराक्रमी होवें, और (प्रजाम्) प्रजा [उत्तम सन्तान] को (आ जनयावहै) उत्पन्न करें ॥७१॥

भावार्थः—वधूवर राज्य प्रबन्ध से सन्तुष्ट होकर और अनेक प्रकार की विद्या और सम्पत्ति की प्राप्ति और सुसन्तान की उत्पत्ति से सुखी होवें ॥७१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में वधूवर के परस्पर प्रतिज्ञा करने में व्याख्यात है ॥

ज॒नि॒यन्ति॑ ना॒वग्र॑वः पु॒त्रि॒यन्ति॑ सु॒दान॑वः ।

अरि॑ष्टासू सचेवहि बृह॒ते वाज॑सातये ॥७२॥

भाषार्थः—(अग्रवः) उद्योगी, (सुदानवः) बड़े दानी लोग (नौ) हम दोनों के लिये (जनियन्ति) जनों [भक्तजनों] को चाहते हैं और (पुत्रियन्ति) पुत्रों को चाहते हैं। (अरिष्टासू) विना नाश किये हुए प्राणों वाले [सदा पुरुषार्थी] हम दोनों (बृहते) बड़े (वाजसातये) विज्ञान, बल और अन्न के दान के लिये (सचेवहि) सदा मिले रहें ॥७२॥

भावार्थः—सब इष्ट मित्र यथावत् पुरुषार्थ से धन का व्यय करके चाहते हैं कि उनके पुत्रों के उत्तम सन्तान उत्पन्न हों, इसलिये पुत्र और पतोहू प्रीति पूर्वक उपाय करें कि उत्तम सन्तान होने से उनको विज्ञान, बल और अन्न आदि धन बढ़ें ॥७२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है। इसका पूर्वार्द्ध कुछ भेद से ऋग्वेद में है—७। ९६। ४॥

ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन्।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥७३॥

भाषार्थः—(ये) जो (वधूदर्शाः) वधू के देखने वाले (पितरः) पिता आदि लोग (इमम्) इस (वहतुम्) विवाह उत्सव में (आ अगमन्) आये हैं। (ते) वे सब (सम्पत्न्यै) पति सहित वर्तमान (अस्यै वध्वै) इस वधू को (प्रजावत्) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि जनता] वाला (शर्म) सुख (यच्छन्तु) देवें ॥७३॥

भावार्थः—हितैषी बड़े लोगों का कर्तव्य है कि विद्वान् बलवान् वधू-वर से विद्वान्, शूर, वीर सन्तान उत्पन्न होवें ॥७३॥

येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥७४॥

भाषार्थः—(या) जो [वधू] (पूर्वा) पहिली [सब से ऊपर] होकर (रशनायमाना) कटि बांधे हुए (इदम्) इस [स्थान] में (अगन्) आवे, (अस्यै) इस [वधू] के हित के लिये (इह) यहां (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि जनता] (च) और (द्रविणम्) धन (दत्त्वा) देकर (ताम्) उस को (अगतस्य) विना प्राप्त हुए [आगे आने वाले काल] के (पन्थाम् अनु) मार्ग के पीछे पीछे (वहन्तु) वे [पिता आदि] ले चलें, (विराट्) बड़े ऐश्वर्य वाली (इयम्) यह (सुप्रजाः) उत्तम जन्म वाली [वधू] (अति) अत्यन्त (अजैषीत्) जय पावे ॥७४॥

भावार्थः—सब बड़े लोग सेवक धन आदि से प्रयत्न करें कि महाविदुषी, पुरुषार्थिनी, स्त्रीरत्न कुलवधू उत्तम सन्तान उत्पन्न करके आगे को यश बढ़ावे ॥७४॥

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥७५॥

भाषार्थः—[हे पत्नी!] तू (शतशारदाय) सौ वर्ष तक (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन पाने के लिये (सुबुधा) उत्तम बुद्धि वाली और (बुध्यमाना) सावधान रहकर (प्र बुध्यस्व) जागती रहे। (गृहान्) घरों [घर के पदार्थों] को (गच्छ) प्राप्त हो, (यथा) जिस से तू (गृहपत्नी) गृहपत्नी (असः) होवे, (सविता) सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्य वाला परमात्मा (ते) तेरे (आयुः) जीवन को (दीर्घम्) दीर्घ (कृणोतु) करे ॥७५॥

भावार्थः—पत्नी को योग्य है कि परमात्मा का सदा ध्यान करके गृहकार्यों में सावधान रहकर और चिरंजीविनी होकर कुल की वृद्धि करे ॥७५॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

इति चतुर्दशं काण्डम् समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

पञ्चदशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१॥

१—८ ॥ व्रात्यो मन्त्रोक्तो वा देवता ॥ १ निचृत् साम्नी पङ्क्तिः, २ साम्नी बृहती, ३ ब्राह्म्यनुष्टुप्, ४ आर्ची गायत्री, ५ साम्न्यनुष्टुप्, ६ प्राजापत्या बृहती, ७ आसुरी पङ्क्ति, ८ आर्च्यनुष्टुप् ॥

अध्यात्मोपदेशः—परमात्मा और जीवात्मा का उपदेश ॥

अथवा सृष्टिविद्योपदेशः—अथवा सृष्टिविद्या का उपदेश ॥

व्रात्य॑ आसीदीय॑मान एव स प्रजाप॑तिं समैरयत् ॥१॥

भाषार्थः—(व्रात्यः) व्रात्य [अर्थात् सब समूहों का हितकारी परमात्मा] (ईयमानः) चलता हुआ (एव) ही (आसीत्) वर्तमान था, (सः) उसने (प्रजापतिम्) [अपने] प्रजापालक गुण को (सम्) यथावत् (ऐरयत) उकसाया ॥१॥

भावार्थः - सृष्टि से पहिले प्रलय की अगम्य अवस्था में एक गणपति परमेश्वर सर्वव्यापक हो रहा था, उसने सृष्टि उत्पन्न करने के लिये अपने गुणों में चेष्टा प्रकट की ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥२॥

भाषार्थः—(सः) उस (प्रजापतिः) प्रजापालक [परमात्मा] ने (सुवर्णम्) सुन्दर वरणीय [स्वीकरणीय] सामर्थ्य [वा सुवर्ण समान प्रकाशस्वरूप] को (आत्मन्) अपने में (अपश्यत्) देखा और (तत्) उसको (प्र अजनयत्) प्रकट किया ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा ने अपने सृष्टिसाधक सामर्थ्य को वा अपने प्रकाशस्वरूप को विचार कर प्रकट किया ॥२॥

तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् ।
तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥३॥

भाषार्थः—(तत्) वह [वरणीय सामर्थ्य] (एकम्) एक [अद्वितीय] (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (ललामम्) प्रधानस्वरूप (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (महत्) गुणों में वृद्ध (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (ज्येष्ठम्) अत्यन्त वयोवृद्ध (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म [बड़ा फैला हुआ व्यापक] (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (तपः) तप [प्रताप वा ऐश्वर्यस्वरूप] (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (सत्यम्) सत्य [विद्यमान जगत् का हितकारी अविनाशी कारणरूप] (अभवत्) हुआ, (तेन) उस [स्वरूप] के साथ (प्र अजायत) वह परमात्मा प्रकट हुआ ॥३॥

भावार्थः—वह जगदीश्वर अपने अनेक सामर्थ्यों और गुणों को प्रकट करने से सब जगत् में प्रतीत हुआ ॥३॥

सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ॥४॥

भाषार्थः—(सः) वह [परमात्मा] (अवर्धत) बढ़ा [उसने अपना सामर्थ्य प्रकट किया], (सः) वह (महान्) महान् [बड़ा, पूजनीय] (अभवत्) हुआ, (सः) वह (महादेवः) महादेव [बड़ा तेजस्वी वा व्यवहार कुशल] (अभवत्) हुआ ॥४॥

भावार्थः—जब संसार में परमात्मा के बड़े बड़े गुण प्रकट हुए, तब वही सब कार्यों में महाचतुर ऋषियों को जान पड़ा ॥४॥

स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् ॥५॥

भाषार्थः—(सः) उसने (देवानाम्) सब व्यवहार कुशलों की (ईशाम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरता [प्रभुता] को (परि ऐद्) सब ओर से पाया और (सः) वह (ईशानः) परमेश्वर (अभवत्) हुआ ॥५॥

भावार्थः—वह परमेश्वर ही सब व्यवहारकुशलों से अद्वितीय बड़ा चतुर है, इसी से वह परमेश्वर है ॥५॥

स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥६॥

भाषार्थः—(सः) वह [परमात्मा] (एकव्रात्यः) अकेला व्रात्य [सब समूहों का हितकारी] (अभवत्) हुआ, (सः) उस ने (धनुः) उत्पन्न करने के सामर्थ्य को (आ अदत्त) ग्रहण किया, (तत् एव) वही (इन्द्रधनुः) जीवों को उत्पन्न करने में समर्थ है ॥६॥

भावार्थः—अद्वितीय परमात्मा ने पूर्वोक्त सामर्थ्यों को अपने से प्रकट करके दृश्यमान जीवों की सृष्टि को उत्पन्न किया ॥६॥

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥७॥

भाषार्थः—(नीलम्) निश्चित ज्ञान (अस्य) उस [परमात्मा] का (उदरम्) उदर [समान है] और (लोहितम्) उत्पन्न करने का सामर्थ्य (पृष्ठम्) पीठ [समान है] ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा में निश्चित ज्ञान और सृष्टि रचना स्वाभाविक गुण हैं ॥७॥

नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं
विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥८॥

भाषार्थः—वह [परमात्मा अपने] (नीलेन) निश्चित ज्ञान से (एव) ही (अप्रियम्) अप्रिय (भ्रातृव्यम्) वैरी [विघ्न] को (प्र ऊर्णोति) ढक देता है और (लोहितेन) उत्पादन सामर्थ्य से (द्विषन्तम्) द्रोह करते हुए [विघ्न] को (विध्यति) बीधता [छेद डालता] है (इति) ऐसा (ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मवादी लोग (वदन्ति) कहते हैं ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा अपने अटल ज्ञान से सब विघ्नों को हटाकर अपने भक्तों को आनन्द देता है, यह सब बुद्धिमानों का मत है ॥८॥

सूक्तम् ॥२॥

१—२८ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १, ६, ९, १५, २१, २६ साम्न्यनुष्टुप्, २, १६ आर्च्यनुष्टुप्, ३ आर्ची पङ्क्तिः, ४, १८, २४, ब्राह्मी गायत्री, ५, १३, १९

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निचृदार्ची जगती, ७, २७ पदपङ्क्ति, ८। २८ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, १० आर्च्युष्णिक्, ११ भुरिगार्षी त्रिष्टुप्, १२ आर्षी त्रिष्टुप्, १४ साम्नी पङ्क्तिः, १७ विराडार्षी पङ्क्तिः, २० आसुरी गायत्री, २२ साम्नी त्रिष्टुप्, २३, निचृदार्ची पङ्क्तिः, २५ आर्ची जगती ॥

परमेश्वरस्य सर्वत्र व्यापकत्वोपदेशः—परमेश्वर की सर्वत्र व्यापकता का उपदेश ॥

स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत् ॥१॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत् अतिष्ठत्) खड़ा हुआ (सः) वह (प्राचीम्) सामने वाली [अथवा पूर्व] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा को अपने सामने वा पूर्व दिशा में व्यापक जानकर आगे को प्रवृत्ति करे ॥१॥

इस सूक्त में परमात्मा के विराट् रूप का वर्णन है ॥

तं बृहच्च रथंतरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन् ॥२॥

भाषार्थः—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (च च) और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] (च) और (आदित्याः) सब चमकने वाले सूर्य आदि (च) और (विश्वे) सब (देवाः) गति वाले लोक (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे पीछे विचरे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि आकाश, भूमि, सूर्य, और सब चलते हुए लोकों को परमात्मा की आज्ञा में चलता हुआ साक्षात् करे ॥२॥

बृहते च वै स रथंतराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥३॥

भाषार्थः—(सः) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (बृहते) बृहत् [बड़े आकाश] के लिये (च च) और (रथन्तराय) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] के लिये (च) और (आदित्येभ्यः) चमकने वाले सूर्य आदि के लिये (च) और (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) गति वाले लोकों के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (यः) जो [मूर्ख] (एवम्) ऐसे वा व्यापक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम्) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी परमात्मा] को (उपवदति) बुरा कहता है ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा के गुणों को साक्षात् न करके तत्त्वज्ञान नहीं पाता, वह संसार के पदार्थों से यथावत् उपकार नहीं ले सकता ॥३॥

बृ॒ह॒तश्च॒ वै स र॑थंत॒रस्य॑ चादि॒त्यानां॑ च॒ विश्वे॑षां च
दे॒वानां॑ प्रि॒यं धाम॑ भवति॒ तस्य॒ प्राच्यां॒ दि॒शि ॥४॥
श्र॒द्धा पुं॑श्च॒ली मि॒त्रो मा॑ग॒धो वि॒ज्ञानं॒ वासोऽह॑रु॒ष्णीषं॑
रात्री॒ केशा॒ हरि॑तौ प्रव॒र्तौ क॑ल्म॒लिर्म॒णिः ॥५॥
भू॒तं च॑ भवि॒ष्यच्च॑ परि॒ष्क॒न्दौ मनो॑ विप॒थम् ॥६॥
मा॒त॒रिश्वा॑ च॒ पव॑मानश्च विपथवा॒हौ वा॒तः
सार॑थी रे॒ष्मा प्र॑तो॒दः ॥७॥
की॒र्तिश्च॒ यश॑श्च पुरःस॒रावैनं॑ की॒र्तिर्गं॑च्छ॒त्या यशो॑
गच्छति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥८॥

भाषार्थः—(सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (बृहतः) बृहत् [बड़े आकाश] का (च च) और भी (रथन्तरस्य) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] का (च) और (आदित्यानाम्) चमकने वाले सूर्यों का (च) और (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) गति वाले लोकों [अर्थात् उनके ज्ञान] का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (प्राच्यां दिशि) सामने वाली [वा पूर्व] दिशा में ॥४॥ (श्रद्धा) इच्छा (पुंश्चली) पुंश्चली [पर पुरुषों में जाने वाली व्यभिचारिणी स्त्री, तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित] (मित्रः) स्नेह (मागधः) भाट [स्तुतिपाठक के समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वासः) वस्त्र [समान], (अहः) दिन (उष्णीषम्) [धूप रोकने वाली] पगड़ी [समान], (रात्री) रात्रि (केशाः) केश [समान] (हरितौ) दोनों धारण आकर्षण गुण (प्रवर्तौ) दो गोलकुण्डल [कर्णभूषण समान] और (कल्मलिः) [गति देने वाली] तारा गणों की झलक (मणिः) मणि [मणियों के हार समान] ॥५॥ (भूतम्) भूत [बीता हुआ (च च) और भी (भविष्यत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्यत् [आने वाला] **(परिष्कन्दौ)** [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [समान], **(मनः)** मन **(विपथम्)** विविध मार्गगामी रथ [यान आदि समान] ।।६।। **(मातरिश्वा)** आकाश में घूमने वाला सूत्रात्मा [वायु विशेष] **(च च)** और भी **(पवमानः)** संशोधक वायु **(विपथवाहौ)** दो रथ लेचलने वाले [बैल घोड़े आदि समान], **(वातः)** वात [सामान्य वायु] **(सारथिः)** सारथी [रथ हाँकने वाले के समान] **(रेष्मा)** आंधी **(प्रतोदः)** अङ्कुश [कोड़ा, पैना समान] ।।७।। **(कीर्तिः)** कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] **(च च)** और **(यशः)** यश [शूरता आदि से बड़ाई] **(पुरःसरौ)** दो अग्र-धावक [पावक समान] हैं, **(एनम्)** उस [विद्वान्] को **(कीर्तिः)** कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] **(आ)** आकर **(गच्छति)** मिलती है, **(यशः)** यश [शूरता आदि से बड़ा नाम] **(आ)** आकर, **(गच्छति)** मिलता है, **(यः)** जो [विद्वान्] **(एवम्)** ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को **(वेद)** जानता है ।।८।।

भावार्थः—जब मनुष्य योगाभ्यास करके शुद्ध ज्ञान द्वारा परमाणु से लेकर परमेश्वर तक साक्षात् कर लेता है, वह पूर्णकाम और पूर्णविज्ञानी होकर संसार में अपने आप कीर्ति और यश पाता है ।।४—८।।

स उद॑तिष्ठ॒त् स दक्षि॑णां॒ दिश॒मनु॒ व्य॑चलत् ।।९।।

भाषार्थः—**(सः)** वह [व्रात्य परमात्मा] **(उत् अतिष्ठत्)** खड़ा हुआ, **(सः)** वह **(दक्षिणाम्)** दाहिनी [वा दक्षिण] **(दिशम् अनु)** दिशा की ओर **(वि अचलत्)** विचरा ।।९।।

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा को अपनी दाहिनी वा दक्षिण दिशा में व्यापक जानकर आगे बढ़े ।।९।।

तं य॑ज्ञाय॒ज्ञियं॑ च वाम॒दे॒व्यं च॑ य॒ज्ञश्च॒ यज॑मानश्च

प॒शव॑श्चानु॒व्य॑चलन् ।।१०।।

भाषार्थः—**(यज्ञायज्ञियम्)** सब यज्ञों का हितकारी [वेदज्ञान] **(च च)** और **(वामदेव्यम्)** वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताया गया [भूतपञ्चक] **(च)** और **(यज्ञः)** यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] **(च)** और **(यजमानः)** यजमान [पूजनीय व्यवहार करने वाला पुरुष] **(च)** और **(पशवः)** सब जीव जन्तु **(तम्)** उस [परमात्मा] के **(अनुव्यचलन्)** पीछे पीछे विचरे ।।१०।।

भावार्थः—सब ऋग्वेद आदि वेद पृथिवी आदि पञ्चभूत, सद्व्यवहार और सत्कर्मी पुरुष और सब प्राणी परमात्मा के अनुशासनगामी हैं ।।१०।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥११॥

भाषार्थः—(सः) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (यज्ञायज्ञियाय) सब यज्ञों के हितकारी [वेद ज्ञान] के लिये (च च) और भी (वामदेव्याय) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताये गये [भूतपञ्चक] के लिये (च) और (यज्ञाय) पूजनीय व्यवहार के लिये (च) और (यजमानाय) यजमान [पूजनीय व्यवहार करने वाले] के लिये (च) और (पशुभ्यः) सब जीव जन्तुओं के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (यः) जो [मूर्ख] (एवम्) ऐसे वा व्यापक (विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम्) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी परमात्मा] को (उपवदति) बुरा कहता है ॥११॥

भावार्थः मन्त्र ३ देखो—अर्थात् अज्ञानी अनीश्वरवादी पापात्मा मनुष्य अपने शुभ कर्तव्यों में सर्वथा असमर्थ होता है ॥११॥

यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥१२॥

उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥१३॥

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् । मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः । कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥१४॥

भाषार्थः—(सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (यज्ञायज्ञियस्य) सब यज्ञों के हितकारी [वेद ज्ञान] का (च च) और भी (वामदेव्यस्य) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताये गये [भूतपञ्चक] का (च) और (यज्ञस्य) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] का (च) और (यजमानस्य) यजमान [पूजनीय व्यवहार करने वाले पुरुष] का (च) और (पशूनाम्) सब जीव जन्तुओं का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है। और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (दक्षिणायाम्) दाहिनी [वा दक्षिण] (दिशि) दिशा में ॥१२॥ (उषाः) हिंसा (पुंश्चली) पुंश्चली [पर पुरुषों में जाने वाली व्यभिचारिणी स्त्री, तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित], (मन्त्रः) मननगुणः (मागधः) भाट [स्तुतिपाठक के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वासः) वस्त्र [समान], (अहः) दिन (उष्णीषम्) [धूप रोकने वाली] पगड़ी [समान], (रात्री) रात्री (केशाः) केश [समान] (हरितौ) दोनों धारण आकर्षण गुण (प्रवर्तौ) दो गोलकुण्डल [कर्ण-भूषण समान] और (कल्मलिः) [गति देने वाली] तारों की झलक (मणिः) मणि [मणियों के हार समान] ॥१३॥ (अमावास्या) अमावस [कृष्णपक्ष की अन्तिम तिथि अर्थात् अन्धकार वा अविद्या] (च च) और भी (पूर्णमासी) पूर्णमासी [शुक्ल-पक्ष की अन्तिम तिथि, अर्थात् प्रकाश वा विद्या] (परिष्कन्दौ) [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [समान] (मनः) मन··· [म० ६, ७, ८] ॥१४॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा के ज्ञान के साथ अविद्या के त्याग और विद्या की प्राप्ति से योग्य पदार्थों के उपकार और अयोग्यों के अप-कार को जानकर अपना कर्तव्य करता है; वह संसार में कीर्तिमान् और यशस्वी होता है ॥१२—१४॥

स उद॑तिष्ठत् स प्र॒तीचीं॒ दिश॒मनु॒ व्य॑चलत् ॥१५॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत् अतिष्ठत्) खड़ा हुआ (सः) वह (प्रतीचीम्) पीछे वाली [वा पश्चिम] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्य पीछे वाली वा पश्चिम दिशा में परमात्मा की व्यापकता विचार कर पुरुषार्थ करे ॥१५॥

तं वैरू॒पं च॑ वैरा॒जं चाप॑श्च॒ वरु॑णश्च॒ राजा॑नु॒व्य॑चलन् ॥१६॥

भाषार्थः—(वैरूपम्) वैरूप [विविध पदार्थों का जताने वाला वेद ज्ञान] (च च) और (वैराजम्) वैराज [विराट् रूप, अर्थात् बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाश-मान परमात्मा के स्वरूप का प्राप्त कराने वाला मोक्षज्ञान] (च) और (आपः) प्रजायें [सृष्टि की वस्तुयें] (च) और (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (वरुणः) श्रेष्ठ जीव [मनुष्य] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे पीछे विचरे ॥१६॥

भावार्थः—ज्ञानी पुरुष साक्षात् करता है कि सब वेदज्ञान, मोक्षज्ञान और सृष्टि के पदार्थ, और सब सृष्टि में उत्तम यह मनुष्य उसी परमात्मा के आश्रित हैं ॥१६॥

वैरू॒पाय॑ च॒ वै स वै॑रा॒जाय॑ च॒ाद्भ्यश्च॒ वरु॑णाय च॒
रा॒ज्ञ आ वृ॑श्चते॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॒ व्रात्य॑मुपवद॑ति ॥१७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सः) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (वैरूपाय) वैरूप [विविध पदार्थों के जताने वाले वेदज्ञान] के लिये (च च) और भी (वैराजाय) वैराज [विराट् रूप, बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा के स्वरूप के प्राप्त कराने वाले मोक्षज्ञान] के लिये (च) और (अद्भ्यः) प्रजाओं के लिये (च) और (राज्ञे) राजा [ऐश्वर्यवान्] (वरुणाय) श्रेष्ठ जीव [मनुष्य] के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (यः) जो मूर्ख (एवम्) व्यापक (विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम्) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी परमात्मा] को (उपवदति) बुरा कहता है ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा के ज्ञान से विमुख पुरुष सब संसार की हानि करके पापी होता है ॥१७॥

वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः
प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥१८॥
इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥१९॥

अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् । मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः । कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥२०॥

भाषार्थः—(सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (वैरूपस्य) वैरूप [विविध पदार्थों के जताने वाले वेदज्ञान] का (च च) और भी (वैराजस्य) वैराज [विराट्रूप ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा के स्वरूप के प्राप्त करने वाले मोक्षज्ञान] का (च) और (अपाम्) प्रजाओं का (च) और (राज्ञः) ऐश्वर्यवान् (वरुणस्य) श्रेष्ठ जीव [मनुष्य] का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है। और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (प्रतीच्याम्) पीछे वाली [वा पश्चिम] (दिशि) दिशा में ॥१८॥ (इरा) मदिरा [मद्यवस्तु] (पुंश्चली) पुंश्चली [पर पुरुषों में जाने वाली व्यभिचारिणी स्त्री तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित], (हसः) हास्यरस (मागधः) भाट [स्तुतिपाठक के समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वासः) वस्त्र [समान], (अहः) दिन (उष्णीषम्) [धूप रोकने वाली] पगड़ी [समान], (रात्री) रात्रि (केशाः) केश [समान],

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हरितौ) दोनों धारण आकर्षण गुण (प्रवर्तौ) दो गोलकुण्डल [कर्णभूषण समान] और (कल्मलिः) [गति देने वाली] तारों की झलक (मणिः) मणि [मणियों के हार समान] ॥१९॥ (अहः) दिन (च च) और भी (रात्री) रात्रि (परिष्कन्दौ) [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [समान], (मनः) मन······ [मन्त्र ६, ७, ८] ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्य वेदज्ञान और मोक्षज्ञान द्वारा परमात्मा को प्राप्त करके दुष्कर्मों के सर्वथा त्याग और सत्कर्मों के निरन्तर निष्काम अनुष्ठान से संसार में आनन्द पाता है ॥ १८, १९, २० ॥

स उद॑तिष्ठ॒त् स उदी॑ची॒ दिश॒मनु॒ व्य॑चलत् ॥२१॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत् अतिष्ठत्) खड़ा हुआ, (सः) वह (उदीचीम्) बाईं [अथवा उत्तर] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥२१॥

भावार्थः—मनुष्य जगदीश्वर को बायीं ओर वा उत्तर दिशा में वर्तमान जानकर आत्मोन्नति करे ॥२१॥

तं श्यै॒तं च॑ नौध॒सं च॑ सप्त॒र्षय॑श्च सोम॑श्च॒ राजा॑नु॒व्य॑चलन् ॥२२॥

भाषार्थः—(श्यैतम्) श्यैत [सद्‌गति बताने वाला वेदज्ञान] (च च) और (नौधसम्) नौधस [ऋषियों का हितकारी मोक्षज्ञान] (च) और (सप्तर्षयः) सात ऋषि [छह इन्द्रियां और सातवीं बुद्धि अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (च) और (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (सोमः) प्रेरक मनुष्य (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे पीछे चले ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्य वेदज्ञान से परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके इन्द्रियों और आत्मा की शक्तियों को बढ़ाता हुआ परमेश्वर के आश्रय से बढ़ती करता जावे ॥२२॥

श्यै॒ताय॑ च॒ वै स नौ॑ध॒साय॑ च सप्त॒र्षिभ्य॑श्च॒ सोमा॑य च॒ राज्ञ॒
आ वृ॑श्च॒ते॒ य॒ ए॒वं वि॒द्वांसं॒ व्रात्य॑मुप॒वद॑ति ॥२३॥

भाषार्थः—(सः) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (श्यैताय) श्यैत [सद्‌गति बताने वाले वेदज्ञान] के लिये (च च) और भी (नौधसाय) नौधस [ऋषियों के हितकारी मोक्षज्ञान] के लिये (च) और (सप्तर्षिभ्यः) सात ऋषियों [छह इन्द्रियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सातवीं बुद्धि —म० २२] के लिये (च) और (राज्ञे) ऐश्वर्यवान् (सोमाय) प्रेरक जीव [मनुष्य] के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (यः) जो [मूर्ख] (एवम्) व्यापक (विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम्) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी परमात्मा] को (उपवदति) बुरा कहता है ।।२३।।

भावार्थः—कृतघ्न अज्ञानी पुरुष वेदज्ञान और मोक्षज्ञान को नहीं प्राप्त कर सकता और न वह जितेन्द्रिय और हितैषी हो सकता, इसी से सदा दुःख में पड़ा रहता है ।।२३।।

श्यैतस्यं च वै स नौधसस्यं च सप्तर्षीणां च सोमस्य च
राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ।।२४।।
विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ।।२५।।
श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।।२६।।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः
सारथी रेष्मा प्रतोदः ।।२७।।
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या
यशो गच्छति य एवं वेद ।।२८।।

भाषार्थः—(सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (श्यैतस्य) श्यैत [सद्गति बताने वाले वेदज्ञान] का (च च) और भी (नौधसस्य) नौधस [ऋषियों के हितकारी मोक्ष ज्ञान] का (च) और (सप्तर्षीणाम्) सात ऋषियों [छह इन्द्रियों और सातवीं बुद्धि—मन्त्र २२] का (च) और (राज्ञः) ऐश्वर्यवान् (सोमस्य) प्रेरक पुरुष का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है। और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (उदीच्याम्) बायीं [वा उत्तर] (दिशि) दिशा में ।।२४।। (विद्युत्) बिजुली [बिजुली समान चंचलता] (पुंश्चली) पुंश्चली [पर पुरुषों में जाने वाली व्यभिचारिणी स्त्री तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित], (स्तनयित्नुः) मेघ की गर्जन (मागधः) भाट [स्तुतिपाठक के समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वासः) वस्त्र [समान], (अहः) दिन (उष्णीषम्) [धूप रोकने वाली] पगड़ी [समान], (रात्री) रात्री (केशाः) केश [समान], (हरितौ) दोनों धारण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर्षण गुण (प्रवर्तौ) दो गोलकुण्डल [कर्णभूषण समान] और (कल्मलिः) [गति देने वाली] तारा गणों की झलक (मणिः) मणि [मणियों के हार समान] ॥२५॥ (श्रुतम्) ख्याति [प्रशंसा] (च च) और (विश्रुतम्) विख्याति [प्रसिद्धि] (परिष्कन्दौ) [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [समान] (मनः) मन (विपथम्) विविध मार्गगामी रथ [यान आदि समान] ॥२६॥ (मातरिश्वा) आकाश में घूमने वाला सूत्रात्मा [वायु विशेष] (च च) और भी (पवमानः) संशोधक वायु (विपथवाहौ) दो रथ ले चलाने वाले [बैल घोड़े आदि समान], (वातः) वात [सामान्य वायु] (सारथिः) सारथी [रथ हांकने वाले के समान] (रेष्मा) आंधी (प्रतोदः) अंकुश [कोड़ा, पैना समान] ॥२७॥ (कीर्तिः) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (च च) और भी (यशः) यश [शूरता आदि से बड़ाई] (पुरःसरौ) दो अग्रधावक [पायक समान] हैं, (एनम्) उस [विद्वान्] को (कीर्तिः) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, (यशः) यश [शूरता आदि से बड़ा नाम] (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२८॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा में लवलीन होता है, वही वेदज्ञान और मोक्षज्ञान से जितेन्द्रिय और सर्वहितैषी होकर संसार में सब पदार्थों से उपकार लेकर आनन्द पाता है ॥२४—२८॥

सूक्तम् ॥३॥

१—११ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ आर्षी गायत्री; २ साम्न्युष्णिक्; ३ याजुषी जगती; ४, ११ आर्च्युष्णिक्; ५ आर्ची बृहती; ६ आसुर्यनुष्टुप्; ७ साम्नी गायत्री; ८ आसुरी पङ्क्तिः; ९ आसुरी जगती १० प्राजापत्या त्रिष्टुप् ॥

परमात्मविराड्रूपोपदेशः—परमात्मा के विराट् रूप का उपदेश ॥

स सं॑वत्सरमू॒र्ध्वो॑ऽतिष्ठ॒त् तं दे॒वा अ॑ब्रुवन् व्रात्य॒ किं नु ति॑ष्ठसी॒ति॑ ॥ १॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (संवत्सरम्) वर्ष भर तक [कुछ काल तक] (ऊर्ध्वः) ऊंचा (अतिष्ठत्) खड़ा रहा, (तम्) उस से (देवाः) देवता [विद्वान् लोग] (अब्रुवन्) बोले—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सब समूहों के हितकारी परमात्मन्] (किम्) क्यों (नु) अब (तिष्ठसि इति) तू खड़ा है ॥१॥

भावार्थः—ऋषि लोग परमात्मा की सत्ता को विविध प्रकार विचारें कि वह जगदीश्वर प्रलय और सृष्टि के बीच क्या क्या करता है ॥१॥

सो॑ऽब्रवीदा॒सन्दीं॑ मे॒ सं भ॑रन्त्वि॒ति॑ ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (अब्रवीत्) बोला—(आसन्दीम्) सिंहासन (मे) मेरे लिये (सम्) मिलकर (भरन्तु इति) आप धरें ॥२॥

भावार्थः—ऋषि लोग अनुभव करते हैं कि वह परमात्मा सर्वोपरि विराजकर अपनी महिमा दिखा रहा है ॥२॥

तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥३॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस (व्रात्याय) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी परमात्मा] के लिये (आसन्दीम्) सिंहासन (सम् अभरन्) उन्होंने मिलकर रक्खा ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परस्पर विचार करके आगे के मन्त्रों की युक्ति से उस परमेश्वर को सर्वोपरि विराजमान समझें ॥३॥

तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥४॥

भाषार्थः—(वसन्तः) वसन्त ऋतु (च च) और (ग्रीष्मः) घाम ऋतु (तस्याः) उस [सिंहासन] के (द्वौ) दो (च) और (वर्षाः) बरसा ऋतु (च) और (शरत्) शरद् ऋतु (द्वौ) दो (पादौ) पाये (आस्ताम्) थे ॥४॥

भावार्थः—घाम आदि ऋतुयें अर्थात् समस्त काल परमात्मा के वशीभूत हैं ॥४॥

बृहच्च रथंतरं चानूच्ये ३' आस्तां यज्ञायज्ञियं
च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥५॥

भाषार्थः—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (च च) और (रथंतरम्) रथंतर [रमणीय गुणों से पार होने योग्य जगत्] (अनूच्ये) दो पाटियां [पट्टियां, लंबे काष्ठ आदि जोड़] (च) और (यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों का हितकारी [वेद ज्ञान] (च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताया गया [भूत पंचक] (तिरश्च्ये) दो सेरुवे [तिरछे काष्ठ आदि जोड़] (आस्ताम्) थे ॥५॥

भावार्थः—जैसे मनुष्यकृत सिंहासन में दो पाटी और दो सेरुवे होते हैं, वैसे ही परमेश्वर के सिंहासन के आकाश, जगत् आदि हैं ॥५॥

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥६॥

भाषार्थः—(ऋचः) ऋचायें [पदार्थों की गुणप्रकाशक विद्यायें] [उस सिंहासन के] (प्राञ्चः) लम्बे फैले हुए (तन्तवः) तन्तु [सूत] और (यजूंषि) यजुर्मन्त्र (तिर्यञ्चः) तिरछे फैले हुए [तन्तु] थे ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे वस्त्र के ताने बाने में सूत लगते हैं, वैसे ही परमात्मा ने सृष्टि रचना में ऋग्वेद और यजुर्वेद विद्यायें बनायी हैं ॥६॥

वेदं आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥७॥

भाषार्थः— (वेदः) धन [उस सिंहासन का] (आस्तरणम्) बिछौना और (ब्रह्म) अन्न (उपबर्हणम्) बालिश [शिर रखने का सहारा] था ॥७॥

भावार्थः—जैसे सिंहासन पर गद्दी और बालिश लगाये जाते हैं, वैसे ही परमेश्वर ने संसार में धन और अन्न रचे हैं ॥७॥

सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥८॥

भाषार्थः—(साम) सामवेद [मोक्षज्ञान] (आसादः) [उस सिंहासन का] बैठने का स्थान और (उद्गीथः) उद्गीथ [अच्छे प्रकार गाने योग्य ओ३म् शब्द] (अपश्रयः) सहारा था ॥८॥

भावार्थः—जैसे सिंहासन में बैठने का स्थान और बैठने वाले के सुख के लिये सहारे होते हैं, वैसे ही परमात्मा ने विद्वानों के लिये मुक्तिज्ञान और प्रणव का जप बताया है ॥८॥

तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥९॥

भाषार्थः—(ताम्) उस (आसन्दीम्) सिंहासन पर (व्रात्यः) व्रात्य [सब समूहों का हितकारी परमात्मा] (आ अरोहत्) चढ़ गया ॥९॥

भावार्थः—जैसे चक्रवर्ती राजा सिंहासन पर ऊंचा बैठता है, वैसे ही परमात्मा सब संसार के ऊपर विराजमान है ॥९॥

तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः
प्रहाय्या३ विश्वानि भूतान्युपसदः ॥१०॥

भाषार्थः—(देवजनाः) विद्वान् लोग (तस्य) उस [व्रात्य परमात्मा] के (परिष्कन्दाः) सेवक, (संकल्पाः) सङ्कल्प [दृढ़ विचार] (प्रहाय्याः) [उसके] दूत, और (विश्वानि) सब (भूतानि) सत्तायें [उसके] (उपसदः) निकटवर्ती (आसन्) थे ॥१०॥

भावार्थः—जैसे सिंहासन पर बैठे हुए राजराजेश्वर के सेवक, दूत और अन्य समीपवर्ती होते हैं, वैसे ही वह परमात्मा सब विद्वानों, दृढ़ संकल्पी लोगों और सब सत्ताओं को अपनी कृपा दृष्टि में रखता है ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥११॥

भाषार्थः—(विश्वानि) सब (एव) ही (भूतानि) सत्ता वाले पदार्थ (अस्य) उस [विद्वान् पुरुष] के (उपसदः) समीपवर्ती (भवन्ति) होते हैं, (यः) जो (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य पूर्वोक्त प्रकार से परमात्मा के तत्त्व को जान लेता है, यह योगीश्वर सब सत्ता वालों से यथावत् उपकार कर सकता है ॥११॥

सूक्तम् ॥४॥

१—१८ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १, १३, १६ दैवी जगती, २, ८ आर्च्यनुष्टुप्; ३, १२ प्राजापत्या जगती; ४, ७, १० प्राजापत्या गायत्री; ५ भुरिक् प्राजापत्या बृहती; ६ आर्ची जगती; ९ आर्ची त्रिष्टुप्; ११ साम्नी त्रिष्टुप्; १४ प्राजापत्या बृहती; १५, १८ आर्ची पङ्क्तिः, १७ आर्च्युष्णिक् ॥

परमेश्वरस्य रक्षागुणोपदेशः—परमेश्वर के रक्षा गुण का उपदेश ॥

तस्मै प्राच्या दिशः ॥१॥

वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथंतरं चानुष्ठातारौ ॥२॥

वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च
रथंतरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥३॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्राच्याः) पूर्व (दिशः) दिशा से ॥१॥ (वासन्तौ) वसन्त ऋतु वाले [चैत्र—वैशाख] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (बृहत्) बृहत् [बड़े आकाश] (च च) और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाला वा विहित कार्यसाधक] [बनाया] ॥२॥ (वासन्तौ) वसन्त ऋतु वाले (मासौ) दो महीने (प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, [और दोनों] (बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (च च) और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] [उस के लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कार्य करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग निश्चय करके मानते हैं कि जो मनुष्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा में विश्वास करता है; वह पुरुषार्थी जन पूर्वादि दिशाओं और वसन्त आदि ऋतुओं में सुरक्षित रहता है ॥१—३॥

तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥४॥

ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च

वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥५॥

ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं

च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥६॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा से ॥४॥ (ग्रैष्मौ) घाम वाले [ज्येष्ठ-आषाढ़] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों के हितकारी [वेद ज्ञान] को (च च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताये गये [भूतपञ्चक] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा कार्य साधक] [बनाया] ॥५॥ (ग्रैष्मौ) घाम वाले (मासौ) दो महीने (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों का हितकारी [वेद ज्ञान] (च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] करके जताया गया [भूतपञ्चक] [उस के लिये] (अनुतिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥६॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥४-६॥

तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥७॥

वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥८॥

वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो

वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥९॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिमी दिशा से ॥७॥ (वार्षिकौ) वर्षा वाले [श्रावण—भाद्र] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (च) और (वैरूपम्) वैरूप [विविध पदार्थों के जताने वाले वेद ज्ञान को (च) और (वैराजम्) वैराज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[विराट् रूप अर्थात् बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा के स्वरूप के प्राप्त कराने वाले मोक्ष ज्ञान] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा विहित कर्म साधक] [बनाया] ॥८॥ (वार्षिकौ) वर्षा वाले (मासौ) दोनों महीने (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिमी दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (वैरूपम्) वैरूप [विविध पदार्थों का जताने वाला वेद ज्ञान] (च) और (वैराजम्) वैराज [विराट् रूप अर्थात् बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा का स्वरूप प्राप्त कराने वाला मोक्ष ज्ञान] [उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥९॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥७-९॥

तस्मा उदीच्या दिशः ॥१०॥

शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ॥११॥

शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं
च नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१२॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (उदीच्याः दिशः) उत्तर वाली दिशा से ॥१०॥ (शारदौ) शरद् ऋतु वाली [आश्विन—कार्तिक] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (च) और (श्यैतम्) श्यैत [सद्गति बताने वाले वेदज्ञान] को (च) और (नौधसम्) नौधस [ऋषियों के हितकारी मोक्ष ज्ञान] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा कार्यसाधक] [बनाया] ॥११॥ (शारदौ) शरद् ऋतु वाले (मासौ) दो महीने (उदीच्याः दिशः) उत्तर वाली दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (श्यैतम्) श्यैत् [सद्गति बताने वाला, वेद ज्ञान] (च) और (नौधसम्) नौधस [ऋषियों का हितकारी मोक्ष ज्ञान] [उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१२॥

भावार्थः – मन्त्र १—३ के समान है ॥१०—१२॥

तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥१३॥

हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१५॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा से ॥१३॥ (हैमनौ) शीत वाले [अग्रहायण—पौष] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (भूमिम्) भूमि (च च) और (अग्निम्) अग्नि [भौतिक अग्नि] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा कार्य साधक] [बनाया] ॥१४॥ (हैमनौ) शीतवाले (मासौ) दो महीने (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (भूमिः) भूमि (च) और (अग्निः) अग्नि [उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१५॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥१३—१५॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥१६॥

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥१७॥

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१८॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊंची दिशा से ॥१६॥ (शैशिरौ) शिशिर वाले [पतझड़ वाले, माघ—फाल्गुन] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (दिवम्) आकाश (च च) और (आदित्यम्) सूर्य को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा कार्य साधक] ने [बनाया] ॥१७॥ (शैशिरौ) शिशिर वाले (मासौ) दोनों महीने (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊंची दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (द्यौः) आकाश (च) और (आदित्यः) सूर्य [उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१८॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥१६—१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥५॥

१—१६ ॥ परमात्मा देवता ॥ १, १०, १४ आर्षी गायत्री, २, १५, आर्ची त्रिष्टुप्, ३, १६ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ४, ६, ८, १२ स्वराट् प्राजापत्या पङ्क्तिः, ५, ७, ९, १३ ब्राह्मी गायत्री, ११ निचृद् ब्राह्मी गायत्री ॥

परमात्मान्तर्यामित्वोपदेशः—परमात्मा के अन्तर्यामी होने का उपदेश ॥

तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ।१॥

भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२॥
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्राच्याः दिशः) पूर्वदिशा के (अन्तर्देशात्) मध्यदेश से (भवम्) सर्वत्र वर्तमान परमेश्वर को (इष्वासम्) हिंसा नाशक, (अनुष्ठातारम्) अनुष्ठाता [साथ रहने वाला] (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥१॥ (भवः) सर्वत्र वर्तमान, (इष्वासः) हिंसा निवारक, (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न (शर्वः) दुःख नाशक, (न) न (भवः) सर्वत्र वर्तमान और (न) न (ईशानः) सर्वस्वामी परमेश्वर ॥२॥ (हिनस्ति) कष्ट देता है, (न) न (अस्य) उस [विद्वान्] के (पशून्) प्राणियों को और (न) न (समानान्) [उसके] तुल्य गुण वालों को [कष्ट देता है], (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

भावार्थः विद्वानों का मत है कि जो मनुष्य परमात्मा को सर्व-व्यापक सर्वान्तर्यामी जानकर सदा सर्वत्र पुरुषार्थ करके उसका आज्ञाकारी रहता है, वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सब विघ्न हटाकर उस पर उसके अनुगामियों पर अनुग्रह करता है ॥१—३॥

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥४॥

शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (शर्वम्) दुःखनाशक परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा निवारक, (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥४॥ (शर्वः) दुःखनाशक, (इष्वासः) हिंसा निवारक (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला जगदीश्वर (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) इस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न···[म० २, ३] ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥४, ५॥

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥६॥
पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥७॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिम दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (पशुपतिम्) प्राणियों के रक्षक परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥६॥ (पशुपतिः) प्राणियों का रक्षक, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिम दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न···[म० २, ३] ॥७॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥६, ७॥

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥८॥
उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥९॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्यदेश से (उग्रम्) प्रचण्ड स्वभाव वाले (देवम्) प्रकाशमय परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला, (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥८॥ (उग्रः) प्रचण्ड स्वभाव वाला, (देवः) प्रकाशमय, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला, (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न…… [म० २, ३] ॥९॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥८, ९॥

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१०॥
रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥११॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (रुद्रम्) शत्रुनाशक परमेश्वर को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला, (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला, (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥१०॥ (रुद्रः) शत्रुनाशक, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न…[म० २, ३] ॥११॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥१०, ११॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठा-
तारमकुर्वन् ॥१२॥
महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१३॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊंची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (महादेवम्) महादेव [बड़े प्रकाशमय] परमेश्वर को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥१२॥ (महादेवः) महादेव [बड़ा प्रकाशमय] (इष्वासः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊंची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न···[म० २, ३] ॥१३॥

भावार्थः–मन्त्र १—३ के समान है ॥१२, १३॥

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१४॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु

तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥१५॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१६॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (सर्वेभ्यः) सब (अन्तर्देशेभ्यः) मध्यदेशों से (ईशानम्) सब के स्वामी परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥१४॥ (ईशानः) सब का स्वामी, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (सर्वेभ्यः अन्तर्देशेभ्यः) सब मध्य देशों से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न (शर्वः) दुःखनाशक, (न) न (भवः) सर्वत्र वर्तमान (न) न (ईशानः) सर्वस्वामी परमेश्वर ॥१५॥ (हिनस्ति) कष्ट देता है, (न) न (अस्य) उस [विद्वान्] के (पशून्, प्राणियों को और (न) न [उसके] (समानान्) तुल्य गुण वालों को [कष्ट देता है], (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१६॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥१४, १५, १६॥

सूक्तम् ॥६॥

१–२६ व्रात्यो देवता, १, ४ आसुरी पङ्क्तिः; २, १७ आर्ची पङ्क्तिः; ३ आर्षी पङ्क्तिः; ५, ११ साम्नी त्रिष्टुप्; ६, १२ निचृदार्ची बृहती; ७, १०, १३, १६, २४ आसुरी बृहती; ८ साम्नी पङ्क्तिः; ९ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; १४, २३ आर्ची त्रिष्टुप्; १५, १८ विराडार्षी जगती; १९ आर्च्युष्णिक्; २० साम्न्यनुष्टुप्; २१ आर्ची बृहती, २२ आर्ष्युष्णिक्, २५ आर्च्यनुष्टुप्, २६ विराडार्षी बृहती ॥

ईश्वरस्य सर्वस्वामित्वोपदेशः—ईश्वर के सर्वस्वामी होने का उपदेश ॥

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्यचलन् ॥२॥

भूमेश्च वै सो ३ ऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (ध्रुवाम्) नीची (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१॥ (भूमिः) भूमि (च च) और (अग्निः) अग्नि [भौतिक अग्नि] (च) और (ओषधयः) ओषधें [जौ, गेहूं, चावल आदि अन्न] (च) और (वनस्पतयः) वनस्पतियां [पीपल आदि वृक्ष] (च) और (वानस्पत्याः) वनस्पतियों से उत्पन्न पदार्थ [काष्ठ फूल, फल, मूल, रस आदि] (च) और (वीरुधः) लतायें [सोमलता आदि] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥२॥ (सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (भूमेः) भूमि का (च च) और (अग्नेः) अग्नि का (च) और (ओषधीनाम्) ओषधियों का (च) और (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों का (च) और (वानस्पत्यानाम्) वनस्पतियों से उत्पन्न पदार्थों का (च) और (वीरुधाम्) लताओं का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

भावार्थः—जब विद्वान् पुरुष परमात्मा को नीची आदि दिशाओं में सर्वव्यापक और सर्वनियन्ता जानकर उसके उत्पन्न किये पृथिवी आदि पदार्थों का तत्त्वज्ञान प्राप्त करता है, तब वह उनसे यथावत् उपकार लेकर सुख पाता है ॥१—३॥

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥४॥

तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥५॥

ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥६॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (ऊर्ध्वाम्) ऊंची (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥४॥ (ऋतम्) यथार्थ विज्ञान (च च) और (सत्यम्) [विद्यमान जगत् का हितकारी] अविनाशी कारण (च) और (सूर्यः) सूर्य (च) और (चन्द्रः) चन्द्रमा (च) और (नक्षत्राणि) चलने वाले तारे (तम्) उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥५॥ (सः) वह [विद्वान् पुरुष] (वै) निश्चय करके (ऋतस्य) सत्य विज्ञान का (च च) और (सत्यस्य) [विद्यमान् जगत् के हितकारी] अविनाशी कारण का (च) और (सूर्यस्य) सूर्य का (च) और (चन्द्रस्य) चन्द्रमा का (च) और (नक्षत्राणाम्) चलने वाले तारागणों का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा के सामर्थ्य से ही अविनाशी विज्ञान और जगत् का नित्य कारण और कार्यरूप सूर्य आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं, ऐसा दृढ़ ज्ञानी पुरुष ईश्वरीय सत्यज्ञान को, कारणरूप और कार्यरूप जगत् को यथावत् जानकर आनन्द पाता है ॥४, ५, ६॥

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥७॥

तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥८॥

ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥९॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत्तमाम्) अत्यन्त ऊंचा (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥७॥ (ऋचः) ऋग्वेद की ऋचायें [अर्थात् पदार्थों के गुण बताने वाले मन्त्र] (च च) और (सामानि) सामवेद के मन्त्र [अर्थात् मोक्ष प्रतिपादक मन्त्र] (च) और (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र [अर्थात् सत्कर्म प्रकाशक ज्ञान] (च) और (ब्रह्म) अथर्ववेद [अर्थात् ब्रह्मज्ञान] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे चले ॥८॥ (सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (ऋचाम्) ऋग्वेद की ऋचाओं का (च च) और (साम्नाम्) सामवेद के मन्त्रों का (च) और (यजुषाम्) यजुर्वेद के मन्त्रों का (च) और (ब्रह्मणः) अथर्ववेद का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य वेदों में प्रतिपादित ईश्वरीय ज्ञान को ऊंचे से ऊंचे स्थान में साक्षात् करके उन्नति करता हुआ मोक्षानन्द भोगता है ॥७, ८, ९॥

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत् ॥१०॥

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१२॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (बृहतीम्) बड़ी (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१०॥ (इतिहासः) इतिहास [बड़े लोगों का वृत्तान्त] (च च) और (पुराणम्) पुराण [पुराने लोगों का वृत्तान्त] (च) और (गाथाः) गाथायें [गाने योग्य वेदमन्त्र, शिक्षाप्रद श्लोक आदि] (च) और (नाराशंसीः) नाराशंसी [वीर नरों की गुण कथायें] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे चलीं ॥११॥ (सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (इतिहासस्य) इतिहास का (च च) और (पुराणस्य) पुराण का (च) और (गाथानाम्) गाथाओं का (च) और (नाराशंसीनाम्) नाराशंसियों का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१२॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव के साथ उत्तम मनुष्यों के गुण कर्म स्वभाव का उपदेश करता है, वह इतिहास पुराण आदि द्वारा कीर्ति पाता है ॥१०, ११, १२॥

मन्त्र १०—१२ महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदसंज्ञा-विचार पृष्ठ ८२ में उद्धृत हैं ॥

स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥१३॥

तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥१४॥

आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (परमाम्) सब से दूर (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१३॥ (आहवनीयः) आहवनीय [यज्ञ की अग्नि विशेष] (च च) और (गार्हपत्यः) गार्हपत्य [गृहपति की सिद्ध की हुई यज्ञाग्नि विशेष] (च) और (दक्षिणाग्निः) दक्षिण अग्नि [यज्ञाग्नि विशेष] (च) और (यज्ञः) यज्ञ (च) और (यजमानः) यजमान [यज्ञकर्त्ता] (च) और (पशवः) सब प्राणी (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥१४॥ (सः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह [विद्वान् पुरुष] (वै) निश्चय करके (आहवनीयस्य) आहवनीय [अग्नि] का (च च) और (गार्हपत्यस्य) गार्हपत्य [अग्नि] का (च) और (दक्षिणाग्नेः) दक्षिण अग्नि का (च) और (यज्ञस्य) यज्ञ का (च) और (यजमानस्य) यजमान का (च) और (पशूनाम्) सब प्राणियों का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१५॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा में ध्यान लगा कर संसार के उपकारी अग्निहोत्र आदि यज्ञ तथा विद्यादान और विद्वानों के सत्कार आदि यज्ञ करता है, वह परमात्मा का भक्त संसार में अति प्रशंसनीय होता है ॥१३, १४, १५॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥१६॥

तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् ॥१७॥

ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१८॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (अनादिष्टाम्) विना बताई हुई (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१६॥ (लोकाः) सब लोक (च च) और (लौक्याः) लोकों में रहने वाले (च) और (ऋतवः) ऋतुयें (च) और (आर्तवाः) ऋतुओं में उत्पन्न हुए पदार्थ (च) और (मासाः) महीने (च) और (अर्धमासाः) आधे महीने (च) और (अहोरात्रे) दिन राति (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥१७॥ (सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (लोकानाम्) सब लोकों का (च च) और (लौक्यानाम्) लोकों में रहने वालों का (च) और (ऋतूनाम्) ऋतुओं का (च) और (आर्तवानाम्) ऋतुओं में उत्पन्न हुए पदार्थों का (च) और (मासानाम्) महीनों का (च) और (अर्धमासानाम्) आधे महीनों का (च) और (अहोरात्रयोः) दोनों दिन राति का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि परमात्मा को सब लोकों, लोक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वालों और ऋतुओं आदि का स्वामी जानकर सब पदार्थों का विवेकी होवे और उन से यथावत् उपकार लेकर आनन्द पावे ॥१६, १७, १८॥

सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत ॥१९॥

तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥२०॥

दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२१॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (अनावृत्ताम्) अनावृत [विना अभ्यास की हुई, मनुष्य की बिना जानी] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा, (ततः) उस [दिशा] से वह (न) नहीं (आवर्त्स्यन्) लौटेगा—(अमन्यत) उस [विद्वान्] ने माना ॥१९॥ (दितिः) दिति [खण्डित विकृति अर्थात् कार्यरूप नाशवान् सृष्टि] (च च) और (अदितिः) अदिति [अखण्डित प्रकृति अर्थात् जगत् की अविनाशी परमाणु रूप सामग्री] (च) और (इडा) इड़ा [प्राप्ति योग्य वेदवाणी] (च) और (इन्द्राणी) इन्द्राणी [इन्द्र अर्थात् जीव की शक्ति] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥२०॥ (सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (दितेः) दिति [नाशवान् सृष्टि] का (च च) और (अदितेः) [अदिति अविनाशी परमाणु रूप सामग्री] का (च) और (इडायाः) इड़ा [वेदवाणी] का (च) और (इन्द्राण्याः) इन्द्राणी [जीव की शक्ति] का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२१॥

भावार्थः—परमात्मा की अपार, अनादि और अनन्त शक्ति है, मनुष्य जितना जितना खोजता है, उतना उतना ही जगदीश्वर की सृष्टि और परमाणु रूप सामग्री को अनादि अनन्त ही पाता जाता है और वेद द्वारा अपनी शक्ति बढ़ाता हुआ मनाता चला चलता है ॥१९, २०, २१॥

स दिशोऽनु व्यचलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ॥२२॥

विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (दिशः अनु) सब दिशाओं की ओर (वि अचलत्) विचरा, (विराट्) विराट् [विविध पदार्थों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड-रूप संसार] (तम् अनु) उस [व्रात्य परमात्मा] के पीछे (वि अचलत्) विचरा, (च) और (सर्वे) सब (देवाः) दिव्य पदार्थ (च) और (सर्वाः) सब (देवताः) दिव्य शक्तियां [उसके पीछे विचरीं] ॥२२॥ (सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (विराजः) विराट् [विविध पदार्थों से प्रकाशमान संसार] का (च च) और (सर्वेषाम्) सब (देवानाम्) उत्तम पदार्थों का (च) और (सर्वासाम्) सब (देवतानाम्) उत्तम शक्तियों का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२३॥

भावार्थः—यह संसार, दिव्यपदार्थ और उनकी दिव्य शक्तियां परमात्मा से सब दिशाओं में प्रसिद्ध हुई हैं, उस परमात्मा को साक्षात् करने वाला मनुष्य सब उत्तम पदार्थों और गुणों का विवेकी होकर संसार का प्रिय होता है ॥२२, २३॥

ऋग्वेद १०। ९०। ५ तथा यजुर्वेद ३१। ५ में ऐसा वर्णन है—(ततो विराडजायत विराजोऽअधिपूरुषः) उस [पूर्ण पुरुष परमात्मा] से विराट् [विविध पदार्थों से प्रकाशमान संसार] उत्पन्न हुआ, विराट् [संसार] के ऊपर [अधिष्ठाता] पुरुष [परिपूर्ण परमात्मा] है ॥

सः सर्वाँनन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥२४॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥२५॥

प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२६॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (सर्वान्) सब (अन्तर्देशान् अनु) भीतरी देशों की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥ २४ ॥ (प्रजापतिः) प्रजापालक [राजा] (च च) और (परमेष्ठी) परमेष्ठी [बड़े पद वाला आचार्य वा संन्यासी] (च) और (पिता) पिता (च) और (पितामहः) दादा (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥२५॥ (सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (प्रजापतेः) प्रजापालक [राजा] का (च च) और (परमेष्ठिनः) परमेष्ठी [बड़ी स्थिति वाले आचार्य वा संन्यासी] का (च) और (पितुः) पिता का (च) और (पितामहस्य) दादा का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२६॥

भावार्थः—जो विद्वान् पुरुष गहरे विचार से यह देखते हैं कि संसार में सब लोग परब्रह्म परमात्मा की आज्ञा मानने से बड़े हुए हैं, वे ही ईश्वर की आज्ञा में रहकर उन्नति करते और आनन्द भोगते हैं ॥२४—२६॥

सूक्तम् ॥७॥

१—५ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ निचृदार्षी गायत्री, २ विराडार्षी बृहती, ३ विराडार्ष्युष्णिक्, ४ आर्षी गायत्री, ५ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ॥

परमात्मव्यापकत्वोपदेशः— परमात्मा की व्यापकता का उपदेश ॥

स म॑हि॒मा सद्रु॑र्भू॒त्वान्तं॑ पृथि॒व्या अ॑गच्छ॒त् स स॑मु॒द्रो॑ऽभवत् ॥१॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (महिमा) महिमास्वरूप और (सद्रुः) वेगवान् (भूत्वा) होकर (पृथिव्याः) पृथिवी के (अन्तम्) अन्त को (अगच्छत्) पहुंचा है, (सः) वह [परमात्मा] (समुद्रः) अन्तरिक्षरूप [अनादि, अनन्त] (अभवत्) हुआ है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी बड़ाई के कारण विद्वानों को पृथिवी से आगे अन्तरिक्ष के समान अनादि अनन्त जान पड़ता है ॥१॥

तं प्र॒जाप॑तिश्च परमे॒ष्ठी च॑ पि॒ता च॑ पिताम॒हश्चाप॑श्च
श्र॒द्धा च॑ व॒र्षं भू॒त्वानु॒व्य॑वर्तयन्त ॥२॥

भाषार्थः—(प्रजापतिः) प्रजापालक [राजा] (च च) और (परमेष्ठी) परमेष्ठी [सब से ऊंचे पद वाला आचार्य वा संन्यासी] (च) और (पिता) पिता (च) और (पितामहः) दादा (च) और (आपः) सत्कर्म (च) और (श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म में प्रतीति] (वर्षम्) श्रेष्ठपन को (भूत्वा) पाकर (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यवर्तयन्त) पीछे विविध प्रकार वर्तमान हुए हैं ॥२॥

भावार्थः—सब शूर वीर ज्ञानी और पूजनीय महात्मा संसार में उस परमात्मा ही का आश्रय लेकर श्रेष्ठ होते हैं ॥२॥

ऐन॒मापो॑ गच्छ॒त्यैनं॑ श्र॒द्धा ग॑च्छ॒त्यैनं॑ व॒र्षं ग॑च्छ॒ति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥३॥

भाषार्थः—(एनम्) उस [विद्वान्] पुरुष को (आपः) सत्कर्म (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उस को (श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म में प्रतीति] (आ) आकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गच्छति) मिलती है, (एनम्) उसको (वर्षम्) श्रेष्ठपन (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

भावार्थः—जब मनुष्य परमात्मा को जान लेता है, तब वह सुकर्मी श्रद्धावान् और श्रेष्ठ होकर उन्नति करता है ॥३॥

तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥४॥

भाषार्थः—(श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म में प्रतीति] (च च) और (यज्ञः) यज्ञ [सद् व्यवहार] (च) और (लोकः) समाज (च) और (अन्नम्) अन्न [जो चावल आदि] (च) और (अन्नाद्यम्) अनाज [रोटी पूरी आदि बना भोजन] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] में (भूत्वा) व्यापकर (अभिपर्यावर्तन्त) सामने सब ओर से आकर वर्त्तमान हुए हैं ॥४॥

भावार्थः– उस परमात्मा के ही सामर्थ्य से पुरुषार्थी पुरुष के लिये श्रद्धा आदि उपयोगी गुण, सब समाज और अन्न आदि भोग्य पदार्थ सर्वत्र सर्वदा वर्तमान रहते हैं ॥४॥

ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं
गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥५॥

भाषार्थः—(एनम्) उस [विद्वान्] पुरुष को (श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म में प्रतीति] (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, (एनम्) उस को (यज्ञः) सद्व्यवहार (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उसको (लोकः) समाज (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उस को (अन्नम्) अन्न [जो चावल आदि] (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उस को (अन्नाद्यम्) अनाज [रोटी पूरी आदि बना भोजन] (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥५॥

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी पुरुष ही श्रद्धालु, सत्कर्मी, सर्वहितैषी और अन्नवान् होकर संसार में प्रशंसनीय होता है ॥५॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥८॥

१—३ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ साम्न्युष्णिक्, २ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ३ आर्ची पङ्क्तिः ॥

परमेश्वरस्य प्रभुत्वोपदेशः—परमेश्वर की प्रभुता का उपदेश ॥

सोऽरज्यत् ततो राजन्योऽजायत ॥१॥

भाषार्थः—(सः) उस [व्रात्य परमात्मा] ने (अरज्यत) प्रेम किया, (ततः) उसी से वह (राजन्यः) सर्वस्वामी (अजायत) हुआ ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी स्वाभाविक प्रीति से सब सृष्टि का स्वामी है ॥१॥

स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥२॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (सबन्धून्) बन्धुओं सहित [कुटुम्बियों] सहित (विशः) मनुष्यों पर, (अन्नम्) अन्न [जो चावल आदि] पर और (अन्नाद्यम्) अनाज [रोटी पूरी आदि] पर (अभ्युदतिष्ठत्) सर्वथा अधिष्ठाता हुआ ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा मनुष्य आदि सब पदार्थों का अधिष्ठाता होकर सब की रक्षा करता है ॥२॥

विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३॥

भाषार्थः—(सः) वह [विद्वान् पुरुष] (वै) निश्चय करके (सबन्धूनाम्) बन्धुओं सहित (विशाम्) मनुष्यों का (च च) और (अन्नस्य) अन्न [जो चावल आदि] का (च च) और (अन्नाद्यस्य) अनाज [रोटी पूरी आदि बने हुए पदार्थ] का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर पुरुषार्थ करता है, वह सर्वहितकारी होने से सब में प्रतिष्ठा पाता है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥९॥

१—३ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ आसुरी जगती, २ आर्षी गायत्री, ३ आर्ची पङ्क्तिः ॥

राजधर्मव्यवस्थोपदेशः—राजधर्म की व्यवस्था का उपदेश ॥

स विशोऽनु व्यचलत् ॥१॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (विशः अनु) मनुष्यों की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१॥

भावार्थः—सर्वव्यापक परमात्मा ने वेदद्वारा मनुष्यों में राजधर्म का उपदेश किया है ॥१॥

तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् ॥२॥

भाषार्थः—(सभा) सभा (च च) और (समितिः) संग्राम व्यवस्था (च) और (सेना) सेना (च) और (सुरा) राज्यलक्ष्मी (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा की विहित व्यवस्था से ही संसार में सभा आदि की संस्था स्थापित हुई है ॥२॥

इस मन्त्र का कुछ अंश महर्षि दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ६ राजधर्म प्रकरण तथा संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३॥

भाषार्थः—(सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (सभायाः) सभा का (च च) और (समितेः) संग्राम व्यवस्था का (च) और (सेनायाः) सेना का (च) और (सुरायाः) राज्यलक्ष्मी का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा की व्यवस्था जानकर सभा आदि की यथावत् संस्था करते हैं, वे राज्यलक्ष्मी बढ़ा कर कीर्ति पाते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥१०॥

१—११—व्रात्यो देवता ॥ १, ५, साम्नी बृहती, २ निचृदार्षी पङ्क्तिः,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३, ४ प्राजापत्या पङ्क्तिः, ६, ८, १० आसुरी गायत्री, ७, ९ साम्न्युष्णिक्, ११ आसुरी बृहती ॥

आतिथ्यमहिमोपदेशः— अतिथि सत्कार की महिमा का उपदेश ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥

श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते

तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥२॥

भाषार्थः—(तत्) फिर (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सद्व्रतधारी, सदाचारी] (अतिथिः) अतिथि [नित्य मिलने योग्य सत्पुरुष] (यस्य राज्ञः) जिस राजा के (गृहान्) घरों में (आगच्छेत्) आवे ॥१॥ वह [राजा] (एनम्) उस [अतिथि] को (आत्मनः) अपने से (श्रेयांसम्) अधिक श्रेष्ठ (मानयेत्) सम्मान करे, (तथा) उस प्रकार [सत्कार] से वह [राजा] (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (न) नहीं (आ) कुछ (वृश्चते) दोषी होता है, और (तथा) उस प्रकार के (राष्ट्रम्) राज्य के लिये भी (न) नहीं (आ) कुछ (वृश्चते) दोषी होता है ॥२॥

भावार्थः—जब ब्रह्मवादी आप्त विद्वान् अतिथि राजा के घर आवे, राजा उसको अपने से अधिक गुणी जानकर यथावत् सत्कार करे जिस से उसके सदुपदेश से दोषों के मिटने पर उसके कुल की और राज्य की वृद्धि होवे ॥१, २॥

अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥३॥

भाषार्थः—(अतः) इस [अतिथि सत्कार] से (वै) निश्चय करके (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी कुल (च च) और (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल (उत् अतिष्ठताम्) दोनों ऊंचे होवें, (ते) वे दोनों (अब्रूताम्) कहें—(कम्) किस [गुण] में (प्र विशाव इति) हम दोनों प्रवेश करें ॥३॥

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी और क्षत्रिय लोग अतिथि का सत्कार करके विचार करें कि कौन से कौन से गुण स्वीकार करने से हमारी उन्नति होवे। इसका उत्तर आगे है ॥३॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥४॥

भाषार्थः—(अतः) इस [अतिथि सत्कार] से (वै) निश्चय करके (ब्रह्म)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मज्ञानी कुल (बृहस्पतिम्) बड़े बड़े प्राणियों के रक्षक गुण में (एव) ही (प्र विशतु) प्रवेश करे, (तथा) उसी प्रकार [अतिथि, सत्कार] से (वै) निश्चय करके (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य में [प्रवेश करे], (इति) ऐसा [अतिथि कहे] ॥४॥

भावार्थः – आप्त अतिथि मन्त्र ३ का उत्तर देवे कि ब्रह्मज्ञानी पुरुष प्राणियों की रक्षा का और राजा लोग ऐश्वर्य प्राप्ति का प्रयत्न करते रहें ॥४॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (अतः) इस [अतिथि सत्कार] से (वै) निश्चय करके (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह ने (बृहस्पतिम्) बड़े बड़े प्राणियों के रक्षक गुण [वेद ज्ञान आदि] में (एव) ही (प्र अविशत्) प्रवेश किया है, और (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल ने (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य में [प्रवेश किया है] ॥५॥

भावार्थः—इस चक्ररूप संसार में यही नियम सदा से है कि ब्रह्मज्ञानियों ने वेदज्ञान आदि से और क्षत्रियों ने परम ऐश्वर्य बढ़ाने से प्रतिष्ठा पायी है ॥५॥

इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥६॥

भाषार्थः—(इयम्) यह (पृथिवी) पृथिवी [भूमि का राज्य] (वै) निश्चय करके (उ) ही (बृहस्पतिः) बड़े बड़े प्राणियों का रक्षक गुण है, (द्यौः) प्रकाशमान राजनीति (एव) ही (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य संसार में अतिथि सत्कार करके और उससे शिक्षा पाके राज्यपालन से प्राणियों की रक्षा करने की, और राजनीति से ऐश्वर्य बढ़ाने की योग्यता पावें ॥६॥

अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥७॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (अग्निः) अग्नि [अग्नि समान तेजस्वी] (एव) निश्चय करके (उ) ही (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह है और (असौ) वह (आदित्यः) सूर्य [सूर्य समान प्रतापी] (क्षत्रम्) क्षत्रिय समूह है ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य वेदों के मनन से अग्नि समान तेजस्वी और प्रजापालन से सूर्य समान प्रतापी होवें ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐनं ब्रह्मं गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥८॥

यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥९॥

भाषार्थः—(एनम्) उस [पुरुष] को (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, और वह (ब्रह्मवर्चसी) ब्रह्मवर्चसी [वेदाभ्यास से तेजस्वी] (भवति) होता है ॥८॥ (यः) जो [पुरुष] (पृथिवीम्) पृथिवी [पृथिवी के राज्य] को (बृहस्पतिम्) बड़े बड़े प्राणियों का रक्षक गुण, और (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह को (अग्निम्) अग्नि [अग्नि समान तेजोमय] (वेद) जानता है ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य प्रजापालक और अतिथि सत्कारक होकर वेद-ज्ञानियों के साथ विराजकर ब्रह्मवर्चसी होवे ॥८, ९॥

ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥१०॥

य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥११॥

भाषार्थः—(एनम्) उस [पुरुषार्थी] को (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, वह (इन्द्रियवान्) ऐश्वर्यवान् (भवति) होता है ॥१०॥ (यः) जो [पुरुष] (क्षत्रम्) क्षत्रिय समूह को (आदित्यम्) सूर्य [सूर्य समान तेजस्वी] और (दिवम्) प्रकाशमान राजनीति को (इन्द्रम्) ऐश्वर्य (वेद) जानता है ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य प्रजापालन में दक्ष और सुनीतिप्रचार में चतुर होकर ऐश्वर्य बढ़ावें ॥१०, ११॥

सूक्तम् ॥११॥

१—११ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ आसुरी गायत्री, २ भुरिक् शक्वरी, ३, ५, ६, ८ आर्ची बृहती, ४, ७, ९ प्राजापत्या बृहती, १० भुरिगार्ची बृहती, ११ आर्च्यनुष्टुप् ॥

आतिथ्यविधानोपदेशः—अतिथि सत्कार के विधान का उपदेश ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सद् व्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि [नित्य मिलने योग्य सत् पुरुष] (यस्य) जिस [पुरुष] के (गृहान्) घरों में (आगच्छेत्) आवे ॥१॥ (स्वयम्) आप ही (अभ्युदेत्य) उठके जाकर (एनम्) उस [अतिथि] से (ब्रूयात्) कहे—(व्रात्य) हे व्रात्य ! (क्व) कहां (अवात्सीः) [रात्रि में] तू रहा था ? (व्रात्य) हे व्रात्य ! (उदकम्) यह जल है, (व्रात्य) हे व्रात्य ! (तर्पयन्तु) वे [यह पदार्थ तुझे, अथवा, आप हमें] तृप्त करें, (व्रात्य) हे व्रात्य ! (यथा) जैसे (ते) तेरा (प्रियम्) प्रिय [अभीष्ट] हो (तथा) वैसा ही (अस्तु) होवे, (व्रात्य) हे व्रात्य (यथा) जैसे (ते) तेरी (वशः) प्रधानता हो (तथा अस्तु) वैसा होवे, (व्रात्य) हे व्रात्य ! (यथा) जैसे (ते) तेरी (निकामः) इच्छा पूर्ति हो (यथा अस्तु इति) वैसा ही होवे ॥२॥

भावार्थः—गृहस्थों को चाहिये कि जब कोई विद्वान् महामान्य अतिथि घर पर आवे, प्रीति वचन, जल, अन्न आदि पदार्थों से उसकी सेवा करें ॥१, २॥

यह दोनों मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका अतिथियज्ञविषय पृष्ठ २७१ में व्याख्यात हैं ॥

यदेनमाह व्रात्य क्वाऽवात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानव रुन्द्धे ॥३॥

भावार्थः—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता हैं—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सद्व्रतधारी] (क्व) कहां (अवात्सीः इति) [रात्रि में] तू रहा था ! (तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (देवयानान्) विद्वानों के चलने योग्य (पथः) मार्गों को (अव रुन्द्धे) वह [अपने लिये] सुरक्षित करता है ॥३॥

भावार्थः—अतिथि के साथ प्रीतिपूर्वक वार्तालाप करने से गृहस्थ उस के उपदेश द्वारा सन्मार्ग पर चल कर आनन्द भोगे ॥३॥

यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सद्व्रतधारी] (उदकम् इति) यह जल है—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (अपः) सत्कर्म को (अव रुन्द्धे) वह [अपने लिये] सुरक्षित करता है ॥४॥

भावार्थः—अतिथि को जल आदि देने से गृहस्थ सत्कर्मी होता है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥५॥

भाषार्थः—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) [वह गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सद्व्रतधारी] (तर्पयन्तु इति) वे [यह पदार्थ तुझे, अथवा, आप हमें] तृप्त करें—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (प्राणम्) अपने प्राण [जीवन] को (वर्षीयांसम्) अधिक बड़ा (कुरुते) वह [गृहस्थ] करता है ॥५॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग अतिथि महात्माओं का सत्कार करके उनके सदुपदेश से अपना जीवन उत्तम बनावें ॥५॥

इस मन्त्र का अन्तिम भाग ऊपर आया है अ० ९। ६ (२)। २॥

यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे ॥६॥
ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ॥७॥

भाषार्थः—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [उत्तम व्रतधारी] (यथा) जैसे (ते) तेरा (प्रियम्) प्रिय हो (तथा) वैसा ही (अस्तु इति) होवे—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (प्रियम्) अपने प्रिय वस्तु को (अव रुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥६॥ (एनम्) उस [गृहस्थ] को (प्रियम्) प्रिय पदार्थ (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, वह (प्रियस्य) अपने इष्ट मित्र का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है, (यः) जो (एवम्) ऐसे [विद्वान्] को (वेद) जानता है ॥७॥

भावार्थः—आदर पूर्वक अतिथि को उसका प्रिय पदार्थ अर्पण करने से गृहस्थ अपना इष्ट पदार्थ उत्तम ज्ञानादि प्राप्त करके अपने मित्रों का प्रिय होवे ॥६, ७॥

यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव तेनाव रुन्द्धे ॥८॥

भाषार्थः (यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [उत्तम व्रतधारी] (यथा) जैसे (ते) तेरा (वशः) प्रधानत्व हो, (तथा अस्तु इति) वैसा होवे—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (वशम्) प्रधानत्व को (अव रुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥८॥

भावार्थः—गृहस्थ अतिथि की प्रधानता मानने से अपनी प्रधानता को दृढ़ करे ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद ॥९॥

भाषार्थः (एनम्) उस [गृहस्थ] को (वशः) प्रधानत्व (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, वह (वशिनाम्) वश कर्ताओं का (वशी) वशकर्ता [शासक] (भवति) होता है, (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसे [विद्वान्] को (वेद) जानता है ॥९॥

भावार्थः गृहस्थ विद्वान् नीतिज्ञ अतिथि का प्रभुत्व रखकर शासकों का शासक होवे ॥९॥

यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाममेव तेनाव रुन्द्धे ॥१०॥

भाषार्थः—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सत्यव्रतधारी] (यथा) जैसी (ते) तेरी (निकामः) लालसा [निश्चितकामना] हो, (तथा अस्तु इति) वैसा होवे—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (निकामम्) अपनी लालसा को (अव रुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥१०॥

भावार्थः—गृहस्थ अतिथि की विद्यावृद्धि आदि लालसा पूरी करने से अपनी लालसाओं की पूर्ति का उपाय जाने ॥१०॥

ऐनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥११॥

भाषार्थः—(एनम्) उस [गृहस्थ] को (निकामः) लालसा (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, वह (निकामस्य) लालसा की (निकामे) निरन्तर पूर्ति में (भवति) होता है, (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसे [विद्वान्] को (वेद) जानता है ॥११॥

भावार्थः—गृहस्थ को योग्य है कि आप्त विद्वान् अतिथि का अनेक प्रकार सत्कार करके उन्नति की अभिलाषाओं को पूरा करे ॥११।

सूक्तम् ॥१२॥

१—११ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ स्वराडार्षी गायत्री, २, प्राजापत्या बृहती, ३ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ४ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५, ६, ९, १० आसुरी गायत्री, ७, ११ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, ८ आर्ची गायत्री ॥

यज्ञानुष्ठाने विदुषः सम्मत्युपदेशः—यज्ञ करने में विद्वान् की सम्मति का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्यातिं सृज होष्यामीति ॥२॥

भाषार्थः—(तत्) सो (एवम्) व्यापक [परमात्मा] को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि [नित्य मिलने योग्य सत्पुरुष] (उद् धृतेषु) ऊंची उठी हुई (अग्निषु) अग्नियों के बीच (अग्निहोत्रे) अग्निहोत्र [हवन सामग्री] (अधिश्रिते) रक्खे जाने पर (यस्य) जिस [मनुष्य] के (गृहान्) घरों में (आगच्छेत्) आजावे ॥१॥ वह [मनुष्य] (स्वयम्) आप ही (अभ्युदेत्य) सामने से उठकर (एनम्) इस [अतिथि] से (ब्रूयात्) कहे—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सत्यव्रतधारी] (अति सृज) आज्ञा दे, (होष्यामि इति) मैं हवन करूंगा ॥२॥

भावार्थः—यदि यज्ञ सामग्री उपस्थित और यज्ञ आरम्भ होने पर विद्वान् ब्रह्मवादी अतिथि आजावे, गृहस्थ आदरपूर्वक उस महामान्य की सम्मति लेकर यज्ञ करे ॥१, २॥

स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ॥३॥

भाषार्थः—(सः) वह [अतिथि] (च) यदि (अतिसृजेत्) आज्ञा देवे, (जुहुयात्) वह [गृहस्थ] हवन करे, (च) यदि वह (न अतिसृजेत्) न आज्ञा देवे, (न जुहुयात्) वह [गृहस्थ] न हवन करे ॥३॥

भावार्थः— विचारवान् अतिथि की आज्ञानुसार अधिकारी गृहस्थ यज्ञ करे और अनधिकारी न करे ॥३॥

स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥४॥

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥५॥

न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥६॥

पर्यस्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥७॥

भाषार्थः—(यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विदुषा) जानते हुए (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] करके (अतिसृष्टः) आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है, (सः) वह [गृहस्थ] ॥४॥ (पितृयाणम्) पितरों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पालनकर्ता बड़े लोगों] के चलने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्र) भले प्रकार (जानाति) जान लेता है, (देवयानम्) और देवताओं [विद्वानों] के चलने योग्य [मार्ग] को (प्र) भले प्रकार [जान लेता है] ॥५॥ वह (देवेषु) विद्वानों के बीच (आ) थोड़ा भी (न वृश्चते) दोषी नहीं होता है, [तब] (अस्य) उस [गृहस्थ] का (हुतम्) यज्ञ (भवति) होता है ॥६॥ (अस्मिन् लोके) इस संसार में (अस्य) उस [गृहस्थ] की (आयतनम्) मर्यादा (परि) सब प्रकार (शिष्यते) शेष रह जाती है, (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) व्यापक [परमात्मा] को (विदुषा) जानते हुए (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के (अतिसृष्टः) आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है ॥७॥

भावार्थः—गृहस्थ को योग्य है कि आदरपूर्वक विद्वान् मर्यादापुरुष सत्यव्रतधारी अतिथि की आज्ञा से उत्तम उत्तम कर्म करता रहे, जिससे उसकी मर्यादा और कीर्ति संसार में स्थिर होवे ॥४—७॥

अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥८॥
न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥९॥
आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥१०॥
नास्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा
व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥११॥

भाषार्थः—(अथ) और फिर (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विदुषा) जानते हुए (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] करके (अनतिसृष्टः) नहीं आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है ॥८॥ वह (न) न तो (पितृयाणम्) पितरों [पालनकर्ता बड़े लोगों] के चलने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (जानाति) जानता है, और (न) न (देवयानम्) देवताओं [विद्वानों] के चलने योग्य [मार्ग] को [जानता है] ॥९॥ वह (देवेषु) विद्वानों के बीच (आ) सर्वथा (वृश्चते) दोषी होता है, और (अस्य) उस [गृहस्थ] का (अहुतम्) कुयज्ञ (भवति) हो जाता है ॥१०॥ (अस्मिन् लोके) इस संसार में (अस्य) उस (गृहस्थ) की (आयतनम्) मर्यादा (न शिष्यते) शेष नहीं रहती है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विदुषा) जानते हुए (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] करके (अनतिसृष्टः) नहीं आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है ॥११॥

भावार्थः—जो अयोग्य गृहस्थ नीतिज्ञ वेदवेत्ता अतिथि की आज्ञा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विना मनमाना काम करने लगता है, वह अनधिकारी होने से शुभ कार्य सिद्ध नहीं कर सकता और न लोग उसकी कुमर्यादा को मानते हैं ॥८—११

सूक्तम् ॥१३॥

१—१४ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १, ३, ५, ७ आर्च्युष्णिक्, २, ४, ८ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ६ आसुरी गायत्री, ९ निचृदार्ची गायत्री, १० भुरिगार्ची गायत्री, ११ प्राजापत्या पङ्क्तिः, १२ आसुरी जगती, १३ विराडार्षी पङ्क्तिः, १४ साम्नी पङ्क्तिः ॥

अतिथ्यनतिथ्योर्विषयोपदेशः—अतिथि और अनतिथि के विषय का उपदेश ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥१॥

ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥२॥

भाषार्थः—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (एकाम् रात्रीम्) एक रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) वसता है ॥१॥ (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उन समाजों को (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से वह [गृहस्थ] (अव रुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् गृहस्थ पुरुष आप्त सदाचारी अतिथि को एक दिन ठहरा कर उससे उपकारी भूमिविद्या ग्रहण करके लोगों में प्रतिष्ठा पावे ॥१, २॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥३॥

ये ऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥४॥

भाषार्थः—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (द्वितीयां रात्रिम्) दूसरी रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) वसता है ॥३॥ (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से वह [गृहस्थ] (अव रुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥४॥

भावार्थः—गृहस्थ यथावत् सत्कार से अतिथि को दूसरे दिन ठहराकर उससे अन्तरिक्षविद्या प्राप्त करे ॥३, ४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥५॥
ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥६॥

भाषार्थः—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (तृतीयाम्) तीसरी (रात्रिम्) रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) वसता है ॥५॥ (दिवि) सूर्य लोक में (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से वह [गृहस्थ (अव रुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥६॥

भावार्थः—गृहस्थ महामान्य अतिथि से तीसरी रात्रि ठहरा कर सूर्य-मण्डल का ज्ञान अर्थात् उपकारी ज्योतिष विद्या को प्राप्त करे ॥५, ६॥

तद् यस्यैवं विद्वान व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥७।
ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥८॥

भाषार्थः—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (चतुर्थी) चौथी (रात्रीम्) रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) वसता है ॥७॥ (पुण्यानाम्) पवित्र जनों के (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से वह [गृहस्थ] (अव रुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य सुअवसर को ग्रहण करके अतिथि विद्वान् से उत्तम मनुष्यों के सभ्यता आदि गुण ग्रहण करे ॥७, ८॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥९॥
य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥१०॥

भाषार्थः—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (अपरिमिताः) असंख्य (रात्रीः) रात्रियों (यस्य) जिस के (गृहे) घर में (वसति) वसता है ॥९॥ (ये) जो (एव) निश्चय करके (अपरिमिताः) असंख्य (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से (अव रुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जब मनुष्य को बड़े विद्वान् अतिथि से बहुत दिनों सत्संग करने का अवसर मिले, तो वह उससे ब्रह्मविद्या, राज्यविद्या आदि अनेक शुभविद्यायें प्राप्त करके उन्नति करे ॥९, १०॥

अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥११॥
कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत् ॥१२॥

भाषार्थः—(अथ) और फिर (अव्रात्यः) अव्रात्य [कुव्रतधारी] (व्रात्यब्रुवः) अपने को व्रात्य [सत्यव्रत धारी] बताता हुआ, (नामबिभ्रती) केवल नाम धारण करता हुआ (अतिथिः) अतिथि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहान्) घरों में (आगच्छेत्) आजावे ॥११॥ वह [गृहस्थ] (एनम्) उस [झूठे व्रात्य] को (कर्षेत्) तिरस्कार करे, (न) अब (च) निश्चय करके (एनम्) उस [मिथ्याचारी] को (कर्षेत्) तिरस्कार करे ॥१२॥

भावार्थः—यदि कोई छली कपटी मिथ्यावादी मनुष्य अपने को सत्यव्रतधारी अतिथि बताकर आजावे, गृहस्थ उस पाखण्डी धूर्त को अवश्य निरादर करके निकाल देवे, और अगले दो मन्त्रों के अनुसार वर्ताव करे ॥११, १२॥

अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां
देवतां परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् ॥१३॥
तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद ॥१४॥

भाषार्थः—(अस्यै) उस (देवतायै) देवता [विद्वान्] को (उदकम्) जल (याचामि) समर्पण करता हूं, (इमाम्) उस (देवताम्) देवता [विद्वान्] को (वासये) ठहराता हूं, (इमाम् इमाम्) उस ही (देवताम्) देवता [विद्वान्] को (परि वेवेष्मि) भोजन परोसता हूँ—(इति) इस प्रकार से (एनम्) उस [विद्वान्] की (परि वेविष्यात्) [भोजन आदि से] सेवा करे ॥१३॥ (तस्याम् एव) उसी ही (देवतायाम्) देवता [विद्वान्] में (अस्य) उस [गृहस्थ] का (तत्) वह (हुतम्) दान (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१४॥

भावार्थः—गृहस्थ को योग्य है कि पूर्वोक्त प्रकार से छली कपटी झूठे वेषधारी को दण्ड देवे और जो सत्यव्रतधारी ब्रह्मज्ञानी अतिथि हो, उसका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथावत् आदर मान करे और सब प्रकार जल, अन्न, स्थान आदि से उसकी सेवा करे ॥१३, १४॥

सूक्तम् ॥१४॥

१—२४ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १, १३ आर्ष्युष्णिक्, २, ४, २०, २२, २४ आसुर्युष्णिक्, ३, ९, १५ आर्ची बृहती, ५, २३ भुरिगार्ष्युष्णिक्, ६ आसुरी गायत्री, ७ ब्राह्मी गायत्री, ८, १० आसुर्यनुष्टुप्, ११, १९ भुरिगार्षी गायत्री, १२ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १४, १६, १८ प्राजापत्यानुष्टुप्, १७ आर्ची पङ्क्ति,: २१ निचृदार्ची बृहती ॥

अतिथेरुपकारोपदेशः—अतिथि के उपकार का उपदेश ॥

स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्यच-
लन्मनोऽन्नादं कृत्वा ॥१॥
मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (प्राचीम्) पूर्व वा सामने वाली (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (मारुतम्) [शत्रुओं के मारने वाले] शूरों का (शर्धः) बल (भूत्वा) होकर और (मनः) मन को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥१॥ (अन्नादेन) जीवनरक्षक (मनसा) मन के साथ वह [अतिथि] (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥२॥

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी विद्वान् अतिथि अपने लगातार सदुपदेशों सत्कर्मों और सत्पराक्रमों से लोगों को बलवान् करके संसार की रक्षा करता है ॥१, २॥

स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्यचलद्
बलमन्नादं कृत्वा ॥३॥
बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥४॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (दक्षिणाम्) दक्षिण वा दाहिनी (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (भूत्वा) होकर और (बलम्) बल [सामर्थ्य] को (अन्नादम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥३॥ (अन्नादेन) जीवन रक्षक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बलेन) बल से वह [अतिथि] (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥४॥

भावार्थः—मन्त्र १, २ के समान है ॥३, ४॥

स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा भूत्वानुव्यचलदपोऽन्नादीः कृत्वा ॥५॥
अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥६॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (प्रतीचीम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (भूत्वा) होकर और (अपः) [कर्मों में व्यापक रहने वाली] इन्द्रियों को (अन्नादीः) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥५॥ (अन्नादीभिः) जीवन रक्षक (अद्भिः) इन्द्रियों के साथ वह [अतिथि] (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥६॥

भावार्थः—मन्त्र १, २ के समान ॥५, ६॥

स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत् सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥७॥
आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥८॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (उदीचीम्) उत्तर वा बायीं (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (सोमः) पुरुषार्थी (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (भूत्वा) होकर (सप्तर्षिभिः) [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] सात गोलकों के साथ (हुते) हवन में (आहुतिम्) आहुति को [दानक्रिया अर्थात् परोपकार में इन्द्रियों को यज्ञ में आहुति सदृश] (अन्नादीम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥७॥ वह [अतिथि] (अन्नाद्या) जीवनरक्षक (आहुत्या) आहुति के साथ (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥८॥

भावार्थः—म० १, २ के समान ॥७, ८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद्
विराजमन्नादीं कृत्वा ॥९॥
विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥१०॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (ध्रुवाम्) नीचे वाली (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (विष्णुः) विष्णु [कामों में व्यापक] (भूत्वा) होकर और (विराजम्) विराट् [विविध प्रकाशमान राज्यश्री] को (अन्नादीम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥९॥ वह [अतिथि] (अन्नाद्या) जीवन रक्षक (विराजा) विराट् [विविध प्रकाशमान राज्यश्री] से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१०॥

भावार्थः—म० १, २ के समान ॥९, १०॥

स यत् पशूननु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानुव्यचलदोष-
धीरन्नादीः कृत्वा ॥११॥
ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥१२॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (पशून् अनु) जीव जन्तुओं की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (रुद्रः) रुद्र [शत्रुनाशक] (भूत्वा) होकर और (ओषधीः) ओषधियों [जो चावल आदि] को (अन्नादीः) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥११॥ वह [अतिथि] (अन्नादीभिः) जीवनरक्षक (ओषधीभिः) ओषधियों से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१२॥

भावार्थः—मन्त्र १, २ के समान ॥११, १२॥

स यत् पितॄननु व्यचलद् यमो राजा भूत्वानुव्यचलत्
स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥१३॥
स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१४॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (पितॄन् अनु) पितरों [पालन कर्ता बड़े लोगों की ओर] (व्यचलत्) विचरा, वह (यमः) न्यायी (राजा) राजा (भूत्वा) होकर और (स्वधाकारम्) अपने धारण सामर्थ्य को (अन्नादम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥१३॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन रक्षक (स्वधाकारेण) अपने धारण सामर्थ्य से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१४॥

भावार्थः—मन्त्र १, २ के समान ॥१३, १४॥

स यन्मनुष्या३ँ नु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यचलत्
स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ॥१५॥
स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१६॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (मनुष्यान् अनु) मनुष्यों [मननशील पुरुषों] की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी] (भूत्वा) होकर और (स्वाहाकारम्) वेदविद्या प्रचार को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥१५॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन रक्षक (स्वाहाकारेण) वेदविद्या प्रचार से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१६॥

भावार्थः—मन्त्र १, २ के समान ॥१५, १६॥

स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्यचलद्
वषट्कारमन्नादं कृत्वा ॥१७॥
वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१८॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (ऊर्ध्वाम्) ऊंची (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा वह (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का रक्षक] (भूत्वा) होकर (वषट्कारम्) दान व्यवहार को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥१७॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन रक्षक (वषट्कारेण) दानव्यवहार से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१८॥

भावार्थः—मन्त्र १, २ के समान ॥१७, १८॥

स यद् देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन्मन्यु-
मन्नादं कृत्वा ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२०॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (देवान् अनु) विद्वानों की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (ईशानः) समर्थ (भूत्वा) होकर और (मन्युम्) ज्ञान को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥१९॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन रक्षक (मन्युना) ज्ञान से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥२०॥

भावार्थः—मन्त्र १, २ के समान ॥१९, २०॥

स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुव्यचलत्

प्राणमन्नादं कृत्वा ॥२१॥

प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२२॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (प्रजाः अनु) प्रजाओं [प्राणियों] की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (प्रजापतिः) प्रजापति [प्राणियों का रक्षक] (भूत्वा) होकर और (प्राणम्) प्राण [आत्मबल] को (अन्नादम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥२१॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवनरक्षक (प्राणेन) प्राण से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥२२॥

भावार्थः—मन्त्र १, २ के समान ॥२१, २२॥

स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् परमेष्ठी भूत्वानुव्यचलद्

ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥२३॥

ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२४॥

भाषार्थः—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (सर्वान्) सब (अन्तर्देशान् अनु) बीच वाले देशों की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (परमेष्ठी) परमेष्ठी [सबसे ऊंचे पद वाला] (भूत्वा) होकर और (ब्रह्म) परब्रह्म [जगदीश्वर] को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥२३॥ वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन रक्षक (ब्रह्मणा) परब्रह्म जगदीश्वर के साथ (अन्नम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥२४॥

भावार्थः—मन्त्र १, २ के समान ॥२३, २४॥

सूक्तम् ॥१५॥

१—९ ॥ व्रात्यो देवता ॥ तस्य व्रात्यस्य १, ३–६ दैवी पङ्क्तिः, २ आसुरी बृहती, योऽस्येति ३ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, योऽस्येति ४, ७, ८ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्, योऽस्येति ५, ६, साम्नी बृहतीः योऽस्येति ९ आर्च्यनुष्टुप् ॥

अतिथेः सामर्थ्योपदेशः—अतिथि के सामर्थ्य का उपदेश ॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य ॥१॥

स॒प्त प्रा॒णाः स॒प्ता॒पा॒नाः स॒प्त व्या॒नाः ॥२॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के ॥१॥ (सप्त) सात (प्राणाः) प्राण [शरीर में भीतर जाने वाले जीवन वर्धक श्वास], (सप्त) सात (अपानाः) अपान [शरीर से बाहिर निकलने वाले दोषनाशक प्रश्वास] और (सप्त) सात (व्यानाः) व्यान [सब शरीर में फैले हुए वायु] हैं ॥२॥

भावार्थः परमेश्वर ने प्राणियों के शरीर में मस्तक के भीतर दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख सात छिद्र बनाये हैं, इन को ही [सप्त ऋषयः, सप्त सिन्धवः, सप्त प्राणाः आदि] कहते हैं। विद्वान् योगी अतिथि इनकी विविध वृत्तियों को वश में करने से तत्त्वज्ञानी होकर सर्वोपकारी होता है। इन ही सात शीर्षण्य छिद्रों के सम्बन्ध से इस सूक्त तथा १६ और १७ में अतिथि के सात प्राण, सात अपान और सात व्यान का वर्णन है ॥१, २॥

अथर्ववेद १०।२।६ का बचन है—(कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्। येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो-यन्ति यामम्) कर्ता प्रजापति ने [प्राणी के] मस्तक में सात गोलक खोदे, यह दोनों कान, दो नथने, दोनों आंखें और एक मुख। जिनके विजय की महिमा में चौपाये और दोपाये जीव अनेक प्रकार से सन्मार्ग पर चलते हैं॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो॑ऽस्य प्रथ॒मः प्रा॒ण ऊ॒र्ध्वो ना॒माऽयं सो अ॒ग्निः ॥३॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (प्रथमः) पहिला (प्राणः) प्राण [श्वास] (ऊर्ध्वः) ऊर्ध्व [ऊंचा] (नाम) नाम है, (सः) सो (अयम् अग्निः) यह अग्नि है [अर्थात् वह शारीरिक, पार्थिव, समुद्रीय, गुप्त प्रकट बिजुली आदि अग्नि विद्याओं का प्रकाशक होता है] ।।३।।

भावार्थः—मन्त्र ६ पर देखो ।।३।।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ।।४।।

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (द्वितीयः) दूसरा (प्राणः) प्राण (प्रौढः) प्रौढ [प्रवृद्ध] (नाम) नाम है, (सः) सो (असौ) यह (आदित्यः) चमकने वाला सूर्य है [अर्थात् वह सूर्यविद्या का प्रकाशक होता है—कि सूर्य का पृथिवी आदि लोकों और उनके पदार्थों से और उन सब का सूर्य लोक से क्या सम्बन्ध है यह विचारता है] ।।४।।

भावार्थः—मन्त्र ६ पर देखो ।।४।।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणो३ऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ।।५।।

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (तृतीयः) तीसरा (प्राणः) प्राण [श्वास] (अभ्यूढ) अभ्यूढ [सामने से प्राप्त] (नाम) नाम है, (सः) सो (असौ चन्द्रमाः) यह चन्द्रमा है [अर्थात् वह बताता है कि उपग्रह चन्द्रमा, अपने ग्रह पृथिवी से किस सम्बन्ध से क्या प्रभाव करता है और इसी प्रकार अन्य चन्द्रमाओं का अन्य ग्रहों से क्या सम्बन्ध है] ।।५।।

भावार्थः– मन्त्र ६ पर देखो ।।५।।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ।।६।।

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (चतुर्थः) चौथा (प्राणः) प्राण [श्वास] (विभूः) विभू [व्यापक] (नाम) नाम है, (सः) सो (अयं पवमानः) यह पवमान [शोधक वायु] है [अर्थात् वह बताता है कि वायु क्या है और उस का प्रभाव सब जीवों, सब पृथिवी, सूर्य आदि लोकों पर क्या होता है] ।।६।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मन्त्र ९ पर देखो ॥६॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य पञ्च॒मः प्रा॒णो योनि॒र्नाम॒ ता इ॒मा आपः॑ ॥७॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (पञ्चमः) पांचवां (प्राणः) प्राण [श्वास] (योनिः) योनि [कारण] (नाम) नाम है, (ताः) सो (इमाः आपः) ये जल हैं [अर्थात् वह सिखाता हैं कि जल क्या है और वह भूमण्डल, मेघमण्डल, सूर्यमण्डल आदि लोकों से क्या सम्वन्ध रखता है] ॥७॥

भावार्थः—मन्त्र ९ पर देखो ॥७॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य ष॒ष्ठः प्रा॒णः प्रि॒यो नाम॒ त इ॒मे प॒शवः॑ ॥८॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (षष्ठः) छठा (प्राणः) प्राण [श्वास] (प्रियः) प्रिय [प्रीतिकारक] (नाम) नाम है, (ते) सो (इमे पशवः) ये पशु हैं [अर्थात् वह जताता है कि गौ अश्व आदि जीव पृथिवी लोक और दूसरे लोकों में कैसे उपकारी होते हैं] ॥८॥

भावार्थः—मन्त्र ९ पर देखो ॥८॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य स॒प्तमः प्रा॒णोऽप॑रिमि॒तो
नाम॒ ता इ॒माः प्र॒जाः ॥९॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) उस [व्रात्य] का (सप्तमः) सातवां (प्राणः) प्राण [श्वास] (अपरिमितः) अपरिमित [असीम] (नाम) नाम है, (ताः) सो (इमाः प्रजाः) यह प्रजायें हैं [अर्थात् वह समझाता है कि परमात्मा की सृष्टि में भूलोक, चन्द्रलोक सूर्यलोक आदि के मनुष्य, जीव जन्तुओं का सम्बन्ध आपस में और दूसरे लोक वालों से क्या रहता है] ॥९॥

भावार्थः विद्वान् मस्तक के सात छिद्रों द्वारा [मन्त्र १, २ देखो] प्रथम श्वास में विद्या, दूसरे में सूर्यविद्या, तीसरे में चन्द्रविद्या, चौथे में वायुविद्या, पाँचवें में जलविद्या, छठं में पशुविद्या, और सातवें में प्रजाओं के परस्पर संघटन की विद्या का प्रकाश करता है अर्थात् वह बहुत शीघ्र मन की वृत्तियों को वश में करके प्रत्येक इन्द्रिय से प्रत्येक श्वास में संसार का उपकार करता है ॥३—९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥१६॥

१—७ ॥ व्रात्यो देवता ॥ तस्य व्रात्यस्य १—७ दैवी पङ्क्तिः, योऽस्येति १, ३ साम्न्युष्णिक्, योऽस्येति २, ४, ५ प्राजापत्योष्णिक्, योऽस्येति ६ याजुषी त्रिष्टुप्, योऽस्येति ७ आसुरी गायत्री ॥

अतिथेः सामर्थ्योपदेशः—अतिथि के सामर्थ्य का उपदेश ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी ॥१॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (प्रथमः) पहिला (अपानः) अपान [प्रश्वास अर्थात् बाहिर निकलने वाला दोषनाशक वायु] है, (सा) वह (पौर्णमासी) पौर्णमासी है [अर्थात् पूर्णमासेष्टि है जिसमें वह विचारता है कि उस दिन चन्द्रमा पूरा क्यों दीखता है, पृथिवी, समुद्र आदि पर उसका क्या प्रभाव होता है, इस प्रकार का यज्ञ वह ज्ञानी पुरुष अपने इन्द्रिय दमन से सिद्ध करता है] ॥१॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका ॥२॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (द्वितीयः) दूसरा (अपानः) अपान [प्रश्वास] है, (सा) वह (अष्टका) अष्टका है [अर्थात् वह अष्टमी आदि तिथि का यज्ञ है जिसमें विद्वान् पितर लोग विचारते हैं कि ज्योतिष शास्त्र की मर्यादा से इन तिथियों में सूर्य और चन्द्र आदि का क्या प्रभाव पड़ता है] ॥२॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ॥३॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (तृतीयः) तीसरा (अपानः) अपान [प्रश्वास] है, (सा) वह (अमावास्या) अमावस्या है [वह दर्शेष्टि है जिसमें विचारा जाता है कि अमावस के सूर्य और चन्द्रमा एक राशि में आकर क्या प्रभाव उत्पन्न करते हैं] ॥३॥

पूर्णमासेष्टि और दर्शेष्टि के विषय में देखो—मनु० अ० ४ श्लो० २५ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ॥४॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (चतुर्थः) चौथा (अपानः) अपान [प्रश्वास]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, (सा श्रद्धा) वह श्रद्धा है [वह ज्ञानी पुरुष जितेन्द्रियता से श्रद्धा प्राप्त करता है] ॥४॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा ॥५॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (पञ्चमः) पाँचवां (अपानः) अपान [प्रश्वास] है, (सा दीक्षा) वह दीक्षा है [वह नियम और व्रतपालन की शिक्षा करता है] ॥५॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञः ॥६॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (षष्ठः) छठा (अपानः) अपान [प्रश्वास] है, (स यज्ञः) वह यज्ञ है [मानो वह परमेश्वर और विद्वानों का सत्कार, परस्पर संयोग और विद्या आदि दान है] ॥६॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणाः ॥७॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (सप्तमः) सातवां (अपानः) अपान [प्रश्वास] है, (ताः) वे (इमाः) ये (दक्षिणाः) दक्षिणायें है [मानो वह यज्ञ समाप्ति पर विद्वानों के सत्कार द्रव्य हैं] ॥७॥

भावार्थः जैसे सामान्य मनुष्य ज्ञान प्राप्ति के लिये पौर्णमासी आदि यज्ञ करके श्रद्धावान् होते हैं, वैसे ही विद्वान् अतिथि संन्यासी उस कार्मिक यज्ञ आदि के स्थान पर अपनी जितेन्द्रियता से मानसिक यज्ञ करके यज्ञ-फल प्राप्त करते हैं, अर्थात् ब्रह्मविद्या ज्योतिषविद्या आदि अनेक विद्याओं का प्रचार करके संसार में प्रतिष्ठा पाते हैं ॥१—७॥

मनु महाराज कहते हैं—अ० ४ श्लो० २३ [वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा । वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम्] ॥

कोई कोई विद्वान् वाणी और प्राण [के संयम] में अक्षय यज्ञसिद्धि देखते हुए वाणी में प्राण का और प्राण में वाणी का हवन करते हैं [अर्थात् वाणी और प्राण का संयम करते हैं]॥

सूक्तम् ॥१७॥

१—१० ॥ व्रात्यो देवता ॥ तस्य व्रात्यस्य १—१० दैवी पङ्क्तिः, योऽस्येति १, ५ प्राजापत्योष्णिक्, योऽस्येति २, ७ आसुर्यनुष्टुप्, योऽस्येति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ याजुषी पङ्क्तिः, योऽस्येति ४ साम्न्युष्णिक्, योऽस्येति ६ याजुषी, त्रिष्टुप् । समानमिति ८ आर्ची पङ्क्तिः, यदादित्यमिति ९ साम्नी त्रिष्टुप्, एकमिति १० साम्न्यनुष्टुप् ॥

व्रात्यसामर्थ्योपदेशः—व्रात्य के सामर्थ्य का उपदेश ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥ १॥

भावार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (प्रथमः) पहिला (व्यानः) व्यान [शरीर में फैला वायु] है, (सा) सो (इयम् भूमिः) यह भूमि है [अर्थात् वह भूगर्भविद्या, राज्यपालन आदि विद्या का उपदेश करता है] ॥१॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥ २॥

भावार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (द्वितीयः) दूसरा (व्यानः) व्यान [शरीर में फैला हुआ वायु] है, (तत्) वह (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक है [अर्थात् वह वायुमण्डल, मेघमण्डल आदि का ज्ञान देता है] ॥२॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥३॥

भावार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (तृतीयः] तीसरा (व्यानः) व्यान [शरीर में फैला हुआ वायु] है, (सा) वह (द्यौः) सूर्य वा आकाश है [अर्थात् वह सूर्य के ताप आकर्षण आदि और आकाश के फैलाव आदि की विद्या को जताता है] ॥३॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥४॥

भावार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (चतुर्थः) चौथा (व्यानः) व्यान [सब शरीर में फैला हुआ वायु] है, (तानि) वे (नक्षत्राणि) चलने वाले तारागण हैं [अर्थात् वह तारागणों के परस्पर आकर्षण रखने, अपने अपने मार्ग पर चलने और उछलने डूबने आदि का ज्ञान बताता है] ॥४॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(तस्य उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (पञ्चमः) पांचवां (व्यानः) व्यान [सब शरीर में फैला हुआ वायु] है, (ते) वे (ऋतवः) ऋतुयें हैं [अर्थात् वह वसन्त आदि ऋतुओं के क्रम और कारण आदि का उपदेश करता है] ॥५॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ॥६॥

भाषार्थः (तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (षष्ठः) छठा (व्यानः) व्यान [सब शरीर में फैला हुआ वायु] है, (ते) वे (आर्तवाः) ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थ हैं [अर्थात् वह फूल फल आदि की उत्पत्ति और उपकार का ज्ञान देता है] ॥६॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ॥७॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (सप्तमः) सातवां (व्यानः) व्यान [सब शरीर में फैला हुआ वायु] है, (सः) वह (संवत्सरः) संवत्सर है [अर्थात् वर्ष में ऋतु महीने आदि कैसे बनते हैं और सब मनुष्य आदि प्राणी कैसे उनका उपभोग करते हैं, इस का वह ज्ञान कराता है] ॥७॥

भावार्थः—सत्यव्रतधारी महात्मा अतिथि संन्यासी अपने प्रत्येक व्यान वायु की चेष्टा में संसार का उपकार करता है, जैसे वह प्रथम व्यान में भूमि विद्या, दूसरे में अन्तरिक्षविद्या, तीसरे में सूर्यविद्या, वा आकाश-विद्या, चौथे में नक्षत्रविद्या, पांचवें में वसन्त आदि ऋतुविद्या, छठे में ऋतुओं में उत्पन्न पुष्प फल आदि पदार्थविद्या और सातवें में संवत्सर अर्थात् काल की उपभोग विद्या का उपदेश करता है ॥१—७॥

तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा एतदृतवोऽनु परियन्ति व्रात्यं च ॥८॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के—(समानम्) एक से अर्थात् धार्मिक (अर्थम्) अर्थ [विचार] को (देवाः) विद्वान् लोग (परि) सब ओर से (यन्ति) प्राप्त करते हैं, (च) और (व्रात्यम्) उस व्रात्य [सत्यव्रत-धारी पुरुष] के (वै) निश्चय करके (एतत्) इस प्रकार से (अनुपरियन्ति) पीछे घिर कर चलते हैं, [जैसे] (ऋतवः) ऋतुयें (संवत्सरम्) वर्षकाल के [पीछे चलते हैं] ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः -जो सत्यव्रतधारी परोपकारी संन्यासी हो, सब विद्वान् लोग उसी के न्याययुक्त वेदानुकूल मार्ग पर चलें और सब मिलकर उस से प्रीति करें, जैसे सब ऋतुयें और महीने आदि वर्ष में मिले रहते हैं ॥८॥

तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत्पौर्णमासीं च ॥९॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के—(आदित्यम्) प्रकाशमान गुण में (यत्) जब (अभिसंविशन्ति) वे [विद्वान्—मन्त्र ८] सब ओर से यथावत् प्रवेश करते हैं, (तत् एव) तब ही (अमावास्याम्) साथ साथ बसने की क्रिया में (च च) और (पौर्णमासीम्) पूरे नापने [निश्चय करने] की क्रिया में [वे प्रवेश करते हैं] ॥९॥

भावार्थः- विद्वान् लोग आप्त संन्यासी अतिथि के सत्संग से परस्पर उपकार और पदार्थों की परीक्षा आदि विद्यायें ग्रहण करें ॥९॥

तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव ॥१०॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] की—(आहुतिः) आहुति [दानक्रिया] (एव) ही (एषाम्) इन [विद्वानों] का (एकम्) केवल (तत्) वह [प्रसिद्ध] (अमृतत्वम्) अमरपन [जीवन अर्थात् पुरुषार्थ] है—(इति) यह निश्चित है ॥१०॥

भावार्थः—जब विद्वान् संन्यासी अपने आत्मा को संसार की भलाई में लगा देता है, विद्वान् लोग उसकी मर्यादा को मानकर पुरुषार्थ करते और क्लेशों को त्याग कर आनन्द भोगते हैं ॥१०॥

सूक्तम् ॥१८॥

१—५ ॥ व्रात्यो देवता ॥ १ दैवी पङ्क्तिः, २, ३ आर्ची बृहती, ४ आर्च्यनुष्टुप्, ५ साम्न्युष्णिक् ॥

व्रात्यसामर्थ्योपदेशः—व्रात्य के सामर्थ्य का उपदेश ॥

तस्य व्रात्यस्य ॥१॥

यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] की ॥१॥ (यत्) जो (अस्य) इस [व्रात्य] की (दक्षिणम्) दाहिनी (अक्षि) आंख है, (सः) सो (असौ) वह (आदित्यः) चमकता हुआ सूर्य है, और (यत्) जो (अस्य) इस की (सव्यम्) बायीं (अक्षि) आंख है, (सः) सो (असौ) वह (चन्द्रमाः) आनन्दप्रद चन्द्रमा है ॥२॥

भावार्थः आप्त संन्यासी पूर्ण दृष्टि से सब मर्यादाओं को जांचकर अपनी विद्या से सूर्य चन्द्रमा के समान उपकार करता है ॥१, २॥

योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (दक्षिणः) दाहिना (कर्णः) कान है, (सः) सो (अयम्) यह (अग्निः) व्यापक अग्नि है, (यः) जो (अस्य) इसका (सव्यः) बायां (कर्णः) कान है, (सः) सो (अयम्) यह (पवमानः) शोधक वायु है ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् अतिथि अपने स्वस्थ सचेत कानों द्वारा विद्याओं का श्रवण करके अग्नि समान व्यापक और पवन के समान दोषनाशक होकर संसार में सुख बढ़ाता है ॥३॥

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ॥४॥

भाषार्थः—[इस व्रात्य के] (नासिके) दो नथने (अहोरात्रे) दिन रात्रि, (च) और (शीर्षकपाले) मस्तक के दोनों खोपड़ें (दितिः) दिति [खण्डित विकृति अर्थात् विनश्वर सृष्टि] (च) और (अदितिः) अदिति [अखण्डित प्रकृति अर्थात् नाशरहित जगत् सामग्री] हैं और [उसका] (शिरः) शिर (संवत्सरः) संवत्सर [कालज्ञान] है ॥४॥

भावार्थः—संन्यासी अपने नथने श्वास प्रश्वास के मार्गों को दिन रात्रि के समान बहुत बड़ा मान कर मस्तक के खोपड़ों में सृष्टि और प्रकृति के नियमों को और मस्तक के भीतर कालज्ञान प्राप्त करता है अर्थात् वह अपनी स्वस्थ सचेत इन्द्रियों द्वारा समस्त संसार के ज्ञान को ग्रहण करता है ॥४॥

अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] (अह्ना) दिन के साथ (प्रत्यङ्) सामने जाने वाला और (रात्र्या) रात्रि के साथ (प्राङ्) आगे को चलने वाला है, (व्रात्याय) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के लिये (नमः) नमस्कार [अर्थात् सत्कार होवे] ॥५॥

भावार्थः—जो विद्वान् अतिथि दिन रात्रि पुरुषार्थ से विघ्नों को हटा कर उन्नति करता और कराता है, सब गृहस्थ लोग उसका निरन्तर आदर सत्कार करें ॥५॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

इति पञ्चदशं काण्डम् समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ १ से ७६८

काण्ड ८ से १५ तक

भाग ९

पृष्ठ ७६९ से अन्त तक

काण्ड १६ से २० तक

भाग १०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❋ ओ३म् ❋

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

—:०❋:❋:०❋०❋०:—

षोडशं काण्डम् ॥

—:०❋:०:❋:०❋:०—

प्रथमोऽनुवाकः ॥

—: ❋ :—

सूक्तम् ॥१॥ [पर्यायसूक्तम्]

१—१३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, ३ साम्नी बृहती, २ १० याजुषी त्रिष्टुप्, ४ आसुरी गायत्री, ५, ८ साम्नी पङ्क्तिः, ६ साम्न्यनुष्टुप्, ७ आर्ची गायत्री, ९ आसुरी पङ्क्तिः, ११ साम्न्युष्णिक्, १२, १३ निचृदार्च्यनुष्टुप् ॥

दुःखनिवृत्त्युपदेशः—दुःख से छुटने का उपदेश ॥

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥१॥

भाषार्थः—(अपाम्) प्रजाओं का (वृषभः) बड़ा ईश्वर [परमात्मा] (अतिसृष्टः) विमुक्त [छुटा हुआ] है, [जैसे] (दिव्याः) व्यवहारों में वर्तमान (अग्नयः) अग्नियां [सूर्य, बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि] (अतिसृष्टाः) विमुक्त हैं ॥१॥

भावार्थः—वह परमात्मा सब सृष्टि में ऐसा स्वतन्त्र रम रहा है, जैसे सूर्य बिजुली अग्नि वायु आदि संसार में निरन्तर सर्वोपकारी हैं, सब मनुष्य उस जगदीश्वर की उपासना करें ॥१॥

रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥३॥
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥४॥

भाषार्थः—(रुजन्) तोड़ता हुआ, (परिरुजन्) सब ओर से तोड़ता हुआ, (मृणन्) मारता हुआ, (प्रमृणन्) कुचलता हुआ ॥२॥ (ओकः) सताने वाला, (मनोहा) मन का नाश करने वाला, (खनः) खोद डालने वाला, (निर्दाहः) जलन करने वाला, (आत्मदूषिः) आत्मा को दूषित करने वाला, और (तनूदूषिः) शरीर को दूषित करने वाला [जो रोग है] ॥३॥ (इदम्) अब (तम्) उस [रोग] को (अति सृजामि) मैं नाश करता हूं, (तम्) उस [रोग] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं कभी पुष्ट नहीं करूं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जिन रोगों वा दोषों से आत्मा और शरीर में विकार होवे, उनको ज्ञानपूर्वक हटावें और कभी न बढ़ने दें ॥२—४॥

तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

भाषार्थः—(तेन) उसी [पूर्वोक्त कारण] से (तम्) उस [अज्ञानी वैरी] को (अभ्यतिसृजामः) हम सर्वथा नाश करते हैं, (यः) जो [अज्ञानी] (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो अधर्मी लोग धर्मात्माओं से अपनी दुष्टता के कारण वैर करें, अथवा धर्मात्मा लोग जिन्हें उनके दुष्ट व्यवहार के कारण बुरा जानें, विद्वान् लोग उन दुराचारियों का प्रयत्नपूर्वक नाश करें ॥५॥

अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥६॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] वह [परमात्मा] (अपाम्) प्रजाओं का (अग्रम्) सहारा (असि=अस्ति) है-(वः) तुमको (समुद्रम्) प्राणियों के यथावत् उदय करने वाले परमात्मा की ओर (अभ्यवसृजामि) मैं छोड़ता हूं ॥६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग उपदेश करें कि मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर अपने कर्तव्य में कुशल होवें ॥६॥

यो३प्स्व१ग्निरति तं सृजामि ओकं खनिं तनूदूषिम् ॥७॥

भाषार्थः—(यः) जो [दोष] (अप्सु) प्राणियों के भीतर (अग्निः) अग्नि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[समान सन्तापक] है, (तम्) उस (श्रोकम्) हिंसक, (खनिम्) दुःखदायक और (तनूदूषिम्) शरीरदूषक [रोग] को (अति सृजामि) मैं नाश करता हूं ॥७॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष सन्तापकारी दोषों का विचारपूर्वक नाश करे ॥७॥

यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥८॥

इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥९॥

भाषार्थः—(आपः) हे सब विद्याओं में व्यापक बुद्धिमानो ! (यः) जिस (अग्निः) व्यापक परमात्मा ने (वः) तुम में (आविवेश) प्रवेश किया है, (सः) वह (एषः) यह [परमात्मा] है, और (यत्) जो [शत्रुओं के लिये] (वः) तुम्हारा (घोरम्) भयानक रूप है, (तत्) वह (एतत्=एतस्मात्) इसी [परमात्मा] से है ॥८॥ वह [परमात्मा] (वः) तुम को (इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष के [योग्य] (इन्द्रियेण) बड़े ऐश्वर्य से (अभि षिञ्चेत्) अभिषेक युक्त [राज्य का अधिकारी] करे ॥९॥

भावार्थः—विद्वान् लोग उस जगदीश्वर को सर्वव्यापक और सर्वबल-दायक समझ कर बड़े महात्माओं के समान अधिकारी बन कर संसार में बड़े बड़े काम करें ॥८, ९॥

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥१०॥

प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुःष्वप्न्यं वहन्तु ॥११॥

भाषार्थः—(अरिप्राः) निर्दोष (आपः) विद्वान् लोग (रिप्रम्) पाप को (अस्मत्) हम से (अप) दूर [पहुंचावें] ॥१०॥ (अस्मत्) हम से (एनः) पाप को (प्र वहन्तु) बाहिर पहुंचावें और (दुःस्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न में उत्पन्न कुविचार को (प्र वहन्तु) बाहिर पहुंचावें ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग और शिक्षा से जागते सोते कभी पाप कर्म का विचार न करें ॥१०, ११॥

यह दोनों मन्त्र कुछ भेद से आ चुके हैं—अ० १० । ५ । २४ ॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥१२॥

भाषार्थः—(आपः) हे विद्वानो ! (शिवेन) सुखप्रद (चक्षुषा) नेत्र से (मा) मुझे (पश्यत) तुम देखो, (शिवया) अपने सुखप्रद (तन्वा) शरीर से (मे) मेरे (त्वचम्) शरीर को (उप स्पृशत) तुम सुख से छूओ ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विद्वान् लोग कृपादृष्टि से मनुष्यों को देख कर अपने समान स्वस्थ और उपकारी बनावें ॥१२॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० १ । ३३ । ४ ॥

शि॒वान॒ग्नीन॑प्सु॒षदो॑ हवामहे॒ मयि॑ क्ष॒त्रं वर्च॒ आ ध॑त्त दे॒वीः ॥१३॥

भाषार्थः—(अप्सुसदः) प्रजाओं में बैठने वाले (शिवान्) आनन्दप्रद (अग्नीन्) विद्वानों को (हवामहे) हम बुलाते हैं, (देवीः) हे दिव्य गुण वाली प्रजाओ ! (मयि) मुझ में (क्षत्रम्) राज्य और (वर्चः) तेज (आ) आकर (धत्त) धारण करो ॥१३॥

भावार्थः—शूर पराक्रमी मनुष्य विद्वान् प्रजागणों की सम्मति से राज्य पद ग्रहण करके प्रतापी होवे ॥१३॥

सूक्तम् ॥२॥ [पर्यायसूक्तम्]

१—६ ॥ वाग्देवता १ आसुर्यनुष्टुप्, २, ३ आसुर्युष्णिक्, ४ साम्नी बृहती, ५ आर्च्यनुष्टुप्, ६ आर्ची गायत्री ॥

इन्द्रियाणां दाढर्योपदेशः—इन्द्रियों की दृढ़ता का उपदेश ॥

निर्दु॑रर्म॒ण्य॑ ऊ॒र्जा मधु॑मती॒ वाक् ॥१॥

भाषार्थः—(ऊर्जा) शक्ति के साथ (मधुमती) ज्ञानयुक्त (वाक्) वाणी (दुरर्मण्यः) दुर्गति से (निः) पृथक् [होवे] ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि वे समझ बूझ कर सदा सत्य वचन बोल कर दृढ़ प्रतिज्ञा वाले होवें, जिससे उनके जीवन में शक्ति बढ़े और कभी निन्दा न होवे ॥१॥

मधु॑मती स्थ॒ मधु॑मतीं॒ वाच॑मुदेयम् ॥२॥

भाषार्थः—[हे प्रजाओ !] तुम (मधुमतीः) ज्ञान वाली (स्थ) हो, (मधुमतीम्) ज्ञानयुक्त (वाचम्) वाणी (उदेयम्) मैं बोलूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से सुशिक्षित होकर सदा ज्ञानयुक्त बोलें ॥२॥

उप॑हूतो मे गो॒पा उप॑हूतो गोपी॒थः ॥३॥

भाषार्थः—(गोपाः) वाणी का रक्षक [आचार्य] (मे) मेरा (उपहूतः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदरसे बुलाया हुआ है और (गोपीथः) भूमि का रक्षक [राजा] (उपहूतः) आदर से बुलाया हुआ है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य आचार्य की शिक्षा और राजा की व्यवस्था से सुशिक्षित होकर स्वस्थ और प्रतिष्ठित रहें ॥३॥

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥४॥

भाषार्थः—[मेरे] (कर्णौ) दोनों कान (सुश्रुतौ) शीघ्र सुनने वाले, (कर्णौ) दोनों कान (भद्रश्रुतौ) मङ्गल सुनने वाले [होवें], (भद्रम्) मङ्गलमय (श्लोकम्) यश (श्रूयासम्) मैं सुना करूं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करके अभ्यास करें कि वे कान आदि इन्द्रियों को सचेत रख कर श्रेष्ठ कर्मों के करने में शीघ्रता करते रहें ॥४॥

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥५॥

भाषार्थः—(सुश्रुतिः) शीघ्र सुनना (च च) और (उपश्रुतिः) अङ्गीकार करना (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें, (सौपर्णम्) समस्त पूर्ति वाली (चक्षुः) दृष्टि और (अजस्रम्) अचूक (ज्योतिः) ज्योति [बनी रहे] ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से अपने श्रवण आदि इन्द्रियों को विकल न होने दें और ऐसा स्वस्थ रक्खें कि वे अपने विषयों को पूर्ण रीति से शीघ्र अङ्गीकार कर लें ॥५॥

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥६॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (ऋषीणाम्) इन्द्रियों का (प्रस्तरः) फैलाने वाला (असि) है, (दैवाय) दिव्य गुण वाले (प्रस्तराय) फैलाने वाले [तुझ] को (नमः) नमस्कार [सत्कार] (अस्तु) होवे ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य उस परमात्मा को सदा धन्यवाद दें कि उसने उनको वेद शास्त्र सुनने, विचारने और उपकार करने के लिये अमूल्य श्रवण आदि इन्द्रियां दी हैं ॥६॥

सूक्तम् ॥३॥ [पर्यायसूक्तम्]

१—६ ॥ आत्मा देवता ॥ १ आसुरी गायत्री, २ निचृदार्च्यनुष्टुप्, ३ आर्च्यनुष्टुप्, ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, ५ साम्न्युष्णिक्, ६ साम्नी त्रिष्टुप् ॥

आयुर्वृद्ध्यर्थमुपदेशः—आयु की वृद्धि के लिये उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥१॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (रयीणाम्) धनों का (मूर्धा) सिर और (समानानाम्) समान [तुल्य गुणी] पुरुषों का (मूर्धा) सिर (भूयासम्) हो जाऊं ॥१॥

भावार्थः मनुष्य उद्योग करें कि विद्याधन और सुवर्ण आदि धन से गुणी मनुष्यों को पाकर संसार में शरीर में मस्तक के समान मुखिया होवें ॥१॥

रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥२॥

भाषार्थः—(रुजः) अन्धकारनाशक गुण (च च) और (वेनः) कमनीय गुण (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें, (मूर्धा) मस्तक [मस्तक बल] (च च) और (विधर्मा) विविध प्रकार धारण करने वाला आत्मा [आत्मबल] (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों कभी न छोड़ें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य अज्ञान के नाश से अपने मस्तक बल अर्थात् विचार सामर्थ्य और आत्मबल को बढ़ाते रहें ॥२॥

उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥३॥

भाषार्थः—(उर्वः) शत्रुनाशक गुण [शूरपन] (च च) और (चमसः) भोजनपात्र [शरीर] (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें, (धर्ता) धारण करने वाला गुण (च च) और (धरुणः) अवस्थान [दृढ़ रहने का गुण] (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें ॥३॥

भावार्थः मनुष्य सङ्ग्रामरूप संसार में शूर रहकर शरीर रक्षा करते हुए शुभगुणों को धारण करे और स्थिर रक्खें ॥३॥

विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥४॥

भाषार्थः—(विमोकः) विमुक्त करने वाला गुण (च च) और (आर्द्रपविः) गतिशोधक गुण (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें, (आर्द्रदानुः) याचकों का पालने वाला गुण (च च) और (मातरिश्वा) ऐश्वर्य में बढ़ने वाला गुण (मा) मुझे (मा हासिष्टाम्) दोनों न छोड़ें ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य दुःखों से छूटकर उद्योग करें और अधिकारी याचकों का पालन करके वैभव बढ़ावें ॥४॥

बृह॒स्पति॑र्म आ॒त्मा नृ॒मणा॒ नाम॒ हृद्यः॑ ॥५॥

भाषार्थः—(मे) मेरा (आत्मा) आत्मा (बृहस्पतिः) बड़े गुणों का स्वामी, (नृमणाः) नेताओं के तुल्य मन वाला और (हृद्यः) हृदय का प्रिय (नाम) प्रसिद्ध [हो] ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य आत्मबल बढ़ाकर उत्तम गुण प्राप्त करें और वीर के समान पराक्रम करके सब के प्रिय हों ॥५॥

अ॒सं॒ता॒पं मे॒ हृद॑यमु॒र्वी गव्यू॑तिः समु॒द्रो अ॑स्मि॒ विध॑र्मणा ॥६॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !](मे) मेरा (हृदयम्) हृदय (असन्तापम्) सन्ताप रहित और (गव्यूतिः) विद्या मिलने का मार्ग (उर्वी) चौड़ा [होवे], मैं (विधर्मणा) विविध धारण सामर्थ्य से (समुद्रः) समुद्र [समुद्र समान गहरा] (अस्मि) हूं ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य विघ्नों में हृदय को शान्त रखकर वेद मार्ग की दृढ़ता और विस्तीर्णता फैलावे, क्योंकि परमेश्वर ने मनुष्य को बड़ा सामर्थ्य दिया है ॥६॥

सूक्तम् ॥४॥ [पर्यायसूक्तम्]

१—७ ॥ आत्मा देवता ॥ १, ३ साम्न्यनुष्टुप्, २ प्राजापत्योष्णिक्, ४ आर्ची पङ्क्तिः, ५ आसुरी गायत्री, ६ साम्नी त्रिष्टुप्, ७ भुरिगार्च्युष्णिक् ॥

आयुर्वृद्ध्यर्थमुपदेशः—आयु की वृद्धि के लिये उपदेश ॥

नाभि॑र॒हं र॑यी॒णां नाभिः॑ समा॒नानां॑ भूयासम् ॥१॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (रयीणाम्) धनों की (नाभिः) नाभि [मध्य-स्थान] और (समानानाम्) समान [तुल्य गुणी] पुरुषों की (नाभिः) नाभि (भूयासम्) हो जाऊं ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्याधन और सुवर्ण आदि धन के साथ गुणी मनुष्यों को प्राप्त होते हैं, वे संसार में प्रतिष्ठा पाते हैं ॥१॥

स्वा॒सद॑सि सू॒षा अ॒मृतो॒ मर्त्ये॒ष्वा ॥२॥

भाषार्थः—[हे आत्मा !] तू (स्वासद) सुन्दर सत्ता वाला, (सूषाः) सुन्दर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभातों वाला [प्रभात के प्रकाश के समान बढ़ने वाला] (आ) और (मर्त्येषु) मनुष्यों के भीतर (अमृतः) अमर (असि) है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य यह विचारते हैं कि यह आत्मा जो बड़े पुण्यों के कारण इस मनुष्य शरीर में वर्तमान है, वह प्रभात के प्रकाश के समान उन्नतिशील और अमर अर्थात् नित्य और पुरुषार्थी है, वे संसार में बढ़ती करके यश पाते हैं ॥२॥

मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥३॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर!] (प्राणः) प्राण [श्वास] (माम्) मुझे (मा हासीत्) न छोड़े, (मो) और न (अपानः) अपान [प्रश्वास] (अवहाय) छोड़कर (परा गात्) दूर जावे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य शरीर की स्वस्थता के साथ आत्मबल बढ़ाते रहें ॥३॥

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥४॥

भाषार्थः—(सूर्यः) सब का चलाने वाला परमात्मा (मा) मुझे (अह्नः) दिन [के भय] से (पातु) बचावे, (अग्निः) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी [के भय] से, (वायुः) सर्वव्यापक परमेश्वर (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष [के भय] से, (यमः) न्यायकारी ईश्वर (मनुष्येभ्यः) मनुष्यों [के भय] से और (सरस्वती) सर्वविज्ञानमय परमेश्वर (पार्थिवेभ्यः) पृथिवी के प्राणी आदियों [के भय] से [बचावे] ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की उपासना करता हुआ सदा उपाय करे कि वह सब प्रकार के विघ्नों से सुरक्षित होकर शुभ कर्मों को करता रहे ॥४॥

प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥५॥

भाषार्थः—(प्राणापानौ) हे प्राण और अपान! तुम दोनों (मा) मुझे (मा हासिष्टम्) मत छोड़ो, (जने) मनुष्यों के बीच (मा प्र मेषि) कभी नष्ट न होऊं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य अपने शरीर और आत्मा से सावधान रहकर निर्भयता से कर्तव्यपरायण हो ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्त्य१द्योषसो दोषसश्च सर्वं आपः सर्वगणो अशीय ।६॥

भाषार्थः—(आपः) हे आप्त विद्वानो ! (सर्वगणः) अपने सब गणों के सहित (सर्वः) सम्पूर्ण मैं (स्वस्ति) कल्याण से (अद्य) अब (उषसः) प्रभात वेलाओं को (च) और (दोषसः) रात्रियों को (अशीय) पाता रहूं ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य आप्त विद्वानों के सत्संग से प्रयत्न करें कि वे और उन के इष्ट मित्र प्रजागण आदि सदा रात दिन सुखी रहें ॥६॥

शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे

प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥७॥

भाषार्थः—[हे प्रजाओ !] तुम (शक्वरीः) बलवती (स्थ) हो (पशवः) सब प्राणी (मा उप) मेरे समीप (स्थेषुः) ठहरें, (अग्निः) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर (मित्रावरुणौ) दो श्रेष्ठ मित्र (मे) मेरे (प्राणापानौ) प्राण और अपान को और (मे) मेरी (दक्षम्) चतुराई को (दधातु) स्थिर रक्खे ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के उपदेश और परमात्मा की उपासना में तत्पर रहते हैं, वे अपने शरीर और आत्मा से स्वस्थ रहकर कार्यकुशल होते हैं ॥७॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥५॥ [पर्याय सूक्तम्]

१—१० ॥ स्वप्नो देवता ॥ १ भुरिगार्ची गायत्री, २, ६ प्राजापत्या गायत्री, ३, १० साम्नी बृहती, ४—६ साम्नी पङ्क्तिः, ७ आर्च्युष्णिक्, ८ साम्नी त्रिष्टुप् ॥

आलस्यादिदोषत्यागोपदेशः—आलस्यादि दोष के त्याग के लिये उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्नः दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥

भाषार्थः—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्मस्थान को (विद्म) हम जानते हैं, तू (ग्राह्याः) गठिया [रोगविशेष] का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है ॥१॥ तू (अन्तकः) अन्त करने वाला (असि) है और तू (मृत्युः) मृत्यु [के समान दुःखदायी] (असि) है ॥२॥ (स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (तम्) उस (त्वा) तुझ को (तथा) वैसा ही (सम्) अच्छे प्रकार (विद्म) हम जानते हैं, (सः) सो तू (स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (नः) हमें (दुःस्वप्न्यात्) बुरी निद्रा में उठे कुविचार से (पाहि) बचा ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! कुपथ्य आदि करने से गठिया आदि रोग होते हैं, गठिया आदि से आलस्य और उससे अनेक विपत्तियां मृत्यु आदि होती हैं । इससे सब लोग दुःखों के कारण अति निद्रा आदि को खोज कर निकालें और केवल परिश्रम की निवृत्ति के लिये ही उचित निद्रा का आश्रय लेकर सदा सचेते रहें ॥१—३॥

यह सूक्त कुछ भेद से आ चुका है—अथर्व ६ । ४६ । २ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः
स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥४॥

भाषार्थः—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्मस्थान को (विद्म) हम जानते हैं, तू (निर्ऋत्याः) निर्ऋति [महामारी] का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है······[म० २, ३] ॥४॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥४॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः
स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्म-स्थान को (विद्‌म) हम जानते हैं, तू (अभूत्याः) अभूति [असम्पत्ति] का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है······ [म० २, ३] ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥५॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः
स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥६॥

भावार्थः—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्म-स्थान को (विद्‌म) हम जानते हैं, तू (निर्भूत्याः) निर्भूति [हानि, नाश वा अभाव] का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है······ [म० २, ३] ॥६॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥६॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः
स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि । ७॥

भावार्थः—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्म-स्थान को (विद्‌म) हम जानते हैं, तू (पराभूत्याः) पराभूति [पराभव, हार] का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है······ [म० २, ३] ॥७॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥७॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥८॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥९॥
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥१०॥

भावार्थः—(स्वप्न) हे स्वप्न ! [आलस्य] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्म-स्थान को (विद्‌म) हम जानते हैं, तू (देवजामीनाम्) उन्मत्तों की गतियों का (पुत्रः) पुत्र और (यमस्य) मृत्यु का (करणः) करने वाला (असि) है ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू (अन्तकः) अन्त करने वाला (असि) है और तू (मृत्युः) मृत्यु [के समान दुःखदायी] (असि) है ॥६॥ (स्वप्न) हे स्वप्न [आलस्य] (तम्) उस (त्वा) तुझ को (तथा) वैसा ही (सम्) अच्छे प्रकार (विद्म) हम जानते हैं, (सः) सो तू (स्वप्न) हे [स्वप्न ! (नः) हमें (दुःस्वप्न्यात्) बुरी निद्रा में उठे कुविचार से (पाहि) बचा ॥१०॥

भावार्थः—मन्त्र १—३ के समान है ॥८—१०॥

सूक्तम् ॥६॥ [पर्यायसूक्तम्]

१—११ प्रजापतिर्देवता ॥ १—४ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ५ साम्नी पङ्क्तिः, ६ निचृदार्ची बृहती, ७ साम्नी बृहती, ८ आसुरी जगती, ९ आसुरी बृहती, १० आर्च्युष्णिक्, ११ आर्षी गायत्री ॥

रोगनाशनोपदेशः—रोग नाश करने का उपदेश ॥

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् ॥१॥

भाषार्थः—(अद्य) अब [अनिष्ट को] (अजैष्म) हम ने जीत लिया है, (अद्य) अब [इष्ट को] (असनाम) हम ने पा लिया है, (वयम्) हम (अनागसः) निर्दोष (अभूम) हो गये हैं ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य दोषों को छोड़ते हैं, वे अनिष्ट को जीत कर इष्ट प्राप्त करते हैं ॥१॥

मन्त्र १ तथा २ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—८।४७।१८॥

उषो यस्माद् दुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥२॥

भाषार्थः—(उषः) हे उषा ! [प्रभात वेला] (यस्मात्) जिस (दुःस्वप्न्यात्) दुष्ट स्वप्न में उठे कुविचार से (अभैष्म) हम डरे हैं, (तत्) वह (अप) दूर (उच्छतु) चला जावे ॥२॥

भावार्थः—यदि किसी कुपथ्य वा रोग के कारण निद्राभंग होकर मस्तक में कुविचार घूमने लगें, मनुष्य उसका प्रतीकार प्रभात ही अर्थात् बहुत शीघ्र करे ॥२॥

द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥३॥

भाषार्थः—[हे उषा !] तू (तत्) वह [कष्ट] (द्विषते) [वैद्यों से] बैर करने वाले के लिये (परा वह) पहुंचा दे, (तत्) वह (शपते) [उन्हें] कोसने वाले के लिये (परा वह) पहुंचा दे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य वैद्यों के शासन पर नहीं चलते, वे शीघ्र दुःख भोगते हैं ॥३॥

यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ॥४॥

भाषार्थः—(यम्) जिस [कुपथ्यकारी] से (द्विष्मः) हम [वैद्य लोग] बैर करते है, (च) और (यत्=यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) बैर करता है, (तस्मै) उसको (एनत्) यह [कष्ट] (गमयामः) हम जताते हैं ॥४॥

भावार्थः—वैद्य लोग कह दें कि कुपथ्यकारी मनुष्य अवश्य कष्ट भोगेगा ॥४॥

उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ॥५॥

भाषार्थः—(उषाः देवी) उषा देवी [उत्तम गुण वाली प्रभात वेला] (वाचा) वाणी से (संविदाना) मिली हुई और (वाक् देवी) वाक् देवी [श्रेष्ठ वाणी] (उषसा) प्रभात वेला से (संविदाना) मिली हुई [होवे] ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रभात वेला को सत्य वाणी के साथ और सत्यवाणी को प्रभात वेला के साथ संयुक्त करते हैं, अर्थात् जो प्रभात से लेकर दूसरी प्रभात तक सत्यवाणी से काम करते हैं, वे अवश्य सुखी रहते हैं ॥५॥

उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥६॥

भाषार्थः—(उषः=उषसः) उषा का (पतिः) पति [प्रभात उठने वाला मनुष्य] (वाचः) वाणी के (पतिना) पति [विद्याभ्यासी] के साथ (संविदानः) मिला हुआ और (वाचः) वाणी का (पतिः) पति [विद्याभ्यासी पुरुष] (उषः=उषसः) उषा के (पतिना) पति [प्रभात उठने वाले] के साथ (संविदानः) मिला हुआ [होवे] ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य प्रभात वेला में उठकर वेदादि शास्त्रों को विचारें और वेदादि शास्त्र विचारने वाले प्रभात वेला में उठें, जिससे उनकी स्वस्थता और स्मृति बढ़ती रहे ॥६॥

तेऽमुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥७॥

कुम्भीकाः दूषीकाः पर्यकान् ॥८॥

जाग्रद्दुःष्वप्न्यं स्वप्ने दुःष्वप्न्यम् ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ते) वे [ईश्वर नियम] (अमुष्मै) उस [कुपथ्यकारी] के लिये (अरायान्) क्लेशों, (दुर्णाम्नः) दुर्नामों [अर्श आदि रोगों], (सदान्वाः) सदा चिल्लाने वाली पीड़ाओं [रोग जिनमें रोगी चिल्लाता है] ॥७॥ (कुम्भीकाः) कुम्भीकाओं [रोग जिस में पेट बटलोही सा बजता है], (दूषीकाः) दूषीकाओं [जिन रोगों में रोगी गिरता जाता है], (पीयकान्) अन्य दुःखदायी रोगों ॥८॥ (जाग्रद्दुःष्वप्न्यम्) जागते में बुरे स्वप्न और (स्वप्ने दुःस्वप्न्यम्) सोते में बुरे स्वप्न को ॥९॥ (परा वहन्तु—म० ७) दूर पहुंचावें ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर नियम को छोड़कर कुपथ्य करते, हैं, वे अनेक महाक्लिष्ट रोग भोगते हैं ॥७-९॥

अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥१०॥

तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ॥११॥

भाषार्थः—(अनागमिष्यतः) न आने वाले (वरान्) वरदानों [श्रेष्ठ कर्मफलों] को, (अवित्तेः) निर्धनता के (संकल्पान्) विचारों को और (अमुच्याः) न छोड़ने वाले (द्रुहः) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता] के (पाशान्) फन्दों को ॥१०॥ (तत्) इस [सब दुःख] को (अमुष्मै) उस [कुपथ्यसेवी] के लिये, (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! (देवाः) [तेरे] दिव्य नियम (परा वहन्तु) पहुंचावें, (यथा) जिस से (न साधुः) वह असाधु पुरुष (वध्रिः) निर्वीर्य और (विथुरः) व्याकुल (असत्) हो जावे ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य कुपथ्यसेवी होवे, वह ईश्वर-नियम के अनुसार दुष्ट कर्मों की अधिकता से श्रेष्ठ फल कभी न पावे, किन्तु दरिद्रता आदि महाक्लेशों में पड़कर घोर नरक भोगे ॥१०, ११॥

सूक्तम् ॥७॥ [पर्यायसूक्तम्]

१—१३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ आर्षी पङ्क्तिः, २ साम्न्यनुष्टुप्, ३ आसुर्युष्णिक्, ४ प्राजापत्या गायत्री, ५ आर्च्युष्णिक्; ६, ८, ९, ११ साम्नी बृहती, ७ याजुषी गायत्री, १० साम्नी गायत्री, १२ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १३ आसुरी त्रिष्टुप् ॥

शत्रुनाशनोपदेशः—शत्रु के नाश करने का उपदेश ॥

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(तेन) उस [ईश्वर नियम] से (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अभूत्या) अभूति [असम्पत्ति] से (विध्यामि) मैं छेदता हूं, (एनम्) इस को (निर्भूत्या) निर्भूति [हानि वा नाश] से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इसको (पराभूत्या) पराभूति [पराभव, हार] से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इस को (ग्राह्या) गठिया रोग से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इसको (तमसा) अन्धकार [महाक्लेश] से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इस [कुमार्गी] को [अन्य विपत्तियों से] (विध्यामि) मैं छेदता हूं ॥१॥

भावार्थः—कुमार्गी दुराचारी लोग ईश्वर-नियम से नाना विपत्तियां झेलते हैं ॥१॥

देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥२॥

भाषार्थः—(एनम्) इस [कुमार्गी] को (देवानाम्) [परमात्मा के] उत्तम नियमों के (घोरैः) घोर [भयानक] और (क्रूरैः) क्रूर [निर्दय] (प्रैषैः) शासनों से (अभिप्रेष्यामि) मैं सामने से प्राप्त होता हूं ॥२॥

भावार्थः—दुराचारी लोग परमात्मा के नियमों से घोर क्रूर क्लेशों में पड़ते हैं ॥२॥

वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥३॥

भाषार्थः—(एनम्) इस [कुमार्गी] को (वैश्वानरस्य) सब नरों के हितकारी पुरुष के (दंष्ट्रयोः) दोनों डाढ़ों के बीच [जैसे अन्न को] (अपि) अवश्य (दधामि) धरता हूं ॥३॥

भावार्थः—प्रजागण कुकर्मी जन को पकड़कर सब के हित के लिये राजा को देवें, वह उसे ऐसा नष्ट करे जैसे अन्न को डाढ़ों से कुचलते हैं ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० ४ । ३६ । २ ॥

एवानेवाव सा गरत् ॥४॥

भाषार्थः—(एव) इस प्रकार से [अथवा] (अनेव) अन्य प्रकार से (सा) वह [न्याय व्यवस्था] [कुमार्गी को] (अव गरत्) निगल जावे ॥४॥

भावार्थः—राजा अपनी अनेक न्याय व्यवस्थाओं से दुष्टों का नाश करता रहे ॥४॥

यो३'स्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जो [कुमार्गी] (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) वैर करता है, (तम्) उस से [उसका] (आत्मा) आत्मा (द्वेष्टु) वैर करे, (यम्) जिस [कुमार्गी] से (वयम्) हम (द्विष्मः) वैर करते हैं, (सः) वह (आत्मानम्) [अपने] आत्मा से (द्वेष्टु) वैर करे ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! कुमार्गी पुरुष धर्मात्माओं का मार्ग छोड़ने से आप ही अपना वैरी बन जाता है ॥५॥

निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥६॥

भाषार्थः—(द्विषन्तम्) वैर करने वाले [कुमार्गी] को (दिवः) आकाश से (निः) पृथक्, (पृथिव्याः) पृथिवी से (निः) पृथक् और (अन्तरिक्षात्) मध्यलोक से (निः भजाम) हम भागरहित करें ॥६॥

भावार्थः—शूर धर्मात्मा लोग दुराचारियों को आकाश मार्ग, पृथिवी मार्ग और अन्य मार्ग से सर्वथा निकाल देवें ॥६॥

सुयामंश्चाक्षुष ॥७॥

इदमहमामुष्यायणे३'मुष्याः पुत्रे दुःष्वप्न्यं मृजे ॥८॥

भाषार्थः—(सुयामन्) हे सुमार्गी ! (चाक्षुष) हे नेत्र वाले ! [विद्वान्] ॥७॥ (इदम्) अब (अहम्) मैं (आमुष्यायणे) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रे) [कुमार्गी] पुत्र पर (दुःस्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न [आलस्य आदि] में उठे कुचार को (मृजे) शोधता हूं ॥८॥

भावार्थः—धर्मात्मा दूरदर्शी लोग कुमार्गी जन के कुल, माता पिता आदि का पता लगाकर यथोचित दण्ड देवें ॥७, ८॥

यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥९॥

यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥१०॥

यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥११॥

भाषार्थः—(यत्) जैसे (अदोअदः) उस उस समय पर (यत्) जो [कष्ट] (दोषा) रात्रि में, (यत्) जो [कष्ट] (पूर्वां रात्रिम्) रात्रि के पूर्व भाग में (अभ्यगच्छन्) उन [पूर्वज लोगों] ने सामने से पाया है ॥९॥ [वैसे ही] (यत्) जो [कष्ट] (जाग्रत्) जागता हुआ, (यत्) जो [कष्ट] (सुप्तः) सोता हुआ मैं (यत्) जो [कष्ट] (दिवा) दिन में, (यत्) जो (नक्तम्) रात्रि में, ॥१०॥ (यत्) जो (अहरहः) दिन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन (अभिगच्छामि) सामने से पाता हूं, (तस्मात्) उसी कारण से (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अव दये) मार गिराता हूँ ॥११॥

भावार्थः—जैसे पूर्वज विद्वान् लोग बड़े बड़े कष्ट सहकर दुराचारी असुरों को हराते आये हैं, वैसे ही मनुष्य क्लेशें सहकर दुष्टों को हराकर शिष्टों का पालन करते रहें ॥९, १०, ११॥

तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥१२॥

भाषार्थः—(तम्) उस [कुमार्गी] को (जहि) नाश करदे, (तस्य) उसकी (पृष्टीः) पसलियां (अपि) सर्वथा (शृणीहि) तोड़ डाल, (तेन) उस [शूर कर्म] से (मन्दस्व) तू चल ॥१२॥

भावार्थः—बुद्धिमान् शूर लोग दुष्टों को नाश करके सदा आगे बढ़ते रहें ॥१२॥

स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥१३॥

भाषार्थः—(सः) वह [कुमार्गी] (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥१३॥

भावार्थः—प्रतापी राजा दुराचारियों को सर्वथा नाश करके प्रजा पालन करे ॥१३॥

सूक्तम् ॥८॥ [पर्यायसूक्तम्]

१—३३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ जितमित्यादि १, ५—३० ब्राह्म्यनुष्टुप्, २, ५—२९, ३१ विराडार्षी गायत्री, ३ प्राजापत्या गायत्री, तस्येत्यादि ४—२९, ३३ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, स इत्यादि ५, ६, ७, १२, १४, १६, २०, २२, २७ आसुरी जगती, स इत्यादि ८, १०, १३, २१, २३, २४, २५ आसुरी त्रिष्टुप्, स इत्यादि ९ १५, १७, १८, १९, २६, ३२ आसुरी पङ्क्तिः, २८, २९ याजुषी जगती ॥

शत्रुनाशनोपदेशः—शत्रु के नाश करने का उपदेश ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥

स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥

भाषार्थः—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा, (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] ॥१॥ (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक, (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (नि भजामः) हम भागरहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है ॥२॥ (सः) वह [कुमार्गी] (ग्राह्याः) गठिया रोग के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छुटें ॥३॥ (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूं, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूं, ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् धर्मवीर राजा सुवर्ण आदि धन और सब सम्पत्ति का सुन्दर प्रयोग करे और अपने प्रजागण और वीरों को सदा प्रसन्न रख कर कुमार्गियों को कष्ट देकर नाश करे ॥१—४॥

१—आगे के सब मन्त्रों का भावार्थ इस भावार्थ के समान है ॥

२—मन्त्र १, २, ४ कुछ भेद से आ चुके हैं—अ० १० । ५ । ३६ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥५॥

भाषार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (निर्ऋत्याः) निर्ऋति [महामारी] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छुटे ।··· [मन्त्र ४] ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥६॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] (सः) वह [कुमार्गी] (अभूत्याः) अभूति [असम्पत्ति] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।··· [म० ४] ॥६॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥७॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २]। (सः) वह [कुमार्गी] (निर्भूत्याः) निर्भूति [हानि] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।··· [म० ४] ॥७॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥८॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २]।(सः) वह [कुमार्गी] (पराभूत्याः) पराभूति [हार] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे।··· [म० ४] ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर्-स्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥९॥

भावार्थः - (जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (देवजामीनाम्) उन्मत्तों की गतियों के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।··· [म० ४] ॥९॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर्-स्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१०॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (बृहस्पतेः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के रक्षक सेनाध्यक्ष] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥१०॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर्-स्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥११॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (प्रजापतेः) प्रजापति [प्रजापालक सेनापति] के (पशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्माद्मुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स ऋषीणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१२॥

भाषार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (ऋषीणाम्) ऋषियों [सन्मार्ग दर्शक महात्माओं] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥१२॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्माद्मुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१३॥

भाषार्थः—(जितम्) जय किया हुआ··· [म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (आर्षेयाणाम्) आर्षेय शास्त्रों [ऋषिप्रणीत धर्मशास्त्रों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥१३॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्माद्मुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१४॥

भाषार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (अङ्गिरसाम्) अङ्गिराओं [महाज्ञानी युद्धकुशलों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-स्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१५॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (आङ्गिरसानाम्) अङ्गिराओं [महाज्ञानियों] के शिक्षित योद्धाओं के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥१५॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-स्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१६॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (अथर्वणाम्) अथर्वाओं [निश्चल स्वभाव वाले सेना नायकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥१६॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-स्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१७॥

भावार्थः (जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (आथर्वणानाम्) अथर्वाओं के सेना दलों के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥१७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१८॥

भाषार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों [वृक्षों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।··· [म० ४] ॥१८॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१९॥

भाषार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] (सः) वह [कुमार्गी] (वानस्पत्यानाम्) वनस्पतियों से उत्पन्न [काष्ठ, पुष्प, फल आदिकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥१९॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स ऋतूनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२०॥

भाषार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (ऋतूनाम्) ऋतुओं [वसन्त आदिकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे । ···[म० ४] ॥२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आर्तवानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२१॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (आर्तवानाम्) ऋतुओं में उत्पन्न [शीत, उष्ण, पुष्प, फल, आदिकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥२१॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स मासानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२२॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (मासानाम्) महीनों के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥२२॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२३॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (अर्धमासानाम्) आधे महीनों के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।······[म० ४] ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२४॥

भावार्थः -- (जितम्) जय किया हुआ ... [म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (अहोरात्रयोः) दिन और रात्रि के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे । ...... [म० ४] ॥२४॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२५॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ ... [म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (संयतोः) मिले हुये (अह्नोः) दो दिन [दो समय के संयोग] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे । ... [म० ४] ॥२५॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२६॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ ... [म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (द्यावापृथिव्योः) सूर्य और पृथिवी के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे । ... [म० ४] ॥२६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२७॥

भाषार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (इन्द्राग्न्योः) बिजुली और भौतिक अग्नि के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।···[म० ४] ॥२७॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२८॥

भाषार्थः—(जितम्) जय किया हुआ [म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (मित्रावरुणयोः) प्राण और अपान [श्वास प्रश्वास के कष्ट] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे···[म० ४] ॥२८॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२९॥

भाषार्थः—(जितम्) जय किया हुआ···[म० १, २] । (सः) वह [कुमार्गी] (वरुणस्य) श्रेष्ठ (राज्ञः) राजा के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ।··· [म० ४] ॥२९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-
स्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥३०॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥३१॥

स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥३२॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥३३॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा, (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजा-गण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें]—[म० १] ॥३०॥ (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भाग रहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है—[म० २] ॥३१॥ (सः) वह [कुमार्गी] (मृत्योः) मृत्यु की (पड्वीशात्) बेड़ी के प्रवेश वाले (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ॥३२॥ (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूं, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूं—[म० ४] ॥३३॥

भावार्थः—मन्त्र १—४ के समान ॥३०—३३॥

सूक्तम् ॥९॥ [पर्यायसूक्तम्]

१—४ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ साम्नी त्रिष्टुप्, २ आर्च्युष्णिक्, ३ साम्नी गायत्री, ४ आर्च्युष्णिक् ॥

सुखप्राप्त्युपदेशः—सुख की प्राप्ति का उपदेश ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥१॥

भावार्थः—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा और (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा [हो], (विश्वा.) [शत्रुओं की] सब (पृतनाः) सेनाओं और (अरातीः) कंजूसियों को (अभि अस्थाम्) मैंने रोक दिया है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—पराक्रमी वीर पुरुष शत्रुओं को जीतकर और उन से कर लेकर अपने वश में रक्खे ॥१॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० १०।५।३६॥

तद॒ग्निरा॑ह॒ तदु॒ सोम॑ आह पू॒षा मा॑ धात् सु॒कृ॒तस्य॑ लो॒के ॥२॥

भाषार्थः—(तत्) यह (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (आह) कहता है, (तत् उ) यही (सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (आह) कहता है, (पूषा) पोषण करने वाला जगदीश्वर (मा) मुझे (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (लोके) लोक [समाज] में (धात्) रक्खे ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा निरन्तर आज्ञा देता है कि मनुष्य सदा धर्मात्माओं के समाज में रह कर उन्नति करे ॥२॥

इस मन्त्र का कुछ भाग आ चुका है—अ० ८।५।५॥

अग॑न्म॒ स्व॑१: स्व॑रगन्म॒ सं सूर्य॑स्य॒ ज्योति॑षागन्म ॥३॥

भाषार्थः—(स्वः) सुख [तत्त्वज्ञान का आनन्द] (अगन्म) हम पावें और (स्वः) सुख [मोक्ष आनन्द] (अगन्म) हम पावें और (सूर्यस्य) सर्व-प्रेरक परमात्मा की (ज्योतिषा) ज्योति से (सम् अगन्म) हम मिल जावें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थ के साथ तत्त्वज्ञानी होकर मोक्षसुख पावें और परमात्मा के दर्शन के भागी होवें ॥३॥

व॒स्यो॒भू॒या॑य॒ वसु॑मान् य॒ज्ञो वसु॑ वंशिषी॒य वसु॑मान् भूयासं॒ वसु॒ मयि॑ धेहि ॥४॥

भाषार्थः—(वस्योभूयाय) अधिक श्रेष्ठ पद पाने के लिये [हमारा] (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दानव्यवहार] (वसुमान्) श्रेष्ठ गुण वाला [हो], (वसु) श्रेष्ठ पद (वंशिषीय) मैं मांगूं, (वसुमान्) श्रेष्ठ पद वाला (भूयासम्) मैं हो जाऊं, [हे परमात्मन्!] (वसु) श्रेष्ठ पद (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कर ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा में विश्वास कर के यह प्रयत्न करे कि वह परोपकार द्वारा संसार के भीतर श्रेष्ठ पद पावे ॥४॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

षोडशं काण्डं समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

सप्तदशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१॥ [पर्यायसूक्तम्]

१—३० ॥ इन्द्रो विष्णुर्वा देवता । १ आर्ची जगती; २, ३, ४ विराडतिजगती; ५ निचृदतिजगती; ६, ७ अष्टिः; ८, ११, १२ अतिधृतिः; ९, १५ विराट् शक्वरी; १० भुरिग् धृतिः; १२ कृतिः १३ प्रकृतिः; १४ शक्वरी; १७ स्वराट् शक्वरी; १८ भुरिगष्टिः, १९, २४ स्वराडष्टिः, २० आर्षी गायत्री, २१ विराडार्षी बृहती; २२ आर्ष्यनुष्टुप्; २३ आर्ची त्रिष्टुप्; २५ अनुष्टुप्,२६ आर्ष्युष्णिक्, २७ विराडार्षी जगती, २८, २९ त्रिष्टुप्, ३० आर्षी त्रिष्टुप् ॥

आयुर्वृद्ध्यर्थमुपदेशः—आयु की बढ़ती के लिये उपदेश ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥१॥

भावार्थः—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले, (सहमानम्) दबा लेते हुए,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सासहानम्) दबा चुकने वाले, (सहीयांसम्) अत्यन्त शक्तिवाले—(सहमानम्) वश में करते हुए, (सहोजितम्) बलवान् के जीतने वाले, (स्वर्जितम्) स्वर्ग जीतने वाले, (गोजितम्) भूमि जीतने वाले, (संधनजितम्) पूरा धन जीतने वाले—(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूं, (आयुष्मान्) बड़े आयु वाला (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस सर्वजनक जगदीश्वर परमात्मा ने सब विघ्नों को नाश करके तुम्हें अनेक सुख के साधन दिये हैं, तुम उसी की उपासना से बहुप्रकार शक्ति बढ़ाकर संसार में यश और कीर्ति फैलाओ ॥१॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥२॥

भाषार्थः—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले… [मन्त्र १]—(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूं, (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥२॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥३॥

भाषार्थः—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले… [मन्त्र १]—(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूं, (प्रजानाम्) प्रजागणों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥३॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले ... [मन्त्र १]—(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूं, (पशूनाम्) प्राणियों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥४॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥४॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥५॥

भाषार्थः—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले, (सहमानम्) दबा लेते हुए, (सासहानम्) दबा चुकने वाले, (सहीयांसम्) अत्यन्त शक्ति वाले (सहमानम्) वश में करते हुए, (सहोजितम्) बलवान् के जीतने वाले, (स्वर्जितम्) स्वर्ग जीतने वाले, (गोजितम्) भूमि जीतने वाले, (संधनाजितम्) पूरा धन जीतने वाले —(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूं, (समानानाम्) तुल्य गुण वालों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥५॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि । द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥६॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य ! [सब के चलाने वाले परमेश्वर] (उत् इहि) तू उदय हो, (उत् इहि) तू उदय हो, (वर्चसा) प्रताप के साथ (मा) मुझ पर (अभ्युदिहि) उदय हो—(द्विषन्) वैर करता हुआ [शत्रु] (च) अवश्य (मह्यम् रध्यतु) मेरे वश में हो जावे, (च) और (अहम्) मैं (द्विषते) वैर करते हुए के (मा रधम्) वश में न पड़ूं (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार हैं। (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—हे वीर विद्वानो ! उस महाबली सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को सर्वव्यापक साक्षात् करके सब का उपकार करो ॥६॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि । यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥७॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य ! [सब के चलाने वाले परमेश्वर] (उत् इहि) तू उदय हो, (उत् इहि) तू उदय हो, (वर्चसा) प्रताप के साथ (मा) मुझ पर (अभ्युदिहि) उदय हो । (यान्) जिन [समीपस्थ प्राणियों] को (पश्यामि) मैं देखता हूं (च च) और (यान्) जिन [दूर वालों] को (न) नहीं [देखता हूं], (तेषु) उन पर (मा) मुझ को (सुमतिम्) सुमति वाला (कृधि) कर, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही···[मन्त्र ६] ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा को उपास्य देव समझकर सब समीप वाले और दूर वाले प्राणियों का उपकार करते रहें ॥७॥

मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्व१न्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र । हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥८॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (त्वा) तुझे उन [विघ्नों] ने (मा दभन्) नहीं रोका है, (ये) जो (पाशिनः) बन्धन वाले [विघ्न] (सलिले) अन्तरिक्ष में (अप्सु अन्तः) तन्मात्राओं के भीतर (अत्र) यहां [संसार में] (उपतिष्ठन्ति) उपस्थित हैं । (एताम्) इस (अशस्तिम्) अपकीर्ति को (हित्वा) छोड़कर (दिवम्) व्यवहार में (आअरुक्षः) तू ऊंचा हुआ है, (सः) सो तू (नः) हमें (मृड) सुखी रख, (ते) तेरी (सुमतौ) सुमति [सुन्दर आज्ञा] में (स्याम) हम होवें, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही···[मन्त्र ६] ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा ने सब विघ्नों को हटाकर तत्त्वों के परमाणुओं से सूर्य तृण आदि बड़े छोटे पदार्थों को रचकर परस्पर आकर्षण में ठहराया है, तुम सब उस परमात्मा की उपासना करके तत्त्वज्ञान से उन्नति करते जाओ ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वं न॑ इन्द्र महते सौभ॑गा॒याद॑ब्धेभि॒ः परि॑ पाह्य॒क्तुभि॒स्तवेद् विष्णो बहुधा वी॒र्या॑णि। त्वं नः पृणीहि प॒शुभि॑र्वि॒श्वरू॑पैः। सुधायां॑ मा धेहि पर॒मे व्यो॑मन् ॥९॥

भाषार्थः —(इन्द्र) हे इन्द्र! [परम ऐश्वर्यं वाले जगदीश्वर] (त्वम्) तू (नः) हमें (महते) बड़े (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्यं के लिये (अदब्धेभिः) [अपने] अखण्ड (अक्तुभिः) प्रकाशों के साथ (परि) सब ओर से (पाहि) बचा, (विष्णो) हे विष्णु! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही···[मन्त्र ६] ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा के अखण्डज्ञान के प्रकाश से संसार में बड़ा ऐश्वर्य पाकर सुरक्षित रहें ॥९॥

त्वं न॑ इन्द्रो॒तिभि॑ः शि॒वाभि॒ः शंत॑मो भव। आ॒रोहं॑स्त्रि॒दि॒वं दि॒वो गृ॒णानः सोम॑पीतये प्रि॒यधा॑मा स्व॒स्तये॒ तवेद् विष्णो बहुधा वी॒र्या॑णि। त्वं नः पृणीहि प॒शुभि॑र्वि॒श्वरू॑पैः सुधायां॑ मा धेहि पर॒मे व्यो॑मन् ॥१०॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [परम ऐश्वर्यं वाले जगदीश्वर] (शिवाभिः) मङ्गलमय (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (त्रिदिवम्) तीन [आय व्यय वृद्धि] व्यवहार में (आरोहन्) ऊंचा होता हुआ और (दिवः) व्यवहारों को (गृणानः) जताता हुआ (प्रियधामा) प्रिय पद वाला (त्वम्) तू (सोमपीतये) ऐश्वर्य की रक्षा के लिये [वा अमृत पीने के लिये] और (स्वस्तये) सुन्दर सत्ता [दशा] के लिये (नः) हम को (शंतमः) अत्यन्त सुख देने वाला (भव) हो, (विष्णो) हे विष्णु! [सर्व व्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही···[मन्त्र ६] ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी अपार महिमा से प्राणियों को उनके पुरुषार्थ के अनुसार आय, व्यय और वृद्धिरूप फल देता हुआ अनेक व्यवहारों का उपदेश करता है, हे मनुष्यो! उसी की उपासना से पुरुषार्थ के साथ ऐश्वर्य बढ़ाकर अपनी दशा सुधारते रहो ॥१०॥

त्वमि॑न्द्रासि वि॒श्वजि॑त् स॒र्ववि॑त् पु॑रुहू॒तस्त्वमि॑न्द्र। त्वमि॑न्द्रे॒मं सु॒हवं॒ स्तोम॒मेर॑यस्व॒ स नो॑ मृड सु॒मतौ ते॑ स्याम॒ तवेद् विष्णो बहु॒धा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥११॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (त्वम्) तू (विश्वजित्) सब का जीतने वाला, (सर्ववित्) सबका जानने वाला, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (त्वम्) तू (पुरुहूतः) बहुत प्रकार पुकारा गया (असि) है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वम्) तू (इमम्) इस (सुहवम्) अच्छे प्रकार पुकारने वाली (स्तोमम्) स्तुति को (आ) यथावत् (ईरयस्व) प्राप्त कर, (सः) सो तू (नः) हमें (मृड) सुखी रख, (ते) तेरी (सुमतौ) सुमति [सुन्दर आज्ञा] में (स्याम) हम होवें, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही ·· [मन्त्र ६] ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर के गुणों को यथावत् जानकर अपने गुण, कर्म, स्वभाव उत्तम बनाते हैं, वे परमेश्वर के भक्त सदा सुखी रहते हैं ॥११॥

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे । अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षञ्छर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१२॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] तू (दिवि) सूर्य [प्रकाश वाले लोक] पर (उत) और (पृथिव्याम्) पृथिवी [प्रकाशरहित लोक] पर (अदब्धः) अखण्ड (असि) है, (ते) तेरी (महिमानम्) महिमा को (अन्तरिक्षे) आकाश में उन [लोकों और लोकवासियों] ने (न आपुः) नहीं पाया। (अदब्धेन) अखण्ड (ब्रह्मणा) बढ़ते हुए वेद ज्ञान से (वावृधानः) अत्यन्त बढ़ता हुआ और (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (सन्) वर्तमान, (सः त्वम्) सो तू (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (नः) हमें (शर्म) सुख (यच्छ) दे, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इव) तेरे ही··· [मन्त्र ६] ॥१२॥

भावार्थः जो परमात्मा संसार में बड़ों से बड़ा, अनन्त ज्ञानी और प्रत्येक व्यवहार में वर्तमान है, मनुष्य उसी जगदीश्वर की उपासना से वृद्धि करके सुख पावें ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या ते इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि। ययेन्द्र तन्वा३ऽन्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा३ शर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (या) जो (ते) तेरी (तनूः) उपकार शक्ति (अप्सु) जल में और (या) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! (या) जो (ते) तेरी [उपकार शक्ति] (अग्नौ अन्तः) अग्नि के भीतर और (या) जो (स्वर्विदि) सुख पहुंचाने वाले (पवमाने) शुद्ध करने वाले पवन में है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यया) जिस (तन्वा) उपकार शक्ति से (अन्तरिक्षम्) आकाश में (व्यापिथ) तू व्यापा है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! (तया) उस (तन्वा) उपकार शक्ति से (नः) हमें (शर्म) सुख (यच्छ) दे, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही···[मन्त्र ६] ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा ने पृथिवी आदि पांच तत्त्वों में अनन्त उपकार-शक्ति दी है, मनुष्य उन तत्त्वों के विज्ञान से उपकार लेकर सुख प्राप्त करें ॥१३॥

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्त्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (ब्रह्मणा) बढ़े हुए वेदज्ञान से (त्वाम्) तुझे (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए, (नाधमानाः) [मोक्षसुख] मांगते हुए (ऋषयः) ऋषि [वेदज्ञाता] लोग (सत्त्रम्) बैठक [वा यज्ञ] में (निषेदुः) बैठे हैं, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही······ [मन्त्र ६] ॥१४॥

भावार्थः—जैसे ऋषि लोग वेदज्ञान द्वारा जगदीश्वर की महिमा के ज्ञान से उन्नति करके संसार को सुख पहुंचाते हैं, वैसे ही सब मनुष्य परस्पर उपकार करें ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वं त्रितं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१५॥

भाषार्थः – [हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (तृतम्=त्रितम्) तीनों [कालों] के बीच फैले हुए [जगत्] में, (त्वम्) तू (सहस्रधारम्) सहस्रों धाराओं वाले (उत्सम्) स्रोते, [अर्थात्] (स्वर्विदम्) सुख पहुंचाने वाले (विदथम्) विज्ञान समाज में (परि) सब ओर से (एषि) व्यापक है, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही··· [मन्त्र ६] ॥१५॥

भावार्थः – जो परमात्मा सर्वदा सब संसार में व्यापक रहकर विद्वानों की उन्नति करता है, हम सब उसी की उपासना से विद्वान् होकर उन्नति करें ॥१५॥

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि। त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१६॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं की (रक्षसे) रक्षा करता है, (त्वम्) तू (शोचिषा) प्रकाश से (नभसी) सूर्य और पृथिवी में (वि) विविध प्रकार (भासि) चमकता है। (त्वम्) तू (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवना अनु) भुवनों [लोकों] में (तिष्ठसे) ठहरता है, और (विद्वान्) जानता हुआ तू (ऋतस्य) सत्यधर्म के (पन्थाम्) मार्ग पर (अनु) लगातार (एषि) चलता है, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही······ [मन्त्र ६] ॥१६॥

भावार्थः – परमात्मा दिशाओं में हमारी रक्षा करता है, सूर्य पृथिवी आदि लोकों में प्रकाश पहुंचा कर सबका धारण करने वाला और सदा सत्य नियम पर चलता है, तुम उसी की आराधना से धर्म पथ पर चलकर अपनी उन्नति करो ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१७॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (पञ्चभिः) पांच [दिशाओं] के साथ और (एकया) एक [दिशा] के साथ [अर्थात् छह दिशाओं के साथ] (पराङ्) दूरवर्ती और (अर्वाङ्) समीपवर्ती होकर (तपसि) तू प्रतापी [ऐश्वर्यवान्] होता है, और (अशस्तिम्) अपकीर्ति को (बाधमानः) हटाता हुआ (सुदिने) अच्छे दिन [निर्मल प्रकाश] में (एषि) चलता रहता है, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही···[मन्त्र ६] ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीची, ऊंची दिशाओं में उनका स्वामी होकर सब विघ्नों को हटाकर व्याप रहा है, उसी का आश्रय लेकर तुम आगे बढ़ो ॥१७॥

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः । तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१८॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाला], (त्वम्) तू (महेन्द्रः) महेन्द्र [बड़ों में परम ऐश्वर्य वाला], (त्वम्) तू (लोकः) लोकपति [संसार का स्वामी] और (त्वम्) तू (प्रजापतिः) प्रजापति [प्राणियों का रक्षक] है (तुभ्यम्) तेरे लिए [तेरी आज्ञा पालने के लिए] (यज्ञः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (वि तायते) विविध फैलाया जाता है, (तुभ्यम्) तेरे लिये (जुह्वतः) होम [हवन, दान आदि] करते हुए पुरुष (जुह्वति) होम [हवन, दान आदि] करते हैं, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही···[मन्त्र ६] ॥१८॥

भावार्थः—परमेश्वर सब का स्वामी, सबका रक्षक और सबको नियम में रखने वाला है, उसकी आज्ञा पालने से तुम अपनी उन्नति करो ॥१८॥

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् । भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(असति) अनित्य [कार्य] में (सत्) नित्य वर्त्तमान [आदिकारण ब्रह्म] (प्रतिष्ठितम्) ठहरा हुआ है, और (सति) नित्य [ब्रह्म] में (भूतम्) सत्ता वाला जगत् [अथवा पृथिवी आदि भूतपञ्चक] (प्रतिष्ठितम्) ठहरा हुआ है। (भूतम्) बीता हुआ (भव्ये) होने वाले में (ह) निश्चय करके (आहितम्) रक्खा हुआ है, और (भव्यम्) होने वाला (भूते) बीते हुए में (प्रतिष्ठितम्) ठहरा हुआ है, (विष्णो) हे विष्णु! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीरकर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार हैं (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सबसे ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षापद में (सुधायाम्) पूरी पोषण शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥१९॥

भावार्थः—जो ओं तत्सत् परमात्मा अपनी महिमा से सबका आदि कारण होकर सबके भीतर और बाहिर और भूत भविष्यत् और वर्त्तमान में एकरस व्यापकर सब ब्रह्माण्ड को थांभे है, हम सब उसकी ही उपासना करके सुखी होवें ॥१९॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि। स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥२०॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर!] तू (शुक्रः) शुद्ध [स्वच्छ निर्मल] (असि) है, तू (भ्राजः) प्रकाशमान (असि) है। (सः त्वम्) सो तू (यथा) जैसे (भ्राजता) प्रकाशमान स्वरूप के साथ (भ्राजः) प्रकाशमान (असि) है, (एव) वैसे ही (अहम्) मैं (भ्राजता) प्रकाशमान स्वरूप के साथ (भ्राज्यासम्) प्रकाशमान रहूं ॥२०॥

भावार्थः—जगदीश्वर के प्रकाश स्वरूप का ध्यान करके मनुष्य विद्या आदि उत्तम गुणों से संसार में तेजस्वी होवें ॥२०॥

रुचिरसि रोचोऽसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥२१॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर!] तू (रुचिः) प्रीतिरूप (असि) है, तू (रोचः) रुचि कराने वाला (असि) है। (सः त्वम्) सो तू (यथा) जैसे (रुच्या) प्रीति के साथ (रोचः) प्रीति कराने वाला (असि) है, (एव) वैसे ही (अहम्) मैं (पशुभिः) प्राणियों के साथ (च च) और (ब्राह्मणवर्चसेन) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] के समान तेज के साथ (रुचिषीय) रुचि करूं ॥२१॥

भावार्थः—जैसे परमात्मा हमारे साथ प्रीति करके अनेक उपकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है, वैसे ही हम महात्माओं के समान सब प्राणियों और वेद ज्ञान से प्रीति करके सदा उपकार करें ॥२१॥

उद्यते नमं उदायते नमं उदिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२॥

भाषार्थः—(उद्यते) उदय होते हुए [परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार है, (उदायते) ऊंचे आते हुए को (नमः) नमस्कार है, (उदिताय) उदय हो चुके हुए को (नमः) नमस्कार है, (विराजे) विविध राजा को (नमः) नमस्कार है, (स्वराजे) अपने आप राजा को (नमः) नमस्कार है, (सम्राजे) सम्राट् [राजराजेश्वर] को (नमः) नमस्कार है ॥२२॥

भावार्थः—परमात्मा एक प्रलय और सृष्टि की सन्धिदशा में, दूसरे सृष्टि करने की दशा में और तीसरे सृष्टि की समाप्ति में अपनी महिमा विविध प्रकार प्रकट करता है, उस सर्वशक्तिमान् अद्वितीय जगदीश्वर की आज्ञा में रहकर हम सदा आनन्दित रहें ॥२२॥

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३॥

भाषार्थः—(अस्तंयते) अस्त होते हुए [परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार है, (अस्तमेष्यते) अस्त होना चाहने वाले को (नमः) नमस्कार है, (अस्तमिताय) अस्त हो चुके हुए को (नमः) नमस्कार है। (विराजे) विविध राजा को (नमः) नमस्कार है, (स्वराजे) अपने आप राजा को (नमः) नमस्कार है, (सम्राजे) सम्राट् [राजराजेश्वर] को (नमः) नमस्कार है ॥२३॥

भावार्थः—परमात्मा एक सृष्टि और प्रलय की सन्धिदशा में, दूसरे प्रलय करने की दशा में और तीसरे प्रलय की समाप्ति में विविध प्रकार अपनी महिमा दिखाता है, उसी सर्वशक्तिमान् सम्राट् की आज्ञा मानकर हम सदा सुखी रहें ॥२३॥

उदंगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह । सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रंधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥२४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अयम्) यह (आदित्यः) आदित्य [अखण्ड प्रभाव वाला परमात्मा] (सपत्नान्) वैरियों को (मह्यं रन्धयन्) मेरे वश में करता हुआ, (विश्वेन) समस्त (तपसा सह) ऐश्वर्य के साथ (उत् अगात्) उदय हुआ है, (च) और (अहम्) मैं (द्विषते, वैर करते हुए के (मा रधम्) वश में न पड़ूं, (विष्णो) हे विष्णु! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीरकर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार हैं। (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षापद में (सुधायाम्) पूरी पोषण शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥२४॥

भावार्थः—जो पुरुषार्थी मनुष्य परमेश्वर को सब प्रकार अपना रक्षक जानता है, वह वैरियों को जीतता है और आप उनके वश में नहीं पड़ता ॥२४॥

यह मन्त्र (उदगादय……द्विषते रधम्) कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१।५०।१३॥

मन्त्र ६ और १९ से इस मन्त्र का मिलान करो॥

आदि॑त्य ना॒वमारु॑क्षः श॒तारि॑त्रां स्व॒स्तये॑ ।
अह॒र्मात्य॑पीपरो॒ रात्रिं॑ स॒त्राति॑ पारय ॥२५॥

भाषार्थः—(आदित्य) हे आदित्य! [अखण्ड प्रभाव वाले परमात्मा!] (स्वस्तये) [हमारे] आनन्द के लिये (शतारित्राम्) सैकड़ों डाड़ वाली (नावम्) नाव पर (आ अरुक्षः) तू चढ़ा है। (मा) मुझ से (अहः) दिन (अति अपीपरः) तूने सर्वथा पार कराया है, (रात्रिम्) रात्रि (सत्रा) भी (अति पारय) तू सर्वथा पार करा ॥२५॥

भावार्थः—जो परमात्मा अनेक प्रकार जगत् को चला रहा है, मनुष्य उसकी अनन्त कृपा से दिन का कर्तव्य पूरा करके रात्रि का कर्तव्य पूरा करने का प्रयत्न करें, और इस मन्त्र से सायंकाल में प्रार्थना करें ॥२५॥

सूर्य॑ ना॒वमारु॑क्षः श॒तारि॑त्रां स्व॒स्तये॑ ।
रात्रि॒ मात्य॑पीपरो॒ऽहः स॒त्राति॑ पारय ॥२६॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य! [सब के चलाने वाले जगदीश्वर] (स्वस्तये) [हमारे] आनन्द के लिये (शतारित्राम्) सैकड़ों डाड़ों वाली (नावम्) नाव पर (आ अरुक्षः) तू चढ़ा है। (मा) मुझ से (रात्रिम्) रात्रि को (अति अपीपरः) तूने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वथा पार कराया है, (अहः) दिन (सत्रा) भी (अति पारय) सर्वथा तू पार करा ॥२६॥

भावार्थः—जो जगदीश्वर इस संसार को विविध प्रकार चला रहा है, मनुष्य उसकी महती कृपा से रात्रि का कर्त्तव्य पूरा करके दिन का कर्त्तव्य पूरा करने का उद्योग करें, और इस मन्त्र से प्रातःकाल में प्रार्थना करें ॥२६॥

प्रजापते रावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥२७॥

भाषार्थः—(प्रजापतेः) प्रजापति [प्राणियों के रक्षक] और (कश्यपस्य) कश्यप [सर्वदर्शक परमेश्वर] के (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से, (वर्मणा) आश्रय [वा रक्षा] से, (ज्योतिषा) ज्योति से (च) और (वर्चसा) प्रताप से (आवृतः) घेरा हुआ (अहम्) मैं, (जरदष्टिः) बड़ाई के साथ प्रवृत्ति [वा भोजन] वाला, (कृतवीर्यः) पूरे पराक्रम वाला, (विहायाः) विविध उपायों वाला, (सहस्रायुः) सहस्रों प्रकार से अन्न वाला और (सुकृतः) पुण्यकर्म वाला [होकर], (चरेयम्) चलता रहूं ॥२७॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वपालक, सर्वदर्शक जगदीश्वर का अनेक प्रकार आश्रय लेकर और विविध प्रकार उपाय करके सुकर्मी होकर सदा आनन्द भोगें ॥२७॥

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥२८॥

भाषार्थः—(कश्यपस्य) कश्यप [सर्वदर्शक परमेश्वर] के (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से, (वर्मणा) आश्रय से, (ज्योतिषा) ज्योति से (च) और (वर्चसा) प्रताप से मैं (परिवृतः) ढका हुआ हूं। (याः) जो (दैव्याः) दैवी [आधि दैविक] (इषवः) बाण हैं, वे (मा) मुझ को (आ प्र आपन्) न पहुंचे, (च) और (मानुषीः) मानुषी [आधिभौतिक] (अवसृष्टाः) छोड़े हुए [बाण] (वधाय) मारने के लिये (मा) न [पहुंचें] ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर ऐसे दूरदर्शी पुरुषार्थी होवें कि आधिदैविक और आधिभौतिक क्लेशों से सदा बचे रहें ॥२८॥

ऋतेनं गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेनं गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥२९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अहम्) मैं (ऋतेन) सत्य धर्म से (च) और (सर्वैः ऋतुभिः) सब ऋतुओं से (गुप्तः) रक्षा किया हुआ और (भूतेन) बीते हुए से (च) और (भव्येन) होने वाले से (गुप्तः) रक्षा किया हुआ हूं। (मा) मुझे (पाप्मा) पाप [बुराई] (मा प्र आपत्) न पावे, (उत) और (मा) न (मृत्युः) मृत्यु [पावे], (अहम्) मैं (वाचः) वेदवाणी के (सलिलेन) जल के साथ (अन्तः दधे) अन्तर्धान होता हूं [डुबकी लगाता हूं] ॥२९॥

भावार्थः—मनुष्य धर्म का सहारा लेकर सब भूत, भविष्यत् और वर्तमान को विचार के सब काल में सुरक्षित रहकर निष्पाप और अमर अर्थात् यशस्वी होवें, यही वेदवाणी रूप जल में स्नातक होना है ॥२९॥

अ॒ग्निर्मा॑ गो॒प्ता परि॑ पातु वि॒श्वत॑ उ॒द्यन्त्सूर्यो॑ नुदतां मृ॒त्युपा॒शान् ।
व्यु॒च्छन्ती॑रु॒षसः॒ पर्व॑ता ध्रु॒वाः स॒हस्रं॑ प्रा॒णा मय्या य॑तन्ताम् ॥३०॥

भाषार्थः—(गोप्ता) रक्षा करने वाला (अग्निः) ज्ञानमय परमेश्वर (विश्वतः) सब ओर से (मा परि पातु) मेरी रक्षा करे, (उद्यन्) उदय होता हुआ (सूर्यः) सर्वप्रेरक परमात्मा (मृत्युपाशान्) मृत्यु के बन्धनों को (नुदताम्) हटावे। (व्युच्छन्तीः) विशेष चमकती हुई (उषसः) प्रभात वेलायें, (ध्रुवाः) दृढ़ (पर्वताः) पहाड़ और (प्राणाः) सब प्राण [शारीरिक और आत्मिक बल] (सहस्रम्) सहस्र प्रकार से (मयि) मुझ में (आ यतन्ताम्) सब ओर से यत्न करते रहें ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर का आश्रय लेकर अमर अर्थात् यशस्वी होकर सब कालों को सब ऊंची नीची अवस्थाओं को और शारीरिक और आत्मिक बलों को अनुकूल बनावें ॥३०॥

इति प्रथमोनुवाकः ॥

इति सप्तदशं काण्डम् समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

अष्टादशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१॥ [मन्त्राः १—६१]

मन्त्राः १—१६ ॥

यमयम्यौ देवते ॥ १, ५, ६—११ त्रिष्टुप्, २ विराट् त्रिष्टुप्, ३, ४, ६, ७, १२, १३ निचृत् त्रिष्टुप्, ८ विराट् छन्दः, १४ भुरिक् त्रिष्टुप्, १५ आर्षी पङ्क्तिः, १६ विराडार्षी त्रिष्टुप् ॥

भ्रातृभगिनीपरस्परविवाहनिषेधोपदेशः—भाई बहिन के परस्पर विवाह के निषेध का उपदेश ॥

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥१॥

भावार्थः—(ओ) ओ ! [हे पुरुष !] (सखायम्) [तुझ] मित्र को (चित्) ही (सख्या) मित्रता के साथ (ववृत्याम्) मैं [स्त्री] प्रवृत्त करूं—(पुरु चित्) बहुत ही प्रकार से (अर्णवम्) विज्ञान युक्त शास्त्र को (तिरः जगन्वान्) पार जा चुकने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले, (प्रतरम्) बहुत अधिक (दीध्यानः) प्रकाशमान, (वेधाः) बुद्धिमान् आप (पितुः) [अपने] पिता के (नपातम्) नाती [पौत्र] को (क्षमि अधि) पृथिवी पर (आ दधीत) धारण करें ॥१॥

भावार्थः—यह मन्त्र स्त्री का वचन है। हम दोनों बड़े प्रेमी हैं, तू वेद आदि शास्त्रों का जानने वाला बुद्धिमान् पुरुष है, ऐसा प्रयत्न किया जावे कि हम दोनों के सम्बन्ध से उत्तम सन्तान उत्पन्न हो ॥१॥

इस सूक्त के मन्त्र १—१६ में यमीयम अर्थात् जोड़िया बहिन और भाई को संवाद वा प्रश्न उत्तर की रीति से यह बताया है कि वे दोनों बहिन भाई होकर परस्पर विवाह कभी न करें, किन्तु बहिन भाई से अन्य पुरुष के साथ और भाई बहिन से दूसरी स्त्री के साथ विवाह करे ॥

मन्त्र १—५। अभेद वा भेद से ऋग्वेद में हैं—१०।१०।१—५॥

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

भाषार्थः—(सखा) [यह] प्रेमी (ते) तेरी (एतत्) यह (सख्यम्) प्रीति (न) नहीं (वष्टि) चाहता है—(यत्) कि (सलक्ष्मा) समान [धार्मिक] लक्षण वाली [आप] (विषुरूपा) नाना स्वभाव वाली [चंचल अधार्मिक] (भवाति) हो जावें। (महः) महान् (असुरस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (दिवः) व्यवहार के (धर्तारः) धारण करने वाले, (वीराः) वीर (पुत्रासः) पुत्र (उर्विया) भूमि पर (परि ख्यन्) विख्यात हुए हैं ॥२॥

भावार्थः—यह मन्त्र पुरुष का उत्तर है। हे स्त्री! तू जो मुझ से पुत्र की कामना करती है सो उचित नहीं, हम दोनों धर्मात्मा होकर अधर्म न करें- क्योंकि बड़े कुल में उत्पन्न व्यवहारकुशल धर्मात्मा वीर ही संसार में कीर्तिमान् होते हैं ॥२॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वं१ आ विविश्याः ॥३॥

भाषार्थः—(ते) वे (अमृतासः) अमर [यशस्वी] लोग (घ) अवश्य (एतत्) इस प्रकार से (एकस्य) एक [अद्वितीय, अति श्रेष्ठ] (मर्त्यस्य) मनुष्य के (चित्) ही (त्यजसम्) सन्तान की (उशन्ति) कामना करते हैं। (ते मनः) तेरा मन (अस्मे) हमारे (मनसि) मन में (नि धायि) जमाया जावे, और (जन्युः) उत्पन्न करने वाला (पतिः) पति [होकर] (तन्वम्) [मेरे] शरीर में (आ विविश्याः) प्रवेश कर ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—स्त्री का वचन है। महात्मा लोग मानते हैं कि अद्वितीय वीर पुरुष का सन्तान अद्वितीय वीर होता है, इस लिये तू श्रेष्ठ होकर मेरे साथ विवाह करके श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न कर ॥३॥

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) जो [कर्म] (पुरा) पहिले (न चकृम) हम ने नहीं किया, (कत्) कैसे (ह) निश्चय करके (नूनम्) अब (ऋतम्) सत्य (वदन्तः) बोलते हुए हम (अनृतम्) असत्य (रपेम) बोलें। [जैसे] (अप्सु) सत्कर्मों में (गन्धर्वः) दृष्टि रखने वाला पुरुष (च) और (अप्या) सत्कर्मों में प्रसिद्ध (योषा) सेवा करने वाली स्त्री [होवे], (सा) वही (नौ) हम दोनों की (नाभिः) बन्धुता, और (तत्) वह (नौ) हम दोनों का (परमम्) सब से बड़ा (जामि) सम्बन्ध [होवे] ॥४॥

भावार्थः—पुरुष का वचन है। तू कहती है- श्रेष्ठ पुरुष का सन्तान श्रेष्ठ होता है, परन्तु मैं मर्यादा तोड़कर असत्य कभी नहीं बोलूंगा। स्त्री पुरुष सदा सत्कर्म करें, यही दोनों में परस्पर बड़े स्नेह का कारण है ॥४॥

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

भाषार्थः—(जनिता) उत्पन्न करने वाले, (देवः) प्रकाशमान, (त्वष्टा) बनाने वाले, (सविता) प्रेरक, (विश्वरूपः) सब के रूप देने वाले परमेश्वर ने (गर्भे) गर्भ में (नु) ही (नौ) हम दोनों को (दम्पती) पति पत्नी (कः) बनाया है। (अस्य) इस [परमेश्वर] के (व्रतानि) नियमों को (नकिः प्र मिनन्ति) कोई भी नहीं तोड़ सकते, (नौ) हम दोनों के लिये (अस्य) इस [बात] को (पृथिवी) पृथिवी (उत) और भी (द्यौः) सूर्य (वेद) जानता है ॥५॥

भावार्थः स्त्री का वचन। परमात्मा ने अपने अटल नियम से माता के गर्भ में ही हम दोनों को एक साथ जोड़िया उत्पन्न करके पति पत्नी बनाया है, जैसे यह प्रत्यक्ष है कि सृष्टि की आदि से सूर्य और पृथिवी में पतिपत्नी भाव है क्योंकि सूर्य वृष्टि करता है पृथिवी उसे ग्रहण करके अन्न आदि उत्पन्न करती है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥६॥

भाषार्थः—(कः) कर्ता [प्रजापति] परमेश्वर (अद्य) आज (ऋतस्य) सत्य के (गाः) गाने वाले, (शिमीवतः) उत्तम कर्म वाले, (भामिनः) तेजस्वी (दुर्हृणायून्) [शत्रुओं पर] भारी क्रोध वाले, (आसन्निषून्) ठीक स्थान पर बाण पहुंचाने वाले, (हृत्स्वसः) [शत्रुओं के] हृदयों में शस्त्र मारने वाले और (मयोभून्) [धर्मात्माओं को] सुख देने वाले वीरों को (धुरि) धुरी [भारी बोझ] में (युङ्क्ते) जोड़ता है, (यः) जो पुरुष (एषाम्) इन [वीरों] की (भृत्याम्) पोषण रीति को (ऋणधत्) बढ़ावेगा, (सः) वह (जीवात्) जीवेगा ॥६॥

भावार्थः—पुरुष का वचन है। परमात्मा धुरन्धर धर्मात्मा वीरों पर संसार की रक्षा का भार रखता है, और वे उस नियम का यथावत् पालन करते हैं। जो मनुष्य ऐसे मर्यादा पुरुषों की नीति पर चलता है, वह संसार में यशस्वी होकर अमर होता है ॥६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है, १। ८४। ६। महर्षि दयानन्द ने सेनापति के योग्य कर्म में इसकी व्याख्या की है ॥

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥७॥

भाषार्थः—(कः) कौन [पुरुष] (अस्य) इस [जगत्] के (प्रथमस्य) पहिले (अह्नः) दिन को (वेद) जानता है (कः) किस ने (ईम्) इस [दिन] को (ददर्श) देखा है, (कः) कौन (इह) इस [विषय] में (प्रवोचत्) बोले। (मित्रस्य) सर्व प्रेरक (वरुणस्य) श्रेष्ठ परमेश्वर का (बृहत्) बड़ा (धाम) धाम [धारण सामर्थ्य वा नियम] है, (आहनः) हे चोट लगाने वाली ! (कत् उ) कैसे (वीच्या) छल के साथ (नॄन्) नरों [नेताओं] से (ब्रवः) तू बोल सके ॥७॥

भावार्थः—यह भी पुरुष का वचन है। तू कहती है कि सूर्य और पृथिवी प्राकृतिक पदार्थों में भी पति पत्नी भाव है, यह ठीक नहीं। परमेश्वर के नियम मनुष्य नहीं समझ सकता, जैसे सूर्य और पृथिवी में आकर्षण धारण आदि गुण हैं जिनके कारण उनके बीच बारम्बार आपस में वृष्टि देने और लेने का सामर्थ्य है। तू हमें मत ठग ॥७॥

मन्त्र ७—१२ कुछ अभेद वा भेद से ऋग्वेद में हैं—१०। १०। ६-११ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥८॥

भाषार्थः—(यमस्य) यम [जोड़िया भाई] की (कामः) कामना (मा) मुझ (यम्यम्) यमी [जोड़िया बहिन] को, (समाने योनौ) एक घर में (सहशेय्याय) साथ साथ सोने के लिये, (आ अगन्) आकर प्राप्त हुई है। (जाया इव) पत्नी के समान (पत्ये) पति के लिये (तन्वम्) [अपना] शरीर (रिरिच्याम्) मैं फैलाऊं, (चित्) और (रथ्या) रथ ले चलने वाले (चक्रा इव) दो पहियों के समान (वि विरहेव) हम दोनों मिलें ॥८॥

भावार्थः—स्त्री का वचन है। तू और मैं दोनों एक माता से एक साथ जोड़िया उत्पन्न हुए हैं सो हम दोनों में अति प्रीति है। हम दोनों ही आपस में विवाह करके पति पत्नी बनें और मिलकर गृहस्थ आश्रम चलावें, जैसे रथ के दो पहिये धुरा के साथ आपस में मिलकर रथ चलाते हैं ॥८॥

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥९॥

भाषार्थः—(देवानाम्) विद्वानों के (एते) यह (स्पशः) नियम (न) न (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं और (न) न (नि मिषन्ति) मुंदते हैं, (ये) जो (इह) यहां पर (चरन्ति) चलते हैं। (आहनः) हे चोट लगाने वाली ! तू (मत्) मुझ से (अन्येन) दूसरे के साथ (तूयम्) शीघ्र (याहि) जा और (तेन) उसके साथ (रथ्या) रथ ले चलने वाले (चक्रा इव) दो पहियों के समान (वि वृह) संयोग कर ॥९॥

भावार्थः—पुरुष का वचन है। बड़े लोगों की अटल मर्यादायें सब को मानने योग्य हैं, मैं बहिन के साथ विवाह नहीं कर सकता, तू दूसरे से विवाह करके गृहस्थिनी हो ॥९॥

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ॥१०॥

भाषार्थः—(रात्रीभिः) रात्रियों के साथ और (अहभिः) दिनों के साथ (अस्मै) इस [भाई] को (सूर्यस्य) सूर्य की (चक्षुः) ज्योति (दशस्येत्) [सुमति] देवे और (मुहुः) बारम्वार (उत् मिमीयात्) फैली रहे। (दिवा) सूर्य के साथ और (पृथिव्या) पृथिवी के साथ (मिथुना) जोड़ा जोड़ा (सबन्धू) भाई के साथ वाले हैं, [फिर]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यमीः) जोड़िया बहिन (यमस्य) जोड़िया भाई के (अजामि) बिना सम्बन्ध से (ववृहात्) उद्यम करे ॥१०॥

भावार्थः—स्त्री का वचन है। हे भाई! सूर्य के प्रकाश में आंख खोल कर देख कि रात्रि और दिन बहिन भाई होकर पति पत्नी भाव से रहते हैं और सूर्य और पृथिवी के बीच सब पदार्थों में भी यही सम्बन्ध है, फिर मैं भी बहिन होकर अपने भाई से ही विवाह करूं ॥१०॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥११॥

भाषार्थः—(ता) वे (उत्तरा) अगले (युगानि) युग [समय] (घ) निःसन्देह (आ गच्छान्) आवें, (यत्र) जिन में (जामयः) कुल स्त्रियां [वा बहिनें] (अजामि) कुल स्त्रियों [वा बहिनों] के अयोग्य काम को (कृणवन्) करने लगें। (वृषभाय) श्रेष्ठ वर के लिये (बाहुम्) [अपनी] भुजा (उप बर्बृहि) आगे बढ़ा, (सुभगे) हे सुभगे! [बड़े ऐश्वर्य वाली] (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे (पतिम्) पति को (इच्छस्व) ढूंढ़ ॥११॥

भावार्थः - पुरुष का वचन है। चाहे कुल स्त्रियां धर्म छोड़ कर अधर्म करने लगें, मैं अधर्म न करूंगा, तू अपने लिये दूसरा पति वर के गृहस्थ आश्रम कर ॥११॥

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे३तद् रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥१२॥

भाषार्थः—(भ्राता) भाई (किम्) क्या (असत्) होवे, (यत्) जब [बहिन को] (अनाथम्) विन सहारा (भवाति) होवे, (उ) और (स्वसा) बहिन (किम्) क्या है (यत्) जब [भाई पर] (निर्ऋतिः) महाविपत्ति (निगच्छात्) आ पड़े। (काम-मूता) काम से बंधी हुई मैं (बहु) बहुत कुछ (एतत्) यह (रपामि) कहती हूं, (तन्वा) [अपने] शरीर से (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर को (सं पिपृग्धि) मिलकर छू ॥१२॥

भावार्थः—स्त्री का वचन है। वह भाई नहीं है जो बहिन की विपत्ति में सहाय न करे और न वह बहिन है जो भाई के कष्ट को न मिटावे। मैं काम से पीड़ित होकर तेरे साथ विवाह के लिये कहती हूं ॥१२॥

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यमि) हे यमी ! [जोड़िया बहिन] (अहम्) मैं (अत्र) इस [विषय] में (ते) तेरा (नाथम्) आश्रय (न) नहीं (अस्मि) हूं, (ते) तेरे (तनूम्) शरीर को (तन्वा) [अपने] शरीर से (न) नहीं (सम्) मिलकर (पपृच्याम्) छूऊंगा। (मत्) मुझ से (अन्येन) दूसरे [वर] के साथ (प्रमदः) आनन्दों को (कल्पयस्व) मना, (सुभगे) हे सुभगे ! [बड़े ऐश्वर्य वाली] (ते भ्राता) तेरा भाई (एतत्) यह (न) नहीं (वष्टि) चाहता है ॥१३॥

भावार्थः—पुरुष का वचन है। यह ठीक है कि हम दोनों भाई बहिन होकर विपत्ति में परस्पर सहाय करें, परन्तु धर्म छोड़कर बहिन से विवाह न करूंगा। मैं तुझ से कहता हूँ कि तू दूसरे योग्य वर से विवाह कर ले ॥१३॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऋग्वेद में है—१०।१०।१२॥

न वा उं ते तनूं तन्वा३' सं पंपृच्यां पापमांहुर्यः स्वसांरं निगच्छांत् ।
असंयदेतन्मनंसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयंने यच्छंयीय ॥१४॥

भाषार्थः—(वै उ) कभी भी (ते तनूम्) तेरे शरीर को (तन्वा) [अपने] शरीर से (न) नहीं (सम्) मिलकर (पपृच्याम्) छूऊंगा, [उस मनुष्य को] (पापम्) पापी (आहुः) वे [शिष्ट लोग] कहते हैं, (यः) जो (स्वसारम्) बहिन को (निगच्छात्) नीचपन से प्राप्त करे। (एतत्) यह [बात] (मे) मेरे (मनसः) मन [संकल्प] के और (हृदः) हृदय [निश्चय] के (असंयत्) असंगत है—(यत्) कि (भ्राता) मैं भाई (स्वसुः) बहिन की (शयने) सेज पर (शयीय) सोऊं ॥१४॥

भावार्थः—यह भी पुरुष का वचन है। मैं कभी भी तेरे साथ विवाह न करूंगा। बड़े लोग भाई के साथ बहिन का विवाह पाप मानते हैं और मैं भी अन्तःकरण से इसे पाप समझता हूँ ॥१४॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध ऋग्वेद में है—१०।१०।१२॥

बतो बंतासि यम नैव ते मनो हृदंयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परिं ष्वजातै लिबुंजेव वृक्षम् ॥१५॥

भाषार्थः—(बत) हा ! (यम) हे यम ! [जोड़िया भाई] तू (बतः) बड़ा निर्बल (असि) है, (ते) तेरे (मनः) मन [संकल्प] को (च) और (हृदयम्) हृदय [निश्चय] को (एव) निःसन्देह (न अविदाम) हम ने नहीं पाया। (अन्या) दूसरी स्त्री (किल) अवश्य (त्वाम्) तुझ से (परिष्वजातै) आलिङ्गन करेगी, (कक्ष्या इव)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे घोड़े की पेटी (युक्तम्) कसे हुए [घोड़े] से और (लिबुजा इव) जैसे बेल [लता] (वृक्षम्) वृक्ष से [लिपट जाती है] ॥१५॥

भावार्थः—स्त्री का वचन है। भाई! मैं ने तुझे इतना समझाया पर तूने मेरी बात न मानी, अवश्य मुझ से दूसरी स्त्री तेरे साथ विवाह कर के सुख भोगेगी ॥१५॥

मन्त्र १५ और १६ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१०। १०। १३, १४॥

अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजातै लिबुंजेव वृक्षम्।
तस्य वा त्वं मनं इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभंद्राम् ॥१६॥

भाषार्थः—(यमि) हे यमी! [जोड़िया बहिन] तू (अन्यम्) दूसरे पुरुष से (सु उ) अच्छे प्रकार [मिल], (उ) और (अन्यः) दूसरा पुरुष (त्वाम्) तुझ से (परि ष्वजातै) मिले, (लिबुजा इव) जैसे बेल [लता] (वृक्षम्) वृक्ष से। (वा) और (त्वम्) तू (तस्य) उसके (मनः) मन को (इच्छ) चाह, (वा) और (सः) वह (तव) तेरे [मन को चाहे], (अध) फिर तू (सुभद्राम्) बड़े मङ्गल युक्त (संविदम्) संगति (कृणुष्व) कर ॥१६॥

भावार्थः -पुरुष का अन्तिम वचन है। हे बहिन! तू प्रसन्न होकर दूसरे योग्य वर से विवाह कर ले। तुम दोनों परस्पर प्रीति बढ़ाकर आनन्द भोगो ॥१६॥

मन्त्राः ॥१७—२६॥

अग्निर्देवता [ऋग्वेदे १०। ११। १—९ यथा] ॥ १७ आर्षी त्रिष्टुप्; १८—२०, २२ निचृज्जगती; २१, २३ जगती; २४—२६ ॥ त्रिष्टुप् ॥

विद्वत्कर्मोपदेशः—विद्वानों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥१७॥

भाषार्थः - (कवयः) बुद्धिमानों ने (पुरुरूपम्) अनेक प्रकार निरूपण करने योग्य, (दर्शतम्) अदभुत गुण वाले (विश्वचक्षणम्) सब के देखने योग्य, (त्रीणि) तीन (छन्दांसि) आनन्द देने वाले पदार्थों को (वि) विविध प्रकार (येतिरे) यत्न में किया है। वे (आपः) जल, (वाताः) पवनें और (ओषधयः) ओषधें [सोमलता जौ, चावल आदि] हैं, (तानि) वे सब (एकस्मिन्) एक (भुवने) भुवन [सब के आधार परमात्मा] में (आर्पितानि) ठहरे हैं ॥१७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विद्वान् लोग अनेक प्रकार उपकारी जल, वायु और ओषधियों आदि के गुणों को विद्वानोंमें उपदेश करके लाभ उठावें और उनके कर्त्ता परमात्मा की महिमा जानकर उन्नति करें ॥१७॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ ऋतून् ॥१८॥

भाषार्थः—(यह्वः) महान्, (अदाभ्यः) न दबने वाले (वृषा) बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा ने (वृष्णे) पराक्रमी मनुष्य के लिये (दिवः) आनन्द देने वाली (अदितेः) अखण्ड वेदवाणी की (दोहसा) पूरणता से (पयांसि) अनेक रसों को (दुदुहे) भरपूर किया है। (वरुणः यथा) श्रेष्ठ पुरुष के समान (सः) वह [मनुष्य] (विश्वम्) संसार को (धिया) [अपनी] बुद्धि से (वेद) जानता है और (सः) वह (यज्ञियः) पूजनीय होकर (यज्ञियान्) पूजनीय (ऋतून्) ऋतुओं [उचित कालों] को (यजति) पूजता है ॥१८॥

भावार्थः—परमात्मा ने वेदद्वारा पुरुषार्थी के लिये संसार में अनेक ऐश्वर्य का उपदेश किया है। वही ज्ञानी पुरुष श्रेष्ठों के समान आचरण करके उचित समय को न खोकर संसार का उपकार करता है ॥१८॥

मन्त्र १८—२४ कुछ भेद वा अभेद से ऋग्वेद में हैं—१० । ११ । १-७ ॥

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥१९॥

भाषार्थः—(गन्धर्वीः) विद्वानों को धारण करने वाली, (अप्या) सत्कर्मों में प्रसिद्ध (च) और (योषणा) सेवने योग्य [वेद वाणी] (रपत्) स्पष्ट कहती है—कि वह [वेदवाणी] (नदस्य) स्तोता [गुणज्ञ] पुरुष के (नादे) सत्कार में (नः) हमारे (मनः) मन [वा विज्ञान] की (परि) सब ओर से (पातु) रक्षा करे। (अदितिः) अखण्ड वेदवाणी (इष्टस्य) अभीष्ट सुख के (मध्ये) बीच में (नः) हमें (नि) नित्य (धातु) रक्खे, (भ्राता) भाई [के समान हितकारी] (ज्येष्ठः) अतिश्रेष्ठ (प्रथमः) मुख्य पुरुष (नः) हम को (वि) अनेक प्रकार (वोचति) उपदेश करे ॥१९॥

भावार्थः – वेदवाणी हमें उपदेश करती है कि मनुष्य गुणों के जानने से अपनी रक्षा करता और अभीष्ट सुख पाता है, श्रेष्ठ विद्वान् परस्पर यही उपदेश करे ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥२०॥

भाषार्थः—(सो) वही (चित्) निश्चय करके (नु) अब (भद्रा) कल्याणी, (क्षुमती) अन्न वाली, (यशस्वती) यश वाली, (स्वर्वती) बड़े सुख वाली [वेदवाणी], (उषाः) उषा [प्रभात वेला के समान], (मनवे) मनुष्य के लिये (उवास) प्रकाशमान हुई है। (यत्) क्योंकि (ईम्) इस [वेदवाणी] को (उशन्तम्) चाहने वाले, (होतारम्) दानी (अग्निम्) विद्वान् पुरुष को (उशताम् अभिलाषी पुरुषों की (क्रतुम् अनु) बुद्धि के साथ (विदथाय) ज्ञान समाज के लिये (जीजनन्) उन्होंने [विद्वानों ने] उत्पन्न किया है ॥२०॥

भावार्थः—परमात्मा ने मनुष्य के कल्याण के लिये वेदवाणी को सूर्य के प्रकाश के समान संसार में प्रकट किया है। जो मनुष्य वेदज्ञाता महाविद्वान् होवे, विद्वान् लोग उसको मुखिया बनाकर समाज का सुख बढ़ावें ॥२०॥

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥२१॥

भाषार्थः—(अध) और (त्यम्) उस (द्रप्सम्) हर्ष देने वाले, (विभ्वम्) बली (विचक्षणम्) चतुर [विद्वान्] पुरुष को (श्येनः) श्येन [बाज] (विः) पक्षी [के समान] (इषिरः) फुरतीला [आचार्य आदि] (अध्वरे) यज्ञ में (आ अभरत्) लाया है। (यदि) यदि (आर्याः) आर्य [श्रेष्ठ] (विशः) मनुष्य (दस्मम्) दर्शनीय, (होतारम्) दानी (अग्निम्) विद्वान् पुरुष को (वृणते) चुने, (अध) तब (धीः) वह कर्म (अजायत) हो जावे ॥२१॥

भावार्थः- जिस विद्वान् दूरदर्शी जन को उत्तम गुणों के कारण विद्वान् आचार्य आदि प्रसिद्ध करें उसको श्रेष्ठ लोग प्रधान बनाकर कार्य सिद्ध करें ॥२१॥

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो३ वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥२२॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् ! (स्वध्वरः) सुन्दर यज्ञ वाला होकर (मनुषः) ज्ञान की (होत्राभिः) वाणियों से (पुष्यते) पुष्ट करने वाले [मनुष्य] के लिये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यवसा इव) जैसे घास [गौ आदि के लिये] (सदा) सदा तू (रण्वः) रमणीय [सुख-दायक] (असि] होता है। (वा) और (यत्) क्योंकि (विप्रस्य) विद्वान् [आचार्य आदि] के (वाजम्) विज्ञान को (ससवान्) सेवन कर चुका हुआ, (शशमानः) फुरतीला, (भूरिभिः) बहुत [उत्तम पुरुषों] से (उक्थ्यः) स्तुतियोग्य तू (उपयासि) आता है ॥२२॥

भावार्थः—विद्वान् को योग्य है कि ज्ञानदाता आचार्य आदि को अपने सत्कर्मों से सदा प्रसन्न रक्खे, क्योंकि उन्हीं महात्माओं की कृपा से वह विज्ञान प्राप्त करके संसार में विख्यात हुआ है ॥२२॥

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥२३॥

भाषार्थः—[हे विद्वान्!] (जारःआ) स्तोता [गुणज्ञ पुरुष] के समान (पितरा) माता पिता को (भगम्) ऐश्वर्य की ओर (उत् ईरय) ऊंचा पहुंचा, [क्योंकि] (हर्यतः) [शुभगुणों का] चाहने वाला (हृत्तः) हृदय से (इयक्षति) [उन्हें] पूजना चाहता है और (इष्यति) चलता है। (वह्निः) भार उठाने वाला (विवक्ति) बोलता है, (मखः) उद्योगी (स्वपस्यते) सत्कर्म करना चाहता है और (असुरः) प्राण-वान् [बलवान्] (तविष्यते) महान् होना चाहता है, और (मती) बुद्धि के साथ (वेपते) चेष्टा करता है ॥२३॥

भावार्थः—विद्वान् कृतज्ञ पुरुष धन आदि से माता पिता की सेवा करे, क्योंकि वृद्धों की सेवा से मनुष्य पुरुषार्थी होकर जगत् में बड़ा होता है ॥२३॥

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ॥२४॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान्! (यः मर्तः) जो मनुष्य (ते) तेरी (सुमतिम्) सुमति को (अख्यत्) बखानता है, (सहसः सूनो) हे बलवान् पुरुष के पुत्र! (सः) वह (अति) अति (प्र) बड़ाई से (शृण्वे) सुना जाता है [यशस्वी होता है]। और (सः) वह (इषम्) अन्न (दधानः) रखता हुआ, (अश्वैः) घोड़ों से (वहमानः) ले जाता हुआ, (द्युमान्) प्रकाशमान और (अमवान्) पराक्रमी होकर (द्यून्) दिनों को (आ) सब प्रकार (भूषति) सुधारता है ॥२४॥

भावार्थः—जो मनुष्य कुलीन बली विद्वानों की सुमति पर चलता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वह यशस्वी, धनी और पराक्रमी होकर संसार का उपकार करता है ॥२४॥

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥२५॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् ! (सधस्थे) मिलकर बैठने योग्य (सदने) बैठक [समाज] में (नः) हमारी [बात] (श्रुधि) सुन,—(अमृतस्य) अमृत [अमरपन, पुरुषार्थ] के (द्रवित्नुम्) वेग वाले (रथम्) रथ को (युक्ष्व) जोड़। (नः) हमारे लिये (रोदसी) भूमि और सूर्य [के समान उपकारी] (देवपुत्रे) विद्वानों को पुत्र रखने वाले [दो प्रजायें अर्थात् माता पिता] को (आ वह) ला, (देवानाम्) विद्वानों के बीच (माकिः) न कभी (अप भूः) तू दूर हो, (इह) यहां [हम में] (स्याः) रह ॥२५॥

भावार्थः— विद्वान् लोग सभा के बीच अधिक विद्वान् पुरुष को प्रधान बनाकर व्यवस्था करें कि सब माता पिता विज्ञानपूर्वक उत्तम सन्तान उत्पन्न करके संसार का उपकार करें और विद्वानों से आदरपूर्वक मिलते रहें ॥२५॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ११ । ६ ॥

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र । रत्ना च
यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥२६॥

भाषार्थः—(यजत्र) हे संगति योग्य ! (अग्ने) हे विद्वान् ! (यत्) जब (एषा) यह (समितिः) समिति [सभा] (देवेषु) विद्वानों के बीच (देवी) विज्ञानवती और (यजता) संगति योग्य (भवाति) होवे। (च) और (यत्) जब, (स्वधावः) हे आत्मधारी ! तू (रत्ना) रत्नों को (विभजासि) बांटे, (नः) हमारे लिये (अत्र) यहां [संसार में] (वसुमन्तम्) बहुत धन युक्त (भागम्) भाग (वीतात्) भेज ॥२६॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सत्संग से सार्वभौम विद्यासभा बनाकर विज्ञान का प्रचार करें जिससे लोग गुणी होकर धनी होवें ॥२६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में हैं—१० । ११ । ८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्राः ॥२७—३६॥

अग्निर्देवता [ऋग्वेदे १०। १२। १-९ यथा] ॥ २७—२९, ३१, ३३ त्रिष्टुप्, ३०, ३२, ३५, ३६ निचृत् त्रिष्टुप्; ३४ विराट् त्रिष्टुप् ॥

परमात्मगुणोपदेशः—परमात्मा के गुणों का उपदेश ॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्यं उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥२७॥

भाषार्थः—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) विकाश को (अनु) निरन्तर, [उसी] (प्रथमः) सब से पहिले वर्तमान (जातवेदाः) उत्पन्न वस्तुओं के ज्ञान कराने वाले परमेश्वर ने (अहानि) दिनों को (अनु) निरन्तर (अख्यत्) प्रसिद्ध किया है। (सूर्यः) [उसी] सूर्य [सब में व्यापक वा सबको चलाने वाले परमेश्वर] ने (उषसः) उषाओं में (अनु) लगातार, (रश्मीन्) व्यापक किरणों में (अनु) लगातार, (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी में (अनु) लगातार (आविवेश) प्रवेश किया है ॥२७॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों को रचकर सब को अपने वश में कर रक्खा है, वही सब मनुष्यों का उपास्य है ॥२७॥

मन्त्र २७, २८ आ चुके हैं—अ० ७। ८२। ४, ५ ॥

मन्त्र २७ का प्रथम पाद ऋग्वेद में है—४। १३। १ ॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः । प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥२८॥

भाषार्थः—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) विकाश को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से, [उसी] (प्रथमः) सब से पहिले वर्तमान (जातवेदाः) उत्पन्न वस्तुओं के ज्ञान कराने वाले परमेश्वर ने (अहानि) दिनों को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (अख्यत्) प्रसिद्ध किया है (च) और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मीन्) व्यापक किरणों को (पुरुधा) अनेक प्रकार (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से, और (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोकों को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (आ) सब ओर (ततान) फैलाया है ॥२८॥

भावार्थः—सब जगत् के उत्पादक और सर्वनियन्ता ईश्वर की महिमा को विचार कर मनुष्य अपनी उन्नति करें ॥२८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥२९॥

भाषार्थः—(द्यावा क्षामा) सूर्य और पृथिवी [के समान उपकारी], (प्रथमे) मुख्य, (सत्यवाचा) सत्यवाणी वाली [दो प्रजायें स्त्री और पुरुष] (ह) निश्चय करके (ऋतेन) सत्य धर्म से (अभिश्रावे) पूरी कीर्ति के बीच (भवतः) होते हैं। (यत्) क्योंकि (होता) दानी, (देवः) प्रकाशमान [परमेश्वर] (मर्तान्) मनुष्यों को (यजथाय) परस्पर मिलने के लिये (कृण्वन्) बनाता हुआ और (स्वम्) अपनी (असुम्) बुद्धि को (यन्) प्राप्त होता हुआ (प्रत्यङ्) सामने (सीदत्) बैठता है ॥२९॥

भावार्थः—सब में मुख्य सर्वोपकारी स्त्री पुरुष ही कीर्त्ति पाते हैं, क्योंकि सर्वव्यापक परमात्मा मनुष्यों को परस्पर सहायक बनाकर कर्मों का फल देने के लिये अपने ज्ञान से सब के सन्मुख रहता है ॥२९॥

मन्त्र २९, ३० ऋग्वेद में हैं १० । १२ । १,२ ॥

देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥३०॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (देवः) प्रकाशमान, (ऋतेन) सत्य धर्म से (देवान्) गतिमान् लोकों में (परिभूः) व्यापता हुआ, (प्रथमः) पहिले से वर्तमान (चिकित्वान्) [सब] जानता हुआ तू (नः) हमारे लिये (हव्यम्) ग्राह्य पदार्थ (वह) पहुँचा। (समिधा) समिधा [काष्ठ आदि] से (धूमकेतुः) धुयें के झंडे वाले [अग्नि-रूप] तू (भाऋजीकः) बड़े प्रकाश वाला, (मन्द्रः) आनन्द दाता, (होता) दानकर्ता (नित्यः) सदा वर्तमान और (वाचा) वाणी द्वारा (यजीयान्) अति संयोग करने वाला है ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्य अनादि अनन्त सर्वस्रष्टा परमात्मा को सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता और सर्वज्ञ जानकर पुरुषार्थ के साथ ग्राह्य पदार्थों का उपार्जन करें ॥३०॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥३१॥

भाषार्थः—(घृतस्नू) हे जल समान [व्यवहार को] शुद्ध करने वाले !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[दोनों माता पिता] (वर्धाय) [अपने] वढ़ने के लिये (वाम्) तुम दोनों के (अपः) कर्म की (अर्चामि) मैं पूजा करता हूं, (रोदसी) हे व्यवहार की रक्षक ! [दो प्रजाओ] तुम (द्यावाभूमी) सूर्य और भूमि [के समान उपकारी होकर] (मे) मेरी (शृणुतम्) सुनो । (यत्) क्योंकि (अहा) दिन और (देवाः) गतिमान् लोक (असुनीतिम्) प्राणदाता [परमात्मा] को (आयन्) प्राप्त होते हैं, (अत्र) यहां [संसार में] (नः) हमें (पितरा) माता पिता [आप दोनों] (मध्वा) ज्ञान से (शिशीताम्) तीक्ष्ण करें ॥३१॥

भावार्थः - जो माता पिता आदि पूजनीय विद्वानों के कर्मों से और संसार के विविध पदार्थों से परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे ही महाज्ञानी होते हैं ॥३१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १२ । ४॥

स्वावृंग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३२॥

भाषार्थः—(यदि) जब कि (देवस्य) प्रकाशमय परमेश्वर का (अमृतम्) अमृत [जीवन सामर्थ्यं] (गोः) पृथिवी के लिये (स्वावृक्) सहज में पाने योग्य है, (अतः) इसी [जीवन सामर्थ्यं] से (जातासः) उत्पन्न हुए प्राणी (उर्वी) पृथिवी पर (धारयन्ते) [अपने को] रखते हैं। हे परमात्मन् ! (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (ते) तेरे (तत्) उस (यजुः अनु) पूजनीय कर्म के पीछे (गुः) चलते हैं, (यत्) क्योंकि (एनी) चलने वाली भूमि (दिव्यम्) श्रेष्ठ (घृतम्) सार युक्त (वाः) वरणीय उत्तम पदार्थ (दुहे) भरपूर करती है ॥३२॥

भावार्थः—परमेश्वर ने प्राणियों के पालन के लिये पृथिवी पर प्रकाश, वायु, जल, अन्न आदि अनेक पदार्थं स्वयं पाने योग्य बनाये हैं, सब विद्वान् लोग परमेश्वर के नियमों को समझ कर संसार में अनेक लाभ उठाते हैं ॥३२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है १० । १२ । ३ ॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवांछ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥३३॥

भाषार्थः—(किं स्वित्) क्यों [किस कर्म फल से] (नः) हमें (राजा) राजा [परमेश्वर] ने (जगृहे) ग्रहण किया है [सुख दिया है], (कत्) कब (अस्य) इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[परमात्मा] के (व्रतम्) नियम को (अति चकृम) हम ने उल्लंघन किया है [जिस से क्लेश पाया है], (कः) प्रजापति परमेश्वर [इस को] (वि) विविध प्रकार (वेद) जानता है। (हि) क्योंकि (मित्रः) सब का मित्र [परमात्मा] (चित्) ही (स्म) अवश्य (देवान्) उन्मत्तों को (जुहुराणः) मरोड़ देने वाला और (याताम्) गतिशीलों [पुरुषार्थियों] का (अपि) ही (श्लोकः न) स्तुति के समान (वाजः) बल (अस्ति) है ॥३३॥

भावार्थः—पूर्वजन्म के फल की व्यवस्था को, जो हमारे अकस्मात् सुख दुःख का कारण है, परमेश्वर जानता है, परन्तु वह अपनी न्याय-व्यवस्था से उन्मत्त आलसियों को कष्ट और उद्योगियों को सुख देता है ॥३३॥

मन्त्र ३३—३६ ऋग्वेद में हैं—१०। १२। ५—३८ ॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥३४॥

भाषार्थः—(अत्र) यहां [संसार में] (अमृतस्य) अमर [अविनाशी परमात्मा] का (नाम) नाम (दुर्मन्तु) दुर्माननीय [सर्वथा अपूजनीय] [होवे], (यत्) यदि (सलक्ष्मा) एक से लक्षण वाली [धर्मव्यवस्था] (विषुरूपा) नाना स्वभाव वाली [चंचल, अधार्मिक] (भवाति) हो जावे। (यः) जो कोई [मनुष्य] (यमस्य) [तुझ] न्यायकारी परमेश्वर के [नाम को] (सुमन्तु) बड़ा माननीय (मनवते) मानता है, (अग्ने) हे ज्ञानमय ! (ऋष्व) हे महान् परमेश्वर ! (तम्) उसको (अप्रयुच्छन्) विना चूके हुए (पाहि) पाल ॥३४॥

भावार्थः—जो परमात्मा अन्याय करे तो सब संसार उलट पलट हो जावे। जो कोई मनुष्य उस की न्यायव्यवस्था पर चलते हैं, वे सुख पाते हैं ॥३४॥

इस मन्त्र का दूसरा पाद मन्त्र २ में आया है ॥

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥३५॥

भाषार्थः—(यस्मिन्) जिस [परमात्मा] में (देवाः) दिव्य नियम (विदथे) विज्ञान के बीच (मादयन्ते) तृप्त रहते हैं और (विवस्वतः) प्रकाशमय [परमेश्वर] के (सदने) घर [ब्रह्माण्ड] में (धारयन्ते) [अपने को] ठहराते हैं। (सूर्ये) सूर्य में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ज्योतिः) ज्योति और (मासि) चन्द्रमा में (अक्तून्) [सूर्य की] किरणों को (अदधुः) उन [नियमों] ने रक्खा है, (अजस्रा) निरन्तर वे दोनों (द्योतनिम्) उस प्रकाशमान [परमात्मा] की (परि चरतः) सेवा करते हैं ॥३५॥

भावार्थः—ऋषि मुनि लोग ध्यान लगाकर जिस परमात्मा के ज्ञान का प्रचार संसार में फैलाते हैं, उसी परमेश्वर के नियम से सूर्य चन्द्र आदि लोक उपकार करते हैं ॥३५॥

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥३६॥

भावार्थः—(यस्मिन्) जिस [परमात्मा] में (देवाः) दिव्य नियम (अपीच्ये) गुप्त (मन्मनि) ज्ञान के बीच (संचरन्ति) चलते रहते हैं, (वयम्) हम लोग (अस्य) उसे (न) नहीं (विद्म) जानते हैं। (मित्रः) सब का मित्र, (अदितिः) अखण्ड, (सविता) सब का उत्पन्न करने हारा, (देवः) प्रकाशमान परमात्मा (अनागान् नः) हम निरपराधियों [धार्मिक पुरुषार्थियों] को (अत्र) इस [विषय] में (वरुणाय) श्रेष्ठ गुण के लिये (वोचत्) उपदेश करे ॥३६॥

भावार्थः—परमात्मा के नियम संसार में ऐसे गुप्त हैं कि जितना जितना विद्वान् लोग उन्हें खोजते हैं, उतना ही अधिक जानते जाते हैं। मनुष्य निरालसी होकर परमेश्वर की शरण में रहकर सदा पुरुषार्थ करें ॥३६॥

मन्त्रौ ॥३७, ३८॥

इन्द्रो देवता [ऋग्वेदे ८ । २४ । १, २ यथा] ॥ ३७ निचृदुष्णिक् ३८ उष्णिक् ॥

राजनिर्वाचनोपदेशः—राजा के चुनाव का उपदेश ॥

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ॥३७॥

भाषार्थः—(सखायः) हे मित्रो ! (वज्रिणे) वज्र [अस्त्र-शस्त्र] रखने वाले, (नृतमाय) बहुत बड़े नेता, (धृष्णवे) साहसी (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] को (ब्रह्म) ब्रह्म ज्ञान (स्तुषे) स्तुति करने के लिये (उ) अवश्य (सु) भले प्रकार (आ शिषामहे) हम निवेदन करें ॥३७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सब विद्वान् लोग महागुणी, नीतिज्ञ पुरुषार्थी मनुष्य को राजसिंहासन पर विराजने के लिये निवेदन करें ॥३७॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८। २४। १ और सामवेद में पू० ४। १०। १०॥

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।

मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥३८॥

भाषार्थः—(हि) क्योंकि, (शूर) हे शूर ! तू (शवसा) बल से (श्रुतः) विख्यात और (वृत्रहत्येन) दुष्टों के मारने से (वृत्रहा) दुष्ट नाशक (असि) है, और (मघैः) धनों के कारण (मघोनः अति) धन वालों से बढ़कर (दाशसि) तू दान करता है ॥३८॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप महाबली, शत्रुनाशक और सुपात्रों के लिये बहुत दान देने वाले है, इन गुणों से हम आप को राजा बनाते हैं ॥३८॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८। २४। २॥

मन्त्रः ॥३९॥

मित्रो देवता ॥ निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजकृत्योपदेशः—राजा के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।

मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥३९॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (स्तेगः न) संग्रहकर्ता पुरुष के समान (क्षाम्) निवास देने वाली (पृथिवीम् अति) पृथिवी पर (एषि) तू चलता है, (वाताः) वायुओं [के समान वेग वाले पुरुष] (इह) यहां पर [राज्य में] (नः) हमारे लिये (मही) बड़ी (भूमौ) भूमि पर (वान्तु) चलें। (अत्र) यहां पर (नः) हमारे (युज्यमानः) मिलते हुए (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) मित्र [आप] ने (शोकम्) प्रताप को (वि) दूर दूर (असृष्ट) फैलाया है, (अग्निः न) जैसे आग (वने) वन में [ताप फैलाता है] ॥३९॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि बहुत धन का संग्रह करके राज्य की रक्षा करे और प्रजागणों को उद्योगी बना कर शत्रुओं को मारे ॥३९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ३१। ९। और वहां [विश्वेदेवाः] देवता है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रः ॥४०॥

रुद्रो देवता [ऋग्वेदे २ । ३३ । ११ यथा] ॥ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

राजकृत्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृड जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥४०॥

भाषार्थः—(रुद्र) हे रुद्र ! [शत्रुनाशक राजन्] (श्रुतम्) विख्यात, (गर्तसदम्) रथ पर बैठने वाले, (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (राजानम्) शोभायमान, (भीमम्) भयङ्कर, (उपहत्नुम्) बड़े मारने वाले, (उग्रम्) प्रचण्ड [सेनापति] की (स्तुहि) बड़ाई कर। और (स्तवानः) बड़ाई किया गया तू (जरित्रे) बड़ाई करने वाले के लिये (मृड) सुखी हो, (अस्मत्) हम से (अन्यम्) दूसरे पुरुष [अर्थात् शत्रु] को (ते) तेरे (सेन्यम्) सेनादल (नि वपन्तु) काट डालें ॥४०॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि बड़े बड़े शूर सेनापतियों की बड़ाई करके आदर करे, और जो प्रजागण आदि राजा के श्रेष्ठ गुणों की स्तुति करें, वह उन्हें प्रसन्न करे और धर्मात्माओं की रक्षा करके शत्रुओं का नाश करे ॥४०॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है। २। ३३। ११॥

मन्त्राः ॥४१—४३॥

सरस्वती देवता [ऋग्वेदे १०। १७। ७–९ यथा] ॥ ४१, ४२ निचृत् त्रिष्टुप्, ४३ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

सरस्वत्यावाहनोपदेशः—सरस्वती के आवाहन का उपदेश ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४१॥

भाषार्थः—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या] को, (सरस्वतीम्) उसी सरस्वती को (देवयन्तः) दिव्यगुणों को चाहने वाले पुरुष (तायमाने) विस्तृत होते हुए (अध्वरे) हिंसा रहित व्यवहार में (हवन्ते) बुलाते हैं। (सरस्वतीम्) सरस्वती को (सुकृतः) सुकृती लोग (हवन्ते) बुलाते हैं, (सरस्वती) सरस्वती (दाशुषे) अपने भक्त को (वार्यम्) श्रेष्ठ पदार्थ (दात्) देती हैं ॥४१॥

भावार्थः—विज्ञानी लोग परिश्रम के साथ आदरपूर्वक वेदविद्या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अभ्यास करके पुण्य कर्म करते और मोक्ष आदि इष्ट पदार्थ पाते हैं ॥४१॥

१—मन्त्र ४१—४३ । कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं १० । १७ । ७–९ ॥

२—इस सूक्त का मिलान करो—अ० ७ । ६८ । १–३ ॥

३—यह तीनों मन्त्र आगे भी हैं अ० १८ । ४ । ४५—४७ ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४२॥

भाषार्थः—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या] को (दक्षिणा) सरल मार्ग में (यज्ञम्) यज्ञ [संयोगव्यवहार] को (अभिनक्षमाणाः) प्राप्त करते हुए (पितरः) पितर [पालन करने वाले विज्ञानी] लोग (हवन्ते) बुलाते हैं। [हे विद्वानो !] (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) वृद्धि कर्म में (आसद्य) बैठकर (मादयध्वम्) [सब को] तृप्त करो, [हे सरस्वती !] (अस्मे) हम में (अनमीवाः) पीड़ा रहित (इषः) इच्छायें (आ धेहि) स्थापित कर ॥४२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग निर्विघ्न होकर सरल रीति में सबसे मिलकर वेदविद्या के प्रचार से विज्ञान की वृद्धि और इष्ट पदार्थ की सिद्धि करते हैं ॥४२॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥४३॥

भाषार्थः—(सरस्वति) हे सरस्वती ! [विज्ञानवती वेदविद्या] (देवि) हे देवी! [उत्तम गुण वाली] (या) जो तू (उक्थैः) वेदोक्त स्तोत्रों से (सरथम्) रमणीय गुणों वाली होकर और (स्वधाभिः) आत्मधारण शक्तियों के सहित [विराजमान] (पितृभि.) पितरों [विज्ञानियों] के साथ (मदन्ती) तृप्ति होती हुई (ययाथ) प्राप्त हुई है। सो तू (अत्र) यहां (इडः) विद्या के (सहस्रार्घम्) सहस्रों प्रकार पूजनीय (भागम्) भाग को और (रायः) धन की (पोषम्) वृद्धि को (यजमानाय) यजमान [विद्वानों के सत्कारी] के लिये (धेहि) दान कर ॥४३॥

भावार्थः—आत्मविश्वासी विज्ञानी लोग वेदविद्या प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं। सब मनुष्य विद्वानों के सत्संग से वेदविद्या ग्रहण करके धन आदि की वृद्धि करें ॥४३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्राः ॥४४—४६॥

पितरो देवताः [ऋग्वेद १०। १५। १—३ यथा] ॥ ४४, ४६ निचृत् त्रिष्टुप् ४५ त्रिष्टुप् ॥

पितृसत्कारोपदेशः—पितरों के सत्कार का उपदेश ॥

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४४॥

भाषार्थः—(**अवरे**) छोटे पद वाले (**सोम्यासः**) ऐश्वर्य के हितकारी, (**पितरः**) पितर [पालन करने वाले विद्वान्] (**उत्**) उत्तमता से, (**परासः**) ऊंचे पद वाले (**उत्**) उत्तमता से और (**मध्यमाः**) मध्य पद वाले (**उत्**) उत्तमता से (**ईरताम्**) चलें। (**ये**) जिन (**अवृकाः**) भेड़िये वा चोर का स्वभाव न रखने वाले, (**ऋतज्ञाः**) सत्य धर्म जानने वाले [विद्वानों] ने (**असुम्**) प्राण [बल वा जीवन] (**ईयुः**) पाया है (**ते**) वे (**पितरः**) पितर [पालन करने वाले] लोग (**नः**) हमें (**हवेषु**) संग्रामों में (**अवन्तु**) बचावें ॥४४॥

भावार्थः—प्रधान पुरुष को चाहिये कि विद्या, कर्म और स्वभाव की योग्यता के अनुसार विद्वानों का सत्कार करे, जिससे वे लोग सब की रक्षा करने में सदा तत्पर रहें ॥४४॥

मन्त्र ४४—४६ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१०। १५। १, ३, २ और यजुर्वेद में १९। ४९, ५६, ६८ और महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पितृयज्ञ विषय में भी व्याख्यात हैं ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ।४५॥

भाषार्थः—(**अहम्**) मैं ने (**विष्णोः**) विष्णु [सर्वव्यापक परमात्मा] से (**सुविदत्रान्**) बड़े ज्ञानी वा बड़े धनी (**पितॄन्**) पितरों [पालने वाले विद्वानों] को (**च च**) और भी (**नपातम्**) न गिरने वाली (**विक्रमणम्**) विविध प्रवृत्ति को (**आ अवित्सि**) पाया है। (**ये**) जिन आप (**बर्हिषदः**) उत्तम पद पर बैठने वालों ने (**स्वधया**) अपनी धारण शक्ति से (**सुतस्य**) ऐश्वर्य युक्त (**पित्वः**) रक्षा साधन अन्न का (**भजन्त**) सेवन किया है, (**ते**) वे तुम सब (**इह**) यहां (**आगमिष्ठाः**) आये हो ॥४५॥

भावार्थः—प्रधान पुरुष परमात्मा की कृपा से धर्मात्माओं के साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य कुशलता को प्राप्त करे और जो बड़े पराक्रमी विद्वान् हों, उनका उचित सत्कार करके प्रजा की रक्षा करे ॥४५॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥४६॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (नमः) अन्न (पितृभ्यः) उन पितरों [पालन करने वाले वीरों] के लिये (अद्य) आज (अस्तु) होवे, (ये) जो (पूर्वासः) पहिले [विद्वान्] होकर और (ये) जो (अपरासः) अर्वाचीन [नवीन विद्वान्] होकर (ईयुः) चले हैं। (ये) जो (पार्थिवे) भूमि विद्या [राजनीति आदि] सम्बन्धी (रजसि) समाज में (आ) आकर (निषत्ताः) बैठे हैं, (वा) और (ये) जो (नूनम्) निश्चय करके (सुवृजनासु) बड़े बल [गढ़ सेना आदि] वाली (दिक्षु) दिशाओं में हैं ॥४६॥

भावार्थः—राजा उन वृद्ध और युवा विद्वानों का यथोचित आदर करे जो नीतिकुशल होकर भूमि सम्बन्धी अनेक विद्याओं का प्रचार करके राज्य की उन्नति करें ॥४६॥

मन्त्रः ॥४७॥

पितरो देवताः ॥ त्रिष्टुप्छन्दः ॥

पितृकर्त्तव्योपदेशः—पितरों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४७॥

भाषार्थः—(मातली) ऐश्वर्य सिद्ध करने वाला, (यमः) संयमी और (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का रक्षक पुरुष] (कव्यैः) बुद्धिमानों के हितकारी (अङ्गिरोभिः) विज्ञानी महर्षियों द्वारा (ऋक्वभिः) बड़ाई वाले कामों से (वावृधानः) बढ़ने वाला होता है। (च) और (यान्) जिन [पितरों] को (देवाः) विद्वानों ने (वावृधुः) बढ़ाया है, (च) और (ये) जिन [पितरों] ने (देवान्) विद्वानों को [बढ़ाया है], (ते) वे (पितरः) पितर [पालन करने वाले] लोग (नः) हमें (हवेषु) संग्रामों में (अवन्तु) बचावें ॥४७॥

भावार्थः—ऐश्वर्य चाहने वाला जितेन्द्रिय पुरुष बड़े बड़े विद्वानों के उपदेश और वेदादि शास्त्रों के मनन से उन्नति करके संसार की रक्षा करे ॥४७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १४। ३ और ऋग्वेद पाठ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ।।

मन्त्रः ।।४८।।

सोमो देवता [ऋग्वेद ६ । ४७ । १ यथा] ।। त्रिष्टुप् छन्दः ।।

शूरवीरलक्षणोपदेशः—शूरवीर के लक्षण का उपदेश ।।

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ।।४८।।

भाषार्थः—(अयम्) यह [सोम अर्थात् विद्यारस वा सोमलता आदि रस] (किल) निश्चय करके (स्वादुः) बड़ा स्वादु, (अयम्) यह (मधुमान्) विज्ञान युक्त [वा मधुर गुण युक्त], (उत) और (अयम्) यह (किल) निश्चय करके (तीव्रः) तेजस्वी, (उत) और (अयम्) यह (रसवान्) उत्तम रस वाला [बड़ा वीर्यवान्] है। (उतो) और भी (नु) अब (अस्य) इस [रस] के (पपिवांसम्) पी चुकने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले शूरपुरुष] को (कः चन) कोई भी (आहवेषु) संग्रामों में (न) नहीं (सहते) हराता है।।४८।।

भावार्थः—जो मनुष्य जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी होकर विद्यारस को तथा परीक्षित महौषधियों के रस को चखकर तेजस्वी होते हैं, वे ही युद्धों में शत्रुओं को हराते हैं ।।४८।।

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—६ । ४७ । १ ।

मन्त्रौ ४९, ५० ।।

यमो देवता [ऋग्वेदे १० । १४ । १, २ यथा] ।। ४९ भुरिक् त्रिष्टुप्; ५० निचृत् त्रिष्टुप् ।।

परमात्मशक्त्युपदेशः—परमात्मा की शक्ति का उपदेश ।।

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ।।४९।।

भाषार्थः—(प्रवतः) उत्तम गति वाली (महीः) बड़ी भूमियों को (परेयिवांसम्) पराक्रम से पहुँच चुके हुए, (इति) इसी से, (बहुभ्यः) बहुत से [लोकों और जीवों] के लिये (पन्थाम्) मार्ग (अनुपस्पशानम्) गांठने वाले (वैवस्वतम्) सूर्य लोकों में विदित, (जनानाम्) मनुष्यों के (संगमनम्) मेल कराने वाले (यमम्) यम [न्याय-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारी परमात्मा] (राजानम्) राजा [शासक] का (हविषा) भक्ति के साथ (सपर्यत) तुम पूजो ॥४९॥

भावार्थः—जो परमात्मा सब लोकों में व्यापक और सूर्य आदि का आकर्षक और मनुष्य आदि का नियामक है, सब लोग उसकी उपासना से उन्नति करें ॥४९॥

मन्त्र ४९, ५० कुछ भेद से ऋग्वेद में—१० । १४ । १, २ । और ऋग्वेद पाठ महर्षिदयानन्द कृत संस्कार विधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत हैं ॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ । यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥५०॥

भाषार्थः—(प्रथमः) सब से पहिले वर्तमान (यमः) यम [न्यायकारी परमात्मा] ने (नः) हमारे लिये (गातुम्) मार्ग (विवेद) जाना, (एषा) यह (गव्यूतिः) मार्ग (उ) कभी (अपभर्तवै) हटा धरने योग्य (न) नहीं है । (यत्र) जिस [मार्ग] में (नः) हमारे (पूर्वे) पहिले (पितरः) पितर [पालन करने वाले बड़े लोग] (परेताः) पराक्रम से चले हैं, (एना) उसी से (जज्ञानाः) उत्पन्न हुए [प्राणी] (स्वाः) अपनी अपनी (पथ्याः अनु) सड़कों पर [चलें] ॥५०॥

भावार्थः—परमात्मा ने पहिले से पहिले सब के लिये वेदमार्ग खोल दिया है, जिस प्रकार हमारे पूर्वजों ने उस मार्ग पर चलकर यश पाया है, उसी वेदमार्ग पर चलकर सब मनुष्य उन्नति करें ॥५०॥

मन्त्रौ ५१ । ५२ ॥

पितरो देवताः [ऋग्वेदे १० । १५ । ४, ६ यथा] ॥ ५१ विराडार्षी त्रिष्टुप्; ५२ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

पितृसन्तानकर्त्तव्योपदेशः—पितरों और सन्तानों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् । त आ गतावसा शंतमेनाधा नः शं योररपो दधात ॥५१॥

भाषार्थः—(बर्हिषदः) हे उत्तम पद पर बैठने हारे (पितरः) पितरो [पालने वाले वीरो] (ऊती) रक्षा के साथ (अर्वाक्) सामने [होकर] (इमा) इन (हव्या) ग्राह्य भोजन आदि को (जुषध्वम्) सेवन करो [जिन को] (वः) तुम्हारे लिये (चकृम) हमने बनाया है । (ते) वे तुम (शन्तमेन) अत्यन्त सुखदायक (अवसा) रक्षा के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ (आ गत) आओ, (अध) फिर (नः) हमारे लिये (शम्) सुख, (योः) अभय और (अरपः) निर्दोष आचरण (दधात) धारण करते रहो ॥५१॥

भावार्थः-सब मनुष्य वयोवृद्ध और विद्यावृद्ध पितरों का भली भांति सत्कार करें और उनसे शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति की शिक्षा पावें ॥५१॥

मन्त्र ५१, ५२ कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १५ । ४, ६ और यजुर्वेद में भी—१९ । ५५, ६२ ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ॥५२॥

भाषार्थः—(पितरः) हे पितरो ! [रक्षक विद्वानो] (विश्वे) आप सब (जानु) घुटना (आच्य) टेक कर और (दक्षिणतः) दाहिनी ओर (निषद्य) बैठकर (नः) हमारे (इदम्) इस (हविः) ग्राह्य अन्न को (अभि गृणन्तु) बड़ाई योग्य करें। (वः) तुम्हारा (यत्) जो कुछ (आगः) अपराध (कराम) हम करें, (केन चित्) उस किसी [अपराध] के कारण (नः) हमें (पुरुषता) अपने पुरुषपन से (मा हिंसिष्ट) मत दुःख दो ॥५२॥

भावार्थः—मनुष्य अपने पिता पितामह आदि पितरों को सत्कार-पूर्वक बैठा कर भोजन आदि से सेवा किया करें और अपनी भूल चूक के लिये क्षमा मांगते रहें ॥५२॥

मन्त्रः ॥५३॥

त्वष्टा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

अज्ञाननाशोपदेशः—अज्ञान के नाश का उपदेश ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥५३॥

भाषार्थः--(त्वष्टा) त्वष्टा [प्रकाशमान सूर्य] (दुहित्रे) दुहिता [पूर्ति करने वाली उषा] का (वहतुम्) चलाना (कृणोति) करता है, (तेन) उस [चलने] के साथ (इदम्) यह (विश्वम्) सब (भुवनम्) जगत् (सम्) ठीक ठीक (एति) चलता है। (यमस्य) यम [दिन] की (माता) माता [बनाने वाली], (महः) बड़े (विवस्वतः) प्रकाशमान सूर्य की (जाया) पत्नी रूप [रात्रि] (पर्युह्यमाना) सब ओर हटाई गई (ननाश) छिप जाती है ॥५३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे सूर्य उषा अर्थात् प्रभात किरणों को फैलाता जाता है, सब जगत् अपने अपने कामों में चेष्टा करता है, और जैसे जैसे दिन चढ़ता जाता है रात्रि का अंधकार हटता जाता है, इसी प्रकार ज्ञानी पितर लोग अज्ञान हटाकर ज्ञान के प्रकाश से संसार को सुख पहुंचावें ॥५३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १७ । १ ॥

भगवान् यास्क मुनि ने निरुक्त १२ । ११ में व्याख्या की है—"त्वष्टा दुहिता का वहन [चलाना] करता है, यह सब भुवन ठीक ठीक चलता है और यह सब प्राणी सब ओर से आकर मिलते हैं, यम की माता सब ओर को ले जायी गई छिप गई । रात्रि [सूर्य की पत्नी] सूर्य के उदय होने पर छिप जाती है" ॥

मन्त्रौ ५४, ५५ ॥

पितरो देवताः [ऋग्वेद १० । १४ । ७, ६ यथा] ॥ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ॥

मनुष्योन्नत्युपदेशः—मनुष्य की उन्नति का उपदेश ॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥५४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] तू (प्र इहि) आगे बढ़, (पूर्याणैः) नगरों को जाने वाले (पथिभिः) मार्गों से (प्र इहि) आगे बढ़, (येन) जिस [कर्म] से (ते) तेरे (पूर्वे) पहिले (पितरः) पितर [रक्षक पिता आदि महापुरुष] (परेताः) पराक्रम से गए हैं । और (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (मदन्तौ) तृप्त होते हुए (उभा) दोनों (राजानौ) शोभायमान, [अर्थात्] (देवम्) प्रकाशमान (यमम्) यम [न्यायकारी परमात्मा] को (च) और (वरुणम्) वरुण [श्रेष्ठ जीवात्मा] को (पश्यासि) तू देखता रह ॥५४॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि पूर्व महात्माओं के वेदोक्त मार्ग पर चल कर देश देशान्तरों में जाकर उन्नति करे और सदा परमात्मा की उपासना से जीवात्मा की दशा का चिन्तन करता रहे ॥५४॥

मन्त्र ५४, ५५ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १४ । ७, ६ और दोनों का ऋग्वेद पाठ महर्षि दयानन्दकृत संस्कार विधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥५५॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (अतः) यहां से [इस घर वा विद्यालय आदि से]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अप इत) बाहिर चलो, (वि इत) विविध प्रकार चलो, (च) और (वि सर्पत) फैल जाओ, (अस्मै) इस [जीव के हित] के लिये (एतम्) यह (लोकम्) लोक [समाज] (पितरः) पितरों [रक्षक महात्माओं] ने (अकरन्) बनाया है। (यमः) यम [न्यायकारी परमात्मा] (अस्मै) इस [समाज] को (अहोभिः) दिनों से, (अक्तुभिः) रातों से और (अद्भिः) जल [अन्न जल आदि] से (व्यक्तम्) स्पष्ट (अवसानम्) विराम [स्थिर पद] (ददाति) देता है ॥५५॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी लोग महापुरुषों के बनाये विद्यालय आदि से विद्या समाप्त करके विविध उद्योग करें और परमात्मा के उपकारों को विचारते हुए अपने समय और आहार विहार आदि का सुप्रयोग करके समाज को स्थिर सुख पहुंचावें ॥५५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में भी है—१२। ४५ ॥

मन्त्रौ ५६, ५७ ॥

पितरो देवता: [यजुर्वेदे १९ । ७० यथा] ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

पितृसन्तानकर्त्तव्योपदेशः—पितरों और सन्तानों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥५६॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्मचारी !] (उशन्तः) कामना करते हुए हम (त्वा) तुझे (इधीमहि) प्रकाशित करें, (उशन्तः) अभिलाषा करते हुए हम (सम्) मिलकर (इधीमहि) तेजस्वी करें। (उशन्) कामना करता हुआ तू (उशतः) कामना करते हुए (पितॄन्) पितरों [रक्षक जनों] को (हविषे) ग्रहण करने योग्य भोजन (अत्तवे) खाने के लिये (आ वह) ले आ ॥५६॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् माता पिता आदि बड़े लोग जितेन्द्रिय विद्वान् सभ्य सन्तान की कामना करें, वैसे ही सन्तान भी उन पितृजनों की सेवा करके गुण प्राप्त करें ॥५६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १६ । १२ और यजुर्वेद में १९ । ७० और महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पितृयज्ञविषय में भी व्याख्यात हैं ॥

द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।
द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥५७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः— [हे पुत्र] (द्युमन्तः) बड़े गति वाले हम (त्वा) तुझे (इधीमहि) प्रकाशित करें, (द्युमन्तः) व्यवहार कुशल हम (सम्) एक होकर (इधीमहि) तेजस्वी करें। (द्युमान्) व्यवहार कुशल तू (द्युमतः) व्यवहार कुशल (पितॄन्) पितरों [रक्षक विद्वानों] को (हविषे) ग्रहण करने योग्य भोजन (अत्तवे) खाने के लिये (आ वह) ले आ ॥५७॥

भावार्थः—मन्त्र ५६ के समान है ॥५७॥

मन्त्राः ५८–६१ ॥

पितरो देवताः ॥ ५८ निचृत् त्रिष्टुप्; ५९ आर्षी पङ्क्तिः; ६० त्रिष्टुप्; ६१ अनुष्टुप् ॥

पितृसन्तानकर्त्तव्योपदेशः—पितरों और सन्तानों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥५८॥

भाषार्थः—(नः) हमारे (अङ्गिरसः) महाविज्ञानी (पितरः) पितर [रक्षक पिता आदि बुद्धिमान् लोग] (नवग्वाः) स्तुति योग्य चरित्र वाले [वा नवीन नवीन विद्यायें प्राप्त करने और कराने हारे], (अथर्वाणः) निश्चल स्वभाव वाले, (भृगवः) परिपक्व ज्ञानयुक्त और (सोम्यासः) ऐश्वर्य पाने योग्य [होवें]। (तेषाम्) उन (यज्ञियानाम्) पूजनीय महापुरुषों की (अपि) ही (सुमतौ) सुमति में और (भद्रे) कल्याण करने हारी (सौमनसे) मन की प्रसन्नता में (वयम्) हम (स्याम) होवें ॥५८॥

भावार्थः—सन्तानों को योग्य है कि बड़े बड़े विज्ञानी माता पिता आदि पूजनीय महात्माओं की उत्तम शिक्षा को सदा ग्रहण करें ॥५८॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। १४। ६ और यजुर्वेद में १९। ५० ॥

इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध का मिलान करो—अथर्व० ६। ५५। ३ तथा ७। ९५। १ ॥

अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥५९॥

भाषार्थः—(यम)(हे संयमी जन ! (अङ्गिरोभिः) महाविज्ञानी, (यज्ञियैः) पूजा योग्य पुरुषों के साथ (इह) यहां [समाज में] (आ गहि) तू आ, और (वैरूपैः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध पदार्थों के निरूपण करने वाले वेदज्ञानों से (इह) यहां (मादयस्व) [हमें] तृप्त कर। (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम पद पर (आ) भले प्रकार (निषद्य) बैठकर (विवस्वन्तम्) प्रकाशमय परमात्मा को (हुवे) मैं बुलाता हूं, (यः) जो (ते) तेरा (पिता) पालक है ॥५९॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष विविध विद्वानों के सत्संग से अनेक विद्यायें प्राप्त करके वेदाभ्यास द्वारा परमात्मा का विचार करें ॥५९॥

मन्त्र ५९, ६० कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं–१०। १४। ५, ४ और दोनों मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत हैं ॥

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ॥६०॥

भाषार्थः—(यम) हे संयमी पुरुष ! (अङ्गिरोभिः) महाविज्ञानी (पितृभिः) पितरों [रक्षक लोगों] से (हि) ही (संविदानः) मिला हुआ तू (इमम्) इस (प्रस्तरम्) विस्तीर्ण आसन पर (आ रोह) ऊंचा हो। (त्वा) तुझे (मन्त्राः) मन्त्र कुशल [बड़े विचारशील] (कविशस्ताः) विद्वानों में श्रेष्ठ पुरुष (आ वहन्तु) बुलावें (राजन्) हे ऐश्वर्यवान् पुरुष (एना) इस (हविषः=हविषा) भक्तिदान से (मादयस्व) [हमें] प्रसन्न करे ॥६०॥

भावार्थः– जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी पुरुष विद्वानों के मेल से उच्च पद प्राप्त करें और अपने शुभ गुण और पराक्रम से सब प्रजा को सदा प्रसन्न रक्खें ॥६०॥

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥६१॥

भाषार्थः (एते) यह [पितर लोग] (इतः) इस [सामान्य दशा] से (उत) उत्तमता के साथ (आ अरुहन्) ऊंचे चढ़े हैं, और (दिवः) व्यवहार के (पृष्ठानि) पूछने योग्य स्थानों पर (आ अरुहन्) ऊंचे चढ़े हैं। (भूर्जयः यथा) भूमि जीतने वालों के समान (पथा) सन्मार्ग से (अङ्गिरसः) विज्ञानी महर्षि लोग (द्याम्) प्रकाश को (प्र) अच्छे प्रकार (ययुः) प्राप्त हुए हैं ॥६१॥

भावार्थः– बड़े बड़े महात्मा ब्रह्मचर्य आदि तप के साथ विद्या ग्रहण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके सामान्य अवस्था से ऊंचे हुए हैं, इसी प्रकार सब मनुष्य परिश्रम और उद्योग करके सदा उन्नति करें ॥६१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से सामवेद में है—पू० १ । १० । २ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥२॥ [मन्त्राः १–६०] ॥

मन्त्राः १—३ ॥

यमो देवता ॥ १, ३, अनुष्टुप्; २ विराट् पथ्या बृहती ॥

ईश्वरभक्त्युपदेशः—ईश्वर की भक्ति का उपदेश ॥

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥१॥

भाषार्थः—(यमाय) यम [सर्वनियन्ता परमात्मा] के लिये (सोमः) ऐश्वर्यवान् [जीवात्मा] (पवते) अपने को शुद्ध करता है, (यमाय) यम [न्यायकारी ईश्वर] के लिये (हविः) भक्तिदान (क्रियते) किया जाता है। (यमम्) यम [परमेश्वर] को (ह) ही (यज्ञः) संगति वाला संसार (गच्छति) चलता है, [जैसे] (अरंकृतः) पर्याप्त किया हुआ (अग्निदूतः) अग्नि से तपाया हुआ [जल आदि रस ऊपर जाता है] ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण से ईश्वर भक्ति करके ऐश्वर्यवान् होवें। वह परमात्मा इतना बड़ा है कि यह सब संसार उसी की आज्ञा में चलता है, जैसे अग्नि के पूरे ताप से भाप ऊंचा उठता है ॥१॥

मन्त्र १—३ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १४ । १३, १५, १४ । ऋग्वेद पाठ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र चं तिष्ठत ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥२॥

भाषार्थः—(यमाय) यम [सर्वनियन्ता परमात्मा] के लिये (मधुमत्तमम्) अत्यन्त विज्ञान युक्त कर्म (जुहोत) तुम दान करो, (च) और (प्र तिष्ठत) प्रतिष्ठा पावो (इदम्) यह (नमः) नमस्कार (पूर्वेभ्यः) पहिले [पूर्ण विद्वान्], (पथिकृद्भ्यः) मार्ग बनाने वाले (पूर्वजेभ्यः) पूर्वज (ऋषिभ्यः) ऋषियों [महाज्ञानियों] को है ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य विज्ञानपूर्वक उस जगदीश्वर को आत्मसमर्पण करके संसार में प्रतिष्ठा पावें और जो महर्षि वेदानुकूल ग्रन्थरचना और शिक्षा करें, उससे सुधार करके उनका उद्देश्य पूरा करें ॥२॥

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।
स नो जीवेष्वा यमेद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥३॥

भाषार्थः—(यमाय राज्ञे) यम राजा [न्यायकारी शासक परमेश्वर] के लिये (घृतवत्) प्रकाशयुक्त (पयः) विज्ञान और (हविः) भक्ति दान का (जुहोतन) तुम दान करो। (सः) वह [परमात्मा] (नः) हमें (जीवेषु) जीवों के बीच (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) आयु (प्र) उत्तम (जीवसे) जीवन के लिये (आ यमेत्) देवे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य विज्ञानपूर्वक परमात्मा की आज्ञा मानकर ब्रह्मचर्य आदि से आप चलते और दूसरों को चलाते हैं, वे अपना जीवन बढ़ाकर शुभ कर्म से यश पाते हैं ॥३॥

मन्त्राः ४—१० ॥

अग्निर्देवता ॥ ४, ७ निचृज् जगती; ५ भुरिक् त्रिष्टुप्; ६ अनुष्टुप्; ८ त्रिष्टुप्; ९ भुरिगार्षी जगती; १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥

आचार्यब्रह्मचारिकृत्योपदेशः—आचार्य और ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेममेनं प्र हिणुतात् पितृँरुप ॥४॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान्! [आचार्य] (एनम्) इस [ब्रह्मचारी] को (वि) विपरीत भाव से (मा दहः) मत जला [मत कष्ट दे] और (मा अभि शूशुचः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत शोक में डाल, (मा) न (अस्य) इसकी (त्वचम्) त्वचा को और (मा) न (शरीरम्) शरीर को (चिक्षिपः) गिरने दे। (जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञान वाले [आचार्य !] (यदा) जब [इसे] (शृतम्) परिपक्व [बड़ा ज्ञानी] (करसि) तू कर लेवे, (अथ) तब (ईम्) ही (एनम्) इस [शिष्य] को (पितॄन् उप) पितरों [रक्षक विद्वानों] के पास (प्र) अच्छे प्रकार (हिनुतात्) तू भेज ॥४॥

भावार्थः—आचार्य शिष्यों को विपरीत भाव से मानसिक वा शारीरिक कष्ट कदापि न देवे, किन्तु कोमल भाव से उन्हें पक्का ज्ञानी बनावे, जिस से वे विद्वान् लोगों में प्रतिष्ठा पावें ॥४॥

मन्त्र ४, ५ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१०। १६। १, २॥

यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।

यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥५॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञान वाले! [आचार्य] (यदा) जब (इमम्) इस [ब्रह्मचारी] को (शृतम्) [दृढ़ ज्ञानी] (कृणवः) तू कर लेवे, (अथ) तब (एनम्) इस [परिश्रमी] को (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक विद्वानों] को (परि दत्तात्) तू दे दे। (यदो) जब ही वह (एताम्) इस (असुनीतिम्) बुद्धि के साथ नीति [उन्नति मार्ग] को (गच्छाति) पावे, (अथ) तब वह (देवानाम्) दिव्य पदार्थों का (वशनीः) वश में लाने वाला (भवाति) होवे ॥५॥

भावार्थः—जब ब्रह्मचारी आचार्य से शिक्षा पाकर विद्वानों में गिना जावे तब वह अपनी बुद्धि और विद्या के बल से संसार के स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों के परीक्षण से उपकार करे ॥५॥

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।

त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥६॥

भाषार्थः—(एकम् इत्) एक ही (बृहत्) बड़ा [ब्रह्म] (त्रिकद्रुकेभिः) तीन [संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय] के विधानों से (षट्) छह (उर्वीः) चौड़ी दिशाओं को (पवते) शोधता है। (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप्, (गायत्री) गायत्री और (ता) वे [दूसरे] (सर्वा) सब (छन्दांसि) छन्द [वेद मन्त्र] (यमे) यम [न्यायकारी परमात्मा] में (आर्पिता) ठहरे हुए हैं ॥६॥

भावार्थः - सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीची और ऊंची दिशा में व्यापक है, और सब छन्द अर्थात् चारों वेद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी परमात्मा का गान करते हैं, हे मनुष्यो ! उसी की उपासना करके अपनी उन्नति करो ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है--१० । १४ । १६ ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥७॥

भाषार्थः—[हे जीव !] तू (सूर्यम्) सूर्य [तत्त्व] को (चक्षुषा) नेत्र से, (वातम्) वायु को (आत्मना) प्राण से (गच्छ) प्राप्त हो, (च) और (धर्मभिः) धर्मों [उनके धारण गुणों] से (दिवम्) आकाश को (च) और (पृथिवीम्) पृथिवी को (गच्छ) प्राप्त हो (वा) और (अपः) जल को (गच्छ) प्राप्त हो, और (ओषधीषु) ओषधियों [अन्न आदिकों] में (शरीरैः) [उनके] अङ्गों सहित (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठा पा, (यदि) क्योंकि (तत्र) वहां [उन सब में] (ते) तेरा (हितम्) हित है ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य नेत्र आदि इन्द्रियों की रचना और उपकारों से सूर्य आदि के तत्वों को जानकर विज्ञान द्वारा अन्न आदि पदार्थों और उनके अङ्गों से अपना और संसार का भला करते हैं वे ही सर्वहितकारी होते हैं ॥७॥

मन्त्र ७, ८ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं--१० । १६ । ३, ४ और ऋग्वेद पाठ महर्षिदयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥८॥

भाषार्थः—[हे जीव !] (अजः) अजन्मा [या गतिमान् जीवात्मा] (तपसः=तपसा) तप [ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन] से (भागः) सेवनीय है, (तम्) उसे (तपस्व) प्रतापी कर, (तम्) उसे (ते) तेरा (शोचिः) पवित्र कर्म और (तम्) उसे (ते) तेरा (अर्चिः) पूजनीय व्यवहार (तपतु) ऐश्वर्ययुक्त करे। (जातवेदः) हे बड़े विद्वान् ! (याः) जो (ते) तेरी (शिवाः) कल्याणकारी (तन्वः) उपकार-शक्तियां हैं, (ताभिः) उनसे (एनम्) इस [जीवात्मा] को (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकम्) लोक [समाज] में (उ) अवश्य (वह) लेजा ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य सेवन, वेदाध्ययन और शुभ आचरण से आत्मवान् होकर उपकारी होवें, वे ही पुण्यात्माओं में गिने जावें ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यास्ते॑ शोचयो॒ रंह॑यो जातवेदो॒ याभि॑रापृणासि॒ दिव॑मन्तरि॑क्षम् ।
अ॒जं यन्त॒मनु॒ ताः समृ॑ण्वताम॒थेत॑राभिः शि॒वत॑माभिः शृ॒तं कृ॑धि ॥९॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे बड़े विद्वान् ! [मनुष्य] (याः) जो (ते) तेरी (शोचयः) पवित्र क्रियायें और (रंहयः) वेग क्रियायें हैं और (याभिः) जिन [क्रियाओं] से (दिवम्) व्यवहार कुशल [वा गतिमान्] (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती हृदय को (आपृणासि) तू सब ओर से पूर्ण करता है। (ताः) वे [सब क्रियायें] (यन्तम्) चलते हुए (अजम् अनु) अजन्मे [वा गतिशील जीवात्मा] के अनुकूल होकर (सम्) ठीक ठीक (ऋण्वताम्) चलें, (अथ) फिर तू (इतराभिः) दूसरी [ईश्वर की प्राप्ति वालीं] (शिवतमाभिः) अत्यन्त कल्याणकारी [क्रियाओं] से [जीवात्मा] को (शृतम्) परिपक्व (कृधि) कर ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपनी शुद्ध और वेग वाली वृत्तियों को व्यवहार कुशल वा गतिमान् मन में ठहराकर पुरुषार्थी जीवात्मा को खोजते हैं, वे ही फिर परमात्मा को पाकर पक्के ज्ञानी होते हैं ॥९॥

अव॑ सृज॒ पुन॑रग्ने पि॒तृभ्यो॒ यस्त॒ आहु॑तश्चर॑ति स्व॒धावा॑न् ।
आयु॒र्वसा॑न॒ उप॑ यातु॒ शेषः॒ सं ग॑च्छतां॒ तन्वा॑ सु॒वर्चाः॑ ॥१०॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (पुनः) वारम्वार (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महापुरुषों] को [अपने आत्मा का](अव सृज) दान कर, (यः) जो [आत्मा] (ते) तुझ को (आहुतः) यथावत् दिया हुआ (स्वधावान्) अपनी धारण शक्ति वाला (चरति) विचरता है। (शेषः) विशेष गुणी [वह आत्मा] (आयुः) जीवन (वसानः) धारण करता हुआ (उप यातु) आवे और (सुवर्चाः) बड़ा तेजस्वी होकर (तन्वा) उपकार शक्ति के साथ (सं गच्छताम्) मिलता रहे ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों की सेवा और परोपकार में स्वविश्वासी होकर विचरे और अपने जीवन को विशेष गुणी बनाकर लोक परलोक में कीर्त्ति पावे ॥१०॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १६ । ५ । और महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत हैं ॥

मन्त्राः ११—१३ ॥

श्वानौ देवते ॥ ११, १२ त्रिष्टुप्, १३ विराड् जगती ॥

कालस्य सुप्रयोगोपदेशः—समय के सुप्रयोग का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति॑ द्रव श्वानौ॑ सारमे॒यौ च॑तुर॒क्षौ श॒बलौ॑ सा॒धुना॑ प॒था ।
अधा॑ पि॒तॄन्त्सु॑वि॒दत्राँ॒ अपी॑हि य॒मेन॒ ये स॑ध॒माद॒ मद॑न्ति ॥११॥

भाषार्थः—[हे जीव !] तू (सारमेयौ) सार कर्मों से प्रमाण करने योग्य, (चतुरक्षौ) चार दिशाओं में व्यापक, (शबलौ) चितकबरे (श्वानौ) दो चलने वाले [राति दिन] को (साधुना, धर्म के साधने वाले (पथा) मार्ग से (अति) पार करके (द्रव) चल। (अध) तब (सुविदत्रान्) बड़े ज्ञानी (पितॄन्) पितरों [रक्षक महापुरुषों] को (अपि) निश्चय करके (इहि) प्राप्त हो, (ये) जो [पितर] (यमेन) न्यायकारी परमात्मा के साथ (सधमादम्) मिले हुए हर्ष को (मदन्ति) भोगते हैं ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य गमनशील समय का धर्ममार्ग में सुप्रयोग करते हैं, वे महाविद्वानों के समान परमात्मा से मिलकर मोक्ष सुख भोगते हैं ॥११॥

मन्त्र ११—१३ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १४ । १०—१२ ॥

यौ ते॒ श्वानौ॑ यम रक्षि॒तारौ॑ चतुर॒क्षौ प॑थि॒षदी॑ नृ॒चक्ष॑सा ।
ताभ्यां॑ राजन्॒ परि॑ धेह्येनं स्व॒स्त्य॑स्मा अनमी॒वं च॑ धेहि ॥१२॥

भाषार्थः—(यम) हे संयमी मनुष्य ! (यौ) जो (चतुरक्षौ, चारों दिशाओं में व्यापक, (पथिषदी) मार्ग में बैठने वाले (नृचक्षसा) नेता पुरुषों से देखने योग्य (श्वानौ) दो चलने वाले [राति दिन] (ते) तेरे (रक्षितारौ) दो रक्षक हैं। (राजन्) हे ऐश्वर्यवान् जीव ! (ताभ्याम्) उन दोनों [राति दिन] को (एनम्) यह [अपना आत्मा] (परि धेहि) सौंप दे, और (अस्मै) इस [अपने आत्मा] को (स्वस्ति) सुन्दर सत्ता [बड़ा कल्याण] (च) और (अनमीवम्) नीरोगता (धेहि) दे ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम पूर्ण भक्ति से अपने समय को धर्म में लगाओगे, तो तुम नीरोग रह कर सदा आनन्द भोगोगे ॥१२॥

उ॒रू॒ण॒सावसु॒तृपा॑वुदु॒म्बलौ॑ य॒मस्य॑ दू॒तौ च॑रतो॒ जनाँ॒ अनु॑ ।
ताव॒स्मभ्यं॑ दृ॒शये॒ सूर्या॑य॒ पुन॑र्दाता॒मसु॑म॒द्येह भ॒द्रम् ॥१३॥

भाषार्थः—(यमस्य) संयमी पुरुष के (दूतौ) उत्तेजक (उरुणसौ) बड़ी गति वाले (असुतृपौ) बुद्धि को तृप्त करने वाले, (उदुम्बलौ) दृढ़ बल वाले दोनों [राति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन] (जनान् अनु) मनुष्यों में (चरतः) विचरते हैं। (तौ) वे दोनों (अस्मभ्यम्) हम लोगों को (सूर्याय दृशये) सर्वप्रेरक परमात्मा के देखने के लिये (अद्य) अब (इह) यहां पर (असुम्) बुद्धि और (भद्रम्) आनन्द (पुनः) वारम्वार (दाताम्) देते रहें ॥१३॥

भावार्थः—सब मनुष्य समय के लक्षणों को पूरा विचार कर ऐसा प्रयत्न करें कि वे दोनों राति दिन अपने लिये बुद्धि और आनन्द बढ़ाते रहें ॥१३॥

मन्त्राः १४—१८ ॥

यमो देवता ॥ १४—१८ अनुष्टुप्, छन्दः ॥

विद्वत्संगत्या वृद्ध्युपदेशः—विद्वानों के सत्संग से बढ़ती का उपदेश ॥

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।

येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१४॥

भाषार्थः—(सोमः) ऐश्वर्य (एकेभ्यः) किन्हीं किन्हीं [विद्वानों] को (पवते) मिलता है, (घृतम्) सार पदार्थ को (एके) कोई कोई [विद्वान्] (उप आसते) सेवते हैं। (येभ्यः) जिन [विद्वानों] को (मधु) विज्ञान (प्रधावति) शीघ्र प्राप्त होता है, (तान्) उन [सब महात्माओं] को (चित्) सत्कार से (एव) ही (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य ऐश्वर्यवान्, तत्त्ववेत्ता, विज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होकर उन्नति करें ॥१४॥

मन्त्र १४-१८ कुछ भेद वा अभेद मे ऋग्वेद में हैं—१० । १५४ । १, ४, २, ३, ५ । और मन्त्र १४—१७—ऋग्वेद पाठ से महर्षिदयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत हैं ॥

ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।

ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥१५॥

भाषार्थः—(ये) जो (चित्) ही (पूर्वे) पहिले [पूर्ण विद्वान्] (ऋतसाताः) सत्य धर्म से सेवन किये गये, (ऋतजाताः) सत्य धर्म से प्रसिद्ध हुए और (ऋतावृधः) सत्य धर्म से बढ़ने और बढ़ाने वाले हैं। (यम) हे यम! [संयमी पुरुष] (तपस्वतः) उन तपस्वी, (तपोजान्) तप से प्रकट हुए (ऋषीन्) ऋषियों को (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो महात्मा पूर्ण श्रद्धा से अनुष्ठान करके सत्य वैदिक धर्म का उपदेश करते हैं, और जिन्होंने अपने पूर्व जन्म के पुण्य से तथा अपने माता पिता के तप से ऋषि पद पाया है, मनुष्य उनके सत्संग से अपनी उन्नति करें ॥१५॥

तप॑सा ये अ॑नाधृ॒ष्यास्तप॑सा ये स्व॑र्य॒युः ।

तपो॒ ये च॑क्रि॒रे मह॒स्तांश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥१६॥

भाषार्थः—(ये) जो [विद्वान्] (तपसा) तप [ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन] से (अनाधृष्याः) नहीं दबने वाले हैं और (ये) जिन्होंने (तपसा) तप से (स्वः) स्वर्ग [आनन्द पद] (ययुः) पाया है। और (ये) जिन्होंने (तपः) तप [ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन] को (महः) अपना महत्त्व (चक्रिरे) बनाया है, (तान्) उन [महात्माओं] को (चित्) सत्कार से (एव) ही (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥१६॥

भावार्थः—जो महर्षि ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन को अपना महत्त्व समझ कर आनन्द पाते हैं, मनुष्य उन से शिक्षा लेकर ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन से महान् होकर सुखी होवें ॥१६॥

ये युध्य॑न्ते प्र॒धने॑षु शूरा॑सो॒ ये त॑नू॒त्यजः॑ ।

ये वा॑ स॒हस्र॑दक्षिणा॒स्तांश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥१७॥

भाषार्थः—(ये) जो [वीर] (प्रधनेषु) संग्रामों में (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं, और (ये) जो (शूरासः) शूर (तनूत्यजः) शरीर का बलिदान करने वाले [वा उपकार का दान करने वाले] हैं। (वा) और (ये) जो (सहस्रदक्षिणाः) सहस्रों प्रकार की दक्षिणा देने वाले हैं, (तान्) उन [महात्माओं] को (चित्) सत्कार से (एव) ही (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥१७॥

भावार्थः—जैसे शूरवीर पुरुष धर्म युद्ध में अपने को बलिदान करके संसार में शान्ति स्थापित करते हैं, वैसे ही मनुष्यों को दुष्कर्मियों के दण्ड देने में सदा उद्यत रहना चाहिये ॥१७॥

स॒हस्र॑णीथाः क॒वयो॒ ये गो॑पाय॒न्ति सूर्य॑म् ।

ऋषी॑न् तप॑स्वतो यम तपो॒जाँ अपि॑ गच्छतात् ॥१८॥

भाषार्थः—(ये) जो (सहस्रणीथाः) सहस्रों [योधाओं] के नेता (कवयः) बुद्धिमान् लोग (सूर्यम्) सर्वप्रेरक मनुष्य की (गोपायन्ति) रक्षा करते हैं। (यम)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे यम ! [संयमी पुरुष] (तपस्वतः) उन तपस्वी (तपोजान्) तप से उत्पन्न हुए (ऋषीन्) ऋषियों को (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥१८॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने बुद्धिबल और कर्म से प्रधान नेता होकर सर्वहितैषी पुरुष की रक्षा करते हैं, सब लोग उनके अनुकरण से महान् होवें ॥१८॥

मन्त्रौ १९, २० ॥

पृथिवी ... १९ गायत्री, २० अनुष्टुप् छन्दः ॥

पृथिवीविद्योपदेशः—पृथिवी की विद्या का उपदेश ॥

स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।
यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥१९॥

भाषार्थः—(पृथिवि) हे पृथिवी ! (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (स्योना) सुख देने हारी, (अनृक्षरा) विना कांटे वाली और (निवेशनी) प्रवेश करने योग्य (भव) हो । और (सप्रथाः) विस्तार वाली तू (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (शर्म) शरण (यच्छ) दे ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्य पृथिवी विद्या में निपुण होकर अनेक रत्नों और पदार्थों को प्राप्त करके निर्विघ्नता से आनन्द भोगें ॥१९॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है और कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । २२ । १५ तथा यजु० ३५ । २१ ॥

असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥२०॥

भाषार्थः—[हे पुरुष !] (पृथिव्याः) पृथिवी के (असंबाधे) बाधारहित, (उरौ) विस्तीर्ण (लोके) स्थान में (नि) दृढ़ता से (धीयस्व) तू ठहराया गया हो । (याः) जिन (स्वधाः) आत्मधारण शक्तियों को (जीवन्) जीवते हुए (चकृषे) तू ने किया है, (ताः) वे [सब शक्तियां] (ते) तेरे लिये (मधुश्चुतः) ज्ञान को बरसाने वाली (सन्तु) होवें ॥२०॥

भावार्थः—जो मनुष्य विघ्नों को हटाकर दृढ़ता से पृथिवी पर श्रेष्ठ पदार्थ खोजते जाते हैं, वे आत्मविश्वासी सदा सुख पाते हैं ॥२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्राः २१—३० ॥

पितरो देवताः ॥ २१, २६ भुरिक् त्रिष्टुप्; २२, २३, २५, ३० अनुष्टुप् । २४ आर्षी गायत्री; २७, २८ त्रिष्टुप्; २९ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

मनुष्याणां पितॄन् प्रति कर्त्तव्योपदेशः—मनुष्यों का पितरों के साथ कर्त्तव्य का उपदेश ॥

ह्वया॑मि ते॒ मन॑सा॒ मन॑ इ॒हेमान् गृ॒हाँ उप॑ जुजुषा॒ण एहि॑ । सं ग॑च्छस्व पि॒तृभिः॒ सं य॒मेन॑ स्यो॒नास्त्वा॒ वाता॒ उप॑ वान्तु श॒ग्माः ॥२१॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (ते) तेरे (मनः) मन को (मनसा) [अपने] मन के साथ (इह) यहां (ह्वयामि) मैं बुलाता हूँ, (इमान्) इन (गृहान्) घरों [घर वालों] को (उप) आदर से (जुजुषाणः) प्रसन्न करता हुआ तू (आ इहि) आ। (पितृभिः) पितरों [रक्षक महात्माओं] से और (यमेन) यम [न्यायकारी परमात्मा] से (सं सं गच्छस्व) तू भले प्रकार मिल, (स्योनाः) सुखदायक और (शग्माः) शक्ति वाले (वाताः) सेवनीय पदार्थ (त्वा) तुझ को (उप) यथावत् (वान्तु) प्राप्त होवें ॥२१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों को आदरपूर्वक बुलाव और उनसे उचित शिक्षा और परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करके प्रयत्न के साथ उत्तम उत्तम पदार्थों द्वारा आनन्द पावें ॥२१॥

इस मन्त्र का तीसरा पाद ऋग्वेद में है—१० । १४ । ८ ॥

उत् त्वा॑ वहन्तु म॒रुत॑ उदवा॒हा उ॑द॒प्रुतः॑ ।
अ॒जेन॑ कृ॒ण्वन्तः॑ शी॒तं व॒र्षेणो॑क्षन्तु बालिति॑ ॥२२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (उदवाहाः) जल पहुंचाने वाले, (उदप्रुतः) जल में चलने वाले (मरुतः) पवन रूप विद्वान् लोग (त्वा) तुझे (उत् वहन्तु) ऊंचा पहुंचावें। और (अजेन) अजन्मे परमात्मा के साथ (वर्षेण) वृष्टि से (शीतम्) शीतलता (कृण्वन्तः) करते हुए वे [तुझ को] (उक्षन्तु) बढ़ावें—(बाल् इति) यही बल है ॥२२॥

भावार्थः—जैसे पवन अपने झकोरों से मेघों को चला वृष्टि करके ताप हटाकर संसार को सुख पहुंचाता है, वैसे ही विद्वान् लोग अज्ञान मिटा शान्ति के साथ मनुष्यों को ऊंचा करके शक्तिमान् करें ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव ॥२३॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (आयुः) [तेरे] जीवन को (आयुषे) [अपने] जीवन के लिये, (क्रत्वे) बुद्धि वा कर्म के लिये, (दक्षाय) बल के लिये और (जीवसे) प्राण धारण [पराक्रम] के लिये (उत्) उत्तमता से (अह्वम्) मैं ने बुलाया है। (ते) तेरा (मनः) मन (स्वान्) अपने लोगों में (गच्छतु) जावे, (अध) और तू (पितॄन्) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (उप) आदर से (द्रव) दौड़ जा ॥२३॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से अपना आचरण, अपना ज्ञान, अपना शारीरिक और आत्मिक बल ठीक रख कर माता पिता आदि और सब महात्माओं के सदा कृतज्ञ रहें ॥२३॥

मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥२४॥

भाषार्थः—हे मनुष्य !] (मा, न तो (ते) तेरा (मनः) मन, (मा) न (ते) तेरे (असोः) प्राण का (मा) न (अङ्गानाम्) अङ्गों का, (मा) न (रसस्य) रस [वीर्य] का, (मा) न (ते) तेरे (तन्वः) शरीर का (किं चन) कुछ भी (इह) यहां पर से (हास्त) चला जावे ॥२४॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों से सुशिक्षित होकर प्रयत्न करे कि उसकी शारीरिक और आत्मिक अवस्था सदा स्वस्थ रहे ॥२४॥

मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥२५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझे (मा) न तो (वृक्षः) सेवनीय संसार और (मा) न (देवी) चलने वाली (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी (सं बाधिष्ट) कुछ बाधा देवे। (यमराजसु) यम [न्यायकारी परमात्मा] को राजा मानने वाले (पितृषु) पितरों [रक्षक महात्माओं] में (लोकम्) स्थान (वित्त्वा) पाकर (एधस्व) तू बढ़ ॥२५॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य संसार में विघ्नों को हटा, रत्नों की खानि पृथिवी से उपकार लेकर बड़े लोगों में पद पाकर बढ़ती करें ॥२५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥२६॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (यत्) जो (ते) तेरा (अङ्गम्) [शारीरिक वा आत्मिक] अङ्ग (पराचैः) उलटा होकर (अतिहितम्) हट गया है, (उ) और (ते) तेरा (यः) (अपानः) अपान [प्रश्वास] (वा) अथवा (प्राणः) प्राण [श्वास] (परेतः) विचल गया है। (सनीडाः) समान घर वाले (पितरः) पितर लोग [रक्षक महात्मा] (संगत्य) मिलकर (ते) तेरी (तत्) उस [हानि] को (पुनः) फिर (आ वेशयन्तु) भर देवें, [जैसे] (घासात्) घास से (घासम्) घास को [बांध देते हैं] ॥२६॥

भावार्थः—मनुष्य अपने शारीरिक और आत्मिक दोषों को समझ कर विद्वानों की संमति से उनकी निवृत्ति करें ॥२६॥

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयांचकार ॥२७॥

भाषार्थः—(इमम्) इस [ब्रह्मचारी] को (जीवाः) प्राणधारी [आचार्य आदि] लोगों ने (गृहेभ्यः) घरों के हित के लिये (अप) आनन्द से (अरुधन्) रोका था, (तम्) उस [ब्रह्मचारी] को (इतः) इस (ग्रामात्) ग्राम [विद्यालय] से (परि) सब ओर को (निः) निश्चय करके (वहत) तुम ले जाओ। (मृत्युः) मृत्यु [आत्मत्याग] (यमस्य) संयमी पुरुष का (दूतः) उत्तेजक, (प्रचेतः) ज्ञान कराने वाला (आसीत्) हुआ है, उसने (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (असून्) प्राण (गमयाञ्चकार) भेजे हैं ॥२७॥

भावार्थः—आचार्य लोग ब्रह्मचारियों को विद्यालय में उत्तम शिक्षा देने तक रक्खें और विद्या समाप्ति पर उन को उपदेश करें कि वे परिश्रम के साथ आत्म त्याग करके अर्थात् आपा छोड़ कर संसार का उपकार करें, जैसे कि महात्मा लोग आपा छोड़कर विद्या द्वारा आत्मबल प्राप्त करके उपकारी होते हैं ॥२७॥

यह मन्त्र महर्षिदयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥२८॥

भाषार्थः—(ये) जो (ज्ञातिमुखाः) बन्धुओं के समान मुख वाले [छल से हित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलने वाले], (अहुतादः) बिना दिया हुआ खाने वाले (दस्यवः) डाकू लोग (पितृषु) पितरों [रक्षक महात्माओं] में (प्रविष्टाः) प्रविष्ट होकर (चरन्ति) विचरते हैं। और (ये) जो [दुराचारी] (परापुरः) उलटेपन से पालन स्वभावों को और (निपुरः) नीचपन से अगुआ होने की क्रियाओं को (भरन्ति) धारण करते हैं, (अग्निः) ज्ञान-वान् पुरुष (तान्) उन [दुष्टों] को (अस्मात्) इस (यज्ञात्) पूजा स्थान से (प्र धमाति) दूर भेजे ॥२८॥

भावार्थः—जो मनुष्य ऊपर से मीठा बोलकर दूसरों के पदार्थों को खा जावें और शिष्ट पुरुषों में मिल कर छल करें। विद्वान् राजा आदि प्रधान पुरुष उन अन्यायियों को दण्ड देकर निकाल देवे ॥२८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में हैं—२। ३०॥

सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥२९॥

भाषार्थः—(नः) हमारे लिये (स्योनम्) सुख (कृण्वन्तः) करते हुए और (आयुः) जीवन (प्रतिरन्तः) बढ़ाते हुये (पितरः) रक्षा करने वाले (स्वाः) बान्धव लोग (इह) यहां (सम्) मिलकर (विशन्तु) प्रवेश करें। (हविषा) भक्ति के साथ (नक्षमाणाः) चलते हुए और (ज्योक्) बहुत काल तक (पुरूचीः) अनेक (शरदः) वर्षों तक (जीवन्तः) जीवते हुए हम लोग (तेभ्यः) उन [बान्धवों] के लिये (शकेम) समर्थ होवें ॥२९॥

भावार्थः—मनुष्य अपने माता पिता आदि के प्रयत्न और आशीर्वाद से उन्नति करके और कीर्ति बढ़ा कर उनकी सेवा करते रहें ॥२९॥

यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम्।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ॥३०॥

भाषार्थः—[हे महात्मन्] (ते) तेरे लिये (याम्) जिस (धेनुम्) दुधैल गौ को (उ) और (ते) तेरे लिये (यम् ओदनम्) जिस भात को (क्षीरे) दूध में (निपृणामि) मैं रखता हूं। (तेन) उसी [कारण] से तू (जनस्य) उस मनुष्य का (भर्ता) पोषक (असः) होवे, (यः) जो [मनुष्य] (अत्र) यहां (अजीवनः) निर्जीव [विना जीविका, निर्बल] (असत्) होवे ॥३०॥

भावार्थः—जो मनुष्य दुग्ध अन्न आदि से विद्वान् महात्माओं की सेवा करते हैं, वे पुरुषार्थी अपना जीवन निर्विघ्न बिताते हैं ॥३०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्राः ॥३१—३३ ॥

मन्त्रः ३१ प्रजापतिः; ३२ यमः; ३३ सरण्यूर्देवता ॥ ३१ निचृत् त्रिष्टुप्; ३२, ३३ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

ईश्वरगुणोपदेशः—ईश्वर के गुणों का उपदेश ॥

अश्वा॑वतीं॒ प्र त॑र॒ या सु॒शेवा॒र्क्षाकं॑ वा प्रत॒रं नवी॑यः । यस्त्वा॑ ज॒घान॒ व॒ध्यः॒ सो अ॑स्तु॒ मा सो अ॒न्यद् वि॑दत भाग॒धेय॑म् ॥३१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] तू (अश्वावतीम्) घोड़ों वाली [शक्ति] को (प्र तर) बढ़ा, (या) जो (सुशेवा) बड़े सुख देने वाली है, (वा) निश्चय करके [आगे] (ऋक्षाकम्) हिंसा मिटाने वाला (प्रतरम्) अधिक उत्तम (नवीयः) अधिक नवीन [स्थान] है। और (यः) जिस [अत्याचारी] ने (त्वा) तुझ [सदाचारी] को (जघान) मारा है [दुखाया है], (सः) वह (वध्यः) बध्य [मार डालने योग्य] (अस्तु) होवे, (सः) वह (अन्यत्) दूसरा (भागधेयम्) भाग (मा विदत) न पावे ॥३१॥

भावार्थः—संसार में मनुष्य शीघ्रगामी होकर आगे उत्तम उत्तम पद पाने का प्रयत्न करे और सब प्रकार के विघ्नों को हटाता रहे ॥३१॥

**य॒मः प॒रोऽव॑रो वि॒वस्वा॒न् ततः॒ परं॒ नाति॑ पश्यामि॒ किं च॒न ।
य॒मे अ॑ध्व॒रो अधि॑ मे॒ निवि॑ष्टो॒ भुवो॒ वि॒वस्वा॑न॒न्वात॑तान ॥३२॥**

भाषार्थः—(विवस्वान्) प्रकाशमय (यमः) न्यायकारी परमात्मा (परः) दूर और (अवरः) समीप है, (ततः) उस से (परम्) बड़ा (किंचन) किसी वस्तु को भी (अति) उल्लंघन करके (न पश्यामि) नहीं देखता हूं। (यमे) न्यायकारी परमात्मा में (अध्वरः) हिंसा रहित व्यवहार (मे) मेरे लिये (अधि) सर्वथा (निविष्टः) स्थापित है, (विवस्वान्) प्रकाशमय परमात्मा ने (भुवः) सत्ताओं को (अन्वाततान) निरन्तर सब ओर फैलाया है ॥३२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वनियन्ता है, उस से बड़ा संसार में कुछ भी नहीं है, उसी ने सब लोकों को रचा है, तुम उसी की उपासना से अपनी उन्नति करो ॥३२॥

मन्त्र ३२ और ३३ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपा॑गूहन्नमृतां॒ मर्त्ये॑भ्यः कृ॒त्वा सव॑र्णामदधु॒र्विव॑स्वते ।
उ॒ताश्विना॑वभर॒द् यत् तदासी॒दज॑हादु॒ द्वा मि॑थु॒नास॑र॒ण्यूः ॥३३॥

भाषार्थः—(अमृताम्) अमर [नित्य प्रकृति, जगत् सामग्री] को (अप) सुख से (अगूहन्) उन [ईश्वर नियमों] ने गुप्त रक्खा और (मर्त्येभ्यः) मरण धर्मी [मनुष्य आदि प्राणियों] के हित के लिये [उसे] (सवर्णाम्) समान अङ्गीकार करने योग्य (कृत्वा) करके (विवस्वते) प्रकाशमय परमात्मा [की आज्ञा मानने] के लिये (अदधुः) उन्होंने पुष्ट किया। (उत) और (यत्) जो कुछ [जगत्] (आसीत्) था, (तत्) उस [जगत] ने (अश्विनौ) व्यापक प्राण और अपान को (अभरत्) धारण किया, (उ) और (सरण्यूः) व्यापक [प्रकृति, जगत् सामग्री] ने (द्वा) दो (मिथुना) जोड़ियाओं [स्त्री पुरुष] को (अजहात्) त्यागा [उत्पन्न किया] ॥३३॥

भावार्थः—ईश्वर नियम से प्रकृति अर्थात् जगत् सामग्री प्रलय समय में अदृश्य रहती और सृष्टि काल में सर्वोपकारी होकर प्रकट होती है, तब यह जगत् प्राण और अपान द्वारा चेष्टा करता है और स्त्री पुरुष आदि प्राणी उत्पन्न होते हैं ॥३३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १७। २॥

मन्त्रौ ॥३४, ३५॥

पितरो देवताः ॥ ३४ अनुष्टुप्; ३५ त्रिष्टुप् ॥

पितृसत्कारोपदेशः—पितरों के सत्कार का उपदेश ॥

ये निखा॑ता॒ ये परो॑प्ता॒ ये द॒ग्धा ये चोद्धि॑ताः ।
सर्वां॒स्तान॑ग्न॒ आ व॑ह पि॒तॄन् ह॒विषे॒ अत्त॑वे ॥३४॥

भाषार्थः—(ये) जो पुरुष [ब्रह्मचर्य आदि सदाचार में] (निखाताः) दृढ़ गड़े हुए, (ये) जो (परोप्ताः) उत्तमता से बीज बोये गये, (ये) जो (दग्धाः) तपाये गये [वा चमकते हुये] (च) और (ये) जो (उद्धिताः) ऊंचे उठाये गये हैं। (अग्ने) हे विद्वान्! (तान् सर्वान्) उन सब (पितॄन्) पितरों [पिता आदि ज्ञानियों] को (हविषे) ग्रहण योग्य भोजन (अत्तवे) खाने के लिये (आ वह) तू ले आ ॥३४॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो पुरुष दृढ़ स्वभाव, ब्रह्मचर्य सेवी, सुशिक्षित, परिश्रमी महाविद्वान् हों, उनका भोजन आदि से सदा सत्कार करें ॥३४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये अ॒ग्निद॒ग्धा ये अन॑ग्निदग्धा॒ मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दय॑न्ते ।
त्वं तान् वे॑त्थ॒ यदि॒ ते जा॑तवेदः स्व॒धया॑ य॒ज्ञं स्व॒धिति॑ जुषन्ताम् ॥३५॥

भाषार्थः—(ये) जो (अग्निदग्धाः) अग्नि जलाने वाले [हवन आदि करने वाले गृहस्थ आदि] और (ये) जो (अनग्निदग्धाः) अग्नि को नहीं जलाने वाले पुरुष [आहवनीय आदि भौतिक यज्ञ अग्नि छोड़ देने वाले संन्यासी] (दिवः) ज्ञान के (मध्ये) बीच (स्वधया) आत्मधारण शक्ति से (मादयन्ते) आनन्द पाते हैं। (जातवेदः) हे पूर्ण ज्ञानी पुरुष ! (त्वम्) तू (तान्) उन को (यदि) जो (वेत्थ) जानता है, (ते) वे (स्वधया) अन्न के साथ (स्वधितिम्) स्वधारण शक्ति वाले (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] का (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥३५॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि हवन आदि यज्ञ करने वाले ब्रह्मचारी, गृहस्थ लोगों को और भौतिक अग्नि के यज्ञ को छोड़कर ज्ञान यज्ञ करने वाले संन्यासी विद्वानों को यथाविधि सत्कार से बुलावें और उन से श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करें ॥३५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १५। १४, १३ और यजुर्वेद--१९। ७, ६७

भगवान् मनु ने इस आशय को इस प्रकार वर्णन किया है ॥ अध्याय ६ श्लोक ३६, ३८ ॥

अधीत्य विधिवद् वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ॥
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥१॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥२॥

विधिपूर्वक वेदों को पढ़कर और धर्म से सन्तानों को उत्पन्न करके और यथाशक्ति यज्ञों को करके मन को मोक्ष [अर्थात् संन्यासाश्रम] में लगावे ॥१॥

प्रजापति परमात्मा की प्राप्ति कराने वाले, सर्वस्व दक्षिणा वाले यज्ञ को करके आत्मा में [आहवनीय, गार्हपत्य और दाक्षिणात्य] अग्नियों को समारोपित करके ब्राह्मण, वेद और ईश्वर जानने वाला पुरुष, गृहाश्रम से संन्यास लेवे ॥२॥

मन्त्रः ॥३६॥

अग्निर्देवता ॥ आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलवर्धनोपदेशः—बल बढ़ाने का उपदेश ॥

शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं १ तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥३६॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् ! तू (शम्) शान्ति के लिये (तप) तप कर, [किसी को] (अति) अत्याचार से (मा तपः) मत तपा और [किसी के] (तन्वम्) शरीर को [अत्याचार से] (मा तपः) मत तपा [मत सता]। (वनेषु) सेवनीय व्यवहारों में (ते) तेरा (शुष्मः) बल (अस्तु) होवे और (यत्) जो (हरः) [तेरा] तेज है, वह (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अस्तु) होवे ॥३६॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष संसार में शान्ति फैलाने के लिये शम दम आदि तप करे और किसी को किसी प्रकार न सतावे। इस विधि से बल बढ़ा उत्तम उत्तम पदार्थ प्राप्त करके पृथिवी पर प्रतापी होवे ॥३६॥

मन्त्रः ३७ ॥

यमो देवता। विराड् जगती छन्दः ॥

परमात्माज्ञापालनोपदेशः परमात्मा की आज्ञा पालने का उपदेश ॥

ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥३७॥

भाषार्थः—(एतद्) यह (अवसानम्) विश्राम (अस्मै) उस पुरुष को (ददामि) मैं देता हूं, (यः एषः) जो यह (आ-अगन्) आया है, (च) और (मम इत्) मेरा ही (इह) यहां (अभूत्) हुआ है, (मम) मेरा (एषः) यह पुरुष (राये) धन के लिये (इह) यहां पर (उप तिष्ठताम्) सेवा करे (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (यमः) न्यायकारी परमात्मा (एतत्) यह (प्रति) प्रत्यक्ष (आह) कहता है ॥३७॥

भावार्थः—यह परमात्मा का वचन है कि जो पुरुष संसार के बीच उत्तम शरीर और ज्ञान पाकर मेरी शरण आते हैं, वे मेरे प्रीतिपात्र होकर लोक और परलोक में मोक्षरूप धन प्राप्त करते हैं ॥३७॥

मन्त्राः ॥३८—४५॥

प्रजापतिर्देवता ॥ ३८, ३९, ४१ गायत्री, ४०, ४२-४४ भुरिग् गायत्री, ४५ विराडनुष्टुप् ॥

मोक्षाय प्रयत्नोपदेशः—मोक्ष के लिये प्रयत्न का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥३८॥

भाषार्थः (इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (मिमीमहे) हम नापते हैं, (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) नाप सकता। (शते शरत्सु) सौ वर्षों में भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥३८॥

भावार्थः—सब प्राणी परमेश्वर की ही वेदोक्त आज्ञा में रहकर निर्वाह करते हैं, और चाहे कोई नास्तिक अपने जीवन भर अन्यथा प्रयत्न करे तो भी परमेश्वर के नियम को नहीं टाल सकता ॥३८॥

प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥३९॥

भाषार्थः—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (प्र) आगे बढ़कर (मिमीमहे) हम नापते हैं···[मन्त्र ३८] ॥३९॥

भावार्थः—मन्त्र ३८ के समान ॥३९॥

अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥४०॥

भाषार्थः—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (अप) आनन्द से (मिमीमहे) हम नापते हैं···[मन्त्र ३८] ॥४०॥

भावार्थः—मन्त्र ३८ के समान ॥४०॥

वी३'मां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥४१॥

भाषार्थः—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (वि) विशेष करके (मिमीमहे) हम नापते हैं···[मन्त्र ३८] ॥४१॥

भावार्थः—मन्त्र ३८ के समान ॥४१॥

निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥४२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (निः) निश्चय करके (मिमीमहे) हम नापते हैं···म० ३८] ॥४२॥

भावार्थः—मन्त्र ३८ के समान ॥४२॥

उदि॒मां मात्रां॑ मिमीमहे॒ यथाप॑रं॒ न मासा॑तै ।
श॒ते श॒रत्सु॒ नो पु॒रा ॥४३॥

भाषार्थः—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (उत्) उत्तमता से (मिमीमहे) हम नापते हैं···[मन्त्र ३८] ॥४३॥

भावार्थः—मन्त्र ३८ के समान ॥४३॥

समि॒मां मात्रां॑ मिमीमहे॒ यथाप॑रं॒ न मासा॑तै ।
श॒ते श॒रत्सु॒ नो पु॒रा ॥४४॥

भाषार्थः—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (सम्) सब प्रकार (मिमीमहे) हम नापते हैं, (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) नाप सकता। (शते शरत्सु) सौ वर्षों में भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥४४॥

भावार्थः—मन्त्र ३८ के समान ॥४४॥

अमा॑सि॒ मात्रां॒ स्व॑रगामायु॑ष्मान् भूयासम् ।
यथाप॑रं॒ न मासा॑तै श॒तै श॒रत्सु॒ नो पु॒रा ॥४५॥

भाषार्थः—(मात्राम्) मात्रा [इस वेदोक्त मर्यादा] को (अमासि) मैं नापूं, (स्वः) सुख (अगाम्) पाऊं, और (आयुष्मान्) उत्तम जीवन वाला (भूयासम्) मैं हो जाऊं। (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) नाप सकता, (शते शरत्सु) सौ वर्षों में भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥४५॥

भावार्थः–प्रत्येक मनुष्य वेदविहित ईश्वरमर्यादा पर चल कर मोक्षसुख प्राप्त करे, वेदविमुख पुरुष सारे जीवन भर भी प्रयत्न करने पर ईश्वर नियम को नहीं हटा सकता ॥४५॥

मन्त्राः ॥४६—४९॥

पितरो देवताः ॥ ४६ भुरिगनुष्टुप् । ४७ त्रिष्टुप्, ४८ अनुष्टुप्, ४९ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितृगुणोपदेशः—पितरों के गुणों का उपदेश ॥

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥४६॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य ! तेरे] (प्राणः) प्राण [श्वास], (अपानः) अपान [प्रश्वास], (व्यानः) व्यान [सर्व शरीर व्यापक वायु], (आयुः) जीवन और (चक्षुः) नेत्र (सूर्याय दृशये) सर्वप्रेरक परमात्मा के देखने को [होवें]। (अपरिपरेण) इधर उधर न घूमने वाले [सर्वथा सीधे] (पथा) मार्ग से (यमराज्ञः) यम [न्यायकारी परमात्मा] को राजा रखने वाले (पितॄन्) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (गच्छ) प्राप्त हो ॥४६॥

भावार्थः—मनुष्य अनन्यभाव से परमात्मा की प्राप्ति के लिये वेदानुयायी महात्माओं की शरण लेवे ॥४६॥

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥४७॥

भाषार्थः—(ये) जो (अग्रवः) आगे चलने वाले, (शशमानाः) उद्योगी (अनपत्यवन्तः) अनैश्वर्य [दरिद्रता] न रखने वाले पुरुष (द्वेषांसि) द्वेषों को (हित्वा) छोड़कर (परेयुः) ऊंचे गये हैं। (ते) उन (दीध्यानाः) प्रकाशमान लोगों ने (द्याम्) प्रकाशमान विद्या को (उदित्य) उत्तमता से प्राप्त करके (नाकस्य) महासुख के (पृष्ठे) उपरि भाग में (लोकम्) स्थान (अधि) अधिकार पूर्वक (अविदन्त) पाया है ॥४७॥

भावार्थः—विद्वान् उद्योगी महापुरुष ही पक्षपात छोड़ विद्या प्राप्त करके मोक्षसुख भोगते हैं ॥४७॥

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥४८॥

भाषार्थः—(उदन्वती) थोड़े जल वाली [नदी के समान] (अवमा) थोड़ी (द्यौः) प्रकाशमान विद्या है, (पीलुमती) फूलों वाली [लता के समान] (मध्यमा इति) मध्यम विद्या है। (तृतीया) तीसरी (ह) निश्चय करके (प्रद्यौः इति) बड़े प्रकाश वाली [विद्या] है, (यस्याम्) जिस [बड़ी विद्या] में (पितरः) पितर [रक्षक महात्मा लोग] (आसते) ठहरते हैं ॥४८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—छोटे विद्वान् छोटी नदी के समान, मध्यम विद्वान् केवल फल वाली लता के समान बाहिर से शोभायमान होते हैं, परन्तु पूर्ण विद्या प्राप्त करके सर्वोपकारी ही पितर अर्थात् पालनकर्ता कहाते हैं ॥४८॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥४९॥

भाषार्थः (ये) जो पुरुष (नः) हमारे (पितुः) पिता के (पितरः) पिता के समान हैं, और (ये) जो [उसके] (पितामहाः) दादे के तुल्य हैं, और (ये) जो (उरु) चौड़े (अन्तरिक्षम्) आकाश में [विद्या बल से विमान आदि द्वारा] (आविविशुः) प्रविष्ट हुए हैं और (ये) जो (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) आकाश में (आक्षियन्ति) सब प्रकार शासन करते हैं, (तेभ्यः) उन (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] की (नमसा) अन्न से (विधेम) हम सेवा करें ॥४९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम्हारे पिता दादे, परदादे आदि बड़े योगी विद्वान् होकर विद्याबल से विमान आदि द्वारा आकाश में पहुंचे हैं और जो पृथिवी और आकाश में राज्य करते हैं, उनका अन्न आदि से सत्कार करके अपनी उन्नति करो ॥४९॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आगे है—अथ० १८ । ३ । ५९ ॥

मन्त्राः ५०—५२ ॥

भूमिर्देवता ॥ ५०, ५२ अनुष्टुप्, ५१ भुरिगनुष्टुप् ॥
परमात्मोपासनोपदेशः—परमात्मा की उपासना का उपदेश ॥

इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम् ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥५०॥

भाषार्थः—[हे जीव !] (इदम् इत्) यही [सर्वव्यापक ब्रह्म] (वै) निश्चय करके है, (उ) और (अपरम्) दूसरा (न) नहीं है, तू (दिवि) ज्ञान प्रकाश में (सूर्यम्) सर्वप्रेरक परमात्मा को (पश्यसि) देखता है ।

(यथा) जैसे (माता) माता (पुत्रम्) पुत्र को (सिचा) अपने आंचल से [वैसे] (भूमे) हे सर्वाधार परमेश्वर ! (एनम्) इस [जीव] को (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) ढकले ॥५०॥

भावार्थः—परमात्मा सर्वव्यापक है, उसके समान और कोई नहीं है, वह ज्ञान नेत्र से दीखता है । वह अपने शरणागत भक्तों की इस प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वथा रक्षा करता है, जैसे माता अपने छोटे बच्चों की वस्त्र आदि से रक्षा करती है ॥५०॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऋग्वेद में है—१० । १८ । ११, और आगे है—अथर्व १८ । ३ । ५० ॥

इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम् ।
जाया पतिमिव वाससाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥५१॥

भाषार्थः—(इदम् इव) यही [सर्वव्यापक ब्रह्म] (वै) निश्चय करके है, (उ) और (जरसि) स्तुति में (इतः) इस [ब्रह्म] से (अन्यत्) भिन्न (अपरम् अपरम्) दूसरा कुछ भी (न) नहीं है।

(इव) जैसे (जाया) सुख उत्पन्न करने वाली पत्नी (पतिम्) पति को (वाससा) वस्त्र से, [वैसे] (भूमे) हे सर्वाधार परमेश्वर ! (एनम्) इस [जीव] को (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) ढकले ॥५१॥

भावार्थः—वह अद्वितीय सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर अपने उपासकों को अपनी कृपा से ऐसा प्रसन्न रखता है, जैसे पत्नी पति को वस्त्र आदि की सेवा से प्रसन्न रखती है ॥५१॥

अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥५२॥

भाषार्थः [हे जीव !] (त्वा) तुझे (पृथिव्याः) जगत् के विस्तार करने वाले परमेश्वर के [दिये] (भद्रया) कल्याण से (अभि) सब ओर से (ऊर्णोमि) मैं ढकता हूं, [जैसे] (मातुः) माता के (वस्त्रेण) वस्त्र से [बालक को]। (जीवेषु) जीवों में (भद्रम्) [जो] कल्याण हो, (तत्) वह (मयि) मुझ में [हो] (पितृषु) पितरों [रक्षक महात्माओं] में (स्वधा) [जो आत्मधारण शक्ति हो (सा) वह (त्वयि) तुझ में होवे ॥५२॥

भावार्थः—प्रत्येक मनुष्य परमात्मा की शरण में रहकर इस प्रकार सुख पावे, जैसे बालक माता के पास पाता है, और ऐसा प्रयत्न करे कि सब प्राणी एक दूसरे के समान सुख पावें और ज्ञानी महात्माओं के समान आत्मावलम्बन करें ॥५२॥

मन्त्राः ॥५३—५५॥

पूषा देवता ॥ ५३, ५५ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५४ त्रिष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्मार्गगमनोपदेशः—सत्पुरुषों के मार्ग पर चलने का उपदेश ॥

अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥५३॥

भाषार्थः—(अग्नीषोमा) हे ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् ! [स्त्री पुरुषो] (पथिकृता) मार्ग बनाने वाले तुम दोनों (देवेभ्यः) विद्वानों को (स्योनम्) सुख, (रत्नम्) रत्न और (लोकम्) स्थान (वि) विविध प्रकार (दधथुः) दो । (यः) जो [परमेश्वर] (अञ्जोयानैः) सीधे चलने वाले (पथिभिः) मार्गों से [हम सब को] (वहाति) ले चलता है, (प्र ईष्यन्तम्) उस अच्छे प्रकार देखते हुए (पूषणम्) पोषक परमात्मा को (उप) प्राप्त होकर (तत्र) वहां [मार्गों में] (गच्छतम्) तुम दोनों चलो ॥५३॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष विद्वानों का सब प्रकार सत्कार करके वेद-विहित मार्गों पर चल कर परमात्मा को साक्षात् करके परम आनन्द पावें ॥५३॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥५४ ।

भाषार्थः—(विद्वान्) सब जानने वाला, (अनष्टपशुः) जीवों का नाश नहीं करने वाला, (भुवनस्य) संसार का (गोपाः) रक्षक, (पूषा) पोषक परमात्मा (त्वा) तुझे (इतः) यहां से [इस दशा से] (प्र च्यवयतु) आगे को बढ़ावे । (सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर (त्वा) तुझे (एतेभ्यः) इन (देवेभ्यः) विद्वान् (सुविदत्रियेभ्यः) बड़े धन वाले (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (परि) सब प्रकार (ददत्) देवे ॥५४॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वदर्शक, सर्वरक्षक, सर्वनियामक, जगदीश्वर की उपासना करके आगे बढ़े, जिस से वह बड़े बड़े विद्वानों में स्थान पावे ॥५४॥

मन्त्र ५४ अभेद से और मन्त्र ५५ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १७ ।३, ४ ॥

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥५५॥

भाषार्थः—(विश्वायुः) सब को अन्न देने वाला (आयुः) सर्वव्यापक परमात्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्वा) तेरी (परि) सब ओर से (पातु) रक्षा करे, (पूषा) पोषक परमेश्वर (प्रपथे) उत्तम मार्ग में (पुरस्तात्) सामने से (त्वा) तेरी (पातु) रक्षा करे। (यत्र) जहां [उत्तम स्थान में] (सुकृतः) सुकर्मी लोग (आसते) बैठते हैं, और (यत्र) जहां [उत्तम मार्ग में] (ते) वे (ईयुः) चले हैं, (तत्र) वहां [उस स्थान और मार्ग में] (त्वा) तुझको (देवः) प्रकाशमय (सविता) सर्वप्रेरक परमात्मा (दधातु) रक्खे ।।५५।।

भावार्थः—सर्वपालक, सर्वव्यापक, सर्वपोषक जगदीश्वर का आश्रय लेकर सदा सुकर्मी लोग सन्मार्ग पर चलते हैं, उसी जगत्पिता की शरण में रहकर प्रत्येक मनुष्य श्रेष्ठ मार्ग पर चल कर सुखी होवे ।।५५।।

मन्त्रः ।।५६।।

परमात्मा देवता ।। अनुष्टुप् छन्दः ।।

पुरुषार्थकरणोपदेशः—पुरुषार्थ करने का उपदेश ।।

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।

ताभ्यां यमस्य सदनं समितीश्चाव गच्छतात् ।।५६।।

भाषार्थः—(इमौ) इन (वह्नी) ले चलने वाले दोनों [प्राण और अपान] को (असुनीताय) बुद्धि से ले जाये गये (ते) तुझे (वोढवे) ले चलने के लिये (युनज्मि) मैं [परमेश्वर] युक्त करता हूं। (ताभ्याम्) उन दोनों [प्राण और अपान] के द्वारा (यमस्य) नियम के (सदनम्) प्राप्ति योग्य पद को (च) और (समितीः) समितियों [सभाओं] को (अव गच्छतात्) निश्चय से तू प्राप्त हो ।।५६।।

भावार्थः—परमात्मा आज्ञा देता है कि हे मनुष्य मैंने प्राण अपान आदि बुद्धि सहित तुझे इस लिये दिये हैं कि तू नियम के साथ उत्तम पद प्राप्त करके सभाओं में प्रतिष्ठा पावे ।।५६।।

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ।।

मन्त्राः ।।५७—६०।।

जीवात्मा देवता ।। ५७ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५८ निचृत् त्रिष्टुप्, ५९, ६० त्रिष्टुप् ।।

सुकर्म करणोपदेशः—सुकर्म करने का उपदेश ।।

एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा ।

इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ।।५७।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः –(एतत्) यह (प्रथमम्) मुख्य (वासः) वस्त्र (त्वा) तुझे (नु) अब (आ अगन्) प्राप्त हुआ है, (एतत्) इस [वस्त्र] को (अप ऊह) छोड़ (यत्) जो (इह) यहां पर (पुरा) पहिले (अबिभः) तू ने धारण किया है। (विद्वान्) विद्वान् तू (इष्टापूर्तम्) यज्ञ, वेदाध्ययन और अन्नदान आदि पुण्य कर्म के (अनुसंक्राम) पीछे पीछे चल, (यत्र) जिस [पुण्य कर्म] में (ते) तेरा (दत्तम्) दान (बहुधा) बहुत प्रकार से (विबन्धुषु) विना बन्धु वालों [दीन, अनाथों] में है ॥५७॥

भावार्थः – जैसे नवीन वस्त्र पाने पर जीर्ण वस्त्र छोड़ दिया जाता है, वैसे ही ज्ञान की प्राप्ति पर अज्ञान त्यागा जाता है। मनुष्य को चाहिये कि वेदाध्ययन आदि शुभकर्म करता हुआ निष्काम होकर परोपकार करे ॥५७॥

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥५८॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (अग्नेः) ज्ञानमय परमेश्वर के (वर्म) कवच [समान आश्रय] को (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा (परि) सब ओर से (व्ययस्व) तू पहिन और (मेदसा) ज्ञान से (च) और (पीवसा) वृद्धि से [अपने को] (सम्) सब प्रकार (प्र उर्णुष्व) ढके रख। (न इत्) नहीं तो (धृष्णुः) साहसी, (जर्हृषाणः) अत्यन्त हर्ष मनाने वाला, (दधृक्) निर्भय परमात्मा (त्वा) तुझ को (हरसा) [अपने] तेज से (विधक्षन्) विविध प्रकार सन्ताप देता हुआ (परीङ्खयातै) इधर उधर चला देगा ॥५८॥

भावार्थः—सब मनुष्य वेदों के मनन से परमात्मा का आश्रय ले बुद्धि बढ़ाकर उन्नति करें, नहीं तो सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के नियम से दुष्ट मूर्ख नरक भोगेगा ॥५८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०।१६।७। और महर्षि दयानन्द-कृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥५९॥

भाषार्थः—(गतासोः) प्राण छोड़े हुए [मृतक समान निरुत्साही] पुरुष के (हस्तात्) हाथ से (श्रोत्रेण) [अपने] श्रवण सामर्थ्य [विद्याबल], (वर्चसा) तेज और (बलेन सह) बल के साथ (दण्डम्) दण्ड [शासन पद] को (आददानः) लेता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ (त्वम्) तू (अत्र एव) यहां पर और (वयम्) हम (इह) यहां पर (सुवीराः) बड़े वीरों वाले होकर (विश्वाः) सब (मृधः) संग्रामों और (अभिमातीः) अभिमानी शत्रुओं को (जयेम) जीतें ।।५९।।

भावार्थः—जो मनुष्य धर्म में निरुत्साही हो, सब धर्मात्मा पुरुष उस दुराचारी को पदच्युत करके परास्त करें ।।५९।।

मन्त्र ५९ का उत्तरार्द्ध और मन्त्र ६० का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १८ । ९ ।।

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ।।६०।।

भाषार्थः—(मृतस्य) मरे हुए [मरे हुए के समान दुर्बलेन्द्रिय पुरुष] के (हस्तात्) हाथ से (धनुः) धनुष [शासनशक्ति] को (क्षत्रेण) [अपने] क्षत्रियपन, (वर्चसा) तेज और (बलेन सह) बल के साथ (आददानः) लेता हुआ तू (भूरि) बहुत (पुष्टम्) पुष्ट [पुष्टिकारक] (वसु) धन (समागृभाय) यथावत् संग्रह कर और (अर्वाङ्) सामने होता हुआ (त्वम्) तू (जीवलोकम्) जीवते हुए [पुरुषार्थी] मनुष्यों के समाज में (उप) आदर से (आ इहि) आ ।।६०।।

भावार्थः—जो मनुष्य धर्म के पालने में पुरुषार्थ न करता हो, उस को अधिकार से हटाकर पुरुषार्थी पुरुष धर्म से धन का संग्रह करके सब लोगों की वृद्धि करे ।।६०।।

इति द्वितीयोऽनुवाकः ।।

अथ तृतीयोऽनुवाकः ।।

सूक्तम् ३ [मन्त्राः १–७३] ।।

मन्त्राः१—४ ।। नारी देवता ।। १, २, ३ त्रिष्टुप्, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ।।

नियोगविधानोपदेशः—नियोग विधान का उपदेश ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥१॥

भाषार्थः—(**मर्त्य**) हे मनुष्य ! (**इयम्**) यह (**नारी**) नारी (**पतिलोकम्**) पति के लोक [गृहाश्रम के सुख] को (**वृणाना**) चाहती हुई और (**पुराणम्**) पुराने [सनातन] (**धर्मम्**) धर्म को (**अनुपालयन्ती**) निरन्तर पालती हुई (**प्रेतम्**) मरे हुए [पति] की (**उप**) स्तुति करती हुई (**त्वा**) तुझको (**निपद्यते**) प्राप्त होती है, (**तस्यै**) उस [स्त्री] को (**प्रजाम्**) सन्तान (**च**) और (**द्रविणम्**) बल (**इह**) यहां पर (**धेहि**) धारण कर ॥१॥

भावार्थः—यदि विधवा स्त्री मृत पति के गुण गाती हुई सन्तान उत्पन्न करना चाहे, वह मृतस्त्रीक पुरुष के साथ यथाविधि नियोग करके अपने कुल की वृद्धि के लिये सन्तान उत्पन्न करे। इसी प्रकार मृतस्त्रीक पुरुष अपने कुल की बढ़ती के लिये सन्तान उत्पन्न करने को विधवा स्त्री से विधिवत् नियोग करे ॥१॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका नियोग विषय में व्याख्यात है ॥

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥२॥

भाषार्थः—(**नारि**) हे नारी ! (**जीवलोकम् अभि**) जीवते पुरुषों के समाज की ओर (**उत्**) उठकर (**ईर्ष्व**) चल, (**एतम्**) इस (**गतासुम्**) गये प्राण वाले [मरे वा रोगी पति] को (**उप**) सराहती हुई (**शेषे**) तू पड़ी है, (**आ इहि**) आ (**दधिषोः**) वीर्यदाता [नियुक्त पति] से (**ते**) अपने (**हस्तग्राभस्य**) [विवाह में] हाथ पकड़ने वाले (**पत्युः**) पति के (**जनित्वम्**) सन्तान को (**इदम्**) अब (**अभि**) सब प्रकार (**सम्**) यथावत् [शास्त्रानुसार] (**बभूथ**) तू प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थः—विपत्ति काल में अर्थात् सन्तान न होने पर पति के बड़े रोगी होने वा मर जाने पर स्त्री मृतस्त्रीक पुरुष से नियोग कर सन्तान उत्पन्न करके पति के वंश को चलावे। इसी प्रकार जिस पुरुष की स्त्री बड़ी रोगिनी हो वा मर गई हो वह विधवा से नियोग कर सन्तान उत्पन्न करके अपना वंश चलावे ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। १८। ८, वहां पर (दधिषोः) के स्थान पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दिधिषोः) पद है और ऋग्वेदपाठ ही महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के और सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास के नियोग विषय में व्याख्यात है ॥

मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक ५९ आदि में नियोग विषय का वर्णन है, यहां दो श्लोक लिखे जाते हैं—

देवराद् वा सपिण्डाद् वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥१॥

विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि ।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् ॥२॥

मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक ५९, ६२ ॥

देवर [पति के छोटे वा बड़े भाई] से अथवा सपिण्ड से [पति की छह पीढ़ियों के भीतर वाले से] यथाविधि [पति आदि बड़े लोगों द्वारा] नियुक्त की हुई स्त्री को सन्तान के सर्वथा नाश होने पर यथेष्ट सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये ॥१॥

विधवा [आदि] में नियोग का प्रयोजन यथाविधि पूरा हो जाने पर दोनों [पुरुष और स्त्री] गुरु के समान और पुत्र वधू के समान आपस में वर्ताव करें ॥२॥

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥३॥

भाषार्थः—(जीवाम्) जीवती हुई [पुरुषार्थ युक्त] (युवतिम्) युवा स्त्री (नीयमानाम्) ले जायी गयी और (मृतेभ्यः) मरे हुओं से [मृतक वा महारोगियों से] (परिणीयमानाम्) पृथक् ले जायी गयी (अपश्यम्) मैं ने देखी है। (यत्) क्योंकि वह (अन्धेन तमसा) गहरे अन्धकार से [सन्तान न होने के शोक से] (प्रावृता) ढकी हुई (आसीत्) थी, (तत्) इसी से (एनाम्) उस (अपाचीम्) अलग पड़ी हुई स्त्री को (प्राक्तः) सामने (अनयम्) मैं लाया हूं ॥३॥

भावार्थः—यदि स्त्री का पति मर गया हो वा महारोगी हो और स्त्री सन्तान के न होने से दुःखित हो, तो बुद्धिमान् लोग उसको धैर्य देकर नियोग विधि से सन्तान उत्पन्न करा के प्रसन्न करें ॥३॥

प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥४॥

भाषार्थः—(अघ्न्ये) हे निष्पाप स्त्री ! तू (जीवलोकम्) जीवित मनुष्यों के समाज को (प्रजानती) अच्छे प्रकार जानती हुई और (देवानाम्) विद्वानों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पन्थाम्) मार्ग पर (अनुसंचरन्ती) निरन्तर चलती हुई है। (अयम्) यह [नियुक्त पति] (ते) तेरी (गोपतिः) वाणी का रक्षक [वंश चलाने की बात निबाहने वाला] है, (तम्) उसको (जुषस्व) सेवन कर (एनम्) इसको (स्वर्गम् लोकम्) स्वर्ग लोक [सुख के समाज] में (अधि) अधिकार पूर्वक (रोहय) प्रकट कर ॥४॥

भावार्थः—कुल की वृद्धि के मर्म को जानने हारी धर्मशीला स्त्री नियुक्त पति से यथेष्ट कुलवर्धक सन्तान अपने लिये और उस पुरुष के लिये उत्पन्न करे और इस प्रकार वे दोनों अपने अपने कुलों को बढ़ाकर अपने वचन की रक्षा करें ॥४॥

मन्त्राः ५—९ ॥

अग्निर्देवता ॥ ५ निचृद् गायत्री; ६ अनुष्टुप्; ७, ९ त्रिष्टुप्; ८ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ॥

उन्नतिकरणोपदेशः—उन्नति करने का उपदेश ॥

उप द्यामुप॑ वेत॒समव॑त्तरो न॒दीना॑म् । अग्ने॑ पि॒त्तम॒पाम॑सि ॥५॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (द्याम्) विद्या प्रकाश को (उप) पाकर और (नदीनाम्) स्तुतियों के (वेतसम्) विस्तार को (उप) आदर से (अवत्तरः) अधिक रक्षा करता हुआ तू (अपाम्) प्राणों के (पित्तम्) तेज (असि) है ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या प्राप्त करके स्तुति योग्य व्यवहारों की रक्षा करता हुआ सब प्राणियों का बल बढ़ावे ॥५॥

इस मन्त्र का मिलान करो यजुर्वेद १७ । ६ ॥

यं त्वम॑ग्ने स॒मद॑ह॒स्तमु॒ निर्वा॑पया॒ पुनः॑ ।
क्याम्बू॒रत्र॑ रोहतु शाण्डदू॒र्वा व्य॑ल्कशा ॥६॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) तू ने (यम्) जिस [ब्रह्मचारी] को (समदहः) यथाविधि तपाया है [ब्रह्मचर्य तप कराया है] (तम् उ) उस को (पुनः) अवश्य (निः) निश्चय करके (वापय) बीज के समान फैला। (अत्र) यहां [संसार में] (क्याम्बूः) ज्ञान उपदेश करने वाली, (शाण्डदूर्वा) दुःख नाश करने वाली और (व्यल्कशा) विविध प्रकार शोभा वाली [शक्ति] (रोहतु) प्रकट होवे ॥६॥

भावार्थः माता पिता आचार्य आदि विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य आदि तप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करा के सन्तानों को ऐसी शिक्षा देवें कि जिस से वे शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति कर सकें ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है १० । १६ । १३ और वही पाठ महर्षि दयानन्दकृत संस्कार विधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

इदं त एकं पर ऊं त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वा३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥७॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् पुरुष !] (ते) तेरे लिये (इदम्) यह [कार्यरूप जगत्] (एकम्) एक [ज्योति तुल्य] है, (उ) और (परः) परे [आगे बढ़कर] (ते) तेरे लिये (एकम्) एक [कारण रूप जगत् ज्योति समान] है, (तृतीयेन) तीसरी (ज्योतिषा) ज्योति [प्रकाशस्वरूप परब्रह्म] के साथ (सम्) मिलकर (विशस्व) प्रवेश कर। (संवेशने) यथावत् प्रवेशविधि में (तन्वा) [अपनी] उपकार क्रिया से (चारुः) शोभायमान और (परमे) बड़े ऊंचे (सधस्थे) समाज में (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियः) प्रिय (एधि) हो ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य स्थूल और सूक्ष्म जगत् के तत्त्व को परमात्मा के ज्ञान के साथ जान कर विद्या द्वारा उपकार करता हुआ विद्वानों में उच्च पद प्राप्त करे ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ५६ । १ । और सामवेद में पू० १ । ७ । ३ ॥

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥८॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (उत् तिष्ठ) उठ, (प्र इहि) आगे बढ़ (प्र द्रव) आगे को दौड़ और (सलिले) चलते हुए जगत् में (सधस्थे) समाज के बीच (ओकः) घर (कृणुष्व) बना। (तत्र) वहां (त्वम्) तू (पितृभिः) पितरों [पिता आदि रक्षक महात्माओं] के साथ (संविदानः) मिलता हुआ (सोमेन, ऐश्वर्य से (सम्) मिलकर और (स्वधाभिः) आत्मधारण शक्तियों से (सम्) मिलकर (मदस्व) आनन्द पा ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य सदा पुरुषार्थ करके विद्वानों के सत्संग से प्रतिष्ठित होकर ऐश्वर्य प्राप्त करे और आत्मावलम्बन करता हुआ सुखी रहे ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र च्यवस्व तन्वं१ सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥९॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (तन्वम्) [अपने] शरीर को (प्र) आगे (च्यवस्य) चला और (सम्) मिलकर (भरस्व) पोषण कर, [जिस से] (मा) न तो (ते) तेरे (गात्रा) अङ्ग (मो) और न (शरीरम्) [तेरा] शरीर (वि) विचल होकर (हायि) छूटे। (निविष्टम्) जमे हुए (मनः) मन के (अनुसंविशस्व) पीछे पीछे प्रवेश कर, और (यत्र) जहां (भूमेः) भूमि की (जुषसे) तू प्रीति करता है, (तत्र) वहां (गच्छ) जा ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य अपने शरीर से सदा उद्योग करके सब के पोषण में अपनी शरीर रक्षा करे और दृढ़ संकल्पी होकर आगे बढ़ता हुआ दुष्टों से शिष्टों की रक्षा करे ॥९॥

मन्त्राः १०—२४॥

पितरो देवताः ॥ १०, १२—१४, १६, १७, २०—२२, २४ त्रिष्टुप्, ११ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, १५ आर्ची त्रिष्टुप्, १८ पादनिचृज्, जगती, १९ भुरिक् त्रिष्टुप्, २३ आर्षी पङ्क्तिः ॥

पितृकर्तव्योपदेशः—पितरों के कर्तव्य का उपदेश ॥

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥१०॥

भाषार्थः—(सोम्यासः) ऐश्वर्य वाले, (देवाः) विद्वान्, (पितरः) पितर [रक्षक महात्मा] (माम्) मुझ को (वर्चसा) तेज से, (मधुना) विज्ञान और (घृतेन) प्रकाश से (अञ्जन्तु) प्रसिद्ध करें। (चक्षुषे) सूक्ष्म दृष्टि के लिये (मा) मुझे (प्रतरम्) आगे को (तारयन्तः) पार करते हुए [वे लोग] (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वाले (मा) मुझ को (जरसे) स्तुति के लिये (वर्धन्तु) बढ़ावें ॥१०॥

भावार्थः विद्वान् लोग ऐसी शिक्षा प्रणाली चलावें कि जिस से सब लोग बलवान्, विज्ञानवान्, तेजस्वी और सूक्ष्मदर्शी होकर संसार में कीर्ति पावें ॥१०॥

वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन् ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अग्निः) ज्ञानमय परमेश्वर (वर्चसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) विख्यात करे, (विष्णुः) विष्णु [सर्वव्यापक जगदीश्वर] (मे) मेरे (आसन्) मुख में (मेधाम्) बुद्धि को (नि) नियम से (अनक्तु) प्रसिद्ध करे। (विश्वे) सब (देवाः) उत्तमगुण (रयिम्) धन (मे) मुझ को (नि) निरन्तर (यच्छन्तु) देवें, (स्योनाः) सुख देने वाले (आपः) आप्त विद्वान् (मा) मुझे (पवनैः) शुद्ध व्यवहारों से (पुनन्तु) शुद्ध करें ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की आराधना से तेजस्वी होकर विद्या का प्रकाश करें और धर्म से धन प्राप्त करके आप्त विद्वानों द्वारा अपना आचरण शुद्ध रक्खें ॥११॥

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥१२॥

भाषार्थः—(मित्रावरुणा) स्नेही और श्रेष्ठ दोनों [माता पिता] ने (माम्) मुझे (परि) सब ओर से (अधाताम्) पुष्ट किया है, (आदित्याः) पृथिवी के (स्वरवः) जयस्तम्भ (मा) मुझे (वर्धयन्तु) बढ़ावें। (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (मे) मेरे (हस्तयोः) दोनों हाथों के (वर्चः) बल को (नि) नियम से (अनक्तु) प्रसिद्ध करे, (सविता) सर्वप्रेरक परमात्मा (मा) मुझे (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वाला (कृणोतु) करे ॥१२॥

भावार्थः—जिन लोगों के माता पिता आदि बड़े लोग श्रेष्ठ और सच्चे प्रेमी होते हैं, वे ही विजयी होकर संसार में कीर्ति पाते हैं और परमात्मा के अनुग्रह से अपने भुजबल द्वारा श्रेष्ठ कामों में प्रवृत्ति करते हैं ॥१२॥

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥१३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (यः) जो [मनुष्य] (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के बीच (प्रथमः) मुख्य होकर (ममार) मर गया, और (यः) जो (प्रथमः) मुख्य होकर (एतम् लोकम्) इस लोक में (प्रेयाय) आगे बढ़ा। (वैवस्वतम्) उन मनुष्यों के हितकारी, (जनानाम्) मनुष्यों के (संगमनम्) मेल कराने वाले (यमम्) न्यायकारी (राजानम्) राजा को (हविषा) भक्ति के साथ (सपर्यत) तुम पूजो ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य सब के हित के लिये आत्मसमर्पण करके उन्नति करता जावे, सब मनुष्य उस के साथ सदा प्रीति करें ॥१३॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आ चुका है—अ० १८ ॥ १ ॥४६॥

परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥१४॥

भाषार्थः—(पितरः) हे पितरो ! [पिता आदि रक्षक महात्माओ] (परा) प्रधानता से (यात) चलो, (च) और (आ यात) आओ, (वः) तुम्हारा (अयम्) यह (यज्ञः) पूजनीय व्यवहार (मधुना) विज्ञान के साथ (समक्तः) सर्वथा प्रख्यात है। (अस्मभ्यम्) हमको (इह) यहां पर (द्रविणा) अनेक धन और (भद्रम्) कल्याण (दत्तो) अवश्य देओ, (च) और (नः) हमें (सर्ववीरम्) सब वीरों को रखने वाला (रयिम्) धन (दधात) धारण करो ॥१४॥

भावार्थः—विद्वान् माता पिता आदि महापुरुष सन्तान आदि गृहस्थों से मिलकर उनको उपदेश करें कि जिससे वे लोग अनेक धनों को प्राप्त होकर वीर पुरुषों का आदर करते रहें ॥१४॥

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः । १५॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (कण्वः) बुद्धिमान्, (कक्षीवान्) शासन करने वाला, (पुरुमीढः) बड़ा धनी, (अगस्त्यः) पापनाशक, (श्यावाश्वः) ज्ञान में व्याप्ति वाला (सोभरी) ऐश्वर्य धारण करने वाला, (अर्चनानाः) पूजनीय जीवन वाला, (विश्वामित्रः) सब का मित्र, (जमदग्निः) [शिल्प और यज्ञ आदि में] अग्नि प्रकाश करने वाला, (अत्रिः) सदा प्राप्ति योग्य, (कश्यपः) सूक्ष्मदर्शी, (वामदेवः) उत्तम व्यवहार वाला, [ये सब गुणी पुरुष] (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥१५॥

भावार्थः—कर्मवीर बुद्धिमान् पुरुष संसार की रक्षा करने में सदा तत्पर रहें ॥१५॥

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः । १६॥

भाषार्थः—(विश्वामित्र) हे सब के मित्र ! (जमदग्ने) हे अग्नि के प्रकाश करने वाले ! [शिल्प और यज्ञ में] (वसिष्ठ) हे अत्यन्त श्रेष्ठ ! (भरद्वाज) हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान बल के धारण करने वाले ! (गोतम) हे अतिशय स्तुति करने वाले वा विद्या की कामना करने वाले ! (वामदेव) हे श्रेष्ठ व्यवहार वाले ! [यह तुम सब] (सुसंशासः) उत्तम रीति से सर्वथा शासन करने वाले (पितरः) पितरो ! [रक्षक महात्माओ] (नः) हमें (मृडत) सुखी करो, (शर्दिः) विजयी (अत्रिः) प्राप्ति योग्य ज्ञानी पुरुष ने (नमोभिः) अन्नों के साथ (नः) हमें (अग्रभीत) ग्रहण किया है ॥१६॥

भावार्थः—शूर वीर ज्ञानी महात्मा लोग ही अन्न आदि से वृद्धि करके सब जीवों को सुख पहुंचावें ॥१६॥

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥१७॥

भाषार्थः—(कस्ये) [अपने] शासन में (मृजानाः) शुद्ध करते हुए, (प्रतरम्) अधिक श्रेष्ठ और (नवीयः) अधिक नवीन (आयुः) जीवन (दधानाः) धारण करते हुए लोग (रिप्रम्) पाप को (अति) उलांघ कर (यन्ति) चलते हैं (अध) फिर (प्रजया) प्रजा [सन्तान आदि] से और (धनेन) धन से (आप्यायमानाः) बढ़ते हुए (गृहेषु) घरों में हम (सुरभयः) ऐश्वर्यवान् (स्याम) होवें ॥१७॥

भावार्थः मनुष्यों को उचित है कि शासक शुद्धाचारी निष्पाप महात्माओं के जीवन को विचार कर अपने को और अपनी प्रजा अर्थात् सन्तान और राज्य जनों को धनी और ऐश्वर्यवान् बनावें ॥१७॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥१८॥

भाषार्थः—(हिरण्यपावाः) तेज [वा सुवर्ण आदि धन] के रक्षक लोग (क्रतुम्) कर्म [वा बुद्धि] को (मधुना) विज्ञान के साथ (अञ्जते) शुद्ध करते हैं, (वि अञ्जते) विख्यात करते हैं, (सम्) मिलकर (अञ्जते) प्राप्त करते हैं, (अभि अञ्जते) सब ओर फैलाते हैं और (रिहन्ति) सराहते हैं। (सिन्धोः) समुद्र के (उच्छ्वासे) बढ़ाव में (पतयन्तम्) जाते हुए (उक्षणम्) वृद्धि करने वाले (पशुम्) दृष्टि वाले प्राणी को (आसु) इन [प्रजाओं] के बीच (गृह्णते) गहते हैं [सहारा देते हैं] ॥१८॥

भावार्थः—प्रतापी, धनी, विज्ञानी, महात्मा पुरुष शुभ कर्मों और ज्ञानों को संसार में फैलावें और समुद्र वा आकाश आदि कठिन स्थानों में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने वाले उद्योगी दृष्टिमान् पुरुषों को सब लोगों के बीच सहाय करें ॥१८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—९ । ८६ । ४३ । और सामवेद में है—पू० ६ । ७ । ११ तथा उ० ७ । ३ । २१ ॥

यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥१९॥

भाषार्थः (पितरः) हे पितरो ! [रक्षक महात्माओ] (यत्) जो कुछ [कर्म] (वः) तुम्हारा (मुद्रम्) हर्षदायक (च) और (सोम्यम्) सोम्य [प्रियदर्शन उत्तम गुणयुक्त] है, (तेनो) उस से ही [हमें] (सचध्वम्) तुम सींचो [बढ़ाओ] और (हि) अवश्य (स्वयशसः) अपने आप यश वाले (भूत) होओ । (अर्वाणः) शीघ्रगामी, (कवयः) बुद्धिमान्, (सुविदत्राः) बड़े धनी और (विदथे) ज्ञान समाज में (हूयमानाः) पुकारे गये (ते) वे तुम (आ) आकर (शृणोत) सुनो ॥१९॥

भावार्थः—विद्वान् महात्मा लोग अपने शान्तिदायक कर्मों से संसार की रक्षा करके यशस्वी होवें ॥१९॥

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः ।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥२०॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अत्रयः) सदा प्राप्ति योग्य, (अङ्गिरसः) ज्ञानवान्, (नवग्वाः) स्तुति योग्य चलने वाले, (इष्टवन्तः) यज्ञ, तप, वेदाध्ययन आदि वाले, (रातिषाचः) दानों की वर्षा करने वाले और (दधानाः) पोषण करने वाले [हो] । (उ) और (ये) जो तुम (दक्षिणावन्तः) दक्षिणा [प्रतिष्ठा के दान] वाले (सुकृतः) सुकर्मी जन (स्थ) हो, वे तुम (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम आसन पर (आसद्य) बैठकर (मादयध्वम्) आनन्द करो ॥२०॥

भावार्थः—जो विद्वान् महर्षि विद्याप्रचारक धर्मात्मा और बहु प्रतिष्ठित होवें, गृहस्थ आदि लोग सत्कार करके उनको प्रसन्न करें ॥२०॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः ।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥२१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् ! (अध) फिर (यथा) जैसे (नः) हमारे (परासः) उत्तम (प्रत्नासः) प्राचीन (पितरः) पितर [रक्षक महात्मा] (ऋतम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य धर्म को (आशशानाः) अच्छे प्रकार सूक्ष्म करने वाले [हुए हैं] [वैसे ही] (दीध्यतः) प्रकाशमान, (उक्थशासः) प्रशंसनीय कर्मों की स्तुति करने वालों ने (शुचि) पवित्र कर्म को (इत) ही (अयन्) प्राप्त किया है, और (क्षाम) हानि को (भिन्दन्तः) तोड़ते हुए उन्होंने (अरुणीः) प्राप्ति योग्य क्रियाओं को वैसे ही (अपव्रन्) खोला है ॥२१॥

भावार्थः—जिस प्रकार पहिले विद्वान् लोग पिता आदि महात्माओं का अनुकरण करके विघ्नों को हटा कर उपकारी कामों का प्रचार करते आये हैं, वैसे ही सब विद्वानों को करना चाहिये ॥२१॥

मन्त्र २१-२३ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं-४ । २ । १६-१८ और यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में भी है-१९ । ६९ ॥

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥२२॥

भाषार्थः—(सुकर्माणः) पुण्यकर्म करने वाले, (सुरुचः) बड़ी प्रीति वाले, (देवयन्तः) उत्तम गुणों को चाहने वाले, (अयः न) सुवर्ण के समान (जनिम) जन्म [जीवन] को (धमन्तः) [धमन रूप तप से] शुद्ध करते हुए (अग्निम्) अग्नि [शारीरिक और आत्मिक बल] को (शुचन्तः) प्रकाशित करते हुए और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (ववृधन्तः) बढ़ाते हुए (देवाः) विद्वानों ने (नः) हमारे लिये (उर्वीम्) विस्तृत, (गव्याम्) वाणीमय (परिषदम्) परिषद [सभा] (अक्रन्) बनाई है ॥२२॥

भावार्थः—पवित्र वेदों के विचार से पुण्यात्मा पुरुषों ने ब्रह्मचर्य आदि तप द्वारा संसार में हमारी उन्नति के अनेक मार्ग दिखाये हैं, उसी प्रकार हम लोग भी स्वाध्याय आदि से अपना जन्म उच्च बनावें ॥२२॥

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः ।
मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥२३॥

भाषार्थः–(उग्रः) तेजस्वी पुरुष ने (क्षुमति) अन्न [घास आदि] वाले स्थान में (पश्वः) पशुओं के (यूथा इव) यूथों के समान (देवानाम्) विद्वानों के (जनिम) जन्म [जीवन] को (अन्ति) समीप से (आ) सब प्रकार (अख्यत्) देखा है। (मर्तासः) मनुष्यों ने (चित्) भी (उर्वशीः) बहुत फैली हुई क्रियाओं को (अकृप्रन्) विचारा है, (चित्) जैसे (अर्यः) वैश्य (उपरस्य) समीपस्थ (आयोः) आय की (वृधे) बढ़ती के लिये [विचारता है] ॥२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—प्रतापी बुद्धिमान् पुरुष विद्वानों के आचरणों को इस प्रकार ध्यान से देखता है, जैसे ग्वाला चरते हुए पशुओं को इधर उधर जाने से रोक कर देखता रहता है। और जैसे वैश्य अपने आय की उन्नति सोचता है, वैसे ही सब मनुष्य उत्तम विद्याओं और क्रियाओं का प्रचार करें ॥२३॥

अर्कर्मं ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥२४॥

भाषार्थः—[हे विद्वान्!] (ते) तेरे लिये [उत्तम कर्म] (अकर्म) हम ने किये हैं, (स्वपसः) अच्छे कर्म वाले (अभूम) हम हुए हैं, (विभातीः) प्रकाश करती हुई (उषसः) प्रभात वेलाओं ने (ऋतम्) सत्य धर्म में (अवस्रन्) निवास किया है। (यत्) जो कुछ (भद्रम्) कल्याणकारक कर्म है, (तत्) उस (विश्वम्) सब की (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्ति) रक्षा करते हैं। (सुवीराः) अच्छे वीरों वाले हम (विदथे) ज्ञान समाज में (बृहत्) बढ़ती करने वाला [वचन] (वदेम) बोलें ॥२४॥

भावार्थः—जैसे प्रभात वेलायें अन्धकार नाश करके प्रकाश करती हैं, वैसे ही सत्य धर्म असत्य का नाश करके प्रकाशमान होता है, विद्वान् लोग उस सत्य का ग्रहण करके और सभाओं में बैठकर सर्ववृद्धि का विचार करें ॥२४॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध ऋग्वेद में है—४।२।१९ और उत्तरार्द्ध ऋग्वेद—२।२३।१९ और यजुर्वेद—३४।५८॥

मन्त्राः २५—२९॥

प्रजापतिर्देवता ॥ २५ निचृदार्षी जगती, २६, २८ भुरिगार्षी जगती, २७ आर्षी जगती, २९ विराडार्षी जगती ॥

सर्वदिक्षुरक्षोपदेशः—सब दिशाओं में रक्षा का उपदेश ॥

इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२५॥

भाषार्थः—(मरुत्वान्) शूरों का स्वामी (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर (प्राच्याः) पूर्व वा सामने वाली (दिशः) दिशा से (मा) मेरी (पातु) रक्षा करे (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गई (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर, प्राणियों की रक्षा करती है] (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले [तुम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥२५॥

भावार्थः—परमात्मा पूर्व आदि और सामने वाली आदि दिशाओं में शूरों को बल देकर रक्षा करता है, जैसे चतुर लोगों के उद्योग से पृथिवी सूर्य के आकर्षण और प्रकाश आदि द्वारा वृष्टि ताप आदि पाकर अन्न आदि उत्पन्न करके रक्षा करती है, सब मनुष्य हितैषी विद्वानों का आश्रय लेकर उस जगदीश्वर की भक्ति करें ॥२५॥

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पांतु बाहुच्युतां पृथिवी द्यामिंवोपरिं । लोककृतः पथिकृतों यजामहे ये देवानां हुतभांगा इह स्थ ॥२६॥

भाषार्थः—(धाता) धारण करने वाला परमात्मा (दक्षिणायाः) दक्षिण वा दाहिनी (दिशः) दिशा की (निर्ऋत्याः) महाविपत्ति से (मा) मेरी (पातु) रक्षा करे, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गई···[मन्त्र २५] ॥२६॥

भावार्थः—मन्त्र २५ के समान है ॥२६॥

अदिंतिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः पांतु बाहुच्युतां पृथिवी द्यामिंवोपरिं । लोककृतः पथिकृतों यजामहे ये देवानां हुतभांगा इह स्थ ॥२७॥

भाषार्थः—(अदितिः) अखण्ड परमात्मा (आदित्यैः) अखण्डव्रती ब्रह्मचारियों द्वारा (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः) दिशा से (मा) मेरी (पातु) रक्षा करे, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गई···[मन्त्र २५] ॥२७॥

भावार्थः—मन्त्र २५ के समान है ॥२७॥

सोमों मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पांतु बाहुच्युतां पृथिवी द्यामिंवोपरिं । लोककृतः पथिकृतों यजामहे ये देवानां हुतभांगा इह स्थ ॥२८॥

भाषार्थः—(सोमः) सर्वजनक परमात्मा (विश्वैः) सब (देवैः) उत्तम गुणों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ (उदीच्याः) उत्तर वा बाईं ओर वाली (दिशः) दिशा से (मा) मेरी (पातु) रक्षा करे (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गई···[मन्त्र २५] ॥२८॥

भावार्थः—मन्त्र २५ के समान है ॥२८॥

धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२९॥

भाषार्थः—(धर्ता) पोषण करने वाला (धरुणः) स्थिर स्वभाव वाला परमात्मा (ह) निश्चय करके (त्वा) तुझे (ऊर्ध्वम्) ऊंचा (धारयातै) रक्खे, (इव) जैसे (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (भानुम्) सूर्य को (द्याम् उपरि) आकाश पर [रखता है] । (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां (स्थ) हो ॥२९॥

भावार्थः—परमात्मा सर्वपोषक, दृढ़ स्वभाव वाले पुरुषार्थी जनों को उच्च स्थान देता है, जैसे वह अनेक लोकों के आकर्षक, पोषक सूर्य को आकाश में ऊंचा रखता है। सब मनुष्य सर्वहितैषी विद्वानों का आश्रय लेकर उस जगदीश्वर की भक्ति करें ॥२९॥

मन्त्राः ३०—३७ ॥

ईश्वरो देवता ॥ ३० अतिजगती, ३१ विराट् शक्वरी, ३२—३५ भुरिगतिजगती, ३६ आसुर्यनुष्टुप् ३७ आसुरी गायत्री ॥

सर्वत्रपरमेश्वरधारणोपदेशः—सर्वत्र परमेश्वर के धारण का उपदेश ॥

प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३०॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (प्राच्याम्) पूर्व वा सामने वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे (स्वधायाम्) आत्मधारण शक्ति के बीच (पुरा) पूर्ति के साथ (संवृतः) घिरा हुआ मैं (आ) सब ओर से (दधामि) मैं [मनुष्य अपने में] धारण करता हूं, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गई (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर], [अपने में तुझे धारण करती है] । (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाने वाले, [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥३०॥

भावार्थः—सर्वथा परिपूर्ण परमेश्वर से पूर्व आदि और सामने वाली आदि दिशाओं में मनुष्य अपने में आत्मशक्ति पाकर पुरुषार्थ करता है, जैसे पृथिवी सूर्य के आकर्षण आदि में रहकर परमेश्वर की दी हुई आत्मशक्ति से उपकार करती है। सब मनुष्य हितैषी विद्वानों का आश्रय लेकर उस जगदीश्वर की भक्ति करें ॥३०॥

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३१॥

भाषार्थः—(दक्षिणायाम्) दक्षिण वा दाहिनी (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे [मन्त्र ३०] ॥३१॥

भावार्थः—मन्त्र ३० के समान है ॥३१॥

प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३२॥

भाषार्थः—(प्रतीच्याम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे…[म० ३०] ॥३२॥

भावार्थः—मन्त्र ३० के समान है ॥३२॥

उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३३॥

भाषार्थः—(उदीच्याम्) उत्तर वा बायीं (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे… [म० ३०] ॥३३॥

भावार्थः—मन्त्र ३० के समान है ॥३३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युतां पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३४॥

भाषार्थः—(ध्रुवायाम्) स्थिर वा नीचे वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे···[म० ३०] ॥३४॥

भावार्थः—मन्त्र ३० के समान है ॥३४॥

ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युतां पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३५॥

भाषार्थः [हे परमेश्वर!] (ऊर्ध्वायाम्) ऊपर वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे (स्वधायाम्) आत्मधारण शक्ति के बीच (पुरा) पूर्ति के साथ (संवृत) घिरा हुआ मैं [मनुष्य] (आ) सब ओर से (दधामि) धारण करता हूं, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गयी (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर, अपने में तुझे धारण करती है] (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले, [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥३५॥

भावार्थः—मन्त्र ३० के समान है ॥३५॥

धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥३६॥

उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥३७॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर!] (धर्ता) तू धारण करने वाला (असि) है, (धरुणः) तू स्थिर स्वभाव वाला (असि) है और (वंसगः) तू सेवनीय व्यवहारों का प्राप्त कराने वाला (असि) है ॥ ३६ ॥ (उदपूः) तू जल से शोधने वाला [वा जल से अग्रगामी] (असि) है, (वातपूः) तू वायु से पालने वाला [वा वायु से अग्रगामी] (असि) है, (मधुपूः) तू मधुर [स्वास्थ्य वर्धक] रस से पूर्ण करने वाला [वा ज्ञान से अग्रगामी] (असि) है ॥३७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः – मनुष्यों को योग्य है कि पूर्वोक्त प्रकार से परमात्मा को सब दिशाओं में व्यापक जानकर दृढ़ स्वभाव होवें और शुद्ध जल, वायु, अन्न आदि से शरीर के धातुरसों को पुष्ट करें। वह सर्वपोषक परमात्मा जल आदि स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों से और ज्ञानियों के ज्ञान से अधिक आगे है ॥३६, ३७॥

मन्त्राः ३८—४१

स्त्रीपुरुषौ देवते ॥ ३८ विराट् त्रिष्टुप्, ३९ भुरिक् पङ्क्तिः, ४० त्रिष्टुप्, ४१, भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्यों के कर्तव्य का उपदेश ॥

इतश्च॑ मामुत॑श्चावतां य॒मे इ॑व॒ यत॑माने॒ यदैत॑म् ।
प्र वां॑ भर॒न् मानु॑षा दे॒व॒यन्तो॒ आ सी॑द॒तां स्वमु॑ लो॒कं विदा॑ने ॥३८॥

भाषार्थः—[हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों] (इतः) यहां से [समीप में वा इस जन्म में] (च च) और (अमुतः) वहां से [दूर में वा परजन्म में] (मा) मुझे (अवताम्) बचावें, (यत्) क्योंकि (यमे इव) दो नियम वालों के समान (यतमाने) यत्न करते हुए तुम दोनों (ऐतम्) चले हो। (देवयन्तः) उत्तम गुण चाहने वाले (मानुषाः) मनन शील मनुष्यों ने (वाम्) तुम दोनों को (प्र) अच्छे प्रकार (भरन्) पाला है, (स्वम्) अपने (लोकम्) स्थान को (उ) अवश्य (विदाने) जानते हुए [आप दोनों] (आ) आकर, (सीदताम्) बैठें ॥३८॥

भावार्थः – सब स्त्री पुरुष जितेन्द्रिय होकर समीप और दूर में तथा लोक और परलोक में सुख के लिये यत्न करके परस्पर अपनी सत्ता को उच्च बनावें ॥३८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १३ । २ ॥

स्वास॑स्थे भवत॒मिन्द॑वे नो यु॒जे वां॒ ब्रह्म॑ पू॒र्व्यं नमो॑भिः ।
वि श्लोक॑ एति प॒थ्ये॑व सू॒रिः शृ॒ण्वन्तु॒ विश्वे॑ अ॒मृता॑स ए॒तत् ॥३९॥

भाषार्थः—(नः) हमारे (इन्दवे) ऐश्वर्य के लिये (स्वासस्थे) अच्छे आसन पर बैठने वाले (भवतम्) तुम दोनों होओ, (वाम्) तुम दोनों के लिये (पूर्व्यम्) पहिले [योगियों] करके प्रत्यक्ष किये (ब्रह्म) बड़े परमेश्वर का (नमोभिः) सत्कारों के साथ (युजे) मैं ध्यान करता हूं, (श्लोक.) वेदवाणी में कुशल (सूरिः) विद्वान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पथ्या इव) सुन्दर मार्ग के समान (वि) विविध प्रकार से (एति) चलता है, (विश्वे) सब (अमृतासः) अमर [पुरुषार्थी] लोग (एतत्) यह (शृण्वन्तु) सुनें ॥३९॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष पूर्वज योगियों के समान योगाभ्यास से आत्मशुद्धि करके परमात्मा को प्राप्त होवें, और जैसे विद्वानों का बनाया मार्ग सब यात्रियों को सुखदायक होता है, वैसे ही वेदकुशल विद्वानों का विद्याप्रचार सब को आनन्द देता है ॥३९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १३। १, २ तथा यजुर्वेद में—११। ५॥

त्रीणि पदानि रूपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद्व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ॥४०॥

भाषार्थः—(रुपः) गतिमान् पुरुष (त्रीणि) तीनों [भूत, भविष्यत् और वर्तमान] (पदानि) पदों [अधिकारों] के (अनु) पीछे पीछे (अरोहत्) प्रसिद्ध हुआ है, और (व्रतेन) व्रत [ब्रह्मचर्य आदि नियम] के साथ (चतुष्पदीम्) चारों [धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष] में अधिकार वाली वेदवाणी के (अनु) पीछे पीछे (ऐतत्) चला है। वह (अक्षरेण) व्यापक वा अविनाशी [ओ३म् परमात्मा] के साथ (अर्कम्) पूजनीय विचार को (प्रति) प्रत्यक्ष (मिमीते) कर्ता है, और (ऋतस्य) सत्य धर्म की (नाभौ) नाभि में [सब को] (अभि) सब ओर से (सम्) यथावत् (पुनाति) शुद्ध करता है ॥४०॥

भावार्थः—चलते फिरते उद्योगी स्त्री पुरुष भूत, भविष्यत् और वर्तमान का विचार करके वेदद्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त होवें और परमात्मा की आज्ञा का पालन करके सब मनुष्यों को शुभ मार्ग पर चलावें ॥४०॥

१—मन्त्र ४० और ४१ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१०। १३। ३, ४॥

२—संहिता के (ऐतत्) पद के स्थान पर पदपाठ में (एतत्) पद विचारणीय है॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्वं १ मा रिरेच ॥४१॥

भाषार्थः—[जिस ने] (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (कम्) सुख से (मृत्युम्) मृत्यु [अहङ्कार त्याग] को (अवृणीत) अङ्गीकार किया है, उसने (प्रजायै)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजा के लिये (किम्) क्या (अमृतम्) अमृत [अमरपन मोक्षपद] को (न) नहीं (अवृणीत) अङ्गीकार किया ? (बृहस्पतिः) उस बड़े बड़े व्यवहारों के रक्षक (ऋषिः) सन्मार्गदर्शक, (यमः) नियम वाले पुरुष ने (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (अतनुत) फैलाया है और (प्रियाम्) हित करने वाली (तन्वम्) उपकार क्रिया को (आ) सब ओर से (रिरेच) संयुक्त किया है ॥४१॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिये अहङ्कार, अर्थात् आपा छोड़ आत्मदान करते हैं, वे ही संसार को मोक्षपद देते और पूजनीय व्यवहारों को फैलाकर अवश्य महान् उपकार करते हैं ॥४१॥

मन्त्राः ४२—४८ ॥

पितरो देवताः ॥ ४२, ४३, ४८ त्रिष्टुप्, ४४, ४६ निचृज् जगती, ४५ निचृत् त्रिष्टुप्, ४७ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

पितृसन्तानकर्तव्योपदेशः—पितरों और सन्तानों के कर्तव्य का उपदेश ॥

त्वम॑ग्न ई॒डि॒तो जा॑तवेदोऽवा॑ड्ढ॒व्यानि॑ सुर॒भीणि॑ कृ॒त्वा ।

प्रादा॑: पि॒तृभ्य॑: स्व॒धया॒ ते अ॑क्षन्न॒द्धि त्वं दे॑व॒ प्रय॑ता ह॒वींषि॑ ॥४२॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे बड़े धनी (अग्ने) विद्वान् ! (ईडितः) प्रशंसित (त्वम्) तू ने (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (सुरभीणि) ऐश्वर्य युक्त (कृत्वा) करके (अवाट्) पहुंचाया है। (पितृभ्यः) पितरों [पिता आदि रक्षक महात्माओं] को (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (प्रयता) शुद्ध [वा प्रयत्न से सिद्ध किये] (हवींषि) ग्रहण करने योग्य भोजन (प्र) अच्छे प्रकार (अदाः) तू ने दिये हैं, (ते) उन्होंने (अक्षन्) खाये हैं, (देव) हे विद्वान् ! (त्वम्) तू [भी] (अद्धि) खा ॥४२॥

भावार्थः—पुत्रादि सन्तान उत्तम उत्तम पदार्थों से पितरों की सेवा करें और प्रयत्न से शुद्ध बनाये हुए भोजन उन्हें खिलावें और आप खावें, जिस से सब स्वस्थ रहकर आनन्द भोगें ॥४२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०।१५।१२ और यजुर्वेद में—१९।६६ तथा उत्तरार्द्ध आगे है—अ० १८।४।६५॥

आसी॑नासो अरु॒णीना॑मु॒पस्थे॑ र॒यिं ध॑त्त दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ।

पु॒त्रेभ्य॑: पितर॒स्तस्य॒ वस्व॒: प्र य॑च्छत॒ त इ॒होर्जं॑ दधात ॥४३॥

भाषार्थः—(पितरः) हे पितरो ! (अरुणीनाम्) पाने योग्य क्रियाओं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[वा विद्याओं] की (उपस्थे) गोद में (आसीनासः) बैठे हुए तुम (दाशुषे) दाता (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (रयिम्) धन (धत्त) धरो, (ते) वे तुम (इह) यहां पर (पुत्रेभ्यः) पुत्रों को (तस्य) उस (वस्वः) धन का (प्र यच्छत) दान करो, और (ऊर्जम्) पराक्रम (दधात) धारण करो ॥४३॥

भावार्थः—वृद्ध पितर लोग उत्तम क्रियाओं और विद्याओं द्वारा धन का संग्रह कर के सुपात्र विद्या आदि देने वाले पुरुष को धन का दान देवें और सन्तानों को यथायोग्य दाय भाग कर के पराक्रमी बनावें ॥४३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १५। ७। और यजुर्वेद १९। ६३॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥४४॥

भाषार्थः—(अग्निष्वात्ताः) हे अग्निविद्या [वा शारीरिक और आत्मिक तेज] के ग्रहण करने वाले (पितरः) पालन करने वाले पितरो ! (इह) यहां (आ गच्छत) आओ और (सुप्रणीतयः) अत्युत्तम नीतों वाले तुम (सदःसदः) सभा सभा में (सदत) बैठो। और (बर्हिषि) वृद्धि कारक व्यवहार के बीच (प्रयतानि) शुद्ध [वा प्रयत्न से शुद्ध किये] (हवींषि) खाने योग्य अन्नों को (अत्तो) अवश्य खाओ, (च) और (नः) हमारे लिये (सर्ववीरम्) सब वीर पुरुषों के प्राप्त कराने हारे (रयिम्) धन को (धत्त) धारण करो ॥४४॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सभाओं में उपदेश करके अग्नि अर्थात् सूर्य, बिजुली और अग्नि आदि विद्याओं द्वारा मनुष्यों का शारीरिक तथा आत्मिक बल बढ़ावें और श्रद्धा से दिये हुए अन्न आदि को ग्रहण करके उन्हें पुरुषार्थी, श्रीमान् और वीर सेनापति बनावें ॥४४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १५। ११ और यजुर्वेद में—१९। ५९ तथा महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पितृयज्ञ विषय में व्याख्यात है ॥

उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥४५॥

भाषार्थः (सोम्यासः) ऐश्वर्य के योग्य [वा प्रियदर्शन] (पितरः) पितर लोग (नः) हमारे (बर्हिष्येषु) वृद्धि योग्य, (प्रियेषु) प्रिय (निधिषु) [रत्न सुवर्ण आदि के] कोशों के निमित्त (उपहूताः) बुलाये गये हैं। (ते) वे (आ गमन्तु) आवें,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ते) वे (इह) इहां (श्रुवन्तु) सुनें, (ते) वे (अधि) अधिकार पूर्वक (ब्रुवन्तु) उपदेश करें और (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥४५॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्यावृद्ध और वयोवृद्ध विद्वानों का सत्कार करते रहें और उनसे उत्तम उत्तम उपदेश प्राप्त करके महाधनी और यशस्वी होवें ॥४५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १५ । ५ तथा यजुर्वेद—१९ । ५७ और महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पितृयज्ञ विषय में व्याख्यात है ॥

ये नः॑ पि॒तुः पि॒तरो॒ ये पि॑ताम॒हा अ॑नूजहि॒रे सो॑मपी॒थं वसि॑ष्ठाः ।
तेभि॑र्य॒मः सं॑ररा॒णो ह॒वींष्यु॒शन्नु॒शद्भिः॑ प्रतिका॒मम॑त्तु ॥४६॥

भाषार्थः—(ये) जिन (नः) हमारे (पितुः) पिता के (पितरः) पालन करने हारे पिता आदि ने और (ये) जिन (पितामहाः) दादा आदि वयोवृद्धों ने (वसिष्ठाः) अत्यन्त श्रेष्ठ होकर (सोमपीथम्) ऐश्वर्य की रक्षा को (अनुजहिरे) निरन्तर स्वीकार किया है। (संरराणः) अच्छे प्रकार दान करने हारा, (उशन्) कामना करने हारा (यमः) संयमी सन्तान (तेभिः) उन (उशद्भिः) कामना करने हारों के साथ (हवींषि) देने लेने योग्य भोजनों को (प्रतिकामम्) प्रत्येक कामना में (अत्तु) खावे ॥४६॥

भावार्थः जैसे पूर्वज वृद्धों ने धार्मिक आचरणों से ऐश्वर्यवान् होकर सन्तानों से प्रीति की है, वैसे ही सब सन्तान जितेन्द्रिय होकर उत्तम व्यवहारों से उनकी सेवा करते रहें ॥४६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १५ । ८ और यजुर्वेद में १९ । ५१ और इसका पहिला पाद आ चुका है—अ० १८ । २ । ४९ ॥

ये ता॑तृ॒षुर्दे॑व॒त्रा जेह॑माना होत्रा॒विदः॒ स्तोम॑तष्टासो अ॒र्कैः ।
आग्ने॑ याहि सु॒हस्रं॑ देववन्दैः॑ स॒त्यैः क॒विभि॒र्ऋषि॑भिर्घर्म॒सद्भिः॑ ॥४७॥

भाषार्थः—(ये) जिन (जेहमानाः) प्रयत्न करते हुए, (होत्राविदः) वेदवाणी जानने वाले, (स्तोमतष्टासः) स्तुति योग्य कर्मों में ढाले हुए पुरुषों ने (अर्कैः) पूजनीय व्यवहारों से (देवत्रा) उत्तम गुणों की (ततृषुः) तृष्णा की है। (अग्ने) हे विद्वान् ! (सहस्रम्) सहस्र प्रकार से (देववन्दैः) विद्वानों से वन्दना किये गये, (सत्यैः) सत्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शील वाले, (कविभिः) बुद्धिमान्, (घर्मसद्भिः) यज्ञ में बैठने वाले (ऋषिभिः) उन ऋषियों के साथ (आ याहि) तू आ ॥४७॥

भावार्थः—जो महात्मा लोग उत्तम विचार वाले सत्यशील प्रतिष्ठित वेदवेत्ता होवें, विद्वान् पुरुष उन से मिलकर सत्कार पूवक उन्नति का विचार करें ॥४७॥

मन्त्र ४७, ४८ कुछ पद भेद और पाद भेद से ऋग्वेद में है—१० । १५ । ९, १० ॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥४८॥

भाषार्थः—(ये) जो (सत्यासः) सत्यशील, (हविरदः) ग्राह्य अन्न खाने वाले, (हविष्पाः) देने लेने योग्य पदार्थों के रक्षक पुरुष (देवैः) विजयी पुरुषों के सहित (तुरेण) वेगवान् (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले जन के साथ (सरथम्) एकरथ में [चलते हैं] । (अग्ने) हे विद्वान् ! (सुविदत्रेभिः) बड़े धनी, (परैः) श्रेष्ठ (पूर्वैः) पूर्वज, (घर्मसद्भिः) यज्ञ में बैठने वाले, (ऋषिभिः) उन ऋषियों के साथ (अर्वाङ्) सन्मुख होकर (आ याहि) तू आ ॥४८॥

भावार्थः—विद्वान् लोग, प्रतापी पुरुष के सहायक, शूरवीरों के नायक पूजनीय महापुरुषों से मिलकर सदा उन्नति का उपाय सोचें ॥४८॥

मन्त्राः ४९–५२ ॥

पृथिवी देवता ॥ ४९, ५१, ५२ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५० प्रस्तारपङ्क्तिः ॥

पृथिव्या उपकारोपदेशः—पृथिवी के उपकार का उपदेश ॥

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥४९॥

भाषार्थः—(मातरम्) माता [के समान] (भूमिम्) आधार वाली (एताम्) इस (उरुव्यचसम्) बड़े फैलाव वाली, (सुशेवाम्) बड़ी सुख देने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को (उप) आदर से (सर्प) तू प्राप्त कर । (पृथिवी) पृथिवी (दक्षिणावते) दक्षिणा [प्रतिष्ठा] वाले पुरुष के लिये (ऊर्णम्रदाः) ऊन के समान मृदुल है, (एषा) यह [पृथिवी] (प्रपथे) बड़े मार्ग में (पुरस्तात्) सामने से (त्वा) तेरी (पातु) रक्षा करे ॥४९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो जिज्ञासु पुरुष इस पृथिवी को खोजते रहते हैं, वे प्रतिष्ठा के साथ सुख भोगते हुए आगे बढ़ते जाते हैं ॥४९॥

मन्त्र ४९-५२ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १८ । १०—१३ ॥

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥५०॥

भाषार्थः—(पृथिवि) हे पृथिवी तू (उत् श्वञ्चस्व) फूल जा [फूलके समान खिल जा], (मा नि बाधथाः) मत दबी जा, (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (सूपायना) अच्छे प्रकार पाने योग्य और (सूपसर्पणा) भले प्रकार चलने योग्य (भव) हो। (यथा) जैसे (माता) माता (पुत्रम्) पुत्र को (सिचा) अपने आंचल से, [वैसे] (भूमे) हे भूमि! (एनम्) इस [पुरुष] को [अपने रत्नों से] (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) ढक ले ॥५०॥

भावार्थः—जो मनुष्य विज्ञानपूर्वक पृथिवी के पदार्थों और गुणों का प्रकाश करते हैं, वे अनेक रत्नों को पाकर ऐसे सुखी होते हैं जैसे माता से रक्षित बालक आनन्द पाता है ॥५०॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आ चुका है—अथ० १८ । २ । ५० ॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥५१॥

भाषार्थः—(उच्छ्वञ्चमाना) फूलती हुई (पृथिवी) पृथिवी (सु) अच्छे प्रकार (तिष्ठतु) ठहरी रहे, (सहस्रम्) सहस्र प्रकार से (मितः) फैले हुए स्थान [दुर्ग आदि] (हि) अवश्य (उप श्रयन्ताम्) आश्रय लेवें। (ते) यह (गृहासः) घर (घृतश्चुतः) घी से सींचने वाले, (स्योनाः) सुख करने हारे और (शरणाः) शरण देने वाले (विश्वाहा) सब दिन (अत्र) यहां पर (अस्मै) इस पुरुष के लिये (सन्तु) होवें ॥५१॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि पृथिवी को भले प्रकार उपकारी करके अच्छे अच्छे दृढ़ सुखदायक स्थान बनावें ॥५१॥

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥५२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (ते) तेरे लिये (पृथिवीम्) पृथिवी को (उत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तमता से (स्तभ्नामि) मैं [गृहस्थ] थांभता हूं, (त्वत् परि) तेरे सब ओर (इमम्) इस (लोगम्) निवास स्थान को (निदधत्) दृढ़ जमाता हुआ (अहम्) मैं (मो रिषम्) कभी न दुःख पाऊं। (एताम्) इस (स्थूणाम्) नीव [घर की मूल] को (पितरः) पितर [रक्षक महात्मा लोग] (ते) तेरें लिये (धारयन्ति) धरते हैं, (तत्र) उस [नीव] पर (यमः) संयमी [शिल्पी जन] (ते) तेरे लिये (सदना) घरों को (कृणोतु) बनावें ॥५२॥

भावार्थः सब मनुष्य भूमि को सुथरी सुडौल बनाकर बड़े लोगों के हाथों से नींव जमवा कर अच्छे अच्छे शिल्पियों से दृढ़ स्थान बनवावें जिससे रहने वाले सदा सुखी रहें ॥५२॥

मन्त्राः ५३—६० ॥

अग्निर्देवता ॥ ५३ आर्षी त्रिष्टुप्, ५४ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, ५५, ५७ त्रिष्टुप्, ५६ अनुष्टुप्, ५८ भुरिग् विराट् छन्दः, ५९ भुरिक् त्रिष्टुप्, ६० षट्पदा जगती ॥

गृहरक्षणोपदेशः— घर की रक्षा का उपदेश ॥

इमम॑ग्ने चम॒सं मा वि जि॑ह्वरः प्रि॒यो दे॒वाना॑मु॒त सो॒म्याना॑म् ।
अ॒यं यश्च॑म॒सो दे॑व॒पान॒स्तस्मि॑न् दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ताम् ॥५३॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् ! (इमम्) इस (चमसम्) खाने योग्य अन्न को (वि) बिगाड़ कर (मा जिह्वरः) मत नष्ट कर, वह [अन्न] (देवानाम्) विद्वानों का (उत) और (सोम्यानाम्) ऐश्वर्य वालों का (प्रियः) प्रिय है। (अयम्) यह (यः) जो (चमसः) अन्न (देवपानः) इन्द्रियों का रक्षक है, (तस्मिन्) उस में (अमृताः) अमर [न मरे हुए पुरुषार्थी] (देवाः) व्यवहारकुशल लोग (मादयन्ताम्) [सबको] तृप्त करें ॥५३॥

भावार्थः – मनुष्य शुद्ध अन्न आदि पदार्थ के सेवन से विद्वान् और ऐश्वर्यवान् होकर शरीर रक्षा करके सब को सुखी रक्खें ॥५३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है – १० । १६ । ८ ॥

अथ॑र्वा पू॒र्णं च॑म॒सं यमि॑न्द्रा॒याबि॑भर्वा॒जिनी॑वते । तस्मि॑न्
कृ॒णोति सु॒कृ॒तस्य॑ भ॒क्षं तस्मि॒न्निन्दु॑ः पवते वि॒श्वदानी॑म् ॥५४॥

भाषार्थः—(अथर्वा) निश्चल परमात्मा ने (यम्) जिसे (पूर्णम्) पूरे (चमसम्) अन्न को (वाजिनीवते) विज्ञानयुक्त क्रिया वाले (इन्द्राय) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (अबिभः) भरा है। (तस्मिन्) उस [अन्न] में (इन्दुः) ऐश्वर्यवान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष (सुकृतस्य) सुकर्म का (भक्षम्) सेवन [वा भोग] (कृणोति) करता है, और (तस्मिन्) उसी [अन्न] में वह (विश्वदानीम्) समस्त दानों की क्रिया को (पवते) शुद्ध करता है ।।५४।।

भावार्थः - परमेश्वर ने संसार को अन्न आदि सुखदायक पदार्थों से भर दिया है, मनुष्य पुरुषार्थ से धर्म के साथ उन्हें प्राप्त कर के सब को सुख देवें ।।५४।।

यत् ते॑ कृ॒ष्णः श॑कु॒न आ॑तु॒तोद॑ पिपी॒लः स॒र्प उ॒त वा॒ श्वाप॑दः ।

अ॒ग्निष्टद् वि॒श्वाद॑ग॒दं कृ॑णोतु॒ सोम॑श्च॒ यो ब्रा॑ह्म॒णाँ आ॑वि॒वेश॑ ।।५५।।

भाषार्थः— [हे मनुष्य !] (यत्) जो कुछ (ते) तेरा [अङ्ग] (कृष्णः) काले (शकुनः) पक्षी [काक आदि] (पिपीलः) चीउँटा, (सर्पः) सर्प, (उत वा) अथवा (श्वापदः) कुत्ते समान पांव वाले, जङ्गली पशु [व्याघ्र शृगाल आदि] ने (आतुतोद) घायल कर दिया है, (तत्) उस [घायल अङ्ग]को (विश्वात्) सर्वरोगभक्षक (अग्निः) आग (अगदम्) नीरोग (कृणोतु) करे, (च) और (यः) जिस (सोमः) ऐश्वर्य [प्रभाव] ने (ब्राह्मणान्) बड़े विद्वानों में (आविवेश) प्रवेश किया है, [वह भी उसे नीरोग करे] ।।५५।।

भावार्थः—यदि विषैला पक्षी, पशु सर्प, कीट आदि काट खावे, तो मनुष्य थोड़े विषैले के काटे को आग से सेक दें और बड़े विषैले के काटे को आग से जलावें तथा और विद्वान् वैद्यों से भी औषध करावें, यह गृहस्थों को जानना चाहिये ।।५५।।

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । १६ । ६ ।।

पय॑स्वती॒रोष॑धयः॒ पय॑स्वन्माम॒कं पयः॑ ।

अ॒पां पय॑सो॒ यत् पय॒स्तेन॑ मा स॒ह शु॑म्भतु ।।५६।।

भाषार्थः —(ओषधयः) ओषधियां [अन्न सोमलता आदि] (पयस्वतीः) सार वाली [होवें], (मामकम्) मेरा (पयः) ज्ञान (पयस्वत्) सार वाला [होवे] । और (अपाम्) जलों के (पयसः) सार का (यत्) जो (पयः) सार है, (तेन सह) उस के साथ (मा) मुझे (शुम्भतु) वह [विद्वान्] शोभायमान करे ।।५६।।

भावार्थः सब मनुष्य विचारपूर्वक सारयुक्त ओषधियों का सेवन शुद्ध उत्तम जल के साथ करके शरीर को पुष्ट करें ।।५६।।

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १७ । १४ । इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध का मिलान करो—अ० ३ । २४ । १ ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥५७॥

भाषार्थः—(इमाः) यह [विदुषी] (नारीः) नारियां (अविधवाः) सधवा [मनुष्यों वाली] और (सुपत्नीः) धार्मिक पतियों वाली होकर (आञ्जनेन) यथावत् मेल से और (सर्पिषा) घी आदि [सारपदार्थ] से (सं स्पृशन्ताम्) संयुक्त रहें। (अनश्रवः) विना आँसुओं वाली, (अनमीवाः) विना रोगों वाली, (सुरत्नाः) सुन्दर सुन्दर रत्नों वाली (जनयः) मातायें (अग्रे) आगे आगे (योनिम्) मिलने के स्थान [घर, सभा आदि] में (आ रोहन्तु) चढ़ें ॥५७॥

भावार्थः—जो विदुषी स्त्रियां ब्रह्मचर्य आदि शुभ गुण वाली होती हैं, वे अपने विद्वान् सुयोग्य कुटुम्बियों पतियों और पुत्र आदि के साथ शरीर और आत्मा से स्वस्थ रहकर बहुत धनवती और सुखवती होकर अग्रगामिनी बनती हैं ॥५७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १८ । ७ । और ऊपर आचुका है—अ० १२ । २ । ३१ ॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥५८॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (यमेन सम्) नियम [ब्रह्मचर्य आदि व्रत] के साथ (इष्टापूर्तेन) यज्ञ, वेदाध्ययन तथा अन्नदान आदि पुण्य कर्म से (परमे) सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में [वर्तमान] (पितृभिः) पितरों [पालक महात्माओं] से (सं गच्छस्व) तू मिल। (अवद्यम्) निन्दित कर्म [अज्ञान] को (हित्वा) छोड़कर (पुनः) फिर (अस्तम्) घर (आ इहि) तू आ और (सुवर्चाः) बड़ा तेजस्वी होकर (तन्वा) उपकार शक्ति के साथ (सं गच्छताम्) आप मिलें ॥५८॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्य आदि तप के साथ बड़े विद्वान् महाशयों से विद्या प्राप्त करके गृहाश्रम में प्रवेश कर प्रतापी होवें ॥५८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १४ । ८ । और इस का चौथा पाद ऊपर आचुका है-अ० १८ । २ । १० तथा ऋग्वेद पाठ महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण में उद्धृत है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ।।५९।

भाषार्थः—(ये) जो पुरुष (नः) हमारे (पितुः) पिता के (पितरः) पिता के समान हैं, और (ये) जो [उस के] (पितामहाः) दादे के तुल्य हैं, और (ये) जो (उरु) चौड़ें (अन्तरिक्षम्) आकाश में [विद्याबल से विमान आदि द्वारा] (आविविशुः) प्रविष्ट हुए हैं, (तेभ्यः) उन [पितरों] के लिये (स्वराट्) स्वयं राजा (असुनीतिः) प्राण दाता परमेश्वर (नः) हमारे (तन्वः) शरीरों को (अद्य) अब (यथावशम्) [हमारी] कामना के अनुकुल (कल्पयाति) समर्थ करे ।।५९।।

भावार्थः—जो पितर लोग विद्या के भंडार परोपकारी होवें, सब मनुष्य परमेश्वर की प्रार्थना द्वारा विद्या आदि शुभ गुण प्राप्त कर के उन महात्माओं के उद्देश्य पूरे करने में समर्थ होवें ।।५९।।

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १५ । १४ तथा यजुर्वेद में - १९ । ६० और पूर्वार्द्ध ऊपर आया है—अ० १८ । २ । ४९ ।।

शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम् ।
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्य१प्सु शं भुव इमं स्व१ग्निं शमय ।।६०।।

भाषार्थः—(ते) तेरे लिये (नीहारः) कुहरा (शम्) शान्तिदायक (भवतु) होवे, (ते) तेरे लिये (प्रुष्वा) वृष्टि (शम्) शान्ति से (अवशीयताम्) नीचे गिरे। (शीतिके) हे शीतल स्वभाव वाली (शीतिकावति) हे शीतल क्रियाओं वाली (ह्लादिके) हे आनन्द देने वाली (ह्लादिकावति) हे आनन्दयुक्त क्रियाओं वाली ! [प्रजा अर्थात् प्रत्येक स्त्री पुरुष] (अप्सु) जल में (मण्डूकी) मेंडुकी [के समान] तू (शम्) शान्त (भुवः) हो, और (इमम्) इस (अग्निम्) आग [महासन्ताप] को (सु) अच्छे प्रकार (शमय) शान्त कर ।।६०।।

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष कुहरे, वृष्टि आदि का सहन करके और जल में मेंडुकी के समान शान्त स्वभाव और प्रसन्नचित्त रहकर सन्ताप अर्थात् विघ्नों का नाश कर ।।६०।।

इस मन्त्र का भाग (शीतिके…शमय) कुछ भेद से ऋग्वेद में है, १० । १६ । १४ ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्राः ६१—६४ ॥

विवस्वान् यमो वा देवता ॥ ६१ त्रिष्टुप्, ६२ आर्षी त्रिष्टुप्, ६३ निचृत् त्रिष्टुप्, ६४ भुरिक् पथ्या पङ्क्तिः ॥

अभयप्राप्त्युपदेशः अभय पाने का उपदेश ॥

विवस्वा॑न् नो॒ अभ॑यं कृणोतु॒ यः सु॒त्रामा॑ जी॒रदा॑नुः सु॒दानु॑ः ।
इ॒हेमे वी॒रा ब॒हवो॑ भवन्तु॒ गोम॒दश्व॑व॒न्मय्य॑स्तु पु॒ष्टम् ॥६१॥

भाषार्थः—(विवस्वान्) प्रकाशमय परमेश्वर (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (कृणोतु) करे, (यः) जो [परमात्मा] (सुत्रामा) बड़ा रक्षक (जीरदानुः) वेग का देने वाला, (सुदानुः) बड़ा उदार है (इह) यहां पर (इमे) यह सब (वीराः) वीर लोग (बहवः) बहुत (भवन्तु) होवें, (गोमत्) उत्तम गौओं से युक्त और (अश्ववत्) उत्तम घोड़ों से युक्त (पुष्टम्) पोषण (मयि) मुझ में (अस्तु) होवे ॥६१॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर प्रयत्नशाली वेगवान् और उदार होकर संसार में शान्ति करें और सब लोगों को वीर बनाकर समृद्ध होवें ॥६१॥

यह मन्त्र महर्षिदयानन्दकृत संस्कारविधि जातकर्म प्रकरण में उद्धृत है और इस का तीसरा पाद ऊपर आया है—अ० १२। २। २१ ॥

वि॒वस्वा॑न् नो अ॒मृत॒त्वे द॑धातु॒ परै॑तु मृ॒त्युर॒मृतं॑ न॒ एतु॑ ।
इ॒मान् र॑क्षतु॒ पुरु॑षा॒ना ज॑रि॒म्णो मो ष्वे॑षा॒मस॑वो य॒मं गु॑ः ॥६२।

भाषार्थः—(विवस्वान्) प्रकाशमय परमेश्वर (नः) हमें (अमृतत्वे) अमरपन [यश] के बीच (दधातु) रक्खे, (मृत्युः) [निर्धनता आदि दुःख] (परा) दूर (एतु) जावे, (अमृतम्) अमरण [धनाढ्यता] (नः) हम में (आ एतु) आवे। वह [परमेश्वर] (इमान्) इन (पुरुषान्) पुरुषों को (जरिम्णः) जीवन की हानि से (आ) सब प्रकार (रक्षतु) बचावे, (एषाम्) इन के (असवः) प्राण (यमम्) मृत्यु को (सु) कष्ट के साथ (मो गुः) कभी न जावें ॥६२॥

भावार्थः—पुरुषार्थी लोग परमात्मा के नियम से कभी भूखे प्यासे नहीं रहते, वे धनवान् होकर अपना जीवन सुख से बिताते हैं ॥६२॥

यो द॒ध्रे अ॒न्तरि॑क्षे॒ न म॒ह्ना पि॑तॄ॒णां क॒विः प्रम॑तिर्म॒तीना॑म् ।
तम॑र्चत वि॒श्वमि॑त्रा ह॒विर्भि॒ः स नो॑ य॒मः प्र॑त॒रं जी॒वसे॑ धात् ॥६३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जिस [परमात्मा] ने (पितॄणाम्) पितरों [पालक-महात्माओं] में (कविः) बुद्धिमान् और (मतीनाम्) बुद्धिमानों में (प्रमतिः) बड़ा बुद्धिमान् होकर (अन्तरिक्षे) आकाश के बीच (न) प्रबन्ध के साथ (मह्ना) अपनी महिमा से [सब लोकों को] (दध्रे) धारण किया है। (तम्) उस [परमात्मा] को (विश्वमित्राः) सब के मित्र होकर तुम (हविर्भिः) आत्मसमर्पणों से (अर्चत) पूजो (सः) वह (यमः) न्यायकारी परमेश्वर (नः) हमें (प्रतरम्) अधिक उत्तमता से (जीवसे) जीने के लिये (धात्) धारण करे ॥६३॥

भावार्थः- जो परमात्मा आकाश के बीच सब लोगों को रचकर आकर्षण आदि नियम में रखता है, सब मनुष्य उस जगदीश्वर की उपासना कर के अपने जीवन को अधिक अधिक उच्च बनाते हैं ॥६३॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आगे हैं, अ० १८। ४। ५४ ॥

आ रो॑हत॒ दिव॑मुत्त॒माम्ऋष॑यो॒ मा बि॑भीतन। सोम॑पाः॒ सोम॑पायिन

इ॒दं वः॑ क्रियते ह॒विरग॑न्म॒ ज्योति॑रुत्त॒मम् ॥६४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (उत्तमाम्) उत्तम (दिवम्) विद्या में (आ रोहत) तुम ऊंचे होओ, (ऋषयः) हे ऋषियो! [सन्मार्गदर्शको] (मा बिभीतन) मत भय करो। तुम (सोमपाः) शान्ति रस पीने वाले और (सोमपायिनः) शान्ति रस पिलाने वाले हो, (वः) तुम्हारे लिये (इदम्) यह (हविः) देने लेने योग्य कर्म (क्रियते) किया जाता है, (उत्तमम्) सब से उत्तम (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (अगन्म) हम सब प्राप्त होवें ॥६४॥

भावार्थः—जो ऋषि महात्मा उत्तम विद्या प्राप्त कर के शान्तचित्त होकर संसार में शान्ति स्थापित करें, मनुष्य उन से सत्कार पूर्वक शिक्षा ग्रहण करके परमात्मा की आज्ञा पालने में आनन्द पावें ॥६४॥

इस मन्त्र का अन्तिमपाद (अगन्म…) यजुर्वेद में है—२०। २१॥

मन्त्राः ६५—६७॥

अग्निरिन्द्रो वा देवता॥ ६५, ६६ त्रिष्टुप्, ६७ पथ्या बृहती॥

राजकर्त्तव्योपदेशः—राजा के कर्त्तव्य का उपदेश॥

प्र के॒तुना॑ बृह॒ता भा॑त्य॒ग्निरा रोद॑सी वृष॒भो रो॑रवीति।

दि॒वश्चि॒दन्ता॑दुप॒माम्उदा॑नड॒पामु॒पस्थे॑ महि॒षो व॑वर्ध ॥६५॥

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि समान तेजस्वी राजा (बृहता) बड़ी (केतुना)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि के साथ (प्र भाति) चमकता जाता है, [जैसे] (वृषभः) वृष्टि कराने वाला [सूर्य का ताप] (रोदसी) आकाश और पृथिवी में (आ) व्यापकर (रोरवीति) [बिजुली, मेघ, वायु आदि द्वारा] सब ओर से गरजता है। और (दिवः) सूर्य लोक के (चित्) ही (अन्तात्) अन्त से (उपमाम्) [हमारी] निकटता को (उत्) उत्तमता से (आनट्) वह [सूर्य का ताप] व्यापता है, [वैसे ही] (महिषः) वह पूजनीय राजा (अपाम्) प्रजाओं की (उपस्थे) गोद में (ववर्ध) बढ़ता है ॥६५॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने ताप द्वारा पृथिवी से जल खींचकर और फिर बरसा कर आनन्द बढ़ाता है, वैसे ही जो प्रतापी राजा प्रजा से कर लेकर प्रजा को सुख देता है, वह प्रजाप्रिय होकर संसार में बढ़ता है ॥६५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०।८।१ तथा सामवेद में—पू० १।७।६। दूसरा पाद ऋग्वेद में है—६।७३।१॥

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥६६॥

भाषार्थः—[हे राजन्!] (यत्) जैसे (नाके) आकाश में (उप पतन्तम्) उड़ते हुए (सुपर्णम्) सुन्दर पंख वाले [गरुड़ आदि] पक्षी को, [वैसे ही] (हिरण्यपक्षम्) तेज ग्रहण करने वाले, (वरुणस्य) श्रेष्ठ गुण के (दूतम्) पहुंचाने वाले, (यमस्य) न्याय के (योनौ) घर में (शकुनम्) शक्तिमान् और (भुरण्युम्) पालन करने वाले (त्वा) तुझ को (हृदा) हृदय से (वेनन्तः) चाहने वाले पुरुष (अभ्यचक्षत) सब ओर से देखते हैं ॥६६॥

भावार्थः—जो राजा महाप्रतापी, श्रेष्ठ गुणी, न्यायकारी और प्रजा-पालक होता है, मनुष्य उस वेगवान् तीव्रबुद्धि को ऐसी प्रीति से देखते हैं, जैसे आकाश में ऊंचे उड़ते हुए गरुड़ आदि को चाव से देखते हैं ॥६६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। १२३।५ और सामवेद में—पू० ४।३।८ तथा उ० ६।२।१३॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥६७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन्! तू (नः) हमारे लिये (क्रतुम्) बुद्धि (आ भर) भर दे, (यथा) जैसे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों [सन्तानों] के लिये। (पुरुहूत) हे बहुत प्रकार बुलाये गये [राजन्!] (अस्मिन्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस (यामनि) समय वा मार्ग में (नः) हमें (शिक्ष) शिक्षा दे, [जिस से] (जीवाः) हम जीव लोग (ज्योतिः) प्रकाश को (अशीमहि) पावें ।।६७।।

भावार्थः—राजा उत्तम उत्तम विद्यालय, शिल्पालय आदि खोलकर प्रजा का हित करे जैसे पिता सन्तानों का हित करता है, जिस से लोग अज्ञान के अन्धकार से छूट कर ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त होवें ।।६७।।

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—७ । ३२ । २६ और सामवेद में है—पू० ३ । ७ । ७ तथा उ० ६ । ३ । ६ ।।

मन्त्राः ६८—७३ ।।

प्रजापतिर्देवता ।। ६८, ७०, ७२ अनुष्टुप्; ६९, ७१ निचृदार्षी बृहती; ७३ त्रिष्टुप्, ।।

गृहाश्रमे मनुष्यकर्तव्योपदेशः—गृहाश्रम में मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ।।

अपूपापिंहितान् कुम्भान् यांस्तें देवा अधांरयन् ।
ते तें सन्तु स्वधावंन्तो मधुंमन्तो घृतश्चुतः ।।६८।।

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (यान्) जिन (अपूपापिहितान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] को ढककर रखने वाले (कुम्भान्) पात्रों को (ते) तेरे लिये (देवाः) विद्वानों ने (अधारयन्) रक्खा है । (ते) वे [भोजन पदार्थ] (ते) तेरे लिये (स्वधावन्तः) आत्मधारण शक्ति वाले, (मधुमन्तः) मधुर गुण वाले और (घृतश्चुतः) घी [सार रस] के सींचने वाले (सन्तु) होवें ।।६८।।

भावार्थः- गृहस्थों को योग्य है कि विद्वानों के स्थापित नियमों के अनुसार उत्तम भोजनों के सेवन से स्वस्थ रहें ।।६८।।

यह मन्त्र कुछ भेद से आगे है—अ० १८ । ४ । २५ और उत्तरार्द्ध उसी के मन्त्र म० ४२ में है ।।

यास्तें धाना अंनुकिरामिं तिलमिंश्राः स्वधावंतीः ।
तास्तें सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्तें यमो राजानुं मन्यताम् ।।६९।।

भाषार्थः—हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (याः) जिन (तिलमिश्राः) उद्योग से मिली हुई, ((स्वधावतीः) आत्मधारण शक्ति वाली (धानाः) पोषण क्रियाओं को (अनुकिरामि) मैं अनुकूल रीति से फैलाता हूं । (ताः) वे [पोषण क्रियायें] (ते) तेरे लिये (विभ्वीः) सर्वव्यापिनी और (प्रभ्वीः) प्रभुता वाली (सन्तु) होवें, और (ताः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन [पोषणक्रियाओं] को (ते) तेरे लिये (यमः) संयमी (राजा) राजा [शासक पुरुष] (अनु) अनुकूल (मन्यताम्) जाने ॥६९॥

भावार्थः—परमेश्वर कहता है कि मैं मनुष्य को अनेक विचित्र प्रभावशाली क्रियायें सर्वत्र लगातार देता हूं, उन को आत्मशासक संयमी पुरुष ज्ञानपूर्वक प्राप्त करे ॥६९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आगे है—अ० १८। ४। २६ तथा ४३ ॥

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥७०॥

भाषार्थः—(वनस्पते) हे सेवकों के रक्षक [परमात्मन्!] [वह श्रेष्ठ गुण] (पुनः) निश्चय कर के (देहि) दे, (यः एषः) जो यह [श्रेष्ठ गुण] (त्वयि) तुझ में (निहितः) दृढ़ रक्खा है। (यथा) जिस से यह [जीव] (यमस्य) न्याय के (सदने) घर में (विदथा) ज्ञानों को (वदन्) बताता हुआ (आसातै) बैठे ॥७०॥

भावार्थः— मनुष्य परमेश्वर के सर्वव्यापक उत्तम गुणों को अवश्य प्रयत्न से प्राप्त करके न्याय के साथ संसार में उपकार करे ॥७०॥

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥७१॥

भाषार्थः (जातवेदः) हे बड़े ज्ञानों वाले जीव! [धर्म को] (आ रभस्व) आरम्भ कर, (ते) तेरा (हरः) ग्रहण सामर्थ्य (तेजस्वत्) तेज वाला (अस्तु) होवे। (अस्य) इस [प्राणी] के (शरीरम्) शरीर को [ब्रह्मचर्य आदि तप से] (सम्) यथावत् (दह) तपा, (अथ) फिर (एनम्) इस [प्राणी] को (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोके) समाज में (उ) अवश्य (धेहि) रख ॥७१॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्म को आरम्भ कर के अपना बल पराक्रम बढ़ाते हैं, और अपने शरीर को ब्रह्मचर्य आदि तप से संयम में रखते हैं वे ही पुण्यात्माओं में प्रतिष्ठा पाते हैं ॥७१॥

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥७२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (ये) जो (ते) तेरे (पूर्वे) प्राचीन (च) और (ये) जो (अपरे) अर्वाचीन (पितरः) पितर [पालक महात्मा] (परागताः) प्रधानता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से चले हैं। (तेभ्यः) उन के लिये (घृतस्य) जल की (कुल्या) कुल्या [कृत्रिम नाली] (शतधारा) सैकड़ों धाराओं वाली, (व्युन्दती) उमड़ती हुई (एतु) चले ॥७२॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्वज और वर्तमान महात्माओं से गुण ग्रहण करके संसार को अनेक प्रकार आनन्द देवें, जैसे कि किसान लोग जल की नालियां बना खेतों को सींच कर अन्न की वृद्धि से सुख पहुंचाते हैं ॥७२॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से आगे है—अ० १८। ४। ५७॥

एतदा रोह वयं उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो मापं हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥७३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (एतत्) इस (वयः) जीवन को (उन्मृजानः) शुद्ध करता हुआ तू (आ रोह) ऊंचा चढ़, (ते) तेरे (स्वाः) बान्धव लोग (इह) यहां पर (बृहत्) बहुत (हि) ही (दीदयन्ते) प्रकाशमान हैं। तू (अभि) सब ओर (प्र) आगे को (इहि) चल, (मध्यतः) बीच से (पितॄणाम्) पितरों के (लोकम्) उस समाज को (अपं) बिलगा कर (मा हास्थाः) मत जा, (यः) जो [समाज] (अत्र) यहां पर (प्रथमः) मुख्य है ॥७३॥

भावार्थः—मनुष्य अपने यशस्वी बान्धवों के समान अपना जीवन उत्तम बनावें, और सब श्रेष्ठ कामों को दृढ़ता से आरम्भ कर के सर्वथा समाप्त कर महापुरुषार्थियों में स्थान पावें ॥७३॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ४ [मन्त्राः १—८९] ॥

मन्त्राः १—१५ ॥

प्रजापतिरग्निश्च देवते ॥ १, २ भुरिगार्षी त्रिष्टुप्, ३ भुरिगतिजगती, ४, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५ स्वराट् त्रिष्टुप्, ६, ९, १३ शक्वरी, ८ भुरिक् शक्वरी, १०, १५ निचृत् त्रिष्टुप्, ११ त्रिष्टुप् १२ निचृन्महाबृहती, १४ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्मार्ग गमनोपदेशः—सत्य मार्ग पर चलने का उपदेश ॥

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।
अग्नाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ॥१॥

भाषार्थः—(जातवेदसः) बड़े ज्ञान वाले तुम (जनित्रीम्) जगत् की जननी [परमात्मा] को (आ) व्याप कर (रोहत) प्रकट होओ, (पितृयाणैः) पितरों [पालक महात्माओं] के मार्गों से (सम्) मिलकर (वः) तुम्हें (आ रोहयामि) मैं [विद्वान्] ऊंचा करता हूं। (इषितः) प्रिय (हव्यवाहः) देने लेने योग्य पदार्थों के पहुंचाने वाले परमेश्वर ने (हव्या) देने लेने योग्य पदार्थ (अवाट्) पहुँचाये हैं, (ईजानम्) यज्ञ कर चुकने वाले पुरुष को (युक्ताः) मिले हुए तुम (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोके) समाज में (धत्त) रक्खो ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्य उपदेश करें कि सब मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर अपना कर्तव्य करते हुए उच्च पद प्राप्त करें और जो पुरुष अधिक पुरुषार्थी और परोपकारी होवे, सब मिलकर धर्मात्माओं में उसकी प्रतिष्ठा करें ॥१॥

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥२॥

भाषार्थः—(देवाः) विद्वान् लोग और (ऋतवः) सब ऋतुयें (यज्ञम्) यज्ञ [हवन आदि श्रेष्ठ व्यवहार], (हविः) हवि [होमीय वस्तु], (पुरोडाशम्) पुरोडाश [मोहनभोग आदि], (स्रुचः) स्रुचाओं [हवन के चमचों] और (यज्ञायुधानि) यज्ञ के अस्त्र शस्त्रों [उलूखल मूसल, सूप आदि] को (कल्पयन्ति) रचते हैं। [हे मनुष्य !] (तेभिः) उन (देवयानैः) विद्वानों के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (याहि) तू चल, (यैः) जिन [मार्गों] से (ईजानाः) यज्ञ कर चुकने वाले लोग (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले (लोकम्) समाज में (यन्ति) पहुंचते हैं ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सब ऋतुओं में योग्य सामग्री द्वारा यज्ञ करके श्रेष्ठ कर्म करते रहें और सब से कराते रहें, क्योंकि श्रेष्ठ कर्म समाप्त कर लेने वाले ही आनन्द पद के अधिकारी होते हैं ॥२॥

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति । तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः -[हे मनुष्य!] (ऋतस्य) सत्य धर्म के (पन्थाम्) मार्ग को (साधु) साधुपन से [कुशलता से] (अनु) लगातार (पश्य) देख, (येन) जिस [मार्ग] से (अङ्गिरसः) महाविद्वान् (सुकृतः) सुकर्मी लोग (यन्ति) चलते हैं। (तेभिः) उन (पथिभिः) मार्गों से (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले पद को (याहि) प्राप्त हो, (यत्र) जिन [मार्गों] में (आदित्याः) अखण्ड व्रतधारी विद्वान् लोग (मधु) ज्ञान रस को (भक्षयन्ति) भोगते हैं, और (तृतीये) तीसरे [दोनों जीव और प्रकृति से भिन्न] (नाके) सुखस्वरूप [वा सब के नायक] परमात्मा में (अधि) अधिकार पूर्वक (वि श्रयस्व) फैलकर विश्राम कर ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि पुण्यात्मा पुरुषों के वेदोक्त मार्ग पर चलकर जीव प्रकृति और परमात्मा के तत्त्व को जानता हुआ आनन्द को प्राप्त हो ॥३॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद (तृतीये...) आ चुका है—अ० ९।५।८॥

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥४॥

भाषार्थः—(त्रयः) तीन [ब्रह्म जीव और प्रकृति] (सुपर्णाः) सुन्दर पालन वा पूर्ति वाले पदार्थ [अथवा सुन्दर पंख वाले पक्षियों के समान] (उपरस्य) जल के देने वाले मेघ की (मायू) गर्जन में, (नाकस्य) लोकों के चलाने वाले सूर्य के (पृष्ठे) ऊंचे भाग पर और (विष्टपि) विविध प्रकार थांभने वाले आकाश में (अधि) अधिकार पूर्वक (श्रिताः) आश्रित हैं। (अमृतेन) अमर परमात्मा के साथ (विष्ठाः) विशेष करके ठहरे हुए (स्वर्गाः) सुख पहुंचाने वाले (लोकाः) समाज (इषम्) ज्ञान को और (ऊर्जम्) बल को (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ कर्म करने वाले] के लिये (दुह्राम्) भरपूर करें ॥४॥

भावार्थः—ब्रह्म जीव और प्रकृति यह तीनों सब पदार्थों और सब लोकों में व्याप रहे हैं, मनुष्य सर्वनायक परमात्मा के आश्रय से उनके तत्त्व को जानकर आनन्द पावें ॥४॥

इस मन्त्र का मिलान करो (द्वा सुपर्णा सयुजा......) अ० ९।९।२० तथा ऋग्वेद—१।१६४।२०॥

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम्।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुह्राम् ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(जुहूः) ग्रहण [आकर्षण] करने वाली शक्ति [परमात्मा] ने (द्याम्) प्रकाशमान सूर्य को, (उपभृत्) समीप से धारण करने वाली [उसी] शक्ति ने (अन्तरिक्षम्) भीतर दिखाई देने वाले आकाश को (दाधार) धारण किया है, और (ध्रुवा) [उसी] निश्चल शक्ति ने (प्रतिष्ठाम्) आश्रय स्थान, (पृथिवीम्) पृथिवी को (दाधार) धारण किया है। (इमाम्) इसी [शक्ति परमात्मा] में (प्रति) व्याप कर (घृतपृष्ठाः) प्रकाश को ऊपर रखने वाले [सुन्दर ज्योति वाले] (स्वर्गाः) सुख पहुँचाने वाले (लोकाः) लोक [समाज वा अधिकार] (कामंकामम्) प्रत्येक कामना को (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ व्यवहार करने वाले] के लिये (दुह्राम्) भरपूर करें ॥५॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने सूर्य को अनेक लोकों का आकर्षक, आकाश को सब लोकों का आधार और पृथिवी को प्राणियों का निवास-स्थान बनाया है, उस जगदीश्वर के आश्रय में रहकर यह सब लोक पुरुषार्थी धर्मात्मा मनुष्य के लिये बड़े ज्योतिष्मान् होकर शुभ कामनायें पूरी करते हैं ॥५॥

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व । जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः ॥६॥

भाषार्थः—(ध्रुवे) हे निश्चल शक्ति ! [परमात्मा] (विश्वभोजसम्) सब को पालने वाली [पृथिवीम्) पृथिवी में (आ) व्याप कर (रोह) प्रकट हो, (उपभृत्) हे समीप से धारण करने वाली शक्ति ! (अन्तरिक्षम्) भीतर दिखाई देने वाले आकाश में (आ) व्यापकर (क्रमस्व) प्राप्त हो। (जुहु) हे ग्रहण [आकर्षण] करने वाली शक्ति ! (यजमानेन साकम्) यजमान [श्रेष्ठ व्यवहार करने वाले] के साथ (द्याम्) प्रकाशमान सूर्य को (गच्छ) प्राप्त हो;

[हे यजमान !] (अहृणीयमानः) संकोच न करता हुआ तू (वत्सेन) बछड़े रूप (स्रुवेण) ज्ञान के साथ (सर्वाः) सब (प्रपीनाः) बढ़ती हुई (दिशः) दिशाओं को (धुक्ष्व) दुह ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा नीचे ऊंचे और मध्य लोक में व्याप कर धर्मात्मा पुरुष का सदा सहायक है, मनुष्य ज्ञान द्वारा सब दिशाओं से इस प्रकार उपकार लेवे जैसे बछड़े को लगाकर गौ से दूध दुहते हैं ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥७॥

भाषार्थः—(तीर्थैः) तरने के साधनों [शास्त्रों वा घाटों आदि] द्वारा [मनुष्य] (प्रवतः) बहुत गतियों वाली (महीः) बड़ी [विपत्तियों वा नदियों] को [उस प्रकार से] (तरन्ति) पार करते हैं, (येन) जिससे (यज्ञकृतः) यज्ञ करने वाले, (सुकृतः) सुकर्मी लोग (यन्ति) चलते है (इति) ऐसा [निश्चय है]। (अत्र) यहां [संसार में] (यजमानाय) यजमान के लिये (लोकम्) स्थान (अदधुः) उन [पुण्यात्माओं] ने दिया है, (यत्) जब कि (दिशः) दिशाओं को (भूतानि) सत्ता वाले प्राणियों ने (अकल्पयन्त) समर्थ बनाया है ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वान् धर्मात्माओं के वेदविहित मार्ग पर चल कर विपत्तियों से पार होवें। धर्मात्मा लोग ही संसार में मान्य होते हैं, क्योंकि वे पुरुषार्थी जीव सब दिशाओं को उपकारी बनाते हैं ॥७॥

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः । महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ॥८॥

भाषार्थः—(अङ्गिरसाम्) महर्षियों का (अयनम्) मार्ग (पूर्वः) पूर्वीय (अग्निः) अग्नि है, (आदित्यानाम्) [उन्हीं] अखण्ड व्रत वाले ब्रह्मचारियों का (अयनम्) मार्ग (गार्हपत्यः) गृहपति की अग्नि है, (दक्षिणानाम्) [उन्हीं] कार्यकुशलों का (अयनम्) मार्ग (दक्षिणाग्निः) दक्षिण वाली अग्नि है। (ब्रह्मणा) ब्रह्मा [चारों वेद जानने वाले] कर के (विहितस्य) स्थापित (अग्नेः) अग्नि की (महिमानम्) महिमा को (समङ्गः) दृढ़ाङ्ग, (सर्वः) सम्पूर्ण [चित्त वाला] और (शग्मः) शक्तिमान् होकर तू (उप याहि) सर्वथा प्राप्त कर ॥८॥

भावार्थः—यज्ञ में ब्रह्मा की स्थापित पूर्वाग्नि, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि को प्रकाशित करने से विद्वान् लोग आत्मिक उन्नति करके सब प्रकार शक्तिमान् होवें ॥८॥

पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात् ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (पूर्वः) पूर्व वाली (अग्निः) अग्नि (त्वा) तुझे (शम्) आनन्द के साथ (पुरस्तात्) आगे से (तपतु) प्रतापी [ऐश्वर्यवान्] करे, (गार्हपत्यः) गृहपति की अग्नि [तुझे] (शम्) सुख के साथ (पश्चात्) पीछे से (तपतु) प्रतापी करे। (दक्षिणाग्निः) दक्षिणीय अग्नि (ते) तेरे लिये (शर्म) शरण और (वर्म) कवच होकर (तपतु) प्रतापी करे ॥

(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! (उत्तरतः) ऊपर से (मध्यतः) मध्य से, (अन्तरिक्षात्) आकाश से और (दिशोदिशः) प्रत्येक दिशा से [उस उपासक को] (घोरात्) घोर [भयानक कष्ट] से (परि) सर्वथा (पाहि) बचा ॥९॥

भावार्थः जो मनुष्य भौतिक यज्ञ द्वारा आत्मिक यज्ञ सिद्ध करके समर्थ होते हैं, परमात्मा उनकी सर्वथा रक्षा करता है ॥९॥

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहोवहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति ॥१०॥

भाषार्थः—(अग्ने = अग्नयः) हे अग्नियो ! (यूयम्) तुम (पृष्टिवाहः) पीठ पर ले चलने वाले (अश्वाः) घोड़ों के समान (भूत्वा) होकर (शन्तमाभिः) अत्यन्त शान्ति युक्त (तनूभिः) उपकार क्रियाओं से (ईजानम्) यज्ञ कर चुकने वाले पुरुष को (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले (लोकम् अभि) समाज में (वहाथ) ले जाओ, (यत्र) जहां पर (देवैः) विद्वानों के साथ (सधमादम्) संगति सुख को (मदन्ति) वे [विद्वान्] भोगते हैं ॥१०॥

भावार्थः— पूर्वाग्नि, गार्हपत्याग्नि और दक्षिणाग्नि यज्ञ के द्वारा मनुष्य आत्मिक और शारीरिक दोषों की निवृत्ति से अत्यन्त शान्तचित्त होकर विद्वानों में मिल कर आनन्द भोगें ॥१०॥

शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ॥११॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि ! (एनम्) इस [विद्वान्] को (शम्) शान्ति के साथ (पश्चात्) पीछे से (शम्) शान्ति के साथ (पुरस्तात्) सामने से (तप) प्रतापी कर, (शम्) शान्ति के साथ (उत्तरात्) ऊपर से और (शम्) शान्ति के साथ (अधरात्) नीचे से (तप) प्रतापी कर। (जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान [अग्नि] (एकः) अकेला होकर (त्रेधा) तीन प्रकार से [पूर्वाग्नि, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि रूप से] (विहितः) स्थापित किया हुआ तू (एनम्) इस [पुरुष] को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सुकृताम्) सुकर्मियों के (उ) ही (लोके) समाज में (सम्यक्) ठीक रीति से (धेहि) रख ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि हवन आदि यज्ञ द्वारा अपने इन्द्रियों को वश में करके पुण्यात्मा पुरुषों में स्थान पावें ॥११॥

शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥१२॥

भाषार्थः—(समिद्धाः) यथाविधि प्रकाशित की हुई और (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (अग्नयः) अग्नियां (प्राजापत्यम्) प्रजापति परमात्मा को देवता मानने वाले (मेध्यम्) पवित्र पुरुष को (शम्) शान्ति के साथ (आ) सब ओर से (रभन्ताम्) उत्साही करें। और [उस को] (इह) यहां (शृतम्) परिपक्व [दृढ़ स्वभाव] (कृण्वन्तः) करती हुई [अग्नियाँ] (मा अव चिक्षिपन्) कभी न गिरने देवें ॥१२॥

भावार्थः—जो मनुष्य यज्ञ में पूर्वोक्त पूर्वादि तीनों अग्नियों को यथाविधि प्रज्वलित करते हैं, वे ब्राह्मण अपने आचरण को शुद्ध कर के पक्के ज्ञानी होकर संसार में नीचे नहीं गिरते ॥१२॥

यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १३॥

भाषार्थः (विततः) फैला हुआ (यज्ञः) यज्ञ (कल्पमानः) समर्थ होकर (ईजानम्) यज्ञ कर चुकने वाले पुरुष को (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले (लोकम् अभि) समाज में (एति) पहुँचाता है। (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (अग्नयः) अग्नियां (तम्) उस (सर्वहुतम्) पूर्ण आहुति दे चुकने वाले, (प्राजापत्यम्) प्रजापति परमात्मा को देवता मानने वाले, (मेध्यम्) पवित्र पुरुष को (जुषन्ताम्) सन्तुष्ट करें। और [उस को] (इह) यहां (शृतम्) परिपक्व [दृढ़ स्वभाव] (कृण्वन्तः) करती हुई [अग्नियाँ] (मा अव चिक्षिपन्) कभी न गिरने दें ॥१३॥

भावार्थः—पूर्वोक्त अग्नियों में हवन करके पूर्ण आहुति से यज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ, इन पांच महायज्ञों को समाप्त करने वाला पुरुष परमात्मा की भक्ति करता हुआ अनेक आनन्दों से ऊंचा होता जाता है ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ई॒जा॒नश्चि॒तमारु॑क्षद॒ग्निं नाक॑स्य पृ॒ष्ठाद्॒ दिव॑मुत्पति॒ष्यन्॑ ।
तस्मै॑ प्र भा॑ति॒ नभ॑सो॒ ज्योति॑षीमान्त्स्व॒र्गः पन्था॑ः सु॒कृते॑ दे॒वयान॑ः ॥१४॥

भाषार्थः—(ईजानः) यज्ञ कर चुकने वाले पुरुष ने (नाकस्य) अत्यन्त सुख के (पृष्ठात्) ऊपरी स्थान से (दिवम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा की ओर (उत्पतिष्यन्) चढ़ने की इच्छा करके, (चितम्) चुनी हुई (अग्निम्) अग्नि को (आ) सब ओर (अरुक्षत्) प्रकट किया है। (तस्मै) उस (सुकृते) सुकृती पुरुष के लिये (नभसः) आकाश से [खुले स्थान से] (ज्योतिषीमान्) ज्योतिष्मती बुद्धि वाला (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाला, (देवयानः) विद्वानों के चलने योग्य (पन्थाः) मार्ग (प्र भाति) चमकता जाता है ॥१४॥

भावार्थः—जब मनुष्य अत्यन्त सुख से परमात्मा की प्राप्ति में ऊंचा होकर अपना कर्तव्यरूप यज्ञ पूरा कर चुकता है, उसकी बुद्धि ऐसी चमकती है जैसे सूर्य खुले निर्मल आकाश में ॥१४॥

अ॒ग्निर्होता॑ध्व॒र्युष्टे॒ बृह॒स्पति॒रिन्द्रो॑ ब्र॒ह्मा द॑क्षिण॒तस्ते॑ अस्तु ।
हु॒तो॒ऽयं संस्थि॑तो य॒ज्ञ ए॑ति॒ यत्र॒ पूर्व॒मय॑नं हुता॒नाम् ॥१५॥

भाषार्थः—[हे यजमान !] (ते) तेरे लिये (अग्निः) [एक] विद्वान् पुरुष (होता) होता [मन्त्रों से आहुति देने वाला], (बृहस्पतिः) [एक] बृहस्पति [विद्वानों का पालन कर्ता] (अध्वर्युः) अध्वर्यु [यज्ञ कराने वाला] (इन्द्रः) [एक] परम ऐश्वर्यवान् महाविद्वान् (ब्रह्मा) ब्रह्मा [चारों वेद जानने वाला यज्ञनिरीक्षक पुरुष] (ते) तेरी (दक्षिणतः) दाहिनी ओर में (अस्तु) होवे। (अयम्) यह (हुतः) आहुति दिया गया और (संस्थितः) पूरा किया गया (यज्ञः) यज्ञ (एति) [वहां] जाता है, (यत्र) जहां (हुतानाम्) आहुति दिये हुए [यज्ञों] का (पूर्वम्) मुख्य (अयनम्) जाना होता है ॥१५॥

भावार्थः—विद्वान् यजमान वेदवेत्ता विद्वानों को होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा आदि ऋत्विज् अधिकारी बना कर प्राचीन महात्माओं की रीति से यज्ञ को यथाविधि समाप्त और सुफल करे ॥१५॥

इस मन्त्र का मिलान करो ऋग्वेद—१०। ७१। ११ से, जो यहां लिखा जाता है और जिसकी व्याख्या भगवान् यास्कमुनि ने - निरु० १। ८ में की है ॥

ऋ॒चां त्व॒ः पोष॑मास्ते पुपु॒ष्वान् गा॑य॒त्रं त्वो॑ गायति॒ शक्व॑रीषु ।
ब्र॒ह्मा त्वो॒ वद॑ति जातवि॒द्यां य॒ज्ञस्य॒ मात्रां॒ वि मि॑मीत उ त्वः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्वः) एक [होता] (ऋचाम्) ऋचाओं के (पोषम्) विधान की (पुपुष्वान्) पुष्टि करता हुआ (आस्ते) बैठता है, (त्वः) एक [उद्गाता] (गायत्रम्) गाने योग्य [स्तोत्र] को (शक्वरीषु) शक्तिवाली ऋचाओं में (गायति) गाता है। (त्वः) एक (ब्रह्मा) ब्रह्मा [सब विद्यायें जानने वाला] (जातविद्याम्) होते हुए कर्म में विद्या (वदति) बताता है, (त्वः) एक [अध्वर्यु] (यज्ञस्य) यज्ञ के (मात्राम्) परिमाण को (उ) ही (वि) विविध प्रकार (मिमीते) बनाता है ॥

मन्त्राः १६ - २७॥

यज्ञो देवता ॥ १—२४ भुरिगार्षी बृहती, २५ अनुष्टुप्, २६ निचृदार्ची बृहती, २७ याजुषी गायत्री ॥

यजमानकर्तव्योपदेशः—यजमान के कर्तव्य का उपदेश ॥

अपूपवा॑न् क्षी॒रवाँ॑श्च॒रुरेह सी॑दतु । लो॒क॒कृतः॑ पथि॒कृतो॑
यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ ॥१६॥

भाषार्थः—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (क्षीरवान्) दूध वाला (चरुः) चरु [स्थालीपाक] (इह) यहां [वेदी पर] (आ सीदतु) आवे। (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥१६॥

भावार्थः—यजमान को योग्य है कि विद्वानों को सत्कारपूर्वक बुलाकर शुद्ध, सुगन्धित, पुष्टिकारक मोहन भोग मालपूये आदि पदार्थों के स्थाली-पाक से यज्ञ करे ॥१६॥

इस मन्त्र का उत्तर भाग आ चुका है—अ० १८।३।२५—३५॥

अपूपवा॑न् दधि॒वाँश्च॒रुरेह सी॑दतु । लो॒क॒कृतः॑ पथि॒कृतो॑
यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ ॥१७॥

भाषार्थः—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (दधिवान्) पुष्टिकारक पदार्थों वाला (चरुः) चरु...... [मन्त्र १६] ॥१७॥

भावार्थः—मन्त्र १६ के समान है ॥१७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो
यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१८॥

भाषार्थः—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (द्रप्सवान्) हर्षकारक द्रव्यों वाला (चरुः) चरु……[मन्त्र १६] ॥१८॥

भावार्थः - मन्त्र १६ के समान है ॥१८॥

अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो
यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१९॥

भाषार्थः—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (घृतवान्) घृत वाला (चरुः) चरु……[मन्त्र १६] ॥१९॥

भावार्थः—मन्त्र १६ के समान है ॥१९॥

अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो
यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ।२०।

भाषार्थः—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (मांसवान्) मननसाधक पदार्थों वाला [अर्थात् बुद्धिवर्धक जैसे मीठे फल, बादाम, अक्षोट आदि वस्तुओं वाला] (चरुः) चरु……, [मन्त्र १६] ॥२०॥

भावार्थः—मन्त्र १६ के समान है ॥२०॥

अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो
यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२१॥

भाषार्थः—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (अन्नवान्) अन्न [जौ, चावल, गेहूं, उरद आदि] वाला (चरुः) चरु…… [मन्त्र १६] ॥२१॥

भावार्थः—मन्त्र १६ के समान है ॥२१॥

अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो
यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (मधुमान्) मधु [मक्खियों का रस] वाला (चरुः) चरु ..... [मन्त्र १६] ॥२२॥

भावार्थः—मन्त्र १६ के समान है ॥२२॥

अपूपवान् रसवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो

यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२३॥

भाषार्थः—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (रसवान्) रस वाले [वीर्यवर्धक शर्करा आदि] पदार्थों वाला (चरुः) चरु... [मन्त्र १६] ॥२३॥

भावार्थः—मन्त्र १६ के समान है ॥२३॥

अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो

यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२४॥

भाषार्थः—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] वाला, (अपवान्) शुद्ध जल वाला (चरुः) चरु......[मन्त्र १६] ॥२४॥

भावार्थः—मन्त्र १६ के समान है ॥२४॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥२५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (यान्) जिन (अपूपापिहितान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूये पूड़ी आदि] को ढककर रखने वाले (कुम्भान्) पात्रों को (ते) तेरे लिये (देवाः) विद्वानों ने (अधारयन्) रक्खा है। (ते) वे [भोजन पदार्थ] (ते) तेरे लिये (स्वधावन्तः) आत्मधारण शक्ति वाले, (मधुमन्तः) मधुर गुण वाले और (घृतश्चुतः) घी [सार रस] के सींचने वाले (सन्तु) होवें ॥२५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सुन्दर पौष्टिक पदार्थों से यज्ञ करें, जिससे वायुमण्डल शुद्ध होने पर उत्तम बलदायक अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न होवें ॥२५॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० १८ । ३ । ६८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥२६॥
अक्षितिं भूयसीम् ॥२७॥

भाषार्थः—[हे यजमान !] (ते) तेरे लिये (याः) जिन (तिलमिश्राः) तिलों से मिली हुई, (स्वधावतीः) उत्तम अन्न वाली (धानाः) धानाओं [सुसंस्कृत पौष्टिक पदार्थों] को (अनुकिरामि) [अन्न में] मैं [ऋत्विज्] अनुकूल रीति से फैलाता हूं। (ताः) वे [सब सामग्री] (ते) तेरे लिये (उद्भ्वीः) उदय कराने वाली और (प्रभ्वी) प्रभुता वाली (सन्तु) होवें, और (ताः) उन [सामग्रियों] को (ते) तेरे लिये (यमः) संयमी (राजा) राजा [शासक अर्थात् याजक पुरुष] (अनु) अनुकूल (मन्यताम्) जाने ॥२६॥ [और वह उनको] (भूयसीम्) अधिकतर (अक्षितिम्) क्षय रहित क्रिया [निरन्तर जाने] ॥२७॥

भावार्थः—यज्ञ कराने वाला पुरुष यथाविधि संशोधित तिल, जौ, चावल आदि जिन सामग्रियों से हवन करता है, उस के द्वारा वायुमण्डल की शुद्धि से संसार का उपकार और यजमान का अधिक पुण्य होता है—२६, २७॥

यह मन्त्र आगे है—अ० १८।४।४३ और कुछ भेद से आ चुका है—अ० १८।३।६९॥

मन्त्रौ २८, २९॥

ईश्वरो देवता ॥ २८ त्रिष्टुप्, २९ निचृज्जगती ॥

ब्रह्मोपासनोपदेशः—ब्रह्म की उपासना का उपदेश ॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥२८॥

भाषार्थः—(द्रप्सः) हर्षकारक परमात्मा (पृथिवीम्) पृथिवी और (द्याम् अनु) प्रकाश में (च) और (इमम्) इस (योनिम् अनु) घर [शरीर] में (च) और [उस शरीर में भी] (चस्कन्द) व्यापक है (यः) जो [शरीर] (पूर्वः) पहिला है। (समानम्) समान [सर्वसाधारण] (योनिम् अनु) कारण में (संचरन्तम्) विचरते हुए (द्रप्सम्) हर्षकारक परमात्मा को (सप्त) सात [मस्तक के सात गोलक] (होत्राः अनु) विषय ग्रहण करने वाली शक्तियों के साथ (जुहोमि) मैं ग्रहण करता हूं ॥२८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः— जो परमेश्वर अन्धकार और प्रकाश में, हमारे वर्तमान और पूर्व शरीर में प्रत्येक सर्व साधारण कारण में व्यापक है, सब मनुष्य योगाभ्यास से इन्द्रियों को वश में करके उस जगदीश्वर की भक्ति करें ॥२८॥

अथर्ववेद कांड १०। २। ६ में आया है—"कर्ता [परमेश्वर] ने [मनुष्य के] मस्तक में सात गोलक खोदे, यह दोनों कान, दोनों नथने, दोनों आंखें और एक मुख। जिन के विजय की महिमा में चौपाये और दोपाये जीव अनेक प्रकार से मार्ग चलते हैं" ॥

यह मन्त्र अभेद से यजुर्वेद में है—१३। ५, और कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १७। ११ ॥

श॒तधा॑रं वा॒युम॒र्कं स्व॒र्विदं॑ नृ॒चक्ष॑स॒स्ते अ॒भि च॑क्षते र॒यिम् ।
ये पृ॒णन्ति॒ प्र च॒ यच्छ॑न्ति सर्व॒दा ते दु॑ह्रते॒ दक्षि॑णां स॒प्तमा॑तरम् ॥२९॥

भाषार्थः—(ते) वे (नृचक्षसः) मनुष्यों के देखने वाले पुरुष (रयिम् अभि) धन को सब ओर से पाकर (शतधारम्) सैकड़ों प्रकार से धारण करने वाले (वायुम्) सर्वव्यापक, (अर्कम्) पूजनीय, (स्वर्विदम्) सुख पहुंचाने वाले परमेश्वर को (चक्षते) देखते हैं। (ये) जो पुरुष (सर्वदा) सर्वदा (पृणन्ति) [धन को] भरते हैं (च) और (प्र यच्छन्ति) [सुपात्रों को] देते हैं, (ते) वे लोग (सप्तमातरम्) सात [मन्त्र २८, मस्तक के सात गोलकों] द्वारा बनी हुई (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठा को (दुह्रते) दुहते हैं [पाते हैं] ॥२९॥

भावार्थः—पुरुषार्थी परोपकारी पुरुष परमात्मा के दिये धन को प्रत्येक स्थान में प्राप्त करके सुपात्रों को देकर यशस्वी होवें, क्योंकि जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर धन बढ़ाते और सुपात्रों को देते हैं, वे ही संसार में प्रतिष्ठा पाते हैं ॥२९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १०७। ४ ॥

मन्त्राः ३०—४० ॥

धेनुर्देवता ३०। ३६ त्रिष्टुप्; ३१, ३८ अनुष्टुप्, ३२ निचृदनुष्टुप्, ३३ भुरिगार्षी बृहती, ३४ त्रिष्टुप्, ३५ निचृदार्षी त्रिष्टुप्, ३७, निचृद् त्रिष्टुप्, ३९ आर्षी पङ्क्तिः, ४० भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

गोरक्षोपदेशः—गोरक्षा का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥३०॥

भाषार्थः—(कोशम्) भण्डार तुल्य, (चतुर्बिलम्) चार छेद [स्तन] वाले (कलशम्) कलश [गौ के लेवा] को (इडाम्) स्तुति योग्य, (मधुमतीम्) मधुर रस [मीठे दूध] वाली (धेनुम्) दुधैल गौ से (स्वस्तये) आनन्द के लिये (दुहन्ति) [मनुष्य] दुहते हैं। (अग्ने) हे ज्ञानी राजन्! (परमे) सर्वोत्कृष्ट (व्योमन्) सर्वत्र व्यापक परमात्मा में [वर्तमान तू] (जनेषु) मनुष्यों के बीच (ऊर्जम्) बलदायक रस (मदन्तीम्) बढ़ाती हुई (अदितिम्) अदीन [और अखण्डनीय] गौ को (मा हिंसीः) मत मार ॥३०॥

भावार्थः—राजा ऐसा प्रबन्ध करे कि गौ आदि पशु जो दूध घी आदि उत्तम पदार्थ देने में दीन नहीं होते और उनके बच्चे बैल आदि जो खेती आदि में उपकार करते हैं जिस से प्रजा की रक्षा होती है, उन सब को कोई मनुष्य कभी न सतावे और न मारे ॥३०॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से यजुर्वेद में है—१३। ४९, और पूर्वार्द्ध के लिये मन्त्र ३६ आगे देखो ॥

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥३१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (ते) तेरे लिये (देवः) व्यवहार कुशल (सविता) प्रेरक [काम चलाने वाला, कपड़ा बनाने वाला पुरुष] (एतत्) यह (वासः) कपड़ा (भर्तवे) पहिरने को (ददाति) देता है। (त्वम्) तू (यमस्य) न्यायकारी राजा के (राज्ये) राज्य में (तार्प्यम्) तृप्तिकारक (तत्) उस [वस्त्र] को (वसानः) पहिरे हुए (चर) विचर ॥३१॥

भावार्थः—न्यायी राजा के राज्य में गाय बैल आदि के उपकार से [मन्त्र ३०] वस्त्रकार आदि लोग वस्त्र आदि बनाकर मनुष्यों का उपकार करते हैं ॥३१॥

धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥३२॥

भाषार्थः—(अस्याः) इस [गौ] से (धानाः) धानियें [सुसंस्कृत पौष्टिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ] और (धेनुः) गौ और (वत्सः) बछड़ा (अभवत्) होता है और (तिलः) तिल [तिल सरसों आदि] (अभवत्) होता हैं। (यमस्य) न्यायकारी राजा के (राज्ये) राज्य में [मनुष्य] (वै) निश्चय करके (ताम्) उस (अक्षिताम्) विना सतायी हुई [गौ] के (उप जीवति) सहारे से जीवता है ॥३२॥

भावार्थः—उत्तम राज्य के प्रबन्ध द्वारा गौ के उपकार से अन्न और तेल आदि भोजन आदि के लिये तथा गौ दूध, घी आदि के लिये और बैल खेती आदि के लिये होते हैं, जिन पदार्थों के ऊपर मनुष्य का जीवन निर्भर है ॥३२॥

एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु । एनीः श्येनीः
सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥३३॥

भाषार्थः—(असौ) हे अमुक पुरुष ! (ते) तेरी (एताः) यह (धेनवः) दुधेल गायें (कामदुघाः) कामधेनु [कामना पूरी करने वाली] (भवन्तु) होवें। (एनीः) चितकबरी, (श्येनीः) धौली, (सरूपाः) एक से रूप वाली, (विरूपाः) अलग अलग रूप वाली, (तिलवत्साः) बड़े बड़े बछड़ों वाली [गायें] (अत्र) यहां (त्वा) तेरी (उप तिष्ठन्तु) सेवा करें ॥३३॥

भावार्थः—सब मनुष्य गौओं की घास अन्न आदि से यथावत् सेवा करें जिससे वे अभीष्ट घी दूध बड़े बछड़े आदि देकर उपकार करती रहें और प्रीति बढ़ाने के लिये ऐसा प्रयत्न करें कि गौएँ और बछड़े अनेक रंगों और नामों के होवें ॥३३॥

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥३४॥

भाषार्थः [हे मनुष्य !] (अस्य) इस (ते) तेरी (एनीः) चितकबरी, (हरिणीः) पीली, (श्येनीः) धौली, (कृष्णाः) काली, (रोहिणीः) लाल (तिलवत्साः) बड़े बड़े बछड़ों वाली, (अनपस्फुरन्तीः) कभी न चलायमान होने वाली (धेनवः) दुधेल गायें (धानाः) पुष्टिकारक (धानाः) धानियों [सुसंस्कृत अन्नों] को और (ऊर्जम्) बलदायक रस [दूध घी आदि] को (अस्मै) उस तेरे लिये (विश्वाहा) सब दिनों (दुहानाः) देती हुई (सन्तु) होवें ॥३४॥

भावार्थः— मनुष्यों को चाहिये कि वे प्रीतिसूचक रंग और नाम वाली गौओं को सावधानी से पालें जिस से गौओं के दूध घी आदि द्वारा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम उत्तम भोजन और खेती आदि के लिये बड़े बड़े बछड़े करके सदा पुष्ट रहें ॥३४॥

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ॥३५॥

भाषार्थः—(वैश्वानरे) सब नरों के हितकारी पुरुष के निमित्त (इदम्) इस (हविः) ग्रहण करने योग्य वस्तु, (साहस्रम्) सहस्रों उपकार वाले, (शतधारम्) सैकड़ों दूध के धाराओं वाले (उत्सम्) स्रोते [अर्थात् गौ रूप पदार्थ] को (जुहोमि) मैं देता हूं। (सः) वह (पिन्वमानः) सेवा किया हुआ [गौ रूप पदार्थ] (पितरम्) [पिता आदि बड़ों] को (पितामहान्) दादे आदि मान्य जनों को (बिभर्त्ति) पुष्ट करता है, और (प्रपितामहान्) परदादे आदि महामान्य पुरुषों को (बिभर्ति) पुष्ट करता है ॥३५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! गौ को प्राप्त करके उसकी पूरी सेवा करो, उस के पालने से खेती आदि के लिये उत्तम बैल तथा दूध घी आदि उत्तम पदार्थ मिलने से तुम्हारे कुटुम्बी और सब बड़े बूढ़े बलवान् और पुष्ट रहेंगे ॥३५॥

सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥३६॥

भाषार्थः—(सहस्रधारम्) सहस्रों प्रकार से पोषण करने वाले, (शतधारम्) दूध की सैकड़ों धाराओं वाले, (अक्षितम्) न घटने वाले, (सलिलस्य) समुद्र की (पृष्ठे) पीठ पर (व्यच्यमानम्) फैले हुए [अर्थात् जल समान बहुत होने वाले] (ऊर्जम्) बलकारक रस [दूध घी आदि] (दुहानम्) देने वाले (अनपस्फुरन्तम्) कभी न चलायमान होने वाले (उत्सम्) स्रोते [अर्थात् गौ रूप पदार्थ] को (पितरः) पितर [पिता आदि मान्य] लोग (स्वधाभिः) आत्मधारण शक्तियों के साथ (उप आसते) सेवते हैं ॥३६॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपना शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ाना चाहें, वे गौ की रक्षा करके दूध घी आदि का सेवन करें ॥३६॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से यजुर्वेद में है—१३। ४९ और उत्तरार्द्ध के लिये—मन्त्र ३० ऊपर देखो ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥३७॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (कसाम्बु) शासन का कीर्तन (चयनेन) इकट्ठा करने से (चितम्) इकट्ठा किया गया है, (सजाताः) हे सजातियो ! (तत्) उस को (अव पश्यत) ध्यान से देखो और (आ) सब ओर से (इत) प्राप्त करो (अयम्) यह (मर्त्यः) मनुष्य (अमृतत्वम्) अमरपन (एति) पाता है। (यावत्सबन्धु) जितने तुम समान गोत्र वाले [अर्थात् सपिण्डी] हो सब मिल कर (तस्मै) उस [पुरुष] के लिये (गृहान्) घरों को (कृणुत) बनाओ ॥३७॥

भावार्थः—संसार में गौ आदि उपकारी जीव और बड़े बड़े घर आदि स्थान युक्ति के साथ क्रम क्रम से ठीक होते हैं, मनुष्य यह विचार कर उन्नति करें। मनुष्य इसी प्रकार श्रेष्ठ कामों से यश पाता है और सब कुटुम्बी आदि उस का सहाय करते हैं ॥३७॥

इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः ।
इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥३८॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (धनसनिः) धन कमाता हुआ, (इहचित्तः) यहां पर चित्त देता हुआ, (इहक्रतुः) यहां पर कर्म करता हुआ तू (इह) यहां पर (एव) (एव) ही (एधि) रह। और (वीर्यवत्तरः) अधिक वीर्यवान् होता हुआ, (वयोधाः) बल देता हुआ और (अपराहतः) न मार डाला गया तू (इह) यहां पर (एधि) रह ॥३८॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या द्वारा धन आदि प्राप्त करके यहां अर्थात् अपने घर, नगर, देश तथा संसार में उपकार करता हुआ महाबली उदार और शत्रुरहित होकर निर्भय होवे ॥३८॥

पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः । स्वधां
पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥३९॥

भाषार्थः—(इमाः) यह (मधुमतीः) मधुर रस [मीठे दूध घी] वाली (आपः) प्राप्ति योग्य [गौयें] (पुत्रम्) पुत्र और (पौत्रम्) पौत्र को (अभितर्पयन्तीः) सब ओर से तृप्त करती हुई होवें और (पितृभ्यः) पितरों को (स्वधाम्) स्वधारण शक्ति और (अमृतम्) अमरण [जीवन] (दुहानाः) देती हुयीं, (देवीः) उत्तम गुण वाली (आपः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति योग्य [गौयें] (उभयान्) दोनों पक्षों [स्त्री पुरुष] को (तर्पयन्तु) तृप्त करें ॥३९॥

भावार्थः—मनुष्यों को गौ आदि उपकारी पशुओं की सदा रक्षा करनी चाहिये, जिस से बालक युवा और वृद्ध स्त्री पुरुषों का पालन होता रहे ॥३९॥

आपो॑ अ॒ग्निं प्र हि॑णुत पि॒तॄँरुपे॒मं य॒ज्ञं पि॒तरो॑ मे जुषन्ताम् ।

आसी॑नामू॒र्जमुप॒ ये सच॑न्ते॒ ते नो॑ र॒यिं सर्व॑वीरं॒ नि य॑च्छान् ॥४०॥

भाषार्थः—(आपः) हे प्राप्ति योग्य [गौओ !] (अग्निम्) अग्नि [प्रताप वा बल] को (पितॄन् उप) पितरों में (प्र हिणुत) बढ़ाये जाओ, (मे) मेरे (इमम्) इस (यज्ञम्) सत्कार को (पितरः) पितर लोग (जुषन्ताम्) सेवन करें। (ये) जो [पितर लोग] (आसीनाम्) उपस्थित (ऊर्जम्) बलकारक रस [दूध घी आदि] को (उप) आदर से (सचन्ते) सेवें, (ते) वे [विद्वान् पितर] (नः) हमें (सर्ववीरम्) पूरे वीर पुरुष वाला (रयिम्) धन (नि) नियम से (यच्छान्) देवें ॥४०॥

भावार्थः— मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम दूध घी आदि पदार्थों से विद्वान् बड़े बूढ़ों को तृप्त करते रहें, जिससे उनके विद्यादान और आशीर्वाद से गृहस्थों के कार्यकुशल वीर सन्तानें और बहुत धन होवें ॥४०॥

मन्त्राः ४१—४४ ॥

पितरो देवताः ॥ ४१, ४२ अनुष्टुप्, ४३ आर्षी बृहती, ४४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

पितृसेवोपदेशः—पितरों की सेवा का उपदेश ॥

समि॑न्धते॒ अम॑र्त्यं हव्य॒वाहं॑ घृत॒प्रिय॑म् ।

स वे॑द॒ निहि॑तान् नि॒धीन् पि॒तॄन् प॑रा॒वतो॑ ग॒तान् ॥४१॥

भाषार्थः— वे [पितर लोग] (अमर्त्यम्) अमर [न मरते हुए पुरुषार्थी], (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों के पहुंचाने वाले, (घृतप्रियम्) घी आदि को प्रिय जानने वाले [जिस] पुरुष को (सम्) यथाविधि [ज्ञान से] (इन्धते) प्रकाशमान करते हैं। (सः) वह [पुरुष] (परावतः) पराक्रम से चलने वाले (पितॄन्) पितरों को (गतान्) प्राप्त हुए और (निहितान्) संग्रह किये हुए (निधीन्) [रत्न सुवर्ण आदि के] कोशों को (वेद) जानता है ॥४१॥

भावार्थः—जो मनुष्य माता पिता आदि पितरों की सेवा घृत दुग्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि उत्तम पदार्थों से करते हैं, वे पितृभक्त उन पितरों की कृपा से विद्यारत्न प्राप्त करके बड़े धनी होते हैं ।।४१।।

यं तें मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ।।४२।।

भाषार्थः—[हे पितृगण !] (यम्) जिस (मन्थम्) मथने से प्राप्त हुए पदार्थ [नवनीत आदि] और (यम्) जिस (ओदनम्) भात आदि [सुसंस्कृत भोजन] को (ते) तेरे लिये और (यत्) जिस (मांसम्) मनन साधक वस्तु [बुद्धिवर्धक मीठे फल बादाम अक्षोट आदि के गूदे, मींग] को (ते) तेरे लिये (निपृणामि) मैं भेंट करता हूं। (ते) वे [भोजन पदार्थ] (ते) तेरे लिये (स्वधावन्तः) आत्मधारण शक्ति वाले, (मधुमन्तः) मधुर से गुण वाले और (घृतश्चुतः) घी [सार रस] सींचने वाले (सन्तु) होवें ।।४२।।

भावार्थः—गृहस्थ लोग विद्वान् गुणी माता पिता आदि बड़ों की सेवा घृत दुग्ध आदि से किया करें, जिससे वे पितर लोग बलवान् रह कर उत्तम उत्तम कर्म करने में समर्थ होवें ।।४२।।

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऊपर आ चुका है—अ० १८। ३। ६८। तथा १८। ४। २५।।

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ।।४३।।

भाषार्थः—[हे पितृगण !] (ते) तेरे लिये (याः) जिन (तिलमिश्राः) तिलों से मिली हुई, (स्वधावतीः) उत्तम अन्न वाली (धानाः) धानाओं [सुसंस्कृत पौष्टिक पदार्थों] को (अनुकिरामि) मैं [गृहस्थ] अनुकूल रीति से फैलाता हूं। (ताः) वे [सब सामग्री] (ते) तेरे लिये (उद्भ्वीः) उदय कराने वाली और (प्रभ्वीः) प्रभुता वाली (सन्तु) होवें, और (ताः) उन [सामग्रियों] को (ते) तेरे लिये (यमः) संयमी (राजा) राजा [शासक वैद्य] (अनु) अनुकूल (मन्यताम्) जाने ।।४३।।

भावार्थः—गृहस्थ लोग वैद्यक प्रक्रिया के अनुसार पुष्टिकारक पदार्थों से सेवा करके पितरों को नीरोग रक्खें ।।४३।।

यह मन्त्र ऊपर आचुका है—मन्त्र २६ तथा कुछ भेद से-अ० १८। ३। ६९।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥४४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (इदम्) यह (पूर्वम्) पहिला और (अवरम्) पिछला (नियानम्) निश्चित मार्ग है, (येन) जिस से (ते) तेरे (पूर्वे) पहिले [प्रधान] (पितरः) पितर लोग (परेताः) बल के साथ गये हैं। (ये) जो [पितर] (अस्य) इस [मार्ग] के (पुरोगवाः) आगे चलने वाले और (अभिशाचः) सब प्रकार उपदेश करने वाले हैं, (ते) वे [पितर] (त्वा) तुझ को (सुकृताम्) सुकर्मियों के (उ) ही (लोकम्) समाज में (वहन्ति) पहुंचाते हैं ॥४४॥

भावार्थः– पितरों अर्थात् विद्वान् जनों की सेवा करना प्राचीन और अर्वाचीन अर्थात् सार्वभौम और सर्वकालीन धर्म है, उन की सेवा से मनुष्य योग्य हो कर विद्वानों में प्रतिष्ठा पाता है ॥४४॥

मन्त्राः ४५–४७ ॥

सरस्वती देवता [ऋग्वेदे १० । १७ । ७ ९ यथा] ॥ ४५, ४६ निचृत् त्रिष्टुप्, ४७ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

सरस्वत्यावाहनोपदेशः—सरस्वती के आवाहन का उपदेश ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥४५॥

भाषार्थः—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या] को (सरस्वतीम्) उसी सरस्वती को (देवयन्तः) दिव्य गुणों को चाहने वाले पुरुष (तायमाने) विस्तृत होते हुए (अध्वरे) हिंसारहित व्यवहार में (हवन्ते) बुलाते हैं। (सरस्वतीम्) सरस्वती को (सुकृतः) सुकृती लोग (हवन्ते) बुलाते हैं। (सरस्वती) सरस्वती (दाशुषे) अपने भक्त को (वार्यम्) श्रेष्ठ पदार्थ (दात्) देती है ॥४५॥

भावार्थः- विज्ञानी लोग परिश्रम के साथ आदर पूर्वक वेदविद्या का अभ्यास करके पुण्य कर्म करते और मोक्ष आदि इष्ट पदार्थ पाते हैं ॥४५॥

मन्त्र ४५—४७ ऊपर आ चुके हैं—अ० १८ । १ । ४१–४३ ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या] को (दक्षिणा) सरल मार्ग में (यज्ञम्) यज्ञ [संयोग व्यवहार] को (अभिनक्षमाणाः) प्राप्त करते हुए (पितरः) पितर [पालन करने वाले विज्ञानी] लोग (हवन्ते) बुलाते हैं। [हे विद्वानो!] (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) वृद्धि कर्म में (आसद्य) आकर (मादयध्वम्) [सब को] तृप्त करो, [हे सरस्वती!] (अस्मे) हम में (अनमीवाः) पीड़ा रहित (इषः) इच्छायें (आ धेहि) स्थापित कर ॥४६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग निर्विघ्न होकर सरल रीति में सब से मिल कर वेदविद्या के प्रचार से विज्ञान की वृद्धि और इष्ट पदार्थ की सिद्धि करते हैं ॥४६॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥४७॥

भाषार्थः—(सरस्वति) हे सरस्वती! [विज्ञानवती वेदविद्या] (देवि) हे देवी! [उत्तम गुण वाली] (या) जो तू (उक्थैः) वेदोक्त स्तोत्रों से (सरथम्) रमणीय गुणों वाली होकर और (स्वधाभिः) आत्मधारण शक्तियों के सहित [विराजमान] (पितृभिः) पितरों [विज्ञानियों] के साथ (मदन्ती) तृप्त होती हुई (ययाथ) प्राप्त हुई है। सो तू (अत्र) यहां (इडः) विद्या के (सहस्रार्घम्) सहस्रों प्रकार पूजनीय (भागम्) भाग को और (रायः) धन की (पोषम्) वृद्धि को (यजमानाय) यजमान [विद्वानों के सत्कारी] के लिये (धेहि) दान कर ॥४७॥

भावार्थः—आत्मविश्वासी विज्ञानी लोग वेद विद्या प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं। सब मनुष्य विद्वानों के सत्संग से वेदविद्या ग्रहण करके धन आदि की वृद्धि करें ॥४७॥

मन्त्राः ४८—५२ ॥

पितरो देवताः ॥ ४८, ५१, ५२ भुरिक् त्रिष्टुप्; ४९; अनुष्टुप्गर्भा त्रिष्टुप्, ५० निचृज्जगती ॥

पितृसन्तानकर्तव्योपदेशः—पितरों और सन्तानों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥४८॥

भाषार्थः—[हे प्रजा! स्त्री वा पुरुष] (पृथिवीम् त्वा) तुझ प्रख्यात को (पृथिव्याम्) प्रख्यात [विद्या] के भीतर (आ वेशयामि) मैं [माता पिता आचार्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि] प्रवेश कराता हूं, (देवः) प्रकाशस्वरूप (धाता) धाता [पोषक परमात्मा] (नः) हमारी (आयुः) आयु को (प्र तिराति) बढ़ावे। (परापरैता) अत्यन्त पराक्रम से चलने वाला पुरुष (वः) तुम्हारे लिये (वसुवित्) श्रेष्ठ पदार्थों का पाने वाला (अस्तु) होवे, (अध) तब (मृताः) मरे हुए [निरुत्साही पुरुष] (पितृषु) पितरों [पालक विद्वानों] के बीच (सं भवन्तु) समर्थ होवें ॥४८॥

भावार्थः—माता पिता आचार्य आदि सन्तानों को उत्तम विद्या देवें जिससे वे परमेश्वर के भक्त होकर श्रेष्ठ जीवन बितावें और बड़े नेता और श्रेष्ठ धनी होवें और उनके देखने से निरुत्साही भी उत्साही होकर पितरों में स्थान पावें ॥४८॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद ऊपर आ चुका—अ० १२। ३। २२॥

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः।

अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥४९॥

भाषार्थः—[हे स्त्री पुरुषो!] तुम दोनों (आ) सब ओर (प्रच्यवेथाम्) आगे बढ़ो, और (तत्) उस [पाप] को (अप मृजेथाम्) शोध डालो, (यत्) जिस को (वाम्) तुम दोनों के (अभिभाः) सामने चमकती हुई आपत्तियों ने (अत्र) यहां पर (ऊचुः) बताया है। (पितृषु) पितरों के बीच (दातुः मम) मुझ दानी के (इह भोजनौ) यहां पालन करने वाले (अघ्न्यौ) हिंसा न करने वाले तुम दोनों (अस्मात्) इस [पाप] से पृथक् होकर (तत्) उस [सुकर्म] को (आ) सब प्रकार (इतम्) प्राप्त हो [जो सुकर्म] (वशीयः) अधिक वश करने वाला है ॥४९॥

भावार्थः—जिस पाप के कारण मनुष्य पर अनेक विपत्तियाँ आ-पड़ती हैं, स्त्री पुरुष पुरुषार्थ पूर्वक विद्वान् पितरों की आज्ञा मान कर उस पाप को वश में करता है ॥४९॥

एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः।

यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान् ॥५०॥

भाषार्थः—(अनेन) इस [सुकर्म] करके (दत्ता) दी हुई, (सुदुघा) बड़ी दुधैल [गौ के समान] (वयोधाः) बल देने वाली (इयम्) यह (दक्षिणा) दक्षिणा [प्रतिष्ठा] (भद्रतः) उत्तमता से (नः) हम को (आ अगन्) प्राप्त हुई है। (यौवने) यौवन [बल की पूरी अवस्था] में (इमान्) इन (जीवान्) जीवते हुए पुरुषों को (उपपृञ्चती) मिलती हुई (जरा) बड़ाई (पितृभ्यः) पितरों के पास को (उपसंपराणयात्) प्रधानता से ठीक ठीक ले चले ॥५०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे दुधैल गौ सेवा करने से दूध घी आदि पदार्थ देकर मनुष्यों को बलवान् करती है, वैसे ही मनुष्य सुकर्म के अनुष्ठान से दृढ़ गौरव पाकर बड़े लोगों में नाम पावें ।।५०।।

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।।५१।।

भाषार्थः—(इदम्) यह (बर्हिः) उत्तम आसन (पितृभ्यः) पितरों के लिये (प्र भरामि) आगे धरता हूं, और (देवेभ्यः) श्रेष्ठ गुणों के लिये (जीवम्) इस जीव [अपने आत्मा] को (उत्तरम्) अधिक ऊंचा (स्तृणामि) फैलाता हूं। (पुरुष) हे पुरुष ! (मेध्यः) पवित्र (भवन्) होता हुआ तू (तत्) उस [आसन] पर (आ रोह) ऊंचा हो, [तब] (पितरः) पितर लोग (त्वा) तुझे (परेतम्) प्रधानता को पहुंचा हुआ (प्रति) प्रत्यक्ष (जानन्तु) जानें ।।५१।।

भावार्थः—मनुष्य विद्वान् जनों की प्रतिष्ठा करके और उनके समान शुद्धाचारी होकर अपने जीवन को श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित बनावें ।।५१।।

एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ।।५२।।

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आ असदः) तू बैठा है और (मेध्यः) पवित्र (अभूः) हुआ है, (पितरः) पितर लोग (त्वा) तुझे (परेतम्) प्रधानता को पहुंचा हुआ (प्रति) प्रत्यक्ष (जानन्तु) जानें। (यथापरु) गांठ गांठ में (तन्वम्) उपकार शक्ति को (सम् भरस्व) भर दे, (ते) तेरे (गात्राणि) गातों को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (कल्पयामि) समर्थ करता हूं ।।५२।।

भावार्थः—जब मनुष्य विद्या आदि उत्तम गुणों से शुद्ध पवित्र हो जावे, विद्वान् उसकी प्रतिष्ठा करें और वह वेदज्ञान से समर्थ होकर अपना सब सामर्थ्य परोपकार में लगावें ।।५२।।

मन्त्रौ ५३, ५४ ।।

परमेश्वरो देवता ।। ५३ आर्षी पङ्क्तिः, ५४ निचृत् पङ्क्तिः ।।

परमात्मभक्तिफलोपदेशः—परमात्मा की भक्ति के फल का उपदेश ।।

पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो वि दधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।।५३।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**पर्णः**) पालन करने वाला (**राजा**) राजा [सर्वशासक परमात्मा] (**चरूणाम्**) पात्र [समान लोकों] का (**अपिधानम्**) ढक्कन है, [उस से] (**ऊर्जः**) पराक्रम, (**बलम्**) बल, (**सहः**) उत्साह और (**ओजः**) प्रभाव [यह चार] (**नः**) हम को (**आ अगन्**) प्राप्त हुआ है। वह (**जीवेभ्यः**) जीवते हुए पुरुषों को (**शतशारदाय**) सौ वर्ष वाले (**दीर्घायुत्वाय**) दीर्घ आयु के लिये (**आयुः**) जीवन (**विदधत्**) विशेष कर के देवे ॥५३॥

भावार्थः – सर्वनियन्ता सर्वव्यापक जगदीश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार प्रकार के बल देता है, और वही जीवते हुए पुरुषार्थी का जीवन दीर्घ करता है ॥५३॥

ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥५४॥

भाषार्थः—(**ऊर्जः**) पराक्रम के (**यः**) जिस (**भागः**) भाग करने वाले [परमेश्वर] ने (**इमम्**) इस [संसार] को (**जजान**) उत्पन्न किया है और (**अश्मा**) व्यापक होकर (**अन्नानाम्**) अन्नों का (**आधिपत्यम्**) स्वामिपन (**जगाम**) पाया है। (**तम्**) उस [परमात्मा] को (**विश्वमित्राः**) सब के मित्र तुम (**हविर्भिः**) आत्मदानों से (**अर्चत**) पूजो, (**सः**) वह (**यमः**) न्यायकारी परमेश्वर (**नः**) हमें (**प्रतरम्**) अधिक उत्तमता से (**जीवसे**) जीने के लिये (**धात्**) धारण करे ॥५४॥

भावार्थः—जगत् स्रष्टा परमेश्वर सब प्राणियों को उन के पुरुषार्थ के अनुसार सामर्थ्य देकर अन्न आदि देता है, इसलिये मनुष्य अधिक अधिक पुरुषार्थ करके अपने जीवन को अधिक अधिक ऊंचा बनावें ॥५४॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऊपर आ चुका है—अ० १८।३।६३॥

मन्त्राः ५५—५७॥

जीवो देवता। ५५, ५७ अनुष्टुप्, ५६ विराडनुष्टुप्॥

मनुष्याय वृद्धिकरणोपदेशः—मनुष्य को वृद्धि करने का उपदेश॥

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥५५॥

भाषार्थः—(**यथा**) जैसे (**यमाय**) न्यायकारी राजा के लिये (**पञ्च**) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पांच तत्त्वों] से सम्बन्ध वाले (**मानवाः**) मनुष्यों ने (**हर्म्यम्**) स्वीकार करने योग्य राजमहल (**अवपन्**) फैलाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाया है। (एव) वैसे ही मैं (हर्म्यम्) सुन्दर राजमहल (वपामि) फैलाकर बनाता हूं, (यथा) जिस से (मे) मेरे लिये (भूरयः) बहुत से (असत) तुम होओ ॥५५॥

भावार्थः—मनुष्यों को बड़े पुरुषों के समान अच्छे अच्छे शिल्पियों द्वारा दृढ़ सुखप्रद गढ़, विद्यालय, न्यायालय, आदि घर बनवाकर सब की यथायोग्य रक्षा करनी चाहिये ॥५५॥

इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा ।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥५६॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (इदम्) इस (हिरण्यम्) सुवर्ण को (बिभृहि) तू धारण कर, (यत्) जैसे (ते) तेरे (पिता) पिता ने (पुरा) पहिले (अबिभः) धारण किया है। और (स्वर्गम्) सुख देने वाले पद को (यतः) प्राप्त होते हुए (पितुः) पिता के (दक्षिणम्) दाहिने [वा उदार और कार्यकुशल] (हस्तम्) हाथ को (नि) निश्चय करके (मृड्ढि) शोभायमान कर ॥५६॥

भावार्थः—मनुष्य बड़े पुरुषों के समान सुवर्ण आदि धन प्राप्त करें और उपकारी कार्यों में चतुर होने के लिये युवराज बनकर बड़ लोगों का हाथ बटावें अर्थात् सहाय करें ॥५६॥

ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥५७॥

भाषार्थः—(ये) जो (जीवाः) जीवते हुए [उत्साही], (च) और (ये) जो (मृताः) मरे हुए [निरुत्साही], (च, और (ये) जो (जाताः) उत्पन्न हुए [बालक] (च) और (ये) जो (यज्ञियाः) पूजा योग्य [वृद्ध] पुरुष हैं। (तेभ्यः) उनके लिये (घृतस्य) जल की (कुल्या) कुल्या [कृत्रिम नाली] (मधुधारा) मधुर धाराओं वाली, (व्युन्दती) उमड़ती हुई (एतु) चले ॥५७॥

भावार्थः—उत्साही और निरुत्साही, बाल और वृद्ध सब पुरुषार्थ करके परस्पर आनन्द भोगें, जैसे लोग मीठे जल की नालियों से खेत, वाटिका आदि सींचकर अन्न फूल फल आदि प्राप्तकर सुखी होते हैं ॥५७॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से ऊपर आ चुका है—अ० १८। ३। ७२॥

मन्त्राः ५८—६० ॥

परमेश्वरो देवता ॥ ५८ जगती, ५९, अनुष्टुप्, ६० आर्षी त्रिष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरोपासनोपदेशः—ईश्वर की उपासना का उपदेश ॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः । प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥५८॥

भाषार्थः—(वृषा) परम ऐश्वर्यवान्, (विचक्षणः) विशेष दृष्टि वाला परमेश्वर (मतीनाम्) बुद्धियों का (पवते) पवित्रकारी है, [जैसे] (सूरः) सूर्य (दिवः) [अपने] प्रकाश से (अह्नाम्) दिनों का और (उषसाम्) प्रभात वेलाओं का (प्रतरीता) फैलाने वाला है। (सिन्धूनाम्) नदियों के (प्राणः) प्राण [चेष्टा देने वाले उस परमेश्वर] ने (मनीषया) बुद्धिमत्ता से (इन्द्रस्य) सूर्य के (हार्दिम्) हार्दिक शक्ति में (आविशन्) प्रवेश करके (कलशान्) कलसों [घड़ों समान मेघों] को (अचिक्रदत्) गुंजाया है ॥५८॥

भावार्थः – जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करता है, वैसे ही परमात्मा अपने ज्ञान से आज्ञाकारी भक्तों की बुद्धियों को निर्मल करता है, वही परमेश्वर सूर्य के भीतर आकर्षण गुण देकर मेघों में गर्जन उत्पन्न करता और जल बरसाता है ॥५८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—९। ८६। १९ और सामवेद में पू० ६। ७। ६ तथा उ० २। १। १७॥

त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षंछुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥५९॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] (ते) तेरा (सन्) श्रेष्ठ, (शुक्रः) निर्मल (आततः) सब ओर फैला हुआ (त्वेषः) प्रकाश [हम को] (दिवि) आकाश में (धूमः) भाप [जैसे, वैसे] (ऊर्णोतु) ढक लेवे। (पावक) हे शोधक! [परमेश्वर] (सूरः न) जैसे सूर्य (द्युता) अपने प्रकाश से [वैसे] (त्वम्) तू (हि) ही (कृपा) अपनी कृपा से (रोचसे) चमकता है ॥५९॥

भावार्थः—जैसे मेघ के कण आकाश में व्यापक रहते हैं, वैसे ही परमात्मा को हम लोग सर्वत्र व्यापक साक्षात् करें, वह कृपालु जगदीश्वर सूर्य समान सब में प्रकाशमान है ॥५९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—६। २। ६ और सामवेद में पू० १। ६। ३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।
मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥६०॥

भाषार्थः—(इन्दुः) ऐश्वर्यवान् जीवात्मा (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर की (निष्कृतिम्) निस्तार शक्ति को (वै) निश्चय करके (प्र) आगे को (एति) पाता जाता है, (सखा) सखा [परमात्मा का मित्र जीव] (सख्युः) सखा [अपने मित्र जगदीश्वर] की (संगिरः) उचित वाणियों को (न) नहीं (प्र मिनाति) तोड़ देता है। (मर्यः इव) जैसे मनुष्य (योषाः) अपनी स्त्री को [प्रीति से वैसे] (सोमः) प्रेरक आत्मा तू (कलशे) कलस [घट रूप हृदय] के भीतर (शतयामना) सैकड़ों गति वाले (पथा) मार्ग से [परमात्मा को] (सम्) यथाविधि (अर्षसे) प्राप्त होता है ॥६०॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करता है, वही पापों से छूटकर मोक्ष सुख भोगता है, और जैसे स्त्री पुरुष गृहाश्रम की सिद्धि के लिये परस्पर हार्दिक प्रीति करते हैं, वैसे ही योगी पुरुष अनेक प्रकार से अपने हृदय में परमात्मा का दर्शन करके उसके साथ प्रीति में मग्न हो जाता है ॥६०॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—९।८६।१६ और सामवेद में है—पू० ६।७।४ तथा उ० ४।२।७॥

मन्त्राः ॥६१—६८॥

पितरो देवताः ॥ ६१ अनुष्टुप्, ६२ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, ६३ स्वराडार्षी पङ्क्तिः, ६४, ६५ त्रिष्टुप्, ६६ भुरिग् गायत्री, ६७ निचृदार्च्यनुष्टुप्, ६८ आसुर्यनुष्टुप् ॥

पितृसत्कारोपदेशः—पितरों के सत्कार का उपदेश ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥६१॥

भाषार्थः—(स्वभानवः) अपना ही प्रकाश रखने वाले, (विप्राः) बुद्धिमान्, (यविष्ठाः) महाबली [पितरों] ने (अक्षन्) भोजन खाया है और (अमीमदन्त) आनन्द पाया है, उन्होंने (हि) ही (प्रियान्) अपने प्रिय [बान्धवों] को (अव) निश्चय करके (अधूषत) शोभायमान किया है और (अस्तोषत) बड़ाई योग्य बनाया है, (ईमहे) [उन से] हम विनय करते हैं ॥६१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्यों को विनय करके विद्यावृद्ध, बलवृद्ध और वयोवृद्ध पुरुषों का सदा सत्कार करना चाहिये, जिस से वे प्रसन्न होकर उत्तम उत्तम शिक्षा दिया करें ॥६१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१।८२।२ यजुर्वेद में ३।५१ और सामवेद में—पू० ५।३।७॥

आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥६२॥

भाषार्थः—(पितरः) हे पितरो ! [पिता आदि मान्यो] (सोम्यासः) प्रियदर्शन तुम (गम्भीरैः) गम्भीर [शान्त], (पितृयाणैः) पितरों के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (आ यात) आओ। (च) और (अस्मभ्यम्) हम को (आयुः) जीवन (च) और (प्रजाम्) प्रजा [पुत्र, पौत्र, सेवक आदि] (दधतः) देते हुए तुम (रायः) धन की (पोषैः) वृद्धियों से (नः) हमें (अभि) सब ओर (सचध्वम्) सींचो ॥६२॥

भावार्थः—जो मनुष्य शान्तचित्त, शान्ति के मार्ग पर चलने वाले विद्वान् महात्माओं का सत्संग करते रहते हैं वह उत्तम जीवन और श्रेष्ठ सन्तान आदि प्रजा पाकर बहुत धनी होते हैं ॥६२॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से आ चुका है—अ० ६।४।२२॥

परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥६३॥

भाषार्थः—(पितरः) हे पितरो ! [पिता आदि मान्यो] (सोम्यासः) प्रियदर्शन तुम (गम्भीरैः) गम्भीर [शान्त], (पूर्याणैः) नगरों को जाने वाले (पथिभिः) मार्गों से (परा) प्रधानता के साथ (यात) चलो। (अध) और (पुनः) अवश्य (मासि) महीने महीने (सुप्रजसः) उत्तम प्रजाओं वाले और (सुवीराः) उत्तम वीरों वाले तुम (नः) हमारे (गृहान्) घरों में (हविः) भोजन (अत्तुम्) खाने के लिये (आ यात) आओ ॥६३॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग विद्वान् पितर महात्माओं के दर्शन से सदा लाभ उठावें और दर्शेष्टि और पूर्णमासेष्टि आदि नियत समय पर तो अवश्य उन के सत्संग से आनन्द पावें ॥६३॥

इस मन्त्र के प्रथम पाद को मिलाओ—अ० १८।३।१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद् वो॑ अ॒ग्निरज॑हा॒देक॒मङ्गं॑ पितृ॒लोकं॑ ग॒मयं॑ जा॒तवे॑दाः । तद् व॒ एतत् पुन॒रा प्या॑ययामि सा॒ङ्गाः स्व॒र्गे पि॒तरो॑ मादयध्वम् ॥६४॥

भाषार्थः—[हे पितरो !] (वः) तुम्हारे (यत्) जिस (एकम्) एक (अङ्गम्) अङ्ग को (पितृलोकम्) पितृ समाज में [मनुष्यों को] (गमयन्) ले चलते हुए, (जातवेदाः) धनों के उत्पन्न करने वाले (अग्निः) अग्नि [शारीरिक पराक्रम] ने (अजहात्) त्याग दिया है। (वः) तुम्हारे (तत्) उस [अङ्ग] को (एतत्) अब (पुनः) निश्चय करके (आ) सब प्रकार (प्याययामि) मैं पूरा करता हूं, (साङ्गाः) पूरे अङ्ग वाले (पितरः) पालक ज्ञानी होकर तुम (स्वर्गे) सुख पहुंचाने वाले पद पर (मादयध्वम्) आनन्द पाओ ॥६४॥

भावार्थः - यदि विद्वान् पिता आदि बड़ों के अङ्ग में थकान आदि से कुछ हानि होवे, तो गृहस्थ सुसन्तान आदि उसका प्रतिकार करके उन्हें प्रसन्न करें ॥६४॥

अभू॑द् दू॒तः प्रहि॑तो जा॒तवे॑दाः सा॒यं न्य॒ह्न॑ उपव॒न्द्यो नृभिः॑ ।
प्रादाः॑ पि॒तृभ्यः॑ स्व॒ध॒या ते अ॑क्षन्न॒द्धि त्वं दे॑व॒ प्रय॑ता ह॒वींषि ॥६५॥

भाषार्थः—(दूतः) चलने वाला [उद्योगी] (प्रहितः) बड़ा हितकारी (जातवेदाः) महाज्ञानी [वा महाधनी] पुरुष (सायम्) सायंकाल में और (न्यह्ने) प्रातः काल में और (नृभिः) नेताओं करके (उपवन्द्यः) बहुत प्रशंसनीय (अभूत्) हुआ है। [इस लिये] (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (प्रयता) शुद्ध [वा प्रयत्न से सिद्ध किये] (हवींषि) ग्रहण करने योग्य भोजन (प्र) अच्छे प्रकार (अदाः) तू ने दिये हैं, (ते) उन्होंने (अक्षन्) खाये हैं, (देव) हे विद्वान् ! (त्वम्) तू (अद्धि) खा ॥६५॥

भावार्थः—उद्योगी, हितकारी विद्वान् लोग सदा से बड़े लोगों के माननीय हुए हैं, इस लिये मनुष्य भोजन आदि से विद्वानों का सत्कार करके अपनी रक्षा करें और कीर्ति बढ़ावें ॥६५॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऊपर आ चुका है—अ० १८।३।४२। और पूर्वार्द्ध का मिलान करो—ऋग्० ४।५४।१॥

अ॒सौ हा इ॒ह ते॒ मनः॒ ककु॑त्सलमिव जा॒मयः॑ ।
अ॒भ्ये॑नं भूम ऊर्णुहि ॥६६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (असौ) वह [पिता आदि] (है) निश्चय करके (इह) यहां पर [हम में] (ते) तेरे (मनः) मन को [ढकता है], (इव) जैसे (जामयः) कुल स्त्रियां (ककुत्सलम्) सुख का शब्द सुनाने वाले को [अर्थात् लढ़ैते बालक को वस्त्र से ढकती हैं]। (भूमे) हे भूमि तुल्य [सर्वाधार विद्वान् !] (एनम्) इस [पिता आदि जन] को (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) तू ढक [सुख दे] ॥६६॥

भावार्थः—जैसे माता पिता आदि पितर लोग छोटे प्रिय सन्तान की वस्त्र आदि से रक्षा करते और ज्ञान देते हैं, वैसे ही वे लोग उन पिता आदि की यथोचित सेवा करें ॥६६॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद आ चुका है—अ० १८। २। ५०, ५१, तथा १८। ३। ५० और इस मन्त्र का मिलान भी उन मन्त्रों से करो ॥

शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ॥६७॥

भाषार्थः—(पितृषदनाः) पितरों [ज्ञानियों] की बैठक वाले (लोकाः) समाज (शुम्भन्ताम्) शोभायमान होवें, (पितृषदने) पितरों की बैठक वाले (लोके) समाज में (त्वा) तुझे (आ सादयामि) मैं बिठालता हूं ॥६७॥

भावार्थः—ज्ञानी लोग ही विद्वानों के समाजों में शोभा पाते हैं, इसलिये माता पिता आदि प्रयत्न करें कि उन के सन्तान भी विज्ञानों में प्रतिष्ठा पावें ॥६७॥

इस मन्त्र का पहिला पाद कुछ भेद से यजुर्वेद में है—५। २६॥

ये ३ ऽस्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥६८॥

भाषार्थः—(ये) जो पुरुष (अस्माकम्) हमारे बीच (पितरः) पितर [ज्ञानी पुरुष] हैं, (तेषाम्) उनका [यहां] (बर्हिः) उत्तम आसन (असि) है ॥६८॥

भावार्थः—मनुष्य ध्यान रक्खें कि सर्वहितकारी ज्ञानी पुरुष सदा प्रतिष्ठा पावें ॥६८॥

मन्त्रौ ६९, ७० ॥

वरुणो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ।

ईश्वरनियमोपदेशः—ईश्वर के नियमों का उपदेश ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥६९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**वरुण**) हे स्वीकार करने योग्य ईश्वर! (**अस्मत्**) हम से (**उत्तमम्**) ऊंचे वाले (**पाशम्**) पाश को (**उत्**) ऊपर से, (**अधमम्**) नीचे वाले को (**अव**) नीचे से, और (**मध्यमम्**) बीच वाले को (**वि**) विविध प्रकार से (**श्रथय**) खोल दे। (**आदित्य**) हे सर्वत्र प्रकाशमान वा अखण्डनीय जगदीश्वर! (**अध**) फिर (**वयम्**) हम लोग (**ते**) तेरे (**व्रते**) वरणीय नियम में (**अदितये**) अदीना पृथिवी के [राज्य के] लिये (**अनागसः**) निरपराधी (**स्याम**) होवें ॥६९॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन कर के धर्माचरण से भूत, भविष्यत्, और वर्तमान क्लेशों को अलग करके सदा सुखी रहें ॥६९॥

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—अ० ७। ८३। ३॥

प्रास्मत् पाशा॑न् वरुण मुञ्च सर्वा॒न् यैः स॑मामे ब॒ध्यते॒ यैर्व्या॑मे।
अधा॑ जीवेम शरद॑ श॒तानि॒ त्वया॑ राजन् गुपि॒ता रक्ष॑माणाः ॥७०॥

भाषार्थः—(**वरुण**) हे दुःख निवारक परमेश्वर! (**अस्मत्**) हम से (**सर्वान्**) सब (**पाशान्**) फन्दों को (**प्र मुञ्च**) खोल दे, (**यैः**) जिन [फन्दों] से (**समामे**) छूत रोग में, और (**यैः**) जिन से (**व्यामे**) विशेष रोग में (**बध्यते**) [प्राणी] बांधा जाता है। (**अध**) तब (**राजन्**) हे राजन्! [परमेश्वर] (**त्वया**) तुझ कर के (**गुपिताः**) रक्षा किये गये और (**रक्षमाणाः**) [दूसरों की] रक्षा करते हुए हम (**शतानि**) सैकड़ों (**शरदम्**) बरसों तक (**जीवेम**) जीवें ॥७०॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो कोई रोग परस्पर छूत से वा कुपथ्य आदि दोष से हो जावें परमेश्वर की उपासना करते हुए वैद्यराजों की सम्मति से उन रोगों का निवारण करके स्वस्थ रहकर सब की रक्षा करें ॥७०॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद आ चुका है—अ० ७। ८३। ४॥

मन्त्र ७१—८७॥

पितरो देवताः ॥ ७१ आसुर्यनुष्टुप्; ७२—७४, ७९ आसुरी पङ्क्तिः; ७५ आसुरी गायत्री; ७६ आसुर्युष्णिक् ७७ दैवी जगती; ७८ आसुरी त्रिष्टुप्; ८० आसुरी जगती; ८१ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ८२ साम्नी बृहती; ८३, ८४ साम्नी त्रिष्टुप्; ८५ आसुरी बृहती, ८६ भुरिगार्ष्युष्णिक्, ८७ निचृदार्ष्युष्णिक् ॥

पितृसन्मानोपदेशः—पितरों के सन्मान का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥७१॥

सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७२॥

पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥७३॥

यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७४॥

भाषार्थः—(कव्यवाहनाय) बुद्धिमानों को हितकारी पदार्थों के पहुंचाने वाले (अग्नये) विद्वान् पुरुष को (स्वधा) अन्न और (नमः) नमस्कार होवें ॥७१॥

(पितृमते) श्रेष्ठ मातापिता वाले (सोमाय) प्रेरक पुरुष को (स्वधा) अन्न और (नमः) नमस्कार हो ॥७२॥

(सोमवद्भ्यः) बड़े ऐश्वर्य वाले (पितृभ्यः) पितरों [माता पिता आदि पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न और (नमः) नमस्कार हो ॥७३॥

(पितृमते) श्रेष्ठ माता पिता वाले (यमाय) न्यायाधीश राजा को (स्वधा) अन्न (नमः) नमस्कार हो ॥७४॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विविध प्रकार के विद्वान् माननीय पुरुषों का अन्न आदि से सत्कार करके विविध शिक्षा ग्रहण करें ॥७१-७४॥

मन्त्र ७१, ७२ कुछ भेद से यजुर्वेद में हैं—२ । २६ ॥

एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७५॥

एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७६॥

एतत् ते तत स्वधा ॥७७॥

भाषार्थः—(प्रततामह) हे परदादे ! (एतत्) यहाँ (ते) तेरे लिये (स्वधा) अन्न हो, (च) और [उन के लिये भी अन्न हो] (ये) जो (त्वाम् अनु) तेरे साथ हैं ॥७५॥

(ततामह) हे दादे ! (एतत्) यहाँ (ते) तेरे लिये (स्वधा) अन्न हो, (च) और [उन के लिये अन्न हो] (ये) जो (त्वाम् अनु) तेरे साथ हैं ॥७६॥

(तत) हे पिता ! (एतत्) यहां (ते) तेरे लिये (स्वधा) अन्न हो ॥७७॥

भावार्थः—सन्तानों को चाहिये कि बड़ों से आरम्भ करके परदादी परदादा, दादी दादा माता पिता आदि मान्यों की अन्न आदि से सेवा करके उत्तम शिक्षा और आशीर्वाद पावें ॥७५—७७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥७८॥

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥७९॥

स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥८०॥

भाषार्थः—(पृथिविषद्भ्यः) पृथिवी की विद्या में गति वाले (पितृभ्यः) पितरों [पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न हो ॥७८॥

(अन्तरिक्षसद्भ्यः) प्रकाश विद्या में गति वाले (पितृभ्यः) पितरों [पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न हो ॥७९॥

(दिविषद्भ्यः) प्रकाश विद्या में गति वाले (पितृभ्यः) पितरों [पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न हो ॥८०॥

भावार्थः—जो पितर पण्डित लोग पृथिवी अर्थात् राज्यविद्या, भूगर्भ विद्या आदि में चतुर हों, जो ज्योतिषी आकाश विद्या अर्थात् सौर मण्डल, तारामण्डल, वायुमण्डल आदि विद्या में दक्ष हों और जो महापुरुष अन्य व्यवहारों अर्थात् संग्राम विद्या, धर्म शिक्षा आदि विद्या में गुणी होवें, सब मनुष्य ऐसे महात्माओं का सदा आदर करते रहें ॥७८—८०॥

७८—८० इन मन्त्रों का मिलान करो यजु० ६। २॥

नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥८१॥

नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ॥८२॥

नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ॥८३॥

नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ॥८४॥

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥८५॥

भाषार्थः—(पितरः) हे पितरो! [पालक ज्ञानियो] (ऊर्जे) पराक्रम पाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो! [पालक ज्ञानियों] (रसाय) रस [ज्ञानरस, ओषधिरस, और दूध, जल, विद्या आदि रस] पाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥८१॥

(पितरः) हे पितरो! [पालक ज्ञानियो] (मन्यवे) प्रताप की प्राप्ति के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो! [पालक ज्ञानियो] (भामाय) क्रोध की निवृत्ति के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥८२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पितरः)हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (घोरम्) घोर [दारुण दुःख] है, (तस्मै) उसे हटाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (क्रूरम्) क्रूर [निर्दयता] है, (तस्मै) उसे दूर करने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥८३॥

(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (शिवम्) मङ्गलकारी है, (तस्मै) उसे पाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (स्योनम्) सुखदायक है, (तस्मै) उसके लाभ के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥८४॥

(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (वः) तुम्हारे लिये (स्वधा) अन्न हो ॥८५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पराक्रम आदि शुभ गुणों की प्राप्ति के लिये और क्रोध आदि दुर्गुणों की निवृत्ति के लिये ज्ञानी पितरों का अनेक प्रकार सत्कार करके सदुपदेश ग्रहण करें ॥८१—८५॥

८१—८५ इन मन्त्रों का मिलान करो—यजुर्वेद २ । ३२ तथा महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पितृयज्ञविषय ॥

येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्मांस्तेऽनु
यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥८६॥
य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः । अस्मांस्तेऽनु
वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥८७॥

भाषार्थः—(ये) जो (अत्र) यहां (पितरः) पितर [पालक ज्ञानी] हैं, (ये) जो (यूयम्) तुम (अत्र) यहां पर (पितरः) पितर (स्थ) हो, (ते) वे लोग (युष्मान् अनु) [उन] तुम्हारे अनुकूल होवें, और (यूयम्) तुम (तेषाम्) उन के बीच (श्रेष्ठाः) श्रेष्ठ (भूयास्थ) होओ ॥८६॥

(ये) जो (इह) यहाँ पर (पितरः) पितर [पालक ज्ञानी] हैं, [उन के अनुग्रह से] (वयम्) हम (इह) यहां पर (जीवाः) जीवते हुए [सचेत] (स्मः) हैं, (ते) वे लोग (अस्मान् अनु) हमारे अनुकूल होवें और (तेषाम्) उनके बीच (वयम्) हम (श्रेष्ठाः) श्रेष्ठ (भूयास्म) होवें ॥८७॥

भावार्थः—श्रेष्ठ ज्ञानी पितर लोग मिलकर संसार का उपकार करें, जिनके अनुग्रह से सब मनुष्य सचेत और श्रेष्ठ होवें ॥८६, ८७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रः—॥८८॥

अग्निर्देवता ॥ स्वराडार्षी बृहती छन्दः ॥

परमात्मोपासनोपदेशः—परमात्मा की उपासना का उपदेश ॥

आ त्वा॑ग्न इधीमहि द्युमन्तं॑ देवाजरम् । यद्ध॒ घ॒ सा ते॒

पनी॑यसी स॒मिद् दी॒दय॑ति॒ द्यवि॑ । इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥८८॥

भाषार्थः—(देव) हे आनन्दप्रद ! (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (अजरम्) अजर [जरारहित, [सदा बलवान्] (त्वा) तुझ को (आ) सब ओर से [हृदय में] (इधीमहि) हम प्रकाशित करें । (यत्) जो (सा) वह (घ) निश्चय कर के (ते) तेरी (पनीयसी) अति प्रशंसनीय (समित्) चमक (द्यवि) चमकते हुए [सूर्य आदि में] (दीदयति) चमकती है । [उस से] (इषम्) इष्ट पदार्थ को (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (आ) सब ओर से (भर) भर दे ॥८८॥

भावार्थः जो अजर अमर जगदीश्वर सूर्य अग्नि आदि प्रकाशक पदार्थों का प्रकाशक है, उस प्रकाशस्वरूप को हृदय में धारण करके अपने नेत्रों को दिव्य बनावें और प्रत्येक वस्तु में उस की ज्योति देख कर प्रत्येक वस्तु से इष्ट मनोरथ सिद्ध करें ॥८८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—५ । ६ । ४ और सामवेद में पू० ५ । ४ । १ तथा उ० ३ । २ । २१ ॥

मन्त्रः ॥८९॥

विश्वेदेवा देवताः ॥ निचृदार्षी पङ्क्तिः ॥

सूर्यचन्द्रादिविषयोपदेशः—सूर्य चन्द्र आदि के विषय का उपदेश ॥

च॒न्द्रमा॑ अ॒प्स्व१॒न्तरा सु॑प॒र्णो धा॑वते दि॒वि । न वो॑ हिरण्यनेमयः

प॒दं वि॑न्दन्ति विद्युतो वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रोद॑सी ॥८९॥

भाषार्थः—(सुपर्णः) सुन्दर पूर्त्ति करने वाला (चन्द्रमाः) चन्द्र लोक (अप्सु अन्तः) [अपने] जलों के भीतर (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आ धावते) दौड़ता रहता है । (हिरण्यनेमयः) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मा में सीमा रखने वाले (विद्युतः) विविध प्रकाशमान [सब लोको !] (वः) तुम्हारे (पदम्) ठहराव को (न विन्दन्ति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे [जिज्ञासु लोग] नहीं पाते हैं, (रोदसी) हे पृथिवी और सूर्य के समान स्त्री पुरुषो ! (मे) मेरे (अस्य) इस [वचन] का (वित्तम्) तुम दोनों ज्ञान करो ॥८९॥

भावार्थः—चन्द्रमा अपने मण्डल के समुद्रों पर सूर्य की किरणों के पड़ने से प्रकाशित होकर अपनी जलमय शीतल किरणों द्वारा पृथिवी के पदार्थों को पुष्ट करता है, इस के अतिरिक्त परमात्मा की अनन्त रचनाओं, अनन्त सूर्य पृथिवी आदि लोकों को जिज्ञासु लोग खोजते जाते हैं और अन्त नहीं पाते। उस जगदीश्वर की महिमा को जानकर सब स्त्री पुरुष अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥८९॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१।१०५।१ और सामवेद में पू० ५।३।६ और पहिले दो पाद यजर्वेद में हैं—३३।९०॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

इत्यष्टादशं काण्डं समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

एकोनविंशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१॥

१—३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, २ आर्षी बृहती; ३ आर्षी पङ्क्तिः ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश ॥

सं सं स्रवन्तु नद्यः१ः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१॥

भाषार्थः—(नद्यः) नदियां (सम् सम्) बहुत अनुकूल (स्रवन्तु) बहें, (वाताः) विविध प्रकार के पवन और (पतत्रिणः) पक्षी (सम् सम्) बहुत अनुकूल [बहें]। (गिरः) हे स्तुति योग्य विद्वानो ! (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा संगतिकरण और दान] को (वर्धयत) बढ़ाओ (संस्राव्येण) बहुत अनुकूलता से भरी हुई (हविषा) भक्ति के साथ [तुम को] (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि नौका, खेती आदि में प्रयोग करने से नदियों को, विमान आदि शिल्पों से पवनों को और यथायोग्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार से पक्षी आदि को अनुकूल करें और नम्रतापूर्वक विद्वानों से मिलकर सुख के व्यवहारों को बढ़ावें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आचुका है—अ० १। १५। १॥
इस सूक्त का मिलान करो—अ० १। १५॥

इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥२॥

भाषार्थः—(होमाः) दाता लोगो! तुम (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा संगतिकरण और दान] को, (उत) और (संस्रावणाः) हे बड़े कोमल स्वभाव वालो! (इमम्) इस [यज्ञ] की (अवत) रक्षा करो। (गिरः) हे स्तुति योग्य विद्वानो! (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा आदि] को (वर्धयत) बढ़ाओ, (संस्राव्येण) बहुत कोमलता से भरी हुई (हविषा) भक्ति के साथ [तुम को] (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूं ॥२॥

भावार्थः—सब मनुष्य आप्त विद्वानों से नम्रतापूर्वक मिलकर धर्म-वृद्धि और शिल्प आदि की वृद्धि करते रहें ॥२॥

इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध का मिलान करो—पूर्वार्द्ध अ० १। १५। २॥

रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे ।
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥

भाषार्थः—(रूपंरूपम्) सब प्रकार की सुन्दरता और (वयोवयः) सब प्रकार के बल को (संरभ्य) ग्रहण कर के (एनम्) इस (विद्वान्) को (परि ष्वजे) मैं गले लगाता हूं। (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा संगतिकरण और दान] को (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (वर्धयन्तु) बढ़ावें, (संस्राव्येण) बहुत कोमलता से भरी हुई (हविषा) भक्ति के साथ [इस विद्वान् को] (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों से उत्तम शिक्षा और बल प्राप्त कर के उनका सत्कार करें जिससे सब दिशाओं में सत्कर्मों की वृद्धि होवे ॥३॥

[इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से आचुका है—अ० १। २२। ३॥

सूक्तम् ॥२॥

१—५॥ आपो देवताः॥ १—३ अनुष्टुप्, ४, ५ निचृदनुष्टुप्॥
जलोपकारोपदेशः—जल के उपकार का उपदेश॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।

शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (हैमवतीः) हिम वाले पहाड़ों से उत्पन्न (आपः) जल (शम्) शान्ति दायक, (उ) और (ते) तेरे लिये (उत्स्याः) कूपों से निकले हुए [जल] (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें । (ते) तेरे लिये (सनिष्यदाः) शीघ्र बहने वाले (आपः) जल (शम्) शान्तिदायक (उ) और (ते) तेरे लिये (वर्ष्याः) वर्षा से उत्पन्न (जल) (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य प्रबन्ध करें कि पहाड़ों, कुओं, नदियों और वर्षा के जल खान पान, खेती शिल्प आदि के कामों में आते रहें ॥१॥

शं त आपो धन्वन्या३ः शं ते सन्त्वनूप्याः ।

शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (धन्वन्याः) निर्जल देश के (आपः) जल (शम्) सुखदायक, और (ते) तेरे लिये (अनूप्याः) सजल स्थान के [जल] (शम्) सुखदायक, (सन्तु) होवें । (ते) तेरे लिये (खनित्रिमाः) खनती वा फावड़े से निकाले गये (आपः) जल (शम्) सुखदायक [होवें] और (याः) जो [जल] (कुम्भेभिः) घड़ों से (आभृताः) लाये गये हैं, वे भी (शम्) सुखदायक [होवें] ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० १ । ६ । ४ ॥

अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।

भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥३॥

भाषार्थः—(अनभ्रयः) हिंसा न करने वाले, (खनमानाः) खोदते हुए, (विप्राः) बुद्धिमान् (गम्भीरे) गहरे [कठिन] स्थान में (अपसः) व्यापने वाले (आपः) सब विद्याओं में व्यापक विद्वान् लोग (भिषग्भ्यः) वैद्यों से (भिषक्तराः) अधिक वैद्य हैं, [उनसे, यह जल का विषय] (अच्छ) अच्छे प्रकार (वदामसि) हम कहते हैं ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् चतुर जिज्ञासु वैद्य लोग बड़े कठिन रोगों में जल का प्रयोग करके उसके गुणों का परस्पर प्रकाश करें ॥३॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ३ । ७ । ५ तथा—अ० ६ । ९१ । ३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् ।

अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो] (अह) निश्चय करके (दिव्यानाम्) आकाश से बरसने वाले (अपाम्) जलों के और (स्रोतस्यानाम्) स्रोतों से निकलने वाले (अपाम्) फैलते हुए (अपाम्) जलों के (प्रणेजने) पोषण सामर्थ्य में, (अह) निश्चय करके तुम (वाजिनः) वेग वाले (अश्वाः) बलवान् पुरुष [वा घोड़ों के समान] (भवथ) हो जाओ ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य वृष्टि के और नदी कप आदि के जल की यथावत् चिकित्सा से शरीर में नीरोग, और खेती आदि में उसके प्रयोग से अन्न आदि प्राप्त करके बड़े वेगवान् और बलवान् होवें ॥४॥

इस मन्त्र का चौथा पाद आया है—अ० १। ४। ४ ॥

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मं करणीरपः ।

यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ताः) उन (शिवाः) मङ्गलकारी (अपः) जलों को, (अयक्ष्मंकरणीः) नीरोगता करने वाले (अपः) जलों को और (ताः) उन (भेषजीः) भय जीतने वाले (अपः) जलों को (आ) सब ओर से (दत्त) उस [परमेश्वर] ने दिया है, (यथा) जिससे (एव) निश्चय करके (ते) तेरे लिये (मयः) सुख (तृप्यते) बढ़े ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा ने संसार में वृष्टि, नदी, कूप आदि का जल इस लिये दिया है कि मनुष्य जलचिकित्सा करके नीरोग होवें, और खेती शिल्प आदि में प्रयोग से हृष्ट पुष्ट रहें ॥५॥

सूक्तम् ॥३॥

१—४ ॥ अग्निर्देवता ॥ १, ३, ४ त्रिष्टुप्, २ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ॥

अग्निगुणोपदेशः—अग्नि के गुणों का उपदेश ॥

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।

यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥१॥

भाषार्थः—(दिवः) सूर्य से, (पृथिव्याः) पृथिवी से, (अन्तरिक्षात् परि) अन्तरिक्ष [मध्यलोक] में से, (वनस्पतिभ्यः) वनस्पतियों [पीपल आदि वृक्षों] से,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (ओषधीभ्यः अधि) ओषधियों [अन्न सोमलता आदिकों] में से, और (यत्रयत्र) जहां जहां (जातवेदाः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान तू [अग्नि] (विभृतः) विशेष करके धारण किया गया है, (ततः) वहां से (स्तुतः) स्तुति किया गया [काम में लाया गया] और (जुषमाणः) प्रसन्न करता हुआ तू (नः) हमको (आ) आकर (इहि) प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य अग्नि, बिजुली, धूप आदि को सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्ष, वनस्पतियों, ओषधियों अन्य पदार्थों से ग्रहण करके शरीर की पुष्टि और शिल्प विद्या की उन्नति करें ॥१॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद आया है—अ० ६। १। १॥

यस्ते॑ अ॒प्सु म॑हि॒मा यो वने॑षु॒ य ओष॑धीषु प॒शुष्व॒प्स्व॑१॒न्तः ।

अग्ने॒ सर्वा॑स्त॒न्व॑१॒ः सं र॑भस्व॒ ताभि॑र्न॒ एहि॑ द्रविणो॒दा अज॑स्रः ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो (ते) तेरा (महिमा) महत्त्व (अप्सु) जलों में, (यः) जो (वनेषु) वनों में, (यः) जो (ओषधीषु) ओषधियों [अन्न सोमलता आदि] में, (पशुषु) जीवों में और (अप्सु अन्तः) अन्तरिक्ष के बीच है। (अग्ने) हे अग्नि ! (सर्वाः) सब (तन्वः) उपकार शक्तियों को (सं रभस्व) एकत्र ग्रहण कर और (ताभिः) उन [उपकार शक्तियों] के साथ (द्रविणोदाः) सम्पत्ति दाता (अजस्रः) लगातार वर्तमान तू (नः) हम को (आ) आकर (इहि) प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सब पदार्थों के बीच अग्नि अर्थात् बिजुली आदि के प्रभाव को खोजें और उसकी अनेक उपयोगिताओं को काम में लाकर धन प्राप्त कर सुखी होवें ॥२॥

यस्ते॑ दे॒वेषु॑ महि॒मा स्व॒र्गो या ते॑ त॒नूः पि॒तृष्वा॑वि॒वेश॑ ।

पुष्टि॒र्या ते॑ मनु॒ष्ये॑षु पप्र॒थेऽग्ने॒ तया॑ र॒यिम॒स्मासु॑ धेहि ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो (ते) तेरी (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाली (महिमा) महिमा (देवेषु) व्यवहार कुशल विद्वानों में, (या) जो (ते) तेरी (तनूः) उपकार शक्ति (पितृषु) पालक ज्ञानियों में, (आविवेश) प्रविष्ट हुई है। और (या) जो (ते) तेरी (पुष्टिः) पुष्टि [वृद्धिक्रिया] (मनुष्येषु) मननशील पुरुषों में (पप्रथे) फैली है, (अग्ने) हे अग्नि ! [बिजुली आदि] (तया) उस [पुष्टि आदि] से (रयिम्) धन (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) धारण कर ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य को जैसे जैसे अग्नि विद्या के पण्डित संग्राम में तोप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि, पृथिवी पर रथ आदि, समुद्र में नौका आदि, आकाश में विमान आदि बनाने और चलाने में निपुण और रुग्ण शरीर में ताप पहुंचाने वाले वैद्य प्राप्त होवें, उन से अग्निविद्या ग्रहण करके सुखी होवें ॥३॥

श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ॥४॥

भाषार्थः—(श्रुत्कर्णाय) सुनते हुए कानों वाले, (कवये) बुद्धिमान् (वेद्याय) वेदों में निपुण पुरुष के लिये (वचोभिः) वचनों और (वाकैः) वेद वाक्यों द्वारा (रातिम्) धन [अर्थात् अग्निविद्या] को (उप) आदर कर के (यामि) मैं प्राप्त होता हूं। (यतः) जिस से (भयम्) भय [हो], (तत्) उस से (नः) हमें (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे, (अग्ने) हे विद्वान् पुरुष (देवानाम्) विद्वानों के (हेडः) क्रोध को (अव यज) दूर कर ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि शीघ्र सुनने वाले बुद्धिमान् होकर प्रयत्न पूर्वक अग्निविद्या प्राप्त करके ऐसा सुप्रयोग करें, जिस से सब विद्वान् लोग उन से प्रसन्न रहें ॥४॥

सूक्तम् ॥४॥

१—४ ॥ अग्निर्बृहस्पतिश्च देवते ॥ १ विराडतिजगती, २ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ४ आर्षी त्रिष्टुप्; ॥

मेधाजननोपदेशः—बुद्धि बढ़ाने का उपदेश ॥

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः । तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—(याम्) जिस (आहुतिम्) यथावत् देने लेने योग्य क्रिया [संकल्प शक्ति—म० २] को (अथर्वा) निश्चल परमात्मा ने (प्रथमाम्) सब से पहिली, और (या) जिस (या) प्राप्ति योग्य [संकल्प शक्ति] को (जाता) उत्पन्न [प्रजाओं] के लिये (जातवेदाः) उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले परमेश्वर ने (हव्यम्) देने लेने योग्य वस्तु (अकृणोत्) बनाया (ताम्) वैसी (एताम्) इस [संकल्प शक्ति] को (ते) तेरे लिये [हे मनुष्य !] (प्रथमः) सब में पहिला [अर्थात् मुख्य विद्वान्] मैं (जोहवीमि) वारंवार देता हूं, (ताभिः) उन [प्रजाओं] से (स्तुप्तः) एकत्र किया गया [हृदय में लाया गया] (अग्निः) ज्ञानमय परमात्मा (अग्नये) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (हव्यम्) देने लेने योग्य पदार्थ (वहतु) प्राप्त करे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमात्मा ने सब से पहिले सृष्टि की आदि में संकल्प वा विचार शक्ति अर्थात् वेदवाणी प्राणियों के हित के लिये उत्पन्न की है। मनुष्य पूर्ण विद्वान् होकर वेदों का उपदेश करके परमेश्वर की महिमा को प्रकाशित करें ॥१॥

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२॥

भाषार्थः—(देवीम्) दिव्य गुण वाली, (सुभगाम्) बड़े ऐश्वर्य वाली, (आकूतिम्) संकल्प शक्ति को (पुरः) आगे (दधे) धरता हूं, (चित्तस्य) चित्त [ज्ञान] की (माता) माता [जननी उत्पन्न करने वाली] वह (नः) हमारे लिये (सुहवा) सहज में बुलाने योग्य (अस्तु) होवे। (याम्) जिस (आशाम्) आशा [कामना] को (एमि) मैं प्राप्त करूं, (सा) वह [आशा] (मे) मेरे लिये (केवली) सेवनीय (अस्तु) होवे, (मनसि) मन में (प्रविष्टाम्) प्रवेश की हुई (एनाम्) इस [आशा] को (विदेयम्) मैं पाऊं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य दृढ़ संकल्पी होकर ज्ञान को बढ़ावे, जिससे वह जिस शुभ कर्म की आशा मन में करे वह पूरी होवे ॥२॥

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥३॥

भाषार्थः—(बृहस्पते) हे बृहस्पति! [बड़ी विद्याओं के स्वामी पुरुष] (आकूत्या) संकल्प शक्ति के साथ (नः) हमको, (आकूत्या) संकल्प शक्ति के साथ (नः) हम को (उप) समीप से (आ) आकर (गहि) प्राप्त हो। (अथो) और (नः) हमें (भगस्य) ऐश्वर्य का (धेहि) दान कर, (अथो) और भी (नः) हमारे लिये (सुहवः) सहज में पुकारने योग्य (भव) हो ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य बड़े बड़े विद्वानों से शिक्षा पाकर शुभ कर्म के लिये दृढ़ संकल्प कर के सहज में सफलता प्राप्त करे ॥३॥

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥४॥

भाषार्थः—(आङ्गिरसः) ज्ञानवान् परमेश्वर का सेवक, (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का स्वामी पुरुष] (मे) मेरी (आकूतिम्) संकल्प शक्ति, (एताम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस (वाचम्) बाणी को (प्रति) प्रतीति के साथ (जानात्) जाने "(सुप्रणीताः) यथाविधि चलाये गए (देवाः) विद्वानों ने (यस्य) जिस [शुभ कामना] के (देवताः) दिव्य भावों [सूक्ष्मगुणों] को (संबभूवुः) सब प्रकार पाया है, (सः) वह (कामः) शुभ कामना (अस्मान्) हम को (अनु) अनुकूलता से (एतु) प्राप्त होवे" ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष परमेश्वर के भक्त ज्ञानी लोगों के बीच जो प्रतिज्ञा करे उस को अवश्य पूरा करे, क्योंकि सुशिक्षित विद्वानों ने ही सत्य सङ्कल्प के दिव्य गुणों को जानकर मनोरथ सिद्ध किये हैं ॥४॥

सूक्तम् ॥५॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजलक्षणोपदेशः—राजा के लक्षणों का उपदेश ॥

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष (जगतः) जगत् के बीच (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का, और (यत्) जो कुछ (अधि क्षमि) पृथिवी पर (विषुरूपम्) नाना रूप [धन आदि] (अस्ति) है, [उस का भी], (राजा) राजा है। (ततः) इसी कारण से वह (दाशुषे) दाता [आत्मदानी राजभक्त] के लिये (वसूनि) धनों को (ददाति) देता है, [तभी] (उपस्तुतः) समीप से प्रशंसित होकर (चित्) अवश्य (राधः) धन को (अर्वाक्) सन्मुख (चोदत्) प्रवृत्त करे [बढ़ावे] ॥१॥

भावार्थः—जो राजा अपनी प्रजा की और उसकी सब सम्पत्ति की सुधि रखकर रक्षा करे, और योग्य राजभक्तों का यथोचित धन आदि से सत्कार करे, वही प्रशंसा पाकर राज्य में धन बढ़ा सकता है ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—७।२७।३॥

सूक्तम् ॥६॥ [पुरुषसूक्तम्] ॥

१—१६ ॥ पुरुषो देवता ॥ १, २, ४—६, ८—१६ अनुष्टुप्, भुरिगनुष्टुप्, ७ निचृदनुष्टुप् ॥

सृष्टिविद्योपदेशः—सृष्टिविद्या का उपदेश ॥

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पुरुषः) पुरुष [अग्रगामी वा परिपूर्ण परमात्मा] (सहस्रबाहुः) सहस्रों भुजाओं वाला, (सहस्राक्षः) सहस्रों नेत्रों वाला और (सहस्रपात्) सहस्रों पैरों वाला है। (सः) वह (भूमिम्) भूमि को (विश्वतः) सब ओर से (वृत्वा) ढक कर (दश-अंगुलम्) दस दिशाओं में व्याप्ति वाले [वा पांच स्थूल भूत और पांच सूक्ष्म भूत में होने वाले] जगत् को (अति) लांघ कर (अतिष्ठत्) ठहरा है ॥१॥

भावार्थः—जिस परमात्मा में सहस्रों अर्थात् असंख्य भुजाओं, असंख्य नेत्रों और असंख्य पैरों का सामर्थ्य है अर्थात् जो अपनी सर्वव्यापकता से सब इन्द्रियों का काम करके रचना आदि कर्म करता है। वह जगदीश्वर भूमि से लेकर सकल ब्रह्माण्ड में बाहिर भीतर व्यापक है, सब मनुष्य उस सच्चिदानन्द परमेश्वर की उपासना से आनन्द प्राप्त करें॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ९०। १। यजुर्वेद ३१। १ और सामवेद पू० ६। १३। ३। और समस्त पुरुष सूक्त २२ मन्त्र यजुर्वेद पाठ के अनुसार महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका सृष्टि विद्या विषय में व्याख्यात है॥

यहां पर निम्न लिखित मन्त्र से मिलान करो—ऋक्० १०। ८१। ३ और यजुर्वेद १७। १९॥

विश्वतंश्चक्षुरुत विश्वतोंमुखो विश्वतों बाहुरुत विश्वतंस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमंति संपतत्रैर्द्यावाभूमीं जनयन्देवऽएकंः॥

(विश्वतश्चक्षुः) सब ओर नेत्र वाला, (उत) और (विश्वतोमुखः) सब ओर मुख वाला, (विश्वतोबाहुः) सब ओर भुजाओं वाला (उत) और (विश्वतस्पात्) सब ओर पैरों वाला (एकः) अकेला (देवः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (बाहुभ्याम्) दोनों भुजाओं रूप बल और पराक्रम से (पतत्रैः) गति शील परमाणु आदि के साथ (द्यावाभूमी) सूर्य और भूमि [आदि लोकों] को (सम्) यथाविधि (जनयन्) उत्पन्न कर के (सम्) यथावत् (धमति) प्राप्त होता है॥

त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः।
तथा व्यक्रामद् विष्वङ्ङशनानशने अनु॥२॥

भाषार्थः वह [पुरुष परमात्मा] (त्रिभिः) तीन (पद्भिः) पादों [अंशों] से (द्याम्) [अपने] प्रकाशस्वरूप में (अरोहत्) प्रकट हुआ, (अस्य) इस [पुरुष] का (पात्) एक पाद [अंश] (इह) यहां [जगत् में] (पुनः) वार वार [सृष्टि और प्रलय के चक्र से] (अभवत्) वर्तमान हुआ। (तथा) फिर (विष्वङ्) सर्वव्यापक वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अशनानशने अनु) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ जगत् में (वि) विविध प्रकार से (अक्रामत्) व्याप्त हुआ ॥२॥

भावार्थः—वह परमेश्वर संसार की अपेक्षा तीन चौथाई अर्थात् बहुत ही बड़ा है और इतना बड़ा ब्रह्माण्ड उसके सामर्थ्य का एक चौथाई अर्थात् बहुत थोड़ा अंश है, वह सब चराचर जगत् को उत्पन्न करके सब में व्याप्त हो रहा है ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । ४, यजुर्वेद ३१ । ४ और सामवेद पू० ६ । १३ । ४ ॥

तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [पुरुष] की (तावन्तः) उतनी [पूर्वोक्त] (महिमानः) महिमायें हैं, (च) और (पूरुषः) यह पुरुष [परिपूर्ण परमात्मा] (ततः) उन [महिमाओं] से (ज्यायान्) अधिक बड़ा है । (अस्य) इस [ईश्वर] का (पादः) पाद [चौथाई अंश] (विश्वा) सब (भूतानि) चराचर पदार्थ हैं, और (अस्य) इस [परमेश्वर] का (अमृतम्) अविनाशी महत्त्व (दिवि) [उसके] प्रकाशस्वरूप में (त्रिपात्) तीन पाद [तीन चौथाई] वाला है ॥३॥

भावार्थः—जो ईश्वर के चार अंश माने जावें तो उनके सूर्य, पृथिवी आदि चराचर विचित्र रचना वाला इतना बड़ा जगत् ईश्वर के सामर्थ्य का एक चौथाई अर्थात् बहुत थोड़ा अंश है और उसका अविनाशी सामर्थ्य जगत् की अपेक्षा तीन चौथाई अर्थात् बहुत महान् है ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । ३, यजुर्वेद—३१ । ३, सामवेद—पू० ६ । १३ । ६ ॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ (इदम्) यह (सर्वम्) सब है, (च) और (यत्) जो कुछ (भूतम्) उत्पन्न हुआ और (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला है [उसका] (उत) और (अमृतत्वस्य) अमरपन [अर्थात् दुःख रहित मोक्ष सुख] का, और (यत्) जो कुछ (अन्येन सह) दूसरे [अर्थात् मोक्ष से भिन्न दुःख] के साथ (अभवत्) हुआ है, [उसका भी] (ईश्वरः) शासक (पुरुषः) पुरुष [परिपूर्ण परमात्मा] (एव) ही है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमात्मा ही भूत, भविष्यत्, वर्तमान और सृष्टि, स्थिति, प्रलय का स्वामी होकर जीवों को उनके कर्मानुसार मोक्ष वा नरक देता है। इस मन्त्र का अर्थ यत् तद् भाव के विचार से किया गया है ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ९०। २। यजुर्वेद ३१। २। और सामवेद—पू० ६। १३। ४॥

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥५॥

भाषार्थः—(यत्) जब (पुरुषम्) पुरुष [परिपूर्ण परमात्मा] का (वि) विविध प्रकार से (अदधुः) उन [विद्वानों] ने धारण किया, (कतिधा) कितने प्रकार से [उसको] (वि) विशेष करके (अकल्पयन्) उन्होंने माना। (अस्य) इस [पुरुष] का (मुखम्) मुख (किम्) क्या [कहा जाता है], (बाहू) दोनों भुजायें (किम्) क्या, (ऊरू) दोनों घुटने और (पादौ) दोनों पांव (किम्) क्या (उच्येते) कहे जाते हैं ॥५॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमात्मा के सामर्थ्यों को विचारते हुए कल्पना करें, जैसे मनुष्य के मुखादि अङ्ग शरीर की पुष्टि करते हैं, वैसे ही इस बड़ी सृष्टि में धारण पोषण के लिये ऐसे बड़े परमात्मा के मुख के समान श्रेष्ठ, भुजाओं के समान बल को धारण करने वाला, घुटनों, के समान सब के बीच में व्यवहार करने वाला और पावों के समान चल फिर के सेवा करने वाला कौन है? इसका उत्तर अगले मन्त्र में है ॥५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ९०। ११। और यजुर्वेद ३१। १०

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥६॥

भाषार्थः—(ब्राह्मणः) ब्राह्मण [वेद और ईश्वर का जानने वाला मनुष्य] (अस्य) इस [पुरुष] का (मुखम्) मुख (आसीत्) था, (राजन्यः) क्षत्रिय [शासक मनुष्य] (बाहू) [उसकी] दोनों भुजायें (अभवत्) हुआ। (अस्य) इसका (यत्) जो (मध्यम्) मध्य [घुटनों का भाग] है, (तत्) वह (वैश्यः) वैश्य [मनुष्यों का हितकारी] और (पद्भ्याम्) [उसके] दोनों पैरों से (शूद्रः) शूद्र [शोचनीय मूर्ख] (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य के शरीर में अङ्ग के समान परमात्मा की सृष्टि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ब्रह्मचर्य आदि शम दम व्रत से वेद और ईश्वर का जानने वाला मनुष्य ब्राह्मण मुख के समान मुख्य सर्व हितकारी, वेदवेत्ता अधिक बल पराक्रम वाला क्षत्रिय भुजाओं के समान रक्षक, वेदज्ञ कृषि व्यापार आदि से धनी होकर मनुष्यों का हित करने वाला पोषक वैश्य शरीर के मध्यभाग घुटनों के तुल्य, और मूर्ख विद्याहीन चल फिर कर सेवा करने वाला शूद्र मनुष्य पैरों के समान उपयोगी है ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । १२, यजुर्वेद —३१ । ११ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥७॥

भाषार्थः—[इस पुरुष के—मन्त्र ६] (मनसः) मन [मनन सामर्थ्य] से (चन्द्रमाः) चन्द्र लोक (जातः) उत्पन्न हुआ, (चक्षोः) नेत्र से (सूर्यः) सूर्य मण्डल (अजायत) उत्पन्न हुआ । (मुखात्) मुख से (इन्द्रः) बिजुली (च) और (अग्निः) आग (च) और (प्राणात्) प्राण से (वायुः) पवन (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥७॥

भावार्थः—चन्द्रमा से मनन शक्ति और पदार्थपुष्टि और सूर्य से नेत्र में ज्योति होती है, मुख्य ज्योतिर्मय और भक्षण सामर्थ्य वाला होने से मुख का संबन्ध बिजुली और आग से, और जीवन का संबन्ध होने से प्राण का सम्बन्ध वायु से हैं, ऐसा मनुष्यों को ईश्वर की रची सृष्टि में जानना चाहिये ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । ९० । १३ और यजुर्वेद ३१ । १२ ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥८॥

भाषार्थः—[इस पुरुष की] (नाभ्याः) नाभि से (अन्तरिक्षम्) लोकों के बीच का आकाश (आसीत्) हुआ, (शीर्ष्णः) शिर से (द्यौः) प्रकाशयुक्त लोक, और (पद्भ्याम्) दोनों पैरों से (भूमिः) भूमि (सम्) सम्यक् (अवर्तत) वर्तमान हुई, (श्रोत्रात्) कान से (दिशः) दिशाओं की (तथा) इसी प्रकार (लोकान्) लोकों की (अकल्पयन्) उन [विद्वानों] ने कल्पना की ॥८॥

भावार्थः—जैसे नाभि में शरीर की धारण शक्ति है, वैसे ही आकाश में सब लोकों का धारण सामर्थ्य है, जैसे शिर शरीर में ज्ञान और नाड़ियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का केन्द्र है, वैसे ही सूर्य आदि प्रकाशमान लोक अन्य लोकों के प्रकाशक और आकर्षक हैं, जैसे पैर शरीर के ठहरने के आधार हैं वैसे ही भूमि लोक सब प्राणियों के ठहरने का आश्रय है, जैसे शब्द आकाश में सब ओर व्याप कर कानों में आता है, वैसे ही सब पूर्व आदि दिशायें आकाश में सर्वत्र व्यापक हैं। इसी प्रकार परमात्मा ने सब लोकों को रचकर परस्पर सम्बन्ध में रक्खा है ॥८॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। १९। १४। और यजुर्वेद ३१। १३॥

विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥९॥

भाषार्थः—(अग्रे) पहिले [सृष्टि की आदि मे] (विराट्) विराट् [विविध पदार्थों से विराजमान ब्रह्माण्ड] (सम्) यथाविधि (अभवत्) हुआ, (विराजः) विराट् [उस ब्रह्माण्ड] से (अधि) ऊपर [अधिष्ठाता होकर] (पुरुषः) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] [प्रकट हुआ]। (सः) वह [पुरुष] (जातः) प्रकट होकर (भूमिम्) भूमि [अर्थात् सब सृष्टि से] (पश्चात्) पीछे का (अथो) और भी (पुरः) आगे को (अति) लांघ कर (अरिच्यत) बढ़ गया ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा ही इस सब विद्यमान सृष्टि का अधिष्ठाता है, वह अनादि अनन्त पुरुष सृष्टि के पीछे और पहिले भी विराजमान रहता है ॥९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ९०। ५, यजुर्वेद—३१। ५, साम० पू० ६। १३। ७॥

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१०॥

भाषार्थः—(यत्) जब (हविषा) ग्रहण करने योग्य (पुरुषेण) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] के साथ [अर्थात् परमात्मा को यजमान मानकर] (देवाः) विद्वान् लोगों ने (यज्ञम्) यज्ञ [ब्रह्माण्डरूप हवनव्यवहार] को (अतन्वत) फैलाया। (वसन्तः) वसन्त ऋतु (अस्य) इस [यज्ञ] का (आज्यम्) घी, (ग्रीष्मः) ग्रीष्म ऋतु (इध्मः) इन्धन और (शरत्) शरद् ऋतु (हविः) हवनद्रव्य (आसीत्) हुआ ॥१०॥

भावार्थः—जब विद्वान् लोग इस ब्रह्माण्ड को ऐसे सिद्ध कर रहे हों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे कोई मनुष्य यज्ञ कर रहा हो, तो विद्वानों को जानना चाहिये कि सृष्टि के लिये वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ऋतु परमात्मा ने ऐसे उपयोगी बनाये हैं जैसे यज्ञ के लिये घृत, समिधा और अन्य हवन सामग्री होते हैं। इस मन्त्र में वसन्त, ग्रीष्म और शरद् तीन ही ऋतुएँ वर्ष के माने हैं जैसे ग्रीष्म, वर्षा और शीत तीन ऋतु प्रायः माने जाते हैं ॥१०॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। ९०। ६ और यजुर्वेद में ३१। १४। और इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आचुका है—अथर्व० ७। ५। ४॥

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥११॥

भाषार्थः—(ये) जो (देवाः) विद्वान् लोग (साध्याः) साधन करने वाले [योगाभ्यासी] (च) और (वसवः) श्रेष्ठ गुण वाले हैं, उन्होंने (प्रावृषा) बड़े ऐश्वर्य के साथ [वर्तमान] (तम्) उस (यज्ञम्) पूजनीय, (अग्रशः) पहिले से [सृष्टि के पूर्व से] (जातम्) प्रसिद्ध (पुरुषम्) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] को (तेन) उस [पुण्य कर्म] से (प्र) भले प्रकार (औक्षन्) सींचा [स्वच्छ किया, खोजा] और (अयजन्त) पूजा ॥११॥

भावार्थः—विद्वान् लोग योगाभ्यास आदि तप के साथ पुण्य कर्म करके परमात्मा को खोजें और पूजें ॥११॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ९०। ७ और यजुर्वेद ३१। ९॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१२॥

भाषार्थः—(तस्मात्) उस [पुरुष परमात्मा] से (अश्वाः) घोड़े (अजायन्त) उत्पन्न हुए, (च च) और [अन्य गदहा खच्चर आदि भी] (ये) जो (के) कोई (उभयादतः) दोनों ओर [नीचे ऊपर] दातों वाले हैं। (तस्मात्) उससे (ह) ही (गावः) गौवें बैल [एक ओर दांत वाले पशु] (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए, (तस्मात्) उससे (अजावयः) बकरी भेड़ (जाताः) उत्पन्न हुए ॥१२॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने घोड़े गदहे, गौ, बैल बकरी भेड़ आदि उपकारी पशु उत्पन्न किये हैं, सब मनुष्य उसकी आज्ञा का पालन करते रहें ॥१२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। ९०। १० और यजुर्वेद—३१। ८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मा॑द् य॒ज्ञात् स॑र्व॒हुत॒ ऋच॒ः सामा॑नि जज्ञिरे ।
छन्दां॑ह जज्ञि॒रे त॒स्मा॒द् यजु॒स्तस्मा॑दजायत ॥१३॥

भाषार्थः—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय (सर्वहुतः) सब के दाता [अन्न आदि देने हारे] [पुरुष परमात्मा] से (ऋचः) ऋग्वेद [पदार्थों की गुण प्रकाशक विद्या] के मन्त्र और (सामानि) सामवेद [मोक्षविद्या] के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए। (तस्मात्) उससे (ह) ही (छन्दः)अथर्ववेद [आनन्ददायक विद्या] के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए, और (तस्मात्) उस से (यजुः) यजुर्वेद [सत्कर्मों का ज्ञान] (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥१३॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने संसार के हित के लिये ऋग्वेदादि चार वेद प्रकाशित किये हैं, सब मनुष्य उन वेदों के अनुकूल चलकर उसकी भक्ति करें ॥१३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। ९०। ९ और यजुर्वेद ३१। ७॥

तस्मा॑द् य॒ज्ञात् स॑र्व॒हुत॒ः संभृ॑तं पृषदा॒ज्यम् ।
प॒शूँस्तांश्च॑क्रे वाय॒व्या॑नार॒ण्या ग्रा॒म्याश्च॒ ये ॥१४॥

भाषार्थः—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय (सर्वहुतः) सब के दानी [अन्न आदि के देने हारे] [पुरुष परमात्मा] से (पृषदाज्यम्) दही, घी [आदि भोग्य पदार्थ] (संभृतम्) सिद्ध किया गया हैं। उसने (तान्) उन (पशून्) जीवों [दोपाये चौपायों] और (वायव्यान्) पवन में रहने वाले [पक्षी आदियों] को (चक्रे) बनाया, (ये) जो (आरण्याः) बनैले (च) और (ग्राम्याः) ग्राम के रहने वाले हैं ॥१४॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने जगत् के हित के लिये सब भोग्य पदार्थ और सब बनैले और घरेलू जीव, जैसे मनुष्य, सिंह, बाघ, गाय, बैल तथा गिद्ध, चील, तोता, मैना, कीट, पतङ्ग आदि बनाये हैं, सब लोग उसकी उपासना से आत्मोन्नति करें ॥१४॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। ९०। ८ और यजुर्वेद—३१। ६॥

स॒प्तास्या॑सन् परि॒धय॒स्त्रिः स॒प्त स॒मिध॑ः कृ॒ताः ।
दे॒वा यद् य॒ज्ञं त॑न्वा॒ना अब॑ध्न॒न् पुरु॑षं प॒शुम् ॥१५॥

भाषार्थः—(यत्) जब कि (यज्ञम्) [संसार रूप] यज्ञ को (तन्वानाः) फैलाते हुए (देवाः) विद्वानों ने (पशुम्) दर्शनीय (पुरुषम्) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] को (अब-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घ्नन्) [हृदय में] बांधा, [तब] (सप्त) सात [तीन काल, तीन लोक अर्थात् सृष्टि स्थिति और प्रलय और एक जीवात्मा] (अस्य) इस [संसार रूप यज्ञ] के (परिधयः) घेरे समान (आसन्) थे, और (त्रिःसप्त) तीन वार सात [इक्कीस अर्थात् पांच सूक्ष्म भूत, पांच स्थूल भूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और एक अन्तःकरण] (समिधः) समिधायें [काष्ठ घृत आदि के समान] (कृताः) किये गये ॥१५॥

भावार्थः—जब विद्वान् लोग परमात्मा का ध्यान करते हुये संसार को यज्ञ समान मानें, तो जैसे यज्ञ के लिये वेदी वा हवन कुण्ड और काष्ठ घृत आदि सामग्री आवश्यक है, वैसे ही संसार में सृष्टि के लिए मन्त्रोक्त काल आदि सब पदार्थ आवश्यक होते हैं ॥१५॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । ९० । १५ । और यजुर्वेद ३१ । १५ ॥

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥१६॥

भाषार्थः—(पुरुषात्) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] से (अधि) अधिकार पूर्वक (जातस्य) उत्पन्न हुए (बृहतः) बड़े (देवस्य) प्रकाशमान सूर्य के (मूर्ध्नः) मस्तक की (सप्त) सात [वर्ण वाली] (सप्ततीः) नित्य सम्बन्ध वाली [अथवा सात गुणित सत्तर, चार सौ नब्बे अर्थात् असंख्य] (अंशवः) किरणें (राज्ञः) प्रकाशमान (सोमस्य) चन्द्रमा की [किरणें] (अजायन्त) प्रकट हुई हैं ॥१६॥

भावार्थः—सृष्टिक्रम विचारने वाले विद्वान् लोगों को जानना चाहिये कि परमात्मा के नियम से शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र वर्ण वाली अथवा असंख्य किरणें पृथिवी की अपेक्षा बड़े सूर्य से आकर चन्द्रमा को प्रकाशित करती हैं ॥१६॥

यह मन्त्र अन्य वेदों में नहीं है ॥

सूक्तम् ७ [नक्षत्रसूक्तम्] ॥

१—५ ॥ नक्षत्राणि देवताः ॥ १ निचृत् त्रिष्टुप्, २, ३, ५ त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

ज्योतिषविद्योपदेशः—ज्योतिष विद्या का उपदेश ॥

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(दिवि) आकाश के बीच (भुवने) संसार में (चित्राणि) विचित्र, (साकम्) परस्पर (सरीसृपाणि) टेढ़े टेढ़े चलने वाले, (जवानि) वेग गति वाले (रोचनानि) चमकते हुए नक्षत्र हैं। (तुर्मिशम्) वेग की ध्वनि [वा समाधि] को और (सुमतिम्) सुमति को (इच्छमानः) चाहता हुआ मैं (अहानि) सब दिन (गीर्भिः) वेदवाणियों से (नाकम्) सुखस्वरूप परमात्मा को (सपर्यामि) पूजता हूं ॥१॥

भावार्थः—जैसे परस्पर आकर्षण से शीघ्र गति के साथ चलकर यह तारागण संसार का उपकार करते हैं, वैसे ही मनुष्य परमात्मा की महिमा को वेद द्वारा गाते हुए परस्पर मेल करके शीघ्रता के साथ सुमति से अपना कर्त्तव्य करते रहें ॥१॥

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥२॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्ने! [सर्वव्यापक परमात्मन्] (कृत्तिकाः) कृत्तिकायें (च) और (रोहिणी) रोहिणी (सुहवम्) सुख से बुलाने योग्य [नक्षत्र] (अस्तु) होवे, (मृगशिरः) मृगशिर (भद्रम्) मङ्गलप्रद [नक्षत्र] और (आर्द्रा) आर्द्रा [जलयुक्त] (शम्) शान्तिदायक [होवे]। (पुनर्वसू) दो पुनर्वसू और (भानुः) प्रकाशमान (पुष्यः) पुष्य (सूनृता) सुन्दर चेष्टा के साथ (चारु) अनुकूल, और (आश्लेषाः) आश्लेषायें और (मघाः) मघायें (मे) मेरे लिये (अयनम्) सुन्दर मार्ग वाला [नक्षत्र होवे] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य ज्योतिष शास्त्र के द्वारा नक्षत्रों वा तारागणों का परस्पर सम्बन्ध और चन्द्रमा आदि के साथ संसर्ग और अन्न वायु जल आदि पर उन की गति के प्रभाव को समझ कर परमात्मा की अनन्त शक्ति को विचारते हुए अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥२॥

इस मन्त्र में इन नक्षत्रों का वर्णन है। १-कृत्तिकायें [छेदने वाली वा घेरने वाली अर्थात् उग्र स्वभाव वाली, अग्निशिखा—आकृति, छह तारापुञ्ज, अश्विनी नक्षत्र से तीसरा नक्षत्र] २—रोहिणी [स्वास्थ्य उपजाने वाली, शुक्ल—आकृति, पांच तारापुञ्ज, अश्विनी से चौथा नक्षत्र-इसी प्रकार आगे भी अश्विनी से गणना जानो], ३—मृगशिर [मृग के शिर समान शिर वाला, विडाल—आकृति, तीन तारापुञ्ज, पांचवां नक्षत्र] ४-आर्द्रा [भीजी हुई वा सजल, पद्म—आकृति, उज्ज्वल, एक तारा, छठा नक्षत्र], ५—दो पुनर्वसु [वार वार नक्षत्रों में रहने हारे, धनुष—आकृति, पांच [वा दो वा चार] तारापुञ्ज, सातवां नक्षत्र], ६—पुष्य [पोषण करने वाला दूसरा नाम तिष्य, वाण—आकृति, एक तारा, आठवां नक्षत्र],

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—आश्लेषायें [कुछ मिली हुई, दूसरा नाम अश्लेषा, चक्र—आकृति छह तारापुञ्ज नवां नक्षत्र], ८—मघायें [पूजा योग्य, हल वा घर—आकृति, पांच तारापुञ्ज, दशवां नक्षत्र] ॥

पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥३॥

भाषार्थः—(अत्र) यहां (पूर्वा) पूर्वा [पहिली] (च) और [उत्तरा वा पिछली] (फल्गुन्यौ) दोनों फल्गुनी (पुण्यम्) पवित्र [नक्षत्र], (हस्तः) हस्त (सुखः) सुख देनेवाला और (चित्रा) चित्रा तथा (स्वाति) स्वाति (शिवा) मङ्गल-कारक (मे) मेरे लिये (अस्तु) होवे (राधे) हे सिद्धि करने वाली ! (विशाखे) विशाखा तू (सुहवा) सुखपूर्वक बुलाने योग्य [हो], (अनुराधा) अनुराधा और (ज्येष्ठा) ज्येष्ठ [सुख से बुलाने योग्य होवे] और (सुनक्षत्रम्) सुन्दर नक्षत्र (मूलम्) मूल (अरिष्ट) हानि रहित [होवे] ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र २ के समान है ॥३॥

इस मन्त्र में इन नक्षत्रों का वर्णन है। ९—पूर्वाफल्गुनी [पहिली फल्गुनी वा फल उत्पन्न करने वाली, खाट की आकृति, दो तारापुञ्ज, ग्यारहवां नक्षत्र], १०—उत्तराफल्गुनी [पिछली फल्गुनी फल उत्पन्न करने वाली, खाट की आकृति, दो तारापुञ्ज बारहवां नक्षत्र] ११—हस्त, [हाथ की आकृति, पांच तारापुञ्ज, तेरहवां नक्षत्र], १२—चित्रा [विचित्र वा अद्भुत, मोती समान उज्ज्वल, एक तारा, चौदहवां नक्षत्र], १३—स्वाति [अपने आप चलने वाली कुंकुम समान लाल, एक तारा, पन्द्रहवां नक्षत्र], १४—विशाखा [विशेष शाखाओं वाली, इसका नाम (राधा) सिद्धि करने वाली भी है, तोरण वा बड़े द्वार समान आकृति, चार तारा-पुञ्ज, सोलहवां नक्षत्र], १५—अनुराधा [राधा अर्थात् विशाखा के पीछे चलने वाली, सर्प-आकृति, सात तारापुञ्ज, सतरहवां नक्षत्र], १६—ज्येष्ठा [सब से बड़ी वा श्रेष्ठ, सूअर के दांत की आकृति, तीन तारापुञ्ज, अठारहवां नक्षत्र], १७—मूल [वा मूला अर्थात् जड़ समान दृढ़, सिंहपूंछ आकृति वा शंख मूर्ति, नव तारापुञ्ज, उन्नीसवां नक्षत्र] ॥

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥४॥

भाषार्थः—(पूर्वा) पूर्वा [पहिली] (अषाढाः) अषाढ़ायें (मे) मेरे लिये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अन्नम्) अन्न (रासताम्) देवें, और (देवी) चमकीली (उत्तराः) उत्तरायें [पिछली अर्थात् उत्तरा-अषाढ़ायें] (ऊर्जम्) पराक्रम (आ वहन्तु) लावें। (अभिजित्) अभिजित् (मे) मेरे लिये (पुण्यम्) पुण्यकर्म (एव) ही (रासताम्) देवे, (श्रवणः) श्रवण और (श्रविष्ठाः) श्रविष्ठायें (सुपुष्टिम्) बहुत पुष्टि (कुर्वताम्) करें ।।४।।

भावार्थः मन्त्र २ के समान है ।।४।।

इस मन्त्र में इन नक्षत्रों का वर्णन है। १८—पूर्वा—अषाढ़ा [यद्वा पूर्वा—आषाढ़ा=पूर्वाषाढ़ा, सूप—आकृति, चार तारापुञ्ज, बीसवां नक्षत्र] १९—उत्तरा—अषाढ़ा [यद्वा उत्तरा—आषाढा=उत्तराषाढ़ा, सूप—आकृति, चार तारापुञ्ज, इक्कीसवां नक्षत्र], २०—अभिजित् [सब ओर से जीतने वाला, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के शेष पन्द्रह दण्ड और श्रवणा नक्षत्र के पहिले चार दण्ड, उन्नीस दण्ड वाला तारा विशेष, सिंघाड़े की आकृति, तीन तारापुञ्ज], २१—श्रवणा [यद्वा श्रवण, सुनने वाला वा चलने वाला, तीर की आकृति, तीन तारापुञ्ज बाइसवां नक्षत्र], २२—श्रविष्ठायें [अत्यन्त विख्यात, यद्वा धनिष्ठा बहुत धन वाली, मृदङ्ग—आकृति, पांच तारापुञ्ज तेईसवां नक्षत्र] ।।

आ मे॑ म॒हच्छ॒तभि॑ष॒ग् वरी॑य॒ आ मे॑ द्व॒या प्रोष्ठ॑पदा सु॒शर्म॑ ।
आ रे॒वती॑ चाश्व॒युजौ॒ भगं॑ म॒ आ मे॑ र॒यिं भर॑ण्य॒ आ व॑हन्तु ।।५।।

भाषार्थः—(शतभिषक्) शतभिषज् (मे) मेरे लिये (वरीयः) अधिक विस्तृत (महत्) बड़ाई (आ=आ वहतु) लावे। (द्वया) द्विगुनी (प्रोष्ठपदा) प्रोष्ठ-पदा (मे) मेरे लिये (सुशर्म) बड़ा सुख (आ=आ वहतु) लावे। (रेवती) रेवती (च) और (अश्वयुजौ) दो अश्वयुज (मे) मेरे लिये (भगम्) ऐश्वर्य (आ=आ वहन्तु) लावें, (आ) और (भरण्यः) भरणियें (मे) मेरे लिये (रयिम्) धन (आ वहन्तु) लावें ।।५।।

भावार्थः—मन्त्र २ के समान है ।।५।।

इस मन्त्र में इन नक्षत्रों का वर्णन है। २३—शतभिषज् [वैद्यों के समान सौ तारा वाला, यद्वा शतभिषा और सायण भाष्य में शतविशाखा, मण्डलाकार—आकृति, सौ तारापुञ्ज, चौबीसवां नक्षत्र], २४, २५ दोनों प्रोष्ठपदा अर्थात् पूर्वा भाद्रपदा और उत्तरा भाद्रपदा [प्रोष्ठपदा वा भाद्रपदा=बैल वा गौ के समान पांव वाली, पूर्वा भाद्रपदा दाहिनी और बाई ओर वर्तमान खाट की आकृति दो तारा-पुञ्ज, उत्तरा भाद्रपदा, खाट की आकृति, आठ तारापुञ्ज], २६—रेवती [चलती हुई। मछली की आकृति, बत्तीस तारापुञ्ज, सत्ताइसवां नक्षत्र], २७—दो अश्वयुज्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[दो घुड़चढ़े अथवा अश्विनी नक्षत्र, घुड़चढ़े पुरुष के समान आकृति वा घोड़ों के मुख समान आकृति, तीन तारापुञ्ज पहिला नक्षत्र], २८—भरण्यां [पालने वाली, त्रिकोण—आकृति, तीन तारापुञ्ज दूसरा नक्षत्र] ॥

संक्षेप मन्त्र २—५ ॥

वेद में २८ नक्षत्र हैं—१ कृत्तिका, २ रोहिणी, ३ मृगशिर, ४ आर्द्रा, ५ पुनर्वसु, ६ पुष्य, ७ आश्लेषा [वा अश्लेषा], ८ मघा, ९ पूर्वा फल्गुनी, १० उत्तरा फल्गुनी, ११ हस्त, १२ चित्रा, १३ स्वाति, १४ विशाखा, १५ अनुराधा, १६ ज्येष्ठा, १७ मूल, १८ पूर्वा—अषाढ़ा, १९ उत्तरा—अषाढ़ा, २० अभिजित्, २१ श्रवण, २२ श्रविष्ठा, [वा धनिष्ठा], २३ शतभिषज् वा शतभिषा, २४ तथा २५ दोनों प्रोष्ठपदा [वा पूर्वा भाद्रपदा और उत्तरा भाद्रपदा], २६ रेवती, २७ दो अश्वयुज् [वा अश्विनी] और २८ भरणी, [सूक्त ८ मन्त्र १, २ भी देखो] ॥

प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त अध्याय ८ श्लोक २—९ में अश्विनी से रेवती तक २८ नक्षत्र इस प्रकार हैं। १ अश्विनी, २ भरणी, ३ कृत्तिका, ४ रोहिणी ५ मृगशिरा, ६ आर्द्रा ७ पुनर्वसु, ८ पुष्य, ९ अश्लेषा, १० मघा, ११ पूर्वाफल्गुनी, १२ उत्तराफल्गुनी, १३ हस्त, १४ चित्रा, १५ स्वाति, १६ विशाखा, १७ अनुराधा, १८ ज्येष्ठा, १९ मूल [वा मूला], २० पूर्वाषाढ़ा, २१ उत्तराषाढ़ा, २२ अभिजित्, २३ श्रवण, २४ धनिष्ठा [वा श्रविष्ठा], २५ शतभिषा [वा शतभिषज्], २६ पूर्व भाद्रपदा, २७ उत्तरभाद्रपदा, २८ रेवती ॥

शब्दकल्पद्रुम कोश में पूर्वोक्त अश्विनी से रेवती तक २७ और २८ वां अभिजित् है। महर्षि दयानन्द कृत संस्कार विधि नामकरण प्रकरण की टिप्पणी में अश्विनी से रेवती तक २७ नक्षत्र हैं, अभिजित् नहीं है ॥

सूक्तम् ॥८॥

१—७ अग्नि सविता ब्रह्मणस्पतिर्वा देवता ॥ १ विराडार्षी जगती; २ निचृदार्षी त्रिष्टुप्; ३ भुरिगार्षी पङ्क्तिः; ४ निचृदनुष्टुप्; ५, ६ अनुष्टुप्; ७ आर्ची गायत्री ॥

सुखप्राप्त्युपदेशः—सुख की प्राप्ति का उपदेश ॥

मन्त्रौ १, २ [नक्षत्रसूक्तम्] ॥

यानि नक्षत्राणि दिव्य१न्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यानि) जिन (नक्षत्राणि) नक्षत्रों [चलने वाले लोकों] को (दिवि) आकाश के भीतर (अन्तरिक्षे) मध्यलोक में, (यानि) जिन [नक्षत्रों] को (अप्सु) जल के ऊपर और (भूमौ) भूमि के ऊपर और (यानि) जिन [नक्षत्रों] को (नगेषु) पहाड़ों के ऊपर (दिक्षु) सब दिशाओं में (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (प्रकल्पयन्) समर्थ करता हुआ (याति) चलता है, (एतानि) यह (सर्वाणि) सब [नक्षत्र] (मम) मेरे (शिवानि) सुख देने हारे (सन्तु) होवें ॥१॥

भावार्थः—जो नक्षत्र [सूक्त ७] अपने तारागणों के साथ चन्द्रमा के आकर्षण और गति मार्ग में घूमकर वायु द्वारा जल पृथिवी आदि पर प्रभाव डाल कर अन्न स्वास्थ्य आदि बढ़ाने का कारण हैं, विद्वान् लोग उन नक्षत्रों के ज्योतिष ज्ञान से दूरदर्शी होकर विघ्नों को हटा कर सुख पावें ॥१॥

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥२॥

भाषार्थः—(अष्टाविंशानि) प्रत्येक अट्ठाइसवें [नक्षत्र] (शिवानि) कल्याण कारक और (शग्मानि) सुखदायक होकर (सह) मेल के साथ (मे) मुझको (योगम्) प्राप्ति सामर्थ्य (भजन्तु) देवें। (योगम्) प्राप्ति सामर्थ्य को (च) और (क्षेमम्) रक्षा सामर्थ्य को [अर्थात् पाने के सामर्थ्य के साथ रक्षा के सामर्थ्य को] (प्र पद्ये) मैं पाऊं, और (क्षेमम्) रक्षा सामर्थ्य को (च) और (योगम्) प्राप्ति सामर्थ्य को [अर्थात् रक्षा के सामर्थ्य के साथ पाने के सामर्थ्य को] (प्र पद्ये) मैं पाऊं, [और मुझे] (अहोरात्राभ्याम्) दोनों दिन राति के लिये (नमः) अन्न (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—सूक्त ७ में कृत्तिकाओं से लेकर भरणियों तक अट्ठाईस नक्षत्र बताये हैं। यह मन्त्र कहता है कि वे नक्षत्र चन्द्रमा के मार्ग में चक्र बनाकर घूमते हैं। इसलिये जिस किसी एक नक्षत्र को ध्रुव मान कर गणना करें तो प्रत्येक अन्तिम नक्षत्र अट्ठाईसवां होता है, जैसे वेद में कृत्तिकाओं से लेकर भरणी, और लोक में अश्विनी से लेकर रेवती अट्ठाईसवां नक्षत्र है। मनुष्यों को योग्य है कि नक्षत्रों की कुचाल से जो दुर्भिक्ष, वायु की अशुद्धि, आधिदैविक विपत्तियां पृथिवी पर सूझ पड़ें उनके निवारण के लिये अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करते रहें ॥२॥

महर्षि दयानन्द के अनुसार अर्थ- ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उपासना विषय ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे परमेश्वर ! (अष्टाविंशानि) अट्ठाईस [दश इन्द्रिय, दश प्राण, मन बुद्धि, चित्त, अहंकार विद्या, स्वभाव, शरीर और बल] (शिवानि) कल्याण कारक और (शग्मानि) सुखकारक होकर (सह) एक साथ (मे) मेरे (योगम्) उपासना योग को (भजन्ताम्) सेवन कर। (योगम्) उस योग को (च) और (क्षेमम्) रक्षा को अर्थात् योग के द्वारा रक्षा को] (प्र पद्ये) मैं प्राप्त होऊं और (क्षेमम्) रक्षा को (च) और (योगम्) योग को [अर्थात् रक्षा से योग को] (प्र पद्ये) मैं प्राप्त होऊं, [इसलिये मेरा तुझ को] (अहोरात्राभ्याम्) दिन राति (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥

स्व॒स्ति॒तं मे॑ सुप्रा॒तः सु॑सा॒यं सु॑दि॒वं सु॑मृ॒गं सु॑शकु॒नं मे॑ अस्तु ।
सु॒हव॑मग्ने स्वस्त्य१॒॑मर्त्यं॑ ग॒त्वा पुन॒राया॑भि॒नन्द॑न् ॥३॥

भाषार्थः –(सुप्रातः) सुन्दर प्रातःकाल, (सुसायम्) सुन्दर सायंकाल और (सुदिवम्) सुन्दर दिन (मे) मेरे लिये (सुमृगम्) सुन्दर पशुओं का झुण्ड तथा (सुशकुनम्) सुन्दर पक्षियों का समूह (मे) मेरे लिये (स्वस्तितम्) आनन्द [वा सुन्दर सत्ता] फैलाने वाला (अस्तु) होवे। (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! (सुहवम्) सुन्दर ग्रहण योग्य और (अमर्त्यम्) अमर [अनश्वर] (स्वस्ति) आनन्द [वा सुन्दर सत्ता] गत्वा=गमयित्वा) प्राप्त कराकर (अभिनन्दन्) अभिनन्दन [मान] करता हुआ तू (पुनः) अवश्य करके (आय) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य पदार्थों के ज्ञान और उपयोग से अपने समय को और अपनी सत्ता को सुधारते हैं, वे परमात्मा को प्राप्त होकर स्थिर सुख भोगते हैं ॥३॥

अ॒नु॒ह॒वं प॑रि॒ह॒वं प॑रिवा॒दं प॑रिक्ष॒वम् ।
सर्वै॑र्मे रिक्तकु॒म्भान् परा॒ तान्त्स॑वितः सुव ॥४॥

भाषार्थः—(अनुहवम्) विवाद (परिहवम्) बकवाद (परिवादम्) अपवाद और (परिक्षवम्) नाक के फुरफुराहट, (तान्) इन (रिक्तकुम्भान्) रीते घड़ों [निकम्मे कामों] को (मे) मेरे (सर्वैः) सब [दोषों] सहित, (सवितः) हे सर्वप्रेरक परमात्मन् ! (परा सुव) दूर कर दे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य अपने शारीरिक और आत्मिक दोषों को विचार कर परमेश्वर की उपासना करके दूर करे ॥४॥

इस मन्त्र का कुछ मिलान करो—ऋ० १०।३।६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवंम् ।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यंगश्चाभि मेहताम् ॥५॥

भाषार्थः—(अपपापम्) बहुत दोषयुक्त (परि क्षवम्) नाक के फुरफुराहट को [हे परमात्मन् ! दूर कर दे—म० ४], (पुण्यम्) शुद्ध [निर्दोष] (क्षवम्) छींक को (भक्षीमहि) हम भोगें । (पाप) हे पापी ! [रोगी वा दोषी] (ते) तेरी (नासिकाम्) नासिका [आदि इन्द्रियों] को (शिवा) कल्याण कारक [क्रिया] (च) और (पुण्यगः) पवित्रता पहुंचाने वाला [व्यवहार] (अभि) सब ओर से (मेहताम्) सींचे [शोधे] ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य अशुद्धिकारक रोगजन्य छींक आदि दोषों को हटाकर उत्तम उत्तम व्यवहारों और चेष्टाओं से इन्द्रियों को प्रबल करके सुखी होवें ॥५॥

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते ।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥६॥

भाषार्थः—(ब्रह्मणःपते) हे ब्रह्माण्ड के स्वामी परमात्मन् । (इमाः) इन (याः) जिन (विषूचीः) विविध फैली हुई [दिशाओं] को (वातः) पवन (ईरते) पहुंचाता है । (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर ! (ताः) उनको (सध्रीचीः) परस्पर पूजनीय (कृत्वा) करके (मह्यम्) मेरे लिये (शिवतमाः) अत्यन्त सुखकारिणी (कृधि) कर ॥६॥

भावार्थः—पूर्वादि सब दिशाओं में वायु जल आदि पदार्थ परिपूर्ण हैं, मनुष्य सर्वत्र परमात्मा के विचार के साथ परस्पर सहाय करके सुख प्राप्त करें ॥६॥

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥७॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण [सुन्दर सत्ता] (अस्तु) होवे (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे [हमें] (अहोरात्राभ्याम्) दोनों दिन राति के लिये (नमः) अन्न (अस्तु) होवे ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य अपनी सत्ता को सुधार कर सदा निर्भय होकर अन्न आदि प्राप्त करें ॥७॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद—म०२ में आया है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ९ [शान्तिसूक्तम्] ॥

१—१४ विश्वेदेवा देवताः ॥ १, २, ७ भुरिगनुष्टुप्; ३, ४, ६, ८, १० अनुष्टुप्, ५ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, ९ आर्षी त्रिष्टुप्; ११ निचृदनुष्टुप्, १२ निचृदष्टि, १३ स्वराडनुष्टुप्, १४ संकृतिः ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्यों के कर्तव्य का उपदेश ॥

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्व१न्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥१॥

भाषार्थः—(द्यौः) प्रकाशमान [सूर्य आदि की विद्या] (शान्ता) शान्तियुक्त, (पृथिवी) चौड़ी [पृथिवी आदि] (शान्ता) शान्तियुक्त, (इदम्) यह (उरु) चौड़ा (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती आकाश (शान्तम्) शान्तियुक्त [होवे]। (उदन्वतीः) उत्तम जल वाली (आपः) फैली हुई नदियां (शान्ताः) शान्तियुक्त और (ओषधीः) ओषधियां [अन्न सोमलता आदि] (नः) हमारे लिये (शान्ताः) शान्तियुक्त (सन्तु) होवें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि प्रकाशविद्या, भूमिविद्या, आकाशविद्या, जलविद्या, अन्न, ओषधि आदि की अनेक विद्याओं को प्राप्त करके संसार को सुख पहुंचावें ॥१॥

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥२॥

भाषार्थः—(पूर्वरूपाणि) पूर्व रूप [आरम्भ के चिन्ह] (शान्तानि) शान्तियुक्त, (कृताकृतम्) किया हुआ और न किया हुआ [मन में विचारा हुआ कर्म] (नः) हमारे लिये (शान्तम्) शान्तियुक्त (अस्तु) होवे। (भूतम्) बीता हुआ (च) और (भव्यम्) होने वाला (शान्तम्) शान्तियुक्त (च) और (सर्वम्) सब (एव) ही (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तियुक्त (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—यह कार्य कैसे हुआ वा कैसे होगा; हम ने किया है, वा करना विचारा है, उस का फल क्या होगा, पूर्वजों के कर्म का क्या फल हुआ, आगे क्या होगा, ऐसा सोचकर मनुष्य उचित कर्तव्य करता हुआ आनन्द प्राप्त करे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता ।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥३॥

भाषार्थः—(इयम्) यह (या) जो (परमेष्ठिनी) सर्वोत्कृष्ट परमात्मा में ठहरने वाली, (देवी) उत्तमगुण वाली (वाक्) वाणी (ब्रह्मसंशिता) वेदज्ञान से तीक्ष्ण की गई है, और (यया) जिस [वाणी] के द्वारा (एव) ही (घोरम्) घोर [भयंकर पाप] (ससृजे) उत्पन्न हुआ है, (तया) उस [वाणी] के द्वारा (एव) ही (नः) हमारे लिये (शान्तिः) शान्ति [धैर्य, आनन्द] (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—जिस वाणी के द्वारा वेदों के ज्ञान से परमात्मा को पहुंचते हैं, यदि उस वाणी द्वारा कोई अनर्थ होवे, विद्वान् मनुष्य उस भूल को उचित व्यवहार से सुधार कर शान्ति स्थापित करे ॥३॥

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥४॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (यत्) जो (परमेष्ठिनम्) सर्वोत्कृष्ट परमात्मा में ठहरने वाला (वाम्) तुम दोनों [स्त्री पुरुषों] का (मनः) मन (ब्रह्मसंशितम्) वेदज्ञान से तीक्ष्ण किया गया है, और (येन) जिस [मन] के द्वारा (एव) ही (घोरम्) घोर [भयङ्कर पाप] (ससृजे) उत्पन्न हुआ है, (तेन) उस [मन] के द्वारा (एव) ही (नः) हमारे लिये (शान्तिः) शान्ति [धैर्य, आनन्द] (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थः— यह मन जो परमात्मा का निवास और वेदज्ञान का कोश है, यदि उस मन में कोई विकार उत्पन्न हो तो हे मनुष्यो ! उस को ठीक करके परस्पर सुख बढ़ाओ ॥४॥

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥५॥

भाषार्थः—(इमानि) ये (यानि) जो (मनःषष्ठानि) छठे मन सहित (पञ्च) पांच (इन्द्रियाणि) इन्द्रियां [कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा और त्वचा ज्ञानेन्द्रियां] (मे) मेरे (हृदि) हृदय में (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान से (संशितानि) तीक्ष्ण की गयी हैं। और (यैः) जिन [इन्द्रियों] के द्वारा (एव) ही (घोरम्) घोर [भयङ्कर पाप] (ससृजे) उत्पन्न हुआ है, (तैः) उन के द्वारा (एव) ही (नः) हमारे लिये (शान्तिः) शान्ति [धैर्य्य, आनन्द] (अस्तु) होवे ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मन और सब ज्ञानेन्द्रियां वेदज्ञान से तेजस्वी हुए हैं, यदि उनके विकार से कोई पाप घटना हो जावे विद्वान् पुरुष उसे सुधार कर आपस में सुख भोगें ॥५॥

शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शं विष्णुः॒ शं प्र॒जाप॑तिः ।
शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पतिः॒ शं नो॑ भवत्वर्य॒मा ॥६॥

भावार्थः—(नः) हमारे लिये (मित्रः) सबका मित्र [परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष] (शम्) शान्तिदायक, (वरुणः) सब में श्रेष्ठ (शम्) शान्तिदायक, (विष्णुः) सब गुणों में व्यापक (शम्) शान्तिदायक, (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजाओं का रक्षक] (शम्) शान्तिदायक [होवे]। (नः) हमारे लिये (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान, (बृहस्पतिः) बड़ी वेदविद्या का रक्षक (शम्) शान्तिदायक, (नः) हमारे लिये (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाला [न्यायकारी परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष] (शम्) शान्तिदायक (भवतु) होवे ॥६॥

भावार्थः—जैसे सर्वहितकारी, सर्वश्रेष्ठ सर्वगुण विशिष्ट परमेश्वर सब जगत् की रक्षा करता है, वैसे ही विद्वान् जन परस्पर स्नेह करके संसार का उपकार करें ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१। ९०। ९ और यजुर्वेद–३६। ९॥

शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शं वि॒वस्वा॒ञ्छम॒न्तकः॑ ।
उ॒त्पा॒ताः पार्थि॑वान्तरि॑क्षाः॒ शं नो॑ दि॒विच॑रा ग्र॒हाः ॥७॥

भावार्थः—(नः) हमारे लिये (मित्रः) प्राण वायु (शम्) शान्तिदायक, (वरुणः) जल [वा अपान वायु], (शम्) शान्तिदायक (विवस्वान्) विविध चमकने वाला सूर्य (शम्) शान्तिदायक (अन्तकः) अन्त करने वाला [मृत्यु] (शम्) शान्तिदायक [होवे]। (पार्थिवा) पृथिवी पर होने वाले और (आन्तरिक्षाः) अन्तरिक्ष [आकाश] में होने वाले (उत्पाताः) उत्पात [उपद्रव] और (दिविचराः) सूर्य के प्रभाव में घूमने वाले (ग्रहाः) ग्रह [चन्द्र, मङ्गल, बुध आदि] (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक [होवें] ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्यापूर्वक वायु जल आदि पदार्थों से उपकार लेकर सुखी होना चाहिये ॥७॥

शं नो॒ भूमि॒र्वेप्य॒माना॒ शमु॒ल्का निर्ह॑तं॒ च यत् ।
शं गावो॒ लोहि॑तक्षीरा॒ः शं भूमि॒रव॑ तीर्य॒तीः ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(नः) हमारे लिये (वेप्यमाना) कांपती हुई (भूमिः) भूमि (शम्) शान्तिदायक, (च) और (यत्) जो कुछ (उल्का) उल्काओं से [रेखाकार आकाश से गिरते हुए तेज पुञ्जों, टूटते हुए तारों से] (निर्हतम्) नष्ट किया गया है, [वह] (शम्) शान्तिदायक [होवे]। (लोहितक्षीराः) रुधिर युक्त दूध देने वाली (गावः) गौयें (शम्) शान्तिदायक [होवें] और (अव तीर्यतीः) धसकती हुई (भूमिः) भूमि (शम्) शान्तिदायक [होवे] ॥८॥

भावार्थः—दूरदर्शी मनुष्य भूकम्प, तारे टूटने, रोग के कारण दूध बिगड़ने, दलदल से पृथिवी के बैठ जाने आदि विघ्नों से बचने का उपाय करके सुखी होवें ॥८॥

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥९॥

भाषार्थः—(उल्का) उल्काओं [टूटते तारों] से (अभिहतम्) नष्ट किया हुआ (नक्षत्रम्) नक्षत्र (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) होवे, (नः) हमारे लिये (अभिचाराः) विरुद्ध आचरण (शम्) शान्तिदायक (उ) और (कृत्याः) हिंसा क्रियायें (शम्) शान्तिदायक, (सन्तु) होवें। (निखाताः) खोदे हुए (वल्गाः) गढ़े [सुरंग आदि] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक, (उल्काः) उल्कायें [टूटते तारे] (शम्) शान्तिदायक, (उ) और (देशोपसर्गाः) देश के उपद्रव (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) होवें ॥९॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष दैवी और मानुषी विपत्तियों से बचने का प्रयत्न करते रहें ॥९॥

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥१०॥

भाषार्थः—(चान्द्रमसाः) चन्द्रमा के (ग्रहाः) ग्रह [कृत्तिका आदि नक्षत्र] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक [होवें], (च) और (आदित्यः) सूर्य (राहुणा) राहु [ग्रह विशेष] के साथ (शम्) शान्तिदायक [होवे]। (मृत्युः) मृत्युरूप (धूमकेतुः) धूमकेतु [पुच्छल तारा] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक [हो], (तिग्मतेजसः) तीक्ष्ण तेज वाले (रुद्राः) गतिमान् [बृहस्पति आदि ग्रह] (शम्) शान्तिदायक [होवें] ॥१०॥

भावार्थः—राहु ग्रह विशेष प्रकाश को रोककर सूर्य और चन्द्र के ग्रहण का कारण होता है, धूमकेतु अपनी टेढ़ी चाल से अनेक ग्रहों और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्षत्रों को टकरा कर नाश करता है, मनुष्य ज्योतिष शास्त्र द्वारा दूरदर्शी होकर विघ्नों से बचने का उपाय करें ॥१०॥

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥११॥

भाषार्थः—(रुद्राः) रुद्र [ग्यारह रुद्र अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा] (शम्) शान्तिदायक (वसवः) वसु [आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण] (शम्) शान्तिदायक (आदित्याः) महीने [चैत्र आदि बारह महीने] (शम्) शान्तिदायक और (अग्नयः) अग्नियां [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल] (शम्) शान्तिदायक [होवें]। (महर्षयः) महर्षि [बड़े बड़े वेदज्ञाता] (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक, (देवाः) उत्तम व्यवहार (शम्) शान्तिदायक [होवें] और (बृहस्पतिः) बड़े ब्रह्माण्डों का स्वामी [परमात्मा] (शम्) शान्तिदायक [होवे] ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य रुद्र, वसु और आदित्य संज्ञक पदार्थों को प्रयत्नपूर्वक महर्षि विद्वानों के सत्संग और परमात्मा के विश्वास से अनेक व्यवहारों में प्रयुक्त करके सब जीवों को सुख पहुंचावें ॥११॥

रुद्र, वसु और आदित्य शब्दों के लिये महर्षि दयानन्दकृत यजुर्वेद २।५। देखो ॥

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्त ऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२॥

भाषार्थः—(ब्रह्म) अन्न, (प्रजापतिः) प्रजापालक [इन्द्रियादि का रक्षक] और (धाता) पोषक [जीवात्मा], (लोकाः) सब लोक [पृथिवी आदि] (वेदाः) ऋग्वेद आदि चारों वेद, (सप्त ऋषयः) सात ऋषि [कान, आंख, नाक, जिह्वा, त्वचा, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि], और (अग्नयः) अग्नि [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक पराक्रम] [जो हैं]। (तैः) उन करके (मे) मेरे लिये (स्वस्त्ययनम्) कल्याण का मार्ग (कृतम्) बनाया गया, (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] (मे) मेरे लिये (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे, (ब्रह्मा) ब्रह्मा [सब से बड़ा परमात्मा] (मे) मेरे लिये (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे (विश्वे) सब (देवाः) देव (मे) मेरे लिए (शर्म) सुख (यच्छन्तु) देवें। (सर्वे) सब (देवाः) देव (मे) मेरे लिए (शर्म) सुख (यच्छन्तु) देवें ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की सृष्टि के बीच वेद आदि शास्त्र द्वारा संसार के अन्न आदि पदार्थों को इन्द्रियों और मन बुद्धि द्वारा यथावत् परीक्षा करके काम में लावें, और परमेश्वर को धन्यवाद देते हुए सुख प्राप्त करें ॥१२॥

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥१३॥

भाषार्थः—(यानि) जिन (कानि) किन्हीं (चित्) भी (शान्तानि) शान्त-कर्मों को (लोके) संसार में (सप्तऋषयः) सात ऋषि [कान, आंख, नाक, जिह्वा त्वचा पांच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि] (विदुः) जानते हैं। (सर्वाणि) वे सब (मे) मेरे लिये (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) होवें, (मे) मेरे लिये (शम्) शान्ति [आरोग्यता धैर्य आदि] (अस्तु) होवे, (मे) मेरे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि संसार के सब पदार्थों को साक्षात् करके उनसे यथावत् लाभ उठावें और धर्म का आचरण करते हुए धैर्य के साथ निर्भय रहें ॥१३॥

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः । ताभिः शान्तिभिः सर्व शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥१४॥

भाषार्थः—(पृथिवी) भूमि (शान्तिः) शान्तिदायक [हो], (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक [वायुमण्डल, मेघमण्डल तारागण आदि] (शान्तिः) शान्तिदायक हो; (द्यौः) प्रकाशमान [सूर्य आदि] (शान्तिः) शान्तिदायक हो; (आपः) जल (शान्तिः) शान्तिदायक हो, (ओषधयः) ओषधें [अन्न सोमलता आदि] (शान्तिः) शान्तिदायक हों, (वनस्पतयः) वनस्पतियां [वट आदि वृक्ष] (शान्तिः) शान्तिदायक हों, (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (मे) मेरे लिये (शान्तिः) शान्तिदायक हों, (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (मे) मेरे लिये (शान्तिः) शान्तिदायक हों, (सर्वे) सब (देवाः) उत्तम पदार्थ (मे) मेरे लिये (शान्तिः) शान्तिदायक हों (शान्तिभिः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तियों [सुखदायक क्रियाओं] के साथ (शान्तिः) शान्ति (शान्तिः) शान्ति [धैर्य आदि] हो। (ताभिः) उन (शान्तिभिः) शान्तियों [आनन्द क्रियाओं] से, (सर्वं=सर्वाभिः) सब (शान्तिभिः) शान्तियों [धैर्य क्रियाओं] से (अहम्=वयम्) हम (शम्) शान्ति (अयामः) पावें, (यत्) जो कुछ (इह) यहां पर (घोरम्) घोर [भयङ्कर] हो, (यत्) जो कुछ (इह) यहां पर (क्रूरम्) क्रूर [निर्दय] हो, और (यत्) जो कुछ (इह) यहाँ पर (पापम्) पाप [अनिष्ट] हो, (तत्) वह (शान्तम्) शान्तियुक्त हो, (तत्) वह (शिवम्) कल्याणकारक हो, (सर्वम्) सब (एव) ही (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिये कि पृथिवी आदि पदार्थ सदा शान्तिदायक होवें ॥१४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—३६।१७॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१०॥ [शान्तिसूक्तम्] ॥

१—१०॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ १—५, ६ त्रिष्टुप्; ६, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप्; ७ विराट्त्रिष्टुप् ॥

सृष्टिपदार्थेभ्यः उपकारग्रहणोपदेशः—सृष्टि के पदार्थों से उपकार लेने का उपदेश ॥

शं न॑ इन्द्राग्नी भ॑वताम॒वोभि॒ः शं न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या ।
शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः शं न॒ इन्द्रा॑पू॒षणा॒ वाज॑सातौ ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्राग्नी) बिजुली और साधारण अग्नि दोनों (अवोभिः) रक्षा साधनों के साथ (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवताम्) हों (रातहव्या) ग्राह्य पदार्थों के देने हारे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और जल दोनों (नः) हमें (शम्) शान्ति-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दायक [हों] । (शम्) शान्तिदायक (इन्द्रासोमा) बिजुली और चन्द्रमा (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (शम्) रोगनाशक और (योः) भयनिवारक हों, (इन्द्रापूषणा) बिजुली और पवन (वाजसातौ) पराक्रम के लाभ वा सङ्ग्राम में (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हों ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर की सृष्टि में बिजुली आदि पदार्थों से सदा उपकार लेते रहें ॥१॥

यह सूक्त, मन्त्र १—१० [मन्त्र ८ कुछ भेद से] ऋग्वेद में है—७ । ३५ । १--१०, और महर्षि दयानन्दकृत भाष्य में भी व्याख्यात हैं, यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—३६ । ११ ॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

भाषार्थः—(नः) हमारा (भगः) ऐश्वर्य (शम्) शान्तिदायक, (उ) और (नः) हमारी (शंसः) स्तुति (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो (नः) हमारी [पुरंधिः] नगरों की धारण करने हारी बुद्धि (शम्) शान्तिदायक हो, (उ) और (रायः) सब प्रकार के धन (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) हों। (नः) हमारा (सत्यस्य) सच्चे (सुयमस्य) सुन्दर नियम का (शंसः) कथन (शम्) शान्तिदायक हो, (पुरुजातः) बहुत प्रसिद्ध (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने हारा [न्यायकारी परमेश्वर] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करें कि उनका ऐश्वर्य, उनका कथन, उनका शासन आदि सब कार्य न्याययुक्त हो, जिससे वह जगदीश्वर सदा आनन्द देवे ॥२॥

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥

भाषार्थः—(धाता) पोषण करने वाला [पदार्थ] (न) हमें (शम्) शान्तिकारक हो, (उ) और (धर्ता) धारण करने वाला [पदार्थ] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (उरूची) बहुत फैली हुई प्रकृति [जगत् सामग्री] (नः) हमें (स्वधाभिः) अपनी धारण शक्तियों से (शम्) शान्तिकारक (भवतु) हो। (बृहती) दोनों बड़े (रोदसी) सूर्य और भूमि, (शम्) शान्तिकारक हों (अद्रिः) मेघ (नः) हमें (शम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिकारक हो, (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) सुन्दर बुलावे (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक (सन्तु) होवें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वे धारण पोषण करने वाले पदार्थों के तत्त्व, प्रकृति के स्वभाव, सूर्य, पृथिवी, मेघ आदि के प्रभावों के ज्ञान से उपकारी होकर विद्वानों में प्रतिष्ठा पाकर सुखी होवें ॥३॥

शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु॒ शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम् ।
शं नः॑ सु॒कृतां॑ सुकृ॒तानि॑ सन्तु॒ शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वातः॑ ॥४॥

भाषार्थः—(ज्योतिरनीकः) ज्योति को सेना समान रखने वाला (अग्निः) अग्नि (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक (अस्तु) हो, (मित्रावरुणौ) दोनों दिन और राति (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक हों, (अश्विना) दोनों सूर्य और चन्द्रमा (शम्) शान्तिकारक हों। (सुकृताम्) सुकर्मियों के (सुकृतानि) पुण्य कर्म (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक (सन्तु) हों, (इषिरः) शीघ्रगामी (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिकारक (अभि) सब ओर से (वातु) चले ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि, दिन राति, सूर्य, चन्द्रमा और वायु आदि की गति से विद्वानों के समान उपकार लेते हैं वे सुखी रहते हैं ॥४॥

शं नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पू॒र्वहू॑तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु ।
शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शं नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु जि॒ष्णुः ॥५॥

भाषार्थः—(पूर्वहूतौ) पहिले बुलावे [अर्थात् कार्य के आरम्भ में] (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हों, (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक [मध्यवर्ती अवकाश] (दृशये) देखने के लिये (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो। (ओषधीः) ओषधियां [अन्न सोमलता आदि] और (वनिनः) वन के पदार्थ (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) हों (रजसः) लोक का (पतिः) स्वामी (जिष्णुः) विजयी मनुष्य (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो ॥५॥

भावार्थः—कार्य के आरम्भ में मनुष्य विचार लें कि सूर्य और भूमि के कारण से ग्रीष्म, वर्षा, शीत आदि ऋतुयें अनुकूल हों, आकाश निर्मल हो, अन्न आदि पदार्थ पुष्कल हों, जिससे मनोरथ सिद्धि में विजय प्राप्त हो ॥५॥

शं न॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमा॑दि॒त्येभि॒र्वरु॑णः सु॒शंसः॑ ।
शं नो॑ रु॒द्रो रु॒द्रेभि॒र्जला॑षः॒ शं न॒स्त्वष्टा॒ ग्नाभि॑रि॒ह शृ॑णोतु ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देवः) प्रकाशमान (इन्द्रः) सूर्य (वसुभिः) अनेक धनों वा किरणों से (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (सुशंसः) उत्तम गुण वाला (वरुणः) जल (आदित्येभिः) सूर्य की किरणों के साथ (शम्) शान्तिदायक हो। (जलाषः) जीवों की अभिलाषा पूरी करने हारा (रुद्रः) ज्ञानदाता परमेश्वर (रुद्रेभिः) ज्ञानदाता मुनियों द्वारा (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हो, (शम्) शान्तिदायक (त्वष्टा) विश्वकर्मा जगदीश्वर (ग्नाभिः) [हमारी] वाणियों द्वारा (इह) यहां पर (नः) हमारी [प्रार्थना] (शृणोतु) सुने ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य वा प्रकाश और जलादि की विद्या में निपुण होके परमात्मा के ज्ञान को प्राप्त होते हैं, वे सदा सुख पाते हैं ॥६॥

शं नः सोमो॑ भवतु ब्रह्म॒ शं नः॒ शं नो॒ ग्रावा॑णः॒ शमु॑ सन्तु य॒ज्ञाः ।
शं नः॒ स्वरू॑णां मि॒तयो॑ भवन्तु॒ शं नः॑ प्र॒स्व॒ः१॒ शम्व॑स्तु॒ वेदिः॑ ॥७॥

भाषार्थः—(सोमः) परम ऐश्वर्य वाला परमात्मा (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवतु) हो, (ब्रह्म) वेद (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हो, (ग्रावाणः) विज्ञानी लोग (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हों, (उ) और (यज्ञाः) यज्ञ [अग्निहोत्र से शिल्प क्रिया तक] (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) हों। (स्वरूणाम्) यूपों [जयस्तम्भों] के (मितयः) फैलाव (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) हों, (प्रस्वः) ओषधें [अन्न सोम लता आदि] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हों, (उ) और (वेदिः) वेदी [यज्ञकुण्ड, चौतरा आदि] (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य परम पिता परमात्मा और परम पवित्र वेदों की शरण लेकर विद्वानों के मेल से यज्ञ और शिल्प विद्या का प्रचार करके संसार को सुख पहुंचावें ॥७॥

शं नः॒ सूर्य॑ उरुच॒क्षा उदे॑तु॒ शं नो॑ भवन्तु प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः ।
शं नः॒ पर्व॑ता ध्रु॒वयो॑ भवन्तु॒ शं नः॒ सिन्ध॑वः॒ शमु॑ स॒न्त्वापः॑ ॥८॥

भाषार्थः—(उरुचक्षाः) दूर तक दिखाने वाला (सूर्यः) सूर्य (नः) हमें (शम्) सुखदायक (उत् एतु) उदय हो, (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) होवें (ध्रुवयः) दृढ़ (पर्वताः) पहाड़ (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (सिन्धवः) समुद्र वा नदियां (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (उ) और (आपः) जल [वा प्राण] (शम्) सुखदायक (सन्तु) हों ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या बल से सूर्य के प्रकाश के समान सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशाओं को खोजते, पहाड़ों पर जाते, और नदियों को पार करते और कूप, वष्टि आदि के जलों से खेती शिल्प आदि में काम लेते हैं, वे संसार में कीर्तिमान् होते हैं ॥८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।

शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

भाषार्थः – (अदितिः) अखण्ड वेदवाणी (व्रतेभिः) नियमों के साथ (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवतु) हो, (मरुतः) शूर वीर (स्वर्काः) बड़े पण्डित लोग (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों। (विष्णुः) व्यापक यज्ञ (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (उ) और (पूषा) पोषण करने वाली पृथिवी (नः) हमें (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (भवित्रम्) रहने का घर (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (उ) और (वायुः) वायु (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य वेदवाणी द्वारा उत्तम नियमों को ग्रहण करके विद्वानों के सत्संग से सब पदार्थों से उपकार लेकर पृथिवी पर सुख बढ़ाते रहें ॥९॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।

शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥

भाषार्थः—(देवः) प्रकाशमान (सविता) लोकों का चलाने वाला सूर्य (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (विभातीः) जगमगाती हुई (उषसः) प्रभात वेलायें (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों। (पर्जन्यः) सींचने वाला मेघ (नः) हमें और (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (शम्) सुखदायक (भवतु) हो, (शम्भुः) मङ्गल दाता (क्षेत्रस्य) खेत का (पतिः) स्वामी (नः) हमें (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य के ताप की अनुकूलता का और मेघ से वृष्टि आदि का विचार करके खेती आदि व्यवहार करें और अन्न आदि की वृद्धि से सुखी होवें ॥१०॥

सूक्तम् ॥११॥ [शान्तिसूक्तम्] ॥

१—६ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ १, २, ५, ६ त्रिष्टुप्, ३ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

इष्टप्राप्त्युपदेशः—इष्ट की प्राप्ति का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं नः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥

भाषार्थः—(सत्यस्य) सत्य के (पतयः) पालन करने वाले पुरुष (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (अर्वन्तः) घोड़े (नः) हमें (शम्) सुखदायक (उ) और (गावः) गौयें और बैल (शम्) सुखदायक (सन्तु) हों। (ऋभवः) बुद्धिमान् (सुकृतः) बड़े काम करने वाले (सुहस्ताः) हस्त क्रिया में चतुर लोग (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (पितरः) पितर [पिता आदि रक्षक पुरुष] (नः) हमें (हवेषु) बुलावों पर [यज्ञों वा संग्रामों में] (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को सत्यव्रती पुरुषों का अनुकरण करके ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि घोड़े शीघ्रगामी और गौवें दुधैल, बैल रथादि चलाने वाले, बुद्धिमान् लोग हस्त क्रिया में चतुर और कर्तव्यपरायण हों ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—७। ३५। १२॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु । शमभि-षाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥२॥

भाषार्थः—(विश्वदेवाः) सब विजय चाहने वाले, (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (सरस्वती) विज्ञानवती वेद विद्या (धीभिः सह) अनेक क्रियाओं के साथ (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो। (अभिषाचः) सब ओर से मिलनसार लोग (शम्) सुखदायक हों, (उ) और (रातिषाचः) दानों की वर्षा करने हारे (शम्) सुखदायक हों, (दिव्याः) आकाश सम्बन्धी पदार्थ [वायु, मेघ, विमान आदि] और (पार्थिवाः) पृथिवी सम्बन्धी पदार्थ [राज्य, सुवर्ण, अग्नि, रथ आदि] (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (अप्याः) जल सम्बन्धी पदार्थ [मोती, मूंगा, नौका आदि] (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य विजयी आप्त विद्वानों को प्राप्त होकर सब विद्याओं की वृद्धि करते हैं, वे ही सब संसार पर शासन करते हैं ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—७। ३५। ११॥

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः१ शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अजः) अजन्मा, (एकपात्) एक डग वाला [एक रस व्यापक], (देवः) प्रकाशमय परमात्मा (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (अहिः) न मारने वाला, (बुध्न्यः) मूल तत्त्वों में रहने वाला [आदि कारण जगदीश्वर] (शम्) शान्तिदायक हो, (समुद्रः) यथावत् सींचने वाला ईश्वर (शम्) शान्तिदायक हो। (अपाम्) प्रजाओं का (नपात्) न गिराने वाला, (पेरुः) पार लगाने वाला (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (देवगोपा) प्रकाशमय परमात्मा से रक्षा की गयी (पृश्निः) पूंछने योग्य प्रकृति [जगत् सामग्री] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवतु) हो ॥३॥

भावार्थः—जगत् पिता परमात्मा की महिमा को विचारता हुआ मनुष्य प्रकृति के संयोग वियोग को खोज कर अपनी उन्नति करे ॥३॥

मन्त्र ३—५ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—७। ३५। १३—१५॥

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥४॥

भाषार्थः—(आदित्याः) अखण्ड ब्रह्मचारी, (रुद्राः) ज्ञानदाता और (वसवः) श्रेष्ठ विद्वान् लोग (इदम्) इस (क्रियमाणम्) सिद्ध होते हुए (नवीयः) अधिक नवीन (ब्रह्म) धन वा अन्न को (जुषन्ताम्) सेवें। (दिव्याः) दिव्य [कामना योग्य] गुण वाले, (पार्थिवासः) पृथिवी के स्वामी (उत) और (गोजाताः) वाणी में प्रसिद्ध [सत्यवक्ता] पुरुष, (ये) जो (यज्ञियासः) पूजा योग्य हैं, (नः) हमारी [प्रार्थना] (शृण्वन्तु) सुनें ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य धार्मिक विद्वानों को अच्छे प्रकार प्रसन्न करके मनोरथ सिद्ध करें ॥४॥

ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

भाषार्थः—(ये) जो लोग (देवानाम्) विद्वानों के बीच (ऋत्विजः) ऋतु ऋतु में यज्ञ [श्रेष्ठव्यवहार] करने हारे, (यज्ञियासः) पूजा योग्य, (मनोः) ज्ञान के (यजत्राः) देने हारे, (अमृताः) अमर [कीर्ति वाले] और (ऋतज्ञाः) सत्य धर्म के जानने हारे हैं। (ते) वे (नः) हमें (अद्य) आज (उरुगायम्) चौड़ा मार्ग [वा बहुत ज्ञान] (रासन्ताम्) देवें, (यूयम्) तुम [विद्वानों] (स्वस्तिभिः) अनेक सुखों से (सदा) सदा (नः) हमारी (पात) रक्षा करो ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो लोग विद्वानों में महाविद्वान्, जीवनमुक्त, परोपकारी हों, उनकी आज्ञा पालन करके हम सदा सुखी रहें ॥५॥

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥६॥

भाषार्थः—(मित्रावरुणा) हे स्नेही और श्रेष्ठ माता पिता ! दोनों और (अग्ने) हे विद्वान् आचार्य ! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (तत्) यही (शम्) शान्तिदायक [रोगनाशक], (तत्) यही (योः) भयनिवारक (अस्तु) होवे और (इदम्) यही (शस्तम्) बड़ाई योग्य (अस्तु) होवे [कि] (गाधम्) गम्भीरता, (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठा [गौरव] (उत) और (नमः) सत्कार को (दिवे) कामना योग्य (बृहते) विशाल (सदनाय) स्थान के लिये (अशीमहि) हम पावें ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य माता पिता और आचार्य आदि विद्वानों की सेवा से उत्तम गुण प्राप्त करके संसार में गम्भीर, प्रतिष्ठित और आदर योग्य होकर उच्च पद पावें ॥६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—५ । ४७ । ७ ॥

सूक्तम् ॥१२॥

मन्त्रः—१॥ उषा देवता ॥ भुरिगार्षी पङ्क्तिः छन्दः ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१॥

भाषार्थः—(उषाः) प्रभात वेला (स्वसुः) [अपनी] बहिन [रात्रि] के (तमः) अन्धकार को (अप=अपवर्तयति) हटा देती है, और (सुजातता) [अपनी] भलमनसाहत से (वर्तनिम्) [उसके लिए] मार्ग (सम्) मिल कर (वर्तयति) बता देती है । (अया) इस [नीति] से (शतहिमाः) सौ वर्ष जीवते हुए और (सुवीराः) सुन्दर वीरों को रखते हुए हम (देवहितम्) विद्वानों के हितकारी (वाजम्) विज्ञान को (सनेम) बांटें और (मदेम) आनन्द करें ॥१॥

भावार्थः—पृथिवी की गोलाई के कारण आधे भूगोल में एक साथ प्रकाश करने से उषा रात्रि को हटाकर जितनी आगे बढ़ती है, उतना ही स्थान रात्रि को पीछे से देती चलती है और दोनों प्रीति पूर्वक मिलकर जगत् का उपकार करती हैं, इसी प्रकार सब मनुष्य ज्ञान के प्रचार से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्पर उपकार करके बड़े बड़े धैर्यवान् बलवानों सहित पूर्ण आयु भोगें ॥१॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध—ऋग्वेद में है १० । १७२ । ४ और उत्तरार्द्ध ऋग्० ६ । १७ । १५ और सामवेद पू० ५ । ७ । ७ ॥

सूक्तम् ॥१३॥ [अप्रतिरथसूक्तम्-युद्ध यात्रा का राग] ॥

१—११ इन्द्रो देवता ॥ १, २, ७, ८, १० त्रिष्टुप्; ३—६ भुरिक् त्रिष्टुप्, ६ निचृत् त्रिष्टुप्, ११ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

सेनापतिकृत्योपदेशः—सेनापति के कर्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्व१र्यत् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष सेनापति] के (इमौ) ये दोनों (बाहू) भुजायें (स्थविरौ) पुष्ट, (वृषाणौ) वीर्ययुक्त, (चित्रा) अद्भुत (वृषभौ) श्रेष्ठ और (पारयिष्णू) पार लगाने वाले होवें। (तौ) उन दोनों को (योगे) अवसर (आगते) आने पर (प्रथमः) मुखिया तू (योक्षे) काम में लाता है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (असुराणाम्) असुरों [प्राण लेने वाले शत्रुओं] का (यत्) जो (स्वः) सुख है, [वह] (जितम्) जीता जाता है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को सेनापति ऐसा बनाना चाहिये, जो विद्यावान्, धनी, महाप्रतापी, शरीर से पुष्ट, शत्रुओं का दमन करने वाला और प्रजापालक हो ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से सामवेद में है—उ० ९ । ३ । ७ ॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥२॥

भाषार्थः—(चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (आशुः) फुरतीले, (शिशानः) तीक्ष्ण, (वृषभः न) बैल के समान (भीमः) भयङ्कर, (घनाघनः) अत्यन्त चोट मारने वाले, (क्षोभणः) हलचल मचाने वाले, (सङ्क्रन्दनः) ललकारने वाले, (अनिमिषः) पलक न मूंदने वाले, (एकवीरः) एकवीर [अद्वितीय पराक्रमी], (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] ने (शतम्) सौ (सेनाः) सेनाओं को (साकम्) एक साथ (अजयत्) जीता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—हे मनुष्यो ! यह पहिले से नियम चला आता है कि युद्धकुशल, पराक्रमी अनालसी सेनापति शत्रुओं को नाश करता है, वैसा ही तुम भी करो ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । १०३ । १, यजुर्वेद १७ । ३३ और सामवेद उ० ९ । ३ । १॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥३॥

भावार्थः—(नरः) हे नरो ! [नेता लोगो] (सङ्क्रन्दनेन) ललकारने वाले, (अनिमिषेण) पलक न मूंदने वाले, (जिष्णुना) विजयी, (अयोध्येन) अजेय, (दुश्च्यवनेन) न हटने वाले, (धृष्णुना) निडर [बड़े उत्साही], (इषुहस्तेन) तीन [अस्त्र शस्त्र] हाथ में रखने वाले, (वृष्णा) वीर्यवान्, (इन्द्रेण) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] के साथ (युधः) लड़ाकाओं को (तत्) इस प्रकार (जयत) तुम जीतो और (तत्) इस प्रकार (सहध्वम्) हराओ ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र २ में जो सेनापति के लक्षण कहे हैं, वैसे युद्धकुशल, सदा सावधान महाप्रतापी पुरुष को सेनानी बनाकर वीर पुरुष शत्रुओं को मारें ॥३॥

मन्त्र ३, ४, कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १०३ । २, ३ तथा यजुर्वेद १७ । ३४, ३५ और सामवेद उ० ९ । ३ । १ ॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यु१ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥४॥

भावार्थः—(सः सः) वही (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (इषुहस्तैः) तीर [अस्त्र शस्त्र] हाथों में रखने वालों, और (निषङ्गिभिः) खड्ग वालों के साथ (वशी) वश में करने वाला, (सः) वही (गणेन) अपने गण [अधिकारी लोगों] सहित (युधः) [अपने] योद्धाओं को (संस्रष्टा) एकत्र करने वाला, (संसृष्टजित्) एकत्र हुए [शत्रुओं] को जीतने वाला, (सोमपाः) ऐश्वर्य की रक्षा करने वाला, (बाहुशर्धी) भुजाओं में बल रखने वाला, (उग्रधन्वा) प्रचंड धनुष वाला, (प्रतिहिताभिः) सन्मुख ठहराई हुई [सेनाओं] से (अस्ता) [वैरियों का] गिराने वाला है ॥४॥

भावार्थः—जो युद्धकुशल मनुष्य अपनी वीर सेनाओं को व्यूह रचना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से खड़ा करके शत्रुओं को मारने में समर्थ हो, वही सेनाध्यक्ष बनाया जावे ॥४॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ॥५॥

भाषार्थः—(बलविज्ञायः) बल का जानने हारा, (स्थविरः) पुष्टाङ्ग [वा वृद्धि अर्थात् अनुभवी], (प्रवीरः) बड़ा वीर, (सहस्वान्) बड़ा बली, (वाजी) बड़ा ज्ञानी [वा अन्न वाला], (सहमानः) हराने वाला, (उग्रः) प्रचण्ड, (अभिवीरः) सब ओर वीरों को रखने वाला, (अभिसत्वा) सब ओर युद्धकुशल विद्वानों के रखने वाला, (सहोजित्) बल से जीतने वाला, (गोविदन्) पृथिवी के देशों [वा वाणियों] को जानने वाला होकर, (इन्द्र) हे इन्द्र! [महा प्रतापी सेनापति] (जैत्रम्) विजयी (रथम्) रथ पर (आ तिष्ठ) बैठ ॥५॥

भावार्थः—अपने और शत्रु के बल को जानने वाला सेनाध्यक्ष अपने युद्धकुशल वीरों और युद्ध सामग्री के साथ चढ़ाई करे ॥५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १०३ । ५, यजुर्वेद १७ । ३५ और सामवेद—उ० ९ । ३ । २ ॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥६॥

भाषार्थः—(सखायः) हे मित्रो ! (इमम्) इस (वीरम् अनु) वीर [सेनापति] के साथ (हर्षध्वम्) हर्ष करो, (ग्रामजितम्) शत्रुओं के समूह को जीतने वाले, (गोजितम्) उनकी भूमि को जीतने वाले, (वज्रबाहुम्) भुजाओं में शस्त्र रखने वाले, (जयन्तम्) विजयी, (ओजसा) [अपने शरीर, बुद्धि और सेना के] बल से (अज्म) संग्राम को (प्रमृणन्तम्) मिटाने वाले (उग्रम्) तेजस्वी (इन्द्रम् अनु) इन्द्र [महाप्रतापी सेनाध्यक्ष] के साथ (सम्) अच्छे प्रकार (रभध्वम्) उद्योग करो ॥६॥

भावार्थः—युद्धकुशल सैनिक लोग चतुर सेनापति के अनुगामी होकर शत्रुओं का राज्य आदि लेकर प्रजापालन करें ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है —१० । १०३ । ६, यजुर्वेद १७ । ३८ और सामवेद, उ० ९ । ३ । २ । और ऊपर आचुका है–अथ० ६ । ९७ । ३ ॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्रयुत्सु ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**गोत्राणि**) शत्रुकुलों को (**सहसा**) बल से (**अभि**) सब ओर से (**गाहमानः**) गाहता हुआ [मथता हुआ] (**अदायः**) अखण्ड, (**उग्रः**) प्रचण्ड, (**शतमन्युः**) सैकड़ों प्रकार क्रोध वाला, (**दुश्च्यवनः**) न हटने वाला, (**पृतनाषाट्**) सेनाओं का हराने वाला, (**अयोध्यः**) अजेय (**इन्द्रः**) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (**अस्माकम्**) हमारी (**सेनाः**) सेनाओं को (**युत्सु**) युद्धों में (**प्र**) प्रयत्न से (**अवतु**) बचावे ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपनी अचूक बुद्धि और श्रेष्ठ गुणों से शत्रुओं को हराकर प्रजा की रक्षा कर सके, लोग उसी को सेनापति बनावें ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १०३ । ७, यजु० १७ । ३९ । और साम०, उ० ९ । ३ । ३ ॥

बृह॑स्पते॒ परि॑ दीया॒ रथे॑न रक्षो॒हामित्राँ॑ अप॒बाध॑मानः ।

प्र॒भ॒ञ्जञ्छत्रू॑न् प्रमृ॒णन्न॒मित्रा॑न॒स्माक॑मेध्यवि॒ता त॒नूना॑म् ॥८॥

भाषार्थः—(**बृहस्पते**) हे बृहस्पति ! [बड़े बड़े पुरुषों के रक्षक] (**रक्षोहा**) राक्षसों [दुष्टों] का मारने वाला, (**अमित्रान्**) अमित्रों [वैरियों] को (**अपबाधमानः**) हटा देने वाला होकर (**रथेन**) रथ समूह से (**परि**) सब ओर से (**दीय**) नाश कर। (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**प्रभञ्जन्**) कुचलता हुआ और (**अमित्रान्**) अमित्रों को (**प्रमृणन्**) मार डालता हुआ तू (**अस्माकम्**) हमारे (**तनूनाम्**) शरीरों का (**अविता**) रक्षक (**एधि**) हो ॥८॥

भावार्थः—अनुभवी योद्धाओं को उत्साह देने, वैरियों को मारने, और प्रजा के बचाने में योग्य पुरुष ही सेनापति होवे ॥८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १०३ । ४ । यजु० १७ । ३६ और साम०—उ० ९ । ३ । २ ॥

इन्द्र॑ एषां ने॒ता बृह॒स्पति॒र्दक्षि॑णा य॒ज्ञः पु॒र ए॑तु॒ सोमः॑ ।

दे॒व॒से॒नाना॑मभिभञ्ज॒ती॒नां जय॑न्तीनां म॒रुतो॑ यन्तु॒ मध्ये॑ ॥९॥

भाषार्थः—(**इन्द्रः**) इन्द्र [महाप्रतापी मुख्य सेनापति] (**एषाम्**) इन [वीरों] का (**नेता**) नेता [होवे], (**बृहस्पतिः**) बृहस्पति [बड़े अधिकारों का स्वामी सेनानायक] (**दक्षिणा**) दाहिनी ओर और (**यज्ञः**) पूजनीय, (**सोमः**) सोम [प्रेरक, उत्साहक सेनाधिकारी] (**पुरः**) आगे (**एतु**) चले। (**मरुतः**) मरुद्गण [शूरवीर पुरुष] (**अभिभंजतीनाम्**) कुचल डालती हुई, (**जयन्तीनाम्**) विजयिनी (**देवसेनानाम्**) विजय चाहने वालों की सेनाओं के (**मध्ये**) बीच में (**यन्तु**) चलें ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—व्यूह रचना में अपनी अपनी सेना लेकर मुख्य सेनापति की दाहिनी ओर को बृहस्पति नाम सेनाधिकारी हो, सोम नाम सेनाध्यक्ष सब से आगे और अन्य मरुद्गण शूरवीर योद्धा बीच में रहें। इसी प्रकार चक्रव्यूह, पद्मव्यूह आदि अनेक व्यूह रचनाओं से शत्रुओं को जीतें ॥९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १०३। ८, यजु० १७। ४० और साम० उ०—९। ३। २॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥१०॥

भाषार्थः—(वृष्णः) वीर्यवान् (इन्द्रस्य) इन्द्र [महाप्रतापी मुख्य सेनापति] का, (वरुणस्य) वरुण [श्रेष्ठ गुणी मन्त्री] (राज्ञः) राजा [शासक] का, (आदित्यानाम्) अखण्डव्रती (मरुताम्) मरुद्गणों [शत्रुनाशक वीरों] का (शर्धः) बल (उग्रम्) उग्र [प्रचण्ड] होवे। (महामनसाम्) बड़े मन वाले, (भुवनच्यवानाम्) संसार को हिला देने वाले, (जयताम्) जीतते हुए (देवानाम्) विजय चाहने वाले वीरों का (घोषः) जय जयकार (उत् अस्थात्) ऊंचा उठा है ॥१०॥

भावार्थः—सेनापति, सेनाध्यक्ष और सब शूर सेनादल, अस्त्र शस्त्र मारू बाजे आदि के साथ जय जय ध्वनि करते हुए शत्रुओं को जीतें ॥१०॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। १०३। ९, यजु० १७। ४१ और साम०, उ० ९। ३। ३॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥११॥

भाषार्थः—(ध्वजेषु) ध्वजाओं के (समृतेषु) मिल जाने पर (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (अस्माकम्) हमारा है, (अस्माकम्) हमारे (याः) जो (इषवः) बाण हैं, (ताः) वे (जयन्तु) जीतें। (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर (उत्तरे) अधिक ऊंचे (भवन्तु) होवें, (देवासः) हे देवो! [विजय चाहने वाले शूरो] (हवेषु) ललकार के स्थानों [सङ्ग्रामों] में (अस्मान्) हमें (अवत) बचाओ ॥११॥

भावार्थः—जो युद्ध होने लगे और दोनों ओर की ध्वजायें परस्पर मिल जावें, सब वीर पुरुष मुख्य सेनापति की जय मनाते हुए, अस्त्र शस्त्र चलाते हुए आगे बढ़ और शत्रुओं को मारकर प्रजा की रक्षा करें ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १०३ । ११, यजु० १७ । ४३ और साम०, उ० ९ । ३ । ४ ॥

सूक्तम् ॥१४॥

मन्त्रः १ ॥ इन्द्रो देवता ॥ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ॥

विजयप्राप्त्युपदेशः—विजय प्राप्ति का उपदेश ॥

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥१॥

भाषार्थः—[हे इन्द्र ! महाप्रतापी राजन्] (इदम्) यह (उच्छ्रेयः) अत्युत्तम (अवसानम्) विश्राम (आ अगाम्) मैं ने पाया है, (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (मे) मेरे लिये (शिवे) मङ्गलकारी (अभूताम्) हुई हैं । (मे) मेरी (प्रदिशः) दिशायें (असपत्नाः) विना शत्रु (भवन्तु) होवें, (त्वा) तुझ से (वै) निश्चय करके (न द्विष्मः) हम विरोध नहीं करते, (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः—जिस राज्य में प्रजा को सुख मिले, सूर्य और पृथिवी मङ्गलकारी हों अर्थात् जहां वृष्टि और अन्न आदि की उपज ठीक होती हो, वहां प्रजागण चोर उचक्के आदि दुष्टों से रहित रहकर राजभक्ति करते रहें ॥१॥

सूक्तम् ॥१५॥

१—६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ पथ्या बृहती; २,५ विराडार्षी जगती; ३ विराडार्षी पङ्क्तिः; ४ विराट् त्रिष्टुप्; ६ त्रिष्टुप् ॥

राजकर्त्तव्योपदेशः—राजा के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (यतः) जिस से (भयामहे) हम डरते हैं, (ततः) उससे (नः) हमें (अभयम्) अभय (कृधि) कर दे । (मघवन्) हे महाधनी ! (त्वम्) तू (तव) अपनी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (नः) हमें (शग्धि) शक्ति दे, (द्विषः) द्वेषियों को और (मृधः) संग्रामों को (वि) विशेष करके (विजहि) विनाश कर दे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा को चाहिये कि प्रजा को जिन शत्रुओं से भय हो, उनको नाश करके प्रजा में शान्ति स्थापित करे ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८।३१ [वा सायण भाष्य ५०]। १३, साम पू० ३।६।२ तथा उ० ५।१५॥

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥२॥

भाषार्थः—(अनुराधम्) अनुकूल सिद्धि करने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] को (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं, (द्विपदा) दो पाये के साथ और (चतुष्पदा) चौपाये के साथ (अनु) निरन्तर (राध्यास्म) हम सिद्धि पावें। (अररुषीः) लालची (सेनाः) सेनायें [चोर आदि] (नः) हम को (मा उपगुः) पहुँचें (इन्द्र) हे इन्द्र! [महाप्रतापी राजन्] (विषूचीः) फैली हुई (द्रुहः) द्रोह रीतों को (विनाशय) मिटा दे ॥२॥

भावार्थः—प्रजागण महाप्रतापी विद्वान् पुरुष को राजा बनाकर अपने मनुष्यों, पशुओं और सम्पत्ति की रक्षा करें ॥२॥

इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः । स रक्षिता चरमतः
स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] (त्राता) रक्षक, (उत) और (वृत्रहा) शत्रुनाशक, (परस्फानः) श्रेष्ठों का बढ़ाने वाला और (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य है। (सः) वह (चरमतः) अन्त में, (सः) वह (मध्यतः) मध्य में, (सः) वह (पश्चात्) पीछे से, (सः) वह (पुरस्तात्) आगे से (नः) हमारा (रक्षिता) रक्षक (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—न्यायशील बलवान् राजा सब प्रकार से सब दिशाओं में प्रजा की रक्षा करे। आध्यात्मिक पक्ष में (इन्द्रः) का अर्थ "परमेश्वर" है ॥३॥

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्व१र्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥४॥

भाषार्थः—(विद्वान्) जानकार तू (नः) हमें (उरुम्) चौड़े (लोकम्) स्थान में (अनुनेषि) निरन्तर ले चलता है, (यत्) जो (स्वः) सुखप्रद, (ज्योतिः) प्रकाश-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान, (अभयम्) निर्भय और (स्वस्ति) मङ्गल दाता [अच्छी सत्ता वाला हैं]। (इन्द्र) हे इन्द्र! [महाप्रतापी राजन्] (स्थविरस्य ते) तुझ दृढ़ स्वभाव वाले के (उग्रा) प्रचण्ड, (शरणा) शरण देने वाले, (बृहन्ता) विशाल (बाहू) दोनों भुजाओं का (उप) आश्रय लेकर (क्षयेम) हम रहें ॥४॥

भावार्थः—नीति कुशल राजा प्रजाओं को उन्नत करके बल और पराक्रम से अपनी शरण में रक्खे ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—६। ४७। ८॥

अभ॑यं नः कर॒त्य॒न्तरि॑क्ष॒मभ॑यं द्या॒वापृ॑थि॒वी उ॒भे इ॒मे ।
अभ॑यं प॒श्चाद॒भ॑यं पु॒रस्ता॑दुत्त॒राद॑ध॒राद॒भ॑यं नो अ॒स्तु ॥५॥

भाषार्थः—(नः) हमें (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक (अभयम्) अभय (करति) करे, (इमे) यह (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (अभयम्) अभय, [करें]। (पश्चात्) पश्चिम में वा पीछे से (अभयम्) अभय हो, (पुरस्तात्) पूर्व में वा आगे से (अभयम्) अभय हो, (उत्तरात्) उत्तर में वा ऊपर से और (अधरात्) दक्षिण वा नीचे से (अभयम्) अभय (नः) हमारे लिये (अस्तु) हो ॥५॥

भावार्थः—जो राजा विमान, अस्त्र शस्त्र द्वारा आकाश से प्रजा की रक्षा करता है और सूर्य द्वारा हुई वृष्टि के प्रवाह का प्रबन्ध करके पृथिवी को उपजाऊ बनाता है, वह प्रजा को सुख पहुंचाकर बली होता है ॥

आध्यात्मिक पक्ष में यह भावार्थ है कि हम सब पुरुषार्थ करके परमात्मा के अनुग्रह से सब कालों और सब स्थानों में निर्भय रहें ॥५॥

अभ॑यं मि॒त्राद॒भ॑यम॒मित्रा॒दभ॑यं ज्ञा॒ताद॒भ॑यं पु॒रो यः ।
अभ॑यं॒ नक्त॒मभ॑यं॒ दिवा॑ नः॒ सर्वा॒ आशा॒ मम॑ मि॒त्रं भ॑वन्तु ॥६॥

भाषार्थः—(मित्रात्) मित्र से (अभयम्) अभय और (अमित्रात्) अमित्र [पीड़ा देने हारे] से (अभयम्) अभय हो (ज्ञातात्) जानकार से (अभयम्) अभय और (यः) जो (पुरः) सामने है [उससे भी] (अभयम्) अभय हो। (नः) हमारे लिये (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) अभय और (दिवा) दिन में (अभयम्) अभय हो, (मम) मेरी (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाएँ (मित्रम्) मित्र (भवन्तु) होवें ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि सर्वदा सब प्रकार चौकस रहकर परमात्मा के विश्वास से और राजा के सुप्रबन्ध से अपनी रक्षा करे ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥१६॥

१, २ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ निचृदनुष्टुप्, २ अतिशक्वरी ॥

अभयस्य रक्षणस्य चोपदेशः—अभय और रक्षा का उपदेश ॥

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१॥

भाषार्थः—(नः) हमारे लिये (मा) मुझ को (पुरस्तात्) सामने [वा पूर्व-दिशा] से (पश्चात्) पीछे [वा पश्चिम] से, (दक्षिणतः) दाहिनी ओर [वा दक्षिण] से और (मा) मुझको (उत्तरात्) बाईं ओर [वा उत्तर] से (सविता) सर्व प्रेरक राजा और (शचीपतिः) वाणियों वा कर्मों का पालने वाला [मन्त्री], तुम दोनों (असपत्नम्) शत्रुरहित और (अभयम्) निर्भय (कृतम्) करो ॥१॥

भावार्थः—जहां पर राजा और मन्त्री अपनी वाणी और कर्म में पक्के होते हैं, उस राज्य में प्रजागण शत्रुओं से सुरक्षित रहते हैं ॥१॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥२॥

भाषार्थः—(आदित्याः) अखण्डव्रती शूर (मा) मुझे (दिवः) आकाश से (रक्षन्तु) बचावें, (अग्नयः) ज्ञानी पुरुष (भूम्याः) भूमि से (रक्षन्तु) बचावें। (इन्द्राग्नी) बिजुली और अग्नि [के समान तेजस्वी और व्यापक राजा और मन्त्री दोनों] (मा) मुझे (पुरस्तात्) सामने से (रक्षताम्) बचावें, (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा [के समान ठीक मार्ग चलने वाले वे दोनों] (अभितः) सब ओर से (शर्म) सुख (यच्छताम्) देवें। (जातवेदाः) बहुत धन वाली (अघ्न्या) अटूट [राजनीति] (तिरश्चीन्=तिरश्चिभ्यः) आड़े चलने वाले [वैरियों] से [मुझे] (रक्षतु) बचावे, (भूतकृतः) उचित कर्म करने वाले पुरुष (मे) मेरे लिये (सर्वतः) सब ओर से (वर्म) कवच (सन्तु) होवें ॥२॥

भावार्थः—जो राजा और राजपुरुष आकाश में वायु यान द्वारा चलने वाले वीरों से और पृथिवी पर अश्ववार आदि से अस्त्र शस्त्र द्वारा शत्रुओं का नाश करते हैं, वही प्रजा की रक्षा कर सकते हैं ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥१७॥ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—१० ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ स्वराडार्षी त्रिष्टुप्, २, ३, ४, ८ आर्षी जगती, ५, ६ भुरिगार्षी जगती, ७ अतिजगती, ९ स्वराट् शक्वरी, १० निचृवति-जगती ॥

रक्षाकरणोपदेशः—रक्षा करने का उपदेश ॥

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—(अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (वसुभिः) श्रेष्ठ गुणों के साथ (मा) मुझे (पुरस्तात्) पूर्व वा सामने से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उसमें [उस परमेश्वर के विश्वास में] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूं, (तस्मिन्) उसमें (श्रये) आश्रय लेता हूं, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूं। (सः) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (सः) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उस को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ़ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूं ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा पालने में आत्मसमर्पण करते हैं, वे प्रत्येक स्थान पर उस परमात्मा का छत्र छाया में ऐसे सुरक्षित रहते हैं, जैसे शूरवीर पुरुष दुर्ग में सुरक्षित होते हैं ॥१॥

इस सूक्त का मिलान करो—अ० ३ । २७ । १—६ तथा १२ । ३ । २४ ॥

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—(वायुः) सर्वव्यापक परमेश्वर (अन्तरिक्षेण) मध्यलोक के साथ [पवन, मेघ आदि के साथ] (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में······[म० १] ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्र्ये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—(सोमः) सब का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (रुद्रैः) दुष्ट नाशक गुणों के साथ (मा) मुझे (दक्षिणायाः) दक्षिण वा दाहिनी (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में······[म० १] ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥३॥

वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्र्ये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥४॥

भाषार्थः—(वरुणः) सब में उत्तम परमेश्वर (आदित्यैः) प्रकाशमान गुणों के साथ (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में······[म० १] ॥४॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥४॥

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्र्ये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥५॥

भाषार्थः—(सूर्यः) सर्वप्रेरक परमात्मा (द्यावापृथिवीभ्याम्) दोनों सूर्य और पृथिवी के साथ (मा) मुझे (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उसमें······[म० १] ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥५॥

आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि। ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥६॥

भाषार्थः—(ओषधीमतीः) ओषधियों [अन्न सोम रस आदि] वाली (आपः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त प्रजायें [उत्पन्न जीव] (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (पान्तु) बचावें, (तासु) उनमें [प्रजाओं के विश्वास में] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूं, (तासु) उन में (श्रये) आश्रय लेता हूं, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) मैं प्राप्त होता हूं। (ताः) वे [प्रजायें] (मा) मुझे (रक्षन्तु) बचावें, (ताः) वे (मा) मुझे (गोपायन्तु) पालें, (ताभ्यः) उन को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ़ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूं ॥६॥

भावार्थः— मन्त्र १ के समान है ॥६॥

विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥७॥

भाषार्थः—(विश्वकर्मा) विश्वकर्मा [सब कर्म करने वाला परमेश्वर] (सप्तऋषिभिः) सात ऋषियों सहित [कान, आंख, नाक, जिह्वा, त्वचा, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि सहित] (मा) मुझे (उदीच्याः) उत्तर वा बायीं (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में⋯⋯ [म० १] ॥७॥

भावार्थः— मन्त्र १ के समान है ॥७॥

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥८॥

भाषार्थः—(मरुत्वान्) शूरोंका अधिष्ठाता (इन्द्रः) इन्द्र [परमऐश्वर्यवान् परमात्मा] (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस में⋯⋯[म० १] ॥८॥

भावार्थः— मन्त्र १ के समान है ॥८॥

प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(प्रजननवान्) सृजन सामर्थ्य वाला (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजाओं का पालक परमेश्वर] (मा) मुझे (प्रतिष्ठायाः=प्रतिष्ठया) प्रतिष्ठा [गौरव] के (सह) साथ (ध्रुवायाः) स्थिर वा नीचे वाली (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उसमें······[म० १] ॥९॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥९॥

बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१०॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी का रक्षक परमात्मा] (विश्वैः) सब (देवैः) उत्तम गुणों के साथ (मा) मुझे (ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उसमें [उस परमेश्वर के विश्वास में] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूँ, (तस्मिन्) उस में (श्रये) आश्रय लेता हूं, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूं। (सः) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (सः) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उसको (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ़ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूं ॥१०॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥१०॥

सूक्तम् ॥१८॥ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—१० ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ साम्नी त्रिष्टुप्, २, ३, ६ आर्च्यनुष्टुप् ४ भुरिगार्च्यनुष्टुप्, ५ स्वराडार्च्यनुष्टुप्, ७, ९, १० प्राजापत्या त्रिष्टुप्, ८ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप् ॥

रक्षाप्रयत्नोपदेशः—रक्षा के प्रयत्न का उपदेश ॥

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु।
ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥१॥

भाषार्थः—(ते) वे [दुष्ट] (वसुवन्तम्) श्रेष्ठ गुणों के स्वामी (अग्निम्) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (प्राच्याः) पूर्व वा सामने वाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करें कि पापी लोग दुष्टाचरण छोड़कर सर्वनियन्ता परमेश्वर की आज्ञा में रह कर सर्वत्र सब को सुख देवें ।१॥

इस सूक्त के मन्त्रों को यथाक्रम गत सूक्त के मन्त्रों से मिलाओ ॥

वायुं ते३ऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥२॥

भाषार्थः—(ते) वे [दुष्ट] (अन्तरिक्षवन्तम्) मध्यलोक के स्वामी (वायुम्) सर्वव्यापक परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥२॥

सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥३॥

भाषार्थः—(ते) वे [दुष्ट] (रुद्रवन्तम्) दुष्टनाशक गुणों के स्वामी (सोमम्) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (दक्षिणायाः) दक्षिण वा दाहिनी (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥३॥

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥४॥

भाषार्थः—(ते) वे [दुष्ट] (आदित्यवन्तम्) प्रकाशमान गुणों के स्वामी (वरुणम्) सब में उत्तम परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥४॥

भावार्थः मन्त्र १ के समान है ॥४॥

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवः प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ॥५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ते) वे [दुष्ट] (द्यावापृथिवीवन्तम्) सूर्य और पृथिवी के स्वामी (सूर्यम्) सर्वप्रेरक परमात्मा की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करे ॥५॥

भावार्थः मन्त्र १ के समान है ॥५॥

अपस्त ओषंधीमतीर्ऋच्छन्तु ।
ये मांघायवं एतस्यां दिशोऽभिदासांत् ॥६॥

भाषार्थः -(ते) वे [दुष्ट] (ओषधीमतीः) ओषधियों [अन्न सोमलता आदि] वाली (अपः) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त प्रजाओं की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥६॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥६॥

सूचना—(अपः) शब्द के लिये गत सूक्त का मन्त्र ६ देखो ॥

विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवंन्तमृच्छन्तु ।
ये मांघायव उदीच्या दिशोऽभिदासांत् ॥७॥

भाषार्थः—(ते) वे [दुष्ट] (सप्तऋषिवन्तम्) सात ऋषियों [हमारे कान, आंख, नाक, जिह्वा, त्वचा, पांच ज्ञानेन्द्रिय मन, बुद्धि] के स्वामी (विश्वकर्माणम्) विश्वकर्मा [सब के बनाने वाले परमेश्वर] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (उदीच्याः) उत्तर वा बायीं (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥७॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥७॥

इन्द्रं ते मरुत्वंन्तमृच्छन्तु । ये मांघायवं एतस्यां दिशोऽभिदासांत् ॥८॥

भाषार्थः—(ते) वे [दुष्ट] (मरुत्वन्तम्) शूरों के स्वामी (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥८॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो ध्रुवायां दिशोऽभिदासात् ॥९॥

भाषार्थः—(ते) वे [दुष्ट] (प्रजननवन्तम्) सृजन सामर्थ्य के स्वामी (प्रजापतिम्) प्रजापति [प्रजाओं के पालक परमेश्वर] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (ध्रुवायाः) स्थिर वा नीचे वाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥९॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥९॥

बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥१०॥

भाषार्थः—(ते) वे [दुष्ट] (विश्वदेववन्तम्) सब उत्तम गुण रखने वाले (बृहस्पतिम्) बृहस्पति [वेदवाणी के रक्षक परमात्मा] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें। (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥१०॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥१०॥

सूक्तम् ॥१९॥ [पर्यायसूक्तम्] ॥

१—११ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १, ९ भुरिगार्षी बृहती, २, ४–७ निचृदार्षी पङ्क्तिः, ३ आर्षी बृहती, ८, ११ आर्षी पङ्क्तिः, १० स्वराडार्षी बृहती ॥

रक्षाप्रयत्नोपदेशः—रक्षा के प्रयत्न का उपदेश ॥

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१॥

भाषार्थः—(मित्रः) मित्र [हितकारी मनुष्य] (पृथिव्या) पृथिवी के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्ग रूप परमेश्वर] की ओर (वः) तुम्हें (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूं। (ताम्) उस [शक्ति] में (आ विशत) तुम घुस जाओ, (ताम्) उस में (प्र विशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हें (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥१॥

भावार्थ.—जो मनुष्य रत्नों को धारण करने वाली पृथिवी का मान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते और परमात्मा में पूर्ण विश्वास रखते हैं, वे ही सुरक्षित रहकर उन्नति करते हैं ॥१॥

वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥२॥

भाषार्थः—(वायुः) वायु [पवन] (अन्तरिक्षेण) आकाश के साथ (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति······ [मन्त्र १] ॥२॥

भावार्थः—जैसे वायु आकाश में होकर प्रत्येक वस्तु में प्रवेश करके आगे बढ़ता जाता है, वैसे ही मनुष्य परमेश्वर में श्रद्धा करके विद्या और बल में आगे बढ़ें ॥२॥

सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥३॥

भाषार्थः—(सूर्यः) सूर्य (दिवा) प्रकाश के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति ·····[मन्त्र १] ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य के समान प्रतापी होकर परमात्मा का स्मरण करता हुआ पुरुषार्थ करे ॥३॥

चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥४॥

भाषार्थः—(चन्द्रमाः) चन्द्रमा (नक्षत्रैः) नक्षत्रों के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति ···[मन्त्र १] ॥४॥

भावार्थः—चन्द्रमा और नक्षत्रों के विषय में सू० ७ और सूक्त ८ मन्त्र १, २ देखो। मनुष्य चन्द्रमा के समान परमात्मा के नियम में चलकर परोपकार करे ॥४॥

सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥५॥

भाषार्थः—(सोमः) सोम रस (ओषधीभिः) ओषधियों [अन्नादि] के साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति······ [म० १] ॥५॥

भावार्थः—जैसे सोमरस उत्तम महौषध दूसरी ओषधियों के साथ में उपकारी होता है, वैसे ही परमेश्वरभक्त विद्वान् पुरुष अन्य मनुष्यों के मेल से उपकार करे ॥५॥

यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥६॥

भाषार्थः—(यज्ञः) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] (दक्षिणाभिः) दक्षिणाओं [योग्य दानों] के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [मन्त्र १] ॥६॥

भावार्थः—जैसे उत्तम उत्तम काम सुपात्रों के सत्कार से सिद्ध होते हैं, वैसे ही मनुष्यों को ईश्वर भक्ति के साथ लोगों का मान करके बड़े बड़े काम करने चाहियें ॥६॥

समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥७॥

भाषार्थः—(समुद्रः) समुद्र [जल समूह] (नदीभिः) नदियों के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति···[मन्त्र १] ॥७॥

भावार्थः—जैसे समुद्र ईश्वर नियम से नदियों के मेल से बड़ा होता है, वैसे ही मनुष्य मिलकर उन्नति करें ॥७॥

ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥८॥

भाषार्थः—(ब्रह्म) वेदज्ञान (ब्रह्मचारिभिः) ब्रह्मचारियों [वीर्यनिग्रह से ईश्वर और वेद को प्राप्त होने वालों] के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति···[मन्त्र १] ॥८॥

भावार्थः जैसे ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्य के उत्तम नियमों के पालन से संसार का उपकार करते हैं, वैसे ही सब मनुष्यों को करना चाहिये ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रो वीर्ये३'णोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥९॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] (वीर्येण) वीरता से (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति··· [मन्त्र १] ॥९॥

भावार्थः- मनुष्यों को परमेश्वर की भक्ति के साथ प्रतापी वीरों के समान वीर कर्म करके उन्नति करनी चाहिये ॥९॥

देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१०॥

भाषार्थः—(देवाः) विद्वान् लोग (अमृतेन) अमरपन [पुरुषार्थ वा मोक्ष सुख] के साथ (उत् अक्रामन्) ऊंचे चढ़े हैं, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति··· [मन्त्र १] ॥१०॥

भावार्थः— विद्वान् लोग पुरुषार्थ करके उच्चपद पाते हैं, वैसे ही सब मनुष्य विद्वान् होकर उन्नति करते रहें ॥१०॥

प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥११॥

भाषार्थः—(प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य] (प्रजाभिः) प्रजाओं के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति की ओर (वः) तुम्हें (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूं। (ताम्) उस [शक्ति] में (आ विशत) तुम घुस जाओ, (ताम्) उस में (प्र विशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हें (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षासाधन] (यच्छतु) देवे ॥११॥

भावार्थः—प्रजापालक पुरुष उत्तम सन्तानों और जनताओं के साथ आगे बढ़ते हैं, वैसे ही सब मनुष्यों को परस्पर सहाय करके सब की उन्नति से अपनी उन्नति करनी चाहिये ॥११॥

सूक्तम् ॥२०॥

१—४ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ आर्षी त्रिष्टुप्, २ निचृज् जगती, ३ आर्ष्यनुष्टुप्, ४ निचृदनुष्टुप् ॥

रक्षाप्रयत्नोपदेशः—रक्षा के प्रयत्न का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥१॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (पौरुषेयम्) पुरुषों में विकार करने वाले (वधम्) हथियार को (अप) छिपा कर (न्यधुः) उन [शत्रुओं] ने जमा रक्खा है, [उस] (मृत्योः) मृत्यु [मृत्यु के कारण] से (इन्द्राग्नी) बिजुली और अग्नि दोनों [के समान व्यापक और तेजस्वी], (धाता) धारण करने वाला, (सविता) आगे चलने वाला, (बृहस्पतिः) बड़ी विद्याओं का रक्षक, (सोमः) ऐश्वर्यवान्, (राजा) राजा [शासक] (वरुणः) श्रेष्ठ, (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा दोनों [के समान नियम पर चलने वाला], (यमः) न्यायकारी (पूषा) पोषण करने वाला [शूर पुरुष] (अस्मान्) हमें (परि) सब ओर से (पातु) बचावे ॥१॥

भावार्थः—यदि शत्रु, चोर, डाकू आदि छल कपट से सुरंग आदि लगा कर प्रजा को दुःख देवें, शूर प्रतापी राजा उन को रोक कर प्रजा की रक्षा करे ॥१॥

यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः ।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥२॥

भाषार्थः—(भुवनस्य) संसार का (यः) जो (पतिः) पति [परमात्मा] है, [उस] (प्रजापतिः) प्रजापति, (मातरिश्वा) आकाश में व्यापक [परमात्मा] ने (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (यानि) जिन [रक्षा साधनों] को (चकार) बनाया है। और (यानि) जो (प्रदिशः) दिशाओं (च) और (दिशः) मध्य दिशाओं को (वसते) ढकते हैं [रक्षित करते हैं], (तानि) वे (वर्माणि) कवच [रक्षा साधन] (मे) मेरे लिये (बहुलानि) बहुत से (सन्तु) होवें ॥२॥

भावार्थः—जगत्पालक परमेश्वर ने मनुष्य के लिये सब दिशाओं में रक्षा के साधन उपस्थित किये हैं मनुष्य प्रयत्नपूर्वक उन्हें प्राप्त करके सुखी होवे ॥२॥

यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः ।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (यत्) जिस [कवच] को (तनूषु) शरीरों पर (ते) उन (द्युराजयः) व्यवहारों में ऐश्वर्यवान्, (देहिनः) शरीरधारी (देवाः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों ने (अनह्यन्त) बांधा है। और (यत्) जिस (वर्म) कवच [रक्षासाधन] को (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] ने (चक्रे) बनाया है, (तत्) वह [कवच] (अस्मान्) हमें (विश्वतः) सब ओर से (पातु) बचावे ॥३॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोगों ने परमेश्वरकृत नियमों को मान कर सब की रक्षा की है, वैसे ही मनुष्यों को विद्वान् होकर परस्पर रक्षा करनी चाहिये ॥३॥

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रतीचिका ॥४॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि ने (वर्म) कवच, (अहः) दिन ने (वर्म) कवच, (सूर्यः) सूर्य ने (वर्म) कवच, (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम पदार्थों ने (वर्म) कवच (मे) मेरे लिये (क्रन्) किया है, (मा) मुझ को (प्रतीचिका) उलटी चलने वाली [विपत्ति] (मा प्र आपत्) कभी न प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य संसार के बीच सब पदार्थों से सर्वदा उपकार लेते हैं, वह सुखी रहते हैं ॥४॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥२१॥

मन्त्रः १ ॥ वाग् देवता ॥ साम्नी बृहती छन्दः ॥

महाशान्त्युपदेशः—महाशान्ति के लिये उपदेश ॥

गायत्र्युं१ष्णिगंनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥१॥

भाषार्थः—(गायत्री) गायत्री [गानेयोग्य] (उष्णिक्) उष्णिक् [बड़े स्नेह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली], (बृहती) बृहती [बढ़ती हुई], (पङ्क्तिः) पङ्क्ति [विस्तारवाली], (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् [तीन कर्म, उपासना ज्ञान से सत्कार की गयी], (अनुष्टुप्) अनुष्टुप् [निरन्तर पूजने योग्य वेद वाणी] (जगत्यै) जगती [चलते हुए जगत् के हित के लिये] है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वरोक्त वेदवाणी द्वारा कर्म, उपासना और ज्ञान में तत्पर होकर संसार का हित करना चाहिये ॥१॥

सूचना—गायत्री २४, उष्णिक् २८, अनुष्टुप् ३२, बृहती, ३६ पङ्क्ति ४०, त्रिष्टुप् ४४ और जगती ४८ अक्षर के छन्द विशेष भी हैं, परन्तु इस पक्ष में अर्थ की सङ्गति विचारणीय है ॥

सूक्तम् ॥२२॥

१—२१ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ साम्न्युष्णिक्, २, ६, १४—१६, २० दैवी पङ्क्तिः, ३, १९ प्राजापत्या गायत्री, ४, ७, ११, १७ दैवी जगती, ५, १२, १३ दैवी त्रिष्टुप्, ८—१० आसुरी जगती, १८ आसुर्यनुष्टुप्, २१ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

महाशान्त्युपदेशः—महाशान्ति के लिये उपदेश ॥

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—(आङ्गिरसानाम्) अङ्गिरा [सर्वज्ञ परमेश्वर] के बनाये [ज्ञानों] के (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पञ्चभूतों] से सम्बन्ध वाले (आद्यैः) आदि में [इस सृष्टि के पहिले] वर्तमान (अनुवाकैः) अनुकूल वेदवाक्यों के साथ (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वरीय ज्ञान वेदों द्वारा पृथिवी आदि पदार्थों को यथावत् जानकर अपनी वाणी को सुफल करें ॥१॥

षष्ठाय स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—(षष्ठाय) छठे [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, पञ्च भूतों की अपेक्षा छठे परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२॥

भावार्थः - पृथिव्यादि पञ्चभूतों के नियन्ता परमेश्वर की उपासना सब मनुष्य करें। अथर्व० ८। ९। ४। भी देखो ॥२॥

सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—(सप्तमाष्टमाभ्याम्) सातवें के लिये और आठवें के लिये [भावार्थ देखो] (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः— यहां सातवां और आठवां पद परमेश्वर के दो गुणों का नाम है। परमेश्वर षड्वर्ग अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य से अलग सातवां है। तथा कान, आंख, नाक, जिह्वा, त्वचा पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन और चित्त से पृथक् होने से उसको आठवां माना है। उसकी उपासना हमें सदा करनी चाहिये ॥३॥

नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥४॥

भाषार्थः—(नीलनखेभ्यः) निश्चित ज्ञान प्राप्त कराने वाले [परमेश्वर के गुणों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥४॥

भावार्थः—स्पष्ट है ॥४॥

हरितेभ्यः स्वाहा ॥५॥

भाषार्थः—(हरितेभ्यः) स्वीकार करने योग्य [परमेश्वर के गुणों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥५॥

क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥६॥

भाषार्थः—(क्षुद्रेभ्यः) सूक्ष्म गुणों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥६॥

यह मन्त्र आगे है—अथर्व० १९ । २३ । २१ ॥

पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥७॥

भाषार्थः—(पर्यायिकेभ्यः) पर्याय [अनुक्रम] वाले गुणों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥७॥

प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥८॥

भाषार्थः—(प्रथमेभ्यः) पहिले [सृष्टि से पहिले वर्तमान] (शङ्खेभ्यः) विचार योग्य गुणों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥८॥

द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥९॥

भाषार्थः—(द्वितीयेभ्यः) दूसरे [सृष्टि के आदि की अपेक्षा अन्त में विद्यमान] (शङ्खेभ्यः) दर्शनीय गुणों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दरवाणी] हो ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥१०॥

भावार्थः—(तृतीयेभ्यः) तीसरे [आदि और अन्त की अपेक्षा मध्य में वर्तमान] (शङ्खेभ्यः) शान्तिदायक गुणों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१०॥

उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥११॥

भावार्थः—(उपोत्तमेभ्यः) श्रेष्ठों के समीपवर्ती [ब्रह्मचारी आदि पुरुषों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥११॥

उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥१२॥

भावार्थः—(उत्तमेभ्यः) अत्यन्त श्रेष्ठ [पुरुषों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१२॥

उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥१३॥

भावार्थः—(उत्तरेभ्यः) अधिकतर ऊंचे [पुरुषों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१३॥

ऋषिभ्यः स्वाहा ॥१४॥

भावार्थः—(ऋषिभ्यः) ऋषियों [वेदव्याख्याता मुनियों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१४॥

शिखिभ्यः स्वाहा ॥१५॥

भावार्थः—(शिखिभ्यः) शिखाधारियों [चोटी वालों, अथवा चोटी वाले पर्वतादि के समान ऊंचे ब्रह्मज्ञानियों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१५॥

गणेभ्यः स्वाहा ॥१६॥

भावार्थः—(गणेभ्यः) समूहों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दरवाणी] हो ॥१६॥

महागणेभ्यः स्वाहा ॥१७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(महागणेभ्यः) बड़े समूहों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१७॥

सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ॥१८॥

भाषार्थः—(सर्वेभ्यः) सब (अङ्गिरोभ्यः) विज्ञानी (विदगणेभ्यः) पण्डित समूहों के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१८॥

पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥१९॥

भाषार्थः—(पृथक्सहस्राभ्याम्) पृथक् पृथक् और सहस्रों वाले दोनों [समूहों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्य पृथक् पृथक् होकर सामाजिक समुदाय बनाकर हितकारी कर्म करें करावें ॥१९॥

ब्रह्मणे स्वाहा ॥२०॥

भाषार्थः—(ब्रह्मणे) वेदज्ञान के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्य वेदविद्या के उपदेश से परस्पर हित करते कराते रहें ॥२०॥

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥२१॥

भाषार्थः—(संभृता) यथावत् भरे हुए (वीर्याणि) वीर कर्म (ब्रह्मज्येष्ठा) ब्रह्म [परमात्मा] को ज्येष्ठ [महाप्रधान रखने वाले] हैं, (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [सर्वप्रधान] (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] ने (अग्रे) पहिले (दिवम्) ज्ञान को (आ) सब ओर (ततान) फैलाया है । (उत) और (ब्रह्मा) वह ब्रह्मा [सबसे बड़ा, सर्वजनक परमात्मा] (भूतानाम्) प्राणियों में (प्रथमः) पहिला (जज्ञे) प्रकट हुआ है, (तेन) इस लिये (ब्रह्मणा) ब्रह्मा [महान् परमात्मा] के साथ (कः) कौन (स्पर्धितुम्) झगड़ने को (अर्हति) समर्थ है ? ॥२१॥

भावार्थः—संसार में सब प्रकार के पराक्रम और बल सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के सामर्थ्य से हैं, उस महावृद्ध, सर्वजनक से तुल्य वा अधिक कोई भी नहीं है । सब मनुष्य उसकी उपासना करके सुख प्राप्त करें ॥२१॥

मन्त्र २०, २१ आगे हैं—अथर्व० १९ । २३ । २९, ३० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥२३॥

१—३० ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ आसुरी बृहती, २—७, २०, २३, २७ दैवी त्रिष्टुप्ः ८, १०—१२, १४, १६ प्राजापत्या गायत्री, ९, १३, १८, २२, २६, २८ दैवी जगती, १७, १९, २१, २४, २५, २९ दैवी पङ्क्तिः, ३० निचृत् त्रिष्टुप् ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्मविद्या का उपदेश ॥

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—(आथर्वणानाम्) अथर्वा [निश्चल ब्रह्म] के बताये ज्ञानों के (चतुर्ऋचेभ्यः) चार [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वरोक्त ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद द्वारा श्रेष्ठ विद्यायें प्राप्त करके इस जन्म और परजन्म का सुख भोगना चाहिये ॥१॥

यही भावार्थ आगे मन्त्र २९ तक समझें और "निश्चल ब्रह्म के बताये ज्ञानों के"—इन पदों की अनुवृत्ति जानें ॥

पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—(पञ्चर्चेभ्यः) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पांच तत्त्वों] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२॥

षड्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—(षड्ऋचेभ्यः) छह [वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, छह ऋतुओं] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥३॥

सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ॥४॥

भाषार्थः—(सप्तर्चेभ्यः) सात [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एकमुख—अथर्व० १० । २ । ६ इन की] स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥४॥

अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अष्टर्चेभ्यः) आठ [यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, आठ योग के अङ्गों] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) [सुन्दर वाणी] हो ॥५॥

नवर्चेभ्यः स्वाहा ॥६॥

भाषार्थः—(नवर्चेभ्यः) नव [दो कान, दो आंख, दो नथने, एक मुख, एक पायु, एक उपस्थ, नवद्वारपुर शरीर] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥६॥

दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥७॥

भाषार्थः—(दशर्चेभ्यः) दश [दान, शील, क्षमा, वीरता, ध्यान, बुद्धि, सेना उपाय, दूत और ज्ञान इन दस बलों] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥७॥

एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥८॥

भाषार्थः –(एकादशर्चेभ्यः) ग्यारह [प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, दस प्राण और ग्यारहवें जीवात्मा] स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥८॥

द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥९॥

भाषार्थः—(द्वादशर्चेभ्यः) बारह [चैत्र आदि बारह महीनों] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥९॥

त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१०॥

भाषार्थः—(त्रयोदशर्चेभ्यः) तेरह [उछालना, गिराना, सकोड़ना, फैलाना, और चलना पांच कर्म तथा छोटाई, हलकायी, प्राप्ति, स्वतन्त्रता, बड़ाई, ईश्वरपन, जितेन्द्रियता और सत्य संकल्प आठ ऐश्वर्य इन तेरह] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१०॥

चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥११॥

भाषार्थः (चतुर्दशर्चेभ्यः) चौदह [कान, आंख, नासिका, जिह्वा, त्वचा-पांच ज्ञानेन्द्रिय, और वाक्, हाथ, पांव, पायु, उपस्थ पांच कर्मेन्द्रिय, तथा मन, बुद्धि,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त, अहंकार] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥११॥

पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१२॥

भावार्थः—(पञ्चदशर्चेभ्यः) पन्द्रह [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र ये सात रूप, तथा मधुर, अम्ल, लवण, कटु कषाय, तिक्त ये छह रस और सुरभि, असुरभि दो प्रकार का गन्ध, इन पन्द्रह] की स्तुति योग्य विद्यावाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१२॥

षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१३॥

भावार्थः—(षोडशर्चेभ्यः) सोलह [प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, प्रकाश, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम—इन सोलह कलाओं] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१३॥

टिप्पणी—प्रश्नोपनिषद् में सोलह कलायें इस प्रकार हैं [स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धा खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम् । मनोऽन्नमन्नाद् वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोका लोकेषु च नाम च ॥ प्रश्न ६ श्लोक ४] उस [पुरुष] ने प्राण, प्राण से श्रद्धा [आस्तिक बुद्धि], आकाश, वायु, प्रकाश, जल, पृथिवी, इन्द्रिय [ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय] मन और अन्न को, अन्न से वीर्य, तप, मन्त्रों [ऋग्वेदादि चार वेदों] कर्म और लोकों, और लोकों में नाम को उत्पन्न किया ॥

सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१४॥

भावार्थः—(सप्तदशर्चेभ्यः) सतरह [चार दिशा, चार विदिशा, एक ऊपर की ओर एक नीचे की दस दिशायें-सत्त्व, रज और तम तीन गुण--ईश्वर, जीव, प्रकृति और संसार] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१४॥

अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१५॥

भावार्थः—(अष्टादशर्चेभ्यः) अठारह [धैर्य, सहन, मन का रोकना, चोरी न करना, शुद्धता, जितेन्द्रियता, बुद्धि, विद्या, सत्य, क्रोध न करना, ये दस धर्म—मनु० ६ । ९२, तथा ब्राह्मण, गौ, अग्नि, सुवर्ण, घृत, सूर्य, जल, राजा ये आठ मङ्गल--शब्दकल्पद्रुमकोश, इन अठारह] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकोनविंशतिः स्वाहा ॥१६॥

भाषार्थः—(एकोनविंशतिः) उन्नीस [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चार वर्ण—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, चार आश्रम—सत्संग, सुनना, विचारना, ध्यान करना, चार कर्म-अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त की रक्षा, रक्षित का बढ़ाना, बढ़े हुए का सन्मार्ग में व्यय करना, चार पुरुषार्थ-मन, बुद्धि और अहङ्कार इन उन्नीस स्तुति योग्य विद्याओं के लिये] (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१६॥

विंशतिः स्वाहा ॥१७॥

भाषार्थः—(विंशतिः) बीस [पांच सूक्ष्म भूत, पांच स्थूल भूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय, और पांच कर्मेन्द्रिय-इन बीस स्तुति योग्य विद्याओं के लिये] (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१७॥

महत्काण्डाय स्वाहा ॥१८॥

भाषार्थः—(महत्काण्डाय) बड़े [धर्मात्माओं] के संरक्षक [वेद] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१८॥

तृचेभ्यः स्वाहा ॥१९॥

भाषार्थः—(तृचेभ्यः) तीन [भूत, भविष्यत्, वर्तमान] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१६॥

एकर्चेभ्यः स्वाहा ॥२०॥

भाषार्थः—(एकर्चेभ्यः) एक [परमात्मा] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२०॥

क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥२१॥

भाषार्थः—(क्षुद्रेभ्यः) सूक्ष्मज्ञान वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२१॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० १६ । २२ । ६ ॥

एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥२२॥

भाषार्थः—(एकानृचेभ्यः) एक [परमात्मा] की अत्यन्त ही स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोहितेभ्यः स्वाहा ॥२३॥

भावार्थः—(रोहितेभ्यः) प्रकट होते हुए धार्मिक गुण युक्त [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२३॥

सूर्याभ्यां स्वाहा ॥२४॥

भावार्थः—(सूर्याभ्याम्) दो प्रेरकों [परमात्मा और जीवात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२४॥

व्रात्याभ्यां स्वाहा ॥२५॥

भावार्थः—(व्रात्याभ्याम्) मनुष्यों के हितकारी दोनों [बल और पराक्रम] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२५॥

प्राजापत्याभ्यां स्वाहा ॥२६॥

भावार्थः—(प्राजापत्याभ्याम्) प्रजापति [परमात्मा] को पूजनीय मानने वाले दोनों [कार्य और कारण] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२६॥

विषासह्यै स्वाहा ॥२७॥

भावार्थः—(विषासह्यै) सदा विजयिनी [वेदविद्या] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२७॥

मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा ॥२८॥

भावार्थः—(मङ्गलिकेभ्यः) मङ्गल वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२८॥

ब्रह्मणे स्वाहा ॥२९॥

भावार्थः—(ब्रह्मणे) वेदज्ञान के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२९॥

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥३०॥

भावार्थः—(संभृता) यथावत् भरे हुए (वीर्याणि) वीर कर्म (ब्रह्मज्येष्ठा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म [परमात्मा] को ज्येष्ठ [महाप्रधान रखने वाले] हैं, (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [महाप्रधान] (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] ने (अग्रे) पहिले (दिवम्) ज्ञान को (आ) सब ओर (ततान) फैलाया है। (उत) और (ब्रह्मा) वह ब्रह्मा [सब से बड़ा सर्वजनक परमात्मा] (भूतानाम्) प्राणियों में (प्रथमः) पहिला (जज्ञे) प्रकट हुआ है, (तेन) इस लिये (ब्रह्मणा) ब्रह्मा [महान् परमात्मा] के साथ (कः) कौन (स्पर्धितुम्) झगड़ने को (अर्हति) समर्थ है। ॥३०॥

भावार्थः- संसार में सब प्रकार के पराक्रम वा बल सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के सामर्थ्य से हैं, उस महावृद्ध सर्वजनक से तुल्य वा अधिक कोई भी नहीं है। सब मनुष्य उसकी उपासना करके सुख प्राप्त करें ॥३०॥

मन्त्र २६, ३० आ चुके हैं—अ० १६। २२। २०, २१॥

सूक्तम् ॥२४॥

१—८॥ ब्रह्मणस्पतिर्देवता॥ १—३ अनुष्टुप्; ४—६ त्रिष्टुप्, ७ गायत्री, ८ निचृत् त्रिष्टुप्॥

राजकर्तव्योपदेशः राजा के कर्तव्य का उपदेश॥

येन॑ दे॒वं स॑वि॒तारं॒ परि॑ दे॒वा अधा॑रयन्।
तेने॒मं ब्र॑ह्मणस्पते॒ परि॑ रा॒ष्ट्राय॑ धत्तन ॥१॥

भाषार्थः—(येन) जिस [नियम] से (देवम्) विजय चाहने वाले (सवितारम्) प्रेरक [पुरुष] को (देवाः) विद्वानों ने (परि) सब ओर से (अधारयन्) धारण किया है [स्वीकार किया है]। (तेन) उस [नियम] से (इमम्) इस [पराक्रमी] को (राष्ट्राय) राज्य के लिये, (ब्रह्मणः पते) हे वेद के रक्षक! [और तुम सब] (परि) सब ओर से (धत्तन) धारण करो ॥१॥

भावार्थः—जैसे प्रजागण सदा से सदाचारी पराक्रमी पुरुष को राजा बनाते आये हैं, वैसे ही विद्वान् प्रजा के प्रतिनिधि पुरुष प्रजा की सम्मति से राजा बनावें ॥१॥

परी॒ममिन्द्र॒मायु॑षे म॒हे क्ष॒त्राय॑ धत्तन।
यथै॑नं ज॒रसे॑ न॒याँ ज्योक् क्ष॒त्रेऽधि॑ जागरत् ॥२॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो!] (इमम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] को (महे) बड़े (आयुषे) जीवन के लिये और (क्षत्राय) राज्य के लिये (परि) सब प्रकार (धत्तन) धारण करो। (यथा) जिससे (एनम्) इस [पुरुष] को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जरसे) स्तुति के लिये (नयाम्) मैं ले चलूं, और वह (ज्योक्) बहुत काल तक (क्षत्रे) राज्य के भीतर (अधि) अधिकार पूर्वक (जागरत्) जागता रहे ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रजापालक, महाप्रतापी पुरुष को प्रजागण राजा स्वीकार करें, वह अपनी योग्यता से कीर्तिमान् होकर प्रजा को सावधानी से सदा पालता रहे ॥२॥

परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥३॥

भाषार्थः—[हे प्रजागणो !] (इमम्) इस (सोमम्) चन्द्रमा [समान शान्तिकारक पुरुष] को (महे) बड़े (आयुषे) जीवन के लिये और (श्रोत्राय) सुनवायी के लिये (परि) सब प्रकार (धत्तन) धारण करो। (यथा) जिससे (एनम्) इस [पुरुष] को (जरसे) स्तुति के लिये (नयाम्) मैं ले चलूं, और वह (ज्योक्) बहुत काल तक (श्रोत्रे) सुनवायी में (अधि) अधिकार पूर्वक (जागरत्) जागता रहे ॥३॥

भावार्थः—प्रजागणों को उचित है कि जिस पुरुष को राजा बनावें उससे सदा प्रीति रक्खें जिससे वह स्तुति प्राप्त करके प्रजा के दुःखों को सदा सुने और दूर करे ॥३॥

परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥४॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (नः) हमारे लिये (इमम्) इस [पराक्रमी] को (परि धत्त) [वस्त्र] पहिराओ और (वर्चसा) तेज के साथ (धत्त) पुष्ट करो और (जरामृत्युम्) बुढ़ापे [अर्थात् निर्बलता] को मृत्यु समान त्याज्य मानने वाला [अथवा स्तुति के साथ मृत्यु वाला] (दीर्घम्) बड़ी (आयुः) आयु (कृणुत) करो। (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े बड़े विद्वानों के रक्षक पुरोहित] ने (एतत्) यह (वासः) वस्त्र (सोमाय) सूर्य समान (राज्ञे) राजा को (उ) ही (परिधातवे) धारण करने के लिये (प्र अयच्छत्) दिया है ॥४॥

भावार्थः—सुनीतिज्ञ पुरुष को मनुष्य वस्त्र आदि पहिना कर राजसिंहासन पर सुशोभित करें और सब विद्वान् लोग प्रतिष्ठा के साथ उसे राज्य करने के लिये उत्साह देवें ॥४॥

यह मन्त्र आ चुका है—अथर्व० २। १३। २॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उं ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥५॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (जराम्) स्तुति को (सु) अच्छे प्रकार (गच्छ) प्राप्त हो, (वासः) वस्त्र को (परि धत्स्व) पहिन, (उ) और (गृष्टीनाम्) ग्रहण करने योग्य गौओं की (अभिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा करने वाला (भव) हो। (च) और (पुरूचीः) बहुत पदार्थों से व्याप्त (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (जीव) तू जीवित रह, (च) और (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि [वृद्धि] को (उपसंव्ययस्व) अपने सब ओर धारण कर ॥५॥

भावार्थः—विद्वान् लोग राजा को अलङ्कृत करते हुए आशीर्वाद दें कि वह गौ आदि उपकारी जीवों की सदा रक्षा करे और धन धान्य बढ़ाकर पूर्ण आयु भोगे ॥५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अथर्व० २।१३।३ ॥

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उं ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥६॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (इदम्) इस (वासः) वस्त्र को (स्वस्तये) आनन्द बढ़ाने के लिये (परि अधिथाः) तू ने धारण किया है, (उ) और (वापीनाम्) बोने की भूमियों [खेती आदि अथवा बावड़ी, कूप आदि] का (अभिशस्तिपाः) खण्डन से बचाने वाला (अभूः) तू हुआ है। (च) और (पुरूचीः) बहुत पदार्थों से व्याप्त (शतम्) सौ (शरदः) शरद ऋतुओं तक (जीव) तू जीवित रह और (चारुः) शोभायमान होकर (जीवन्) जीता हुआ तू (वसूनि) धनों को (वि भजासि) बांटता रह ॥६॥

भावार्थः—राजा शासन पद ग्रहण करके सब की भलाई का प्रयत्न करता हुआ प्रजा को धनी बना कर कीर्तिमान् होवे ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० २।१३।३ ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥७॥

भाषार्थः—(योगेयोगे) अवसर अवसर पर और (वाजेवाजे) सङ्ग्राम सङ्ग्राम के बीच (तवस्तरम्) अधिक बलवान् (इन्द्रम्) इन्द्र [परमैश्वर्यवान् पुरुष] को (ऊतये) रक्षा के लिये (सखायः) मित्र लोग हम (हवामहे) पुकारते हैं ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सब प्रजागण विद्वान् पुरुषार्थी राजा के साथ मित्रता करके शत्रु से अपनी रक्षा का उपाय करें ।।७।।

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । ३० । ७, यजु० ११ । १४ तथा साम० पू० २ । ७ । ६ और उ० । १ । २ । ११ और आगे है—अथर्व । २० । २६ । १ ।।

हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व ।

तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।।८।।

भाषार्थः—[हे पुरुषार्थी !] (हिरण्यवर्णः) कमनीय वा तेजस्वी रूप वाला, (अजरः) फुरतीला [वा अनिर्बल] (सुवीरः) बड़े वीरों वाला, (जरामृत्युः) बुढ़ापे [निर्बलता] को मृत्यु समान त्याज्य मानने वाला [महाबलवान्] तू (प्रजया) प्रजा के साथ (सम्) मिलकर (विशस्व) प्रवेश कर । (तत्) इस बात को (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी पुरुष] (आह) कहता है, (तत् उ) उस को ही (सोमः) सोम [चन्द्रमा समान पोषक], (तत्) उसी को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का स्वामी], (सविता) सब का प्रेरक, (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] (आह) कहता है ।।८।।

भावार्थः—सब प्रतापी विद्वानों को यह सिद्धान्त मानना चाहिये कि पुरुषार्थी शूर पुरुष से मिलकर प्रजा की उन्नति करें ।।८।।

इस मन्त्र का दूसरा आधा आचुका है—अ० । ८ । ५ । ५ और तीसरा पाद आया है—अ० १६ । ६ । २ ।।

सूक्तम् ।।२५।।

मन्त्रः १ ।। शूरो देवता ।। अनुष्टुप् छन्दः ।।

शूरलक्षणोपदेशः—शूरों के लक्षण का उपदेश ।।

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च ।

उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ।।१।।

भाषार्थः—[हे शूर !] (अश्रान्तस्य) अनथके (च) और (प्रथमस्य) पहिले पद वाले पुरुष के (मनसा) मन से (त्वा) तुझ को (युनज्मि) मैं संयुक्त करता हूं । (उत्कूलम्) ऊंचे तट की ओर चलकर (उद्वहः) ऊंचा ले चलने वाला (भव) हो, और [मनुष्यों को] (उदुह्य) ऊंचे ले जाकर (प्रति) प्रतीति से (धावतात्) दौड़ ।।१।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्य तू निरालसी नेता पुरुषों के समान पुरुषार्थ कर, और जैसे चतुर नाविक सावधानी से धार को काटता हुआ जल प्रवाह के ऊपर की ओर यात्रियों को ठिकाने पर उतारता है, वैसे ही पराक्रमी पुरुष सब को कठिनाई से निकाल कर सुख पहुंचावे ॥१॥

सूक्तम् ॥२६॥

१—४ ॥ हिरण्यं देवता ॥ १ आर्षी त्रिष्टुप्, २ निचृदार्षी त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ४ पथ्या पङ्क्तिः ॥

सुवर्णादिधनप्राप्त्युपदेशः—सुवर्ण आदि धन की प्राप्ति का उपदेश ॥

अग्नेः प्रजा॑तं॒ परि॒ यद्धिर॑ण्यम॒मृतं॑ द॒ध्रे अधि॒ मर्त्ये॑षु ।
य ए॑न॒द् वेद॒ स इदे॑नमर्हति ज॒रामृ॑त्युर्भवति॒ यो बि॒भर्ति॑ ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) जो (हिरण्यम्) कमनीय सुवर्ण (अग्नेः परि) अग्नि से [पार्थिव अग्नि यद्वा पराक्रम रूप तेज से] (प्रजातम्) उत्पन्न हुआ है, (अमृतम्) [उस] मृत्यु से बचाने वाले [जीवन के साधन] को (मनुष्येषु) मनुष्यों में (अधि) अधिकार पूर्वक (दध्रे) मैं ने धरा है। (यः) जो पुरुष (एनत्) इस [बात] को (वेद) जानता है, (सः) वह (इत्) ही (एनम्) इस [पदार्थ] के (अर्हति) योग्य होता है, और वह (जरामृत्युः) बुढ़ापे [निर्बलता] को मृत्यु समान [दुःखदायी] मानने वाला महाप्रबल (भवति) होता है, (यः) जो [सुवर्ण को] (बिभर्त्ति) धारण करता है ॥१॥

भावार्थः—पृथिवी के साथ सूर्य की किरणों का संयोग होने से सोना उत्पन्न होता है और उसको ईश्वर नियम से मनुष्यों में पराक्रमी ही पाते हैं। मनुष्य इस सिद्धान्त को निश्चय जान कर विद्या द्वारा योग्य होकर सुवर्ण आदि धन प्राप्त करें ॥१॥

यद्धिर॑ण्यं॒ सूर्ये॑ण सु॒वर्णं॑ प्र॒जाव॑न्तो॒ मन॑वः पूर्वं॑ ईषि॒रे ।
तत् त्वा॑ च॒न्द्रं वर्च॑सा॒ सं सृ॑जत्यायु॑ष्मान् भवति॒ यो बि॒भर्ति॑ ॥२॥

भाषार्थः—(सूर्येण) सूर्य द्वारा (सुवर्णम्) सुन्दर रूप वाले (यत्) जिस (हिरण्यम्) कामना योग्य सोने को (प्रजावन्तः) श्रेष्ठ प्रजाओं वाले (पूर्वे) पहिले (मनवः) विचारशील मनुष्यों ने (ईषिरे) पाया था। (तत्) वह (चन्द्रम्) आनन्द-दायक सोना (वर्चसा) तेज के साथ (त्वा) तुझ से (संसृजति) संयोग करता है, वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आयुष्मान्) उत्तम जीवन वाला (भवति) होता है, (यः) जो पुरुष [सोना] (बिभर्ति) रखता है ॥२॥

भावार्थः—यह जो सोना सूर्य की किरणों द्वारा पृथिवी में उत्पन्न होता है, उसको विद्वानों ने अपने श्रेष्ठ पुत्रादि प्रजाओं के साथ प्रयत्न करके पाया है, वैसे ही सब मनुष्य पुरुषार्थ करके सुवर्ण आदि धन की प्राप्ति से सुखी होवें ॥२॥

आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझ से (आयुषे) जीवन के लिये और (वर्चसे) प्रताप के लिये (च) और (त्वा) तुझ से (बलाय) बल के लिये (च) और (ओजसे) पराक्रम के लिये [वह सोना संयोग करता है—म० २] । (यथा) जिस से कि (हिरण्यतेजसा) सुवर्ण के तेज से (जनान् अनु) मनुष्यों में (विभासासि) तू चमकता रहे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन प्राप्त करके मनुष्यों में प्रतापी और यशस्वी होवें ॥३॥

यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः । इन्द्रो यद्
वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यं भुवत् तत् ते वर्चस्यं भुवत् ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) जिस [सुवर्ण] को (राजा) ऐश्वर्यवान् (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (वेद) जानता है, और [जिस को] (देवः) विद्वान् (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ज्ञानों का रक्षक पुरुष] (वेद) जानता है । (यत्) जिस को (वृत्रहा) शत्रुनाशक (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] (वेद) जानता है, (तत्) वह (ते) तेरे लिये (आयुष्यम्) आयु बढ़ाने वाला (भुवत्) होवे (तत्) वह (ते) तेरे लिये (वर्चस्यम्) तेज बढ़ाने वाला (भुवत्) होवे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वान् पराक्रमियों के समान सुवर्ण के प्रभाव को जानकर उसे यथावत् प्राप्त करे और धर्म के साथ उसका प्रयोग करके यशस्वी और तेजस्वी होवे ॥४॥

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥२७॥

१—१५ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, २, ५–८ अनुष्टुप्, ३, १० आर्ची त्रिष्टुप्, ४ आर्ची पङ्क्तिः, ९ त्रिष्टुप्, ११ निचृत् साम्नी त्रिष्टुप्, १२ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्, १३ साम्नी त्रिष्टुप्, १४ निचृदनुष्टुप्, १५ अतिशक्वरी ॥

आशीर्वचनोपदेशः—आशीर्वाद देने का उपदेश ॥

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ऋषभः) सर्वदर्शक परमेश्वर (गोभिः) गौओं के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे, (वृषा) वीर्यवान् [परमेश्वर] (वाजिभिः) फुरतीले घोड़ों के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे। (वायुः) सर्वत्रगामी [परमेश्वर] (ब्रह्मणा) बढ़ते हुए अन्न के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे, (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् [जगदीश्वर] (इन्द्रियैः) परम ऐश्वर्य के व्यवहारों के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा के श्रेष्ठ गुणों का चिन्तन करके अनेक पुरुषार्थों के साथ रक्षा करे ॥१॥

सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः ।
माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥२॥

भाषार्थः—(सोमः) सोम रस (ओषधीभिः) ओषधियों के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे, (सूर्यः) सबका चलाने वाला सूर्य (नक्षत्रैः) नक्षत्रों के साथ (पातु) बचावे। (वृत्रहा) अन्धकार नाशक (चन्द्रः) आनन्दप्रद चन्द्रमा (माद्भ्यः) महीनों के लिये और (वातः) पवन (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य ओषधि आदि संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर सुखी होवें ॥२॥

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[उत्कृष्ट, निकृष्ट, मध्यम होने से] (**दिवः**) प्रकाशमान पदार्थों को (**तिस्रः**) तीन, (**पृथिवीः**) पृथिवी के देशों को (**तिस्रः**) तीन, (**अन्तरिक्षाणि**) अन्तरिक्ष लोकों को (**त्रीणि**) तीन, और (**समुद्रान्**) आत्माओं को [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिये पुरुषार्थी होने से] (**चतुरः**) चार, (**स्तोमम्**) स्तुति योग्य वेद को (**त्रिवृतम्**) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] में वर्तमान, (**त्रिवृतः**) तीन [कर्म उपासना ज्ञान में वर्तमान रहने वाले (**आपः**) आप्त प्रजा लोग (**आहुः**) बताते हैं, (**त्रिवृता**) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] में वर्तमान (**ताः**) वे [प्रजायें] (**त्वा**) तुझ को (**त्रिवृद्भिः**) तीन [कर्म, उपासना और ज्ञानरूप] वृत्तियों के साथ (**रक्षन्तु**) बचावें ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य संसार के पदार्थों के तत्त्वों को जानकर पुरुषार्थ करते हैं वे सदा सुरक्षित रहते हैं ॥३॥

त्रीन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान् ।

त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (**त्रीन्**) तीन [आत्मा, मन और शरीर सम्बन्धी] (**नाकान्**) सुखों को, (**त्रीन्**) तीन [ऊपर, नीचे और मध्य में वर्तमान] (**समुद्रान्**) अन्तरिक्षों को, (**त्रीन्**) तीन [कर्म, उपासना और ज्ञान] (**ब्रध्नान्**) बड़े व्यवहारों को, (**त्रीन्**) तीन [स्थान, नाम और जन्म वा जाति वाले] (**वैष्टपान्**) संसार निवासियों को, (**त्रीन्**) तीन [ऊपर नीचे और तिरछे चलने वाले] (**मातरिश्वनः**) आकाशगामी पवनों को, और (**त्रीन्**) तीन [वृष्टि, अन्नोत्पत्ति और पुष्टि करने वाले] (**सूर्यान्**) सूर्य [के तापों] को (**ते**) तेरे (**गोप्तॄन्**) रक्षक (**कल्पयामि**) मैं बनाता हूं ॥४॥

भावार्थः जो मनुष्य पदार्थों के तत्त्वों को यथावत् समझकर उपयोग में लाते हैं, वे उन्नति करते हैं ॥४॥

मन्त्र ३, ४ का मिलान करो—अ० ५ । २८ । १४, १५ ॥

घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् ।

अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥५॥

भाषार्थः—(**अग्ने**) हे अग्नि [के समान तेजस्वी विद्वान् !] [जैसे अग्नि को] (**आज्येन**) घृत से (**वर्धयन्**) बढ़ाता हुआ मैं (**त्वा**) तुझे (**घृतेन**) ज्ञान प्रकाश से (**सम्**) यथावत् (**उक्षामि**) बढ़ाता हूं । (**अग्नेः**) अग्नि के, (**चन्द्रस्य**) चन्द्रमा के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (सूर्यस्य) सूर्य के (प्राणम्) प्राण [जीवन सामर्थ्य] को (मायिनः) छली लोग (मा दभन्) नहीं नाश करें ॥५॥

भावार्थः—सब मनुष्य विद्या से पूर्ण होकर और अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य आदि की जीवन शक्तियों से यथावत् उपकार लेकर शत्रुओं को वश में करें ॥५॥

मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् ।
भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥६॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (मा) न तो (वः) तुम्हारे (प्राणम्) श्वास को, (मा) न (वः) तुम्हारे (अपानम्) प्रश्वास को, और (मा) न (हरः) तेज को (मायिनः) छली लोग (दभन्) नष्ट करें। (भ्राजन्तः) चमकते हुए, (विश्ववेदसः) सब प्रकार धन वाले, (देवाः) विद्वानो तुम (दैव्येन) विद्वानों के योग्य कर्म के साथ (धावत) धावा करो ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्वानों के समान दूरदर्शी होकर शत्रु लोग रोकने चाहियें कि जिससे वे किसी प्रकार हानि न पहुंचावें ॥६॥

प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः ।
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥७॥

भाषार्थः—वह [परमात्मा] (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] के साथ (अग्निम्) अग्नि को (सं सृजति) संयुक्त करता है, (वातः) वायु (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] के साथ (संहितः) मिला हुआ है। (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] के साथ (विश्वतोमुखम्) सब ओर मुख वाले (सूर्यम्) सूर्य को (देवाः) दिव्य नियमों ने (अजनयन्) उत्पन्न किया है ॥७॥

भावार्थः—जैसे परमात्मा ने अग्नि आदि में प्राण वा जीवन सामर्थ्य देकर उपयोगी बनाया है, वैसे ही मनुष्य अपनी आत्मिक और शारीरिक शक्तियों द्वारा जीवन को उपयोगी बनावें ॥७॥

आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥८॥

भाषार्थः—(आयुःकृताम्) जीवन बनाने वाले [विद्वानों] के (आयुषा) जीवन के साथ (जीव) तू जीवित रह, (आयुष्मान्) उत्तम जीवन वाला होकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जीव) तू जीवित रह, (मा मृथाः) तू मत मरे। (आत्मन्वताम्) आत्मा वालों के (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] से (जीव) तू जीवित रह (मृत्योः) मृत्यु के (वशम्) वश में (मा उत् अगाः) मत जा ॥८॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि बड़े जितेन्द्रिय पुरुषार्थी महात्माओं के समान अपने जीवन को पुरुषार्थी बनाकर यशस्वी होवें ॥८॥

देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः।
आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥९॥

भाषार्थः—(देवानाम्) विद्वानों के (निहितम्) धरे हुए (यम्) जिस (निधिम्) निधि [रत्नों के कोश] को (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष] ने (देवयानैः) विद्वानों के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (अन्वविन्दत) खोज कर पाया है। (आपः) आप्त प्रजाओं ने (हिरण्यम्) उस तेज [वा सुवर्ण] को (त्रिवृद्भिः) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञानरूप] वृत्तियों के साथ (जुगुपुः) रक्षित किया है, (त्रिवृता) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] में वर्तमान (ताः) वे [प्रजायें] (त्वा) तुझ को (त्रिवृद्भिः) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञानरूप] वृत्तियों के साथ (रक्षन्तु) बचावें ॥९॥

भावार्थः—जो पुरुष शूर महात्माओं के समान वेदोक्त मार्ग पर चलकर धर्म के साथ तेज वा सुवर्ण आदि धन प्राप्त करते हैं, प्रजागण उन धीर वीरों को प्रिय जानकर सदा उन की रक्षा करते रहें ॥९॥

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्व१न्तः।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥१०॥

भाषार्थः—(प्रियायमाणाः) प्रिय मानते हुए (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस [८ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः वा प्रकाश, चन्द्रमा और नक्षत्र—११ रुद्र अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय यह दस प्राण और ग्यारहवां जीवात्मा—१२ महीने—१ इन्द्र अर्थात् बिजुली—एक प्रजापति वा यज्ञ] (देवताः) देवताओं (च) और (त्रीणि) तीन [कायिक, वाचिक और मानसिक) (वीर्याणि) वीर कर्मों ने (अप्सु अन्तः) आप्त प्रजाओं के बीच (अस्मिन्) इस (चन्द्रे) आनन्द देने वाले [जीवात्मा] में (अधि) अधिकार पूर्वक (यत्) जिस (हिरण्यम्) कमनीय तेज को (जुगुपुः) रक्षित किया है, (तेन) उसी [तेज] से (अयम्) यह [जीवात्मा] (वीर्याणि) वीर कर्मों को (कृणवत्) करे ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः– परमात्मा ने वसु आदि तेतीस देवताओं शारीरिक आदि शक्तियों और पूर्व संस्कारों द्वारों मनुष्यों में जो तेज स्थापित किया है, मनुष्य उस तेज को विद्या आदि द्वारा प्रकाशित करके पराक्रम करता रहे ॥१०॥

ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥११॥

ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१२॥

ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१३॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानो ! (ये) जो तुम (दिवि) सूर्य लोक में (एकादश) ग्यारह [प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त धनञ्जय, दस प्राण और ग्यारहवें जीवात्मा के समान] (स्थ) हो (देवासः) हे विद्वानो ! (ते) वे तुम (इदम्) इस (हविः) ग्रहण योग्य वस्तु [वचन] को (जुषध्वम्) सेवन करो ॥११॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानो ! (ये) जो तुम (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (एकादश) ग्यारह [श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पांव, गुदा, लिङ्ग और मन–इन ग्यारह के समान] (स्थ) हो, (देवासः) हे विद्वानो ! (ते) वे तुम (इदम्) इस (हविः) ग्रहण योग्य वस्तु [वचन] को (जुषध्वम्) सेवन करो ॥१२॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानो ! (ये) जो तुम (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (एकादश) ग्यारह [पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति–इन ग्यारह के समान] (स्थ) हो, (देवासः) हे विद्वानो ! (ते) वे तुम (इदम्) इस (हविः) ग्रहण योग्य वस्तु [वचन] को (जुषध्वम्) सेवन करो ॥१३॥

भावार्थः—जैसे सूर्यादि लोकों में सब पदार्थ स्थित रहकर अपना अपना कर्तव्य कर रहे हैं, वैसे ही मनुष्यों को ईश्वर और वेद में दृढ़ रहकर अपने कर्तव्य में परम निष्ठा रखनी चाहिये ॥११—१३॥

मन्त्र ११—१३ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१ । १३९ । ११ और यजुर्वेद ७ । १९ ॥

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(नः) हमारे लिये (मा) मुझ को (पुरस्तात्) सामने से [वा पूर्व दिशा से], (पश्चात्) पीछे से [वा पश्चिम से], (दक्षिणतः) दाहिनी ओर [वा दक्षिन] से और (मा) मुझको (उत्तरात्) बाईं ओर से [वा उत्तर से] (सविता) सर्वप्रेरक राजा और (शचीपतिः) वाणियों वा कर्मों का पालने वाला [मन्त्री], तुम दोनों (असपत्नम्) शत्रुरहित और (अभयम्) निर्भय (कृतम्) करो ॥१४॥

भावार्थः—जहां पर राजा और मन्त्री, अपनी वाणी और कर्म म पक्के होते हैं, उस राज्य में प्रजागण शत्रुओं से सुरक्षित रहते हैं ॥१४॥

यह मन्त्र पहिले आ चुका है अथ० १९। १६। १॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥१५॥

भाषार्थः—(आदित्याः) अखण्डव्रती शूर (मा) मुझे (दिवः) आकाश से (रक्षन्तु) बचावें, (अग्नयः) ज्ञानी पुरुष (भूम्याः) भूमि से (रक्षन्तु) बचावें। (इन्द्राग्नी) बिजुली और अग्नि [के समान तेजस्वी और व्यापक राजा और मन्त्री दोनों] (मा) मुझे (पुरस्तात्) सामने से (रक्षताम्) बचावें, (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा [के समान ठीक मार्ग चलने वाले वे दोनों] (अभितः) सब ओर से (शर्म) सुख (यच्छताम्) देवें। (जातवेदाः) बहुत धन वाली (अघ्न्या) अटूट [राजनीति] (तिरश्चीन्=तिरश्चिभ्यः) आड़े चलने वाले [वैरियों] से [मुझे] (रक्षतु) बचावे, (भूतकृतः) उचित कर्म करने वाले पुरुष (मे) मेरे लिये (सर्वतः) सब ओर से (वर्म) कवच (सन्तु) होवें ॥१५॥

भावार्थः—जो राजा और राजपुरुष आकाश में वायुयान द्वारा चलने वाले वीरों से और पृथिवी पर अश्ववार आदि से अस्त्र शस्त्र द्वारा शत्रुओं का नाश करते हैं, वही प्रजा की रक्षा कर सकते हैं ॥१५॥

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—अ० १९। १६। २॥

सूक्तम् ॥२८॥

१—१० ॥ दर्भो देवता ॥ १, ४—१० अनुष्टुप्, २, ३ भुरिगनुष्टुप् ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षणों का उपदेश ॥

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे प्रजागण !] (ते) तेरे (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन और (तेजसे) तेज के लिये (इमम्) इस (मणिम्) मणिरूप [अति प्रशंसनीय], (सपत्नदम्भनम्) शत्रुओं के दबाने वाले, (द्विषतः) विरोधी के (हृदः) हृदय के (तपनम्) तपाने वाले (दर्भम्) दर्भ [शत्रुविदारक सेनापति] को (बध्नामि) मैं नियुक्त करता हूं ॥१॥

भावार्थः—राजा प्रजा की रक्षा और उन्नति के लिये बलवान् नीतिज्ञ सेनापति को नियुक्त करे ॥१॥

दर्भ एक घास औषध विशेष भी है जो वात पित्त कफ त्रिदोष आदि रोग नाश करता है ॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ६ । ४३ । १२ ॥

द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः ।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभीन्त्संतापयन् ॥२॥

भाषार्थः—(द्विषतः) विरोधी के (हृदः) हृदयों को (तापयन्) तपाता हुआ, और (शत्रूणाम्) शत्रुओं के (मनः) मन को (तापयन्) तपाता हुआ, (दर्भ) हे दर्भ! [शत्रुविदारक सेनापति] (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले (अभीन्) अमङ्गलकारियों को (घर्मःइव) ग्रीष्म ऋतु के समान (सन्तापयन्) सर्वथा तपाता हुआ (त्वम्) तू [वर्तमान हो] ॥२॥

भावार्थः—शूर वीर सेनापति शत्रुओं को सदा कष्ट देकर नाश करे-जैसे ग्रीष्म का ताप घास आदि को सुखाकर नष्ट कर देता है ॥२॥

घर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ॥३॥

भाषार्थः—(मणे) हे प्रशंसनीय (दर्भ) दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (घर्मः इव) ग्रीष्म के समान (अभितपन्) सर्वथा तपता हुआ (द्विषतः) विरोधियों को (नितपन्) सन्ताप देता हुआ तू, (बलम्) हिंसक को (विरुजन्) नाश करते हुए (इन्द्रःइव) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष] के समान, (सपत्नानाम्) वैरियों के (हृदः) हृदयों को (भिन्द्धि) तोड़ दे ॥३॥

भावार्थः—सेनापति महाप्रतापी शूरों के समान पराक्रम करके शत्रुओं को हरावे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन् त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥४॥

भाषार्थः—(मणे) हे प्रशंसनीय (दर्भ) दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (सपत्नानाम्) वैरियों और (द्विषताम्) विरोधियों के (हृदयम्) हृदय को (भिन्द्धि) तोड़ दे । (उद्यन्) उठता हुआ तू, (भूम्याः) भूमि की (त्वचम् इव) त्वचा [तृण आदि] के समान (एषाम्) इन शत्रुओं का (शिरः) शिर (वि पातय) गिरा दे ॥४॥

भावार्थः—पराक्रमी सेनापति शत्रुओं में फूट डालकर घास फूंस के समान नाश करे ॥४॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥५॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (भिन्द्धि) तोड़ दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ाने वालों को (भिन्द्धि) तोड़ दे, । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (भिन्द्धि) तोड़ दे, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (भिन्द्धि) तोड़ दे ॥५॥

भावार्थः—स्पष्ट है ॥५॥

छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (छिन्द्धि) छेद डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (छिन्द्धि) छेद डाल (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दान्) दुष्ट हृदय वालों को (छिन्द्धि) छेद डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (छिन्द्धि) छेद डाल ॥६॥

वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥७॥

भाषार्थः (दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (वृश्च) काट डाल (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (वृश्च) काट डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (वृश्च)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काट डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (वृश्च) काट डाल ॥७॥

कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥८॥

भावार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (कृन्त) कतर डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (कृन्त) कतर डाल। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दान्) दुष्ट हृदय वालों को (कृन्त) कतर डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (कृन्त) कतर डाल ॥८॥

पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥९॥

भावार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (पिंश) बोटी बोटी कर, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (पिंश) बोटी बोटी कर। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (पिंश) बोटी बोटी कर, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (पिंश) बोटी बोटी कर ॥९॥

विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥१०॥

भावार्थः—(दर्भः) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (विध्य) वेध डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (विध्य) वेध डाल। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (विध्य) वेध डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (विध्य) वेध डाल ॥१०॥

सूक्तम् ॥२९॥

१—९ ॥ दर्भो देवता ॥ अनुष्टुप्छन्दः ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षण का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निक्ष दर्भ सपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥१॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (निक्ष) कोंच डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (निक्ष) कोंच डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (निक्ष) कोंच डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (निक्ष) कोंच डाल ॥१॥

तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥२॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (तृन्द्धि) चीर डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (तृन्द्धि) चीर डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (तृन्द्धि) चीर डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (तृन्द्धि) चीर डाल ॥२॥

रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥३॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (रुन्द्धि) रोक दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (रुन्द्धि) रोक दे । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (रुन्द्धि) रोक दे, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (रुन्द्धि) रोक दे ॥३॥

मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥४॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (मृण) मार डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (मृण) मार डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (मृण)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (मृण) मार धाल ॥४॥

मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥५॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (मन्थ) मथ डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (मन्थ) मथ डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (मन्थ) मथ डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (मन्थ) मथ डाल ॥५॥

पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥६॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (पिण्ड्ढि) पीस डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (पिण्ड्ढि) पीस डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (पिण्ड्ढि) पीस डाल (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (पिण्ड्ढि) पीस डाल ॥६॥

ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥७॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (ओष) जला दे. (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (ओष) जला दे । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (ओष) जला दे,(मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (ओष) जला दे ॥७॥

दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥८॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (दह) दाह कर दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (दह) दाह कर दे। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दह) दाह कर दे, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (दह) दाह कर दे ॥८॥

जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥९॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (जहि) नाश कर दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (जहि) नाश कर दे। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (जहि) नाश कर दे, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (जहि) नाश कर दे ॥९॥

सूक्तम् ॥३०॥

१—५ ॥ दर्भो देवता ॥ १, २ निचृदनुष्टुप्; ३ भुरिगुष्णिक्, ४, ५ अनुष्टुप् ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षणों का उपदेश ॥

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नां जहि वीर्यैः ॥१॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (यत्) जो (ते) तेरा (जरामृत्युः) जरा [निर्बलता] को मृत्यु [के समान दुःखदायी] समझना है, और [जो] (वर्मसु) कवचों के बीच (ते) तेरा (वर्म) कवच (शतम्) सौ प्रकार का हैं। (तेन) उसी [कारण] से (इमम्) इस [शूर] को (वर्मिणम्) कवच धारी (कृत्वा) करके (सपत्नान्) वैरियों को (वीर्यैः) वीर कर्मों से (जहि) नाश कर ॥१॥

भावार्थः—पराक्रमी शूर सेनापति अपने दृष्टान्त से अन्य पुरुषों को वीर बनाकर शत्रुओं का नाश करे ॥१॥

शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥२॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (ते) तेरे (वर्माणि) कवच (शतम्) सौ और (ते) तेरे (वीर्याणि) वीर कर्म (सहस्रम्) सहस्र हैं। (तम्) उस (त्वाम्) तुझे (विश्वे) सब (देवाः) विद्वानों ने (अस्मै) इस [पुरुष] को (जरसे) स्तुति के लिये और (भर्तवे) पालन करने के लिये (अदुः) दिया है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः– जो सेनापति अनेक प्रकार से अपनी और प्रजा की रक्षा कर सके, विद्वान् लोग प्रधान पुरुष के सामने उस महान् पुरुष का आदर करें ॥२॥

त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥३॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (त्वाम्) तुझे (देववर्म) विद्वानों का कवच, (त्वाम्) तुझे (ब्रह्मणः) वेद का (पतिम्) रक्षक (आहुः) वे लोग कहते हैं। (त्वाम्) तुझे (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष] का (वर्म) कवच (आहुः) वे लोग कहते हैं, (त्वम्) तू (राष्ट्राणि) राज्यों की (रक्षसि) रक्षा करता है ॥३॥

भावार्थः—पराक्रमी शूर सेनापति विद्वानों, वेदों और सब राज्यों की रक्षा करे ॥३॥

सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः ।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥४॥

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (ते=त्वाम्) तुझ को (सपत्नक्षयणम्) वैरियों का नाश करने वाला, (द्विषतः) शत्रु के (हृदः) हृदय का (तपनम्) तपाने वाला, (क्षत्रस्य) राज्य का (मणिम्) श्रेष्ठ (वर्धनम्) बढ़ाने वाला और (तनूपानम्) शरीरों की रक्षा करने वाला (कृणोमि) मैं बनाता हूं ॥४॥

भावार्थः– शूर प्रतापी सेनापति को अधिकार दिया जावे कि वह शत्रु के जीतने और राज्य की उन्नति करने में सदा प्रयत्न करे ॥४॥

यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥५॥

भाषार्थः—(यत्) जिस [ईश्वर सामर्थ्य] से (समुद्रः) अन्तरिक्ष और (पर्जन्यः) बादल (विद्युता सह) बिजुली के साथ (अभ्यक्रन्दत्) सब ओर गरजा है। (ततः) उसी [सामर्थ्य] से (हिरण्ययः) झलकता हुआ (बिन्दुः) बूंद [शुद्ध मेह का जल] और (ततः) उसी [सामर्थ्य] से (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक सेनापति] (अजायत) प्रकट हुआ है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे परमेश्वर के सामर्थ्य से आकाश में बिजुली और बादल गरज कर वृष्टि करके उपकार करते हैं, वैसे ही उसी जगदीश्वर के नियम से शूर सेनापति उत्तम शिक्षा और उत्तम संस्कारों के द्वारा संसार में उपकार करके यशस्वी होता है ॥५॥

सूक्तम् ॥३१॥

१—१४ औदुम्बरो मणिः प्रजापतिर्वा देवता ॥ १-४,७—१० अनुष्टुप्, ५, १२ त्रिष्टुप्, ६, १४ विराडार्षी पङ्क्तिः, ११ निचृत् शक्वरी १३ शक्वरी ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश ॥

औदु॑म्बरेण म॒णिना॒ पुष्टि॑कामाय वे॒धसा॑ ।
प॒शू॒नां सर्वे॑षां स्फा॒तिं गो॒ष्ठे मे॑ सवि॒ता क॑रत् ॥१॥

भाषार्थः—(औदुम्बरेण) संघटन चाहने वाले (मणिना) श्रेष्ठ (वेधसा) जगत् स्रष्टा [परमेश्वर] के साथ (पुष्टिकामाय) वृद्धि की कामना वाले (मे) मेरे लिये (सविता) सर्वप्रेरक [गृहपति] (सर्वेषाम्) सब (पशूनाम्) पशुओं की (स्फातिम्) बढ़ती (गोष्ठे) गोशाला में (करत्) करे ॥१॥

भावार्थः—गृहपति को योग्य है कि सर्वनियन्ता परमेश्वर का आश्रय लेकर गौ आदि प्राणियों की वृद्धि से कुटुम्ब का पालन करे ॥१॥

यो नो॑ अ॒ग्निर्गार्ह॑पत्यः पशू॒नाम॑धि॒पा अस॑त् ।
औदु॑म्बरो॒ वृषा॑ म॒णिः स मा॑ सृजतु पु॒ष्ट्या ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो (गार्हपत्यः) गृहपति की स्थापित (अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी परमेश्वर] (नः) हमारे (पशूनाम्) प्राणियों का (अधिपाः) बड़ा स्वामी (असत्) है। (सः) वही (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला, (मणिः) श्रेष्ठ, (वृषा) वीर्यवान् [परमेश्वर] (मा) मुझको (पुष्ट्या) वृद्धि के साथ (सृजतु) संयुक्त करे ॥२॥

भावार्थः—सब मनुष्य परमात्मा की उपासना करके मनुष्य आदि प्राणियों से वृद्धि करें ॥२॥

क॒री॒षिणीं॒ फल॑वतीं स्व॒धामिरां॑ च नो गृ॒हे ।
औदु॑म्बरस्य॒ तेज॑सा धा॒ता पुष्टिं॑ दधातु मे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(नः) हमारे (गृहे) घर में (औदुम्बरस्य) संघटन चाहने वाले [परमेश्वर] के (तेजसा) तेज से (करीषिणीम्) बहुत गोबर वाली, (फलवतीम्) बहुत फल वाली, (स्वधाम्) बहुत अन्नवाली (च) और (इराम्) बहुत भूमि वाली (पुष्टिम्) वृद्धि को (धाता) पोषक [गृहपति] (मे) मुझे (दधातु) देवे ॥३॥

भावार्थः–गृहपति परमेश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से कुटुम्ब पालने को बहुत गौयें दूध घृत आदि के लिये, आराम वाटिका फल आदि के लिये, अन्न भोजनादि के लिये और भूमि राज्य खेती आदि के लिये रक्खे ॥३॥

यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णे३ऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ (द्विपात्) दोपाया (च) और (चतुष्पात्) चौपाया है, (च) और (यानि) जो जो (अन्नानि) अन्न और (ये) जो जो (रसाः) रस हैं। (औदुम्बरम्) संघटन चाहने वाले (मणिम्) श्रेष्ठ [परमेश्वर] को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (तु) ही (अहम्) मैं (एषाम्) इन की (भूमानम्) बहुतायत को (गृह्णे) ग्रहण करूं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की उपासना करके प्रयत्न के साथ उत्तम मनुष्यों, उत्तम अन्नों, और उत्तम दूध घी शर्करा गुड़ादि रसों को बहुतायत से रक्खें ॥४॥

पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥५॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं ने (चतुष्पदाम्) चौपाये और (द्विपदाम्) दोपाये (पशूनाम्) जीवों की, (च) और (यत्) जो (धान्यम्) धान्य है, [उसकी भी], (पुष्टिम्) बढ़ती को (परि) सब ओर से (जग्रभ) ग्रहण किया है। (पशूनाम्) पशुओं का (पयः) दूध और (ओषधीनाम्) ओषधियों [सोमलता अन्न आदि] का (रसम्) रस (बृहस्पतिः) बड़े ज्ञानों का रक्षक (सविता) सर्वप्रेरक [गृहपति वा परमेश्वर] (मे) मुझे (नि) नित्य (यच्छात्) देवे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की भक्तिपूर्वक सब आवश्यक पदार्थों का संग्रह करके प्रजा की यथावत् रक्षा करे ॥५॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ५। २८। ३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहं पंशूनामंधिपा अंसानि मयिं पुष्टं पुंष्टपतिंर्दधातु ।
मह्यमौदुंम्बरो मणिर्द्रविंणानि नि यंच्छतु ॥६॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (पशूनाम्) प्राणियों का (अधिपाः) बड़ा राजा (असानि) हो जाऊं, (मयि) मुझ में (पुष्टपतिः) पोषण का स्वामी (पुष्टम्) पोषण (दधातु) धारण करे। (मह्यम्) मुझ को (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला (मणिः) प्रशंसनीय [परमेश्वर] (द्रविणानि) अनेक धन (नि) नित्य (यच्छतु) देवे ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वर की शरण लेकर पुरुषार्थ के साथ अनेक धन प्राप्त करने चाहियें ॥६॥

उप मौदुम्बरो मणिः प्रजयां च धनेंन च ।
इन्द्रेंण जिन्वितो मणिरा मांगन्त्सह वर्चसा ॥७॥

भाषार्थः—(औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला (मणिः) प्रशंसनीय [परमेश्वर] (प्रजया) प्रजा के साथ (च च) और (धनेन) धन के साथ (मा उप) मुझ को, (इन्द्रेण) परम ऐश्वर्य करके (जिन्वितः) प्रेरित किया गया (मणिः) प्रशंसनीय [परमात्मा] (वर्चसा सह) तेज के साथ (मा) मुझ को (आ अगन्) प्राप्त हुआ है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी सर्वशक्तिमत्ता से प्रत्येक प्राणी में व्यापक है, यह विचार कर सब मनुष्य श्रेष्ठ पुरुषों और अनेक धनों की प्राप्ति से ऐश्वर्यवान् होवें ॥७॥

देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनंसातये ।
पशोरन्नंस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यंच्छतु ॥८॥

भाषार्थः—(देवः) प्रकाशमान (मणिः) प्रशंसनीय, (सपत्नहा) वैरियों का मारने वाला, (धनसाः) धनों का देने वाला [परमात्मा] (धनसातये) धनों के दान के लिये—(पशोः) प्राणियों की और (अन्नस्य) अन्न की (भूमानम्) बहुतायत और (गवाम्) गौओं की (स्फातिम्) बढ़ती (नि) नित्य (यच्छतु) देवे ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा के अनुग्रह से धनों को प्राप्त करके उत्तम रीति से उठाते हैं, वे सदा उन्नति करते हैं ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥९॥

भाषार्थः—(वनस्पते) हे सेवकों के रक्षक ! [परमेश्वर] (यथा) जिस प्रकार से (त्वम्) तू (अग्रे) पहिले (पुष्ट्या सह) पोषण के साथ (जज्ञिषे) प्रकट हुआ है। (एव) वैसे ही (मे) मुझको (सरस्वती) सरस्वती [विज्ञानवती विद्या] (धनस्य) धन की (स्फातिम्) बढ़ती (आ) सब ओर से (दधातु) देवे ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा ने पहिले से ही सब पोषण पदार्थ उत्पन्न कर दिये हैं, मनुष्य वेद आदि सत्य विद्यायें ग्रहण करके धन को प्राप्त करें ॥९॥

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥१०॥

भाषार्थः—(सिनीवाली) अन्न देने वाली (सरस्वती) सरस्वती [विज्ञानवती विद्या] (च) और (अयम्) यह (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला (मणिः) प्रशंसनीय [परमात्मा] (मे) मेरे लिये (पयस्फातिम्) दूध की बढ़ती (च) और (धनम्) धन और (धान्यम्) धान्य [अन्न] (आ) सब ओर से (उप) समीप (वहात्) लावे ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या प्राप्त करते और परमात्मा पर विश्वास करके प्रयत्न करते हैं, वे धन धान्य पाकर सदा प्रसन्न रहते हैं ॥१०॥

त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान । त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥११॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (त्वम्) तू (मणीनाम्) मणियों [प्रशंसनीय पदार्थों] का (अधिपाः) बड़ा राजा और (वृषा) बलवान् (असि) है, (त्वयि) तुझ में ही (पुष्टम्) पोषण को (पुष्टपतिः) पोषण के स्वामी [धनी पुरुष] ने (जजान) प्रकट किया है। (त्वयि) तुझ में ही (इमे) यह (वाजाः) अनेक बल और (सर्वा) सब (द्रविणानि) धन हैं, (सः) सो (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला (त्वम्) तू (अस्मत्) हम से (अरातिम्) अदानशीलता, (अमतिम्) कुमति (च) और (क्षुधम्) भूख को (आरात्) दूर (सहस्व) हटा ॥११॥

भावार्थः—संसार में जो धनी पुरुष हैं, वे सब परमात्मा का आश्रय लेकर, पुरुषार्थ से धनवान् हुए हैं, यह विचार कर प्रत्येक मनुष्य को धन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करके सुपात्र में व्यय, धर्म में सुमति और दुर्भिक्ष आदि के निवारण में दूरदर्शिता रखनी चाहिये ॥११॥

ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥१२॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (ग्रामणीः) समूहों का नेता (असि) है, (उत्थाय) खड़ा होकर तू (ग्रामणीः) समूहों का नेता [है], (अभिषिक्तः) अभिषेक [राजतिलक] किया हुआ तू (मा) मुझे (वर्चसा) तेज के साथ (अभि षिञ्च) अभिषिक्त कर। (तेजः) तू तेजःस्वरूप (असि) है, (मयि) मुझ में (तेजः) तेज (धारय) धारण कर, (रयिः) तू धनरूप (असि) है (मे) मेरे लिये (रयिम्) धन (अधि) अधिकाई से (धेहि) स्थापित कर ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा अपने ऐश्वर्य से सब समूहों का राजा महाराजा है। इसी प्रकार सब मनुष्य धर्म के साथ प्रतापी और धनी होकर सुखी होवें ॥१२॥

पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु । औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥१३॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (पुष्टिः) वृद्धिरूप (असि) है, (वृद्ध्या) वृद्धि के साथ (मा) मुझे (सम् अङ्ग्धि) संयुक्त कर, तू (गृहमेधी) घर के काम समझने वाला [है], (मा) मुझे (गृहपतिम्) घर का स्वामी (कृणु) कर। (सः) सो (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला (त्वम्) तू (अस्मासु) हम लोगों के बीच (नः) हम को (सर्ववीरम्) सब को वीर रखने वाला (रयिम्) धन (धेहि) दे, (च) और (नि यच्छ) दृढ़ कर, (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझको (रायः) धन की (पोषाय) वृद्धि के लिये (प्रति मुञ्चे) स्वीकार करता हूं ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा को सर्वभण्डार और सर्वशक्तिमान् समझ कर मनुष्य अपनी वृद्धि के लिये प्रवृत्ति करते रहें ॥१३॥

अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते । स नः सनिं
मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**अयम्**) यह (**औदुम्बरः**) संघटन चाहने वाला, (**मणिः**) प्रशंसनीय (**वीरः**) वीर [परमात्मा] (**वीराय**) वीर पुरुष के लिये (**बध्यते**) धारण किया जाता है। (**सः**) वह (**नः**) हमारे लिये (**मधुमतीम्**) ज्ञान युक्त (**सनिम्**) लाभ (**कृणोतु**) करे, (**च**) और (**नः**) हमारे लिये (**सर्ववीरम्**) सब को वीर बनाने वाला (**रयिम्**) धन (**नि यच्छात्**) नियत करे ॥१४॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर के स्थिर कोश और नित्य दान का विचार करके पुरुषार्थ करते हैं, वे स्थिर निधि स्थापित करके सब मनुष्यों को वीर बनाते हैं ॥१४॥

सूक्तम् ॥३२॥

१—१० ॥ दर्भो देवता ॥ १—३, ६, ७ अनुष्टुप्, ४ आर्ष्यनुष्टुप्, ५ विराडार्ष्यनुष्टुप्, ८ आर्षी बृहती, ९ त्रिष्टुप्, १० विराडार्षी जगती ॥

शत्रूणां पराजयोपदेशः—शत्रुओं के पराजय का उपदेश ॥

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः ।
दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥१॥

भाषार्थः—(**शतकाण्डः**) सैकड़ों सहारे देने वाला, (**दुश्च्यवनः**) न हटने वाला, (**सहस्रपर्णः**) सैकड़ों पालनों वाला, (**उत्तिरः**) उत्कृष्ट, (**यः**) जो (**दर्भः**) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर वा औषध विशेष] (**उग्रः**) उग्र (**ओषधिः**) ओषधिरूप है। (**तम्**) उसको (**ते**) तेरे लिये (**आयुषे**) [दीर्घ] जीवन के लिये (**बध्नामि**) मैं धारण करता हूं ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे परमात्मा अनेक प्रकार सहारा देने वाला दृढ़ स्वभाव है, और जैसे उत्तम औषध से सुख मिलता है, वैसे ही तुम लोग उस जगदीश्वर की शरण में रहकर सब के पालन करने का उपाय करो ॥१॥

नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते ।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥२॥

भाषार्थः—(**न**) न तो (**अस्य**) उस [पुरुष] के (**केशान्**) केशों को (**प्र वपन्ति**) वे [शत्रु लोग] बखेरते हैं, (**न**) न (**उरसि**) छाती पर (**ताडम्**) चोट (**आ घ्नते**) लगाते हैं। (**यस्मै**) जिस [पुरुष] को (**अच्छिन्नपर्णेन**) अखण्ड पालन वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दर्भेण) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] के साथ (शर्म) सुख (यच्छति) वह [कोई मित्र] देता है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य माता पिता आचार्य आदि से सुशिक्षा पाकर परमात्मा में दृढ़ होकर उत्साह करता है, उसको संसार में कोई नहीं सता सकता ॥२॥

दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः ।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥३॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे ओषधि [रूप परमात्मा !] (दिवि) सूर्य में (ते) तेरी (तूलम्) पूर्णता है, और तू (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (निष्ठितः) दृढ़ ठहरा हुआ (असि) है। (सहस्रकाण्डेन) सहस्रों सहारा देने वाले (त्वया) तेरे साथ (आयुः) जीवन काल को (प्र वर्धयामहे) हम बढ़ा ले जाते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा सब से ऊंचे और सब से नीचे स्थान में एकरस व्यापक है, उसकी उपासना से मनुष्य यश प्राप्त करें ॥३॥

तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥४॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (तिस्रः) तीनों [उत्कृष्ट, निकृष्ट, मध्यम] (दिवः) प्रकाशों को (उत) और (इमाः) इन (तिस्रः) तीनों (पृथिवीः) पृथिवियों को (अति अतृणत्) तू ने आर पार छेदा है। (त्वया) तेरे साथ (अहम्) मैं (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले की (जिह्वाम्) जीभ को और (वचांसि) वचनों को (नि) दृढ़ता से (तृणद्मि) छेदता हूं ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा को त्रिकालपति और त्रिलोकीनाथ जानकर पुरुषार्थ करते हैं, वे अन्यथाकारी शत्रुओं को वश में करते हैं ॥४॥

त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् ।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि ॥५॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (सहमानः) वश में करने वाला (असि) है, और (अहम्) मैं (सहस्वान्) बलवान् (अस्मि) हूं। (उभौ) हम दोनों (सहस्वन्तौ) बलवान् (भूत्वा) होकर (सपत्नान्) विरोधियों को (सहिषीमहि) हम सब वश में करें ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वीर पुरुष परमेश्वर का आश्रय लेकर और सब साथियों को मिलाकर शत्रुओं का नाश करे ।।५।।

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० ३ । १८ । ५ और ऋग्वेद १० । १४५ । ५ ।।

सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ।।६।।

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (नः) हमारे (अभिमातिम्) अभिमानी शत्रु को (सहस्व) हरा और (पृतनायतः) सेनायें चढ़ा लाने वालों को (सहस्व) हरा। (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (सहस्व) हरा, (मे) मेरे लिये (बहून्) बहुत (सुहार्दः) शुभ हृदय वाले लोग (कृधि) कर ।।६।।

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की उपासना करके दुष्टों का अपमान और शिष्टों का सन्मान करें ।।६।।

दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ।।७।।

भाषार्थः—(देवजातेन) विद्वानों में प्रसिद्ध, (दिवि) आकाश में (स्तम्भेन) स्तम्भ रूप, (तेन) उस (दर्भेण) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] के साथ (शश्वत्) सदा (इत्) ही (अहम्) मैं ने (शश्वतः) नित्य वर्तमान (जनान्) पामर लोगों को (असनम्) जीता है, (च) और (सनवानि) जीतूं ।।७।।

भावार्थः—जिस परमात्मा ने सूर्य आदि लोकों को नियम के साथ आकर्षण में रक्खा है, उसकी उपासना करके मनुष्य दुष्टों को दण्ड दे शिष्टों का सत्कार करें ।।७।।

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ।।८।।

भाषार्थः—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक परमेश्वर] (मा) मुझ को (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिये (च) और (आर्याय) वैश्य के लिये (च) और (शूद्राय) शूद्र के लिये (च) और (यस्मै) जिसके लिये (कामयामहे) हम चाह सकते हैं [उसके लिये], (च) और (सर्वस्मै) प्रत्येक (विपश्यते) विविध प्रकार देखने वाले पुरुष के लिये (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर ।।८।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि परमेश्वरोक्त वेद द्वारा ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे वे समस्त संसार का हित कर सकें ॥८॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० १६। ६२। १। और यजुर्वेद १८। ४८॥

यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥९॥

भाषार्थः—(यः) जिस (जायमानः) प्रकट होते हुए [परमेश्वर] ने (पृथिवीम्) पृथिवी को (अदृंहत्) दृढ़ किया है, (यः) जिसने (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (च) और (दिवम्) सूर्य को (अस्तभ्नात्) सहारा है। (यम्) जिस (बिभ्रतम्) पालन करते हुए [परमेश्वर] को (पाप्मा) पापी पुरुष ने (ननु) कभी नहीं (विवेद) जाना है, (सः अयम्) उस ही (वरुणः) श्रेष्ठ (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] ने (नः) हमारे लिये (दिवा) प्रकाश को (कः) बनाया है ॥९॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने नीचे ऊंचे और मध्य लोकों को बनाकर आकर्षण में रक्खा है, और जो पापियों को भी अन्न आदि पहुंचाता है, उसी जगदीश्वर ने विद्वान् लोगों को ज्ञान का प्रकाश दिया है ॥९॥

सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥१०॥

भाषार्थः—(सपत्नहा) विरोधियों का नाश करने वाला (शतकाण्डः) सैकड़ों सहारे देने वाला (सहस्वान्) महाबली [परमेश्वर] (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न आदि] का (प्रथमः) पहिला (सम् बभूव) समर्थ हुआ है। (सः अयम्) वही (दर्भः) दर्भ [शत्रु विदारक परमेश्वर] (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (परि पातु) पालता रहे, (तेन) उसी [परमेश्वर] के साथ (पृतनाः) सेनाओं को और (पृतन्यतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (साक्षीय) मैं हरा दूं ॥१०॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने सब विघ्नों को हटाकर अनन्त उपकार किये हैं, हे मनुष्यो! उसी की उपासना करके शत्रुओं का नाश करो ॥१०॥

सूक्तम् ॥३३॥

१—५ दर्भो देवता ॥ १ विराडार्षी जगती, २ त्रिष्टुप्, ३ आर्षी पङ्क्ति, ४ विराडार्षी पङ्क्ति, ५ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

उन्नतिकरणोपदेशः—उन्नति करने का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम्। स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥१॥

भाषार्थः—(सहस्रार्घः) सहस्रों पूजा वाला, (शतकाण्डः) सैकड़ों सहारे देने वाला, (पयस्वान्) अन्नवाला, (अपाम्) जलों की (अग्निः) अग्नि [के समान व्यापक] (वीरुधाम्) ओषधियों के (राजसूयम्) राजसूय [बड़े यज्ञ के समान उपकारी] है। (सः अयम्) वही (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (परि पातु) पालता रहे, (देवः) प्रकाशमान (मणिः) प्रशंसनीय [वह परमेश्वर] (नः) हमें (आयुषा) [उत्तम] जीवन के साथ (सं सृजाति) संयुक्त करे ॥१॥

भावार्थः—जो जल के भीतर अग्नि के समान सर्वव्यापक परमेश्वर सृष्टि की अनेक प्रकार रक्षा करता है, मनुष्य उसकी भक्ति से प्रयत्नपूर्वक अपने जीवन को सुफल बनावें ॥१॥

इस मन्त्र का तीसरा पाद आ चुका है—सू० ३२ म० १० ॥

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः। नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥२॥

भाषार्थः—(घृतात्) प्रकाश से (उल्लुप्तः) ऊपर खींचा गया, (मधुमान्) ज्ञानवान्, (पयस्वान्) अन्नवान् (भूमिदृंहः) भूमि का दृढ़ करने वाला, (अच्युतः) अटल, (च्यावयिष्णुः) शत्रुओं को हटा देने वाला, (सपत्नान्) विरोधियों को (नुदन्) निकालता हुआ (च) और (अधरान्) नीचे (कृण्वन्) करता हुआ तू, (दर्भ) हे दर्भ! [शत्रुविदारक परमेश्वर] (महताम्) बड़ों के (इन्द्रियेण) ऐश्वर्य के साथ (आ) सब ओर से (रोह) प्रकट हो ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकाशस्वरूप अविनाशी परमात्मा ने विघ्नों को हटाकर पृथिवी आदि लोक रचे और धारण किये हैं, उसी के आश्रय से सब लोग ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० ५। २८। १४ और प्रथमपाद आगे है—अ० १९। ४६। ६॥

त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे। त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (त्वम्) तू (ओजसा) पराक्रम से (भूमिम्) भूमि को (अति एषि) पार कर जाता है, (त्वम्) तू (चारुः) शोभायमान होकर (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञ में (वेद्याम्) वेदी पर (सीदति) बैठता है। (त्वाम् पवित्रम्) तुझ पवित्र को (ऋषयः) ऋषियों [तत्त्वदर्शियों] ने (अभरन्त) धारण किया है, (त्वम्) तू (दुरितानि) संकटों को (अस्मत्) हम से (पुनीहि) शुद्ध कर ॥३॥

भावार्थः—वह परमात्मा पृथिवी आदि अनन्त लोकों का अद्वितीय सर्वोपरि शासक है, हे मनुष्यो ! उसी की आज्ञा मानकर दुष्कर्मों को त्याग अपने को शुद्ध बनाओ ॥३॥

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (तीक्ष्णः) तीक्ष्ण (राजा) राजा, (विषासहिः) सदा विजयी, (रक्षोहा) राक्षसों का नाश करने हारा, (विश्वचर्षणिः) सर्वद्रष्टा और (देवानाम्) विद्वानों का (ओजः) पराक्रम और (एतत्) यह [दृश्यमान] (उग्रम्) उग्र (बलम्) बल है, (तम्) उस [परमात्मा] को (ते) तेरी (जरसे) स्तुति बढ़ाने [वा निर्बलता हटाने] के लिये और (स्वस्तये) मङ्गल के लिये (बध्नामि) मैं धारण करता हूं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वशक्तिमान् सर्वदर्शक जगदीश्वर को हृदय में धारण करके उपाय के साथ निर्बलता हटावें और सामर्थ्य बढ़ाकर स्तुति प्राप्त करते हुए आनन्द भोगें ॥४॥

दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसा धान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (त्वम्) तू (दर्भेण) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] के साथ (वीर्याणि) वीरताय (कृणवत्) करता रहे, और (दर्भम्) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ तू (आत्मना) अपने आत्मा से (मा व्यथिष्ठाः) मत व्याकुल हो। (अध) और (वर्चसा) तेज के साथ (अन्यान्) दूसरों से (अतिष्ठाय, बढ़ जाकर, (सूर्यः इव) सूर्य के समान (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं में (आ) सर्वथा (भाहि) प्रकाशमान हो ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः– मनुष्य परमात्मा को हृदय में धारण करके आत्मबल बढ़ाते हुए पराक्रमी होकर सब संसार में कीर्त्ति पावें ॥५॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥३४॥

१—१० ॥ जङ्गिडो देवता ॥ १, २, ८ निचृदनुष्टुप्, ३—७, ६, १० अनुष्टुप् ॥

सर्वरक्षणोपदेशः—सब की रक्षा का उपदेश ॥

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥१॥

भाषार्थः—[हे औषध !] तू (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला] (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (असि) है, तू (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला] (रक्षिता) रक्षक (असि) है। (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (अस्माकम्) हमारे (सर्वम्) सब (द्विपात्) दोपाये और (चतुष्पात्) चौपाये की (रक्षतु) रक्षा करे ॥१॥

भावार्थः—जङ्गिड उत्तम औषध विशेष शरीर में प्रविष्ट होकर रुधिर का संचार करके रोग को मिटाता है, मनुष्य उसके सेवन से स्वास्थ्य बढ़ावें ॥१॥

इस सूक्त का मिलान करो—अ० २।४।१—६॥

या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(याः) जो (त्रिपञ्चाशीः) तीन वार पचास [डेढ़ सौ अर्थात् असंख्य] (गृत्स्यः) ललचाने वाली [पीड़ायें] (च) और (ये) जो (शतम्) सौ [बहुत] (कृत्याकृतः) दुःख करने वाले [रोग] हैं। (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (सर्वान्) उन सब [रोगों] को (तेजसः) [उनके] प्रभाव से (विनक्तु) अलग करे और (अरसान्) नीरस [निष्प्रभाव] (करत्) कर देवे ॥२॥

भावार्थः- जैसे जङ्गिड औषध अनेक रोगों को नाश करता है, वैसे ही विद्वान् जन आत्मिक और शारीरिक क्लेशों को हटावें ॥२॥

अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥३॥

भाषार्थः—(अरसम्) नीरस [निष्प्रभाव], (कृत्रिमम्) बनावटी (नादम्) ध्वनि को, और (अरसाः) नीरस [निष्प्रभाव] (सप्त) सात [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख में की] (विस्रसः) विचल करने वाली [निर्बलताओं] को और (अमतिम्) दुर्बुद्धि को (इतः) इस [रोगी] से, (जङ्गिड) हे जङ्गिड ! [संचार करने वाले औषध] (अस्ता इव) धनुर्धारी के समान (इषुम्) बाण को (अप शातय) दूर गिरा दे ॥३॥

भावार्थः—रोग के कारण से जो शब्द में, इन्द्रियों में और बुद्धि में विकार हो जाता है, वह जङ्गिड ओषधि के सेवन से अच्छा होता है ॥३॥

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥४॥

भाषार्थः—(अयम्) यह [पदार्थ] (एव) निश्चय करके (कृत्यादूषणः) पीड़ाओं का नाश करने वाला (अथो) और भी (अरातिदूषणः) कंजूसी मिटाने वाला है। (अथो) और भी (सहस्वान्) वह महाबली (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्र तारिषत्) बढ़ावे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम औषध जङ्गिड के सेवन से रोगों का नाश करके आत्मिक और शारीरिक स्वास्थ्य बढ़ावें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० २।४।६॥

स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(जङ्गिडस्य) जङ्गिड [संचार करने वाले औषध] की (सः) वह (महिमा) महिमा (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (परि पातु) पालती रहे। (येन) जिस [महिमा] से (ओजः) पराक्रम रूप उस [जङ्गिड] ने (ओजसा) बलपूर्वक (विष्कन्धम्) विष्कन्ध [विशेष सुखाने वाले वात रोग] को और (संस्कन्धम्) संस्कन्ध [सब शरीर में व्यापने वाले महावात रोग] को (ससह) दबाया है ॥५॥

भावार्थः—जङ्गिड औषध के उपयोग से सब प्रकार के वात रोग मिटते हैं ॥५॥

त्रिष्ट्वा देवा अंजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥६॥

भाषार्थः—[हे औषध !] (देवाः) विद्वानों ने (भूम्याम्) भूमि में (अधि) भले प्रकार (निष्ठितम्) जमे हुए (त्वा) तुझ को (त्रिः) तीन वार [जोतने, बोने और सींचने से] (अजनयन्) उत्पन्न किया है। (उ) और (पूर्व्याः) प्राचीन (ब्राह्मणाः) विद्वान् वैद्य लोग (तम् त्वा) उस तुझ को (विदुः) जानते हैं—(अङ्गिराः इति) कि यह अङ्गिरा [बड़ा व्यापनशील] है ॥६॥

भावार्थः—बड़े बड़े वैद्य लोग जङ्गिड औषध के प्रभाव को सदा से जानतें और उसकी प्राप्ति का उपाय करते रहे हैं ॥६॥

न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥७॥

भाषार्थः—(न) न तो (त्वा) तुझ से (पूर्वाः) पहिली और (न) न (त्वा) तुझ से (याः) जो (नवाः) नवीन (ओषधयः) ओषधें हैं, (तरन्ति) वै बढ़ कर हैं। (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचारक औषध] (विबाधः) [रोगों का] विशेष रोकने वाला, (उग्रः) उग्र (परिपाणः) सर्वथा रक्षक और (सुमङ्गलः) बड़ा मङ्गलकारी है ॥७॥

भावार्थः—जङ्गिड औषध सब औषधों में श्रेष्ठ और बड़ा स्वास्थ्यकारक है ॥७॥

अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य ।
पुरा तं उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अथ) और, (उपदान) हे ग्रहण करने योग्य ! (भगवः) हे ऐश्वर्यवान् ! (अमितवीर्य) हे अपरिमित सामर्थ्य वाले ! (जङ्गिड) हे जङ्गिड ! [संचार करने वाले औषध] (उग्राः) तेजस्वी लोग (ते) तेरा (ग्रसते) ग्रास करते हैं, [इसलिये] (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] ने (पुरा) पहिले काल में [तुझे] (वीर्यम्) सामर्थ्य (उप ददौ) दिया है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा ने यह विचार कर कि जङ्गिड औषध सर्वोपकारी होवे, उसको पहिले ही से बड़ा प्रभावशाली बनाया है ॥८॥

उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्रं ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वांश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे ॥९॥

भाषार्थः—(वनस्पते) हे वनस्पति ! [सेवा करने वालों के रक्षक] (ते) तुझ को (उग्रः) उग्र (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] ने (इत्) ही (ओज्मानम्) बल (आ) सब ओर से (दधौ) दिया है। (ओषधे) हे ओषधि ! (सर्वाः) सब (अमीवाः) पीड़ाओं को (चातयन्) नाश करता हुआ तू (रक्षांसि) राक्षसों [रोग जन्तुओं] को (जहि) मार ॥९॥

भावार्थः मनुष्य जङ्गिड औषध के सेवन से सब रोगों को नाश करके रोग जन्तुओं का भी नाश करें ॥९॥

आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥१०॥

भाषार्थः—(आशरीकम्) आशरीक [शरीर कुचल डालने वाले रोग] को (विशरीकम्) विशरीक [शरीर तोड़ डालने वाले रोग] को, (बलासम्) बलास [बल के गिराने वाले सन्निपात कफ आदि रोग] को, (पृष्टचामयम्) पसली [वा छाती] की पीड़ा को, (विश्वशारदम्) सब शरीर में चकत्ते करने वाले (तक्मानम्) जीवन के कष्ट देने वाले ज्वर को [इन सब रोगों को] (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (अरसान्) नीरस [निष्प्रभाव] (करत्) करे ॥१०॥

भावार्थः—जङ्गिड औषध के सेवन से शरीर के अनेक रोग निष्प्रभाव हो जाते हैं ॥१०॥

सूक्तम् ॥३५॥

१—५ ॥ जङ्गिडो देवता ॥ १, ५ अनुष्टुप्, २ निचृदनुष्टुप्, ३ निचृत्पथ्या पङ्क्तिः, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वरक्षोपदेशः—सब की रक्षा का उपदेश ॥

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः ।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] का (नाम) नाम (गृह्णन्तः) लेते हुए (ऋषयः) ऋषियों [तत्त्वदर्शियों] ने (जङ्गिडम्) जङ्गिड [संचार करने वाले औषध] को (ददुः) दिया है। (यम्) जिसको (देवाः) विद्वानों ने (अग्रे) पहिले से (विष्कन्धदूषणम्) विष्कन्ध [विशेष सुखाने वाले वात रोग] का मिटाने वाला (भेषजम्) औषध (चक्रुः) किया है ॥१॥

भावार्थः - तत्त्वदर्शी वैद्यों ने परमेश्वर की सृष्टि में खोज लगाते लगाते जङ्गिड औषध को बड़ा अद्भुत माना है ॥१॥

इस सूक्त का मिलान करो गत सूक्त से तथा—अथर्व का० २ । ४ से ॥

स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव ।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥२॥

भाषार्थः—(सः) वह (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (नः) हमारी (रक्षतु) रक्षा करे, (एव) जैसे (धनपालः) धनरक्षक (धना) धनों की। (यम्) जिस [औषध] को (देवाः) कामना योग्य (ब्राह्मणाः) वेदज्ञानियों ने (अरातिहम्) शत्रुनाशक (परिपाणम्) महारक्षक (चक्रुः) किया है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के परीक्षित औषध जङ्गिड का सेवन करके रोगों से अपनी रक्षा करें, जैसे कोशाध्यक्ष हानि से कोश की रक्षा करता है ॥२॥

दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् । तांस्त्वं
सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥३॥

भाषार्थः—(दुर्हार्दः) कठोर हृदय वालों को, (संघोरम्) बड़े भयानक (चक्षुः) नेत्र को, और (पापकृत्वानम्) पाप करने वाले पुरुष को (आ अगमम्) मैंने पाया है। (सहस्रचक्षो) हे सहस्र प्रकार से देखे गये ! (त्वम्) तू (तान्) उनको (प्रतिबोधेन) सावधानी से (नाशय) नाश कर, तू (परिपाणः) महारक्षक (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (असि) है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य जङ्गिड का सेवन करते हैं, वे महाबली होकर शत्रुओं का नाश करते हैं ।।३।।

परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः । परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ।।४।।

भावार्थः—(मा) मुझे (दिवः) सूर्य से (परि) सर्वथा, (मा) मुझे (पृथिव्याः) पृथिवी से (परि) सर्वथा, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (परि) सर्वथा, (मा) मुझे (वीरुद्भ्यः) ओषधियों से (परि) सर्वथा। (मा) मुझे (भूतात्) वर्तमान से (परि) सर्वथा, (उत) और (मा) मुझे (भव्यात्) भविष्यत् से (परि) सर्वथा और (दिशोदिशः) प्रत्येक दिशा से (अस्मान्) हम सब को (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (पातु) पाले ।।४।।

भावार्थः मनुष्यों को चाहिये कि सब स्थानों और सब कालों के अनुकूल जङ्गिड औषध के सेवन से अपनी और अपने हितकारियों की रक्षा करें ।।४।।

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
सर्वास्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ।।५।।

भावार्थः—(ये) जो (देवकृताः) उन्मत्तों के किये हुए (ऋष्णवः) हिंसक व्यवहार हैं, (उतो) और भी (यः) जो (अन्यः) दूसरा [खोटा व्यवहार] (ववृते) वर्तमान हुआ है। (तान् सर्वान्) उन सब को (विश्वभेषजः) सर्वौषध (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (अरसान्) नीरस [निष्प्रभाव] (करत्) करे ।।५।।

भावार्थः—जो कोई रोग उन्मत्तों के कुकर्म अथवा अपने कुपथ्य से उत्पन्न होवे, मनुष्य जङ्गिड के सेवन से रोगनिवृत्ति करके सुखी रहें ।।५।।

सूक्तम् ।।३६।।

१—६। शतवारो देवता ।। १, २ अनुष्टुप्, ३—६ निचृदनुष्टुप् ।।

रोगनाशोपदेशः—रोगों के नाश का उपदेश ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥१॥

भाषार्थः—(दुर्णामचातनः) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर आदि रोगों] को नाश करने वाले (मणिः) प्रशंसनीय (शतवारः) शतवार [सैकड़ों से स्वीकार करने योग्य औषध विशेष] ने (वर्चसा सह) प्रकाश के साथ (आरोहन्) ऊंचे होते हुए (तेजसा) अपनी तीक्ष्णता से (यक्ष्मान्) राजरोगों [क्षयी आदि] और (रक्षांसि) राक्षसों [रोगजन्तुओं] को (अनीनशत्) नष्ट कर दिया है ॥१॥

भावार्थः—शतवार औषध के सेवन से क्षयी, बवासीर आदि रोग नष्ट होते हैं, और वे रोगजन्तु भी नष्ट होते हैं जो शरीर में दाद बवासीर आदि के कारण हैं ॥१॥

शतवार और शतावरी एक ही औषध जान पड़ते हैं जिसके नाम शतमूली आदि हैं ॥

शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः ।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥२॥

भाषार्थः—वह [शतवार] (शृङ्गाभ्याम्) अपने दोनों सींगों [अगले भागों] से (रक्षः) राक्षस और (मूलेन) जड़ से (यातुधान्यः) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नुदते) ढकेलता है। (मध्येन) मध्य भाग से (यक्ष्मम्) राजरोग को (बाधते) हटाता है, (एनम्) इसको (पाप्मा) [कोई] अनहित (न) नहीं (अति तत्रति) दबा सकता है ॥२॥

भावार्थः—इस सर्वौषध का प्रत्येक अङ्ग प्रत्येक रोग को हरता है ॥२॥

ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३॥

भाषार्थः—(ये) जो (यक्ष्मासः) राजरोग (अर्भकाः) छोटे और [जो] (महान्तः) बड़े हैं, (च) और (ये) जो (शब्दिनः) महाशब्दकारी हैं। (सर्वान्) उन सब को (दुर्णामहा) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर दाद आदि] के मिटाने हारे, (मणिः) प्रशंसनीय (शतवारः) शतवार [मन्त्र १] ने (अनीनशत्) नष्ट कर दिया है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—छोटे बड़े राजरोग आदि और वे रोग जिनसे शरीर में खुजली वा चरचराहट शब्द होता है, शतवार औषध से सब नष्ट हो जाते हैं ॥३॥

शतं वीरानंजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् ।
दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥४॥

भाषार्थः—उस [शतवार] ने (शतम्) सौ [अनेक] (वीरान्) वीर (अजनयत्) उत्पन्न किये हैं, (शतम्) सौ [अनेक] (यक्ष्मान्) राजरोग (अप अवपत्) इतर वितर किये हैं। वह (सर्वान्) सब (दुर्णाम्नः) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर आदि] को (हत्वा) मारकर (रक्षांसि) राक्षसों [रोगजन्तुओं] को (अवधूनुते) हिला डालता है ॥४॥

भावार्थः—शतवार औषध के सेवन से वीर्य पुष्ट होकर सब वीर सन्तान उत्पन्न होते हैं, और सब दुष्ट रोग नष्ट होते हैं ॥४॥

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।
दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥५॥

भाषार्थः—(हिरण्यशृङ्गः) सोने के समान सींग [अगले भाग] वाला, (ऋषभः) ऋषभ [औषध विशेष के समान] (अयम्) इस (मणिः) प्रशंसनीय (शतवारः) शतवार ने (सर्वान्) सब (दुर्णाम्नः) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर आदि] को (तृड्ढ्वा) मार कर (रक्षांसि) राक्षसों [रोग जन्तुओं] को (अव अक्रमीत्) खूंद डाला है ॥५॥

भावार्थः जैसे ऋषभ औषध बहुत बलकारी और अनेक रोगनाशक है, वैसे ही यह शतवार औषध है ॥५॥

शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥६॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (दुर्णाम्नीनां शतम्) सौ दुर्नाम्नी [बवासीर आदि पीड़ाओं] को और (गन्धर्वाप्सरसां शतम्) सौ गन्धर्वों [पृथिवी पर धरे हुए] और अप्सराओं [आकाश में चलने वाले रोगों] को और (शश्वन्वतीनां शतम्) सौ उछलती हुई [पीड़ाओं] को (शतवारेण) शतवार [औषध] से (वारये) हटाता हूं ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः— जो रोग शरीर की मलीनता से पृथिवी और आकाश में जल वायु की मलीनता से और जो रोग एक दूसरे के लगाव से उत्पन्न होते हैं, वैद्य लोग उनको शतवार औषध से नाश करें ॥६॥

सूक्तम् ॥३७॥

१—४ ॥ अग्निर्देवता ॥ १ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, २ विराडार्षी पङ्क्तिः; ३ विराडार्षी बृहती; ४ स्वराडार्ष्युष्णिक् ॥

बलप्राप्त्युपदेशः—बल की प्राप्ति का उपदेश ॥

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥१॥

भाषार्थः—(अग्निना) अग्नि [प्रकाशस्वरूप परमेश्वर] करके (दत्तम्) दिया गया (इदम्) यह (वर्चः) प्रताप, (भर्गः) प्रकाश, (यशः) यश (सहः) उत्साह, (ओजः) पराक्रम, (वयः) पौरुष और (बलम्) बल (आ अगन्) आया है। (च) और (यानि) जो (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस (वीर्याणि) वीर कर्म हैं, (तानि) उनको (अग्निः) अग्नि [प्रकाशस्वरूप परमात्मा] (मे) मुझे (प्र ददातु) देता रहे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के दिये साधनों से अनेक प्रकार का बल प्राप्त करें और तेतीस जो आठ वसु आदि देवता हैं [देखो अथर्व० १९। २७। १०], उनसे भी सदा उपकार लेते रहें ॥१॥

वर्च आ धेहि मे तन्वां३ सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥२॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (मे) मेरे (तन्वाम्) शरीर में (वर्चः) प्रताप, (सहः) उत्साह, (ओजः) पराक्रम, (वयः) पौरुष और (बलम्) बल (आ धेहि) धारण कर दे। (इन्द्रियाय) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] के योग्य (कर्मणे) कर्म के लिये, (वीर्याय) वीरता के लिये और (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले [जीवन] के लिये (त्वा) तुझ को (प्रति गृह्णामि) मैं अङ्गीकार करता हूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या की प्राप्ति से परमेश्वरीय नियमों पर चलकर अपना यश बढ़ावें ॥२॥

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] (त्वा) तुझे (ऊर्जे) अन्न के लिये, (बलाय) बल के लिये, (त्वा) तुझे (ओजसे) पराक्रम के लिये, (त्वा) तुझे (सहसे) उत्साह के लिये, (त्वा) तुझे (अभिभूयाय) विजय के लिये, और (राष्ट्रभृत्याय) राज्य के पोषण के लिये और (शतशारदाय) सौ वर्ष वाले [जीवन] के लिये (परि) अच्छे प्रकार [ऊहामि] तर्क से निश्चय करता हूँ ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा में श्रद्धा करते हैं, वे सब प्रकार का बल प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं ॥३॥

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥४॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] (ऋतुभ्यः) ऋतुओं के लिये, (आर्तवेभ्यः) ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों के लिये, (माद्भ्यः) महीनों के लिये, (संवत्सरेभ्यः) वर्षों के लिये, (धात्रे) पोषक पुरुष के लिये, (विधात्रे) बुद्धिमान् जन के लिये, (समृधे) बढ़ती करने वाले के लिये और (भूतस्य) प्राणी मात्र के (पतये) रक्षक पुरुष के लिये (त्वा) तुझे (यजे) मैं पूजता हूं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि अपने समस्त समय और समस्त पदार्थों को संसार के हित में लगाकर परमात्मा की उपासना करते रहें ॥४॥

सूक्तम् ॥३८॥

१-३ गुल्गुलुर्देवता ॥ १ अनुष्टुप्, २ निचृदनुष्टुप्, ३ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ॥

रोगनाशनोपदेशः—रोग नाश करने का उपदेश ॥

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥१॥

भाषार्थः—(न) न तो (तम्) उस [पुरुष] को (यक्ष्माः) राजरोग (अरुन्धते=आरुन्धते) रोकते हैं, और (न) नहीं (एनम्) उसको (शपथः) शाप [क्रोध वचन] (अश्नुते) व्यापता है, (यम्) जिस [पुरुष] को (गुल्गुलोः) गुल्गुलु [गुग्गुल] (भेषजस्य) औषध का (सुरभिः) सुगन्धित (गन्धः) गन्ध (अश्नुते) व्यापता है ॥१॥

भावार्थः—जिस घर में गुग्गुल आदि सुगन्धित द्रव्यों का गन्ध किया जाता है, वहां रोग नहीं होता ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गुल्गुलु) शब्द पहिले आ चुका है—अ० २ । ३६ । ७ ॥

विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते ।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥२॥
उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥३॥

भाषार्थः—(तस्मात्) उस [पुरुष] से (विष्वञ्चः) सब ओर फैले हुए (यक्ष्माः) राजरोग, (मृगाः) हरिण [वा] (अश्वा इव) घोड़ों के समान (ईरते) दौड़ जाते हैं। (यत्) जहां पर तू (सैन्धवम्) नदी से उत्पन्न, (वा) अथवा (यत्) जहां पर (समुद्रियम्) समुद्र से उत्पन्न हुआ (अपि) ही (गुल्गुलु) गुल्गुलु [गुग्गुल] (असि) होता है ॥२॥ (उभयोः) दोनों के (नाम) नाम को (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (अरिष्टतातये) कुशल करने को (अग्रभम्) मैं ने लिया है ॥३॥

भावार्थः—गुग्गुल नदी वा समुद्र के पास के वृक्ष विशेष का निर्यास अर्थात् गोंद होता है, उसको अग्नि पर जलाने से सुगन्ध उठता है जिससे अनेक रोग नष्ट होते हैं ॥२, ३॥

सूक्तम् ॥३९॥

१—१० ॥ कुष्ठो देवता ॥ १, ९, १० अनुष्टुप्, २, ३ पथ्या पङ्क्तिः, ४ षट्पदा जगती, ५ शक्वरी, ६—८ अष्टिः ॥

रोग नाशनोपदेशः—रोगनाश करने का उपदेश ॥

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥१॥

भाषार्थः—(देवः) दिव्य गुण वाला, (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (कुष्ठः) कुष्ठ [रोग बाहर करने वाला औषध विशेष] (हिमवतः परि) हिम वाले देश से (आ एतु) आवे। तू (सर्वम्) सब (तक्मानम्) जीवन के कष्ट देने वाले ज्वर को (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नाशय) नाश कर दे ॥१॥

भावार्थः—कुष्ठ वा कूट औषध ठंढे देशों में होता है, उसको प्राप्त करके ज्वर आदि रोगों का नाश करें ॥१॥

इस सूक्त का मिलान करो—अथर्व० ४ । ५ तथा ६ । ९५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः। नद्यायं
पुरुषो रिषत्। यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥२॥

भाषार्थः—(कुष्ठ) हे कुष्ठ! [मन्त्र १] (ते) तेरे (त्रीणि) तीन (नामानि) नाम हैं (नद्यमारः) नद्यमार [नदी में उत्पन्न रोगों का मारने वाला], और (नद्यरिषः) नद्यरिष [नदी में उत्पन्न रोगों का हानि करने वाला]। (नद्य) हे नद्य! [नदी में उत्पन्न कुष्ठ] (अयम्) वह (पुरुषः) पुरुष [रोगों को] (रिषत्) मिटावे। (यस्मै) जिस को (त्वा) तुझे (सायंप्रातः) सायंकाल और प्रातः काल (अथो) और भी (दिवा) दिन में (परिब्रवीमि) मैं बतलाऊं ॥२॥

भावार्थः—इस औषध के तीन नाम हैं—कुष्ठ, नद्यमार और नद्यरिष। मनुष्य उसके सेवन से सब रोगों का नाश करें ॥२॥

जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता। नद्यायं
पुरुषो रिषत्। यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥३॥

भाषार्थः—[हे कुष्ठ!] (जीवला) जीवला [जीवन देने वाली] (नाम) नाम (ते) तेरी (माता) माता [बनाने वाली पृथिवी] है, (जीवन्तः) जीवन्त [जिलाने वाला] (नाम) नाम (ते) तेरा (पिता) पिता [पालने वाला सूर्य वा मेघ] है। (नद्य) हे नद्य! [नदी में उत्पन्न कुष्ठ] (अयम्) वह···[मन्त्र २] ॥३॥

भावार्थः—कुष्ठ औषध पृथिवी और सूर्य वा मेघ के सम्बन्ध से उत्पन्न होकर अनेक कठिन रोगों का नाश करता है ॥३॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० १। २४। ३ तथा ८। २। ६॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव।
नद्यायं पुरुषो रिषत्। यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥४॥

भाषार्थः [हे कुष्ठ!] तू (ओषधीनाम्) ओषधियों में (उत्तमः) उत्तम (असि) है, (इव) जैसे (जगताम्) गतिशीलों [गौ आदि पशुओं] में (अनड्वान्) रथ ले चलने वाला बैल और (इव) जैसे (श्वपदाम्) कुत्ते के समान पैर वाले हिंसक जन्तुओं में (व्याघ्रः) बाघ [है]। (नद्य) हे नद्य [नदी में उत्पन्न कुष्ठ] (अयम्) वह···[मन्त्र २] ॥४॥

भावार्थः—स्पष्ट है ॥४॥

इस मन्त्र का प्रथम भाग आ चुका है—अ० ८। ५। ११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि । त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः । स कुष्ठो विश्वभेषजः । साकं सोमेन तिष्ठति । तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥५॥

भाषार्थः—(शाम्बुभ्यः) उपाय करने वाले (अङ्गिरेभ्यः) ज्ञानियों के लिये (त्रिः) तीन वार [बालकपन, यौवन और बुढ़ापे में], (आदित्येभ्यः) अखण्ड ब्रह्मचारियों के लिये (त्रिः) तीन वार [बालकपन आदि में] और (विश्वदेवेभ्यः) सब विद्वानों के लिये (त्रिः) तीन वार [बालकपन आदि में] (परि) सब प्रकार (जातः) प्रकट हुआ (सः) वह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (सोमेन साकम्) सोमरस के साथ (तिष्ठति) ठहरता है [सोम के समान गुणकारी है]। तू (सर्वम्) सब (तक्मानम्) जीवन के कष्ट देने वाले ज्वर को (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नाशय) नाश करदे ॥५॥

भावार्थः—यह कुष्ठ महौषध विद्वानों के लिये बालकपन, यौवन और बुढ़ापे तीनों पनों में सोमरस के समान स्वास्थ्यवर्द्धक है ॥५॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥६॥

भाषार्थः—(देवसदनः) विद्वानों के बैठने योग्य (अश्वत्थः) वीरों के ठहरने का देश (तृतीयस्याम्) तीसरी [निकृष्ट और मध्य अवस्था से परे, श्रेष्ठ] (दिवि) अवस्था में (इतः) प्राप्त होता है। (तत्र) उस में (अमृतस्य) अमृत [अमरपन] का (चक्षणम्) दर्शन है, (ततः) उस से (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (अजायत) प्रकट हुआ है। (सः) वह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ···[म० ५] ॥६॥

भावार्थः—जहाँ पर विद्वान् वीरों का निवास होता है, वहां कुष्ठ महौषध के उपयोग से आनन्द बढ़ता है ॥६॥

इस मन्त्र के पहिले दो भाग कुछ भेद से आ चुके हैं—अ० ५। ४। ३। और ६। ९५। १॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥७॥

भाषार्थः—(हिरण्ययी) तेज वाली [अग्नि वा बिजुली वा सूर्य से चलने वाली], (हिरण्यबन्धना) तेजोमय बन्धनों वाली (नौः) नाव (दिवि) व्यवहार में (अचरत्) चलती थी। (तत्र) उस में (अमृतस्य) अमृत [अमरपन] का (चक्षणम्) दर्शन है, (ततः) उससे (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (अजायत) प्रकट हुआ है। (सः) वह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ··· [म० ५] ॥७॥

भावार्थः - जहां पर विद्वान् लोग विज्ञान प्राप्त करके नाव आदि यानों को अग्नि आदि से चलाते हैं, वहां कुष्ठ महौषधि बड़ा उपकारी होता है ॥७॥

इस मन्त्र के पहिले दो भाग कुछ भेद से आ चुके हैं—अ० ५। ४। ४। तथा ६। ९५। २॥

यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां (अवप्रभ्रंशनम्) नीचे गिर जाना (न) नहीं है, और (यत्र) जहां (हिमवतः) हिम वाले स्थान का (शिरः) शिर है। (तत्र) उस में (अमृतस्य) अमृत [अमरपन] का (चक्षणम्) दर्शन है, (ततः) उससे (कुष्ठः) कुष्ठ [म० १] (अजायत) प्रकट हुआ है। (सः) वह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ··· [म० ५] ॥८॥

भावार्थः—हिम पृथिवी से ऊंचे स्थान पर गिरता है। जहां पर जो मार्ग में विना फिसले ऊंचा चढ़ जाता है, वहां वह कुष्ठ महौषध को पाकर प्रसन्न होता है ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः ।
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥९॥

भाषार्थः—(कुष्ठ) हे कुष्ठ ! [मन्त्र १] (यम् त्वा) जिस तुझ को (पूर्वः) पहिला [मुख्य] (इक्ष्वाकः) ज्ञान को प्राप्त होने वाला, (वा) अथवा (यम् त्वा) जिस तुझ को (काम्यः) कामनायुक्त, (वा) अथवा (यम्) जिस को (वसः) निवास देने वाला, [वा] (यम्) जिस को (आत्स्यः) सब ओर को सदा चलने वाला [पुरुष] (वेद) जानता है, (तेन) उस [कारण] से तू (विश्वभेषजः) सर्वौषध (असि) है ॥९॥

भावार्थः—बड़े बड़े विद्वान्, पुरुषार्थी लोग परीक्षा करके कुष्ठ को सर्वौषध जानते हैं ॥९॥

शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥१०॥

भाषार्थः—(शीर्षलोकम्) शिर में स्थान वाले [शिर में पीड़ा करने वाले] (तृतीयकम्) तिजारी, और (यः) जो (सदन्दिः) सदा फूटन करने वाला (च) और (हायनः) प्रतिवर्ष होने वाला [ज्वर] है। (विश्वधावीर्य) हे सब प्रकार सामर्थ्य वाले [कुष्ठ !] (तक्मानम्) उस दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (अधराञ्चम्) नीचे स्थान में (परा सुव) दूर गिरा दे ॥१०॥

भावार्थः—कुष्ठ महौषध के सेवन से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥१०॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आ चुका है—अ० ५।२२।३॥

सूक्तम् ॥४०॥

१—४॥ १ बृहस्पतिः; २ आपः; ३, ४ अश्विनौ देवते ॥ १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् २ विराडार्षी बृहती; ३ अनुष्टुप् ४ गायत्री ॥

बुद्धिवर्धनोपदेशः—बुद्धि बढ़ाने का उपदेश ॥

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) जो (मे) मेरे (मनसः) मन का (च) और (यत्) जो (वाचः) वाणी का (छिद्रम्) दोष है, [जिससे] (सरस्वती) सरस्वती [उत्तम वेद-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या] (मन्युमन्तम्) क्रोधयुक्त [व्यवहार] को (जगाम) प्राप्त हुई है। (तत्) उस [दोष] को (विश्वैः) सब (देवैः सह) उत्तम गुणों के साथ (संविदानः) मिलता हुआ (बृहस्पतिः) बड़े आकाश आदि का पालक परमेश्वर (सं दधातु) सन्धियुक्त करे ॥१॥

भावार्थः–जब मनुष्य मानसिक वा वाचिक दोष से विद्या देवी को क्रोधित कर देवे, वह परमात्मा की शरण लेकर अपनी न्यूनतायें पूरी करे ॥१॥

इस मन्त्र का मिलान करो—यजु० ३६।२॥

मा न॒ आपो॑ मे॒धां मा ब्रह्म॒ प्र म॑थिष्टन ।
सु॒ष्य॒दा यू॒यं स्य॑न्दध्व॒मुप॑हूतो॒ऽहं सु॒मेधा॑ वर्च॒स्वी ॥२॥

भाषार्थः—(आपः) जल [के समान शान्तस्वरूप प्रजाओ] तुम (मा) न (नः) हमारी (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को और (मा) न (ब्रह्म) वेदज्ञान को (प्र मथिष्टन) नष्ट करो। (सुष्यदाः) सहज में बहने वाले (यूयम्) तुम (स्यन्दध्वम्) बहते जाओ। (उपहूतः) आवाहन किया हुआ (अहम्) मैं (सुमेधाः) सुन्दर बुद्धि वाला और (वर्चस्वी) बड़ा प्रतापी [हो जाऊं] ॥२॥

भावार्थः—जैसे प्रभूत जल बे रोक टोक सहज में बहता चला जाता है, वैसे ही मनुष्य सब विघ्नों को हटाकर अपने सन्तान आदि को बुद्धिमान् और प्रतापी बनावें ॥२॥

मा नो॑ मे॒धां मा नो॑ दी॒क्षां मा नो॑ हिंसिष्टं॒ यत् तपः॑ ।
शि॒वा नः॒ शं स॒न्त्वायु॑षे शि॒वा भ॑वन्तु मा॒तरः॑ ॥३॥

भाषार्थः - [हे माता पिता ! म० ४] तुम दोनों (न) न तो (नः) हमारी (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को, (मा) न (नः) हमारी (दीक्षाम्) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] को और (मा) न (नः) हमारा (यत्) जो कुछ (तपः) तप [ब्रह्मचर्यादि] है, [उसको] (हिंसिष्टम्) नष्ट करो। (नः) हमारे (आयुषे) जीवन के लिये [वे प्रजायें] (शिवाः) कल्याणकारिणी और (शम्) शान्तिदायिनी (सन्तु) होवें, और (शिवाः) कल्याणकारिणी और (मातरः) माताओं [के समान] (भवन्तु) होवें ॥३॥

भावार्थः—माता पिता ऐसा प्रयत्न करें कि उनके सन्तान बुद्धिमान्, धर्मात्मा और सर्वहितैषी होवें, जिससे उनसे सब लोग माता के समान प्रीति करें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र कुछ भेद से महर्षि दयानन्दकृतसंस्कारविधि वानप्रस्थप्रकरण में व्याख्यात है ॥

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।

तामस्मे रासतामिषम् ॥४॥

भाषार्थः—(या) जो (ज्योतिष्मती) उत्तम ज्योति वाली [अन्न सामग्री] (तमः) अन्धकार का (तिरः) तिरस्कार करके (नः) हमें (पीपरत्) पूर्ण करे (अश्विना) व्यवहारों में व्यापक दोनों [माता पिता] (ताम्) उस (इषम्) अन्न सामग्री को (अस्मे) हमें (रासताम्) दिया करें ॥४॥

भावार्थः—माता पिता सन्तानों को ऐसा विद्वान् और बलवान् बनावें कि जिससे उत्तम अन्न के भोगने से नेत्रों में कभी अन्धकार न छाये, किन्तु सदा ज्योति बनी रहे ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । ४६ । ६ ॥

सूक्तम् ॥४१॥

मन्त्रः १ ॥ ऋषयो देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

कल्याणप्राप्त्युपदेशः—कल्याण की प्राप्ति का उपदेश ॥

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥१॥

भाषार्थः—(भद्रम्) कल्याण [श्रेष्ठ वस्तु] (इच्छन्तः) चाहते हुए, (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त होने वाले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (तपः) तप [ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदाध्ययन जितेन्द्रियतादि] और (दीक्षाम्) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] का (अग्रे) पहिले (उपनिषेदुः) अनुष्ठान किया है (ततः) उस से (राष्ट्रम्) राज्य, (बलम्) बल [सामर्थ्य] (च) और (ओजः) पराक्रम (जातम्) सिद्ध हुआ है, (तत्) उस [कल्याण] को (अस्मै) इस पुरुष के लिये (देवाः, विद्वान् लोग (उपसंनमन्तु) झुका देवें ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों ने पराक्रम से पहिले वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता आदि तप का अभ्यास करके महासुख पाया है, इस लिये ऋषि लोग प्रयत्न करें कि सब मनुष्य विद्वान् होकर महासुख को प्राप्त होवें ॥१॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि, वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम प्रकरण में व्याख्यात है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥४२॥

१—४ ॥ ब्रह्म देवता ॥ १ अनुष्टुप्; २ विराट् पथ्या पङ्क्तिः; ३ निचृत् त्रिष्टुप्; ४ विराडार्षी जगती ॥

ब्रह्मस्तुत्युपदेशः—वेद की स्तुति का उपदेश ॥

ब्रह्म होता ब्रह्म युज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥१॥

भाषार्थः (ब्रह्म=ब्रह्मणा) वेद द्वारा (होता) होता [हवनकर्ता], (ब्रह्म) वेद द्वारा (यज्ञाः) अनेक यज्ञ होते हैं, (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (स्वरवः) यज्ञस्तम्भ (मिताः) खड़े किये जाते हैं। (ब्रह्मणः) वेद से (अध्वर्युः) यज्ञ कर्ता (जातः) प्रसिद्ध होता है, (ब्रह्मणः) वेद के (अन्तर्हितम्) भीतर रक्खा हुआ (हविः) हवि [हवन विधान] है ॥१॥

भावार्थः—वेद द्वारा ही याजक, यज्ञव्यवहार और यज्ञविधान निश्चित होते हैं ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि संन्यासाश्रम प्रकरण में उद्धृत है ॥

ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता । ब्रह्म यज्ञस्य
तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः । शमिताय स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—(ब्रह्म=ब्रह्मणा) वेद द्वारा (घृतवतीः) घी वाली (स्रुचः) स्रुचायें [चमचे], (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (वेदिः) वेदी (उद्धिता) स्थिर की गयी है। (ब्रह्म) वेद द्वारा (यज्ञस्य) यज्ञ का (तत्त्वम्) तत्त्व (च) और (ये) जो (हविष्कृतः) हवन करने वाले (ऋत्विजः) ऋत्विज हैं [वे भी स्थिर किये हैं]। (शमिताय) शान्तिकारक [वेद] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] है ॥२॥

भावार्थः- वेद से ही यज्ञ के साधनों और यज्ञकर्ताओं का विधान किया जाता है ॥२॥

अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इममिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥३॥

भाषार्थः—(सुमतिम्) सुमति (आवृणानः) मांगता हुआ मैं (अंहोमुचे)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कष्ट से छुड़ाने हारे, (सुत्राव्णे) बड़े रक्षक [परमात्मा] के लिये (मनीषाम्) अपनी मनन शक्ति को (आ) सब ओर से (प्र भरे) समर्पण करता हूं। (इन्द्र) हे इन्द्र! [परम ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (इमम्) इस (हव्यम्) ग्राह्य स्तुति को (प्रति गृभाय) स्वीकार कर, (यजमानस्य) यजमान के (कामाः) मनोरथ (सत्याः) सत्य [पूर्ण] (सन्तु) होवें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि परमात्मा को आत्मसमर्पण करके सुमति के साथ अपने उत्तम मनोरथ सिद्ध करे ॥३॥

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥४॥

भाषार्थः-(अंहोमुचम्) कष्ट से छुड़ाने हारे, (यज्ञियानाम्) पूजा योग्यों में (वृषभम्) श्रेष्ठ, (अध्वराणाम्) हिंसा रहित यज्ञों के (विराजन्तम्) विशेष शोभायमान (प्रथमम्) मुख्य, (अपाम्) प्रजाओं के (नपातम्) न गिराने वाले [बड़े रक्षक, परमात्मा] को (हुवे) मैं बुलाता हूं। [हे उपासक!] (अश्विना) व्यवहारों में व्यापक माता पिता दोनों (इन्द्रियेण) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष के पराक्रम से (ते) तुझ को (धियः) बुद्धियां, (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (ओजः) पराक्रम (दत्तम्=दत्ताम्) देवें ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य माता पिता आचार्य आदि की शिक्षा से बुद्धिमान्, ऐश्वर्यवान् और पराक्रमी होकर परमात्मा की भक्ति करके उन्नति करें ॥४॥

सूक्तम् ॥४३॥

१—८ ब्रह्म देवता ॥ भुरिग् ब्राह्मी गायत्री ॥

ब्रह्मप्राप्त्युपदेशः—ब्रह्म की प्राप्ति का उपदेश ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह । अग्निर्मा
तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां [सुख में] (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी [ईश्वर वा वेद के जानने वाले लोग] (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुंचते हैं। (अग्निः) [अग्नि समान सर्वव्यापक परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां [सुख में] (नयतु) पहुंचावे, (अग्निः) अग्नि [व्यापक परमात्मा] (मेधाः) धारणावती बुद्धियां (मे)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझ को (दधातु) देवे। (अग्नये) अग्नि [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य योगी महात्माओं के समान दीक्षा और ब्रह्मचर्य आदि व्रत से परमेश्वर और शारीरिक और आत्मिक बल में दृढ़ रहकर अनेक प्रकार बुद्धियों को बढ़ाते हुए सुख प्राप्त करें ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि संन्यासाश्रम प्रकरण में उद्धृत है ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। वायुर्मा
तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे। वायवे स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी ··· [मन्त्र १]। (वायुः) वायु [पवन के समान शीघ्रगामी परमात्मा] (मा) मुझ को (तत्र) वहां (नयतु) पहुंचावे, (वायुः) वायु [परमात्मा] (मे) मुझे (प्राणान्) प्राणों को (दधातु) देवे, (वायवे) वायु [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥२॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। सूर्यो
मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे। सूर्याय स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी ··· [मन्त्र १]। (सूर्यः) सूर्य [सूर्य के समान प्रकाशमान परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु) पहुँचावे, (सूर्यः) सूर्य [परमात्मा] (मा) मुझ को (चक्षुः) दर्शन सामर्थ्य (दधातु) देवे (सूर्याय) सूर्य [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥३॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। चन्द्रो
मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे। चन्द्राय स्वाहा ॥४॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी ··· [मन्त्र १]। (चन्द्रः) चन्द्र [चन्द्र समान आनन्द देने वाला परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु) पहुंचावे, (चन्द्रः) चन्द्र [परमात्मा] (मे) मुझको (मनः) मननसामर्थ्य (दधातु) देवे। (चन्द्राय) चन्द्र [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥४॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । सोमो॒
मा॒ तत्र॑ नयतु॒ पयः॒ सोमो॑ दधातु मे । सोमा॑य॒ स्वाहा॑ ॥५॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी···[मन्त्र १]। (सोमः) सोम [सर्वोत्पादक परमेश्वर] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु) पहुंचावे, (सोमः) सोम [परमात्मा] (मे) मुझ को (पयः) अन्न (दधातु) देवे। (सोमाय) सोम [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान है ॥५॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । इन्द्रो॑
मा॒ तत्र॑ नयतु॒ बलमिन्द्रो॑ दधातु मे । इन्द्रा॑य॒ स्वाहा॑ ॥६॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी···[मन्त्र १]। (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु) पहुंचावे, (इन्द्रः) इन्द्र [परमात्मा] (मे) मुझको (बलम्) बल (दधातु) देवे। (इन्द्राय) इन्द्र [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥६॥

भावार्थः – मन्त्र १ के समान है ॥६॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । आपो॑
मा॒ तत्र॑ नयन्त्वमृत॒ं मोप॑ तिष्ठतु । अ॒द्भ्यः स्वाहा॑ ॥७॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी···[मन्त्र १]। (आपः) आप [जल के समान व्यापक परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु=नयन्तु) पहुंचावे, (अमृतम्) अमृत [अमरपन, दुःख रहित सुख] (मा) मुझ को (उप तिष्ठतु) प्राप्त होवे। (अद्भ्यः) आप [व्यापक परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥७॥

भावार्थः मन्त्र १ के समान है ॥७॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । ब्रह्मा
मा॒ तत्र॑ नयतु ब्र॒ह्मा ब्रह्म॑ दधातु मे । ब्रह्म॑णे॒ स्वाहा॑ ॥८॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी [ईश्वर वा वेद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जानने वाले लोग] (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुंचते हैं। (ब्रह्मा) ब्रह्मा [सब से बड़ा जगत्स्रष्टा परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां (नयतु) पहुँचावे, (ब्रह्मा) ब्रह्मा [परमात्मा] (मे) मुझ को (ब्रह्म) वेदज्ञान (दधातु) देवे। (ब्रह्मणे) ब्रह्म [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥८॥

भावार्थः– जो मनुष्य ब्रह्मज्ञानियों के समान दीक्षा और तप के साथ परमात्मा की प्राप्ति का उपाय करते हैं, वे ही ब्रह्मानन्द भोगते हैं ॥८॥

सूक्तम् ॥४४॥

१—१० ॥ आञ्जनं देवता ॥ १—३, ६—१० अनुष्टुप्, ४ विराडाष्र्युष्णिक् ५ निचृदार्षी गायत्री ॥

ब्रह्मोपासनोपदेशः--ब्रह्म की उपासना का उपदेश ॥

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे।
तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्म!] तू (आयुषः) जीवन का (प्रतरणम्) बढ़ाने वाला (असि) है, तू (विप्रम्) परिपूर्ण (भेषजम्) औषध (उच्यसे) कहा जाता है। (तत्) सो, (शन्ताते) हे शान्तिकारक! (आञ्जन) आञ्जन [संसार प्रकट करने वाले ब्रह्म], (त्वम्) तू (आपः) हे सुकर्म! [तुम दोनों] (शम्) शान्ति और (अभयम्) अभय (कृतम्) करो ॥१॥

भावार्थः—जो प्राणी परमात्मा के नियम पर चलकर सुकर्म करते हैं, वे सदा सुखी और निर्भय रहते हैं ॥१॥

इस सूक्त का मिलान करो—अ० ४। ६॥

आञ्जन शब्द का अर्थ लेप औषध भी है॥

यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (यः) जो (हरिमा) पीलिया रोग (जायान्यः) क्षय रोग, और (अङ्गभेदः) अङ्गों का तोड़ने वाला (विसल्पकः) विसल्पक [शरीर में फूटने वाली हड़फटन] है। (सर्वम्) सब (यक्ष्मम्) राजरोग को (ते) तेरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अङ्गेभ्यः) अङ्गों से (आञ्जनम्) आञ्जन [संसार का प्रकट करने वाला ब्रह्म] (बहिः) बाहिर (निः हन्तु) निकाल मारे ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर के नियम पर चलने वाला धर्मात्मा पुरुष शारीरिक और आत्मिक रोगों से ज्ञान द्वारा पृथक् रहे ॥२॥

आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् ।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥३॥

भाषार्थः—(पृथिव्याम्) पृथिवी पर (जातम्) प्रसिद्ध, (भद्रम्) कल्याणकारक, (पुरुषजीवनम्) पुरुषों का जीवन (आञ्जनम्) आञ्जन [संसार का प्रकट करने वाला ब्रह्म, वा लेप विशेष] [मुझको] (अप्रमायुकम्) मृत्यु रहित, (रथजूतिम्) रथ [शरीर] का वेग रखने वाला, और (अनागसम्) निर्दोष (कृणोतु) करे ॥३॥

भावार्थः—जो परमात्मा पृथिवी आदि में प्रसिद्ध है, उस की भक्ति से मनुष्य मोक्ष सुख पाकर अपने शरीर और आत्मा को वेगवान् करके शुद्ध निष्पाप रहें ॥३॥

प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥४॥

भाषार्थः—(प्राण) हे प्राण ! [जीवन दाता परमेश्वर] [मेरे] (प्राणम्) प्राण [जीवन] को (त्रायस्व) बचा, (असो) हे बुद्धिरूप ! (असवे) [मेरी] बुद्धि के लिये (मृड) प्रसन्न हो । (निर्ऋते) हे नित्य व्यापक ! (निर्ऋत्याः) महाविपत्ति के (पाशेभ्यः) फन्दों से (नः) हमें (मुञ्च) छुड़ा ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा की आज्ञा में प्रवृत्त रहकर अपनी बुद्धि बढ़ाते हैं वे क्लेशों में नहीं पड़ते ॥४॥

सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥५॥

भाषार्थः [हे परमात्मन् !] तू (सिन्धोः) समुद्र का (गर्भः) गर्भ [उदर समान आधार] और (विद्युताम्) प्रकाश वालों का (पुष्पम्) विकाश [फैलाव रूप] (असि) है । (वातः) पवन (प्राणः) [तेरा] प्राण [श्वास], (सूर्यः) सूर्य (चक्षुः) [तेरा] नेत्र है, और (दिवः) आकाश (पयः) [तेरा] अन्न है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य विराट् रूप परमात्मा को सर्वनियन्ता जानकर सदा पुरुषार्थ करें ॥५॥

देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥६॥

भाषार्थः—(देवाञ्जन) हे देवाञ्जन ! [दिव्य स्वरूप, संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म] (त्रैककुदम्) तीन [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] सुखों का पहुंचाने वाला तू (मा) मुझे (विश्वतः) सब ओर (परि पाहि) बचाता रहे। (बाह्याः) बाहिरी [पर्वतों से भिन्न स्थानों में उत्पन्न] (उत) और (पर्वतीयाः) पहाड़ी (ओषधयः) ओषधियां (त्वा) तुझ से (न) नहीं (तरन्ति) बढ़कर होती हैं ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा के नियमों पर चलते हैं, उन्हें भौतिक ओषधियों की आवश्यकता नहीं होती ॥६॥

वी३दं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः ।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥७॥

भाषार्थः—(रक्षोहा) राक्षसों का मारने वाला, (अमीवचातनः) रोगनाशक [परमात्मा] (इदम्) इस (मध्यम्) मध्यस्थान में (वि अव असृपत्) सरक आया है। (इतः) यहां से (सर्वाः) सब (अमीवाः) पीड़ाओं को (चातयत्) हटाता हुआ, और (अभिभाः) विपत्तियों को (नाशयत्) नाश करता हुआ [ब्रह्म वर्तमान है] ॥७॥

भावार्थः सर्वव्यापक परमात्मा को साक्षात् करके मनुष्य सब विघ्नों को हटावे ॥७॥

बह्वी३दं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥८॥

भाषार्थः—(राजन्) हे राजन् (वरुण) वरुण ! [सर्वश्रेष्ठ परमात्मन्] (पुरुषः) पुरुष (इदम्) अब (बहु) बहुत (अनृतम्) असत्य (आह) बोलता है। (सहस्रवीर्य) हे सहस्रप्रकार के पराक्रम वाले ! [ईश्वर] (तस्मात्) उस (अंहसः) पाप से (नः) हमें (परि) सर्वथा (मुञ्च) छुड़ा ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा को साक्षी करके असत्य कभी न बोले ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥९॥

भाषार्थः—(यत्) क्योंकि (आपः) प्राण और (अघ्न्याः) न मारने योग्य गौयें हैं, (इति) इस लिये, (वरुण) हे वरुण! [सर्वश्रेष्ठ परमात्मन्] (इति) इस लिये, (यत्) जो कुछ [असत्य] (ऊचिम) हम ने बोला है। (सहस्रवीर्य) हे सहस्र-प्रकार के पराक्रम वाले! [ईश्वर] (तस्मात्) उस (अंहसः) पाप से (नः) हमें (परि) सर्वथा (मुञ्च) छुड़ा ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य अपने प्राणों, गौओं और परमात्मा का शपथ करके कभी असत्य न बोलें और न कभी पाप करें ॥९॥

इस मन्त्र का पहिला भाग आ चुका है—अ० ७। ८३। २, और कुछ भेद से यजुर्वेद में है—२०। १८॥

मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥१०॥

भाषार्थः—(आञ्जन) हे आञ्जन! [संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म] [मेरे] (मित्रः) प्राणः (च च) और (वरुणः) अपान दोनों (त्वा अनुप्रेयतुः) तेरे पीछे आगे चले गये हैं। (तौ) वे दोनों (दूरम्) दूर तक (अनुगत्य) पीछे चलकर (त्वा) तुझ को (भोगाय) सुख भोगने के लिये (पुनः) फिर (आ ऊहतुः) ले आये हैं ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्राण और अपान अर्थात् पूरे सामर्थ्य से परमात्मा को दूर दूर तक खोजते हैं, वे ही उसको अपने समीप पाकर आनन्द भोगते हैं ॥१०॥

सूक्तम् ॥४५॥

१—१०॥ १–५ आञ्जनं देवता, ६—१० मन्त्रोक्ता देवताः॥ १ भुरिगनुष्टुप्, २ निचृदार्ष्यनुष्टुप्, ३, ४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, ६ भुरिगार्ष्यनुष्टुप्, ७–९ स्वराडार्ष्यनुष्टुप्, १० निचृदार्षी बृहती॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश॥

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इव) जैसे (ऋणात्) ऋण में से (ऋणम्) ऋण को [अर्थात् जैसे ऋण का भाग ऋणदाता को मनुष्य शीघ्र भेजता है वैसे] (कृत्याम्) हिंसा को (कृत्याकृतः) हिंसा करने वाले के (गृहम्) घर (संनयन्) भेज देता हुआ तू, (आञ्जन) हे आञ्जन ! [संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म] (चक्षुर्मन्त्रस्य) आंख से गुप्त बात करने वाले (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले की (पृष्टीः) पसलियों को (अपि) अवश्य (शृण) तोड़ डाल ॥१॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य उधार देने वाले को उधार लिया हुआ शीघ्र भेजकर सुख पाता है, वैसे ही मनुष्य पीड़ा देने वाले को शीघ्र दण्ड देकर आनन्द पावें ॥१॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से ऊपर आ चुका है—अ० २।७।५॥

यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥२॥

भाषार्थः—(यत्) जो (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न (अस्मासु) हम में, (यत्) जो (गोषु) गौओं में (च) और (यत्) जो (नः) हमारे (गृहे) घर में है। (च) और (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले का (अनामगः) अनामय [स्वास्थ्य] है, (तम्) उस को [भी] (प्रियः) [हमारा] प्रिय (प्रति) प्रतिकूल (मुञ्चताम्) छोड़े ॥२॥

भावार्थः—यदि दुष्ट लोग धर्मात्माओं के साथ पीड़ाजनक व्यवहार करें, तो उनको उसका यथोचित दण्ड दिया जावे ॥२॥

अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥३॥

भाषार्थः—(अपाम्) प्रजाओं के (ऊर्जः) अन्न के और (ओजसः) पराक्रम के (वावृधानम्) बढ़ाने वाले और (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (अग्नेः) अग्नि [सूर्य आदि] से (अधि) अधिक (जातम्) प्रसिद्ध, (चतुर्वीरम्) चारों दिशाओं में वीर और (पर्वतीयम्) मेघों में वर्तमान (यत्) जो (आञ्जनम्) आञ्जन [संसार का प्रकट करने वाला ब्रह्म] है, वह (दिशः) दिशाओं और (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं [पूर्व आदि] को (ते) तेरे लिये, हे मनुष्य ! (इत्) अवश्य (शिवाः) कल्याणकारी (करत्) करे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा में भक्ति करके पुरुषार्थ करते हैं, वे सब दिशाओं में सुख पाते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (चतुर्वीरम्) चारों दिशाओं में वीर, (आञ्जनम्) आञ्जन [संसार का प्रकट करने वाला ब्रह्म] (बध्यते) धारण किया जाता है, (ते) तेरे लिये (सर्वाः) सब (दिशः) दिशायें (अभयाः) निर्भय (भवन्तु) होवें । (च) और (आर्यः) श्रेष्ठ तू (सविता इव) सूर्य के समान (ध्रुवः) दृढ़ होकर (तिष्ठासि) ठहरा रह, (इमाः) यह (विशः) प्रजायें (ते) तेरे लिये (बलिम्) बलि [कर] (अभि) सब ओर से (हरन्तु) लावें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा के दृढ़स्वभाव उपासक पुरुष दिग्विजयी होकर सब प्रजाओं को वश में करें ॥४॥

आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (एकम्) एक [ब्रह्म] को (आ) सब ओर से (अक्ष्व) प्राप्त हो, (एकम्) एक को (मणिम्) श्रेष्ठ (कृणुष्व) बना, (एकेन) एक के साथ (स्नाहि) शुद्ध हो, (एषाम्) इन [पदार्थों] में से (एकम्) एक को (आ) लेकर (पिब) पान कर । (चतुर्वीरम्) चारों दिशाओं में वीर [ब्रह्म] (ग्राह्याः) ग्राही [गठियारोग] के (नैर्ऋतेभ्यः) महाविपत्ति वाले (चतुर्भ्यः) चारों [दिशाओं में फैले] (बन्धेभ्यः) बन्धनों से (अस्मान्) हमें (परि पातु) बचाये रक्खे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य एक अद्वितीय परमात्मा में श्रद्धा करके शारीरिक और आत्मिक रोगों से मुक्त होवे ॥५॥

अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥६॥

भाषार्थः—(अग्निः) ज्ञानवान् [परमेश्वर] (मा) मुझे (अग्निना) ज्ञान के साथ (अवतु) बचावे, (प्राणाय) प्राण के लिये, (अपानाय) अपान के लिये, (आयुषे) जीवन के लिये, (वर्चसे) प्रताप के लिये, (ओजसे) पराक्रम के लिये, (तेजसे) तेज के लिये, (स्वस्तये) स्वस्ति [सुन्दर सत्ता] के लिये और (सुभूतये) बड़े ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की उपासना पूर्वक शारीरिक कान्ति और आत्मिक उन्नति करके अपना बल, पराक्रम आदि बढ़ावें ॥६॥

इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥७॥

भाषार्थः—(**इन्द्रः**) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] (**मा**) मुझे (**इन्द्रियेण**) इन्द्र के चिन्ह [परम ऐश्वर्य] के साथ (**अवतु**) बचावे, (**प्राणाय**) प्राण के लिये······[म० ६] ॥७॥

भावार्थः— मन्त्र ६ के समान है ॥७॥

सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥८॥

भाषार्थः—(**सोमः**) शान्तस्वभाव परमेश्वर (**मा**) मुझे (**सौम्येन**) शान्त गुण के साथ (**अवतु**) बचावे, (**प्राणाय**) प्राण के लिये······[मन्त्र ६] ॥८॥

भावार्थः—मन्त्र ६ के समान है ॥८॥

भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥९॥

भाषार्थः—(**भगः**) सेवनीय [परमेश्वर] (**मा**) मुझे (**भगेन**) सेवनीय ऐश्वर्य के साथ (**अवतु**) बचावे, (**प्राणाय**) प्राण के लिये······[मन्त्र ६] ॥९॥

भावार्थः—मन्त्र ६ के समान है ॥९॥

मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥१०॥

भाषार्थः—(**मरुतः**) शूर पुरुष (**मा**) मुझे (**गणैः**) सेना दलों के साथ (**अवन्तु**) बचावें, (**प्राणाय**) प्राण के लिये, (**अपानाय**) अपान के लिये, (**आयुषे**) जीवन के लिये, (**वर्चसे**) प्रताप के लिये, (**ओजसे**) पराक्रम के लिये, (**तेजसे**) तेज के लिये, (**स्वस्तये**) स्वस्ति [सुन्दर सत्ता] के लिये और (**सुभूतये**) बड़े ऐश्वर्य के लिये (**स्वाहा**) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सब मनुष्य परस्पर रक्षा करके संसार में उन्नति करें ॥१०॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥४६॥

१—७ ॥ अस्तृतो देवता ॥ १ विराडार्षी त्रिष्टुप्, २ भुरिक् शक्वरी, ३, ७ निचृत्पथ्या पङ्क्तिः, ४ निचृदार्षी त्रिष्टुप्; ५ स्वराडार्षी जगती, ६ विराडार्षी जगती ॥

विजयप्राप्त्युपदेशः—विजय की प्राप्ति का उपदेश ॥

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् । तत् ते

बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (त्वा=तुभ्यम्) तेरे लिये (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक परमेश्वर] ने (प्रथमम्) पहिले से (अस्तृतम्) अटूट [नियम] को (वीर्याय) वीरता के लिये और (कम्) सुख के लिये (बध्नात्) बाँधा है। (तत्) इस लिये [उस नियम को] (ते) तेरे (आयुषे) जीवन के लिये, (वर्चसे) प्रताप के लिये, (ओजसे) पराक्रम के लिये, (च च) और (बलाय) बल [सामर्थ्य] के लिये (बध्नामि) मैं [आचार्यादि] बांधता हूं, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ने सृष्टि के आदि में मनुष्यादि के पुरुषार्थ करने और सुख भोगने के लिये वेद शास्त्र द्वारा नियम ठहराये हैं। मनुष्य उन नियमों में सुरक्षित होकर अपना ऐश्वर्य बढ़ावें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः । इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (अस्तृतः) अटूट [नियम] (अप्रमादम्) विना भूल (रक्षन्) रक्षा करता हुआ (ऊर्ध्वः) ऊंचा (तिष्ठतु) ठहरे, (इमम् त्वा) इस तुझ को (पणयः) कुव्यवहारी, (यातुधानाः) पीड़ा देने वाले लोग (मा दभन्) न दबावें। (इन्द्रः इव) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] के समान (दस्यून्) लुटेरों को (अव धूनुष्व) हिला दे, और (पृतन्यतः) सेना चढ़ाने वाले (सर्वान्) सब (शत्रून्) शत्रुओं को (वि सहस्व) हरा दे, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य नियम के साथ प्रमाद छोड़कर निरन्तर उन्नति करते हैं, वे ही शत्रुओं पर विजय पाते हैं ॥२॥

शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे । तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (न) न तो (शतम्) सौ (प्रहरन्तः) चोट चलाने वाले (च) और (न) न (निघ्नन्तः) मार गिराने वाले शत्रु [उस नियम को] (तस्तिरे) तोड़ सके हैं। (तस्मिन्) उस [नियम] में (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] ने (चक्षुः) दर्शनसामर्थ्य, (प्राणम्) जीवन सामर्थ्य (अथो) और (बलम्) बल (परि अदत्त) दे रक्खा है, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥३॥

भावार्थः—उन लोगों को वैरी लोग कभी नहीं सता सकते जो देख-भाल कर नियम पर चलते हैं ॥३॥

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव । पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझ को (इन्द्रस्य) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] के (वर्मणा) कवच से (परि धापयामः) हम ढकते हैं, (यः) जो [परमेश्वर] (देवानाम्) विद्वानों का (अधिराजः) अधिराजा (बभूव) हुआ है। (पुनः) फिर (त्वा) तुझको (सर्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (प्र णयन्तु) आगे ले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलें, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥४॥

भावार्थः—माता पिता आदि सन्तानों को ऐसी उत्तम शिक्षा देवें जिस से वे सत्य नियम पर चलकर विद्वानों के अगुआ होवें ॥४॥

अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते । व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥५॥

भावार्थः—(अस्मिन्) इस, (अस्मिन्) इस ही (मणौ) प्रशंसनीय (अस्तृते) अटूट [नियम] में (एकशतम्) एकसौ एक [असंख्य] (वीर्याणि) वीरतायें और (सहस्रम्) सहस्र [बहुत ही] (प्राणाः) जीवन सामर्थ्य हैं। (व्याघ्रः) बाघ तू (सर्वान्) सब (शत्रून्) शत्रुओं पर (अभि तिष्ठ) धावा कर, (यः) जो (त्वा) तुझ पर (पृतन्यात्) सेना चढ़ावे, (सः) वह (अधरः) नीचा (अस्तु) होवे, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के अटूट नियम पर चलकर शत्रुओं को नीचा करें। और जैसे व्याघ्र सूंघने से आखेट को जान लेता है, वैसे ही मनुष्य वैरियों को पकड़ने में तीव्रबुद्धि होवें ॥५॥

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रंप्राणः शतयोनिर्वयोधाः । शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥६॥

भाषार्थः—(घृतात्) प्रकाश से (उल्लुप्तः) ऊपर खींचा गया, (मधुमान्) ज्ञानवान्, (पयस्वान्) अन्नवान्, (सहस्रप्राणः) सहस्रों जीवन सामर्थ्य वाला, (शतयोनिः) सैकड़ों कारणों में व्यापक, (वयोधाः) पराक्रम देने वाला, (शंभूः) शान्ति करने वाला, (च) और (मयोभूः) सुख देनेवाला, (च) और (ऊर्जस्वान्) बल वाला (च च) और (पयस्वान्) दूध वाला, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥६॥

भावार्थः—परमेश्वर का वेदोक्त नियम संसार में प्रकाशमान है, मनुष्य उस पर ही चलकर अपना शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल बढ़ाकर सुखी होवें ॥६॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद आचुका है—अ० १९ । ३३ । २ और मन्त्र का मिलान करो—अ० ५ । २८ । १४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा । सजातानामसद्

वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥७॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (**यथा**) जिस से (**त्वम्**) तू (**उत्तरः**) अति ऊंचा, (**असपत्नः**) विना शत्रु और (**सपत्नहा**) शत्रुओं का मारने वाला (**असः**) होवे। और आप (**सजातानाम्**) सजातियों के (**वशी**) वश में करने वाला (**असत्**) होवें, (**तथा**) वैसा ही (**त्वा**) तुझ को (**सविता**) सब का प्रेरक [परमात्मा] (**करत्**) बनावे, (**अस्तृतः**) अटूट [नियम] (**त्वा**) तेरी (**अभि**) सब ओर से (**रक्षतु**) रक्षा करे ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा के वेदोक्त नियम पर चलने वाले मनुष्य सब विघ्नों को हटाकर आनन्द से रहें ॥७॥

सूक्तम् ॥४७॥

१—९ ॥ रात्रिर्देवता ॥ १ पथ्या बृहती; २ निचृदतिजगती; ३ निचृदनुष्टुप्, ४, ५, ८ अनुष्टुप्, ६ पुरस्ताद् बृहती, ७ विराडार्षी जगती, ९ विराडार्ष्यनुष्टुप् ॥

रात्रौ रक्षोपदेशः—रात्रि में रक्षा का उपदेश ॥

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः ।

दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥१॥

भाषार्थः (**रात्रि**) हे रात्रि ! (**पार्थिवम्**) पृथिवी संबन्धी (**रजः**) लोक, (**पितुः**) पिता [मध्यलोक] के (**धामभिः**) स्थानों के साथ [अन्धकार से] (**आ**) सर्वथा (**अप्रायि**) भर गया है। (**बृहती**) बड़ी तू (**दिवः**) प्रकाश के (**सदांसि**) स्थानों को (**वि तिष्ठसे**) व्याप्त होती है, (**त्वेषम्**) चमकीला [ताराओं वाला] (**तमः**) अन्धकार (**आ वर्तते**) आकर घेरता है ॥१॥

भावार्थः—पृथिवी की गोलाई, और सूर्य के चारों ओर दैनिक घुमाव के कारण पृथिवी का आधा भाग प्रत्येक समय सूर्य से आड़ में रहता है, अर्थात् प्रत्येक क्षण आधे भाग में अन्धकार और आधे में प्रकाश होता जाता है। अन्धकार समय को रात्रि कहते हैं। रात्रि में तारे और चन्द्र चमकते दीखते हैं। मनुष्य रात्रि समय को यथावत् काम में लावें ॥१॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में है—३६। ३२ और—निरुक्त ९। २९ में भी व्याख्यात है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विंशते यदेजंति ।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रिं पारमंशीमहि भद्रे पारमंशीमहि ॥२॥

भाषार्थः—(न) न तो (यस्याः) जिस [रात्रि] का (पारम्) पार और (न) न (योयुवत्) [प्रकाश से] अलग होने वाला [स्थान] (ददृशे) दिखाई पड़ता है, (यत्) जो कुछ (एजति) चेष्टा करता है, (सर्वम्) वह सब (अस्याम्) उस [रात्रि] में (नि विशते) ठहर जाता है। (उर्वि) हे फैली हुई, (तमस्वति) अंधेरी (रात्रि) रात्रि ! (अरिष्टासः) विना कष्ट पाये हुए हम (ते) तेरे (पारम्) पार को (अशीमहि) पावें, (भद्रे) हे कल्याणी ! [तेरे] (पारम्) पार को (अशीमहि) पावें ॥२॥

भावार्थः—पृथिवी के अपनी धुरी पर घूमने और सूर्य की परिक्रमा करने में प्रकाश की निवृत्ति और अन्धकार की प्रवृत्ति ऐसी शीघ्र होती है कि मनुष्य को उस समय का अनुभव करना अति कठिन है। मनुष्य विश्राम करके यथायोग्य अपने कामों में प्रवृत्त होवें ॥२॥

ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव ।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥३॥
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि ।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥४॥
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः ।
तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥५॥

भाषार्थः—(रात्रि) हे रात्रि ! (ये) जो (ते) तेरे (नृचक्षसः) मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले (द्रष्टारः) दर्शक लोग (नवतिः नव) नव्वे और नौ [निन्नानवे], (अशीतिः अष्टौ) अस्सी और आठ [अठासी] (उतो) और (ते) तेरे (सप्ततिः सप्त) सत्तर और सात [सतहत्तर] (सन्ति) हैं ॥३॥

(रेवति) हे धनवती ! (षष्टिः च षट्) साठ और छह [छियासठ] (च) और (सुम्नयि) हे सुखप्रदे ! (पञ्चाशत् पञ्च) पचास और पांच [पचपन], (च) और (वाजिनि) हे बलवती ! [वा वेगवती] (चत्वारिंशत् चत्वारः) चालीस और चार [चवालीस], (च) और (त्रिंशत् त्रयः) तीस और तीन [तेतीस] ॥४॥

(रात्रि) हे रात्रि ! (च) और (ते) तेरे (विंशतिः द्वौ) बीस और दो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[बाईस], (च) और (ते) तेरे (एकादश) ग्यारह और (अवमाः) [जो इस संख्या से] नीचे हैं, (दिवः दुहितः) हे आकाश की भरदेने वाली ! (तेभिः पायुभिः) उन रक्षकों द्वारा (नः) हमें (अद्य) आज (नु) शीघ्र (पाहि) बचा ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र ३—५ में ९९ में से ११, ११ घटते घटते ११ तक रहे हैं और [नीचे] शब्द से शेष संख्या एक तक मानी है। भाव यह है कि मनुष्य अपनी योग्यता के अनुसार बहुत वा थोड़े रक्षकों द्वारा रात्रि में रक्षा करते रहें ॥३—५॥

रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥६॥
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभिः स्तेनो धावतु तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥७॥

भाषार्थः—(रक्ष) तू रक्षा कर, (अघशंसः) बुराई चीतने वाला (माकिः) न कभी (नः) हमारा (ईशत) राजा होवे, और (मा) न (दुःशंसः) अनहित सोचने वाला (नः) हमारा (ईशत) राजा होवे। (मा) न (स्तेनः) चोर (अद्य) आज (नः) हमारी (गवाम्) गौवों का, और (मा) न (वृकः) भेड़िया (अवीनाम्) भेड़ों का (ईशत) राजा होवे ॥६॥

(भद्रे) हे कल्याणी ! (मा) न (तस्करः) लुटेरा (अश्वानाम्) घोड़ों का, और (मा) न (यातुधान्यः) पीड़ा देने वाली [सेनायें] (नृणाम्) मनुष्यों की [राजा होवें]।

(स्तेनः) चोर, (तस्करः) लुटेरा (परमेभिः पथिभिः) अति दूर मार्गों से (धावतु) दौड़ जावे। (परेण) दूर [मार्ग] से (दत्वती रज्जुः) दतीली रसरी [सांप], और (परेण) दूर [मार्ग] से (अघायुः) द्रोही जन (अर्षतु) चला जावे ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य ऐसा प्रबन्ध करें कि चोर डकैत आदि दुष्ट लोग और भेड़िया सर्प आदि हिंसक जीव प्राणियों और सम्पत्ति को हानि न पहुंचावें ॥६, ७॥

मन्त्र ६ का प्रथम पाद ऋग्वेद में है ६।७१।३ तथा ६।७५।१० और यजुर्वेद ३३।६९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अघं रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥८॥

भाषार्थः—(अध) और (रात्रि) हे रात्रि ! (तृष्टधूमम्) क्रूर धुयें वाले [विषैली श्वास वाले] (अहिम्) सांप को (अशीर्षाणम्) रुण्ड [विना शिर का] (कृणु) कर दे, [शिर कुचल कर मार डाल] (वृकस्य) भेड़िये के (हनू) दोनों जाबड़े (जम्भयाः) तोड़ डाल, (तेन) उससे (तम्) उसको (द्रुपदे) काठ के बन्धन में (जहि) मार डाल ॥८॥

भावार्थः— मनुष्य हिंसक जीव और मनुष्यों को ऐसे प्रबन्ध से रक्खें कि वे किसी की हानि न करें ॥८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आगे है—५० । १ ॥

त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥९॥

भाषार्थः—(रात्रि) हे रात्रि ! (त्वयि) तुझ में (वसामसि) हम निवास करते हैं, (स्वपिष्यामसि) हम सोवेंगे, (जागृहि) तू जागती रह । (नः) हमारी (गोभ्यः) गौओं को, (अश्वेभ्यः) घोड़ों को और (पुरुषेभ्यः) पुरुषों को (शर्म) सुख (यच्छ) दे ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य परिश्रम करके रात्रि में प्रबन्ध के साथ सोवें, जिससे सब गौ, घोड़े, मनुष्य आदि सुख से रहें ॥९॥

सूक्तम् ॥४८॥

१—६ ॥ रात्रिर्देवता ॥ १ गायत्री, २ विराडार्ष्यनुष्टुप्, ३ भुरिगनुष्टुप् ४, ६ अनुष्टुप्, ५ पथ्या पङ्क्तिः ॥

रात्रौ रक्षोपदेशः—रात्रि में रक्षा का उपदेश ॥

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि ।
तानि ते परि दद्मसि ॥१॥

भाषार्थः—(च) और (अथो) फिर (ह) निश्चय करके (यानि) जिन [वस्तुओं] का (यस्म) हम प्रयत्न करें, (च) और (यानि) जो [वस्तुएं] (अन्तः) भीतर (परीणहि) बांधने के आधार [मंजूषा आदि] में हैं । (तानि) उन सब को (ते) तुझे (परिदद्मसि) हम सौंपते हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य अपने सब पदार्थों को रात्रि में सावधानी से रखकर रक्षा करें ॥१॥

बम्बई गवर्नमेन्ट छापे की पुस्तक के पदपाठ में (यस्म) पद के स्थान पर [यस्मै] छपा है, हमने (यस्म) मूल पद माना है ॥

रात्रि मातरुषसे नः परि देहि ।

उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥२॥

भाषार्थः—(रात्रि) रात्रि (मातः) माता ! तू (उषसे) उषा [प्रभात वेला] को (नः) हमें (परि देहि) सौंप । (उषाः) उषा (नः) हमें (अह्ने) दिन को, और (अहः) दिन (तुभ्यम्) तुझ को, (विभावरि) हे चमक वाली ! (परि ददातु) सौंपे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य तारों से शोभायमान रात्रि बीतने पर प्रातःकाल उठें और दिन के कर्तव्य करके रात्रि में रात्रि के कर्तव्य करें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आगे है—५० । ७ ॥

यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम् ।

यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ॥३॥

भाषार्थः—(यत् किम् च) जो कुछ (इदम्) यह (पतयति) उड़ता है, (यत् किम् च) जो कुछ (इदम्) यह (सरीसृपम्) टेढ़ा टेढ़ा रेंगने वाला [सर्प आदि] है । (यत् किम् च) और जो कुछ (पर्वताय) पहाड़ पर (असत्वम्) दुष्ट जन्तु [सिंह आदि] है, (तस्मात्) उस से, (त्वम्) तू (रात्रि) हे रात्रि ! (नः) हमें (पाहि) बचा ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य घरों को ऐसा सुडौल बनावें कि रात्रि में सब प्रकार के हिंसक प्राणियों से रक्षा रहे ॥३॥

सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत ।

गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥४॥

भाषार्थः—[हे रात्रि !] (सा) सो तू (पश्चात्) पीछे से, (सा) सो तू (पुरः) सामने से, (सा) सो तू (उत्तरात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नीचे से (पाहि) बचा । (विभावरि) हे चमक वाली ! (नः) हमारी (गोपाय) रक्षा कर, हम लोग (इह) यहां पर (ते) तेरी (स्तोतारः) स्तुति करने वाले (स्मसि) हैं ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः मनुष्यों को रात्रि में सावधानी के साथ सब ओर से रक्षा का प्रबन्ध रखना चाहिये ।।४।।

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति । पशून् ये सर्वान्
रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ।।५।।

भाषार्थः—(ये) जो [पुरुष] (रात्रिम्) रात्रि के (अनुतिष्ठन्ति) साथ चलते हैं [रात्रि में सावधान रहते हैं] (च) और (ये) जो (भूतेषु) सत्ता वालों पर (जाग्रति) जागते हैं। (ये) जो (सर्वान्) सब (पशून्) पशुओं की (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं, (ते) वे (नः) हमारे (आत्मसु) आत्माओं [जीवों] पर (जाग्रति) जागते हैं, (ते) वे (नः) हमारे (पशुषु) पशुओं पर (जाग्रति) जागते हैं ।।५।।

भावार्थः—मनुष्य रात्रि में सावधान रह कर संसार के सब पदार्थों, पशुओं और पुरुषों की रक्षा करें ।।५।।

वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ।।६।।

भाषार्थः—(रात्रि) हे रात्रि ! (ते) तेरा (नाम) नाम (वै) निश्चय करके (वेद) मैं जानता हूं, तू (घृताची) घृताची [प्रकाश को प्राप्त होने वाली] (नाम) नाम वाली (वै) निश्चय करके (असि) है। (तां त्वा) उस तुझ को (भरद्वाजः) भरद्वाज [विज्ञान पोषक महात्मा] (वेद) जानता है, (सा) सो आप (नः) हमारी (वित्ते) सम्पत्ति पर (अधि) अधिकारपूर्वक (जाग्रति) जागती रहें ।।६।।

भावार्थः—मनुष्य तारे आदि से युक्त रात्रि में वेदादि शास्त्रों का मनन करके ज्ञान से प्रकाशित होकर सब की रक्षा करें ।।६।।

सूक्तम् ।।४९।।

१–१० रात्रिर्देवता ।। १, ४, ८ त्रिष्टुप्, २, ३, विराडार्षी त्रिष्टुप्, ५ विराट् त्रिष्टुप्, ६ निचृत् पङ्क्तिः, ७ पथ्या पङ्क्तिः, ९ आर्घ्यनुष्टुप्, १० षट्पदा जगती ।।

रात्रौ रक्षोपदेशः—रात्रि में रक्षा का उपदेश ।।

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ।।१।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(इषिरा) फुरतीली, (योषा) सेवनीया (युवतिः) युवा [बलवती] (देवस्य) प्रकाशमान, (भगस्य) ऐश्वर्यवान् (सवितुः) प्रेरक सूर्य की (दमूनाः) वश में करने वाली, (अश्वक्षभा) शीघ्र फैलने वाली, (सुहवा) सहज में बुलाने योग्य, (संभृतश्रीः) सम्पूर्ण सम्पत्ति वाली (रात्री) रात्रि ने (महित्वा) महिमा से (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी को (आ) सर्वथा (पप्रौ) भर दिया है ॥१॥

भावार्थः—जिस समय विश्रामदात्री रात्रि का बड़ा अन्धकार संसार में फैले, मनुष्य सावधानी से अपनी सम्पत्ति की रक्षा करें ॥१॥

मन्त्र के पदपाठ के (अश्व—क्षभा) को (अशु—अक्षभा) मानकर अर्थ किया गया है ॥

अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठ मरुहन्त श्रविष्ठाः ।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः ॥२॥

भावार्थः—(गम्भीरः) गम्भीर पुरुष (विश्वानि) सब [विघ्नों] को (अति) लाँघ कर (अरुहत्) ऊंचा हुआ है, और (श्रविष्ठाः) अति बलवान् पुरुष (वर्षिष्ठम्) अति चौड़े स्थान पर (अरुहन्त) चढ़े हैं। (उशती) प्रीति करती हुई (भद्रा) कल्याणी (सा) वह (रात्री) रात्रि (अनु) निरन्तर (मित्रः इव) मित्र के समान, (स्वधाभिः) अपनी धारण शक्तियों के साथ (अभि तिष्ठते) सब ओर ठहरती है ॥२॥

भावार्थः—शान्त स्वभाव बलवान् पुरुषों ने संसार में ऊंचे स्थान पाये हैं, इसी प्रकार जो मनुष्य रात्रि अर्थात् कठिनाई को मित्र समान जानकर सावधान रहते हैं, वे सब प्रकार के पोषणों को प्राप्त होते हैं ॥२॥

वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥३॥

भावार्थः—(वर्ये) हे चाहने योग्य ! (वन्दे) हे वन्दना योग्य ! (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! (सुजाते) हे सुन्दर जन्म वाली ! (रात्रि) रात्रि (आ अजगन्) तू आयी है, मैं (इह) यहां (सुमनाः) प्रसन्नचित्त (स्याम्) रहूं। (अस्मान्, हमारे लिये (नर्याणि) मनुष्यों की हितकारी (जाता) उत्पन्न वस्तुओं को (अथो) और भी [उनको], (यानि) जो (गव्यानि) गौ [आदि] की हितकारी वस्तु हैं, (पुष्ट्या) वृद्धि के साथ (त्रायस्व) रक्षा कर ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः -जो मनुष्य रात्रि रूप कठिनाई में प्रसन्नचित्त रह कर अपना कर्तव्य करते रहें, वे उन्नति करके अपनी सम्पत्ति की रक्षा कर सकें ॥३॥

सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥४॥

भाषार्थः -(उशती) प्रीति करती हुई (रात्री) रात्री ने (सिंहस्य) सिंह की, (पींषस्य) चूरण करने वाले [हाथी] की, (व्याघ्रस्य) बाघ की और (द्वीपिनः) चीते की (वर्चः) कान्ति को, (अश्वस्य) घोड़े के (ब्रध्नम्) मूल [वेग] को और (पुरुषस्य) पुरुष की (मायुम्) ललकार को (आ ददे) ग्रहण किया है, (विभाती) चमकती हुई तू (पुरु) बहुत से (रूपाणि) रूपों को (कृणुषे) बनाती है ॥४॥

भावार्थः - जो मनुष्य रात्रिरूप कठिनाई में सिंह आदि के समान पराक्रमी होते हैं, वे ही कीर्तिमान् और तेजस्वी होते हैं ॥४॥

शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥५॥

भाषार्थः—(च) और (हिमस्य) हिम [शीतलता] की (माता) माता [आप] (नः) हमारे लिये (सुहवा) सहज में बुलाने योग्य (अस्तु) होवें, (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! तू (अस्य) इस (स्तोमस्य) स्तोत्र का (नि बोध) ज्ञान कर, (येन) जिस [स्तोत्र] से (त्वाम्) तुझ (शिवाम्) कल्याणी (रात्रिम्) रात्रि को (अनूसूर्य्यम्) सूर्य के साथ साथ (विश्वासु) सब (दिक्षु) दिशाओं में (वन्दे) मैं वन्दना करता हूं ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य कठिनाई को पार करके अन्त में शान्ति और ऐश्वर्य को प्राप्त हों, वे उस कठिनाई को उन्नति का कारण समझ कर उसका आदर करें ॥५॥

स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥६॥

भाषार्थः—(विभावरि) हे चमक वाली (रात्रि) रात्रि ! (नः) हमारे (स्तोमस्य) स्तोत्र का (राजा इव) राजा के समान (जोषसे) तू सेवन करती रहे । (व्युच्छन्तीः) विविध प्रकार चमकती हुई (उषसः अनु) उषाओं के साथ साथ हम,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सर्ववीराः) सब वीरों वाले (असाम) होवें, और (सर्ववेदसः) सब सम्पत्ति वाले (भवाम) होवें ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य ताराओं वाली रात्रि के सुन्दर उपयोग से स्तुति योग्य कर्म करके सदा बड़े बड़े वीर पुरुषों वाले और बड़ी सम्पत्ति वाले होवें ॥६॥

शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ॥७॥

भाषार्थः—(शम्या) शान्ति वाली, (नाम) यह नाम (ह) निश्चय करके (दधिषे) तू धारण करती है, (ये) जो [चोर] (मम) मेरे (धना, धनों को (दिप्सन्ति) हानि पहुंचाना चाहते हैं। (रात्रि) हे रात्रि ! (असुतपा) [उनके] प्राणों को तपाने वाली तू (तान्) उनको (इहि) पहुंच, (यत्) जिस से (यः स्तेनः) जो चोर है, (न विद्यते) वह न रहे, (पुनः) फिर (न विद्यते) वह न रहे ॥७॥

भावार्थः—जो चोर डाकू आदि रात्रि में हानि करें, उनको लोग दण्ड देकर शान्ति स्थापित करें और चोरों को न रहने दें ॥७॥

भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूपं युवतिर्बिभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ॥८॥

भाषार्थः—(रात्रि) हे रात्रि ! तू (विष्टः) परोसे हुए (चमसः न) अन्नपात्र के समान (भद्रा) कल्याणी (असि) है, (युवतिः) युवती [बलवती] तू (विष्वङ्) सम्पूर्ण (गोरूपम्) गौ के स्वभाव को (बिभर्षि) धारण करती है। (चक्षुष्मती) नेत्र वाली, (उशती) प्रीति करती हुई (त्वम्) तू ने (मे) मेरे लिये (दिव्या) आकाश वाले (वपूंषि न) शरीर के समान (क्षाम्) पृथिवी को (प्रति अमुक्थाः) ग्रहण किया है ॥८॥

भावार्थः- जैसे गौ दुग्ध आदि से उपकार करती है, वैसे ही रात्रि शीतलता आदि से अन्न आदि की वृद्धि करती है, और जैसे आकाश के तारों से रात्रि शोभायमान होती है, वैसे ही वृक्ष, पुष्प आदि रात्रि की शीतलता वा ओस से हरे भरे होकर पृथिवी को सुन्दर बनाते हैं ॥८॥

यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् । यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति । अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥१०॥

भाषार्थः—(अद्य) आज (यः) जो (अघायुः) पाप चीतने वाला (रिपुः) वैरी, (स्तेनः) चोर (मर्त्यः) मनुष्य (आ - अयति) आवे। (रात्री) रात्रि (प्रतीत्य) प्रतीति करके (तस्य) उसके (ग्रीवाः) गले को (प्र) सर्वथा, और (शिरः) शिर को (प्र) सर्वथा (हनत्) तोड़ डाले ॥९॥

(पादौ) [उसके] दोनों पैरों को (प्र) सर्वथा [तोड़ डाले-मन्त्र ९], (यथा) जिससे वह (न) न (अयति) चल सके, (हस्तौ) [उस के] दोनों हाथों को (प्र) सर्वथा [तोड़ डाले], (यथा) जिससे वह (न) न (अशिषत्) खा सके। (यः) जो (मलिम्लुः) मलिन आचरण वाला लुटेरा (उप—अयति) पास आवे, (सः) वह (संपिष्टः) पीस डाला गया (अप अयति) निकल जावे। (अप अयति) वह निकल जावे, (सु—अप—अयति) वह सर्वथा निकल जावे, (शुष्के) सूखे (स्थाणौ) स्थान में (अप अयति) निकल जावे ॥१०॥

भावार्थः—यदि रात्रि में चोर डाकू आदि आकर लूट खसोट मचावें, रक्षक गण उनको यथावत् दण्ड देकर प्रजा की रक्षा करें ॥९, १०॥

सूक्तम् ॥५०॥

१—७ ॥ रात्रिर्देवता ॥ १, ३, ४, ६, ७ अनुष्टुप्, २, ५ भुरिगार्ष्युष्णिक् ॥

रात्रौ रक्षोपदेशः—रात्रि में रक्षा का उपदेश ॥

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥१॥

भाषार्थः—(अध) और (रात्रि) हे रात्रि! (तृष्टधूमम्) क्रूर धुयें वाले [विषैली श्वास वाले] (अहिम्) सांप को (अशीर्षाणम्) रुण्ड [विना शिर का] (कृणु) करदे [शिर कुचल कर मार डाल]। (वृकस्य) भेड़िये के (अक्षौ) दोनों आंखें (निः जह्याः) निकाल कर फेंक दे, (तेन) उस से (तम्) उसको (द्रुपदे) काठ के बन्धन में (जहि) मार डाल ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य सर्प और भेड़िये आदि के समान रात्रि में दुःख देवें, उन्हें बन्दीगृह में बन्द करके कष्ट दिया जावे ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऊपर आ चुका है—४७।८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः ।
तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥२॥

भाषार्थः—(रात्रि) हे रात्रि ! (ते) तेरे (ये) जो (तीक्ष्णशृङ्गाः) पैने सींग वाले और (स्वाशवः) बड़े फुरतीले (अनड्वाहः) रथ ले चलने वाले बैल [अर्थात् बैलों के समान रक्षा भार उठाने वाले पुरुष] हैं। (तेभिः) उन के द्वारा (नः) हमें (अद्य) आज और (विश्वाहा) सब दिन (दुर्गाणि प्रति) विघ्नों को लाघ कर (पारय) पार लगा ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि रथ ले चलने वाले फुरतीले बलवान् बलों के समान रक्षा भार उठाने में फुरतीले और पराक्रमी होकर सब विघ्नों को हटावें ॥२॥

रात्रिरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् ।
गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ॥३॥

भाषार्थः—(अरिष्यन्तः) विना कष्ट उठाये हुए (वयम्) हम लोग (तन्वा) अपने शरीर के साथ (रात्रिरात्रिम्) रात्रि के पीछे रात्रि को (तरेम) पार करें। (अरातयः) वैरी लोग [उसको] (न तरेयुः) न पार करें, (इव) जैसे (अप्लवाः) विना नाव वाले मनुष्य (गम्भीरम्) गहरे [समुद्र] को ॥३॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य सब विघ्नों को सह कर उन्नति करें, विरोधी आलसी पुरुष सुकर्मों को सिद्ध नहीं कर सकते ॥३॥

यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते ।
एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥४॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (शाम्याकः) सामा [छोटा अन्न विशेष] (प्रपतन्) गिरता हुआ और (अपवान्) दूर चला जाता हुआ (न) नहीं (अनुविद्यते) कुछ भी मिलता है। (एव) वैसे ही, (रात्रि) हे रात्रि ! [उस दुष्ट को] (प्र पातय) गिरा दे, (यः) जो (अस्मान्) हमारा (अभ्यघायति) बुरा चीतता है ॥४॥

भावार्थः—धर्म्मात्मा लोग दुष्टों को ऐसा दूर करें कि फिर उसका पता न लगे जैसे सामा अन्न थल में वा पवन में जाकर नहीं मिलता ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् ।
अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥५॥

भाषार्थः—तू (स्तेनम्) चोर को (उत) और (गोअजम्) गौ को हांक ले जाने वाले (तस्करम्) लुटेरे को (अप वासः) बाहिर बसा दे। (अथो) और भी [उसको], (यः) जो (अर्वतः) घोड़े के (शिरः) शिर को (अभिधाय) बांधकर (निनीषति) [उसे] ले जाना चाहता है ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष गौ आदि दूध के पशुओं को चुरा ले जावें, और इस लिये कि घोड़े फिर घर को न लौट आवें और न शब्द करें, उनका शिर अर्थात् आंखें और मुख बन्द करके भगा ले जावें, उन्हें देश से निकाल देना चाहिये ॥५॥

यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु ।
यदेतदस्मान् भोजय यथेदन्यानुपायसि ॥६॥

भाषार्थः—(सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली (रात्रि) रात्रि ! (अद्य) आज (यत्) जिस (अयः) सुवर्ण और (यत्) जिस (वसु) धन को (विभजन्ति) वे [चोर] बांटते हैं। (एतत्) उस को (अस्मान्) हमें (भोजय) भोगने दे, (यथा) जिस से (इत्) निश्चय करके (अन्यान्) दूसरे [पदार्थों] को [हमें] (उप--अयसि) तू पहुंचाती रहे ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करके डाकू चोर आदि दुष्टों से धन और सम्पत्ति की रक्षा करके वृद्धि करते रहें ॥६॥

उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः ।
उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥७॥

भाषार्थः—(रात्रि) हे रात्रि ! (उषसे) उषा [प्रभात वेला] को (नः) हम (सर्वान्) सब (अनागसः) निर्दोषों को (परि देहि) सौंप। (उषाः) उषा (नः) हमें (अह्ने) दिन को, और (अहः) दिन (तुभ्यम्) तुझ को (आ भजात्) देवे, (विभावरि) हे बड़ी चमक वाली ! ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य दिन और रात्रि सदा धर्म के साथ अपनी वृद्धि करें ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऊपर आ चुका है—४८ । २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥५१॥

१, २ ॥ आत्मा देवता ॥ १ ब्राह्म्युष्णिक्, २ विराडार्ष्युष्णिक् ॥

आत्मोन्नत्युपदेशः आत्मा की उन्नति का उपदेश ॥

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो
मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥१॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (अयुतः) अनिन्दित [प्रशंसायुक्त] [होऊं] (मे) मेरा (आत्मा) आत्मा [जीवात्मा] (अयुतः) अनिन्दित, (मे) मेरी (चक्षुः) आंख (अयुतम्) अनिन्दित, (मे) मेरा (श्रोत्रम्) कान (अयुतम्) अनिन्दित, (मे) मेरा (प्राणः) प्राण [भीतर जाने वाला श्वास] (अयुतः) अनिन्दित, (मे) मेरा (अपानः) अपान [बाहिर जाने वाला श्वास] (अयुतः) अनिन्दित, (मे) मेरा (व्यानः) व्यान [सब शरीर में घूमने वाला वायु] (अयुतः) अनिन्दित [होवे], (सर्वः) सब का सब (अहम्) मैं (अयुतः) अनिन्दित [होऊं] ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने आपे, अपने आत्मा, अपने इन्द्रियों, अपने अंगों और अपने सर्वस्व से सदा प्रशंसनीय कर्म करते हैं वे ही आत्मोन्नति कर सकते हैं ॥१॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्
पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥२॥

भाषार्थः—[हे शूर !] (देवस्य) प्रकाशमान, (सवितुः) सर्वोत्पादक [परमेश्वर] के (प्रसवे) बड़े ऐश्वर्य के बीच, (अश्विनोः) सब विद्याओं में व्याप्त दोनों [माता पिता] के (बाहुभ्याम्) दोनों भुजाओं से और (पूष्णः) पोषक [आचार्य] के (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (प्रसूतः) प्रेरणा किया हुआ मैं (त्वा) तुझ को (आ रभे) ग्रहण करता हूं ॥२॥

भावार्थः—जो परमेश्वर भक्त विद्वान् पराक्रमी पुरुष माता पिता और आचार्य से उत्तम शिक्षा पाकर उन्नति करे, सब मनुष्य उस का सदा सत्कार करते रहें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—२०। ३ और महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका राजप्रजा धर्म विषय में भी व्याख्यात है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥५२॥ [काम सूक्तम्] ॥

१—५ ॥ कामो देवता ॥ १, २ आर्षी त्रिष्टुप्, ३, उष्णिक्, ४ निचृदनुष्टुप् ५ उपरिष्टाद् बृहती ॥

कामप्रशंसोपदेशः—काम की प्रशंसा का उपदेश ॥

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥१॥

भाषार्थः—(तत्) फिर [प्रलय के पीछे] (अग्रे) पहिले ही पहिले (कामः) काम [इच्छा] (सम्) ठीक ठीक (अवर्तत) वर्तमान हुआ, (यत्) जो (मनसः) मन का (प्रथमम्) पहिला (रेतः) बीज (आसीत्) था। (सः) सो तू, (काम) हे काम! (बृहता) बड़े (कामेन) काम [कामना करने वाले परमेश्वर] के साथ (सयोनिः) एक स्थानी होकर (रायः) धन की (पोषम्) वृद्धि (यजमानाय) यजमान [विद्वानों के सत्कार करने वाले] को (धेहि) दान कर ॥१॥

भावार्थः—प्रलय के पीछे प्राणियों के पूर्वजन्मों के कर्म फलों के अनुसार परमात्मा ने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा की है, सो हे मनुष्यो तुम उत्तम कर्म करके अभीष्ट सुख प्राप्त करो ॥१॥

१—इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध ऋग्वेद में है—१०। १२९। ४। और चौथा पाद आ चुका है—अ० १८। १। ४३॥

२—इस सूक्त का मिलान करो—अ० ९। २ और देखो यजुर्वेद ७। ४८॥

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥२॥

भाषार्थः (काम) हे काम! [आशा] (त्वम्) तू (सहसा) बल के साथ (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठा युक्त (असि) है, (आ) और, (सखे) हे मित्र! (सखीयते) मित्र चाहने वाले के लिये तू (विभुः) समर्थ और (विभावा) तेजस्वी है। (त्वम्) तू (पृतनासु) सङ्ग्रामों में (उग्रः) उग्र और (सासहिः) विजयी है, (सहः) बल और (ओजः) पराक्रम (यजमानाय) यजमान को (धेहि) दान कर ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपनी आशाओं में दृढ़ होते हैं, वे ही संसार में प्रतापी और विजयी होकर कीर्ति पाते हैं ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥३॥

भाषार्थः—(अक्षये) निर्हानि [पूर्णता] के बीच (प्रतिपानाय) सब प्रकार रक्षा के लिये (दूरात्) दूर से [जन्म से पूर्व कर्म के संस्कार के कारण से] (चकमानाय) कामना कर चुकने वाले (अस्मै) इस [पुरुष] को (आशाः) दिशाओं ने (कामेन) काम [आशा] के साथ (स्वः) सुख को (आ अशृण्वन्) अङ्गीकार किया है और (अजनयन्) उत्पन्न किया है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण जन्म से ही अक्षय सुख के लिये दृढ़ आशा और प्रयत्न करता हुआ प्रत्येक स्थान में आनन्द पाता है ॥३॥

कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥४॥

भाषार्थः—(कामेन) काम [कर्म फल इच्छा] के साथ (कामः) काम [आशा] (हृदयात्) [एक] हृदय से (हृदयं परि) [दूसरे] हृदय में होकर (मा) मुझ को (आ अगन्) प्राप्त हुआ है। (अमीषाम्) इन [विद्वानों] का (यत्) जो (अदः) वह (मनः) मनन है, (तत्) वह (माम्) मुझ को (इह) यहां (उप) आदर से (आ एतु) प्राप्त होवे ॥४॥

भावार्थः – मनुष्य विद्वानों से विद्यायें प्राप्त करके दृढ़ आशायें करता हुआ उन्नति करता रहे ॥४॥

यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥५॥

भाषार्थः—(काम) हे काम ! [आशा] (यत्) जिस [फल] को (कामयमानाः) चाहते हुए हम (ते) तेरी (इदम्) यह (हविः) भक्ति (कृण्मसि) करते हैं। (तत्) वह (सर्वम्) सब (नः) हमारे लिये (सम्) सर्वथा (ऋध्यताम्) सिद्ध होवे, (अथ) इसलिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ [वर्तमान] (एतस्य) इस (हविषः) भक्ति की (वीहि) प्राप्ति कर ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को दृढ़ भक्ति के साथ शुभ कामनाओं की सिद्धि के लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥५३॥ [काल सूक्तम्] ॥

१—१० ॥ कालो देवता ॥ १, ३ निचृत् त्रिष्टुप्, २ निचृदार्षी त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् पङ्क्तिः, ५ विराडार्षी बृहती, ६, ९ निचृदनुष्टुप्, ७, ८, १० अनुष्टुप् ॥

कालमहिमोपदेशः—काल की महिमा का उपदेश ॥

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥१॥

भाषार्थः—(सप्तरश्मिः) सात प्रकार की किरणों वाले सूर्य [के समान प्रकाशमान], (सहस्राक्षः) सहस्रों नेत्र वाला, (अजरः) बूढ़ा न होने वाला, (भूरिरेताः) बड़े बल वाला (कालः) काल [समयरूपी] (अश्वः) घोड़ा (वहति) चलता रहता है। (तम्) उस पर (कवयः) ज्ञानवान् (विपश्चितः) बुद्धिमान् लोग (आरोहन्ति) चढ़ते हैं, (तस्य) उस [काल] के (चक्रा) चक्र [चक्र अर्थात् घूमने के स्थान] (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्ता वाले हैं ॥१॥

भावार्थः—महा बलवान् काल सर्वत्रव्यापी और अति शीघ्रगामी, शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र वर्ण किरणों वाले सूर्य के समान प्रकाशमान है, उस काल को बुद्धिमान् लोग सब अवस्थाओं में घोड़े के समान सहायक जान कर अपना कर्तव्य सिद्ध करते हैं ॥१॥

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥२॥

भाषार्थः—(एषः कालः) यह काल [समय] (सप्त) [तीनकाल और चार दिशाओं रूपी] सात (चक्रान्) पहियों को (वहति) चलाता है, (अस्य) इस की (सप्त) [वे ही] सात (नाभीः) नाभि [पहिये के मध्य] हैं, और (अक्षः) [इसका] धुरा (नु) निश्चय करके (अमृतम्) अमरपन है। (सः) वह (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्तावालों को (अञ्जत्) प्रकट करता हुआ [है], (सः कालः) वह काल (नु) निश्चय करके (प्रथमः) पहिला (देवः) देवता [दिव्य पदार्थ] (ईयते) जाना जाता है ॥२॥

भावार्थः—काल व्यापक और नित्य है, काल से ही संसार के सब कार्य सिद्ध होते हैं, मनुष्य काल के यथावत् उपयोग से उन्नति को प्राप्त होवें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥३॥

भाषार्थः—(काले अधि) काल [समय] के ऊपर (पूर्णः) भरा हुआ (कुम्भः) घड़ा [सम्पत्तियों का कोश] (आहितः) रक्खा है, (तम्) उस [घड़े] को (वै) निश्चय करके (सन्तः) वर्तमान हम (नु) ही (बहुधा) अनेक प्रकार (पश्यामः) देखते हैं। (सः) वह [काल] (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्ता वालों के (प्रत्यङ्) सामने चलता हुआ है, (तम्) उस (कालम्) काल को (परमे) अति ऊंचे (व्योमन्) विविध रक्षा स्थान [ब्रह्म] में [वर्तमान] (आहुः) वे [बुद्धिमान् लोग] बताते हैं ॥३॥

भावार्थः—समय के सुप्रयोग से धर्मात्मा लोग अनेक सम्पत्तियों के साथ सद्गति प्राप्त करते हैं, वह महाप्रबल सब स्थानों में परमात्मा के सामर्थ्य के बीच वर्तमान है, उस की महिमा को बुद्धिमान् जानते हैं ॥३॥

स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥४॥

भाषार्थः—(सः एव) उस ने ही (भुवनानि) सत्ताओं को (सम्) अच्छे प्रकार (आ) सब ओर से (अभरत्) पुष्ट किया है, (सः एव) उसने ही (भुवनानि) सत्ताओं को (सम्) अच्छे प्रकार (परि ऐत्) घेर लिया है। वह (एषाम्) इन [सत्ताओं] का (पिता) पिता [पिता समान पहिले] (सन्) होकर (पुत्रः) पुत्र [पुत्र समान पीछे] (अभवत्) हुआ है (तस्मात्) उस से (परम्) बड़ा (अन्यत्) दूसरा (तेजः) तेज [सृष्टि के बीच] (वै) निश्चय करके (न) नहीं (अस्ति) है ॥४॥

भावार्थः—काल सब सत्ताओं में व्यापक है, काल ही सृष्टि का पिता और पुत्र है, अर्थात् पहिली, वर्तमान और आगामी सृष्टि काल से ही है, अर्थात् नित्य होने से वही पहिले और वही पीछे है, इसी से वह संसार में बड़ा प्रतापी है ॥४॥

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥५॥

भाषार्थः (कालः) काल [समय] ने (अमूम्) उस (दिवम्) आकाश को (उत) और (कालः) काल ने (इमाः) इन (पृथिवीः) पृथिवियों को (अजनयत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न किया है। (काले) काल में (ह) ही (भूतम्) बीता हुआ (च) और (भव्यम्) होने वाला (इषितम्) प्रेरा हुआ (ह) ही (वि) विशेष करके (तिष्ठते) ठहरता है ॥५॥

भावार्थः–काल को पाकर ही यह दीखता हुआ आकाश और पृथिवी आदि लोक उत्पन्न हुए हैं और परमेश्वर के नियम से भूत और भविष्यत् भी काल के भीतर हैं ॥५॥

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥६॥

भाषार्थः—(कालः) काल [समय] ने (भूतिम्) ऐश्वर्य को (असृजत) उत्पन्न किया है, (काले) काल में (सूर्यः) सूर्य (तपति) तपता है। (काले) काल में (ह) ही (विश्वा) सब (भूतानि) सत्तायें हैं, (काले) काल में (चक्षुः) आंख (वि) विविध प्रकार (पश्यति) देखती है ॥६॥

भावार्थः—काल ही पाकर सब ऐश्वर्य, प्रकाश और पदार्थ उत्पन्न होते हैं ॥६॥

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥७॥

भाषार्थः—(काले) काल में (मनः) मन, (काले) काल में (प्राणः) प्राण, (काले) काल में (नाम) नाम (समाहितम्) संग्रह किया गया है। (आगतेन) आये हुए (कालेन) काल के साथ (इमाः) यह (सर्वाः) सब (प्रजाः) प्रजायें (नन्दन्ति) आनन्द पाती हैं ॥७॥

भावार्थः—काल के उत्तम उपयोग से मन और प्राण अर्थात् सब इन्द्रियों का स्वास्थ्य और यश बढ़ता है, तब ही सब प्राणी सुख पाते हैं ॥७॥

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥८॥

भाषार्थः—(काले) काल [समय] में (तपः) तप [ब्रह्मचर्यादि], (काले) काल में (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठ कर्म, (काले) काल में (ब्रह्म) वेदज्ञान (समाहितम्) संग्रह किया गया है। (कालः) काल (ह) ही (सर्वस्य) सब का (ईश्वरः) स्वामी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, (यः) जो [काल] (प्रजापतेः) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य] का (पिता) पिता [के समान पालक] (आसीत्) हुआ है ॥८॥

भावार्थः—काल के ही उत्तम उपयोग से मनुष्य ब्रह्मचर्य के साथ श्रेष्ठ कर्म और वेदाध्ययन आदि करते और प्रजापालक होते हैं ॥८॥

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।

कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥९॥

भाषार्थः – (तेन) उस [काल] करके (इषितम्) प्रेरा गया (तेन) उस करके (जातम्) उत्पन्न किया गया (तत्) यह [जगत्] (तस्मिन्) उस [काल] में (उ) ही (प्रतिष्ठितम्) दृढ़ ठहरा है। (कालः) काल (ह) ही (ब्रह्म) बढ़ता हुआ अन्न (भूत्वा) होकर (परमेष्ठिनम्) सब से ऊंचे ठहरे हुए [मनुष्य] को (बिभर्ति) पालता है ॥९॥

भावार्थः—यह जगत् काल के उत्तम उपयोग से उत्पन्न होकर ठहरा हुआ है और उसके ही उत्तम उपयोग से अन्न आदि पाकर मनुष्य उच्च पद पाते हैं ॥९॥

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।

स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥१०॥

भाषार्थः—(अग्रे) पहिले (कालः) काल ने (प्रजाः) प्रजाओं को, और (कालः) काल ने (प्रजापतिम्) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य] को (असृजत) उत्पन्न किया है। (कालात्) काल से (स्वयम्भूः) स्वयम्भू [अपने आप उत्पन्न होने वाला] (कश्यपः) कश्यप [द्रष्टा परमेश्वर] और (कालात्) काल से (तपः) तप [ब्रह्मचर्य आदि नियम] (अजायत) प्रकट हुआ है ॥१०॥

भावार्थः—प्रलय के पीछे सृष्टि की आदि में काल के प्रभाव से सब प्रजायें और प्रजापालक राजा आदि उत्पन्न होते हैं, और तभी अजन्मा परमात्मा अपने गुणों और अद्भुत रचनाओं और नियमों के कारण प्रसिद्ध होता है ॥१०॥

सूक्तम् ॥५४॥ [कालसूक्तम्] ॥

१—५ ॥ कालो देवता ॥ १ निचृदनुष्टुप्, २ गायत्री, ३, ४ अनुष्टुप्, ५ अतिशक्वरी ॥

कालमहिमोपदेशः—काल की महिमा का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥१॥

भाषार्थः—(कालात्) काल [गिनती करने वाले समय] से (आपः) प्रजायें, (कालात्) काल से (ब्रह्म) वेदज्ञान, (तपः) तप [ब्रह्मचर्यादि नियम] और (दिशः) दिशायें (सम् अभवन्) उत्पन्न हुई हैं। (कालेन) काल के साथ (सूर्यः) सूर्य (उद् एति) निकलता है, (काले) काल में (पुनः) फिर (नि विशते) डूब जाता है ॥१॥

भावार्थः—समय के प्रभाव से प्रलय के पीछे परमात्मा सब पदार्थों और नियमों को उत्पन्न करता और प्रलय समय में लय कर देता है, जैसे सूर्य पृथिवी के सन्मुख होने से दिखाई देता और पृथिवी की आड़ में होने से अदृश्य हो जाता है ॥१॥

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही ।
द्यौर्मही काल आहिता ॥२॥

भाषार्थः—(कालेन) काल [समय] के साथ (वातः) पवन (पवते) शुद्ध करता है, (कालेन) काल के साथ (पृथिवी) पृथिवी (मही) बड़ी है। (काले) काल में (मही) बड़ा (द्यौः) आकाश (आहिता) रक्खा है ॥२॥

भावार्थः—समय के कारण वायु, पृथिवी, आकाश आदि के परमाणु संयोग पाकर साकार होकर संसार का उपकार करते हैं ॥२॥

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा ।
कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥३॥

भाषार्थः—(कालः) कालरूपी (पुत्रः) पुत्र ने (ह) ही (भूतम्) बीता हुआ (च) और (भव्यम्) होने वाला (पुरा) पहिले (अजनयत्) उत्पन्न किया है। (कालात्) काल से (ऋचः) ऋचायें [गुण प्रकाशक विद्यायें] (सम् अभवन्) उत्पन्न हुई हैं, (कालात्) काल से (यजुः) यजुर्वेद [सत्कर्मों का ज्ञान] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३॥

भावार्थः - नित्य वर्तमान काल पिता के समान पहिले और पुत्र के समान पीछे भी विद्यमान रहता है—[देखो गत सूक्त मन्त्र ४]। काल के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही प्रभाव से सब आगे पीछे की सृष्टि और वेदों का प्रादुर्भाव होता है ॥३॥

का॒लो य॒ज्ञं समै॑रयद्दे॒वेभ्यो॑ भा॒गमक्षि॑तम् ।
का॒ले ग॑न्धर्वाप्स॒रसः॑ का॒ले लो॒काः प्रति॑ष्ठिताः ॥४॥

भाषार्थः—(कालः) काल ने (यज्ञम्) यज्ञ [सत्कर्म] को (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (अक्षितम्) अक्षय (भागम्) भाग (सम्) पूरा पूरा (ऐरयत्) भेजा है। (काले) काल में (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व [पृथिवी पर धरे हुए पदार्थ] और अप्सरायें [आकाश में चलने वाले पदार्थ], और (काले) काल में (लोकाः) सब लोक (प्रतिष्ठिताः) रक्खे हुए हैं ॥४॥

भावार्थः—समय के उपयोग से विद्वान् लोग सत्कर्म करके सद्गति पाते हैं और काल में ही संसार के सब पदार्थ ठहरे हैं ॥४॥

का॒लेऽयमङ्गि॑रा दे॒वोऽथ॑र्वा॒ चाधि॑ तिष्ठतः । इ॒मं च॑ लो॒कं प॑र॒मं च॑ लो॒कं पुण्यां॑श्च लो॒कान् विधृ॑तीश्च॒ पुण्याः॑ । सर्वां॑ल्लो॒कान॑भि॒जित्य॒ ब्रह्म॑णा का॒लः स ई॑यते पर॒मो नु दे॒वः ॥५॥

भाषार्थः—(काले) काल [समय] में (अयम्) यह (अङ्गिराः) अङ्गिरा [ज्ञानवान्] (देवः) व्यवहार कुशल मनुष्य (च) और (अथर्वा) अङ्गिरा [निश्चल स्वभाव ऋषि] (अधि) अधिकारपूर्वक (तिष्ठतः) दोनों स्थित हैं। (इमम्) इस (लोकम्) लोक को (च च) और (परमम्) सब से ऊंचे (लोकम्) लोक को (च) और (पुण्यान्) पुण्य (लोकान्) लोकों को (च) और (पुण्याः) पुण्य (विधृतीः) विविध धारण शक्तियों को, [अर्थात्] (सर्वान्) सब (लोकान्) लोकों को (अभिजित्य) सर्वथा जीतकर, (ब्रह्मणा) ब्रह्म [परमेश्वर] के साथ, (सः) वह (परमः) सब से बड़ा (देवः) दिव्य (कालः) काल (नु) शीघ्र (ईयते) चलता है ॥५॥

भावार्थः—काल के सादर निरन्तर सेवन से मनुष्य ज्ञानी ऋषि होकर और सब व्यवहारों और समाजों में प्रतिष्ठा पाकर परम गति प्राप्त कर आनन्द भोगते हैं ॥५॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥५५॥

१—६ ॥ अग्निर्देवता ॥ १ त्रिष्टुप्, २ निचृदार्षी पङ्क्तिः, ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्, ५ विराडार्षी पङ्क्तिः, ६ आर्षी बृहती ॥

गृहस्थधर्मोपदेशः—गृहस्थ धर्म का उपदेश ॥

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥१॥

भाषार्थः—(रात्रिंरात्रिम्) रात्रि रात्रि को (अस्मै) इस [गृहस्थ] के लिये (अप्रयातम्) पीड़ा न देने वाले (घासम्) भोजन योग्य पदार्थ को, (तिष्ठते) थान पर ठहरे हुए (अश्वाय) घोड़े के लिये (इव) जैसे [घास आदि को], (भरन्तः) धरते हुए, (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से और (इषा) अन्न से (सम्) अच्छे प्रकार (मदन्तः) आनन्द करते हुए, (ते) तेरे (प्रतिवेशाः) सन्मुख रहने वाले हम, (अग्ने) हे अग्नि ! [तेजस्वी विद्वान्] (मा रिषाम) न दुःखी होवें ॥१॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग, जैसे रात्रि में थके घोड़े को घास अन्न आदि देकर प्रसन्न करते हैं, वैसे ही मुख्य परिश्रमी पुरुष को आदर करके सुखी रक्खें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—११ । ७५ और ऊपर आ चुका है—अ० ३ । १५ । ८ ॥

या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥२॥

भाषार्थः—[हे विद्वन् !] (ते वातः) तुझ चलते फिरते की [हमारे लिये] (वसोः) उत्तम पदार्थ की (या) जो (इषुः) इच्छा है, (सा) सो (एषा) वह (ते) तेरी [ही] है, (तया) उस [इच्छा] से (नः) हमें (मृड) सुखी कर । (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से और (इषा) अन्न से (सम्) अच्छे प्रकार (मदन्तः) आनन्द करते हुए, (ते, तेरे (प्रतिवेशाः) सन्मुख रहने वाले हम, (अग्ने) हे अग्नि ! [तेजस्वी विद्वान्] (मा रिषाम) न दुःखी होवें ॥२॥

भावार्थः जो मनुष्य दूसरों की उन्नति का प्रयत्न करता है, वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी ही उन्नति करता है, इस से प्रत्येक मनुष्य पुरुषार्थ करके सब को सुख पहुंचावे ॥२॥

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥३॥

प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥४॥

भाषार्थः—(सायंसायम्) सायं सायङ्काल में (नः) हमारे (गृहपतिः) घरों का रक्षक, और (प्रातःप्रातः) प्रातः प्रातःकाल में (सौमनसस्य) सुख का (दाता) देने वाला (अग्निः) अग्नि [ज्ञानवान् परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष वा भौतिक अग्नि] तू (वसोर्वसोः) उत्तम उत्तम प्रकार के (वसुदानः) धन का देने वाला (एधि) हो, (त्वा) तुझ को (इन्धानाः) प्रकाशित करते हुए (वयम्) हम लोग (तन्वम्) शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें ॥३॥

(प्रातःप्रातः) प्रातः प्रातःकाल में (नः) हमारे (गृहपतिः) घरों का रक्षक, और (सायंसायम्) सायं सायंकाल में (सौमनसस्य) सुख का (दाता) देने वाला (अग्निः) अग्नि [ज्ञानवान् परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष वा भौतिक अग्नि] तू (वसोर्वसोः) उत्तम उत्तम प्रकार के (वसुदानः) धन का देने वाला (एधि) हो, (त्वा) तुझको (इन्धानाः) प्रकाशित करते हुए (शतंहिमाः) सौ शीतल ऋतुओं वाले हम लोग (ऋधेम) बढ़ते रहें ॥४॥

भावार्थः मनुष्यों को परमेश्वर की उपासना, विद्वानों के सत्संग और अग्निहोत्र के अनुष्ठान से स्वास्थ्य बढ़ाकर धनवृद्धि करनी चाहिये ॥३, ४॥

मन्त्र ३, ४ महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पञ्च महायज्ञ विषय में व्याख्यात हैं। मन्त्र ३ का चौथा पाद आचुका है—अ० ५। ३। १॥

अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम् । अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये । सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥५॥

भाषार्थः—मैं (दग्धान्नस्य) जले हुए अन्न के (अपश्चा) न पीछे [जाने वाला] (भूयासम्) होऊं। (अन्नादाय) अन्न खिलाने वाले, (अन्नपतये) अन्न के स्वामी (रुद्राय) ज्ञानदाता, (अग्नये) ज्ञानी [पुरुष] के लिये (नमः) नमस्कार है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सम्यः) सभा के योग्य तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा [सभा की व्यवस्था] की (पाहि) रक्षा कर, (च) और [वे भी रक्षा करें] (ये) जो (सभ्याः) सभा के योग्य (सभासदः) सभासद् हैं ॥५॥

भावार्थः जैसे जले हुये अन्न को निःसार समझ कर छोड़ देते हैं, वैसे ही मनुष्य व्यर्थ निष्फल कामों में प्रयत्न न करें। अन्न आदि आवश्यक पदार्थों का संग्रह रक्खें, और राजप्रबन्ध से सभा व्यवस्था अर्थात् पंचायत बनाकर योग्य सभासदों को धर्म पथ में लगाये रहें ॥५॥

इस मन्त्र का अन्तिम भाग कुछ भेद से व्याख्यात है—महर्षि दयानन्द कृत संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण, सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ६ राजधर्म, और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका राजप्रजाधर्म ॥

त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवत् ।
अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥६॥

भाषार्थः—(पुरुहूत) हे बहुतों से बुलाये गये (इन्द्र) परम ऐश्वर्य वाले राजन् ! (त्वम्) तू (विश्वम्) पूर्ण (आयुः) जीवन को (वि) विविध प्रकार (अश्नवत्) प्राप्त हो। (अग्ने) हे ज्ञानी राजन् ! (ते) तेरे लिये (इत्) ही (अहरहः) दिन दिन (बलिम्) बलि [कर] (हरन्तः) लाते हुए [हम हैं], (इव) जैसे (तिष्ठते) थान पर ठहरे हुए (अश्वाय) घोड़े को (घासम्) घास [लाते हैं] ॥६॥

भावार्थः—सब मनुष्य धन आदि से प्रधान पुरुष का सत्कार करते रहें, जिस से वह पूर्ण आयु प्राप्त करके सब की रक्षा में तत्पर रहे ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका बलिवैश्वदेव विषय में व्याख्यात है ॥

सूक्तम् ।५६॥ [स्वप्नसूक्तम्] ॥

१—६ ॥ स्वप्नो देवता ॥ १, २, ६ त्रिष्टुप्; ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्, ५ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

निद्रात्यागोपदेशः—निद्रा त्याग का उपदेश ॥

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥१॥

भाषार्थः [हे स्वप्न !] (यमस्य) यम [मृत्यु] के (लोकात्) लोक से (अधि) अधिकार पूर्वक (आ बभूविथ) तू आया है, (धीरः) धीर [धैर्यवान्] तू

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रमदा) आनन्द के साथ (मर्त्यान्) मनुष्यों को (प्र युनक्षि) काम में लाता है। (असुरस्य) प्राण वाले [जीव] के (योनौ) घर में (स्वप्नम्) निद्रा (मिमानः) करता हुआ (विद्वान्) जानकार तू (एकाकिना) एकाकी [मृत्यु] के साथ (सरथम्) एक रथ में होकर (यासि) चलता है ॥१॥

भावार्थः—स्वप्न वा आलस्य के कारण अवसर चूक कर मनुष्य कष्टों में पड़कर मृत्यु पाते हैं ॥१॥

इस सूक्त का अर्थ अधिक विचारो और मिलान करो —अ० का० ६। सू० ४६ तथा का० १६। सू० ५॥

बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥२॥

भावार्थः—[हे स्वप्न !] (विश्वचयाः) संसार के संचय करने वाले (बन्धः) प्रबन्ध कर्ता [परमेश्वर] ने (त्वा) तुझे (अग्रे) पहिले ही [पूर्व जन्म में] (रात्र्याः) रात्रि [प्रलय] के (जनितोः) जन्म से (पुरा) पहिले (एके अह्नि) एक दिन [एक समय] में (अपश्यत्) देखा है। (ततः) इसी से (स्वप्न) हे स्वप्न ! (भिषग्भ्यः) वैद्यों से (रूपम्) [अपना] रूप (अपगूहमानः) छिपाता हुआ तू (इदम्) इस [जगत्] में (अधि) अधिकार पूर्वक (आ बभूविथ) व्यापा है ॥२॥

भावार्थः यह स्वप्न वा आलस्य आदि दोष पहिले जन्म के कर्म फलों के संस्कार से हैं और ईश्वर नियम से आत्मा में ऐसा गुप्त है कि विद्वान् लोग उसकी ठीक ठीक व्यवस्था नहीं जानते। मनुष्य ऐसा विचार कर उत्तम कामों को सदा शीघ्र करें ॥२॥

बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन्।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥३॥

भावार्थः—[जो स्वप्न] (बृहद्गावा) बड़ी गति वाला, (महिमानम्) [अपनी] महिमा (इच्छन्) चाहता हुआ, (असुरेभ्यः अधि) असुरों [अविद्वानों] के पास से (देवान्) विद्वानों के (उप अवर्तत) पास वर्तमान हुआ है। (तस्मै स्वप्नाय) उस स्वप्न को (स्वः) सुख (आनशानाः) पा चुकने वाले (त्रयस्त्रिंशासः) तेतीस संख्या वाले [देवताओं] ने (आधिपत्यम्) अधिपतिपन (दधुः) दिया है ॥३॥

भावार्थः—तेतीस देवता, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीने, एक इन्द्र वा बिजुली, और एक प्रजापति वा यज्ञ हैं [देखो-अथर्व० ६। १३९। १]। भावार्थ विचारना चाहिये ॥३॥

नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम्।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥४॥

भाषार्थः—(एताम्) इस [आगे वर्णित वाणी] को (न) न तो (पितरः) पालन करने वाले, (उत) और (न) न (देवाः) विद्वान् लोग (विदुः) जानते हैं, (येषाम्) जिन [लोगों] की (जल्पिः) वाणी (इदम् अन्तरा) इस [जगत्] के बीच (चरति) विचरती है—"(वरुणेन) श्रेष्ठ [परमात्मा] करके (अनुशिष्टाः) शिक्षा किये गए, (आदित्यासः) अखण्डव्रत वाले (नरः) नेता लोगों ने (आप्त्ये) आप्तों [सत्य वक्ताओं] के हितकारी (त्रिते) तीनों [लोकों] के विस्तार करने वाले [परमेश्वर] में (स्वप्नम्) स्वप्न को (दधुः) धारण किया है" ॥४॥

भावार्थः—विचारना चाहिये ॥४॥

यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः।
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥५॥

भाषार्थः—(दुष्कृतः) दुष्कर्मियों ने (यस्य) जिस [स्वप्न] के (क्रूरम्) क्रूर [निर्दय] कर्म को (अभजन्त) भोगा है, और (अस्वप्नेन) स्वप्न त्याग से (सुकृतः) सुकर्मियों ने (पुण्यम्) पवित्र (आयुः) जीवन [भोगा] है। [हे स्वप्न!] (स्वः) सुख में [वर्तमान] (परमेण) परम (बन्धुना) बन्धु [पुरुष] के साथ (मदसि) तू जड हो जाता है और (तप्यमानस्य) सन्ताप को प्राप्त हुए [थके पुरुष] के (मनसः अधि) मन में से (जज्ञिषे) तू प्रकट हुआ है ॥५॥

भावार्थः—दुष्ट लोग स्वप्न वा आलस्य के कारण महाकष्ट उठाते हैं, और पुण्यात्मा उसके त्याग से आनन्द उठाते हैं। सर्वहितैषी पुरुषार्थी लोगों में उसका प्रभाव नहीं होता, वह पुरुषार्थहीन थके लोगों में प्रभाव जमाता है ॥५॥

विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्यारा‌द् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥६॥

भाषार्थः—(स्वप्न) हे स्वप्न! (पुरस्तात्) सामने [रहने वाले] (ते) तेरे (सर्वाः) सब (परिजाः) परिवारों [काम क्रोध लोभ आदि] को (विद्म) हम जानते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, और [उस परमेश्वर को] (विद्म) हम जानते हैं (यः) जो (इह) यहां पर (ते) तेरा (अधिपाः) बड़ा राजा है। (यशस्विनः नः) हम यशस्वियों को (यशसा) धन [वा कीर्ति] के साथ (इह) यहां पर (पाहि) पाल (द्विषेभिः) वैर भावों के साथ (आरात्) दूर (दूरम्) दूर (अप याहि) तू चला जा ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि स्वप्न वा आलस्य के कारण अर्थात् काम क्रोध लोभ आदि को त्याग कर परमेश्वर के आश्रय से यशस्वी होकर अपनी सम्पत्ति और कीर्ति को बनाये रक्खें, और कभी परस्पर द्वेष न करें ॥६॥

सूक्तम् ॥५७॥

१—५ ॥ आत्मा देवता ॥ १ अनुष्टुप्; २ आर्षी पंक्तिः ३ आर्षी त्रिष्टुप्; ४ निचृदष्टिः; ५ भुरिगार्षी जगती ॥

दुष्टस्वप्ननिवारणोपदेशः—बुरे स्वप्न दूर करने का उपदेश ॥

यथा॑ क॒लां यथा॑ श॒फं यथ॒र्णं सं॒ नय॑न्ति ।
ए॒वा दुः॒ष्वप्न्यं॒ सर्व॑म॒प्रिये॒ सं न॑यामसि ॥१॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (कलाम्) सोलहवें अंश को और (यथा) जैसे (शफम्) आठवें अंश को और (यथा) जैसे (ऋणम्) [पूरे] ऋण को (संनयन्ति) लोग चुकाते हैं। (एव) वैसे ही (सर्वम्) सब (दुःष्वप्न्यम्) नींद में उठे बुरे विचार को (अप्रिये) अप्रिय पुरुष पर (सम् नयामसि) हम छोड़ते हैं ॥१॥

भावार्थः जैसे मनुष्य ऋण को थोड़ा थोड़ा करके वा सब एक साथ चुकाते हैं, वैसे ही मनुष्य कुस्वप्न आदि रोगों से निवृत्ति पावें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आचुका है—अ० ६। ४६। ३ और ऋग्वेद में भी है—८। ४७। १७॥

सं राजा॑नो अगुः॒ समृ॒णान्य॑गुः॒ सं कु॒ष्ठा अ॑गुः॒ सं क॒ला अ॑गुः ।
सम॒स्मासु॒ यद्दुः॒ष्वप्न्यं॒ निर्द्वि॑ष॒ते दुः॒ष्वप्न्यं॑ सुवाम ॥२॥

भाषार्थः—(राजानः) राजा लोग (सम् अगुः) एकत्र हुए हैं, (ऋणानि) अनेक ऋण (सम् अगुः) एकत्र हुए हैं, (कुष्ठाः) कुष्ठ [कूट आदि औषध विशेष] (सम् अगुः) एकत्र हुए हैं, (कलाः) कलायें [समय के अंश] (सम् अगुः) एकत्र हुए हैं। (अस्मासु) हम में (यत्) जो (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न (सम्=सम् अगात्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकत्र हुआ है, (दुःष्वप्न्यम्) उस दुष्ट स्वप्न को (द्विषते) वैर करने वाले के लिये (निः सुवाम) हम बाहर निकालें ॥२॥

भावार्थः—(कुष्ठ) अर्थात् कूट औषध के लिये देखो—अ० १९। ३९। जैसे राजा लोग एकत्र होकर संसार के कष्ट दूर करते हैं, वैसे ही वैद्य लोग दुष्ट स्वप्न आदि रोगों का नाश करें ॥२॥

देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न ।
स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः ।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥३॥

भाषार्थः—(देवानाम्) हे विद्वानों की (पत्नीनाम्) पालन शक्तियों के (गर्भ) गर्भ ! [उदर रूप पोषक] और (यमस्य) हे यम [मृत्यु] के (कर) हाथ ! (स्वप्न) हे स्वप्न ! (यः) जो तू (भद्रः) कल्याणकारी है, (सः) वह (मम) मेरा [होवे], (तत्) इस लिये (यः) जो तू (पापः) पापी [अनहित] है, [उसे] (द्विषते) वैरी के लिये (प्र हिण्मः) हम भेजते हैं। (तृष्टानाम्) क्रूरों के मध्य (कृष्णशकुनेः) काले पक्षी [कौवे आदि] का (मुखम्) मुख (मा असि) तू मत हो ॥३॥

भावार्थः—स्वप्न दो प्रकार के हैं, एक शुभ विद्वानों के हितकारी और दूसरे अशुभ जो दुःखदायी हैं। विद्वान् लोग अपने शुभ विचारों के अनुरूप शुभ स्वप्न देखें और कुविचारों के कारण से कुस्वप्न देखकर शत्रु न बनें ॥३॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम् । अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥४॥

भाषार्थः—(स्वप्न) हे स्वप्न ! (तं त्वा) उस तुझ को (तथा) वैसा ही (सम्) पूरा पूरा (विद्म) हम जानते हैं, (सः त्वम्) सो तू (स्वप्न) हे स्वप्न ! (अश्वः इव) जैसे घोड़ा (कायम्) अपनी पेटी को, और (अश्वः इव) जैसे घोड़ा (नीनाहम्) अपनी बागडोर [को तोड़ डालता है, वैसे] (अनास्माकम्) हमारे न होने वाले (देवपीयुम्) विद्वानों के सताने वाले (पियारुम्) दुःखदायी को (वप) तोड़ डाल और (दुःष्वप्न्यम्) उस दुष्ट स्वप्न को [तोड़ दे], (यत्) जो (अस्मासु) हम में है, (यत्) जो (नः) हमारी (गोषु) गौओं में है, (च) और (यत्) जो (गृहे) घर में है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे बलवान् घोड़ा अपनी पेटी और बागडोर को तोड़-ताड़ डालता है, वैसे ही मनुष्य शुभ विचारों द्वारा दुष्ट विचारों को नाश करें और सब को स्वस्थ रक्खें ।।४।।

अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।
नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि ।
दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ।।५।।

भाषार्थः—(अनास्माकः) हमारा न होने वाला, (देवपीयुः) विद्वानों का सताने वाला (पियारुः) दुःखदायी [शत्रु] (तद्) उस [दुष्ट स्वप्न] को (निष्कम् इव) सुवर्ण के समान (प्रति मुञ्चताम्) धारण करे। (अस्माकम्) हमारे (ततः) उस [स्थान] से [दुष्ट स्वप्न को] (नव) नौ (अरत्नीन्) हाथों भर (परि) अलग करके (अपमयाः) तू दूर ले जा। (सर्वम्) सब (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न को (द्विषते) वैरी के लिये (निः दयामसि) हम बाहर हाँकते हैं ।।५।।

भावार्थः—धर्मात्मा लोग दुष्टों के समान कुविचारों को अपने में न आने देवें, किन्तु उत्तम विचारों को आत्मा में सदा धारण करते रहें ।।५।।

सूक्तम् ।।५८।।

१—६ ।। आत्मा देवता ।। १, ४ त्रिष्टुप्, २ आर्षी पङ्क्तिः, ३ अतिशक्वरी, ५ आर्षी त्रिष्टुप्, ६ भुरिगार्षी त्रिष्टुप् ।।

आत्मोन्नत्युपदेशः—आत्मा की उन्नति का उपदेश ।।

घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती ।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ।।१।।

भाषार्थः—(घृतस्य) प्रकाश की (समना) मनोहर, (सदेवा) इन्द्रियों के साथ रहने वाली (जूतिः) वेग गति (हविषा) दान से (संवत्सरम्) वर्ष [जीवन काल] को (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई [रहे]। (नः) हमारा (श्रोत्रम्) कान, (चक्षुः) आंख और (प्राणः) प्राण (अच्छिन्नः) निर्हानि (अस्तु) होवे, (वयम्) हम (आयुषः) जीवन से और (वर्चसः) तेज से (अच्छिन्नाः) निर्हानि [होवें] ।।१।।

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि विद्या आदि से शीघ्र प्रतापी होकर अपने आत्मा और शरीर की उन्नति करे ।।१।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे ।
वर्चो जग्राह पृथिव्य१ न्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥२॥

भाषार्थः—(प्राणः) प्राण (अस्मान्) हम को (उप ह्वयताम्) समीप बुलावे, (वयम्) हम (प्राणम्) प्राण को (उप हवामहे) समीप बुलाते हैं। (पृथिवी) पृथिवी और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष से (वर्चः) तेज (जग्राह) ग्रहण किया है, (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के स्वामी], (विधत्ता) पोषण करने वाले (सोमः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ने (वर्चः) तेज [ग्रहण किया] है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य अपने आत्मा और शरीर की सदा रक्षा करके उनके द्वारा उपकारी होवे, जैसे पृथिवी और आकाश बलवान् होकर पदार्थों और लोकों को धारण करते हैं और जैसे विद्वान् तेजस्वी पुरुष विविध कार्य सिद्ध करता है ॥२॥

वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम । यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ॥३॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी तुम दोनों (वर्चसः) तेज के (संग्रहणी) संग्रह करने वाले (बभूवथुः) हुए हो, (वर्चः) तेज को (गृहीत्वा) ग्रहण करके (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (सम् चरेम) हम विचरें। (आयतीः) आती हुई (गावः) गौएं (यशसम्) अन्न वाले (गोपतिम्) गोपति [गौओं के स्वामी] को (उपतिष्ठन्ति) सेवती हैं, (यशः) अन्न (गृहीत्वा) ग्रहण करके (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (सम् चरेम) हम विचरें ॥३॥

भावार्थः- मनुष्य सूर्य और पृथिवी के समान बली होकर संसार में उपकार करें, और जैसे गौ आदि पशु अन्न आदि देने वाले अपने स्वामी की सेवा करते हैं, वैसे ही मनुष्य अन्न आदि से अपने पोषकों की सेवा करें ॥३॥

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥४॥

भाषार्थः—(व्रजम्) घेर [गोस्थान] को (कृणुध्वम्) तुम बनाओ, (हि) क्योंकि (सः) वह [स्थान] (वः) तुम्हारे लिये (नृपाणः) नेताओं की रक्षा करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला है, (बहुला) बहुत से (पृथूनि) चौड़े चौड़े (वर्म) कवचों को (सीव्यध्वम्) सींओ। (पुरः) दुर्गों को (आयसीः) लोहे का (अधृष्टाः) अटूट (कृणुध्वम्) बनाओ, (वः) तुम्हारा (चमसः) चमचा [भोजन पात्र] (मा सुस्रोत्) न टपक जावे, (तम्) उसको (दृंहत) दृढ़ करो ॥४॥

भावार्थः—जैसे गोशाला में गौ आदि पशु सुरक्षित रहते हैं, और जैसे राजा सैनिकों की रक्षा के लिये दृढ़ दुर्ग बना कर अस्त्र शस्त्र आदि से भरपूर करता है, वैसे ही मनुष्य अपने रक्षा साधनों का संग्रह करता रहे ॥४॥

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥५॥

भाषार्थः—[जो पुरुष] (यज्ञस्य) पूजनीय कर्म का (चक्षुः) नेत्र [नेत्र समान] प्रदर्शक, (प्रभृतिः) पुष्टि (च) और (मुखम्) मुख [समान मुख्य] है, [उसको] (वाचा) वाणी से, (श्रोत्रेण) कान से और (मनसा) मन से (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूं। (सुमनस्यमानाः) शुभचिन्तकों के समान आचरण वाले, (देवाः) व्यवहार कुशल महात्मा (विश्वकर्मणा) संसार के रचनेवाले परमेश्वर करके (विततम्) फैलाये हुए (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय धर्म को (आ यन्तु) प्राप्त करें ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सत्य सङ्कल्पी, सत्यसन्ध, ऋषि महात्माओं के वैदिक उपदेश को वाणी से पठन पाठन, श्रोत्र से श्रवण श्रावण, और मन से निदिध्यासन अर्थात् वारम्वार विचार करके ग्रहण करें। सब अनुग्रहशील महात्मा परमेश्वर के दिये हुए विज्ञान और धर्म का प्रचार करते रहें ॥५॥

यह मन्त्र ऊपर आचुका है—अ० २। ३५। ५ ॥

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥६॥

भाषार्थः—(ये) जो (देवानाम्) विद्वानों में (ऋत्विजः) सब ऋतुओं में यज्ञ करने वाले, (च) और (ये) जो (यज्ञियाः) पूजा योग्य हैं, और (येभ्यः) जिनके लिये (हव्यम्) देने योग्य (भागधेयम्) भाग (क्रियते) किया जाता है। (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ में (पत्नीभिः सह) [अपनी] पत्नियों सहित (एत्य) आकर, (यावन्तः) जितने (तविषाः) बड़े (देवाः) विद्वान् हैं, [हमें] (मादयन्ताम्) वे प्रसन्न करें ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वान् ऋषि महात्माओं और विदुषी स्त्रियों का यथावत् सत्कार करके उन्नति करें ॥६॥

सूक्तम् ॥५९॥

१—३ ॥ अग्निर्देवता ॥ १ भुरिगार्ची गायत्री; २,३ त्रिष्टुप् ॥

सुमार्गगमनोपदेशः—उत्तम मार्ग पर चलने का उपदेश ॥

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! [वा विद्वान् पुरुष] (त्वम्) तू (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (व्रतपाः) नियम का पालन करने वाला (आ) और (देवः) व्यवहार कुशल, (त्वम्) तू (यज्ञेषु) यज्ञों [संयोग वियोग व्यवहारों] में (आ) सब प्रकार (ईड्यः) स्तुति के योग्य (असि) है ॥१॥

भावार्थः—जैसे परमात्मा नियमों के पालन से संयोग वियोग करके अनेक रचनायें करता है, वैसे ही मनुष्य उत्तम नियमों पर चलकर योग्य कर्मों के संयोग और कुयोग्यों के वियोग में उत्तम व्यवहार सिद्ध करें ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८ । ११ । १ और यजु० ४ । १६ ॥

यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥२॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानो ! (यत्) यदि (अविदुष्टरासः) निपट अजान (वयम्) हम (वः विदुषाम्) तुम विद्वानों के (व्रतानि) नियमों को (प्रमिनाम) तोड़ डालें । (विश्वात्) सब का प्रबन्ध करने वाला (अग्निः) [वह] अग्नि [ज्ञानवान् परमेश्वर] (तत्) उस को (आ पृणातु) पूरा कर देवे, (यः) जिस (सोमस्य) ऐश्वर्य के (विद्वान्) जानकार [परमेश्वर] ने (ब्राह्मणान्) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] में (आविवेश) प्रवेश किया है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य अज्ञानी होकर दोष करें, वे विद्वानों के सत्संग से परमात्मा की उपासनापूर्वक अपने दोषों को हटावें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । २ । ४ और चौथा पाद कुछ भेद से आ चुका है—अ० १८ । ३ । ५५ ॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देवानाम्) विद्वानों के (अपि) ही (पन्थाम्) मार्ग को (आ) सब ओर से (अगन्म) हम प्राप्त हुए हैं (तत्) उस [श्रेष्ठ कर्म] को (अनुप्रवोढुम्) लगातार ले चलने के लिये (यत्) जो कुछ (शक्नवाम) समर्थ होवें। (सः) वह (विद्वान्) विद्वान् (अग्निः) अग्नि [ज्ञानी परमात्मा] (यजात्) [बल] देवे, (सः इत्) वह ही (होता) दाता है, (सः) वह (अध्वरान्) हिंसा रहित व्यवहारों को, (सः) वही (ऋतून्) ऋतुओं [अनुकूल समयों] को (कल्पयाति) समर्थ करे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के परीक्षित वैदिक मार्ग पर चलें। और सब को चलावें ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। २। ३॥

सूक्तम् ॥६०॥

१—२॥ परमात्मा देवता॥ १ विराडार्षी बृहती; २ विराडार्ष्युष्णिक्॥

शरीरस्वास्थ्योपदेशः—शरीर के स्वास्थ्य का उपदेश॥

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥१॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥२॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] (मे) मेरे (आसन्) मुख में (वाक्) वाणी, (नसोः) दोनों नथनों में (प्राणः) प्राण, (अक्ष्णोः) दोनों आंखों में (चक्षुः) दृष्टि, (कर्णयोः) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) सुनने की शक्ति, (केशाः) केश (अपलिताः) अनभूरे, (दन्ताः) दांत (अशोणाः) अचलायमान [वा अरक्त वर्ण], और (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में (बहु) बहुत (बलम्) बल [होवे] ॥१॥

(ऊर्वोः) दोनों जङ्घाओं में (ओजः) सामर्थ्य (जङ्घयोः) दोनों घुटनों [पिण्डलियों वा नीचे की जांघों] में (जवः) वेग, (पादयोः) दोनों पैरों में (प्रतिष्ठा) जमाव [दृढ़ता], (मे) मेरे (सर्वा) सब [अङ्ग] (अरिष्टानि) निर्दोष और (आत्मा) आत्मा (अनिभृष्टः) विना नीचे गिरा हुआ [होवे] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित आहार विहार, व्यायाम, योगाभ्यास आदि से अपने शरीर और आत्मा दृढ़ रखने चाहियें ॥१, २॥

मन्त्र २ में (प्रतिष्ठा अरिष्टानि) पदों में सन्धि न होने से जाना जाता है कि (पादयोः) पर अवसान होने के स्थान में (प्रतिष्ठा) पर अवसान होना चाहिये॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥६१॥

मन्त्र १ ॥ आत्मा देवता ॥ विराडार्षी बृहती ॥

सुखप्राप्त्युपदेशः – सुख की प्राप्ति का उपदेश ॥

तनूस्तन्वा मे सहे दुतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥१॥

भाषार्थः—(मे) अपने (तन्वा) शरीर के साथ (तनूः) [दूसरों के] शरीरों को (सहे) मैं सराहता हूं, (दतः=दत्तः) रक्षा किया हुआ मैं (सर्वम्) पूर्ण (आयुः) जीवन (अशीय) प्राप्त करूं (मे) मेरे लिये (स्योनम्) सुख से (सीद) तू बैठ, (पुरुः) पूर्ण होकर (स्वर्गे) स्वर्ग [सुख पहुँचाने वाले स्थान] में (पवमानः) चलता हुआ तू [हमें] (पृणस्व) पूर्ण कर ॥१॥

भावार्थः –मनुष्यों को योग्य है कि आप सब की रक्षा करके अपनी रक्षा करें और विद्या और पराक्रम में पूर्ण होकर सब को विद्वान् और पराक्रमी बनाकर आप सुखी होवें और सबको सुखी करें ॥१॥

सूक्तम् ॥६२॥

मन्त्रः १ ॥ ब्रह्म देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥

विदुषां कर्तव्योपदेशः—विद्वानों के कर्तव्य का उपदेश ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥१॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (मा) मुझे (देवेषु) ब्राह्मणों [ज्ञानियों] में (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर। (मा) मुझे (राजसु) राजाओं में (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर। (उत) और (आर्ये) वैश्य में (उत) और (शूद्रे) शूद्र में और (सर्वस्य) सब (पश्यतः) देखने वाले [जीव] का (प्रियम्) प्रिय [कर] ॥१॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर सब ब्राह्मण आदि से निष्पक्ष होकर प्रीति करता है, वैसेही विद्वानों को सब संसार से प्रीति करनी चाहिये ॥१॥

इस मन्त्र का मिलान अथ० १९।३२।८ और निम्नलिखित मन्त्र से करो—यजु० १८।४८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुच꣡ꣳ राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

[हे जगदीश्वर !] (नः) हमारी (रुचम्) प्रीति को (ब्राह्मणेषु) ब्राह्मणों [वेद वेत्ताओं] में (धेहि) धारण कर, (नः) हमारी (रुचम्) प्रीति को (राजसु) राजाओं में (कृधि) कर। (रुचम्) [हमारी] प्रीति को (विश्येषु) मनुष्यों के हितकारी वैश्यों में और (शूद्रेषु) शोकयुक्त शूद्रों में [कर], (मयि) मुझ में (रुचा) [मेरी] प्रीति के साथ (रुचम्) [उनकी] प्रीति को (धेहि) धर ॥

सूक्तम् ॥६३॥

मन्त्रः १ ॥ ब्रह्मणस्पतिर्देवता ॥ विराडार्षी बृहती छन्दः ॥

विदुषां कर्तव्योपदेशः— विद्वानों के कर्तव्य का उपदेश ॥

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥१॥

भाषार्थः—(ब्राह्मणःपते) हे वेद के रक्षक ! [विद्वान् पुरुष] तू (उत् तिष्ठ) उठ, और (देवान्) विद्वानों को (यज्ञेन) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] से (बोधय) जगा। (यजमानम्) यजमान [श्रेष्ठकर्म करने वाले] को (च) और (आयुः) [उसके] जीवन, (प्राणम्) प्राण [आत्मबल], (प्रजाम्) प्रजा, [सन्तान आदि], (पशून्) पशुओं [गौयें, घोड़े आदि] और (कीर्तिम्) कीर्ति को (वर्धय) बढ़ा ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग विद्वानों से मिलकर सब मनुष्यों का सब प्रकार उन्नति का उपाय करते रहें ॥१॥

सूक्तम् ॥६४॥

१—४ ॥ अग्निर्देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्, ३ निचृदनुष्टुप्, ४ भुरिगुष्णिक् ॥

भौतिकाग्न्युपयोगोपदेशः - भौतिक अग्नि के उपयोग का उपदेश ॥

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥१॥

भाषार्थः—(बृहते) बढ़ते हुए, (जातवेदसे) पदार्थों में विद्यमान (अग्ने = अग्नये) अग्नि के लिये (समिधम्) समिधा [जलाने के वस्तु काष्ठ आदि] को (आ अहार्षम्) मैं लाया हूं। (सः) वह (जातवेदाः) पदार्थों में विद्यमान [अग्नि] (मे)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे (श्रद्धाम्) श्रद्धा [आदर, विश्वास] (च च) और (मेधाम्) धारणावती बुद्धि (प्रयच्छतु) देवे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि काष्ठ घृत और अन्य द्रव्यों से भौतिक अग्नि को प्रज्वलित करके हवन और शिल्प कार्यों में उपयोगी करें तथा उसके गुणों में श्रद्धा और बुद्धि बढ़ावें और इसी प्रकार परमात्मा की भक्ति को अपने हृदय में स्थापित करें ॥१॥

इस सूक्त का मिलान करो यजु० ३ । १-४ ॥

इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।
तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥२॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे पदार्थों में विद्यमान ! [अग्नि] (इध्मेन) इन्धन [जलाने के पदार्थ] से और (समिधा) समिधा [काष्ठ आदि] से (त्वा) तुझे [जैसे] (वर्धयामसि) हम बढ़ाते हैं । (तथा) वैसे ही (त्वम्) तू (अस्मान्) हमें (प्रजया) प्रजा [सन्तान आदि] से (च च) और (धनेन) धन से (वर्धय) बढ़ा ॥२॥

भावार्थः—जैसे जैसे मनुष्य हवन और शिल्प कार्यों में भौतिक अग्नि का उपयोग करते हैं, वैसे वैसे ही उन के सन्तान आदि और धन की वृद्धि होती है ॥२॥

यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥३॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि ! (यानि कानि चित्) जिन किन ही (दारूणि) काष्ठों को (ते) तेरे लिये (यत्) जो कुछ (आ दध्मसि) हम लाकर धरते हैं । (तत् सर्वम्) वह सब (मे) मेरे लिये (शिवम्) कल्याणकारी (अस्तु) होवे, (यविष्ठ्य) हे अत्यन्त संयोजक वियोजकों में साधु ! [योग्य] (तत्) उस [काष्ठ आदि] को (जुषस्व) तू सेवन कर ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य काष्ठ आदि पदार्थों को अग्नि में हवन और शिल्प सिद्धि के लिये सावधानी और विचार से छोड़ें, जिस से प्रज्वलित अग्नि द्वारा यथावत् कार्यसिद्धि होवे ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—११ । ७३ और ऋग्वेद ८ । १०२ [सायणभाष्य ९१] ॥२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव ।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥४॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि ! (एताः) यह (ते) तेरे लिये (समिधः) समिधायें [काष्ठ आदि सामग्री] हैं, (त्वम्) तू (इद्धः) प्रज्वलित होकर (समित्) मिलने वाला (भव) हो । (आयुः) जीवन और (अमृतत्वम्) अमरपन को (अस्मासु) हम में (आचार्याय) आचार्य [की सेवा] के लिये (धेहि) धारण कर ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि में काष्ठ आदि का उत्तम उपयोग करते हैं, वे पूर्ण आयु भोग कर और आचार्य आदि की सेवा करके सुखी होते हैं ॥४॥

सूक्तम् ॥६५॥

मन्त्रः १॥ सूर्यो देवता ॥ निचृज्जगती छन्दः ॥

पराक्रमकरणोपदेशः—पराक्रम करने का उपदेश ॥

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥१॥

भाषार्थः [हे मनुष्य !] (हरिः) दुःख का हरने वाला, (सुपर्णः) बड़ा पालने वाला तू (अर्चिषा) पूजनीय कर्म से (दिवम्) चाहने योग्य सुख स्थान में (आ अरुहः) ऊंचा चढ़ा है, (ये) जो [विघ्न] (दिवम्) सुखस्थान को (उत्पतन्तम्) चढ़ते हुए (त्वाम्) तुझे (दिप्सन्ति) दबाना चाहते हैं, (जातवेदः) हे बड़े धन वाले ! (तान्) उन को (हरसा) [अपने] बल से (अव जहि) मार डाल, (अबिभ्यत्) भय न करता हुआ, (उग्रः) तेजस्वी तू (सूर्य) हे सूर्य ! [प्रेरक मनुष्य] (अर्चिषा) पूजनीय कर्म से (दिवम्) सुखस्थान को (आ रोह) चढ़ जा ॥१॥

भावार्थः—पराक्रमी पुरुष सब विघ्नों को हटा कर धनवान् होकर सुखी होवें ॥१॥

सूक्तम् ॥६६॥

मन्त्रः १ ॥ जातवेदा देवता ॥ निचृदतिजगती छन्दः ॥

पराक्रमकरणोपदेशः—पराक्रम करने का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति । तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥१॥

भाषार्थः—(अयोजालाः) लोहे के जाल वाले, (असुराः) असुर [विद्वानों के विरोधी], (मायिनः) छली, (अयस्मयैः) लोहे के बने हुए (पाशैः) फन्दों से (अङ्किनः) आंकड़ा लगाने वाले (ये) जो [शत्रु] (चरन्ति) घूमते फिरते हैं। (जातवेदः) हे बड़े धन वाले! [शूर] (तान्) उन को (ते) तेरे (हरसा) बल से (रन्धयामि) मैं वश में करता हूं, (सहस्रऋष्टिः) सहस्रों दो धारा तरिवार वाला, (वज्रः) वज्रवान्, (सपत्नान्) विरोधियों को (प्रमृणन्) मार डालता हुआ तू [हमें] (पाहि) पाल ॥१॥

भावार्थः—बड़े लोग शूर पराक्रमी पुरुषों का सदा सहाय और सत्कार करते रहें, जिस से वे छली कपटी दुष्टों को मारकर प्रजा का पालन करें ॥१॥

सूक्तम् ॥६७॥

१—८ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ प्राजापत्या गायत्री छन्दः ॥

जीवनस्य स्वास्थ्योपदेशः—जीवन के स्वास्थ्य का उपदेश ॥

पश्येम शरदः शतम् ॥१॥

जीवेम शरदः शतम् ॥२॥

बुध्येम शरदः शतम् ॥३॥

रोहेम शरदः शतम् ॥४॥

पूषेम शरदः शतम् ॥५॥

भवेम शरदः शतम् ॥६॥

भूयेम शरदः शतम् ॥७॥

भूयसीः शरदः शतात् ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (पश्येम) हम देखते रहें ॥१॥

(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (जीवेम) हम जीते रहें ॥२॥

(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (बुध्येम) हम समझते रहें ॥३॥

(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (रोहेम) हम चढ़ते रहें ॥४॥

(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (पूषेम) हम पुष्ट होते रहें ॥५॥

(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (भवेम) हम बने रहें ॥६॥

(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (भूयेम) हम शुद्ध रहें ॥७॥

(शतात्) सौ से (भूयसीः) अधिक (शरदः) वर्षों तक [हम देखते रहें, जीते रहें, इत्यादि] ॥८॥

भावार्थः—हम सब लोग प्रयत्न करें कि परमेश्वर की प्रार्थना सदा करते हुए युक्त आहार विहार से ऐसे स्वस्थ और नीरोग रहें कि सब इन्द्रियां नेत्र, मुख, नासिका, मन आदि सौ वर्ष से भी अधिक पूरे दृढ़ और सचेत रहें, जिससे हम अपना कर्तव्य जीवन भर सावधानी के साथ किया करें ॥१—८॥

मन्त्र १ तथा २ ऋग्वेद में हैं—७। ६६। १६ और सब सूक्त कुछ भेद से यजुर्वेद में है—३६। २४॥

सूक्तम् ॥६८॥

मन्त्रः १ ॥ आत्मा देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥१॥

भाषार्थः—(अव्यसः) अध्यापक [जीवात्मा] के (च च) और (व्यचसः) व्यापक [परमात्मा] के (बिलम्) बिल [भेद] को (मायया) बुद्धि से (वि ष्यामि) मैं खोलता हूं। (अथ) फिर (ताभ्याम्) उन दोनों के जानने के लिये (वेदम्) वेद [ऋग्वेद आदि ज्ञान] को (उद्धृत्य) ऊंचा लाकर (कर्माणि) कर्मों को (कृण्महे) हम करते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य जीवात्मा के कर्तव्य और परमात्मा के अनुग्रह समझने के लिये वेदों को प्रधान जानकर अपना अपना कर्तव्य करते रहें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥६९॥

१—४॥ विद्वांसो देवताः ॥ १ आसुर्यनुष्टुप्, २ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ३ आसुरी गायत्री, ४ आसुर्युष्णिक् ॥

जीवनवर्धनायोपदेशः—जीवन बढ़ाने के लिये उपदेश ॥

जीवा स्थं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (जीवाः) जीने वाले (स्थ) हो, (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्वानों के समान जीवन भर स्वतन्त्र पुरुषार्थ करना चाहिये ॥१॥

उपजीवा स्थोपं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥२॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (उपजीवाः) आश्रय से जीने वाले (स्थ) हो, (उप जीव्यासम्) मैं सहारे से जीता रहूं, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूँ ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को ब्रह्मचर्य आदि दशा में श्रेष्ठों का आश्रय लेकर जीवन व्यतीत करना चाहिये ॥२॥

सं जीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥३॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (संजीवाः) मिलकर जीने वाले (स्थ) हो, (संजीव्यासम्) मैं मिलकर जीता रहूं, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को परस्पर सहाय से अपना जीवन भोगना चाहिये ॥३॥

जीवला स्थं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥४॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] तुम (जीवला) जीवन दाता (स्थ) हो, (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य परस्पर उपकार से सब का जीवन बढ़ाते रहें ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥७०॥

मन्त्रः १ ॥ इन्द्रो देवता ॥ आर्षी गायत्री छन्दः ॥

आयुर्वर्धनायोपदेशः—जीवन बढ़ाने का उपदेश ॥

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम्। सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [परम ऐश्वर्य वाले मनुष्य] (जीव) तू जीता रह, (सूर्य) हे सूर्य! [सूर्य समान तेजस्वी] (जीव) तू जीता रह, (देवाः) हे विद्वानो! तुम (जीवाः) जीने वाले [हो], (अहम्) मैं (जीव्यासम्) जीता रहूं, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परम ऐश्वर्यवान् और प्रधान होकर विद्वानों के साथ पूर्ण आयु जीवें ॥१॥

सूक्तम् ॥७१॥

मन्त्रः १ ॥ वेदमाता देवता ॥ अतिजगती छन्दः ॥

सर्वसुखप्राप्त्युपदेशः—सब सुख पाने का उपदेश ॥

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥१॥

भाषार्थः—(वरदा) वर [इष्ट फल] देने वाली (वेदमाता) ज्ञान की माता [वेदवाणी] (मया) मुझ करके (स्तुता) स्तुति की गयी है, [आप विद्वान् लोग] (पावमानी) शुद्ध करने वाले [परमात्मा] की बताने वाली [वेदवाणी] को (द्विजानाम्) द्विजों [ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों] में (प्र चोदयन्ताम्) आगे बढ़ावें। [हे विद्वानो!] (आयुः) जीवन, (प्राणम्) प्राण [आत्मबल], (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान आदि], (पशुम्) पशु [गौ आदि], (कीर्तिम्) कीर्ति, (द्रविणम्) धन और (ब्रह्मवर्चसम्) वेदाभ्यास का तेज (मह्यम्) मुझ को (दत्त्वा) देकर [हमें] (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मलोक [वेदज्ञानियों के समाज] में (व्रजत) पहुंचाओ। १॥

भावार्थः मनुष्य विद्वान् आचार्यों के द्वारा आदर के साथ वेदवाणी का निरन्तर अभ्यास करके सर्वोन्नति से कीर्तिमान् होते हुए ब्रह्मज्ञानियों में प्रतिष्ठा पावें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥७२॥

मन्त्रः १ ॥ परमात्मा देवता ॥ विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ॥

वैदिककर्मानुष्ठानोपदेशः—वैदिक कर्म करने का उपदेश ॥

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥१॥

भाषार्थः—(यस्मात्) जिस (कोशात्) कोश [निधि स्थान परमात्मा] से (वेदम्) वेद [ऋग्वेद आदि] को (उदभराम) हमने ऊंचा धरा है, (तस्मिन् अन्तः) उस परमात्मा के भीतर (एनम्) इस [जीवात्मा] को (अव) निश्चय करके (दध्मः) हम धरते हैं। (ब्रह्मणा) [जिस] ब्रह्म [परमात्मा] के (वीर्येण) सामर्थ्य से (इष्टम्) इष्ट कर्म (कृतम्) किया जाता है, (तेन) उस [परमात्मा] के साथ, (देवाः) हे विद्वानो! (तपसा) तप द्वारा (मा) मुझ को (इह) यहां पर (अवत) बचाओ ॥१॥

भावार्थः–जिस परमात्मा के अनन्त भण्डार से वेद रत्न को हमने पाया है, उसी परमात्मा का आश्रय लेकर विद्वानों के सत्संग और सहाय से तप करते हुए अपनी रक्षा करके हम आनन्द भोगें ॥१॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

इत्येकोनविंशं काण्डम् समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

विंशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१॥

मन्त्राः १—३ ॥ १ इन्द्रः; २ मरुतः; ३ अग्निर्देवता ॥ १, २ गायत्री, ३ निचृद् गायत्री छन्दः ॥

राजप्रजाकर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।
स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [अत्यन्त ऐश्वर्य वाले राजन्] (वृषभम्) बलिष्ठ (त्वा) तुझ को (सुते) सिद्ध किये हुए (सोमे) ऐश्वर्य वा ओषधियों के समूह में (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं। (सः) सो तू (मध्वः) मधुर गुण से युक्त (अन्धसः) अन्न की (पाहि) रक्षा कर ॥१॥

भावार्थः—प्रजाजन सत्कार के साथ ऐश्वर्य देकर धर्मात्मा राजा से अपनी रक्षा करावें, जैसे सद्वैद्य उत्तम ओषधियों से रोगी को अच्छा करता है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—३।४०।१ और आगे है—अथ० २०। सूक्त ६। म० १॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः।
स सुगोपातमो जनः॥२॥

भाषार्थः—(विमहसः) हे विविध पूजनीय (मरुतः) शूर विद्वानो! (यस्य) जिस [राजा] के (क्षये) ऐश्वर्य में (दिवः) उत्तम व्यवहारों की (पाथ) तुम रक्षा करते हो, (सः हि) वही (सुगोपातमः) अच्छे प्रकार पृथिवी का अत्यन्त पालने वाला (जनः) पुरुष है॥२॥

भावार्थः—विद्वान् प्रजागण बुद्धिमान् राजा का सहाय करके परस्पर ऐश्वर्य बढ़ावें, जिससे वह सर्वथा प्रजा की रक्षा कर सके॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१।८६।१ और यजु० ८।३१॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये॥३॥

भाषार्थः—(उक्षान्नाय) प्रबलों के अन्न दाता (वशान्नाय) वशी भूत [निर्बल प्रजाओं] के अन्न दाता, (सोमपृष्ठाय) ऐश्वर्य के सींचने वाले (वेधसे) बुद्धिमान् (अग्नये) अग्नि [समान तेजस्वी राजा] की (स्तोमैः) स्तुति योग्य कर्मों से (विधेम) हम पूजा करें॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार राजा अपने पराक्रम और धर्म नीति से प्रजा का उपकार करे, वैसे ही प्रजागण योग्य रीति से राजा की सेवा करते रहें॥३॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८।४३।११ और कुछ भेद से पहिले आ चुका है—अ० ३।२१।६॥

सूक्तम्॥२॥

१—४॥ १ मरुतः; २ अग्निः; ३ ब्रह्मा; ४ द्रविणोदा देवता॥ १, २ आर्ची गायत्री, ३ साम्नी पङ्क्तिः, ४ आर्च्युष्णिक्॥

विदुषां व्यवहारोपदेशः—विद्वानों के व्यवहार का उपदेश॥

मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु॥१॥

भाषार्थः—(मरुतः) शूर विद्वान् लोग (सुष्टुभः) बड़े स्तुति योग्य, (स्वर्कात्) बड़े पूजनीय (पोत्रात्) पवित्र व्यवहार से (ऋतुना) ऋतु के अनुसार (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस को (पिबतु) पीवें॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य उत्तम व्यवहारों से उत्तम ओषधि आदि का सेवन करके सदा सुख बढ़ावें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । १५ । २ ॥

अ॒ग्निरा॒ग्नीध्रा॑त् सु॒ष्टुभः॑ स्व॒र्का॑दृ॒तुना॒ सोमं॑ पिबतु ॥२॥

भाषार्थः (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी पुरुष] (सुष्टुभः) बड़े स्तुति योग्य, (स्वर्कात्) बड़े पूजनीय (आग्नीध्रात्) अग्नि की प्रकाश विद्या को आश्रय में रखने वाले व्यवहार से (ऋतुना) ऋतु के साथ (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस को (पिबतु) पीवे ॥२॥

भावार्थः - मनुष्य उत्तम अग्निविद्या के उपयोग से सदा सुख सामग्री बढ़ावें ॥२॥

इन्द्रो॑ ब्र॒ह्मा ब्राह्म॑णात् सु॒ष्टुभः॑ स्व॒र्का॑दृ॒तुना॒ सोमं॑ पिबतु ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदज्ञाता पुरुष] (सुष्टुभः) बड़े स्तुति योग्य, (स्वर्कात्) बड़े पूजनीय (ब्राह्मणात्) ब्राह्मण [वेदोक्त ज्ञान] से (ऋतुना) ऋतु के अनुसार (सोमम्) उतम ओषधियों के रस को (पिबतु) पीवे ॥३॥

भावार्थः - वेदज्ञानी पुरुष वेदज्ञान से सदा सुख प्राप्त करे ॥३॥

दे॒वो द्र॑विणो॒दाः पो॒त्रात् सु॒ष्टुभः॑ स्व॒र्का॑दृ॒तुना॒ सोमं॑ पिबतु ॥४॥

भाषार्थः—(देवः) विद्वान् (द्रविणोदाः) धन वा बल का दाता पुरुष, (सुष्टुभः) बड़े स्तुति योग्य, (स्वर्कात्) बड़े पूजनीय (पोत्रात्) पवित्र व्यवहार से (ऋतुना) ऋतु के अनुसार (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस को (पिबतु) पीवे ॥४॥

भावार्थः— विद्वान् लोग सुपात्रों को योग्य दान देकर सुख को प्राप्त होवें ॥४॥

सूक्तम् ॥३॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

राजप्रजाकर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

आ या॑हि सुषु॒मा हि त॒ इन्द्र॒ सोमं॒ पिबा॑ इ॒मम् ।

एदं ब॒र्हिः स॑दो॒ मम॑ ॥१॥

भाषार्थः —(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (आ याहि) तू आ,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हि) क्योंकि (ते) तेरे लिये (सोमम्) सोम [उत्तम ओषधियों का रस] (सुषुम) हम ने सिद्ध किया है, (इमम्) इस [रस] को (पिब) पी, (मम) मेरे (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आ सदः) बैठ ॥१॥

भावार्थः—लोग विद्वान् सद्वैद्य के सिद्ध किये हुए महौषधियों के रस से राजा को स्वस्थ बलवान् रख कर राजसिंहासन पर सुशोभित करें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८ । १७ । १—३ । और सामवेद—उ० १ । १ । तृच ६, मन्त्र १ सामवेद-पू० २ । १० । ७ तथा आगे है—अ० २० । ३८ । १—३ और ४७ । ७—९ ॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहंतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (ब्रह्मयुजा) धन के लिये जोड़े गये, (केशिना) सुन्दर केश [कन्धे आदि के बालों] वाले (हरी) रथ ले चलने वाले दो घोड़े [के समान बल और पराक्रम] (त्वा) तुझ को (आ) सब ओर (वहताम्) ले चलें । (नः) हमारे (ब्रह्माणि) वेदज्ञानों को (उप) आदर से (शृणु) तू सुन ॥२॥

भावार्थः— जैसे उत्तम बलवान् घोड़े रथ को ठिकाने पर पहुंचाते हैं, वैसे ही राजा वेदोक्त मार्ग पर चलकर अपने बल और पराक्रम से राज्य भार उठाकर प्रजा पालन करे ॥२॥

इस मन्त्र का मिलान करो—स्वामीदयानन्दभाष्य यजु० ८ । ३४, ३५ और अथ० २० । २९ । २ ॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥३॥

भाषार्थः— (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (सोमपाम्) ऐश्वर्य के रक्षक (त्वा) तुझ को (युजा) मित्रता के साथ (ब्रह्माणः) वेद जानने वाले, (सोमिनः) ऐश्वर्य वाले, (सुतवन्तः) उत्तम पुत्रादि [सन्तानों] वाले (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं ॥३॥

भावार्थः—जिस राजा के सुप्रबन्ध से प्रजागण ज्ञानवान्, धनवान् और सुशिक्षित सन्तान वाले होवें, उसको मित्र जान कर सदा स्मरण करें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥४॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ गायत्री, २, ३ निचृद् गायत्री ॥

महौषधिरसपानोपदेशः—महौषधियों के रसपान का उपदेश ॥

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप ।

पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥१॥

भाषार्थः—[हे इन्द्र राजन् !] (अस्माकम्) हमारी (सुष्टुतीः) सुन्दर स्तुतियों को (उप=उपेत्य) प्राप्त होकर (सुतवतः) उत्तम पुत्र आदि [सन्तानों] वाले (नः) हम लोगों को (आ याहि) आकर प्राप्त हो। (सुशिप्रिन्) हे दृढ़ जाबड़े वाले! (अन्धसः) इस अन्न रस का (सु) भले प्रकार (पिब) पान कर ॥१॥

भावार्थः मनुष्य सुन्दर महौषधियों के रस के सेवन से हृष्ट पुष्ट होवें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८। १७। ४—६ ॥

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।

गृभाय जिह्वया मधु ॥२॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (ते) तेरी (कुक्ष्योः) दोनों कोखों में (मधु) मधुर पान को आ) भली भांति (सिञ्चामि) मैं सींचता हूं, वह (गात्रा अनु) [तेरे] अङ्गों में (वि धावतु) दौड़ने लगे, [इसको] (जिह्वया) जीभ से (गृभाय) ग्रहण कर ॥२॥

भावार्थः—सद्वैद्य रुधिरसंचारक ओषधियों का सेवन कराके मनुष्यों को पुष्ट रक्खें ॥२॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे ३ तव ।

सोमः शमस्तु ते हृदे ॥३॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (सोमः) सोम [उत्तम ओषधियों का रस] (ते) तेरे (संसुदे) स्वीकार करने के लिये (स्वादुः) स्वादु [रोचक] और (तव) तेरे (तन्वे) शरीर के लिये (मधुमान्) मधुर रस वाला (अस्तु) होवे और (ते) तेरे (हृदे) हृदय के लिये (शम्) शान्तिकारक (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य ऐसी उत्तम ओषधियों का रस सेवन करें जो खाने में स्वादिष्ट हों, शरीर को पुष्ट और हृदय को शान्त करें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥५॥

मन्त्राः १—७॥ इन्द्रो देवता॥ १, २, ६ गायत्री, ३—५, ७ निचृद् गायत्री छन्दः॥

सोमसेवनोपदेशः— सोम रस के सेवन का उपदेश॥

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः। प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥१॥

भाषार्थः—(**विचर्षणे**) हे दूरदर्शी (**इन्द्र**) इन्द्र! [परम ऐश्वर्य वाले पुरुष] (**अयम् उ**) यही (**अभि**) सब प्रकार (**संवृतः**) यथाविधि स्वीकार किया हुआ (**सोमः**) सोम [महौषधियों का रस], (**जनीः इव**) कुलस्त्रियों के समान, (**त्वा**) तुझको (**प्र**) अच्छे प्रकार (**सर्पतु**) प्राप्त होवे ॥१॥

भावार्थः– जैसे कुलस्त्रियां अपने सन्तान आदि का हित करती हैं, वैसे ही सद्वैद्यों का सिद्ध किया हुआ महौषधियों का रस सुखदायक होता है॥१॥

मन्त्र १—७ ऋग्वेद में हैं—८। १७। ६—१३॥

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२॥

भाषार्थः—(**तुविग्रीवः**) दृढ़ गले वाला, (**वपोदरः**) चर्बी से युक्त पेट वाला, (**सुबाहुः**) बलवान् भुजाओं वाला (**इन्द्रः**) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाला पुरुष] (**अन्धसः**) अन्न रस के (**मदे**) आनन्द में (**वृत्राणि**) वैरियों को (**जिघ्नते**) मारे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम ओषधियों के यथावत् सेवन से पुष्ट और बलवान् होकर शत्रुओं का नाश करे॥२॥

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा। वृत्राणि वृत्रहं जहि ॥३॥

भाषार्थः—(**इन्द्र**) हे इन्द्र! [परम ऐश्वर्य वाले राजन्!] (**ओजसा**) अपने बल से (**विश्वस्य**) सब का (**ईशानः**) स्वामी (**त्वम्**) तू (**पुरः**) सामने से (**प्र इहि**) आगे बढ़। (**वृत्रहन्**) हे वैरियों के नाश करने वाले! (**वृत्राणि**) वैरियों को (**जहि**) नाश कर॥३॥

भावार्थः—मनुष्य महाबली होकर आगे बढ़ता हुआ सब विघ्नों को मिटावे॥३॥

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि। यजमानाय सुन्वते ॥४॥

भाषार्थः—[हे शूर!] (**ते**) तेरा (**अंकुशः**) अंकुश [दण्डसाधन] (**दीर्घः**)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लम्बा (अस्तु) होवे, (येन) जिस के कारण से (सुन्वते) तत्त्व रस निचोड़ने वाले (यजमानाय) यजमान [दाता पुरुष] को (वसु) धन (प्रयच्छसि) तू देता है ॥४॥

भावार्थः—राजा दुष्टों के दण्ड देने में निष्पक्ष और प्रचण्ड होकर सज्जनों का मान बढ़ावे ॥४॥

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले राजन् !] (ते) तेरे लिये (अयम्) यह (निपूतः) छाना हुआ (सोमः) सोम [महौषधियों का रस] (बर्हिषि अधि) बढ़िया आसन के ऊपर [है]। (आ इहि) तू आ, (ईम्) अब (द्रव) दौड़ और (अस्य) इस का (पिब) पान कर ॥५॥

भावार्थः—उत्तम सोम रस उत्तम आसन पर बैठकर रुचि से पीना चाहिये ॥५॥

यह मन्त्र सामवेद में है—पू० २।७।५ और मन्त्र ५–७ सामवेद में हैं—उ० १।२। तृच ५॥

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥६॥

भाषार्थः—(शाचिगो) हे स्पष्ट वाणियों वाले ! (शाचिपूजन) हे प्रसिद्ध सत्कार वाले ! (अयम्) यह [सोमरस] (ते) तेरे लिये (रणाय) रण जीतने को (सुतः) सिद्ध किया गया है। (आखण्डल) हे [शत्रुओं के] खण्ड खण्ड करने वाले ! (प्र हूयसे) तू आवाहन किया जाता है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य सत्यवक्ता, सत्य कीर्ति वाले पुरुष का सत्कार उत्तम पदार्थों से करें ॥६॥

यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।
न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥७॥

भाषार्थः—(शृङ्गवृषः) हे तेज की वृष्टि करने वाले [शूर पुरुष] के (नपात्) न गिराने वाले [राजन् !] (ते) तेरा (यः) जो (प्रणपात्) अतिशय करके न गिराने वाला (कुण्डपाय्यः) रक्षा करने वाले [सोमरस] पीने का व्यवहार है। (अस्मिन्) उस में (मनः) मन को (नि) निरन्तर (आ दध्रे) मैं धारण करता हूं ॥७॥

भावार्थः—जो राजा शूर वीर लोगों का उत्साह देने वाला और सोम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ करके अन्न आदि से प्रजा की रक्षा करे; विद्वान् जन उस राजा के उत्तम कामों से प्रसन्न होवें ॥७॥

सूक्तम् ॥६॥

१—६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १—४, ६—६ गायत्री, ५ निचृद् गायत्री ॥

राजप्रजाविषयोपदेशः—राजा और प्रजा के विषय का उपदेश ॥

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।

स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [अत्यन्त ऐश्वर्य वाले राजन्] (वृषभम्) बलिष्ठ (त्वा) तुझ को (सुते) सिद्ध किये हुए (सोमे) सोम [ऐश्वर्य वा ओषधियों के समूह] में (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं। (सः) सो तू (मध्वः) मधुरगुण से युक्त (अन्धसः) अन्न की (पाहि) रक्षा कर ॥१॥

भावार्थः—प्रजाजन सत्कार के साथ ऐश्वर्य देकर धर्मात्मा राजा से अपनी रक्षा करावें, जैसे सद्वैद्य उत्तम ओषधियों से रोगी को अच्छा करता है ॥१॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० २०।१।१। यह सूक्त ऋग्वेद में है—३।४०।१—६॥

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२॥

भाषार्थः—(पुरुष्टुत) हे बहुतों से बड़ाई किये गये (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (क्रतुविदम्) बुद्धि के प्राप्त कराने वाले, (ततृपिम्) तृप्त करने वाले, (सुतम्) सिद्ध किये हुए (सोमम्) सोम [महौषधियों के रस] की (हर्य) इच्छा कर, (पिब) पी (आ) और (वृषस्व) बलवान् हो ॥२॥

भावार्थः—राजा बल और बुद्धि बढ़ाने वाले खान पान के भोजन से तृप्त होकर स्वस्थ रहे ॥२॥

यह मन्त्र आगे है—अ० २०।७।४॥

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः ।

तिर स्तवान विश्पते ॥३॥

भाषार्थः—(स्तवान) हे बड़ाई किये गये ! (विश्पते) हे प्रजापालक ! (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (विश्वेभिः) सब (देवेभिः) विद्वानों के साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमारे लिये (धितवानम्) सेवनीय धन धारण कराने वाले (यज्ञम्) यज्ञ [विद्वानों के सत्कार, सत्संग और दान] को (प्र तिर) बढ़ा ॥३॥

भावार्थः—प्रजापालक राजा विद्वानों के साथ विद्या आदि श्रेष्ठ कर्मों की उन्नति करके प्रजा का ऐश्वर्य बढ़ावे ॥३॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।
क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४॥

भाषार्थः—(सत्पते) हे सत्पुरुषों के पालन करने वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले राजन्] (इमे) यह (चन्द्रासः) आनन्दकारक, (इन्दवः) गीले [रसीले], (सुताः) सिद्ध किये हुए (सोमाः) सोम [महौषधियों के रस] (तव) तेरे (क्षयम्) रहने के स्थान को (प्रयन्ति) पहुंचते हैं ॥४॥

भावार्थः—राजा विद्वानों द्वारा उत्तम उपयोगी पदार्थों का संग्रह करके प्रजा को पाले ॥४॥

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) हे इन्द्र ! [सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले राजन्] (वरेण्यम्) अङ्गीकार करने योग्य (सुतम्) सिद्ध किये हुए (सोमम्) सोम [अन्न आदि महौषधियों के रस] को (जठरे) पेट में (दधिष्व) धर, (द्युक्षासः) व्यवहार में रहने वाले (इन्दवः) रसीले पदार्थ (तव) तेरे [ही हैं] ॥५॥

भावार्थः—राजा आदि श्रेष्ठ जन उत्तम पदार्थों के सेवन से बल और बुद्धि बढ़ावें ॥५॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥६॥

भाषार्थः—(गिर्वणः) हे वाणियों से सेवने योग्य ! (नः) हमारे (सुतम्) ऐश्वर्य की (पाहि) रक्षा कर, (मधोः) मधुर रस की (धाराभिः) धाराओं करके (अज्यसे) तू प्राप्त किया जाता है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले राजन्] (त्वादातम्) तेरा दिया हुआ [वा शोधा हुआ] (इत्) ही (यशः) [हमारा] यश है ॥६॥

भावार्थः—प्रजागण धर्मात्मा राजा का यथायोग्य धनादि से सत्कार करके अपना ऐश्वर्य और यश बढ़ावें ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र सामवेद में भी है—पू० ३ । १ । २ ॥

अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता ।
पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७॥

भाषार्थः—(वनिनः) सेवक लोग (अक्षिता) न घटने वाले (द्युम्नानि) धनों [वा यशों] को (अभि=अभिलक्ष्य) देखकर (इन्द्रम्) [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] से (सचन्ते) मिलते हैं। वह (सोमस्य) सोम [अन्न आदि महोषधियों का रस] (पीत्वी) पीकर (ववृधे) बढ़ा है ॥७॥

भावार्थः—जो पराक्रमी धर्मात्मा राजा अक्षय धन और कीर्ति प्राप्त करता है, प्रजागण उससे प्रीति करते हैं ॥७॥

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥

भाषार्थः—(वृत्रहन्) हे धन के पाने वाले ! (अर्वावतः) समीप देश से (च) और (परावतः) दूर देश से (नः) हम में (आ गहि) आ। और (नः) हमारी (इमाः) इन (गिरः) वाणियों का (जुषस्व) सेवन कर ॥८॥

भावार्थः—राजा धनवान् होकर समीप और दूर से प्रजा की पुकार सुनकर सदा रक्षा करे ॥८॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से आगे है—अ० २० । २० । ४ और ५७ । ८ ॥

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥९॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (यत्) जब कि (परावतम्) दूर देश (च) और (अर्वावतम्) समीप देश के (अन्तरा) बीच में (हूयसे) तू पुकारा जाता है, (ततः) इस लिये (इह) यहां पर (आ गहि) तू आ ॥९।

भावार्थः—जो न्यायी राजा योग्य अधिकारियों द्वारा सब स्थान में प्रजा को पाले, सब लोग उस से प्रीति करें। ९॥

सूक्तम् ॥७॥

१—४ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ विराडार्षी गायत्री, २, ३ निचृद् गायत्री, ४ गायत्री ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षणों का उपदेश ॥

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य ! [सर्वव्यापक वा सर्वप्रेरक परमेश्वर] (श्रुतमघम्) विख्यात धन वाले, (वृषभम्) बलवान्, (नर्यापसम्) मनुष्यों के हितकारी कर्म वाले, (अस्तारम् अभि) शत्रुओं के गिराने वाले पुरुष को (इव) ही (घ) निश्चय करके (उद् एषि) तू उदय होता है ॥१॥

भावार्थः परमपिता जगदीश्वर पुरुषार्थी सर्वहितकारी शूर पुरुष का सदा सहाय करता है ॥१॥

मन्त्र १ ३ ऋग्वेद में हैं -८ । ९३ [सायणभाष्य ८२] । १-३ । मन्त्र १ साम० पू० २ । ४ । १, मन्त्र १—३ साम० उ० ६ । ३ । तृच ४ ॥

नव यो नंवतिं पुरों बिभेदं बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावंधीत् ॥२॥

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥३॥

भाषार्थः —(यः) जिस (वृत्रहा) शत्रुनाशक [सेनापति] ने (बाह्वोजसा) अपने बाहु बल से (नव नवतिम्) नौ नव्वे [९+९० = ९९ अथवा ९×९० = ८१०, अर्थात् असंख्य] (पुरः) दुर्गों को (बिभेद) तोड़ा है (च) और (अहिम्) सर्प [सर्प समान हिंसक शत्रु] को (अवधीत्) मारा ॥२॥

(सः) वह (शिवः) सुखदायक (सखा) मित्र (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सेनापति] (उरुधारा इव) बहुत दूध वाली [गौ] के समान (नः) हमारे लिये (अश्ववत्) उत्तम घोड़ों वाला, (गोमत्) उत्तम गौओं वाला और (यवमत्) उत्तम अन्न वाला [धन] (दोहते) दुहे [पूर्ण करे] ॥३॥

भावार्थः—जो शूर सेनापति अनेक अधर्मी दुष्टों को नाश करे वही प्रजा को धनवान् करता है ॥२, ३॥

मन्त्र २ का मिलान करो—ऋक्० १ । ८४ । १३ ॥

इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥४॥

भाषार्थः—(पुरुष्टुत) हे बहुतों से बड़ाई किये गये (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] (क्रतुविदम्) बुद्धि प्राप्त कराने वाले, (ततृपिम्) तृप्त कराने वाले, (सुतम्) सिद्ध किये हुए (सोमम्) सोम [महौषधियों के रस] की (हर्य) इच्छा कर, (पिब) पी (आ) और (वृषस्व) बलवान् हो ॥४॥

भावार्थः—सेनापति बल और बुद्धि बढ़ाने वाले खान पान के भोजन से तृप्त रह कर स्वस्थ रहे ॥४॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० २० । ६ । २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥८॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ त्रिष्टुप्, २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।

आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (प्रत्नथा) पहिले के समान (एव) ही [हमारी] (पाहि) रक्षा कर, (ब्रह्म) ईश्वर वा वेद (त्वा) तुझे (मन्दतु) हर्षित करे, [उसे] (श्रुधि) सुन (उत) और (गीर्भिः) वेद वाणियों से (ववृधस्व) बढ़ । (सूर्यम्) सूर्य [सूर्य समान विद्या प्रकाश] को (आविः कृणु) प्रकट कर, (इषः) अन्नों को (पीपिहि) प्राप्त हो, (शत्रून्) शत्रुओं को (जहि) मार और [उसकी] (गाः) वाणियों को (अभि) सर्वथा (तृन्धि) मिटा दे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर और वेद में श्रद्धा कर के विद्या और पुरुषार्थ द्वारा अन्न आदि से परिपूर्ण होकर शत्रुओं का नाश कर उनकी कुमर्यादाओं को हटावे ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—६ । १७ । ३ ॥

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।

उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥२॥

भाषार्थः—[हे सभाध्यक्ष !] (अर्वाङ्) सामने (आ इहि) आ, (त्वा) तुझ को (सोमकामम्) ऐश्वर्य चाहने वाला (आहुः) वे कहते हैं, (अयम्) यह (सुतः) सिद्ध किया हुआ [सोमरस] है (मदाय) हर्ष के लिये (तस्य) उस का (पिब) पान कर । (उरुव्यचाः) बड़े सत्कार वाला तू (जठरे) अपने पेट में [उसे] (आ वृषस्व) सींच ले । (पिता इव) पिता के समान (हूयमानः) पुकारा गया तू (नः) हमारी [बात] (शृणुहि) सुन । २॥

भावार्थः—प्रजागण सभापति आदि महापुरुषों को पिता के समान उत्तम पदार्थों और हित वचनों से प्रसन्न रक्खें और प्रधान पुरुष भी प्रजाजनों को पुत्र के समान पालें ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । १०४ । ६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।

समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥३॥

भावार्थः—(अस्य) इस [महा पुरुष] का (कलशः) कलस (आपूर्णः) मुंहामुंह भरा है, (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ (सेक्ता इव, भरने वाले के समान मैंने (कोशम्) वर्तन को (पिबध्यै) पीने के लिये (सिसिचे) भरा है। (प्रियाः) पियारे (प्र दक्षिणित्) दाहिनी ओर को प्राप्त होने वाले (सोमासः) सोम [महौषधियों के रस] (मदाय) हर्ष के लिये (इन्द्रम् अभि) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले प्रधान] को (उ) ही (सम्) यथाविधि (आ) सब ओर (अववृत्रन्) वर्तमान हुए हैं ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् सद्वैद्य उत्तम उत्तम अन्न आदि ओषधियों के रस से आदर करके प्रधान पुरुष को हृष्ट पुष्ट रक्खें ॥३॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है ३ । ३२ । १५ ॥

सूक्तम् ॥९॥

१—४ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ पथ्याबृहती, २, ४ सतः पङ्क्तिः, ३ निचृद्-बृहती छन्दः ॥

ईश्वरोपासनोपदेशः—ईश्वर की उपासना का उपदेश ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥१॥

भावार्थः—[हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारे लिये (तम्) उस (दस्मम्) दर्शनीय, (ऋतीषहम्) शत्रुओं के हराने वाले, (वसोः) धन से और (अन्धसः) अन्न से (मन्दानम्) आनन्द देने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा] को (गीर्भिः) वाणियों से (अभि) सब प्रकार (नवामहे) हम सराहते हैं, (न) जैसे (धेनवः) गौएं (स्वसरेषु) घरों में [वर्तमान] (वत्सम्) बछड़े को [हिङ्कारती हैं] ॥१॥

भावार्थः—जो परमात्मा अनेक धन और अन्न आदि देकर हमें तृप्त करता है, उसे ऐसी प्रीति से हम स्मरण करें, जैसे गौयें दोहने के समय घर में बँधे छोटे बच्चों को पुकारती हैं ॥१॥

मन्त्र १, २ ऋग्वेद में हैं—८ । ८८ [सायणभाष्य ७७] । १,२, साम० उ० १ । १ । १३, मन्त्र १ यजु० २६ । ११ और साम० पू० ३ । ५ । ४ और मन्त्र १—४ आगे हैं—अ० २० । ४९ । ४—७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२॥

भाषार्थः—(द्युक्षम्) व्यवहारों में गति वाले, (सुदानुम्) बड़े दानी, (तविषीभिः) सेनाओं से (आवृतम्) भरपूर (गिरिम् न) मेघ के समान (पुरुभोजसम्) बहुत पालन करने वाले, (क्षुमन्तम्) अन्न वाले, (वाजम्) बल वाले, (शतिनम्) सैकड़ों उत्तम पदार्थों वाले, (सहस्रिणम्) सहस्रों श्रेष्ठ गुण वाले, (गोमन्तम्) उत्तम गौओं वाले [शूर पुरुष] को (मक्षु) शीघ्र [इन्द्र परमात्मा से] (ईमहे) हम मांगते हैं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा से प्रार्थना कर के प्रयत्न करें कि वे अपने सन्तानों, अधिकारियों और प्रजाजनों सहित शूरवीर होकर व्यवहार-कुशल होवें ॥२॥

तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥३॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (त्वा) तुझ से (तत्) वह (सुवीर्यम्) बड़ा वीरत्व और (तत्) वह (ब्रह्म) बढ़ता हुआ अन्न (पूर्वचित्तये) पहिले ज्ञान के लिये (यामि) मैं मांगता हूं। (येन) जिस [वीरत्व और अन्न] से (धने हिते) धन के स्थापित होने पर (यतिभ्यः) यतियों [यत्नशीलों] के लिये (भृगवे=भृगुम्) परिपक्व ज्ञानी को और (येन) जिससे (प्रस्कण्वम्) बड़े बुद्धिमान् पुरुष को (आविथ) तू ने बचाया है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमात्मा की उपासना कर के पुरुषार्थ के साथ प्रथम श्रेणी के पराक्रमी, अन्नवान् और धनी होना चाहिये, जिसके अनुकरण से प्रयत्नशील पुरुष सुरक्षित रहें ॥३॥

मन्त्र ३, ४ ऋग्वेद में है -८।३।९, १०॥

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥४॥

भाषार्थः—(येन) जिस [बल] से (समुद्रम्) समुद्र में (महीः) शक्तिशाली (अपः) जलों को (असृजः) तू ने उत्पन्न किया है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] (तत्) वह (ते) तेरा (वृष्णि) पराक्रम युक्त (शवः) बल है। (सद्यः) अब भी (अस्य) उस [परमात्मा] की (सः) वह (महिमा) महिमा [हम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से] (न) नहीं (संनशे) पाने योग्य है, (यम्) जिस [परमात्मा] को (क्षोणीः) लोकों ने (अनुचक्रदे) निरन्तर पुकारा है ॥४॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने मेघ मण्डल में और पृथिवी पर जल आदि पदार्थ और सब लोकों को उत्पन्न कर के अपने वश में रक्खा है, उसकी महिमा की सीमा को सृष्टि में कोई भी नहीं पा सकता है ॥४॥

सूक्तम् ॥१०॥

१—२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ पथ्या बृहती, २ निचृदार्षी पङ्क्तिः ॥

ईश्वरोपासनोपदेशः—ईश्वर की उपासना का उपदेश ॥

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१॥

भाषार्थः—(त्ये) वे (मधुमत्तमाः) अतिमधुर (स्तोमासः) स्तोत्र (उ) और (गिरः) वाणियां (उत् ईरते) ऊंची जाती हैं। (इव) जैसे (सत्राजितः) सत्य से जीतने वाले, (धनसाः) धन देने वाले, (अक्षितोतयः) अक्षय रक्षा करने वाले, (वाजयन्तः) बल प्रकट करते हुए (रथाः) रथ [आगे बढ़ते हैं] ॥१॥

भावार्थः जैसे शूर वीरों के रथ रणक्षेत्र में विजय पाने के लिये उमंग से चलते हैं, वैसे ही मनुष्य दोषों और दुष्टों को वश में करने के लिये परमात्मा की स्तुति को बड़े आनन्द से किया करें ॥१॥

मन्त्र १, २ ऋग्वेद में हैं—८।३।१५, १६, साम० उ० ६।१।६ और आगे हैं—अ०२०। ५९।१, २ तथा म०१ साम० पू०३।६।९ में भी है ॥

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद् धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२॥

भाषार्थः—(कण्वाः इव) बुद्धिमानों के समान और (सूर्याः इव) सूर्यों के समान [तेजस्वी], (भृगवः) परिपक्व ज्ञान वाले, (महयन्तः) पूजते हुए, (प्रियमेधासः) यज्ञ को प्रिय जानने वाले (आयवः) मनुष्यों ने (विश्वम्) व्यापक, (धीतम्) ध्यान किये गये (इन्द्रम्) इन्द्र [परमात्मा] को (इत्) ही (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (आनशुः) पाया है और (अस्वरन्) उच्चारा है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य बुद्धिमानों और सूर्यों के समान प्रतापी होकर परमात्मा के गुणों को गाते हुए आत्मोन्नति करें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥११॥

१—११ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, २, ११ त्रिष्टुप् ३, ६, ९ विराडार्षी त्रिष्टुप् ४, ५, ७, १० निचृत् त्रिष्टुप्, ८ भुरिक् पङ्क्तिः ॥

राजप्रजा कर्तव्योपदेशः— राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्रः॑ पूर्भिदाति॑रद् दा॒सम॒र्कैर्वि॒दद्व॑सु॒र्दय॑मानो॒ वि शत्रू॑न् ।
ब्रह्म॑जूतस्त॒न्वा॑ वावृधा॒नो भूरि॑दात्र॒ आपृ॑ण॒द् रोद॑सी उ॒भे ॥१॥

भाषार्थः—(विदद्वसुः) ज्ञानी श्रेष्ठ पुरुषों से युक्त (पूर्भित्) [शत्रुओं के] गढ़ों को तोड़ने वाले, (शत्रून्) वैरियों को (वि) विविध प्रकार (दयमानः) मारते हुए (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] ने (अर्कैः) पूजनीय विचारों से (दासम्) दास [सेवक] को (आ अतिरत्) बढ़ाया है। (ब्रह्मजूतः) ब्रह्माओं [महाविद्वानों] से प्रेरणा किये गये, (तन्वा) उपकार शक्ति से (वावृधानः) बढ़ते हुए, (भूरिदात्रः) बहुत से अस्त्र शस्त्र वाले [शूर] ने (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और भूमि को (आ) भले प्रकार (अपृणात्) तृप्त किया है ॥१॥

भावार्थः—जिस राजा की सभा में विद्वान् लोग सम्पत्तिदाता होते हैं, वह राजा शत्रुओं का नाश और प्रजा का पालन करके विज्ञान द्वारा पृथिवी और आकाश को वश में करके संसार को सुखी करता है ॥१॥

यह पूरा सूक्त ऋग्वेद में है—३ । ३४ । १—११ ॥

म॒खस्य॑ ते तवि॒षस्य॒ प्र जू॒तिमिय॑र्मि॒ वाच॑म॒मृता॑य॒ भूष॑न् ।
इन्द्र॑ क्षिती॒नाम॑सि॒ मानु॑षीणां वि॒शां दैवी॑नामु॒त पू॑र्व॒यावा॑ ॥२॥

भाषार्थः—(अमृताय) अविनाशी सुख के लिये (वाचम्) अपनी वाणी को (भूषन्) शोभित करता हुआ मैं (ते) तेरे (तविषस्य) बड़े (मखस्य) यज्ञ के (जूतिम्) वेग को (प्र इयर्मि) प्राप्त होता हूं। (इन्द्र) हे इन्द्र! [महाप्रतापी राजन्] तू (क्षितीनाम्) भूमियों का (उत) और (मानुषीणाम्) मनुष्य सम्बन्धी (दैवीनाम्) उत्तम गुण वाली (विशाम्) प्रजाओं का (पूर्वयावा) अग्रगामी (असि) है ॥२॥

भावार्थः—प्रजाजनों को चाहिये कि धर्मज्ञ राजा की आज्ञा का पालन करते रहें कि जिस से वह सब खेती आदि पदार्थों और मनुष्यों की रक्षा कर सके ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः।
अहन् व्यंसमुशधग् वनेष्वाविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् ॥३॥

भाषार्थः -(शर्धनीतिः) सेना के नायक (इन्द्रः) इन्द्र [प्रतापी राजा] ने (वृत्रम्) शत्रु को (अवृणोत्) घेर लिया, (मायिनाम्) कपटी लोगों का (वर्पनीतिः) कपटी नेता (प्र अमिनात्) अत्यन्त घबराया। (उशधक्) हिंसकों के जलाने वाले ने (वनेषु) वनों में [छिपे] (व्यंसम्) विविध पीड़ा देने वाले को (अहन्) मारा, और (राम्याणाम्) आनन्द देने वाले पुरुषों की (धेनाः) वाणियों को (आविः अकृणोत्) प्रकट किया ॥३॥

भावार्थः जब शूर सेनापति दुष्टों को मारकर प्रजा को सुखी करता है, तब लोग आनन्द मनाते हुए विविध प्रकार उन्नति करते हैं ॥३॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में भी है—३३। २६॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४॥

भाषार्थः (अहानि) दिनों [दिनों के कर्मों] को (जनयन्) प्रकट करते हुए (स्वर्षाः) सुख देने हारे (अभिष्टिः) सब ओर मेल करने वाले, (इन्द्रः) इन्द्र [तेजस्वी सेनापति] ने (उशिग्भिः) प्रीति युक्त बुद्धिमानों के साथ (पृतनाः) सङ्ग्रामों को (जिगाय) जीता है। उसने (मनवे) मनन करने वाले मनुष्य के लिये (अह्नाम्) दिनों के (केतुम्) ज्ञान को (प्र अरोचयत्) प्रकाशित कर दिया है और (बृहते) बड़े (रणाय) रण के जीतने के लिये (ज्योतिः) तेज (अविन्दत्) पाया है ॥४॥

भावार्थः -शूर सेनापति दुष्टों की बुराई और शिष्टों की भलाई जताकर शत्रुओं का नाश करे और न्याय की पताका फैलाकर प्रजा को कष्ट से छुड़ावे ॥४॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥

भाषार्थः (नृवत्) नरों [नेताओं के समान] (पुरूणि) बहुत से (नर्या) नरों के योग्य कर्मों को (दधानः, धारण करते हुए (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] ने (बर्हणाः) बढ़ती हुई (तुजः) सताने वाली सेनाओं में (आ विवेश) प्रवेश किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इमाः) इन (धियः) बुद्धियों को (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (अचेतयत्) चेताया, और (आसाम्) इन [प्रजाओं] के बीच (इमम्) इस (शुक्रम्) शुद्ध (वर्णम्) स्वीकार करने योग्य यश को (प्र अतिरत्) बढ़ाया ॥५॥

भावार्थः—जो शूर सेनापति आगे बढ़ती हुई शत्रु सेना में घुसकर सङ्ग्राम जीतता है, वही संसार में कीर्ति पाता है ॥५॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६॥

भाषार्थः—(महः) महान् लोग (अस्य) इस (इन्द्रस्य) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] के (सुकृता) धर्म से किये हुये (पुरूणि) बहुत से (महानि) महान् [पूजनीय] (कर्म) कर्मों को (पनयन्ति) सराहते हैं। (अभिभूत्योजाः) हरा देने वाले बल से युक्त [शूर] ने (वृजिनान्) पापी (दस्यून्) साहसी चोरों को (वृजनेन) बल के साथ (मायाभिः) बुद्धियों से (सं पिपेष) पीस डाला ॥६॥

भावार्थः—जिस प्रतापी धर्मात्मा राजा की कीर्ति को बड़े बड़े लोग गाते हों, वह राजा अपनी कीर्ति स्थिर रखने के लिये दुराचारियों का नाश कर के प्रजा को सुखी रक्खे ॥६॥

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥

भाषार्थः—(सत्पतिः) सत् पुरुषों के पालने वाले, (चर्षणिप्राः) मनुष्यों के मनोरथ पूरण करने वाले (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] ने (युधा) युद्ध के साथ (मह्ना) अपनी महिमा से (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (वरिवः) सेवनीय धन (चकार) किया है। (विवस्वतः) विविध निवासों वाले [धनी मनुष्य] के (सदने) घर में (अस्य) इस [पुरुष] के (तानि) उन [कर्मों] को (विप्राः) बुद्धिमान् (कवयः) ज्ञानी पुरुष (उक्थेभिः) अपने वचनों से (गृणन्ति) सराहते हैं ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य परोपकारी होकर बड़े कष्ट उठाकर सत्पुरुषों का पालन करते हैं, वे ही संसार में बड़े गिने जाते और कीर्तिमान् होते हैं ॥७॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जिस [वीर] ने (इमाम्) इस (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) आकाश को (ससान) सेवा है, [उस] (सत्रासाहम्) सत्यों के सहने वाले, (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य, (सहोदाम्) बल के देने वाले, (स्वः) सुख (च) और (देवीः) उत्तम (अपः) प्राणों के (ससवांसम्) दान करने वाले, (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी वीर] के (अनु) पीछे (धीरणासः) उत्तम बुद्धियों के लिये युद्ध करने वाले लोग (मदन्ति) सुख पाते हैं ॥८॥

भावार्थः—जो विद्वान् पुरुष पृथिवी और आकाश के पदार्थों से विद्या द्वारा उपयोग लेता है, उसी सत्यवादी नर के पीछे चलकर सब सत्यकर्मी वीर लोग आनन्द पाते हैं ॥८॥

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥९॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] ने (अत्यान्) घोड़ों को (ससान) सेवा है (उत) और (सूर्यम्) सूर्य [समान प्रतापी वीर] को (ससान) सेवा है, (पुरुभोजसम्) बहुत पालन करने वाली (गाम्) पृथिवी [वा गौ] को (ससान) सेवा है। (हिरण्ययम्) सुवर्ण (उत) और (भोगम्) भोग [उत्तम पदार्थों के उपयोग] को (ससान) सेवा है, (दस्यून्) साहसी चोरों को (हत्वी) मारकर (वर्णम्) स्वीकार करने योग्य (आर्यम्) आर्य [श्रेष्ठ धर्मात्मा पुरुष] की (प्र आवत्) रक्षा की है ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम घोड़ों, श्रेष्ठ वीर पुरुषों, राज्य, सुवर्ण आदि धन, और अन्न आदि भोगों के रखने में समर्थ होता है, वही दुष्टों का नाश कर शिष्टों की रक्षा करता है ॥९॥

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ॥१०॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] ने (अहानि) दिनों को और (ओषधीः) ओषधियों [सोम अन्न आदि] को (असनोत्) सेवा है, (वनस्पतीन्) वनस्पतियों [पीपल आदि] और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (असनोत्) सेवा है। उसने (वलम्) घेरने वाले शत्रु को (बिभेद) छिन्न भिन्न किया और (विवाचः) विरुद्ध बोलने वालों को (नुनुदे) निकाल दिया (अथ) फिर (अभिक्रतूनाम्) विरुद्ध कर्म वालों [अभिमानी दुष्टों] का (दमिता) दमन करने वाला (अभवत्) हुआ है ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा को योग्य है कि सदा समय पर ध्यान रखकर पृथिवी और आकाश के पदार्थों को उपयोगी करके विरोधी दुष्टों को निकाल देवे ॥१०॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥

भाषार्थः—(शुनम्) सुख देने वाले (मघवानम्) बड़े धनी, (अस्मिन्) इस (भरे) युद्ध के बीच (वाजसातौ) अन्न के पाने में (नृतमम्) बड़े नेता, (शृण्वन्तम्) सुनने वाले, (उग्रम्) तेजस्वी, (समत्सु) संङ्ग्रामों में (वृत्राणि) शत्रुओं को (घ्नन्तम्) मारने वाले, (धनानाम्) धनों के (संजितम्) जीत लेने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी जन] को (ऊतये) रक्षा के लिये (हुवेम) हम बुलावें ॥११॥

भावार्थः—प्रजागण न्यायकारी, प्रतापी, शत्रुनाशक, शूर राजा का सदा आदर करें ॥११॥

यह मन्त्र कुछ भेद से सामवेद में है—उ० ४।४।७। और विना भेद ऋग्वेद में चौदह [१४] वार है—म० ३। सू० ३०, ३१, ३२, ३४, ३५, ३६, ३८, ३९, ४३, ४८, ४९, ५०, म० १०। सू० ८९, १०४ के अन्त में ॥

सूक्तम् ॥१२॥

१-७॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ६ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, २, ३ विराट् त्रिष्टुप्, ४ स्वराडार्षी पङ्क्तिः, ५ निचृत् त्रिष्टुप्, ७ त्रिष्टुप् ॥

सेनापतिकर्तव्योपदेशः—सेनापति के कर्तव्य का उपदेश ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१॥

भाषार्थः—(श्रवस्या) यश के लिये हितकारी (ब्रह्माणि) वेदज्ञानों को (उ) ही (उत् ऐरत) उन [विद्वानों] ने उच्चारण किया है, (वसिष्ठ) हे अतिश्रेष्ठ ! (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] को (समर्ये) युद्ध में (महय) पूज। (यः) जिस (उपश्रोता) आदर से सुनने वाले [शूर] ने (ईवतः) उद्योगी (मे) मेरे (विश्वानि) सब (वचांसि) वचनों को (शवसा) बल के साथ (आ) अच्छे प्रकार (ततान) फैलाया है ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग उपदेश करें कि सब श्रेष्ठ पुरुष शूरवीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मात्मा जन का सत्कार करें, जिस से वह उद्योगी पुरुषों की शिक्षा को संसार में फैलावे ॥१॥

मन्त्र १—६ ऋग्वेद में हैं—७। २३। १—६॥

अया॑मि घोष॑ इन्द्र दे॒वजा॑मिरिर॒ज्यन्त॒ यच्छु॒रुधो॒ विवा॑चि।
न॒हि स्वमायु॑श्चिकि॒ते जने॑षु॒ तानीदंहां॒स्यति॑ पर्ष्य॒स्मान् ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [महाप्रतापी वीर] (देवजामिः) विद्वानों को प्राप्त होने वाला (घोषः) शब्द (अयामि) ऊंचा किया गया है, (यत्) जिस [शब्द] को (शुरुधः) शीघ्र रोकने वाले पुरुष (विवाचि) विविध वाणियों से युक्त व्यवहार [वा संग्राम] में (इरज्यन्त) सेवते हैं। (स्वम्) अपने (आयुः) जीवन काल को (जनेषु) मनुष्यों में (नहि) किसी ने नहीं (चिकिते) जाना है, (तानि) उन (अंहांसि) पापों को (इत्) ही (अति) लांघ कर (अस्मान्) हमें (पर्षि) पाल ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य वेद वचनों को भली भांति मानता हुआ और मृत्यु को सदा अपने पास जानता हुआ पापों को छोड़ धर्म करने में शीघ्रता करता रहे ॥२॥

यु॒जे रथं॑ ग॒वेष॑णं॒ हरि॑भ्या॒मुप॒ ब्रह्मा॑णि जुजुषा॒णम॑स्थुः।
वि बा॑धिष्ट॒ स्य रोद॑सी महि॒त्वेन्द्रो॑ वृ॒त्राण्य॑प्र॒ती ज॑घ॒न्वान् ॥३॥

भाषार्थः—(गवेषणम्) भूमि प्राप्त कराने हारे (रथम्) रथ को (हरिभ्याम्) दो घोड़ों से (युजे=युयुजे) उस [सेनापति] ने जोता, (जुजुषाणम्) उस हर्ष करते हुए को (ब्रह्माणि) अनेक धन (उप अस्थुः) उपस्थित हुए। (स्यः) उस (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] ने (वृत्राणि) शत्रुदलों को (अप्रति) विना रोक (जघन्वान्) मार डाल कर (महित्वा) अपने महत्त्व से (रोदसी) दोनों आकाश और भूमि को (वि) विविध प्रकार (बाधिष्ट) बिलोया [मथा] है ॥३॥

भावार्थः—जो राजा दो घोड़ों के समान वर्तमान शत्रु के नाश और प्रजा के पालनरूप गुणों से राज्य को चलाता है, वह निर्विघ्न होकर भूमि और आकाश के पदार्थों से उपकार लेता है ॥३॥

आप॑श्चित्पिप्यु स्त॒र्यो॒३॒॑ न गावो॒ नक्ष॑न्नृ॒तं ज॑रि॒तार॑स्त इन्द्र।
या॒हि वा॒युर्न नि॒युतो॑ नो॒ अच्छा॒ त्वं हि धी॒भिर्दय॑से॒ वि वाजा॑न् ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी सेनापति] (स्तर्यः) फैले हुए (आपः चित्) जलों के समान और (गावः न) किरणों के समान (ते) तेरे (जरितारः) स्तुति करने वाले (पिप्युः) बढ़े हैं, और (ऋतम्) सत्य को (नक्षन्) प्राप्त हुए हैं। (वायुः न) पवन के समान (नियुतः) वेग आदि गुणों को, (त्वम्) तू (अच्छ) अच्छे प्रकार से (नः) हमें (याहि) प्राप्त हो, (हि) क्योंकि (धीभिः) अपनी बुद्धियों वा कर्मों से (वाजान्) विज्ञानियों पर (वि) विविध प्रकार (दयसे) तू दया करता है ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष फैलते हुए जल और किरणों के समान बढ़कर उपकारी होवें, महासेनापति वायु के समान शीघ्रता करके उन उपकारी सज्जनों को सन्तुष्ट करे ॥४॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में भी है—३३ । १८ ॥

ते त्वा मदा॑ इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं॑ तुविराध॑सं जरि॒त्रे ।
एको॑ देव॒त्रा दय॑से॒ हि मर्ता॑न॒स्मिञ्छू॑र॒ सव॑ने मादयस्व ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी सेनापति] (ते) वे (मदाः) आनन्द करते हुए वीर (शुष्मिणम्) महाबली और (तुविराधसम्) बड़े धनी (त्वा) तुझ को (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (मादयन्तु) हर्षित करें। (देवत्रा) विद्वानों में (एकः हि) अकेला ही तू (मर्तान्) मनुष्यों पर (दयसे) दया करता है, (शूर) हे शूर ! (अस्मिन्) इस (सवने) प्रेरणा में [सब को] (मादयस्व) आनन्दित कर ॥५॥

भावार्थः—सब सैन्यदल अपने पराक्रमों से मुख्य सेनापति को प्रसन्न करें और वह सेनापति भी उन सबों पर पूर्ण दया करे, जिस से शत्रुओं का नाश और प्रजा की रक्षा होवे ॥५॥

ए॒वेदिन्द्रं॒ वृष॑णं॒ वज्र॑बाहुं॒ वसि॑ष्ठासो अ॒भ्य॑र्चन्त्य॒र्कैः ।
स नः॑ स्तु॒तो वी॒रव॑द् धातु॒ गोम॑द् यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥६॥

भाषार्थः—(एव इत्) इस प्रकार से ही (वसिष्ठासः) अत्यन्त वसु [श्रेष्ठ विद्वान् लोग] (वृषणम्) बलवान्, (वज्रबाहुम्) वज्र [शस्त्र अस्त्रों] को भुजा पर रखने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] को (अर्कैः) पूजनीय विचारों से (अभि अर्चन्ति) यथावत् पूजते हैं। (स्तुतः) स्तुति किया गया (सः) वह (नः) हमारे लिये (वीरवत्) वीरों से युक्त (गोमत्) उत्तम गौओं वाले [राज्य] को (धातु) धारण करे, [हे वीरो !] (यूयम्) तुम सब (स्वस्तिभिः) सुखों से (सदा) सदा (नः) हमें (पात) रक्षित रक्खो ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विद्वान् लोग विजयी सेनापति को सदा प्रसन्न रक्खें और ऐसा प्रबन्ध होवे कि सब लोग शस्त्र अस्त्र विद्या में निपुण होकर राज्य की रक्षा करें ॥६॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में भी है—२० । ५४ । और चौथा पाद आगे है—अथ० २० । १७ । १२, ३७ । ११, ८७ । ७ ॥

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥७॥

भाषार्थः—(ऋजीषी) महाधनी, (वज्री) वज्र धारी [शस्त्र अस्त्रों वाला], (वृषभः) बलवान्, (तुराषाट्) हिंसक शत्रुओं का हराने वाला, (शुष्मी) बलवान् सेना वाला, (राजा) राजा, (वृत्रहा) वैरियों का मारने वाला, (सोमपावा) सोम [महौषधियों के रस] का पीने वाला (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (हरिभ्याम्) दो घोड़ों से [रथ को] (युक्त्वा) जोत कर (अर्वाङ्) सामने (उप यासत्) आवे और (माध्यन्दिने) मध्याह्न में (सवने) यज्ञ के बीच (मत्सत्) आनन्द पावे ॥७॥

भावार्थः—राजा महाधनी, प्रतापी, शस्त्रअस्त्रधारी होकर शत्रुओं का नाश कर के प्रजा की रक्षा करे और दोपहर दिन के समान लोगों में आनन्द का प्रकाश करे ॥७॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—५ । ४० । ४ ॥

सूक्तम् ॥१३॥

१—४ ॥ १ इन्द्राबृहस्पती देवते, २ मरुतो देवताः, ३, ४ अग्निर्देवता ॥ १ भुरिक् त्रिष्टुप्, २ जगती, ३ निचृज् जगती, ४ त्रिष्टुप् ॥

राजविद्वद्गुणोपदेशः—राजा और विद्वानों के गुणों का उपदेश ॥

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१॥

भाषार्थः—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी वेदवाणी के रक्षक विद्वान्] (च) और (इन्द्रः) हे इन्द्र ! [अत्यन्त ऐश्वर्य वाले राजन्] (मन्दसानौ) आनन्द देने वाले, (वृषण्वसू) बलवान् वीरों को निवास कराने वाले तुम दोनों (सोमम्) सोम [उत्तम ओषधियों के रस] को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ [राज्यपालन व्यवहार] में (पिबतम्) पीओ । (स्वाभुवः) अच्छे प्रकार सब ओर होने वाले (इन्दवः) ऐश्वर्य (वाम्) तुम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों में (आ विशन्तु) प्रवेश करें, (अस्मे) हमको (सर्ववीरम्) सबको वीर बनाने वाला (रयिम्) धन (नि) नियमपूर्वक (यच्छतम्) तुम दोनों दो ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग और राजा राज्य के पालन और प्रजा के धनवान् बनाने में आनन्द पावें ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—४। ५०। १०॥

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्रजिगात बाहुभिः।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥२॥

भाषार्थः—(मरुतः) हे विद्वान् शूरो ! (वः) तुम को (रघुष्यदः) शीघ्रगामी (सप्तयः) घोड़े (आ) सब ओर (वहन्तु) ले चलें, (रघुपत्वानः) शीघ्रगामी तुम (बाहुभिः) भुजाओं [हस्तक्रियाओं] से (प्र जिगात) आगे बढ़ो। और (उरु) चौड़े (बर्हिः) आकाश में (आ सीदत) आओ जाओ, (वः) तुम्हारे लिए (सदः) स्थान (कृतम्) बनाया गया है, (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्न से (मादयध्वम्) [सब को] तृप्त करो ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग क्रियाकुशल होकर शिल्पविद्या से यान विमान आदि द्वारा जल थल और आकाश में जाना आना करके अन्न आदि उत्तम पदार्थों की प्राप्ति से सब को प्रसन्न करें। मरुत् लोगों के विषय में—अथ० १। २०। १ देखो ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१। ८५। ६॥

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

भाषार्थः—(अर्हते) योग्य, (जातवेदसे) उत्पन्न पदार्थों के जानने हारे [पुरुष] के लिये (इमम्) इस (स्तोमम्) गुणकीर्तन को (रथम् इव) रथ के समान (मनीषया) बुद्धि से (सम्) यथावत् (महेम) हम बढ़ावें। (हि) क्योंकि (अस्य) इस [विद्वान्] की (प्रमतिः) उत्तम समझ (संसदि) सभा के बीच (नः) हमारे लिये (भद्रा) कल्याण करने वाली है। (अग्ने) हे अग्नि ! [तेजस्वी विद्वान्] (ते) तेरी (सख्ये) मित्रता में (वयम्) हम (मा रिषाम) न दुःखी होवें ॥३॥

भावार्थः—जैसे उत्तम बने हुए यान विमान आदि की चाल और योग्यता से उपकार लेकर मनुष्य गुण गाते हैं, वैसे ही लोग विज्ञान के आविष्कार करने वाले विद्वान् के गुणों से उपकार लेकर सुख प्राप्त करें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१।६४।१ और सामवेद पू० १।७।४ तथा उ० ४।१।७ ॥

ऐभि॑रग्ने स॒रथं॑ याह्य॒र्वाङ् ना॑नार॒थं वा॑ वि॒भवो॒ ह्यश्वाः॑ ।

पत्नी॑वतस्त्रिं॒शतं॒ त्रीँश्च॑ दे॒वान॑नुष्व॒धमा व॑ह मा॒दय॑स्व ॥४॥

भाषार्थः— (अग्ने) हे अग्नि ! [तेजस्वी विद्वान्] (एभिः) इन [घोड़ों] से (सरथम्) एक से रथों वाले (वा) और (नानारथम्) नाना प्रकार के रथों वाले [मार्ग] को (अर्वाङ्) सामने होकर (आ याहि) आ, (हि) क्योंकि [तेरे] (अश्वाः) घोड़े (विभवः) प्रबल हैं। और (पत्नीवतः) पालनशक्तियों [सूक्ष्म अवस्थाओं] से युक्त (त्रिंशतम्) तीस (च) और (त्रीन्) तीन [तेतीस अर्थात् आठ वसु आदि] (देवान्) दिव्य पदार्थों को (अनुष्वधम्) अन्न के लिए (आ) यथावत् (वह) प्राप्त हो, और [सबको] (मादयस्व) हर्षित कर ॥४॥

भावार्थः—तेतीस देवता वा दिव्य पदार्थ यह हैं—अग्नि पृथिवी आदि आठ वसु; प्राण, अपान आदि ग्यारह रुद्र, चैत्र आदि बारह आदित्य वा महीने, एक इन्द्र वा बिजुली, एक प्रजापति वा यज्ञ—देखो अथर्ववेद—६। १३९। १। भाव यह है कि विज्ञानी शिल्पी पुरुष इन तेतीस दिव्य पदार्थों के बाहिरी आकार और भीतरी सूक्ष्म शक्तियों को भली भांति समझ कर अद्भुत यान विमान आदि बनाकर संसार को सुख पहुंचावें ॥४॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—३। ६। ६॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१४॥

१—४ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ विराडार्ष्युष्णिक्, २ भुरिगार्षी बृहती, ३ ककुबुष्णिक्, ४ विराडार्षी पङ्क्तिः ॥

राजप्रजाकर्तव्योपदेशः राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः ।
वाजे चित्रं हवामहे ॥१॥

भाषार्थः—(अपूर्व्य) हे अनुपम ! [राजन्] (कत् चित्) कुछ भी (स्थूरम्) स्थिर (न) नहीं (भरन्तः) रक्खे हुए, (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले (वयम्) हम (वाज) संग्राम के बीच (चित्रम्) विचित्र स्वभाव वाले (त्वाम्) तुझको (उ) ही (हवामहे) बुलाते हैं ॥१॥

भावार्थः– जब दुष्ट चोर डाकू लोग अत्यन्त सतावें, प्रजागण वीर राजा की शरण ले कर रक्षा करें ॥१॥

मन्त्र १, २ ऋग्वेद में हैं—८ । २१ । १, २ । मन्त्र १ सामवेद में है—पू० ५ । २ । १० तथा मन्त्र १, २ उ० १ । १ । २२ और मन्त्र १—४ आगे हैं—अथ० २० । ६२ । १—४ ॥

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥

भाषार्थः—(कर्मन्) कर्म के बीच (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (सः) उस (यः) जिस (युवा) स्वभाव से बलवान्, (उग्रः) तेजस्वी और (धृषत्) निर्भय पुरुष ने (चक्राम) पैर बढ़ाया है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (अवितारम्) उस रक्षक और (सानसिम्) दानी (त्वा) तुझ को, (त्वाम्) तुझ को (हि) ही (इत्) अवश्य (सखायः) हम मित्र लोग (उप) आदर से (ववृमहे) चुनते हैं ॥२॥

भावार्थः– जो पुरुष प्रजारक्षण में बड़ा पराक्रमी हो, प्रजागण सब लोगों में से उसी को राजा बनावें ॥२॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो [पराक्रमी] (नः) हमारे लिये (इदमिदम्) इस–इस (वस्यः) उत्तम वस्तु को (पुरा) पहिले (प्र) अच्छे प्रकार (आनिनाय) लाया है, (तम् उ) उस ही (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी वीर] को, (सखायः) हे मित्रो ! (वः) तुम्हारी (ऊतये) रक्षा के लिये (स्तुषे) मैं सराहता हूं ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष पहिले से ही धीर वीर होवे, लोग उसकी बड़ाई करके गुण ग्रहण करें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र ३, ४ ऋग्वेद में है—८।२१।९, १०। मन्त्र ३ सामवेद में है—उ० ५।२।२॥

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥४॥

भाषार्थः—(सः) वह (हि) ही (स्म) अवश्य [मनुष्य है], (यः) जिस ने (हर्यश्वम्) ले चलने वाले घोड़ों से युक्त, (सत्पतिम्) सत्पुरुषों के रक्षक, (चर्षणीसहम्) मनुष्यों को नियम में रखने वाले [राजा] को (अमन्दत) प्रसन्न किया है। (सः) वह (मघवा) महाधनी (तु) तो (नः) हम (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों को (शतम्) सौ [बहुत] (गव्यम्) गौओं का समूह और (अश्व्यम्) घोड़ों का समूह (आ वयति) लाता है ॥४॥

भावार्थः—सब प्रजागण आज्ञा मानकर शूर धर्मात्मा राजा को प्रसन्न रक्खें, जिस से वह उत्तम प्रबन्ध के साथ प्रजा का ऐश्वर्य बढ़ावे ॥४॥

सूक्तम् ॥१५॥

१—६॥ इन्द्रो देवता॥ १, २, ४ जगती, ३, ६ निचृज्जगती, ५ भुरिगार्षी त्रिष्टुप्॥

सभाध्यक्षगुणोपदेशः—सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१॥

भाषार्थः—(मंहिष्ठाय) अत्यन्त दानी, (बृहते) महागुणी, (बृहद्रये) महाधनी, (सत्यशुष्माय) सच्चे बलवान् [सभाध्यक्ष] के लिये (तवसे) बल पाने को (मतिम्) बुद्धि (प्र) उत्तम रीति से (भरे) मैं धारण करता हूं। (प्रवणे) ढालू स्थान में (अपाम् इव) जलों के [प्रवाह के] समान, (यस्य) जिस [सभाध्यक्ष] का (दुर्धरम्) बेरोक, (विश्वायु) सब को जीवन देने वाला (राधः) धन (शवसे) बल के लिये (अपावृतम्) फैला हुआ है ॥१॥

भावार्थः—जो सभाध्यक्ष सुपात्रों को दान देकर प्रजा को सुशिक्षित बलवान् बनाता है, उसके उपकारों की महिमा ऐसी सुखदायक होती है, जैसे जल ढालू स्थानों में बह कर खेती आदि बढ़ाकर आनन्द देता है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१। ५७। १—६ ॥

अधं ते विश्वमनुं हासदिष्टय आपों निम्नेव सवंना हविष्मंतः ।
यत् पर्वते न समशींत हर्यत इन्द्रंस्य वज्रः श्नथिंता हिरण्ययः ॥२॥

भाषार्थः—(अध) फिर (विश्वम्) सब जगत् (हविष्मतः) दान योग्य पदार्थों वाले (ते) तेरे (सवना अनु) ऐश्वर्यों के पीछे (इष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिये (ह) निश्चय करके (असत्) होवे, (आपः) जल (निम्नाइव) जैसे नीचे स्थानों के [पीछे बह चलते हैं]। (यत्) जब (इन्द्रस्य) इन्द्र [अत्यन्त ऐश्वर्य वाले सभाध्यक्ष] का (हर्यतः) कमनीय, (श्नथिता) चूर चूर करने वाला, (हिरण्ययः) तेजोमय (वज्रः) वज्र [हथियारों का झुण्ड] (पर्वते न) जैसे पहाड़ पर, (सम्—अशीत) वर्तमान हुआ है ॥२॥

भावार्थः—जसे जल ऊंचे स्थान से नीचे स्थान में फैल कर संसार का उपकार करता है, वैसे ही राजा धन का संग्रह करके प्रजापालन करे, और शत्रुओं के मारने में ऐसा दृढ़ उपाय करे जैसे पहाड़ काटने के लिये दृढ़ हथियार आवश्यक होते हैं ॥२॥

अस्मै भीमाय नमंसा समध्वर उषो न शुंभ्र आ भंरा पनींयसे ।
यस्य धाम श्रवंसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायंसे ॥३॥

भाषार्थः—(शुभ्रे) हे चमकीली (उषः) उषा ! [प्रभात वेला के समान सुखदायक पुरुष] (न) अब (अस्मै) इस (भीमाय) भीम [भयङ्कर] (पनीयसे) अत्यन्त व्यवहार कुशल [सभाध्यक्ष] के लिये (अध्वरे) हिंसा रहित कर्म में (नमसा) सत्कार के साथ (सम्) अच्छे प्रकार (आ भर) भरपूर हो। (यस्य) जिस [सभाध्यक्ष का (धाम) धाम [न्यायालय आदि स्थान], (नाम) नाम [यश], (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (ज्योतिः) प्रताप (श्रवसे) अन्न के लिये (अकारि) बनाया गया है, (हरितः न) जैसे दिशायें (अयसे) चलने के लिये [बनी] हैं ॥३॥

भावार्थः—जैसे प्रातःकाल में अन्धकार के नाश से आनन्द होता है, वैसे ही मनुष्य योग्य सभाध्यक्ष के सत्कार करने में सुखी होवें, और वह भी अपना सर्वस्व प्रजा को सुख देने में सब ओर लगावे ॥३॥

इमे तं इन्द्र ते वयं पुंरुष्टुत ये त्वारभ्य चरांमसि प्रभूवसो । नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघंत् क्षोणीरिंव प्रतिं नो हर्य तद् वचः ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पुरुष्टुत) हे बहुत स्तुति किये गये ! (प्रभुवसो) हे अधिक धन वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (इमे) यह लोग और (ते) वे लोग (वयम्) हम सब (ते) तेरे हैं, (ये) जो हम (त्वा आरभ्य) तेरा सहारा लेकर (चरामसि) विचरते हैं। (गिर्वणः) हे स्तुतियों से सेवने योग्य ! (त्वत्) तुझ से (अन्यः) दूसरा पुरुष (गिरः) [हमारी] वाणियों को (नहि) नहीं (सघत्) सह सकता, (क्षोणी इव) पृथिवियों के समान तू (नः) हमारे (तत्) उस (वचः) वचन में (प्रति) निश्चय करके (हर्य) प्रीति कर ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों के बीच अद्वितीय पराक्रमी धर्मज्ञ राजा निकटवर्ती और दूरवर्ती प्रजा की पुकार सुनकर रक्षा करे, जैसे पृथिवी सब उत्पन्न मात्र की रक्षा करती है ॥४॥

यह मन्त्र सामवेद में भी है—पू० ४ । ६ । ३ ॥

भूरिं त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृंण ।

अनुं ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं चं ते पृथिवी नेम ओजंसे ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (ते) तेरा (वीर्यम्) पराक्रम (भूरि) बहुत है, हम (ते) तेरे [प्रजा] (स्मसि) हैं, (मघवन्) हे महाधनी ! (अस्य) इस (स्तोतुः) स्तुति करने वाले की (कामम्) कामना को (आ) सब ओर से (पृण) तृप्त कर। (ते) तेरे (वीर्यम् अनु) पराक्रम के पीछे (बृहती) बड़ा (द्यौः) आकाश (ममे) नापा गया है, (च) और (ते) तेरे (ओजसे) बल के लिये (इयम्) यह (पृथिवी) पृथिवी (नेमे) झुकी है ॥५॥

भावार्थः - जो विज्ञानी राजा प्रजा को प्रसन्न रखकर विद्वानों का उचित सत्कार करता है, वह वायु विमान आदि से आकाश को, तथा स्थल और जल यान आदि से पृथिवी को वश में कर के राज्य की उन्नति करता है ॥५॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।

अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६॥

भाषार्थः—(वज्रिन्) हे वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (त्वम्) तू ने (तम्) उस (महाम्) बड़े, (उरुम्) चौड़े, (पर्वतम्) पहाड़ को (वज्रेण) वज्र [हथियारों के झुण्ड] से (पर्वशः) टुकड़े टुकड़े करके (चकर्तिथ) काट डाला है। और (निवृतः) रोके हुए (अपः) जलों को (सर्तवै) बहने के लिये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अव असृजः) छोड़ दिया है, (सत्रा) सत्य रूप से (विश्वम्) सम्पूर्ण, (केवलम्) असाधारण (सहः) बल को (दधिषे) तू ने धारण किया है ॥६॥

भावार्थः—जो वीर पराक्रमी राजा पहाड़ों को काटकर वहां पर एकत्र हुए जल को पृथिवी पर लाकर खेती आदि में उपयुक्त करे वह संसार के बीच कीर्तिमान् होवे ॥६॥

सूक्तम् ॥१६॥

१—१२ ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ १, ३, ५, ९ निचृत् त्रिष्टुप्, २, ६—८, १०, ११ त्रिष्टुप्, ४ भुरिगार्षी त्रिष्टुप्, १२ विराट् त्रिष्टुप् ॥

विद्वद्गुणोपदेशः विद्वानों के गुणों का उपदेश ॥

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥१॥

भाषार्थः—(उदप्रुतः) जल को प्राप्त हुए, (रक्षमाणाः) अपनी रक्षा करते हुए (वयः न) पक्षियों के समान, (वावदतः) वार वार गरजते हुए (अभ्रियस्य) बादल के (घोषाः इव) शब्दों के समान, (गिरिभ्रजः) पहाड़ों से गिरते हुए, (मदन्तः) तृप्त करते हुए (ऊर्मयः न) जल के प्रवाहों के समान, (अर्काः) पूजनीय पण्डितों ने (बृहस्पतिम्) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान्] को (अभि) सब ओर से (अनावन्) सराहा है ॥१॥

भावार्थः—जैसे पक्षीगण जलाशय में पान स्नान करके तृप्त होते, जैसे बरसते हुए मेघ अपनी गर्जन से प्रसन्न करते हैं, और जैसे पहाड़ों से बहती हुई नदियां अन्न आदि उत्पन्न करती हैं, वैसे ही बुद्धिमान् लोग वेदाभ्यासी पुरुष के गुणों को गाकर, आनन्द बढ़ाते हैं ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१० । ६८ । १—१२ ॥

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥२॥

भाषार्थः—(आङ्गिरसः) विज्ञानवाला पुरुष, (भगः इव) ऐश्वर्यवान् के समान (अर्यमणम्) श्रेष्ठों के मान करने वाले जन को (इत्) ही (नक्षमाणः) पाता हुआ (गोभिः) वाणियों से (सम्) यथावत् (निनाय) लाया है । (जने) मनुष्यों में (मित्रः न) मित्र के समान वह (दम्पती) दोनों स्त्री पुरुष को (अनक्ति) शोभायमान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है, (बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [वेदवाणी के रक्षक] (आजौ) सङ्ग्राम में (आशून् इव) घोड़ों के समान (वाजय) [हमें] वेग वाला कर ॥२॥

भावार्थः—जैसे विज्ञानी पुरुष विद्वानों को पाकर गृहस्थियों को गुणी बनाते आये हैं, और जैसे संग्राम वा घुड़दौड़ के लिये घोड़े शीघ्रगामी होते हैं, वैसे ही मनुष्य विद्वानों के सत्संग से धर्म में शीघ्रकारी होवें ॥२॥

साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥३॥

भाषार्थः—(साध्वर्याः) साधुओं से पाने योग्य, (अतिथिनीः) अतिथियों को प्राप्त कराने वाली, (इषिराः) वेग वाली, (स्पार्हाः) चाहने योग्य (सुवर्णाः) सुन्दर रीति से स्वीकार योग्य, (अनवद्यरूपाः) अनिन्दित स्वभाव वाली (गाः) वाणियों को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान्] ने (वितूर्य) शीघ्रता करके (पर्वतेभ्यः) पर्वतों [के समान दृढ़चित्तों] के लिये, (स्थिविभ्यः) कोठियों [के भरने] के लिये (यवम् इव) जैसे अन्न को, (निः ऊपे) फैलाया है ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग उत्तम वेदवाणियों का प्रचार करके सब को ऐसा प्रसन्न करें, जैसे किसान लोग बीज बोकर अधिक अन्न प्राप्त करके आनन्दित होते हैं ॥३॥

आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥४॥

भाषार्थः—(मधुना) ज्ञान के साथ (ऋतस्य) सत्य के (योनिम्) घर [वेद] को (आप्रुषायन्) सब प्रकार सींचते हुए और (द्योः) आकाश से (उल्काम् इव) उल्का [गिरते हुए चमकते तारे] के समान (अवक्षिपन्) फैलाते हुए और (उद्धरन्) ऊंचे धरते हुए, (अर्कः) पूजनीय (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी वेदविद्या के रक्षक महा विद्वान्] ने (अश्मनः) व्यापक [परमात्मा] की (गाः) वाणियों को (वि बिभेद) फैलाया है, (उद्ना इव) जैसे जल से (भूम्याः) भूमि की (त्वचम्) त्वचा को [फैलाते हैं] ॥४॥

भावार्थः—महाविद्वान् पुरुष विचार के साथ वेदविद्या को बढ़ावे और आकाश से गिरते चमकते तारे के समान प्रकाशमान करे और उच्चभाव के साथ उसे विविध प्रकार फैलावे जैसे पृथिवी जल से फैलकर उपकारी होती है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥५॥

भाषार्थः—[जैसे सूर्य] **(ज्योतिषा)** ज्योति के साथ **(अन्तरिक्षात्)** आकाश से **(तमः)** अन्धकार को, और **(इव)** जैसे **(वातः)** पवन **(उद्नः)** जल पर से **(शीपालम्)** सेवार घास को, और **(इव)** जैसे **(वातः)** पवन **(अभ्रम्)** बादल को, [वैसे ही] **(बृहस्पतिः)** बृहस्पति [बड़ी वेदविद्या के रक्षक महाविद्वान्] ने **(अनुमृश्य)** वार वार विचारकर **(वलस्य)** हिंसक असुर को **(अप आजत्)** निकाल दिया है, **(आ)** और **(गाः)** वेदवाणियों को **(आ चक्रे)** स्वीकार किया है ॥५॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अन्धकार को, और जैसे पवन सेवार, कमल आदि, और मेघ को हटा देता है, वैसे ही विद्वान् पुरुष दुराचारियों को हटाकर वेद की आज्ञा का पालन करे ॥५॥

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥६॥

भाषार्थः—**(यदा)** जब **(बृहस्पतिः)** बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान्] ने **(अग्नितपोभिः)** अग्नि समान तेज वाले **(अर्कैः)** पूजनीय पण्डितों के साथ **(पीयतः)** हिंसक **(वलस्य)** असुर के **(जसुम्)** हथियार को **(भेत्)** तोड़ डाला, **(न)** जैसे **(दद्भिः)** दांतों से **(परिविष्टम्)** घेरे हुए [भोजन] को **(जिह्वा)** जीभ ने **(आदत्)** खाया हो, और **(उस्रियाणाम्)** निवास करने वाली [प्रजाओं] के **(निधीन्)** निधियों [सुवर्ण आदि के कोशों] को **(आविः अकृणोत्)** खोल दिया ॥६॥

भावार्थः—जैसे जीभ दांतों से घेरे हुए अन्न को खाकर सब अङ्गों को पुष्ट करती है, वैसे ही विद्वान् पुरुष प्रतापी शूर युद्धपण्डितों के साथ दुष्टों को मारकर प्रजा के धनों को बढ़ाकर राज्य में उन्नति करे ॥६॥

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७॥

भाषार्थः—**(बृहस्पतिः)** बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान्] ने **(हि)** ही **(आसाम्)** इन **(स्वरीणाम्)** शब्द करती हुई [वेदवाणियों] के **(त्यत्)**

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस (नाम) यश को (अमत) जाना है, (यत्) जो (गुहा) हृदय के भीतर (सदने) घर में है। (इव) जैसे (आण्डा) अण्डों को (भित्त्वा) तोड़कर (शकुनस्य) पक्षी के (गर्भम्) बच्चे को, [वैसे ही] उस [महाविद्वान्] ने (उस्रियाः) निवास करने वाली [प्रजाओं] को (पर्वतस्य) पर्वत [समान दृढ़ स्वभाव वाले मनुष्य] के (त्मना) आत्मा से (उत् आजत्) उदय किया है ॥७॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष अपने हृदय में प्राप्त वेदवाणियों के गुणों को जानकर संसार में इस प्रकार प्रकट करे, जैसे अंडों के पककर फूटने पर पक्षियों के बच्चे निकलते हैं ॥७॥

मन्त्र ७ और ८ का पाठ ऋग्वेद, निरु० १०। १२, तथा अथर्ववेद संहिता गवर्नमेन्ट बुकडिपो बम्बई, और पं० सेवकलाल कृष्णदास बम्बई के पुस्तकों के अनुसार लिया है, वैदिक यन्त्रालय अजमेर के पुस्तक का पाठ विचारणीय है कि कदापि छपने में मन्त्र का अङ्क [७] चौथे पाद पर लगने के स्थान पर दूसरे पाद पर लग गया है, क्योंकि उस में मन्त्र ७ दो पाद का और मन्त्र ८ छह पाद का छपा है ॥

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥८॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान्] ने (अश्ना) फैले हुए [अज्ञान] से (अपिनद्धम्) ढके हुए (मधु) ज्ञान को, (दीने) थोड़े (उदनि) जल में (क्षियन्तम्) रहती हुई (मत्स्यम् न) मछली के समान, (परि) सब ओर से (अपश्यत्) देखा, और (वृक्षात्) वृक्ष से (चमसम् न) अन्न के समान, (तत्) उस [ज्ञान] को (विरवेण) विशेष ध्वनि के साथ (विकृत्य) हलचल करके (निः जभार) बाहिर लाया ॥८॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष जब संसार में अज्ञान के कारण से ज्ञान के फैलाव में ऐसी रोक देखे जैसे मछली थोड़े जल में नहीं चल फिर सकती है, वह पुरुष विशेष प्रयत्न कर के ज्ञान का विस्तार करे जैसे वृक्ष से अन्न अर्थात् फल लेकर उपकार करते हैं ॥८॥

मन्त्र ७ की टिप्पणी देखो ॥

सोषामविन्दत् स स्वः१ सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार । ९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सः) उस (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी वेदविद्या के रक्षक महाविद्वान्] ने (उषाम्) उषा [प्रभात वेला के समान प्रकाशवती बुद्धि] को, (सः) उस ने (स्वः) सुख को, (सः) उसने (अग्निम्) अग्नि [समान तेज] को (अविन्दत्) पाया है, (सः) उस ने (अर्केण) पूजनीय विचार से (तमांसि) अन्धकारों को (वि बबाधे) हटा दिया है। उस ने (गोवपुषः) वज्र समान दृढ़ शरीर वाले (वलस्य) हिंसक असुर के (पर्वणः) जोड़ से (मज्जानम्) मींग को (न) अब (निः जभार) निकाल डाला है॥९॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष उत्तम बुद्धि प्राप्त करके सुख के साथ तेजस्वी होकर अज्ञान का नाश कर दुष्टों को मिटावे॥९॥

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥१०॥

भाषार्थः—(हिमा इव) जैसे हिम [महाशीत] से (मुषिता) उजाड़े गये (पर्णा) पत्तों को (वनानि) वृक्ष, [वैसे ही] (बृहस्पतिना) बृहस्पति [महाविद्वान्] के कारण से (वलः) हिंसक दुष्ट ने (गाः) वेदवाणियों को (अकृपयत्) माना। (अननुकृत्यम्) दूसरों से न करने योग्य, (अपुनः) सब से बढ़कर कर्म (चकार) उस [महाविद्वान्] ने किया है, (यात्) जैसे (सूर्यामासा) सूर्य और चन्द्रमा (मिथः) आपस में (उच्चरातः) उत्तमता से चलते हैं॥१०॥

भावार्थः—जैसे जाड़े के मारे वृक्ष सूख जाते हैं, वैसे ही विद्वान् पुरुष वेदवाणी के प्रभाव से दुष्टों को मार कर अनुपम कर्म करता हुआ सूर्य और चन्द्रमा के समान सन्मार्ग पर चलता रहे॥१०॥

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः ॥११॥

भाषार्थः—(कृशनेभिः) सुवर्णों से (न) जैसे (श्यावम्) शीघ्रगामी (अश्वम्) घोड़े को, [वैसे ही] (पितरः) पालने वाले [ईश्वर नियमों] ने (नक्षत्रेभिः) तारों से (द्याम्) आकाश को (अभि) सब ओर से (अपिंशन्) सजाया है। और (रात्र्याम्) रात्रि में (तमः) अन्धकार को और (अहन्) दिन में (ज्योतिः) प्रकाश को (अदधुः) रक्खा है, [उसी प्रकार] (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान्] ने (अद्रिम्) पहाड़ [के समान भारी अज्ञान] को (भिनत्) तोड़ डाला और (गाः) वेद वाणियों को (विदत्) प्राप्त कराया है॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे नक्षत्र, दिन, रात्रि आदि ईश्वर के अटल नियमों पर चलते हैं, विद्वान् जन दृढ़ चित्त से अज्ञान मिटा कर अचल वेदवाणी को फैलावे ॥११॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति । बृहस्पतिः
स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥१२॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (नमः) नमस्कार (अभ्रियाय) गति में रहने वाले [पुरुषार्थी मनुष्य] को (अकर्म) हम ने किया है, (यः) जो [विद्वान्] (पूर्वीः) पहिली [वेदवाणियों] को (अनु) लगातार (आनोनवीति) सब ओर सराहता रहता है। (सः हि) वही (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी वेदविद्या का रक्षक महाविद्वान्] (गोभिः) गौओं के साथ, (सः) वही (अश्वैः) घोड़ों के साथ, (सः) वही (वीरेभिः) वीरों के साथ, (सः) वही (नृभिः) नेता लोगों के साथ (नः) हमें (वयः) अन्न (धात्) देवे ॥१२॥

भावार्थः—सब लोग उस महाविद्वान् का सदा सत्कार करें जो सदा वेदवाणियों का गुण गाकर मनुष्यों को सम्पत्तियों, वीरों और पराक्रमियों से युक्त करके पुष्कल अन्न प्राप्त करावें ॥१२॥

सूक्तम् ॥१७॥

१—१२ ॥ १—११ इन्द्रः, १२ इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ १, ६ निचृज्जगती, २, ११ त्रिष्टुप्, ३, ६ जगती, ४ विराड् जगती, ५, ७, ८ विराडार्षी जगती, १०, १२ निचृद् त्रिष्टुप् ॥

राजप्रजाकर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१॥

भाषार्थः—(स्वर्विदः) सुख पहुंचाने वाली, (सध्रीचीः) आपस में मिली हुई, (उशतीः) कामना करती हुई, (विश्वाः) सब (मे) मेरी (मतयः) बुद्धियों ने (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] को (अच्छ) अच्छे प्रकार से (अनूषत) सराहा है और (ऊतये) रक्षा के लिये [ऐसे, उसे] (परि ष्वजन्ते) सब ओर घेरती हैं, (यथा) जैसे (जनयः) पत्नियां (पतिम्) [अपने अपने] पति को, और (न) जैसे (शुन्ध्युम्) शुद्ध आचार वाले, (मघवानम्) महाधनी (मर्यम्) मनुष्य को [लोग घेरते हैं] ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः–मनुष्यों को योग्य है कि धर्मात्मा पराक्रमी मनुष्य का आश्रय लेकर रक्षा करें, जैसे स्त्रियां अपने पतियों को, और सब लोग सदाचारी कमाऊ जन का आश्रय लेते हैं ॥१॥

मन्त्र १—११ ऋग्वेद में हैं १० । ४३ । १—११ ॥

न घा॒ त्वद्रि॒गप॑ वेति॒ मे॒ मन॒स्त्वे इत् काम॑ पुरुहूत शिश्रय ।
राजे॑व दस्म॒ नि ष॒दोऽधि॑ ब॒र्हिष्य॒स्मिन्त्सु सोमे॑ऽवपा॒नम॑स्तु ते ॥२॥

भाषार्थः—(पुरुहूत) हे बहुत प्रकार से बुलाये गये ! (त्वद्रिक्) तेरी ओर गया हुआ (मे) मेरा (मनः) मन (न घ) न कभी (अप वेति) भटकता है, (त्वे) तुझ में (इत्) ही (कामम्) [अपनी] आशा को (शिश्रय) मैंने ठहराया है। (दस्म) हे दर्शनीय ! (राजा इव) राजा के समान (बर्हिषि) उत्तम आसन पर (अधि) अधिकार पूर्वक (नि षदः) तू बैठ, और (अस्मिन्) इस (सोमे) ऐश्वर्य में (ते) तेरा (अवपानम्) निश्चित रक्षा कर्म (सु) सुन्दर रीति से (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—प्रजागण पूर्ण राजभक्ति से उचित उपहार देकर धर्मात्मा राजा को प्रसन्न रक्खें ॥२॥

वि॒षू॒वृदिन्द्रो॒ अम॑तेरु॒त क्षु॒धः स इद्रा॒यो म॒घवा॒ वस्व॑ ईशते ।
तस्ये॒दि॒मे प्र॑व॒णे स॒प्त सिन्ध॑वो॒ वयो॑ वर्धन्ति वृष॒भस्य॑ शु॒ष्मिणः॑ ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] (अमतेः) कंगाल का (उत) और (क्षुधः) भूख का (विषुवृत्) सर्वथा हटाने वाला है, (सः इत्) वही (मघवा) महाधनी (रायः) धन का और (वस्वः) वस्तु का (ईशते) स्वामी है। (तस्य इत्) उसी ही (वृषभस्य) श्रेष्ठ (शुष्मिणः) महाबली के (प्रवणे) सेवनीय लंबे राज्य में (इमे) वह (सप्त सिन्धवः) बहते हुए सात समुद्ररूपछेद [हमारे दो कान, दो नथने, दो आखें और एक मुख अथर्व० १० । २ । ६] (वयः) अन्न को (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं ॥३॥

भावार्थः—धार्मिक प्रतापी, धनी राजा की सुनीति से प्रजागण जितेन्द्रिय होकर विद्यावृद्धि करके धनवान् और अन्नवान् होवें ॥३॥

वयो॒ न वृ॒क्षं सु॑पला॒शमास॑द॒न्त्सोमा॑स॒ इन्द्रं॑ म॒न्दिन॑श्चमू॒षदः॑ ।
प्रैषा॒मनी॑कं॒ शव॑सा॒ दवि॑द्युत॒द् वि॒दत् स्व॑१र्मन॑वे॒ ज्योति॒रार्य॑म् ॥४॥

भाषार्थः—(वयः न) जैसे पक्षी गण (सुपलाशम्) सुन्दर पत्तों वाले (वृक्षम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष को, [वैसे ही] (मन्दिनः) आनन्द देने वाले, (चमूषदः) सेनाओं में ठहरने वाले (सोमासः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] को (आ असवन्) आकर प्राप्त हुए हैं। (शवसा) बल के साथ (एषाम्) इन [ऐश्वर्यवानों] के (दविद्युतत्) अत्यन्त चमकते हुए (अनीकम्) सेनादल ने (मनवे) मनुष्य के लिए (आर्यम्) उत्तम (स्वः) सुख और (ज्योतिः) तेज को (प्र) अच्छे प्रकार (विदत्) पाया है ॥४॥

भावार्थः जैसे सुन्दर फल पुष्प और छाया वाले वृक्ष पर पक्षी आकर रहते हैं, वैसे ही तीक्ष्ण हथियार वाले धीर वीर लोग महाप्रतापी राजा का आश्रय लेकर प्रजा को सुख देते और प्रकाश का मार्ग खोलते हैं ॥४॥

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ॥५॥

भाषार्थः—(न) जैसे (श्वघ्नी) धन नाश करने वाला जुआरी (कृतम्) जीते धनको (देवने) जुये में (वि चिनोति) बटोर लेता है, [वैसे ही] (यत्) जब (मघवा) महाधनी [राजा] (सूर्यम् सूर्यस्य) प्रेरणा करने वाले [प्रधान] के (संवर्गम्) रोकने वाले [शत्रु] को (जयत्) जीतता है, (तत्) तब (मघवन्) हे महाधनी! [राजन्] (अन्यः) कोई दूसरा (ते) तेरे (वीर्यम्) वीरपन को (न) नहीं (अनु शकत्) पा सकता है, (न) न तो (पुराणः) कोई प्राचीन (उत) और (न) न (नूतनः) कोई नवीन जन ॥५॥

भावार्थः—वीर राजा अनुपम पराक्रम के साथ संग्राम में शत्रुओं को जीत कर प्रजा का पालन करे ॥५॥

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६॥

भाषार्थः—(मघवा) महाधनी, (वृषा) बलवान् [सेनापति] (जनानाम्) मनुष्यों की (धेनाः) वाणियों को (अवचाकशत्) ध्यान से देखता हुआ (विशंविशम्) मनुष्य मनुष्य को (परि अशायत) पहुँचा है। (शक्रः) शक्तिमान् [सेनापति] (यस्य अह) जिसके ही (सवनेषु) यज्ञों के बीच (रण्यति) पहुंचता है, (सः) वह [मनुष्य] (तीव्रैः) पौष्टिक (सोमैः) सोमों [ऐश्वर्यों वा महौषधियों के रसों] से (पृतन्यतः) सेना चढ़ाने वाले [शत्रुओं] को (सहते) हराता है ॥६॥

भावार्थः—चतुर सेनापति समस्त प्रजा की पुकार सुनकर ऐसे ऐसे उत्तम उपाय करे जिससे प्रजागण ऐश्वर्यवान् और बलवान् होकर शत्रुओं को जीतें ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥

भाषार्थः—(न) जैसे (आपः) नदियां (सिन्धुम् अभि) समुद्र को ओर (इव) जैसे (कुल्याः) नाले (ह्रदम्) झील को [मिल कर बह जाते हैं], वैसे ही (यत्) जब (सोमासः) सोम [ऐश्वर्य] (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] को (समक्षरन्) मिल कर बह आये हैं, [तब] (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (अस्य) इस [शूर] की (महः) बड़ाई को (सदने) समाज के बीच (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं, (न) जैसे (यवम्) अन्न को (वृष्टिः) बरसा (दिव्येन) दिव्य आकाश से आये (दानुना) जल दान से [बढ़ाती है] ॥७॥

भावार्थः—जो महाप्रतापी राजा सब प्रकार से ऐश्वर्यवान् हो, विद्वान् लोग उसके गुणों की प्रशंसा कर के उन्नति करें ॥७॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८॥

भाषार्थः—(क्रुद्धः) क्रुद्ध (वृषा न) बैल के समान, (यः) जो [सेनापति] (रजःसु) देशों में (आ पतयत्) झपट पड़ता है, और [जिस ने] (इमाः) इन (अपः) प्रजाओं को (अर्यपत्नीः) स्वामी से रक्षित (अकृणोत्) किया है। (सः) उस (मघवा) महाधनी [सेनापति] ने (सुन्वते) तत्त्व निचोड़ने वाले, (जीरदानवे) शीघ्रदानी और हविष्मते) ग्राह्य पदार्थों वाले (मनवे) मननशील पुरुष के लिये (ज्योतिः) प्रकाश को (अविन्दत्) पाया है ॥८॥

भावार्थः—पराक्रमी सेनापति शत्रुओं को यथावत् दण्ड देकर प्रजा की रक्षा करे और राजभक्तों को यथोचित ऊंचा करके प्रतापी बनावे ॥८॥

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९॥

भाषार्थः—(परशुः) फरसा [कुल्हाड़ा] (ज्योतिषा सह) प्रकाश के साथ (उत् जायताम्) ऊंचा होवे, (ऋतस्य) सत्य की (सुदुघा) अच्छे प्रकार पूर्ण करने हारी [वेदवाणी] (पुराणवत्) पहिले के समान (भूयाः) वर्तमान होवे। (अरुषः) गतिमान्, (शुचिः) शुद्धाचारी, (सत्पतिः) सत्पुरुषों का रक्षक पुरुष (भानुना) अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश से (वि) विविध प्रकार (रोचताम्) प्रिय होवे, और (शुक्रम्) निर्मल (स्वः न) सूर्य के समान (शुशुचीत) चमकता रहे ॥९॥

भावार्थः—जब शूर सेनापति अपने उज्ज्वल तीक्ष्ण हथियारों से शत्रुओं को मार कर सत्य की स्थापना करता है, तब वह अपने उपकारों से सूर्य समान प्रतापी होकर सब को प्रिय लगता है ॥९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।

वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

भाषार्थः—(पुरुहूत) हे बहुतों से बुलाये गये ! [राजन्] (गोभिः) विद्याओं से (दुरेवाम्) दुर्गति वाली (अमतिम्) कुमति [वा कङ्गाली] को और (यवेन) अन्न से (विश्वाम्) सब (क्षुधम्) भूख को (तरेम, हम हटावें । (वयम्) हम (राजभिः) राजाओं के साथ (प्रथमाः) प्रथम श्रेणी वाले होकर (धनानि) अनेक धनों को (अस्माकेन) अपने (वृजनेन) बल से (जयेम) जीतें ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करके विद्याओं द्वारा कुमति और निर्धनता हटाकर भोजन पदार्थ प्राप्त करें और अपने भुजबल से महाधनी होकर राजाओं के साथ प्रथम श्रेणी वाले होवें ॥१०॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऊपर आचुका है—अ० ७ । ५० । ७ । और मन्त्र १०, ११ आगे हैं २० । ८९ । १०, ११ तथा २० । ९४ । १०, ११ ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।

इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

भाषार्थः - (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े शूरों का रक्षक सेनापति] (नः) हमें (पश्चात्) पीछे से (उत्तरस्मात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नीचे से (अघायोः) बुरा चीतने वाले शत्रु से (परि पातु) सब प्रकार बचावे । (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (पुरस्तात्) आगे से (उत) और (मध्यतः) मध्य से (नः) हमारे लिये (वरिवः) सेवनीय धन (कृणोतु) करे, (सखा) [जैसे] मित्र (सखिभ्य) मित्रों के लिये [करता है] ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य वीरों में महावीर और प्रतापियों में महाप्रतापी होकर दुष्टों से प्रजा की सदा रक्षा करें ॥११॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऊपर आ चुका है—अ० ७ । ५१ । १, मन्त्र १० की भी टिप्पणी देखो ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२॥

भाषार्थः—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी वेदवाणी के रक्षक विद्वान्] (च, और (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (युवम्) तुम दोनों (दिव्यस्य) आकाश के (उत) और (पार्थिवस्य) पृथिवी के (वस्वः) धन के (ईशाथे) स्वामी हो । (स्तुवते) स्तुति करते हुए (कीरये) विद्वान् को (रयिम्) धन (चित्) अवश्य (धत्तम्) तुम दोनों दो, [हे वीरों !] (यूयम्) तुम सब (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (सदा) सदा (नः) हमें (पात) रक्षित रक्खो ॥१२॥

भावार्थः—विद्वान् मन्त्री और पराक्रमी राजा और सब शूर पुरुष आकाशस्थ वायु वृष्टि आदि, और पृथिवीस्थ अन्न सुवर्ण आदि का सुप्रबन्ध करके प्रजा की रक्षा करें ॥१२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—७ । ९७ । १० और आगे है अथ० २० । ८७ । ७ और चौथा पाद ऊपर आचुका है—२० । १२ । ६ और आगे है–२० । ३७ । ११ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१८॥ [सूक्तानि १८-२१ प्रथमः पर्यायः] ॥

१ ६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १—३ गायत्री, ४, ५ आर्च्युष्णिक्, ६ निचृद् गायत्री ॥

राजप्रजाकर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले राजन्] (तदिदर्थाः) उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझ से प्रयोजन रखने वाले [तेरे ही भक्त], (त्वायन्तः) तुझे चाहते हुए, (सखायः) मित्र, (कण्वाः) बुद्धिमान् लोग (वयम्) हम (त्वा) तुझ को (उ) ही (उक्थेभिः) अपने वचनों से (जरन्ते=जरामहे) सराहते हैं ॥१॥

भावार्थः विद्वान् प्रजागण धर्मात्मा राजा से कृतज्ञ होकर गुणों का ग्रहण करें ॥१॥

मन्त्र १-३ ऋग्वेद में हैं-८ । २ । १६-१८ और सामवेद में हैं-उ० १ । २ । तृच ३, तथा मन्त्र १ सामवेद में है-पू० २ । ७ । ३ ॥

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥२॥

भाषार्थः—(वज्रिन्) हे वज्रधारी राजन् ! (नविष्टौ) स्तुति की इच्छा में (अपसः) [तेरे] कर्म से (अन्यत्) दूसरे [कर्म] को (न घ ईम्) कभी भी नहीं (आ पपन) मैं ने सराहा है । (तव इत् उ) तेरे ही (स्तोमम्) स्तुति योग्य व्यवहार को (चिकेत) मैं ने जाना है ॥२॥

भावार्थः—प्रजागण स्तुति योग्य उपकारी कामों में प्रतापी धर्मात्मा राजा से सहायता लेते रहें ॥२॥

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥३॥

भाषार्थः—(देवाः) विद्वान् लोग (सुन्वन्तम्) तत्त्व को निचोड़ने वाले को (इच्छन्ति) चाहते हैं, (स्वप्नाय) निद्रा को (न) नहीं (स्पृहयन्ति) चाहते हैं, (अतन्द्राः) निरालसी होकर (प्रमादम्) भूल वाले को (यन्ति) दण्ड देते हैं ॥३॥

भावार्थः दूरदर्शी विद्वान् पुरुष कर्म कुशल चौकन्ने लोगों से प्रसन्न रहें और ढिल्लर निकम्मों को दण्ड देवें ॥३॥

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् ।
विद्धी त्वस्य नो वसो ॥४॥

भाषार्थः—(वृषन्) हे महाबली ! (इन्द्र) इन्द्र [महाप्रतापी राजन्] (त्वायवः) तुझे चाहते हुए (वयम्) हम (अभि) सब ओर को (प्र) अच्छे प्रकार (नोनुमः) सराहते हैं । (वसो) हे वसाने वाले ! (नः) हमारे (अस्य) इस [कर्म] का (तु) शीघ्र (विद्धि) ज्ञान कर ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस प्रकार प्रजागण धर्मात्मा राजा से प्रीति करें, वैसेही राजा भी धार्मिक प्रजा को चाहे ॥४॥

मन्त्र ४—६ ऋग्वेद में हैं—७ । ३१ । ४—६ और मन्त्र ४ सामवेद में है—पू० २ । ४ । ८ ॥

मा नो॑ नि॒दे च॒ वक्त॑वे॒ऽर्यो र॑न्धी॒ररा॑व्णे । त्वे अपि॒ क्रतु॒र्मम॑ ॥५॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (अर्यः) स्वामी तू (नः) हमको (निदे) निन्दक के, (च) और (वक्तवे) वकवादी (अराव्णे) अदानी पुरुष के (मा रन्धीः) वश में मत कर । (त्वे) तुझ में (अपि) ही (मम) मेरी (क्रतुः) बुद्धि है ॥५॥

भावार्थः—राजा प्रजा में श्रेष्ठ कर्मों का प्रचार करे और गुणों में दोष लगाने वाले निन्दकों को हटावे ॥५॥

त्वं वर्मा॑सि स॒प्रथः॑ पुरोयो॒धश्च॑ वृत्रहन् । त्वया॒ प्रति॑ ब्रुवे यु॒जा ॥६॥

भाषार्थः—(वृत्रहन्) हे दुष्टनाशक ! (त्वम्, तू (सप्रथः) चौड़े (वर्म) कवच [के समान] (च) और (पुरोयुधः) सामने से युद्ध करने वाला (असि) है। (त्वया युजा) तुझ मिलनसार के साथ [वैरियों को] (प्रतिब्रुवे) मैं ललकारता हूं ॥६॥

भावार्थः—धर्मात्मा वीर राजा के साथ होकर प्रजागण शत्रुओं को मारें ॥६॥

सूक्तम् ॥१९॥

१—७ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ३, ७ निचृद् गायत्री, २, ४—६ गायत्री ॥

राजप्रजागुणोपदेशः— राजा और प्रजा के गुणों का उपदेश ॥

वा॒र्त्रह॑त्याय॒ शव॑से पृतना॒षाह्या॑य च । इन्द्र॒ त्वा व॑र्तयामसि ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले सेनापति] (बार्त्रहत्याय) वैरियों के मारने वाले (च) और (पृतनाषाह्याय) सङ्ग्राम में हराने वाले (शवसे) बल के लिये (त्वा) तुझ को (आ वर्तयामसि) हम अपनी ओर घुमाते हैं ॥१॥

भावार्थः—युद्ध कुशल सेनापति सेनाजनों को उत्साही करके शत्रुओं को जीते ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—३ । ३७ । १—७ और मन्त्र १ यजुर्वेद में है—१८ । ६८ ॥

अ॒र्वा॒ची॒नं सु॒ ते॒ मन॑ उ॒त चक्षुः॑ शतक्रतो । इन्द्र॑ कृ॒ण्वन्तु॑ वा॒घतः॑ ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (इन्द्र) इन्द्र! [परम ऐश्वर्यवान् राजन्] (वाघतः) निबाहने वाले बुद्धिमान् लोग (ते) तेरे (मनः) मन (उत) और (चक्षुः) नेत्र को (अर्वाचीनम्) हमारी ओर आने वाला (सु) आदर के साथ (कृण्वन्तु) करें ॥२॥

भावार्थः—बुद्धिमान् लोग चतुर पुरुषार्थी राजा को प्रजा पालन आदि शुभ गुणों में प्रवृत्त करते रहें ॥२॥

नामा॑नि ते शतक्रतो॒ विश्वा॑भिर्गी॒र्भिरी॑महे। इन्द्रा॑भिमाति॒षाह्ये॑ ॥३॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (इन्द्र) इन्द्र! [परम ऐश्वर्यवाले राजन्] (ते) तेरे (नामानि) नामों को (विश्वाभिः) सम्पूर्ण (गीर्भिः) स्तुतियों के साथ (अभिमातिषाह्ये) अभिमानी शत्रुओं के हराने में (ईमहे) हम मांगते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो राजा अपने गुणों से नरपति अर्थात् मनुष्य का पालने वाला, और भूपाल अर्थात् भूमि की रक्षा करने वाला इत्यादि नामों वाला होवे, वही शत्रुओं पर विजय पाता है ॥३॥

पु॒रु॒ष्टु॒तस्य॒ धाम॑भिः श॒तेन॑ महयामसि। इन्द्र॑स्य चर्षणी॒धृतः॑ ॥४॥

भाषार्थः—(शतेन) असंख्य (धामभिः) प्रभावों से (पुरुष्टुतस्य) बहुतों करके बड़ाई किये गये और (चर्षणिधृतः) मनुष्यों के पोषण करने वाले (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] का (महयामसि) हम सत्कार करते हैं ॥४॥

भावार्थः—राजा और प्रजा परस्पर उन्नति करके सुख बढ़ावें ॥४॥

इन्द्रं॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे पुरुहू॒तमुप॑ ब्रुवे। भरे॑षु॒ वाज॑सातये ॥५॥

भाषार्थः—(पुरुहूतम्) बहुतों से पुकारे गये (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले राजा] को (वृत्राय हन्तवे) शत्रु के मारने के लिये (भरेषु) संग्रामों में (वाजसातये) धनों के पाने को (उप) समीप में (ब्रुवे) मैं कहता हूं ॥५॥

भावार्थः—सङ्ग्राम प्रवृत्त होने पर सब योधा लोग और सेनाध्यक्ष पुरुष प्रयत्न करें कि शत्रुओं को हराकर सब प्रकार विजय होवे ॥५॥

वाजे॑षु सास॒हिर्भ॑व॒ त्वामी॑महे शतक्रतो। इन्द्र॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे ॥६॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] तू (वाजेषु) सङ्ग्रामों में (ससहिः) विजयी (भव) हो,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्वा) तुझ से (वृत्राय हन्तवे) शत्रु को मारने के लिये (ईमहे) हम प्रार्थना करते हैं ॥६॥

भावार्थः—सब योधाजन प्रधान सेनापति की आज्ञा से अपने अपने पद पर स्थिर रहकर शत्रुओं को जीतें ॥६॥

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (पृतनाज्ये) सेनाओं के चलने स्थान रणक्षेत्र में (पृत्सुतूर्षु) सेनाओं में मारने वाले शूरों के बीच, (द्युम्नेषु) चमकने वाले धनों के बीच (च) और (श्रवःसु) कीर्तियों के बीच (अभिमातिषु) अभिमानी वैरियों पर (साक्ष्व) जय पा ॥७॥

भावार्थः—प्रतापी सेनापति सङ्ग्राम जीतकर शूर योधाओं समेत बहुत साधन और यश प्राप्त करके विजय की घोषणा करे ॥७॥

सूक्तम् ॥२०॥

१ ७ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १—३, ५, ६ गायत्री, ४ अनुष्टुप्, ७ निचृद् गायत्री ॥

राजप्रजाधर्मोपदेशः—राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥१॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (शुष्मिन्तमम्) अत्यन्त बलवान्, (द्युम्निनम्) अत्यन्त धनी वा यशस्वी और (जागृविम्) जागने वाले [चौकस] पुरुष की और (सोमम्) ऐश्वर्य की (पाहि) रक्षा कर ॥१॥

भावार्थः राजा धर्मात्मा शूर वीरों की और सबके ऐश्वर्य की रक्षा करके प्रजा का पालन करे ॥१॥

मन्त्र १—४ ऋग्वेद में हैं—३ । ३७ । ८—११ और पूरा सूक्त आगे है—अथर्व० २० । ५७ । ४—१० ॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥२॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (इन्द्र) इन्द्र!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (या) जो (ते) तेरे (इन्द्रियाणि) इन्द्र [ऐश्वर्यवान्] के चिन्ह धनादि (पञ्चसु जनेषु) पञ्च [मुख्य] लोगों में हैं। (ते) तेरे (तानि) उन [चिन्हों] को (आ) सब प्रकार (वृणे) मैं स्वीकार करता हूं ॥२॥

भावार्थः—बुद्धिमान् धार्मिक राजा बड़े बड़े अधिकारियों का आदर करके प्रजा की रक्षा करे ॥२॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (बृहत्) बड़ा (श्रवः) अन्न [हमको] (अगन्) प्राप्त हुआ है, (दुस्तरम्) दुस्तर [अजेय] (द्युम्नम्) चमकने वाले यश को (दधिष्व) तू धारण कर। (ते) तेरे (शुष्मम्) बल को (उत् तिरामसि) हम बढ़ाते हैं ॥३॥

भावार्थः—जिस राजा के कारण बहुत अन्न आदि पदार्थ मिलें, प्रजागण उसके बल बढ़ाने में सदा प्रयत्न करें ॥३॥

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥४॥

भाषार्थः—(शक्र) हे समर्थ ! (अर्वावतः) समीप से (अथो) और (परावतः) दूर से (नः) हमें (आ गहि) प्राप्त हो, (अद्रिवः) हे वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (उ) और (यः) जो (ते) तेरा (लोकः) स्थान है, (ततः) वहां से (इह) यहां पर (आ गहि) तू आ ॥४॥

भावार्थ—राजा अधिकारियों द्वारा समीप और दूर से प्रजा की सुधि रक्खे और उन को आप भी जाकर देखा करे ॥४॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से आ चुका है—अ० २० । ६ । ८ ॥

इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥५॥

भाषार्थः—(अङ्ग) हे विद्वान् ! (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] ने (महत्) बड़े और (अभि) सब ओर से (सत्) वर्तमान (भयम्) भय को (अप चुच्यवत्) हटा दिया है। (सः हि) वही (स्थिरः) दृढ़ और (विचर्षणिः) विशेष देखने वाला है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः –राजा दृढ़ स्वभाव और सावधान रहकर दुष्टों से प्रजा की रक्षा करे ॥५॥

मन्त्र ५—७ ऋग्वेद में हैं—२ । ४१ । १०—१२ और मन्त्र ५ सामवेद में हैं–पू० ३ । १ । ७ ॥

इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (च) निश्चय करके (नः) हमें (मृडयाति) सुखी करे, (अघम्) पाप (नः) हमको (पश्चात्) पीछे (न) न (नशत्) नाश करे। (भद्रम्) कल्याण (नः) हमारे लिये (पुरस्तात्) आगे (भवाति) होवे ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि धर्मात्मा राजा के प्रबन्ध में रहकर पापों से बचकर सुख भोगें ॥६॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥७॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (सर्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः) आशाओं [गहरी इच्छाओं] के लिये (अभयम्) अभय (परि) सब ओर से (करत्) करे। वह (शत्रून् जेता) शत्रुओं को जीतने वाला और (विचर्षणिः) विशेष देखने वाला है ॥७॥

भावार्थः—राजा अपने न्याययुक्त प्रबन्ध से विघ्नों को हटाकर प्रजा की उन्नति की गहरी इच्छाओं को पूरा करे ॥७॥

सूक्तम् ॥२१॥

१—११ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ३ निचृज्जगती, २ भुरिग् जगती, ४ जगती, ५—७ विराडार्षी जगती, ८ त्रिष्टुप्, ९ आर्षी त्रिष्टुप्, १० भुरिक् त्रिष्टुप्, ११ सतः पङ्क्तिः ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्यों के कर्तव्य का उपदेश ॥

न्यू३ षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(महे) पूजनीय (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] के लिये (सु) सुन्दर लक्षण वाली (वाचम्) वाणी और (गिरः) स्तुतियों को (विवस्वतः) विविध निवास वाले [धनी पुरुष] के (सदने) घर पर (नि उ) निश्चय करके ही (प्र भरामहे) हम धारण करते हैं। (हि) क्योंकि (ससताम्) सोते हुए मनुष्यों के (इव) ही (रत्नम्) रत्न [रमणीय धन] को (नु) शीघ्र (चित्) निश्चय करके (अविदत्) उस [चोर आदि] ने ले लिया है, (द्रविणोदेषु) धन देने वाले पुरुषों में (दुष्टुतिः) दुष्ट स्तुति (न शस्यते) श्रेष्ठ नहीं होती है ॥१॥

भावार्थः धर्मात्मा लोगों की स्तुति बड़े लोगों में होती है, आलसी निकम्मों के धन को चोर आदि ले जाते हैं, विद्वानों को श्रेष्ठों की बड़ाई ही सदा करनी चाहिये ॥१॥

यह पूरा सूक्त ऋग्वेद में है—१। ५३। १—११॥

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] तू (अश्वस्य) घोड़े का (दुरः) देने वाला, (गोः) गौ [वा भूमि] का (दुरः) देनेवाला, (यवस्य) अन्न का (दुरः) देनेवाला. (वसुनः) धन का (इनः) स्वामी और (पतिः) रक्षक, (प्रदिवः) उत्तम व्यवहार की (शिक्षानरः) शिक्षा पहुंचाने वाला, (अकामकर्शनः) अकामियों [आलसियों] को दुबला करने वाला, और (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (सखा) मित्र (असि) है, (तम्) उस तुझ को (इदम्) यह [वचन] (गृणीमसि) हम बोलते हैं ॥२॥

भावार्थः—राजा का कर्तव्य है कि प्रजा को उत्तम शिक्षा द्वारा उद्यमी बनाकर सब प्रकार सुखी रक्खे और आलसी दुष्टों को दण्ड देता रहे ॥२॥

शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३॥

भाषार्थः—(शचीवः) हे उत्तम बुद्धि वाले, (पुरुकृत्) बहुत कर्मों वाले, (द्युमत्तम) अत्यन्त प्रकाश वाले (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (तव इत्) तेरा ही (इदम्) यह (वसु) धन (अभितः) सब ओर से (चेकिते) जाना गया है। (अतः) इस कारण से, (अभिभूते) हे विजयी! (संगृभ्य) संग्रह करके (आ भर)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू लाकर भर, (त्वायतः) तेरी चाह करते हुए (जरितुः) स्तुति करने वाले की (कामम्) आशा को (मा ऊनयीः) मत घटा ॥३॥

भावार्थः—जो राजा राज्य के सब पदार्थों पर दृष्टि रखकर और उनका सुप्रयोग करके प्रजा की इष्ट सिद्धि करता है, वही प्रशंसनीय होता है ॥३॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥४॥

भाषार्थः—(एभिः) इन (द्युभिः) तेजों से और (एभिः) इन (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों से (सुमनाः) प्रसन्न मन वाला, और (गोभिः) गौओं से और (अश्विना) घोड़ों से (अमतिम्) दरिद्रता को (निरुन्धानः) रोकने वाला, वह है । (इन्द्रेण) उस इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] के साथ (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों के द्वारा (दस्युम्) डाकू को (दरयन्तः) दर डालने वाले और (युतद्वेषसः) द्वेष से अलग रहने वाले हम (इषा) अन्न के साथ (सं रभेमहि) संयुक्त होवें ॥४॥

भावार्थः—तेजस्वी, परम ऐश्वर्यवान्, न्यायकारी राजा की सुनीति से दुराचारियों का नाश होकर प्रजा के धन धान्य की बढ़ती होती है ॥४॥

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा वा परमात्मा] हम (राया) सम्पत्ति से (सम्) संयुक्त, (इषा) अन्न से (सम्) संयुक्त, और (पुरुश्चन्द्रैः) बहुत सुवर्ण आदि वाले तथा (अभिद्युभिः) सब ओर से व्यवहार वाले (वाजेभिः) विज्ञानों [वा बलों] से (सं रभेमहि) संयुक्त होवें । और (देव्या) दिव्य गुण वाली, (वीरशुष्मया) वीरों को बल देने वाली, (गोअग्रया) श्रेष्ठ गौओं वा देशों वाली और (अश्ववत्या) वेगयुक्त घोड़ों वाली (प्रमत्या) उत्तम बुद्धि से (संरभेमहि) हम संयुक्त होवें ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की भक्ति और न्यायी राजा की सुनीति से अनेक प्रकार विज्ञानी और बलवान् होकर श्रेष्ठ बुद्धि के साथ उन्नति करते रहें ॥५॥

ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सत्पते) हे सत्पुरुषों के रक्षक ! [सेनापति] (ते) उन (मदाः) आनन्द देने वाले शूरों ने, (तानि) उन (वृष्ण्या) वीरों के योग्य कर्मों ने और (ते) उन (सोमासः) ऐश्वर्यों ने (वृत्रहत्येषु) वैरियों के मारने वाले संग्रामों में (त्वा) तुझ को (अमदन्) प्रसन्न किया है, (यत्) जब (बर्हिष्मते) विज्ञानी (कारवे) कर्मकर्ता के लिये (दश सहस्राणि) दस सहस्र [असंख्य] (वृत्राणि) शत्रुदलों को (अप्रति) विना रोक (नि बर्हयः) तू ने मार डाला है ॥६॥

भावार्थः—धार्मिक राजा सज्जनों की रक्षा के लिये दुष्टों का नाश करके आनन्द के साथ वैभव बढ़ावे ॥६॥

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।

नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] (युधा) एक युद्ध से (युधम्) दूसरे युद्ध को (घ) निश्चय करके (इत्) अवश्य (धृष्णुया) निर्भयता से (उप एषि) तू चला चलता है, और (इदम्) अब (पुरा) एक गढ़ के साथ (पुरम्) दूसरे गढ़ को (ओजसा) बल से (सं हंसि) तू नष्ट कर देता है। (यत्) क्योंकि (नम्या) नम्र [आज्ञाकारी] (सख्या) मित्र के साथ (परावति) दूर देश में (नमुचिम्) न छुटने योग्य [दण्डनीय] (नाम) प्रसिद्ध (मायिनम्) छली पुरुष को (निबर्हयः) तू ने मार डाला है ॥७॥

भावार्थः—राजा विनीति आज्ञाकारी मित्रों के साथ कपटी शत्रुओं को और उनके दुर्गों को नाश करके सुख से राज्य करे ॥७॥

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।

त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (त्वम्) तू ने (करञ्जम्) हिंसक (उत) और (पर्णयम्) पालन वस्तुओं को लेने वाले [चोर] को (अतिथिग्वस्य) अतिथियों को प्राप्त होने वाले पुरुष के (तेजिष्ठया) अत्यन्त तेजस्वी (वर्तनी) मार्ग से (वधीः) मारा है। (त्वम्) तू ने (वङ्गृदस्य) मार्ग तोड़ने वाले (अननुदः) अनुकूल न वर्तने वाले दुष्ट के (ऋजिश्वना) सरलस्वभाव पुरुषों के बढ़ाने वाले [आप] करके (परिषूताः) घेरे हुए (शता) सैकड़ों (पुरः) दुर्गों को (अभिनत्) तोड़ा है ॥८॥

भावार्थः—परोपकारी विद्वान् अतिथियों का सत्कार करने वाला राजा धार्मिक रीति से उपद्रवी दुष्टों का नाश करता रहे ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥

भावार्थः—[हे राजन् !] (अबन्धुना) बन्धुहीन और (सुश्रवसा) बड़ी कीर्ति वाले पुरुष के साथ, (श्रुतः) विख्यात (त्वम्) तू ने (एतान्) इन (द्विःदश) दो बार दश [बीस] (जनराज्ञः) नीच लोगों के राजाओं को और (षष्टिम् सहस्रा) साठ सहस्र (नव नवतिम्) नौ नब्बे [९+९०=९९ अथवा ९×९०=८१० अर्थात् ६००,९९ अथवा ६०,८१०] (उपजग्मुषः) [उनके] साथियों को (दुष्पदा) न पकड़ने योग्य [अति शीघ्रगामी] (रथ्या) रथ के पहिये के समान (चक्रेण) चक्र [हथियार विशेष] से (नि अवृणक्) उलट पलट कर दिया है ॥९॥

भावार्थः—प्रतापी बलवान् राजा शरणागत अनाथों और धार्मिक प्रसिद्ध पुरुषों की रक्षा करके बीसियों प्रधान शत्रुओं और उनकी सहस्रों सेनाओं को अपने चक्र आदि हथियारों से उखाड़ दे, जैसे वेग से चलने वाले रथ के पहियों से भूमि उखड़ जाती है ॥९॥

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१०॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवान् सेनापति] (त्वम्) तू ने (सुश्रवसम्) बड़ी कीर्ति वाले, (तूर्वयाणम्) शत्रुओं को मारने वाले शूरों के चलाने वाले वीर को (तव) अपनी (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ और (तव) अपने (त्रामभिः) पालन साधनों के साथ (आविथ) बचाया है। (त्वम्) तू (अस्मै) इस (महे) पूजनीय (यूने) स्वभाव से बलवान् (राज्ञे) राजा के लिये (कुत्सम्) मिलनसार ऋषि, (अतिथिग्वम्) अतिथियों को प्राप्त होने वाले (आयुम्) चलते हुए मनुष्य को (अरन्धनायः) पूरे धनी के समान आचरण करता रहे ॥१०॥

भावार्थः - राजपुरुष सेनापति लोग अपने राजा के बचाने के लिये युद्ध पण्डित उपकारी वीरों की सदा रक्षा करते रहें ॥१०॥

य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (उदृचि) उत्तम स्तुति के बीच (देवगोपाः) विद्वानों से रक्षा किये गए (ये) जो हम (ते) तेरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सखायः) मित्र होकर (शिवतमाः) अत्यन्त आनन्द युक्त (असाम) होवें। (त्वया) तेरे साथ (सुवीराः) बड़े वीरों वाले और (द्राघीयः) अधिक लम्बे और (प्रतरम्) अधिक श्रेष्ठ (आयुः) जीवन को (दधानाः) रखते हुए वे हम (त्वाम्) तुझे (स्तोषाम) सराहते रहें ॥११॥

भावार्थः—राजा और प्रजा आपस में प्रीति करके प्रयत्न करें कि सब मनुष्य पुरुषार्थी वीर होकर सुख के साथ पूर्ण आयु भोगें ॥११॥

इति तृतीयेऽनुवाके प्रथमः पर्यायः ॥

सूक्तम् ॥२२॥ [सूक्तानि २२–२५ द्वितीयः पर्यायः ॥]

१—६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ४, ५ निचृद् गायत्री; २, ३, ६ गायत्री ॥

राजप्रजाधर्मोपदेशः—राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥१॥

भाषार्थः –(वृषभ) हे वीर! (सुते) निचोड़ने पर (सुतम्) निचोड़े हुए [सोम रस] को (पीतये) पीने के लिये (त्वा अभि) तुझे (सृजामि) मैं देता हूं। (तृम्प) तू तृप्त हो और (मदम्) आनन्द को (विअश्नुहि) प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थः जैसे राजा सद्वैद्यों द्वारा सोम आदि उत्तम ओषधियों के सेवन से प्रसन्न रहे, वैसे ही मनुष्य वेद आदि सत्य शास्त्रों का तत्त्व ग्रहण कर के आनन्द पावें ॥१॥

मन्त्र १ – ३। ऋग्वेद में हैं – ८। ४५। २२—२४ तथा सामवेद में हैं— उ० १। २ तृच ७ तथा मन्त्र १ सामवेद में है—पू० २। ७। ७॥

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।

माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥२॥

भाषार्थः -(त्वा) तुझ को (मा) न तो (मूराः) मूढ़ (अविष्यवः) हिंसा चाहने वाले और (मा) न (उपहस्वानः) ठट्ठा करने वाले लोग (आ दभन्) कभी दबावें। तू (ब्रह्मद्विषः) वेद के वैरियों को (माकीम्) मत (वनः) सेवन कर ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् राजा सदा श्रेष्ठ कर्म करे, जिस से कोई दुष्ट उसका उपहास आदि न कर सके ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥३॥

भाषार्थः—(इह) यहां पर (त्वा) तुझ को (गोपरीणसा) भूमि की प्राप्ति से (महे) बड़े (राधसे) धन के लिये (मदन्तु) लोग प्रसन्न करें । तू [आनन्द रस को] (पिब) पी, (यथा) जैसे (गौरः) गौर हरिण (सरः) जल [पीता है] ॥३॥

भावार्थः—राजा राज्य पाकर प्रजा जनों को उन्नति के साथ प्रसन्न करके प्रसन्न होवे, जैसे प्यासा हरिण जल पी कर आनन्द पाता है ॥३॥

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (गोपतिम्) पृथिवी के पालक, (सत्यस्य) सत्य के (सूनुम्) प्रेरक, (सत्पतिम्) सत्पुरुषों के रक्षक (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को, (यथा) जैसा (विदे) वह है, (गिरा) स्तुति के साथ (अभि) सब ओर से (प्र) अच्छे प्रकार (अर्च) तू पूज ॥४॥

भावार्थः—जैसे राजा उत्तम गुण वाला हो, वैसे ही मनुष्यों को उसकी यथार्थ बड़ाई करनी चाहिये ॥४॥

मन्त्र ४ ६ ऋग्वेद में हैं—८ । ६९ [सायणभाष्य ५८] । ४ ६ और सामवेद में हैं—उ० ७ । १ । तृच १ और मन्त्र १ सामवेद में है- पू० २ । ८ । ४ । तीनों मन्त्र आगे हैं— अथर्व० २० । ९२ । १—३ ॥

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥५॥

भाषार्थः—(हरयः) दुःख हरने वाले मनुष्य (अरुषीः) गति शील [उद्योगी] प्रजाओं को (बर्हिषि) बढ़ती के स्थान में (अधि) अधिकार पूर्वक (आ ससृज्रिरे) लाये हैं, (यत्र) जहां पर [तुझ राजा को] (अभि) सब ओर से (संनवामहे) हम मिलकर सराहते हैं ॥५॥

भावार्थः जिस राजा की सुनीति से विद्या द्वारा उन्नति होवे, प्रजा सहित विद्वान् जन उसके गुणों का गान करें ॥५॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥६॥

भाषार्थः—(वज्रिणे) वज्रधारी (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] के लिये (गावः) वेदवाणियों ने (आशिरम्) सेवने वा पकाने योग्य पदार्थ [दूध, दही, घी आदि] को और (मधु) मधुविद्या [यथार्थ ज्ञान] को (दुदुह्रे) भर दिया है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यत्) जब कि उसने [उन वेदवाणियों] को (उपह्वरे) अपने पास (सीम्) सब प्रकार (विदत्) पाया ॥६॥

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् पुरुष वेदवाणियों से सुशिक्षित होकर दूध आदि भोग्य पदार्थ प्राप्त करके यथार्थ ज्ञान बढ़ावे ॥६॥

सूक्तम् ॥२३॥

१—९ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १—७, ९ गायत्री, ८ निचृद् गायत्री छन्दः ॥

राजप्रजाकर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

आ तू नं इन्द्र मद्र्यंग्घुवानः सोमंपीतये । हरिंभ्यां याह्यद्रिवः ॥१॥

भाषार्थः—(अद्रिवः) हे वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (सोमपीतये) पदार्थों की रक्षा के लिये (हुवानः) बुलाया गया, (मद्र्यक्) मुझ को प्राप्त होता हुआ तू (हरिभ्याम्) दो घोड़ों [के समान व्यापक बल और पराक्रम] से (नः) हम को (तु) शीघ्र (आ याहि) प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थः—राजा अपनी प्रजा के पदार्थों की रक्षा के लिये बल और पराक्रम के साथ शीघ्र उपाय करे ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—३ । ४१ । १—९ ॥

सत्तो होतां न ऋत्वियंस्तिस्तिरे बर्हिरांनुषक् ।

अयुंज्रन् प्रातरद्रंयः ॥२॥

भाषार्थः—(नः) हमारा (होता) ग्रहण करने वाला, (ऋत्वियः) सब ऋतुओं मे प्राप्त होने वाला [राजा] (सत्तः) बैठा है, (बर्हिः) उत्तम आसन (आनुषक्) निरन्तर [यथाविधि] (तिस्तिरे) बिछाया गया है, (अद्रयः) मेघ [के समान उपकारी पुरुष] (प्रातः) प्रातः काल में (अयुज्रन्) जुड़ गये हैं ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग एकत्र होकर प्रजापालक राजा का उत्तम आसन आदि से सत्कार कर के हित के लिये निवेदन करें ॥२॥

इमा ब्रह्मं ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सींद ।

वीहि शूंर पुरोडाशम् ॥३॥

भाषार्थः—(ब्रह्मवाहः) हे अन्न पहुंचाने वाले ! (इमा) यह (ब्रह्म) वेद ज्ञान (क्रियन्ते) किये जाते हैं, (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आ सीद) बैठ (शूर) हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूर ! [दुष्ट नाशक] (पुरोडाशम्) अच्छे बने हुए अन्न का (वीहि) भोजन कर ॥३॥

भावार्थः—प्रजागण अन्नदाता राजा को उत्तम आसन पर बैठा कर और उत्तम पदार्थ भेंट कर के वेद अनुकूल निवेदन करें ॥३॥

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४॥

भाषार्थः—(वृत्रहन्) हे धन रखने वाले ! (गिर्वणः) हे स्तुतियों से सेवनीय (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (एषु) इन (सवनेषु) ऐश्वर्यों में, (स्तोमेषु) बड़ाइयों में और (उक्थेषु) वचनों में (नः) हमें (ररन्धि) रमा ॥४॥

भावार्थः—राजा प्रयत्न करे कि सब लोग मन, वचन, कर्म से पुरुषार्थ करके सुखी रहें ॥४॥

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५॥

भाषार्थः—(मतयः) बुद्धिमान् लोग (सोमपाम्) ऐश्वर्य के रक्षक (उरुम्) महान्, (शवसः) बल के (पतिम्, पालने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् राजा] को (रिहन्ति) पियार करते हैं; (न) जैसे (मातरः) मातायें [गौयें] (वत्सम्) बछड़े को ॥५॥

भावार्थः—जैसे गौयें अपने बछड़ों से प्रीति करती हैं, वैसे ही बुद्धिमान् लोग न्यायकारी राजा से प्रीति करें ॥५॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (सः) सो तू (हि) ही (तन्वा) अपने शरीर के साथ (महे) बड़े (राधसे) धन के लिये (अन्धसः) अन्न से (मन्दस्व) आनन्द कर, और (स्तोतारम्) स्तुति करने वाले विद्वान् को (निदे) निन्दा के लिये (न) मत (करः) कर ॥६॥

भावार्थः—शरीर और आत्मा की उन्नति चाहने वाला पुरुष विद्वानों की निन्दा कभी न करे ॥६॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (त्वायवः) तुझे चाहने वाले (उत) और (हविष्मन्तः) देने योग्य वस्तुओं वाले (वयम्) हम [तुझ को] (जरामहे) सराहते हैं। (वसो) हे वसु ! [श्रेष्ठ वा निवास कराने वाले] (त्वम्) तू (अस्मयुः) हमें चाहने वाला है ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा और प्रजा प्रीति कर के उन्नति के साथ सुखी रहें ॥७॥

मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि ।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८॥

भाषार्थः—(हरिप्रिय) हे मनुष्यों के प्रिय ! [अपने को] (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (मा वि मुमुचः) कभी न छोड़, (अर्वाङ्) इधर चलता हुआ (याहि) चल। (स्वधावः) हे बहुत अन्न वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (इह) यहां (मत्स्व) आनन्द कर ॥८॥

भावार्थः—जहां पर राजा और प्रजा प्रीति के साथ रहते हैं और कोई किसी को नहीं छोड़ते, उस राज्य में अन्न आदि बढ़ते रहते हैं ॥८॥

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।
घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (सुखे) सुख देने वाले [सब ओर चलने वाले] (रथे) रथ में (आसदे) बैठने के लिये (केशिना) प्रकाश [अग्नि] वाले और (घृतस्नू) जल को भाप से टपकाने वाले [दो पदार्थ] (अर्वाञ्चम्) नीचे चलते हुए (त्वा) तुझ को (बर्हिः) आकाश में (वहताम्) पहुँचावें ॥९॥

भावार्थः विद्वान् राजा विज्ञानी शिल्पियों द्वारा अग्नि और जल से चलनें वाले विमान को पृथिवी से आकाश में और आकाश से पृथिवी पर जाने के लिये बनवावे ॥९॥

सूक्तम् ॥२४॥

१—९ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ४—७ गायत्री, २, ३, ८, ९ निचृद् गायत्री ॥

विद्वद्गुणोपदेशः—विद्वानों के गुणों का उपदेश ॥

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।
हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१॥

भाषार्थः - (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले विद्वान्] (नः) हमारे (सुतम्) सिद्ध किये हुए, (गवाशिरम्) पृथिवी पर फैले हुए (सोमम्) ऐश्वर्य को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उप) समीप में (आ गहि) सब ओर से प्राप्त हो, (यः) जो (ते) तेरा [ऐश्वर्य] (हरिभ्याम्) दो घोड़ों [के समान व्यापक बल और पराक्रम] से (अस्मयुः) हमें चाहने वाला है ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग पृथिवी के सब वैभवों को एक दूसरे के लिये उपयोगी बनावें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—३।४२।१-९॥

तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम् ।

कुविन्न्वस्य तृप्णवः ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले विद्वान्] तू (ग्रावभिः) पण्डितों करके (सुतम्) सिद्ध किये हुए, (बर्हिष्ठाम्) उत्तम आसन पर रक्खे हुए (तम्) उस (मदम्) कल्याणकारक पदार्थ को (नु) शीघ्र (आ) सब प्रकार (गहि) प्राप्त हो, वे [पण्डित लोग] (कुवित्) बहुत प्रकार से (अस्य) इस [कल्याण कारक पदार्थ] का (तृप्णवः) हर्ष पाने वाले हैं ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग प्रीति के साथ एक दूसरे को उत्तम पदार्थों का दान कर के आनन्द पावें ॥२॥

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३॥

भाषार्थः—(इत्था) इस प्रकार से (मम) मेरी (इषिताः) प्रेरणा की गयीं (गिरः) वाणियां (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] को (सोमपीतये) सोमरस [उत्तम ओषधि] पीने के लिये (आवृते) घूमने को (अच्छ) अच्छे प्रकार (इतः) यहां से (अगुः) गयीं हैं ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग विद्वानों का सत्कार उत्तम रीति से करते रहें ॥३॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] को (सोमस्य) सोमरस [महौषधि] के (पीतये) पीने के लिये (स्तोमैः) स्तुतियों के साथ (इह) यहां (हवामहे) हम बुलाते हैं। वह (उक्थेभिः) अपने उपदेशों के साथ (कुवित्) बहुत वार (आगमत्) आवे ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् लोग विद्वानों के बुलाने से प्रसन्न होकर जाया आया करें ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो ।

जठरे वाजिनीवसो ॥५॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले, (वाजिनीवसो) अन्नयुक्त क्रियाओं में वसाने वाले ! (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (जठरे) प्रसिद्ध हुए जगत् में (इमे) यह (सोमाः) पदार्थ (सुताः) उत्पन्न हुए हैं, (तान्) उनको (दधिष्व) धारण कर ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य सृष्टि के पदार्थों की विद्या जानकर ऐश्वर्यवान् होवें ॥५॥

विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६॥

भाषार्थः—(कवे) हे विद्वान् ! (त्वा) तुझ को (हि) ही (धनंजयम्) धन जीतने वाला और (वाजेषु) सङ्ग्रामों में (दधृषम्) अत्यन्त निर्भय (विद्म) हम जानते हैं । (अध) इस लिये (ते) तेरे लिये (सुम्नम्) सुख को (ईमहे) हम प्रार्थना करते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य धनी, शूर और परोपकारी होवे, उसके लिये सुख पहुंचाने को सब प्रयत्न करें ॥६॥

इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब ।

आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (नः) हमारे (इमम्) इस (वृषभिः) बलवानों करके (सुतम्) सिद्ध किये गये (गवाशिरम्) पृथिवी पर फैले हुए (च) और (यवाशिरम्) अन्न के भोजन वाले पदार्थ को (आगत्य) आकर (पिब) पी ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य संसार के बीच उत्तम पदार्थों का भोजन पान कर के बलवान् होवें ॥७॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये ।

एष रारन्तु ते हृदि ॥८॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले जन] (तुभ्य) तेरे लिये (इत्) ही (स्वे) अपने (ओक्ये) घर में (पीतये) पीने को (सोमम्) सोमरस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[महौषधि] (चोदयामि) भेजता हूं। (एषः) यह (ते) तेरे (हृदि) हृदय में (रस्न्तु) अत्यन्त रमे ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम उत्तम पदार्थों को रुचि के साथ खावें जिससे हृदय में उत्तम रस उत्पन्न होकर सब शरीर में फैले और बल बढ़े ॥८॥

त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (त्वां प्रत्नम्) तुझ पुराने को (सुतस्य) सिद्ध किये हुए रस के (पीतये) पीने के लिये (कुशिकासः) मिलने वाले, (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले हम (हवामहे) बुलाते हैं ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य अनुभवी पुराने बुद्धिमानों से आदर करके शिक्षा लेवें ॥९॥

सूक्तम् ॥२५॥

१—७ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ३—५ निचृज् जगती, २ जगती; ६ आर्षी त्रिष्टुप्; ७ विराडार्षी त्रिष्टुप् ॥

विद्वत्कर्तव्योपदेशः विद्वानों के कर्तव्य का उपदेश ॥

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर वा राजन्] (मर्त्यः) मनुष्य (तव) तेरी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अश्वावति) उत्तम घोड़ों वाले [सेनादल] में (प्रथमः) पहिला [प्रधान] (प्रावीः) बड़ा रक्षक होकर (गोषु) भूमियों पर (गच्छति) चलता है। (तम् इत्) उसको ही (भवीयसा) अति अधिक (वसुना) धन से (पृणक्षि) तू भर देता है, (यथा) जैसे (अभितः) सब ओर से (विचेतसः) विविध प्रकार जाने गये (आपः) जल समूह (सिन्धुम्) समुद्र को [भरते हैं] ॥१॥

भावार्थः - जो राजा और सेनापति आदि कार्यकर्ता परमेश्वर में विश्वास करके एक दूसरे की रक्षा और सत्कार करते हैं, वे सब देशों में विजयी होकर बहुत धनी होते हैं ॥१॥

मन्त्र १—६ ऋग्वेद में हैं—१ । ८३ । १—६ ॥

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(**आपः न**) व्याप्त जलों के समान [उपकारी] (**देवासः**) विद्वान् लोग (**देवीः**) दिव्य गुण वाली [विद्याओं] को (**उप**) आदर से (**यन्ति**) पाते हैं, और (**होत्रियम्**) देने लेने योग्य (**अवः**) रक्षा को (**यथा रजः**) रज [धूलि] के समान (**विततम्**) फैला हुआ (**पश्यन्ति**) देखते हैं। और (**वराः इव**) श्रेष्ठ पुरुषों के समान वे (**प्राचैः**) पुराने व्यवहारों के साथ (**देवयुम्**) उत्तम गुण चाहने वाले, (**ब्रह्मप्रियम्**) ईश्वर और वेद में प्रीति करने वाले पुरुष को (**प्र नयन्ति**) आगे बढ़ाते हैं और (**जोषयन्ते**) सेवा करते हैं ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग उत्तम उत्तम विद्यायें प्राप्त करके संसार के प्रत्येक पदार्थ से उपकार लेते हैं और श्रेष्ठ धर्मात्मा ईश्वरभक्त को अगुआ बनाकर उसकी आज्ञा में चलते हैं ॥२॥

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (**द्वयोः अधि**) उन दोनों के ऊपर (**उक्थ्यम्**) बड़ाई के योग्य (**वचः**) वचन को (**अदधाः**) तू ने धारण किया है, (**या**) जो (**यतस्रुचा**) चमचा [भोजन साधन] लिये हुए (**मिथुना**) दोनों मिलनसार स्त्री पुरुष (**सपर्यतः**) सेवा करते हैं। वह [स्त्री वा पुरुष] (**ते**) तेरे (**व्रत**) नियम में (**असंयत्तः**) वे रोक [स्वतन्त्र] होकर (**क्षेति**) रहता है और (**पुष्यति**) पुष्ट होता है, (**भद्रा**) कल्याण करने हारी (**शक्तिः**) शक्ति (**यजमानाय**) यजमान [सत्कार, संगति और दान करने हारे] (**सुन्वते**) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये [होती है] ॥३॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष विद्वानों के उपदेश और मार्ग पर चलकर स्वाधीनता के साथ भोजन आदि से आप सुख पाते और सब को सुख देते हैं ॥३॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४॥

भाषार्थः—(**ये**) जिन (**इद्धाग्नयः**) अग्नि के प्रकाश करने वाले (**अङ्गिराः**) अङ्गिराओं [ज्ञानी ऋषियों] ने (**प्रथमम्**) श्रेष्ठ (**वयः**) जीवन को (**सुकृत्यया**) सुन्दर रीति से करने योग्य (**शम्या**) शान्तिदायक कर्म से (**दधिरे**) धारण किया था, (**आत्**) तब ही (**नरः**) उन नेताओं ने (**पणेः**) उद्यम से (**सर्वम्**) सब (**भोजनम्**) भोजन [पालन साधन धन अन्न आदि], (**अश्वावन्तम्**) उत्तम घोड़ों वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आ) और (गोमन्तम्) उत्तम गौओं वाले (पशुम्) पशुसमूह को (सम्) अच्छे प्रकार (अविन्दन्त) पाया है ॥४॥

भावार्थः - जो अग्नि विद्या में कुशल, पुरुषार्थी, विज्ञानी लोग धार्मिक कर्म कर के उत्तम जीवन बनाते हैं, वे ही उद्योग कर के सब प्रकार से सुख पाते हैं ॥४॥

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।

आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥

भाषार्थः—(प्रथमः) सब से पहिले वर्तमान (अथर्वा) निश्चल परमात्मा ने (यज्ञैः) संगति कर्मों [परमाणुओं के मेलों] से (पथः) मार्गों को (तते) फैलाया, (ततः) फिर (व्रतपाः) नियम पालने वाला, (वेनः) पियारा (सूर्यः) लोक (आ) सब ओर (अजनि) प्रकट हुआ । (उशना) पियारे, (काव्यः) बड़ाई योग्य उस [सूर्य] ने (गाः) पृथिवियों [चलते हुए लोकों] को (आ) सब ओर (आजत्) खींचा है, (यमस्य) उस नियम कर्ता परमेश्वर के (सचा) मेल से (जातम्) उत्पन्न हुए (अमृतम्) अमरण [मोक्ष सुख वा जीवन सामर्थ्य] को (यजामहे) हम पाते हैं ॥५॥

भावार्थः— जिस परमात्मा ने आकाश, सूर्य, पृथिवी आदि लोक बनाकर हमें जीवन दिया है, उस बड़े जगदीश्वर की उपासना से विद्वान् लोक आत्मिक बल बढ़ाकर मोक्ष सुख भोगें ॥५॥

बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि । ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यः १ स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥६॥

भाषार्थः—(यत्) जब (बर्हिः) उत्तम आसन (स्वपत्याय) गुणी सन्तान के लिये (वा) विचार पूर्वक (वृज्यते) छोड़ा जाता है, (वा) अथवा (अर्कः) पूजनीय विद्वान् (श्लोकम्) अपनी वाणी को (दिवि) व्यवहार के बीच (आघोषते) कह सुनाता है । और (यत्र) जहाँ (ग्रावा) मेघ [के समान उपकारी], (उक्थ्यः) प्रशंसनीय (कारुः) शिल्पी विद्वान् (वदति) बोलता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला पुरुष] (तस्य) इस [सब] के (इत्) ही (अभिपित्वेषु) सङ्ग्रामों में (रण्यति) आनन्द पाता है ॥६॥

भावार्थः—जिस स्थान में विद्वान् गुणी सन्तानों का आदर होता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जहां पर बड़े विज्ञानी शिल्पी लोग उत्तम उत्तम विद्याओं का आविष्कार करते हैं, वहां पर सब प्राणियों को सुख मिलता है ॥६॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।

इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥७॥

भाषार्थः—(हर्यश्व) हे वायु समान फुरतीले घोड़ों वाले ! (वृष्णे तुभ्यम्) तुझ महाबली को (प्रयै) आगे चलने के लिये (सुतस्य) निचोड़ [सिद्धान्त] का (उग्राम्) तीव्र, (सत्याम्) सत्यगुण वाला (पीतिम्) घूंट (प्र इयर्मि) आगे रखता हूं। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले विद्वान्] (धेनाभिः) वेदवाणियों द्वारा (इह) यहाँ पर (विश्वाभिः) समस्त (धीभिः) बुद्धियों से और (शच्या) कर्म से (गृणानः) उपदेश करता हुआ तू (मादयस्व) आनन्द दे ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य फुरतीली सेना वाला ज्ञानवान् और बलवान् हो, सब लोग आदर करके उस बुद्धिमान् कर्मकुशल की वैदिक शिक्षाओं से आनन्द पावें ॥७॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। १०४। ३ और आगे है—अ० २०। ३३। २॥

इति तृतीयेऽनुवाके द्वितीयः पर्यायः ॥

सूक्तम् ॥२६॥ [सूक्तानि २६-३२ तृतीयः पर्यायः ॥]

१—६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, २, ४, ६ गायत्री, ३ निचृद् गायत्री, ५ विराड् गायत्री ॥

१—३ सेनाध्यक्षलक्षणोपदेशः=१—३ सेनाध्यक्ष के लक्षण का उपदेश, ४—६ परमेश्वरगुणोपदेशः=४—६ परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥१॥

भाषार्थः—(योगेयोगे) अवसर अवसर पर और (वाजेवाजे) सङ्ग्राम सङ्ग्राम के बीच (तवस्तरम्) अधिक बलवान् (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] को (ऊतये) रक्षा के लिये (सखायः) मित्र लोग हम (हवामहे) पुकारते हैं ॥१॥

भावार्थः—सब प्रजागण विद्वान् पुरुषार्थी राजा के साथ मित्रता करके शत्रु से अपनी रक्षा का उपाय करें ॥१॥

यह मन्त्र ऊपर आचुका है—अ० १९। २४। ७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ घा गमद् यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥२॥

भाषार्थः—(यदि) जो वह (आ गमत्) आवे, (घ) तो वह (सहस्रिणीभिः) सहस्रों उत्तम पदार्थ पहुंचाने वाली (ऊतिभिः) रक्षाओं से (वाजेभिः) अन्नों के साथ (नः) हमारी (हवम्) पुकार को (उप) आदर से (श्रवत्) सुने ॥२॥

भावार्थः—सेनाध्यक्ष को चाहिये कि दूरदर्शी होकर आवश्यक अन्न आदि पदार्थों का संग्रह करके सब की यथावत् रक्षा करे ॥२॥

मन्त्र २, ३ ऋग्वेद में है—१ । ३० । ८, ६, और सामवेद में है—उ० १ । २ । तृच ११ ॥

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (प्रत्नस्य) पुराने (ओकसः) घर के [उत्पन्न हुए] (तुविप्रतिम्) बहुत पदार्थों के प्रत्यक्ष पहुंचाने वाले (नरम्) पुरुष को (अनु हुवे) मैं पुकारता रहता हूं, (यम्) जिस [पुरुष] को (पूर्वम्) पहिले काल में (ते) तेरा (पिता) पिता (हुवे) बुलाता था ॥३॥

भावार्थः—जो कोई प्रतिष्ठित घराने का पुरुष अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाकर उपकार करे, उस को लोग आदर करके बुलावें ॥३॥

४—६ । परमेश्वरगुणोपदेशः=४—६ परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥४॥

भाषार्थः—(तस्थुषः) मनुष्यादि प्राणियों और लोकों में (परि) सब ओर से (चरन्तम्) व्यापे हुए, (ब्रध्नम्) महान् (अरुषम्) हिंसा रहित [परमात्मा] को (रोचना) प्रकाशमान पदार्थ (दिवि) व्यवहार के बीच (युञ्जन्ति) ध्यान में रखते और (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमाणुओं से लेकर सूर्य आदि लोक और सब प्राणी सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता परमात्मा की आज्ञा को मानते हैं, उसी की उपासना से मनुष्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके आत्मा की उन्नति करें ॥४॥

मन्त्र ४—६ ऋग्वेद में हैं—१ । ६ । १—३. सामवेद में—उ० ६ । ३ । तृच १४ और आगे हैं- अ० २० । ४७ । १०—१२ तथा ६९ । ९—११ । मन्त्र ४, ५

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद में हैं—२३ । ५, ६ और मन्त्र ४ महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका उपासना विषय में व्याख्यात है ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥५॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [परमात्मा म० ४] के (काम्या) चाहने योग्य, (विपक्षसा) विविध प्रकार ग्रहण करने वाले, (शोणा) व्यापक, (धृष्णू) निर्भय, (नृवाहसा) नेताओं [दूसरों के चलाने वाले सूर्य आदि लोकों] के चलाने वाले (हरी) दोनों धारण आकर्षण गुणों को (रथे) रमणीय जगत् के बीच (युञ्जन्ति) वे [प्रकाशमान पदार्थ—मन्त्र ४] ध्यान में रखते हैं ॥५॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के धारण आकर्षण सामर्थ्य में सूर्य आदि पिण्ड ठहर कर अन्य लोकों और प्राणियों को चलाते हैं, मनुष्य उन सब पदार्थों से उपकार लेकर उस ईश्वर को धन्यवाद दें ॥५॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥६॥

भाषार्थः—(मर्याः) हे मनुष्यो ! (अकेतवे) अज्ञान हटाने के लिये (केतुम्) ज्ञान को और (अपेशसे) निर्धनता मिटाने के लिये (पेशः) सुवर्ण आदि धन को (कृण्वन्) उत्पन्न करता हुआ वह [परमात्मा—मन्त्र ५, ६] (उषद्भिः) प्रकाशमान गुणों के साथ (सम्) अच्छे प्रकार (अजायथाः) प्रकट हुआ है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करके परमात्मा को विचारते हुए सृष्टि के पदार्थों से उपकार लेकर ज्ञानी और धनी होवें ॥६॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में भी है—२९ । ३७ और महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका पृष्ठ ३०७ ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य विषय में भी व्याख्यात है ॥

सूक्तम् ॥२७॥

१—६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ विराडार्षी गायत्री; २, ४, ५ निचृद् गायत्री; ३, ६ गायत्री ॥

राजलक्षणोपदेशः—राजा के लक्षणों का उपदेश ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (यत्) जब (यथा) जैसे जैसे (एकः) अद्वितीय (त्वम्) तू (इत्) ही (मे) मेरा [स्वामी होवे], (अहम्) मैं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वस्वः) धन का (ईशीय) स्वामी हो जाऊं, और (स्तोता) गुणों का व्याख्यान करने वाला [प्रत्येक पुरुष] (गोसखा) पृथिवी [अर्थात् तेरे राज्य] का मित्र (स्यात्) हो जावे ॥१॥

भावार्थः—अद्वितीय प्रतापी राजा विद्वान् गुणी पुरुषों का आदर करता रहे, जिस से सब लोग राज्य की वृद्धि में लगे रहें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—८। १४। १—६ मन्त्र १—३ सामवेद में हैं—उ० २। ६। तृच ६, और मन्त्र १ सामवेद में हैं—पू० २। ३। ७॥

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम् ॥२॥

भाषार्थः—(शचीपते) हे बुद्धि के स्वामी! [राजन्] (अस्मै) इस (मनीषिणे) बुद्धिमान् [ब्रह्मचारी] को (शिक्षेयम्) मैं शिक्षा करूं और (दित्सेयम्) दान दूं, (यत्) जो (अहम्) मैं (गोपतिः) विद्या का स्वामी (स्याम्) हो जाऊं ॥२॥

भावार्थः—बुद्धिमान् राजा आदि धनी लोग प्रबन्ध करें कि ब्रह्मचारी लोग निश्चिन्त होकर उत्तम शिक्षकों से उत्तम विद्या पावें ॥२॥

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (ते) तेरी (धेनुः) वाणी (सूनृता) प्यारी और सच्ची और (पिप्युषी) बढ़ती करने वाली होकर (सुन्वते) तत्त्व निचोड़ने वाले (यजमानाय) यजमान [विद्वानों का सत्कार, सत्संग और विद्या आदि दान करने वाले] के लिये (गाम्) भूमि, विद्या वा गौओं और (अश्वम्) घोड़ों को (दुहे) भर पूर करती है ॥३॥

भावार्थः—सत्यवादी ऐश्वर्यवान् राजा सत्कार करके विद्वानों की उन्नति करके राज्य की उन्नति करे ॥३॥

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः।
यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (ते) तेरे (राधसः) ऐश्वर्य का (वर्ता) रोकने वाला, (न) न तो (देवः) विद्वान् पुरुष और (न) न (मर्त्यः) सामान्य पुरुष (अस्ति) है, (यत्) जब कि (स्तुतः) स्तुति किया गया तू (मघम्) धन (दित्ससि) देना चाहता है ॥४॥

भावार्थः—राजा अपने उत्तम गुणों से अनुपम होकर सुपात्रों को दान देकर उन्नति करे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥५॥

भाषार्थः—(यज्ञः) यज्ञ [विद्वानों के सत्कार, सत्संग और विद्या आदि दान] ने (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] को (अवर्धयत्) बढ़ाया है, (यत्) जब कि (दिवि) व्यवहार के बीच (ओपशम्) पूरा उद्योग (चक्राणः) कर चुकते हुए उसने (भूमिम्) भूमि को (वि अवर्तयत्) व्याख्यात किया है ॥५॥

भावार्थः—जब मनुष्य पृथिवी पर प्रत्येक काम को योग्यता से करता है, तब वह उन्नति करके कीर्ति पाता है ॥५॥

यह मन्त्र सामवेद में है पू० २ । ३ । ७ तथा उ० ८ । १ । ६ ॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (वावृधानस्य) बढ़ते हुए और (विश्वा) सब (धनानि) धनों को (जिग्युषः) जीत चुकने वाले (ते) तेरी (ऊतिम्) रक्षा को (वयम्) हम (आ) सब ओर से (वृणीमहे), मांगते हैं ॥६॥

भावार्थः—जब राजा पराक्रमी और धनी होता है. तब प्रजागण सुरक्षित रह कर उस राज्य की वृद्धि चाहते हैं ॥६॥

सूक्तम् ॥२८॥

१—४ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृद् गायत्री; २—४ गायत्री ॥

परमेश्वरोपासनोपदेशः—परमेश्वर की उपासना का उपदेश ॥

व्यं१ न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] ने (सोमस्य) ऐश्वर्य के (मदे) आनन्द में (रोचना) प्रीति के साथ (अन्तरिक्षम्) आकाश को (वि अतिरत्) पार किया है, (यत्) जब कि उसने (वलम्) हिंसक [विघ्न] को (अभिनत्) तोड़ डाला ॥१॥

भावार्थः—सब से महान् और पूजनीय परमेश्वर की उपासना से सब मनुष्य उन्नति करें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—८ । १४ । ७—१० और आगे है— अ० २० । ३९ । २—५ । मन्त्र १, २ सामवेद में है—उ० ८ । १ । तृच ९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥२॥

भाषार्थः—(गुहा) गुहा [गुप्त अवस्था] में (सतीः) वर्तमान (गाः) वाणियों को (आविः कृण्वन्) प्रकट करते हुए उस [परमेश्वर] ने (अङ्गिरोभ्यः) विज्ञानी पुरुषों के लिये (उत् आजत्) ऊंचा पहुंचाया और (वलम्) हिंसक [विघ्न] को (अर्वाञ्चम्) नीचे (नुनुदे) हटाया है ॥२॥

भावार्थः—प्रलय के पीछे परमात्मा ने वेदों का उपदेश करके हमारे सब विघ्न मिटाये हैं ॥२॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृह्लानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] करके (दिवः) व्यवहार के (स्थिराणि) ठहराऊ (रोचना) प्रकाश (न पराणुदे) न हटने के लिये (दृह्लानि) पक्के किये गये (च) और (दृंहितानि) बढ़ाये गये [फैलाये गये] हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा ने अपने अटल नियमों से सब संसार को सुख दिया है ॥३॥

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (ते) तेरी (स्तोमः) बड़ाई (अपाम्) जलों की (मदन्) हर्ष बढ़ाने वाली (ऊर्मिः इव) लहर के समान (अजिरायते) वेग से चलती है, और (मदाः) आनन्द (वि अराजिषुः) विराजते हैं [विविध प्रकार ऐश्वर्य बढ़ाते हैं] ॥४॥

भावार्थः—न्यायकारी जगदीश्वर की उत्तम नीति को मानकर सब लोग आनन्द पाकर शीघ्र ऐश्वर्य बढ़ावें ॥४॥

सूक्तम् ॥२६॥

१—५ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ विराडार्षी गायत्री; २—४ गायत्री; ५ निचृद् गायत्री ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (त्वम्) तू (हि) ही (स्तोमवर्धनः) स्तुतियों से बढ़ाने योग्य और (उक्थवर्धनः) यथार्थ वचनों से सराहने योग्य (उत) और (स्तोतॄणाम्) गुण व्याख्याताओं का (भद्रकृत्) कल्याण करने वाला (असि) है ॥१॥

भावार्थः—राजा ऐसा उत्तम गुणी और पराक्रमी होवे कि सब लोग उसके गुणों से सुखी होवें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—८। १४। ११—१५॥

इन्द्र॒मित् के॒शिना॒ हरी॑ सोम॒पेया॑य वक्षतः। उप॑ य॒ज्ञं सु॒राध॑सम् ॥२॥

भाषार्थः—(केशिना) सुन्दर केशों [कन्धे आदि के बालों] वाले (हरी) रथ ले चलने वाले दो घोड़े [के समान बल और पराक्रम] (सुराधसम्) महाधनी (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] को (इत्) ही (सोमपेयाय) ऐश्वर्य की रक्षा के लिये (यज्ञम् उप) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] की ओर (वक्षतः) लावें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम उत्साही पुरुष का श्रेष्ठ वस्तुओं से आदर करके उसके योग्य प्रबन्ध से सुखी होवें ॥२॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० २०। ३। २॥

अ॒पां फेने॑न॒ नमु॑चेः॒ शिर॒ इन्द्रोद॑वर्तयः। विश्वा॒ यदज॑य॒ स्पृधः॑ ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] (अपाम्) जलों के (फेनेन) फेन [झाग के समान हलके तीक्ष्ण शस्त्र विशेष] से (नमुचेः) न छुटने योग्य [दण्डनीय पापी] के (शिरः) शिर को (उत् अवर्तयः) तू ने उछाल दिया है, (यत्) जब कि (विश्वाः) सब (स्पृधः) झगड़ने वाली सेनाओं को (अजयः) तू ने जीता है ॥३॥

भावार्थः—सेनापति पानी के झाग के समान हलके तीक्ष्ण चक्र आदि हथियारों से शत्रु का शिर काटकर उसकी सेना को जीते ॥३॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में भी है—१६। ७१ तथा सामवेद—पू० ३। २। ८॥

मा॒याभि॑रु॒त्सिसृ॑प्सत॒ इन्द्र॒ द्यामा॒रुरु॑क्षतः। अव॒ दस्यूँ॑रधूनुथाः ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] (उत्सिसृप्सतः) उछलते हुए और (द्याम्) आकाश को (आरुरुक्षतः) चढ़ते हुए (दस्यून्) डाकुओं को तू ने (मायाभिः) अपनी बुद्धियों से (अव अधूनुथाः) औंधा गिरा दिया है ॥४॥

भावार्थः—जो शत्रु लोग विमान आदि से आकाश में चढ़ कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपद्रव मचावें, युद्ध कुशल सेनापति विमान आदि में चढ़ कर उन्हें गिरावे ॥४॥

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] (सोमपाः) ऐश्वर्य का रक्षक और (उत्तरः) बड़ा विजयी (भवन्) हो कर तूने (असुन्वाम्) भेंट न देती हुई (विषूचीम्) इतर वितर चलती हुई (संसदम्) भीड़ का (वि अनाशयः) विनाश कर दिया है ॥५॥

भावार्थः विजयी सेनापति कट्टर लुटेरे शत्रुओं का नाश करके ऐश्वर्य बढ़ावे ॥५॥

सूक्तम् ॥३० ॥

१—५ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ जगती, २—४ निचृज्जगती, आर्षी त्रिष्टुप् ॥

बलपराक्रमोपदेशः—बल और पराक्रम का उपदेश ॥

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥१॥

भाषार्थः—[हे शूर !] (महे) बड़े (विदथे) समाज के बीच (ते) तेरे (हरी) दुःख हरने वाले दोनों बल और पराक्रम की (प्र शंसिषम्) मैं प्रशंसा करता हूं, और (वनुषः ते) तुझ शूर के (हर्यतम्) कामना योग्य (मदम्) आनन्द को (प्र वन्वे) मांगता हूं। (यः) जो आप (हरिभिः) वीर पुरुषों के साथ (घृतम् न) जल के समान (चारु) रमणीय धन को (सेचते) बरसाते हैं, (हरिवर्पसम्) सिंहरूप (त्वा) उस तुझ में (गिरः) स्तुतियां (आ) सब ओर से (विशन्तु) प्रवेश करें ॥१॥

भावार्थः—बली, पराक्रमी, धनी, दानी पुरुष संसार में बड़ाई पाता है ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१० । ९६ । १—५ ।
इस सूक्त का मिलान करो ऋग्वेद म० ३ । सू० ४४ ॥

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२॥

भाषार्थः (हरी) दुःख हरने वाले दोनों बल और पराक्रम को (हिन्वन्तः) बढ़ाते हुए (ये) जो लोग (दिव्यम्) दिव्य गुण वाले (सदः यथा) समाज के समान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हरिम्) दुःख मिटाने वाले [सेनापति] को (हि) निश्चय करके (योनिम् अभि) न्याय घर में (समस्वरन्) अच्छे प्रकार सराहते हैं, और (यम्) जिस [सेनापति] को (हरिभिः) शूर पुरुषों सहित (धेनवः न) गौओं के समान [जो] (आ) सब ओर से (पृणन्ति) तृप्त करते हैं, (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (शूषम्) सुख से (हरिवन्तम्) उस शूर पुरुषों वाले [सेनापति] को (अर्चत) तुम पूजो ॥२॥

भावार्थः – प्रजागण न्यायकारी वीर राजा को शूर विद्वानों के सहित प्रसन्न करके आनन्दित रहें ॥२॥

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [सेनापति] का (सः) वह (हरितः) शत्रुनाशक, (आयसः) लोहे का बना (वज्रः) वज्र [शस्त्र] है, (यः) जो (गभस्त्योः) दोनों भुजाओं पर (निकामः) बड़ा प्रिय, (हरिः) सिंह [के समान] (आ) और (हरिः) सूर्य [के समान] (द्युम्नी) तेजस्वी, (सुशिप्रः) बहुत काटने वाला [बड़ा कंटीला वा दन्तीला] और (हरिमन्युसायकः) सर्प [के समान शत्रु] के क्रोध का नाश करने वाला है। (इन्द्रे) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] में (हरिता) स्वीकार करने योग्य (रूपा) रूप [सुन्दरपन] (नि) दृढ़ करके (मिमिक्षिरे) सींचे गये हैं ॥३॥

भावार्थः—सेनापति दृढ़ तीक्ष्ण हथियारों से शत्रुओं का नाश करके अपने उत्तम गुणों से प्रजा का पालन करे ॥३॥

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥४॥

भाषार्थः —(न) जैसे (हर्यतः) रमणीक (केतुः) प्रकाश (दिवि) आकाश में (अधि) ऊपर (धायि) रक्खा गया है, (वज्रः) वह वज्रधारी (रंह्या) वेग के साथ (हरितः न) सिंह के समान (विव्यचत्) व्याप गया, और (आयसः) लोह के बने हुए [अति दृढ़], (हरिशिप्रः) सिंह के समान मुख वाले (यः) जिस ने (अहिम्) सर्प [समान शत्रु] को (तुदत्) छेदा, है, वह (सहस्रशोकाः) सहस्रों प्रकाश वाला होकर (हरिंभरः) मनुष्यों का पालने वाला (अभवत्) हुआ है ॥४॥

भावार्थः—तेजस्वी न्यायकारी राजा दुष्ट पापियों को शीघ्र दण्ड देकर अनेक प्रकार से प्रजा का पालन करे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वंत्वंमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यं मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥

भाषार्थः—(हरिकेश) हे सूर्य समान तेज वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (पूर्वेभिः) समस्त (यज्वभिः) यज्ञ करने वालों करके (उपस्तुतः) आदर से स्तुति किया गया (त्वं त्वम्) तू ही तू (अहर्यथाः) प्रिय हुआ है। (हरिजात) हे मनुष्यों में प्रसिद्ध ! (त्वम्) तू (हर्यसि) प्रीति करता है, (विश्वम्) सब (उक्थ्यम्) बड़ाई योग्य वस्तु और (असामि) न समाप्त होने वाला [अनन्त] (हर्यतम्) चाहने योग्य (राधः) धन (तव) तेरा है ॥५॥

भावार्थः—शुभ गुणों के कारण जिस राज्य से सब विद्वान् प्रीति करते हैं और जो सबसे प्रीति करता है, उसके राज्य में बहुत सम्पत्ति और धन होता है ॥५॥

सूक्तम् ॥३१॥

१—५ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ विराडार्षी जगती, २, ३ जगती, ४, ५ निचृज् जगती ॥

पुरुषार्थकरणोपदेशः—पुरुषार्थ करने का उपदेश ॥

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥१॥

भाषार्थः—(ता) वे दोनों (हर्यता) प्यारे (हरी) दुःख हरने वाले दोनों बल और पराक्रम (वज्रिणम्) वज्रधारी, (मन्दिनम्) आनन्दकारी, (स्तोभ्यम्) स्तुति योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] को (मदे) सुख के लिये (रथे) रमण साधन जगत् में (वहतः) ले चलते हैं। (सोमाः) शान्त स्वभाव वाले (हरयः) मनुष्यों ने (अस्मै) इस (हर्यते) प्यारे (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] के लिये (पुरूणि) बहुत से (सवनानि) ऐश्वर्य (दधन्विरे) प्राप्त किये हैं ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्म के साथ बल और पराक्रम करके संसार को आनन्द देता है, सब लोग मान आदर करके उस का ऐश्वर्य बढ़ाते हैं ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१० । ९६ । ६—१० ॥

अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(हरयः) सिंह [समान बलवान्] (हरयः) दुःख हरने वाले मनुष्यों ने (कामाय) कामना पूरी करने के लिये (तुरा) शीघ्रकारी (हरी) दुःख हरने वाले दोनों बल और पराक्रम को (स्थिराय) दृढ़ स्वभाव वाले [सेनापति] के निमित्त (अरम्) पूरा पूरा (वधन्विरे) प्राप्त किया और (हिन्वन्) बढ़ाया है। (यः) जो मनुष्य (अर्वद्भिः) घोड़ों [के समान शीघ्रगामी] (हरिभिः) दुःख हरने वाले मनुष्यों के साथ (जोषम्) प्रीति (ईयते) प्राप्त करता है, (सः) उस ने ही (हरिश्चन्तम्) श्रेष्ठ मनुष्यों वाली (अस्य) अपनी (कामम्) कामना को (आनशे) फैलाया है ॥२॥

भावार्थः—जहां पर विद्वान् लोग राजा के लिये बल और पराक्रम करते हैं और राजा विद्वानों से प्रीति करता है, वहां सब उत्तम कामनायें पूरी होकर आनन्द बढ़ता है ॥२॥

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥३॥

भाषार्थः—(हरिश्मशारुः) सिंह के शरीर को छेदने वाला, (हरिकेशः) सूर्य समान तेज वाला, (आयसः) लोहे का बना हुआ [अति दृढ़] (यः) जो (हरिपाः) मनुष्यों का रक्षक [सेनापति] (तुरस्पेये) शीघ्र रक्षा करने में (अवर्धत) बढ़ा है, और (यः) जो (अर्वद्भिः) घोड़ो [के समान शीघ्रगामी] (हरिभिः) दुःख हरने वाले मनुष्यों के साथ (वाजिनीवसुः) अन्न युक्त क्रियाओं में बसने वाला है, वह (विश्वा) सब (दुरिता) विघ्नों को (अति) लांघकर (हरी) दुःख हरने वाले दोनों बल और पराक्रम को (पारिषत्) भरपूर करे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य अति बलवान् और तेजस्वी होकर कष्ट से प्रजा की रक्षा करता है और सत्कारपूर्वक शूरवीर विद्वानों को अन्न आदि देता है, वही अपने बल और पराक्रम से कीर्ति पाता है ॥३॥

स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत् कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥४॥

भाषार्थः—(वाजाय) अन्न के लिये (यस्य) जिस [सेनापति] के (हरिणी) स्वीकार करने योग्य (शिप्रे) दोनों जबाड़े (स्रुवा इव) दो चमचाओं के समान (विपेततुः) विविध प्रकार चलते हैं, [उसके राज्य में] (हरिणी) सुख हरने वाली [अविद्या और कुनीति] दोनों (दविध्वतः) सर्वथा मिट जाती हैं। (यत्) क्योंकि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह (चमसे कृते) भोजन सिद्ध होने पर (मदस्य) आनन्द दायक, (हर्यतस्य) कामना योग्य (अन्धसः) अन्न का (पीत्वा) पान कर के (हरी) बल और पराक्रम दोनों को (प्र) अच्छे प्रकार (मर्मृजत्) शुद्ध करता है ॥४॥

भावार्थः—जैसे अन्न खाने से भूख मिटती है और स्रुवा से अग्नि में घी डालने से धुआँ नष्ट हो जाता है, वैसे ही जो राजा विद्या और सुनीति के फैलाने से अविद्या और कुनीति मिटाता है, वह अन्न के भोजन से बल और पराक्रम बढ़ाता है ॥४॥

उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योः रत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥५॥

भाषार्थः—(हर्यतस्य) कामना योग्य [उस पूर्वोक्त पुरुष] का (सद्म) घर (उत स्म) अवश्य ही (पस्त्योः) आकाश और पृथिवी में [हुआ है] और (हरिवान्) उत्तम पुरुषों वाले [उस पुरुष] ने (अत्यः न) घोड़े के समान (वाजम्) अन्न को (अचिक्रदत्) पुकारा है—(मही) पूजनीय (धिषणा) वेदवाणी ने (चित्) अवश्य (हि) ही (ओजसा) बल के साथ [यह] (अहर्यत्) कामना की है। [इसी से] (हर्यतः) कामना योग्य तू ने (चित्) भी (बृहत्) बड़े (वयः) जीवन को (आ) सब ओर से (दधिषे) धारण किया है ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य पूर्वोक्त प्रकार से वेदवाणी को मानकर बलवान् और पराक्रमी होता है, वही आकाश और भूमि पर राज्य करके बहुत अन्न प्राप्त करता है, वैसा ही प्रत्येक मनुष्य को अपना जीवन बनाना चाहिये ॥५॥

सूक्तम् ॥३२॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृदार्षी त्रिष्टुप्; २, ३ त्रिष्टुप् ॥

राजकर्तव्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥१॥

भाषार्थः—[हे शूर !] (महित्वा) अपने महत्त्व से (रोदसी) आकाश और भूमि को (आ हर्यमाणः) प्राप्त कर लेता हुआ तू (नव्यंनव्यम्) नवे नवे (प्रियम्) प्रिय (मन्म) ज्ञान को (नु) शीघ्र (हर्यसि) पाता है। (असुर) हे बुद्धिमान्! (गोः) विद्या के (हर्यतम्) पाने योग्य (पस्त्यम्) घर को (हरये) दुःख हरने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सूर्याय) सूर्य [के समान प्रेरक विद्वान्] के लिये (प्र) अच्छे प्रकार (आविः कृधिः) प्रकट कर ॥१॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि पूर्ण विद्वान् होकर प्रकाश और भूमि के तत्त्वों को जानकर नवीन नवीन विद्याओं के आविष्कार करे और विद्वान् आचार्य और ब्रह्मचारियों के लिये विद्यामन्दिर आदि स्थान बनावे ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१० । ९६ । ११—१३ ॥

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (जनानाम्) मनुष्यों की (प्रयुजः) प्रार्थनायें (हरिशिप्रम्) सिंह के समान मुख वाले (हर्यन्तम्) कामना योग्य (त्वा) तुझ को (रथे) रथ पर (आ वहन्तु) लावें । (यथा) जिससे (सधमादे) उत्सव के बीच (दशोणिम्) दस दिशाओं में क्लेश मिटाने वाले (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] को (हर्यन्) चाहता हुआ तू (प्रतिभृतस्य) प्रत्यक्ष रक्खे हुए (मध्वः) ज्ञान का (पिब) पान करे ॥२॥

भावार्थः—राजा सभा के बीच प्रजा की प्रार्थनाओं को सुन कर उनके दुःखों को मिटाकर राज्य की उन्नति का विचार करे ॥२॥

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ वृषस्व ॥३॥

भाषार्थः—(हरिवः) हे उत्तम मनुष्यों वाले ! [राजन्] तू ने (पूर्वेषाम्) पहिले महात्माओं के (सुतानाम्) निचोड़ों [सिद्धान्तों] का (अपाः) पान किया है, (अथो) इसी लिये (इदम्) यह (सवनम्) ऐश्वर्य (केवलम्) केवल (ते) तेरा है । (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (मधुमन्तम्) ज्ञानयुक्त (सोमम्) ऐश्वर्य को (ममद्धि) तृप्त कर और (वृषन्) हे बलवान् ! (सत्रा) सत्य रीति से (जठरे) प्रसिद्ध हुए जगत् के बीच (आ) सब ओर से (वृषस्व) बरसा ॥३॥

भावार्थः—राजा पूर्व महात्माओं के सिद्धान्तों पर चल कर ऐश्वर्य प्राप्त करे और उसका सत् प्रयोग करके संसार को सुख देवे ॥३॥

सूक्तम् ॥३३॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ त्रिष्टुप्; २, ३ विराडार्षी त्रिष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

अप्सु धूतस्य हरिवः पिवेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥१॥

भाषार्थः—(हरिवः) हे श्रेष्ठ मनुष्यों वाले ! (अप्सु) प्रजाओं के बीच (नृभिः) नरों [नेताओं] करके (धूतस्य) शोधे हुए। (सुतस्य) निचोड़ [सिद्धान्त] का (इह यहां पर (पिब) पान कर और (जठरम्) प्रसिद्ध हुए जगत् को (पृणस्व) सन्तुष्ट कर। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (अद्रयः) मेघों [के समान उपकारी पुरुषों] ने (तुभ्यम्) तेरे लिये (यम्) जिस [आनन्द] को (मिमिक्षुः) सींचना चाहा है, (उक्थवाहः) हे वचनों पर चलने वाले ! [सत्यवादी] (तेभिः) उन [पुरुषों] के साथ (मदम्) उस आनन्द को (वर्धस्व) तू बढ़ा ॥१॥

भावार्थः—जो राजा विद्वानों के संशोधित सिद्धान्तों को मानकर प्रजा को प्रसन्न रखता है, प्रजा भी उसे आनन्द देती है ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१०। १०४। २—४ ॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्णं इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥२॥

भाषार्थः—(हर्यश्व) हे वायु समान फुरतीले घोड़ों वाले ! (वृष्णे तुभ्यम्) तुभ महाबली को (प्रयै) आगे चलने के लिये (सुतस्य) निचोड़ [सिद्धान्त] का (उग्राम्) तीव्र, (सत्यम्) सत्यगुण वाला (पीतिम्) घूंट (प्र इयर्मि) आगे रखता हूं। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले विद्वान्] (धेनाभिः) वेदवाणियों द्वारा (इह) यहां पर (विश्वाभिः) समस्त (धीभिः) बुद्धियों से और (शच्या) कर्म से (गृणानः) उपदेश करता हुआ तू (मादयस्व) आनन्द दे ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य फुरतीली सेना वाला ज्ञानवान् और बलवान् हो, सब लोग आदर करके उस बुद्धिमान् कर्मकुशल की वैदिक शिक्षाओं से आनन्द पावें ॥२॥

यह मन्त्र ऊपर आ चुका है—अ०। २०। २५। ७ ॥

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिजं ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥३॥

भाषार्थः—(शचीवः) हे बुद्धिमान् (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तव) तेरी (ऊती) रक्षा से और (वीर्येण) वीरता से (प्रजावत्) उत्तम प्रजा वाले (वयः) जीवन को (दधानाः) धारण करते हुए, (उशिजः) प्रीति युक्त बुद्धिमान् (ऋतज्ञाः) सत्य शास्त्र जानने वाले (मनुषः) मनन शील मनुष्य (दुरोणे) घरके बीच (गृणन्तः) गुण बखानते हुए (सधमाद्यासः) मिलकर आनन्द मनाते हुए (तस्थुः) ठहरते हैं ।।३।।

भावार्थः—बुद्धिमान् जितेन्द्रिय प्रधान पुरुष अपनी नीतिकुशलता से ऐसा प्रबन्ध करे कि सब मनुष्य विद्वान् होकर उत्तम सन्तान और भृत्य आदि सहित आनन्द से रहें ।।३।।

।। इति तृतीयोऽनुवाकः ।।

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ।।

सूक्तम् ।।३४।।

१—१८ ।। इन्द्रो देवता ।। १—४, १३—१५, १८ त्रिष्टुप्; ५; १२ आर्षी त्रिष्टुप्; ६—८, ११, १७ निचृत् त्रिष्टुप्; ९ भुरिक् त्रिष्टुप्, १० विराडार्षी त्रिष्टुप्; १६ आर्षी पङ्क्तिः ।।

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ।।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ।।१।।

भाषार्थः—(जातः एव) प्रकट होते ही (यः) जिस (प्रथमः) पहिले (मनस्वान्) मननशील (देवः) प्रकाशमान [परमेश्वर] ने (क्रतुना) अपनी बुद्धि से (देवान्) चलते हुए [पृथिवी आदि लोकों] को (पर्यभूषत्) सब ओर सजाया है। (यस्य) जिसके (शुष्मात्) बल से (नृम्णस्य) मनुष्यों को झुकाने वाले सामर्थ्य की (मह्ना) महिमा के कारण (रोदसी) दोनों आकाश और भूमि (अभ्यसेताम्) भय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्राप्त हुए हैं, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥१॥

भावार्थः—जिस अनादि पुरुष ने अपने अनन्त ज्ञान और सामर्थ्य से पृथिवी आदि लोकों को रचकर नियम में रक्खा है, उस परमेश्वर के गुण विचार कर मनुष्य अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥१॥

यह सूक्त मन्त्र १२, १६ और १७ को छोड़ कर ऋग्वेद में है—२। १२। १—१५ ॥

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (व्यथमानाम्) चलती हुई (पृथिवीम्) पृथिवी को (अदृंहत्) दृढ़ किया है, (यः) जिस ने (प्रकुपितान्) कोप करते हुए (पर्वतान्) मेघों को (अरम्णात्) ठहराया है। (यः) जिस ने (वरीयः) अधिक चौड़े (अन्तरिक्षम्) आकाश को (विममे) नाप डाला है, (यः) जिस ने (द्याम्) सूर्य को (अस्तभ्नात्) खम्भे समान खड़ा किया है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥२॥

भावार्थः—जो परमात्मा सूर्य के आकर्षण से पृथिवी को ठहराता, किरणों से खींचे हुए पानी को बरसाता, और आकाश के बीच सूर्य को खम्भे के समान बनाकर अनेक लोगों को उसके आकर्षण में सब ओर घुमाता है, उस परमेश्वर की उपासना से आत्मबल बढ़ाओ ॥२॥

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (अहिम्) सब ओर चलने वाले मेघ में (हत्वा) व्यापकर (सप्त) सात (सिन्धून्) बहते हुए समुद्रों [अर्थात् भूर्भुवः आदि सात अवस्था वाले सब लोकों] को (अरिणात्) चलाया है, (वलस्य) बल [सामर्थ्य] के (अपधा) हर्ष से धारण करने वाले (यः) जिस ने (गाः) पृथिवियों को (उदाजत्) उत्तमता से चलाया है। (समत्सु) संग्रामों के बीच (संवृक्) शत्रुओं के रोकने वाले (यः) जिसने (अश्मनोः) दो व्यापक मेघों वा पत्थरों के (अन्तः) बीच (अग्निम्) अग्नि [बिजुली] को (जजान) उत्पन्न किया है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—भूर्, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, सात लोक संसार की अवस्था विशेष हैं। परमेश्वर मेघ आदि पदार्थों और सात अवस्था वाले समस्त संसार में व्याप कर पृथिवी आदि लोकों को आकर्षण में रखकर, मेघ पाषाण आदि सब वस्तुओं में बिजुली धारण करके परमाणुओं के संयोग वियोग से अनन्त रचना करता है, उस को जानकर मनुष्य वृद्धि करें ॥३॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अथर्व—२०। ९१। १२॥

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥

भाषार्थः—(येन) जिस [परमेश्वर] करके (इमा) यह (विश्वा) सब (च्यवना) चलते हुए लोक (कृतानि) बनाये गये हैं, (यः) जिसने (दासम्) देने योग्य (वर्णम्) रूप को (गुहा) गुहा [गुप्त अवस्था] में (अधरम्) नीचे (अकः) किया है। (यः) जो, (इव) जैसे (श्वघ्नी) वृद्धि पाने वाला (जिगीवान्) विजयी पुरुष (लक्षम्) लक्ष्य [जीते पदार्थ] को, (अर्यः) वैरी के (पुष्टानि) बढ़े हुए धनों को (आदद्) ले लेता है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥४॥

भावार्थः—जो सब घूमते हुए लोकों को बनाता है और पदार्थों के रूपों को बीज के भीतर छिपा रखता है और जो दुष्टों को दण्ड देता है, मनुष्य उस परमेश्वर के गुणों को ग्रहण करें ॥४॥

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥

भाषार्थः (यम्) जिस (घोरम्) भयानक को [कोई कोई] (सः) वह (स्म) निश्चय करके (कुह) कहां है, (इति) ऐसा (पृच्छन्ति) पूछते हैं, (उत) और [कोई कोई] (एनम्) इसको, (एषः) वह (अस्ति ईम्) है ही (न) नहीं, (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं। (सः) वह (विजः) विवेकी (इव) ही (अर्यः) वैरी के (पुष्टीः) बढ़े हुए धनों को (आ) सब ओर से (मिनाति) नष्ट करता है, (अस्मै) उसके लिये तुम (श्रत्) सत्य [श्रद्धा] (धत्त) धारण करो, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस परमात्मा की विवेचना मनुष्य अनेक प्रकार करते हैं, और जो सब का आधार है, वही परमेश्वर सबका उपास्य देव है ॥५॥

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (रध्रस्य) धनी का, और (यः) जो (कृशस्य) दुर्बल का, (यः) जो (नाधमानस्य) ऐश्वर्य वाले, (कीरेः) गुणों के व्याख्याता (ब्रह्मणः) ब्रह्मा [ब्रह्मज्ञानी] का (चोदिता) आगे बढ़ाने वाला है । (यः) जो (युक्तग्राव्णः) योगाभ्यासी पण्डित का और (सुतसोमस्य) मोक्ष पा लेने वाले का (सुशिप्रः) बड़ा सेवनीय (अविता) रक्षक है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य उस परमात्मा की उपासना से सदा उत्तम कर्म करें, जो सब को श्रेष्ठ कर्म द्वारा उन्नति के लिये आज्ञा देता है ॥६॥

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७॥

भाषार्थः—(यस्य) जिसकी (प्रदिशि) बड़ी आज्ञा में (अश्वासः) घोड़े, (यस्य) जिसकी [आज्ञा में] (गावः) गाय बैल आदि पशु, (यस्य) जिसकी [आज्ञा में] (ग्रामाः) गाम [मनुष्य समूह] और (यस्य) जिसकी [आज्ञा में] (विश्वे) सब (रथासः) विहार कराने वाले पदार्थ हैं । (यः) जिस ने (सूर्यम्) सूर्य को, (यः) जिस ने (उषसम्) प्रभात वेला को (जजान) उत्पन्न किया है, और (यः) जो (अपाम्) जलों का (नेता) पहुंचाने वाला है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥७॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से सब उपकारी जीव और पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, उस जगदीश्वर की उपासना करके मनुष्य उपकार करें ॥७॥

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८॥

भाषार्थः—(यम्) जिसको (संयती) आपस में जुटी हुई (क्रन्दसी) ललकारती हुई दो सेनायें (विह्वयेते) विविध प्रकार पुकारती हैं, (परे) ऊंचे [जीतने वाले]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (अवरे) नीचे [हारने वाले] (उभयाः) दोनों पक्ष (अमित्राः) शत्रुदल [पुकारते हैं]। और [जिसको] (समानम्) एक (चित्) ही (रथम्) रथ में (आतस्थिवांसा) चढ़े हुए दोनों [योधा और सारथी] (नाना) बहुत प्रकार से (हवेते) बुलाते हैं, (जनासः) हे मनुष्यो! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥८॥

भावार्थः—जिस इष्टदेव परमात्मा का स्मरण करके सब मनुष्य उत्साही होकर आगे बढ़ते हैं, उसकी उपासना सबको करनी चाहिए ॥८॥

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९॥

भाषार्थः—(यस्मात् ऋते) जिस के बिना (जनासः) मनुष्य (न) नहीं (विजयन्ते) विजय पाते हैं, (यम्) जिस को (युध्यमानाः) लड़ते हुए लोग (अवसे) रक्षा के लिये (हवन्ते) पुकारते हैं। (यः) जो (विश्वस्य) संसार का (प्रतिमानम्) प्रत्यक्ष नापने का साधन और (यः) जो (अच्युतच्युत्) नहीं हिलने वालों का हिलाने वाला (बभूव) है, (जनासः) हे मनुष्यो! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥९॥

भावार्थः—जिस जगदीश्वर की उपासना से ही मनुष्य युद्ध में जय पाते हैं, जो सब संसार को ठीक ठीक जानता और जो अत्यन्त से अत्यन्त दृढ़ स्वभाव वालों को वश में रखता है, उसकी उपासना सब करें ॥९॥

यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानांछर्वा जघान।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥

भाषार्थः—(यः) जिस ने (महि) बड़े (एनः) पाप को (दधानान्) धारण करने वाले (शश्वतः) बहुत से (अमन्यमानान्) अज्ञानियों को (शर्वा) शासनरूपी वज्र से (जघान) मारा है। (यः) जो (शर्धते) अपमान करने वाले को (शृध्याम्) उत्साह (न) नहीं (अनुददाति) कभी देता है, और (यः) जो (दस्योः) डाकू का (हन्ता) मारने वाला है, (जनासः) हे मनुष्यो! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥१०॥

भावार्थः—जो परमात्मा पापियों, निन्दकों और डाकुओं को विना दण्ड दिये नहीं छोड़ता, अर्थात् दण्डनीय को दण्ड ही देता है, उसी को न्यायकारी जगदीश्वर जानो ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥

भाषार्थः—(यः) जिस ने (पर्वतेषु) बादलों में (क्षियन्तम्) रहते हुए (शम्बरम्) चलने वाले पानी को (चत्वारिंश्याम्) भिक्षा नाश करने वाले (शरदि) वर्ष में (अन्वविन्दत्) निरन्तर पहुंचाया है। (यः) जिसने (ओजायमानम्) अत्यन्त बल करते हुए, (दानुम्) छेदने वाले, (शयानम्) पड़े हुए (अहिम्) सब ओर से नाश करने वाले [विघ्न] को (जघान) नष्ट किया है, (जनासः) हे मनुष्यो! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥११॥

भावार्थः—जो परमात्मा सूखा के समय अकाल में मेह बरसाकर अन्न उत्पन्न करता और क्लेशों का नाश करके शारीरिक और आत्मिक सुख पहुंचाता है, उसी की उपासना किया करो ॥११॥

[सूचना—मन्त्र १२, १६, १७ ऋग्वेद आदि अन्य वेदों में नहीं हैं, और इन का पदपाठ गवर्नमेन्ट बुकडिपो बम्बई के पुस्तक में भी नहीं दिया। हम स्वामी विश्वेश्वरानन्द नित्यानन्द कृत पदसूची से संग्रह कर के स्वरों को यथासम्भव शोधकर यहां लिखते हैं, बुद्धिमान् जन विचार लेवें]

यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य ।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्च्छत् स जनास इन्द्रः ॥१२॥

भाषार्थः—(यः) जिसने (शम्बरम्) मेघ [के समान उपकारी पुरुष] को (कसीभिः) ज्ञानों के साथ (परि) सब प्रकार (अतरत्) तराया है, (यः) जिस (अचारु) अचालु [निश्चल] ने (कास्ना) प्रकाश के साथ (सुतस्य) तत्त्व का (अपिबत्) पान कराया है। और [जिसने] (यस्मिन्) जिस (गिरौ अन्तः) तत्त्व ज्ञान के भीतर (बहुम्) बहुत से (यजमानम्) यज्ञ करने वाले (जनम्) लोगों को (आमूर्छत्) सब प्रकार बढ़ाया है, (जनासः) हे मनुष्यो (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा उपकारी ज्ञानी पुरुषों को दुःख से पार करता और वैदिक तत्त्वों पर चलने वालों को बढ़ाता है, हम उस परमेश्वर की भक्ति करें ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः सप्तरंश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१३॥

भाषार्थः (सप्तरश्मिः) सात प्रकार की [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र] किरणों वाले सूर्य के समान (यः) जिस (वृषभः) सुख की बरसा करने वाले, (तुविष्मान्) बलवान् ने (सप्त) सात (सिन्धून्) बहते हुए समुद्रों [के समान भूर् आदि सात लोकों] को (सर्तवे) चलने के लिये (अवासृजत्) विमुक्त किया है। और (यः) जिस (वज्रबाहुः) वज्र समान भुजाओं वाले [दृढ़ शरीर वाले वीर सदृश] ने (द्याम्) आकाश को (आरोहन्तम्) चढ़ते हुए (रौहिणम्) उपजाने वाले बादल को (अस्फुरत्) घुमड़ाया है [घेरा करके चलाया है], (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥१३॥

भावार्थः भूर् आदि लोकों के लिये मन्त्र ३ का भावार्थ देखो। जैसे सूर्य अपनी परिधि के लोकों को आकर्षण में रखकर ठहराता है वैसे ही परमेश्वर सूर्य आदि लोकों को नियम में रखकर चलाता है, और अनावृष्टि हटाकर मेह बरसा कर अन्न आदि उत्पन्न करता है, हे मनुष्यो ! उस परमेश्वर की आज्ञा में चलो ॥१३॥

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्मांच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१४॥

भाषार्थः—(द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि (चित्) भी (अस्मै) इस [परमेश्वर] के लिये (नमेते) झुकते हैं, (अस्य) इस के (शुष्मात्) बल से (चित्) ही (पर्वताः) मेघ (भयन्ते) डरते हैं। (यः) जो (निचितः) भर पूर, (सोमपाः) ऐश्वर्य का रक्षक, (वज्रबाहुः) वज्रसमान भुजाओं वाला [दृढ़ शरीर वाले वीर सदृश] है और (यः) जो (वज्रहस्तः) वज्र हाथ में रखने वाले [दृढ़ हथियार वाले शूर सदृश] है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥१४॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के नियम में सब बड़े बड़े और छोटे छोटे पदार्थ रहते हैं, वही महाबली हमारे ऐश्वर्य का रक्षक है, उसकी शरण में रहकर हम अपना कर्तव्य करें ॥१४॥

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (सुन्वन्तम्) तत्त्व निचोड़ते हुए को, (यः) जो (पचन्तम्) पक्के करते हुए को, (यः) जो (शंसन्तम्) गुण बखानते हुए को, (यः) जो (शशमानम्) उद्योग करते हुए को (ऊती) अपनी रक्षा से (अवति) पालता है। (यस्य) जिसका (ब्रह्म) वेद, (यस्य) जिसका (सोमः) मोक्ष और (यस्य) जिसका (इदम्) यह (राधः) धन (वर्धनम्) वृद्धिरूप है, (जनासः) हे मनुष्यो! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥१५॥

भावार्थः—जो परमात्मा वेद द्वारा सब मनुष्यों को तत्त्वदर्शी बनने बनाने का उपदेश करता है, और संसार के सब पदार्थ जिसका ऐश्वर्य प्रकाशित करते हैं, उसका ध्यान करके सब लोग उन्नति करें ॥१५॥

जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥१६॥

[सूचना—पद पाठ के लिये सूचना मन्त्र १२ देखो।]

भाषार्थः—(यः) जो (जातः) प्रकट होकर (पित्रोः) [हमारे] माता पिता के (उपस्थे) समीप में (वि अख्यत्) व्याख्यात हुआ है, और (परस्य) [अपने से] दूसरे (जनितुः) जनक और (भुवः) जननी को (न) नहीं (वेद) जानता है, और (देवानाम्) विद्वानों का (स्तविष्यमाणः) स्तुति किया गया [जो] (नो) अभी ही (अस्मत्) हमारे (व्रता) कर्मों को [जानता है], (जनासः) हे मनुष्यो! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥१६॥

भावार्थः—जो अनादि होने से हमारे पूर्वजों का पूर्वज है, और अजन्मा होने से जिसके माता पिता नहीं हैं, और सर्वज्ञ होने से सब के कर्मों का जानता है, हम उस जगदीश्वर की उपासना करके अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥१६॥

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥१७॥

[सूचना—पद पाठ के लिये सूचना मन्त्र १२ देखो।]

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (सोमकामः) ऐश्वर्य चाहने वाला, (हर्यश्व) मनुष्यों में व्यापक, (सूरिः) प्रेरक, विद्वान् है, (यस्मात्) जिससे (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (रेजन्ते) थरथराते हैं। (यः) जो (शम्बरम्) मेघ में (च) और (यः) जो (शुष्णम्) सूर्य में (जघान) व्यापा है, (यः) जो (एकवीरः) एकवीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अकेला शूर] है, (जनास.) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥१७॥

भावार्थः- सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमात्मा परम ऐश्वर्यवान् होकर सब को ऐश्वर्यवान् बनाता है और जो एकवीर होकर सब संसार को नियम में रखता है, उस इष्ट देव की महिमा विचार कर हम ऐश्वर्य बढ़ावें ॥१७॥

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।

वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१८॥

भाषार्थः—(यः) जो तू (दुध्रः) पूर्ण होकर (चित्) ही (सुन्वते) तत्त्व निचोड़ते हुए और (पचते) परिपक्व करते हुए के लिये (वाजम्) अन्न [वा बल] (आ दर्दर्षि) फाड़ कर देता है, (सः) सो तू (किल) निश्चय करके (सत्यः) सच्चा (असि) है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] (वयम्) हम (ते) तेरे (प्रियासः) प्यारे हो कर (सुवीरासः) सुन्दर वीरों वाले (विश्वह) सब दिनों (विदथम्) ज्ञान का (आ) सब ओर (वदेम) उपदेश करें ॥१८॥

भावार्थः—परिपूर्ण सत्यस्वरूप परमात्मा तत्त्वदर्शी परिपक्व ज्ञानियों को धनवान् और बलवान् करता है, उसी के गुणों को विचार कर हम उत्तम वीरों वाले होवें ॥१८॥

सूक्तम् ॥३५॥

१—१६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, १६ विराडार्षी त्रिष्टुप्; २, ७, ९ निचृत् त्रिष्टुप्; ३, ५, १५ विराट् पङ्क्तिः, ४, १० पङ्क्तिः, ६, १२ आर्षी पङ्क्तिः, ८, ११ भुरिक् पङ्क्तिः; १३ निचृदार्षी पङ्क्तिः, १४ विराट् त्रिष्टुप् ॥

सभापतिलक्षणोपदेशः—सभापति के लक्षणों का उपदेश ॥

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।

ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥१॥

भाषार्थः—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिये (इत्) ही (उ) विचार-पूर्वक (तवसे) बल के निमित्त, (तुराय) फुरतीले, (माहिनाय) पूजनीय, (ऋचीषमाय) स्तुति के समान गुण वाले, (अध्रिगवे) बेरोक गति वाले, (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले सभापति] के लिये (स्तोमम्) स्तुति को, (ओहम्) पूरे विचार को और (राततमा) अत्यन्त देने योग्य (ब्रह्माणि) धनों को (प्रयः न) तृप्ति करने वाले अन्न के समान (प्र हर्मि) मैं आगे लाता हूं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पूजनीय, उत्तम गुण वाले, अति बुद्धिमान् राजा आदि प्रधान पुरुषों का धन आदि से सत्कार करें और प्रधान लोग भी इसी प्रकार उनका आदर करें ॥१॥

यह सूक्त—ऋग्वेद में है—१। ६१। १—१६॥

अस्मा इदु प्रयं इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥२॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (अस्मै) इस [संसार के हित के लिये] (इत्) ही (उ) विचार पूर्वक, (प्रयः इव) तृप्ति करने वाले अन्न के समान (आङ्गूषम्) प्राप्तियोग्य स्तुति को (प्र यंसि) तू देता है और (बाधे) बाधा रोकने के लिये (सुवृक्ति) सुन्दर ग्रहण करने योग्य कर्म को (भरामि) मैं पुष्ट करता हूं। (प्रत्नाय) प्राचीन (पत्ये) स्वामी, (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले सभापति] के लिये (हृदा) हृदय से, (मनसा) मनन से और (मनीषा) बुद्धि से (धियः) कर्मों को (मर्जयन्त) मनुष्य शुद्ध करें ॥२॥

भावार्थः—सब मनुष्य मिलकर परस्पर हित के लिये सुपरीक्षित विद्वान् उपकारी पुरुष को सभापति बनाकर उसके लिये प्रिय आचरण करें ॥२॥

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥३॥

भाषार्थः—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिये (इत्) ही (उ) विचार-पूर्वक (त्यम्) उस (उपमम्) उपमा योग्य, (स्वर्षाम्) सुख देने वाली, (आङ्गूषम्) प्राप्ति योग्य स्तुति को (आस्येन) [अपने] मुख से (मतीनाम्) बुद्धिमानों में (अच्छोक्तिभिः) अच्छे वचनों वाली (सुवृक्तिभिः) सुन्दर ग्रहण योग्य क्रियाओं के साथ (मंहिष्ठम्) उस अत्यन्त उदार, (सूरिम्) प्रेरक विद्वान् के (वावृधध्यै) बढ़ाने के लिये (भरामि) मैं धारण करता हूं ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने शुभ लक्षणों से सब में श्रेष्ठ गुणी विद्वान् हो, उस को आदरपूर्वक सभापति बनावें ॥३॥

अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिये (इव) ही (उ) विचार-पूर्वक (गिर्वाहसे) विद्याओं के पहुंचाने वाले, (मेधिराय) बुद्धिमान् (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले सभापति] के लिये (सुवृक्ति) सुन्दर ग्रहण करने योग्य क्रियाओं के साथ (विश्वमिन्वम्) सब में फैलने वाले (स्तोमम्) स्तुति योग्य व्यवहार (च) और (गिरः) वेदवाणियों को (सम्) यथावत् (हिनोमि) मैं बढ़ाता हूं, (रथम्) रथ को (तष्टा इव) जैसे विश्वकर्मा [बड़ा खाती बढ़ई] (न) अब (तत्सिनाय) उस [रथ] से अन्न के लिये बढ़ाता है ॥४॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् शिल्पी कलायन्त्र लगाकर सुन्दर रथ बनाकर उस से अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करता कराता है। वैसे ही मनुष्य बुद्धिमान् पुरुष से आदर के साथ उत्तम गुण ग्रहण करके आनन्द पावे ॥४॥

अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥५॥

भाषार्थः—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिये (इव) ही (उ) विचार-पूर्वक (इन्द्राय) ऐश्वर्य के अर्थ (श्रवस्या) कीर्ति की इच्छा से (जुह्वा) देने लेने वाली क्रिया के साथ (सप्तिम् इव) जैसे फुरतीले घोड़े को [वैसे] (अर्कम्) पूजनीय (वीरम्) वीर, (दानौकसम्) दान के घर [बड़े दानी], (गूर्तश्रवसम्) उद्यम युक्त यश वाले, (पुराम्) शत्रुओं के गढ़ों के (दर्माणम्) ढाने वाले [सभापति] को (वन्दध्यै) सत्कार करने के लिये (सम्) अच्छे प्रकार (अञ्जे) मैं चाहता हूं ॥५॥

भावार्थः—जैसे फुरतीले घोड़े को चढ़ने और रथ आदि ले चलने के लिये चाहते हैं, वैसे ही मनुष्य शुभ गुण वाले महा कीर्तिमान् पुरुषार्थी जन को संसार के हित के लिये आदर से चाहते हैं ॥५॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६॥

भाषार्थः—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिये (इव) ही (उ) विचार-पूर्वक (त्वष्टा) सूक्ष्म करने वाले [सूक्ष्मदर्शी विश्वकर्मा सभापति] ने (स्वपस्तमम्) अत्यन्त सुन्दर रीति से काम सिद्ध करने वाला, (स्वर्यम्) सुख देने वाला (वज्रम्) वज्र [बिजुली आदि शस्त्र] (रणाय) रण जीतने को (तक्षत्) तीक्ष्ण किया है। (तुजता येन) जिस काटने वाले [वज्र] से (वृत्रस्य) वैरी के (मर्म) मर्म [जीवन-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान] को (चित्) ही (तुजन्) छेद कर (ईशानः) ऐश्वर्यवान्, (कियेधाः) कितने [अर्थात् बड़े बल] के धारण करने वाले [उस सभापति] ने (विदत्) पाया है ॥६॥

भावार्थः—सभापति राजा तीक्ष्ण तीक्ष्ण अस्त्र शस्त्रों से शत्रुओं को दण्ड देकर प्रजा को आनन्द देवे ॥६॥

इस मन्त्र का मिलान करो—ऋ० २।५।६॥

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवां चार्वन्ना ।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [जगत्] के (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक (महः) बड़े (मातुः) निर्माता [बनाने वाले परमेश्वर] के (सवनेषु) ऐश्वर्यों में (सद्यः) तुरन्त (चारु) सुन्दर (पितुम्) पीने योग्य रस को और (अन्ना) अन्नों को (पपिवान्) खाने पीने वाला, (पचतम्) परिपक्व [वैरी के अन्न वा धन] को (मुषायत्) लूटता हुआ, (विष्णुः) विद्याओं में व्यापक, (सहीयान्) विजयी, (अद्रिम्) वज्र का (अस्ता) चलाने वाला [सेनापति] (वराहम्) वराह [सूअर के समान अच्छे पदार्थ नाश करने वाले शत्रु] को (तिरः) आर पार (विध्यत्) छेदता है ॥७॥

भावार्थः जो परमेश्वर के बनाये ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों का ठीक ठीक उपयोग कर के जङ्गली सूअर के समान उपद्रवी शत्रुओं का नाश करे, वही पुरुष सभापति सेनापति होवे ॥७॥

अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥८॥

भाषार्थः—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिये (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक (देवपत्नीः) विद्वानों से पालने योग्य (ग्नाः) वेदवाणियों ने (चित्) भी (अहिहत्ये) सब ओर से नाश करने वाले [विघ्न] के मिटने पर (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] के लिये (अर्कम्) पूजनीय व्यवहार को (ऊवुः) बुना है [फैलाया है]। उस [परमात्मा] ने (उर्वी) चौड़े (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (परि) सब ओर से (जभ्रे) ग्रहण किया है, (ते) वे दोनों (अस्य) इस [परमात्मा] की (महिमानम्) महिमा को (न) नहीं (परि अस्तः) पहुँच सकते हैं ॥८॥

भावार्थः—जैसे सब से बड़े परमात्मा ने प्रलय के अन्धकार आदि क्लेश मिटाकर सूर्य पृथिवी आदि लोक रच कर वेदद्वारा अपनी महिमा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैलायी है, वैसे ही सभापति आदि पुरुष कठिनाइयों को झेलकर सब को आनन्द देवें ॥८॥

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥९॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [परमेश्वर] का (इत्) ही (महित्वम्) महत्त्व (एव) निश्चय करके (दिवः) सूर्य से, (पृथिव्याः) पृथिवी से और (अन्तरिक्षात्) आकाश से (परि) सब प्रकार (प्र रिरिचे) अधिक बड़ा है। (स्वराट्) स्वयं राजा, (विश्वगूर्तः) सब को उद्यम में लगाने वाला, (स्वरिः) बड़ा प्रेरक, (अमत्रः) ज्ञानवान् (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमात्मा] (दमे) शासन के बीच (रणाय) रण मिटाने के लिये (आ ववक्षे) क्रोधित हुआ है ॥९॥

भावार्थः—जैसे परमात्मा सब से बड़ा होकर सूर्य आदि सब बड़ों से बड़ों को शासन में रखता है, वैसे ही सब से अधिक गुणी पुरुष प्रधान होकर प्रजा का पालन करे ॥९॥

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥१०॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] ने (अस्य) इस [परमेश्वर] के (इत् एव) ही (शवसा) बल से (शुषन्तम्) सुखाने वाले (वृत्रम्) वैरी को (वज्रेण) वज्र [बिजुली आदि शस्त्र] द्वारा (वि वृश्चत्) छेदडाला। और (श्रवः अभि) कीर्ति के निमित्त (दावने) सुख दान के लिये (सचेताः) चित्त वाला होकर (व्राणाः) घिरी हुई (अवनीः) रक्षा योग्य भूमियों को (गाः न) गौओं के समान (अमुञ्चत्) छुड़ाया ॥१०॥

भावार्थः—राजा परमेश्वर का आश्रय लेकर दुःखदायी शत्रुओं का नाश करके प्रजा को कष्ट से छुड़ाकर और कीर्ति पाकर सुख का दान करे, जैसे ग्वाला गौओं को बन्धन से खोलकर सुखी करके वन में चराता है ॥१०॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥११॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [सभापति] के (इत्) ही (उ) निश्चय करके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्वेषसा) तेज [पराक्रम] से (सिन्धवः) नदियां [नाले बरहा आदि] (रन्त) रमे हैं [बहे हैं], (यत्) क्योंकि उस ने (वज्रेण) वज्र [बिजुली फड़ुआ आदि शस्त्रों] से (सीम्) बन्ध [बाँध आदि] को (परि) सब ओर से (यच्छत्) बाँधा है। (दाशुषे) दानी मनुष्य को (ईशानकृत्) ऐश्वर्यवान् करने वाले, (दशस्यन्) कवच [रक्षा-साधन] के समान काम करते हुए, (तुर्वणिः) शीघ्रता सेवन करने वाले [सभाध्यक्ष] ने (तुर्वीतये) शीघ्रता करने वालों के चलने के लिये (गाधम्) उथले स्थान [घाटि आदि] को (कः) बनाया है ॥११॥

भावार्थः—प्रधान राजा को चाहिये कि पहाड़ों से बड़े बड़े नाले काट कर पृथिवी पर जल लाकर खेती आदि करावे, और यात्रियों के लिये सेतु [पुल] घाट आदि बनावे ॥११॥

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥१२॥

भाषार्थः—(अस्मै) इस [संसार] के निमित्त (इत्) ही (उ) विचार पूर्वक (तूतुजानः) शीघ्रता करता हुआ, (ईशानः) ऐश्वर्यवान्, (कियेधाः) कितने [अर्थात् बड़े बल] का धारण करने वाला तू (वृत्राय) वैरी के लिये (वज्रम्) वज्र [बिजुली आदि शस्त्र] को (प्र) अच्छे प्रकार (भर) धारण कर। और (तिरश्चा) तिरछी चाल के साथ (अर्णांसि) अपनी चालों को (इष्यन्) चलता हुआ तू (अपाम्) प्रजाओं के (चरध्यै) चलने के लिये (पर्व) [वैरी के] जोड़ों को (वि रद) चीर डाल, (गोः न) जैसे भूमि के [जोड़ों को किसान चीरते हैं] ॥१२॥

भावार्थः—जैसे किसान पृथिवी को जोतकर, घास आदि काट कर एकसा करके अन्न उत्पन्न कर सुख देते हैं, वैसे ही सभाध्यक्ष राजा शत्रुओं को छिन्न भिन्न कर के प्रजा को सुखी करे ॥१२॥

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥१३॥

भाषार्थः—(अस्य) उस (इत्) ही (उ) विचार पूर्वक (तुरस्य) शीघ्रता करने वाले [सभापति] के (पूर्व्याणि) पहिले किये हुए (कर्माणि) कामों को (प्र) अच्छे प्रकार (ब्रूहि) तू कह, (उक्थैः) कहने योग्य वचनों से (नव्यः) स्तुति योग्य होकर, (युधे) युद्ध के लिये (आयुधानि) हथियारों को (इष्णानः) वार वार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलाता हुआ और (ऋधायमाणः) बढ़ता हुआ [वे रोक चलता हुआ] (यत्) जो [सभापति] (शत्रून्) वैरियों को (निरिणाति) मारता जाता है ॥१३॥

भावार्थः—जो सभाध्यक्ष सेनापति शस्त्र अस्त्र विद्या में चतुर और विजयी शूर होवे, विद्वान् लोग उसके विद्या, विनय, वीरता आदि गुणों की बड़ाई करके उसका मान और उत्साह बढ़ावे ॥१३॥

अस्येदु भिया गिरयश्च दृह्ळा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥१४॥

भाषार्थः—(अस्य) इस (जनुषः) उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] के (इत्) ही (उ) निश्चय करके (भिया) भय से (गिरयः) पहाड़ (च) भी (दृह्ळाः) दृढ़ हैं, (च) और (द्यावा भूम) सूर्य और भूमि (तुजेते) बलवान् हैं। (वेनस्य) प्यारे [वा बुद्धिमान् परमेश्वर] के (ओणिम्) दुःख मिटाने को (जोगुवानः) वार वार कहता हुआ (नोधाः) नेताओं [वा स्तुतियों] का धारण करने वाला [सभापति] (सद्यः) तुरन्त (वीर्याय) पराक्रम सिद्ध करने के लिये (उपो) समीप ही (भुवत्) होवे ॥१४॥

भावार्थः—जो परमात्मा अपने अनन्त सामर्थ्य से सब लोकों को नियमपूर्वक अपने अपने काम के लिये समर्थ बनाता है, सभाध्यक्ष आदि उस जगदीश्वर का आश्रय लेकर अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥१४॥

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥१५॥

भाषार्थः—(अस्मै) उस [मनुष्य] को (इत्) ही (उ) निश्चय कर के (त्यत्) वह [वस्तु] (अनु) निरन्तर (दायि) दी गयी है, (यत्) जो [वस्तु] (एषाम् इन [मनुष्यों] के बीच (एकः) अकेले (भूरेः) बहुत [राज्य] के (ईशानः) स्वामी ने (वव्ने) मांगी है। (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमेश्वर] ने (सौवश्व्ये) फुर्तीले घोड़ों वाले संग्राम के बीच (सूर्ये) सूर्य के प्रकाश में [जैसे स्पष्ट रीति से] (पस्पृधानम्) झगड़ते हुए (सुष्विम्) ऐश्वर्यवान् (एतशम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी सभापति] को (प्र) अच्छे प्रकार (आवत्) बचाया है ॥१५॥

भावार्थः—जो आत्मविश्वासी मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण से दुष्टों को जीतने में प्रयत्न करता है, परमात्मा अवश्य उसकी रक्षा करता है ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१६॥

भाषार्थः—(हारियोजन) हे घोड़ों के जोतने वाले ! (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (ते) तेरे लिये (एव) ही (गोतमासः) अत्यन्त ज्ञानी [ऋषियों] ने (सुवृक्ति, अच्छे प्रकार ग्रहण करने योग्य (ब्रह्माणि) वेदज्ञानों को (अक्रन्) किया है [बताया है] । (धियावसुः) बुद्धि और कर्म के साथ रहने वाला तू (एषु) इन [ज्ञानों] में (विश्वपेशसम्) सब रूपों वाली (धियम्) निश्चल बुद्धि को (आ) सब ओर से (धाः) धारण कर और (प्रातः) प्रातःकाल (मक्षु) शीघ्र (जगम्यात्) [उस बुद्धि को] प्राप्त हो ॥१६॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष सभापति आदि को सदा वेदशास्त्रों का उपदेश करें और प्रधान आदि जन अन्तःकरण से ग्रहण कर के परोपकार करते रहें ॥१६॥

सूक्तम् ॥३६॥

१—११ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ७ भूरिक् पङ्क्तिः, २, ४, ५ त्रिष्टुप्, ३ स्वराडार्षी पङ्क्तिः, ६, विराट् त्रिष्टुप्, ८, ११ निचृत् त्रिष्टुप्: १० आर्षी पङ्क्तिः ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१॥

भाषार्थः—(तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] को (आभिः) इन (गीर्भिः) वाणियों से (अभि) सब प्रकार (अर्चे) मैं पूजता हूं । (यः) जो (एकः) अकेला (इत्) ही (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच (हव्य) ग्रहण करने योग्य है और (यः) जो (वृषभः) श्रेष्ठ, (वृष्ण्यवान्) पराक्रम वाला, (सत्यः) सच्चा, (सत्वा) वीर, (पुरुमायः) बहुत बुद्धि वाला और (सहस्वान्) महाबलवान् (पत्यते) स्वामी है ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को सर्वशक्तिमान्, महापराक्रमी जगदीश्वर की उपासना करके श्रेष्ठ गुणी होना चाहिये ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—६ । २२ । १—११ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥२॥

भाषार्थः—(नवग्वाः) स्तुति योग्य चरित्र वाले, (सप्त) सात (विप्रासः) [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] व्यापन शील इन्द्रियों के समान (नः) हमारे (पूर्वे) पहिले (पितरः) पितृजन (तम्) उस (उ) ही (नक्षद्दाभम्) व्याप्त दोषों के नाश करने वाले, (ततुरिम्) दुःखों से तारने वाले, (पर्वतेष्ठाम्) मेघ में वर्तमान [बिजुली के समान शुद्ध स्वरूप], (अद्रोघवाचम्) द्रोह रहित वाणी वाले, (मतिभिः) बुद्धियों के साथ (शविष्ठम्) अत्यन्त बली [परमात्मा] को (अभि) सब ओर से (वाजयन्तः) जताते हुए हैं ॥२॥

भावार्थः–जिस अनादि अनन्त परमात्मा की उपासना योगी जन सदा करते हैं, उसका ध्यान करके सब मनुष्य आनन्द पावें ॥२॥

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३॥

भाषार्थः–(तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] से (अस्य) इस (पुरुवीरस्य) बहुत वीरों के प्राप्त कराने वाले, (नृवतः) श्रेष्ठ मनुष्यों वाले, (पुरुक्षोः) बहुत ऐश्वर्य वा अन्न वाले (रायः) धन की (ईमहे) हम मांग करते हैं। और (यः) जो [परमात्मा] (अस्कृधोयुः) अपनी छोटाई न चाहने वाला, (अजरः) निर्बल न होने वाला, (स्वर्वान्) बहुत सुख वाला है, (हरिवः) हे उत्तम मनुष्यों वाले ! [विद्वान् पुरुष] तू (मादयध्यै) आनन्दित करने के लिये (तम्) उस [परमात्मा] को (आ) सब प्रकार (भर) धारण कर ॥३॥

भावार्थः—सब मनुष्य विज्ञान और ऐश्वर्य आदि बढ़ाने के लिये परमात्मा से प्रार्थना करके सदा प्रयत्न करें ॥३॥

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (तत्) यह बात (नः) हम को (वि) विशेष करके (वोचः) तू बता—(यदि) यदि (ते) तेरे (जरितारः) गुण बखानने वालों ने (पुरा चित्) पहिले भी (सुम्नम्) सुख को (आनशुः) पाया है। (दुध्र) हे पूर्ण ! (खिद्वः) हे शत्रुओं के खेद देने वाले !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पुरुहूत) हे बहुतों से बुलाये गए ! (पुरुवसो) हे बहुत धन वाले (ते) तेरा (कः) कौन सा (असुरघ्नः) असुरों [दुष्टों का] नाश करने वाला (भागः) भाग है और (किम्) कौन (वयः) जीवन है ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के उपदेशों को ग्रहण करके सदा सुख प्राप्त करें ॥४॥

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रंभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस [पुरुष] की (गीः) वाणी (नु) निश्चय करके (वेपी) हिलने वाली [बे रोक चलने वाली] और (वक्वरी) बोलने की शक्ति वाली है, (तम्) उस (वज्रहस्तम्) वज्र [हथियार] हाथ में रखने वाले (रथेष्ठाम्) रथ में बैठे हुए, (तुविग्राभम्) बहुतों को सहारा देने वाले, (तुविकूर्मिम्) बहुत से काम करने वाले, (रभोदाम्) वेगयुक्त बल देने वाले, (गातुम्) वेदों के गाने वाले, (तुम्रम्) विघ्नों के मिटाने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] को (इषे) अन्न आदि के लिये (पृच्छन्ती) पूंछती हुई [स्त्री] (अच्छ) अच्छे प्रकार (नक्षते) प्राप्त होती है ॥५॥

भावार्थः—ब्रह्मचारिणी कन्या भली भांति निश्चय करके शुभ गुण वाले ऐश्वर्यवान् पुरुष को विवाह के लिये स्वीकार करे ॥५॥

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीडिता स्वोजो रुजो वि दृह्ळा धृषता विरप्शिन् ॥६॥

भाषार्थः—(स्वतवः) हे अपने बल वाले ! (स्वोजः) हे बड़े पराक्रम वाले ! (विरप्शिन्) हे महागुणी पुरुष ! (अया) इस (ह) ही (मायया) [अपनी] बुद्धि और (मनोजुवा) मन के समान वेग के साथ (पर्वतेन) पहाड़ [के तुल्य दृढ़ हथियार] से और (धृषता) ढीठपन से (त्यम्) उस (ववृधानम्) बढ़ते हुए [वैरी] को और (अच्युता) न हिलने वाले, और (वीलिता) ठहराऊ और (दृह्ळा) दृढ़ [पदार्थों] को (चित्) भी (वि रुजः) तू ने चूर चूर कर दिया है ॥६॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष बड़े बड़े विघ्नों और कष्टों को सह सकें, वे ही गृहस्थाश्रम आदि बड़े बड़े काम चला सकते हैं ॥६॥

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्नेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः– [हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारे लिये (तम्) उस (शविष्ठम्) अत्यन्त बली और (प्रत्नम्) पुराने [अनुभवी पुरुष] को (नव्यस्या) अधिक नवीन (धिया) बुद्धि वा कर्म से (प्रत्नवत्) पुराने लोगों के समान (परितंसयध्यै) हम शोभायमान करें। (सः) वह (अनिमानः) विना परिमाण वाला, (सुवह्मा) बड़ा नायक (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला पुरुष] (विश्वानि) सब (दुर्गहानि) अत्यन्त कठिन स्थानों को (अति) पार करके (नः) हम को (वक्षत्) चलावे ॥७॥

भावार्थः– जो पुरुष सब मनुष्यों के बीच अनुपम, बलवान्, बुद्धिमान्, परोपकारी होवे, उसी को विद्वान् लोग अपना प्रधान बनावें ॥७॥

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८॥

भाषार्थः—(वृषन्) हे बलिष्ठ ! [पुरुष] (दिव्यानि) श्रेष्ठ गुण वाले (पार्थिवानि) पृथिवी पर उत्पन्न हुए और (अन्तरिक्षा) आकाश वाले पदार्थों को (आ) सब ओर से (दीपयः) प्रकाशित कर, और (तान्) हिंसक चोरों को (शोचिषा) तेज से (विश्वतः) सब प्रकार (तप) तपा दे, और (ब्रह्मद्विषे) ईश्वर और वेद के द्वेषी, (द्रुह्वणे) अनिष्ट चाहने वाले (जनाय) जन के लिये (क्षाम्) पृथिवी (च) और (अपः) जलों को (शोचय) शोकयुक्त कर ॥८॥

भावार्थः– विद्वान् लोग पृथिवी आदि पदार्थों के तत्त्वज्ञान को फैलाकर दुष्टों को सन्ताप और सत्पुरुषों को आनन्द देवें ॥८॥

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९॥

भाषार्थः (त्वेषसंदृक्) हे प्रकाश के दिखाने वाले ! तू (दिव्यस्य) कामना योग्य (जनस्य) मनुष्य का और (पार्थिवस्य) पृथिवी पर हुए (जगतः) संसार का (राजा) राजा (भुवः) है। (अजुर्य) हे जरा रहित [प्रबल] (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन] (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ में (वज्रम्) वज्र [हथियार] (धिष्व) धारण कर। और (विश्वाः) समस्त (मायाः) बुद्धियों को (वि) विशेष करके (दयसे) दे ॥९॥

भावार्थः– वही मनुष्य राजा होना चाहिए जो शरीर और आत्मा से प्रबल होकर संसार की रक्षा और विद्याओं का प्रचार करे ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ सं॒यत॑मिन्द्र णः स्व॒स्तिं श॑त्रु॒तूर्या॑य बृह॒तीममृ॑ध्राम् ।
यया॒ दासा॒न्यार्या॑णि वृ॒त्रा करो॑ वज्रिन्त्सु॒तुका॒ नाहु॑षाणि ॥१०॥

भाषार्थः—(इन्द्र, हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (नः) हमारे लिये (शत्रुतूर्याय) शत्रुओं के मारने को (संयतम्) बहुत दृढ़, (बृहतीम्) बढ़ती हुई, (अमृध्राम्) अक्षय स्वस्तिम्) सुख सामग्री (आ) सब ओर से (करः) तू कर। (यया) जिस [सुख सामग्री] से (वज्रिन्) हे वज्रधारी ! (दासानि) शूद्रों के कुल (आर्याणि) द्विजकुल [होवें] और (नाहुषाणि) मनुष्यों के (वृत्राणि) धन (सुतुका) बहुत बढ़ने वाले [होवें] ॥१०॥

भावार्थः– राजा विद्यादान और सत्य उपदेश से शूद्रों को भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बनाकर शत्रुओं के नाश के लिये मनुष्यों में धन और सुख की वृद्धि करे ॥१०॥

स नो॑ नि॒युद्भिः॑ पुरुहूत वेधो वि॒श्ववा॑राभि॒रा ग॑हि प्रयज्यो ।
न या अदे॑वो॒ वर॑ते॒ न दे॒व आभि॑र्याहि॒ तूय॒मा म॑द्र्य॒द्रिक् ॥११॥

भाषार्थः—(पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे गये ! (वेधः) हे बुद्धिमान् ! (प्रयज्यो) हे अच्छे प्रकार यज्ञ करने वाले ! (सः) वह तू (नः) हम को (विश्ववाराभिः) सब से स्वीकार करने योग्य (नियुद्भिः) निश्चित मिलने और बिछुड़ने की रीतों से (आ गहि) प्राप्त हो। (याः) जिन [मिलने बिछुड़ने की रीतों] को (अदेवः) अविद्वान् जन (देवः न) विद्वान् के समान (न) नहीं (आ) अच्छे प्रकार (वरते) मानता है, (आभिः) उन [रीतों] के साथ (मद्र्यद्रिक्) मेरी ओर दृष्टि करता हुआ तू (तूयम्) शीघ्र (आ याहि) आ ॥११॥

भावार्थः– राजा उत्तम उत्तम रीतों को स्वीकार कर के विद्वानों से स्वीकार करावे, क्योंकि मूर्ख जन उत्तम बातों को तुरन्त ठीक नहीं समझते ॥११॥

सूक्तम् ॥३७॥

१—११ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ५ त्रिष्टुप्, २ आर्षी पङ्क्तिः, ३, ६ निचृत् त्रिष्टुप्, ४ पङ्क्तिः, ७, ९, १० विराडार्षी त्रिष्टुप्, ८ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, ११ भुरिक् पङ्क्तिः ॥

राजप्रजाधर्मोपदेशः—राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१॥

भाषार्थः—(एकः) अकेला [वही] (विश्वा) सब (कृष्टीः) मनुष्य प्रजाओं को (प्र) अच्छे प्रकार (च्यावयति) चलाता है, (यः) जो (तिग्मशृङ्गः न) तीखी किरणों वाले सूर्य के समान (भीमः) भयङ्कर और (वृषभः) बरसा करने वाला है। और (यः) जो (शश्वतः) निरन्तर (अदाशुषः) न देने वाले के (गयस्य) घर का (वेदः) धन (सुष्वितराय) अधिक ऐश्वर्य वाले व्यवहार के लिये (प्रयन्ता) देने वाला (असि) है ॥१॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने ताप से जल खींच बरसा करके उपकार करता है, वैसे ही राजा कुदानी वा कंजूसों से धन लेकर विद्या आदि शुभ कर्मों में लगावे ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—७। १९। १—११॥

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ।२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (शुश्रूषमाणः) सुनने की इच्छा करते हुए [वा सेवा करते हुए] (त्वम्) तू ने (ह) ही (त्यत्) तब (कुत्सम्) मिलनसार ऋषि [वा वज्रधारी शूर] को (तन्वा) शरीर से (समर्ये) सङ्ग्राम में (आवः) बचाया है। (यत्) जब कि (दासम्) नाश करने वाले, (शुष्णम्) सुखाने वाले, (कुयवम्) अन्नों के बिगाड़ देने वाले [वैरी] को (अस्मै) उस (आर्जुनेयाय) विद्या प्राप्ति कराने वाली [विदुषी स्त्री] के पुत्र के लिये (शिक्षन्) शिक्षा देते हुए तू ने (नि अरन्धयः) वश में कर लिया है ॥२॥

भावार्थः—जो राजा प्रजा की पुकार सुनता और विद्वानों का सत्कार करता है और शत्रुओं का नाश करके विद्या फैलाता है, वह स्थिर ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ॥२॥

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥३॥

भाषार्थः—(धृष्णो) हे निडर पुरुष ! (त्वम्) तू ने (धृषता) निडरपन से (विश्वाभिः) सब (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (वीतहव्यम्) पाने योग्य पदार्थ के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाने वाले, (सुदासम्) बड़े दाता को (प्र) अच्छे प्रकार (आवः) बचाया है। और (पौरकुत्सिम्) बहुत वज्र आदि हथियारों के जानने वाले के सन्तान, (त्रसदस्युम्) डाकुओं के डराने वाले (पुरुम्) मनुष्य को (क्षेत्रसाता) रणक्षेत्र के विभाग में (वृत्रहत्येषु) शत्रुओं के मारने वाले सङ्ग्रामों के बीच (प्र) अच्छे प्रकार (आवः) तृप्त किया है ॥३॥

भावार्थः—राजा लोग सङ्ग्राम में शत्रुओं को जीतने वाले, शस्त्र विद्या में चतुर वीरों का सत्कार करके सुखी होवें ॥३॥

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥४॥

भाषार्थः—(नृमणः) हे नरों के समान मन वाले ! (हर्यश्व) हे वायु समान फुरतीले घोड़ों वाले ! (त्वम्) तू (नृभिः) नरों के साथ (देववीतौ) दिव्य-गुणों की प्राप्ति में (भूरीणि) बहुत (वृत्राणि) धनों को (हंसि) पाता है। (च) और (त्वम्) तू ने (चुमुरिम्) हिंसाकारी, (धुनिम्) कंपाने वाले (दस्युम्) डाकू को (दभीतये) शासन के लिये (सुहन्तु) अच्छे प्रकार मारने वाले हथियार से (नि) नीचे (अस्वापयः) सुलाया है ॥४॥

भावार्थः—राजा धन आदि पदार्थ प्राप्त कर के वीर सेनाध्यक्षों के साथ शत्रुओं का नाश करके प्रजापालन करे ॥४॥

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥५॥

भाषार्थः—(वज्रहस्त) हे हाथों में वज्र रखने वाले ! (ते) तेरे (तानि) वे (च्यौत्नानि) बल हैं, (यत्) कि (सद्यः) तुरन्त (नव) नव (च) और (नवतिम्) नव्वे [निन्नानवे] (पुरः) नगरों में और (निवेशने) छावनी के बीच (शततमा) सौवें [नगर] में (अविवेषीः) व्याप गया है, (च) और (वृत्रम्) रोकने वाले शत्रु को (अहन्) तू ने मारा है (उत) और (नमुचिम्) न छोड़ने योग्य डाकू को (अहन्) मारा है ॥५॥

भावार्थः—राजा अपनी उत्तम सेना के द्वारा वैरी के सब नगरों और राजधानी को अधीन कर के शत्रुओं को मारे ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (ता) वे (ते) तेरे (भोजनानि) पालन साधन (रातहव्याय) पाने योग्य पदार्थ के पाने वाले, (सुदासे) बड़े उदार (दाशुषे) दाता के लिये (सना) सेवनीय हैं । (पुरुशाक) हे महाबली ! (वृष्णे ते) तुझ बलवान् के लिये (वृषणा) दो बलवान् (हरी) घोड़ों [के समान बल और पराक्रम] को (युनज्मि) मैं जोड़ता हूं, वे [प्रजा जन] (ब्रह्माणि) अनेक धनों को और (वाजम्) बल को (व्यन्तु) प्राप्त होवें ॥६॥

भावार्थः—राजा लोग कर देने वाले राजभक्तों का पालन करके बल और पराक्रम के साथ प्रजाजनों की सब प्रकार उन्नति करें ॥६॥

मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥७॥

भाषार्थः—(सहसावन्) हे बहुत बल वाले ! (हरिवः) हे प्रशंसनीय मनुष्यों वाले ! [राजन्] (ते) तेरी (अस्याम्) इस (परिष्टौ) सब ओर से इष्ट सिद्धि में (परादै, छोड़ने योग्य (अघाय) पाप करने के लिये (मा भूम) हम न होवें । (नः) हम को (अवृकेभिः) चोर न होने वाले (वरूथैः) श्रेष्ठों के द्वारा (त्रायस्व) बचा, (सूरिषु) प्रेरक नेताओं के बीच हम लोग (ते) तेरे (प्रियासः) प्यारे [प्रसन्न करने वाले] (स्याम) हो॑ ॥

भावार्थः—जैसे प्रजागण धर्मात्मा राजा की उन्नति के लिये प्रयत्न करें, वैसे ही वह भी उत्तम उत्तम विद्याओं और बड़े बड़े अधिकारों के देने से प्रजा को प्रसन्न करे ॥७॥

प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥८॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे महाधनी ! (अभिष्टौ) सब प्रकार इष्टसिद्धि में (नरः) हम नेता लोग (ते इत्) तेरे ही (प्रियासः) प्यारे (सखायः) मित्र होकर (शरणे, शरण में [रह कर] (मदेम) प्रसन्न होवें । (शंस्यम्) बड़ाई योग्य कर्म (करिष्यन्) करता हुआ तू (तुर्वशम्) हिंसकों को वश में करने वाले (याद्वम्) प्रयत्न शील मनुष्य को (अतिथिग्वाय) अतिथियों [विद्वानों] की प्राप्ति के लिये (नि) निश्चय करके (नि) नित्य (शिशीहि) तीक्ष्ण कर ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा अपनी और प्रजा की बढ़ती के लिये शान्ति स्थापित कर के सब को प्रसन्न रक्खे, जिससे विद्वान् लोग बे रोक आ जाकर उन्नति का उपदेश करते रहें ॥८॥

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥९॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे बड़े पूजनीय ! (ये) जो (उक्थशासः) प्रशंसनीय अर्थों का उपदेश करने वाले (नरः) नर [नेता लोग] (ते) तेरी (अभिष्टौ) सब प्रकार इष्ट सिद्धि में (सद्यः) शीघ्र (चित्) ही (नु) निश्चय कर के (उक्था) कहने योग्य वचनों को (शंसन्ति) कहते हैं। और (ते) तेरे (हवेभिः) बुलावों से (पणीन्) व्यवहारों का (वि) विविध प्रकार (अदाशन्) दान करते हैं, [उन] (अस्मान्) हम को (तस्मै) उस (युज्याय) योग्य व्यवहार के लिये (वृणीष्व) तू स्वीकार कर ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य राज्य की भलाई का उपदेश करें और अवसर होने पर उत्तम उपाय करें, राजा उनका सदा सन्मान करे ॥९॥

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥१०॥

भाषार्थः—(नराम्) नरों के बीच (नृतम) हे बड़े नर ! [नेता] (एते) यह (अस्मद्र्यञ्चः) हमको मिलने वाले (स्तोमाः) प्रशंसनीय विद्वान् लोग (तुभ्यम्) तेरे लिये (मघानि) धनों को (ददतः) देते हुए हैं। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् !] (वृत्रहत्ये) शत्रुओं के मारने वाले संग्राम में (तेषाम्) उन (नृणाम्) नरों का (शिवः) मङ्गलकारी (सखा) मित्र (च च) और (शूरः) शूर (अविता) रक्षक (भूः) तू हो ॥१०॥

भावार्थः राजा विद्वानों द्वारा धन आदि बढ़ाकर शत्रुओं का नाश कर के प्रजा की रक्षा करे ॥१०॥

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११॥

भाषार्थः—(शूर) हे शूर (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (नु) शीघ्र (स्तवमानः) उत्साह देता हुआ और (ब्रह्मजूतः) धन वा अन्न को प्राप्त होता हुआ तू (ऊती) रक्षा के साथ (तन्वा) शरीर से (वावृधस्व) अत्यन्त बढ़। (नः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे (वाजान्) बलों को और (स्तीन्) घरों को (उप) आदर से (उप मिमीहि) उपमा योग्य [बड़ाई योग्य] कर। [हे वीरो !] (यूयम्) तुम सब (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (सदा) सदा (नः) हमें (पात) रक्षित रक्खो ॥११॥

भावार्थः—राजा वीर पुरुषों को उत्साह देकर उनकी और अपनी वृद्धि करे और सब लोग उत्तम गुणों से उपमा योग्य प्रशंसनीय होकर परस्पर रक्षा करें ॥११॥

इस मन्त्र का चौथा पाद आ चुका है—अ० २०। १२। ६, और १७। १२, और आगे है—२०। ८७। ७॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥३८॥

१ - ६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १—४, ६ गायत्री, ५ निचृद् गायत्री ॥

राजप्रजाकर्त्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (आ याहि) तू आ, (हि) क्योंकि (ते) तेरे लिये (सोमम्) सोम [उत्तम ओषधियों का रस] (सुषुम) हम ने सिद्ध किया है, (इमम्) इस [रस] को (पिब) पी, (मम) मेरे (इदम्) इस (बर्हिः) उतम आसन पर (आ सदः) बैठ ॥१॥

भावार्थः—लोग विद्वान् सद्वैद्य के सिद्ध किये हुए महौषधियों के रस से राजा को स्वस्थ बलवान् रखकर राजसिंहासन पर सुशोभित करें ॥१॥

मन्त्र १—३ आ चुके हैं—अ० २०। ३। १-३ और आगे हैं—अ० २०। ४७। ७-९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (ब्रह्मयुजा) धन के लिये जोड़े गये, (केशिना) सुन्दर केशों [कन्धे आदि के बालों] वाले (हरी) रथ ले चलने वाले दो घोड़ों [के समान बल और पराक्रम] (त्वा) तुझ को (आ) सब ओर (वहताम्) ले चलें । (नः) हमारे (ब्रह्माणि) वेदज्ञानों को (उप) आदर से (शृणु) तू सुन ॥२॥

भावार्थः—जैसे उत्तम बलवान् घोड़े रथ को ठिकाने पर पहुंचाते हैं, वैसे ही राजा वेदोक्त मार्ग पर चल कर अपने बल और पराक्रम से राज्य-भार उठा कर प्रजापालन करे ॥२॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (सोमपाम्) ऐश्वर्य के रक्षक (त्वा) तुझ को (युजा) मित्रता के साथ (ब्रह्माणः) वेद जानने वाले, (सोमिनः) ऐश्वर्य वाले, (सुतवन्तः) उत्तम पुत्र आदि सन्तानों वाले (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं ॥३॥

भावार्थः—जिस राजा के सुप्रबन्ध से प्रजागण ज्ञानवान् धनवान् और सुशिक्षित सन्तान वाले होवें, उसको मित्र जान कर सदा स्मरण करें ॥३॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥४॥

भाषार्थः—(गाथिनः) गाने वालों और (अर्किणः) विचार करने वालों ने (अर्केभिः) पूजनीय विचारों से (इन्द्रम्) सूर्य [के समान प्रतापी], (इन्द्रम्) वायु [के समान फुरतीले] (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को और (वाणीः) वाणियों [वेदवचनों] को (इत्) निश्चय कर के (बृहत्) बड़े ढंग से (अनूषत) सराहा है ॥४॥

भावार्थः मनुष्य सुनीतिज्ञ, प्रतापी, उद्योगी राजा के व्यवहारों और परमेश्वर की दी हुई वेदवाणी के गुणों को विचार कर सब के सुख के लिये यथावत् उपाय करें ॥४॥

मन्त्र ४ ६ ऋग्वेद में हैं—१।७।१–३, सामवेद—उ० २।१।८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आगे हैं अ० २०। ४७। ४—६ तथा २०। ७०। ७९ और मन्त्र ४ सामवेद—पू० ३। १। ५॥

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥५॥

भाषार्थः—(वज्री) वज्रधारी, (हिरण्ययः) तेजोमय (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (इत्) ही (इन्द्रः) वायु [के समान] (सचा) नित्य मिले हुएं (हर्योः) दोनों संयोग वियोग गुणों का (संमिश्लः) यथावत् मिलाने वाला (आ) और (वचोयुजा, वचन का योग्य बनाने वाला है ॥५॥

भावार्थः—जैसे पवन के आने जाने से पदार्थों में चलने, फिरने, ठहरने का और जीभ में बोलने का सामर्थ्य होता है, वैसे ही दण्डदाता प्रतापी राजा के न्याय से सब लोगों में शुभ गुणों का संयोग और दोषों का वियोग होकर वाणी में सत्यता होती है ॥५॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] ने (दीर्घाय) दूर तक (चक्षसे) देखने के लिये (दिवि) व्यवहार [वा आकाश] के बीच (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा [वा किरणों और जलों द्वारा] (सूर्यम्) सूर्य [के समान प्रेरक] और (अद्रिम्) मेघ [के समान उपकारी पुरुष] को (आ रोहयत्) ऊंचा किया और (वि) विविध प्रकार (ऐरयत्) चलाया है ॥६॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर के नियम से सूर्य आकाश में चलकर ताप आदि गुणों से अनेक लोकों को धारण करता और किरणों द्वारा जल खींच कर फिर बरसाकर उपकार करता है, वैसे ही दूरदर्शी राजा अपने प्रताप और उत्तम व्यवहार से सब प्रजा को नियम में रक्खे और कर लेकर उनका प्रतिपालन करे ॥६॥

सूक्तम् ॥३९॥

१—५ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, २ निचृद् गायत्री, ३—५ गायत्री ॥

परमेश्वरोपासनोपदेशः—परमेश्वर की उपासना का उपदेश ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (**इन्द्रम्**) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् परमात्मा] को (**वः**) तुम्हारे लिये और (**विश्वतः**) सब (**जनेभ्यः**) प्राणियों के लिये (**परि**) सब प्रकार (**हवामहे**) हम बुलाते हैं। वह (**अस्माकम्**) हमारा (**केवलः**) सेवनीय (**अस्तु**) होवे ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य सर्वहितकारी जगदीश्वर की आज्ञा में रहकर आनन्द पावें ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१।७।१०, सामवेद—उ० ८।१।२ और आगे है—अ० २०।७०।१६॥

व्यं१ न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥२॥

भाषार्थः—(**इन्द्रः**) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] ने (**सोमस्य**) ऐश्वर्य के (**मदे**) आनन्द में (**रोचना**) प्रीति के साथ (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**वि अतिरत्**) पार किया है, (**यत्**) जब कि उसने (**वलम्**) हिंसक [विघ्न] को (**अभिनत्**) तोड़ डाला ॥२॥

भावार्थः—सब से महान् और पूजनीय परमात्मा की उपासना से सब मनुष्य उन्नति करें ॥२॥

मन्त्र २—५ आ चुके हैं—अ० २०।२८।१—४॥

उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥३॥

भाषार्थः—(**गुहा**) गुहा [गुप्त अवस्था] में (**सतीः**) वर्तमान (**गाः**) वाणियों को (**आविः कृण्वन्**) प्रकट करते हुए उस [परमेश्वर] ने (**अङ्गिरोभ्यः**) विज्ञानी पुरुषों के लिये (**उत् आजत्**) ऊंचा पहुंचाया और (**वलम्**) हिंसक [विघ्न] को (**अर्वाञ्चम्**) नीचे (**नुनुदे**) हटाया ॥३॥

भावार्थः—प्रलय के पीछे परमात्मा ने वेदों का उपदेश कर के हमारे सब विघ्न मिटाये हैं ॥३॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च।
स्थिराणि न पराणुदे ॥४॥

भाषार्थः—(**इन्द्रेण**) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] कर के (**दिवः**) व्यवहार के (**स्थिराणि**) ठहराऊ (**रोचना**) प्रकाश (**न पराणुदे**) न हटने के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये (दृढानि) पक्के किये गए (च) और (दृंहितानि) बढ़ाये गये [फैलाये गये हैं] ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा ने अपने अटल नियमों से सब संसार को सुख दिया है ॥४॥

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥५॥

भाषार्थः –(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (ते) तेरी (स्तोमः) बड़ाई (अपाम्) जलों की (मदन्) हर्ष बढ़ाने वाली (ऊर्मिः इव) लहर के समान (अजिरायते) वेग से चलती है, और (मदः) आनन्द (वि अराजिषुः) विराजते हैं [विविध प्रकार ऐश्वर्य बढ़ाते हैं] ॥५॥

भावार्थः—न्यायकारी परमात्मा की उत्तम नीति को मानकर सब लोग आनन्द पाकर शीघ्र ऐश्वर्य बढ़ावें ॥५॥

सूक्तम् ॥४०॥

१—३ ॥ १ मरुत इन्द्रश्च, २, ३ मरुतो देवताः ॥ १ गायत्री, २, ३ निचृद् गायत्री ॥

राजप्रजाधर्मोपदेशः—राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥१॥

भाषार्थः –[हे प्रजागण !] (अबिभ्युषा) निडर (इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] के साथ (हि) ही (संजग्मानः) मिलता हुआ तू (सम्) अच्छे प्रकार (दृक्षसे, दिखाई देता है । (समानवर्चसा) एक से तेज के साथ (मन्दू, तुम दोनों [राजा और प्रजा] आनन्द देने वाले हो ॥१॥

भावार्थः—जिस राज्य में प्रजागण राजा से और राजा प्रजा से प्रसन्न रहते हैं, वही राज्य विद्या और धन में उन्नति करता है ॥१॥

(मरुतः) अर्थात् मनुष्य वा प्रजागण देवता हैं, इसके लिये (मरुतः) ऋत्विज् निघ० ३ । १८, पद नाम—निघ० ५ । ५ और अथर्व० १ । २० । १ भी देखो ॥

मन्त्र १, २ ऋग्वेद में हैं—१ । ६ । ७, ८ और आगे हैं—अ० २० । ७० । ३, ४; मन्त्र १ सामवेद में है—उ० २ । २ । ७ ॥

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अनवद्यैः) निर्दोष, (अभिद्युभिः) सब ओर से प्रकाशमान और (काम्यैः) प्रीति के योग्य (गणैः) गणों [प्रजागणों] के साथ (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] का (मखः) यज्ञ [राज्य व्यवहार] सहस्वत्) अति दृढ़ता से (अर्चति) सत्कार पाता है ॥२॥

भावार्थः—सब राजकाज उत्तम विद्वान् लोगों के मेल से अच्छे प्रकार सिद्ध होते हैं ॥२॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥३॥

भाषार्थः—(आत्) फिर (अह) अवश्य (स्वधाम् अनु) अपनी धारण शक्ति के पीछे (यज्ञियम्) सत्कार योग्य (नाम) नाम [यश] को (दधानाः) धारण करते हुए लोगों ने (पुनः) निश्चय कर के (गर्भत्वम्) गर्भपन [सारपन, बड़े पद] को (एरिरे) सब प्रकार से पाया है ॥३॥

भावार्थः—जहां पर पूर्वोक्त प्रकार से न्याययुक्त स्वतन्त्रता के साथ लोग कार्य करते हैं, वहां पर सब पुरुष बड़ाई पाते हैं ॥३॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है १।६।४; सामवेद उ० २।२।७ और आगे है—अथ० २०।६९।१२॥

सूक्तम् ॥४१॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ निचृद् गायत्री छन्दः ॥

राजकृत्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥१॥

भाषार्थः—(अप्रतिष्कुतः) बे रोक गति वाले (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] ने (दधीचः) पोषण प्राप्त कराने वाले पुरुष की (अस्थभिः) गतियों से (नव नवतीः) नौ नब्बे [९×९०=८१० अर्थात् बहुत से] (वृत्राणि, रोकने वाले शत्रुओं को (जघान) मारा है ॥१॥

भावार्थः—प्रतापी राजा प्रजापोषक वीरों के समान अनेक उपाय कर के शत्रुओं को मारे ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—१।८४।१३—१५; सामवेद—उ० ३।१। तृच ८, मन्त्र १ साम० पू० २।९।५। और मन्त्र ३ पू० २।६।३॥

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अश्वस्य) काम में व्यापने वाले बलवान् पुरुष का (यत्) जो (शिरः) शिर [मस्तक वा विचार सामर्थ्य] (पर्वतेषु) मेघों [के समान उपकारी मनुष्यों] में (अपश्रितम्) आश्रित है, (तत्) उस [विचार सामर्थ्य] को (इच्छन्) चाहते हुए पुरुष ने (शर्यणावति) तीर चलाने के स्थान संग्राम में (विदत्) पाया है ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष विद्वानों के समान अपना विचार सामर्थ्य बढ़ाना चाहे, वह परिश्रम के साथ ऐसा प्रयत्न करे जैसे शूर सेनापति सङ्ग्राम में प्रयत्न करता है ॥२॥

अत्राह् गोर॑मन्वत् नाम॒ त्वष्टु॑रपी॒च्य॑म् । इ॒त्था च॒न्द्रम॑सो गृहे ॥३॥

भाषार्थः—(अत्र) यहां [राज्य व्यवहार में] (अह) निश्चय करके (गोः) पृथिवी के, (इत्था) इसी प्रकार (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के (गृहे) घर [लोक] में (त्वष्टुः) छेदन करने वाले सूर्य के (अपीच्यम्) भीतर रक्खे हुए (नाम) झुकाव [आकर्षण] को (अमन्वत) उन्हों ने जाना है ॥३॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर के नियम से सूर्य अपने प्रकाश और आकर्षण द्वारा पृथिवी और चन्द्र आदि लोकों को उन के मार्ग में दृढ़ रखता है, वैसे ही राजा अपनी सुनीति से प्रजा को धर्म में लगावे ॥३॥

यह मन्त्र निरुक्त ४ । २५ में भी व्याख्यात है ॥

सूक्तम् ॥४२॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

मनुष्यकृत्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

वाच॑म॒ष्टाप॑दीम॒हं नव॑स्रक्तिमृत॒स्पृश॑म् । इन्द्रा॒त् परि॑ त॒न्वं॑ ममे ॥१॥

भाषार्थः (अष्टापदीम्) आठ पद [छोटाई, हलकाई प्राप्ति, स्वतन्त्रता, बड़ाई, ईश्वरपन, जितेन्द्रियता और सत्य सङ्कल्प, आठ ऐश्वर्य] प्राप्त कराने वाली, (नवस्रक्तिम्) नौ [मन बुद्धि सहित दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] से प्राप्ति योग्य, (ऋतस्पृशम्) सत्य नियम की प्राप्ति कराने वाली, (तन्वम्) विस्तीर्ण [वा सूक्ष्म] (वाचम्) वेदवाणी को (इन्द्रात्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] से (अहम्) मैं ने (परि ममे) नापा है ॥१॥

भावार्थः परमात्मा ने अपनी वेदवाणी सब के हित के लिये दी है, उसके द्वारा मनुष्य इन्द्रियों की स्वस्थता से [अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा । ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता ॥१॥]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह आठ ऐश्वर्य पाता है। हम लोग उचित प्रबन्ध से उसे विचार कर अपना जीवन सुधारें ॥१॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अथर्व०। १३। १। ४२। यह सूक्त ऋग्वेद में है—८। ७६ [सायणभाष्य ६५]। १२, ११, १० और कुछ भेद से सामवेद—उ० ३। २। तृच ६॥

अनु॑ त्वा रोद॑सी उ॒भे क्रक्ष॑माणमकृपेताम्।

इन्द्र॒ यद् द॑स्युहाभ॑वः ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (क्रक्षमाणम्) आकर्षण करते हुए [वश में करते हुए] (त्वा अनु) तेरे पीछे (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और भूमि (अकृपेताम्) समर्थ हुए हैं, (यत्) जबकि तू (दस्युहा) शत्रुओं [विघ्नों] का नाश करने वाला (अभवः) हुआ ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अन्धकार आदि विघ्नों को हटा कर वायु, जल, अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न कर के सब लोकों को धारण किया है, वैसे ही मनुष्य अविद्या मिटाकर परस्पर रक्षा करें ॥२॥

उ॒त्तिष्ठ॒न्नोज॑सा स॒ह पी॒त्वी शिप्रे॑ अवेपयः।

सोम॑मिन्द्र च॒मू सु॒तम् ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] (ओजसा सह) पराक्रम के साथ (उत्तिष्ठन्) उठते हुए तू ने (चमू) चमचे में (सुतम्) सिद्ध किया हुआ (सोमम्) सोम [अन्न आदि महौषधियों का रस] (पीत्वी) पीकर (शिप्रे) दोनों जावड़ों को (अवेपयः) हिलाया है ॥३॥

भावार्थः—जैसे प्राणी दांतों को चलाकर अन्न आदि खा आनन्द पाते हैं, वैसे ही मनुष्य बल पराक्रम कर के अभीष्ट फल प्राप्त करें ॥३॥

सूक्तम् ॥४३॥

१—६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

भि॒न्धि विश्वा॒ अप॒ द्विषः॒ परि॒ बाधो॒ ज॒ही मृधः॑।

वसु॑ स्पा॒र्हं तदा भ॑र ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे राजन्!] (विश्वाः) सब (द्विषः) द्वेष करने वाली सेनाओं में (अप भिन्धि) फूट डाल दे, और (बाधः) रोक डालने वाले (मृधः) संग्रामों को (परि) सब ओर से (जहि) मिटा दे (तत्) उस (स्पार्हम्) चाहने योग्य (वसु) धन को (आ भर) ले आ ॥१॥

भावार्थः—राजा धर्मात्माओं की रक्षा के लिये शत्रुओं में फूट डाल-कर उन का नाश करे और उनका धन लेकर विद्यादान आदि धर्मकार्य में लगावे ॥१॥

यह तृच् ऋग्वेद में है—८।४५।४०—४२; सामवेद—उ० ४।१। तृच ८। मन्त्र १—साम० पू० २।४।१० और मन्त्र २ पू० ३।२।३॥

यद् वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम्।

वसु स्पार्हं तदा भर ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (यत्) जो [धन] (वीडौ) बल [वा सेना] में (यत्) जो [धन] (स्थिरे) दृढ़ स्थान में और (यत्) जो [धन] (पर्शाने) मेघ [बरसा] में (पराभृतम्) धरा हुआ है, (तत्) उस (स्पार्हम्) चाहने योग्य (वसु) धन को (आ भर) ले आ ॥२॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि शत्रुओं ने जो धन सेना में, दृढ़ कोश में, और जो जल आदि स्थान में रक्खा हो, उस सब को ले लेवे ॥२॥

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति। वसु स्पार्हं तदा भर ॥३॥

भाषार्थः—(विश्वमानुषः) संसार का प्रत्येक मनुष्य (यस्य ते) जिस तेरे (भूरेः) बड़े (दत्तस्य) दान का (वेदति) ज्ञान करे, (तत्) उस (स्पार्हम्) चाहने योग्य (वसु) धन को (आ भर) ले आ ॥३॥

भावार्थः—राजा को ऐसा दान करना चाहिये जिस से समस्त संसार का उपकार होवे ॥३॥

सूक्तम् ॥४४॥

१—३॥ इन्द्रो देवता॥ १ गायत्री; २, ३ निचृद् गायत्री॥

राजप्रजाकृत्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश॥

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः।

नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे विद्वानों !] (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (सम्राजम्) सम्राट् [राजाधिराज], (नव्यम्) स्तुति योग्य, (नरम्) नेता, (नृषहम्) नेताओं को वश में रखने वाले, (मंहिष्ठम्) अत्यन्त दानी (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को (गीर्भिः) वाणियों से (प्र) अच्छे प्रकार (स्तोत) सराहो ॥१॥

भावार्थः विद्वान् प्रजागण अभिनन्दन आदि से उदार चित्त राजा के बड़े बड़े उपकारी कामों की प्रशंसा करके सत्कार करें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८।१६।१—३। मन्त्र १ सामवेद—पू० २। ५।१०॥

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या।
अपामवो न समुद्रे ॥२॥
तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्।
महो वाजिनं सनिभ्यः ॥३॥

भाषार्थः—(यस्मिन्) जिस [पुरुष] में (विश्वानि) सब (उक्थानि, कहने योग्य वचन (च) और (श्रवस्या) धन के लिये हितकारी कर्म (रण्यन्ति) पहुंचते हैं, (न) जैसे (समुद्रे) समुद्र में (अपाम्) जलों की (अवः) गति [पहुँचती है] ॥२॥ (तम्) उस (ज्येष्ठराजम्) सब से बड़े राजा, (भरे) सङ्ग्राम में (कृत्नुम्) काम करने वाले, (वाजिनम्) महाबलवान् [पुरुष] की, (महः) महत्त्व के (सनिभ्यः) दानों के लिये, (सुष्टुत्या) सुन्दर स्तुति के साथ (आ) सब प्रकार (विवासे) मैं सेवा करता हूं ॥३॥

भावार्थः—जैसे नदियां समुद्र में जाकर विश्राम पाती हैं, वैसे ही विद्वान् लोग पराक्रमी राजा के पास पहुंचकर अपना गुण प्रकाशित कर के सुख पावें ॥२,३॥

सूक्तम् ॥४५॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ३ गायत्री; २ निचृद् गायत्री ॥

सभाध्यक्षकृत्योपदेशः—सभापति के कर्तव्य का उपदेश ॥

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥१॥

भाषार्थः—[हे सेनापति !] (अयम्) यह [प्रजा जन] (ते उ) तेरा ही है, तू [उस प्रजा जन से] (सम् अतसि) सदा मिलता रहता है, (इव) जैसे (कपोतः) [कबूतर]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबूतर (गर्भधिम्) गर्भ रखने वाली कबूतरी से [पालने को मिलता है], (तत्) इस लिये तू (चित्) ही (नः) हमारे (वचः) वचन को (ओहसे) सब प्रकार विचारता है ॥१॥

भावार्थः—जब कबूतरी अण्डे सेवती और बच्चे देती है, कबूतर बड़े प्रेम से चारा लाकर उसको खिलाता है, इसी प्रकार राजा सुनीति से प्रजा का पालन करे और उन की पुकार सुने ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—१। ३०। ४—६; सामवेद—उ० ७। ३। तृच १५, तथा मन्त्र १–साम० पू० २। ६। ६॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता ॥२॥

भाषार्थः—(राधानां पते) हे धनों के स्वामी! (गिर्वाहः) हे विद्याओं के पहुंचाने वाले! (वीर) हे वीर! (यस्य ते) जिस तेरी (स्तोत्रम्) स्तुति है, [उस तेरी] (विभूतिः) विभूति [ऐश्वर्य] (सूनृता) प्यारी और सच्ची वाणी (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः प्रधान पुरुष अनेक धनों को प्राप्त होकर उत्तम कर्मों से अपनी स्तुति बढ़ावे और हितकारी सच्ची बात बोलने को ही अपना ऐश्वर्य समझे ॥२॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै ॥३॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (अस्मिन्) इस (वाजे) संग्राम में (ऊर्ध्वः) ऊपर (तिष्ठ) ठहर, (अन्येषु) दूसरे कामों पर (सम्) मिलकर (ब्रवावहै) हम दोनों बात करें। ३॥

भावार्थः विद्वान् लोग प्रजापालक सेनापति से बात चीत करके कर्तव्य को करते हुए और अकर्तव्य को छोड़ते हुए युद्ध में विजय प्राप्त करें ॥३॥

सूक्तम् ॥४६॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षण का उपदेश ॥

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु।
सासह्वांसं युधामित्रान् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वस्यः) श्रेष्ठ धन की ओर (प्रणेतारम्) ले चलने वाले (समत्सु) संग्रामों में (ज्योतिः) प्रकाश (कर्तारम्) करने वाले (युधा) युद्ध से (अमित्रान्) पीड़ा देने वाले वैरियों को (ससह्वांसम्) हराने वाले [सेनापति] को अच्छ) पाकर [हम वर्तें] ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रजा को धन प्राप्त करावे और संग्र मों में वैरियों को जीते, वह सेनापति होवे ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८। १६। १०-१२॥

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥२॥

भाषार्थः—(सः) वह (पप्रिः) पूरण करने वाला, (पुरुहूतः) वहुत पुकारा गया, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सेनापति] (विश्वाः) सब (द्विषः) द्वेष करने वाली सेनाओं को (अति) लांघ कर (नः) हम को (स्वस्ति) आनन्द के साथ (नावा) नाव से (पारयाति) पार लगावे ॥२॥

भावार्थः—युद्ध कुशल सेनापति शत्रुओं को मार कर प्रजा को कष्ट स छुड़ावे, जैसे नाव से समुद्र पार करते हैं ॥२॥

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च ।
अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥३॥

भाषार्थः—(सः त्वम्) सो तू, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] (नः) हमारे लिये (वाजेभिः) पराक्रमों के साथ (दशस्य) कवच के समान काम कर, (च च) और (गातुया) मार्ग बता, (च) और (अच्छ) अच्छे प्रकार (नः) हमें (सुम्नम्) सुख की ओर (नेषि, ले चल ॥३॥

भावार्थः—राजा पराक्रम कर के प्रजा को अनेक प्रकार से सुख पाने के ढंग बतावे ॥३॥

सूक्तम् ॥४७॥

१ २१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १-१०, १२—२१ गायत्री; ११ विराड् गायत्री, ॥

१-९ राजप्रजाकर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को (महे) बड़े (वृत्राय) रोकने वाले वैरी के (हन्तवे) मारने को (वाजयामसि) हम बलवान् करते हैं [उत्साही बनाते हैं], (सः) वह (वृषा) पराक्रमी (वृषभः) श्रेष्ठ वीर (भुवत्) होवे ॥१॥

भावार्थः—प्रजागण राजा को शत्रुओं के मारने के लिये सहाय करें, और राजा भी प्रजा की भलाई के लिये प्रयत्न करे ॥१॥

मन्त्र १—३ ऋग्वेद में हैं ८। ९३ [सायणभाष्य ८२]। ७ ९, कुछ भेद से सामवेद उ० ५। १ तृच १०। मन्त्र १ पू० २। ३। ५ और यह तृच आगे है—अथ० २०। १३७। १२—१४॥

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥२॥

भाषार्थः—(सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (दामने) दान करने के लिये और (सः) वह (मदे) आनन्द देने के लिये (ओजिष्ठः) महाबली और (हितः) हितकारी (कृतः) बनाया गया है, (सः) वह (द्युम्नी) अन्न वाला और (श्लोकी) कीर्ति वाला पुरुष (सोम्यः) ऐश्वर्य के योग्य है ॥२॥

भावार्थः—प्रजागण प्रतापी, गुणी पुरुष को इसलिये राजा बनावें कि वह प्रजा के उपकार के लिये दान कर के प्रयत्न करे और अन्न आदि पदार्थ बढ़ा कर कीर्ति पावे ॥२॥

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥३॥

भाषार्थः—(गिरा) वाणी से (संभृतः) पुष्ट किया गया, (सबलः) सबल, (अनपच्युतः) न गिरने योग्य, (ऋष्वः) गति वाला, और (अस्तृतः) बे रोक सेनापति (वज्रः न) बिजुली के समान (ववक्षे) रिस होवे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपनी बात में सच्चा, महाबली हो, वह सेनानी होकर शत्रुओं पर बिजुली के समान क्रोध करे ॥३॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत ॥४॥

भाषार्थः—(गाथिनः) गाने वालों और (अर्किणः) विचार करने वालों ने (अर्केभिः) पूजनीय विचारों से (इन्द्रम्) सूर्य [के समान प्रतापी], (इन्द्रम्) वायु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समान फुरतीले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को और (वाणीः) वाणियों [वेदवचनों] को (इव) निश्चय करके (बृहत्) बड़े ढंग से (अनूषत) सराहा है ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य सुनीतिज्ञ, प्रतापी, उद्योगी राजा के और परमेश्वर की दी हुई वेदवाणी के गुणों को विचार कर सब के सुख के लिये यथावत् उपाय करें ॥४॥

मन्त्र ४–६ आ चुके हैं—अ० २० । ३८ । ४—६ और आगे हैं—२० । ७० । ७—९ ॥

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।

इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥५॥

भाषार्थः—(वज्री) वज्रधारी, (हिरण्ययः) तेजोमय (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (इव) ही (इन्द्रः) वायु [के समान] (सचा) नित्य मिले हुए (हर्योः) दोनों संयोग वियोग गुणों का (संमिश्लः) यथावत् मिलाने वाला (आ) और (वचोयुजा) वचन का योग्य बनाने वाला है ॥५॥

भावार्थः—जैसे पवन के आने जाने से पदार्थों में चलने, फिरने, ठहरने का और जीव में बोलने का सामर्थ्य होता है, वैसे ही दण्डदाता प्रतापी राजा के न्याय से सब लोगों में शुभ गुणों का संयोग और दोषों का वियोग होकर वाणी में सत्यता होती है ॥५॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।

वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] ने (दीर्घाय) दूर तक (चक्षसे) देखने के लिये (दिवि) व्यवहार [वा आकाश] के बीच (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा [वा किरणों वा जलों द्वारा] (सूर्यम्) सूर्य [के समान प्रेरक] और (अद्रिम्) मेघ [के समान उपकारी पुरुष] को (आ रोहयत्) ऊंचा किया और (वि) विविध प्रकार (ऐरयत्) चलाया है ॥६॥

भावार्थः जैसे परमेश्वर के नियम से सूर्य आकाश में चलकर ताप आदि गुणों से अनेक लोकों को धारण करता और किरणों द्वारा जल खींच कर फिर बरसाकर उपकार करता है, वैसे ही दूरदर्शी राजा अपने प्रताप और उत्तम व्यवहार से सब प्रजा को नियम में रक्खे और कर लेकर उनका प्रतिपालन करे ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (आ याहि) तू आ, (हि) क्योंकि (ते) तेरे लिये (सोमम्) सोम [उत्तम ओषधियों का रस] (सुषुम) हम ने सिद्ध किया है, (इमम्) इस [रस] को (पिब) पी, (मम) मेरे (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आ सदः) बैठ ॥७॥

भावार्थः—लोग विद्वान् सद्वैद्य के सिद्ध किये हुए महौषधियों के रस से राजा को स्वस्थ बलवान् रखकर राजसिंहासन पर सुशोभित करें ॥७॥

मन्त्र ७–९ आ चुके हैं—अ० २० । ३ । १—३ तथा ३८ । १—३ ॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥८॥

भाषार्थः (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (ब्रह्मयुजा) धन के लिये जोड़े गये, (केशिना) सुन्दर केशों [कन्धे आदि के बालों] वाले (हरी) रथ ले चलने वाले दो घोड़ों [के समान बल और पराक्रम] (त्वा) तुझको (आ) सब ओर (वहताम्) ले चलें । (नः) हमारे (ब्रह्माणि) वेद ज्ञानों को (उप) आदर से (शृणु) तू सुन ॥८॥

भावार्थः–जैसे उत्तम बलवान् घोड़े रथ को ठिकाने पर पहुंचाते हैं, वैसे ही राजा वेदोक्त मार्ग पर चलकर अपने बल और पराक्रम से राज्य-भार उठाकर प्रजापालन करे ॥८॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥९॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (सोमपाम्) ऐश्वर्य के रक्षक (त्वा) तुझ को (युजा) मित्रता के साथ (ब्रह्माणः) वेद जानने वाले, (सोमिनः) ऐश्वर्य वाले, (सुतवन्तः) उत्तम पुत्र आदि सन्तानों वाले (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं ॥९॥

भावार्थः—जिस राजा के सुप्रबन्ध से प्रजागण ज्ञानवान्, धनवान्, और सुशिक्षित सन्तान वाले होवें, उस को मित्र जानकर सदा स्मरण करें ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्राः १०—१२ परमेश्वरगुणोपदेशः—१०—१२ परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥१०॥

भाषार्थः—(तस्थुषः) मनुष्य आदि प्राणियों और लोकों में (परि) सब ओर से (चरन्तम्) व्यापे हुए, (ब्रध्नम्) महान् (अरुषम्) हिंसारहित [परमात्मा] को (रोचना) प्रकाशमान पदार्थ (दिवि) व्यवहार के बीच (युञ्जन्ति) ध्यान में रखते और (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं ॥१०॥

भावार्थः—परमाणुओं से लेकर सूर्य आदि लोक और सब प्राणी सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता परमेश्वर की आज्ञा को मानते हैं, उसी का उपासना से मनुष्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके आत्मा की उन्नति करें ॥१०॥

मन्त्र १०—१२ आ चुके हैं—अ० २० । २६ । ४—६ और आगे हैं - २० । ६९ । ९—११ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥११॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [परमात्मा—मन्त्र १०] के (काम्या) चाहने योग्य, (विपक्षसा) विविध प्रकार ग्रहण करने वाले, (शोणा) व्यापक (धृष्णू) निर्भय, (नृवाहसा) नेताओं [दूसरों के चलाने वाले सूर्य आदि लोकों] के चलाने वाले (हरी) दोनों धारण आकर्षण गुणों को (रथे) रमणीय जगत् के बीच (युञ्जन्ति) वे [प्रकाशमान पदार्थ—मन्त्र १०] ध्यान में रखते हैं ॥११॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के धारण आकर्षण सामर्थ्य में सूर्य आदि पिण्ड ठहर कर अन्य लोकों और प्राणियों को चलाते हैं, मनुष्य उन सब पदार्थों से उपकार ले कर उस ईश्वर को धन्यवाद दें ॥११॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥१२॥

भाषार्थः—(मर्याः) हे मनुष्यो ! (अकेतवे) अज्ञान हटाने के लिये (केतुम्) ज्ञान को और (अपेशसे) निर्धनता मिटाने के लिये (पेशः) सुवर्ण आदि धन को (कृण्वन्) उत्पन्न करता हुआ वह [परमात्मा—मन्त्र १०, ११] (उषद्भिः) प्रकाशमान गुणों के साथ (सम्) अच्छे प्रकार (अजायथाः) प्रकट हुआ है ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करके परमात्मा को विचारते हुए सृष्टि के पदार्थों से उपकार लेकर ज्ञानी और धनी होवें ॥१२॥

मन्त्राः १३—२१ अध्यात्मोपदेशः=१३—२१ परमात्मा और जीवात्मा के विषय का उपदेश ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१३॥

भाषार्थः—(केतवः) किरणें (त्यम्) उस (जातवेदसम्) उत्पन्न पदार्थों को प्राप्त करने वाले, (देवम्) चलते हुए (सूर्यम्) रविमण्डल को (विश्वाय दृशे) सब के देखने के लिये (उ) अवश्य (उत् वहन्ति) ऊपर ले चलती हैं ॥१३॥

भावार्थः—जिस प्रकार सूर्य किरणों के आकर्षण से ऊंचा होकर सब पदार्थों को प्रकट करता है, वैसे ही मनुष्य विद्या और धर्म से उन्नति कर के सब का उपकार करें ॥१३॥

मन्त्रः १३—२१ आ चुके हैं—अ० १३। २। १६—२४ ॥

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।

सूराय विश्वचक्षसे ॥१४॥

भाषार्थः—(विश्वचक्षसे) सब के दिखाने वाले (सूराय) सूर्य के लिये (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ (नक्षत्रा) तारा गण (अप यन्ति) भाग जाते हैं, (यथा) जैसे (त्ये) वे (तायवः) चोर [भाग जाते हैं] ॥१४॥

भावार्थः—सूर्य के प्रकाश से रात्रि का अन्धकार मिट जाता है, मन्द चमकने वाले नक्षत्र छिप जाते हैं, और चोर लोग भाग जाते हैं, वैसे ही वेद विज्ञान फैलने से अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि होती है ॥१४॥

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।

भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१५॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [सूर्य] की (केतवः) जताने वाली (रश्मयः) किरणें (जनान् अनु) प्राणियों में (वि) विविध प्रकार से (अदृश्रन्) देखी गयी हैं, (यथा) जैसे (भ्राजन्तः) दहकते हुए (अग्नयः) अंगारे ॥१५॥

भावार्थः—जैसे सूर्य की किरणें धूप, बिजुली और अग्नि के रूप से संसार में फैलती हैं, वैसे ही सब मनुष्य शुभ गुण कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होकर आत्मा और समाज की उन्नति करें ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥१६॥

भाषार्थः—(**सूर्य**) हे सूर्य ! तू (**तरणिः**) अन्धकार से पार करने वाला, (**विश्वदर्शतः**) सब का दिखाने वाला, (**ज्योतिष्कृत्**) [चन्द्र आदि में] प्रकाश करने वाला (**असि**) है। (**रोचन**) हे चमकने वाले ! तू (**विश्वम्**) सब को (**आ**) भले प्रकार (**भासि**) चमकाता है ॥१६॥

भावार्थः—जैसे यह सूर्य अग्नि, बिजुली, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि पर अपना प्रकाश डाल कर उन्हें चमकीला बनाता है, वैसे ही परमात्मा अपने सामर्थ्य से सब सूर्य आदि को रचता है और वैसे ही विद्वान् लोग विद्या के प्रकाश से संसार को आनन्द देते हैं ॥१६॥

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१७॥

भाषार्थः—[हे सूर्य !] (**देवानाम्**) गतिशील [चन्द्र आदि लोकों] की (**विशः**) प्रजाओं को (**प्रत्यङ्**) सन्मुख होकर, (**मानुषीः**) मानुषी [मनुष्य सम्बन्धी पार्थिव प्रजाओं] को (**प्रत्यङ्**) सन्मुख होकर और (**विश्वम्**) सब जगत् को (**प्रत्यङ्**) सन्मुख होकर (**स्वः**) सुख से (**दृशे**) देखने के लिये (**उत्**) ऊंचा होकर (**एषि**) तू प्राप्त होता है ॥१७॥

भावार्थः—सूर्य गोल आकार बहुत बड़ा पिण्ड है, इस लिये वह सब लोकों के सन्मुख दीखता है, और सब लोक उसके आकर्षण प्रकाशन आदि से सुख पाते हैं, ऐसे ही परमात्मा के सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान् होने से उसके नियम पर चलकर सब सुखी रहते हैं ॥१७॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥१८॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यं जन्मानि सूर्य ॥१९॥

भाषार्थः—(**पावक**) हे पवित्र करने वाले ! (**वरुण**) हे उत्तम गुण वाले ! [सूर्य रविमण्डल] (**येन**) जिस (**चक्षसा**) प्रकाश से (**भुरण्यन्तम्**) धारण और पोषण करते हुए [पराक्रम] को (**जनान् अनु**) उत्पन्न प्राणियों में (**त्वम्**) तू (**पश्यसि**) दिखाता है ॥१८॥ [उस प्रकाश से] (**सूर्य**) हे सूर्य ! [रविमण्डल] (**अहः**) दिन को (**अक्तुभिः**) रात्रियों के साथ (**मिमानः**) बनाता हुआ और (**जन्मानि**) उत्पन्न वस्तुओं को (**पश्यन्**) दिखाता हुआ तू (**द्याम्**) आकाश में (**पृथु**) फैले हुए (**रजः**) लोक को (**वि**) विविध प्रकार (**एषि**) प्राप्त होता है ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से वृष्टि आदि द्वारा अपने घेरे के सब प्राणियों और लोकों का धारण पोषण करता है, वैसे ही मनुष्य सर्वोपरि विराजमान परमात्मा के ज्ञान से परस्पर सहायक होकर सुखी होवें ॥१८, १९॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥२०॥

भाषार्थः (देव) हे चलने वाले (सूर्य) सूर्य ! [रविमण्डल] (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र वर्ण वाली] (हरितः) आकर्षक किरणें (शोचिष्केशम्) पवित्र प्रकाश वाले (विचक्षणम्) विविध प्रकार दिखाने वाले (त्वा) तुझ को (रथे) रथ [गमन विधान] में (वहन्ति) ले चलती हैं ॥२०॥

भावार्थः—यह प्रकाशमान सूर्य लोक शुक्ल, नील, पीत, आदि सात किरणों द्वारा अपनी धुरी पर घेरे में घूमता है। इस नियम का बनाने वाला वह परमेश्वर है ॥२०॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥२१॥

भाषार्थः—(सूरः) सूर्य [लोक प्रेरक रविमण्डल] ने (रथस्य) रथ [अपने चलने के विधान] की (नप्त्यः) न गिराने वाली (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि-मन्त्र २०] (शुन्ध्युवः) शुद्ध किरणों को (अयुक्त) जोड़ा है। (ताभिः) उन (स्वयुक्तिभिः) धन से संयोग वाली [किरणों] के साथ (याति) वह चलता है ॥२१॥

भावार्थः—जो सूर्य अपनी परिधि के लोकों को अपने आकर्षण में रखकर चलता है और जिस की किरणें रोगों को हटा कर प्रकाश और वृष्टि आदि से ससार को धनी बनाती हैं, उस सूर्य को जगदीश्वर परमात्मा ने बनाया है ॥२१॥

सूक्तम् ॥४८॥

१—६ ॥ १—३ इन्द्रः; ४—६ सर्पराज्ञी सूर्यो वा देवता ॥ १, ४–६ गायत्री; २, ३ निचृद् गायत्री ॥

१—३ अध्यात्मोपदेशः=१—३ परमात्मा और जीवात्मा के विषय का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः ।
अभि वत्सं न धेनवः ॥१॥

[सूचना –मन्त्र १—३ ऋग्वेद आदि अन्य वेदों में नहीं हैं, और इनका पद पाठ भी गवनमेन्ट बुकडिपो बम्बई के पुस्तक में नहीं है। हम स्वामी विश्वेश्वरानन्द नित्यानन्द कृत पद सूची से संग्रह करके यहां लिखते हैं, बुद्धिमान् जन विचार लेवें। सूचना अथ० २०। ३४। १२ भी देखें।]

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (**आचरण्यवः**) सब ओर चलती हुई (**गिरः**) वाणियां (**त्वा**) तुझ को (**वर्चसा**) प्रकाश के साथ (**अभि**) सब प्रकार (**सिञ्चन्तीः**) सींचती हुई [हैं]। (**न**) जैसे (**धेनवः**) दुधेल गायें (**वत्सम्**) [अपने] बच्चे को (**अभि**) सब प्रकार [सींचती हैं] ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य प्रकाश स्वरूप परमात्मा की अनन्य भक्ति करके आनन्द पावें, जैसे गौएँ अपने तुरन्त उत्पन्न हुए बच्चों से प्रीति करके सुखी होती हैं ॥१॥

ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः ।
जातं जात्रीर्यथा हृदा ॥२॥

[सूचना—पद पाठ के लिये—मन्त्र १ देखो] ॥

भाषार्थः—(**शुभ्रियः**) शुद्ध (**प्रियः**) प्रीति करती हुई (**ताः**) वे [वाणियां—मन्त्र १] (**वर्चसा**) प्रकाश के साथ (**पृञ्चन्तीः**) छूती हुई [तुझको—मन्त्र १] (**अर्षन्ति**) ग्रहण करती हैं। (**यथा**) जैसे (**जात्रीः**) मातायें (**जातम्**) जने हुए बच्चों को (**हृदा**) हृदय से [ग्रहण करती हैं] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को एकाग्रचित्त होकर परमात्मा की उपासना ऐसी रीति से करनी चाहिये, जैसे माता तुरन्त जनमे बालक से प्रीति करती है ॥२॥

वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ॥३॥

[सूचना—पदपाठ के लिये— मन्त्र १ देखो] ॥

भाषार्थः—(**वज्रापवसाध्यः**) शस्त्रों के शोधने वालों [उजले शस्त्र वालों] की सिद्धि करने वाला, (**कीर्तिः**) कीर्तिरूप [बड़े ही यश वाला, परमेश्वर] (**मह्यम्**)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे लिये (म्रियमाणम्) नष्ट होते हुए (आयुः) जीवन, (घृतम्) घी [वा जल] और (पयः) दूध [वा अन्न] को (आवहन्) यथावत् लाता हुआ है ॥३॥

भावार्थः—जब हम किसी विपत्ति से निर्बल होकर अति दुःखी होवें, तब हम उस जगत् पालक परमात्मा का आश्रय लेकर शस्त्र आदि कर्तव्य ठीक करके कार्य सिद्धि करें ॥३॥

सूचना—पं० सेवकलाल कृष्णदास परिशोधित संहिता के अनुसार इस मन्त्र का यह पाठ है—

उग्राय॑ य॒शसो॒ धिय॑: की॒र्तिमि॑न्द्रि॒यमा व॑हान् । मह्य॒मायु॑र्घृ॒तं पय॑: ॥३॥

भाषार्थः—(यशसः) यशस्वी [परमेश्वर] (उग्राय मह्यम्) मुझ तेजस्वी के लिये (धियः) बुद्धियां (कीर्तिम्) कीर्ति [बड़ाई] (इन्द्रियम्), ऐश्वर्य, (आयुः) जीवन, (घृतम्) घी [वा जल] (पयः) दूध [वा अन्न] (आ) अच्छे प्रकार (वहान्) लावे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर का आश्रय लेकर उत्तम विद्याएँ पाकर आवश्यकीय पदार्थ पावे ॥३॥

मन्त्र ४—६ सूर्यस्य भूमेर्वा गुणोपदेशः—सूर्य वा भूमि के गुणों का उपदेश ॥

आयं गौः पृश्नि॑रक्रमी॒दस॑दन्मा॒तरं॑ पु॒रः । पि॒तरं॑ च प्र॒यन्त्स्वः॑ ॥४॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (गौः) चलने वा चलाने वाला, (पृश्निः) रसों वा प्रकाश का छूने वाला सूर्य (आ अक्रमीत्) घूमता हुआ है, (च) और (पितरम्) पालन करने वाले (स्वः) आकाश में (प्रयन्) चलता हुआ (पुरः) सन्मुख होकर (मातरम्) सब की बनाने वाली पृथिवी माता को (असदत्) व्यापा है ॥४॥

भावार्थः—यह सूर्य अन्तरिक्ष में घूमकर आकर्षण, वृष्टि आदि व्यापारों से पृथिवी आदि लोकों का उपकार करता है ॥४॥

मन्त्र ४—६ आचुके हैं—अ० ६ । ३१ । १—३, वहां सविस्तार अर्थ देखो ॥

अ॒न्तश्च॑रति रोच॒ना अ॒स्य प्रा॒णाद॑पान॒तः । व्य॑ख्यन्महि॒षः स्वः॑ ॥५॥

भाषार्थः—(प्राणात्) भीतर के श्वास के पीछे (अपानतः) बाहर को श्वास निकालते हुए (अस्य) इस [सूर्य] की (रोचना) रोचक ज्योति (अन्तः) [जगत् के] भीतर (चरति) चलती है, और वह (महिषः) बड़ा सूर्य (स्वः) आकाश को (वि) विविध प्रकार (अख्यत्) प्रकाशित करता है ॥५॥

भावार्थः—जैसे सब प्राणी श्वास प्रश्वास से जीवित रहकर चेष्टा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं, वैसे ही सूर्य प्रकाश का ग्रहण और त्याग करके लोकों को प्रकाशित करता है ॥५॥

त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥६॥

भाषार्थः—(पतङ्गः) चलने वाला वा ऐश्वर्य वाला सूर्य (त्रिंशद् धामा) तीस धामों पर [दिन रात्रि के तीस मुहूर्तों पर] (वस्तोः, अहः) दिन दिन (द्युभिः) अपनी किरणों और गतियों के साथ (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (वि) विविध प्रकार (राजति) राज करता वा चमकता है, (वाक्) इस वचन ने [उस सूर्य में] (अशिश्रियत्) आश्रय लिया है ॥६॥

भावार्थः—यह बात स्वयं सिद्ध है कि यह सूर्य सर्वदा सब ओर चमकता रहकर अपनी परिधि के सब लोकों को गमन, आकर्षण, विकर्षण वृष्टि, शीत, ताप आदि द्वारा स्थिर रखता है ॥६॥

सूक्तम् ॥४९॥

१—७ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १—३ गायत्री; ४ पथ्या बृहती; ५, ७ सतः पङ्क्तिः; ६ निचृद् बृहती छन्दः ॥

ईश्वरोपासनोपदेशः ईश्वर की उपासना का उपदेश ॥

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः । सं देवा अमदन् वृषा ॥१॥

[सूचना—मन्त्र १—३ ऋग्वेद आदि अन्य वेदों में नहीं हैं, और इन का पदपाठ भी गवर्नमेंट बुकडिपो बम्बई के पुस्तक में नहीं है, आगे सूचना—सूक्त ४८ मन्त्र १ - ३ देखो ॥]

भाषार्थः—(यत्) जब (वृषा) बलवान् परमेश्वर (सिषासथः) दान की इच्छा करने वाला [हुआ], [तब] (शक्राः) समर्थ (देवाः) विद्वानों ने (वाचम्) वाणी [वेद वाणी] को (अन्तरिक्षम्) हृदय आकाश में (आरुहन्) बोया और (सम्) ठीक रीति से (अमदन्) आनन्द पाया ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा की दी हुई वेदवाणी को पाकर विद्वान् लोग समर्थ होकर आनन्द पावें ॥१॥

सूचना—पं० सेवकलाल कृष्णदास परिशोधित संहिता में इस मन्त्र का यह पाठ है—

यच्छक्र वाच आरुहन्नन्तरिक्षं सिषासतीः । सं देवो अमदद् वृषा ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) जब (अन्तरिक्षम्) हृदय आकाश को (सिषासतीः) सेवने की इच्छा करती हुई (वाचः) वाणियां (शक्रम्) समर्थ [जीव] को (आरुहन्) प्रकट हुई, [तब] (देवः) विजय चाहने वाले (वृषा) बलवान् पुरुष ने (सम्) ठीक ठीक (अमदत्) आनन्द पाया ॥१॥

भावार्थः—जब मनुष्य हृदय के भाव प्रकट करने के लिये परमेश्वर-नियम से बोलने की शक्ति पाता है, तब वह व्यवहारों की सिद्धि करके सुखी होता है ॥१॥

शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥२॥

[सूचना—पदपाठ के लिये मन्त्र १ देखो] ॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (शक्रः) शक्तिमान् तू (उरुवाचः) बहुत बड़ी वाणी वाले [परमेश्वर] की (वाचम्) वाणी को (अधृष्टाय) डरे हुए पुरुष के लिये (अधृष्णुहि) मत शक्तिहीन कर। वह [परमेश्वर] (मर्दिवि) दीनता जीतने में (आ) सब ओर से (मंहिष्ठः) अत्यन्त उदार है ॥२॥

भावार्थः— विद्वान् पुरुष दीन हीन पुरुषों के सुधार के लिये संकोच छोड़ कर शक्तिमती वेदवाणी का उपदेश करें, क्योंकि परमात्मा उद्योगी के लिये महादानी है ॥२॥

सूचना—पं० सेवकलाल कृष्णदास परिशोधित संहिता में इस मन्त्र का यह पाठ है —

शक्रं वाचाभिष्टुहि घोरं वाचाभिष्टुहि । मंहिष्ठ आ मदद्दिवि ॥२॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (वाचा) वाणी से (शक्रम्) शक्तिमान् [परमेश्वर] की (अभिष्टुहि) सब ओर से बड़ाई कर, (वाचा) वाणी से (घोरम्) भयङ्कर [विघ्ननाशक] की (अभिष्टुहि) सब प्रकार स्तुति कर। (मंहिष्ठः) वह अत्यन्त उदार (दिवि) जीतने की इच्छा में (आ) सब ओर से (मदत्) आनन्द दाता है ॥२॥

भावार्थः— मनुष्य अनेक विद्यायें प्राप्त करके जगदीश्वर परमात्मा के गुणों का ग्रहण करके संसार में विजयी होकर सुख पावें ॥२॥

शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति ।
विमदन् बर्हिरासरन् ॥३॥

[सूचना पदपाठ के लिये मन्त्र १ देखो] ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (शक्रः) शक्तिमान् तू (वाचम्) वाणी [वेद-वाणी] को (अधृष्णुहि) मत शक्तिहीन कर, वह [परमात्मा] (विमदन्) विशेष रीति से आनन्द करता हुआ, (बर्हिः) उत्तम आसन (आसरन्) पाता हुआ (धाम) धाम धाम [जगह जगह] और (धर्मन्) धर्म धर्म [प्रत्येक धारण करने योग्य कर्तव्य-व्यवहार] में (वि राजति) विराजता है ॥३॥

भावार्थः— समर्थ विद्वान् पुरुष वेदवाणी के उपदेश से शक्ति बढ़ावे, वह आनन्दस्वरूप परमात्मा अन्तर्यामी होकर सब को शक्ति देता है ॥३॥

सूचना — पं० सेवकलाल कृष्णदास परिशोधित संहिता में इस मन्त्र का यह पाठ है—

शक्रं वाचाभि ष्टुहि धामन्धामन् विराजति ।
विमदन् बर्हिरासदन् ॥३॥

भाषार्थः — [हे मनुष्य !] (वाचा) वाणी से (शक्रम्) शक्तिमान् [परमेश्वर] की (अभि ष्टुहि) सब ओर से बड़ाई कर, वह [परमात्मा] (विमदन्) विशेष रीति से आनन्द करता हुआ (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आ सदन्) बैठा हुआ (धामन्धामन्) धाम धाम [जगह जगह] में (वि राजति) विराजता है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य घट घट वासी परमात्मा का सदा ध्यान रख कर अपनी अवस्था सुधारता रहे ॥३॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४॥

भाषार्थः - [हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारे लिये (तम्) उस (दस्मम्) दर्शनीय, (ऋतिषहम्) शत्रुओं के हराने वाले, (वसोः) धन से और (अन्धसः) अन्न से (मन्दमानम्) आनन्द देने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा] को (गीर्भिः) वाणियों से (अभि) सब प्रकार (नवामहे) हम सराहते हैं, (न) जैसे (धेनवः) गौयें (स्वसरेषु) घरों में [वर्तमान] (वत्सम्) बछड़े को [हिङ्कारती हैं] ॥४॥

भावार्थः जो परमात्मा अनेक धन और अन्न आदि देकर हमें तृप्त करता है, उसे ऐसी प्रीति से हम स्मरण करें, जैसे गौयें दोहने के समय घर में बंध छोटे बच्चों को पुकारती हैं ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र ४ ७ ऊपर आ चुके हैं—अ० २०। ९। १—४॥

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥५॥

भाषार्थः—(द्युक्षम्) व्यवहारों में गति वाले, (सुदानुम्) बड़े दानी, (तविषीभिः) सेनाओं से (आवृतम्) भरपूर, (गिरिम् न) मेघ के समान (पुरुभोजसम्) बहुत पालन करने वाले, (क्षुमन्तम्) अन्न वाले, (वाजम्) बल वाले, (शतिनम्) सैकड़ों उत्तम पदार्थों वाले, (सहस्रिणम्) सहस्रों श्रेष्ठ गुण वाले, (गोमन्तम्) उत्तम गौओं वाले [शूर पुरुष] को (मक्षु) शीघ्र [इन्द्र परमात्मा से] (ईमहे) हम मांगते हैं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा से प्रार्थना करके प्रयत्न करें कि वे अपने सन्तानों अधिकारियों और प्रजाजनों सहित शूर वीर होकर व्यवहार-कुशल होवें ॥५॥

तत् त्वां यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥६॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] (त्वा) तुझ से (तत्) वह (सुवीर्यम्) बड़ा वीरत्व और (तत्) वह (ब्रह्म) बढ़ता हुआ अन्न (पूर्वचित्तये) पहिले ज्ञान के लिये (यामि) मैं मांगता हूं। (येन) जिस [वीरत्व और अन्न] से (धने हिते) धन के स्थापित होने पर (यतिभ्यः) यतियों [यत्नशीलों] के लिये (भृगवे=भृगुम्) परिपक्व ज्ञानी को और (येन) जिस से (प्रस्कण्वम्) बड़े बुद्धिमान् पुरुष को (आविथ) तू ने बचाया है ॥६॥

भावार्थः मनुष्यों को परमात्मा की उपासना कर के पुरुषार्थ के साथ पराक्रमी, अन्नवान् और धनी होना चाहिये, जिस के अनुकरण से प्रयत्नशील पुरुष सुरक्षित रहें ॥६॥

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।

सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥७॥

भाषार्थः—(येन) जिस [बल] से (समुद्रम्) समुद्र में (महीः) शक्ति वाले (अपः) जलों को (असृजः) तू ने उत्पन्न किया है, (इन्द्र) हे इन्द्र! [परम ऐश्वर्य-वान् जगदीश्वर] (तत्) वह (ते) तेरा (वृष्णि) पराक्रम युक्त (शवः) बल है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सद्यः) अभी (अस्य) उस [परमात्मा] की (सः) वह (महिमा) महिमा [हम से] (न) नहीं (संनशे) पाने योग्य है, (यम्) जिस [परमात्मा] को (क्षोणीः) लोकों ने (अनुचक्रदे) निरन्तर पुकारा है ॥७॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने मेघमण्डल में और पृथिवी पर जलादि पदार्थ और सब लोकों को उत्पन्न करके अपने वश में रक्खा है, उस की महिमा की सीमा को सृष्टि में कोई भी नहीं पा सकता ॥७॥

सूक्तम् ॥५०॥

१—२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ आर्ष्यनुष्टुप्; २ सतः पङ्क्तिः ॥

परमेश्वरस्य महिमोपदेशः—परमेश्वर की महिमा का उपदेश ॥

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।

नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥१॥

भाषार्थः—(अतसीनाम्) सदा चलती हुई [सृष्टियों] के (तुरः) वेग देने वाले [परमात्मा] के (नव्यः) अधिक नवीन कर्म को (मर्त्यः) मनुष्य (कत्) कैसे (गृणीत) बता सके ? (नु) क्या (अस्य) उस की (महिमानम्) महिमा और (इन्द्रियम्) इन्द्रपन [परम ऐश्वर्य] को (गृणन्तः) वर्णन करते हुए पुरुषों ने (स्वः) आनन्द (नहि) नहीं (आनशुः) पाया है ॥१॥

भावार्थः—यद्यपि अल्पज्ञ मनुष्य सब सृष्टियों के चलाने वाले जगदीश्वर के अनन्त गुणों को नहीं जान सकता, तो भी वह उसकी महिमा और परम ऐश्वर्य को विचारते विचारते और पुरुषार्थ करते करते अवश्य आनन्द पाता है ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में हैं—८ । ३ । १३, १४ ॥

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।

कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥२॥

भाषार्थः—(कत् उ) कैसे ही (स्तुवन्तः) स्तुति करने वाले लोगों ने (ऋतयन्त) सत्य धर्म को चाहा है ? (देवता) विद्वानों में (कः) कौन (ऋषिः) ऋषि [धर्म का साक्षात् करने वाला], (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (ओहते) सब प्रकार से विचार करे ? (मघवन्) हे अति पूजनीय ! (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (सुन्वतः) तत्त्व निचोड़ने वाले, (स्तुवतः) स्तुति करने वाले की (हवम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुकार को (कदा) कब और (कत्) कैसे (उ) निश्चय कर के (आ) सब प्रकार से (गमः) तू पहुँचा है ॥२॥

भावार्थः—जब ऋषि महात्मा भी परमात्मा को ठीक ठीक नहीं पहुंचते, तो हम अल्पज्ञ होकर उस तक कैसे पहुंचे ? हम ऐसी शङ्का करने लगते हैं। परन्तु परमात्मा अपनी शक्तिमत्ता से अपने भक्तों की पुकार सदा सुनता है, यह सोच कर हम अवश्य उसके लिये पुरुषार्थ करें ॥२॥

भगवान् यास्कमुनि ने कहा है—धर्म के साक्षात् करने वाले ऋषि हुए, उन्हों ने छोटों, धर्म के साक्षात् न करने वालों को उपदेश द्वारा मन्त्र दिये थे — निरु० १। २०॥

सूक्तम् ॥५१॥

१—४॥ इन्द्रो देवता॥ १ पथ्या बृहती; २ आर्षी पङ्क्तिः ३ निचृत् पथ्या बृहती; ४ सतः पङ्क्तिः॥

परमेश्वरोपासनोपदेशः—परमेश्वर की उपासना का उपदेश॥

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥१॥

भाषार्थः—[हे विद्वान्!] (सुराधसम्) सुन्दर धनों के देने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] को (अभि) सब ओर से (प्र) अच्छे प्रकार (वः) स्वीकार कर और (यथा) जैसा (विदे) वह है [वैसा उसे] (अर्च) पूज। (यः) जो (मघवा) पूजनीय, (पुरुवसुः) बड़ा धनी [परमेश्वर] (जरितृभ्यः) स्तुति करने वालों को (सहस्रेण इव) सहस्र प्रकार से (शिक्षति) देता है ॥१॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने हमें अनेक सुख दिये हैं, उस के गुणों को मनुष्य यथावत् जानकर उसकी सदा उपासना करे ॥१॥

मन्त्र १, २ ऋग्वेद में हैं—८। ४९। १, २ [सायणभाष्य परिशिष्ट, वालखिल्य १। १, २]। सामवेद—उ० २। १। १३ तथा मन्त्र १ पू० ३। ५। ३॥

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥२॥

भाषार्थः—(शतानीका इव) सैकड़ों सेना वाले [सेनापति] के समान (धृष्णुया) निर्भय [परमेश्वर] (प्र जिगाति) आगे बढ़ता है और (वृत्राणि) शत्रुओं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (दाशुषे) दाता [आत्मदानी उपासक] के लिए (हन्ति) मारता है। (गिरेः) पहाड़ से (रसाः इव) जलों के समान (अस्य) इस (पुरुभोजसः) बहुत भोजन वाले [परमेश्वर] के (दत्राणि) दानों को (प्र पिन्विरे) सींचते रहते हैं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा में आत्म समर्पण करके धन धान्य आदि बढ़ाकर आनन्द भोगें ॥२॥

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥३॥

भाषार्थः—(सु श्रुतम्) बड़े विख्यात, (सुराधसम्) सुन्दर धनों के देने वाले, (शक्रम्) शक्तिमान् [परमेश्वर] को (अभिष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिए (प्र अर्च) अच्छे प्रकार पूज। (यः) जो [परमात्मा] (सुन्वते) तत्त्व निचोड़ने वाले, (स्तुवते) स्तुति करने वाले को (काम्यम्) मन भावना (वसु) धन (सहस्रेण इव) सहस्र प्रकार से (मंहते) देता है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा अपने अनन्त भण्डार से अपने सेवकों की कामनायें पूरी करता है ॥३॥

मन्त्र ३, ४ ऋग्वेद में है—८। ५०। १,२ [सायणभाष्य परिशिष्ट, वालखिल्य]। १, २॥

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥४॥

भाषार्थः—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] की (महीः) पूजनीय (समिषः) यथावत् इच्छायें (शतानीकाः) सैकड़ों सेना दलों में वर्तमान (हेतयः) बाणों के समान (दुष्टराः) दुस्तर [अजेय] हैं। (गिरिः न) मेघ के समान, वह [परमात्मा] (भुज्मा) भोग्य पदार्थों को (मघवत्सु) गति वालों पर (पिन्वते) सींचता है, (यत्) जबकि (सुताः) पुत्र [के समान उपासक] (ईम्) प्राप्ति योग्य [परमेश्वर] को (अमन्दिषुः) प्रसन्न कर चुकें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा की अनन्त शक्तियां दुष्टों वा दोषों को इस प्रकार नाश करती हैं, जैसे बड़े सेनापति के हथियार। और जो उद्योगी उपासक उसकी आज्ञा मानते हैं, उनको वह मेह के समान अवश्य अत्यन्त सुख देता है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥५२॥

१—३॥ इन्द्रो देवता ॥ पथ्या बृहती ॥

परमात्मोपासनोपदेशः— परमात्मा की उपासना का उपदेश ॥

वयं घं त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥१॥

भाषार्थः—(वृत्रहन्) हे शत्रुनाशक ! [परमात्मन्] (सुतवन्तः) तत्त्व के धारण करने वाले, (वृक्तबर्हिषः) हिंसा त्यागने वाले [अथवा वृद्धि पाने वाले विद्वान्], (स्तोतारः) स्तुति करने वाले (वयम्) हम लोग (घ) निश्चय करके (त्वाम्) तुझको (परि आसते) सेवते हैं, (पवित्रस्य) शुद्ध स्थान के (प्रस्रवणेषु) झरनों में (आपः न) जैसे जल [ठहरते हैं] ॥१॥

भावार्थः—तत्त्वग्राही विद्वान् लोग उस परमात्मा के ही ध्यान में शान्ति पाते हैं, जैसे बहता हुआ पानी शुद्ध चौरस स्थान में आकर ठहर जाता है ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८ । ३३ । १-३, सामवेद उ० २ । २ तृच १२ और आगे है—अथर्व० २० । ५७ । १४-१६, तथा मन्त्र १ साम० पू० ३ । ७ । ६ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥२॥

भाषार्थः—(वसो) हे श्रेष्ठ ! [परमात्मन्] (उक्थिनः) कहने योग्य वचनों वाले (नरः) नर [नेता लोग] (निरेके) निःशङ्क स्थान में (सुते) सार पदार्थ के निमित्त (त्वा) तुझको (स्वरन्ति) पुकारते हैं—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (कदा) कब (तृषाणः) प्यासे [के समान] तू (सुतम्) पुत्र को (ओकः) घर में (आ गमः) प्राप्त होगा, (स्वब्दी इव) जैसे सुन्दर जल देने वाला मेघ (वंसगः) सेवनीय पदार्थों का प्राप्त कराने वाला [होता है] ॥२॥

भावार्थः—जब मनुष्य सार पदार्थ पाने के लिये परमात्मा की भक्ति निर्भय होकर करता है, परमात्मा उसको इस प्रकार चाहता है जैसे प्यासा जल को, और जगदीश्वर इस प्रकार उसका उपकार करता है, जैसे सूखा के पीछे मेह आनन्द देता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३॥

भाषार्थः—(धृष्णो) हे निर्भय ! [परमात्मन्] (धृषत्) दृढ़ता से (कण्वेभिः) बुद्धिमानों करके [किये हुये] (सहस्रिणम्) सहस्रों आनन्द वाले (वाजम्) वेग का (आ दर्षि) तू आदर करता है । (मघवन्) हे धन वाले ! (विचर्षणे) हे दूरदर्शी ! (पिशङ्गरूपम्) अवयवों को रूप देने वाले, (गोमन्तम्) वेदवाणी वाले [तुझ] से (मक्षु) शीघ्र (ईमहे) हम प्रार्थना करते हैं ॥३॥

भावार्थः—वह परमात्मा परमाणुओं से सूर्य आदि बड़े बड़े लोकों के बनाने वाला है, उस निर्भय की उपासना से मनुष्य धर्मात्मा होकर निर्भय होवें ॥३॥

सूक्तम् ॥५३॥

१—३॥ इन्द्रो देवता ॥ पथ्या बृहती छन्दः ॥

सेनानीलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षणों का उपदेश ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥१॥

भाषार्थः—(कः) कौन (सचा) नित्य मेल के साथ (सुते) तत्त्व रस (पिबन्तम्) पीते हुए (ईम्) प्राप्ति योग्य [सेनापति] को (वेद) जानता है ? (कत्) कितना (वयः) जीवन सामर्थ्य [पराक्रम] (दधे) वह रखता है ? (अयम्) यह (यः) जो (शिप्री) दृढ़ जाबड़े वाला, (अन्धसः) अन्न का (मन्दानः) आनन्द देने वाला [वीर] (ओजसा) बल से (पुरः) दुर्गों को (विभिनत्ति) तोड़ देता है ॥१॥

भावार्थः—जिस पराक्रमी पुरुष के शरीरबल और बुद्धिबल की थाह सामान्य मनुष्य नहीं जानते, वह नीतिज्ञ अन्न आदि पदार्थ एकत्र करके वैरियों को जीतता है ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८ । ३३ । ७—९, सामवेद—उ० ८ । २ । तृच १५, आगे है—अथ० २ । ५७ । ११—१३, मन्त्र १ सामवेद—पू० ४ । १ । ५ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(न) जैसे (मृगः) जंगली (वारणः) हाथी (दाना) मद के कारण (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से (चरथम्) झपट (दधे) लगाता है। [वैसे ही] (नकिः) कोई नहीं (त्वा) तुझे (नि यमत्) रोक सकता, (सुते) तत्त्व रस को (आ गमः) तू प्राप्त हो (महान्) महान् होकर तू (ओजसा) बल के साथ (चरसि) विचरता है ॥२॥

भावार्थः—जैसे वन का मदमत्त हाथी सब ओर बेरोक घूम कर उपद्रव मचाता है, वैसे ही नीतिज्ञ सेनापति तत्त्व विचार कर शत्रुओं को शीघ्र दबावे ॥२॥

य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो [वीर] (उग्रः) प्रचण्ड, (अनिष्टृतः) कभी न हराया गया, (स्थिरः) दृढ़ (सन्) होकर (रणाय) रण के लिये (संस्कृतः) संस्कार किये हुए है। (यदि) यदि (मघवा) वह महाधनी (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सेनापति] (स्तोतुः) स्तुति करने वाले की (हवम्) पुकार (शृणवत्) सुने, [तो] (न योषति) वह अलग न रहे, [किन्तु] (आ गमत्) आता रहे ॥३॥

भावार्थः—प्रतापी अजेय, युद्धकुशल सेनापति प्रजा की पुकार को सदा ध्यान देकर सुनता रहे ॥३॥

सूक्तम् ॥५४॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ स्वराड् जगती, २, ३ निचृद् बृहती ॥

राजप्रजाधर्मोपदेशः—राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥१॥

भाषार्थः—(विश्वाः) सब (पृतनाः) सङ्ग्रामों के (अभिभूतरम्) अत्यन्त मिटाने वाले, (क्रत्वा) अपनी बुद्धि से (वरे) श्रेष्ठ व्यवहार में (वरिष्ठम्) अति श्रेष्ठ, (आमुरिम्) शत्रुओं के घेर लेने [वा मार डालने] वाले, (उग्रम्) प्रचण्ड (ओजिष्ठम्) अत्यन्त पराक्रमी, (तवसम्) महाबली (उत) और (तरस्विनम्) बड़े उत्साही (नरम्) नर को (राजसे) राज्य के लिये (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] को (सजूः) मिलकर (ततक्षुः) उन्होंने [प्रजाजनों ने] बनाया (च) और (जजनुः) प्रसिद्ध किया है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—प्रजागणों को उचित है कि जो मनुष्य सब में श्रेष्ठ गुणी प्रतापी होवे, उसी को सब मिलकर रक्षा के लिये राजा बनावें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है ८-९७ [सायणभाष्य ८६] । १०—१२ । कुछ भेद से सामवेद–उ० ३ । १ । तृच १४ । तथा म० १–पू० ४ । ६ । १ ॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥२॥

भाषार्थः—(रेभासः) पुकारने वाले [प्रजागण] (सोमस्य) तत्त्व रस के (पीतये) पीने के लिये (यत्) जब (ईम् ईम्) अवश्य प्राप्ति के योग्य (स्वर्पतिम्) सुख के रक्षक (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] को (सम्) मिलकर (अस्वरन्) पुकारने लगे, [तब] (वृधे) बढ़ती के लिये (धृतव्रतः) नियम धारण करने वाला [वह पुरुष] (हि) निश्चय करके (ओजसा) बल से और (ऊतिभिः) रक्षाओं से (सम्) मिलकर [उन्हें पुकारने लगा] ॥२॥

भावार्थः—प्रजागण अपनी रक्षा के लिये राजा की सहायता चाहें, और राजा राज्य की रक्षा के लिये उन से सहायता ले, इस प्रकार राजा और प्रजा परस्पर प्रीति करके आनन्द भोगें ॥२॥

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (विप्राः) बुद्धिमान् (सुदीतयः) बहुत प्रकाश वाले, (अद्रुहः) द्रोह न करने वाले, (तरस्विनः) बड़े उत्साह वाले पुरुष (वः) तुम्हारे लिये (कर्णे) कान में (अपि) ही (अभिस्वरा) सब प्रकार से वाणी के साथ (ऋक्वभिः) स्तुतिवाले कर्मों द्वारा (नेमिम्) नेता (मेषम्) सुख से सींचने वाले [वीर] को (चक्षसा) दर्शन के साथ (सम्) मिलकर (नमन्ति) झुकते हैं ॥३॥

भावार्थः—उत्साही बुद्धिमान् लोग प्रजा के सुख के लिये राजा को सुन्दर नियमों और सत्कार के साथ धर्मपथ का निवेदन करें ॥३॥

सूक्तम् ॥५५॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ अतिजगती, २ विराट् पथ्या बृहती, ३ निचृत्पथ्या बृहती ॥

राजकृत्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि । मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥१॥

भाषार्थः—(मघवानम्) अत्यन्त धनी, (उग्रम्) प्रचण्ड, (सत्रा) सच्चे (शवांसि) बलों के (दधानम्) धारण करने वाले (अप्रतिष्कुतम्) बेरोक गति वाले (तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को (जोहवीमि) मैं वार वार पुकारता हूं । (मंहिष्ठः) वह अत्यन्त उदार (यज्ञियः) पूजा योग्य (च) और (वज्री) वज्रधारी [शस्त्र अस्त्र वाला] (गीर्भिः) हमारी वाणियों से (नः) हम को (राये) धन के लिये (आ) सब प्रकार (ववर्तत्) वर्तमान करे, और (विश्वा) सब कर्मों को (सुपथा) सुन्दर मार्ग वाला (कृणोतु) बनावे ॥१॥

भावार्थः—राजा प्रजा की पुकार सुनकर उन्हें सुमार्ग में चलाकर धन प्राप्त करावे ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८ । ९७ [सायण भाष्य ८६] । १३, १, २, मन्त्र १ सामवेद पू० ५ । ८ । ४ और मन्त्र २ पू० ३ । ७ । २ ॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (स्वर्वान्) आनन्दयुक्त तू (याः) जिन (भुजः) भोग सामग्रियों को (असुरेभ्यः) दुष्ट मनुष्यों से (आ अभरः) लाया है, (मघवन्) हे बड़े धनी ! (अस्य) उस अपने (स्तोतारम्) स्तुति करने वाले को (इत्) अवश्य (वर्धय) बढ़ा (च) और [उन्हें भी], (ये) जो (त्वे) तुझ में (वृक्तबर्हिषः) वृद्धि पाने वाले हैं ॥२॥

भावार्थः—राजा दुष्टों का धन हरण करके शिष्टों का पालन करे ॥२॥

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (यम्) जिस (अश्वम्) घोड़े को (गाम्) गौ को और (अव्ययम्) अक्षय (भागम्) सेवनीय धन को (त्वम्) तू (दधिषे) धारण करता है, (तम्) उसको (तस्मिन्) उस (सुन्वति) तत्त्व-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निचोड़ने वाले, (दक्षिणावति) दक्षिणा [प्रतिष्ठा के दान] वाले (यजमाने) यजमान [यज्ञ श्रेष्ठ कर्म करने वाले] में (धेहि) धारण कर और (पणौ) कुव्यवहारी में (मा) नहीं ॥३॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि अवसर विचार कर घोड़े, गौयें, सुवर्ण आदि धन दक्षिणा देकर सुपात्रों का सन्मान करे ॥३॥

सूक्तम् ॥५६॥

१—६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, २, ४, ६ विराट् पङ्क्तिः, ३ निचृत् पङ्क्तिः, ५ विराडार्षी पङ्क्तिः ॥

सभापतिलक्षणोपदेशः—सभापति के लक्षण का उपदेश ॥

इन्द्रो मदा॑य वावृधे॒ शव॑से वृत्र॒हा नृभिः॑ ।
तमिन्म॒हत्स्वा॒जिषू॒तेमर्भे॑ हवामहे॒ स वाजे॑षु॒ प्र नो॑ऽविषत् ॥१॥

भाषार्थः—(वृत्रहा) रोकने वाले शत्रुओं का नाश करने वाला (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सभापति] (मदाय) आनन्द और (शवसे) बल के लिये (नृभिः) नरों [नेताओं] के साथ (ववृधे) बढ़ा है। (तम् ईम्) उस प्राप्ति योग्य को (इत्) ही (महत्सु) बड़े (आजिषु) संग्रामों में (उत) और (अर्भे) छोटे [संग्राम] में (हवामहे) हम बुलाते हैं, (सः) वह (वाजेषु) सङ्ग्रामों में (नः) हमें (प्र) अच्छे प्रकार (अविषत्) बचावे ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रजा की भलाई के लिये पराक्रम करके शत्रुओं को मारे, उसी हितैषी को सेनापति बनाना चाहिये ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१ । ८१ । १—३, ७—९ । तृच १ कुछ भेद से सामवेद में है—उ० ३ । २ । तृच १४, मन्त्र १, पू० ५ । ३ । ३ ॥

असि॒ हि वी॑र॒ सेन्यो॒ऽसि॒ भूरि॑ परा॒द॒दिः । असि॑ द॒भ्रस्य॑
चिद् वृधो यज॑मानाय शिक्षसि सु॒न्वते॒ भूरि॑ ते॒ वसु॑ ॥२॥

भाषार्थः—(वीर) हे वीर तू (हि) ही (सेन्यः) सेनाओं का हितकारी (असि) है, (भूरि) बहुत प्रकार से (परादविः) शत्रुओं का पकड़ने वाला (असि) है। तू (दभ्रस्य) छोटे पुरुष का (चित्) अवश्य (वृधः) बढ़ाने वाला (असि) है, तू (सुन्वते) तत्त्व निचोड़ने वाले (यजमानाय) यजमान को (ते) अपना (भूरि) बहुत (वसु) धन (शिक्षसि) देता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वीर सेना हितकारी योग्य छोटे अधिकारियों को बढ़ाकर श्रेष्ठों का मान करे ॥२॥

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना युक्ष्वा
मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३॥

भावार्थः (यत्) जब (आजयः) सङ्ग्राम (उदीरते) उठते हैं, (धृष्णवे) निर्भय पुरुष के लिये (धना) धन (धीयते) धरा जाता है। (मदच्युता) आनन्द देने वाले (हरी) दो घोड़ों [के समान बल और पराक्रम] को (युक्ष्व) जोड़, (कम्) किस [शत्रु] को (हनः) तू मारेगा? (कम्) किस [मित्र] को (वसौ) धन के बीच (दधः) तू रक्खेगा? (इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] (अस्मान्) हमें तू (वसौ) धन में (दधः) रख ॥३॥

भावार्थः—विजय पाने पर वीर पुरुष धन पाता है, यह विचार कर राजा बल और पराक्रम से युद्ध सामग्री एकत्र करके शत्रुओं को मारता हुआ और मित्रों का सत्कार करता हुआ प्रजा की उन्नति करे ॥३॥

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः। सं गृभाय
पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥४॥

भावार्थः—(ऋजुक्रतुः) सच्ची बुद्धि वा कर्म वाला तू (मदेमदे) आनन्द आनन्द पर (हि) निश्चय करके (नः) हम को (गवाम्) गो आदि पशुओं के (यूथा) समूहों का (ददिः) देने वाला है, (उभयाहस्त्या) दोनों हाथों से (पुरु) बहुत (शता) सैकड़ों (वसु) धनों को (संगृभाय) संग्रह कर, (शिशीहि) तीक्ष्ण हो और (रायः) धनों को (आ) सब ओर से (भर) भर ॥४॥

भावार्थः—बुद्धिमान् राजा आनन्द के प्रत्येक अवसर पर योग्य पुरुषों का सत्कार करे और उचित व्यय करने के लिये सदा धन का संग्रह करता रहे ॥४॥

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे। विद्मा हि
त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥५॥

भावार्थः—(शूर) हे शूर! (सुते) उत्पन्न जगत् में (सचा) नित्य मेल के साथ (शवसे) बल के लिये और (राधसे) धन के लिये (मादयस्व) आनन्द दे। (त्वा) तुझ को (हि) निश्चय करके (पुरुवसुम्) बहुतों में श्रेष्ठ (विद्म) हम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानते हैं, और (कामान्) मनोरथों को (उप) समीप से (ससृज्महे) हम सिद्ध करते हैं, (अथ) इस लिये तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (भव) हो ॥५॥

भावार्थः—बल और धन की वृद्धि के लिये शूर सेनापति के आश्रय से मनोरथ सिद्ध करके रक्षा करे ॥५॥

एते तं इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् । अन्तर्हि
ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (ते) तेरे लिये (एते) यह (जन्तवः) लोग (विश्वम्) सब (वार्यम्) स्वीकार योग्य पदार्थ को (पुष्यन्ति) पुष्ट करते हैं। (अर्यः) स्वामी तू (तेषाम्) उन (जनानाम्) मनुष्यों के (अन्तः) बीच (हि) निश्चय करके (अदाशुषाम्) अदानी लोगों की (वेदः) समझ को (ख्यः) देख और (नः) हमारे लिये (वेदः) विज्ञान को (आ) सब प्रकार (भर) प्राप्त करा ॥६॥

भावार्थः—जैसे प्रजागण श्रेष्ठ पदार्थों के दान से राजभक्ति करें, वैसे ही राजा अदाताओं से प्रजा की रक्षा करके विज्ञान की वृद्धि करे ॥६॥

सूक्तम् ॥५७॥

१–१६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, २, ४–६, ८, ९ गायत्री; ३ विराडार्षी गायत्री; ७ अनुष्टुप्, १० निचृद् गायत्री, ११–१६ पथ्या बृहती ॥

१—१० मनुष्यकर्तव्योपदेशः=१—१० मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१॥

भाषार्थः—(सुरूपकृत्नुम्) सुन्दर स्वभावों के बनाने वाले [राजा] को (ऊतये) रक्षा के लिये (द्यविद्यवि) दिन दिन (जुहूमसि) हम बुलाते हैं, (इव) जैसे (सुदुघाम्) बड़ी दुधेल गौ को (गोदुहे) गौ दोहने वाले के लिये ॥१॥

भावार्थः—जैसे दुधेल गौ को दूध दोहने के लिये प्रीति से बुलाते हैं, वैसे ही प्रजागण विद्या आदि शुभ गुणों के बढ़ाने वाले राजा का आश्रय लेकर उन्नति करें ॥१॥

म० १—३ ऋग्वेद में है—१।४।१—३ और आगे है अ० २०। ६८।१—३॥

उपं नः सवना गंहि सोमंस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद् रेवतो मदंः ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सोमपाः) हे ऐश्वर्य के रक्षक ! [राजन्] (नः) हमारे लिये (सवना) ऐश्वर्य युक्त पदार्थों को (उप) समीप से (आ गहि) तू प्राप्त हो और (सोमस्य) सोम [तत्त्व रस] का (पिब) पानकर, (रेवतः) धनवान् पुरुष का (मदः) हर्ष (इव) ही (गोदाः) दृष्टि का देने वाला है ॥२॥

भावार्थः—राजा ऐश्वर्यवान् और दूरदर्शी होकर प्रसन्नतापूर्वक प्रजा को ज्ञानवान् बनावे ॥२॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (अथ) और (ते) तेरी । (अन्तमानाम्) अत्यन्त समीप रहने वाली (सुमतीनाम्) सुन्दर बुद्धियों का (विद्याम) हम ज्ञान करें । तू (नः) हमें (अति) छोड़कर (मा ख्यः) मत बोल, (आ गहि) तू आ ॥३॥

भावार्थः—जब राजा पूर्ण प्रीति से प्रजापालन करता है, प्रजागण उस की धार्मिक नीतियों से लाभ उठाकर उस से प्रीति करते हैं ॥३॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥४॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (शुष्मिन्तमम्) अत्यन्त बलवान्, (द्युम्निनम्) अत्यन्त धनी वा यशस्वी और (जागृविम्) जागने वाले [चौकस] पुरुष की और (सोमम्) ऐश्वर्य की (पाहि) रक्षा कर ॥४॥

भावार्थः—राजा धर्मात्मा शूर वीरों की और सब के ऐश्वर्य की यथावत् रक्षा करके प्रजा का पालन करे ॥४॥

मन्त्र ४—१० आ चुके हैं—अ० २० । २० । १—७ ।

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥५॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (या) जो (ते) तेरे (इन्द्रियाणि) इन्द्र [ऐश्वर्यवान्] के चिह्न धनादि (पञ्चसु जनेषु) पंच [मुख्य] लोगों में हैं । (ते) तेरे (तानि) उन [चिह्नों] को (आ) सब प्रकार (वृणे) मैं स्वीकार करता हूं ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—बुद्धिमान् धार्मिक राजा बड़े बड़े अधिकारियों का आदर करके प्रजा की रक्षा करे ॥५॥

अगंन्निन्द्र श्रवों बृहद् द्युम्नं दंधिष्व दुष्टरंम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ६॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (बृहत्) बड़ा (श्रवः) अन्न [हमको] (अगन्) प्राप्त हुआ है, (दुस्तरम्) दुस्तर [अजेय] (द्युम्नम्) चमकने वाले यश को (दधिष्व) तू धारण कर, (ते) तेरे (शुष्मम्) बल को (उत् तिरामसि) हम बढ़ाते हैं ॥६॥

भावार्थः—जिस राजा के कारण बहुत अन्न आदि पदार्थ मिलें, प्रजागण उस के बल बढ़ाने में सदा प्रयत्न करें ॥६॥

अर्वावतों न आ गह्यथों शक्र परावतः ।
उ लोको यस्तें अद्रिव इन्द्रेह तत आ गंहि ॥७॥

भाषार्थः—(शक्र) हे समर्थ ! (अर्वावतः) समीप से (अथो) और (परावतः) दूर से (नः) हमें (आ गहि) प्राप्त हो, (अद्रिवः) हे वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (उ) और (यः) जो (ते) तेरा (लोकः) स्थान है, (ततः) वहां से (इह) यहां पर (आ गहि) तू आ ॥७॥

भावार्थः—राजा अधिकारियों द्वारा समीप और दूर से प्रजा की सुधि रक्खे और उनको आप भी जा कर देखा करे ॥७॥

इन्द्रों अङ्ग महद् भयमभी षदपं चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचंर्षणिः ॥८॥

भाषार्थः—(अङ्ग) हे विद्वान् ! (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] ने (महत्) बड़े और (अभि) सब ओर से (सत्) वर्तमान (भयम्) भय को (अव चुच्यवत्) हटा दिया है । (सः हि) वही (स्थिरः) दृढ़ और (विचर्षणिः) विशेष देखने वाला है ॥८॥

भावार्थः—राजा दृढ़स्वभाव और सावधान रहकर दुष्टों से प्रजा की रक्षा करे ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥९॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (च) निश्चय करके (नः) हमें (मृडयाति) सुखी करे, (अघम्) पाप (नः) हम को (पश्चात्) पीछे (न) न (नशत्) नाश करे। (भद्रम्) कल्याण (नः) हमारे लिये (पुरस्तात्) आगे (भवाति) होवे ॥९॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि धर्मात्मा राजा के प्रबन्ध में रह-कर पापों से बच कर सुख भोगें ॥९॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥१०॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (सर्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः) आशाओं [गहरी इच्छाओं] के लिये (अभयम्) अभय (परि) सब ओर से (करत्) करे। वह (शत्रून् जेता) शत्रुओं को जीतने वाला और (विचर्षणिः) विशेष देखने वाला है ॥१०॥

भावार्थः—राजा अपने न्याययुक्त प्रबन्ध से विघ्नों को हटाकर प्रजा की उन्नति की गहरी इच्छाओं को पूरा करे ॥१०॥

मन्त्राः ११ - १३ सेनानीलक्षणोपदेशः – मन्त्र ११—१३ सेनापति के लक्षणों का उपदेश ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥११॥

भाषार्थः—(कः) कौन (सचा) नित्य मेल के साथ (सुते) तत्त्वरस (पिबन्तम्) पीते हुए (ईम्) प्राप्ति योग्य [सेनापति] को (वेद) जानता है ? (कत्) कितना (वयः) जीवन सामर्थ्य [पराक्रम] (दधे) वह रखता है ? (अयम्) यह (यः) जो (शिप्री) दृढ़ जाबड़े वाला, (अन्धसः) अन्न का (मन्दानः) आनन्द देने वाला [वीर] (ओजसा) बल से (पुरः) दुर्गों को (विभिनत्ति) तोड़ देता है ॥११॥

भावार्थः—जिस पराक्रमी पुरुष के शरीरबल और बुद्धिबल की थाह सामान्य पुरुष नहीं जानते, वह नीतिज्ञ अन्न आदि पदार्थ एकत्र कर के वैरियों को जीतता है ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र ११—१३ आ चुके हैं—अ० २० । ५३ । १—३ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥१२॥

भाषार्थः—(न) जैसे (मृगः) जंगली (वारणः) हाथी (दाना) मद के कारण (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से (चरथम्) झपट (दधे) लगाता है। [वैसे ही] (नकिः) कोई नहीं (त्वा) तुझे (नि यमत्) रोक सकता, (सुते) तत्त्वरस को (आ गमः) तू प्राप्त हो, (महान्) महान् होकर तू (ओजसा) बल के साथ (चरसि) विचरता है ॥१२॥

भावार्थः—जैसे वन का मदमत्त हाथी सब ओर बेरोक घूमकर उपद्रव मचाता है, वैसे ही नीतिज्ञ सेनापति तत्त्व विचार कर शत्रुओं को शीघ्र दबावे ॥१२॥

य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥१३॥

भाषार्थः—(यः) जो [वीर] (उग्रः) प्रचण्ड, (अनिष्टृतः) कभी न हराया गया, (स्थिरः) दृढ़ (सन्) होकर (रणाय) रण के लिये (संस्कृतः) संस्कार किये हुए है। (यदि) यदि (मघवा) वह महाधनी (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सेनापति] (स्तोतुः) स्तुति करने वाले की (हवम्) पुकार (शृणवत्) सुने, [तो] (न योषति) वह अलग न रहे, [किन्तु] (आ गमत्) आता रहे ॥१३॥

भावार्थः—प्रतापी, अजेय, युद्ध कुशल सेनापति प्रजा की पुकार को सदा ध्यान देकर सुनता रहे ॥१३॥

मन्त्राः १४—१६ परमात्मोपासनोपदेशः । मन्त्र १४ १६ परमात्मा की उपासना का उपदेश ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥१४॥

भाषार्थः—(वृत्रहन्) हे शत्रुनाशक ! [परमात्मन्] (सुतवन्तः) तत्त्व के धारण करने वाले, (वृक्तबर्हिषः) हिंसा त्यागने वाले [अथवा वृद्धि पाने वाले विद्वान्], (स्तोतारः) स्तुति करने वाले (वयम्) हम लोग (घ) निश्चय करके (त्वा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझ को (परि आसते) सेवते हैं, (पवित्रस्य) शुद्ध स्थान के (प्रस्रवणेषु) झरनों में (आपः न) जैसे जल [ठहरते हैं] ॥१४॥

भावार्थः– तत्त्वग्राही विद्वान् लोग उस परमात्मा के ही ध्यान में शान्ति पाते हैं, जैसे बहता हुआ पानी शुद्ध चौरस स्थान में आकर ठहर जाता है ॥१४॥

मन्त्र १४—१६ आचुके हैं—अ० २०।५२।१—३ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥१५॥

भाषार्थः—(वसो) हे श्रेष्ठ ! [परमात्मन्] (उक्थिनः) कहने योग्य वचनों वाले (नरः) नर [नेता लोग] (निरेके) निःशंक स्थान में (सुते) सार पदार्थ के निमित्त (त्वा) तुझ को (स्वरन्ति) पुकारते हैं—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (कदा) कब (तृषाणः) प्यासे [के समान] तू (सुतम्) पुत्र को (ओकः) घर में (आ गमः) प्राप्त होगा, (स्वब्दीइव) जैसे सुन्दर जल देने वाला मेघ (वंसगः) सेवनीय पदार्थों का प्राप्त कराने वाला [होता है] ॥१५॥

भावार्थः जब मनुष्य सार पदार्थ पाने के लिये परमात्मा की भक्ति निर्भय होकर करता है, परमात्मा उसको इस प्रकार चाहता है जैसे प्यासा जल को, और इस प्रकार उसका उपकार करता है, जैसे सूखा के पीछे मेह आनन्द देता है ॥१५॥

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥१६॥

भाषार्थः -(धृष्णो) हे निर्भय ! [परमात्मन्] (धृषत्) दृढ़ता से (कण्वेभिः) बुद्धिमानों करके [किये हुए] (सहस्रिणम्) सहस्रों आनन्द वाले (वाजम्) वेग का (आ दर्षि) तू आदर करता है, (मघवन्) हे धन वाले ! (विचर्षणे) हे दूरदर्शी ! (पिशङ्गरूपम्) अवयवों को रूप देने वाले, (गोमन्तम्) वेदवाणी वाले [तुझ] से (मक्षु) शीघ्र (ईमहे) हम प्रार्थना करते हैं ॥१६॥

भावार्थः—वह परमात्मा परमाणुओं से सूर्य आदि बड़े बड़े लोकों का बनाने वाला है, उस निर्भय की उपासना से मनुष्य धर्मात्मा होकर निर्भय होवें ॥१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥५८॥

१—४ ॥ १, २ इन्द्रः, ३, ४ सूर्यो देवता ॥ १, ३ निचृत्पथ्या बृहती, २ सतः पङ्क्तिः, ४ भुरिगार्षी बृहती ॥

ईश्वरविषयोपदेशः—ईश्वर विषय का उपदेश ॥

आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (सूर्यम्) सूर्य [रवि] का (आयन्तः इव) आश्रय करते हुए [किरणों] के समान (इन्द्रस्य) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] के (ओजसा) सामर्थ्य से (विश्वा) सब (इत्) ही (वसूनि) वस्तुओं को (भक्षत) भोगो, [उन को] (जाते) उत्पन्न हुए और (जनमाने) उत्पन्न होने वाले जगत् में (भागम् न) अपने भाग के समान (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (दीधिम) हम प्रकाशित करें ॥१॥

भावार्थः—जैसे किरणें सूर्य के आश्रय से रहती हैं, वैसे ही परमात्मा का आश्रय लेकर संसार के पदार्थों से उपकार लेते हुए हम आगे होने वालों के लिये पिता के धन के समान अपना कर्म छोड़ जावें ॥१॥

मन्त्र १, २ ऋग्वेद में हैं—८ । ९९ [सायणभाष्य ८८] । ३, ४, सामवेद—उ० ५ । २ । १४, म० १—पू० ३ । ८ । ५ तथा यजुर्वेद—३३ । ४१ ॥

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (अनर्शरातिम्) निर्दोष दानी, (वसुदाम्) धन देने वाले [परमात्मा] की (उप) आदर पूर्वक (स्तुहि) स्तुति कर, (इन्द्रस्य) उस इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] के (रातयः) दान (भद्राः) कल्याणकारी हैं । (सः) वह [परमात्मा] (विधतः) सेवक के (मनः) मन को (दानाय) दान के लिये (चोदयन्) बढ़ाता हुआ (अस्य) उसकी (कामम्) इच्छा को (न) नहीं (रोषति) नष्ट करता है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा के अक्षय भण्डार से अनन्त दानों को पाकर सदा उपकार में लगावे ॥२॥

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सूर्य) हे चराचर के प्रेरक [परमेश्वर] तू (बट्) सत्य सत्य (महान्) बड़ा (असि) है, (आदित्य) हे अविनाशी ! तू (बट्) ठीक ठीक (महान्) महान् [पूजनीय] (असि) है। (ते) तुझ (महः) महान्, (सतः) सत्य स्वरूप की (महिमा) महिमा (पनस्यते) स्तुति की जाती है, (देव) हे दिव्य गुण वाले तू (अद्धा) निश्चय करके (महान्) महान् (असि) है। ३।।

भावार्थः – जिस परमात्मा की महिमा सब सृष्टि के पदार्थ जताते हैं, सब मनुष्य उसकी उपासना करके अपनी उन्नति करें।।३।।

मन्त्र ३ कुछ भेद से आचुका है—अ० १३। २। २६। मन्त्र ३, ४ ऋग्वेद में हैं– ८। १०१ [सायणभाष्य ९०]। ११, १२, यजुर्वेद ३३। ३६, ४०। और सामवेद—उ० ६। १। ६।।

बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ।।४।।

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य ! [सूर्य के समान सब के प्रकाशक परमेश्वर] तू (श्रवसा) यश वा धन से (बट्) सचमुच (महान्) बड़ा (असि) है, (देव) हे सुखदाता तू (सत्रा) सचमुच (महान्) बड़ा (असि) है। (देवानाम्) चलने वाले लोकों के बीच (मह्ना) अपनी बड़ाई से तू (असुर्यः) प्राणियों वा बुद्धि वालों का हितकारी (पुरोहितः) पुरोहित [अगुआ] और (विभु) व्यापक (अदाभ्यम्) न दबने योग्य (ज्योतिः) ज्योति है।।४।।

भावार्थः—जो प्रकाशस्वरूप, सब का पुरोहित अर्थात् मुखिया होकर सब प्राणियों का हित करता है, मनुष्य उसकी आराधना कर के आत्मबल बढ़ावें।।४।।

सूक्तम् ।।५९।।

मन्त्राः १—४ ।। इन्द्रो देवता ।। १ पथ्या बृहती, २, ४ निचृदार्षी पङ्क्तिः, ३ निचृदार्षी बृहती ।।

१—२ ईश्वरोपासनोपदेशः=१—२ ईश्वर की उपासना का उपदेश ।।

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ।।१।।

भाषार्थः—(त्ये) वे (मधुमत्तमाः) अतिमधुर (स्तोमासः) स्तोत्र (उ) और (गिरः) वाणियां (उत् ईरते) ऊंची जाती हैं। (इव) जैसे (सत्राजितः) सत्य से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीतने वाले, (धनसाः) धन देने वाले, (अक्षितोतयः) अक्षय रक्षा करने वाले, (वाजयन्तः) बल प्रकट करते हुए (रथाः) रथ [आगे बढ़ते हैं] ॥१॥

भावार्थः—जैसे शूर वीरों के रथ रणक्षेत्र में विजय पाने के लिये उमंग से चलते हैं, वैसे ही मनुष्य दोषों और दुष्टों को वश में करने के लिये परमात्मा की स्तुति को किया करें ॥१॥

मन्त्र १, २ आ चुके हैं—अ० २०। १०। १—२॥

कण्वा॑ इ॒व भृग॑वः॒ सूर्या॑ इ॒व विश्व॒मिद्धी॒तमा॑नशुः ।
इन्द्रं॒ स्तोमे॑भि॒र्मह॑यन्त आ॒यवः॑ प्रि॒यमे॑धासो अस्वरन् ॥२॥

भाषार्थः—(कण्वाः इव) बुद्धिमानों के समान, और (सूर्याः इव) सूर्यों के समान [तेजस्वी], (भृगवः) परिपक्व ज्ञान वाले, (महयन्तः) पूजते हुए, (प्रियमेधासः) यज्ञ को प्रिय जानने वाले (आयवः) मनुष्यों ने (विश्वम्) व्यापक, (धीतम्) ध्यान किये गये (इन्द्रम्) इन्द्र [परमात्मा] को (इत्) ही (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (आनशुः) पाया है और (अस्वरन्) उच्चारा है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य बुद्धिमानों और सूर्यों के समान प्रतापी होकर परमात्मा के गुणों को गाते हुए आत्मोन्नति करें ॥२॥

३—४ राजप्रजाकर्तव्योपदेशः=३—४ राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

उदिन्न्व॑स्य रिच्य॒तेंऽशो॒ धनं॒ न जि॒ग्युषः॑ । य इन्द्रो॒
हरि॑वा॒न्न द॑भन्ति॒ तं रिपो॒ दक्षं॑ दधाति सो॒मिनि॑ ॥३॥

भाषार्थः—(अस्य) उस [राजा] का (इत्) ही (अंशः) भाग (जिग्युषः) विजयी वीर के (धनं न) धन के समान (नु) शीघ्र (उत् रिच्यते) बढ़ता जाता है, (यः) जो (हरिवान्) श्रेष्ठ मनुष्यों वाला (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (सोमिनि) तत्त्व रस वाले व्यवहार में (दक्षम्) बल को (दधाति) लगाता है, और (तम्) उस [राजा] को (रिपः) वैरी लोग (न) नहीं (दभन्ति) सताते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो राजा अपने बल को श्रेष्ठ व्यवहारों में लगाता है, वह राज्य में उन्नति कर के प्रतिष्ठा पाता है ॥३॥

मन्त्र ३, ४ ऋग्वेद में हैं—७। ३२। १२, १३॥

मन्त्र॒मख॑र्वं॒ सुधि॑तं सु॒पेश॑सं॒ दधा॑त य॒ज्ञिये॒ष्वा ।
पू॒र्वीश्च॒न प्रसि॑तयस्तरन्ति॒ तं य इन्द्रे॒ कर्म॑णा॒ भुव॑त् ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे मनुष्यो!] (**अखर्वम्**) अनचि [धार्मिक], (**सुधितम्**) अच्छे प्रकार व्यवस्था किये गए, (**सुपेशसम्**) बहुत सोना आदि धन करने वाले (**मन्त्रम्**) मन्त्र [मन्तव्य विचार] को (**यज्ञियेषु**) पूजा योग्य व्यवहारों में (**आ**) सब ओर से (**दधात**) धारण करो। (**पूर्वीः**) प्राचीन (**चन**) ही (**प्रसितयः**) उत्तम प्रबन्ध (**तम्**) उस मनुष्य को (**तरन्ति**) पार लगाते हैं, (**यः**) जो पुरुष (**इन्द्रे**) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यं वाले राजा] के निमित्त (**कर्मणा**) क्रिया के साथ (**भुवत्**) होवे ।।४।।

भावार्थः—राजा और विद्वान् जन मिलकर गूढ़ विचारों के साथ सर्वहितकारी काम करके आपस में प्रीति बढ़ावें ।।४।।

सूक्तम् ।।६०।।

१—६ ।। इन्द्रो देवता ।। १ विराडार्षी गायत्री, २, ५ गायत्री, ३, ४ निचृद् गायत्री, ६ वर्धमाना गायत्री ।।

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ।।

एवा ह्यसि॑ वीर॒युरे॒वा शूर॑ उ॒त स्थि॒रः । ए॒वा ते॒ राध्यं॒ मनः॑ ।।१।।

भाषार्थः—[हे पुरुष!] तू (**एव**) निश्चय करके (**हि**) ही (**वीरयुः**) वीरों का चाहने वाला, (**एव**) निश्चय करके (**शूरः**) शूर (**उत**) और (**स्थिरः**) दृढ़ (**असि**) है, (**एव**) निश्चय करके (**ते**) तेरा (**मनः**) मन [विचार सामर्थ्य] (**राध्यम्**) बड़ाई योग्य है ।।१।।

भावार्थः—मनुष्य धार्मिक सत्य सङ्कल्पों की पूर्ति के लिये सदा दृढ़ प्रयत्न करे ।।१।।

मन्त्र १—३ ऋग्वेद में है—८ । ९२ [सायण भाष्य ८१] । २८—३०, सामवेद—उ० २ । १ । तृच १८, मन्त्र १—पू० ३ । ४ । १० ।।

ए॒वा रा॒तिस्तु॑वीमघ॒ विश्वे॑भिर्धायि धा॒तृभिः॑ ।
अधा॑ चिदिन्द्र मे॒ सचा॑ ।।२।।

भाषार्थः—(**तुविमघ**) हे बहुत धन वाले! (**रातिः**) [तेरा] दान (**एव**) निश्चय करके (**विश्वेभिः**) सब (**धातृभिः**) कर्मधारियों कर के (**धायि**) धारण किया गया है, (**अध**) सो, (**इन्द्र**) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (**मे**) मेरे लिये (**चित्**) भी (**सचा**) नित्य मेल से [रह] ।।२।।

भावार्थः—वीर पुरुष बहुत धन को एकत्र करके अपने कर्मकारियों को सदा प्रसन्न रक्खे ।।२।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३॥

भाषार्थः—(वाजानां पते) हे अन्नों के रक्षक ! (ब्रह्मा इव) ब्रह्मा [वेदज्ञाता] के समान [होकर] तू (तन्द्रयुः) आलसी (मो षु भुवः) कभी भी मत हो, (गोमतः) वेदवाणी से युक्त (सुतस्य) तत्त्व रस का (मत्स्व) आनन्द भोग ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के समान निरालसी होकर तत्वज्ञान के अभ्यास से सुखी होवे ॥३॥

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥४॥

भाषार्थः—(अस्य) उस [सभापति] की (सूनृता) अन्नवाली क्रिया (एव) निश्चय करके (हि) ही (विरप्शी) स्पष्ट वाणी वाली, (गोमती) श्रेष्ठ दृष्टि वाली, (मही) सत्कार योग्य, (पक्वा) परिपक्व [फल फूल वाली] (शाखा न) शाखा के समान (दाशुषे) आत्मदानी पुरुष के लिये [होवे] ॥४॥

भावार्थः—राजा आदि सभापति दूरदर्शी होकर अन्न आदि पदार्थों से हितैषी सुपात्रों का सत्कार कर के सुखी करें, जैसे फल फूल वाले वृक्ष आनन्द देते हैं ॥४॥

मन्त्र ४—६ ऋग्वेद में हैं—१ । ८ । ८—१० । और आगे हैं, २० । ७१ । ४—६ ॥

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (एव) निश्चय करके (हि) ही (ते) तेरे (विभूतयः) अनेक ऐश्वर्य (मावते) मेरे तुल्य (दाशुषे) आत्मदानी के लिये (सद्यः चित्) तुरन्त ही (ऊतयः) रक्षासाधन (सन्ति) होते हैं ॥५॥

भावार्थः—राजा अपना ऐश्वर्य श्रेष्ठ उपकारी पुरुषों की रक्षा में लगाता रहे ॥५॥

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥६॥

भाषार्थः—(एव) निश्चय करके (हि) ही (अस्य) उस [सभापति] के (काम्या) मनोहर और (शंस्या) प्रशंसनीय (स्तोमः) उत्तम गुण (च) और (उक्थम्) कहने योग्य कर्म (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (सोमपीतये) तत्त्वरस पीने के निमित्त [हैं] ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—उत्तम गुणी पुरुष को सभापति बनाकर सब मनुष्य ऐश्वर्य वाले और तत्त्वज्ञान वाले होवें ॥६॥

सूक्तम् ॥६१॥

१—६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ उष्णिक्, २—६ निचृदुष्णिक् ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥१॥

भाषार्थः—(अद्रिवः) हे मेघों के धारण करने वाले ! [परमेश्वर] (ते) तेरे (तम्) उस (वृषणम्) महाबल वाले, (पृत्सु) सङ्ग्रामों में (ससहिम्) विजय करने वाले, (लोककृत्नुम्) लोकों के बनाने वाले (उ) और (हरिश्रियम्) मनुष्यों में श्री [सेवनीय सम्पत्ति वा शोभा] देने वाले (मदम्) आनन्द की (गृणीमसि) हम स्तुति करते हैं ॥१॥

भावार्थः—पृथिवी आदि सब लोकों के रचने वाले, मनुष्यों को सब में श्रेष्ठ बनाने वाले न्यायकारी परमेश्वर की स्तुति से हम समर्थ होकर आनन्द बढ़ावें ॥१॥

मन्त्र १—३ ऋग्वेद में हैं—८ । १५ । ४—६, सामवेद—उ० २ । २ । तृच १८, मन्त्र १—पू० ४ । १० । ३ ॥

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥२॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (येन) जिस [यज्ञ] के द्वारा (आयवे) गतिशील [उद्योगी] (च) और (मनवे) मननशील मनुष्य के लिये (ज्योतींषि) ज्योतियों को (विवेदिथ) तू ने प्राप्त कराया है, (मन्दानः) आनन्द करता हुआ तू (अस्य) उस (बर्हिषः) बढ़े हुए यज्ञ [संसार] की (वि) विशेष कर के (राजसि) राजा है ॥२॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने संसार के बीच, सूर्य, अग्नि, बिजुली, वायु आदि रचकर पुरुषार्थी विचारवान् पुरुष के लिये ऐश्वर्य पाने के अनन्त साधन दिये हैं, वही परमेश्वर सब सृष्टि का स्वामी है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद्द्या चित्त उक्थिनोऽनुं ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥३॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर!] (ते) तेरे (तत्) उस [सामर्थ्य] को (उक्थिनः) कहने योग्य के कहने हारे पुरुष (अद्यचित्) अब भी (पूर्वथा) पहिले के समान (अनु) लगातार (स्तुवन्ति) गाते हैं। [जिस सामर्थ्य से] (वृषपत्नीः) बलवान् [तुझ परमात्मा] से रक्षा की हुई (अपः) प्रजाओं [को] (दिवेदिवे) दिन दिन (जय) तू जीतता है ॥३॥

भावार्थः— विज्ञानी सूक्ष्मदर्शी लोग परमात्मा की उस शक्ति को देख कर समर्थ होते हैं, जिस शक्ति से वह सब सृष्टि को रचकर सदा अपने वश में रखता है ॥३॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥४॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो!] (तम् उ) उस ही (पुरुहूतम्) बहुत पुकारे हुए, (पुरुष्टुतम्) बहुत बड़ाई किए हुए, (तविषम्) महान् (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] को (अभि) सब ओर से (प्र) भले प्रकार (गायत) गाओ, और (गीर्भिः) वाणियों से (आ) सब प्रकार (विवासत) सत्कार करो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! वह परमात्मा सब से बड़ा है, उसी के गुणों को हृदय में धारण कर के आत्मबल बढ़ाओ ॥४॥

मन्त्र ४—६ ऋग्वेद में है—८। १५। १—३ और आगे हैं—अ०। २०। ६२। ८—१० और मन्त्र १ सामवेद में है—पू० ४। १०। ३॥

यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥५॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥६॥

भाषार्थः—(द्विबर्हसः) दोनों विद्या और पुरुषार्थ में बढ़े हुए (यस्य) जिस [परमात्मा] के (बृहत्) बड़े (सहः) सामर्थ्य ने (रोदसी) सूर्य और भूमि, (अज्रान्) शीघ्रगामी (गिरीन्) मेघों, (अपः) जलों [समुद्र आदि] और (स्वः) प्रकाश को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वृषत्वना) बल के साथ (दाधार) धारण किया है ॥५॥ (पुरुष्टुत) हे बहुत स्तुति किये हुए (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (सः) सो (एकः) अकेला तू (जैत्रा) जीतने वालों के योग्य धनों (च) और (श्रवस्या) यश के लिये हितकारी कर्मों को (यन्तवे) नियम में रखने के लिये, (राजसि) राज्य करता है, और (वृत्राणि) रोकने वाले विघ्नों को (जिघ्नसे) मिटाता है ॥६॥

भावार्थः—अकेला महाविद्वान् और महापुरुषार्थी परमात्मा सब को परस्पर धारण आकर्षण से चलाता हुआ अपने विश्वासी भक्तों को उनके पुरुषार्थ के अनुसार धन और कीर्ति देता है ॥५, ६॥

सूक्तम् ॥६२॥

१—१० ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ६, ७ विराडार्ष्युष्णिक्, २ भुरिगार्षी बृहती, ३, ५ ककुबुष्णिक्, ४ विराडार्षी पङ्क्तिः, ८—१० निचृदुष्णिक् ॥

१—४ राजप्रजाकर्तव्योपदेशः=१—४ राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः ।
वाजे चित्रं हवामहे ॥१॥

भाषार्थः—(अपूर्व्य) हे अनुपम ! [राजन्] (कत् चित्) कुछ भी (स्थूरम्) स्थिर (न) नहीं (भरन्तः) रखते हुए, (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले (वयम्) हम (वाजे) सङ्ग्राम के बीच (चित्रम्) विचित्र स्वभाव वाले (त्वाम्) तुझ को (उ) ही (हवामहे) बुलाते हैं ॥१॥

भावार्थः—जब दुष्ट चोर डाकू लोग अत्यन्त सतावें, प्रजागण वीर राजा की शरण लेकर रक्षा करें ॥१॥

मन्त्र १—४ आ चुके हैं—अथर्व० २० । १४ । १—४ ॥

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥

भाषार्थः—(कर्मन्) कर्म के बीच (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (सः) उस (यः) जिस (युवा) स्वभाव से बलवान्, (उग्रः) तेजस्वी और (धृषत्) निर्भय पुरुष ने (चक्राम) पैर बढ़ाया है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (अवितारम्) उस रक्षक और (सानसिम्) दानी (त्वा) तुझ को, (त्वाम्) तुझ को (हि) ही (इत्) अवश्य (सखायः) हम मित्र लोग (उप) आदर से (ववृमहे) चुनते हैं ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो पुरुष प्रजारक्षण में बड़ा पराक्रमी हो, प्रजागण सब लोगों में से उसी को राजा बनावें ॥२॥

यो नं इदमिदं पुरा प्र वस्यं आनिनाय तमु व स्तुषे ।

सखाय इन्द्रमूतये ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो [पराक्रमी] (नः) हमारे लिये (इदमिदम्) इस—इस (वस्यः) उत्तम वस्तु को (प्र) अच्छे प्रकार (आनिनाय) लाया है, (तम् उ) उस ही (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी वीर] को, (सखायः) हे मित्रो ! (वः) तुम्हारी (ऊतये) रक्षा के लिये (स्तुषे) मैं सराहता हूं ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष पहले ही से धीर वीर होवे, लोग उसकी बड़ाई कर के गुण ग्रहण करें ॥३॥

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।

आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥४॥

भाषार्थः—(सः) वह (हि) ही (स्म) अवश्य [मनुष्य है], (यः) जिस ने (हर्यश्वम्) ले चलने वाले घोड़ों से युक्त, (सत्पतिम्) सत्पुरुषों के रक्षक, (चर्षणीसहम्) मनुष्यों को नियम में रखने वाले [राजा] को (अमन्दत) प्रसन्न किया है। (सः) वह (मघवा) महाधनी (तु) तो (नः) हम (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों को (शतम्) सौ [बहुत] (गव्यम्) गौओं का समूह और (अश्व्यम्) घोड़ों का समूह (आ वयति) लाता है ॥४॥

भावार्थः—सब प्रजागण आज्ञा मानकर शूर धर्मात्मा राजा को प्रसन्न रक्खें, जिस से वह उत्तम प्रबन्ध के साथ प्रजा का ऐश्वर्य बढ़ावे ॥४॥

मन्त्राः ५—१० परमेश्वर गुणोपदेशः=मन्त्र ५—१० परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।

धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥५॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (विप्राय) बुद्धिमान्, (बृहते) महान्, (धर्मकृते) धर्म [धारण योग्य नियम] के बनाने वाले, (विपश्चिते) विशेष महाज्ञानी, (पनस्यवे) सब के लिये व्यवहार चाहने वाले, (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगदीश्वर] के लिये (बृहत्) बड़े (साम) साम [दुःखनाशक मोक्षज्ञान] का (गायत) तुम गान करो ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य वेदद्वारा धर्म विधान पर चलकर परमात्मा की उपासना से बुद्धिमान् और व्यवहारकुशल होकर मोक्षसुख प्राप्त करें ॥५॥

मन्त्र ५—७ ऋग्वेद में हैं—८। ९८ [सायण भाष्य ८७]। १–३। सामवेद—उ० ३। २। तृच २२, मन्त्र ५, पू० ४। १०। ८॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (त्वम्) तू (अभिभूः) विजयी (असि) है, (त्वम्) तू ने (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) चमक दी है। तू (विश्वकर्मा) विश्वकर्मा [सब का बनाने वाला], (विश्वदेवः) विश्वदेव [सब का पूजनीय] और (महान्) महान् [अति प्रबल] (असि) है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य उस महाबली परमात्मा की उपासना से अपने आत्मा को बलवान् करें ॥६॥

विभ्राजं ज्योतिषा स्वऽ१रगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (ज्योतिषा) अपनी ज्योति से (विभ्राजन्) चमकता हुआ तू (दिवः) सूर्य के (रोचनम्) चमकाने वाले (स्वः) अपने आनन्द स्वरूप को (अगच्छः) प्राप्त हुआ है, (देवाः) विद्वानों ने (ते) तेरी (सख्याय) मित्रता के लिये (येमिरे) उद्योग किया है ॥७॥

भावार्थः—जो प्रकाशस्वरूप परमात्मा अपनी महिमा से प्रत्येक वस्तु में चमकता है, उसकी उपासना से हम अपने आत्मा में प्रकाश करें ॥७॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥८॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (तम् उ) उस ही (पुरुहूतम्) बहुत पुकारे हुए, (पुरुष्टुतम्) बहुत बड़ाई किये हुए, (तविषम्) महान् (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा] को (अभि) सब ओर से (प्र) भले प्रकार (गायत) गाओ, और (गीर्भिः) वाणियों से (आ) सब प्रकार (विवासत) सत्कार करो ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! वह परमात्मा सब से बड़ा है, उसी के गुणों को हृदय में धारण करके आत्मबल बढ़ाओ ॥८॥

मन्त्र ९ १० आचुके हैं—अ० २०। ६१। ४—६॥

यस्यं द्विबर्हसो बृहत् सहों दाधार रोदंसी ।
गिरीं रज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥९॥
स रांजसि पुरुष्टुतँ एकों वृत्राणिं जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रां श्रवस्यां च यन्तवे ॥१०॥

भाषार्थः—(द्विबर्हसः) दोनों विद्या और पुरुषार्थ में बढ़े हुए (यस्य) जिस [परमात्मा] के (बृहत्) बड़े (हसः) सामर्थ्य ने (रोदसी) सूर्य और भूमि, (अज्रान) शीघ्रगामी (गिरीन्) मेघों, (अपः) जलों [समुद्र आदि] और (स्वः) प्रकाश को (वृषत्वना) बल के साथ (दाधार) धारण किया है ॥९॥ (पुरुष्टुत) हे बहुत स्तुति किये हुए (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (सः) सो (एकः) अकेला तू (जैत्रा) जीतने वालों के योग्य धनों (च) और (श्रवस्या) यश के लिये हितकारी कर्मों को (यन्तवे) नियम में रखने के लिए (राजसि) राज्य करता है, और (वृत्राणि) रोकने वाले विघ्नों को (जिघ्नसे) मिटाता है ॥१०॥

भावार्थः—अकेला महाविद्वान् और महापुरुषार्थी परमात्मा सब को परस्पर धारण आकर्षण से चलाता हुआ अपने विश्वासी भक्तों को उनके पुरुषार्थ के अनुसार धन और कीर्ति देता है ॥९, १०॥

सूक्तम् ॥६३॥

१—९ ॥ १—३ इन्द्रो विश्वेदेवाश्च देवताः, ४—९ इन्द्रो देवता ॥

१—विराट् पङ्क्तिः, २, ३ निचृत् त्रिष्टुप्, ४—६, ९ उष्णिक्, ७, ८ निचृदुष्णिक् ॥

१—६ राजप्रजाधर्मोपदेशः=१-६, राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

इमा नु कं भुवंना सीषधामेन्द्रंश्च विश्वें च देवाः ।
यज्ञं चं नस्तन्वं च प्रजां चांदित्यैरिन्द्रंः सह चींक्लृपाति ॥१॥

भाषार्थः—(इमा) यह (भुवना) उत्पन्न पदार्थ, (च) और (इन्द्रः) इन्द्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[बड़े ऐश्वर्य वाला सभापति] (च) और (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग हम (नु) शीघ्र (कम्) सुख को (सीसधाम) सिद्ध करें। (आदित्यैः सह) अखण्ड व्रत-धारी विद्वानों के साथ (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सभापति] (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ [मेल मिलाप आदि] (च) और (तन्वम्) शरीर (च) और (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान आदि] को (च) भी (चीक्लृपाति) समर्थ करे ॥१॥

भावार्थः—सभापति राजा और सभासद् लोग संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर सब की यथावत् रक्षा करें ॥१॥

मन्त्र १—३ पूर्वार्द्ध कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१०। १५७। १—५ यजुर्वेद - २५। ४६ सामवेद—उ० ४। १। तृच २३। मन्त्र ३ उत्तरार्द्ध ऋग्वेद में है—६। १७। १५ और सामवेद— पू० ५। ७। ८, मन्त्र १—३ आगे हैं— अ० २०। १२४। ४—६ ॥

आ॒दि॒त्यैरिन्द्र॒ः सग॑णो म॒रुद्भि॑र॒स्माकं॑ भूत्ववि॒ता त॒नूना॑म् ।
ह॒त्वाय॑ दे॒वा असु॑रा॒न् यदाय॑न् दे॒वा दे॑व॒त्वम॑भि॒रक्ष॑माणाः ॥२॥

भाषार्थः—(सगणः) गणों [सुभट वीरों] के साथ वर्तमान (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सभापति] (आदित्यैः) अखण्ड व्रतधारी (मरुद्भिः) शूर मनुष्यों के साथ (अस्माकम्) हमारे (तनूनाम्) शरीरों का (अविता) रक्षक (भूतु) होवे। (यत्) क्योंकि (असुरान्) असुरों [दुराचारियों] को (हत्वाय) मारकर (देवाः) विजय चाहने वाले, (अभिरक्षमाणाः) सब ओर से रक्षा करते हुए (देवाः) विद्वानों ने (देवत्वम्) देवतापन [उत्तमपद] (आयन्) पाया है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य शूर वीर विद्वानों के साथ प्रजा की रक्षा कर सके, वही अपने उत्तम कर्मों के कारण उत्तमपद सभापतित्व आदि क योग्य होवे ॥२॥

प्र॒त्यञ्च॑म॒र्कम॑नय॒ञ्छची॑भि॒रादित् स्व॒धामि॑षि॒रां पर्य॑पश्यन् ।
अ॒या वाजं॑ दे॒वहि॑तं सनेम॒ मदे॑म श॒तहि॑माः सु॒वीराः॑ ॥३॥

भाषार्थः—(प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष पाने योग्य (अर्कम्) पूजनीय व्यवहार को (शचीभिः) अपने कर्मों से (अनयन्) उन [विद्वानों] ने प्राप्त कराया है, और (आत् इत्) तभी (इषिराम्) चलाने वाली (स्वधाम्) आत्म धारण शक्ति को (परि) सब ओर (अपश्यन्) देखा है। (अया) इसी [नीति] से (शतहिमाः) सौ वर्षों जीते हुए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सुवीराः) उत्तम वीरों वाले हम (देवहितम्) विद्वानों के हितकारी (वाजम्) विज्ञान को (सनेम) देवें और (मदेम) आनन्द करें ॥३॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग अपने उत्तम कर्मों से संसार का उपकार करते रहे हैं, वैसे ही हम श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति से मनुष्यों को वीर बनाकर आनन्द देवें ॥३॥

य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥४॥

भाषार्थः—(यः) जो (एकः) अकेला (इत्) ही (दाशुषे) दाता (मर्ताय) मनुष्य के लिये (वसु) धन (विदयते) बहुत प्रकार देता है, (अङ्ग) हे मित्र ! वह (ईशानः) समर्थ, (अप्रतिष्कुतः) बे रोक गतिवाला (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सभापति] होता है ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब में बड़ा उत्साही निर्भय शूर पुरुष हो, वही सभापति राजा होवे ॥४॥

मन्त्र ४—६ ऋग्वेद में है—१ । ८४ । ७—९, सामवेद—उ० ५ । २ । तृच २२, मन्त्र ७ साम०—पू० ४ । १० । ६ ॥

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥५॥

भाषार्थः—(अङ्ग) हे मित्र ! (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले सभापति आप] (कदा) कब (अराधसम्) आराधना न करने वाले (मर्तम्) मनुष्य को (पदा) पांव से (क्षुम्पम् इव) खुम्भी [गली लकड़ी से उगे हुए छत्राकार छोटे पौधे] के समान (स्फुरत्) नष्ट करेंगे और (कदा) कब (नः) हमारी (गिरः) वाणियों को (शुश्रवत्) सुनेंगे ॥५॥

भावार्थः—सभापति दुःखित प्रजा की पुकार सुनकर अनाज्ञाकारी दुष्ट को इस प्रकार गिरा देवे, जैसे खुम्भी वृक्ष पांव से कुचल जाता है ॥५॥

यह मन्त्र निरुक्त में व्याख्यात है—५ । १६–१७ ॥

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे प्रजागण !] (बहुभ्यः) बहुतों में से (यः चित् हि) जो कोई भी (सुतवान्) तत्त्वरस वाला [मनुष्य] (त्वा) तुझको (आ) निश्चय करके (आविवासति) भले प्रकार सेवा करता है, (तत्) उसी से (अङ्ग) हे मित्र ! (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सभापति] (उग्रम्) भारी (शवः) बल (पत्यते) पाता है ।।६।।

भावार्थः—जो मनुष्य प्रजा की सेवा करता है, वही बलवान् होकर ऐश्वर्य प्राप्त करता है ।।६।।

७—९ परमेश्वरगुणोपदेशः=७-९ परमेश्वर के गुणों का उपदेश ।।

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ।।७।।

भाषार्थः—(शविष्ठ) हे महाबली ! (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] [तेरा] (यः) जो (सोमपातमः) ऐश्वर्य का अत्यन्त रक्षक (मदः) आनन्द (चेतति) चेताने वाला है, और (येन) जिस [आनन्द] से (अत्त्रिणम्) खाऊ [स्वार्थी दुर्जन] को (नि हंसि) तू मार गिराता है, (तम्) उस [आनन्द] को (ईमहे) हम मांगते हैं ।।७।।

भावार्थः—जो परमात्मा स्वार्थी दुष्टों को दण्ड देकर श्रेष्ठों को सुख देता है, उस की उपासना सदा करनी चाहिये ।।७।।

मन्त्र ७—९ ऋग्वेद में हैं—८ । १२ । १—३ । मन्त्र ७ साम०—पू० ५ । १ । ४ ।।

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे ।।८।।

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (येन) जिस [नियम] से (दशग्वम्) दस दिशाओं में जाने वाले, (अध्रिगुम्) बेरोक गति वाले, (वेपयन्तम्) [वैरियों को] कंपाते हुए, (स्वर्णरम्) सुख पहुंचाने वाले [वीर] को और (येन) जिस [नियम] से (समुद्रम्) समुद्र के समान [गम्भीर पुरुष] को (आविथ) तू ने बचाया है, (तम्) उस [नियम] को (ईमहे) हम मांगते हैं ।।८।।

भावार्थः—जो आनन्दस्वरूप जगदीश्वर पुरुषार्थियों को सदा सहाय देता है, उसी की उपासना से पुरुषार्थ करके हम सुखी होवें ।।८।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः ।
पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥९॥

भाषार्थः—[हे जगदीश्वर !] (येन) जिस [नियम] से (सिन्धुम्) समुद्र में (महीः) भारी (अपः) जलों को (रथान् इव) रथों के समान (प्रचोदयः) तू ने चलाया है, (ऋतस्य) सत्य के (पन्थाम्) मार्ग पर (यातवे) चलने के लिये (तम्) उस [नियम] को (ईमहे) हम मांगते हैं ॥९॥

भावार्थः— जिस प्रकार नियम से परमात्मा अन्तरिक्ष और पृथिवी के समुद्र में जगत् के उपकार के लिये जल भरता और रीता करता है, वैसे ही परमेश्वर की उपासना के साथ हम नियमपूर्वक पुरुषार्थी होकर उपकार करें ॥९॥

सूक्तम् ॥६४॥

१—६ । इन्द्रो देवता ॥ १, ३, ५, ६ विराडार्ष्युष्णिक्, २, ४ उष्णिक् ॥

परमात्मगुणोपदेशः—परमात्मा के गुणों का उपदेश ॥

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः ।
गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥१॥

भाषार्थः— (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (प्रियः) प्यारा, (सत्राजित्) सत्य से जीतने वाला, (अगोह्यः) न छिपने वाला तू (नः) हमको (आ) सब ओर से (गधि) प्राप्त हो, तू (गिरिः न) मेह के समान (विश्वतः) सब ओर से (पृथुः) फैला हुआ, (दिवः) प्राप्ति योग्य सुख का (पतिः) स्वामी है ॥१॥

भावार्थः – सर्वहितकारी, सर्वनियन्ता, सर्वव्यापक परमात्मा की उपासना से मनुष्य आनन्द प्राप्त करें ॥१॥

मन्त्र १—३ ऋग्वेद में हैं—८ । ९८ [सायण भाष्य ८ ७] । ४—६, सामवेद—उ० ५ । १ । तृच १९, मन्त्र १—साम०—पू० ५ । १ । ३ ॥

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥२॥

भाषार्थः—(सत्य) हे सत्य स्वरूप ! (सोमपाः) हे ऐश्वर्य रक्षक ! (हि) निश्चय कर के (उभे) दोनों (रोदसी) सूर्य और भूमि को (अभि बभूथ) तू ने वश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में किया है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवान् परमात्मन्] तू (सुन्वतः) तत्त्व रस निचोड़ने वाले पुरुष का (वृधः) बढ़ाने वाला, (दिवः) सुख का (पतिः) स्वामी (असि) है ॥२॥

भावार्थः– सूर्य और पृथिवी आदि लोकों के रचने वाले परमात्मा की उपासना से हम तत्त्व ज्ञान प्राप्त कर के वृद्धि करें ॥२॥

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (त्वम्) तू (हि) ही [शत्रुओं की] (शश्वतीनाम्) सब (पुराम्) नगरियों का (दर्ता) तोड़ने वाला, (दस्योः) डाकू का (हन्ता) मारने वाला और (मनोः) ज्ञानों का (वृधः) बढ़ाने वाला, (दिवः) सुख का (पतिः) स्वामी (असि) है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा सब विघ्नों को मिटा कर अपने भक्तों की उन्नति कर के सुख देता है ॥३॥

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥४॥

भाषार्थः– (अध्वर्यो) हे हिंसा न चाहने वाले पुरुष ! (मध्वः) ज्ञान [मधु विद्या] के (वा) और (अन्धसः) अन्न के (मदिन्तरम्) अधिक आनन्द देने वाले रस को (इत् उ) अवश्य ही (आ) सब ओर (सिञ्च) सींच, (सदावृधः) सदा बढ़ाने वाला (वीरः) वीर (एव) इस प्रकार (हि) ही (स्तवते) स्तुति किया जाता है ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष हिंसा कर्म छोड़ कर विद्या और अन्न आदि की प्राप्ति के तत्त्व सिद्धान्तों का प्रकाश करके वीरों के समान कीर्ति पावे ॥४॥

मन्त्र ४—६ ऋग्वेद में हैं—८ । २४ । १६—१८, कुछ भेद से सामवेद—उ० ८ । २ । तृच १०, मन्त्र ४—साम०—पू० ४ । १० । ५ ॥

इन्द्रं स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥५॥

भाषार्थः—(हरीणाम्) दुःख हरने वाले मनुष्यों में (स्थातः) ठहरने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (ते) तेरी (पूर्व्यस्तुतिम्) प्राचीन बड़ाई को (नकिः) न किसी ने (शवसा) अपने बल से और (न) न (भन्दना) शुभ कर्म से (उत् आनंश) पाया है ॥५॥

भावार्थः—संसार के बीच एक परमात्मा ही सर्वशक्तिमान् और सर्व-दुःखनाशक है, उसी की उपासना से मनुष्य उपकार शक्ति बढ़ावे ॥५॥

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥६॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो!] (वः) तुम्हारे लिये (तम्) उस (वाजानाम्) बलों के (पतिम्) स्वामी, (अप्रायुभिः) विना भूल (यज्ञेभिः) पूजनीय व्यवहारों से (ववृधेन्यम्) बढ़ाने वाले [परमात्मा] को (श्रवस्यवः) कीर्ति चाहने वाले हम लोगों ने (अहूमहि) पुकारा है ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! सब बलों के दाता, सदा उपकार कर के बढ़ाने वाले परमात्मा की आराधना से हम सामर्थ्य बढ़ा कर कीर्ति पावें ॥६॥

सूक्तम् ॥६५॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ आर्षी गायत्री, २ निचृदुष्णिक्, ३ विराडा-र्च्युष्णिक् ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥१॥

भाषार्थः—(सखायः) हे मित्रो! (नु) शीघ्र (एतो) आओ भी, (स्तोम्यम्) स्तुति योग्य, (नरम्) नेता [प्रेरक] (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] की (स्तवाम) हम स्तुति करें, (यः) जो (एकः) अकेला (इत्) ही (विश्वाः) सब (कृष्टीः) मनुष्यों को (अभि अस्ति) वश में रखता है ॥१॥

भावार्थः—हम सब मिलकर सर्वशक्तिमान् परमात्मा की स्तुति करके आनन्द पावें ॥१॥

मन्त्र १—३ ऋग्वेद में हैं—गत सूक्त से आगे, ८।२४।१९—२१। म० १ साम०—पू० ४।१०।७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।
घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥२॥
यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्येतवे ।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥३॥

भाषार्थः—(अगोरुधाय) दृष्टि को न रोकने वाले, (गविषे) स्तोताओं [गुण व्याख्याताओं] को चाहने वाले, (द्युक्षाय) व्यवहारों में गति वाले [उस परमेश्वर] के लिये (घृतात्) घृत से (च) और (मधुनः) मधु [रस विशेष] से (स्वादीयः) अधिक स्वादु और (दस्म्यम्) दर्शनीय [विचारणीय] (वचः) वचन (वोचत) तुम बोलो ॥२॥ (यस्य) जिस [परमात्मा] के (वीर्या) वीर कर्म (अमितानि) बे नाप हैं, [जिसका] (राधः) धन (पर्येतवे) पार पाने योग्य (न) नहीं है, और [जिसकी] (दक्षिणा) दक्षिणा [दानशक्ति], (ज्योतिः न) प्रकाश के समान (विश्वम् अभि) सब पर फैलकर (अस्ति) वर्तमान है ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम परमेश्वर की स्तुति नम्रतापूर्वक करके अपना सामर्थ्य बढ़ाओ, वह जगदीश्वर अनन्त बली, अनन्त धनी और अनन्त दानी है ॥२, ३॥

सूक्तम् ॥६६॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ विराडुष्णिक्, २ निचृदुष्णिक्, ३ आर्च्युष्णिक् ॥

ऐश्वर्यवतः पुरुषस्य लक्षणोपदेशः—ऐश्वर्यवान् पुरुष के लक्षणों का उपदेश ॥

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् ।
अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥१॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (व्यश्ववत्) विविध वेग वाले पुरुष के समान (अनूर्मिम्) विना पीड़ाओं वाले, (वाजिनम्) पराक्रमी, (यमम्) न्यायकारी (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] की (स्तुहि) स्तुति कर। (अर्यः) स्वामी (दाशुषे) आत्मदानी भक्त के लिए (वि) विविध प्रकार (मंहमानम्) बढ़ते हुए (गयम्) धन सदृश है ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष पराक्रम करके भूख आदि पीड़ाओं से बचा रहता है उस के गुणों को ग्रहण कर के मनुष्य सुखी होवें। विद्वानों ने छह पीड़ायें मानी हैं, जिन से बचने का मनुष्य उपाय करता रहे—[बुभुक्षा च पिपासा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च प्राणस्य, मनसः स्मृतौ । शोकमोहौ शरीरस्य जरामृत्यू षड्मयः ।।१।।] प्राण को भूख और प्यास, मन की शोक और मोह, शरीर की जरा और मृत्यु, यह छह पीड़ायें कही गयी हैं ।।१।।

यह तृच ऋग्वेद में हैं—गतसूक्त से आगे, ८ । २४ । २२–२४ ।।

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।
सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ।।२।।

भाषार्थः—(वैयश्व) हे विविध वेग वाले पुरुष ! (दशमम्) प्रकाशमान [अथवा जीवन के दसवें काल तक] (नवम्) स्तुति योग्य [वा नवीन अर्थात् बलवान्], (सुविद्वांसम्) बड़े विद्वान् और (चरणीनाम्) चलने वाले मनुष्यों में (चर्कृत्यम्) अत्यन्त करने योग्य कर्मों में चतुर की (एव) निश्चय करके (नूनम्) अवश्य (उप) आदर से (स्तुहि) तू स्तुति कर ।।२।।

भावार्थः—जो पुरुष बड़े प्रतापी, जीवन के सौ वर्ष में से नव्वे वर्ष के ऊपर भी अर्थात् अन्त काल तक आत्मिक और शारीरिक बल वाले कर्मकुशल वीर होवें, उनके गुणों को सब मनुष्य ग्रहण करें ।।२।।

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ।।३।।

भाषार्थः—(वज्रहस्त) हे वज्र हाथ में रखने वाले ! (हि) निश्चय करके (परिपदाम्) विपत्तियों के (शुन्ध्युः इव) शोधने वाले के समान (अहरहः) दिन दिन (निर्ऋतीनाम्) महाविपत्तियों के (परिवृजम्) रोकने को (वेत्थ) तू जानता है ।।३।।

भावार्थः—जो मनुष्य शूर पराक्रमियों के समान विघ्नों को हटाकर प्रजा की रक्षा करे, उसका सब लोग आदर करें ।।३।।

इति पञ्चमोऽनुवाकः ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥६७॥

१—७ ॥ १ इन्द्रः, २ मरुतः, ३ अग्निः, ४ मरुतो माधवश्च, ५ अग्निः शुचिश्च, ६ इन्द्रो नभश्च, ७ द्रविणोदाश्च देवताः ॥ १ विराडष्टिः, २ सुराडत्यष्टिः; ३ अष्टिः; ४ जगती; ५ सुराडार्षी त्रिष्टुप्; ६ भुरिक् त्रिष्टुप्; ७ आर्षी जगती ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परींणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषों देवानामव द्विषंः । सुन्वान इत् सिंषासति सहस्रा वाज्यवृंतः । सुन्वानायेन्द्रों ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवंम् ॥१॥

भाषार्थः—(सुन्वन्) तत्त्व निकालता हुआ पुरुष (हि) ही (परीणसः) पाने योग्य धन के (क्षयम्) घर को (वनोति) सेवता है [भोगता है], (सुन्वानः) तत्त्व निकालता हुआ पुरुष (हि) ही (स्म) अवश्य (द्विषः) वैरियों को (अव यजति) दूर करता है, (देवानाम्) विद्वानों के (द्विषः) वैरियों को (अव) दूर [करता है], (सुन्वानः) तत्त्व रस निकालता हुआ पुरुष (इत्) ही (वाजी) पराक्रमी और (अवृतः) वे रोक होकर (सहस्रा) सैकड़ों सुख (सिसासति) देना चाहता है। (सुन्वानाय) तत्त्व निकालते हुए पुरुष को (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमात्मा] (आभुवम्) सब ओर से पाने योग्य (रयिम्) धन (ददाति) देता है, (आभुवम्) सब ओर से रहने योग्य [धन] (ददाति) देता है ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्याओं का सार ग्रहण कर के शत्रुओं को मारता है, वही वीर सब को सुख देता और परमात्मा का प्रीतिपात्र होता है ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । १३३ । ७ ॥

मो षु वों अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जांरिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः । यद् वंश्चित्रं युगेयुंगे नव्यं घोषादमर्त्यम् । अस्मासु तन्मंरुतो यच्चं दुष्टरं दिधृता यच्चं दुष्टरंम् ॥२॥

भाषार्थः—(मरुतः) हे शत्रुओं के मारने वाले वीरो ! (अस्मत्) हम पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (वः) तुम्हारे (तानि) वे (सना) सनातन [वा सेवनीय] (पौंस्या) मनुष्य कर्म [वा बल] (मो षु अभि भूवन्) कभी भी न हट जावें, (उत) और [तुम्हारे] (द्युम्नानि) चमकते हुए यश वा धन (मा जारिषुः) कभी न घटें, (उत) और (अस्मत्) हम से (पुरा) आगे को (जारिषुः) बड़ाई योग्य होवें। और (यत्) जो (वः) तुम्हारा (चित्रम्) विचित्र [अद्भुत] कर्म (युगे युगे) युग युग में [समय समय पर] (घोषात्) घोषणा देने से (नव्यम्) स्तुति योग्य [वा नवीन] और (अमर्त्यम्) मनुष्यों में दुर्लभ है, (च) और (यत्) जो कुछ (दुस्तरम्) पाने में कठिन (च) और (यत्) जो कुछ (दुस्तरम्) पाने में कठिन है, (तत्) उस को (अस्मासु) हम में (दिधृत) धारण करो ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदा आपस में मिल कर बल, यश और धन बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१। १३९। ८॥

अ॒ग्निं होता॑रं मन्ये॒ दास्व॑न्तं॒ वसुं॑ सू॒नुं सह॑सो जा॒तवे॑दसं॒ विप्रं॒ न जा॒तवे॑दसम्। य ऊ॒र्ध्वया॑ स्वध्व॒रो दे॒वो दे॒वाच्या॑ कृ॒पा। घृ॒तस्य॒ विभ्रा॑ष्टि॒मनु॑ वष्टि शो॒चिषा॒जुह्वा॑नस्य स॒र्पिषः॑ ॥३॥

भाषार्थः—(होतारम्) ग्रहण करने वाले, (दास्वन्तम्) दान करने वाले, (वसुम्) श्रेष्ठ गुण वाले, (सहसः) बलवान् पुरुष के (सूनुम्) पुत्र, (जातवेदसम्) प्रसिद्ध विद्या वाले (विप्रम् न) बुद्धिमान् के समान (जातवेदसम्) प्रसिद्ध विद्या वाले विद्वान् को (अग्निम्) उस अग्नि के समान (मन्ये) मैं मानता हूं। (यः) जो (देवः) प्रकाशमान, (स्वध्वरः) अच्छे प्रकार हिंसा रहित यज्ञ का साधने वाला [अग्नि] (ऊर्ध्वया) ऊंची (देवाच्या) गतिशील [वायु आदि देवताओं] को पहुंचाने वाली (कृपा) शक्ति के साथ (आजुह्वानस्य) होमे हुए और (सर्पिषः) पिघले हुए (घृतस्य) घी की (शोचिषा) शुद्धि से (विभ्राष्टिम्) विविध प्रकाश को (अनु) लगातार (वष्टि) चाहता है ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष विद्या प्राप्त कर के संसार में ऐसा उपकारी होवे, जैसे अग्नि घृत आदि से प्रज्वलित होकर वायु जल आदि को शुद्ध करके और सूर्य पार्थिव रस खींच कर वृष्टि द्वारा उपयोगी होता है ॥३॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१। १२७। १, यजुर्वेद—१५। ४७, कुछ भेद से सामवेद—पू० ५। ८। ६ और उ० ६। १। १८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामं छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥४॥

भाषार्थः—(भरतस्य सूनवः) हे धारण करने वाले पुरुष के पुत्रो ! (दिवः) हे विजय चाहने वाले (नरः) नरो ! [नेता लोगो] (यज्ञैः) पूजनीय व्यवहारों से, (पृषतीभिः) सेचन क्रियाओं से और (ऋष्टिभिः) दोधारा तलवारों से (संमिश्लाः) अच्छे प्रकार मिले हुए [सजे हुए] (उत) और (यामन्) प्राप्त हुए समय पर (अञ्जिषु) कामना योग्य कर्मों में (शुभ्रासः) शोभायमान (प्रियाः) प्यारे तुम (बर्हिः) उत्तम आसन (आसद्य) पा कर (पोत्रात्) पवित्र आचरण से (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] को (आ) भले प्रकार (पिबत) पीओ ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम घरानों में उत्पन्न होकर अपने पराक्रमयुक्त पवित्र कर्मों से तत्त्व को ग्रहण करके आनन्द पावें ॥४॥

मन्त्र ४—६ ऋग्वेद में हैं—२ । ३६ । २, ४, ५ ॥

आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृष्णुहि ॥५॥

भाषार्थः—(विप्र) हे बुद्धिमान् ! (होतः) हे दाता ! (इह) यहां पर (देवान्) दिव्य गुणों को (आ) अच्छे प्रकार (वक्षि) तू कहता है (च) और (यक्षि) तू देता है, सो (उशन्) कामना करता हुआ तू (त्रिषु) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] (योनिषु) निमित्तों में (नि) निरन्तर (सद) स्थिर हो । (प्रस्थितम्) उपस्थित किये हुए (सोम्यम्) सोम [तत्त्व रस] से युक्त (मधु) निश्चित ज्ञान को (प्रति) प्रतिज्ञा-पूर्वक (वीहि) प्राप्त हो, और (पिब) पान कर, और (आग्नीध्रात्) अग्नि की प्रकाश विद्या को आश्रय में रखने वाले व्यवहार से (तव) अपने (भागस्य) भाग की (तृष्णुहि) तृप्ति कर ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य कर्म उपासना और ज्ञान के साथ तत्त्व रस का ग्रहण करके पुरुषार्थी होकर तृप्त होवें ॥५॥

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ॥६॥

भाषार्थः—(एषः स्यः) यही (नृम्णवर्धनः) धन का बढ़ाने वाला [तत्त्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस] (ते) तेरे (तन्वः) शरीर का (सहः) बल और (ओजः) पराक्रम होकर (प्रदिवि) उत्तम व्यवहार के बीच (बाह्वोः) तेरी दोनों भुजाओं पर (हितः) धरा गया है। (मघवन्) हे बड़े धनी ! (तुभ्यम्) तेरे लिये (सुतः) सिद्ध किया हुआ [तत्त्व रस] (तुभ्यम्) तुझ को (आभृतः) धारण किया गया है, (त्वम्) तू (ब्राह्मणात्) ब्रह्म [परमेश्वर] के ज्ञान से (आ) भले प्रकार (तृपत्) तृप्त होता हुआ (अस्य) इस [तत्त्व रस] का (पिब, पान कर ॥६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग पराक्रमी व्यवहारकुशल मनुष्य को परमेश्वरीय ज्ञान का उपदेश करके धन आदि की बढ़ती के लिये उत्साही करें ॥६॥

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो दुदिर्यो नाम पत्यते। अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥७॥

भाषार्थः—(यम्) जिस [पराक्रमी] को (उ) ही (पूर्वम्) पहिले (अहुवे) मैंने ग्रहण किया था, (तम्) उस [पुरुष] को (इदम्) अब (हुवे) मैं ग्रहण करता हूं, (सः इत्) वही (उ) निश्चय करके (हव्यः) ग्रहण करने योग्य है, (यः) जो (ददिः) दाता (नाम) नाम [होकर] (पत्यते) स्वामी होता है। (द्रविणोदः) हे धन देने वाले (पोत्रात्) पवित्र व्यवहार से (अध्वर्युभिः) हिंसा न चाहने वाले पुरुषों करके (प्रस्थितम्) उपस्थित किये हुए (सोम्यम्) ऐश्वर्य के लिये हितकारी (मधु) निश्चित ज्ञान को और (सोमम्) सोम [तत्त्वरस] को (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (पिब) तू पी ॥७॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष सुपरीक्षित गुणी पराक्रमी मनुष्य को सदा उत्तम व्यवहारों के लिये नियुक्त करें ॥७॥

सूक्तम् ॥६८॥

१—१२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, २, ४—६ गायत्री; ३, ११ विराडार्षी गायत्री, १० निचृद् गायत्री, १२ आर्ष्युष्णिक्छन्दः ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१॥

भाषार्थः—(सुरूपकृत्नुम्) सुन्दर स्वभावों के बनाने वाले [राजा] को (ऊतये) रक्षा के लिये (द्यविद्यवि) दिन दिन (जुहूमसि) हम बुलाते हैं, (इव) जैसे (सुदुघाम्) बड़ी दुधैल गौ को (गोदुहे) गौ दोहने वाले के लिये ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे दुधेल गौ को दूध दोहने के लिये प्रीति से बुलाते हैं, वैसे ही प्रजागण विद्या आदि शुभ गुणों के बढ़ाने वाले राजा का आश्रय लेकर उन्नति करें ॥१॥

मन्त्र १—३ आ चुके हैं—अ० २० । ५७ । १—३ ॥

उप॑ नः सव॑ना ग॑हि सोम॑स्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद् रेवतो मदः ॥२॥

भाषार्थः—(सोमपाः) हे ऐश्वर्य के रक्षक ! [राजन्] (नः) हमारे लिये (सवना) ऐश्वर्य युक्त पदार्थों को (उप) समीप से (आ गहि) तू प्राप्त हो और (सोमस्य) सोम [तत्त्व रस] का (पिब) पान कर, (रेवतः) धनवान् पुरुष का (मदः) हर्ष (इत्) ही (गोदाः) दृष्टि का देने वाला है ॥२॥

भावार्थः—राजा ऐश्वर्यवान् और दूरदर्शी होकर प्रसन्नतापूर्वक प्रजा को ज्ञानवान् बनावे ॥२॥

अथा॑ ते अन्त॑मानां विद्याम॑ सुमतीनाम् ।
मा नो अति॑ ख्य आ ग॑हि ॥३॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (अथ) और (ते) तेरी (अन्तमानाम्) अत्यन्त समीप रहने वाली (सुमतीनाम्) सुन्दर बुद्धियों का (विद्याम) हम ज्ञान करें । तू (नः) हमें (अति) छोड़कर (मा ख्यः) मत बोल, (आ गहि) तू आ ॥३॥

भावार्थः—जब राजा पूर्ण रीति से प्रजा पालन करता है, प्रजागण उस की धार्मिक नीतियों से लाभ उठाकर उस से प्रीति करते हैं ॥३॥

परे॑हि विग्रमस्तृ॑तमिन्द्रं॑ पृच्छा विप॒श्चित॑म् ।
यस्ते॒ सखि॑भ्य आ वर॑म् ॥४॥

भाषार्थः—[हे जिज्ञासु !] तू (परा) समीप (इहि) जा, और (विप्रम्) बुद्धिमान्, (अस्तृतम्) अजेय, (विपश्चितम्) आप्त विद्वान्, (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] से (पृच्छ) पूछ, (यः) जो [मनुष्य] (ते) तेरे (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (आ) सब प्रकार (वरम्) श्रेष्ठ [मित्र] है ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि आप्त विद्वानों से प्रश्नोत्तर के साथ शङ्का-निवृत्ति कर के सत्य का ग्रहण करें ॥४॥

मन्त्र ४—१० ऋग्वेद में हैं—१ । ४ । ४—१० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्रे) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] में (इत्) ही (दुवः) सेवा को (दधानाः) धारण करते हुए पुरुष (उत) निश्चय कर के (नः) हमारे (निदः) निन्दकों से (ब्रुवन्तु) कहें—"(अन्यतः) दूसरे देश को (चित्) अवश्य (निः आरत) तुम निकल जाओ" ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा में दृढ़ विश्वास कर के दुराचारियों को दण्ड देकर देश से निकाल दें ॥५॥

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥६॥

भाषार्थः—(दस्म) हे दर्शनीय ! [परमात्मन्] (अरिः=अरयः) प्रेरणा करने वाले [वा वैरी] (कृष्टयः) मनुष्य (उत) भी (नः) हम को (सुभगान्) बड़े ऐश्वर्य वाला (वोचेयुः) कहें, [तो भी] (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] की (इत्) ही (शर्मणि) शरण में (स्याम) हम रहें ॥६॥

भावार्थः—चाहे मनुष्य ऐसे बड़े हो जावें कि बड़े बड़े लोग और वैरी लोग भी उन्हें बड़ा जानें, तो भी वे अभिमान छोड़कर परमेश्वर की शरण में रहकर उन्नति करें ॥६॥

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्सखम् ॥७॥

भाषार्थः—[हे इन्द्र परमेश्वर !] (आशवे) वेग वाले [रथ आदि] के लिये (यज्ञश्रियम्) यज्ञ [संगतिकरण] से लक्ष्मी बढ़ाने वाले, (नृमादनम्) मनुष्यों को आनन्द देने वाले (आशुम्) वेग आदि गुण वाले [अग्नि, वायु आदि] पदार्थ और (ईम्) प्राप्ति योग्य जल को और (पतयत्) स्वामिपन देने वाले, (मन्दयत्सखम्) मित्रों को आनन्द देने वाले धन को (आ) सब प्रकार (भर) भर दे ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि अग्नि वायु जल आदि पदार्थों से विज्ञान द्वारा उपकार लेकर सुखी होवें ॥७॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः ।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वाले ! [वीर पुरुष] (अस्य) इस [तत्त्व रस] का (पीत्वा) पान कर के तू (वृत्राणाम्) रोकने वाले शत्रुओं का (घनः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारने वाला (अभवः) हुआ है और (वाजेषु) सङ्ग्रामों में (वाजिनम्) पराक्रमी वीर को (प्र) अच्छे प्रकार (आवः) तू ने बचाया है ॥८॥

भावार्थः—जो वीर पुरुष वेदविद्या का रस चखता रहता है, वह परमेश्वर की कृपा से शत्रुओं को मारकर अपने वीर लोगों की रक्षा करता है ॥८॥

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥९॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों [असंख्य] वस्तुओं में बुद्धि वाले (इन्द्र) इन्द्र ? [बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (वाजेषु) सङ्ग्रामों के बीच (वाजिनम्) महाबलवान् (तम्) उस (त्वा) तुझ को (धनानाम्) धनों के (सातये) भोगने के लिये (वाजयामः) हम प्राप्त होते हैं ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा पालन से जितेन्द्रिय बलवान् होकर सब विघ्न हटाकर सुख भोगें ॥९॥

यो रायो३' वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥१०॥

भाषार्थः- (यः) जो [परमेश्वर] (रायः) धन का (अवनिः) रक्षक वा स्वामी (महान्) [बड़ा गुणी वा बली], (सुपारः) भले प्रकार पार लगाने वाला, (सुन्वतः) तत्त्वरस निकालने वाले पुरुष का (सखा) मित्र है, [हे मनुष्यो !] (तस्मै) उस (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] के लिये (गायत) तुम गान करो ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य जगदीश्वर परमात्मा की उपासना से तत्त्व का ग्रहण करके पुरुषार्थ से धर्म का सेवन करें ॥१०॥

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय स्तोमवाहसः ॥११॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥१२॥

भाषार्थः —(स्तोमवाहसः) हे बड़ाई के प्राप्त कराने वाले (सखायः) मित्रो! (तु) शीघ्र (आ इत) आओ, (आ) और (नि षीदत) बैठो, और (पुरूणाम्) पालन करने वालों के (पुरुतमम्) अत्यन्त पालन करने वाले, (वार्याणाम्) श्रेष्ठ पदार्थों वा धनों के (ईशानम्) स्वामी (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले], (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] को (सचा) सदा मेल के साथ (सोमे) सोम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[तत्त्वरस] (सुते) सिद्ध होने पर (अभि) सब ओर से (प्र) अच्छे प्रकार (गायत) गावो ॥११, १२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परस्पर उपकार के लिये धैर्य और प्रीति के साथ परमात्मा के गणों के विचार से निश्चित सिद्धान्त करके ऐश्वर्य बढ़ावें ॥११, १२॥

मन्त्र ११, १२ ऋग्वेद में हैं—१ । ५ । १, २ सामवेद—उ० १ । २ । १० मन्त्र ११ साम०—पू० २ । ७ । १० ॥

सूक्तम् ॥६९॥

१—१२ ॥ १—११ इन्द्रः, १२ मरुतो देवताः ॥ १, ३—५, ७, १२ निचृद् गायत्री, २, ८, ९, ११ गायत्री, ६ पाद निचृद् गायत्री, १० विराड् गायत्री ॥

१—८ पराक्रमिलक्षणोपदेशः=१—८ पराक्रमी मनुष्य के लक्षणों का उपदेश ॥

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् ।
गमद् वाजेभिरा स नः ॥१॥

भाषार्थः—(सः घ) [वही परमात्मा वा पुरुषार्थी मनुष्य] (नः) हमारे (योगे) मेल में, (सः सः) वही (राये) हमारे धन के लिये (पुरंध्याम्) नगरों के धारण करने वाली बुद्धि में (आ) सब प्रकार (भुवत्) होवे। (सः) वही (वाजेभिः) अन्नों वा बलों के साथ (नः) हम को (आ गमत्) सब प्रकार प्राप्त होवे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की उपासना से और आप्त पुरुषार्थी विद्वानों के सत्संग से बुद्धि को उत्तम बनाकर बल और धन की वृद्धि करे ॥१॥

मन्त्र १—८ ऋग्वेद में हैं—१ । ५ । ३—१०, मन्त्र १ सामवेद—उ० १ । २ । १० ॥

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥२॥

भाषार्थः—(संस्थे) संस्था [न्यायव्यवस्था] में (यस्य) जिस [वीर] के (हरी) पदार्थों के पहुंचाने वाले बल और पराक्रम को (समत्सु) संग्रामों के बीच (शत्रवः) वैरी लोग (न) नहीं (वृणुते) ढकते हैं, (तस्मै) उस (इन्द्राय) इन्द्र [महाप्रतापी मनुष्य] के लिये (गायत) तुम गान करो ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो पुरुष न्यायकारी, दृढ़स्वभाव, पराक्रमी होवे, उस के गुणों को सब लोग ग्रहण करें ॥२॥

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ॥३॥

भाषार्थः—(सुतपाव्ने) ऐश्वर्य के रक्षक मनुष्य को (वीतये) भोग के लिये (इमे) यह (सुताः) निचोड़े हुए (शुचयः) शुद्ध (दध्याशिरः) पोषक पदार्थों के यथावत् सेवन [वा परिपक्व अर्थात् दृढ़] करने वाले (सोमासः) सोम रस [तत्त्व वा अमृत रस] (यन्ति) पहुंचते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने और प्रजा के ऐश्वर्य की रक्षा कर सकता है, वही संसार में वृद्धिकारक सिद्धान्तों को दृढ़ जमाता है ॥३॥

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः ।

इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥४॥

भाषार्थः—(सुक्रतो) हे श्रेष्ठ कर्म और बुद्धि वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े प्रतापी मनुष्य] (त्वम्) तू (सद्यः) शीघ्र (सुतस्य) तत्त्वरस के (पीतये) पीने के लिये और (ज्यैष्ठ्याय) प्रधानपन के लिये (वृद्धः) वृद्धियुक्त पण्डित (अजायथाः) हुआ है ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य तीव्रबुद्धि होकर शीघ्र तत्त्व को ग्रहण करते हैं, वे ही संसार में बड़े पद के योग्य होते हैं ॥४॥

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः ।

शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥५॥

भाषार्थः—(गिर्वणः) हे स्तुतियों से सेवनीय (इन्द्र) इन्द्र ! [महाप्रतापी मनुष्य] (आशवः) वेग गुण वाले (सोमासः) सोम रस (त्वा) तुझ में (आ) सब ओर से (विशन्तु) प्रवेश करें और (प्रचेतसे ते) तुझ दूरदर्शी के लिये (शम्) सुखदायक (सन्तु) होवें ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य तीव्रबुद्धि होकर शीघ्र गुणकारी सिद्धान्तों का ग्रहण कर के सुखी होवें ॥५॥

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो ।

त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों व्यवहारों में बुद्धि वाले मनुष्य (त्वाम्) तुझ को (स्तोमाः) बड़ाई योग्य गुणों ने और (त्वाम्) तुझ को (उक्था) कहने योग्य कर्मों ने (अवीवृधन्) बढ़ाया है। (त्वाम्) तुझ को (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियां (वर्धन्तु) बढ़ावें ॥६॥

भावार्थः—श्रेष्ठ कर्मी मनुष्य सदा विद्वानों के सत्संग से उपकार शक्ति बढ़ाते रहें ॥६॥

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥७॥

भाषार्थः—(अक्षितोतिः) अक्षय रक्षा वा ज्ञान वाला (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी मनुष्य] (इमम्) इस (सहस्रिणम्) सहस्रों सुख वाले (वाजम्) ज्ञान का (सनेत्) सेवन करे, (यस्मिन्) जिस में (विश्वानि) सब (पौंस्या) मनुष्य कर्म [वा बल] हैं ॥७॥

भावार्थः मनुष्य प्रतापी होकर सर्वोपकारी कार्य कर के सुखी होवे ॥७॥

मा नो मर्तो अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः।
ईशानो यवया वधम् ॥८॥

भाषार्थः—(गिर्वणः) हे स्तुतियों से सेवनीय (इन्द्र) इन्द्र! [महाप्रतापी मनुष्य] (मर्ताः) मनुष्य (नः) हमारी (तनूनाम्) उपकार क्रियाओं का (मा अभि द्रुहन्) कभी द्रोह न करें। तू (ईशानः) स्वामी होकर (वधम्) उन के वध [हनन व्यवहार] को (यवय) हटा ॥८॥

भावार्थः—बुद्धिमान् प्रतापी मनुष्य ऐसा प्रयत्न करे कि सब लोग वैर छोड़ कर परस्पर उपकारी होकर सुखी होवें ॥८॥

मन्त्राः ९—११ परमेश्वरगुणोपदेशः=९—११ परमेश्वर के गुणों का उपदेश॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥९॥

भाषार्थः—(तस्थुषः) मनुष्य आदि प्राणियों और लोकों में (परि) सब ओर से (चरन्तम्) व्यापे हुए, (ब्रध्नम्) महान् (अरुषम्) हिंसा रहित [परमात्मा] को (रोचना) प्रकाशमान पदार्थ (दिवि) व्यवहार के बीच (युञ्जन्ति) ध्यान में रखते और (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमाणुओं से लेकर सूर्य आदि लोक और सब प्राणी सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता परमात्मा की आज्ञा को मानते हैं, उसी की उपासना से मनुष्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके आत्मा की उन्नति करें ।।९।।

मन्त्र ९—११ आ चुके हैं—प्र० २० । २६ । ४—६ तथा ४७ । १०—१२ ।।

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ।।१०।।

भाषार्थः—(अस्य) इस [परमात्मा—म० ९] के (काम्या) चाहने योग्य, (विपक्षसा) विविध प्रकार ग्रहण करने वाले, (शोणा) व्यापक, (धृष्णू) निर्भय, (नृवाहसा) नेताओं [दूसरों के चलाने वाले सूर्य आदि लोकों] के चलाने वाले (हरी) दोनों धारण आकर्षण गुणों को (रथे) रमणीय जगत् के बीच (युञ्जन्ति) वे [प्रकाशमान पदार्थ—म० ९] ध्यान में रखते हैं ।।१०।।

भावार्थः—जिस परमात्मा के धारण आकर्षण सामर्थ्य में सूर्य आदि पिण्ड अन्य लोकों और प्राणियों को चलाते हैं, मनुष्य उन सब पदार्थों से उपकार लेकर उस ईश्वर को धन्यवाद दें ।।१०।।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ।।११।।

भाषार्थः—(मर्याः) हे मनुष्यो ! (अकेतवे) अज्ञान हटाने के लिये (केतुम्) ज्ञान को और (अपेशसे) निर्धनता मिटाने के लिये (पेशः) सुवर्ण आदि धन को (कृण्वन्) उत्पन्न करता हुआ वह [परमात्मा-म० ९, १०] (उषद्भिः) प्रकाशमान गुणों के साथ (सम्) अच्छे प्रकार (अजायथाः) प्रकट हुआ है ।।११।।

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करके परमात्मा को विचारते हुए सृष्टि के पदार्थों से उपकार लेकर ज्ञानी और धनी होवें ।।११।।

मन्त्र १२ राजप्रजाधर्मोपदेशः—मन्त्र १२ राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ।।

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ।।१२।।

भाषार्थः—(आत्) फिर (अह) अवश्य (स्वधाम् अनु) अपनी धारण शक्ति के पीछे (यज्ञियम्) सत्कार योग्य (नाम) नाम [यश] का (दधानाः) धारण करते हुए लोगों ने (पुनः) निश्चय कर के (गर्भत्वम्) गर्भपन [सारपन, बड़े पद] को (एरिरे) सब प्रकार से पाया है ।।१२।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जहां पर पूर्वोक्त प्रकार से न्याययुक्त स्वतन्त्रता के साथ लोग कार्य करते हैं, वहां पर सब पुरुष बड़ाई पाते हैं ॥१२॥

यह मन्त्र, आ चुका है—अ० २० । ४० । ३ ॥

सूक्तम् ॥७०॥

१—२० ॥ १, ३ मरुत इन्द्रश्च, २, ४, ५ मरुतः, ६–२० इन्द्रो देवता ॥ १—३, ५—७, ६, ११—१३, १६, २० गायत्री, ४, ८, १०, १४, १६, १७, निचृद् गायत्री, १५ पाद निचृद् गायत्री, १८ विराड् गायत्री छन्दः ॥

१—६ । राजप्रजाधर्मोपदेशः—१—६ राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
अविन्द उस्रिया अनु ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी मनुष्य] (गुहा) गुहा [गुप्त स्थान] में (चित्) भी [शत्रुओं के] (वीलु) दृढ़ गढ़ को, (आरुजत्नुभिः) तोड़ डालने वाले (वह्निभिः) अग्नियों [आग्नेय शस्त्रों] से (चित्) निश्चय करके (उस्रियाः अनु) निवास करने वाली प्रजाओं के पीछे (अविन्दः) तू ने पाया है ॥१॥

भावार्थः—प्रतापी वीर मनुष्य आग्नेय शस्त्र वाण तोप भुषुण्डी आदि से गुप्त स्थानों में छिपे वैरियों को नष्ट करके प्रजा की रक्षा करें ॥१॥

मन्त्र १—६ ऋग्वेद में है–१ । ६ । ५—१०, मन्त्र १ सामवेद–उ० २ । २ । ७ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥२॥

भाषार्थः—(देवयन्तः) विजय चाहने वाले (गिरः) विद्वान् लोगों ने (यथा) जैसे (विदद्वसुम्) धनों के प्रसिद्ध करने वाले (मतिम्) बुद्धिमान् की, [वैसे ही] (महाम्) महान् और (श्रुतम्) विख्यात पुरुष की (अच्छ) अच्छे प्रकार (अनूषत) स्तुति की है ॥२॥

भावार्थः—विजयी विद्वान् लोग अनुभवी प्रसिद्ध पुरुषों से उत्तम गुण ग्रहण करते रहें ॥२॥

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥३॥

भाषार्थः—[हे प्रजागण !] (अबिभ्युषा) निडर (इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] के साथ (हि) ही (संजग्मानः) मिलता हुआ तू (सम्) अच्छे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार (दृक्षसे) दिखाई देता है। (समानवर्चसा) एक से तेज के साथ (मन्दू) तुम दोनों [राजा और प्रजा] आनन्द देने वाले हो ॥३॥

भावार्थः—जिस राज्य में प्रजागण राजा से और राजा प्रजा से प्रसन्न रहते हैं, वही राज्य विद्या और धन में उन्नति करता है ॥३॥

मन्त्र ३, ४ आचुके हैं—अथ० २०। ४०। १, २ ॥

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥४॥

भाषार्थः—(अनवद्यैः) निर्दोष, (अभिद्युभिः) सब ओर से प्रकाशमान और (काम्यैः) प्रीति के योग्य (गणैः) गणों [प्रजागणों] के साथ (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] का (मखः) यज्ञ [राज्य व्यवहार] (सहस्वत्) अति दृढ़ता से (अर्चति) सत्कार पाता है ॥४॥

भावार्थः—सब राजकाज उत्तम विद्वान् लोगों के मेल से अच्छे प्रकार सिद्ध होते हैं ॥४॥

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
सर्मस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥५॥

भाषार्थः—(अतः) इस लिये, (परिज्मन्) हे सर्वत्र गति वाले शूर ! (दिवः) विजय की इच्छा से (वा) और (रोचनात्) प्रीति भाव से (अधि) ऊपर (आ गहि) आ, (अस्मिन्) इस [वचन] में (गिरः) हमारी स्तुतियां (सम्) ठीक ठीक (ऋञ्जते) सिद्ध होती हैं ॥५॥

भावार्थः—पूर्वोक्त प्रकार से आवश्यकता जताकर श्रेष्ठ प्रजागण धीर वीर पुरुष को उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करें ॥५॥

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥६॥

भाषार्थः—(इतः) इस लिये (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े प्रतापी मनुष्य] के द्वारा (दिवः) प्रकाश से (वा) और (पार्थिवात्) पृथिवी के संयोग से (वा) और (महः) बड़े (रजसः) जल [अथवा वायु मण्डल] से (वा) निश्चय करके (सातिम्) दान [उपकार] को (अधि) अधिकार पूर्वक (ईमहे) हम मांगते हैं ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि पूर्वोक्त प्रकार से विचारपूर्वक बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा विद्या ग्रहण करके संसार के सब अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेकर उन्नति करें ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र॒मिद् गा॒थिनो॑ बृ॒हदिन्द्र॑म॒र्केभि॑र॒र्किणः॑ । इन्द्रं॒ वाणी॑रनूषत ॥७॥

भाषार्थः—(गाथिनः) गाने वालों और (अर्किणः) विचार करने वालों ने (अर्केभिः) पूजनीय विचारों से (इन्द्रम्) सूर्य [के समान प्रतापी], (इन्द्रम्) वायु [के समान फुरतीले] (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को और (वाणीः) वाणियों [वेदवचनों] को (इत्) निश्चय करके (बृहत्) बड़े ढंग से (अनूषत) सराहा है ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य सुनीतिज्ञ प्रतापी, उद्योगी राजा के और परमेश्वर की दी हुई वेदवाणी के गुणों को विचारकर सब के सुख के लिये यथावत् उपाय करें ॥७॥

मन्त्र ७—९ आ चुके हैं—अथ० २०।३८।४—६ तथा २०।४७।४—६ ॥

इन्द्र॒ इद्धर्योः॒ सचा॒ संमि॑श्ल॒ आ व॑चो॒युजा॑ ।
इन्द्रो॑ व॒ज्री हि॑र॒ण्ययः॑ ॥८॥

भाषार्थः—(वज्री) वज्रधारी, (हिरण्ययः) तेजोमय (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (इत्) ही (इन्द्रः) वायु [के समान] (सचा) नित्य मिले हुए (हर्योः) दोनों संयोग वियोग गुणों का (संमिश्लः) यथावत् मिलाने वाला (आ) और (वचोयुजा) वचन को योग्य बनाने वाला है ॥८॥

भावार्थः—जैसे पवन के आने जाने से पदार्थों में चलने, फिरने, ठहरने का और जीभ में बोलने का सामर्थ्य होता है, वैसे ही दण्ड दाता प्रतापी राजा के न्याय से सब लोगों में शुभ गणों का संयोग और दोषों का वियोग होकर वाणी में सत्यता होती है ॥८॥

इन्द्रो॑ दी॒र्घाय॒ चक्ष॑स॒ आ सूर्यं॑ रोहयद् दि॒वि ।
वि गोभि॒रद्रि॑मैरयत् ॥९॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] ने (दीर्घाय) दूर तक (चक्षसे) देखने के लिये (दिवि) व्यवहार [वा आकाश] के बीच (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा [वा किरणों वा जलों द्वारा] (सूर्यम्) सूर्य [के समान प्रेरक] और (अद्रिम्) मेघ [के समान उपकारी पुरुष] को (आ रोहयत्) ऊंचा किया और (वि) विविध प्रकार (ऐरयत्) चलाया है ॥९॥

भावार्थः— जैसे परमेश्वर के नियम से सूर्य आकाश में चलकर तापि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि गुणों से अनेक लोकों को धारण करता और किरणों द्वारा जल खींचकर फिर बरसा कर उपकार करता है, वैसे ही दूरदर्शी राजा अपने प्रताप और उत्तम व्यवहारों से सब प्रजा को नियम में रक्खे और कर लेकर उनका प्रतिपालन करे ॥९॥

म० १०—२० । परमेश्वरोपासनोपदेशः—म० १०—२० । परमेश्वर की उपासना का उपदेश ॥

इन्द्र॒ वाजे॑षु नोऽव स॒हस्र॑प्रधनेषु च । उ॒ग्र उ॒ग्राभि॑रू॒तिभिः॑ ॥१०॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (उग्रः) उग्र [प्रचण्ड] तू (वाजेषु) पराक्रमों के बीच (च) और (सहस्रप्रधनेषु) सहस्रों बड़े धन वाले व्यवहारों में (उग्राभिः) उग्र [दृढ़] (ऊतिभिः) रक्षा साधनों के साथ (नः) हमें (अव) बचा ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा की प्रार्थना करके वीर पुरुष पराक्रमी और धनी होकर प्रजा का पालन करे ॥१०॥

मन्त्र १०—१६ ऋग्वेद में है—१ । ७ । ४-१०, म० १० सामवेद—पू० ६ । ११ । ४ तथा—उ० २ । १ । ८ ॥

इन्द्रं॑ व॒यं म॑हाध॒न इन्द्र॒मर्भे॑ हवामहे । युजं॑ वृ॒त्रेषु॑ व॒ज्रिण॑म् ॥११॥

भाषार्थः—(वयम्) हम (अर्भे) चलते हुए (महाधने) बहुत धन प्राप्त कराने वाले संग्राम में [अथवा बहुत धन में] (युजम्) सहायकारी और (वृत्रेषु) रोकने वाले शत्रुओं पर (वज्रिणम्) वज्रधारी (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को, (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (हवामहे) बुलाते हैं ॥११॥

भावार्थः—युद्धों में तथा बहुत धन में वीर पुरुष—"हे इन्द्र जगदीश्वर ! हे इन्द्र जगदीश्वर"—ऐसा स्मरण करके अपना बल बढ़ावें और प्रयत्न करके शत्रुओं को हटावें ॥११॥

यह मन्त्र सामवेद में भी है—पू० २ । ४ । ६ ॥

स नो॑ वृषन्न॒मुं च॒रुं सत्रा॑दाव॒न्नपा॑ वृधि । अ॒स्मभ्य॒मप्र॑तिष्कुतः ॥१२॥

भाषार्थः—(वृषन्) हे सुख बरसाने वाले ! (सत्रादावन्) हे सत्य ज्ञान देने वाले परमेश्वर ! (अप्रतिष्कुतः) बेरोक गति वाला (सः) सो तू (नः) हमारे लिये, (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (अमुम्) उस (चरुम्) मेघ के समान ज्ञान को (अप वृधि) खोल दे ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर से मेघ समान उपकारी सत्यज्ञान को प्राप्त कर के सुखी होवे ॥१२॥

यह मन्त्र सामवेद में है—उ० ८ । १ । २॥

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥१३॥

भाषार्थः—(वज्रिणः) अत्यन्त पराक्रम वाले (इन्द्रस्य) इन्द्र [परमऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] के (तुञ्जेतुञ्जे) दान दान में (ये) जो (उत्तरे) उत्तम उत्तम (स्तोमाः) स्तोत्र हैं, [उन से] (अस्य) उसी की (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुति (न विन्धे) मैं नहीं पाता हूं ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा ने प्राणियों के सुख के लिये अनन्त पदार्थ दिये हैं, अल्पज्ञ मनुष्य उन की गणना करके उसकी स्तुति नहीं कर सकता ॥१३॥

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥१४॥

भाषार्थः—(वृषा) बलवान् बैल (यूथा इव) जैसे अपने झुण्डों को, [वैसे ही] (वंसगः) सेवनीय पदार्थों का पहुंचाने वाला, (अप्रतिष्कुतः) बेरोक गति वाला (ईशानः) परमेश्वर (ओजसा) अपने बल से (कृष्टीः) मनुष्यों को (इयर्ति) प्राप्त होता है ॥१४॥

भावार्थः—जैसे बलवान् बैल अपने झुण्ड को वश में रखता है, वैसे ही परमात्मा सब में व्यापकर मनुष्य आदि प्राणियों को अपने नियम में रखता है ॥१४॥

यह मन्त्र सामवेद में भी है—उ० ८ । १ । २ ॥

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥१५॥

भाषार्थः—(यः) जो (एकः) अकेला (चर्षणीनाम्) चलने वाले मनुष्यों और (वसूनाम्) श्रेष्ठ गुणों का (इरज्यति) स्वामी है, (इन्द्रः) वही इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश] से सम्बन्ध वाले (क्षितीनाम्) चलते हुए लोकों का [स्वामी है] ॥१५॥

भावार्थः—परमात्मा सब प्राणियों, सब श्रेष्ठ गुणों और सब लोकों का स्वामी है मनुष्य उसकी भक्ति से अपना सामर्थ्य बढ़ावे ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१६॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् परमात्मा] को (वः) तुम्हारे लिये और (विश्वतः) सब (जनेभ्यः) प्राणियों के लिये (परि) सब प्रकार (हवामहे) हम बुलाते हैं। वह (अस्माकम्) हमारा (केवलः) सेवनीय (अस्तु) होवे ॥१६॥

भावार्थः—सब मनुष्य सर्वहितकारी जगदीश्वर की आज्ञा में रह कर आनन्द पावें ॥१६॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० २० । ३९ । १ ॥

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥१७॥

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥१८॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (सानसिम्) सेवनीय, (सजित्वानम्) जीतने वालों के साथ वर्तमान, (सदासहम्) सदा वैरियों के हराने वाले, (वर्षिष्ठम्) अत्यन्त बढ़े हुए (रयिम्) उस धन को (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (आ) सब ओर से (भर) भर ॥१७॥ (येन) जिस [धन] के द्वारा (मुष्टिहत्यया) मुट्ठियों की मार [बाहुयुद्ध] से और (अर्वता) घुड़चढ़े दल से (वृत्रा) शत्रुओं को (त्वोतासः) तुझ से रक्षा किये गये हम (नि) निश्चय करके (नि) नित्य (नि रुणधामहै) रोकते रहें ॥१८॥

भावार्थः—सब मनुष्य परमेश्वर का आश्रय लेकर पुरुषार्थ के साथ विद्याओं द्वारा धन बढ़ावें और शरीर और बुद्धिबल तथा अश्व आदि सेना को दृढ़ करके शत्रुओं को जीतें ॥१७, १८॥

मन्त्र १७—२० ऋग्वेद में हैं—१ । ८ । १—४, मन्त्र १७ साम०—पू० २ । ४ । ५ ॥

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ।
जयेम सं युधि स्पृधः ॥१९॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (त्वोतासः) तुझ से रक्षा किये गये (वयम्) हम (वज्रम्) वज्र [बिजुली और अग्नि के शस्त्रों] और (घना) घनों [मारने के तलवार आदि हथियारों] को (आ ददीमहि) ग्रहण करें और (युधि) युद्ध में (स्पृधः) ललकारते हुए शत्रुओं को (सम्) ठीक ठीक (जयेम) जीतें ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की शरण में रहकर वीर सेना और पुष्कल युद्ध सामग्री लेकर शत्रुओं को हरावें ॥१९॥

व॒यं शूरे॑भि॒रस्तृ॑भि॒रिन्द्र॒ त्वया॑ यु॒जा व॒यम् । सा॒स॒ह्याम॑ पृत॒न्यतः॑ ॥२०॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (वयम्) हम, (वयम्) हम (युजा त्वया) तुझ सहायक के साथ (अस्तृभिः) हथियार चलाने वाले (शूरेभिः) शूरों के द्वारा (पृतन्यतः) सेना चढ़ाने वाले वैरियों को (ससह्याम) हरा दें ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर में दृढ़ विश्वास करके धर्मयुद्ध में युद्ध-कुशल शूरों द्वारा वैरियों को जीत कर प्रजा पालन करें ॥२०॥

सूक्तम् ॥७१॥

१—१६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १—४, ७, ९, ११—१३, १६ निचृद् गायत्री, २, ३, ५, ८, १०, १४, १५ गायत्री, ६ वर्धमाना गायत्री ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

म॒हाँ इन्द्रः॑ प॒रश्च॒ नु म॑हि॒त्वम॑स्तु व॒ज्रिणे॑ । द्यौर्न प्र॑थि॒ना शवः॑ ॥१॥

भाषार्थः—(महान्) महान् (च) और (परः) श्रेष्ठ (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] (प्रथिना) फैलाव से (द्यौः न) सूर्य के प्रकाश के समान है, (नु) इसलिये (वज्रिणे) उस महापराक्रमी [परमेश्वर] के लिये (महित्वम्) महत्व और (शवः) बल (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर को धन्यवाद देते हुए विद्याओं द्वारा अपना ऐश्वर्य और बल बढ़ावें ॥१॥

मन्त्र १—६ ऋग्वेद में हैं—२ । ८ । ५—१० और म० १—साम०—पू० २ । ८ । २ ॥

स॒मो॒हे वा॒ य आश॑त॒ नर॑स्तो॒कस्य॒ सनि॑तौ ।
विप्रा॑सो वा धिया॒यवः॑ ॥२॥

भाषार्थः—(ये) जो (नरः) नर [नेता लोग] (समोहे) सङ्ग्राम में (वा) और (तोकस्य) सन्तान के (सनितौ) सेवन [पोषण, अध्यापन आदि] में (आशत) लगे हैं, वे (विप्रासः) विद्वान् (वा) और (धियायवः) बुद्धि की कामना वाले हैं ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य साङ्ग्रामिक नीति से प्रजा की रक्षा और सामान्य प्रबन्ध से विद्या की वृद्धि करें ॥२॥

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥३॥

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।

पक्वा शाखा न दाशुषे ॥४॥

भाषार्थः—(यः) जो (कुक्षिः) तत्त्व रस निकालने वाला, (सोमपातमः) ऐश्वर्य का अत्यन्त रक्षक मनुष्य (समुद्रः इव) समुद्र के समान (उर्वीः) भूमियों को और (काकुदः न) वेदवाणी जानने वाले के समान (आपः) शुभ कर्म को (पिन्वते) सींचता है ॥३॥ (अस्य) उस [मनुष्य] की (सूनृता) अन्न वाली क्रिया (एव) निश्चय कर के (हि) ही (विरप्शी) स्पष्ट वाणी वाली, (गोमती) श्रेष्ठ दृष्टि वाली, (महि) सत्कार योग्य, (पक्वा) परिपक्व [फल फूल वाली] (शाखा न) शाखा के समान (दाशुषे) आत्मदानी पुरुष के लिये [होवे] ॥४॥

भावार्थः—विज्ञानी, ऐश्वर्यवान् दूरदर्शी सत्यवादी पुरुष ही प्रजा-रक्षक होता है ॥३, ४॥

म० ४—६ आ चुके हैं अ० २० । ६० । ४—६ ॥

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (एव) निश्चय कर के (हि) ही (ते) तेरे (विभूतयः) अनेक ऐश्वर्य (मावते) मेरे तुल्य (दाशुषे) आत्मदानी के लिये (सद्यः चित्) तुरन्त ही (ऊतयः) रक्षा साधन (सन्ति) होते हैं ॥५॥

भावार्थः—राजा अपना ऐश्वर्य श्रेष्ठ उपकारी पुरुषों की रक्षा में लगाता रहे ॥५॥

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥६॥

भाषार्थः—(एव) निश्चय करके (हि) ही (अस्य) उस [सभापति] के (काम्या) मनोहर और (शंस्या) प्रशंसनीय (स्तोमः) उत्तम गुण (च) और (उक्थम्) कहने योग्य कर्म (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (सोमपीतये) सोम रस पीने के निमित्त [हैं] ॥६॥

भावार्थः—उत्तम गुणी पुरुष को सभापति बनाकर सब मनुष्य ऐश्वर्य वाले और तत्त्वज्ञान वाले होवें ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (आ इहि) तू प्राप्त हो, और (विश्वेभिः) सब (सोमपर्वभिः) ऐश्वर्य के उत्सवों के साथ (अन्धसः) अन्न से (मत्सि) तृप्त कर, तू (ओजसा) बल से (महान्) महान् और (अभिष्टिः) सब प्रकार पूजनीय है ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा का सहाय लेकर आपस में मिलकर विद्या द्वारा ऐश्वर्य बढ़ाने और अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करें ॥७॥

मन्त्र ७—१६ ऋग्वेद में हैं—१ । ९ । १—१०, मन्त्र ७ यजुर्वेद ३३ । २५ और सामवेद—पू० २ । ६ । ६ ॥

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥८॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (सुते) उत्पन्न जगत् में (मन्दिम्) आनन्द बढ़ाने वाले, (चक्रिम्) कार्य सिद्ध करने वाले (एनम्) इस (ईम्) प्राप्ति योग्य बोध को (मन्दिने) गतिशील, (विश्वानि) सब कर्मों के (चक्रये) कर चुकने वाले (इन्द्राय) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले मनुष्य के लिये (आ) सब प्रकार (सृजत) उत्पन्न करो ॥८॥

भावार्थः—विद्वान् लोग शिल्प विद्या से लेकर मोक्ष पर्यन्त ज्ञान का उपदेश करके सब मनुष्यों को कर्मवीर बनावें ॥८॥

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥९॥

भाषार्थः—(सुशिप्र) हे बड़े ज्ञानी ! (विश्वचर्षणे) हे सब गतिशील मनुष्यों के स्वामी ! [वा सब के देखने वाले परमेश्वर] (मन्दिभिः) हर्ष देने वाले (स्तोमेभिः) स्तुति योग्य व्यवहारों के साथ (सचा) सदा मेल से (एषु) इन (सवनेषु) ऐश्वर्य वाले पदार्थों में (आ) अच्छे प्रकार (मत्स्व) आनन्दित कर ॥९॥

भावार्थः—सर्वज्ञ सर्वदर्शक परमेश्वर के गुणों को धारण करके मनुष्य दूरदर्शी और पुरुषार्थी होकर सब को सुखी करें ॥९॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥१०॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (ते) तेरी (अजोषाः) अत्यन्त प्रीति करने वाली [जिन से अधिक हितकारी दूसरा नहीं वे] (गिरः) वेदवाणियां (असृग्रम्) गति देने वाले (वृषभम्) सुखों के बरसाने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[वा बलवान्] (पतिं त्वाम्) तुझ स्वामी को (प्रति) प्रत्यक्ष करके (उत् अहासत) ऊंची गयी हैं ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा के प्रकाशित अनन्त हितकारी वेदों को विचार कर विद्वान् लोग उस को अद्वितीय अनन्त सामर्थ्य वाला जानकर सदा पुरुषार्थ करें ॥१०॥

सं चो॑दय चि॒त्रम॒र्वाग् राध॑ इन्द्र॒ वरे॑ण्यम् ।
अस॒दित् ते॑ वि॒भु प्र॒भु ॥११॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (चित्रम्) अद्भुत, (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (राधः) सिद्धि करने वाले धन का (अर्वाक्) सन्मुख (सम्) ठीक ठीक (चोदय) भेज, (ते) तेरा (इत्) ही (विभु) व्यापक और (प्रभु) प्रबल सामर्थ्य (असत्) है ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थ करके परमात्मा के अनन्त भण्डार से विचित्र पदार्थों को प्राप्त करके इष्ट सिद्धि करें ॥११॥

अ॒स्मान्त्सु तत्र॑ चोद॒येन्द्र॑ रा॒ये रभ॑स्वतः । तुवि॑द्युम्न॒ यश॑स्वतः ॥१२॥

भाषार्थः—(तुविद्युम्न) हे अत्यन्त धन वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (राये) धन के लिये (रभस्वतः) उपाय सोच कर आरम्भ करने वाले, (यशस्वतः) यश रखने वाले (अस्मान्) हम को (तत्र) वहां [श्रेष्ठ कर्म में] (सु) अच्छे प्रकार (चोदय) पहुँचा ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा में विश्वास करके पहिले से विचार कर कार्य सिद्ध करें और कीर्तिमान् होवें ॥१२॥

सं गोम॑दिन्द्र॒ वाज॑वद॒स्मे पृ॒थु श्रवो॑ बृ॒हत् । वि॒श्वायु॑र्धे॒ह्यक्षि॑तम् ॥१३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] (अस्मे) हम को (गोमत्) बहुत भूमि वाला, (वाजवत्) बहुत अन्न वाला, (पृथु) फैला हुआ, (बृहत्) बढ़ता हुआ, (विश्वायुः) पूरे जीवन तक रहने वाला, (अक्षितम्) अक्षय [न घटने वाला] (श्रवः) सुनने योग्य यश वा धन (सम्) अच्छे प्रकार (धेहि) दे ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमात्मा की भक्ति के साथ ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त करें और बहुत यश और धन पाकर चक्रवर्ती राजा होकर संसार को सुख दें और आप सुखी होवें ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् ।

इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥१४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (अस्मे) हम को (बृहत्) बढ़ता हुआ (श्रवः) सुनने योग्य धन और (सहस्रसातमम्) सहस्रों सुखों का देने वाला (द्युम्नम्) चमकता हुआ यश और (ताः) वे [प्रसिद्ध] (रथिनीः) रथों [यान विमान आदि] वाली (इषः) चलती हुई सेनायें (धेहि) दे ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की प्रार्थनापूर्वक बहुत धन, कीर्ति और सेना के संग्रह से शत्रुओं का नाश करके सुख को प्राप्त होवें ॥१४॥

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥१५॥

भाषार्थः—(गीर्भिः) वेदवाणियों से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम (वसुपतिम्) वसुओं [अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य वा सूर्यलोक, द्यौ वा आकाश, चन्द्रलोक और तारागणों] के स्वामी, (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य (गन्तारम्) ज्ञान वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] को (वसोः) श्रेष्ठ गुण की (ऊतये) रक्षा के लिये (होम) बुलाते हैं ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्य सब ऐश्वर्य के दाता और न्यायकारी परमात्मा की प्रार्थना और उत्तम गुणों की धारणा से राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होकर उन्नति करें ॥१५॥

सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥१६॥

भाषार्थः—(अरिः) शत्रु (इत्) भी (सुते सुते) उत्पन्न हुए उत्पन्न हुए पदार्थ में (न्योकसे) निश्चित स्थान वाले, (बृहते) महान् (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] के (बृहत्) बढ़े हुए (शूषम्) बल को (आ) सब प्रकार (अर्चति) पूजता है ॥१६॥

भावार्थः—संसार में विचित्र पदार्थों की रचना और गुण देखकर वेद विरोधी नास्तिक भी परमात्मा के सामर्थ्य को मानकर उसकी शरण लेता है ॥१६॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥७२॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृदत्यष्टिः, २, ३ भुरिगष्टिश्छन्दः ॥

परमेश्वरोपासनोपदेशः—परमेश्वर की उपासना का उपदेश ॥

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् । तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि । इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥१॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (विश्वेषु) सब (हि) ही (सवनेषु) ऐश्वर्य-युक्त पदार्थों में (समानम्) एक रस व्यापक, (एकम्) एक, (स्वः) सुखस्वरूप (त्वा) तुझको (वृषमन्यवः) बलवान् के समान तेज वाले, और (सनिष्यवः) देनें योग्य धन को चाहने वाले पुरुष (पृथक् पृथक्) अलग अलग (तुञ्जते) ग्रहण करते हैं । (नावम् न) नाव के समान (पर्षणिम्) पार लगाने वाले (तम्) उस (त्वा) तुझ (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा], (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] को (शूषस्य) बल की (धुरि) धुरी [धारण शक्ति] में (यज्ञैः) यज्ञों [श्रेष्ठ व्यवहारों] से और (स्तोमेभिः) प्रशंसनीय गुणों से (चितयन्तः) चिन्तवन करते हुए (आयवः) पुरुषार्थी (आयवः न) मनुष्यों के समान (धीमहि) हम धारण करें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वान् पुरुषार्थी लोगों के समान आनन्द स्वरूप सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का सदा स्मरण करके अपना बल बढ़ाने के लिये प्रयत्न करें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—१ । १३१ । २, ३, ६ ॥

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः । यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि । आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥२॥

भाषार्थः (इन्द्र !) हे इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (व्रजस्य) मार्ग के (साता) पाने में (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले (सक्षन्तः) गतिशील, (गव्यस्य) भूमि के लिये हित के (निःसृजः) नित्य उत्पन्न करने वाले और (निःसृजः) निरन्तर देने वाले (मिथुनाः) स्त्री पुरुषों के समूहों ने (त्वा) तुझको [तेरे गुणों को] (वि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध प्रकार (ततन्ने) फैलाया है। (यत्) क्योंकि, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परमात्मन्] (वृषणम्) बलवान्, (सचाभुवम्) नित्य मेल से रहने वाले, (सचाभुवम्) सेचन [वृद्धि] के साथ वर्तमान (वज्रम्) वज्र [दण्डगुण] को (आविः करिक्रत्) प्रकट करता हुआ तू (गव्यन्ता) वाणी [विद्या] को चाहने वाले, (स्वः) सुख को (यन्ता) प्राप्त होने वाले (द्वा) दोनों (जना) जनों [स्त्री पुरुषों] को (समूहसि) यथावत् चेताता है ॥२॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष सबके सुख के लिये राज्य आदि प्राप्त करके शिष्ट सुखदायक, दुष्ट विनाशक परमात्मा की भक्ति करते हैं, उनको वह जगदीश्वर उन्नति के लिये सदा उत्साह देता है ॥२॥

यह मन्त्र आगे है अथ० २० । ७५ । १ ॥

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः । यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिन् चिकेतसि । आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥३॥

भाषार्थः—(नः) हमारे बीच में (उतो) निश्चय करके ही वह [जिज्ञासु पुरुष] (अस्याः) इस (उषसः) उषा [प्रभात वेला] का (जुषेत) सेवन करे और (हवीमभिः) ग्रहण करने योग्य व्यवहारों और (हवीमभिः) देने योग्य पदार्थों से (हि) ही (स्वर्षाता) सुख के सेवन में (अर्कस्य) पूजनीय परमात्मा के (हविषः) ग्रहण का (बोधि) बोध करे। (यत्) क्योंकि (वज्रिन्) हे दण्ड दाता (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (वृषा) सुखों का बरसाने वाला महा बलवान् तू (मृधः) हिंसक वैरियों के (हन्तवे) मारने को (चिकेतसि) जानता है, [इस लिये] (मे) मुझ (नवीयसः) अधिक नवीन [अभ्यासी ब्रह्मचारी] और (अस्य) उस (नवीयसः) अधिक स्तुति योग्य (वेधसः) बुद्धिमान् [आचार्य] के (मन्म) मनन योग्य कथन को (आ) अच्छे प्रकार (श्रुधि) सुन ॥३॥

भावार्थः—जैसे प्रातः काल में प्रकाश बढ़ता जाता है, वैसे ही मनुष्य उत्तम उत्तम व्यवहारों के लेने देने से परमात्मा की भक्ति बढ़ावें, वह जगदीश्वर विघ्ननाशक है, उस की उपासना नवीन अभ्यासी ब्रह्मचारी और सुबोध आचार्य आदि सब लोग करते रहें ॥३॥

सूक्तम् ॥७३॥

१—६ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृदार्ष्यनुष्टुप्; २ विराडार्ष्यनुष्टुप्; ३ भुरिगार्ष्यनुष्टुप्; ४ निचृज्जगती; ५, ६ निचृदार्षी त्रिष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षण का उपदेश ॥

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।

त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥१॥

भाषार्थः—(शूर) हे शूर ! [निर्भय मनुष्य] (तुभ्य) तेरे लिये (इत) ही (इमा) इन (विश्वा) सब (सवना) ऐश्वर्य युक्त वस्तुओं को और (तुभ्यम्) तेरे लिये (वर्धना) उन्नति करने वाले (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों को (कृणोमि) मैं करता हूं। (त्वम्) तू (नृभिः) नेता मनुष्यों से (विश्वधा) सब प्रकार (हव्यः) ग्रहण करने योग्य (असि) है ॥१॥

भावार्थः—चतुर सेनापति सब अधिकारियों की यथायोग्य पालना करता रहे, जिससे वे लोग सेवा करने में सदा प्रसन्न रहें ॥१॥

मन्त्र १, २ ऋग्वेद में हैं—७। २२। ७, ८ ॥

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।

न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥२॥

भाषार्थः—(दस्म) हे दर्शनीय ! (उग्र) हे तेजस्वी (इन्द्र) इन्द्र ! [राजन्] (मन्यमानस्य ते) तुझ महाज्ञानी की (न) न तो (महिमानम्) महिमा को और (न) न (ते) तेरे (वीर्यम्) पराक्रम और (राधः) धन को वे [अन्यपुरुष] (नु चित) कभी भी (नु) किसी प्रकार (उत्) अधिकता से (अश्नुवन्ति) पहुंचते हैं ॥२॥

भावार्थः जो मनुष्य महिमा और विद्या आदि शुभ गुणों, पराक्रम और धन में अधिक होवे, वह सभापति राजा होवे ॥२॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।

विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥३॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (वः) अपने लिये (महे) महान् (महिवृधे) बड़ों के बढ़ाने वाले, (प्रचेतसे) उत्तम ज्ञानी [दूरदर्शी राजा] के लिये (सुमतिम्) सुन्दर मति को (प्र) अच्छे प्रकार (भरध्वम्) धारण करो और (प्र) सामने (कृणुध्वम्) करो। [हे सभापते !] (चर्षणिप्राः) मनुष्यों के मनोरथ पूरा करने वाला तू (पूर्वीः) प्राचीन (विशः) प्रजाओं को (प्र चर) फैला ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग चतुर नीतिज्ञ सभापति के आश्रय से अपनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति करें और सभापति उन लोगों के मेल से अपना और प्रजा का ऐश्वर्य बढ़ावे ॥३॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—७। ३१। १०॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥४॥

भाषार्थः—(यदा) जब (अस्य) इस [सेनापति] के (यम्) जिस (हिरण्यम्) तेजोमय (वज्रम्) वज्र [दण्ड] (अथ) और (रथम्) रथ [राज्यव्यवहार] को (हरी) दो घोड़े [के समान बल और पराक्रम] (सूरिभिः) प्रेरक विद्वानों के साथ (इत्) ही (वि) विविध प्रकार (वहतः) ले चलते हैं। [तब उस पर] (मघवा) महाधनी, (सनश्रुतः) दान के लिये प्रसिद्ध, (दीर्घश्रवसः) बहुत यश वाले (वाजस्य) पराक्रम का (पतिः) स्वामी (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (आ तिष्ठति) ऊंचा बैठता है ॥४॥

भावार्थः—जब राजा विद्वानों से मिलकर धर्मयुक्त नीति के साथ राज्य को चलाता है, वह प्रजापालक महाधनी होकर बड़ी कीर्ति पाता है ॥४॥

मन्त्र ४—६ ऋग्वेद में हैं—१०। २३। ३—५॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥५॥

भाषार्थः—(सो) वही (इन्द्रः) इन्द्र [बड़ा ऐश्वर्यवान् पुरुष] (वृष्टिः) (चित्) वृष्टि के समान (नु) निश्चय करके (सचा) नित्य मेल के साथ (स्वा) अपने (हरिता) स्वीकार करने योग्य (यूथ्या) समुदायों को (श्मश्रूणि) अपने शरीर में आश्रित अङ्गों [के समान] (अभि) सब प्रकार (प्रुष्णते) सींचता है। और वह (सुते) उत्पन्न जगत् में (सुक्षयम्) बड़े ऐश्वर्य वाले (मधु) निश्चित ज्ञान [मधुविद्या] को (इत्) अवश्य (अव वेति) पा लेता है और [पापों को] (उत्) (धूनोति) उखाड़ कर हिला देता है, (यथा) जैसे (वातः) पवन (वनम्) वन को ॥५॥

भावार्थः— वृष्टि के समान जो मनुष्य शरीर के अङ्गों के तुल्य प्रिय अपने लोगों पर उपकार करता है, वह संसार में ऐश्वर्य युक्त ज्ञान प्राप्त करके पापों को हटाकर आनन्द पाता है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥६॥

भाषार्थः—(यः) जिस [शूर] ने (वाचा) [अपनी सत्य] वाणी से (विवाचः) विरुद्ध बोलने वाले, (मृध्रवाचः) हिंसक वाणी वाले के (पुरु) बहुत (सहस्रा) सहस्रों (अशिवा) क्रूर कर्मों को (जघान) नष्ट किया है और (यः) जिस [शूर] ने (पिता इव) पिता के समान (तविषीम्) हमारी शक्ति और (शवः) पराक्रम को (ववृधे) बढ़ाया है, (अस्य) उस के (तत्तत्) उस उस (इत्) ही (पौंस्यम्) मनुष्यपन [वा बल] की (गृणीमसि) हम बड़ाई करते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो वीर पुरुष दुराचारियों का नाश करके प्रजा को कष्ट से छुड़ाता है, प्रजागण उस गुणवान् पुरुष को ही मुखिया बनाकर प्रीति करते हैं ॥६॥

सूक्तम् ॥७४॥

१—७ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ४, ५ निचृत् पथ्या पङ्क्तिः, २, ३, ६, ७ विराडार्षी पङ्क्तिः ॥

राजप्रजाधर्मोपदेशः—राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१॥

भाषार्थः—(सत्य) हे सच्चे ! [सत्यवादी, सत्यगुणी] (सोमपाः) हे सोम [तत्त्व रस] पीने वाले ! [वा ऐश्वर्य के रक्षक राजन्] (यत् चित्) जो कभी (हि) भी (अनाशस्ताः इव) निन्दनीय कर्म वालों के समान (स्मसि) हम होवें। (तुविमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े प्रतापी राजन्] (तु) निश्चय करके (नः) हम को (सहस्रेषु) सहस्रों (शुभ्रिषु) शुभ गुण वाले (गोषु) विद्वानों और (अश्वेषु) कामों में व्यापक बलवानों में (आ) सब ओर से (शंसय) बड़ाई वाला कर ॥१॥

भावार्थः- यदि धार्मिक लोगों से किसी कारणविशेष से अपराध हो जावे, नीतिज्ञ राजा यथायोग्य वर्ताव करके उन भूले भटकों को फिर सुमार्ग पर लावे ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१ । २९ । १—७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥२॥

भाषार्थः—(शिप्रिन्) हे बड़े ज्ञानी ! [वा दृढ़ जाबड़े आदि अङ्गों वाले] (वाजानां पते) हे अन्नों के स्वामी ! (शचीवः) हे उत्तम कर्म वाले ! [राजन्] (तव) तेरी ही (दंसना) दर्शनीय क्रिया है । (तुविमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े प्रतापी राजन्]···[मन्त्र १] ॥२॥

भावार्थः—बलवान् राजा बड़ा ज्ञानी, धनी और सत्कर्मी होकर प्रजापालन करे ॥२॥

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥३॥

भाषार्थः—[हे राजन्] (मिथुदृशा) दोनों हिंसा दिखाने वाले [शरीर और मन] को (नि स्वापय) सुला दे, (अबुध्यमाने) विना जगे हुए वे दोनों (सस्ताम्) सो जावें । (तुविमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र !······[मन्त्र १] ॥३॥

भावार्थः—राजा अपने सुप्रबन्ध से सब प्रजा को सुबोध और निरालसी बनावे ॥३॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥४॥

भाषार्थः—(शूर) हे शूर ! [निर्भय] (त्याः) वे (अरातयः) दान न करने वाली शत्रु प्रजायें (ससन्तु) सो जावें, और (रातयः) दानी लोग (बोधन्तु) जागते रहें । (तुविमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र !······[मन्त्र १] ॥४॥

भावार्थः—राजा अपने पराक्रम से दुष्टों को शिर न उठाने दे और धर्मात्मा दाता लोगों को उत्साही करे ॥४॥

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े प्रतापी राजन्] (अमुया) उस (पापया) पाप क्रिया के साथ (नुवन्तम्) स्तुति करते हुए (गर्दभम्) गदहे के [समान व्यर्थ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेंकने वाले निन्दक पुरुष] को (सम् मृण) मार डाल। (तुविमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र!......[मन्त्र १] ॥५॥

भावार्थः—राजा गदहे के समान कटुवाची, मिथ्याभाषी दुर्जन को कुशिक्षा फैलाने से रोके ॥५॥

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६॥

भाषार्थः—(कुण्डृणाच्या) रक्षा पहुंचाने वाली क्रिया के साथ (दूरम्) दूर तक (वनात् अधि) वन [उपवन वाटिका आदि] के ऊपर होता हुआ (वातः) पवन (पताति) चला करे। (तुविमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र...[मन्त्र १] ॥६॥

भावार्थः—राजा वन, उपवन, वाटिका आदि से प्रजा का स्वास्थ्य बढ़ावे ॥६॥

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम्।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७॥

भाषार्थः—[हे राजन्!] (सर्वम्) प्रत्येक (परिक्रोशम्) निन्दक, (कृकदाश्वम्) कष्ट देने वाले को (जहि) पहुंच और (जम्भय) मार डाल। (तुविमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े प्रतापी राजन्] (तु) निश्चय करके (नः) हम को (सहस्रेषु) सहस्रों (शुभ्रिषु) शुभ गुण वाले (गोषु) विद्वानों और (अश्वेषु) कामों में व्यापक बलवानों में (आ) सब ओर से (शंसय) बड़ाई वाला कर ॥७॥

भावार्थः—राजा गुणों में दोष लगाने वाले कुचाली हिंसकों को नष्ट करके प्रजा को सब प्रकार सुखी रक्खे ॥७॥

सूक्तम् ॥७५॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ३ भुरिगष्टिः, २ सुराडष्टिः ॥

परमेश्वरोपासनोपदेशः—परमेश्वर की उपासना का उपदेश ॥

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः। यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि। आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (व्रजस्य) मार्ग के (सातौ) पाने मे (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले, (सक्षन्तः) गतिशील, (गव्यस्य) भूमि के लिये हित के (निःसृजः) नित्य उत्पन्न करने वाले और (निःसृजः) निरन्तर देने वाले (मिथुनाः) स्त्री पुरुषों के समूहों ने (त्वा) तुझ को [तेरे गुणों को] (वि) विविध प्रकार (ततस्रे) फैलाया है। (यत्) क्योंकि, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परमात्मन्] (वृषणम्) बलवान्, (सचाभुवम्) नित्य मेल से रहने वाले, (सचाभुवम्) सेचन [वृद्धि] के साथ वर्तमान (वज्रम्) वज्र [दण्डगुण] को (आविः करिक्रत्) प्रकट करता हुआ तू (गव्यन्ता) वाणी [विद्या] को चाहने वाले, (स्वः) सुख को (यन्ता) प्राप्त होने वाले (द्वा) दोनों (जना) जनों [स्त्री पुरुषों] को (समूहसि) यथावत् चेताता है ॥१॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष सब के सुख के लिये राज्य आदि प्राप्त कर के शिष्टसुखदायक, दुष्टविनाशक परमात्मा की भक्ति करते हैं, उन को वह जगदीश्वर उन्नति के लिये सदा उत्साह देता है ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—१ । १३१ । ३—५ । मन्त्र १ आ चुका है—अथ० २० । ७२ । २ ॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः । सासहानो अवातिरः । शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते । महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] (पूरवः) मनुष्य (ते) तेरे (अस्य) उस (वीर्यस्य) सामर्थ्य का (विदुः) ज्ञान रखते हैं, (यत्) जिस [सामर्थ्य] से (ससहानः) जीतते हुए तू ने (शारदीः) वर्ष भर में उत्पन्न होने वाली (पुरः) पालन सामग्रियों को (अवातिरः) उतारा है, (अवातिरः) उतारा है, (शवसः पते) हे बल के स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! [परमेश्वर] (तम्) उस (अयज्युम्) यज्ञ के न करने वाले (मर्त्यम्) मनुष्य को (शासः) तू ने शासन में किया है, और (मन्दसानः) आनन्द करते हुए तू ने (महीम्) बड़ी (पृथिवीम्) पृथिवी से (इमाः) इन [यज्ञ न करने वाली] (अपः) प्रजाओं को, (इमाः) इन (अपः) प्रजाओं को (अमुष्णाः) लूटा है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा अपने सामर्थ्य से अनन्त पदार्थ उत्पन्न करके सब का सदा पालन करता है, और अनाज्ञाकारी दुष्टों को अवश्य दण्ड देता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ । चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे । ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥३॥

भाषार्थः—(वृषन्) हे महाबली ! [परमेश्वर] (आत्) इस लिये (इत्) ही (ते) तेरे (अस्य) उस (वीर्यस्य) सामर्थ्य को (चर्किरन्) उन्हों ने [मनुष्यों ने] वार वार जाना है, (यत्) जिस [सामर्थ्य] से (मदेषु) आनन्दों के बीच (उशिजः) शुभ गुण चाहने वाले बुद्धिमानों को (आविथ) तू ने बचाया है, (यत्) जिस [सामर्थ्य] से (सखीयतः) तुझे मित्र के समान समझते हुए लोगों को (आविथ) तू ने बचाया है । और (एभ्यः) इन [लोगों] के लिये (पृतनासु) मनुष्यों में (प्रवन्तवे) सेवन करने को (कारम्) यत्न (चकर्थ) तू ने किया है, (श्रवस्यन्तः) कीर्ति चाहने वाले (ते) वे (अन्यामन्याम्) अलग, अलग (नद्यम्) पूजने योग्य क्रिया को (सनिष्णत) सेवन करें, (सनिष्णत) सेवन करें ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमात्मा के सामर्थ्य का अनेक प्रकार अनुभव करके आपस में मिलकर तथा पृथक् पृथक् भी शुभ गुणों की प्राप्ति से सामर्थ्य बढ़ावें ॥३॥

सूक्तम् ॥७६॥

१—८ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ विराडार्षी त्रिष्टुप्, २, ४—६ निचृत् त्रिष्टुप्, ३, ७, ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥

राजकर्तव्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

वने न वा यो न्यधायि चाकं छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१॥

भाषार्थः—(वने) वृक्ष पर (न) जैसे (चाकन्) प्रीति करने वाला (वा, यः=वायः) पक्षी का बच्चा (नि अधायि) रक्खा जाता है, [वैसे ही] (भुरणो) हे दोनों पोषको ! [माता पिताओ] (शुचिः) पवित्र (स्तोमः) बड़ाई योग्य गुण ने (वाम्) तुम दोनों को (अजीगः) ग्रहण किया है । (यस्य) जिस [बड़ाई योग्य गुण] को (इत्) ही (होता) ग्रहण करने वाला (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला पुरुष] (पुरुदिनेषु) बहुत दिनों के भीतर (नृणाम्) नेताओं का (नृतमः) सब से बड़ा नेता, (नर्यः) मनुष्यों का हितकारी, (क्षपावान्) श्रेष्ठ रात्रियों वाला है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे चिड़िया चिरौटा बच्चे को घोंसले में धर कर पुष्ट और समर्थ करते हैं, वैसे ही स्त्री पुरुष सदा दिन रात उत्तम गुण ग्रहण करके अपने को और अपने सन्तानों को मुख्य कार्यकर्ता बनावें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१० । २९ । १—८ ॥

हम ने (वा, यः) दो पदों के स्थान पर (वायः) एक पद मानकर अर्थ किया है। भगवान् यास्कमुनि ने इस मन्त्र पर—निरुक्त ६। २८। में लिखा है—(वा और यः) शाकल्य ने [पद विभाग] किया है, किन्तु ऐसा होने पर आख्यात उदात्त होता और अर्थ भी पूरा न होता—अर्थात् जो (वा और यः) पदकार शाकल्य ऋषि ने पद विभाग किया है, वह दो पद होता तो [यद्वृत्तान्नित्यम्। पा० ८। १। ६६] इस सूत्र से (अधायि) क्रिया पद उदात्त होता, किन्तु वह अनुदात्त है, और (वा) का अर्थ कुछ न बनता और वृक्ष पर क्या रक्खा हुआ है, यह आकांक्षा बनी रहती। इस से (वा। यः।) दो पद भूल से हैं (वायः) ऐसा एक पद ठीक है। सायणाचार्य और ग्रिफिथ महाशय ने भी (वायः) ही माना है॥

प्र ते॑ अ॒स्या उ॒षसः॒ प्राप॑रस्या नृ॒तौ स्या॑म॒ नृत॑मस्य नृ॒णाम्।
अनु॑ त्रि॒शोकः॑ श॒तमाव॑हन्नॄ॒न् कुत्से॑न॒ रथो॒ यो अस॑त् सस॒वान् ॥२॥

भाषार्थः—(अस्याः) इस और (अपरस्याः) दूसरी [आनेवाली] (उषसः) उषा [प्रभात वेला] के (नृतौ) नृत्य [चेष्टा] में (नृणाम्) नेताओं के (नृतमस्य ते) तुझ सब से बड़े नेता के [भक्त रह कर] (प्र प्र) बहुत उत्तम (स्याम) हम होवें। (यः) जो (त्रिशोकः) तीन प्रकार [बिजुली, सूर्य और अग्नि] के प्रकाश वाला (रथः) रथ (असत्) होवे, वह [रथ] (ससवान्) सेवन करता हुआ (शतम्) सौ (नॄन्) नेता पुरुषों को (कुत्सेन) मिलन सार ऋषि [सेनापति] के साथ (अनु) अनुकूल रीति से (आ अवहत्) लावे॥२॥

भावार्थः—जैसे प्रभात वेला सूर्य द्वारा प्रकाश करती हुई चली चलती है, वैसे ही मनुष्य अत्यन्त ज्ञानी पुरुष के आश्रय से बिजुली, सूर्य और अग्नि आदि पदार्थों के द्वारा यान विमान आदि बनाकर कार्य सिद्ध करें॥२॥

कस्ते॒ मद॑ इन्द्र॒ रन्त्यो॑ भू॒द् दुरो॒ गिरो॑ अ॒भ्यु१॒॑ग्रो वि धा॑व।
कद् वाहो॑ अ॒र्वागुप॑ मा मनी॒षा आ त्वा॑ शक्यामुप॒मं राधो॒ अन्नैः॑ ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [महाप्रतापी राजन्] (कः) कौन सा (ते) तेरा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मदः) हर्ष (रन्त्यः) [हमारे लिये] आनन्ददायक (भूत्) होवे, (उग्रः) तेजस्वी तू (गिरः) स्तुतियों को (अभि) प्राप्त होकर (दुरः) [हमारे] द्वारों पर (वि धाव) दौड़ता आ। (कत्) कब (वाहः) वाहन [घोड़ा रथ आदि] (मनीषा) बुद्धि के साथ (मा उप) मेरे समीप (अर्वाक्) सामने [होवे], और (उपमम्) समीपस्थ (त्वा) तुझ को (आ) प्राप्त होकर (अन्नैः) अन्नों के सहित (राधः) धन (शक्याम्) पाने को समर्थ हो जाऊं ॥३॥

भावार्थः—प्रजागण पुरुषार्थी धार्मिक राजा को आदर पूर्वक निमन्त्रण करके उन्नति के उपायों का विचार करें ॥३॥

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (त्वावतः) तुझ जैसे का (द्युम्नम्) यश (नॄन्) नेताओं में (कत् उ) किस को है, (कया धिया) किस बुद्धि के साथ (करसे) तू कर्तव्य करेगा, (उरुगाय) हे बहुत कीर्ति वाले ! (कत्) कैसे (नः) हम को (सत्यः) सच्चे (मित्रः न) मित्र के समान (भृत्यै) पालने के लिये (आ अगन्) तू प्राप्त हुआ है, (यत्) क्योंकि (अन्ने) अन्न में (समस्य) सब की (मनीषाः) बुद्धियां (असन्) रहती हैं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य संसार में अत्यन्त कीर्ति पाकर अपना पुरुषार्थ सिद्ध करने के लिये प्रजा की रक्षा का विचार सच्चे हृदय से करता रहे ॥४॥

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५॥

भाषार्थः—(तुविजात) हे बहुत प्रकार से प्रसिद्ध (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन] (सूरः न) सूर्य के समान तू [उन को] (अर्थम्) पाने योग्य (पारम्) पार की ओर (प्र ईरय) आगे बढ़ा (ये) जो (जनिधाः इव) वीरों को उत्पन्न करने वाली पत्नियों के धारण करने वाले के समान (अस्य) उस [तेरे] (कामम्) मनोरथ को (ग्मन्) प्राप्त होते हैं, (च) और (ये) जो (नरः) नेता लोग (ते) तेरे लिये (पूर्वीः) सनातन (गिरः) वाणियों [विद्याओं] को (अन्नैः) अन्नों के साथ (प्रतिशिक्षन्ति) समर्पण करते हैं ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे मनुष्य वीरसू पत्नी का प्रयत्नपूर्वक आदर करते हैं, वैसे ही राजा हितैषी नेता पुरुषों की उन्नति में तत्पर रहे ॥५॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।

वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (नु) निश्चय करके (ते) तेरी (मात्रे) दो मात्रायें [उपाय शक्तियां] (सुमिते) अच्छे प्रकार नापी गयीं [जाँची गयीं], (पूर्वी) सनातनी हैं कि तू (मज्मना) अपने बल से और (काव्येन) बुद्धिमत्ता से (द्यौः) चमकते हुए सूर्य [के समान] और (पृथिवी) फैली हुई पृथिवी [के समान] है। (ते) तेरे (वराय) वर [इष्टफल] के लिये (घृतवन्तः) प्रकाशमान (सुतासः) निचोड़े हुए तत्त्व रस हैं (मधूनि) निश्चित ज्ञान रस (पीतये) पीने के लिये (स्वद्मन्) स्वादिष्ट (भवन्तु) होवें ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य दो उपायों अर्थात् पराक्रम और बुद्धि से सूर्य और भूमि के समान उपकारी होता है, उस की इष्ट सिद्धि के लिये संसार के सब पदार्थ उपयोगी होते हैं ॥६॥

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।

स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥७॥

भाषार्थः—(अस्मै) इस (इन्द्राय) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले मनुष्य] के लिए (मध्वः) मधुर रस [उत्तम ज्ञान] का (पूर्णम्) पूरा (अमत्रम्) पात्र (आ) सब ओर से (असिचन्) उन्हों ने [विद्वानों ने] सींचा है, (हि) क्योंकि (सः) वह (सत्यराधाः) सच्चे साधक धन वाला है। (सः) वह (नर्यः) नरों का हितकारी (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरिमन्) फैलाव में (क्रत्वा) अपनी बुद्धि से (च) और (पौंस्यैः) मनुष्य कर्मों से (अभि) सब प्रकार (आ) पूरा पूरा (वावृधे) बढ़ा है ॥७॥

भावार्थः—विद्वानों का सिद्धान्त है कि पराक्रमी मनुष्य पूरा ज्ञानी होकर अपनी बुद्धि और कर्मों से परोपकार करता हुआ अभीष्ट वर अर्थात् मोक्ष सुख पाता है ॥७॥

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।

आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८॥

भाषार्थः—(स्वोजाः) सुन्दर बल वाला (इन्द्र) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष] (पृतनाः) मनुष्यों में (वि आनट्) फैल गया है, (अस्मै) इस की (सख्याय) मित्रता के लिये (पूर्वीः) सब [मनुष्य] (आ यतन्ते) यत्न करते रहते हैं। [हे राजन्!] (न) अब (पृतनासु) मनुष्यों के बीच (स्म) अवश्य (रथम्) रथ पर (आतिष्ठ) तू चढ़, (यम्) जिस [रथ] को (भद्रया) कल्याणी (सुमत्या) सुमति के साथ (चोदयासे) तू चलावेगा ॥८॥

भावार्थः—जो धर्मात्मा पुरुष सब में प्रबल और सुबोध होता है, सब मनुष्य उसके मित्र बन जाते हैं और वह तभी रथ रूपी राज काज आदि व्यवहार को उत्तम रीति से चलाता है ॥८॥

सूक्तम् ॥७७॥

१—८ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्; २ निचृत् पङ्क्तिः, ३, ५ त्रिष्टुप्; ७, ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥१॥

भाषार्थः—(सत्यः) सच्चा [सत्यवादी, सत्यकर्मी], (मघवान्) महाधनी, (ऋजीषी) सरल स्वभाव वाला [राजा] (आ यातु) आवे, और (अस्य) इस [राजा] के (हरयः) मनुष्य (नः) हमारे (उपद्रवन्तु) पास आवें। (तस्मै) उस के लिये (इत्) ही (सुदक्षम्) सुन्दर बल वाला (अन्धः) अन्न (सुषुम) हमने सिद्ध किया है, (गृणानः) उपदेश करता हुआ वह (इह) यहां (अभिपित्वम्) मेल मिलाप (करते) करे ॥१॥

भावार्थः—राजा और राजा के पुरुष धर्मात्मा होकर प्रेम से प्रजा का पालन करें, और प्रजागण भी ऐश्वर्य बढ़ाकर उस से प्रीति करें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—४ । १६ । १—८ ॥

अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥२॥

भाषार्थः—(शूर) हे शूर! [राजन्] (अद्य) अब (अस्मिन्) इस (अन्ते) पास वाले (सवने) ऐश्वर्य में (मन्दध्यै) आनन्द करने के लिये (नः) हमारे (अध्वनः) मार्गों को (न) मत (अव स्य) विनष्ट कर। (उशना इव) चाहने योग्य पुरुष के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान (वेधाः) बुद्धिमान् पुरुष (चिकितुषे) ज्ञानवान् (असुर्याय) प्राणियों के हितकारी के लिये (उक्थम्) कहने योग्य कर्म और (मन्म) मनन योग्य ज्ञान को (शंसाति) कहे ॥२॥

भावार्थः—राजा ऐसा उपाय करे कि सब लोग बेरोक स्वतन्त्र होकर संसार के पदार्थों से उन्नति करें और विद्वान् लोग मिलकर प्राणियों के हित के लिये विचार करते रहें ॥२॥

कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३॥

भाषार्थः—(कविः न) जैसे बुद्धिमान् पुरुष (विदथानि) जानने योग्य कर्मों को (साधन्) सिद्ध करता हुआ (निण्यम्) गूढ़ अर्थ को, [वैसे ही] (यत्) जो (वृषा) सुखों का बरसाने वाला बलवान् [राजा] (सेकम्) सिञ्चन् [वृद्धि के प्रयत्न] को (विपिपानः) विशेष करके रक्षा करता हुआ (अर्चात्) सत्कार करे, वह (इत्था) इस प्रकार से (सप्त) सात (कारून्) काम करने वालों [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि, अथवा दो कान, दो नथने, दो आंख, और एक मुख, इन सात] को (दिवः) व्यवहार कुशल (जीजनत्) उत्पन्न करे, (चित्) जैसे (गृणन्तः) उपदेश करते हुए पुरुषों ने (अह्ना) दिन के साथ (वयुनानि) जानने योग्य कर्मों को (चक्रुः) किया है ॥३॥

भावार्थः—जो राजा बुद्धिमानों के समान गूढ़ विचार वाला और वृद्धि करने वाला होता है, वह सब के शरीर और बुद्धि को व्यवहार कुशल कर के पहिले महात्माओं के सदृश अद्भुत कर्मों को दिन के प्रकाश के समान प्रकट करता है ॥३॥

मन्त्र में (कारु) पद ऋषि आदि वाचक है। यजुर्वेद ३४। ५५ का वचन है (सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) शरीर में सात ऋषि रक्खे हुए हैं। [सप्त ऋषयः षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तमी] सात ऋषि छह इन्द्रियां और सातवीं विद्या [बुद्धि] है—निरु० १२। ३७ [कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि। कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्] कर्ता ने [मनुष्य के] मस्तक में सात गोलक खोदे, यह दो कान, दोनों नथने, दोनों आंखें और एक मुख—अथ० १०। २। ६॥

स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) जो (अर्कैः) पूजनीय विचारों से (सुदृशीकम्) उत्तम प्रकार से देखने योग्य, (महि) बड़ा (ज्योतिः) प्रकाशमय (स्वः) सुख (वेदि) जाना गया है, और (यत्) जिस [सुख] से (ह) निश्चय करके (वस्तोः) दिन [के समान], (रुरुचुः) वे [विद्वान् जन] प्रकाशित हुए हैं। [उस सुख के लिये] (नृतमः) सब से बड़े नेता पुरुष ने (अभिष्टौ) सब प्रकार मिलाप में (नृभ्यः) नेता लोगों के निमित्त (विचक्षे) विशेष करके देखने के अर्थ (अन्धा) भारी (तमांसि) अन्धकारों को (दुधिता) नष्ट (चकार) किया है ॥४॥

भावार्थः—जिस सुख को महात्मा लोगों ने बड़े विचारों से अनुभव करके हृदय का आवरण हटाया है, उस सुख को सुनीतिज्ञ राजा सूर्य के प्रकाश के समान विद्वानों में बढ़ाकर प्रजापालन करे ॥४॥

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।

अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५॥

भाषार्थः—(ऋजीषी) सरल स्वभाव वाले (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] ने (अमितम्) वेनाप सामर्थ्य को (ववक्षे) पाया है, और (महित्वा) अपनी महिमा से (उभे) दोनों (रोदसी) सूर्य और भूमि को (आ) सब प्रकार (पप्रौ) भर दिया है। (अतः) इस कारण से (चित्) ही (अस्य) इस [जगदीश्वर] की (महिमा) महिमा (वि) विशेष करके (रेचि) अधिक हुई है, (यः) जो (विश्वा) सब (भुवना) लोकों में (अभि बभूव) व्यापक हुआ है ॥५॥

भावार्थः—जो परमात्मा अपने अतोल बल से अनन्त संसार को धारण कर रहा है, उसी के गुण जानकर मनुष्य अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥५॥

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।

अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥६॥

भाषार्थः—(विद्वान्) विद्वान् (शक्रः) शक्ति वाले [इन्द्र मनुष्य] ने (निकामैः) निश्चित कामना वाले (सखिभिः) मित्रों के साथ (विश्वानि) सब (नर्याणि) नेताओं के हितकारी (अपः) कर्मों को (रिरेच) फैलाया है। (ये) जिन [बुद्धिमानों] ने (वचोभिः) अपने वचनों से (अश्मानम्) व्यापक विघ्न [अथवा मेघ के समान अन्धकार फैलाने वाले शत्रु] को (चित्) निश्चय कर के (बिभिदुः) तोड़ा फोड़ा है, (उशिजः) उन बुद्धिमानों ने (गोमन्तम्) वेदवाणी वाले (व्रजम्) मार्ग को (वि वव्रुः) खोल दिया है ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा को योग्य है कि सत्यवादी पराक्रमी मित्रों के साथ अज्ञान का नाश कर के विद्या की वृद्धि से प्रजा पालन करे ॥६॥

अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्राणांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवं छवसा शूर धृष्णो ॥७॥

भाषार्थः—(धृष्णो) हे साहसी (शूर) शूर पुरुष ! (शवसा) बल के साथ (पतिः) स्वामी (भवन्) होते हुए तू ने (अपः) कर्म के (वव्रिवांसम्) रोकने वाले (वृत्रम्) अन्धकार को (परा अहन्) मार फेंका है, (सचेताः) सचेत (पृथिवी) भूमि ने (ते) तेरे (वज्रम्) वज्र [शासन] को (प्र) अच्छे प्रकार (आवत्) माना है, और तू ने (समुद्रियाणि) समुद्र के योग्य (अर्णांसि) बहते हुए जलों को (प्र) आगे को (ऐनोः) चलाया है ॥७॥

भावार्थः—पुरुषार्थी राजा कर्मप्रधान होकर प्रजा को शासन में रक्खे और खेती आदि सींचने के लिये नदी नालों को पहाड़ों से समुद्र तक पहुंचावे ॥७॥

अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८॥

भाषार्थः—(पुरुहूत) हे बहुतों से बुलाये गये [राजन् !] (यत्) जब तू (अपः) जलों को (अद्रिम्) पहाड़ से (दर्दः) तोड़े । [तब] (ते) तेरी (सरमा) चलने योग्य सरल नीति (पूर्व्यम्) सनातन व्यवहार को (आविः भुवत्) प्रकट करे । (सः) सो तू (नः) हमारा (नेता) नेता होकर, (गोत्रा) पहाड़ों को [मार्ग के लिये] (रुजन्) तोड़ता हुआ और (अङ्गिरोभिः) विद्वानों के साथ (गृणानः) उपदेश करता हुआ (भूरिम्) बहुत (वाजम्) पराक्रम को (आ दर्षि) आदर करे ॥८॥

भावार्थः—जब राजा उत्तम नीति से पहाड़ों से नदी नाले निकाल कर प्रजा को खेती शिल्प आदि व्यवहारों से प्रसन्न रखता है, वह विद्वानों के साथ आने जाने के लिये मार्गों को खोल कर आदर के साथ सामर्थ्य बढ़ाता है ॥८॥

सूक्तम् ॥७८॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

राजप्रजावर्तनोपदेशः—राजा और प्रजा के वर्ताव का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद् गवे न शाकिने ॥१॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो!] (वः) अपने लिये (सुते) उत्पन्न संसार के बीच (सचा) नित्य मिलाप के साथ (पुरुहूताय) बहुतों से बुलाये गये, (शाकिने) शक्तिमान् (सत्वने) वीर राजा के लिये (तत्) उस कर्म को (गाय) तुम गाओ, (यत्) जो (न) अब (गवे) भूमि के लिये (शम्) सुखदायक [होवे] ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग पुरुषार्थी राजा का उत्साह सर्वहितकारी काम करने के लिये बढ़ाते रहें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—६।४५।२२—२४ सामवेद—उ० ८।२। तृच ४। मन्त्र १ साम० पू० २।३।१॥

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥२॥

भाषार्थः—(वसुः) बसाने वाला राजा (गोमतः) उत्तम विद्या से युक्त (वाजस्य) बल के (दानम्) दान को (न घ) कभी नहीं (नि यमते) रोके, (यत्) जब कि वह (गिरः) हमारी वाणियों को (सीम्) सब प्रकार (उप श्रवत्) सुन लेवे ॥२॥

भावार्थः—राजा प्रजा के क्लेशों को ध्यान में रखकर उत्तम विद्या देकर उनका बल बढ़ावे ॥२॥

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥३॥

भाषार्थः—(दस्युहा) डाकुओं का मारने वाला राजा (कुवित्सस्य) बहुत दानी पुरुष के (हि) ही (गोमन्तम्) उत्तम विद्याओं से युक्त (व्रजम्) मार्ग पर (प्र) अच्छे प्रकार (गमत्) चले और (शचीभिः) बुद्धियों वा कर्मों के साथ (नः) हम को (अप) आनन्द से (वरत्) स्वीकार करे ॥३॥

भावार्थः—राजा दानी विद्वानों की नीति को मानकर श्रेष्ठों की सदा रक्षा करे ॥३॥

सूक्तम् ॥७९॥

१—२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ पथ्या बृहती, २ स्वराडार्षी बृहती ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकर्तव्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले राजन्] तू (नः) हमारे लिये (क्रतुम्) बुद्धि (आ भर) भर दे, (यथा) जैसे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों [सन्तानों] के लिये। (पुरुहूत) हे बहुत प्रकार बुलाये गये [राजन् !] (अस्मिन्) इस (यामनि) समय वा मार्ग में (नः) हमें (शिक्ष) शिक्षा दे, [जिस से] (जीवाः) हम जीव लोग (ज्योतिः) प्रकाश को (अशीमहि) पावें ॥१॥

भावार्थः—राजा उत्तम उत्तम विद्यालय, शिल्पालय आदि खोलकर प्रजा का हित करे जैसे पिता सन्तानों का हित करता है, जिस से लोग अज्ञान के अन्धकार से छूट कर ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त होवें ॥१॥

मन्त्र १ आ चुका है—अ० १८। ३। ६७॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२॥

भाषार्थः—(नः) हम को (मा) न तो (अज्ञाताः) अनजाने हुए (वृजनाः) पापी, (दुराध्यः) दुष्ट बुद्धि वाले, और (मा) न (अशिवासः) अकल्याणकारी लोग (अव क्रमुः) उल्लंघन करें। (शूर) हे शूर (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम (प्रवतः) नीचे देशों [खाई, सुरङ्ग आदि] और (शश्वतीः) बढ़ते हुए (अपः) जलों को (अति) लांघ कर (तरामसि) पार हो जावें ॥२॥

भावार्थः—राजा ऐसा प्रबन्ध करे कि गुप्त दुराचारी लोग प्रजा को न सतावें और नौका, यान, विमान आदि से अपने लोग कठिन मार्गों को सुख से पार करें ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में हैं—७। ३२। २७, सामवेद—उ० ६। ३। ६॥

सूक्तम् ॥८०॥

१—२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ विराट् पथ्या बृहती, २ ब्राह्मी गायत्री छन्दः ॥

राजकर्तव्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (नः) हमारे लिये (ज्येष्ठम्) अति श्रेष्ठ, (ओजिष्ठम्) अत्यन्त बल देने वाला, (पपुरि) पालन करने वाला (श्रवः) यश (आ) सब ओर से (भर) धारण कर (येन) जिस [यश] से, (चित्र) हे अद्भुत स्वभाव वाले, (वज्रहस्त) हे वज्र हाथ में रखने वाले ! (सुशिप्र) हे दृढ़ जावड़ों वाले ! (इमे) इन (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और भूमि को (आ प्राः) तू ने भर दिया है ।।१।।

भावार्थः—दृढ़ स्वभाव और दृढ़ शरीर वाला राजा आकाश और भूमि पर चलने के लिये उपाय करके यशस्वी होवे ।।१।।

मन्त्र १, २ ऋग्वेद में हैं—६ । ४६ । ५, ६, मन्त्र १ सामवेद–पू० ६ । १० । १ ।।

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि ।।२।।

भाषार्थः—(राजन्) हे राजन् ! (देवेषु) विद्वानों में (अवसे) रक्षा के लिये (उग्रम्) तेजस्वी, (चर्षणिसहम्) मनुष्यों के वश में रखने वाले (त्वाम्) तुझ को (हूमहे) हम पुकारते हैं । (वसो) हे बसाने वाले ! (नः) हमारे (विश्वा) सब (विथुरा) क्लेशों को (पिब्दना) खण्डन योग्य और (अमित्रान्) वैरियों को (सुसहान्) सहज में हारने योग्य (सु) सर्वथा (कृधि) कर ।।२।।

भावार्थः—राजा सदा ऐसा उपाय करे कि जिससे प्रजा के सब बाहिरी और भीतरी क्लेश दूर होवें ।।२।।

सूक्तम् ।।८१।।

१—२ ।। इन्द्रो देवता ।। १ विराडार्षी बृहती; २ निचृत् सतः पङ्क्तिः ।।

परमात्मगुणोपदेशः—परमात्मा के गुणों का उपदेश ।।

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।।१।।

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (यत्) जो (शतम्) सौ (द्यावः) अन्तरिक्ष [वायु लोक], (उत) और (शतम्) सौ (भूमीः) भूमि लोक (ते) तेरे [सामने] (स्युः) होवें, [न तो वे सब] और (न) न (सहस्रम्) सहस्र (सूर्याः) सूर्य लोक और (रोदसी) दोनों अन्तरिक्ष और भूमि लोक [मिल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर] और (न) न (जातम्) उत्पन्न हुआ जगत्, (वज्रिन्) हे दण्डधारी ! [परमात्मन्] (त्वा) तुझ को (अनु) निरन्तर (अष्ट) पा सके हैं ॥१॥

भावार्थः—सब असंख्य लोक और पदार्थ अलग अलग होकर अथवा सब मिलकर परमात्मा की महिमा का पार नहीं पा सकते ॥१॥

यह दोनों मन्त्र ऋग्वेद में हैं—८।७० [सायणभाष्य ५९]। ५, ६। सामवेद—उ० २।२।११, और आगे है—अथ० २०।९२।२०, २१। मन्त्र १ सा०—पू० २।९।६॥

कठोपनिषद् का वचन है—वल्ली ५ श्लोक १५ [न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति] उस पर न सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा और तारे, न ये बिजुलियां चमकती हैं, [फिर] यह अग्नि कहां, उस ही चमकते हुए के पीछे सब चमकता हैं, उसकी चमक से यह सब विविध प्रकार चमकता है॥

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा।

अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥२॥

भाषार्थः—(वृषन्) हे शूर ! (शविष्ठ) हे अत्यन्त बली ! [परमात्मन्] (महिना) अपने बड़े (शवसा) बल से (विश्वा) सब (वृष्ण्या) शूर के योग्य बलों को (आ) सब ओर से (पप्राथ) तू ने भर दिया है। (मघवन्) हे महाधनी ! (वज्रिन्) हे दण्डधारी ! [शासक परमेश्वर] (गोमति) उत्तम विद्या वाले (व्रजे) मार्ग में (चित्राभिः) विचित्र (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अस्मान्) हमें (अव) बचा ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमात्मा से प्रार्थना करके संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर यथावत् पालन करें ॥२॥

सूक्तम् ॥८२॥

१—२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृदुपरिष्टाद् बृहती, २ निचृदार्षी पङ्क्तिः ॥

राजप्रजाजनकर्तव्योपदेशः—राज पुरुषों और प्रजा जनों के कर्तव्य का उपदेश ॥

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।

स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥१॥

भाषार्थः—(रदावसो) हे धनों के खोदने वाले ! (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (त्वम्) तू (यावतः) जितने धन का [स्वामी है, उस में से]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अहम्) मैं (एतावत्) इतने का (ईशीय) स्वामी हो जाऊं, (यत्) जितने से (स्तोतारम्) गुण व्याख्याता [विद्वान्] को (इत्) अवश्य (दिधिषेय) पोषण करूं और (पापत्वाय) पाप होने के लिये [उसको] (न) न (रासीय) दूं ॥१॥

भावार्थः—राजा प्रजा परस्पर ऐसी प्रीति रक्खें कि सब लोग विद्वान् होवें और पदार्थों के गुण जानकर धर्म से एक दूसरे का पालन करें और कभी पाप कर्म न करें ॥१॥

दोनों मन्त्र ऋग्वेद में हैं—७। ३२। १८, १९। साम० उ० ६, । २। ६, मन्त्र १ सा०—पू० ४। २। ८॥

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥२॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे महाधनी! [राजन्] (महयते) सत्कार करने वाले (कुहचिद्विदे) कहीं भी विद्यमान पुरुष के लिये (इत्) अवश्य (रायः) धनों को (दिवेदिवे) दिन दिन (आ) सब प्रकार से (शिक्षेयम्) मैं दूं, (त्वत्) तुझ से (अन्यत्) दूसरा (नः) हमारा (आप्यम्) पाने योग्य (वस्यः) श्रेष्ठ वस्तु और (पिता) पिता (चन) भी (नहि) नहीं (अस्ति) है ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सब स्थानों के सुपात्रों को धन देकर विद्या-वृद्धि करें और पूरे राजभक्त होकर सर्वहितकारी कर्म करते रहें ॥२॥

सूक्तम् ॥८३॥

१—२॥ इन्द्रो देवता ॥ १ विराडार्षी बृहती, २ आर्षी पङ्क्तिः ॥

राजकर्तव्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (त्रिधातु) तीन [सोना, चांदी, लोहे] धातुओं वाला, (त्रिवरूथम्) तीन [शीत, ताप और वर्षा ऋतुओं] में उत्तम, (शरणम्) शरण [आश्रय] के योग्य और (स्वस्तिमत्) बहुत सुख वाला (छर्दिः) घर (मघवद्भ्यः) धन वालों को (च) और (मह्यम्) मुझको [अर्थात् एक एक को] (यच्छ) दे, (च) और (एभ्यः) इन सब के लिये (दिद्युम्) प्रकाश को (यवय) संयुक्त कर ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा का कर्तव्य है कि मनुष्यों के निवास स्थान और सभा स्थान आदि ऐसे उत्तम बनवावे कि जिन में सब को मिलकर और प्रत्येक पुरुष को आवश्यक पदार्थ सुरक्षित रहने से सब ऋतुओं में सुख मिले और स्वास्थ्य बढ़ने से धन की वृद्धि होवे ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है ६। ४६। ६, १०। मन्त्र १ सामवेद—पू० ३। ८। ४॥

ये गंव्यता मनंसा शत्रुंमादभुरंभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अधं स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तंमो भव ॥२॥

भाषार्थः—(ये) जो (धृष्णुया) निर्भय मनुष्य (गव्यता) भूमि चाहने वाले (मनसा) मन से (शत्रुम्) वैरी को (अभिप्रघ्नन्ति) घेर लेते हैं और (आदभुः) मार डालते हैं, (मघवन्) हे महाधनी! (गिर्वणः) हे स्तुतियों से सेवनीय (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (अध स्म) अवश्य ही (नः) हमारे (तनूपाः) शरीरों का रक्षक और (अन्तमः) अत्यन्त समीप वाला (भव) हो ॥२॥

भावार्थः—जो शूर वीर पुरुष राज्य की वृद्धि चाहने वाले शत्रु-नाशक होवें, राजा उनके विश्वास से प्रजा पालन करे ॥२॥

सूक्तम् ॥८४॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृद् गायत्री; २, ३ गायत्रीछन्दः ॥

सभापतिकर्तव्योपदेशः—सभापति के कर्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१॥

भाषार्थः—(चित्रभानो) हे विचित्र प्रकाश वाले (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले सभापति] (आ याहि) तू आ, (इमे) यह (त्वायवः) तुझ को मिलने वाले [वा तुझे चाहने वाले], (अण्वीभिः) सूक्ष्म क्रियाओं से (पूतासः) शोधे हुए, (तना) विस्तृत धन वाले (सुताः) सिद्ध किये हुए तत्त्व रस हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य सभापति की आज्ञा में रहकर विज्ञानयुक्त क्रियाओं से उत्तम उत्तम पदार्थ सिद्ध करें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद—१। ३। ४—६। यजुर्वेद २०। ८७—८९। सामवेद—उ० ४। २ तृच ५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले सभापति] (धिया) कर्म से (इषितः) बढ़ाया गया, और (विप्रजूतः) बुद्धिमानों से वेगवान् किया गया तू (सुतवतः) सिद्ध किये हुए तत्त्व रस वाले (वाघतः) बुद्धिमान् पुरुषों को और (ब्रह्माणि) धनों को (उप=उपेत्य) प्राप्त होकर (आ याहि) आ ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि अपने उत्तम कर्म और विद्वानों की शिक्षा से विज्ञानी बुद्धिमानों के साथ धन की वृद्धि करे ॥२॥

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥३॥

भाषार्थः—(हरिवः) हे उत्तम मनुष्यों वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (तूतुजानः) शीघ्रता करता हुआ तू (ब्रह्माणि) धनों को (उप) प्राप्त होकर (आ याहि) आ । और (सुते) सिद्ध किये हुए तत्त्व रस में (नः) हमारे लिये (चनः) अन्न को (दधिष्व) धारण कर ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम विद्वानों के साथ रहकर धर्म से धन प्राप्त करते हैं, वे ही दूसरों को ज्ञानी और धनी बना कर यश पाते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥८५॥

१—४ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ उपरिष्ठाद् बृहती; २ निचृदार्षी पङ्क्तिः, ३ विराट् पथ्या बृहती, ४ स्वराडार्षी बृहती ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१॥

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोऽभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥

भाषार्थः—(सखायः) हे मित्रो ! (अन्यत् चित्) और कुछ भी (मा वि शंसत) मत बोलो, और (मा रिषण्यत) मत दुखी हो (च) और (सुते) सिद्ध किये हुए तत्त्व रस के बीच (मुहुः) वार वार (उक्था) कहने योग्य वचनों को (शंसत) कहो, [अर्थात्] (वृषणम्) महाबलवान्, (वृषभं यथा) जल बरसाने वाले मेघ के समान (अवक्रक्षिणम्) कष्ट हटाने वाले, और (गाम् न) [रसों को चलाने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आकाश में चलने वाले] सूर्य के समान (अजुरम्) सब के चलाने वाले, (चर्षणिसहम्) मनुष्यों के वश में रखने वाले, (विद्वेषणम्) निग्रह [ताड़ना] और (संवनना) अनुग्रह [पोषण], (उभयंकरम्) दोनों के करने वाले, (उभयाविनम्) दोनों [स्थावर और जङ्गम] के रक्षक, (मंहिष्ठम्) अत्यन्त दानी (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] की (इव) ही (सचा) मिला करके (स्तोत) स्तुति करो ॥१, २॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमात्मा को छोड़कर किसी दूसरे को बड़ा जानकर अपनी अवनति न करें, सदा उसी ही विपत्तिनाशक, सर्व पोषक के गुणों को ग्रहण करके आनन्द पावें ॥१, २॥

भगवान् यास्क मुनि ने कहा है—गौ सूर्य है वह रसों को चलाता है, अन्तरिक्ष में चलता है—निरुक्त २ । १४ ॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—८ । १ । १ ४ । मन्त्र १, २ सामवेद - उ० ६ । १ । ५, मन्त्र १—पू० ३ । ५ । १० ॥

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥३॥

भाषार्थः—(यत्) क्योंकि (चित्) निश्चय करके (हि) ही (त्वा) तुझ को (इमे) यह (जनाः) मनुष्य (नाना) नाना प्रकार से (ऊतये) रक्षा के लिये (हवन्ते) पुकारते हैं—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (इदम्) अब (अस्माकम्) हमारे (ब्रह्म) धन (भूतु) होवे (ते) तेरी (विश्वा अहा) सब दिनों (च) ही (वर्धनम्) बढ़ती है ॥३॥

भावार्थः—सब प्राणी परमात्मा की प्रार्थना करके अपनी रक्षा करते हैं, हम भी निरन्तर भक्ति करके उसके अनन्त कोश से पुरुषार्थपूर्वक धन आदि प्राप्त करके अपनी वृद्धि करें ॥३॥

वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे महाधनी ! [परमेश्वर] (विपश्चितः) बड़े ज्ञानी (विपः) प्रेरक बुद्धिमान् लोग (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (अर्यः=अरीन्) वैरियों को (वि) विविध प्रकार (तर्तूर्यन्ते) वार वार हराते हैं । (उप क्रमस्व) तू [हमें]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराक्रमी कर, और (ऊतये) तृप्ति के लिये (पुरुरूपम्) बहुत प्रकार वाले (वाजम्) बल को (नेदिष्ठम्) अति समीप (आ) सब प्रकार से (भर) भर ॥४॥

भावार्थः— सब मनुष्य बुद्धिमानों के समान परमात्मा को हृदय में धारण करके पराक्रम के साथ वैरियों को जीतें ॥४॥

सूक्तम् ॥८६॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

ब्रह्म॑णा ते ब्रह्म॒युजा॑ युनज्मि॒ हरी॒ सखा॑या सध॒माद॑ आ॒शू । स्थि॒रं रथं॑ सु॒खमि॑न्द्राधि॒तिष्ठ॑न् प्रजा॒नन् वि॒द्वाँ उप॑ याहि॒ सोम॑म् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] (ते) तेरे लिए (ब्रह्मणा) अन्न के साथ (ब्रह्मयुजा) धन के संग्रह करने वाले, (आशू) शीघ्र चलने वाले, (हरी) दोनों जल और अग्नि को (सखाया) दो मित्रों के तुल्य (सधमादे) चौरस स्थान में (युनज्मि) मैं संयुक्त करता हूं, (स्थिरम्) दृढ़, (सुखम्) सुख देने वाले [इन्द्रियों के लिये अच्छे हितकारी] (रथम्) रथ पर (अधितिष्ठन्) चढ़ता हुआ, (प्रजानन्) बड़ा चतुर (विद्वान्) विद्वान् तू (सोमम्) ऐश्वर्य को (उप याहि) प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जल अग्नि आदि पदार्थों के द्वारा रथों अर्थात् यान विमानों को चलाकर देश देशान्तरों में जाकर विद्या और धर्म से ऐश्वर्य बढ़ावें ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—३ । ३५ । ४ और इस का अर्थ महर्षि दयानन्द के भाष्य के आधार पर किया गया है । निरुक्त ३ । १३ में (सुख) शब्द का अर्थ [अच्छा हितकारी इन्द्रियों के लिये] है ॥

सूक्तम् ॥८७॥

१—७ ॥ १—६ इन्द्रः, ७ इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ १, २, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप्, ३ विराट् त्रिष्टुप्, ४, ५ त्रिष्टुप् ॥

पुरुषार्थिलक्षणोपदेशः· पुरुषार्थी के लक्षण का उपदेश ॥

अध्व॑र्यवोऽरु॒णं दु॒ग्धमं॒शुं जु॒होत॑न वृष॒भाय॑ क्षिती॒नाम् । गौ॒राद् वेदी॑याँ अव॒पान॒मिन्द्रो॑ वि॒श्वाहेद्या॑ति सु॒तसो॑ममि॒च्छन् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अध्वर्यवः) हे हिंसा न चाहने वाले पुरुषो ! (अरुणम्) प्राप्ति योग्य, (दुग्धम्) पूरे किये हुए (अंशुम्) भाग को (क्षितीनाम्) मनुष्यों में (वृषभाय) बलवान् के लिये (जुहोतन) दान करो। (अवपानम्) रक्षा साधन को (गौरात्) गौर [हरिण विशेष] से (वेदीयान्) अधिक जानने वाला (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला पुरुष] (विश्वाहा) सब दिनों (इत्) ही (सुतसोमम्) तत्त्व रस सिद्ध करने वाले पुरुष को (इच्छन्) चाहता हुआ (याति) चलता है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि बलवान् पुरुष को आदर पूर्वक ग्रहण करें, वह चतुर मनुष्य रक्षा साधनों को औरों से अधिक जानता है, जैसे हरिण व्याधों से बचने के उपाय को जानता है ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—७। ९८। १—७॥

यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।

उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (यत्) जिस (चारु) उत्तम (अन्नम्) अन्न को (प्रदिवि) पिछले समय में (दधिषे) तू ने धारण किया था, (अस्य) उस [अन्न] के (पीतिम्) पान वा भोग को (दिवेदिवे) प्रतिदिन (इत्) ही (वक्षि) तू उपदेश करता है, (उत) और (हृदा) हृदय से (उत) और (मनसा) मनन से (प्रस्थितान्) उपस्थित (सोमान्) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों को (जुषाणः) सेवन करता हुआ और (उशन्) चाहता हुआ तू (पाहि) रक्षित कर ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम ज्ञान और पदार्थों को प्राप्त होकर सब के सुख के लिये प्रयत्न करे ॥२॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।

एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] (जज्ञानः) उत्पन्न होते हुए तू ने (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] को (सहसे) बल के लिये (पपाथ) पान किया है और (ते) तेरी (माता) माता ने [तेरे] (महिमानम्) महत्त्व को (प्र) अच्छे प्रकार (उवाच) कहा है। तूने (उरु) विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब ओर से (पप्राथ) भर दिया और (युधा) युद्ध से (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (वरिवः) सेवनीय धन (चकर्थ) उत्पन्न किया है ॥३॥

भावार्थः—पहिले ही पहिले माता उत्तम शिक्षा से मनुष्य में उत्तम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार उत्पन्न करे, तब वह मनुष्य विद्वान् बलवान् और धनवान् होकर संसार में कीर्ति पाता है ॥३॥

यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी शूर] (यत्) जो तू (महतः मन्यमानान्) अपने को बड़े मानने वालों से [हमको] (योधयाः) लड़ावे, (तान्) उन (शाशदानान्) तीक्ष्ण स्वभाव वालों को (बाहुभिः) अपनी भुजाओं से (साक्षाम) हम हरावें। (यत् वा) अथवा (नृभिः) नरों से (वृतः) अङ्गीकार किया हुआ (अभियुध्याः) तू युद्ध करे, (त्वया) तेरे साथ [होकर] (सम्) उस (सौश्रवसम्) बड़े यश वा अन्न देने वाले (आजिम्) सङ्ग्राम को (जयेम) हम जीतें ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य सत्य संकल्प के साथ आप कर्म कुशल होकर और दूसरों को कर्म कुशल बनाकर संसार में विजय प्राप्त करें ॥४॥

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) इन्द्र [महाप्रतापी वीर] के (प्रथमा) पहिले और (नूतना) नवीन (कृतानि) कर्मों को, (या) जो (मघवा) उस महाधनी ने (चकार) किये हैं, (प्र प्र) बहुत अच्छे प्रकार (वोचम्) मैं कहूं। (यदा) जब (इत्) ही (अदेवीः) अदेवी [विद्वानों के विरुद्ध, आसुरी] (मायाः) मायाओं [छल कपट क्रियाओं] को (असहिष्ट) उस ने जीत लिया है, (अथ) तब ही (सोमः) सोम [अमृत रस अर्थात् मोक्ष सुख] (अस्य) उस [पुरुषार्थी] का (केवलः) सेवनीय (अभवत्) हुआ है ॥५॥

भावार्थः—जब मनुष्य प्राचीन और नवीन विद्वानों के सिद्धान्तों के विचार कर दुष्कर्मों का नाश करता है, तब वह मोक्ष सुख पाता है ॥५॥

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१ यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी मनुष्य] (इदम्) यह (विश्वम्) सब (पशव्यम्) पशुओं [दोपाये और चौपाये जीवों] के लिये हित कर्म (तव) तेरा है, (यत्) जिस को (सूर्यस्य) सूर्य की (चक्षसा) दृष्टि से (अभितः) सब ओर को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पश्यसि) तू देखता है। (एकः) अकेला तू (गवाम्) विद्वानों की (गोपतिः) विद्याओं का रक्षक (असि) है, (ते) तेरे (प्रयतस्य) उत्तम नियम वाले (वस्वः) धन का (भक्षीमहि) हम सेवन करें ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य के समान सब ओर को दूरदर्शी होकर सर्व हितकारी होता है, वही विद्या के प्रचार से विद्वानों को सुख देता है ॥६॥

बृह॑स्पते यु॒वमिन्द्र॑श्च॒ वस्वो॑ दि॒व्यस्ये॑शाथे उ॒त पार्थि॑वस्य ।
ध॒त्तं र॒यिं स्तु॑व॒ते की॒रये॑ चिद्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥७॥

भाषार्थः—(बृहस्पते) हे बृहस्पति! [बड़ी वेदवाणी के रक्षक विद्वान्] (च) और (इन्द्रः) हे इन्द्र! [महाप्रतापी राजन्] (युवम्) तुम दोनों (दिव्यस्य) आकाश के (उत) और (पार्थिवस्य) पृथिवी के (वस्वः) धन के (ईशाथे) स्वामी हो। (स्तुवते) स्तुति करते हुए (कीरये) विद्वान् को (रयिम्) धन (चित्) अवश्य (धत्तम्) तुम दोनों दो, [हे वीरो!] (यूयम्) तुम सब (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (सदा) सदा (नः) हमें (पात) रक्षित रक्खो ॥७॥

भावार्थः—विद्वान् मन्त्री और पराक्रमी राजा और सब शूर पुरुष आकाशस्थ वायु वृष्टि आदि, और पृथिवीस्थ अन्न सुवर्ण आदि का सुप्रबन्ध करके प्रजा की रक्षा करें ॥७॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० २०। १७। १२ और चौथे पाद के लिये देखो—अ० २०। ३७। ११॥

सूक्तम् ॥८८॥

१—६॥ बृहस्पतिर्देवता॥ १—३, ६ निचृत् त्रिष्टुप्, ४ विराडार्षी त्रिष्टुप्, ५ त्रिष्टुप्॥

विद्वत्कर्तव्योपदेशः—विद्वानों के कर्तव्य का उपदेश॥

यस्त॒स्तम्भ॒ सह॑सा॒ वि ज्मो अन्ता॒न् बृह॒स्पति॑स्त्रिषध॒स्थो रवे॑ण ।
तं प्र॒त्नास॒ ऋष॑यो॒ दीध्या॑नाः पु॒रो विप्रा॑ दधिरे म॒न्द्रजि॑ह्वम् ॥१॥

भाषार्थः—(यः) जिस (त्रिषधस्थः) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] के साथ स्थित (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी वेदविद्याओं के रक्षक पुरुष] ने (सहसा) अपने बल से और (रवेण) उपदेश से (ज्मः) पृथिवी के (अन्तान्) अन्तों [सीमाओं] को (वि) विविध प्रकार (तस्तम्भ) दृढ़ किया है। (तम्) उस (मन्द्रजिह्वम्) आनन्द देने वाली जिह्वा वाले विद्वान् को (प्रत्नासः) प्राचीन, (दीध्यानाः) प्रकाशमान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[तेजस्वी], (विप्राः) बुद्धिमान् (ऋषयः) ऋषियों [वेदों के अर्थ जानने वालों] ने (पुरः) आगे (दधिरे) धरा है ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य कर्म, उपासना, ज्ञान में तत्पर होकर पृथिवी भर को आनन्द देता है, ऋषि लोग उस सत्यवादी को मुखिया करते हैं ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—४ । ५० । १—६ ॥

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२॥

भाषार्थः—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी विद्याओं के रक्षक] (ये) जिन (धुनेतयः) शीघ्र गति वाले, (सुप्रकेतम्) सुन्दर ज्ञान से (मदन्तः) प्रसन्न होते हुए [विद्वानों ने] (नः) हम को (अभि) सब ओर (ततस्रे) फैलाया है [प्रसिद्ध किया है] । (बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़े गुणों के स्वामी] (पृषन्तम्) सींचने वाले, (सृप्रम्) ज्ञान वाले, (अदब्धम्) नष्ट न किये हुए, (ऊर्वम्) दोषनाशक (अस्य) उन [विद्वानों] के (योनिम्) कारण [वेदशास्त्र] को (रक्षतात्) तू रक्षित रख ॥२॥

भावार्थः—जिस वेदज्ञान में महात्मा लोग मग्न होकर दूसरों को सुख पहुंचाते हैं, विद्वान् लोग उस वेद की रक्षा कर के अर्थात् आज्ञा में चलकर आनन्द पावें ॥२॥

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३॥

भाषार्थः—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी विद्याओं के रक्षक] (या) जो (ते) तेरी (परमा) उत्तम नीति (परावत्) उत्तम विद्या वाले राज्य में है, [उस नीति में] (ऋतस्पृशः) सत्य का स्पर्श करने वाले लोग (आ) सब ओर से (नि षेदुः) बैठे हैं, (अतः) इसलिये (अद्रिदुग्धाः) मेघ से भरे गये, (खाताः) खोदे गये, (मध्वः) मीठे [मीठे जल वाले] (अवताः) कुए (तुभ्यम्) तेरे लिये (विरप्शम्) महान् संसार को (अभितः) सब ओर से (श्चोतन्ति) सींचते हैं ॥३॥

भावार्थः—चतुर राजा की सुन्दर नीति से विद्वान् लोग संसार को इस प्रकार आनन्द पहुंचाते हैं, जैसे मेघ के जल कूप आदि द्वारा उपकार करते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥४॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के रक्षक पुरुष] ने (महः) बड़े (ज्योतिषः) तेज के (परमे) उत्तम (व्योमन्) विविध प्रकार रक्षणीय स्थान में (प्रथमम्) पहिले पदपर (जायमानः) प्रकट होते हुए (तुविजातः) बहुत प्रसिद्ध होकर (रवेण) अपने उपदेश से (सप्तास्यः) सात मुख वाले अग्नि और (सप्तरश्मिः) सात किरणों वाले सूर्य के समान (तमांसि) अन्धकारों को (वि अधमत्) बाहिर हटाया है ॥४॥

भावार्थः—जैसे अग्नि सात प्रकार की ज्वालाओं से और सूर्य सात प्रकार की किरणों से अन्धकार हटाकर पदार्थों को दिखाते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग पांच ज्ञानेन्द्रिय मन और आत्मा से विद्यायें ग्रहण करके अज्ञान हटाकर विद्या का प्रकाश करें ॥४॥

अग्नि के सात मुख जिह्वायें अर्थात् ज्वालायें ये हैं—मुण्डकोपनिषद्, मुण्डक १ खण्ड २ श्लोक ४ [काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा । स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥] काले वर्ण वाली, कराली, मन का सा वेग रखने वाली, रक्त वर्ण वाली, जो गहरे धुयें के वर्ण वाली है, चिनगारियों वाली और चमकती हुई झिलमिलाती हुई सब रूपों अर्थात् रंगों वाली, यह [अग्नि की] सात जिह्वाएं हैं ॥

सूर्य की सात किरणें इस प्रकार है—शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्रवर्ण ॥

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥५॥

भाषार्थः—(सः सः) उसी ही [वीर पुरुष] ने (सुष्टुभा) बड़ी स्तुति वाले (ऋक्वता) पूजनीय वाणी वाले (गणेन) समुदाय के साथ (फलिगम्) फूट डालने वाले [वा मेघ के समान अंधकार के फैलाने वाले] (वलम्) हिंसक वैरी को (रवेण) शब्द [धर्म घोषणा] (रुरोज) भङ्ग किया है। (हव्यसूदः) देने वा लेने योग्य पदार्थों की प्रतिज्ञा करने वाले, (कनिक्रदत्) बल से पुकारते हुए (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के रक्षक मनुष्य] ने (वावशतीः) अत्यन्त कामना करती हुई (उस्रियाः) रहने वाली प्रजाओं को (उत् आजत्) ऊंचा किया है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विद्वान् सभापति राजा अज्ञान फैलाने वाले शत्रुओं का नाश करके विद्या और धन की वृद्धि से प्रजा का पालन करे ।।५।।

ए॒वा पि॒त्रे वि॒श्वदे॑वाय॒ वृष्णे॑ य॒ज्ञैर्वि॑धेम॒ नम॑सा ह॒विर्भिः॑ ।

बृह॑स्पते सुप्र॒जा वी॒रव॑न्तो व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णाम् ।।६।।

भाषार्थः—(**विश्वदेवाय**) सबों से स्तुति योग्य, (**वृष्णे**) बलवान् (**पित्रे**) पिता [के समान पालन करने वाले पुरुष को (**एव**) निश्चय करके (**नमसा**) अन्न के साथ (**यज्ञैः**) मेल मिलापों और (**हविर्भिः**) देने योग्य पदार्थों से (**विधेम**) हम सेवा करें। (**बृहस्पते**) हे बृहस्पति ! [बड़ी विद्याओं के रक्षक पुरुष] (**सुप्रजाः**) श्रेष्ठ प्रजाओं वाले और (**वीरवन्तः**) वीर पुरुषों वाले होकर (**वयम्**) हम (**रयीणाम्**) अनेक धनों के (**पतयः**) स्वामी (**स्याम**) होवें ।।६।।

भावार्थः—प्रजागण प्रजापालक नीतिज्ञ सभापति राजा का यथावत् आदर करके धनी और बलवान् होवें ।।६।।

सूक्तम् ।।८९।।

१ – ११ ।। इन्द्रो देवता ।। १, ३, ७, ८, ११ त्रिष्टुप्, २, ५ निचृत् त्रिष्टुप्, ४, ६ विराट् त्रिष्टुप्, ९ भुरिक् त्रिष्टुप्, १० निचृदार्षी त्रिष्टुप् ।।

मनुष्यकर्तव्योपदेशः - मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ।।

अस्ते॑व॒ सु प्र॑त॒रं लाय॒मस्य॑न् भूष॑न्निव॒ प्र भ॑रा॒ स्तोम॑मस्मै ।

वा॒चा वि॑प्रास्तरत॒ वाच॑म॒र्यो नि रा॑मय जरितः॒ सोम॒ इन्द्र॑म् ।।१।।

भाषार्थः—(**जरितः**) हे स्तोता विद्वान् ! (**प्रतरम्**) अधिक उत्तम (**लायम्**) हृदयवेधी तीर को (**सु**) अच्छे प्रकार (**अस्यन्**) छोड़ते हुए (**अस्ता इव**) धनुर्धारी के समान तू (**अस्मै**) इस [शूर] के लिये (**स्तोमम्**) स्तुति को (**भूषन् इव**) सजाता हुआ जैसे (**प्र भर**) आगे धर, और (**इन्द्रम्**) इन्द्र [महाप्रतापी मनुष्य] को (**सोमे**) तत्त्व रस में (**नि**) निरन्तर (**रमय**) आनन्द दे, (**विप्राः**) हे बुद्धिमानो ! (**वाचा**) [अपनी सत्य] वाणी से (**अर्यः**) वैरी की (**वाचम्**) [असत्य] वाणी को (**तरत**) तुम दबाओ ।।१।।

भावार्थः—जैसे उत्तम धनुर्धारी प्रेम से कार्यसिद्धि के लिये अपने अच्छे बाण को छोड़ता है, वैसे ही विद्वान् लोग पृथक् पृथक् होकर तथा सब मिलकर प्रीति के साथ प्रतापी वीर के उत्तम गुणों को जानकर तत्त्व की ओर प्रवृत्त करें और मिथ्यावादी वैरी को हराकर आनन्द भोगें ।।१।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१० । ४२ । १—११ ॥

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥२॥

भाषार्थः—(जरितः) हे स्तुति करने वाले विद्वान् ! (दोहेन) दूध दोहने के लिये (गाम्) गाय को [जैसे, वैसे] (जारम्) स्तुति योग्य (सखायम्) मित्र (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े प्रतापी पुरुष] को (उप शिक्ष) तू ग्रहण कर और (प्र) अच्छे प्रकार (बोधय) जगा (वसुना) धन से (पूर्णम्) भरे हुए (कोशं न) कोश [धनागार] के समान (न्युष्टम्) निश्चय को प्राप्त हुए (शूरम्) शूर को (मघदेयाय) पूजनीय पदार्थ के दान के लिये (आ च्यवय) आगे बढ़ा ॥२॥

भावार्थः—जैसे अन्न आदि देकर प्रीति के साथ गाय से दूध लेते हैं, वैसे मनुष्य आदर सत्कार के साथ कर्मवीर पुरुष से पूजनीय व्यवहार की शिक्षा ग्रहण करें ॥२॥

किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३॥

भाषार्थः—(अङ्ग) हे (मघवन्) धन वाले [पुरुष !] (किम्) किस लिये (त्वा) तुझ को (भोजम्) पालन करने वाला (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं ? (मा) मुझ को (शिशीहि) सचेत कर, (त्वा) तुझ को (शिशयम्) उद्योगी (शृणोमि) मैं सुनता हूं । (शक्र) हे शक्तिमान् ! (मम) मेरी (धीः) बुद्धि (अप्नस्वती) कर्म वाली (अस्तु) होवे, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (नः) हमारे लिये (वसुविदम्) धन पहुंचाने वाला (भगम्) ऐश्वर्य (आ) सब ओर से (भर) भर ॥३॥

भावार्थः—कीर्तिमान् प्रधान पुरुष ऐसा प्रयत्न करे कि सब लोग बुद्धिमान् होकर कर्मवीर होवें ॥३॥

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (ममसत्येषु) अपने अपने उद्देश्य को सत्य मानने वाले सङ्ग्रामों के बीच (समीके) भिड़ के (संतस्थानाः) सजकर खड़े हुए (जनाः) लोग (त्वाम्) तुझ को (वि) विविध प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ह्वयन्ते) पुकारते हैं। (अत्र) यहां पर (शूरः) शूर पुरुष [उस मनुष्य को] (युजम्) साथी (कृणुते) बनाता है, (यः) जो (हविष्मान्) भक्ति वाला है, और (असुन्वता) तत्त्व रस के न निकालने वाले के साथ (सख्यम्) मित्रता (न) नहीं (वष्टि) चाहता है ॥४॥

भावार्थः—जहां पर दो पक्ष वाले आपस में अपने अपने उद्देश्य के लिये लड़ते हों, बुद्धिमान् पुरुष मध्यस्थ होकर धर्मात्मा का सहाय करे ॥४॥

पदपाठ के (असुन्वत) पद में भूल दीखती है, ऋग्वेद का (असुन्वता) पद पाठ संहिता के अनुकूल है, उसी के अनुसार हमने अर्थ किया है ॥

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।

तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ॥५॥

भावार्थः—(यः) जो (प्रयस्वान्) अन्न वाला पुरुष (अस्मै) इस [वीर] को (बहुलम्) बहुत से (स्पन्द्रम्) शीघ्र प्राप्त होने वाले (धनम् न) धन के समान (तीव्रान्) तीव्र (सोमान्) सोम [तत्त्व रसों] को (आसुनोति) सिद्ध करता है। (तस्मै) उस [पुरुष] के लिये (सुतुकान्) बड़े हिंसक, (स्वष्ट्रान्) तीक्ष्ण शस्त्रों वाले (शत्रून्) वैरियों को (अह्नः) दिन के (प्रातः) प्रातः काल में [अर्थात् प्रकाश रूप से] (नि युवति) वह [वीर] हटा देता है और (वृत्रम्) धन को (हन्ति) प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थः—जैसे प्रजागण धन मन और विद्याबल से प्रधान पुरुष की सहायता करें, वह वीर भी उसी प्रकार दुष्टों से प्रजा की रक्षा करे ॥५॥

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।

आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥

भाषार्थः—(यस्मिन्) जिस (इन्द्रे) इन्द्र [बड़े प्रतापी वीर] में (शंसम्) अपनी इच्छा को (वयम्) हम ने (दधिम) रक्खा था और (यः) जिस (मघवा) धनवान् ने (अस्मे) हम में (कामम्) अपनी कामना को (शिश्राय) आश्रय दिया था। (आरात्) दूर (चित्) भी (सन्) रहता हुआ (शत्रुः) शत्रु (अस्य) उस का (भयताम्) भय माने, और (अस्मै) उस के लिये (जन्या) लोगों के हितकारी (द्युम्नानि) प्रकाशमान यश (नि) नित्य (नमन्ताम्) नमते रहें ॥६॥

भावार्थः—जहां पर प्रजागण और प्रधान वीर पुरुष परस्पर हित के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये प्रयत्न करते हैं, वहां पर शत्रु लोग दुराचार नहीं करते, और सब लोग उन्नति करके यशस्वी होते हैं ॥६॥

आराच्छत्रुमप॑ बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः॑ पुरुहूत तेन॑ ।

अस्मे धे॑हि यव॑मद् गोम॑दिन्द्र कृधी धियं॑ जरित्रे वाज॑रत्नाम् ॥७॥

भाषार्थः—(पुरुहूत) हे बहुत प्रकार बुलाये गये ! [वीर] (यः) जो (शम्बः) तेरा वज्र (उग्रः) प्रचण्ड है, (तेन) उस से (शत्रुम्) शत्रु को (आरात्) दूर से (दूरम्) दूर (अप बाधस्व) हटा दे। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े प्रतापी वीर] (अस्मे) हम को (यवमत्) अन्न वाला (गोमत्) विद्याओं और गौओं वाला धन (धेहि) दे और (जरित्रे) स्तोता [गुण प्रसिद्ध करने वाले] के लिये (धियम्) बुद्धि को (वाजरत्नाम्) बलों और सुवर्ण आदि रत्नों वाली (कृधि) कर ॥७॥

भावार्थः—वीर प्रधान पुरुष अपने प्रचण्ड दण्डदान से शत्रुओं को हटाकर प्रजागणों को विद्या द्वारा पराक्रमी और धनाढच बनावे ॥७॥

प्र यमन्तर्वृ॑षसवासो अग्म॑न् तीव्राः सोमा॑ बहुलान्ता॑स इन्द्र॑म् ।

नाह॑ दामानं॑ मघवा नि यं॑सन् नि सुन्वते व॑हति भूरिं वामम् ॥८॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े प्रतापी मनुष्य] को (वृषसवासः) बलवानों को ऐश्वर्य देने वाले, (तीव्राः) तीक्ष्ण स्वभाव वाले और (बहुलान्तासः) बहुत ज्ञान को अन्त [सिद्धान्त] में रखने वाले (सोमाः) सोम [तत्त्वरस] (अन्तः) भीतर [हृदय में] (प्र अग्मन्) प्राप्त हो गये हैं। (मघवा) वह धनवान् पुरुष (अह) निश्चय करके (दामानम्) दान को (न) नहीं (नि यंसत्) रोक सकता है वह (सुन्वते) तत्त्व रस निचोड़ने वाले को (भूरि) बहुत (वामम्) उत्तम धन (नि) नित्य (वहति) पहुंचाता है ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य निश्चित सिद्धान्तों पर दृढ़ होकर चले, उस वीर से दूसरे विद्वान् शिक्षा लेकर बहुत धन प्राप्त करें ॥८॥

उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमि॑व श्वघ्नी वि चि॑नोति काले ।

यो दे॒वका॑मो न धनं॑ रुणद्धि समित् तं रायः सृ॑जति स्वधाभिः॑ ॥९॥

भाषार्थः—(उत) और (अतिदीवा) बड़ा व्यवहारकुशल पुरुष (प्रहाम्) उपद्रवी पुरुष को (जयति) जीत लेता है, (श्वघ्नी) धन नाश करने वाला ज्वारी (काले) [हार के] समय पर (इव) ही (कृतम्) अपने काम का (वि चिनोति) विवेक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। (यः) जो (देवकामः) शुभ गुणों का चाहने वाला (धनम्) धन को [शुभ काम में] (न) नहीं (रुणद्धि) रोकता है, (रायः) अनेक धन (तम्) उसको (इत्) ही (स्वधाभिः) आत्म धारण शक्तियों के साथ (सम् सृजति) मिलते हैं ॥९॥

भावार्थः – प्रतापी पुरुष दुष्ट को जीतकर उसे उसके दोष का निश्चय करा देता है, शुभ गुण चाहने वाला उदारचित्त मनुष्य अनेक धन और आत्मबल पाता है ॥९॥

मन्त्र ९, १० आ चुके हैं—अ० ७। ५०। ६। ७॥

गोभि॑ष्टरे॒माम॑तिं दु॒रेवां॒ यवे॑न वा॒ क्षुधं॑ पुरुहूत॒ विश्वे॑ ।
व॒यं राज॑सु प्रथ॒मा धना॒न्यरि॑ष्टासो वृ॒जनी॑भिर्जयेम ॥१०॥

भाषार्थः—(पुरुहूत) हे बहुत बुलाये गये राजन्! (विश्वे) हम सब लोग (गोभिः) विद्याओं से (दुरेवाम्) दुर्गति वाली (अमतिम्) कुमति को (तरेम) हटावें, (वा) जैसे (यवेन) जौ आदि अन्न से (क्षुधम्) भूख को। (वयम्) हम लोग (राजसु) राजाओं के बीच (प्रथमाः) पहिले और (अरिष्टासः) अजेय होकर (वृजनीभिः) अनेक वर्जन शक्तियों से (धनानि) अनेक धनों को (जयेम) जीतें ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य विद्याओं द्वारा कुमति हटाकर प्रशंसनीय गुण प्राप्त करके अनेक धन प्राप्त करें ॥१०॥

मन्त्र १० कुछ भेद से और मन्त्र ११ आ चुके हैं—अ० २०। १७। १०, ११ और आगे हैं—अ० २०। ९४। १०, ११। मन्त्र १० की टिप्पणी देखो॥

बृह॒स्पति॑र्नः॒ परि॑ पातु प॒श्चादु॒तोत्त॑रस्मा॒दध॑रादघा॒योः ।
इन्द्रः॑ पु॒रस्ता॑दु॒त म॑ध्य॒तो नः॒ सखा॒ सखि॑भ्यो॒ वरी॑यः कृणोतु ॥११॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े शूरों का रक्षक सेनापति] (नः) हमें (पश्चात्) पीछे से, (उत्तरस्मात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नीचे से (अघायोः) बुरा चीतने वाले शत्रु से (परि पातु) सब प्रकार बचावे। (इन्द्रः) इन्द्र [वह बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (पुरस्तात्) आगे से (उत) और (मध्यतः) मध्य से (नः) हमारे लिये (वरीयः) विस्तीर्ण स्थान (कृणोतु) करे, (सखा) जैसे मित्र (सखिभ्यः) मित्रों के लिये [करता है] ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य वीरों में महावीर और प्रतापियों में महाप्रतापी होकर दुष्टों से प्रजा की रक्षा करे ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ७। ५१। १। मन्त्र १०, ११ की टिप्पणी भी ऊपर देखो ॥

सूक्तम् ॥९०॥

१—३ बृहस्पतिर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजलक्षणोपदेशः—राजा के लक्षण का उपदेश ॥

यो अ॑द्रि॒भित् प्र॑थम॒जा ऋ॒ताव॒ा बृह॒स्पति॑राङ्गिर॒सो ह॒विष्मा॑न् ।
द्वि॒बर्ह॑ज्मा प्राघ॒र्म॒सत् पि॒ता न॒ आ रोद॑सी वृष॒भो रो॑रवीति ॥१॥

भाषार्थः—(यः) जो (अद्रिभित्) पहाड़ों को तोड़ने वाला, (प्रथमजाः) मुख्य पद पर प्रकट होने वाला, (ऋतवा) सत्यवान्, (आङ्गिरसः) विद्वान् पुरुष का पुत्र (हविष्मान्) देने लेने योग्य पदार्थों वाला (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का रक्षक राजा] है, वह (द्विबर्हज्मा) दोनों [विद्या और पुरुषार्थ] से प्रधानता पाने वाला, (प्राघर्मसत्) अच्छे प्रकार सब ओर से प्रताप का सेवन करने वाला (नः) हमारा (पिता) पालने वाला है, [जैसे] (वृषभः) जल बरसाने वाला मेघ (रोदसी) आकाश और पृथिवी में (आ) व्यापकर (रोरवीति) बल से गरजता है ॥१॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि पहाड़ आदि कठिन स्थानों में मार्ग करके प्रजा का पालन करे, जैसे मेघ गर्जन के साथ वृष्टि करके संसार का उपकार करता है ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—६। ७३। १—३। चौथा पाद आ चुका है—अ० १८। ३। ६॥

जना॑य चि॒द् य ईव॑त उ लो॒कं बृह॒स्पति॑र्दे॒वहू॑तौ च॒कार॑ ।
घ्नन् वृ॒त्राणि॒ वि पुरो॑ दर्दरीति॒ जय॒ञ्छत्रूँ॑रमि॒त्रान् पृ॒त्सु साह॑न् ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जिस (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के रक्षक राजा] ने (चित् उ) अवश्य ही (ईवते) गतिमान् (जनाय) मनुष्य के लिये (देवहूतौ) विद्वानों के बुलावे में (लोकम्) दर्शनीय स्थान (चकार) किया है। वह (वृत्राणि) धनों को (घ्नन्) पाता हुआ और (अमित्रान्) सताने वाले (शत्रून्) वैरियों को (पृत्सु) सङ्ग्रामों में (जयन्) जीतता हुआ और (सहन्) हराता हुआ (पुरः) [उनके] दुर्गों को (वि दर्दरीति) तोड़ डालता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो वीर राजा विद्वान् उद्योगी जनों का आदर करता है, वह धनवान् होकर और शत्रुओं को जीतकर प्रजा को पालता है ॥२॥

बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्व१ रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३॥

भाषार्थः (देवः) विजय चाहने वाले (एषः) इस (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के रक्षक पुरुष] ने (वसूनि) धनों को और (महः) बड़े, (गोमतः) विद्याओं से युक्त (व्रजान्) मार्गों को (सम् अजयत्) जीत लिया है, (अपः) कर्म और (स्वः) सुख को (सिसासन्) पूरे करने की इच्छा करता हुआ, (अप्रतीतः) बे-रोक (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का रक्षक राजा] (अर्कैः) वज्रों [शस्त्रों] से (अमित्रम्) सताने वाले को (हन्ति) नाश करता है ॥३॥

भावार्थः—जो विजय चाहने वाला पुरुष धन और विद्याओं को बढ़ा लेता है, वह अपने सुकर्म से दुष्टों को हराकर आनन्द पाता है ॥३॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

अथाष्टमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥९१॥

१—१२ ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ १ विराट् त्रिष्टुप्, २—७, ११, निचृत् त्रिष्टुप्, ८—१०, १२ त्रिष्टुप् ॥

परमात्मगुणोपदेशः—परमात्मा के गुणों के उपदेश ॥

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१॥

भाषार्थः—(नः) हमारे (पिता) पिता [मनुष्य] ने (ऋतप्रजाताम्) सत्य [अविनाशी परमात्मा] से उत्पन्न हुई (सप्तशीर्ष्णीम्) [दो कान, दो नथने, दो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंखें, और एक मुख—अथ० १०। २। ६] सात गोलकों में शिर [आश्रय] रखने वाली, (इमाम्) इस (बृहतीम्) बड़ी (धियम्) बुद्धि को (अविन्दत्) पाया है। और (विश्वजन्यः) उस सब मनुष्यों के हितकारी, (अयास्यः) शुभ कर्मों में स्थिति रखने वाले मनुष्य ने (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] की (स्वित्) ही (शंसन्) स्तुति करते हुए (तुरीयम्) बल युक्त (उक्थम्) वचन को (जनयत्) प्रकट किया है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा की जिस सत्य वेदवाणी को पूर्वज लोग परम्परा से परीक्षा करके ग्रहण करते आये हैं, विद्वान् लोग उसी वेदवाणी पर चलकर परमेश्वर की स्तुति करते हुए अपने आत्मा को बढ़ावें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में हैं—१०। ६७। १—१२॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥२॥

भाषार्थः—(ऋतम्) सत्य ज्ञान की (शंसन्तः) स्तुति करते हुए, (ऋजु) ठीक ठीक (दीध्यानाः) ध्यान करते हुए, (दिवः) विजय चाहने वाले (असुरस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (वीराः) वीर (पुत्रासः) पुत्र (विप्रम्) विविध प्रकार पूर्ण (पदम्) पद [पाने योग्य वस्तु] को (दधानाः) धारण करते हुए (अङ्गिरसः) ज्ञानी ऋषियों ने (यज्ञस्य) पूजनीय व्यवहार के (प्रथमम्) मुख्य (धाम) स्थान [परब्रह्म] को (मनन्त) पूजा है ॥२॥

भावार्थः—सत्यग्राही ऋषि महात्मा लोग माता पिता आदि विद्वानों से उत्तम शिक्षा पाकर परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान में लवलीन होकर आत्मा की उन्नति करते हैं ॥२॥

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन्।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३॥

भाषार्थः—(हंसैः इव) हंसों के समान [विवेकी] (वावदद्भिः) स्पष्ट बोलते हुए (सखिभिः) मित्र पुरुषों द्वारा (अश्मन्मयानि) व्याप्ति वाले (नहना) बन्धनों [कठिन विघ्नों] को (व्यस्यन्) हटाते हुए, (अभिकनिक्रदत्) सब ओर उपदेश करते हुए (विद्वान्) विद्वान् (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े विद्वानों के स्वामी परमात्मा] ने (गाः) वेदवाणियों को (प्र अस्तौत्) प्रस्तुत किया है [सामने रक्खा है] (उत च) और भी (उत् अगायत्) ऊंचा गाया है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस पक्षपात रहित परमात्मा ने प्रलय के भारी अन्धकार को मिटाकर विवेकी प्यारे भक्त ऋषियों द्वारा संसार के सुख के लिये वेदों को प्रकाशित किया है, उस जगदीश्वर की उपासना से अपने आत्मा में सब लोग प्रकाश करें ॥३॥

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४॥

भाषार्थः (तमसि) अन्धकार के बीच (ज्योतिः) प्रकाश (इच्छन्) चाहता हुआ (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों का स्वामी परमेश्वर] (द्वाभ्याम्) दोनों [प्रलय और सृष्टि की अवस्थाओं] से और (एकया) एक [स्थिति की अवस्था] से (अनृतस्य) असत्य [अज्ञान] के (सेतौ) बन्धन में (गुहा) गुहा [गुप्त वा अज्ञान दशा] के बीच (अवः) नीचे और (परः) ऊपर (तिष्ठन्तीः) ठहरी हुईं (गाः) वेदवाणियों को और (तिस्रः) तीनों (उस्राः) [सूर्य, अग्नि और बिजुली रूप] प्रकाशों को (हि) निश्चय करके (उत्) उत्तम रीति से (आ अकः) आकार में लाया और (वि आवः) प्रकट किया ॥४॥

भावार्थः—जो पदार्थ प्रलय, सृष्टि और स्थिति के अनादि चक्र से प्रलय की अवस्था में सूक्ष्म रूप से रहते हैं, वे परमात्मा की इच्छा से आकार पाकर संसार में प्रकट होते हैं ॥४॥

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥५॥

भाषार्थः—(बृहस्पति) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (शयथा) सोती हुई (अपाचीम्) औंधे मुख वाली (ईम्) प्राप्त हुई (पुरम्) पूर्ति [वा नगरी] को (विभिद्य) तोड़ डालकर (त्रीणि) तीनों [धामों अर्थात् स्थान, नाम, और जाति जैसे मनुष्य पशु आदि—निरु० ९। २८] को (साकम्) एक साथ (उदधेः) जल वाले समुद्र से (निः अकृन्तत्) छाँट लिया, (द्यौः) उस प्रकाशमान [परमात्मा] ने (स्तनयन् इव) गरजते हुए बादल के समान होकर (उषसम्) तपाने वाले (सूर्यम्) सूर्य को, (गाम्) भूमि को और (अर्कम्) उष्णता देने वाले अन्न को (विवेद) जताया है ॥५॥

भावार्थः–जो पदार्थ परमाणु रूप से प्रलय के बीच बीजरूप में गड़-बड़ पड़े थे, उन को परमात्मा ने जल द्वारा आकारयुक्त कर के सूर्य, पृथिवी, अन्न आदि उत्पन्न किये हैं ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रो॑ व॒लं र॑क्षि॒तारं॒ दुघा॑नां क॒रेणे॑व॒ वि च॑कर्ता॒ रवे॑ण ।
स्वेदा॑ञ्जिभिरा॒शिर॑मि॒च्छमा॒नोऽरो॑दयत् प॒णिमा गा अ॑मुष्णात् ॥६॥

भाषार्थः –(इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] ने (दुघानाम्) पूर्तियों के (रक्षितारम्) रख लेने वाले [रोकने वाले] (वलम्) हिंसक [विघ्न] को (करेण इव) हाथ से जैसे [वैसे] (रवेण) अपने शब्द [वेद] से (वि चकर्त) काट डाला है। और (स्वेदाञ्जिभिः) मोक्ष के प्रकट करने वाले व्यवहारों से (आशिरम्) परिपक्वता को (इच्छमानः) चाहते हुए उसने (पणिम्) कुव्यवहारी पुरुष को (अरोदयत्) रुलाया है और (गाः) प्रकाशों को [उस से] (आ) सर्वथा (अमुष्णात्) छीन लिया है ॥६॥

भावार्थः यहां 'इन्द्र' शब्द 'बृहस्पति' अर्थात् परमात्मा का वाचक है। परमात्मा वेदद्वारा मोक्षमार्ग बताकर सुखों के रोकने वाले विघ्नों को मिटाता है और अधर्मी पापियों को घोर अन्धकार में डालता है ॥६॥

स ईं॑ स॒त्येभिः॒ सखि॑भिः शु॒चद्भि॒र्गोधा॑यसं॒ वि ध॑न॒सैर॑दर्दः ।
ब्रह्म॑ण॒स्पति॒र्वृष॑भिर्व॒राहै॑र्घ॒र्मस्वे॑देभि॒र्द्रवि॑णं॒ व्या॑नट् ॥७॥

भाषार्थः—(सः) उस (ब्रह्मणः) ब्रह्माण्ड के (पतिः) स्वामी [परमेश्वर] ने (सत्येभिः) सत्य (सखिभिः) मित्ररूप, (शुचद्भिः) प्रकाशमान, (धनसैः) धन देने वाले, (वृषभिः) बलवान्, (वराहैः) उत्तम आहार [भोजनादि] देने वाले (घर्म-स्वेदेभिः) ताप और भाप रखने वाले गुणों से (ईम्) प्राप्त हुए (गोधायसम्) वज्र रखने वाले [शत्रु] को (अदर्दः) फाड़ डाला और (द्रविणम्) धन को (वि आनट्) प्राप्त किया है ॥७॥

भावार्थः— परमात्मा अपने सत्य आदि गुणों से सब क्लेशों को हटा कर हमें धन आदि देकर आनन्द देता है ॥७॥

ते स॒त्येन॒ मन॑सा॒ गोप॑तिं॒ गा इ॑या॒नास॑ इषणयन्त धी॒भिः ।
बृह॒स्पति॑र्मि॒थोअ॑वद्यपेभि॒रुदु॒स्रिया॑ असृजत स्व॒युग्भि॑ः ॥८॥

भाषार्थः—(सत्येन) सच्चे (मनसा) मन से (धीभिः) कर्मों द्वारा (गाः) वेद वाणियों को (इयानासः) पा लेने वाले (ते) उन [विद्वानों] ने (गोपतिम्) वेद वाणी के स्वामी [परमात्मा] को (इषणयन्त) खोजा है, [कि] (बृहस्पतिः) उस बृहस्पति, [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमात्मा] ने (उस्रियाः) निवास करने वाली

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजाओं को (मिथोअवद्यपेभिः) आपस में पाप से बचाने वाले (स्वयुग्भिः) आत्मा के साथी कर्मों से (उत्) उत्तम रीति पर (असृजत) सृजा है ॥८॥

भावार्थः—विद्वान् लोग वेदवाणी द्वारा उत्तम उत्तम कर्म करके परमात्मा को खोजते हैं कि उसने मनुष्य आदि सृष्टि को उनके पूर्व जन्मों के कर्म फलों के अनुसार उत्पन्न किया है ॥८॥

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥९॥

भाषार्थः—(शिवाभिः) कल्याणी (मतिभिः) बुद्धियों के साथ (नानदतम्) बल से दहाड़ते हुए (सिंहम् इव) सिंह के समान (वृषणम्) बलवान् (जिष्णुम्) विजयी (तम्) उस (बृहस्पतिम्) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] को (सधस्थे) सभा स्थान में (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए हम (शूरसातौ) शूरों करके सेवने योग्य (भरेभरे) सङ्ग्राम सङ्ग्राम में (अनु मदेम) आनन्द पाते रहें ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य आपस में मिलकर परमात्मा के गुणों को निश्चय करके आत्मा की उन्नति करते हुए आनन्द पावें ॥९॥

यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१०॥

भाषार्थः—(यदा) जब उस [परमात्मा] ने (विश्वरूपम्) सब संसार में रूप करने वाले (वाजम्) बल को (असनत्) सेवन किया, और (द्याम्) चमकते हुए सूर्य को और (उत्तराणि) अधिक उत्तम (सद्म) लोकों को (आ अरुक्षत्) ऊंचा किया। [तब] (वृषणम्) उस बलवान् (बृहस्पतिम्) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमात्मा] को (आसा) मुख से (नाना) नाना प्रकार (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए (सन्तः) सन्त लोग [सत्पुरुष] (ज्योतिः) ज्योति को (बिभ्रतः) धारण करने वाले [हुए हैं] ॥१०॥

भावार्थः—जब परमात्मा सूर्य आदि लोकों को उत्पन्न करके अपना सामर्थ्य दिखाता है, तब योगी जन उस जगदीश्वर की स्तुति करते हुए अपने आत्मा को प्रकाशयुक्त करते हैं ॥१०॥

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (**वयोधै**) जीवन धारण करने के लिये (**आशिषम्**) मेरी प्रार्थना को (**सत्याम्**) सत्य (**कृणुत**) करो, (**कीरिम्**) स्तुति करने वाले को (**स्वेभिः**) अपने (**एवैः**) उद्योगों से तुम (**चित् हि**) अवश्य ही (**अवथ**) बचाते हो। (**विश्वा**) सब (**मृधः**) सताने वाली सेनायें (**पश्चा**) पीछे (**अप भवन्तु**) हट जावें (**तत्**) इस को, (**विश्वमिन्वे**) हे सब में व्यापक (**रोदसी**) आकाश और भूमि ! (**शृणुतम्**) दोनों सुनो ॥११॥

भावार्थः – विद्वान् लोग संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर प्रजा की रक्षा करें ॥११॥

इन्द्रो॑ म॒ह्ना म॑ह॒तो अ॑र्ण॒वस्य॒ वि मू॒र्धान॑मभिनदर्बु॒दस्य॑ ।
अह॒न्नहि॒मरि॑णात् स॒प्त सिन्धू॑न् दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥१२॥

भाषार्थः—(**इन्द्रः**) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] ने (**मह्ना**) अपनी महिमा से (**महतः**) विशाल (**अर्णवस्य**) गति वाले [वा जल वाले] (**अर्बुदस्य**) हिंसक [अथवा मेघ के समान अन्धकार करने वाले वैरी] के (**मूर्धानम्**) शिर को (**वि अभिनत्**) तोड़ दिया है, वह [परमात्मा] (**अहिम्**) सब ओर चलने वाले मेघ में (**अहन्**) व्यापा है, और उस ने (**सप्त**) सात (**सिन्धून्**) बहते हुए समुद्रों [के समान भूर् आदि सात अवस्था वाले सब लोकों] को (**अरिणात्**) चलाया है, (**द्यावा-पृथिवी**) हे प्रकाश और भूमि ! (**देवैः**) उत्तम गुणों के साथ (**नः**) हम को (**प्र अवतम्**) दोनों बचालो ॥१२॥

भावार्थः—भूर, भुवः आदि सात अवस्थाओं के लिये अ० २० । ३४ । ३ । देखो और मिलाओ। परमात्मा अपने अनन्त सामर्थ्य से बड़े बड़े विघ्नों को हटाकर समस्त संसार की रक्षा करता है, उसी जगदीश्वर की कृपा से धर्मात्मा लोग बलवान् होकर दुष्टों को मिटाकर आनन्द पाते हैं ॥१२॥

सूक्तम् ॥९२॥

१ –२१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, २ निचृद् गायत्री, ३ गायत्री, ४, ६, ९, १०, १२ निचृदनुष्टुप्; ५ भुरिगार्ष्युष्णिक्, ७ विराडनुष्टुप्, ८ पङ्क्तिः, ११ अनुष्टुप्, १३ निचृत् पङ्क्तिः, १४ पथ्या बृहती, १५ विराडार्षी बृहती, १६ भुरिगार्ष्यनुष्टुप्, १७ निचृदार्षी पङ्क्तिः, १८ निचृत्पथ्या बृहती, १९ सतः पङ्क्तिः २० विराडार्षी बृहती, २१ निचृत् सतः पङ्क्तिः ॥

१ –३ राजप्रजाधर्मोपदेशः—१—३ राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

अ॒भि प्र गोप॑तिं गि॒रेन्द्र॑मर्च॒ यथा॑ वि॒दे । सू॒नुं स॒त्यस्य॒ सत्प॑तिम् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (गोपतिम्) पृथिवी के पालक, (सत्यस्य) सत्य के (सूनुम्) प्रेरक, (सत्पतिम्) सत्पुरुषों के रक्षक (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को, (यथा) जैसा (विदे) वह है, (गिरा) स्तुति के साथ (अभि) सब ओर से (प्र) अच्छे प्रकार (अर्च) तू पूज ॥१॥

भावार्थः जैसे राजा उत्तम गुण वाला हो, वैसे ही मनुष्यों को उसकी यथार्थ बड़ाई करनी चाहिये ॥१॥

मन्त्र १—१५। ऋग्वेद में हैं—८। ६९ [सायणभाष्य ५८]। ४—१८। मन्त्र १—३ आचुके हैं अथर्व० २०। २२। ४—६ ॥

आ हर॑यः ससृज्रिरेऽरु॑षीरधि॑ ब॒र्हिषि॑। यत्रा॒भि सं॒ नवा॑महे ॥२॥

भाषार्थः—(हरयः) दुःख हरने वाले मनुष्य (अरुषीः) गति शील [प्रजाओं] को (बर्हिषि) बढ़ती के स्थान में (अधि) अधिकार पूर्वक (आ ससृज्रिरे) लाये हैं, (यत्र) जहां पर [तुझ राजा को] (अभि) सब ओर से (संनवामहे) हम मिलकर सराहते हैं ॥२॥

भावार्थः—जिस राजा की सुनीति से विद्या द्वारा उन्नति होवे, प्रजा सहित विद्वान् जन उस के गुणों का गान करें ॥२॥

इन्द्रा॑य॒ गाव॑ आ॒शिरं॑ दुदु॒ह्रे व॒ज्रिणे॒ मधु॑। यत् सी॑मुपह्व॒रे वि॒दत् ॥३॥

भाषार्थः—(वज्रिणे) वज्रधारी (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] के लिये (गावः) वेद वाणियों ने (आशिरम्) सेवने वा पकाने योग्य पदार्थ [दूध, दही, घी आदि] को और (मधु) मधुविद्या [यथार्थ ज्ञान] को (दुदुह्रे) भर दिया है। (यत्) जब कि उसने [उन वेदवाणियों को] (उपह्वरे) अपने पास (सीम्) सब प्रकार (विदत्) पाया ॥३॥

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् पुरुष वेदवाणियों से सुशिक्षित होकर दूध आदि, भोग्य पदार्थ प्राप्त करके यथार्थ ज्ञान बढ़ावे ॥३॥

मन्त्राः ४—२१ परमात्मगुणोपदेशः—मन्त्र ४–२१ परमात्मा के गुणों का उपदेश ॥

उद् यद् ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपं॑ गृ॒हमिन्द्र॑श्च॒ गन्व॑हि।
मध्वः॑ पी॒त्वा स॑चेवहि॒ त्रिः स॒प्त सख्युः॑ प॒दे ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) जब (ब्रध्नस्य) नियम करने वाले [वा महान् परमेश्वर] के (विष्टपम्) सहारे [अर्थात्] (गृहम्) शरण को (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य] (च) और [मैं ब्रह्मचारी] (उत्) ऊंचे होकर (गन्वहि) हम दोनों प्राप्त करें। (त्रिः) तीन बार [सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों सहित] (सप्त) सात [भूर्, भुवः आदि सात अवस्थाओं वाले संसार] के (मध्वः) निश्चित ज्ञान का (पीत्वा) पान करके (सख्युः) सखा [मित्र, परमात्मा] के (पदे) पद [प्राप्ति योग्य मोक्ष सुख] में (सचेवहि) हम दोनों सींचे जावें ॥४॥

भावार्थः– आचाय और जिज्ञासु ब्रह्मचारी परमात्मा की शरण लेकर सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों द्वारा भूर्, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य इन सात अवस्थाओं से सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों को जानकर मोक्ष पद प्राप्त करके सदा वृद्धि करें ॥४॥

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥५॥

भाषार्थः—(प्रियमेधासः) हे प्यारी [हितकारिणी] बुद्धि वाले पुरुषो! (धृष्णु) निर्भय (पुरं न) गढ़ के समान [उस परमेश्वर] को (अर्चत) पूजो, (प्र) अच्छे प्रकार (अर्चत) पूजो, (अर्चत) पूजो, (अर्चत) पूजो, (उत) और (पुत्रकाः) गुणी सन्तानें [उस को] (अर्चन्तु) पूजें ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वे अपने पुत्र पुत्रियों सहित प्रत्येक क्षण में, प्रत्येक पदार्थ में, प्रत्येक कर्म में परमात्मा की शक्ति को निहार कर आत्मा की उन्नति करें ॥५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से सामवेद में भी है—पू० ४।८।३॥

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] के लिये (उद्यतम्) ऊंचे किये हुए (ब्रह्म) वेदज्ञान का (गर्गरः) गर्गर [सारंगी आदि बाजा] (अव स्वराति) स्वर आलापे, (गोधा) गोधा [वीणा आदि बाजा] (परि सनिष्वणत्) बोल बोले, और (पिङ्गा) पिङ्गा [धनुष की दृढ़ डोरी] (परि चनिष्कदत्) टङ्कार करे ॥६॥

भावार्थः— मनुष्यों को योग्य है कि घर के बीच उत्सवों में और युद्ध क्षेत्र के बीच संग्रामों में परमात्मा का स्मरण भली भांति करते रहें ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥७॥

भाषार्थः—(यत्) जब (एन्यः) गति वाली, (सुदुघाः) अच्छे प्रकार कामनायें पूरी करने वाली, (अनपस्फुरः) निश्चल बुद्धियां (आ पतन्ति) आ जावें, [तब] (अपस्फुरम्, अत्यन्त बढ़े हुए (सोमम्) उत्पन्न करने वाले परमात्मा को (इन्द्राय) बड़े ऐश्वर्य की (पातवे) रक्षा के लिये (गृभायत) तुम ग्रहण करो ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य सब में गति वाली उत्तम बुद्धि को प्राप्त होकर परमेश्वर का आश्रय लेकर अपना ऐश्वर्य बढ़ावें ॥७॥

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥८॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [प्रतापी सूर्य] ने [पृथिवी आदि के जल को] (अपात्) पिया है, (अग्निः) अग्नि ने [काठ हव्य आदि के रस को] (अपात्) पिया है, [उस से] (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहार करने वाले प्राणी (अमत्सत) तृप्त हुए हैं। (इह) इस [सब कर्म] में (वरुणः) श्रेष्ठ परमात्मा (इत्) ही (क्षयत्) समर्थ हुआ है, (तम्) उस [परमात्मा] को (आपः) प्राप्त प्रजाओं ने (अभि) सब प्रकार (अनूषत) [प्रीति से] सराहा है, (इव) जैसे (संशिश्वरीः) मिलती हुई गौयें (वत्सम्) बछड़े को [प्रीति करती हैं] ॥८॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के नियम से सूर्य जल को खींच कर वृष्टि-द्वारा अन्न आदि उत्पन्न करने में, और आग लकड़ी, घी आदि पदार्थों को जलाकर अशुद्धि हटाने और भोजन आदि बनाने में उपकार करता है, उस परमेश्वर से सब मनुष्य आपा छोड़कर इस प्रकार प्रीति करें, जैसे गौ आपा छोड़कर अपने छोटे बच्चे से प्रीति करती है ॥८॥

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥९॥

भाषार्थः—(वरुण) हे श्रेष्ठ परमात्मन् ! तू (सुदेवः) बड़ा देव [अति प्रकाशमान वा दानी] (असि) है, (यस्य ते) जिस तेरे (काकुदम्) तालु को (सप्त) सात (सिन्धवः) बहते हुए समुद्र [अर्थात् भुर्, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सात अवस्थाओं वाले सब लोक] (अनुक्षरन्ति) निरन्तर सींचते हैं, (इव) जैसे (सूर्म्यम्) बड़े वेग वाले (सुषिराम्) झरने को [जल सींचते हैं] ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र के लिये—अ० २० । ३४ । ३ और निरुक्त ५ । २७ भी देखो । जिस परमात्मा की आज्ञा में यह सब बड़े छोटे लोक इस प्रकार झुकते हैं, जैसे जल दूर दूर से एकत्र होकर स्रोते में झुक कर गिरते हैं, हे मनुष्यो ! तुम अभिमान छोड़कर उसी जगदीश्वर के सामने झुको ॥९॥

यो व्यतीँ रफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।
तक्वो नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥१०॥

भाषार्थः—(यः) जिस [परमात्मा] ने (व्यतीन्) विविध प्रकार चलते रहने वाले, (सुयुक्तान्) बड़े योग्य पदार्थों को (दाशुषे) आत्मदानी [भक्त] के लिये (उप) सुन्दर रीति से (अफाणयत्) सहज में उत्पन्न किया है और (यः) जिस [परमात्मा] ने (उपमा) पास रहने वाले को (अमुच्यत) [दुःखों से] मुक्त किया है, (तत् इत्) वही (वपुः) बीज बोने वाला [ब्रह्म] (तक्वः) व्यापक (नेता) नेता [अगुआ परमात्मा] है ॥१०॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने अपने सहज स्वभाव से अनोखे अनोखे पदार्थ रचकर अपने विवेकी भक्तों को परम आनन्द दिया है, सब मनुष्य उस सर्वशक्तिमान् की उपासना करके सुखी होवें ॥१०॥

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥११॥

भाषार्थः—(शक्रः) शक्तिमान् (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाला परमात्मा] (इत्) ही (उ) अवश्य (अति) तिरस्कार करके (विश्वाः) सब (द्विषः) विरोध करने वाली प्रजाओं को (अति) सर्वथा (ओहते) मारता है, [जैसे] (कनीनः) चमकता हुआ सूर्य (गिरा) वाणी [गर्जन] से (पच्यमानम्) पचाये गये [ताड़े गये] (ओदनम्) मेघ को (परः) दूर (भिनत्) छिन्न भिन्न करता है ॥११॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हमारे सब विघ्नों को दूर कर देता है जैसे सूर्य मेघ को छिन्न भिन्न करके प्रकाश करता है ॥११॥

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(न) जैसे (कुमारकः) खिलाड़ी (अर्भकः) बालक (नवम्) नवे (रथम्) रथ पर (अधि तिष्ठत्) चढ़े। [वैसे ही] (सः) वह [जिज्ञासु] (मात्रे) माता के लिये और (पित्रे) पिता के लिये (महिषम्) महान्, (मृगम्) खोजने योग्य (विभुक्रतुम्) व्यापक कर्म वाले [परमात्मा] को (पक्षत्) ग्रहण करे ॥१२॥

भावार्थः—जैसे छोटा बालक रथ आदि क्रीड़ा वस्तुओं में प्रीति करता है, वैसे ही जिज्ञासु पुरुष माता पिता की प्रसन्नता के लिये महान् परमात्मा में प्रीति कर के अपना जीवन सुधारे ॥१२॥

आ तू सुंशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अधं द्युक्षं सचेवहि सहस्रंपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥१३॥

भाषार्थः—(सुशिप्र) हे बड़े ज्ञानी! (दम्पते) हे दमनरक्षक [जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी] (हिरण्ययम्) प्रकाशमय [ज्ञानरूपी] (रथम्) रथ पर (तु) शीघ्र (आ तिष्ठ) चढ़। (अध) फिर (द्युक्षम्) व्यवहारों में समर्थ, (सहस्रपादम्) सहस्रों [असीम] गति शक्ति वाले, (अरुषम्) व्यापक, (स्वस्तिगाम्) आनन्द पहुंचाने वाले, (अनेहसम्) निर्दोष परमात्मा को (सचेवहि) हम दोनों [आचार्य और ब्रह्मचारी] मिल जावें ॥१३॥

भावार्थः—जब ब्रह्मचारी ब्रह्म विद्या में पूरी निष्ठा करता है, तब आचार्य और ब्रह्मचारी परमात्मा के आश्रय में पूरा आनन्द पाते हैं ॥१३॥

तं घेमित्था नंमस्विन उप स्वराजंमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधिंतं यदेतंव आवर्तयंन्ति दावने ॥१४॥

भाषार्थः—(तम्) उस (घ) ही (ईम्) प्राप्ति योग्य (स्वराजम्) स्वराजा [अपने आप राजा परमेश्वर] को (इत्था) इस प्रकार (नमस्विनः) नमस्कार करने वाले लोग (उप आसते) पूजते हैं, (यत्) जब कि वे (अस्य) उस [परमात्मा] का (चित्) ही (सुधितम्) भले प्रकार रक्खा हुआ (अर्थम्) पाने योग्य धन (एतवे) पाने के लिये और (दावने) दान के लिये [उस परमात्मा] को (आवर्तयन्ति) सामने वर्तमान करते हैं ॥१४॥

भावार्थः—जो परमात्मा अपने आप सब का राजा है, सब लोग उस की आज्ञा मानकर विविध प्रकार धन प्राप्त करके सुपात्रों का सहाय करें ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु॑ प्र॒त्नस्यौक॑सः प्रि॒यमे॑धास एषाम् ।
पूर्वा॒मनु॒ प्रय॑तिं वृ॒क्तब॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आशत ॥१५॥

भाषार्थः—(एषाम्) इन प्राणियों के बीच (प्रियमेधासः) प्यारी बुद्धि वाले, (वृक्तबर्हिषः) हिंसा त्यागने वाले (हितप्रयसः) हितकारी अन्न वाले पुरुषों ने (प्रत्नस्य) सनातन (ओकसः) आश्रय [परमात्मा] के (अनु) पीछे होकर (पूर्वाम्) पहिली (प्रयतिम्) प्रयत्न रीति को (अनु) निरन्तर (आशत) पाया है ॥१५॥

भावार्थः—इन प्राणियों के बीच सर्वहितैषी विद्वान् लोग परमात्मा का आश्रय लेकर आनन्द पावें ॥१५॥

यो राजा॑ चर्षणी॒नां याता॒ रथे॑भि॒रध्रि॑गुः ।
विश्वा॑सां तरु॒ता पृत॑नानां॒ ज्येष्ठो॒ यो वृ॑त्र॒हा गृ॒णे ॥१६॥

भाषार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (राजा) राजा (रथेभिः) रथों [के समान रमणीय लोकों] के साथ (अध्रिगुः) बेरोक (याता) चलने वाला, और (यः) जो (विश्वासाम्) सब (पृतनानाम्) शत्रु सेनाओं का (तरुता) हराने वाले, (ज्येष्ठः) अति श्रेष्ठ (वृत्रहा) अन्धकार नाशक है, [उस की] (गृणे) मैं स्तुति करता हूं ॥१६॥

भावार्थः—जो परमात्मा सब मनुष्य आदि प्राणियों और सूर्य आदि लोकों का स्वामी है, हम उसके गुणों को ग्रहण कर के सब कष्टों से बचें ॥१६॥

मन्त्र १६—२१ ऋग्वेद में है—८। ७० [सायणभाष्य ५९]। १—६। मन्त्र १६, १७ सामवेद—उ० ३। १। १५, मन्त्र १६ साम०। पू० ३। ९। १, मन्त्र १६, १७ आगे हैं—अ० २०। १०५। ४, ५ ॥

इन्द्रं॒ तं शु॑म्भ पुरुहन्म॒न्नव॑से॒ यस्य॑ द्वि॒ता वि॑ध॒र्तरि॑ ।
हस्ता॑य॒ वज्रः॒ प्रति॑ धायि दर्श॒तो म॒हो दि॒वे न सूर्यः॑ ॥१७॥

भाषार्थः—(पुरुहन्मन्) हे बहुत ज्ञानी ऋषि ! (तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] का (शुम्भ) भाषण कर, (यस्य) जिसके (द्विता) दोनों धर्म [अनुग्रह और निग्रह गुण] (विधर्तरि) बुद्धिमान् जन पर (अवसे) रक्षा के लिए और [जिस का] (दर्शतः) दर्शनीय (महः) महान् (वज्रः) वज्र [दण्ड

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्य] (हस्ताय) हाथ [अर्थात् हमारे बाहुबल] के लिये (प्रति) प्रत्यक्ष (धायि) धारण किया गया है, (न) जैसे (सूर्यः) सूर्य (दिवे) प्रकाश के लिये है ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा अति प्रत्यक्ष रूप से दुष्टों को दण्ड देता है और धर्मात्माओं पर अनुग्रह करता है, ऐसा निश्चय करके विद्वान् लोग सदा ईश्वर की आज्ञा में रहकर सुखी होवें ॥१७॥

नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥१८॥

भाषार्थः—(यः) जिस [परमात्मा] ने (सदावृधम्) सदा बढ़ाने वाले व्यवहार को (चकार) बनाया है, (तम्) उस (विश्वगूर्तम्) सबों को उद्यम में लगाने वाले, (ऋभ्वसम्) बुद्धिमानों को ग्रहण करने वाले, (अधृष्टम्) अजेय, (धृष्णवोजसम्) निर्भय बल वाले, (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] को (नकिः) न कोई (कर्मणा) कर्म से और (न) न (यज्ञैः) दानों से (नशत्) पा सकता है ॥१८॥

भावार्थः—जो परमात्मा सृष्टि आदि अद्भुत कर्मों को करता है, और सब को पालता है, कोई भी प्राणी उस अनन्तकर्मा और अनन्तदानी परमेश्वर के समान नहीं हो सकता है ॥१८॥

मन्त्र १८, १९ सामवेद में भी हैं—उ० ४ । २ । ८, मन्त्र १८—साम० पू० ३ । ६ । १ ॥

अषाल्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥१९॥

भाषार्थः—(यस्मिन् जायमाने) जिस [परमात्मा] के प्रकट होने पर (महीः) पृथिवियां (उरुज्रयः) बहुत चलने वाली होती हैं, (अषाल्हम्) उस अजेय, (उग्रम्) तेजस्वी, और (पृतनासु) सङ्ग्रामों में (ससहिम्) जिताने वाले [परमेश्वर] को (धेनवः) वाणियों ने (सम्) मिलकर (अनोनवुः) अत्यन्त सराहा है, (द्यावः) सूर्यों और (क्षामः) भूमियों ने (अनोनवुः) अत्यन्त सराहा है ॥१९॥

भावार्थः—जब परमात्मा अपने सामर्थ्य को प्रकट करता है, तब सब पृथिवी आदि लोक उत्पन्न होते हैं, और उसकी अद्भुत महिमा को सूर्य पृथिवी आदि लोकों में देखकर सब प्राणी आनन्द पाते हैं ॥१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद् द्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः ।
न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒ह॒स्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी ॥२०॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (यत्) जो (शतम्) सौ (द्यावः) अन्तरिक्ष [वायु लोक], (उत) और (शतम्) सौ (भूमीः) भूमि लोक (ते) तेरे [सामने] (स्युः) होवें, [न वे सब] और (न) न (सहस्रम्) सहस्र (सूर्याः) सूर्य लोक और (रोदसी) दोनों अन्तरिक्ष और भूमि लोक [मिलकर] और (न) न (जातम्) उत्पन्न हुआ जगत्, (वज्रिन्) हे दण्डधारी ! [परमात्मन्] (त्वा] तुझ को (अनु) निरन्तर (अष्ट) पा सके हैं ॥२०॥

भावार्थः—सब असंख्य लोक और पदार्थ अलग अलग होकर अथवा सब मिलकर परमात्मा की महिमा का पार नहीं पा सकते ॥२०॥

मन्त्र २०, २१ आ चुके हैं—अ० २० । ८१ । १ ॥

आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृष॒न् विश्वा॑ शविष्ठ॒ शव॑सा ।
अ॒स्माँ अ॑व मघव॒न् गोम॑ति व्र॒जे वज्रि॑न् चि॒त्राभि॑रू॒तिभिः॑ ॥२१॥

भाषार्थः—(वृषन्) हे शूर ! (शविष्ठ) हे अत्यन्त बली ! [परमात्मन्] (महिना) अपने बड़े (शवसा) बल से (विश्वा) सब (वृष्ण्या) शूर के योग्य बलों को (आ) सब ओर से (पप्राथ) तू ने भर दिया है । (मघवन्) हे महाधनी ! (वज्रिन्) हे दण्डधारी ! [शासक परमेश्वर] (गोमति) उत्तम विद्या वाले (व्रजे) मार्ग में (चित्राभिः) विचित्र (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अस्मान्) हमें (अव) बचा ॥२१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमात्मा से प्रार्थना करके सब पदार्थों से उपकार ले कर यथावत् पालन करें ॥२१॥

सूक्तम् ॥९३॥

१—८ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ४ निचृद् गायत्री, २ गायत्री, ३ स्वराडार्षी गायत्री, ५—८ विराडार्षी गायत्री ॥

परमेश्वरोपासनोपदेशः—परमेश्वर की उपासना का उपदेश ॥

उत् त्वा॑ मन्दन्तु॒ स्तोमाः॑ कृणु॒ष्व राधो॑ अद्रिवः ।
अव॑ ब्रह्म॒द्विषो॑ जहि ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अद्रिवः) हे अन्न वाले ! [वा वज्र वाले परमेश्वर !] (त्वा) तुझ को (स्तोमाः) स्तुति करने वाले लोग (उत्) अच्छे प्रकार (मदन्तु) प्रसन्न करें, तू [हमारे लिये] (राधः) धन (कृणुष्व) कर, (ब्रह्मद्विषः) वेद द्वेषियों को (अव जहि) नष्ट कर दे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा के गुणों को जानकर विद्याधन और सुवर्ण आदि धन बढ़ावें और अधर्मियों का नाश करें ॥१॥

मन्त्र १—३ ऋग्वेद में है—८ । ६४ [सायणभाष्य ५३] । १—३ और कुछ भेद से सामवेद में हैं—उ०६ । १ । तृच ३ और मन्त्र १ साम०—पू० ३ । १ । १ ॥

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।

नहि त्वा कश्चन प्रति ॥२॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (पदा) अपनी व्याप्ति से (अराधसः) आराधना न करने वाले (पणीन्) कुव्यवहारी पुरुषों को (नि बाधस्व) रोकता रह, तू (महान्) महान् (असि) है । (कः चन) कोई भी (त्वा प्रति) तेरे समान (नहि) नहीं है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा सर्वव्यापक होकर दुष्टों का नाश और धर्मात्माओं की रक्षा करता है ॥२॥

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परमेश्वर] (त्वम्) तू (सुतानाम्) उत्पन्न हुये पदार्थों का, और (त्वम्) तू (असुतानाम्) न उत्पन्न हुये [परमाणु रूप] पदार्थों का (ईशिषे) स्वामी है, (त्वम्) तू (जनानाम्) उत्पन्न होने वालों का (राजा) राजा है ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर ही परमाणुओं के संयोग वियोग से भूत, भविष्यत् और वर्तमान सृष्टि का स्वामी है ॥३॥

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥४॥

भाषार्थः—(ईङ्खयन्तीः) चेष्टा करती हुई, (अपस्यवः) काम चाहने वाली, (सुवीर्यम्) बड़े सामर्थ्य को (भेजानासः) सेवन करती हुई प्रजायें (जातम्) प्रकट हुए (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] की (उप आसते) उपासना करती हैं ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—यह सब पदार्थ परमेश्वर के नियम से चेष्टा करते हुए और अपना कर्तव्य करते हुए उस जगदीश्वर की आज्ञा में रहते हैं ॥४॥

मन्त्र ४—८ ऋग्वेद में हैं १० । १५३ । १—५, मन्त्र ४ सामवेद पू० २ । ६ । १ ॥

त्वमि॑न्द्र ब॒लाद॑धि॒ सह॑सो जा॒त ओज॑सः । त्वं वृ॑षन् वृ॒षेद॑सि ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (त्वम्) तू (बलात्) बल से, (ओजसः) पराक्रम [धैर्य] और (सहसः) जयशीलता से (अधि) अधिक करके (जातः) प्रसिद्ध है । (वृषन्) हे बलवान् ! (त्वम्) तू (वृषा इत्) बलवान् ही (असि) है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा अपने अनन्त सामर्थ्य से सब को अपने वश में रखता है ॥५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से सामवेद में भी है—पू० २ । ३ । ६ ॥

त्वमि॑न्द्रासि वृत्र॒हा व्य॑१॒न्तरि॑क्षमतिरः ।
उद् द्याम॑स्तभ्ना॒ ओज॑सा ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (त्वम्) तू (वृत्रहा) अन्धकार नाशक (असि) है, (अन्तरिक्षम्) आकाश को (वि अतिरः) तू ने फैलाया है, और (ओजसा) पराक्रम के साथ (द्याम्) चमकते हुए सूर्य को (उत्) उत्तम रीति से (अस्तभ्नाः) थांभा है ॥६॥

भावार्थः—परमेश्वर ही आकर्षण नियम से सूर्य आदि लोकों को अपने अपने स्थान पर आकाश में स्थिर रखता है ॥६॥

त्वमि॑न्द्र स॒जोष॑सम॒र्कं बि॑भर्षि बा॒ह्वोः । वज्रं॒ शिशा॑न॒ ओज॑सा ॥७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] (ओजसा) पराक्रम से (वज्रम्) वज्र को (शिशानः) तीक्ष्ण करता हुआ (त्वम्) तू (सजोषसम्) प्रीति युक्त [वा विचारवान्] (अर्कम्) पूजनीय विद्वान् को (बाह्वोः) दोनों भुजाओं पर [जैसे] (बिभर्षि) धारण करता है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा दुष्टों का नाश करता हुआ आज्ञाकारी विचारशील विद्वानों को अपने प्रेम की गोद में बिठा कर बढ़ाता है ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।
स विश्वा भुव आभवः ॥८॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परमेश्वर] (त्वम्) तू (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न वस्तुओं को (अभिभूः) वश में रखने वाला (असि) है, (सः) सो तू (विश्वाः) सब (भुवः) भूमियों को (आ) सब ओर से (अभवः) प्राप्त हुआ है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा सब संसार को वश में रखकर सब स्थानों में व्यापक है ॥८॥

सूक्तम् ॥९४॥

१—११ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ विराडार्षी त्रिष्टुप्, २, १० निचृत् त्रिष्टुप्, ३, ११ त्रिष्टुप्, ४, ६, ७, ९, विराड् जगती, ५ भुरिक् त्रिष्टुप्, ८ निचृज्जगती ॥

राजप्रजाकर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१॥

भाषार्थः—(स्वपतिः) धन का स्वामी वा स्वयं स्वामी (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (मदाय) हमारे आनन्द के लिये (आ यातु) आवे, (यः) जो [राजा] (धर्मणा) धर्म के साथ (तूतुजानः) फुरतीला, (तुविष्मान्) वृद्धि वाला और (अपारेण) अपने अपार (महता) बड़े (वृष्ण्येन) साहस से [वैरियों के] (विश्वा) सब (सहांसि) जीतने वाले बलों को (अति) सर्वथा (प्रत्वक्षाणः) रेतने वाला [छीलने वाला] है ॥१॥

भावार्थः—राजा और प्रजा परस्पर सहाय करके शत्रुओं का नाश करें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१० । ४४ । १—११ ॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२॥

भाषार्थः—(नृपते) हे नरपति ! [मनुष्यों के स्वामी] (ते) तेरा (रथः) रथ (सुष्ठामा) दृढ़ बैठकों वाला है, (हरी) दोनों घोड़े (सुयमा) अच्छे साधे हुए हैं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गभस्तौ) हाथ में (वज्रः) वज्र (मिम्यक्ष) प्राप्त हुआ है। (राजन्) हे राजन् ! (सुपथा) सुन्दर मार्ग से (शीभम्) शीघ्र (अर्वाङ्) सामने होकर (आ याहि) आ, (पपुषः ते) तुझ रक्षक के (वृष्ण्यानि) बलों को (वर्धाम) हम बढ़ावें ॥२॥

भावार्थः—जो राजा रथ, अश्व आदि सेना सजाकर वैरियों पर चढ़ाई करे, प्रजागण सहाय करके उसका बल बढ़ावें ॥२॥

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासंस्तविषास एनम् ।
प्रत्वंक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥३॥

भाषार्थः—(नृपतिम्) मनुष्यों के स्वामी, (वज्रबाहुम्) भुजा पर वज्र रखने वाले, (उग्रम्) प्रचण्ड (प्रत्वक्षसम्) [शत्रुओं के] रेत डालने वाले, (वृषभम्) सुख की बरसा करने वाले, (ईम्) प्राप्ति योग्य (एनम्) इस (सत्यशुष्मम्) सच्चे बल रखने वाले [राजा] को (उग्रासः) प्रचण्ड, (तविषासः) बलवान् (सधमादः) मिलकर उत्सव मनाने वाले, (इन्द्रवाहः) ऐश्वर्यवान् राजा के वाहन [घोड़ा हाथी आदि] (अस्मत्रा) हमारे बीच में (आ आ वहन्तु) अवश्य ही लावें ॥३॥

भावार्थः—राजा अपने बलवान् सैनिकों के साथ शत्रुओं के मारने को उद्यत होवे ॥३॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (एव) इस प्रकार से (पतिम्) पालन करने वाले, (द्रोणसाचम्) ज्ञान से सींचने वाले, (सचेतसम्) सचेत, (ऊर्जः) बल के (स्कम्भम्) खम्भे रूप पुरुष से (धरुणे) धारण करने में (आ) सब प्रकार (वृषयसे) तू बलवान् के समान आचरण करता है। तू (ओजः) पराक्रम को (कृष्व) कर और (त्वे) अपने में [उस को] (सम् गृभाय) एकत्र कर, (अपि) और (केनिपानाम्) आत्मा में झुकने वाले बुद्धिमानों के (इनः यथा) स्वामी के समान (वृधे) बढ़ती के लिये (असः) तू वर्तमान हो ॥४॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि वीर बुद्धिमान् पुरुषों के साथ दया करके बल बढ़ावे और प्रजा की उन्नति करे ॥४॥

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अस्मे) हम को (वसूनि) अनेक धन (आ गमन्) आवें, (हि) क्योंकि (शंसिषम्) मैं कहता हूं, (सोमिनः) शान्त स्वभाव वाले के (स्वाशिषम्) सुन्दर आशीर्वाद वाले (भरम्) पोषण व्यवहार को (आ) सब प्रकार (याहि) तू प्राप्त हो। (त्वम्) तू (ईशिषे) स्वामी है, (सः) सो तू (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम आसन पर (आ) आकर (सत्सि) बैठ (तव) तेरे (पात्राणि) रक्षा साधन (धर्मणा) धर्म के साथ (अनाधृष्या) अजेय हैं ॥५॥

भावार्थः—राजा प्रजा की सम्मति से सिंहासन पर विराजकर उत्तम साधनों से रक्षा करके धन की वृद्धि करे ॥५॥

पृथ॑क् प्राय॑न् प्रथ॒मा दे॒वहू॑तयोऽकृण्वत श्रव॒स्या॑नि दु॒ष्टरा॑ ।
न ये शे॒कुर्य॒ज्ञियां॒ नाव॒मारुह॑मी॒र्मैव ते न्य॑विशन्त॒ केप॑यः ॥६॥

भाषार्थः—(प्रथमाः) मुखिया, (देवहूतयः) विद्वानों के बुलाने वाले पुरुष (पृथक्) अलग अलग [अर्थात् कोई वीरता, कोई विद्यावृद्धि आदि गुण से] (प्र) आगे (आयन्) गये हैं और उन्होंने (दुस्तरा) दुस्तर [बड़े कठिन] (श्रवस्यानि) यश के कर्म (अकृण्वत) किये हैं। (ये) जो (यज्ञियाम्) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान] की (नावम्) नाव पर (न आरुहं शेकुः) नहीं चढ़ सके हैं, (ते) वे (केपयः) दुराचारी (ईर्मा) मार्ग में (एव) ही (नि अविशन्त) टिक रहे हैं ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों की शिक्षा से अनेक कठिन कामों को पूरा करके यश बढ़ावें, और दुष्कर्मियों के समान श्रेष्ठ कर्मों को छोड़कर निन्दनीय कर्मों में न पड़ें ॥६॥

यह मन्त्र निरुक्त ५। २५ में भी व्याख्यात है ॥

ए॒वैवापा॒गप॑रे सन्तु दू॒ढ्योऽश्वा॒ येषां॑ दु॒र्युज॑ आयुयु॒ज्रे ।
इ॒त्था ये प्रागुप॑रे सन्ति॑ दा॒वने॑ पु॒रूणि॒ यत्र॑ व॒युना॑नि॒ भोज॑ना ॥७॥

भाषार्थः—(एव) ऐसे (एव) ही (अपरे) वे दूसरे [वेद विरोधी] (दूढ्यः) दुर्बुद्धि लोग (अपाक्) नीच गति में (सन्तु) होवें, (येषाम्) जिन के (दुर्युजः) कठिनाई से जुतने वाले [अति प्रबल] (अश्वाः) घोड़े (आयुयुज्रे) बांध दिये गए [हुठरा दिये गए] हैं। (इत्था) इसी प्रकार (प्राक्) उत्तम गति में (सन्तु) वे होवें, (ये) जो लोग (उपरे) निवृत्ति [विषयों के त्याग] में (दावने) दान के लिये हैं, (यत्र) जिस [दान] में (पुरूणि) बहुत से (वयुनानि) कर्म और (भोजनानि) पालन साधन धन आदि हैं ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—दुर्बुद्धि वेद विरोधी मनुष्य बहुत प्रयत्न करने पर भी श्रेष्ठ कर्म नहीं कर सकते, और जो पुरुष कुविषयों को छोड़कर वेदाज्ञा में आत्मदान करते हैं, वे अनेक प्रकार धन आदि प्राप्त करके संसार में उत्तम गति भोगते हैं ॥७॥

गिरीँरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥८॥

भाषार्थः—(क्रन्दत्) पुकारता हुआ (द्यौः) प्रकाशमान परमात्मा (अज्रान्) चलते हुए और (रेजमानान्) कांपते हुए (गिरीन्) मेघों को (अधारयत्) धारण करता और (अन्तरिक्षाणि) आकाशस्थ लोकों को (कोपयत्) प्रकाशित करता, (समीचीने) आपस में मिले हुए (धिषणे) दोनों सूर्य और भूमि को (वि) विविध प्रकार (स्कभायति) थांभता और (वृष्णः) ऐश्वर्यों को (पीत्वा) ग्रहण करके (मदे) आनन्द में (उक्थानि) कहने योग्य वचनों का (शंसति) उपदेश करता है ॥८॥

भावार्थः—जो परमात्मा भाप रूप मेघ को धारण करके वृष्टि करता, जगत् को रचता, सूर्य, भूमि आदि लोकों को आकर्षण द्वारा दृढ़ रखता और ऋषियों द्वारा वेदों का उपदेश करता है, सब मनुष्य उसी की उपासना करें ॥८॥

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥९॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे महाधनी ! (इमम्) इस (सुकृतम्) दृढ़ बने हुए (अङ्कुशम्) अङ्कुश को (ते) तेरे लिये (बिभर्मि) मैं रखता हूं, (येन) जिस [कारण] से (शफारुजः) शान्ति भंजकों को (आरुजासि) तू नष्ट करे। (अस्मिन्) इस (सवने) ऐश्वर्य के बीच (ते) तेरा (ओक्यम्) निवास (सु) भले प्रकार (अस्तु) होवे, (इष्टौ) यज्ञ [देवपूजा, संगति करण और दान] के बीच (सुते) सिद्ध किये हुए तत्त्व रस में, (मघवन्) हे महाधनी ! (आभगः) बड़ा ऐश्वर्य (बोधि) जाना जाता है ॥९॥

भावार्थः—विद्वान् लोग राजा की रक्षा के लिये अङ्कुश आदि हथियार धारण कर के शत्रुओं को हटाकर ऐश्वर्य बढ़ावें ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।

वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

भाषार्थः—(पुरुहूत) हे बहुतों से बुलाये गये ! [राजन्] (गोभिः) विद्याओं से (दुरेवाम्) दुर्गति वाली (अमतिम्) कुमति [वा कङ्गाली] को और (यवेन) अन्न से (विश्वाम्) सब (क्षुधम्) भूख को (तरेम) हम हटावें। (वयम्) हम (राजभिः) राजाओं के साथ (प्रथमाः) प्रथम श्रेणी वाले होकर (धनानि) अनेक धनों को (अस्माकेन) अपने (वृजनेन) बल से (जयेम) जीतें ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करके विद्याओं द्वारा कुमति और निर्धनता हटाकर भोजन पदार्थ प्राप्त करें और अपने भुज बल से महाधनी होकर राजाओं के साथ प्रथम श्रेणी वाले होवें ॥१०॥

मन्त्र १०, ११ आ चुके हैं—अ० २०। १७। १०, ११। और कुछ भेद से—२०। ८९। १०, ११॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।

इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े शूरों का रक्षक सेनापति] (नः) हमें (पश्चात्) पीछे से (उत्तरस्मात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नीचे से (अघायोः) बुरा चीतने वाले शत्रु से (परि पातु) सब प्रकार बचावे। (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (पुरस्तात्) आगे से (उत) और (मध्यतः) मध्य से (नः) हमारे लिये (वरिवः) सेवनीय धन (कृणोतु) करे, (सखा) [जैसे] मित्र (सखिभ्यः) मित्रों के लिये [करता है] ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य वीरों में महावीर और प्रतापियों में महाप्रतापी होकर दुष्टों से प्रजा की सदा रक्षा करें ॥११॥

सूक्तम् ॥९५॥

१—४॥ इन्द्रो देवता ॥ १ अष्टिः, २, ३ अतिजगती, ४ भुरिगतिजगती ॥

राजकर्तव्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत् । स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(त्रिकद्रुकेषु) तीन [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक] उन्नतियों के विधानों में (तृपत्) तृप्त होते हुए (महिषः) महान् (तुविशुष्मः) बहुत बल वाले [शूर] ने (विष्णुना) बुद्धिमान् मनुष्य वा व्यापक परमेश्वर करके (सुतम्) निचोड़े हुए, (यवाशिरम्) अन्न के भोजन युक्त (सोमम्) सोम श्वरण [तत्त्व रस] को (अपिबत्) पिया है, (यथा) जैसा (अवशत्) उस [शूर] ने चाहा। (सः) उस [तत्त्वरस] ने (ईम्) प्राप्ति योग्य, (महाम्) महान् (उरुम्) लम्बे चौड़े पुरुष को (महि) बड़े (कर्म) कर्म (कर्तवे) करने के लिये (ममाद) हर्षित किया है, (सः) वह (देवः) दिव्य (सत्यः) सत्य गुण वाला, (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् [तत्त्वरस] (एनम्) इस (देवम्) कामना योग्य, (सत्यम्) सच्चे [सत्यकर्मा] (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी मनुष्य] को (सश्चत्) व्यापा है ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करके परमात्मा और विद्वानों के सिद्धान्तों पर चलता है, वही शूर संसार में बड़े बड़े कर्म करके सर्वहितैषी होता है ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—२।२२।१, सामवेद—पू० ५। ८।१। तथा साम०—उ० ६।३।२०॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत। अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो!] (अस्मै) इस (इन्द्राय) इन्द्र [महा प्रतापी राजा] के लिये (पुरोरथम्) रथ को आगे रखने वाले (शूषम्) शत्रुओं के सुखाने वाले बल का (सु) भले प्रकार से (प्रो) अवश्य ही (अर्चत) आदर करो। (अभीके) समीप में (चित् उ) ही (संगे) मिलने पर (समत्सु) परस्पर खाने के स्थान सङ्ग्रामों में (वृत्रहा) शत्रुनाशक (अस्माकम्) हमारा (चोदिता) प्रेरक [उत्साह बढ़ाने वाला] और (लोककृत्) स्थान करने वाला (बोधि) जाना गया है। (अन्यकेषाम्) दूसरे खोटे लोगों की (ज्याकाः) निर्बल डोरियां (धन्वसु अधि) धनुषों पर चढ़ी हुई (नभन्ताम्) टूट जावें ॥२॥

भावार्थः—जिस शूर राजा के प्रताप से उपद्रवी शत्रु लोग हार मानें और प्रजागण आगे बढ़, विद्वान् पुरुष उस वीर का सदा मान करें ॥२॥

मन्त्र २—४ ऋग्वेद में हैं—१०।१३३।१—३। और सामवेद—उ० ९।१।तृच १४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्। अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

भाषार्थः—(त्वम्) तू ने (अधराचः) नीचे को बहने वाले (सिन्धून्) नदी नालों को (अव असृजः) छोड़ दिया है, (अहिम्) मारने वाले विघ्न को (अहन्) तू ने मारा है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] तू (अशत्रुः) निर्वैरी (जज्ञिषे) हो गया है, (विश्वम्) सब (वार्यम्) जल में होने वाले [अन्न आदि] को (पुष्यसि) तू पुष्ट करता है, (तम्) उस (त्वाम्) तुझ से (परि ष्वजामहे) हम मिलते हैं। (अन्यकेषाम्) दूसरे खोटे लोगों की···[मन्त्र २] ॥३॥

भावार्थः—राजा पहाड़ आदि जल स्थानों से नदी नाले निकाल कर खेती आदि उद्यम को बढ़ावे, जिस से प्रजागण उस से प्रीति करें ॥३॥

विषु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥४॥

भाषार्थः—(नः) हमारे (अर्यः) शत्रु की (विश्वाः) सब (अरातयः) कंजूस प्रजायें और (धियः) बुद्धियां (सु) सर्वथा (वि नशन्त) नष्ट हो जावें। (इन्द्र) हे इन्द्र [महाप्रतापी राजन्] तू (शत्रवे) उस वैरी पर (वधम्) शस्त्र (अस्ता) चलाने वाला (असि) है, (यः) जो (नः) हमें (जिघांसति) मारना चाहता है, (या) जो (ते) तेरी (रातिः) दान शक्ति है, [वह] (वसु) धन को (ददिः) देने वाली है। (अन्यकेषाम्) दूसरे खोटे लोगों की (ज्याकाः) निर्बल डोरियां (धन्वसु अधि) धनुषों पर चढ़ी हुई (नभन्ताम्) टूट जावें ॥४॥

भावार्थः—राजा ऐसा प्रबन्ध करे कि दुष्ट लोग उपद्रव न मचावें और सदाचारी राजभक्त सन्तुष्ट होकर सुखी रहें ॥४॥

सूक्तम् ॥९६॥ १—२४॥

१—५॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ३ त्रिष्टुप्; २ विराट् त्रिष्टुप्; ४, ५ विराडार्षी त्रिष्टुप् ॥

राजकर्तव्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (अस्य) इस (तीव्रस्य) तीक्ष्ण [शीघ्र बलदायक] (अभिवयसः) प्राप्त अन्न की (पाहि) तू रक्षा कर और (सर्वरथा) सब रथों के योग्य (हरी) अपने दोनों घोड़ों को (इह) यहां पर (वि मुञ्च) छोड़ दे । (त्वा) तुझ को (यजमानासः) यजमानों के गिराने वाले [अथवा यजमानों से भिन्न] (अन्ये) दूसरे [विरोधी] लोग (मा नि रीरमन्) न रोक लेवें, (तुभ्यम्) तेरे लिये (इमे) यह (सुतासः) सिद्ध किये हुए [तत्त्व रस] हैं ॥१॥

भावार्थः—राजा अन्न आदि बलदायक पदार्थों की रक्षा करके प्रजा की बात सुने और वैरियों के फन्दों में न पड़कर श्रेष्ठों के सिद्धान्तों को माने ॥१॥

मन्त्र १—५ ऋग्वेद में हैं—१० । १६० । १—५ ॥

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (तुभ्यम्) तेरे लिये (सुताः) सिद्ध किए हुए, (उ) और (तुभ्यम्) तेरे लिये (सोत्वासः) सिद्ध होने वाले [तत्त्व रस] हैं, (त्वाम्) तुझ को (श्वात्र्याः) गति वाली [प्रजा] की (गिरः) वाणियां (आह्वयन्ति) बुलाती हैं । (अद्य) अब (इदम्) इस (सवनम्) ऐश्वर्य कर्म का (जुषाणः) सेवन करता हुआ और (विश्वस्य) सब का (विद्वान्) जानने वाला तू (इह) यहां पर (सोमम्) उत्पन्न संसार की (पाहि) रक्षा कर ॥२॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि भूत भविष्यत् और वर्तमान को विचार कर प्रजा की सदा रक्षा करे ॥२॥

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो (देवकामः) दिव्यगुण चाहने वाला मनुष्य (उशता) कामना वाले (मनसा) मन से और (सर्वहृदा) पूरे हृदय से (अस्मै) इस [संसार] के लिये (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] को (सुनोति) निचोड़ता है । (इन्द्रः) इन्द्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[महा प्रतापी राजा] (तस्य) उस [मनुष्य] की (गाः) वाणियों को (न) नहीं (परा ददाति) नष्ट करता है, (अस्मै) उसके लिये वह (प्रशस्तम्) प्रशंसनीय, (चारुम्) मनोहर व्यवहार (इत्) ही (कृणोति) करता है ॥३॥

भावार्थः—राजा और विद्वान् लोग संसार के हित के लिये परस्पर श्रेष्ठ व्यवहार करें ॥३॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४॥

भाषार्थः—(एषः) वह [मनुष्य] (अस्य) इस [शूर पुरुष] का (अनुस्पष्टः) सर्वथा स्पष्ट [दृष्टि गोचर] (भवति) होता है, (यः) जो [मनुष्य] (रेवान् न) धनवान् के समान (अस्मै) उस [शूर] के लिये (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] (सुनोति) निचोड़ता है। (मघवा) धनवान् [शूर] (तम्) उस [मनुष्य] को (अरत्नौ) अपनी गोद में (निः) निश्चय करके (दधाति) बैठालता है, और (अननुदिष्टः) विना कहा हुआ [वह शूर] (ब्रह्मद्विषः) वेद विरोधियों को (हन्ति) मारता है ॥४॥

भावार्थः—राजा बुद्धिमान् राजभक्तों पर सदा दया दृष्टि रक्खे ॥४॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (अश्वायन्तः) घोड़े चाहते हुए, (गव्यन्तः) भूमि चाहते हुए, (वाजयन्तः) बल वा अन्न चाहते हुए हम (त्वा) तुझे (उपगन्तवै) आने के लिये (उ) अवश्य कर के (हवामहे) बुलाते हैं। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महा-प्रतापी राजन्] (ते) तेरी (नवायाम्) श्रेष्ठ (सुमतौ) सुमति में (आभूषन्तः) शोभा पाते हुए (वयम्) हम (त्वा) तुझ को (शुनम्) सुख से (हुवेम) बुलावें ॥५॥

भावार्थः—प्रजागण धर्मात्मा राजा की नीति में चलकर सदा उन्नति करें ॥५॥

मन्त्राः, ६—१० ॥ राजयक्षघ्नं देवता ॥ ६ आर्षी, ७ त्रिष्टुप्, ८ निचृत् त्रिष्टुप्, ९ विराट् त्रिष्टुप् १० निचृदनुष्टुप् ॥

रोगनाशनोपदेशः—रोग नाश करने का उपदेश ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे प्राणी!] (त्वा) तुझ को (हविषा) भक्ति के साथ (कम्) सुख से (जीवनाय) जीवन के लिये (अज्ञातयक्ष्मात्) अप्रकट रोग से (उत) और (राजयक्ष्मात्) राजरोग से (मुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूं। (यदि) जो (ग्राहिः) जकड़ने वाली पीड़ा [गठिया रोग] ने (एतत्) इस समय (एनम्) इस प्राणी को (जग्राह) पकड़ लिया है, (तस्याः) उस [पीड़ा] से (इन्द्राग्नी) हे सूर्य और अग्नि (एनम्) इस [प्राणी] को (प्र मुमुक्तम्) तुम छुड़ाओ ॥६॥

भावार्थः—सद्वैद्य गुप्त और प्रकट रोगों से विचारपूर्वक रोगी को अच्छा करता है, ऐसे ही प्रत्येक मनुष्य (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि अर्थात् सूर्य से लेकर अग्नि पर्यन्त अर्थात् दिव्य और पार्थिव सब पदार्थों से उपकार लेकर, अथवा सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी विद्वानों से मिलकर, अपने दोषों को मिटाकर यशस्वी होवे ॥६॥

मन्त्र ६—९ आ चुके हैं—अ० ३। ११। १—४॥

यदि॑ क्षि॒तायु॒र्यदि॑ वा॒ परे॑तो॒ यदि॑ मृ॒त्योर॑न्ति॒कं नी॑त ए॒व।

तमा ह॑रामि॒ निर्ऋ॑तेरु॒पस्था॒दस्पा॑र्शमेनं श॒तशा॑रदाय ॥७॥

भाषार्थः—(यदि) चाहे [यह] (क्षितायुः) टूटी आयु वाला, (यदि वा) अथवा (परेतः) अंग भंग है, (यदि) चाहे (मृत्योः) मृत्यु के (अन्तिकम्) समीप (एव) ही (नीतः=नि—इतः) आ चुका है। (तम्) उसको (निर्ऋतेः) महामारी की (उपस्थात्) गोद से (आ हरामि) लिये आता हूं, (एनम्) इस को (शत-शारदाय+जीवनाय) सौ शरद ऋतुओं वाले [जीवन] के लिये (अस्पार्शम्) मैं ने छुआ है ॥७॥

भावार्थः—जैसे चतुर वैद्य यत्न करके भारी भारी रोगियों को चंगा करता है, ऐसे ही मनुष्य शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कठिन संकट पड़ने पर अपने आत्मा को प्रबल रक्खे ॥७॥

स॒ह॒स्रा॒क्षेण॑ श॒तवी॑र्येण श॒तायु॑षा ह॒विषाहा॑र्षमेनम्।

इन्द्रो॒ यथै॑नं श॒रदो॒ नया॒त्यति॒ विश्व॑स्य दुरि॒तस्य॑ पा॒रम् ॥८॥

भाषार्थः—(सहस्राक्षेण) सहस्रों नेत्र वाले, (शतवीर्येण) सैकड़ों सामर्थ्य वाले, (शतायुषा) सैकड़ों जीवन शक्ति वाले (हविषा) आत्मदान वा भक्ति से (एनम्) इस [आत्मा] को (आ अहार्षम्) मैंने उभारा है। (यथा) जिस से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् मनुष्य (एनम्) इस [जीव] को (विश्वस्य) प्रत्येक (दुरितस्य) कष्ट के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पारम्) पार (अति=अतीत्य) निकालकर (शरदः) [सौ] शरद ऋतुओं तक (नयाति) पहुंचावे ॥८॥

भावार्थः—जब मनुष्य एकाग्रचित्त होकर अनेक प्रकार से अपनी दर्शन शक्ति, कर्म शक्ति और जीविका शक्ति बढ़ाकर अपने को सुधारता है, तब वह इन्द्र पुरुष सब उलझनों को सुलझाकर यशस्वी होकर चिरंजीवी होता है ॥८॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥९॥

भाषार्थः—(वर्धमानः+त्वम्) बढ़ती करता हुआ तू (शतं शरदः) सौ शरद् ऋतुओं तक, (शतं हेमन्तान्) सौ शीत ऋतुओं तक (उ) और (शतं वसन्तान्) सौ वसन्त ऋतुओं तक (जीव) जीता रह। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (अग्निः) तेजस्वी विद्वान्, (सविता) सब के चलाने वाले, (बृहस्पतिः+ अहं जीवः) बड़े बड़ों के रक्षक मैंने (शतम्) अनेक प्रकार से (ते) तेरे लिये (शतायुषा) सैकड़ों जीवन शक्ति वाले (हविषा) आत्मदान वा भक्ति से (एनम्) इस [आत्मा] को (आ अहार्षम्) उभारा है ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य उचित रीति से वर्षा, शीत और उष्ण ऋतुओं को सहकर बहुप्रकार मन्त्रोक्त विधि पर विद्या आदि बल से शक्तिमान् होकर जीविका उपार्जन करता हुआ आत्मा की उन्नति करे ॥९॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥१०॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझ को (आ अहार्षम्) मैं ने ग्रहण किया है और (अविदम्) मैंने पाया है, तू (पुनर्णवः) नवीन होकर (पुनः) फिर (आ अगाः) आया है। (सर्वाङ्ग) हे सम्पूर्ण [विद्या] के अङ्ग वाले ! (ते) तेरे लिये (सर्वम्) सम्पूर्ण (चक्षुः) दर्शन सामर्थ्य (च) और (ते) तेरे लिये (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (अविदम्) मैंने पाई है ॥१०॥

भावार्थः—जिस पुरुष को आचार्य स्वीकार करके विद्यादान देकर द्विजन्मा बनाता है, वह सब प्रकार विद्या से प्रकाशित होकर उत्तम जीवन युक्त होता है ॥१०॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ८। १। २०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र ११—१६ ।। गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तं देवता ।। ११, १२, १४ निचृदनुष्टुप्, १३, १५ १६ अनुष्टुप् ।।

गर्भरक्षोपदेशः—गर्भ रक्षा का उपदेश ।।

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ।।११।।

भाषार्थः—[हे गर्भिणी ! (ब्रह्मणा) विद्वान् वैद्य से (संविदानः) मेल रखता हुआ, (रक्षोहा) राक्षसों [रोगों] का नाश करने वाला (अग्निः) अग्नि [अग्नि के समान रोग भस्म करने वाला औषध] (इतः) यहां से [उस रोग को] (बाधताम्) हटावे, (यः) जो कोई (दुर्णामा) दुर्नामा [दुष्ट नाम वाले बवासीर आदि रोग का कीड़ा] (अमीवा) पीड़ा होकर (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भाशय [कोख] और (योनिम्) योनि [गुप्त उत्पत्ति मार्ग] को (आशये) घेर लेता है ।।११।।

भावार्थः—स्त्री की कोख और योनि के रोगजन्तुओं को विद्वान् वैद्यों की सम्मति से दूर करना चाहिये ।।११।।

मन्त्र ११—१६ ऋग्वेद में हैं—१० । १६२ । १—६ ।।
इन मन्त्रों से मिलाओ—अ० का० ८ । सू० ६ ।।

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ।।१२।।

भाषार्थः—[हे गर्भिणी !] (यः) जो कोई (दुर्णामा) दुर्नामा [दुष्ट नाम वाला बवासीर आदि रोग का कीड़ा] (अमीवा) पीड़ा होकर (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भाशय [कोख] और (योनिम्) योनि [गुप्त उत्पत्ति मार्ग] को (आशये) घेर लेता है, (ब्रह्मणा सह) विद्वान् वैद्य के साथ (अग्निः) अग्नि [अग्नि समान रोग भस्म करने वाला औषध] (तम्) उस (क्रव्यादम्) मांस खाने वाले [रोग] की (निः) सर्वथा (अनीनशत्) नाश करे ।।१२।।

भावार्थः—मन्त्र ११ के समान है ।।१२।।

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ।।१३।।

भाषार्थः—[हे गर्भिणी !] (यः) जो कोई [रोग] (ते) तेरे [गर्भाशय में] (पतयन्तम्) गिरते हुये [वीर्य रूप गर्भ] को और (निषत्स्नुम्) जमते हुए [अंकुए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् बालक] को और (यः) जो कोई [रोग] (सरीसृपम्) डोलते हुए गर्भ को (हन्ति) नाश करे, और (यः) जो कोई [रोग] (ते) तेरे (जातम्) उत्पन्न हुए बच्चे को (जिघांसति) मारना चाहे, (तम्) उस [रोग] को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥१३॥

भावार्थः—उत्तम वैद्यों द्वारा रोगों का नाश करके गर्भ और उत्पन्न हुए बच्चे की रक्षा करनी चाहिये ॥१३॥

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।

योनिं यो अन्तरारेल्हि तमितो नाशयामसि ॥१४॥

भाषार्थः—(यः) जो कोई [रोग] (ते) तेरी (ऊरू) दोनों जंघाओं को (विहरति) फैला दे और (दम्पती अन्तरा) पति पत्नी के बीच में (शये) पड़ जावे और (यः) जो कोई [रोग] (योनिम्) योनि को (अन्तः) भीतर से (आरेल्हि) चाट लेवे, (तम्) उस [रोग] को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥१४॥

भावार्थः—जिस रोग से स्त्री की जांघें फैल जावें, और जिस रोग से सन्तान उत्पन्न करने में स्त्री पुरुषों को विघ्न होवे और योनि आदि में सूखा का रोग लग जावे, उन सब का औषध करना चाहिये ॥१४॥

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१५॥

भाषार्थः—[हे स्त्री !] (यः) जो कोई (जारः) व्यभिचारी (भ्राता) भाई (भूत्वा) होकर [अथवा] (पतिः) पति (भूत्वा) होकर (त्वा) तेरे पास (निपद्यते) आ जावे, [अथवा] (यः) जो कोई [दुष्ट] (ते) तेरे (प्रजाम्) सन्तान को (जिघांसति) मारना चाहे, (तम्) उस को (इतः) यहाँ से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥१५॥

भावार्थः—जो कोई दुराचारी जन भाई वा पति के समान बन कर घर में आकर उपद्रव करे, उसका नाश करना चाहिये ॥१५॥

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१६॥

भाषार्थः—[हे स्त्री !] (यः) जो कोई [दुष्ट] (स्वप्नेन) नींद से [अथवा] (तमसा) अंधेरे से (मोहयित्वा) घबड़ा देकर (त्वा) तेरे पास (निपद्यते)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजावे, और (यः) जो कोई (ते) तेरे (प्रजाम्) सन्तान को (जिघांसति) मारना चाहे, (तम्) उस [दुष्ट] को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥१६॥

भावार्थः—जो कोई दुष्ट जन नींद की औषधि से अथवा अंधेरा करके कुछ हानि करे, उसका नाश करना चाहिये ॥१६॥

मन्त्राः १७—२३ ॥ आत्मा देवता ॥ १७, २० अनुष्टुप्, १८ निचृदनुष्टुप्, १९ विराडनुष्टुप्, २१ निचृदुपरिष्ठाद् बृहती, २२ भुरिगनुष्टुप्, २३ पङ्क्तिः ॥

शारीरिकविषये शरीररक्षोपदेशः—शारीरिक विषय में शरीर रक्षा का उपदेश ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।

यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१७॥

भाषार्थः—[हे प्राणी !] (ते) तेरी (अक्षीभ्याम्) दोनों आंखों से, (नासिकाभ्याम्) दोनों नथनों से, (कर्णाभ्याम्) दोनों कानों से, (छुबुकात् अधि=चुबुकात् अधि) ठोड़ी में से, (ते) तेरे (मस्तिष्कात्) भेजे से, और (जिह्वायाः) जिह्वा से (शीर्षण्यम्) शिर में के (यक्ष्मम्) क्षयी [क्षयी रोग] को (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूं ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में शिर के अवयवों का वर्णन है। जैसे सद्वैद्य उत्तम औषधों से रोगों की निवृत्ति करता है, ऐसे ही मनुष्य अपने आत्मिक और शारीरिक दोषों को विचारपूर्वक नाश करे ॥१७॥

मन्त्र १७—२३ आ चुके हैं—अ० । २ । ३३ । १—७ ॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।

यक्ष्मं दोषण्यं१ मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥१८॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (ग्रीवाभ्यः) गले की नाड़ियों से, (उष्णिहाभ्यः) गुद्दी की नाड़ियों से (कीकसाभ्यः) हंसली की हड्डियों से (अनूक्यात्) रीढ़ से और (ते) तेरे (अंसाभ्याम्) दोनों कंधों से, और (बाहुभ्याम्) दोनों भुजाओं से, (दोषण्यम्) मुड्ढे वा बक्खे से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूं ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में ग्रीवा के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ मन्त्र १७ के समान है ॥१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥१९॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (हृदयात्) हृदय से, (क्लोम्नः) फेफड़े से, (हलीक्ष्णात्) पित्ते से, (पार्श्वाभ्यां परि) दोनों कांखों [कक्षाओं] से और (ते) तेरे (मतस्नाभ्याम्) दोनों मतस्नों [गुर्दों] से, (प्लीह्नः) प्लीहा वा पिलई [तिल्ली] से, (यक्नः) यकृत् [काल खण्ड वा कलेजा] से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामसि) हम उखाड़े देते हैं ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कन्धों के नीचे के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ मन्त्र १७ के समान है ॥१९॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥२०॥

भाषार्थः—(ते) तेरी (आन्त्रेभ्यः) आंतों से, (गुदाभ्यः) गुदा की नाड़ियों से, (वनिष्ठोः) वनिष्ठु [भीतरी मल स्थान] से, (उदरात् अधि) उदर में से, और (ते) तेरी (कुक्षिभ्याम्) दोनों कोखों से, (प्लाशेः) प्लाशि [कोख में की थैली] से, और (नाभ्याः) नाभि में से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूं ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उदर के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ मन्त्र १७ के समान है ॥२०॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं१ श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥२१॥

भाषार्थः—(ते) तेरी (ऊरुभ्याम्) दोनों जंघाओं से, (अष्ठीवद्भ्याम्) दोनों घुटनों से (पार्ष्णिभ्याम्) दोनों एड़ियों से, (प्रपदाभ्याम्) दोनों पैरों के पंजों से और (ते) तेरे (श्रोणिभ्याम्) दोनों कूल्हों से [वा नितम्बों से] और (भंससः) गुह्य स्थान से (भसद्यम्) कटि [कमर] के और (भासदम्) गुह्य के (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं जड़ से उखाड़ता हूं ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कटि के नीचे के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ मन्त्र १७ के समान है ॥२१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्थिभ्य॑स्ते म॒ज्जभ्यः॒ स्नाव॑भ्यो ध॒मनि॑भ्यः ।

यक्ष्मं॑ पा॒णिभ्या॑म॒ङ्गुलि॑भ्यो न॒खेभ्यो॒ वि वृ॑हामि ते ॥२२॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (अस्थिभ्यः) हड्डियों से, (मज्जभ्यः) मज्जा धातु [हड्डी के भीतर के रस] से, (स्नावभ्यः) सूक्ष्म नाड़ियों [वा पुट्ठों] से, और (धमनिभ्यः) स्थूल नाड़ियों से, और (ते) तेरे (पाणिभ्याम्) दोनों हाथों से,(अङ्गुलिभ्यः) अङ्गुलियों से और (नखेभ्यः) नखों से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं जड़ से उखाड़ता हूं ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्य अपने शरीर के भीतरी धातुओं, नाड़ियों और हाथ आदि बाहिरी अङ्गों को यथायोग्य आहार विहार से पुष्ट और स्वस्थ रक्खें, जिस से आत्मिक शक्ति सदा बढ़ती रहे ॥२२॥

अङ्गे॑अङ्गे॒ लोम्नि॑लोम्नि॒ यस्ते॒ पर्व॑णिपर्वणि । यक्ष्मं॑ त्वच॒स्यं॑

ते व॒यं क॒श्यप॑स्य वीब॒र्हेण॒ विष्व॑ञ्चं॒ वि वृ॑हामसि ॥२३॥

भाषार्थः—(यः) जो [क्षयी रोग] (ते) तेरे (अङ्गे अङ्गे) अङ्ग अङ्ग में, (लोम्निलोम्नि) रोम रोम में और (पर्वणिपर्वणि) गांठ गांठ में है। (वयम्) हम (ते) तेरे (त्वचस्यम्) त्वचा के और (विष्वञ्चम्) सब अवयवों में व्यापक (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (कश्यपस्य) ज्ञानदृष्टि वाले विद्वान् के (विवर्हेण) विविध उद्यम से (वि वृहामसि) जड़ से उखाड़ते हैं ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपसंहार वा समाप्ति है अर्थात् प्रसिद्ध अवयवों का वर्णन करके अन्य सब अवयवों का कथन है। जिस प्रकार सद्वैद्य निदानपूर्वक रोगी के जोड़ जोड़ में से रोग को नाश करता है, वैसे ही ज्ञानीपुरुष निदिध्यासनपूर्वक आत्मिक दोषों को मिटाकर प्रसन्नचित्त होता है ॥२३॥

अपे॑हि मनसस्पते॒ऽप॑ क्राम प॒रश्च॑र ।

प॒रो निर्ऋ॑त्या॒ आ च॑क्ष्व बहु॒धा जीव॑तो॒ मनः॑ ॥२४॥

मन्त्र २४ ॥ दुःस्वप्नघ्नं देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥

स्वास्थ्यरक्षोपदेशः—स्वास्थ्य की रक्षा का उपदेश ॥

भाषार्थः—(मनसः पते) हे मन के गिराने वाले ! [दुष्ट स्वप्न आदिरोग]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अप इहि) निकल जा, (अप क्राम) पैर उठा (परः) परे (चर) चला जा। (निर्ऋत्यै) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] को (परः) दूर [जाने के लिये] (आ चक्ष्व) कहदे, (जीवतः) जीवित मनुष्य का (मनः) मन (बहुधा) बहुत प्रकार से [बहुत विषयों में उत्सुक] होता है ॥२४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम विचारों के साथ स्वास्थ्य की रक्षा करें और निरालसी होकर शुभ कर्मों को सोचते हुए ऐश्वर्यवान् होवें ॥२४॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। १६४। १॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

अथ नवमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥९७॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृदार्षी बृहती; २ निचृद् विष्टारपङ्क्तिः; ३ आर्ष्यनुष्टुप् ॥

वीरलक्षणोपदेशः—वीर के लक्षणों का उपदेश ॥

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१॥

भाषार्थः—(वयम्) हम ने (इदा) परम ऐश्वर्य के साथ [वर्तमान] (एनम्) इस (वज्रिणम्) वज्रधारी [वीर] को (ह्यः) कल (इह) यहां पर [तत्त्व रस] (अपीपेम) पान कराया है। [हे विद्वान्] (तस्मै) उस (समना) पूर्ण बल वाले [शूर] के लिये (उ) ही (अद्य) आज (सुतम्) सिद्ध किये हुए [तत्त्व रस] को (भर) भर दे, और (नूनम्) निश्चय करके (श्रुते) सुनने योग्य शास्त्र के बीच (आ) सब ओर से (भूषत) तुम शोभा बढ़ाओ ॥१॥

भावार्थः—जिस पराक्रमी वीर को सदा तत्त्व ज्ञान का उपदेश होता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वहां प्रत्येक मनुष्य अलग अलग और सब मनुष्य मिलकर विज्ञान की उन्नति करते हैं ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८। ६६ [सायण भाष्य ५५]। ७—९ मन्त्र १, २ सामवेद—उ० ८। २। १ ३, मन्त्र १—साम०—पू० ३। ८। १०॥

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।

सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥२॥

भाषार्थः—(वारणः) रोकने वाला (उरामथिः) भेड़ों का मथने वाला (वृकः) भेड़िया (चित्) भी (अस्य) इस [वीर] के (वयुनेषु) कर्मों में (आ) अनुकूल (भूषति) हो जाता है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले शूर] (सः) सो तू (नः) हमारे (इमम्) इस (स्तोत्रम्) स्तोत्र को (जुजुषाणः) स्वीकार करता हुआ (चित्रया) विचित्र (धिया) बुद्धि वा कर्म के साथ (प्र) भले प्रकार (आ गहि) आ ॥२॥

भावार्थः—शूर प्रतापी राजा भेड़िये की प्रकृति वाले दुष्टों को विचित्र नीति से वश में करके प्रजा को सुखी करे ॥२॥

इस मन्त्र के अर्थ के लिये देखो—निरु० ५। २१॥

कदू न्व१ स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।

केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥३॥

भाषार्थः—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले वीर] का (नु) अब (कत् उ) कौन सा (पौंस्यम्) पौरुष (अकृतम्) विना किया हुआ (अस्ति) है ? (केनो) किस (श्रोमतेन) श्रुति [वेद] मानने वाले करके (नु) अब (जनुषः परि) जन्म से लेकर (वृत्रहा) शत्रुनाशक [वीरपुरुष] (कम्) सुख से (न) नहीं (शुश्रुवे) सुना गया है ॥३॥

भावार्थः—जब मनुष्य विश्वकर्मा होकर अपना सब धार्मिक कर्तव्य कर लेता है, तब वह वीर समस्त संसार में बड़ाई पाता है ॥३॥

सूक्तम् ॥९८॥

१—२॥ इन्द्रो देवता॥ १ निचृदनुष्टुप्; २ स्वराडार्षी बृहती॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश॥

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (कारवः) काम करने वाले, (नरः) नेता लोग हम (त्वाम्) तुझ को (इत् हि) ही (वाजस्य) विज्ञान के (सातौ) लाभ में, (सत्पतिम्) सत्पुरुषों के पालने वाले (त्वाम्) तुझ को (वृत्रेषु) धनों में, और (त्वाम्) तुझ को (काष्ठासु) बड़ाइयों के बीच (अर्वतः) घोड़ों को जैसे (हवामहे) पुकारते हैं ॥१॥

भावार्थः—कार्यकर्ता लोग राजा के सहाय से विद्या, धन और विजय की प्राप्ति करें ॥१॥

मन्त्र १, २ ऋग्वेद में हैं—६।४६ १, २, यजुर्वेद—२७। ३७, ३८, सामवेद उ० २।१।१२ और मन्त्र १ साम०—पू० ३।५।२॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।

गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥

भाषार्थः—(चित्र) हे अद्भुत स्वभाव वाले ! (वज्रहस्त) हे हाथ में वज्र रखने वाले ! (अद्रिवः) हे अन्न वाले ! (इन्द्र) इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (सः) सो (धृष्णुया) निर्भय (महः) बड़े लोगों की (स्तवानः) स्तुति करता हुआ (त्वम्) तू (नः) हमारे लिये (रथ्यम्) रथ के योग्य (गाम्) बैल और (अश्वम्) घोड़ों को (सं किर) संग्रह कर, (न) जैसे (सत्रा) सत्य के साथ (जिग्युषे) जीतने वाले वीर को (वाजम्) अन्न आदि पदार्थ [देते हैं] ॥२॥

भावार्थः—जैसे विजयी योद्धा लोग खान पान आदि पदार्थों से प्रतिष्ठा पाते हैं, वैसे ही अन्य विद्वान् लोग अपनी चतुराई के कारण योग्य प्रतिष्ठा और धन प्राप्त करें ॥२॥

सूक्तम् ॥९९॥

१—२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृत् पथ्या बृहती; २ स्वराडार्षी बृहती ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।

समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (पूर्वपीतये) पहिले [मुख्य] भोग के लिये, (समीचीनासः) साधु, (ऋभवः) बुद्धिमान्, (रुद्राः) स्तुति करने वाले (आयवः) मनुष्यों ने (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (पूर्व्यम्) प्राचीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्वाम्) तुझ को (सम्) मिलकर (अभि) सब प्रकार (अस्वरन्) आलापा है और (गृणन्त) गाया है ॥१॥

भावार्थः—सब बुद्धिमान् लोग परमेश्वर के गुणों को जानकर अपनी उन्नति करें ॥१॥

दोनों मन्त्र ऋग्वेद में हैं—८। ३। ७, ८, सामवेद—उ० ७। ३ १, मन्त्र १ साम० पू० ३। ७। ४॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा] ने (इत्) ही (सुतस्य) उत्पन्न हुए (अस्य) इस [जीव] के (वृष्ण्यम्) पराक्रम और (शवः) बल को (विष्णवि) व्यापक (मदे) आनन्द में (ववृधे) बढ़ाया है, (अस्य) इस [परमात्मा] की (तम्) उस (महिमानम्) बड़ाई को (आयवः) मनुष्य (अद्य) अब (पूर्वथा) पहिले के समान (अनु स्तुवन्ति) सराहते रहते हैं ॥२॥

भावार्थः—अनादि निर्विकार परमात्मा इस प्राणी के आनन्द के लिये सदा सहाय करता है, उसी की उपासना सब मनुष्य सदा करते हैं ॥२॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में भी है—३३। ६७॥

सूक्तम् ॥१००॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ विराडार्ष्युष्णिक्; २ विराडुष्णिक्, ३ निचृदुष्णिक् ॥

राजप्रजाकर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे ।
उदेव यन्त उदभिः ॥१॥

भाषार्थः—(गिर्वणः) हे स्तुतियों से सेवनीय (इन्द्र) ! इन्द्र [महाप्रतापी राजन्] (अद्य हि) अब ही (त्वा) तुझे (महः) अपनी बड़ी (कामान्) कामनाओं को, (उदा) जल [जल की बाढ़] के पीछे (उदभिः) दूसरी जलों की बाढ़ों के साथ (यन्तः इव) चलते हुए पुरुषों के समान हमने (उप) आदर से (ससृज्महे) समर्पण किया है ॥१॥

भावार्थः – जैसे नदी की बाढ़ अति वेग से लगातार चली आती हो और ग्रामों और प्राणी आदि को बहाये ले जाती हो, उसे देख लोग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घबड़ाकर भागते हैं, वैसे ही प्रजागण दुष्टों से बचने के लिये राजा की शरण शीघ्र लेवें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८। ९८ [सायणभाष्य ८७]। ७—९, सामवेद—उ० १। १। तृच २३ और मन्त्र १ साम० पू० ५। २। ८॥

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥२॥

भाषार्थः—(अद्रिवः) हे वज्रधारी (शूर) शूर! [राजन्] (दिवेदिवे) दिन दिन (ववृध्वांसम्) बढ़ते हुए (चित्) भी (त्वा) तुझको (ब्रह्माणि) वेदज्ञान (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं, (न) जैसे (वाः) जल को (यव्याभिः) जौ आदि अन्न की हित करने वाली नालियों से [बढ़ाते हैं] ॥२॥

भावार्थः—राजा वेदानुकूल चल कर अपनी और प्रजा की वृद्धि करे जैसे जल को नल से ऊंचा ले जाकर अन्न आदि बढ़ाते हैं ॥२॥

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथं उरुयुगे ।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥३॥

भाषार्थः—(गाथया) प्रशंसा के साथ (इषिरस्य) शीघ्र गामी [राजा] के (उरुयुगे) बड़े जुये वाले, (उरौ) बड़े (रथे) रथ में (इन्द्रवाहा) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को ले चलने वाले, (वचोयुजा) वचन से जुतने वाले (हरी) दो घोड़ों को (युञ्जन्ति) वे [सारथी आदि] जोतते है ॥३॥

भावार्थः—राजा धर्म की रक्षा के लिये सुशिक्षित शीघ्रगामी घोड़ों के रथ से चलकर प्रशंसा पावे ॥३॥

सूक्तम् ॥१०१॥

१—३ ॥ अग्निर्देवता, १, २ गायत्री, ३ निचृद् गायत्री ॥

भौतिकाग्निगुणोपदेशः—भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश ॥

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥

भाषार्थः—(दूतम्) पदार्थों के पहुंचाने वाले वा तपाने वाले, (होतारम्) वेग आदि देने वाले, (विश्ववेदसम्) सब धनों के प्राप्त कराने वाले, (अस्य) इस [प्रसिद्ध] (यज्ञस्य) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] के (सुक्रतुम्) सुधारने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले (अग्निम्) अग्नि [आग, बिजुली, सूर्य] को (वृणीमहे) हम स्वीकार करते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि कला यन्त्र यान विमान आदि में वेग से चलाने के लिये और शरीरों में भोजन आदि द्वारा बल बढ़ाने के लिये बिजुली आदि अग्नि को काम में लावें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—१ । १२ । १—३, सामवेद उ० २ । १ । तृच ६ तथा म० १ साम० पू० १ । १ । ३ ॥

अग्निम॑ग्निं हवी॑मभिः सदा॑ हवन्त विश्पति॑म् ।

हव्यवाहं॑ पुरुप्रियम् ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (हवीमभिः) ग्रहण करने योग्य व्यवहारों से (विश्पतिम्) प्रजाओं के पालने वाले, (हव्यवाहम्) देने लेने योग्य पदार्थों के पहुंचाने वाले, (पुरुप्रियम्) बहुत प्रिय करने वाले (अग्निमग्निम्) अग्नि अग्नि [अर्थात् पृथिवी की आग, बिजुली और सूर्य] को (सदा) सदा (हवन्त) तुम ग्रहण करो ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि प्रसिद्ध अग्नि, बिजुली और सूर्य को कला यन्त्र आदि में प्रयुक्त करके सदा सुख की वृद्धि करें ॥२॥

अग्ने॑ देवाँ इहा व॑ह जज्ञानो वृक्तब॑र्हिषे । असि॒ होता॑ न॒ ईड्यः॑ ॥३॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि ! [आग, बिजुली और सूर्य] (जज्ञानः) प्रकट होता हुआ तू (देवान्) दिव्य पदार्थों को (इह) यहां (वृक्तबर्हिषे) हिंसा छोड़ने वाले विद्वान् के लिये (आ वह) ला । तू (नः) हमारे लिये (होता) धन देने वाला और (ईड्यः) खोजने योग्य (असि) है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य अग्नि, बिजुली और सूर्य की विद्या को खोज करके अनेक प्रकार उपयोग करें और उत्तम उत्तम पदार्थ प्राप्त करके सुखी होवें ॥३॥

सूक्तम् ॥१०२॥

१—३ ॥ अग्निर्देवता ॥ १ विराड् गायत्री, २, ३ निचृद् गायत्री ॥

परमेश्वरस्य गुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

ई॒ळेन्यो॑ नम॒स्य॑स्ति॒रस्तमां॑सि द॒र्श॒तः । सम॒ग्निरि॑ध्यते॒ वृषा॑ ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ईलेन्यः) खोजने योग्य, (नमस्यः) सत्कार करने योग्य, (तमांसि) अन्धकारों को (तिरः) हटाने वाला, (दर्शतः) देखने योग्य, (वृषा) बलवान् (अग्निः) अग्नि [प्रकाशमान परमेश्वर] (सम्) भले प्रकार (इध्यते) प्रकाश करता है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य अन्धकारनाशक परमात्मा को प्रत्येक पदार्थ में साक्षात् करके अपने हृदय को प्रकाशमान करे ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—३। २७। १३—१५, सामवेद—उ० ७। २। तृच २॥

वृषो॑ अ॒ग्निः समि॑ध्यते॒ऽश्वो॒ न दे॑व॒वाह॑नः । तं ह॒विष्म॑न्त ईळते ॥२॥

भाषार्थः—(अश्वः न) शीघ्रगामी घोड़े के समान (देववाहनः) उत्तम पदार्थों का पहुंचाने वाला (वृषो) बलवान् ही (अग्निः) अग्नि [प्रकाशमान परमेश्वर] (सम्) भले प्रकार (इध्यते) प्रकाश करता है। (हविष्मन्तः) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं वाले पुरुष (तम्) उसको (ईलते) खोजते हैं ॥२॥

भावार्थः—जैसे घोड़े आदि वाहन द्वारा पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं, वैसे ही परमात्मा सब संसार को वायु जल आदि उत्तम पदार्थ सदा पहुंचाता है ॥२॥

वृष॑णं त्वा व॒यं वृ॑षन् वृष॑णः॒ समि॑धीमहि । अग्ने॒ दीद्य॑तं बृ॒हत् ॥३॥

भाषार्थः—(वृषन्) हे बलवान् (अग्ने) अग्नि! [प्रकाशस्वरूप परमेश्वर] (वृषणः) बलवान् होते हुए (वयम्) हम (वृषणम्) बलवान् (बृहत्) बहुत (दीद्यतम्) प्रकाशमान (त्वा) तुझ को (सम्) भले प्रकार (इधीमहि) प्रकाशित करें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा के अनेक उपकारों से बलवान् होकर उसके उत्तम गुणों को खोजते रहें ॥३॥

सूक्तम् ॥१०३॥

१—३॥ अग्निर्देवता ॥ १ विराडार्षी बृहती, २ निचृद् बृहती, ३ विराडार्षी पङ्क्तिः ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

अ॒ग्निमी॑ळि॒ष्वाव॑से॒ गाथा॑भिः शी॒रशो॑चिषम् ।
अ॒ग्निं रा॒ये पु॑रुमीळ्ह श्रु॒तं नरो॒ऽग्निं सु॑दी॒तये॑ छ॒र्दिः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पुरुमीह्ळ) हे बहुत ज्ञान से सींचे हुये मनुष्य ! (नरः) नर [नेता] होकर तू (गाथाभिः) गाने योग्य क्रियाओं के साथ (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (शीरशोचिषम्) बड़े प्रकाश वाले (अग्निम्) अग्नि [प्रकाश स्वरूप परमात्मा] को, (राये) धन के लिये (श्रुतम्) विख्यात (अग्निम्) अग्नि [प्रकाश स्वरूप परमात्मा] को और (सुदीतये) सुन्दर प्रकाश के लिये (छर्दिः) घर सदृश (अग्निम्) अग्नि [प्रकाशस्वरूप परमात्मा] को (ईलिष्व) खोज ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की भक्ति से अपनी रक्षा के लिये धन और विद्या को बढ़ावें ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में हैं—८ । ७१ [सायणभाष्य ६०] । १४, सामवेद—पू० १ । ५ । ६॥

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥२॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि ! [प्रकाशस्वरूप परमेश्वर] (अग्निभिः) ज्ञान प्रकाशों के साथ (आ याहि) तू प्राप्त हो, (होतारम्) दानी (त्वा) तुझ को (वृणीमहे) हम स्वीकर करते हैं । (प्रयता) नियम युक्त (हविष्मती) भक्ति वाली प्रजा (बर्हिः) वृद्धि (आसदे) पाने के लिये (यजिष्ठम्) अत्यन्त संगोग वियोग करने वाले (त्वा) तुझ को (आ) सब प्रकार से (अनक्तु) प्राप्त होवे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की आज्ञा में रहकर सद् वृद्धि करें ॥२॥

मन्त्र २, ३ ऋग्वेद में हैं—८ । ६० [सायण भाष्य ४९] । १, २, सामवेद – उ० ७ । २ । ७ ॥

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥३॥

भाषार्थः—(सहसः सूनो) हे बल के पहुंचाने वाले ! (अङ्गिरः) हे ज्ञानी परमेश्वर ! (स्रुचः) चलने वाली प्रजायें (अध्वरे) विना हिंसावाले व्यवहार में (त्वा) तुझ को (हि) ही (अच्छ) अच्छे प्रकार (चरन्ति) प्राप्त होती हैं । (ऊर्जः) बल के (नपातम्) न गिराने वाले [रक्षक], (यज्ञेषु) यज्ञों [संयोग वियोग व्यवहारों] में (पूर्व्यम्) पुराने (अग्निम्) अग्नि [प्रकाशस्वरूप परमेश्वर] से (घृतकेशम्) जल और प्रकाश को (ईमहे) हम मांगते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर के बनाये पदार्थों से उपकार लेकर उन्नति करें ॥३॥

सूक्तम् ॥१०४॥

१—४ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृद् बृहती, २ निचृत् पङ्क्तिः, ३ निचृदार्षी बृहती, ४ भुरिगार्षी बृहती ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥१॥

भाषार्थः—(पुरुवसो) हे बहुत धन वाले ! [परमात्मन्] (मम) मेरी (याः) जो (गिरः) वाणियाँ हैं, (इमाः) वे (त्वा) तुझ को (उ) निश्चय करके (वर्धन्तु) बढ़ावें [विख्यात करें]। (पावकवर्णाः) अग्नि के समान तेजस्वी, (शुचयः) पवित्र (विपश्चितः) विद्वान् लोगों ने (स्तोमैः) स्तोत्रों से [तेरी] (अभि) सब ओर से (अनूषत) प्रशंसा की है ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग पूर्वज विद्वानों के समान परमेश्वर के उपकारों की स्तुति करके अपनी उन्नति करें ॥१॥

मन्त्र, १, २ ऋग्वेद में हैं—८ । ३ । ३, ४, यजुर्वेद—३३ । ८१, ८३, सामवेद—उ० ७ । ३ । १८, म० १ साम०—पू० ३ । ६ । ८ ॥

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥२॥

भाषार्थः—(समुद्रः इव) आकाश के समान वर्तमान (अयम्) इस [परमेश्वर] ने (ऋषिभिः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] द्वारा (सहस्कृतः) पराक्रम करने वालों को (सहस्रम्) सहस्र प्रकार से (पप्रथे) फैलाया है। (अस्य) इस [परमात्मा] की (सः) वह (महिमा) महिमा (सत्यः) सत्य है, (विप्रराज्ये) विद्वानों के राज्य के बीच (यज्ञेषु) यज्ञों [श्रेष्ठ व्यवहारों] में (शवः) उस बल की (गृणे) मैं बड़ाई करता हूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमात्मा की सदा स्तुति करते रहें क्योंकि वह विद्वानों को प्राप्त होकर राज्य करने वाले पुरुष का बल बढ़ाता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ नो॒ विश्वा॑सु॒ हव्य॒ इन्द्रः॑ स॒मत्सु॑ भूषतु ।

उप॒ ब्रह्मा॑णि॒ सव॑नानि वृत्र॒हा प॑रम॒ज्या ऋची॑षमः ॥३॥

भाषार्थः—(विश्वासु) सब (समत्सु) संग्रामों में (हव्यः) पुकारने योग्य, (वृत्रहा) अन्धकार मिटाने वाला, (परमज्याः) बड़े शत्रुओं का मारने वाला, (ऋचीषमः) स्तुति के समान गुण वाला (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवाला परमात्मा] (नः) हमारे (ब्रह्माणि) वेद ज्ञानों और (सवनानि) ऐश्वर्य की वस्तुओं को (आ) सब ओर से (उप) भले प्रकार (भूषतु) शोभायमान करे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमपिता परमेश्वर का आश्रय लेकर शत्रुओं का नाश कर के ऐश्वर्य बढ़ावें ॥३॥

मन्त्र ३, ४ ऋग्वेद में हैं—८ । ९० [सायणभाष्य ७९] । १, २, सामवेद—उ० ७ । १ । २; मन्त्र १ साम० पू० ३ । ८ । ७ ॥

त्वं दा॒ता प्र॑थ॒मो राध॑सा॒मस्य॑सि स॒त्य ई॑शान॒कृत् ।

तु॒वि॒द्यु॒म्नस्य॒ युज्या वृ॑णीमहे पु॒त्रस्य॒ शव॑सो म॒हः ॥४॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (राधसाम्) धनों का (प्रथमः) सब से पहिला (दाता) दाता (असि) है, और (सत्यः) सच्चा (ईशानकृत्) ऐश्वर्यवान् बनाने वाला (असि) है। (तुविद्युम्नस्य) बड़े यशस्वी पुरुष के (पुत्रस्य) पुत्र के (महः) बड़े (शवसः) बल के (युज्या) योग्य कर्मों को (आ) सब प्रकार (वृणीमहे) हम अङ्गीकार करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम घरानों में उत्पन्न होकर माता पिता आदि से सुरक्षा पाकर पराक्रम करते हैं, जगदीश्वर उन का ऐश्वर्य बढ़ाता है ॥४॥

सूक्तम् ॥१०५॥

१—५ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ४ भुरिगार्ष्यनुष्टुप्, २ पङ्क्तिः, ३ निचृत् पथ्या बृहती, ५ निचृदार्षी पङ्क्तिः ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

त्वमि॑न्द्र॒ प्रतू॑र्तिष्व॒भि विश्वा॑ असि॒ स्पृधः॑ ।

अ॒श॒स्ति॒हा ज॑नि॒ता वि॑श्व॒तूर॑सि॒ त्वं तू॑र्य तरुष्य॒तः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] (त्वम्) तू (प्रतूर्तिषु) मारधाड़ वाले संग्रामों में (सर्वाः) सब (स्पृधः) ललकारती हुई शत्रु सेनाओं को (अभि असि) हरा देता है। (त्वम्) तू (अशस्तिहा) अपकीर्ति मिटाने वाला, (जनिता) सुख उत्पन्न करने वाला, (विश्वतूः) सब शत्रुओं का मारने वाला (असि) है, (तरुष्यतः) मारने वाले वैरियों को (तूर्य) मार ॥१॥

भावार्थः—युद्धपंडित राजा विघ्ननाशक परमात्मा का आश्रय लेकर सब शत्रुओं का नाश करके प्रजापालन करे ॥१॥

मन्त्र १—३ ऋग्वेद में हैं—८। ९९ [सायण भाष्य ८८]। ५—७, मन्त्र १, २ यजुर्वेद—३३। ६६, ६७, सामवेद—उ० ८।१।८, म० १ साम० पू० ४।२।९॥

अनु॑ ते॒ शुष्मं॑ तु॒रय॑न्तमीयतुः क्षो॒णी शिशुं॒ न मा॒तरा॑ ।
विश्वा॑स्ते॒ स्पृधः॑ श्नथयन्त म॒न्यवे॑ वृ॒त्रं यदि॑न्द्र॒ तूर्व॑सि ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] (क्षोणी) दोनों आकाश और भूमि लोक (ते) तेरे (तुरयन्तम्) वेग करते हुए (शुष्मम् अनु) शत्रुओं को सुखाने बल के पीछे (ईयतुः) चलते हैं, (न) जैसे (मातरा) माता पिता दोनों (शिशुम्) बालक के [पीछे प्रीति से चलते हैं]। (ते) तेरे (मन्यवे, क्रोध से (विश्वाः) सब (स्पृधः) ललकारती हुई शत्रु सेनायें (श्नथयन्त) मारी गयी हैं, (यत्) जब कि तू (वृत्रम्) शत्रु को (तूर्वसि) मारता है ॥२॥

भावार्थः जैसे माता पिता आपा छोड़ कर बच्चे से प्रीति करते हैं, वैसे ही सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता परमात्मा में परम भक्ति करके मनुष्य शत्रुओं को मारें ॥२॥

इ॒त ऊ॒ती वो॑ अ॒जरं॑ प्रहे॒तार॒मप्र॑हितम् ।
आ॒शुं जेता॑रं॒ हेता॑रं र॒थीत॑म॒मतू॑र्तं तुग्र्या॒वृध॑म् ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारी (ऊती) रक्षा के लिये (अजरम्) जरा रहित [सदा बलवान्] (प्रहेतारम्) सब के चलाने वाले, (अप्रहितम्) किसी से न चलाये गये, (आशुम्) फुरतीले, (जेतारम्) जय करने वाले (हेतारम्) बढ़ाने वाले, (रथितमम्) रमणीय पदार्थों के सब से बड़े स्वामी, (अतूर्तम्) न सताये गये (तुग्र्यवृधम्) बस्ती के हितकारी के बढ़ाने वाले [परमेश्वर] को (इतः) वे दोनों [आकाश और भूमि—म० २] प्राप्त होते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस परमात्मा ने पृथिवी और आकाश के पदार्थ मनुष्य के हित के लिये रचे हैं, उस जगदीश्वर की सदा भक्ति करके बलवान् होकर वृद्धि करें ॥३॥

मन्त्र ३ सामवेद में भी है—पू० ३ । १० । १ ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥४॥

भावार्थः—(यः) जो [परमेश्वर] (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (राजा) राजा (रथेभिः) रथों [के समान रमणीय लोकों] के साथ (अध्रिगुः) बेरोक (याता) चलने वाला, और (यः) जो (विश्वासाम्) सब (पृतनानाम्) शत्रु सेनाओं का (तरुता) हराने वाला, (ज्येष्ठः) अति श्रेष्ठ, (वृत्रहा) अन्धकार नाशक है, [उस की] (गृणे) मैं स्तुति करता हूं ॥४॥

भावार्थः—जो परमात्मा सब मनुष्य आदि प्राणियों और सूर्य आदि लोकों का स्वामी है, हम उसके गुणों को ग्रहण कर के सब कष्टों से बचें ॥४॥

मन्त्र ४ । ५ आ चुके हैं—अथ० २० । ९२ । १६, १७ ॥

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥५॥

भावार्थः—(पुरुहन्मन्) हे बहुत ज्ञानी ऋषि ! (तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] का (शुम्भ) भाषण कर, (यस्य) जिस के (द्विता) दोनों धर्म [अनुग्रह और निग्रह गुण] (विधर्तरि) बुद्धिमान् जन पर (अवसे) रक्षा के लिये और [जिसका] (दर्शतः) दर्शनीय (महः) महान् (वज्रः) वज्र [दण्ड सामर्थ्य] (हस्ताय) हाथ [अर्थात् हमारे बाहु बल] के लिये (प्रति) प्रत्यक्ष (धायि) धारण किया गया है, (न) जैसे (सूर्यः) सूर्य (दिवे) प्रकाश के लिये है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा अति प्रत्यक्ष रूप से दुष्टों को दंड देता है और धर्मात्माओं पर अनुग्रह करता है, ऐसा निश्चय करके विद्वान् लोग सदा ईश्वर की आज्ञा में रहकर सुखी होवें ॥५॥

सूक्तम् ॥१०६॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृदुष्णिक्, २, ३ विराडार्ष्युष्णिक् ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (तव) तेरे (त्यत्) उस [प्रसिद्ध] (बृहत्) बड़े (इन्द्रियम्) इन्द्रपन [ऐश्वर्य], (तव) तेरे (शुष्मम्) बल (उत) और (क्रतुम्) बुद्धि और (वरेण्यम्) उत्तम (वज्रम्) वज्र [दण्ड सामर्थ्य] को (धिषणा) [तेरे] वाणी (शिशाति) पैना करती है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के गुणों को वेद द्वारा निश्चय करके अपना सामर्थ्य बढ़ावे ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८।१५।७—९, कुछ भेद से सामवेद—उ० ८।१।तृच ११ ॥

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (तव) तेरे (पौंस्यम्) पुरुषार्थ और (श्रवः) यश को (द्यौः) आकाश और (पृथिवी) पृथिवी (वर्धति) बढ़ाती है। (त्वाम्) तुझ को (आपः) जलों ने (च) और (पर्वतासः) पहाड़ों ने (हिन्विरे) प्रसन्न किया है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर को उसके बड़े बड़े कर्मों से जानकर पुरुषार्थ करें ॥२॥

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥३॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (बृहन्) बड़ा (क्षयः) ऐश्वर्यवान् (विष्णुः) व्यापक सूर्य, (मित्रः) प्रेरक वायु और (वरुणः) स्वीकार करने योग्य जल (त्वाम्) तेरी (गृणाति) बड़ाई करता है। (त्वाम् अनु) तेरे पीछे (मारुतम्) शूर पुरुषों का (शर्धः) बल (मदति) तृप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के बल से सब सूर्य आदि में बल है, उस सर्वशक्तिमान् की उपासना करके सब मनुष्य आत्मबल बढ़ावें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥१०७॥

१—१५ ॥ १—१२ इन्द्रः, १२-१५ सूर्यो देवता ॥ १—३ गायत्री, ४ निचृदार्षी त्रिष्टुप्, ५ विराट् त्रिष्टुप्, ६, १० विराडार्षी त्रिष्टुप्, ७-९, ११, १४, १५ निचृत् त्रिष्टुप्, १२ आर्षी त्रिष्टुप्, १३ पङ्क्तिः ॥

१—१२ परमेश्वरगुणोपदेशः १—१२ परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

सम॑स्य म॒न्यवे॒ विशो॒ विश्वा॑ नमन्त कृ॒ष्टयः॑ । स॒मु॒द्राये॑व॒ सिन्ध॑वः ॥१॥

भाषार्थः—(विश्वाः) सब (विशः) प्रजायें और (कृष्टयः) मनुष्य (अस्य) इस [परमेश्वर] के (मन्यवे) तेज वा क्रोध के आगे (सम्) ठीक ठीक (नमन्त) नमे हैं, (समुद्राय इव) जैसे समुद्र के लिये (सिन्धवः) नदियां [नमती हैं] ॥१॥

भावार्थः—जैसे नदियां समुद्र की ओर झुकती हैं, वैसे ही सब सृष्टि के पदार्थ और सब मनुष्य परमात्मा की आज्ञा को अवश्य मानते हैं ॥१॥

मन्त्र १—३ ऋग्वेद में हैं–८। ६। ४—६, सामवेद—उ० ८। १। तृच १३, मन्त्र १ साम० पू० २। ५। ३॥

ओज॒स्तद॑स्य तित्विष उ॒भे यत् स॒मव॑र्तयत् । इन्द्र॒श्चर्मे॑व॒ रोद॑सी ॥२॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [परमेश्वर] का (ओजः) बल (तत्) तब (तित्विषे) प्रकाशित हुआ, (यत्) जब (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] ने (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और भूमि को (चर्म इव) चमड़े के समान (समवर्तयत्) यथाविधि वर्तमान किया ॥२॥

भावार्थः—जैसे कोई चमड़े को कमाकर ठीक करता है, वैसे ही परमात्मा परमाणुओं के संयोग वियोग से सृष्टि बनाता है, तब उस की महिमा प्रकट होती है ॥२॥

वि चि॑द् वृ॒त्रस्य॒ दोध॑तो॒ वज्रे॑ण श॒तप॑र्वणा ।
शिरो॑ बिभेद वृ॒ष्णिना॑ ॥३॥

भाषार्थः—(दोधतः) क्रोध करते हुए (वृत्रस्य) रोकने वाले शत्रु के (शिरः) शिर को (शतपर्वणा) सैकड़ों जोड़ों वाले, (वृष्णिना) दृढ़ (वज्रेण) वज्र से (चित्) निश्चय करके (वि) अनेक प्रकार (बिभेद) उस [परमेश्वर] ने तोड़ा है ॥३॥

भावार्थः—जैसे शूर पुरुष भारी भारी शस्त्रों से शत्रुओं को मार गिराता है, वैसे ही परमात्मा पापियों को अनेक प्रकार दण्ड देता है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥४॥

भाषार्थः—(तत्) विस्तीर्ण ब्रह्म (इत्) ही (भुवनेषु) लोकों के भीतर (ज्येष्ठम्) सब में उत्तम और सब में बड़ा (आस:) प्रकाशमान हुआ। (यतः) जिस [ब्रह्म] से (उग्रः) तेजस्वी (त्वेषनृम्णः) तेजोमय बल वा धन वाला पुरुष (जज्ञे) प्रकट हुआ। (सद्यः) शीघ्र (जज्ञानः) प्रकट होकर (शत्रून्) गिराने वाले विघ्नों को (नि रिणाति) नाश कर देता है, (यत्) जिस से (एनम् अनु) इस [परमात्मा] के पीछे पीछे (विश्वे) सब (ऊमाः) परस्पर रक्षक लोग (मदन्ति) हर्षित होते हैं ॥४॥

भावार्थः—आदि कारण परमात्मा की उपासना से मनुष्य वीर होकर शत्रुओं को मारता है, जिस के कारण सब लोग प्रसन्न होते हैं, उस जगदीश्वर की उपासना सब लोग किया करें ॥४॥

मन्त्र ४–१२ आ चुके हैं—अथ० २०। २। १—६ ॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥५॥

भाषार्थः—(शवसा) बल से (वावृधानः) बढ़ता हुआ, (भूर्योजाः) महाबली, (शत्रुः) हमारा शत्रु (दासाय) दान पात्र दास को (भियसम्) भय (दधाति) देता है। (अव्यनत्) गति शून्य स्थावर (च) और (व्यनत्) गति वाला जङ्गम जगत् (च) निश्चय करके [परमात्मा में] (सस्नि) लपेटा हुआ है, (प्रभृता) अच्छे प्रकार पुष्ट किये हुए प्राणी (मदेषु) आनन्दों में (ते) तेरी (सम् नवन्त) यथावत् स्तुति करते हैं ॥५॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर समस्त जगत् में व्यापक होकर सब को धारण करता है। उसी की महिमा को जानकर सब मनुष्य पुरुषार्थपूर्वक अपने विघ्नों को नाश करके प्रसन्न होवें ॥५॥

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः । स्वादोः
स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥६॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] (त्वे अपि) तुझ में ही (क्रतुम्) अपनी बुद्धि को (भूरि) बहुत प्रकार से [सब प्राणी] (पृञ्चन्ति) जोड़ते हैं, (एते) यह सब (ऊमाः) रक्षक प्राणी (द्विः) दो वार [स्त्री पुरुष रूप से] (त्रिः) तीन वार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[स्थान, नाम और जन्म रूप से] (भवन्ति) रहते हैं। (यद्) क्योंकि (स्वादोः) स्वादु से (स्वादीयः) अधिक स्वादु मोक्ष सुख को (स्वादुना) स्वादु [सांसारिक सुख] के साथ (सम् सृज) संयुक्त कर, (अदः) उस (मधु) मधुर [मोक्ष सुख] को (मधुना) मधुर [सांसारिक] ज्ञान के साथ (सु) भले प्रकार (अभि) सब ओर से (योधीः) तू ने पहुंचाया है ॥६॥

भावार्थः—लिङ्ग रहित आत्मा कभी स्त्री कभी पुरुष होकर अपने कर्मानुसार मनुष्य आदि शरीर, नाम और जाति भोगता है। सब प्राणी परमेश्वर की महिमा जानकर सांसारिक व्यवहार द्वारा मोक्ष सुख प्राप्त करें जैसे कि पूर्वज ऋषियों ने वेद द्वारा प्राप्त किया है ॥६॥

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः। ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥७॥

भाषार्थः—(यदि) जो (चित्) निश्चय कर के (विप्राः) पंडित जन (रणेरणे) प्रत्येक रण में (नु) शीघ्र (धना) धनों को (जयन्तम्) जीतने वाले (त्वा) तेरे (अनुमदन्ति) पीछे पीछे आनन्द पाते हैं। (शुष्मिन्) हे बलवन् परमात्मन्! (ओजीयः) अधिक बलवान् (स्थिरम्) स्थिर मोक्ष सुख (आ) सब ओर से (तनुष्व) फैला, (दुरेवासः) दुष्ट गति वाले (कशोकाः) परसुख में शोक करने वाले जन (त्वा) तुझ को (मा दभन्) न सतावें ॥७॥

भावार्थः—बुद्धिमान् मनुष्य विघ्नों को हटाकर कठिन कठिन कार्य सिद्ध कर के स्थिर सुख पाते हैं ॥७॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि। चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥८॥

भाषार्थः—(भूरि) बहुत से (युधेन्यानि) युद्धों को (प्रपश्यन्तः) देखते हुए (वयम्) हम लोग (त्वया) तेरे साथ (रणेषु) रण क्षेत्रों में [शत्रुओं को] (शाशद्महे) मार गिराते हैं। (ते) तेरे (वचोभिः) वचनों से (आयुधा) अपने शस्त्रों को (चोदयामि) मैं आगे बढ़ाता हूं और (ते) तेरे (ब्रह्मणा) ब्रह्म ज्ञान से (वयांसि) अपने जीवनों को (सम्) यथावत् (शिशामि) तीक्ष्ण करता हूं ॥८॥

भावार्थः—शूर वीर मनुष्य परमेश्वर में विश्वास करके पुरुषार्थ-पूर्वक बड़े बड़े कार्य सिद्ध करते हैं ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥९॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (अवरे) छोटे (च) और (परे) बड़े मनुष्य में (तत्) उस [घर] को (नि) निश्चय कर के (दधिषे) तू ने पोषण किया है, (यस्मिन्) जिस (दुरोणे) कष्ट से भरने योग्य घर में (अवसा) अन्न से (आविथ) तू ने रक्षा की है। [हे मनुष्यो !] (जिगत्नुम्) सर्वव्यापक (मातरम्) माता [परमेश्वर] को (आ) भली भांति (स्थापयत) [हृदय में] ठहराओ और (अतः) इसी से (भूरि) बहुत से (कर्वराणि) कर्मों को (इन्वत) सिद्ध करो ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की उपासना पूर्वक अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके अपने सब काम सिद्ध करें ॥९॥

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥१०॥

भाषार्थः—(वर्ष्मन्) हे ऐश्वर्यवान् पुरुष ! (पुरुवर्त्मानम्) बहुत मार्ग वाले (ऋभ्वाणम्) दूर दूर चमकने वाले, (इनतमम्) महा प्रभु और (आप्त्यानाम्) आप्त [यथार्थ वक्ता] पुरुषों में रहने वाले गुणों के (आप्तम्) यथार्थ वक्ता परमेश्वर की (सम्) यथावत् (स्तुष्व) स्तुति कर। (भूर्योजाः) वह महाबली (शवसा) अपने बल से (आ) सब ओर (दर्शति) देखता है, और वह (पृथिव्याः) पृथिवी का (प्रतिमानम्) प्रतिमान होकर (प्र) भली भांति (सक्षति) व्यापता है ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य जगदीश्वर परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव विचार कर अपनी उन्नति करें ॥१०॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥११॥

भाषार्थः—(बृहद्दिवः) बड़े व्यवहार वा गति वाला, (अग्रियः) अगुआ और (स्वर्षाः) स्वर्ग का सेवन करने वाला पुरुष (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (इमा) इन (ब्रह्म=ब्रह्माणि) बड़े स्तोत्रों को (शूषम्) अपना बल (कृणवत्) बनावें। (स्वराजा) वह स्वराजा [स्वतन्त्र राजा परमेश्वर] (महः) बड़े (गोत्रस्य) भूपति राजा का (क्षयति) राजा है, और वह (तुरः) शीघ्र स्वभाव, (तपस्वान्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्य वाला परमात्मा (चित्) ही (विश्वम्) सब जगत् में (अर्णवत्) व्यापता है ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य जगदीश्वर परम पिता के गुण जानकर अपना बल बढ़ावे ॥११॥

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्व१मिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥१२॥

भाषार्थः—(महान्) महान्, (बृहद्दिवः) बड़े व्यवहार वाले, (अथर्वा) निश्चल स्वभाव पुरुष ने (स्वाम्) अपनी (तन्वम्) विस्तृत स्तुति (इन्द्रम्) परमेश्वर के लिये (एव) ही (एव) इस प्रकार से (अवोचत्) कही है। (मातरिभ्वरी) आकाश में वर्तमान (स्वसारौ) अच्छे प्रकार ग्रहण करने वाले वा गति वाले [वा दो बहिनों के समान सहायकारी] दिन और रात (च) और (अरिप्रे) निर्दोष (एने) यह दोनों [सूर्य और पृथिवी] (शवसा) अपने सामर्थ्य से [उसी को] (हिन्वन्ति) प्रसन्न करती (च) और (वर्धयन्ति) सराहती हैं ॥१२॥

भावार्थः—हम से पहिले ऋषियों ने भी उसी परमात्मा की स्तुति की है, और दिन रात आदि काल और सूर्य पृथिवी आदि सब लोक उसी के आज्ञाकारी हैं ॥१२॥

मन्त्र १३ - १५ ॥ आध्यात्मोदेशः—मन्त्र १३ – १५ परमात्मा और जीवात्मा के विषय का उपदेश ॥

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥१३॥

भाषार्थः—(चित्रम्, अद्भुत (अनीकम्) जीवन दाता [ब्रह्म], (देवानाम्) गतिमान् लोकों के (केतुः) जताने वाले, (ज्योतिष्मान्) तेजोमय (सूर्यः) सर्वप्रेरक [परमात्मा] (प्रदिशः) सब दिशाओं में (उद्यन्) ऊंचे होते हुए (दिवाकरः) दिन को रचने वाले [सूर्य रूप], (शुक्रः) वीर्यवान् [परमेश्वर] ने (द्युम्नैः) अपने प्रकाशों से (तमांसि) अन्धकारों को (अति) लाँकरघ (विश्वा) सब (दुरितानि) कठिनाइयों को (अतारीद्) पार किया है ॥१३॥

भावार्थः—जैसे यह सूर्य अन्धकार नाश करके दिन बना कर प्रकाशमान है, वैसे ही वह परमेश्वर सूर्य आदि लोकों को रचकर धारण आकर्षण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा सब की रक्षा करता है, वैसे ही मनुष्य विद्या से प्रकाशमान होकर विघ्नों को हटावें ॥१३॥

मन्त्र १३, १४ आचुके हैं—प्र० । १३ । २ । ३४, ३५ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१४॥

भाषार्थः—(**देवानाम्**) गतिमान् लोकों का (**चित्रम्**) अद्भुत (**अनीकम्**) जीवन दाता, (**मित्रस्य**) सूर्य [वा प्राण] का (**वरुणस्य**) चन्द्रमा [अथवा जल वा अपान] का और (**अग्नेः**) बिजुली का (**चक्षुः**) दिखाने वाला [ब्रह्म] (**उत्**) सर्वोपरि (**अगात्**) व्यापा है। (**सूर्यः**) सर्वप्रेरक, (**जगतः**) जङ्गम (**च**) और (**तस्थुषः**) स्थावर के (**आत्मा**) आत्मा [निरन्तर व्यापक परमात्मा] ने (**द्यावापृथिवी**) सूर्य भूमि [प्रकाशमान अप्रकाशमान लोकों] और (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को (**आ**) सब प्रकार से (**अप्रात्**) पूर्ण किया है ॥१४॥

भावार्थः—जो अद्भुत स्वरूप परमात्मा सूर्य, चन्द्र, वायु आदि द्वारा सब प्राणियों को सुख देता है, मनुष्य उस को उपासना द्वारा जानकर आत्मोन्नति करें ॥१४॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥१५॥

भाषार्थः—(**सूर्यः**) सूर्य मण्डल (**देवीम्**) देवी [दिव्यगुण वाली] (**रोचमानाम्**) रुचि कराने वाली (**उषसम्**) उषा [प्रभात वेला] के (**पश्चात्**) पीछे पीछे (**अभि**) सब ओर से (**एति**) प्राप्त होता है, (**न**) जैसे (**मर्यः**) मनुष्य (**योषाम्**, अपनी स्त्री को [प्रीति से प्राप्त होता है], (**यत्र**) जहां [संसार के बीच] (**देवयन्तः**) व्यवहार चाहने वाले (**नरः**) नर [नेता लोग] (**भद्रम् प्रति**) आनन्द स्वरूप परमात्मा के सामने (**भद्राय**) आनन्द के लिये (**युगानि**) युगों [वर्षों] को (**वितन्वते**) फैलाते हैं ॥१५॥

भावार्थः—जैसे ईश्वरकृत नियमों के अनुसार सूर्य और उषा के सम्बन्ध से प्रकाश, और पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध से सन्तान होता है, वैसे ही बुद्धिमान् लोग सुखस्वरूप परमात्मा की आज्ञा में रहकर नियम पूर्वक सुख भोगते हुए अपना जीवनकाल बढ़ावें ॥१५॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । ११५ । २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥१०८॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता १ विराडुष्णिक्, २, ३ विराडार्ष्युष्णिक् ॥

परमेश्वरप्रार्थनोपदेशः—परमेश्वर की प्रार्थना का उपदेश ॥

त्वं न॑ इन्द्रा भ॑र॒ ओजो॑ नृ॒म्णं श॑तक्रतो विचर्षणे ।

आ वी॒रं पृ॑तना॒षह॑म् ॥१॥

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्म करने वाले ! (विचर्षणे) हे विविध प्रकार देखने वाले ! (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] (त्वम्) तू (नः) हमारे लिये (ओजः) बल, (नृम्णम्) धन (आ) और (पृतनासहम्) संग्राम जीतने वाले (वीरम्) वीर को (आ) भले प्रकार (भर) पुष्ट कर ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर से प्रार्थना करके प्रयत्नपूर्वक बलवान्, धनवान् और वीर पुरुषों वाले होवें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८। ९८ [सायण भाष्य ८७]। १०—१२, सामवेद—उ० ४। २। तृच १३, मन्त्र १ साम० पू० २। २। ७॥

त्वं हि नः॑ पि॒ता व॑सो॒ त्वं मा॒ता श॑त॒क्रतो बभू॒वि॑थ ।

अधा॑ ते सु॒म्नमी॑महे ॥२॥

भाषार्थः—(वसो) हे वसाने वाले ! (शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वाले ! [परमेश्वर] (त्वम्) तू (हि) ही (नः) हमारा (पिता) पिता और (त्वम्) तू ही (माता) माता (बभूविथ) हुआ है, (अध) इसलिये (ते) तेरे (सुम्नम्) सुख को (ईमहे) हम मांगते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर सदा से सब सृष्टि का पालन पोषण करता है, हम उसी से प्रार्थना करके पुरुषार्थ के साथ सुखी होवें ॥२॥

त्वां शु॑ष्मिन् पुरुहूत वा॒जय॑न्त॒मुप॑ ब्रुवे शतक्रतो ।

स नो॑ रास्व सु॒वीर्य॑म् ॥३॥

भाषार्थः—(शुष्मिन्) हे महाबली ! (पुरुहूत) हे बहुत प्रकार बुलाये गये ! (शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वाले ! [परमेश्वर] (वाजयन्तम्) बलवान् बनाने वाले (त्वाम्) तुझ को (उप) आदर से (ब्रुवे) मैं बुलाता हूं, (सः) सो तू (नः) हमें (सुवीर्यम्) बड़ा वीरपन (रास्व) दे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य महाबली परमेश्वर से प्रार्थना करके अनेक उपकारी कर्म करते हुए अपना वीरत्व बढ़ावें ॥३॥

सूक्तम् ॥१०९॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ पथ्या पङ्क्तिः ॥

सभापतिसभ्यजनलक्षणोपदेशः—सभापति और सभासदों के लक्षणों का उपदेश ॥

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१॥

भाषार्थः—(इत्था) इस प्रकार (स्वादोः) स्वादु (विषुवतः) बहुत फैलाव वाले (मध्वः) ज्ञान का (गौर्यः) वे उद्योग करने वाली प्रजायें (पिबन्ति) पान करती हैं, (याः) जो [प्रजायें] (वृष्णा) बलवान् (इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले सभापति] के साथ (सयावरीः) मिलकर चलने वाली, (वस्वीः) वसने वाली [प्रजायें] (स्वराज्यम् अनु) स्वराज्य [अपने राज्य] के पीछे (शोभसे) शोभा पाने के लिये (मदन्ति) प्रसन्न होती हैं ॥१॥

भावार्थः—जिस राज्य में सभापति और सभासद् लोग आपस में मिलकर उत्तम ज्ञान के साथ प्रजा के उपकार का प्रयत्न करते हैं, वहां आनन्द बढ़ता है ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में हैं—१।८४।१०-१२, सामवेद—उ० ३।२। तृच १५, म० १ साम—पू० ५।३।१॥

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः । प्रिया
इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥२॥

भाषार्थः—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले सभापति] की (पृशनयुवः) स्पर्श चाहती हुई और (पृश्नयः) प्रसन्न करती हुई (ताः) वे [प्रजायें] (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] को (श्रीणन्ति) परिपक्व करती हैं। (प्रियाः) प्रीति करती हुई, (धेनवः) गौओं के समान तृप्त करने वाली (वस्वीः) वसने वाली [प्रजायें] (स्वराज्यम् अनु) स्वराज्य [अपने राज्य] के पीछे (वज्रम्) वज्र और (सायकम्) बाण को (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं [छोड़ती हैं] ॥२॥

भावार्थः—जैसे गौयें अपने रक्षक पुरुष से अन्न घास आदि पाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस को दूध से तृप्त करती हैं, वैसे ही प्रजागण वीर सभापति राजा से सुरक्षित रहकर स्वराज्य पाकर सहाय करें ॥२॥

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३॥

भाषार्थः—(प्रचेतसः) उत्तम ज्ञान वाली (ताः) वे [प्रजायें] (नमसा) आदर के साथ (अस्य) उस [सभापति] के (सहः) बल के (सपर्यन्ति) सेवन करती हैं। (वस्वीः) वसने वाली [प्रजायें] (स्वराज्यम् अनु) स्वराज्य [अपने राज्य] के पीछे (पूर्वचित्तये) पूर्वजों का ज्ञान पाने के लिये (अस्य) इस [सभापति] के (पुरूणि) बहुत से (व्रतानि) नियमों को (सश्चिरे) प्राप्त होती हैं ॥३॥

भावार्थः विद्वान् लोग स्वराज्य के साथ साथ राजधर्म को मानकर प्रजा को शान्त रक्खें ॥३॥

सूक्तम् ॥११०॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

विद्वत्कर्तव्योपदेशः—विद्वानों के कर्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१॥

भाषार्थः—(मद्वने) आनन्द कारी (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] के लिये (नः) हमारी (गिरः) वाणियां (सुतम्) निचोड़े हुए तत्त्व रस का (परि) सब प्रकार (स्तोभन्तु) आदर करें और (कारवः) काम करने वाले लोग (अर्कम्) उस पूजनीय का (अर्चन्तु) आदर करें ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के उत्तम सिद्धान्तों को माने, लोग सदा उस का आदर करें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८। ९२ [सायण भाष्य ८१]। १९—२१, सामवेद—उ० १।२ तृच ४, म० १ साम०—पू० २।७।४॥

यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।
इन्द्रं सुते हवामहे ॥२॥

भाषार्थः—(यस्मिन्) जिस [पुरुष] में (सप्त) सात (संसदः) मिलकर बैठने वाले [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, वाक्, मन और बुद्धि] (विश्वाः) सब (श्रियः) सम्पत्तियों को (अधि) अधिकार पूर्वक (रणन्ति) पाते हैं, (इन्द्रम्) उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र [महाप्रतापी मनुष्य] को (सुते) सिद्ध किये तत्त्व रस में (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य इन्द्रियों को वश में करके सब सम्पत्तियां प्राप्त करे, वह सब का माननीय होवे ॥२॥

यजुर्वेद ३४। ५५ में आया है—(सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे] सात ऋषि [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, वाक्, मन और बुद्धि] शरीर में रक्खे हुए हैं ॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत। तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥३॥

भाषार्थः—(देवासः) विद्वानों ने (त्रिकद्रुकेषु) तीन [शारीरिक, आत्मिक, और सामाजिक उन्नतियों के] विधानों में (चेतनम्) चेताने वाले (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा, संगति करण और दान] को (अत्नत) फैलाया है। (तम् इत्) उस ही [यज्ञ] को (नः) हमारी (गिरः) विद्यायें (वर्धन्तु) बढ़ावें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वान् पूर्वज महात्माओं के समान विद्या प्राप्त करके शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करें ॥३॥

सूक्तम् ॥१११॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृदुष्णिक्, २, ३ उष्णिक् ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥१॥
यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे।
अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥२॥
यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] (यत्) जब (घ) निश्चय करके (यत् वा) अथवा (आप्त्ये) आप्तों [यथार्थ वक्ताओं] के हितकारी, (त्रिते) तीनों लोकों में फैले हुए (विष्णवि) विष्णु [व्यापक परमात्मा] में, (यत् वा) अथवा (मरुत्सु) शूर विद्वानों में (इन्दुभिः) ऐश्वर्य व्यवहारों के साथ (सोमम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोम [तत्त्वरस] को (सम्) ठीक ठीक (मन्दसे) तू प्राप्त होता है ॥१॥ (शक्र) हे शक्तिमान्! [मनुष्य] (यत् वा) अथवा (परावति) बहुत दूर वाले (समुद्रे) समुद्र [जलनिधि वा आकाश] में (अधि) अधिकार पूर्वक (इन्दुभिः) ऐश्वर्य व्यवहारों के साथ [तत्त्व रस को] (सम्) ठीक ठीक (मन्दसे) तू हर्ष युक्त करता है, (सत्पते) हे सत्पुरुषों के स्वामी! (यत् वा) जब कि तू (सुन्वतः) उस तत्त्व रस निचोड़ने वाले (यजमानस्य) यजमान का (वृधः) बढ़ाने वाला (असि) है, (यस्य) जिस [यजमान] के (उक्थे) वचन में (वा) निश्चय करके (इन्दुभिः) ऐश्वर्य व्यवहारों के साथ (सम्) ठीक ठीक (रण्यसि) तू उपदेश करता है, [तब] (अस्माकम् इत्) हमारे भी (सुते) सिद्ध किये हुए तत्त्व रस में (रण) उपदेश कर ॥२, ३॥

भावार्थः—मनुष्य तत्त्वरस की प्राप्ति से परमात्मा की आज्ञा पालता हुआ, तथा समष्टि रूप से सब मनुष्यों का और व्यष्टि रूप से प्रत्येक मनुष्य का ऐश्वर्य बढ़ाता हुआ उन्नति करके सदा धर्म का उपदेश करे ॥१—३॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८। १२। १६—१८, म० १ सामवेद—पू० ७। १०। ४॥

सूक्तम् ॥११२॥

१—३॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृद् गायत्री, २, ३ गायत्री ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः— मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

यद॒द्य कच्च॑ वृत्रहन्नु॒दगा॑ अ॒भि सू॑र्य । सर्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ वशे॑ ॥१॥

भावार्थः—(वृत्रहन्) हे शत्रु नाशक! (सूर्य) हे सूर्य! [सूर्य के समान सर्वप्रेरक] (इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (अद्य) आज (यत् कत् च अभि) जिस किसी वस्तु पर (उदगाः) तू उदय हुआ है, (तत्) वह (सर्वम्) सब (ते) तेरे (वशे) वश में हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या और पराक्रम से संसार में सूर्य के समान प्रकाशमान होकर सब पदार्थों का तत्त्व जानकर उनको उपयोगी बनावे ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८। ९३ [सायण भाष्य ८२]। ४—६, म० १ यजुर्वेद—३३। ३५, सामवेद—पू० २। ४। २॥

यद्वा॑ प्रवृद्ध सत्पते॒ न म॑रा॒ इति॒ मन्य॑से । उ॒तो तत् स॒त्यमित् तव॑ ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(प्रवृद्ध) हे बढ़े हुए (सत्पते) सत्पुरुषों के रक्षक [पुरुष] (वा) और (यत्) जो (इति) ऐसा (मन्यसे) तू मानता है—(न मरै) मैं न मरूं, (उतो) सो (तत्) वह (तव) तेरा [वचन] (सत्यम्) सत्य (इत्) ही [होवे] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न कर के सत्पुरुषों की रक्षा करते हुए धर्म में प्रवृत्त रहकर अपना नाम बनाये रक्खें ॥२॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥३॥

भाषार्थः—(ये) जो (सोमासः) सोम रस [तत्त्व रस] (परावति) दूर देश में और (ये) जो (अर्वावति) समीप देश में (सुन्विरे) निचोड़े गये हैं। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (तान् सर्वान्) उन सब को (गच्छसि) तू प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि पुरुषार्थ करके दूर और समीप अर्थात् सब स्थान में उत्तम विद्या प्राप्त कर के ऐश्वर्य बढ़ावे ॥३॥

यह मन्त्र सामवेद में कुछ भेद से है—उ० ४ । २ । ११ ॥

सूक्तम् ॥११३॥

१—२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृद् बृहती, २ सतः बृहती ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् । १॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (उभयम्) दो प्रकार से [शत्रुओं पर दण्ड और भक्तों पर अनुग्रह करने से] (नः) हमारे (इदम्) इस (अर्वाक्) वर्त्तमान (वचः) वचन को (च) निश्चय करके (शृणवत्) सुने, (मघवा) महाधनी और (शविष्ठः) महाबली [राजा] (सोमपीतये) सोम [तत्त्व रस] पीने के लिये (सत्राच्या) सत्य गति वाली (धिया) बुद्धि के साथ (आ गमात्) आवे ॥१॥

भावार्थः—राजा धन की पूर्णता और पराक्रम की उपयोगिता से शत्रुओं को मिटाकर और राजभक्तों को बढ़ाकर श्रेष्ठ कर्म करता रहे ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—८ । ६१ [सायण भाष्य ५०] १—२, सामवेद—उ० ५ । १ । १४, म० १ साम० पू० ३ । १० । ८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।

उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥२॥

भाषार्थः—(तम् हि) उस ही [तुझ] (स्वराजम्) स्वराजा को, (तम्) उस ही [तुझ] (वृषभम्) बलवान् को (ओजसे) पराक्रम के लिये (धिषणे) दोनों सूर्य और भूमि ने (निष्टतक्षतुः) बना दिया है। (उत) और (उपमानाम्) समीप वालों का भी (प्रथमः) पहिला [मुख्य] होकर (नि षीदसि) तू बैठता है, (हि) क्योंकि (ते) तेरा (मनः) मन (सोमकामम्) ऐश्वर्य का चाहने वाला है ॥२॥

भावार्थः—राजा सूर्य के समान तेजस्वी और पृथिवी के समान सहनशील होकर अपने पराक्रम से ऐश्वर्य बढ़ावे ॥२॥

सूक्तम् ॥११४॥

१—२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृदुष्णिक्; २ विराडार्षी पङ्क्तिः ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।

युधेदापित्वमिच्छसे ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर] (त्वम्) तू (जनुषा) जन्म से (सनात्) सदा (अभ्रातृव्यः) विना वैरी वाला, (अना) विना नेता वाला और (अनापिः) विना बन्धु वाला (असि) है, (युधा) युद्ध में (हि) ही [हमारे संग्राम होने पर ही] (आपित्वम्) बन्धुपन [हमारे लिये सहायता] (इच्छसे) तू चाहता है ॥१॥

भावार्थः—अनादि, अद्वितीय परमात्मा अपने धर्मात्मा भक्तों को सदा संकट से छुड़ाता है ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—८ । २१ । १३, १४, सामवेद, उ० ६ । २ । ४, म० १ सा० पू० ५ । २ । १ ॥

नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।

यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥२॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (रेवन्तम्) [उस] बड़े धनवान् को (सख्याय) अपनी मित्रता के लिये (नकिः) कभी नहीं (विन्दसे) तू मिलता है, (सुराश्वः) [जो] मदिरा से बढ़ा हुआ [उन्मत्त पागल मनुष्य] (ते) तेरी (पीयन्ति) हिंसा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। (यदा) जब तू (नदनुम्) गर्जन (कृणोषि) करता है और (सम्) यथावत् (ऊहसे) तू विचार करता है, (आत् इत्) तभी (पिता इव) पिता के समान (हूयसे) तू बुलाया जाता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा दुराचारी नास्तिक बड़े धनी को भी जब तुच्छ कर देता है, तब वह अभिमानी उस परमात्मा की महिमा को साक्षात् करता है ॥२॥

सूक्तम् ॥११५॥

१—३॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

अ॒हमिद्धि पि॒तुष्परि॑ मे॒धामृ॒तस्य॑ ज॒ग्रभ॑ । अ॒हं सूर्य॑ इवाजनि ॥१॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं ने (पितुः) पिता [परमेश्वर] से (इत् हि) अवश्य करके (ऋतस्य) सत्य वेद की (मेधाम्) धारणावती बुद्धि (परि) सब प्रकार (जग्रभ) पाई है, (अहम्) मैं (सूर्यः इव) सूर्य के समान (अजनि) प्रसिद्ध हुआ हूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा के दिये वेद ज्ञान को ग्रहण कर के संसार में सूर्य के समान विद्या का प्रकाश करें ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८।६।१०–१२, सामवेद उ० ७।१ तृच ५, म० १ सा० पू० २।६।८॥

अ॒हं प्र॒त्नेन॒ मन्म॑ना॒ गिरः॑ शुम्भामि कण्व॒वत् ।
येनेन्द्रः॒ शुष्म॒मिद् द॒धे ॥२॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (कण्ववत्) बुद्धिमान् के समान (प्रत्नेन) उस प्राचीन (मन्मना) ज्ञान से (गिरः) अपनी वाणियों को (शुम्भामि) शोभित करता हूं, (येन) जिस [प्राचीन ज्ञान] से (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] ने (शुष्मम्) बल (इत्) अवश्य (दधे) दिया है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वरीय ज्ञान वेद से सुशोभित होकर बलवान् होवे ॥२॥

ये त्वामि॑न्द्र॒ न तु॑ष्टु॒वुरृष॑यो॒ ये च॑ तुष्टु॒वुः । ममेद् व॑र्धस्व॒ सुष्टु॑तः ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (ये) जिन [नास्तिकों] ने (त्वाम्) तुझ को (न) नहीं (तुष्टुवुः) सराहा है, (च) और (ये)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन (ऋषयः) ऋषियों [ज्ञानी महात्माओं] ने (तुष्टुवुः) सराहा है, [इन दोनों में] (सुष्टुतः) अच्छे प्रकार स्तुति किया हुआ तू (मम) मेरी (इव) भी (वर्धस्व) वृद्धि कर ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की भक्ति करके ऐसे प्रिय आचरण करें कि नास्तिक भी आस्तिक होवें और वेदज्ञानी आस्तिक रहकर उपकार करें ॥३॥

सूक्तम् ॥११६॥

१—२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृदार्षी बृहती, २ विराडार्षी बृहती ॥

राजकर्मोपदेशः—राजा के कर्म का उपदेश ॥

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (त्वत्) तुझ से [अलग होकर] (निष्ट्याः इव) वर्णसङ्कर नीचों के समान और (अरणाः इव) न बात करने योग्य शत्रुओं के समान और (प्रजहितानि) छोड़ दिये गये (वनानि न) वृक्षों के समान (मा भूम) हम न होवें, (अद्रिवः) हे वज्रधारी । (दुरोषासः) न जल सकने वाले वा न मर सकने वाले [अर्थात् जीते हुए, प्रबल] (अमन्महि) हम समझे जावें ॥१॥

भावार्थः—राजा प्रजा की रक्षा करके उसको प्रबल और मित्र बनाये रक्खे, जैसे माली वृक्षों को सींचकर उपयोगी बनाता है ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—८ । १ । १३, १४ ॥

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत् सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥२॥

भाषार्थः—(वृत्रहन्) हे शत्रुनाशक ! [राजन्] (अनाशवः) अनफुरतीले (च) और (अनुग्रासः) अनतेज (इत्) ही (अमन्महि) हम जाने गये हैं । (शूर) हे शूर ! (ते) तेरे (महता) बड़े (राधसा) धन से (स्तोमम् अनु) बड़ाई के साथ (सकृत्) एक वार (सु) भले प्रकार (मदीमहि) हम आनन्द पावें ॥२॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि प्रजा को निरालसी, उद्यमी और बलवान् बनाने के लिये राजकोश से धन का व्यय करे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥११७॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ निचृदार्षी पङ्क्तिः, २ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, ३ विराड् गायत्री ॥

राजकर्तव्योपदेशः—राजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१॥

भाषार्थः—(हर्यश्व) हे फुरतीले घोड़ों वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] का (पिब) पान कर, (त्वा) तुझ को (मदन्तु) वह [तत्त्व रस] आनन्द देवे, (यम्) जिस को (ते) तेरे लिये (सुयतः) अच्छे सिखाये हुए (अर्वा न) घोड़े के समान, (अद्रिः) मेघ [के तुल्य उपकारी पुरुष] ने (सोतुः) सार निकालने वाले की (बाहुभ्याम्) दोनों भुजाओं से (सुषाव) सिद्ध किया है ॥१॥

भावार्थः—जैसे अच्छा सधा हुआ घोड़ा अपने स्वामी को ठिकाने पर पहुंचाता है, वैसे ही विद्वानों के सिद्ध किये हुए तत्त्व रस को ग्रहण करके राजा पराक्रमी होवे ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—७।२२।१—३। सामवेद—उ० ३।१। तृच १३, म० १ साम० पू० ५।१।८॥

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२॥

भाषार्थः—(हर्यश्व) हे फुरतीले घोड़ों वाले ! (प्रभुवसो) हे समर्थ वसाने वाले [वा बहुत धन वाले] (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (यः) जो [तत्त्व रस] (ते) तेरे लिये (युज्यः) योग्य और (चारुः) सुन्दर (मदः) आनन्दकारी (अस्ति) है, और (येन) जिस [तत्त्व रस] से (वृत्राणि) शत्रु दलों को (हंसि) तू मारता है, (सः) वह [तत्त्वरस] (त्वाम्) तुझ को (ममत्तु) आनन्द देवे ॥२॥

भावार्थः—राजा उचित उपायों से शत्रुओं को मारकर प्रजा का आनन्द बढ़ावे ॥२॥

बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मघवन्) हे महाधनी राजन् ! (याम्) जिस (प्रशस्तिम्) उत्तम [वाणी] को (ते) तुझे (वसिष्ठः) वसिष्ठ [अति श्रेष्ठ विद्वान्] (अर्चति) समर्पण करता है, (मे) मेरी (इमाम्) इस (वाचम्) वाणी को (सु) भले प्रकार (आ) सामने से (बोध) तू समझ, और (इमा) इन (ब्रह्म) वेद वचनों का (सधमादे) मिलकर हर्ष मनाने के स्थान उत्सव में (जुषस्व) सेवन कर ॥३॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि बड़े बड़े विद्वानों की श्रेष्ठ वाणी और वेद वचनों को यथावत् मानकर उन्नति करे ॥३॥

सूक्तम् ॥११८॥

१—४ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ३ निचृद् बृहती ॥ २ विराडार्षी पङ्क्तिः, ४ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ॥

परमेश्वरोपासनोपदेशः—परमेश्वर की उपासना का उपदेश ॥

शुग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१॥

भाषार्थः—(शचीपते) हे वाणियों वा कर्मों के स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (विश्वाभिः) सब (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (उ) निश्चय करके (सु) भले प्रकार (शग्धि) शक्ति दे । (शूर) हे शूर ! [परमेश्वर] (भगम् न) ऐश्वर्यवान् के समान (यशसम्) यशस्वी और (वसुविदम्) धन पहुंचाने वाले (त्वा हि अनु) तेरे ही पीछे (चरामसि) हम चलते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की भक्ति के साथ उत्तम कर्म और बुद्धि करके यशस्वी और धनी होवें ॥१॥

मन्त्र १, २ ऋग्वेद में हैं—८ । ६१ [सायण भाष्य ५०] । ५, ६, सामवेद उ० ७ । ३ । ३, म० १ सा० पू० ३ । ७ । १ ॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥२॥

भाषार्थः—(देव) हे देव ! [कामना योग्य परमेश्वर] तू (अश्वस्य) घोड़ों का (पौरः) भरपूर करने वाला (गवाम्) गौओं का (पुरुकृत्) बहुत करने वाला, (हिरण्ययः) तेजोमय और (उत्सः) जल के स्रोत [कुए के समान उपकारी] (असि) है । (हि) क्योंकि (त्वे) तेरे (दानम्) दान को (नकिः) कोई भी नहीं (परिमर्धि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षत्) नाश कर सकता, (यद्यत्) जो जो (यामि) मांगता हूं, (तत्) वह वह (आ भर) भर पूर कर ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की सृष्टि में सब पदार्थों से उपकार लेकर सदा आनन्द पावे ॥२॥

इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] को (इत्) ही (देवतातये) दिव्य गुण फैलाने के लिये, (इन्द्रम्) इन्द्र [परमात्मा] को (प्रयति) प्रयत्न साध्य (अध्वरे) विना हिंसा वाले व्यवहार में, (इन्द्रम्) इन्द्र [परमात्मा] को (समीके) युद्ध में, और (इन्द्रम्) इन्द्र [परमात्मा] को (धनस्य) धन के (सातये) मिलने के लिये, (वनिनः) शब्द करते हुए हम (हवामहे) पुकारते हैं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य अपने सब काम परमेश्वर को समर्पण करके पुरुषार्थ के साथ आनन्द पावे ॥३॥

मन्त्र ३, ४ ऋग्वेद में हैं—८ । ३ । ५, ६, सामवेद उ० ७ । ३ । ८, म० ३ सा० पू० ३ । ६ । ७ ॥

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।

इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] ने (शवः) बल की (मह्ना) महिमा से (रोदसी) आकाश और भूमि को (पप्रथत्) फैलाया है, (इन्द्रः) इन्द्र [परमात्मा] ने (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयत्) चमकाया है। (इन्द्रे) इन्द्र [परमात्मा] में (ह) ही (विश्वा) सब (भुवनानि) भुवन (येमिरे) ठहरे हैं, (इन्द्रे) इन्द्र [परमात्मा] में (सुवानासः) उत्पन्न होते हुए (इन्दवः) ऐश्वर्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने ब्रह्माण्ड के भीतर सब ऐश्वर्यवान् पदार्थ रचे हैं, मनुष्य उस की भक्ति से सब पदार्थों से उपकार लेकर उन्नति करें ॥४॥

सूक्तम् ॥११९॥

१—२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ पथ्या बृहती, २ सतः पङ्क्तिः ॥

परमेश्वरस्तुत्युपदेशः—परमेश्वर की स्तुति का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१॥

भाषार्थः—(पूर्व्यम्) पुराना (मन्म) ज्ञान (अस्तावि) स्तुति किया गया है, (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] के पाने के लिये (ब्रह्म) वेद वचन को (वोचत) तुम बोलो । (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (पूर्वीः) पहिली (बृहतीः) बढ़ती हुई वाणियों की (अनूषत) उन्होंने [ऋषियों ने] स्तुति की है और (स्तोतुः) स्तुति करने वाले विद्वान् की (मेधाः) धारणावती बुद्धियां (असृक्षत) दी है ॥१॥

भावार्थः—जिन वेदवाणियों को विचार कर ऋषि लोग सदा ज्ञानी होते हैं, उन्हीं वेदवाणियों को विचार कर मनुष्य अपना ज्ञान बढ़ावें ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८ । ५२ । ६ [सायण भाष्य, अवशिष्ट, बालखिल्य, सू० ४ म० ६], सामवेद, उ० ८ । २ । ७ ॥

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥२॥

भाषार्थः—(तुरण्यवः) फुरतीले (विप्रासः) बुद्धिमानों ने (मधुमन्तम्) मधु [वेदविद्या] वाले (घृतश्चुतम्) प्रकाश के बरसाने वाले (अर्कम्) पूजनीय परमात्मा को (आनृचुः) पूजा है । (अस्मे) हमारे लिये (रयिः) धन, और (वृष्ण्यम्) वीर के योग्य (शवः) बल (पप्रथे) फैल रहा है, (अस्मे) हमारे लिये (सुवानासः) उत्पन्न होते हुए (इन्दवः) ऐश्वर्य हैं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वपूजनीय परमात्मा की महिमा विचार कर धनवान्, बलवान् और ऐश्वर्यवान् होवें ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८ । ५१ । १० [सायण भाष्य, अवशिष्ट, बालखिल्य सू० ३ म० १०], सामवेद, उ० ७ । ६ । १६ ॥

सूक्तम् ॥१२०॥

१—२ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ भूरिगार्ष्यनुष्टुप् २ निचृत् पङ्क्तिः ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग् वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (यत्) जब (प्राक्) पूर्व में, (अपाक्) पश्चिम में, (उदक्) उत्तर में (वा) और (न्यक्) दक्षिण में (नृभिः) मनुष्यों करके (हूयसे) तू पुकारा जाता है। (सिम) हे सीमा बांधने वाले (प्रशर्ध) प्रबल! [परमात्मन्] (आनवे) मनुष्यों के (तुर्वशे) हिंसकों के वश करने वाले पुरुष में (पुरु) बहुत प्रकार (नृषूतः) तू मनुष्यों से प्रेरणा [प्रार्थना] किया गया (असि) है, (असि) है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य सब स्थानों में परमात्मा को वारंवार स्मरण करके परस्पर उपकार करें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—८।४।१, २, सामवेद, उ० ५।१।१३, म० १ सा० पू० ३।९।७॥

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (यत्) जब (रुमे) ज्ञानी पुरुष में, (रुशमे) हिंसकों के फैंकने वाले में, (श्यावके) उद्योगी में (वा) और (कृपे) समर्थ में (सचा) नित्य मेल से (मादयसे) तू हर्ष पाता है, [तभी] (इन्द्र) हे इन्द्र [परमात्मन्] (स्तोमवाहसः) बड़ाई के प्राप्त कराने वाले (कण्वासः) बुद्धिमान् लोग (त्वा) तुझ को (ब्रह्मभिः) वेद वचनों से (आ यच्छन्ति) अपनी ओर खींचते हैं, (आ गहि) तू आ ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा स्वभाव से पुरुषार्थियों पर कृपा करता है, इसी से विद्वान् लोग उसे हृदय में वर्तमान जानकर संसार में उन्नति करते हैं ॥२॥

सूक्तम् ॥१२१॥

१—२॥ इन्द्रो देवता॥ १ निचृद्बृहती, २ निचृत् पङ्क्तिः॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश॥

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

भाषार्थः—(शूर) हे शूर (इन्द्र) इन्द्र! [परमेश्वर] (अदुग्धाः) विना दुही (धेनवः इव) दुधेल गौओं के समान [झुककर] हम (अस्य) इस (जगतः) जंगम के (ईशानम्) स्वामी और (तस्थुषः) स्थावर के (ईशानम्) स्वामी, और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्वर्दृशम्) सुख के दिखाने वाले (त्वा) तुझ को (अभि) सब ओर से (नोनुमः) अत्यन्त सराहते हैं ॥१॥

भावार्थः—जैसे दूध से भरी गौयें दूध देने के लिये झुक जाती हैं, वैसे ही मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों से भरपूर होकर परमेश्वर की महिमा देखते हुए नम्र होकर संसार में उपकार करें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—७। ३२। २२, २३, यजुर्वेद २७। ३५, ३६, सामवेद उ० १। १। ११, म० १ सा० ३। ३। ५॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (त्वावान्) तेरे समान (अन्यः) दूसरा कोई (न) न तो (दिव्यः) आकाश में रहने वाला और (न) न (पार्थिवः) पृथिवी पर रहने वाला है, और (न) न (जातः) उत्पन्न हुआ है, और (न) न (जनिष्यते) उत्पन्न होगा। (अश्वयन्तः) घोड़े चाहते हुए, (गव्यन्तः) भूमि चाहते हुए, (वाजिनः) वेग वाले हम (त्वा) तुझ को (हवामहे) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर से तुल्य वा अधिक बलवान् संसार में कोई नहीं है, इस प्रकार उसकी उपासना करके मनुष्य अपना वैभव बढ़ावें ॥२॥

सूक्तम् ॥१२२॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, २ गायत्री, ३ निचृद् गायत्री ॥

सभापतिलक्षणोपदेशः—सभापति के लक्षण का उपदेश ॥

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रे) इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले सभापति] में (नः) हमारे (सधमादे) हर्ष युक्त उत्सव के बीच (रेवतीः) बहुत धन वाली और (तुविवाजाः) बहुत बल वाली [प्रजायें] (सन्तु) होवें। (याभिः) जिन [प्रजाओं] के साथ (क्षुमन्तः) बहुत अन्न वाले होकर (मदेम) हम आनन्द पावें ॥१॥

भावार्थः—सभापति प्रयत्न करे कि सब प्रजागण उद्योगी, धनी होकर सुखी होवें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तृच ऋग्वेद में हैं—१ । ३० । १३—१५, सामवेद, उ० ४ । १ । तृच १४, म० १ सा० पू० २ । ६ । ८ ॥

आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥२॥
आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥३॥

भाषार्थः—(धृष्णो) हे निर्भय ! [सभापति] (त्मना) अपने आप (त्वावान्) अपने सदृश (आप्तः) आप्त [सच्चा उपदेशक] (इयानः) ज्ञानवान् तू (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (घ) अवश्य (आ) सब प्रकार से (ऋणोः) प्राप्त हो, (न) जैसे (चक्र्योः) दोनों पहियों में (अक्षम्) धुरा [होता] है ॥ २ ॥ (यत्) क्योंकि, (शतक्रतो) हे सैकड़ों बुद्धियों वा कर्मों वाले ! [सभापति] (जरितॄणाम्) स्तुति करने वालों की (दुवः) सेवा को (कामम्) अपनी इच्छा के अनुसार (आ) सब ओर से (आ) पूरी रीति पर (ऋणोः) तू पाता है, (न) जैसे (अक्षम्) धुरा (शचीभिः) अपने कर्मों से [रथ को प्राप्त होता है] ॥३॥

भावार्थः—जैसे धुरा पहियों के बीच में रहकर सब बोझ उठाकर रथ को चलाता है, वैसे ही सभापति राज्य का सब भार अपने ऊपर रखकर प्रजा को उद्योगी बनावे और प्रजा भी उसकी सेवा करती रहे ॥२, ३॥

सूक्तम् ॥१२३॥

१—२ ॥ सूर्यो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

कृत्योपदेशः—सूर्य के काम का उपदेश ॥

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥१॥

भाषार्थः—(तत्) उस [ब्रह्म] ने (सूर्यस्य) सूर्य के (मध्या) बीच में (तत्) उस (विततम्) फैले हुए (देवत्वम्) प्रकाशपन को, (महित्वम्) बड़प्पन को और (कर्तोः) [आकर्षण आदि] कर्म को (सम् जभार) बटोर कर रख दिया है—कि (यदा इत्) जब ही वह [सूर्य] (हरितः) रस पहुंचाने वाली किरणों को (सधस्थात्) एक से स्थान से (अयुक्त) जोड़ता है, [आगे बढ़ाता है], (आत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी (रात्री) रात्री (सिमस्मै) सब के लिये (वासः) वस्त्र [अन्धकार] (तनुते) फैलाती है ॥१॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने बहुत बड़े तेजस्वी, आकर्षक सूर्य लोक को बनाया है, और जो उस सूर्य और पृथिवी की गति से प्रकाश और रात्रि करके प्राणियों को कार्य कुशलता और विश्राम देता है, सब मनुष्य उस जगदीश्वर की उपासना करें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१ । ११५ । ४, ५ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥२॥

भाषार्थः—(तत्) उस (अनन्तम्) अनन्त [ब्रह्म] के द्वारा (द्योः) प्रकाश के (उपस्थे) गोद में (मित्रस्य) प्राण वायु और (वरुणस्य) उदान वायु के (अभिचक्षे) सब ओर देखने के लिये (सूर्यः) प्रेरणा करने वाला सूर्य लोक (रूपम्) रूप को (कृणुते) बनाता है, (अस्य) इस [सूर्य] के (अन्यत्) एक (रुशत्) प्रकाश और (अन्यत्) दूसरे (कृष्णम्) आकर्षण (पाजः) बल को (हरितः) दिशायें (सम्) मिलकर (भरन्ति) धारण करती हैं ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर के नियम से सूर्य लोक अपने प्रकाश से वायु में नीचे ऊपर जाने का बल उत्पन्न करके पृथिवी आदि लोकों को सब दिशाओं में आकर्षण में रखता है ॥२॥

सूक्तम् ॥१२४॥

१—६ ॥ १—३ इन्द्रो देवता, ४—६ इन्द्रो विश्वे देवाश्च देवताः ॥

१ गायत्री, २ निचृद् गायत्री ३ पाद निचृद् गायत्री, ४ विराट् पङ्क्तिः, ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

राजप्रजाधर्मोपदेशः—राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

भाषार्थः—(चित्र !) विचित्र वा पूज्य और (सदावृधः) सदा बढ़ाने वाला [राजा] (नः) हमारी (कया) कमनीय वा क्रमणशील [आगे बढ़ती हुई], अथवा सुख देने वाली [वा कौन सी] (ऊती) रक्षा से और (कया) कमनीय आदि [वा कौन सी] (शचिष्ठया) अति उत्तम वाणी वा कर्म वा बुद्धि वाले (वृता) बर्ताव से (सखा) [हमारा] सखा (आ) ठीक ठीक (भुवत्) होवे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा और प्रजा प्रयत्न करके परस्पर प्रीति रक्खें ॥१॥

मन्त्र १—३ ऋग्वेद में हैं—४ । ३१ । १—३, यजुर्वेद २७ । ३९—४१ तथा ३६ । ४—६, सामवेद उ० १ । १ । तृच १२, म० १ सा० पू० २ । ८ । ५ ॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥२॥

भाषार्थः—(कः) कमनीय वा आगे बढ़ता हुआ, वा सुख देने वाला (सत्यः) सत्य शील वाला, (मदानाम्) आनन्दों और (अन्धसः) अन्न का (मंहिष्ठः) महादानी राजा (दृढा) दृढ़ (वसु) धनों को (चित्) अवश्य (आरुजे) खोल देने के लिये (त्वा) तुझ [प्रजा जन] को (मत्सत्) तृप्त करे ॥२॥

भावार्थः—सत्यशील राजा सुनीति से प्रजा को प्रसन्न रखकर धन धान्य को बढ़ावे ॥२॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥३॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (सखीनाम्) [अपने] सखाओं और (जरितृणाम्) स्तुति करने वाले (नः) हम लोगों का (सु) उत्तम (अविता) रक्षक होकर तू (शतम्) सौ प्रकार से (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (अभि) सामने (भवासि) होवे ॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार प्रजागण राजा के हित के लिये प्रयत्न करें, वैसे ही राजा भी उनका हित करे ॥३॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥४॥

भाषार्थः—(इमा) यह (भुवना) उत्पन्न पदार्थ, (च) और (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सभापति] (च) और (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग हम (नु) शीघ्र (कम्) सुख को (सीषधाम) सिद्ध करें । (आदित्यैः सह) अखण्ड व्रतधारी विद्वानों के साथ (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सभापति] (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ [मेल मिलाप आदि] को (च) और (तन्वम्) शरीर (च) और (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान आदि] को (च) भी (चीक्लृपाति) समर्थ करे ॥४॥

भावार्थः—सभापति राजा और सभासद् लोग संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर सब की यथावत् रक्षा करें ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र ४—६ आचुके हैं—अथ० २० । ६३ । १—३ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्ववि॒ता त॒नूना॑म् ।
ह॒त्वाय॑ दे॒वा असु॑रा॒न् यदाय॑न् दे॒वा दे॑व॒त्वम॑भि॒रक्ष॑माणाः ॥५॥

भाषार्थः—(सगणः) गणों [सुभट वीरों] के साथ वर्तमान (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला सभापति] (आदित्यैः) अखण्ड व्रतधारी (मरुद्भिः) शूर मनुष्यों के साथ (अस्माकम्) हमारे (तनूनाम्) शरीरों का (अविता) रक्षक (भूतु) होवे। (यत्) क्योंकि (असुरान्) असुरों [दुराचारियों] को (हत्वाय) मार कर (देवाः) विजय चाहने वाले, (अभिरक्षमाणाः) सब ओर से रक्षा करते हुए (देवाः) विद्वानों ने (देवत्वम्) देवतापन [उत्तम पद] (आयन्) पाया है ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य शूर वीर विद्वानों के साथ प्रजा की रक्षा कर सके, वही अपने उत्तम कर्मों के कारण उत्तम पद सभापतित्व आदि के योग्य होवे ॥५॥

प्र॒त्यञ्चं॑म॒र्कम॑नय॒ञ्छची॑भि॒रादित् स्व॒धामि॑षि॒रां पर्य॑पश्यन् ।
अ॒या वाजं॑ दे॒वहि॑तं सनेम॒ मदे॑म श॒तहि॑माः सु॒वीराः॑ ॥६॥

भाषार्थः—(प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष पाने योग्य (अर्कम्) पूजनीय व्यवहार को (शचीभिः) अपने कर्मों से (अनयन्) उन [विद्वानों] ने प्राप्त कराया है, और (आत् इत्) तभी (इषिराम्) चलाने वाली (स्वधाम्) आत्म धारण शक्ति को (परि) सब ओर (अपश्यन्) देखा है। (अया) इसी [नीति] से (शतहिमाः) सौ वर्षों जीते हुए (सुवीराः) उत्तम वीरों वाले हम (देवहितम्) विद्वानों के हितकारी (वाजम्) विज्ञान को (सनेम) देवें और (मदेम) आनन्द करें ॥६॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग अपने उत्तम कर्मों से संसार का उपकार करते रहे हैं, वैसे ही हम श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति से मनुष्यों को वीर बनाकर आनन्द देवें ॥६॥

सूक्तम् ॥१२५॥

१—७ ॥ १—३, ६, ७ इन्द्रः, ४, ५ अश्विनौ देवते ॥ १—त्रिष्टुप्, २, ३ निचृत् त्रिष्टुप्, ४ निचृदनुष्टुप्, ५—७ विराडार्षी त्रिष्टुप् ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥१॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे महाधनी ! (अभिभूते) हे विजयी ! (शूर) हे शूर ! (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (प्राचः) पूर्व वाले (अमित्रान्) वैरियों को (अप) दूर, (अपाचः) पश्चिम वाले [वैरियों] को (अप) दूर, (उदीचः) उत्तर वाले [वैरियों] को (अप) दूर, और (अधराचः) दक्षिण वाले [वैरियों] को (अप) दूर (नुदस्व) हटा, (यथा) जिस से (तव) तेरी (उरौ) चौड़ी (शर्मन्) शरण में (मदेम) हम आनन्द करें ॥१॥

भावार्थः—प्रतापी राजा सब दिशाओं के शत्रुओं का नाश करके प्रजा को सुख देवे ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १३१ । १—७ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥२॥

भाषार्थः—(अङ्ग) हे [राजन् !] (यवमन्तः) जौ आदि धान्य वाले [किसान लोग] (यथा चित्) जैसे ही (यवम्) जौ आदि धान्य को (अनुपूर्वम्) क्रम से (वियूय) अलग अलग करके (कुवित्) बहुत प्रकार (दान्ति) काटते हैं। (इहेह) इस इस [व्यवहार] में (एषाम्) उन [लोगों] के (भोजनानि) भोजनों और धनों को (कृणुहि) कर, (ये) जिन (बर्हिषः) बढ़ती करते हुए लोगों ने (नमोवृक्तिम्) सत्कार के त्याग को (न) नहीं (जग्मुः) पाया है ॥२॥

भावार्थः—जैसे चतुर किसान जौ गेहूँ आदि धान्य को काटकर उन की जाति और पकने के अनुसार एकत्र करते हैं, वैसे ही राजा आज्ञाकारी कर्मकुशल प्रजा गणों को उनकी योग्यता के अनुसार भोजन और धन आदि दान करे ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में भी है—१० । ३२, १९ । ६, तथा २३ । ३८ ॥

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥३॥

भाषार्थः—(स्थूरि) ठहरा हुआ [ढीला] काम (ऋतुथा) ऋतु के अनुसार [ठीक समय पर] (यातम्) पाया हुआ (नहि) नहीं (अस्ति) होता है, (उत) और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[इसी कारण] (संगमेषु) समाजों [वा संग्रामों] में (श्रवः) यश (न) नहीं (विविदे) मिलता है, (सख्याय) मित्रता के लिये (वृषणम्) बलवान् (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को (वाजयन्तः) वेगवान् बनाते हुए (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (गव्यन्तः) भूमि चाहते हुए और (अश्वयन्तः) घोड़े चाहते हुए हैं ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य कार्य आरम्भ करके आलस्य के मारे छोड़ देता है, वह यश नहीं पाता है, इस लिये वह विद्वानों से शिक्षा पाकर राज्य आदि कामों को पुरुषार्थ से चलावे ॥३॥

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥४॥

भाषार्थः—(शुभः पती) हे शुभ व्यवहार के पालन करने हारे (अश्विना) कर्मों में व्यापक [सभापति और सेनापति] (सचा) मिले हुए (विपिपाना) विविध प्रकार रक्षक (युवम्) तुम दोनों ने (नमुचौ) न छोड़ने योग्य [सदा रखने योग्य] (आसुरे) बुद्धिमान् पुरुष के व्यवहार में (कर्मसु) कर्मों के बीच वर्तमान, (सुरामम्) भले प्रकार आनन्द देने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले धनी पुरुष] की (आवतम्) रक्षा की है ॥४॥

भावार्थः—प्रजा और सेना के अधिकारी मिलकर व्यवहारकुशल धनी पुरुषों की रक्षा करके खेती आदि व्यापारों से प्रजा को सुख पहुंचावें ॥४॥

मन्त्र ४, ५ यजुर्वेद में भी हैं—१० । ३३, ३४ तथा २० । ७६, ७७ ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५॥

भाषार्थः—(पितरौ) माता पिता (पुत्रम् इव) जैसे पुत्र को [वैसे] (अश्विना) कामों में व्यापक [सभापति और सेनापति] (उभा) तुम दोनों ने (काव्यैः) बुद्धिमानों के किये व्यवहारों से और (दंसनाभिः) दर्शनीय क्रियाओं से [राज्य की] (आवथुः) रक्षा की है, और (मघवन्) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (यत्) क्योंकि (सुरामम्) बड़े आनन्द देने वाले [आनन्द रस] को (शचीभिः) अपनी बुद्धियों से (वि) विविध प्रकार (अपिबः) तू ने पिया है, (सरस्वती) सरस्वती [विज्ञान युक्त विद्या] ने (त्वा) तुझ को (अभिष्णक्) सेवन किया है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जब प्रजा और सेना के अधिकारी पूरी प्रीति से प्रजा की रक्षा करते हैं, और जब मुख्य सभापति राजा भी तत्त्व जानने वाला होता है, उस राज्य में विद्या की वृद्धि होती है ॥५॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥६॥

भाषार्थः—(सुत्रामा) बड़ा रक्षक, (स्ववान्) बहुत से ज्ञानी पुरुषों वाला, (विश्ववेदाः) बहुत धन वा ज्ञान वाला (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (अवोभिः) अनेक रक्षाओं से (सुमृडीकः) अत्यन्त सुख देने वाला (भवतु) होवे। वह (द्वेषः) वैरियों को (बाधताम्) हटावे, (नः) हमारे लिये (अभयम्) निर्भयता (कृणोतु) करे और हम (सुवीर्यस्य) बड़े पराक्रम के (पतयः) पालन करने वाले (स्याम) होवें ॥६॥

भावार्थः—राजा दुष्ट स्वभावों और दुष्ट लोगों को नाश करके प्रजा की रक्षा करे ॥६॥

मन्त्र ६, ७, आचुके हैं—अथ० ७ सू० ९१, ९२ ॥

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥७॥

भाषार्थः—(सः) वह (सुत्रामा) बड़ा रक्षक, (स्ववान्) बड़ा धनी, (इन्द्रः) इन्द्र [महा प्रतापी राजा] (अस्मत्) हम से (आरात् चित्) बहुत ही दूर (द्वेषः) शत्रुओं को (सनुतः) निर्णय पूर्वक (युयोतु) हटावे। (वयम्) हम लोग (तस्य) उस (यज्ञियस्य) पूजा योग्य [राजा] की (अपि) ही (सुमतौ) सुमति में और (भद्रे) कल्याण करने वाली (सौमनसे) प्रसन्नता में (स्याम) रहें ॥७॥

भावार्थः—सब मनुष्य प्रजा रक्षक, शत्रुनाशक राजा की आज्ञा में रहकर सदा प्रसन्न रहें ॥७॥

सूक्तम् ॥१२६॥

१—२३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, ५—७, १०—१५, १८, १९, २३ पङ्क्तिः, २ विराडार्षी पङ्क्तिः, ३, ४, ८, ९, २०—२२ निचृत् पङ्क्तिः, १६, १७ विराट् पङ्क्तिः ॥

गृहस्थकर्तव्योपदेशः—गृहस्थ के कर्तव्य का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत । यत्रामदद्
वृषाकपिर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१॥

भाषार्थः—(हि) क्योंकि (सोतोः) तत्त्व रस का निकालना (वि असृक्षत) उन्हों ने [लोगों ने] छोड़ दिया है, [इसी से] (देवम्) विद्वान् (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य आत्मा] को (न अमंसत) उन्हों ने नहीं जाना, (यत्र) जहां [संसार में] (अर्यः) स्वामी (मत्सखा) मेरा [देह वाले का] साथी (वृषाकपिः) वृषाकपि [बलवान् कंपाने वाले अर्थात् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा] ने (पुष्टेषु) पुष्टि कारक धनों में (अमदत्) आनन्द पाया है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य, दूसरे जीवों से अधिक उत्तम और तत्त्व ज्ञानी होने पर भी अपने सामर्थ्य और कर्तव्य को भूल जाते हैं, वे आत्मघाती संसार में सुख कभी नहीं पाते ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१० । ८६ । १—२३ ॥

सूचना—इस सूक्त में इन्द्र, वृषाकपि, इन्द्राणी और वृषाकपायी का वर्णन है । इन्द्र शब्द से मनुष्य का शरीर धारी जीवात्मा, वृषाकपि से भीतरी जीवात्मा, इन्द्राणी से इन्द्र की विभूति वा शक्ति और वृषाकपायी से वृषाकपि की विभूति वा शक्ति तात्पर्य है, अर्थात् एक ही मनुष्य के जीवात्मा का वर्णन भिन्न भिन्न प्रकार से है । इन्द्र अर्थात् शरीरधारी मनुष्य सब प्राणियों से श्रेष्ठ है, वह अपने को बुराई से बचाकर भलाई में सदा लगावे—सूक्त का यही सारांश है ॥

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः । नो अह
प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] तू (हि) ही (वृषाकपेः) वृषाकपि [बलवान् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा] से (अति) अत्यन्त (व्यथिः) व्याकुल होकर (परा) दूर (धावसि) दौड़ता है । (अन्यत्र) [अपने आत्मा से] दूसरे [प्राणी] में (सोमपीतये) सोम [तत्त्व रस] के पान के लिये (नो अह) कभी नहीं (प्र विन्दसि) तू पाया जाता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य आत्मज्ञान के विना कष्टों से व्याकुल होकर अपने सामर्थ्य को सोचकर काम करता है, वही तत्त्व मार्ग पर चलकर आप सुखी होता और सब को सुखी करता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः । यस्मा
इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य] (किम्) कौनसा [अपकार] (अयम्) इस (हरितः) छीन लेने वाले, (मृगः) घूमने वाले मृग [जंगली पशु के समान] (वृषाकपिः) वृषाकपि [बलवान् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा] ने (त्वाम्) तुझ को (चकार) किया है ? (यस्मै) जिस [जीवात्मा] के लिये (अर्यः) स्वामी होकर तू (पुष्टिमत्) पुष्टि रखने वाले (वसु) धन का (इत्) भी (वा) अवश्य (उ) निश्चय करके (नु) अब (इरस्यसि) डाह करता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि पशु के समान आचरण अर्थात् पाप बुद्धि और डाह छोड़कर पुरुषार्थ से वृद्धि करे ॥३॥

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि । श्वा न्वस्य
जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] (त्वम्) तू (यम्) जिस (इमम्) इस (प्रियम्) प्यारे (वृषाकपिम्) वृषाकपि [बलवान् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा] की (अभिरक्षसि) सब ओर से रक्षा करे, [तो] (नु) क्या (वराहयुः) सुअर को ढूंढने वाला (श्वा) कुत्ता [अर्थात् पाक कर्म] (अस्य) इस [सूअर अर्थात् जीव] के (अपि) भी (कर्णे) कान में (जम्भिषत्) काटेगा, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥४॥

भावार्थः—जब सब प्राणियों में श्रेष्ठ मनुष्य अपने आत्मा को अपने वश में कर लेता है, तब उसको कोई पाप कर्म ऐसा नहीं सताता है, जैसे कुत्ता सूअर को कान पकड़कर झंझोर डालता है ॥४॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् । शिरो न्वस्य
राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥

भाषार्थः—(कपिः) कपि [चंचल जीवात्मा] ने (मे) मेरे (व्यक्तानि) स्वच्छ किये हुए (प्रिया) प्यारे (तष्टानि) कर्मों को (वि) विरुद्धपन से (अदूदुषत्) दूषित कर दिया है (अस्य) इस [पाप कर्म] के (शिरः) शिर को (नु) अब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(राविषम्) में काट डालूं, और (दुष्कृते) दुष्ट कर्म में (सुगम्) सुगम (न) नहीं (भुवम्) हो जाऊं, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥५॥

भावार्थः—विद्वान् जितेन्द्रिय मनुष्य के मन में यदि पाप की लहर उठे, वह ज्ञान से उस को सर्वथा नष्ट करके अपना महत्त्व दृढ़ बनाये रक्खे ॥५॥

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् । न मत्
प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥

भाषार्थः—(स्त्री) कोई स्त्री (मत्) मुझ से (न) न (सुभसत्तरा) अधिक बड़ी शोभा वाली, (न) न (सुयाशुतरा) अधिक सुन्दर यत्न वाली, (न) न (मत्) मुझ से (प्रतिच्यवीयसी) अधिक सहने वाली और (न) न (सक्थि) जंघा [आदि शरीर के अंगों] को (उद्यमीयसी) उद्योग में अधिक लगाने वाली (भुवत्) होवे, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥६॥

भावार्थः—स्त्रियां भी मनुष्य शरीर पाकर सब प्रकार विद्या ग्रहण करें और कर्तव्य में चतुर बनकर अन्य स्त्रियों और प्राणियों से अपनी शोभा अधिक बढ़ावें ॥६॥

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति । भसन्मे
अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥७॥

भाषार्थः—(उवे) हे (अम्ब) अम्मा ! (अङ्ग) हे (सुलाभिके) सुन्दर लाभ कराने वाली ! (यथा इव) जैसा कुछ (भविष्यति) आगे होगा [वैसा किया जावे], (अम्ब) हे अम्मा ! (मे) मेरा (भसत्) चमकता हुआ कर्म, (मे) मेरी (सक्थि) जंघा, (मे) मेरा (शिरः) शिर (वि) विविध प्रकार से (इव) ही (हृष्यति) आनन्द देवे, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥७॥

भावार्थः—सब लड़के लड़कियां गुणवती माता से शरीर के अंगों से सुन्दर चेष्टा करके बलवान् और गुणवान् होना सीखें ॥७॥

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथु जाघने । किं शूरपत्नि
नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सुबाहो) हे बलवान् भुजाओं वाली! (स्वाङ्गुरे) हे दृढ़ अंगुलियों वाली! (पृथुजघने) हे मोटी जंघाओं वाली! (पृथुष्टो) हे बड़ी स्तुति वाली! [कुलवधू] (किम्) क्यों, (शूरपत्नि) हे शूर की पत्नी! (किम्) क्यों, (त्वम्) तू (नः) हमारे (वृषाकपिम्) वृषाकपि [बलवान् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा] को (अभि) सर्वथा (अमीषि) पीड़ा देगी, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥८॥

भावार्थः—रूपवती, बलवती, गुणवती स्त्री पुत्र पुत्रियों को रूपवान्, बलवान् और गुणवान् बनाकर पति आदि को सदा प्रसन्न करे ॥८॥

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते । उताहमस्मि
वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (शरारुः) उपकारी मनुष्य (माम्) मुझ [स्त्री] को (अवीराम् इव) अवीर स्त्री के समान (अभि मन्यते) मानता है, (उत) और (अहम्) मैं (वीरिणी) वीरिणी [वीर सन्तानों वाली], (इन्द्र पत्नी) इन्द्र पत्नी [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य की पत्नी], और (मरुत्सखा) विद्वान् वीरों को साथी रखने वाली (अस्मि) हूं, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥९॥

भावार्थः—वीर पत्नी स्त्री वीर सन्तानों और वीर पुरुषों के साथ रहकर दुष्टों से निर्भय होवे ॥९॥

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति । वेधा
ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०॥

भाषार्थः—(नारी) नारी [नरों का हितकरने हारी स्त्री] (पुरा) पहिले काल से (स्म) ही (संहोत्रम्) मिलकर अग्निहोत्र आदि यज्ञ करने (वा) और (समनम्) मिलकर जीवन करने को (अव गच्छति) जानती है। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान का (वेधाः) विधान करने वाली (वीरिणी) वीरिणी [वीर सन्तानों वाली], (इन्द्रपत्नी) इन्द्रपत्नी [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य की स्त्री] (महीयते) पूजी जाती है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम श्रेष्ठ है ॥१०॥

भावार्थः—जो ज्ञानवती स्त्री अपने सदृश वीर पति से विवाह करके वीर सन्तानें उत्पन्न करती है, वही संसार में बड़ाई पाती है ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् । नह्यस्या अपरं
चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥

भाषार्थः—(आसु) इन (नारिषु) चलायी गयी प्रजाओं के बीच (इन्द्राणीम्) इन्द्राणी [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष की विभूति वा शक्ति] को (सुभगाम्) बड़ी भगवती [ऐश्वर्य वाली] (अहम्) मैं ने (अश्रवम्) सुना है, (अस्याः) इस [विभूति] का (पतिः) पति [पालन करने वाला, इन्द्र यह मनुष्य] (अपरम् चन) दूसरे प्राणियों के समान (जरसा) वयोहानि से (नहि) नहीं (मरते) मारता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥११॥

भावार्थः—यह वेदादि शास्त्रों से प्रसिद्ध है कि उन्नतिशील मनुष्य अपनी बुद्धि आदि शक्तियों को ठिकाने रखकर सदा बलवान् रहकर यशस्वी होवे ॥११॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते । यस्येदमप्यं हविः
प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२॥

भाषार्थः—(इन्द्राणि) हे इन्द्राणी ! [इन्द्र, बडे ऐश्वर्यवान् मनुष्य की विभूति] (सख्युः) सखा (वृषाकपेः) वृषाकपि [बलवान् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा] के (ऋते) विना (अहम्) मैं [शरीरधारी] (न) नहीं (ररण) चलसकता, (यस्य) जिस [वृषाकपि, जीवात्मा] का (इदम्) यह (अप्यम्) प्रजाओं का हितकारी (प्रियम्) प्यारा (हविः) हवि [देने लेने योग्य, घृत, जल आदि पदार्थ] (देवेषु) विद्वानों में (गच्छति) पहुंचता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य अपनी शक्ति को अपने मित्र जीवात्मा के साथ दृढ़ रखकर स्वस्थ रहे, और सब प्राणियों से उत्तम होकर मोक्ष सुख पावे ॥१२॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे । घसत् त
इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१३॥

भाषार्थः—(वृषाकपायि) हे वृषाकपायी ! [वृषाकपि बलवान्, चेष्टा कराने वाले जीवात्मा की विभूति] (रेवति) हे धनवाली ! (सुपुत्रे) हे वीर पुत्रों की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न करने वाली ! (सुस्नुषे) हे बहुत सुख बरसाने वाली ! (आत् उ) लगातार ही (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (ते) तेरे (उक्षणः) बढ़ती करने वाले पदार्थों को (घसत्) खावे, वह (प्रियम्) प्यारा (काचित् करम्) सुख का सब ओर से एकत्र करने वाला (हविः) हवि [म० १२। घृत, जल आदि पदार्थ] है, [क्योंकि] (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१३॥

भावार्थः- मनुष्य आत्मबल को अपनी विभूति में संयुक्त करके संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर आनन्द पावे ॥१३॥

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् । उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४॥

भाषार्थः—(पञ्चदश, विंशतिम्) पन्द्रह, बीस [अर्थात् बहुत से] (उक्षणः) बढ़ती करने वाले पदार्थों को (मे) मेरे लिये (हि) ही (साकम्) एक साथ (पचन्ति) वे [ईश्वर नियम] परिपक्व करते हैं, (उत) और (अहम्) मैं (पीवः) उन के पुष्टि कारक रस को (इत्) ही (अद्मि) खाता हूं, और (मे) मेरी (उभा) दोनों (कुक्षी) कोखों को (पृणन्ति) वे [पदार्थ] भरते हैं, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणीमात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१४॥

भावार्थः—परमात्मा ने संसार में अनेक उपकारी पदार्थ उत्पन्न किये हैं, मनुष्य उन का सार लेकर शरीर और आत्मा की पुष्टि करे ॥१४॥

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् । मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] (यूथेषु अन्तः) यूथों के बीच (रोरुवत्) दहाड़ते हुए, (तिग्मशृङ्गः) तीक्ष्ण सींगों वाले (वृषभः न) बैल के समान, (मन्थः) वह तत्त्व रस (ते) तेरे (हृदे) हृदय के लिये (शम्) शान्ति दायक हो, (यम्) जिस [तत्त्व रस] को (ते) तेरे लिये (भावयुः) सत्ता चाहने वाला [परमात्मा] (सुनोति) मथता है, [क्योंकि] (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१५॥

भावार्थः—जैसे बलवान् सांड़ अपने झुण्डों को वश में करके सुख को प्राप्त होता है, वैसे ही प्रतापी मनुष्य परमात्मा के उत्पन्न किये पदार्थों से तत्त्व रस ग्रहण करके सुखी होवे ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३' कपृत् । सेदीशे
यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६॥

भाषार्थः—(सः) वह पुरुष (न ईशे) ऐश्वर्यवान् नहीं होता है, (यस्य) जिस का (कपृत्) शिर पालने वाला कपाल (सक्थ्या अन्तरा) दोनों जंघाओं के बीच (रम्बते) नीचे लटकता है, (सः इत्) वही पुरुष (ईशे) ऐश्वर्यवान् होता है, (यस्य निषेदुषः) जिस बैठे हुए [विचारते हुए] पुरुष का (रोमशम्) रोम वाला मस्तक [ज्ञान सामर्थ्य] (विजृम्भते) फैलता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि आलस्य से मस्तक झुकाकर अपने ज्ञान को संकुचित न करे, किन्तु शिर को सब ओर घुमाकर भली भान्ति विचारकर ज्ञान बढ़ाता हुआ अपना इन्द्रत्व दिखावे ॥१६॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते । सेदीशे यस्य
रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३' कपृद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७॥

भाषार्थः—(सः) वह पुरुष (न ईशे) ऐश्वर्यवान् नहीं होता, (यस्य निषेदुषः) जिस बैठे हुए [आलसी] को (रोमशम्) रोम वाला मस्तक (विजृम्भते) जंभाई लेता है, (सः इत्) वही पुरुष (ईशे) ऐश्वर्यवान् होता है, (यस्य) जिसका (कपृत्) शिर पालने वाला कपाल (सक्थ्या अन्तरा) दोनों जंघाओं के बीज [ध्यान में] (रम्बते) नीचे लटकता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१७॥

भावार्थः—जो मनुष्य आलस्य से शिर झुकाकर ओंघने लगते हैं, उन को विद्या सुवर्ण और राज्य आदि ऐश्वर्य नहीं मिलता, ऐश्वर्य उन को मिलता है जो शिर को झुकाकर अपना आपा सोचते हुए इन्द्र बनते हैं ॥१७॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् । असिं सूनां
नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] (अयम्) इस (वृषाकपिः) वृषाकपि [बलवान् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा] ने (परस्वन्तम्) पालने वाले व्यवहार को (हतम्) नाश किया हुआ (विदत्) पाया है, (आत्) तभी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नवम्) नवीन (चरम्) स्थान [अर्थात् देश निकाला], [अथवा] (असिम्) तलवार, (सूनाम्) बध स्थान, और (एधस्य) इन्धन का (आचितम्) भरा हुआ (अनः) छकड़ा [पाया है], (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१८॥

भावार्थः—जो पापी आत्मा उपकारी व्यवस्था को तोड़े, उस को दण्ड रीति से ऐसा कष्ट भोगना चाहिये जैसे कोई अपराधी देश से निकाला जावे, अथवा तलवार आदि शस्त्र से मारकर लकड़ी से भस्म किया जावे ॥१८॥

अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् । पिबामि
पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९॥

भाषार्थः—(विचाकशत्) विविध प्रकार सुशोभित हुआ, और (दासम्) डाकू और (आर्यम्) आर्य [श्रेष्ठ पुरुष] को (विचिन्वन्) पहिचानता हुआ (अयम्) यह मैं [इन्द्र] (एमि) चलता हूं, (पाकसुत्वनः) पक्के विद्वान् के तत्त्व रस का (पिबामि) पान करता हूं और (धीरम्) धीर [बुद्धिमान्] को (अभि) सब प्रकार (अचाकशम्) सुशोभित करता हूं, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों से सुशोभित होकर, दुष्टों और शिष्टों की विवेचना करके शिष्टों का मान और दुष्टों का अपमान करता हुआ इन्द्रत्व दिखावे ॥१९॥

धन्व च यत् कृन्तत्रं च कति स्वित् ता वि योजना । नेदीयसो
वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२०॥

भाषार्थः—(यत्) जो (कृन्तत्रम्) काटने योग्य बन (च च) और (धन्व) निर्जल देश हैं, (ता) वे (कति स्वित्) कितने ही (योजना) योजन (वि) दूर दूर हैं। (वृषाकपे) हे वृषाकपि! [बलवान् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा] तू (नेदीयसः) अधिक समीप वाले (गृहान्) घरों को और (अस्तम्) अपने घर को (उप) आदर से (आ इहि) आ, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि कठिनाई पड़ने पर आत्मघाती, अर्थात् हताश न होवे, किन्तु धैर्य बांधकर ठिकाने पर आ जावे ॥२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै । य एष स्वप्न-
नंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१॥

भाषार्थः—(वृषाकपे) हे वृषाकपि ! [बलवान् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा] तू (पुनः) फिर (आ इहि) आ, (सुविता) ऐश्वर्य कर्मों को (कल्पयावहै) हम दोनों [तू और मैं] विचार कर करें, (यः) जो (एषः) यह तू (स्वप्ननंशनः) स्वप्ननाश करने वाला [आलस्य छुड़ाने वाला] है, सो तू (पथा) मार्ग से [सन्मार्ग से] (पुनः) फिर (अस्तम्) घर (एषि) पहुंचता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥२१॥

भावार्थः—मनुष्य अपने गिरे हुए आत्मा को सावधानी से ठिकाने पर लाकर ऐश्वर्य बढ़ाता रहे ॥२१॥

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन । क्व १ स्य पुल्वघो
मृगः कमगं जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२॥

भाषार्थः—(वृषाकपे) हे वृषाकपि ! [बलवान् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा] (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] [और हे इन्द्राणी ! मनुष्य की विभूति] (यत्) जब (उदञ्चः) ऊंचे चढ़ते हुए तुम सब (गृहम्) घर (अजगन्तन) पहुंच गये, (स्यः) वह (पुल्वघः) महापापी, (जनयोपनः) मनुष्य को घबरा देने वाला, (मृगः) पशु [पशु समान गिरा हुआ जीवात्मा] (क्व) कहाँ (कम्) किस मनुष्य को (अगन्) पहुँचा, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥२२॥

भावार्थः—जब मनुष्य अपने आत्मा और बुद्धि आदि विभूति को ठिकाने ले आता है, वह कभी भी दुष्ट कर्म करके संकट में नहीं पड़ता है ॥२२॥

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् । भद्रं भल
त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३॥

भाषार्थः—(पर्शुः) शत्रुओं का नाश करने वाली (मानवी) मनुष्य की विभूति ने (ह) निश्चय करके (नाम) प्रसिद्ध (विंशतिम्) बीस [पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों और इनके दस विषयों] को (साकम्) एक साथ (ससूव) उत्पन्न किया है। (भल) हे विचारवान् ! [आत्मा] (त्यस्यै) उस [माता] के लिये (भद्रम्) कल्याण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अभूत) हुआ है, (यस्याः) जिस [माता] के (उदरम्) पेट को (आमयत्) उस [गर्भ] ने पीड़ा दी थी, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ।।२३।।

भावार्थः—दस इन्द्रियां और उनके दस विषय, मनुष्य की उत्तम विभूति अर्थात् शक्ति से उत्तम होते हैं, इसलिये मनुष्य तपश्चरण से उत्तम विद्या प्राप्त करके सुख पावे, जैसे माता गर्भ का कष्ट सहकर उत्तम सन्तान उत्पन्न करके सुख पाती है।।२३।।

अथ कुन्तापसूक्तानि [१२७—१३६] ।।

सूक्तम् ।।१२७।।

१—१४ ।। प्रजापतिरिन्द्रो वा देवता ।। १, २ पथ्या बृहती; ३, ५, १२ निचृदनुष्टुप्, ४, ७, ९—११, १३ अनुष्टुप्, ६ भुरिगुष्णिक्, ८ भुरिगनुष्टुप्, १४ निचृद् पङ्क्तिः ।।

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ।।

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ।।१।।

[सूचना—सूक्त १३६ के मन्त्र १ तथा ४ को छोड़कर, यह कुन्तापसूक्त १२७—१३६ ऋग्वेद आदि अन्य वेदों में नहीं है। हम स्वामी विश्वेश्वरानन्द नित्यानन्द कृत पद सूची से पद पाठ को संग्रह करके और कुछ शोधकर लिखते हैं। आगे सूचना अथर्व० २०। ३४। १२, १६, १७, ४८। १—३, ४३। १—३ भी देखो ।।]

भावार्थः—(जनाः) हे मनुष्यो ! (इदम्) यह (उप) आदर से (श्रुत) सुनो, [कि] (नराशंसः) मनुष्यों में प्रशंसा वाला पुरुष (स्तविष्यते) बड़ाई किया जावेगा। (कौरम) हे पृथिवी पर रमण करने वाले राजन् ! (षष्टिम् सहस्रा) साठ सहस्रा (च) और (नवतिम्) नब्बे [अर्थात् अनेक दानों] को (रुशमेषु) हिंसकों के फैंकने वाले वीरों के बीच (आ दद्महे) हम पाते हैं ।।१।।

भावार्थः—उत्तम कर्म करने वाला मनुष्य संसार में सदा बड़ाई पाता है, यह विचार कर राजा कर्मकुशल वीरों के बीच आदर कर के सुपात्रों को अनेक दान देवे ।।१।।

(कुन्तापसूक्तानि) का अर्थ पाप वा दुःख के भस्म करने वाले सूक्त अर्थात् वेद मन्त्रों के समुदाय है ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश ।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥२॥
एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥३॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस [राजा] के (रथस्य) रथ के (प्रवाहणः) ले चलने वाले, (ईषमाणाः) शीघ्रगामी, (उपस्पृशः) जुते हुए, (वधूमन्तः) उंटनियों सहित, (द्विर्दश) दो वार दस (उष्ट्राः) ऊंट (दिवः) उन्मत्त मनुष्य के (वर्ष्मा=वर्ष्माणम्) ऊंचे पद का (नि जिहीडते) अपमान करते रहते हैं ॥२॥ (एषः) उस [राजा] ने (इषाय) उद्योगी पुरुष को (शतम्) सौ (निष्कान्) दीनारे [सुवर्ण मुद्रा], (दश) दश (स्रजः) मालायें, (अर्वताम् त्रीणि शतानि) तीन सौ घोड़े और (गोनाम् दश सहस्रा) दस सहस्र गौयें (मामहे) दान दी हैं ॥३॥

भावार्थः—राजा बीसहों ऊंट उंटनी आदि को रथ आदि में जोतकर अनेक उद्यम करे करावे और उद्योगी लोगों को बहुत से उचित पारितोषिक देवे ॥२, ३॥

वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः ।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥४॥

भाषार्थः—(रेभ) हे विद्वान् ! (वच्यस्व) उपदेश कर, (वच्यस्व) उपदेश कर, (न) जैसे (शकुनः) पक्षी (पक्वे) फल वाले (वृक्षे) वृक्ष पर [चहचहाता है । (नष्टे) दुख व्यापने पर (भुरिजोः) दोनों धारण पोषण करने वाले [स्त्री पुरुष] की (इव) ही (जिह्वा) जीभ (चर्चरीति) चलती रहती है, (न) जैसे (क्षुरः) छुरा [केशों पर चलता है] ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् स्त्री पुरुष प्रसन्न होकर सन्तान आदि को सदा सदुपदेश करें, जैसे फलवाले वृक्ष पर पक्षी प्रसन्न होकर बोलते हैं, और सदुपदेश द्वारा क्लेशों को इस प्रकार काटें, जैसे नापित केशों को छुरा से काट डालता है ॥४॥

प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते ।
अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वृषाः) बलवान् (गावः इव) बैलों के समान (रेभासः) विद्वान् लोग (मनीषाः) बुद्धियों को (प्र ईरते) आगे बढ़ाते हैं। (अमोत) हे बन्धन रहित! (अमोत) हे मुक्त मनुष्य! (एषाम्) इन [विद्वानों] के (पुत्रकाः) पुत्र (गाः) विद्याओं और भूमियों को (इव) अवश्य (आसते) सेवते हैं ॥५॥

भावार्थः—जैसे बलवान् बैल आगे बढ़ते जाते हैं, मनुष्य विघ्नों से मुक्त होकर बुद्धि को अनेक प्रकार बढ़ावें और सन्तान आदि को योग्य विद्वान् और राज्याधिकारी बनावें ॥५॥

प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम्।
देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥६॥

भाषार्थः—(रेभ) हे विद्वान्! (गोविदम्) भूमि प्राप्त कराने वाली और (वसुविदम्) धन प्राप्त कराने वाली (धीम्) बुद्धि को (प्र) अच्छे प्रकार से (भरस्व) धारण कर। (देवत्रा) विद्वानों के बीच (इमाम्) इस [पूर्वोक्त] (वाचम्) वाणी को (श्रीणीहि) पक्की कर, (इषुः न) जैसे तीर (अवीः) प्रवेश योग्य लक्ष्यों को (अस्तारम्) तीर चलाने वाले के लिये [पक्का करता है] ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों में बैठकर निश्चय करे कि राज्य और धन की प्राप्ति के लिये यत्न सुफल होवें, जैसे चतुर धनुर्धारी का वाण लक्ष्य पर ही पहुंचता है ॥६॥

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥७॥

भाषार्थः—(यः) जो (देवः) देव [विजय चाहने वाला पुरुष] (मर्त्यान् अति) मनुष्यों मे बढ़कर [गुणी है], (विश्वजनीनस्य) सब लोगों के हितकारी, (वैश्वानरस्य) सब के नेता, (परिक्षितः) सब प्रकार ऐश्वर्य वाले (राज्ञः) उस राजा की (सुष्टुतिम्) उत्तम स्तुति को (आ) भले प्रकार (सुनोत) मथो ॥७॥

भावार्थः—सर्वहितकारी पुरुष से सब मनुष्य उत्तम गुणों का ग्रहण करें ॥७॥

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन्।
कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥८॥

भाषार्थः—(तमः) अन्धकार (परिच्छिन्नः) काट डालने वाले [राजा] ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आसनम्) आसन (आचरन्) ग्रहण करते हुए (क्षेमम्) आनन्द (अकरोत्) कर-दिया है—[यह बात] (कुलायन्) घरों को (कृण्वन्) बनाता हुआ (कौरव्यः) कार्य कर्ताओं का राजा (पतिः) पति [गृहस्थ] (जायया) अपनी पत्नी से (वदति) कहता है ॥८॥

भावार्थः—न्यायकारी प्रजापालक राजा की चर्चा गृहपति लोग अपनी अपनी स्त्रियों से कहते हैं ॥८॥

कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥९॥

भाषार्थः—(कतरत्) कौन वस्तु (ते) तेरे लिये (परि) सुधारकर (आ हराणि) मैं लाऊं, (दधि) दही, (मन्थाम्) निर्जल मठा, [वा] (श्रुतम्) नोनी माखन आदि—[यह बात] (जायाः) पत्नी (पतिम्) पति से (परिक्षितः) सब प्रकार ऐश्वर्य वाले (राज्ञः) राजा के (राष्ट्रे) राज्य में (वि) विविध प्रकार (पृच्छति) पूछती है ॥९॥

भावार्थः—सुनीति वाले राजा के राज्य में दूध, दही, घृत आदि पदार्थ बहुतायत से पाकर लोग सुखी होते हैं ॥९॥

अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥१०॥

भाषार्थः—(अभीवस्वः) सब ओर से बसाने वाला, (पक्वः) पका हुआ (यवः) जौ आदि अन्न (पथः) मार्ग से (बिलम्) गढ़े [खत्ती आदि] को (प्र) भले प्रकार (जिहीते) पहुंचता है। (सः जनः) वह मनुष्य (परिक्षितः) सब प्रकार ऐश्वर्य वाले (राज्ञः) राजा के (राष्ट्रे) राज्य में (भद्रम्) आनन्द (एधति) बढ़ाता है ॥१०॥

भावार्थः—राजा के सुप्रबन्ध से किसान आदि धनवान् लोग अन्न को पक जाने पर यथाविधि एकत्र करके खत्ती आदि में भरें और आवश्यकता पर काम में लाकर सुखी होवें ॥१०॥

इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥११॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] ने (कारुम्) काम करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले को (अबूबुधत्) जगाया है—(उत्तिष्ठ) उठ और (जनम्) लोगों में (वि चर) विचर, (मम इत् उग्रस्य) मुझ ही तेजस्वी की [भक्ति] (चर्कृधि) तू करता रहे, (सर्वः) प्रत्येक (अरिः) वैरी (इत्) भी (ते) तेरी (पृणात्) तृप्ति करे ॥११॥

भावार्थः—प्रतापी राजा के प्रबन्ध से मनुष्य उद्यमी होकर आपस में विचारें और राजभक्त होकर चोर आदि प्रजा के शत्रुओं को वश में करें ॥११॥

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥१२॥

भाषार्थः—(गावः) हे गौओं ! तुम (इह) यहां पर [इस घर में], (अश्वाः) हे घोड़ो ! तुम (इह) यहां पर (पूरुषाः) हे पुरुषो ! तुम (इह) यहां पर (प्रजायध्वम्) बढ़ो, (इहो) यहां पर (सहस्रदक्षिणः) सहस्रों की दक्षिणा देनेवाला (पूषा) पोषक [गृहपति] (अपि) भी (नि षीदति) बैठता है ॥१२॥

भावार्थः—उत्तम राजा के प्रबन्ध से गृहस्थ लोग गौओं, घोड़ों और मनुष्यों से वृद्धि करके परस्पर उपकार करें ॥१२॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि विवाह प्रकरण में उद्धृत है ॥ १

नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोप रीरिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥१३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (इमाः) यह (गावः) भूमियें (न रिषन्) न नष्ट होवें और (आसाम्) इन का (गोप) रक्षक (मो रीरिषत्) नहीं नष्ट होवे। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [राजन्] (मा) न तो (अमित्रयुः) वैरियों को चाहने वाला (जनः) नीच मनुष्य, और (मा) न (स्तेनः) चोर (आसाम्) इन [भूमियों] का (ईशत) राजा होवे ॥१३॥

भावार्थः—राजा डाकू चोर आदि से खेती आदि भूमियों की रक्षा करके प्रजा को पाले ॥१३॥

उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥१४॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (नः) हम को (न) अब (उप) आदर से (रमसि) तू आनन्द देता है, (सूक्तेन) वेदोक्त (वचसा) वचन के साथ (वयम्) हम, (भद्रेण)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणकारी (वचसा) वचन के साथ (वयम्) हम (वनात्) क्लेश से अलग होकर (अधिध्वनः) ऊंची ध्वनि वाली (गिरः) वाणियों को (कदा चन) कभी भी (न) न (रिष्येम) नष्ट करें ॥१४॥

भावार्थः—राजा और प्रजा परस्पर उपकार करके दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ संसार में सुख बढ़ावें ॥१४॥

सूक्तम् ॥१२८॥

१—१६ ॥ प्रजापतिरिन्द्रो वा देवता ॥ १—३, ७, १०, १२ निचृदनुष्टुप्, ४, ८, ९, १४ अनुष्टुप्; ५ आर्ष्यनुष्टुप्; ६, १६ भुरिगनुष्टुप्; ११, १३ विराडार्ष्यनुष्टुप्, १५ विराडनुष्टुप् ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

यः स॒भेयो॑ विद॒थ्यः॑ सु॒त्वा य॒ज्वाथ॒ पूरु॑षः ।
सूर्यं॒ चामू रि॑शा॒दस॒स्तद् दे॒वाः प्रागक॑ल्पयन् ॥१॥

[सूचना—पदपाठ के लिये सूचना सूक्त १२७ देखो ॥]

भाषार्थः—(यः) जो (सभेयः) सभ्य [सभाओं में चतुर], (विदथ्यः) विद्वानों में प्रशंसनीय, (सुत्वा) तत्त्व रस निकालने वाला (अथ) और (यज्वा) मिलनसार (पुरुषः) पुरुष है। (अमू) उस (सूर्यम्) सूर्य [के समान प्रतापी] को (च) निश्चय करके (तत्) तब (रिशादसः) हिंसकों के नाश करने वाले (देवाः) विद्वानों ने (प्राक्) पहिले [ऊंचे स्थान पर] (अकल्पयन्) माना है ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सब में चतुर मनुष्य को सभापति बनाकर प्रजा की रक्षा करें ॥१॥

यो जा॒म्या अप्र॑थय॒स्तद् यत् सखा॑यं॒ दुधू॑र्षति ।
ज्येष्ठो॒ यदप्र॑चेता॒स्तदा॑हु॒रध॑रा॒गिति॑ ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो मनुष्य, (जाम्याः) कुल स्त्री को (अप्रथयः) गिराता है, (तत्) वह पुरुष, और (यत्) जो (सखायम्) मित्र को (दुधूर्षति) मारना चाहता है, और (यत्) जो (ज्येष्ठः) अति वृद्ध होकर (अप्रचेताः) अज्ञानी है, (तत्) वह (अधराक्) अधोगामी है—(इति) ऐसा (आहुः) वे लोग कहते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य सती स्त्री को पाप में लगावे, मित्रघाती हो और वयोवृद्ध होकर भी अज्ञानी हो, वह विद्वानों में नीच गति पाता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः ।
तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गंधर्वः काम्यं वचः ॥३॥
यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः ।
धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) जब (भद्रस्य) श्रेष्ठ (पुरुषस्य) पुरुष का (पुत्रः) पुत्र (दाधृषिः) ढीठ (भवति) हो जावे, (तत्) तब (विप्रः) बुद्धिमान् (गन्धर्वः) विद्या के धारण करने वाले पुरुष ने (उ) निश्चय करके (तत्) यह (काम्यम्) मनोहर (वचः) वचन (अब्रवीत्) कहा है [कि] ॥३॥—(यः) जो मनुष्य (पणि) कुव्यवहारी (रघुजिष्ठ्यः) अत्यन्त हलका है, (च च) और (यः) जो (देवान्) विद्वानों को (अदाशुरिः) नहीं दान देने वाला है, (तत्) वह (शश्वताम्) सब (धीराणाम्) धीर पुरुषों में (अपाक्) दूर रहने योग्य है—(इति) ऐसा (अहम्) हम ने (शुश्रुम) सुना है ॥४॥

भावार्थः—विद्वानों को प्रयत्न करना चाहिये कि उन के सन्तान विद्वान् होकर विद्वानों से मिलकर रहें ॥३, ४॥

ये च देवा अयजन्ताथो ये च परादृदिः ।
सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥५॥

भाषार्थः—(ये) जिन (देवाः) विद्वानों ने (अयजन्त) मेल किया है, (अथो च च) और (ये) जो (परादृदिः) शत्रुओं के पकड़ने वाले हैं। (सूर्यः) सूर्य (दिवम् इव) जैसे आकाश को (गत्वाय) प्राप्त होकर, [वैसे ही] (मघवा) महाधनी [सभापति] (नः) उन हम को [प्राप्त होकर] (वि) विविध प्रकार (रप्शते) शोभित होता है ॥५॥

भावार्थः—सभ्य लोग और सभापति मिलकर संसार का उपकार करके शोभा बढ़ावें, जैसे सूर्य आकाश में चमक कर उपकार करता हुआ शोभित होता है ॥५॥

योऽनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः ।
अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥६॥

भाषार्थः—(यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्मा [वेदज्ञानी] का (पुत्रः) पुत्र (अब्रह्मा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब्रह्मा [वेद न जानने वाला, कुमार्गी] (अनाक्ताक्षः) अशुद्ध व्यवहार वाला और (अनभ्यक्तः) अविख्यात है। वह (अमणिवः) मणियों [रत्नों] का न रखने वाला और (अहिरण्यवः) तेजहीन होवे, (तोता) यह यह कर्म (कल्पेषु) शास्त्र विधानों में (संमिता) प्रमाणित हैं ॥६॥

भावार्थः—जो कोई ज्ञानी का सन्तान होकर कुमार्गी मूर्ख होवे, वह निर्धन होकर निस्तेज हो जाता है, यह बात वेदशास्त्र से सिद्ध है ॥६॥

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।
सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥७॥

भाषार्थः—(यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्मा [वेदज्ञानी] का (पुत्रः) पुत्र (सुब्रह्मा) सुब्रह्मा [बड़ा वेदज्ञानी, सुमार्गी], (आक्ताक्षः) शुद्ध व्यवहार वाला और (सुभ्यक्तः) बड़ा विख्यात हो, वह (सुमणिः) बहुत मणियों [रत्नों] वाला और (सुहिरण्यवः) बड़ा तेजस्वी होवे, (तोता) यह यह कर्म (कल्पेषु) शास्त्र विधानों में (संमिता) प्रमाणित हैं ॥७॥

भावार्थः—विद्वान् का सन्तान विद्वान् होने से ही संसार में प्रतिष्ठा पावे, यह वेद मत है ॥७॥

अप्रपाणा चं वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः ।
अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥८॥

भाषार्थः—(च) जैसे (अप्रपाणा) विना पनघट वाला (वेशन्ता) सरोवर है, [वैसे ही] (अप्रतिदिश्ययः) प्रतिदान का न करने वाला (रेवान्) धनवान् और (अयभ्या) मैथुन के अयोग्य [रोग आदि से पीड़ित, सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ] (कल्याणी) सुन्दर (कन्या) कन्या है, (तोता) यह यह कर्म (कल्पेषु) शास्त्र विधानों में (संमिता) प्रमाणित हैं ॥८॥

भावार्थः—विना पनघट के जल से भरा सरोवर, विना प्रतिदान के बड़ा धनी, और विना सन्तान उत्पन्न करने के रूपवती स्त्री निष्फल हैं ॥८॥

सुप्रपाणा चं वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः ।
सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(च) जैसे (सुप्रपाणा) अच्छे पनघट वाला (वेशन्ता) सरोवर है, [वैसे ही] (सुप्रतिदिश्ययः) सुन्दर प्रतिदान करने वाला (रेवान्) धनवान् और (सुयम्या) अच्छे प्रकार मैथुन योग्य [नीरोग होकर सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ] (कल्याणी) सुन्दर (कन्या) कन्या है, (तोता) यह यह कर्म (कल्पेषु) शास्त्र विधानों में (संमिता) प्रमाणित हैं ॥९॥

भावार्थः—जल भरे सरोवर की उपयोगिता जल काम में आने से, धन की उचित व्यय करने से और रूपवती स्त्री की वीर सन्तान उत्पन्न करने से होती है ॥९॥

परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः ।
अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥१०॥

भाषार्थः—(च) जैसे (परिवृक्ता) त्यागे हुए [कर्तव्य छोड़े हुए] (महिषी) पूजनीया गुणवती पत्नी, [वैसे ही] (स्वस्त्या) सुख के साथ [जीव चुराकर] (युधिंगमः) युद्ध में चल देने वाला, (च च) और (अनाशुरः) आलसी (आयामी) शासन करने वाला [निकम्मा है], (तोता) यह यह कर्म (कल्पेषु) शास्त्र विधानों में (संमिता) प्रमाणित हैं ॥१०॥

भावार्थः -घर आदि कर्तव्य कर्म छोड़ने से गुणवती स्त्री, युद्ध से भागने से शूर, और आलस्य करने से शासक पुरुष निकम्मा है ॥१०॥

वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः ।
श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥११॥

भाषार्थः—(च) जैसे (वावाता) अति शीघ्रकारिणी (महिषी) पूजनीया पत्नी, [वैसे ही] (स्वस्त्या) सुख के साथ [धर्म समझकर] (युधिंगमः) युद्ध में जाने वाला (च च) और (श्वाशुरः) बड़ा वेगशील (आयामी) शासन करने वाला [सुखदायी है], (तोता) यह यह कर्म (कल्पेषु) शास्त्र विधानों में (संमिता) प्रमाणित हैं ॥११॥

भावार्थः—कर्तव्य में दक्षा स्त्री, हर्ष के साथ युद्ध को जाने वाला शूर और शीघ्र स्वभाव वाला राजा सुखदायी है ॥११॥

यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः ।
विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यज्ञाय कल्पते ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) जब, (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] (दाशराज्ञे) दानपात्र सेवकों के राजा के लिये [अर्थात् अपने लिये] (अदः) उस [वेदोक्त] (मानुषम्) मनुष्य के कर्म को (वि गाहथाः) तू ने बिलो डाला है [गड़बड़ कर दिया है]। (सर्वस्मै) सब के लिये (विरूपः) वह दुष्ट रूप वाला व्यवहार (आसीत्) हुआ है। यह [मनुष्य] (यक्षाय) पूजनीय कर्म के लिये (सह) मिलकर (कल्पते) समर्थ होता है ॥१२॥

भावार्थः—जो मनुष्य वेदमर्यादा को तोड़कर स्वार्थ के लिये सेवक आदि को सताता है, वह सब को कष्ट देता है, इसलिये मनुष्य सदा परोपकार करे ॥१२॥

त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः ।
त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥१३॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे धनवान् (मर्य) मनुष्य! (त्वम्) तूने (वृषा) बलवान् और (रविः) सूर्य [के समान प्रतापी] होकर (अक्षुम्) व्यापन शील [चतुर] (नम्रम्) नम्र [विनीत] पुरुष को (आकरः) आवाहन किया है। (त्वम्) तू ने (रौहिणम्) मेघ [के समान अन्धकार फैलाने वाले पुरुष] को (व्यास्यः) फेंक गिराया है और (वृत्रस्य) शत्रु के (शिरः) शिर को (वि अभिनत्) तोड़ दिया है ॥१३॥

भावार्थः—सभापति राजा सूर्य के समान प्रतापी होकर चतुर सुशिक्षित लोगों का आदर और दुष्ट शत्रुओं का नाश करे ॥१३॥

यः पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यगाहथाः ।
इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ॥१४॥

भाषार्थः—(यः) जिस (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] तूने (पर्वतान्) पहाड़ों को (वि) विविध प्रकार (अदधात्) धारण किया है, (यः) जिस तू ने (अपः) जलों को (वि) विविध प्रकार (अगाहथाः) बिलोया है, (आत्) और (यः) जो (वृत्रहा) शत्रुनाशक है, (तस्मात्) इसी से, (इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (ते) उस तुझ को (महम्) बहुत (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥१४॥

भावार्थः—जो मनुष्य पहाड़ों में मार्ग कर के नदी नाले निकाल कर प्रजा का उपकार करे, सब लोग उस का आदर करें ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन् ।
स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥१५॥

भाषार्थः—(हर्योः) ले चलने वाले दोनों बल और पराक्रम के (पृष्ठम्) पीछे (धावन्तम्) दौड़ते हुए (औच्चैःश्रवसम्) उच्चैःश्रवा [बड़ी कीर्ति वाले वा ऊंचे कानों वाले घोड़े] से (अब्रुवन्) वे [चतुर लोग] बोले, (अश्व) हे घोड़े ! (स्वस्ति) कुशल से (जैत्राय) जीतने के लिये (सुस्रजम्) सुन्दर माला के समान सुन्दर सेना वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] को (आ वह) ले आ ॥१५॥

भावार्थः—चतुर विद्वान् लोग श्रेष्ठ घोड़े आदि लाकर राजा को देवें, जिस से वह अपनी बड़ी सेना के साथ रणक्षेत्र में दुष्ट शत्रुओं को जीते ॥१५॥

ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥१६॥

भाषार्थः—(नमस्य) हे नमस्कार योग्य (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] (ये) जो (श्वेताः) चांदी [आदि धन] वाले, (अजैश्रवसः) अजेय कीर्ति वाले (हार्यः) मनुष्य (दक्षिणम्) चतुर (त्वा) तुझ से (युञ्जन्ति) मिलते हैं, (देवानाम्) विद्वानों की (बिभ्रत्) पोषण करने वाले (पूर्वा) [उन की] पुरानी नीति (महीयते) पूजी जाती है ॥१६॥

भावार्थः—चतुर राजा धनी विद्वान् मनुष्यों की सुनीति का सदा आदर करे ॥१६॥

सूक्तम् ॥१२९॥

१—२० ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १—५, ७, १०—१२, १४, १५, २० प्राजापत्या गायत्री, ६ । १९ याजुषी गायत्री, ८, ९ दैवी बृहती, १३ साम्नी गायत्री १६, १७ याजुष्युष्णिक्, १८ याजुषी पङ्क्तिः ॥

मनुष्यप्रयत्नोपदेशः—मनुष्य के लिये प्रयत्न का उपदेश ॥

एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥१॥
प्रतीपं प्रातिं सुत्वनम् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पद पाठ के लिये सूचना सूक्त १२७ देखो]

भाषार्थः—(एताः) यह (अश्वाः) व्यापक प्रजायें (प्रतीपम्) प्रत्यक्ष व्यापक (सुत्वनम् प्राति) ऐश्वर्य वाले [परमेश्वर] के लिये (आ) आकर (प्लवन्ते) चलती हैं ॥१, २॥

भावार्थः—संसार के सब पदार्थ उत्पन्न होकर परमेश्वर की आज्ञा में वर्तमान हैं ॥१, २॥

तासामेका हरिक्निका ॥३॥

हरिक्निके किमिच्छसि ॥४॥

साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥५॥

क्वाहतं परास्यः ॥६॥

भाषार्थः—(तासाम्) उन [व्यापक प्रजाओं] के बीच (एका) एक [स्त्री प्रजा] (हरिक्निका) मनुष्य में प्रीति करने वाली है ॥३॥ (हरिक्निके) हे मनुष्य में प्रीति करने वाली ! तू (किम्) क्या (इच्छसि) चाहती है ॥४॥ (साधुम्) साधु [कार्य साधने वाले], (हिरण्ययम्) तेजोमय (पुत्रम्) पुत्र [सन्तान] को (क्व) कहां (आहतम्) तोड़ा हुआ (परास्यः) तूने दूर फेंक दिया है ॥५, ६॥

भावार्थः—सृष्टि के बीच माता अपने पुरुष से प्रीति करके सन्तान उत्पन्न करके उन को कुमार्ग से बचा के तेजस्वी और सुमार्गी बनावे ॥३–६ ॥

यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ॥७॥

परि त्रयः ॥८॥

पृदाकवः ॥९॥

शृङ्गं धमन्त आसते ॥१०॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां (अमूः) वे (तिस्रः) तीन [माता पिता और आचार्य रूप प्रजायें] (शिंशपाः) बालक की पालने वाली हैं ॥७॥ [वहां] (त्रयः) तीन [आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक क्लेश रूप] (पृदाकवः) अजगर [बड़े सांप] (शृङ्गम्) (धमन्तः) सींग फूकते हुए [बाजे के समान फुफकार मारते हुए] (परि) अलग (आसते) बैठते हैं ॥८–१०॥

भावार्थः—जिस कुल में माता पिता और आचार्य सुशिक्षक हैं, वहां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तान सदा सुखी रहते हैं, और जैसे अजगर सांप अपने श्वास से खेंचकर प्राणियों को खा जाते हैं, वैसे ही विद्वान् सन्तानों को तीनों क्लेश नहीं सताते हैं ॥७-१०॥

अयन्मुहा तें अर्वाह्ः ॥११॥

स इच्छकं सघाघते ॥१२॥

सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति ॥१३॥

पुमाँ कुस्ते निमिच्छसि ॥१४॥

भाषार्थः—[हे स्त्री !] (अर्वाहः) ज्ञान पहुंचाने वाला [मनुष्य] (महा) महत्त्व के साथ (ते) तेरे लिये (अयत्) प्राप्त होता है ॥११॥ (सः) वह [मनुष्य] (इच्छकम्) इच्छा वाले को (सघाघते) सहाय करता है ॥१२॥ (गोमीद्या) वेद वाणी जानने वाली [स्त्री] (गोगतीः) पृथिवी पर गति वाली [प्रजाओं] को (सघाघते) सहाय करती है, (इति) ऐसा [निश्चय] है ॥१३॥ [हे मनुष्य !] (पुमान्) रक्षक पुरुष होकर (कुस्ते) मिलाप के व्यवहार में (निमिच्छसि) चलता रहता है ॥१४॥

भावार्थः - स्त्री पुरुष मिलकर धर्म व्यवहार में एक दूसरे के सहायक होकर संसार का उपकार करें ॥११—१४॥

पल्प बद्ध वयो इति ॥१५॥

बद्धं वो अघा इति ॥१६॥

भाषार्थः - (पल्व) हे रक्षक ! (बद्ध) हे प्रबन्ध करने वाले ! [पुरुष] (वयः इति) यह जीवन है ॥१५॥ (अघाः) हे पापियो ! (वः) तुम्हारा (बद्ध इति) यह [प्राणी] प्रबन्ध करने वाला है ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्य सावधान जितेन्द्रिय होकर पाप से बचने का उपाय करते रहें ॥१५, १६॥

अजागार केविका ॥१७॥

अश्वस्य वारों गोशपद्यके ॥१८॥

भाषार्थः—(केविका) सेवा करने वाली [बुद्धि] (अजागार) जागती हुई है ॥१७॥ (अश्वस्य वारः) अश्ववार [घुड़चढ़ा, घोड़ालेने को] (गोशपद्यके) गौओं के सोने के स्थान में [व्यर्थ है] ॥१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सेवा करने वाली अर्थात् उचित काम में लगी हुई बुद्धि तीव्र होती है, घुड़चढ़े को उत्तम घोड़ा घुड़साल में मिलता है, गोशाला में नहीं ॥१७, १८॥

श्येनीपती सा ॥१९॥

अनामयोपजिह्विका ॥२०॥

भाषार्थः—(सा) वह [सेवा करने वाली बुद्धि—म० १७] (श्येनीपती) शीघ्र गति वाली प्रजाओं की स्वामिनी होकर ॥१९॥ (अनामया) नीरोग और (उपजिह्विका) उपकारी जिह्वा [वाणी] वाली है ॥२०॥

भावार्थः—उत्तम बुद्धि वाला मनुष्य शीघ्र काम करने वाला, स्वस्थ और उपकारी वचन बोलने वाला होता है ॥१९, २०॥

सूक्तम् ॥१३०॥

१—२० ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ याजुषी पङ्क्तिः, २, ३, ४, १८ याजुषी गायत्री; ५, ६, ८, ९, ११, १२, १४—१७, १९, २० प्राजापत्या गायत्री, ७ याजुषी बृहती, १० याजुष्युष्णिक्, १३ दैवी पङ्क्तिः ॥

मनुष्यपुरुषार्थोपदेशः—मनुष्य के लिये पुरुषार्थ का उपदेश ॥

को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥१॥

को असिद्याः पयः ॥२॥

को अर्जुन्याः पयः ॥३॥

कः कार्ष्ण्याः पयः ॥४॥

एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥५॥

कुहाकं पक्वकं पृच्छ ॥६॥

[सूचना—पदपाठ के लिये सूचना सूक्त १२७ देखो ॥]

भाषार्थः—(कः) कौन मनुष्य (बहुलिमा) बहुत से (इषूनि) इष्ट वस्तुओं को (अर्य) पावे ॥१॥ (कः) कौन (असिद्याः) बिना बन्धन वाली क्रिया के (पयः) अन्न को ॥२॥ (कः) कौन (अर्जुन्याः) उद्यम वाली क्रिया के (पयः) अन्न को ॥३॥ (कः) कौन (कार्ष्ण्याः) आकर्षण वाली क्रिया के (पयः) अन्न को [पावे] ॥४॥ (एतम्) इस [प्रश्न] को (कुहम्) अद्भुत स्वभाव वाले मनुष्य से (पृच्छ) पूछ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृच्छ) पूछ ॥५॥ (कुहाकम्) अद्भुत स्वभाव वाले, (पक्वकम्) पक्वे [दृढ़ चित्त वाले] से (पृच्छ) पूछ ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य विवेकी, क्रिया कुशल विद्वानों से शिक्षा लेता हुआ विद्या बल से चमत्कारी, नवीन नवीन आविष्कार करके उद्योगी होवे ॥१—६॥

यवा॑नो यति॒स्वभिः॑ कुभिः ॥७॥

अकु॑प्यन्तः कुपा॑यकुः ॥८॥

आम॑णको मणं॑त्सकः ॥९॥

देव॑ त्वप्रतिसूर्य ॥१०॥

भाषार्थः—(यवानः) युवा [बलवान्] (यतिस्वभिः) यतियों [यत्न करने वालों] में प्रकाशमान, (कुभिः) ढकलेने वाला [प्रताप वाला] ॥७॥ (अकुप्यन्तः) कोप नहीं करने वाला, (कुपायकुः) पृथिवी की रक्षा करने वाला ॥८॥ (आमणकः) उपदेश करने वाला और (मणत्सकः) विद्वानों में शक्तिमान् होकर ॥९॥ (देव) हे विद्वान्! (त्वप्रतिसूर्य) तू सूर्य समान [प्रतापी] है ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य शरीर और आत्मा से बलवान् होकर भूमि की रक्षा और विद्या की बढ़ती करे ॥७—१०॥

एनं॑श्चिपङ्क्ति॒का ह॒विः ॥११॥

प्रदु॑द्रु॒दो मघा॑प्रति ॥१२॥

भाषार्थः—(एनश्चिपङ्क्तिका) पाप के नाश का फैलाने वाला (हविः) देन लेन [होवे] ॥११॥ (प्रदुद्रुदः) अच्छे प्रकार गति देने वाला व्यवहार (मघाप्रति) धनों के लिये [होवे] ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य सत्य से व्यवहार कर के धन प्राप्त करे ॥११—१२॥

शृङ्ग उत्पन्न ॥१३॥

मा त्वा॑भि सखा॑ नो विदन् ॥१४॥

भाषार्थः—[हे शत्रु!] तू (शृङ्गः) हिंसक (उत्पन्न) उत्पन्न है ॥१३॥ (त्वा) तुझ से (नः) हमारा (सखा) सखा [साथी] (मा अभि विदन्) कभी न मिले ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य अपने मित्रों को दुष्टों से कभी न मिलने देवे ॥१३, १४॥

वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥१५॥

इरावेदुमयं दत ॥१६॥

अथो इयन्नियन्निति ॥१७॥

अथो इयन्निति ॥१८॥

अथो श्वा अस्थिरो भवन् ॥१९॥

उयं यकांशलोकका ॥२०॥

भाषार्थः—(वशायाः) कामना योग्य स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (आ यन्ति) वे [मनुष्य] आकर पहुंचते हैं ॥१५॥ (इरावेदुमयम्) भूमि के ज्ञान वाला व्यवहार [उस को] (दत) तुम दो ॥१६॥ (अथो) फिर वह [पुत्र] (इयन्—इयन्) चलता हुआ, चलता हुआ [होवे], (इति) ऐसा है ॥१७॥ (अथो) फिर वह (इयन्) चलता हुआ [होवे], (इति) ऐसा है ॥१८॥ (अथो) अथवा (श्वा) कुत्ते [के समान] (अस्थिरः) चंचल स्वभाव वाला (भवन्) होता हुआ ॥१९॥ वह (उयम्) निश्चय करके (यकांशलोकका) यातना [घोर पीड़ा] वाले भाग का दिखाने वाला [होवे] ॥२०॥

भावार्थः—विद्वान् लोग गुणवती स्त्री के सन्तानों को उत्तम शिक्षा देकर महान् विद्वान् और उद्योगी बनावें। ऐसा न करने से बालक निर्गुणी और पीड़ा दायक होकर कुत्ते के समान अपमान पाते हैं ॥१५—२०॥

सूक्तम् ॥१३१॥

१—२० ॥ प्रजापतिर्वरुणो वा देवता ॥ १—४, ६—११, १४, १८, १९ प्राजापत्या गायत्री, ५ अनुष्टुप्, १२, १३ दैवी बृहती, १५, १६ याजुषी गायत्री, १७ दैवी पङ्क्तिः, २० याजुष्युष्णिक् ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश ॥

आमिनोनिति भद्यते ॥१॥

तस्य अनु निभञ्जनम् ॥२॥

वरुणो याति वस्वभिः ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतं वा भारती शवः ॥४॥

शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ॥

शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ॥५॥

भाषार्थः—(आ—अमिनोन्) उन [विद्वानों] ने [विघ्न को] सब ओर से हटाया है, (इति) यह (भद्यते) कल्याणकारी है ॥१॥ (तस्य) हिंसक विघ्न का (अनु) लगातार (निभञ्जनम्) विनाश होवे ॥२॥ (वरुणः) श्रेष्ठ [धनी पुरुष] (वस्वभिः) श्रेष्ठ वस्तुओं के साथ (याति) चलता है ॥३॥ (शतम्) सौ (भारती) पोषण करने वाली विद्यायें (वा) और (शवः) बल हैं ॥४॥ (शतम्) सौ (हिरण्ययाः) सुनहरे (आश्वाः) घोड़े हैं। (शतम्) सौ (हिरण्ययाः) सुनहरे (रथ्याः) रथ हैं। (शतम्) सौ (हिरण्ययाः) सुनहरी (कुथाः) हाथी की झूलें हैं। (शतम्) सौ (हिरण्ययाः) सुनहरे (निष्काः) हार हैं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्वज विद्वानों के समान विघ्नों को हटाकर अनेक प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥१—५॥

अहल कुश वर्त्तक ॥६॥

शफेन इव ओहते ॥७॥

आय वनेनती जनी ॥८॥

वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥९॥

इदं मह्यं मदूरिति ॥१०॥

ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥११॥

भाषार्थः—(अहल) हे प्रकाशमान ! (कुश) हे पाप नाशक ! (वर्त्तक) हे प्रवृत्ति करने वाले ! [मनुष्य] ॥६॥ (शफेन इव) खुर से जैसे, (ओहते) वह [शत्रु] मारा जाता है ॥७॥ (वनेनती) उपकार में झुकने वाली (जनी) माता होकर (आय) तू आ ॥८॥ (वनिष्ठाः) अत्यन्त उपकारी लोग (न) नहीं (अव गृह्यन्ति) रुकते हैं ॥९॥ (इदम्) यह [वचन] (मह्यम्) मेरे लिये (मदूः) आनन्द देने वाली नीति है—(इति) यह निश्चय है ॥१०॥ (ते) वे (वृक्षाः) स्वीकार करने योग्य पुरुष (सह) मिलकर (तिष्ठति) रहते हैं ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सब मनुष्य और स्त्रियां सदा उपकार करके क्लेशों से बचें और परस्पर प्रीति से रहें ॥६—११॥

पाकं बलिः ॥१२॥

शकं बलिः ॥१३॥

अश्वत्थ खदिरो धवः ॥१४॥

अरदुपरम ॥१५॥

शयो हत इव ॥१६॥

भावार्थः—(पाक) हे रक्षक श्रेष्ठ पुरुष ! (बलिः) बलि [भोजन आदि की भेंट होवे] ॥१२॥ (शक) हे समर्थ ! (बलिः) बलि [राजा का ग्राह्य कर आदि का लेना होवे] ॥१३॥ (अश्वत्थ) हे अश्वत्थामा ! [बलवानों में ठहरने वाले वीर] (खदिरः) दृढ़ चित्त वाला (धवः) मनुष्य [होवे] ॥१४॥ (अरदुपरम) हे हिंसा से निवृति वाले ! ॥१५॥ (शयः) सांप [के समान शत्रु] (हतः) मारा हुआ (इव) जैसे है ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्य उचित रीति से भोजन आदि का उपहार वा दान और कर आदि का ग्रहण करके दृढ़चित्त होकर शत्रुओं का नाश करे ॥१२—१६॥

व्याप पूरुषः ॥१७॥

अदूहमित्यां पूषकम् ॥१८॥

अत्यर्धर्च परस्वतः ॥१९॥

दौव हस्तिनो दृती ॥२०॥

भावार्थः—(अत्यर्धर्च) हे अत्यन्त बढ़ी हुई स्तुति वाले ! (पूरुषः) इस पुरुष ने (अदूहमित्याम्) अनष्ट ज्ञान के बीच (परस्वतः) पालन सामर्थ्य वाले [मनुष्य] के (पूषकम्) बढ़ती करने वाले व्यवहार को (व्याप) फैलाया है ॥१७—१९॥ [जैसे] (हस्तिनः) धोंकनी वाले की (दौव) दोनों (दृती) खालें [धोंकनी फैलती हैं] ॥२०॥

भावार्थः— मनष्य विद्या आदि की प्राप्ति से संसार का उपकार कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अपनी कीर्ति फैलावे, जैसे लोहार धौंकनी की खालों को वायु से फुलाकर फैलाता है ॥२०॥

सूक्तम् ॥१३२॥

१—१६ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १—६, १२, १६ प्राजापत्या गायत्री. १०, १४ आसुरी जगती, ११, १३ दैवी जगती, १५ याजुषी गायत्री ॥

परमात्मगुणोपदेशः—परमात्मा के गुणों का उपदेश ॥

आदलाबुकमेककम् ॥१॥
अलाबुकं निखातकम् ॥२॥
कर्करिको निखातकः ॥३॥
तद् वात उन्मथायति ॥४॥

[पद पाठ के लिये सूचना सूक्त १२७ देखो ॥]

भाषार्थः—[वह ब्रह्म] (अलाबुकम्) न डूबने वाला (आत्) और (एककम्) अकेला है ॥१॥ (अलाबुकम्) न डूबने वाला और (निखातकम्) दृढ़ जमा हुआ है ॥२॥ [वह परमात्मा] (कर्करिकः) बनाने वाला (निखातकः) दृढ़ जमा हुआ है ॥३॥ (तत्) उस [ब्रह्म] को (वातः) वायु (उन्मथायति) अच्छे प्रकार मथन [मनन] करता है ॥४॥

भावार्थः—वह ब्रह्म निराधार अकेला होकर सब का आधार और बनाने वाला है, वायु आदि पदार्थ उस की आज्ञा में चलते हैं। सब मनुष्य उसकी उपासना करें ॥१—४॥

कुलायं कृणवादिति ॥५॥
उग्रं वनिषदाततम् ॥६॥
न वनिषदनाततम् ॥७॥

भाषार्थः—(कुलायन्) स्थानों को (कृणवात्) वह [परमात्मा] बनाता है, (इति) ऐसा [मानते हैं] ॥५॥ (उग्रम्) दृढ़ और (आततम्) सब ओर फैला हुआ पदार्थ (वनिषत्) यह [मनुष्य] मांगे ॥६॥ (अनाततम्) बिना फैले हुए पदार्थ को (न वनिषत्) वह न मांगे ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा ने यह सब बड़े बड़े लोक बनाये हैं। मनुष्य अपने हृदय को सदा बढ़ाता जावे, कभी संकुचित न करे ॥५—७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क एषां कर्करीं लिखत् ॥८॥

क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥९॥

यदीयं हनत् कथं हनत् ॥१०॥

देवी हनत् कुहनत् ॥११॥

पर्यागारं पुनःपुनः ॥१२॥

भाषार्थः—(कः) कौन (एषाम्) इनके बीच (कर्करीं) कर्करी [झारी जल-पात्र, वा जलतरंग आदि बाजा] (लिखत्) छेड़े [बजावे] ॥८॥ (कः) कौन (एषाम्) इन के बीच (दुन्दुभिम्) दुन्दुभि [ढोल] (हनत्) बजावे ॥९॥ (यदि) जो (इयम्) यह [प्रजा, पुरुष वा स्त्री] (हनत्) बजावे, (कथम्) कैसे (हनत्) बजावे ॥१०॥ (देवी) देवी [उत्तम प्रजा, मनुष्य वा स्त्री] (पर्यागारम्) घर घर पर (पुनः पुनः) वार वार (हनत्) बजावे और (कुहनत्) चमत्कार दिखावे ॥११—१२॥

भावार्थः—चुने हुए विद्वान् मनुष्य और विदुषी स्त्रियां संसार में उत्तम उत्तम बाजों के साथ वेद विद्या का गान करके आत्मा और शरीर की बल बढ़ाने वाली चमत्कारी क्रियाओं का प्रकाश करें ॥८—१२॥

त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥१३॥

हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ॥१४॥

द्वौ वा ये शिशवः ॥१५॥

नीलशिखण्डवाहनः ॥१६॥

भाषार्थः—(उष्ट्रस्य) प्रतापी [परमात्मा] के (त्रीणि) तीन (नामानि) नाम ॥१३॥ (हिरण्यः) हिरण्य [तेजोमय], (वा) और (द्वौ) दो (नीलशिखण्ड-वाहनः) नीलशिखण्ड [नीलों निधियों वा निवास स्थानों का पहुँचाने वाला] तथा वाहन [सब का ले चलने वाला] हैं, (इति) ऐसा (ये शिशवः) बालक हैं, (एके) वे कोई कोई (अब्रवीत्) कहते हैं ॥१४–१६॥

भावार्थः—परमात्मा अपने अनन्त गुण, कर्म स्वभाव के कारण नामों की गणना में नहीं आ सकता है, जो मनुष्य उसके केवल "हिरण्य" आदि नाम बताते हैं, वे बालक के समान थोड़ी बुद्धि वाले हैं ॥१३—१६॥

पण्डित सेवकलाल कृष्णदास संशोधित पुस्तक में मन्त्र १३—१६ का पाठ इस प्रकार है॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥१३॥ हिरण्यमित्येकमब्रवीत् ॥१४॥

द्वे वा यशः शवः ॥१५॥ नीलशिखण्डो वा हनत् ॥१६॥

(उष्ट्रस्य) प्रतापी [परमात्मा] के (त्रीणि) तीन (नामानि) नाम हैं ॥१३॥ (एकम्) एक (हिरण्यम्) हिरण्य [तेजोमय], (वा) और (द्वे) दो (यशः) यश [कीर्ति] तथा (शवः) बल है, (इति) ऐसा (अब्रवीत्) [वह, मनुष्य] कहता है ॥१४, १५॥ (नीलशिखण्डः) नील शिखण्ड [नीलों निधियों वा निवास स्थानों का पहुंचाने वाला परमेश्वर] (वा) निश्चय करके (हनत्) व्यापक है [हन गतौ, गच्छति व्याप्नोति] ॥१६॥

सूक्तम् ॥१३३॥

१—६ ॥ कुमारी देवता ॥ १-३, ५ निचृदनुष्टुप्, ४, ६ अनुष्टुप् ॥

स्त्रीणां कर्तव्योपदेशः—स्त्रियों के कर्तव्य का उपदेश ॥

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः ।

न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥१॥

[पदपाठ के लिये सूचना सूक्त १२७ देखो ॥]

भाषार्थः—(द्वौ) दोनों (किरणौ) प्रकाश की किरणें [शारीरिक बल और आत्मिक पराक्रम] (विततौ) फैले हुए हैं, (तौ) उन दोनों को (पूरुषः) पुरुष [देह-धारी जीव] (आ) सब ओर से (पिनष्टि) पीसता है [सूक्ष्म रीति से काम में लाता है]। (कुमारि) हे कुमारी ! [कामना योग्य स्त्री] (वै) निश्चय करके (तत्) वह (तथा) वैसा (न) नहीं है, (कुमारि) हे कुमारी ! (यथा) जैसा (मन्यसे) तू मानती है ॥१॥

भावार्थः—संसार में सब प्राणी शरीर और आत्मा की स्वस्थता से सूक्ष्म विचार और कर्म के द्वारा उन्नति करते हैं, स्त्री आदि भी समय को न खोकर सदा पुरुषार्थ करें ॥१॥

मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते ।

न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥२॥

भाषार्थः—(मातुः ते) तुझ माता के (द्वौ) दोनों (किरणौ) प्रकाश की किरणें [शारीरिक बल और आत्मिक पराक्रम] (पुरुषान्) पुरुषों [शरीर धारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवों] को (ऋते) सत्य शास्त्र में (निवृत्तः) प्रकाशमान करते हैं। (कुमारि) हे कुमारी !···[म० १] ॥२॥

भावार्थः—माता आदि से ही सुशिक्षा पाकर सब सन्तान पुरुषार्थी होते हैं। स्त्री आदि···[म० १] ॥२॥

निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥३॥

भाषार्थः—(मध्यमे) हे मध्यस्थ होने वाली ! [स्त्री] (द्वौ) दोनों (कर्णकौ) कोमल कानों को (निगृह्य) वश में करके [सुनने में लगवाकर] (निरायच्छसि) [सन्तानों को] तू नियम में चलाती है। (कुमारि) हे कुमारी !······[म० १] ॥३॥

भावार्थः—माता आदि ध्यान दिलाकर बालकों को सुशिक्षा देवें, स्त्री आदि···[म० १] ॥३॥

भगवान् यास्क का वचन है—निरु० २।४ ॥

य आतृणत्त्यवितथेन कर्णावदुःखं कुर्वन्नमृतं सम्प्रयच्छन्।
तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत् कतमच्चनाह ॥

(यः) जो [आचार्य] (अदुःखं कुर्वन्) दुःख न करता हुआ, (अमृतं सम्प्रयच्छन्) अमृत देता हुआ (अवितथेन) सत्य [वेदज्ञान] से (कर्णौ) दोनों कानों को (आतृणत्ति) खोल देता हैं, (तम्) उस को (मातरं पितरं च) माता और पिता (मन्येत) वह [शिष्य] माने, (तस्मै) उस से (कतमच्चनाह) किसी प्रकार कभी (न द्रुह्येत) बुराई न करे ॥

उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥४॥

भाषार्थः—(उत्तानायै) बड़े उपकार वाली नीति के लिये (तिष्ठन्ती) ठहरती हुई तू (शयानायै) सोती हुई [आलस्य वाली] रीति को (वा) निश्चय करके (अव) निरादर करके (गूहसि) ढांप देती है। (कुमारि) हे कुमारी······[म० १] ॥४॥

भावार्थः—स्त्री आदि अपनी चतुराई से कुरीतें छोड़कर सुरीतें चलावें, स्त्री आदि···[म० १] ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥५॥

भावार्थः—(श्लक्ष्णायाम्) चिकनी [कोमल] और (श्लक्ष्णिकायाम्) मनोहर वाणी में (श्लक्ष्णम्) स्नेह [प्रेम] को (एव) निश्चय करके (अव) शुद्धि के साथ (गूहसि) तू गुहा [हृदय] में रखती है। (कुमारि) हे कुमारी !...... [म० १] ॥५॥

भावार्थः—स्त्री आदि मधुर मनोहर वाणी से शुद्ध प्रेम के साथ उपदेश करें, स्त्री आदि···[म० १]॥५॥

मनु महाराज ने कहा है—मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १५६ ॥

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥

(भूतानाम्) प्राणियों की (अहिंसया एव) अहिंसा [दुःख न देने] से ही (श्रेयः) कल्याण कारी (अनुशासनम्) शासन वा उपदेश (कार्यम्) करना चाहिये। (च) और (धर्मम् इच्छता) धर्म चाहने वाले करके (वाक् एव) वाणी भी (मधुरा) मधुर, (श्लक्ष्णा) मनोहर (प्रयोज्या) बोलनी चाहिये ॥

अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥६॥

भावार्थः—(भ्रंशदन्तर्लोममति) भीतर पड़े हुए केश आदि पदार्थ वाले (ह्रदे) जलाशय में (अवश्लक्ष्णम् इव) जैसे गदला रूप [दीखता है]। (कुमारि) हे कुमारी! [कामना योग्य स्त्री] (वै) निश्चय करके (तत्) वह (तथा) वैसा (न) नहीं है, (कुमारि) हे कुमारी (यथा) जैसा (मन्यसे) तू मानती है ॥६॥

भावार्थः—गदले पानी में गदला रूप दीखता है, और शुद्ध में शुद्ध, वैसे ही स्त्री आदि सब लोग मानसिक मैल तज कर शुद्ध व्यवहार करें ॥६॥

सूक्तम् ॥१३४॥

१—६ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, ३, ५, ६ निचृत् साम्नी पङ्क्तिः, २ साम्नी पङ्क्तिः, ४ विराट् साम्नी पङ्क्तिः ॥

बुद्धिवर्धनोपदेशः—बुद्धि बढ़ाने का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अरालागुदभर्त्सथ ॥१॥

[पद पाठ के लिये सूचना सूक्त १२७ देखो ॥]

भाषार्थः—(इह) यहां (इत्थ) इस प्रकार (प्राक्) पूर्व में, (अपाक्) पश्चिम में, (उदक्) उत्तर में और (अधराक्) दक्षिण में—(अरालागुदभर्त्सथ) हिंसा की गति का धिक्कारने वाला परमात्मा है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा को सब स्थान और सब काल में वर्तमान जानकर मनुष्य हिंसाकर्म से बचे ॥१॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अथ० २० । १२० । १ ॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—वत्साः पुरुषन्त आसते ॥२॥

भाषार्थः—(इह) यहां (इत्थ) इस प्रकार···[म० १]—(वत्साः) प्यारे बच्चे (पुरुषन्तः) पुरुष होते हुए (आसते) ठहरते हैं ॥२॥

भावार्थः—सब स्थान और सब काल में मनुष्य पुरुषार्थ करें ॥२॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—स्थालीपाको वि लीयते ॥३॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—स वै पृथु लीयते ॥४॥

भाषार्थः—(इह) यहां (इत्थ) इस प्रकार···[म० १]—(स्थालीपाकः) स्थाली पाक [बटले वा कड़ाही में पका हुआ भोजन पदार्थ] (वि) विविध प्रकार (लीयते) मिलता है ॥३॥ (इह) यहां (इत्थ) इस प्रकार···[म० १]—(सः) वह [भोजन पदार्थ] (वै) निश्चय करके (पृथु) विस्तार से (लीयते) मिलता हैं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य को सब स्थान में सदा भोजन आदि पदार्थ प्राप्त करना चाहिये ॥३, ४॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—आष्टे लाहणि लीशाथी ॥५॥

भाषार्थः—(इह) यहां (इत्थ) इस प्रकार···[म० १]—(लाहणि) प्रेरक बुद्धि (लीशाथी) चलती हुई (आष्टे) फैलती है ॥५॥

भावार्थः—सब विद्वान् अपनी बुद्धि को सब ओर चलाकर संसार में विचरें ॥५॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अक्ष्लिली पुच्छिलीयते ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इह) यहां (इत्थ) इस प्रकार (प्राक्) पूर्व में, (अपाक्) पश्चिम में, (उदक्) उत्तर में और (अधराक्) दक्षिण में—(अक्षिज्जली) व्यवहार ग्रहण करने वाली बुद्धि (पुच्छिलीयते) प्रसन्न होती है ॥६॥

भावार्थः मनुष्य अपनी बुद्धि को सब कामों में प्रविष्ट करके प्रसन्न रहे ॥६॥

सूक्तम् ॥१३५॥

१—१३ ॥ प्रजापतिरिन्द्रश्च देवते ॥ १, ५, ६ स्वराडार्ष्यनुष्टुप्, २ भुरिगनुष्टुप्, ३ आर्षी पङ्क्तिः । ४ आर्ष्युष्णिक्, ७ भुरिगार्षी त्रिष्टुप्, ८ भुरिग् गायत्री, ९ विराडार्षी पङ्क्तिः, १०, १२, १३ अनुष्टुप्, ११ निचृदार्ष्यनुष्टुप् ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः ।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोऽथामो दैव ॥१॥

[पद पाठ के लिये सूचना सूक्त १२७ देखो ।]

भाषार्थः—(भुक्) पालने वाला [परमात्मा] (अभिगतः) सामने पाया गया है—(इति) ऐसा है, (शल्) शीघ्रगामी वह (अपक्रान्तः) सुख से आगे चलता हुआ है—(इति) ऐसा है, (फल्) सिद्धि करने वाला वह (अभिष्ठितः) सब ओर ठहरा हुआ है—(इति) ऐसा है । (जरितः) हे स्तुति करने वाले (दैव) परमात्मा को देवता मानने वाले विद्वान् ! (दुन्दुभिम्) ढोल को (आहननाभ्याम्) दो डंकों से (आ) सब ओर (उथामः) हम उठावें [बल से बजावें] ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर के उपकारों को देखकर डंके की चोट प्रयत्नी और उपकारी होवें ॥१॥

कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहिं पादम् ।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् ॥२॥

भाषार्थः—(रजनि) रात्रि में [जैसे] (कोशबिले) कोश [सोना चांदी रखने] के कुण्ड के भीतर (ग्रन्थेः) गांठ के (धानम्) रखने को, [अथवा जैसे] (उपानहि) जूते में (पादम्) पैर को, [वैसे ही] (जन्या) मनुष्यों के बीच (उत्तमाम्) उत्तम (जनिमाम्) जन्म लक्ष्मी [शोभा वा ऐश्वर्य], (अनुत्तमाम्) अति उत्तम गति और (जनीन्) उत्पन्न पदार्थों को (वर्त्मन्) मार्ग में (यात्) [मनुष्य] प्राप्त होवे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे रात्रि में कोशागार में रखकर सोने चांदी की, और जूता पहिनकर पैर की रक्षा करते हैं, वैसे ही मनुष्य श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होकर उत्तम प्रवृत्ति करके उन्नति करें ॥२॥

अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् । पिपीलिका-
वटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोऽथामो दैव ॥३॥

भावार्थः—(अलाबूनि) तूंबी आदि बेलें, (पृषातकानि) पृषातक [वृक्ष विशेष], (अश्वत्थपलाशम्) पीपल और पलाश वा ढाक [वृक्ष विशेष], (पिपीलिका) पिपीलिका [वृक्ष विशेष], (वटश्वसः) वटश्वस [वृक्ष विशेष] (विद्युत्) बिजुली [वृक्ष विशेष], (स्वापर्णशफः) स्वापर्णशफ [वृक्ष विशेष] और (गोशफः) गोशफ [वृक्ष विशेष] हैं, [उन सब में] (जरितः) हे स्तुति करने वाले (दैव) परमात्मा को देवता मानने वाले विद्वान्! (आ) सब ओर से (उथामः) हम उठते हैं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि वाटिका, खेत आदि में अनेक लता बेलों और वृक्षों को लगाकर ठीक ठीक उपकार लेकर सुखी होवें ॥३॥

वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर ।
सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ॥४॥

भावार्थः—(इमे देवाः) इन विद्वानों ने (वि) विविध प्रकार (अक्रंसत) पैर बढ़ाया है, (अध्वर्यो) हे हिंसा न करने वाले विद्वान् (क्षिप्रम्) शीघ्र (प्रचर) आगे बढ़। और (प्रखुदसि) बड़े आनन्द में (असि) तू हो, (असि) तू हो, [यह वचन] (गवाम्) स्तोताओं [गुण व्याख्याताओं] का (सुसत्यम् इत्) बड़ा ही सत्य है ॥४॥

भावार्थः—पहिले विद्वान् लोग काम करने से बड़े हो गये हैं, वैसे ही हम भी विद्वानों का वचन मानकर आगे बढ़ें ॥४॥

पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोऽथामो दैव ।
होता विष्टीमेन जरितरोऽथामो दैव ॥५॥

भावार्थः—(पत्नी) पत्नी (यत्) यहां पर (यक्ष्यमाणा) पूजी जाती हुई (पत्नी) पत्नी (दृश्यते) दीखती है, [वहाँ] (जरितः) हे स्तुति करने वाले (दैव)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा को देवता मानने वाले विद्वान् ! (आ) सब ओर से (उथामः) हम उठते हैं। (विष्ठीमेन) विशेष कोमलपन के साथ (होता) तू दाता है, (जरितः) हे स्तुति करने वाले (दैव) परमात्मा को देवता मानने वाले विद्वान् ! (आ) सब ओर से (उथामः) हम उठते हैं ॥५॥

भावार्थः—पत्नी और पति गुणवान् और परमेश्वरभक्त होकर आनन्द भोगें ॥५॥

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ॥६॥

भाषार्थः—(आदित्याः) अखण्ड ब्रह्मचारियों ने (ह) ही, (जरितः) हे स्तुति करने वाले ! (अङ्गिरोभ्यः) विज्ञानी पुरुषों के लिये (दक्षिणाम्) दक्षिणा [दान वा प्रतिष्ठा] को (अनयन्) प्राप्त कराया है। (ताम्) उस [दक्षिणा] को (ह) ही, (जरितः) हे स्तुति करने वाले ! (प्रति आयन्) उन्हों ने प्रत्यक्ष पाया है, (ताम्) उस [दक्षिणा] को (उ) निश्चय करके (ह) ही, (जरितः) हे स्तुति करने वाले ! (प्रति आयन्) उन्हों ने प्रत्यक्ष पाया है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्व विद्वानों के समान विद्वानों द्वारा उत्तम शिक्षा पाकर अवश्य प्रतिष्ठित होवें ॥६॥

तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः ।
अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः ॥७॥

भाषार्थः—(ताम्) उस [दक्षिणा] को (ह) ही, (जरितः) हे स्तुति करने वाले ! (नः) हमारे लिये (प्रति अगृभ्णन्) उन्हों ने [विज्ञानियों ने—म० ६] प्रत्यक्ष पाया है, (ताम्) उस को (उ) निश्चय करके (ह) ही, (जिरितः) हे स्तुति करने वाले ! (नः) हमारे लिये (प्रति अगृभ्णः) तू ने प्रत्यक्ष पाया है। (न) अभी (अहानेतरसम्) व्याप्ति में बल रखने वाले व्यवहार को, (वि) विविध (चेतनानि) चेतनाओं को, और (न) अभी (यज्ञानेतरसम्) यज्ञ [देवपूजा, संगति करण और दान] में बल रखने वाले व्यवहार को (पुरोगवामः) हम आगे होकर पावें ॥७॥

भावार्थः—जैसे पूर्वज महात्माओं ने श्रेष्ठ कर्मों से प्रतिष्ठा पाई है, वैसे ही आप और हम मिलकर विज्ञान द्वारा बड़ाई पावें ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः ।
उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥८॥

भाषार्थः—(आशुपत्वाः) हे शीघ्रगामी पुरुषो ! (श्वेतः) श्वेत वर्ण वाला [सूर्य] (उत) भी (यविष्ठः) अत्यन्त बलवान् होकर (पद्याभिः) चलने योग्य गतियों से (उतो) निश्चय करके (उत) अवश्य (ईम्) प्राप्ति योग्य (मानम्) परिमाण को (आशु) शीघ्र (पिपर्ति) पूरा करता है ॥८॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने मार्ग में चलकर संसार का उपकार करता है, वैसे ही मनुष्य वेद मार्ग पर चलकर शीघ्र उपकार करें ॥८॥

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेऽनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥९॥

भाषार्थः—[हे शूर सभापति !] (ते) वे (आदित्याः) अखण्ड ब्रह्मचारी, (रुद्राः) ज्ञान दाता और (वसवः) श्रेष्ठ विद्वान् लोग (त्वे अनु) तेरे पीछे पीछे हैं, (अङ्गिरः) हे विज्ञानी पुरुष ! (इदम्) इस (राधः) धन को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (गृभ्णीहि) तू ग्रहण कर । (इदम्) यह (राधः) धन (विभु) व्यापक और (प्रभु) बलयुक्त है, (इदम्) यह (राधः) धन (बृहत्) बहुत और (पृथु) विस्तीर्ण है ॥९॥

भावार्थः—शूर प्रतापी सभापति की सुनीति से सब लोग ब्राह्मण आदि चारों वर्ण अपना अपना कर्तव्य पूरा करें और विद्या और धन की वृद्धि से संसार में सुख बढ़ावें ॥९॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अथ० ११ । ६ । १३, और १९ । ११ । ४ ॥

देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।
युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥१०॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (देवाः) विद्वान् लोग (आसुरम्) बुद्धिमत्ता (ददतु) देवें, (तत्) वह (वः) तुम्हारे लिये (सुचेतनम्) सुन्दर ज्ञान (अस्तु) होवे । (युष्मान्) तुम को वह (दिवेदिवे) दिन दिन (अस्तु) होवे, [उस को] (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (एव) ही (गृभायत) तुम ग्रहण करो ॥१०॥

भावार्थः—सब मनुष्य विद्वानों से शिक्षा लेकर सदा आनन्द पावें ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः।
विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥११॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (त्वम्) तू ने (शर्म) शरण और (हव्यम्) हव्य [विद्वानों के योग्य अन्न] (पारावतेभ्यः) पार और अवार देश वाले लोगों के लिये (रिणाः) पहुंचाया है। (स्तुवते) स्तुति करने वाले (विप्राय) बुद्धिमान् के लिये (वसुवनिम्) धनों का सेवन (दुरश्रवसे) दुष्ट अपयश मिटाने को (वह) प्राप्त करा ॥११॥

भावार्थः—राजा दूर और समीप वाली प्रजा को शरण में रख कर विद्या और धन से उन की उन्नति करे ॥११॥

संहिता के (शर्मरिणाः) एक पद के स्थान पर [शर्म रिणाः] दो पद मान-कर हम ने अर्थ किया है॥

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ॥१२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (त्वम्) तू ने (अस्मै) इस (छिन्नपक्षाय) कटे पंख वाले, (वञ्चते) चलते हुए (कपोताय) कबूतर को (पक्वम्) पका हुआ (श्यामाकम्) श्यामा [समा अन्न], (पीलु) पीलु [फल विशेष] (च) और (वाः) जल (बहुः) बहुत वार (अकृणोः) किया है ॥१२॥

भावार्थः—जैसे पंख कटे कबूतर को अन्न और जल देकर पुष्ट करते हैं, वैसे ही राजा दीन दुःखियों को अन्न आदि देकर सुखी करे ॥१२॥

अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया।
इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥१३॥

भाषार्थः—(अरंगरः) पूरा विज्ञानी पुरुष (त्रेधा) तीन प्रकार से [स्थान, नाम और मनुष्य आदि जन्म से] (वरत्रया) रस्सी से (बद्धः) बंधा हुआ (वावदीति) वार वार कहता है। (इराम्) लेने योग्य अन्न को (अह) ही (प्रशंसति) वह सराहता है और (अनिराम्) निन्दित अन्न को (अप सेधति) हटाता है ॥१३॥

भावार्थः—विद्वान् आप्त पुरुष अपना स्थान, नाम और जन्म सुधारने के लिये अधर्म को छोड़कर धर्म से अन्न आदि पदार्थ ग्रहण करे ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥१३६॥

१—१६ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, २, ५, ७—६, १५ निचृदनुष्टुप्, ३। आर्ष्यनुष्टुप्, ४ भुरिगनुष्टुप्, ६, १०, ११, १६ अनुष्टुप्, १२ निचृत् ककुभुष्णिक्, १३ भुरिगार्ष्युष्णिक्, १४ उरोबृहती ॥

राजप्रजाकर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥१॥

[पद पाठ के लिये सूचना सूक्त १२७ देखो ॥]

भाषार्थः—(यत्) जब (अस्याः) इस (अंहुभेद्याः) पाप से नाश होने वाली [प्रजा] के (कृधु) छोटे और (स्थूलम्) बड़े [पाप] को (उपातसत्) वह [राजा] नाश करता है। (अस्याः) इस [प्रजा] के (मुष्कौ इव) दोनों ही चोर [स्त्री और पुरुष चोर अथवा रात्रि और दिन के] चोर (गोशफे) गौ के खुर के गढ़े में (शकुलौ इव) दो मछलियों के समान, (एजतः) कांपते हैं [डरते हैं] ॥१॥

भावार्थः—जब राजा न्याय से सब प्रजा के छोटे बड़े अपराध को मिटाता है, तब सब स्त्री पुरुष रात्रि और दिन में पाप से कांपते हैं जैसे मछलियां थोड़े जल में घबराती हैं ॥१॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में है—२३। २८। और महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृष्ठ ३३२ में व्याख्यात है ॥

यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।
विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥२॥

भाषार्थः—(यदा) जब (स्थूलेन) बड़े (पससा) राज्य प्रबन्ध के साथ (अणौ, सूक्ष्म न्याय के बीच (मुष्कौ) दोनों चोरों [स्त्री और पुरुष चोरों वा रात्रि और दिन के चोरों] को (उप अवधीत्) वह [राजा] मार डालता है। (विष्वञ्चा) सब ओर पूजनीय (वस्या) अति श्रेष्ठ दोनों [स्त्री और पुरुष], (सिकतासु) रेत वाले देशों में (गर्दभौ एव) दो श्वेत कमलों के समान, (वर्धतः) बढ़ते हैं ॥२॥

भावार्थः—जब राजा सूक्ष्म विचार के साथ सब दुष्ट चोरों को मिटा देता है, तभी श्रेष्ठ गुणवान् स्त्री पुरुष बढ़ते हैं, जैसे बालू के स्थानों में श्वेत कमल बढ़ता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद॒ल्पि॒कास्व॑ल्पि॒का क॒र्क॑न्धूके॒वप॒द्यते॑ ।
वा॒स॒न्ति॒कमि॑व॒ तेज॑नं॒ यन्त्य॑वा॒ता॑य॒ वित्प॑ति ॥३॥

भाषार्थः—(यद्) जब (अल्पिकासु) छोटी प्रजाओं में (अल्पिका) छोटी प्रजा (कर्कन्धूके) अग्नि के झोके में (अवपद्यते) कष्ट पाती है। [तब] (वित्पति) विद्वानों के पतन में (अवाताय) दुःख मिटाने के लिये (वासन्तिकम् इव) वसन्त ऋतु में होने वाली [उत्तेजना] के समान (तेजनम्) उत्तेजना को (यन्ति) वे [शूर लोग] पाते हैं ॥३॥

भावार्थः—छोटी छोटी प्रजाओं पर अन्याय होने से बड़ों को हानि पहुंचती है, इस लिये शूर वीर पुरुष वसन्त ऋतु के समान उत्तेजित होकर शत्रुओं का नाश करें ॥३॥

यद्दे॒वासो॑ ल॒लाम॑गुं॒ प्र वि॑ष्टी॒मिन॒मावि॑षुः ।
स॒कुला॑ देदिश्यते॒ नारी॑ स॒त्यस्या॑क्षि॒भुवो॒ यथा ॥४॥

भाषार्थः—(यद्) जैसे (देवासः) विद्वान् लोग (ललामगुम्) प्रधानता पहुंचाने वाले (विष्टीमिनम्) कोमलता से युक्त न्याय में (प्र आविषुः) प्रविष्ट हुए हैं। और (यथा) जैसे (सकुला) बाल बच्चों वाली (नारी) नारी [स्त्री] (अक्षिभुवः) आंखों से हुए [प्रत्यक्ष] (सत्यस्य) सत्य का (देदिश्यते) वार वार उपदेश करती है [वैसे ही राजा न्याय और उपदेश करे] ॥४॥

भावार्थः—जैसे पूर्वज लोग न्याय करने से प्रधान हुए हैं, और जैसे माता सत्य का उपदेश करके सन्तानों को गुणी बनाती है, वैसे ही राजा प्रजा का हित करता रहे ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—२३। २९। और महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ३३४ में व्याख्यात है ॥

म॒हान॒ग्न्य॑तृ॒प्नद्वि मोक्र॑द॒दस्था॑नासरन् ।
शक्ति॑कानना स्व॒चम॑श॒कं सक्तु॒ पद्य॑म ॥५॥

भाषार्थः—(महान्) महान् पुरुष (अग्नि) दोनों अग्नियों [शारीरिक और आत्मिक बलों] को (वि) विशेष करके (अतृप्नत्) तृप्त करे, और (अस्थाना) अयोग्य स्थान में (आसरन्) आता हुआ (मोक्रदत्) न घबरावे। (शक्तिकाननाः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्य का प्रकाश करने वाले हम (स्वचमशकम्) ज्ञातियों के लिये भोजन [लड्डू आदि] और (सक्तु) सत्तू (पद्यम्) प्राप्त करें ॥५॥

भावार्थः—समर्थ मनुष्य अन्न आदि पदार्थों का संग्रह करके कठिन समय में अपने भाई बन्धुओं को पुष्ट करके रक्षा करे ॥५॥

महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् ।
यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवेति ॥६॥

भाषार्थः—(महान्) महान् पुरुष (अग्नी) दोनों अग्नियों [आत्मिक और सामाजिक बलों] से (उलूखलम्) ओखली को (अतिक्रामन्ति) लांघता है और (अब्रवीत्) कहता है—(वनस्पते) हे वनस्पति ! [काठ के पात्र] (यथा) जैसे (तव) तुझ में (निरघ्नन्ति) [लोग] कूटते हैं, (तथाएव) वैसे ही (इति) ज्ञान के विषय में [होवे] ॥६॥

भावार्थः—जैसे ओखली में कूटकर सार पदार्थ लेते हैं, वसे ही मनुष्य परिश्रम करके ज्ञान प्राप्त करें ॥६॥

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवेति ॥७॥

भाषार्थः—(महान्) महान्, (भ्रष्टः) परिपक्व, (अथ अपि) और भी (अभूभुवः) अशुद्धि का शोधने वाला पुरुष (अग्नी) दोनों अग्नियों [आत्मिक और सामाजिक बलों] को (उप) पाकर (ब्रूते) कहता है—(वनस्पते) हे वनस्पति ! [काठ के पात्र ओखली] (यथा) जैसे (ते) तुझ में (पिप्पति) [मनुष्य] भरता है, (तथा एव) वैसे ही (इति) ज्ञान के विषय में [होवे] ॥७॥

भावार्थः— मन्त्र ६ के समान है ॥७॥

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥८॥

भाषार्थः—(महान्) महान्, (भ्रष्टः) परिपक्व, (अथ अपि) और भी (अभूभुवः) अशुद्धि का शोधने वाला पुरुष (अग्नी) दोनों अग्नियों [आत्मिक और सामाजिक बलों] को (उप) पाकर (ब्रूते) कहता है—(यथा) जैसे (वयः) जीवन को (विदाह्य) विविध प्रकार तपाकर (स्वर्गे) स्वर्ग में [सुख विशेष में] (नम्) बन्धन को (अवदह्यते) [विद्वान्] भस्म कर देता है, [वैसे ही मनुष्य करे] ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य शुद्ध चित से बल बढ़ाकर विद्वानों के समान ब्रह्मचर्य आदि तप करके दुःखों से मुक्त होवे ॥८॥

महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः ।
इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ॥९॥

भाषार्थः—(महान्) महान् पुरुष (अग्नी) दोनों अग्नियों [आत्मिक और सामाजिक बलों] को (उप) पाकर (स्वसा) सुन्दर गति [उपाय] से (आवेशितम्) प्राप्त हुए (पसः) राज्य प्रबन्ध के विषय में (ब्रूते) कहता है—[कि] (इत्थम्) इसी प्रकार से (वृक्षस्य) स्वीकार करने योग्य (फलस्य) फल के (शूर्पे) एक सूप में (शूर्पम्) दूसरे सूप को (भजेमहि) हम सेवें ॥९॥

भावार्थः - जैसे मनुष्य अन्न आदि पदार्थ को सूप से लगातार शुद्ध करते हैं, वैसे ही राज्य का प्रबन्ध सदा विचार से करना चाहिये ॥९॥

महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥१०॥

भाषार्थः—(महान्) महान् पुरुष (अग्नी) दोनों अग्नियों [आत्मिक और सामाजिक बलों] से और (शम्यया) जूये की कील [के समान शस्त्र] से (कृकवाकम् परि) बनावटी बोली वाले पर (धावति) दौड़ता है। [उसको] (न) अब (विद्म) हम जानते हैं, (अयम् यः) यह जो (मृगः) पशु [के तुल्य मूर्ख] (शीर्ष्णा) शिर से [कल्पित विचार से] (धाणिकाम्) बस्ती [राजधानी आदि] को (हरति) लूटता है ॥१०॥

भावार्थः—जो ठग छल से झूठी बनावटी बोली बोल कर राजधानी आदि बस्ती को लूटें, राजा उनको यथावत् दण्ड देवे ॥१०॥

महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति ।
इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥११॥

भाषार्थः—(महान्) महान् पुरुष (अग्नी) दोनों अग्नियों [आत्मिक और सामाजिक बलों] के, और (महान्) महान् पुरुष (अग्नम्) ज्ञानवान् (धावन्तम् अनु) दौड़ते हुए के पीछे (धावति) दौड़ता है। (तत्) सो (अस्य) इस [पुरुष] को (इमाः) इन (गाः) भूमियों की (रक्ष) रक्षा कर, (यभ) हे न्यायकारी ! (माम्) मुझको (ओदनम्) भोजन (अद्धि) खिला ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—महान् पुरुष आत्मिक और सामाजिक बल प्राप्त करके ज्ञानियों का अनुकरण करे, और राज्य की रक्षा करके प्रजा को पाले ॥११॥

सुदेवस्त्वा महानग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम् ।

कुसं पीवरो नवत् ॥१२॥

भाषार्थः—[हे प्रजा जन !] (सुदेवः) बड़ा विजय चाहने वाला, (महान्) महान् पुरुष (त्वा) तुझ से (महतः) बड़े (अग्नीः) अग्नियों [आत्मिक और सामाजिक बलों] के द्वारा (खोदनम्) खोदने के कर्म [सैंध सुरंग आदि] को (साधु) भले प्रकार (बबाधते) रोकता है। (पीवरः) पुष्टाङ्ग पुरुष (कुसम्) आपस में मिलाप को (नवत्) प्राप्त करे ॥१२॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के मेल से चोर आदि दुष्ट लोग प्रजा को न सतावें ॥१२॥

वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोग्रतं परे ।

महान् वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥१३॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (वशा) वन्ध्या [निष्फल] (उग्रतम्) उग्रता [प्रचण्ड नीति] को (दग्धाम्) जली हुई (अङ्गुरिम् इम) अंगुरी के समान (परे) दूर (प्रसृजत) सर्वथा छोड़ो। (महान्) महान् पुरुष (वै) ही (भद्रः) मंगलदाता है, (यभ) हे न्यायकारी ! (माम्) मुझ को (औदनम्) भोजन (अद्धि) खिला ॥१३॥

भावार्थः—जैसे सांप आदि के विष से जले हुए अंगुली आदि अङ्ग को शरीर की रक्षा के लिये शीघ्र काटकर फैंक देते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग निष्फल प्रचण्ड नीति को छोड़कर प्रजा को सुख देवें ॥१३॥

विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम् ।

कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥१४॥

भाषार्थः—[हे प्रजा जन !] (विदेवः) मद रहित [निरहंकारी], (महान्) महान् पुरुष (त्वा) तुझ से (महतः) बड़े (अग्नीः) अग्नियों [आत्मिक और सामाजिक बलों] के द्वारा (खोदनम्) खोदने के कर्म [सैंध सुरंग आदि] को (साधु) भले प्रकार (विबाधते) हटा देता है। (पिङ्गलिका) शोभायमान (कुमारिका)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामना योग्य कुमारी [कन्या] (कार्द) कीचड़ और (भस्मा) भस्म [राख आदि] को (कु) भूमि पर (धावति) शुद्ध कर देती है ॥१४॥

भावार्थः—राजा और प्रजा मिलकर चोर आदि दुष्टों को हटावे, जैसे शुद्ध स्वभाव वाली स्त्री कूड़े करकट को घर से बाहिर फेंक देती है ॥१४॥

महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः ।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥१५॥

भाषार्थः—(भद्रः) मंगल दाता (महान्) महान् पुरुष (वै) ही (बिल्वः) बेल [वृक्ष के समान उपकारी] है, (भद्रः) मंगल दाता (महान्) महान् पुरुष (उदुम्बरः) गूलर [वृक्ष के समान उपकारी] है। (अभिक्त) हे विख्यात ! (महान्) महान् पुरुष (महतः) बड़े [आत्मिक और सामाजिक बलों—म० १४] से (खोदनम्) खोदने के कर्म [सैंध सुरंग आदि] को (साधु) भले प्रकार (बाधते) हटाता है ॥१५॥

भावार्थः—सब महान् पुरुष प्रयत्न करके प्रजा को दुष्टों से बचावें ॥१५॥

यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत् ॥१६॥

भाषार्थः—(पीवरी) पुष्टाङ्गी, (पिङ्गलिका) शोभायमान, (कुमारी) कामनायोग्य कुमारी [कन्या] (यः) प्रयत्न से (वसन्तम्) वसन्त राग को (लभेत्) प्राप्त होवे। [वैसे ही राजा] (तैलकुण्डम्) [तपते हुए] तेलकुण्ड में डाले हुए (अङ्गुष्ठम् इम) अंगूठे [अंगुली] को जैसे [वैसे] (रोदन्तम्) रोते हुए (शुदम्) ज्ञान दाता का (उद्धरेत्) उद्धार करे [ऊंचा उठावे] ॥१६॥

भावार्थः- जैसे स्त्रियां प्रसन्न होकर वसन्त राग को गाती हैं, वैसे ही राजा प्रसन्न होकर क्लेश में पड़े हुए विद्वानों को उठावे, जैसे तपे हुए तेल में से अंगुली को उठा लेते हैं ॥१६॥

इति कुन्तापसूक्तानि समाप्तानि ॥

सूक्तम् ॥१३७॥

१—१४ ॥ १ अलक्ष्मीघ्नम, २ विश्वे देवाः; ३ दधिक्रावा, ४—६ पवमानः सोमः, ७, ८, १०—१४ इन्द्रः, ९ इन्द्रा बृहस्पती देवते ॥ १, ६ निचृदनुष्टुप्, २

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निचृज् जगती, ३ - ५ अनुष्टुप्, ७, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप्, ९ विराट् त्रिष्टुप्, ११ आर्षी पङ्क्तिः, १२—१४ गायत्री छन्दः ॥

राजप्रजाकर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥१॥

भाषार्थः—(मण्डूरधाणिकीः) हे विभग धारण करने वाली (उरः) मारू सेनाओ ! (प्राचीः) आगे बढ़ती हुई (यत् ह) जभी (अजगन्त) तुम चली हो । [तभी] (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] के (सर्वे) सब (शत्रवः) वैरी लोग (बुद्बुदयाशवः) बुद्बुदों के समान चलने वाले और फैलने वाले होकर (हताः) मारे गये ॥१॥

भावार्थः- राजा व्यूह रचना से टुकरी टुकरी करके सुशिक्षित सेना के द्वारा शत्रुओं को बुदबुदों के समान निर्बल करके मारे ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । १५५ । ४ ॥

कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥२॥

भाषार्थः—(कपृत्) हे सुख से भरने वाले, (नरः) नरो ! [नेताओं] (सबाधः) नाश के रोकने वाले होकर तुम (कपृथम्) सुख से भरने वाले, (निष्टिग्र्यः) निश्चित इष्ट क्रिया की बताने वाली [माता] के (पुत्रम्) पुत्र (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले शूर] को (वाजसातये) धनों के पाने के लिये (सोमपीतये) सोम [तत्त्व रस] पीने के लिये और (ऊतये) रक्षा के लिये (इह) यहां पर (उत) अच्छे प्रकार (दधातन) धारण करो, (चोदयत) आगे बढ़ाओ, (खुदत) सुखी करो और (आ) सब ओर से (च्यवय) उत्साही करो ॥२॥

भावार्थः— नेता लोग बड़े गुणी शूर पुरुष को प्रजा की रक्षा के लिये राजा बनावें और सब प्रकार उत्साही करें ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१० । १०१ । १२ ॥

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(दधिक्राव्णः) चढ़ाकर चलने वाले वा हींसने वाले (जिष्णोः) जीतने वाले, (वाजिनः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े के (अकारिषम्) कर्म को मैंने किया है। वह [कर्म] (नः) हमारे (मुखा) मुखों को (सुरभि) ऐश्वर्ययुक्त (करत्) करे और (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्र तारिषत्) बढ़ावे ॥३॥

भावार्थः—जैसे शीघ्रगामी घोड़ा मार्ग को जीतकर अश्ववार को लेकर ठिकाने पर पहुंचकर सुख पाता है, वैसे ही विद्वान् पराक्रमी अपना कर्तव्य पूरा करके यश प्राप्त करे ॥३॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—४। ३९। ६, यजु० २३। ३२, साम० पू० ४। ७।७॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥४॥

भाषार्थः—(सुतासः) निचोड़े हुए, (मधुमत्तमाः) अत्यन्त ज्ञान करने वाले, (मन्दिनः) आनन्द देने वाले, (पवित्रवन्तः) शुद्ध व्यवहार वाले (सोमाः) सोम [तत्त्व रस] (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] के लिये (अक्षरन्) बहे हैं, (मदाः) वे आनन्द देने वाले [तत्त्व रस] (वः) तुम (देवान्) विद्वानों को (गच्छन्तु) पहुंचें ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् लोग ज्ञान के साथ सब पदार्थों का तत्त्व जानकर ऐश्वर्य बढ़ावें ॥४॥

मन्त्र ४—६ ऋग्वेद में हैं—९। १०१। ४—६, सामवेद—उ० २। २। तृच १५, म० १ साम० पू० ६। ६। ३॥

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥५॥

भाषार्थः—(इन्दुः) सोम [तत्त्व रस] (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य] के लिये (पवते) शुद्ध होता है, (वाचः पतिः) वेदवाणी का स्वामी [परमात्मा] (ओजसा) अपने सामर्थ्य से (विश्वस्य) सब का (ईशानः) राजा होकर (मखस्यते) पुरुषार्थ चाहता है—(इति) ऐसा (देवासः) विद्वानों ने (अब्रुवन्) कहा है ॥५॥

भावार्थः—विद्वानों का निश्चय है कि परमात्मा पुरुषार्थियों को तत्त्व-ज्ञान देकर ऐश्वर्यवान् करता है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६॥

भाषार्थः—(सहस्रधारः) सहस्रों धाराओं वाला (समुद्रः) समुद्र [जैसे], (वाचमीङ्खयः) विद्याओं का प्रवर्त्तक, (रयीणाम्) धनों का (पतिः) स्वामी, (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] का (सखा) मित्र (सोमः) सोम [तत्त्व रस] (दिवेदिवे) दिन दिन (पवते) शुद्ध होता है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य विद्याओं द्वारा पदार्थों का तत्त्व जानकर दिन दिन नवीन नवीन आविष्कार करके धन की वृद्धि करे ॥६॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥७॥

भाषार्थः—(द्रप्सः) घमंडी, (कृष्णः) कौवा [के समान निन्दित लुटेरा शत्रु] (दशभिः सहस्रैः) दस सहस्र [बड़ी सेना] के साथ (इयानः) चलता हुआ (अंशुमतीम्) विभाग वाली [सीमा वाली नदी—म० ८] पर (अव अतिष्ठत्) ठहरा है। (नृमणाः) नरों के समान मन वाले (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े प्रतापी शूर] ने (तम् धमन्तम्) उस हांफते हुए को (शच्या) बुद्धि से (आवत्) बचाया है और (स्नेहितीः) अपनी मारू सेनाओं को (अप अधत्त) हटा लिया है ॥७॥

भावार्थः—जो शत्रु चढ़ाई करे और थककर हार मान लेवे, वीर राजा जीवित छोड़कर उसे मित्र बनावे और यथोचित्त प्रबन्ध करके अपनी सेना हटा लेवे ॥७॥

मन्त्र ७—११ ऋग्वेद में है—८। ९६ [सायण भाष्य ८५]। १३—१७, मन्त्र ७ सामवेद—पू० ४। ४। १॥

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥८॥

भाषार्थः—(द्रप्सम्) घमंडी को (अंशुमत्याः) विभाग वाली [सीमा वाली] (नद्यः) नदी के (उपह्वरे) समीप में (विषुणे) विरुद्ध आचरण [अन्याय] के बीच में (चरन्तम्) विचरते हुए, (नभः) आकाश से (अवतस्थिवांसम्) उतरे हुए (कृष्णम् न) कौवे के समान (अपश्यम्) मैं ने देखा है, (वृषणः) हे ऐश्वर्य वाले वीरो!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वः) तुम को (इष्यामि) मैं प्रेरणा करता हूं (आजौ) संग्राम में (युध्यत) युद्ध करो ॥८॥

भावार्थः—राजा लुटेरे शत्रु को सीमा पर आते देखकर अपने वीरों को भेजकर उसे रोक दे ॥८॥

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्या३ चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥९॥

भाषार्थः—(अध) फिर (तित्विषाणः) भड़कीले (द्रप्सः) घमंडी ने (अंशुमत्याः) विभाग वाली [सीमा वाली नदी] के (उपस्थे) समीप में (तन्वम्) अपने शरीर को (अधारयत्) पुष्ट किया। [तब] (युजा) अपने मित्र (बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के स्वामी] के साथ (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े प्रतापी राजा] ने (अभि) सब ओर (आचरन्तीः) घूमती हुई, (अदेवीः) कुव्यवहार वाली (विशः) प्रजाओं को (ससहे) जीत लिया ॥९॥

भावार्थः—यदि शत्रु लोग बार बार एकत्र होकर उपद्रव मचावें, नीतिकुशल राजा मित्रों का सहाय लेकर वैरियों को हरावे ॥९॥

त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥१०॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (त्यत् ह) तभी (जायमानः) प्रकट होता हुआ (त्वम्) तू (अशत्रुभ्यः) अशत्रु [विना वैर वाले, आपस में मित्र] (सप्तभ्यः) सातों [कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका पांच ज्ञान इन्द्रिय, मन और बुद्धि] के हित के लिये (शत्रुः) [दुष्टों का] शत्रु (अभवः) हुआ है। (गूळ्हे) [अज्ञान के कारण] ढके हुए (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (अनु) अनुक्रम से (अविन्दः) तू ने पाया है और (विभुमद्भ्यः) महत्त्व वाले (भुवनेभ्यः) लोकों को (रणम्) रमण [आनन्द] (धाः) तू ने दिया है ॥१०॥

भावार्थः—राजा प्रबन्ध करे कि सब लोग शरीर और आत्मा से स्वस्थ रहकर आकाश और भूमि के पदार्थों से विज्ञान द्वारा उपकार लेकर सुखी रहें ॥१०॥

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वज्रिन्) हे वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (धृषितः) निर्भय (त्वम्) तू ने, (त्वम्) तू ने (ह) ही (शुष्णस्य) सुखाने वाले वैरी के (त्यद्) उस (अप्रतिमानम्) अनुपम (ओजः) बल को (वज्रेण) वज्र से और (वधत्रैः) हथियारों से (जघन्थ) नष्ट कर दिया है और (अव अतिरः) नीचे किया है, (त्वम्) तू ने (गाः) उस की भूमियों को (शच्या) अपनी बुद्धि से (इत्) ही (अविन्दः) पाया है ॥११॥

भावार्थः—राजा अपनी बुद्धि के बल से शस्त्र अस्त्र आदि युद्ध सामग्री एकत्र करके शत्रुओं को मारकर प्रजा की रक्षा करे ॥११॥

तमिन्द्रं॑ वाजयामसि म॒हे वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे । स वृषा॑ वृष॒भो भु॑वत् ॥१२॥

भाषार्थः—(तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को (महे) बड़े (वृत्राय) रोकने वाले वैरी के (हन्तवे) मारने को (वाजयामसि) हम बलवान् करते हैं [उत्साही बनाते हैं], (सः) वह (वृषा) पराक्रमी (वृषभः) श्रेष्ठ वीर (भुवत्) होवे ॥१२॥

भावार्थः—प्रजागण राजा को शत्रुओं के मारने के लिये सहाय करें और राजा भी प्रजा की भलाई के लिये प्रयत्न करे ॥१२॥

मन्त्र १२—१४ आचुके हैं—अथ० २० । ४७ । १—३ ॥

इन्द्रः॒ स दाम॑ने कृ॒त ओजि॑ष्ठः॒ स मदे॑ हि॒तः ।
द्यु॒म्नी श्लो॒की स सो॒म्यः ॥१३॥

भाषार्थः—(सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (दामने) दान करने के लिये और (सः) वह (मदे) आनन्द देने के लिये (ओजिष्ठः) महाबली और (हितः) हितकारी (कृतः) बनाया गया है, (सः) वह (द्युम्नी) अन्न वाला और (श्लोकी) कीर्ति वाला पुरुष (सोम्यः) ऐश्वर्य के योग्य है ॥१३॥

भावार्थः—प्रजागण प्रतापी, गुणी पुरुष को इस लिये राजा बनावें कि वह प्रजा के उपकार के लिये दान करके प्रयत्न करे और अन्न आदि पदार्थ बढ़ाकर कीर्ति पावे ॥१३॥

गि॒रा वज्रो॒ न संभृ॑तः॒ सब॑लो॒ अन॑पच्युतः ।
व॒व॒क्ष ऋ॒ष्वो अस्तृ॑तः ॥१४॥

भाषार्थः—(गिरा) वाणी से (संभृतः) पुष्ट किया गया, (सबलः) सबल,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अनपच्युतः) न गिरने योग्य, (ऋष्वः) गति वाला, और (अस्तृतः) वेरोक सेनापति (वज्रः न) बिजुली के समान (ववक्षे) रिस होवे ॥१४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपनी बात में सच्चा महाबली हो, वह सेनानी होकर शत्रुओं पर बिजुली के समान क्रोध करे ॥१४॥

सूक्तम् ॥१३८॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

राजप्रजाकर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१॥

भाषार्थः—(यः) जो (महान्) महान् [पूजनीय] (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (ओजसा) अपने बल से (वृष्टिमान्) मेह वाले (पर्जन्यः इव) बादल के समान है, [वह] (वत्सस्य) शास्त्रों के कहने वाले [आचार्य आदि] के (स्तोमैः) उत्तम गुणों के व्याख्यानों से (ववृधे) बढ़ा है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य गुरु जनों से शिक्षा पाकर बरसने वाले बादल के समान उपकार करके पूजनीय होवे ॥१॥

यह तृच ऋग्वेद में है—८ । ६ । १—३, सामवेद—उ० ५ । २ । तृच १०, मन्त्र १ यजु० ७ । ४० ॥

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥२॥

भाषार्थः—(ऋतस्य) सत्य धर्म का (पिप्रतः) पालन करते हुए (वह्नयः) ले चलने वाले [नेता लोग] (प्रजाम्) प्रजा को (यत्) जब (प्र) भले प्रकार (भरन्त) पुष्ट करते हैं, [तब] (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (ऋतस्य) सत्य धर्म के (वाहसा) प्राप्त कराने वाले [होते हैं] ॥२॥

भावार्थः—नेता गण सत्यव्रती होकर प्रजा को सुख देकर विद्वानों द्वारा सत्य धर्म का प्रचार करें ॥२॥

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ॥३॥

भाषार्थः—(कण्वाः) बुद्धिमानों ने (यत्) जब (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी मनुष्य] को (स्तोमैः) उत्तम गुणों के व्याख्यानों से (यज्ञस्य) यज्ञ [देव पूजा, संगतिकरण और दान] का (साधनम्) सिद्ध करने वाला (अक्रत) बनाया है, [तभी उस को] (आयुधम्) मनुष्यों का पोषण करने वाला (जामि) बन्धु (ब्रुवते) कहते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—बुद्धिमान् लोग प्रतापी गुणी पुरुष को प्रधान बनाकर प्रजा को पालें ॥३॥

सूक्तम् ॥१३९॥

१—५ ॥ अश्विनौ देवते ॥ १, ४ पथ्या बृहती, २ गायत्री, ३ निचृद् गायत्री, ५ ककबुष्णिक् छन्दः ॥

गुरुजनगुणोपदेशः—गुरु जनों के गुणों का उपदेश ॥

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥१॥

भावार्थः—(अश्विना) हे दोनों अश्वी [चतुर माता पिता, अथवा राजा और मन्त्री] (युवाम्) तुम दोनों (वत्सस्य) निवास करने वाले [प्रजा जन] की (अवसे) रक्षा के लिये (नूनम्) अवश्य (आ गन्तम्) आओ। और (अस्मै) उसको (अवृकम्) विना भेड़िये वाला [भेड़िये के समान चोर डाकू के विना], (पृथु) चौड़ा (छर्दिः) घर (प्र यच्छतम्) दो और (याः) जो (अरातयः) कर न देने वाली प्रजायें हैं, [उन्हें] (युयुतम्) अलग करो ॥१॥

भावार्थः—चतुर माता पिता तथा राजा और मन्त्री सब गुरु जन प्रजा की रक्षा करें और शत्रुओं को हटावें ॥१॥

चार सूक्त १३९—१४२ के २१ मन्त्र ऋग्वेद में है—८।९।१—२१ ॥
यह सूक्त ऋग्वेद में है—८।९।१—५ ॥

यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु ।
नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥२॥

भावार्थः—(यत्) जो [धन] (अन्तरिक्षे) आकाश में, (यत्) जो (दिवि) सूर्य आदि के प्रकाश में और (यत्) जो (पञ्च) पांच [पृथिवी आदि पांच तत्त्वों] से संबन्ध वाले (मानुषान् अनु) मनुष्यों में है, (अश्विना) हे दोनों अश्वी! [चतुर माता पिता] (तत्) उस (नृम्णम्) धन को (धत्त) दान करो ॥२॥

भावार्थः—माता पिता आदि गुरु जन प्रबन्ध करें कि सब लोग आपस में खगोल विद्या, सूर्य, बिजुली, अग्नि आदि विद्यायें जानकर धनी होवें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रांसः परिमामृशुः ।
एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥३॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर माता पिता] (वाम्) तुम दोनों के (दंसांसि) कर्मों को (ये) जिन (विप्रासः) बुद्धिमानों ने (परिममृशुः) विचारा है, (एव इत्) वैसे ही [उनके बीच] (काण्वस्य) बुद्धिमान् के किये कर्म का (बोधतम्) तुम दोनों ज्ञान करो ॥३॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग माता पिता आदि गुरु जनों को उत्तम प्रकार से विचारें, वैसे ही गुरु जन भी विद्वानों का आदर करें ॥३॥

अयं वां घर्मो अंश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येनं वृत्रं चिकेतथः ॥४॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर माता पिता, गुरुजनो] (वाम्) तुम दोनों का (अयम्) यह (घर्मः) पसीना (स्तोमेन) स्तुति योग्य कर्म के साथ (परि सिच्यते) सिंचता है [बहता है], (वाजिनीवसू) हे बहुत वेग वाली वा बहुत अन्न वाली क्रियाओं में निवास करने वाले दोनों ! (अयम्) वह [पसीना] (मधुमान्) उत्तम ज्ञान वाला (सोमः) सोम [तत्त्व रस] है, (येन) जिस [तत्त्व रस] से (वृत्रम्) रोकने वाले शत्रु को (चिकेतथः) तुम दोनों जान लेते हो ॥४॥

भावार्थः—गुरु जन महान् परिश्रम करके मधुविद्या अर्थात् तत्त्वज्ञान को प्राप्त करें और शत्रुओं को मारें ॥४॥

यद॒प्सु यद् वन॒स्पतौ यदोष॑धीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेनं माविष्टमश्विना ॥५॥

भाषार्थः—(पुरुदंससा) हे बहुत कर्मों वाले दोनों ! (यत्) जो कुछ (कृतम्) क्रिया फल (अप्सु) जल में है, (यत्) जो (वनस्पतौ) वनस्पति [वृक्षों] में है, और (यत्) जो (ओषधीषु) ओषधियों [जौ चावल आदि] में है, (अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर माता पिता] (तेन) उस [क्रिया फल] से (मा) मेरी (अविष्टम्) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थः—गुरुजन जिज्ञासुओं को जल आदि सब पदार्थों का तत्त्व ज्ञान कराके क्रियाकुशल बनावें ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥१४०॥

१—५ ॥ अश्विनौ देवते ॥ १ पथ्या बृहती, २, ३ अनुष्टुप्, ४ विराडनुष्टुप्, ५ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ॥

अहोरात्रसुप्रयोगोपदेशः—दिन और रात्रि के उत्तम प्रयोग का उपदेश ॥

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः । अयं वां
वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥१॥

भाषार्थः—(नासत्या) हे असत्य न रखने वाले दोनों ! [दिन राति] (यत्) क्योंकि (भुरण्यथः) तुम पोषण करते हो, (वा) और, (देवा) हे व्यवहार कुशल दोनों ! (यत्) क्योंकि (भिषज्यथः) तुम औषध करते हो। (अयम्) यह (वत्सः) बोलने वाला (वाम्) तुम दोनों को (मतिभिः) अपनी बुद्धियों से (न) नहीं (विन्धते) पाता है, (हविष्मन्तम्) भक्ति रखने वाले को (हि) ही (गच्छथः) तुम दोनों मिलते हो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य दिन रात्रि का सुन्दर प्रयोग करके पुष्ट, स्वस्थ, विद्वान् होकर आनन्द पावें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—८। ९। ६—१० ॥

आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥२॥

भाषार्थः—(ऋषिः) ऋषि [विज्ञानी पुरुष] (अश्विनोः) दोनों अश्वी [व्यापक दिन राति] के (स्तोमम्) स्तुति योग्य कर्म को (वामया) उत्तम बुद्धि से (नूनम्) अवश्य (आ) सब ओर से (चिकेत) जाने। और (मधुमत्तमम्) अत्यन्त ज्ञान वाले और (घर्मम्) प्रकाश वाले (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] को (अथर्वणि) निश्चल [जिज्ञासु] पर (आ) भले प्रकार (सिञ्चात्) सींचे ॥२॥

भावार्थः—विज्ञानी पुरुष काल की महिमा जानकर जिज्ञासुओं को तत्त्व ज्ञान का उपदेश करे ॥२॥

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥३॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [व्यापक दिन राति] (रघुवर्तनिम्) हलके घूमने वाले [अति शीघ्रगामी] (रथम्) रथ पर (नूनम्) अवश्य (आ तिष्ठाथः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम चढ़ते हो, (मम) मेरे (इमे) यह (स्तोमाः) स्तुति के वचन (वाम्) तुम दोनों को (नभः न) मेघ के समान [शीघ्र] (आ) सब ओर से (चुच्यवीरत) [हमें] प्राप्त कराते हैं ।।३।।

भावार्थः—जैसे पवन से बादल आकाश में दौड़ता है, उस से भी अधिक शीघ्रगामी काल को वश में लाकर बुद्धिमान् आनन्द पाते हैं ।।३।।

यद॒द्य वां॑ नासत्यो॒क्थैरा॑चुच्यु॒वीम॑हि ।

यद्वा॒ वाणी॑भिरश्विने॒वेत्का॒ण्वस्य॑ बोधतम् ।।४।।

भाषार्थः—(नासत्या) हे सदा सत्य स्वभाव वाले दोनों ! [दिन राति] (अद्य) आज (यत्) जैसे (उक्थैः) कहने योग्य शास्त्रों से, (वा) अथवा (यत्) जैसे (वाणीभिः) अपनी वाणियों से (वाम्) तुम दोनों को (आचुच्युवीमहि) हम लावें, (अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [व्यापक दिन राति] (एव इत्) वैसे ही (काण्वस्य) बुद्धिमान् के किये कर्म का (बोधतम्) तुम दोनों ज्ञान करो ।।४।।

भावार्थः—मनुष्य शीघ्र शास्त्रों में प्रवीण होकर अपने वचन के पक्के होवें और प्राप्त अवसर का यथावत् प्रयोग करें ।।४।।

यद्वां॑ क॒क्षीवाँ॑ उ॒त यद्व्य॑श्व॒ ऋषि॒र्यद्वां॑ दी॒र्घत॑मा जु॒हाव॑ ।

पृथी॒ यद्वां॑ वै॒न्यः साद॑नेष्वे॒वेदतो॑ अश्विना चेतयेथाम् ।।५।।

भाषार्थः—(यत्) जैसे (वाम्) तुम दोनों को (कक्षीवान्) गति वाले [वा शासन वाले] पुरुष ने, (उत) और (यत्) जैसे (व्यश्वः) विविध वेग वाले ने और (यत्) जैसे (वाम्) तुम दोनों को (दीर्घतमाः) दीर्घतमा [लंबा हो गया है, चला गया है अन्धकार जिस से ऐसे] (ऋषिः) ऋषि [विज्ञानी] ने, (यत्) जैसे (वाम्) तुम दोनों को (वैन्यः) बुद्धिमानों के पास रहने वाले (पृथी) विस्तार वाले पुरुष ने (सदनेषु) अपने स्थानों में (जुहाव) ग्रहण किया है (अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [व्यापक दिन राति] (एव इत्) वैसे ही (अतः) इस [मेरे वचन] को (चेतयेथाम्) जानो ।।५।।

भावार्थः—जैसे जैसे मनुष्य दिन राति का सुप्रयोग करते हैं, वैसे ही दिन राति उनको सुख देते हैं ।।५।।

सूक्तम् ।।१४१।।

१—५ ।। अश्विनौ देवते ।। १ त्रिपाद् विराड् गायत्री, २ जगती, ३ निचृदनुष्टुप्, ४ निचृद् बृहती, ५ निचृत् पथ्या बृहती ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहोरात्रसुप्रयोगोपदेशः—दिन और राति के उत्तम प्रयोग का उपदेश ॥

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।

वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे दिन राति दोनों !] (छर्दिष्पौ) घर के रक्षक होकर (यातम्) आओ, (उत) और (नः) हमारे बीच (परस्पा) पालनीयों के पालक, (जगत्पा) जगत् के रक्षक (उत) और (नः) हमारे (तनूपा) शरीरों के बचाने वाले (भूतम्) होओ, और (तोकाय) सन्तान और (तनयाय) पुत्र के हित के लिये (वर्तिः) [हमारे] घर (यातम्) आओ ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य घर आदि स्थानों में दिन रात का सुप्रयोग करके अपने बालक आदि को सुमार्ग में चलावें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—८ । ९ । ११—१५ ॥

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा ।

यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥२॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [व्यापक दिन राति] (यत्) चाहे (इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले सूर्य] के साथ (सरथम्) एक रथ में चढ़कर (याथः) तुम चलते हो, (वा) अथवा (यत्) चाहे (वायुना) पवन के साथ (समोकसा) एक घर वाले (भवथः) होते हो । (यत्) चाहे (आदित्येभिः) अखण्ड व्रतधारी (ऋभुभिः) बुद्धिमानों के साथ (सजोषसा) एक सी प्रीति करते हुए, (वा) अथवा (यत्) चाहे (विष्णोः) सर्वव्यापक परमात्मा के (विक्रमणेषु) पराक्रमों में (तिष्ठतः) ठहरते हो [वहां से दोनों आओ—म० १] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सर्वत्र व्यापी दिन राति अर्थात् काल को सूर्य विद्या, वायु विद्या, विद्वानों के सत्संग और परमेश्वर की भक्ति आदि में लगाकर अपना पुरुषार्थ बढ़ावें ॥२॥

यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।

यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥३॥

भाषार्थः—(यत्) जब (अद्य) (अश्विनौ) दोनों अश्वी [व्यापक दिन राति] को (वाजसातये) विज्ञान के लाभ के लिये (अहम्) मैं (हुवेय) बुलाऊं । और (पृत्सु) संग्रामों के बीच (तुर्वणे) शत्रुओं के मारने में (यत्) जो (सहः) बल है, (तत्) वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अश्विनोः) दोनों अश्वी [व्यापक दिन राति] की (श्रेष्ठम्) अति उत्तम (अवः) रक्षा [होवे] ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सदा विज्ञान के साथ अपना सामर्थ्य बढ़ावें, और शत्रुओं को मारकर सुखी होवें ॥३॥

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।

इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥४॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [व्यापक दिन रात] (नूनम्) अवश्य (आ यातम्) आओ, (इमा) यह (हव्यानि) ग्राह्य द्रव्य (वाम्) तुम दोनों के लिये (हिता) रक्खे हैं। (इमे) यह (सोमासः) सोम रस [तत्त्व रस] (तुर्वशे) हिंसकों को वश में करने वाले, (यदौ) यत्नशील मनुष्य में (अथ) और (इमे) यह [तत्त्व रस] (कण्वेषु) बुद्धिमानों में (वाम्) तुम दोनों के (अधि) अधिकाई से हैं ॥४॥

भावार्थः—समय के सुप्रयोग से विद्वान् प्रयत्न करने वालों को उत्तम उत्तम पदार्थ मिलते हैं और सदा मिलते रहेंगे ॥४॥

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।

तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥५॥

भाषार्थः—(नासत्या) हे सदा सत्य स्वभाव वाले दोनों ! [दिन राति] (यत्) जो (भेषजम्) औषध (पराके) दूर में और (अर्वाके) समीप में (अस्ति) है। (प्रचेतसा) हे उत्तम ज्ञान कराने वाले दोनों (तेन) उस [औषध] के साथ (नूनम्) अवश्य करके (विमदाय) निरहंकारी [वा अदीन] (वत्साय) शास्त्रों के कहने वाले पुरुष को (छर्दिः) घर (यच्छतम्) दान करो ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य घर और बाहिर समय को उत्तम रीति से काम में लगाकर सुन्दर घरों में स्वस्थ रहें ॥५॥

सूक्तम् ॥१४२॥

१—६ ॥ अश्विनौ देवते ॥ आर्च्यनुष्टुप्, २, ४ अनुष्टुप्, ३ विराडार्ष्यनुष्टुप्, ५ गायत्री, ६ निचृद् गायत्री ॥

अहोरात्रसुप्रयोगोपदेशः—दिन और राति के उत्तम प्रयोग का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥१॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (देव्या) उत्तम गुण वाली (वाचा साकम्) वाणी के साथ (अश्विनोः) दोनों अश्वी [व्यापक दिन राति] के बीच (उ) अवश्य (प्र अभुत्सि) जागा हूं। (देवि) हे देवी! [प्रकाशमान उषा—म० २] तू ने (आ) आकर (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के लिये (मतिम्) बुद्धि और (रातिम्) धन को (वि) विशेष करके (वि आवः) खोल दिया है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य प्रभात समय उठकर दिन राति विद्या और धन को प्राप्त करें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है – ८। ९। १६—२१ ॥

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥२॥

भाषार्थः—(उषः) हे उषा! [प्रभात वेला] (अश्विनौ) दोनों अश्वी [व्यापक दिन राति] को (प्र बोधय) जगादे, (देवि) हे देवी! [व्यवहार कुशल] (सूनृते) हे अन्न वाली! (महि) हे पूजनीया! [उषा] (प्र=प्रबोधय) जगा दे। (यज्ञहोतः) हे उत्तम संगति देने वाले! [विद्वान्] (आनुषक्) लगातार (प्र) जगादे, (बृहत्) बड़े (श्रवः) यश के लिये और (मदाय) आनन्द के लिये (प्र) जगादे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रातःकाल उठकर सदा अन्न आदि धन, कीर्ति और आनन्द के लिये प्रयत्न करें ॥२॥

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥३॥

भाषार्थः—(उषः) हे उषा! [प्रभात वेला] (यत्) जब तू (भानुना) प्रकाश के साथ (यासि) चलती है, [तब] तू (सूर्येण) सूर्य के साथ (सम्) ठीक प्रकार से (रोचसे) रुचती है [प्रिय लगती है] [तभी] (अश्विनोः) दोनों अश्वी [व्यापक दिन राति] का (अयम्) यह (रथः) रथ (ह) भी (नृपाय्यम्) नरों [नेताओं] से पालने योग्य (वर्तिः) घर पर (आ याति) आता है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे उषा सूर्य के साथ सदा शोभायमान होती है, वैसे ही मनुष्य ज्ञान के साथ शोभा बढ़ाकर दिन राति को सफल करें ॥३॥

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥४॥

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥५॥

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥६॥

भाषार्थः—(यत्) जब (आपीतासः) अच्छे प्रकार पीये हुए (अंशवः) बटे हुए सोम रस [तत्त्व रस] (दुह्रे) दुहे जाते हैं, (गावः न) जैसे गौयें (ऊधभिः) लेवाओं [अयनों, थनों के स्थानों] से [दूध दुहती हैं]। (वा) और (यत्) जब (देवयन्तः) दिव्य गुण चाहने वाले लोग (वाणीः) वाणियों से (अश्विना) दोनों अश्वी [व्यापक दिन राति] को (प्र) अच्छे प्रकार (अनूषत) सराहते हैं ॥४॥

[तब] (प्रचेतसा) हे उत्तम ज्ञान देने वाले ! तुम दोनों (द्युम्नाय) चमकते हुए यश के लिये (प्र=प्रभवथः)समर्थ होते हो, (शवसे) बल के लिये (प्र) समर्थ होते हो, (नृषह्याय) मनुष्यों को सहाय देने वाले (शर्मणे) शरण [घर आदि] के लिये (प्र) समर्थ होते हो, और (दक्षाय) चतुराई [कार्य कुशलता] के लिये (प्र) समर्थ होते हो ॥५॥

(यत्) क्योंकि (नूनम्) अवश्य, (उक्थ्या) हे बड़ाई योग्य (अश्विना) दोनों अश्वी [व्यापक दिन राति] (धीभिः) कर्मों के साथ, (वा) और (यत्) क्योंकि (सुम्नेभिः) अनेक सुखों के साथ (पितुः) पालन करने वाले पुरुष के (योना) घर में (निषीदथः) दोनों बैठते हो ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य दिन राति तत्त्व का ग्रहण करके यशस्वी, बलवान् और कार्यकुशल होवें ॥४—६॥

सूक्तम् ॥१४३॥

१—९ ॥ १—७, ९ अश्विनौ देवते, ८ क्षेत्रपतिर्देवता ॥ १, ३, ६—९ निचृत् त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ४ भुरिक्पङ्क्तिः, ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥

१—७, ९ राजामात्यकृत्योपदेशः, म० ८ कृषिकर्मोपदेशः– १—७, ९ राजा और मन्त्री के कर्तव्य का उपदेश, म० ८ खेती के काम का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर राजा और मन्त्री] (वयम्) हम (अद्य) आज (वाम्) तुम दोनों के (पृथुज्रयम्) बड़ी गति वाले, (गोः) पृथिवी की (संगतिम्) संगति करने वाले, (गिर्वाहसम्) विज्ञान से चलने वाले, (पुरुतमम्) अत्यन्त बड़े, (वसुयुम) बहुत धन वाले (तम्) उस (रथम्) रमणीय रथ को (हुवेम) ग्रहण करें, (यः) जो (वन्धुरयुः) यन्त्रों के बन्धनों वाला [रथ] (सूर्याम्) सूर्य की धूप को (वहति) प्राप्त होता है [रखता है] ॥१॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री विज्ञानियों से ऐसे रथ यान विमान आदि बनवावें जो भानुताप [सूर्य की धूप] आदि से चलें ॥१॥

मन्त्र १—७ ऋग्वेद में हैं—४ । ४४ । १—७ ॥

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥२॥

भाषार्थः—(दिवः) हे व्यवहार के (नपाता) न, गिराने वाले (अश्विना) दोनों अश्वी ! [चतुर राजा और मन्त्री] (देवता) दिव्य गुण वाले (युवम्) तुम दोनों (शचीभिः) बुद्धियों से (ताम्) उस (श्रियम्) लक्ष्मी का (वनुथः) सेवन करते हो, (यत्) जिस [लक्ष्मी] के लिये (पृक्षः) अनेक अन्न (युवोः) तुम दोनों के (वपुः) शरीर को (अभि) सब ओर से (सचन्ते) सींचते हैं और [जिस के लिये] (ककुहासः) बड़े विद्वान् लोग (वाम्) तुम दोनों को (रथे) रमणीय रथ में (वहन्ति) ले चलते हैं ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग विज्ञान द्वारा यान विमान आदि बनाकर राज्य की सम्पत्ति बढ़ावें और अन्न आदि प्राप्त करके राजा और प्रजा को सुखी करें ॥२॥

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर राजा और मन्त्री] (रातहव्यः) देने योग्य को दिये हुए (कः) कौन पुरुष [अर्थात् प्रत्येक मनुष्य] (ऊतये) रक्षा के लिये (वा वा) और (सुतपेयाय) निचोड़े हुए सोम [तत्त्व रस] पीने के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये (वाम्) तुम दोनों के निमित्त (अर्कैः) सत्कारों के साथ (अद्य) आज (करते) कर्म करता है, (वा) और (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (पूर्व्याय) प्राचीनों में रहने वाले (वनुषे) सेवन के लिये (नमः) अन्न को (येमानः) खींचता हुआ [कौन अर्थात् प्रत्येक मनुष्य] (आ ववर्तत्) वर्ताव करता है ॥३॥

भावार्थः—प्रत्येक मनुष्य चतुर राजा और मन्त्री का आदर करके पूर्वजों के समान सत्य ज्ञान बढ़ाकर अन्न आदि प्राप्त करे ॥३॥

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४॥

भावार्थः—(पुरुभू) हे पालन व्यवहारों के विचारने वाले ! (नासत्या) हे सदा सत्य स्वभाव वाले दोनों ! [राजा और मन्त्री] (हिरण्ययेन) ज्योति रखने वाले [अग्नि आदि प्रकाश बल से चलने वाले] (रथेन) रमणीय रथ से (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा, संगति करण और दान व्यवहार] को (उप) आदर से (यातम्) प्राप्त होओ, और (मधुनः) उत्तम ज्ञान के (सोम्यस्य) सोम [तत्त्व रस] में उत्पन्न रस का (इत्) अवश्य (पिबाथः) पान करो और (विधते) पुरुषार्थ करते हुए (जनाय) मनुष्य के लिए (रत्नम्) रत्न [सुन्दर धन] (दधथः) दान करो ॥४॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री के सुप्रबन्ध से सब प्रजा गण विज्ञान के साथ शिल्प विद्या द्वारा रत्नों का संग्रह करके सुखी होवें ॥४॥

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५॥

भाषार्थः—[हे राजा और मन्त्री !] (दिवः) आकाश से और (पृथिव्याः) भूमि से (हिरण्ययेन) ज्योति रखने वाले [अग्नि आदि प्रकाश बल से चलने वाले], (सुवृता) शीघ्र घूमने वाले [चमकने वाले] (रथेन) रमणीय रथ [विमान आदि वाहन] द्वारा (अच्छ) अच्छे प्रकार (नः) हम को (आ यातम्) दोनों प्राप्त होओ, (अन्ये) अन्य (देवयन्तः) पीड़ा देते हुए लोग (वाम्) तुम दोनों को (मा नि यमन्) न रोकें (यत्) क्योंकि (पूर्व्या) पुरानी (नाभिः) बन्धुता ने (वाम्) तुम दोनों को (सं ददे) बाँधा है ॥५॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री आकाश और पृथिवी पर चलने वाले यान विमानों द्वारा शत्रुओं से बेरोक होकर प्रजा की रक्षा करें ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नू नो र॒यिं पु॑रु॒वीरं॑ बृ॒हन्तं॒ दस्रा॒ मिमा॑थामु॒भये॑ष्व॒स्मे ।
नरो॒ यद् वा॑मश्विना॒ स्तोम॒माव॑न्त्स॒धस्तु॑तिमाजमी॒ळ्हासो॑ अग्मन् ॥६॥

भाषार्थः—(दस्रा) हे दर्शन योग्य (अश्विना) दोनों अश्वी ! [चतुर राजा और मन्त्री] (नः) हमारे लिये [अर्थात्] (उभयेषु) दोनों राजजन और प्रजाजन वाले (अस्मे) हम लोगों में (पुरुवीरम्) बहुत वीरों के प्राप्त कराने वाले (बृहन्तम्) बड़े (रयिम्) धन को (नु) शीघ्र (मिमाथाम्) नापो [दो] । (यत्) क्योंकि (नरः) नरों [नेता लोगों] ने (वाम्) तुम दोनों के लिये (स्तोमम्) प्रशंसा की (आवन्) रक्षा की है, और (आजमीळ्हासः) उन घृत आदि पदार्थों और सुवर्ण आदि धन वालों (सधस्तुतिम्) परस्पर कीर्ति (अग्मन्) पाई है ॥६॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री राजजन और प्रजाजनों का स[...] करके परस्पर कीर्ति बढ़ावें ॥६॥

इ॒हेह॒ यद् वां॑ सम॒ना प॑पृ॒क्षे सेयम॒स्मे सु॑म॒तिर्वा॑जरत्ना ।
उ॒रु॒ष्यतं॑ जरि॒तारं॑ यु॒वं ह॑ श्रि॒तः कामो॒ नास॑त्या युव॒द्रिक् ॥७॥

भाषार्थः—(वाजरत्ना) हे ज्ञान और धन रखने वाले दोनों ! [राजा और मन्त्री] (इहेह) यहां [राज्य में] ही (यत्) जो (सुमतिः) सुमति [उत्तम बुद्धि] (समना) एक से मन वाले (वाम्) तुम दोनों को (पपृक्षे) छूती है, (सा इयम्) वही [सुमति] (अस्मे) हम में [होवे] । (नासत्या) हे सदा सत्य स्वभाव वाले ! [धर्मात्माओं] (युवम्) तुम दोनों (ह) ही (जरितारम्) गुणों की व्याख्या करने वाले की (उरुष्यतम्) रक्षा करो, (श्रितः) [तुम्हारा] आश्रय लिये हुए (कामः) मेरा मनोरथ (युवद्रिक्) तुम दोनों की ओर देखने वाला है ॥७॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री अपनी हितकारिणी बुद्धि का राज्य में विस्तार करके प्रजा की रक्षा करें ॥७॥

यह मन्त्र ऋग्वेद ४ । ४३ । ७ में भी है ॥

मधु॑मती॒रोष॑धी॒र्द्याव॒ आपो॒ मधु॑मन्नो भवत्व॒न्तरि॑क्षम् ।
क्षेत्र॑स्य॒ पति॒र्मधु॑मान्नो अ॒स्त्वरि॑ष्यन्तो॒ अन्वे॑नं चरेम ॥८॥

भाषार्थः—(नः) हमारे लिये (ओषधीः) ओषधियां [चावल जौ आदि अन्न], (द्यावः) सूर्य आदि के प्रकाश, (आपः) जल [मेह, कूए, नदी आदि के] (मधुमतीः) मधुर आदि गुण वाले [होवें], (अन्तरिक्षम्) आकाश (मधुमत्) मधुर आदि गुण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ाला (भवतु) होवे । (क्षेत्रस्य पतिः) खेत का स्वामी [किसान] (नः) हमारे लिये (मधुमान्) मधुर आदि गुण वाला (अस्तु) होवे, (अरिष्यन्तः) विना कष्ट उठाये ए हम (एनम् अनु) इस [किसान] के पीछे पीछे (चरेम) चलें ॥८॥

भावार्थः—जैसे किसान खेत में बीज बोकर धूप, जल, भूमि आदि से काम लेता हुआ अन्न उत्पन्न करके उपकार करता है, वैसे ही विद्वान् लोग सब पदार्थों का उपयोग करके संसार का उपकार करें ॥८॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—४ । ५७ । ३ ॥

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥९॥

पदार्थः—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर राजा और मन्त्री] (तत्) (वाम्) तुम दोनों का (कृतम्) काम (पनाय्यम्) बड़ाई योग्य है [कि] (पृथिव्याः) पृथिवी के और (रजसः) आकाश के (दिवः) व्यवहार के (वृषभः=वृषभौ) दोनों शासक [हो] । (उत) और (गविष्टौ) विद्या की प्राप्ति में (ये) जो (सहस्रम्) सहस्र (शंसाः) प्रशंसनीय गुण हैं, (तान् सर्वान्) उन सब को (इत्) ही (पिबध्यै) [सोम अर्थात् तत्त्व रस] पीने के लिये (उप) आदर से (यात) तुम सब लोग प्राप्त करो ॥९॥

भावार्थः—राजा और मन्त्री विज्ञान द्वारा यान विमान आदि से पृथिवी और आकाश में मार्ग करें और सब लोग विद्या की वृद्धि से तत्त्व रस प्राप्त करके सुखी होवें ॥९॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—८ । ५७ । ३ [सायण भाष्य अवशिष्ट वालखिल्य सू० ९ । म० ३] ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥

यह शासन काण्ड नाम बीसवां काण्ड पूरा हुआ ॥
और अथर्ववेद संहिता भी पूरी हुई ॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

वेदभाष्य के लिए दानदाता महानुभाव

जिन्होंने ५०००) रुपया प्रदान किया

१. श्री मन्त्रीजी आर्यसमाज काकड़वाड़ी, गिरगांव, वी० पी० रोड बम्बई ५०००
२. श्री जयदेवजी आर्य, ३१० सत्य बिल्डिंग, शीर्ष सर्किल, बम्बई-२२ ५०००
३. श्री ओ० पी० गोयल-मैसर्स एयर ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन, ३/५ आसफअली रोड नई दिल्ली-१ ५०००
४. मैसर्स रैनबक्सी लेबोरेट्रीज प्रा० लिमिटेड, ओखला, नई दिल्ली ५०००
५. श्री सरदारीलालजी अग्रवाल, C/O वेल्डन इलैक्ट्रिकल्स बम्बई ५०००
६. श्री सेठ योगेंद्र भाई मफतलालजी बम्बई ५०००
७. श्री आदित्य प्रतापसिंह शूरजी, कच्छ कैसल, वी० पी० रोड, बम्बई ५०००
८. श्री मैसर्स मोहन मिकिन ब्रूरीज, मोहननगर-गाजियाबाद ५०००
९. श्री सदाजीवितलालजी, पंजाबी चन्दू हलवाई, बम्बई ५०००
१०. श्री पी० डी० सिंहजी, राजगृह, २९ रास्ता, बान्द्रा, बम्बई- ५०००
११. श्री मा० शिवचरणदास जी, ११३ दरयागंज, दिल्ली-६ ५०००

जिन्होंने ३२००) रु० प्रदान किया

१२. श्री सेठ धरमसी मूलराज खटाऊ, दि. खटाऊ मकनजी स्पिनिंग एण्ड वीविंग कं० लि०, लक्ष्मी बिल्डिंग, वेलार्ड स्ट्रीट, बम्बई-१ ३२००

जिन्होंने २०००) रु० प्रदान किया

१. श्री आर० के० मेहरा चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा श्री मोहनलाल भयाना, सी० ५४ महारानी बाग, नई दिल्ली-१४ २०००

जिन्होंने १००१) रु० प्रदान किया

१. श्री जगदीश चड्ढा जी द्वारा पावर इंजीनीयरिंग कम्पनी, ४९५ । ४९७ कालबादेवी रोड, बम्बई-२ १००१
२. मैसर्स मोहिन्द्रनाथ एण्ड कम्पनी, डब्ल्यू ९०, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली १००१
३. श्री के० एस० दिग्विजय सिंह जी, दरबारगढ़ खरेड़ी, जामनगर १००१
४. श्री जोशी बुढ़ा काका महिम हलवा वाला बम्बई १००१
५. श्री मैसर्स ब्रजवासी दुग्धालय प्रा० लि० कालबादेवी रोड बम्बई १००१

जिन्होंने १०००) रु० प्रदान किया

१. श्री डा० दुःखनराम जी, ब्रजकिशोर पथ, पटना (बिहार) १०००
२. श्री बा० सोमनाथ जी मरवाहा एडवोकेट, ८ मलकागंज, दिल्ली-७ १०००
३. श्री दीवान रामशरणदास जी मण्डी केसरगंज, लुधियाना १०००

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. श्री सेठ भगवतीप्रसाद जी गुप्त, सागर विहार होटल, बम्बई-१ १०००)
५. श्री बाबूलालजी गुप्त, बुद्धिभवन, सूबे की गोठ, लश्कर (ग्वालियर) १०००)
६. श्री पं० मनोहर जी विद्यालंकार, ईश्वरभवन, खारीबावली, दिल्ली-६ १०००)
७. श्री ला० ज्योति प्रसादजी प्रधान आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली-६ १०००)
८. श्री गजानन्द जी आर्य, ९६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता-७ १०००)
९. श्री राय साहब चौधरी प्रतापसिंह जी, माडल टाऊन, करनाल १०००)
१०. श्री ला० दीवानचन्द जी ३३ बी पूसा रोड, नई दिल्ली-५ १०००)
११. श्री सत्याचरण शर्मा, रिटायर्ड फोरेस्टरेंजर पाटी गली के आगे, मुहल्ला छपेटी, इटावा (उ० प्र०) १०००)
१२. श्री स्वामी देवानन्द जी महाराज ग्राम कुनकुरा पो० इंचौली (मेरठ) १०००)
१३. श्रीमती प्रेमदेवी दर्गन, द्वारा श्री आसकरन दास सरदाना, ८, सरक्यूलर एवेन्यू, ईस्ट नांगल टाऊन शिप (पंजाब) १०००)
१४. श्री गोविन्द भाई के० नन्दवाना, २५६ वी० पी० मार्ग बम्बई-४ १०००)
१५. श्री ओम्प्रकाश जी मेहरा, प्रेम कुटीर, थर्ड फ्लोर, मैरिन ड्राईव, बम्बई १०००)
१६. श्री रतनचन्द जी सूद, श्री रतनचन्द चैरीटेबल ट्रस्ट, १९ गार्लफलिक रोड, नई दिल्ली-३ १०००)
१७. श्री गुलजारीलाल जी आर्य, ८०।८२ नागदेवी स्ट्रीट, बम्बई-३ १०००)
१८. श्री गण्डाराम जी मेहता, भारत टिम्बर, रे० रोड, बम्बई-१० १०००)
१९. श्री जीवनदास जी चरला, मलकागंज, दिल्ली-७ १०००)
२०. श्री श्रवणकुमार जी विद्यालंकार, देसरी (बिहार) १०००)
२१. श्री हरिश्चन्द्र जी खन्ना, म० न० ३४७, गली परजा, अमृतसर १०००)
२२. श्री डा० जगन्नाथ जी, भगवती देवी, कूचा घासीराम, दिल्ली-६ १०००)
२३. श्रीमती माता जानकी देवी जी तथा पुत्र श्री किशनदास जी, २६५ कूचा घासीराम, फतेहपुरी, दिल्ली-६ १०००)
२४. मै० अमर डाई स्टफ्स कम्पनी, अतुल प्रोडक्ट्स, क्लाथमार्केट दिल्ली-६ १०००)
२५. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, आर्यसमाज रोड, जामनगर (गुजरात) १०००)
२६. श्री रामजीप्रसाद जी गुप्त, पूर्णमासी भवन, मुगलसराय (वाराणसी) १०००)
२७. श्री आचार्य जी गुरुकुल सूपा (जि० नवसारी) गुजरात १०००)
२८. मैसर्स हरिनगर शुगर मिल्स बम्बई, द्वारा श्री राजा नारायण लाल, मालाबार हिल, बम्बई १०००)
२९. श्री डा० नारायण दास जी, फिजीशियन एण्ड आई स्पेशलिस्ट, फैंसी बाजार, गोहाटी (आसाम) १०००)
३०. श्री लेखराज जी गुप्त, ४७ ए जैसावाला फोर्ट, बम्बई १०००)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३१. श्री राजेश गुप्ता जी, १०३२८ मोतियाखान, नई दिल्ली-५५	१०००)
३२. श्री जगदीशचन्द्र भयाना जी, आर ४१ ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली-४८	१०००)
३३. मैसर्स कंवर किशन सिंह भयाना एण्ड कं०, सी० ५४ महारानी बाग, नई दिल्ली-१४	१०००)
३४. पन्नालाल जी मित्तल, सुभाष नगर, देहरादून (उ० प्र०)	१०००)
३५. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली-६	१०००)
३६. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज बाजार श्रद्धानन्द, अमृतसर (पंजाब)	१०००)
३७. श्री मन्त्री जी, आर्य केन्द्रीय सभा, १५ हनुमानरोड, नई दिल्ली-१	१०००)
३८. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, १९ विधानसरणि, कलकत्ता-६	१०००)
३९. श्री मन्त्रीजी आर्यसमाज, ९४ रवीन्द्रसरणि, बड़ा बाजार, कलकत्ता	१०००)
४०. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, बोकारो स्टील सिटी (धनबाद) बिहार	१०००)
४१. श्री गुरुदास राम भण्डारी, ८३ ब्र ज्यूक्रीसेण्ट एस० यू० कैलगरी, १४ अलब्रेटा, कनाडा	१०००)
४२. श्री एल० के० नन्दवाना जी, प्यूपिल्स बैंक बिल्डिंग, थर्ड, फ्लोर, भद्र, अहमदाबाद-६	१०००)
४३. श्री ओंकारनाथ जी, १५४ रे० रोड, बम्बई-१०	१०००)
४४. श्री छगनलाल, जी विजयवर्गीय, बेगम बाजार, हैदराबाद	१०००)
४५. श्री बनवारीलाल राधेमोहन जी, श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली-६	१०००)
४६. श्री मन्त्रीजी आर्यसमाज करोलबाग, नई दिल्ली-५	१०००)
४७. श्री वीरेन्द्र जी एम० ए० जालन्धर	१०००)
४८. श्री नारायणदास जी जुनेजा, बान्द्रा, बम्बई	१०००)
४९. श्री ला० रामगोपाल जी शालवाले मोती बाजार चांदनी चौक दिल्ली	१०००)
५०. श्री आनन्दीलाल पोद्दार चैरीटेबल ट्रस्ट, ३६ चोरंगी रोड कलकत्ता	१०००)
५१. श्री राधा कृष्ण जी जालान, जालान हाऊस झरिया	१०००)
५२. श्री बालगोविन्द जी एडवोकेट, राँची (द्वारा श्री डा० डी० राम जी सभाप्रधान)	१०००)
५३. श्री रघुवीरप्रसाद गुप्त २२३/डी० विधानसरणी कलकत्ता-६	१०००)
५४. श्री लक्ष्मी नारायण राधाकिशन कटरा प्यारेलाल चाँदनी चौक दिल्ली	१०००)

सभी दान दाताओं का हार्दिक धन्यवाद

ओम्प्रकाश त्यागी
मन्त्री :—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

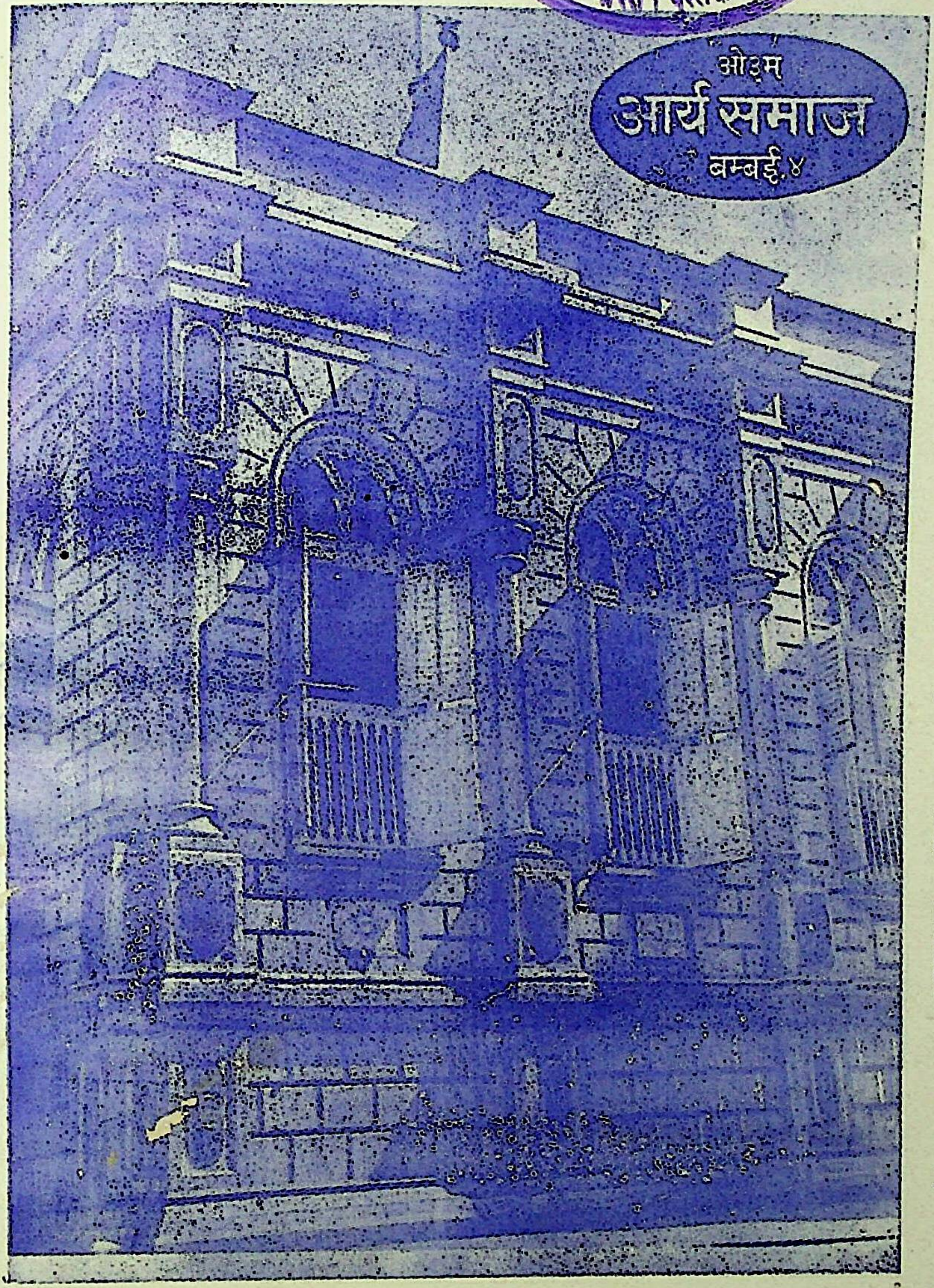

आर्य समाज काकड़वाड़ी

विट्ठलभाई पटेल रोड बम्बई-४ ने वेदभाष्य प्रकाशनार्थ
पांच हजार रुपये प्रदान किये—धन्यवाद !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच हज़ार रुपया वेदभाष्य प्रकाशनार्थ देने वाले महानुभाव

श्री जयदेव जी आर्य, बम्बई

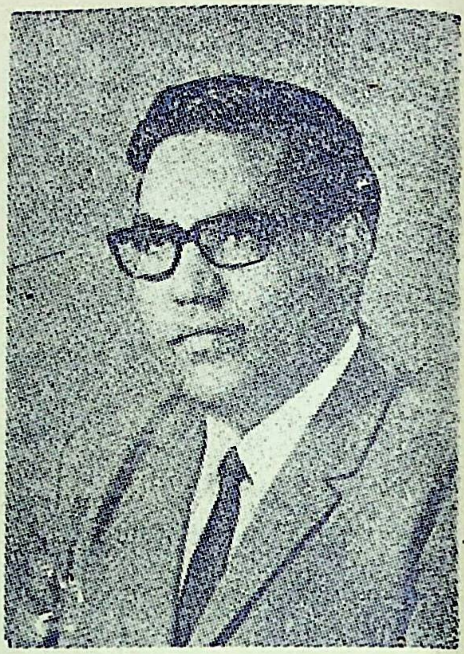

श्री ओ० पी० गोयल जी दिल्ली

माननीय श्री सेठ प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास बम्बई ने अपने चि० सुपुत्र श्री आदित्य जी के शुभ विवाह के अवसर पर ५०००) रुपये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली को वेद भाष्य के प्रकाशन में सहायतार्थ प्रदान किए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान ... भारती पुस्तकालय
तिथि.........
पु०सं०...2.18

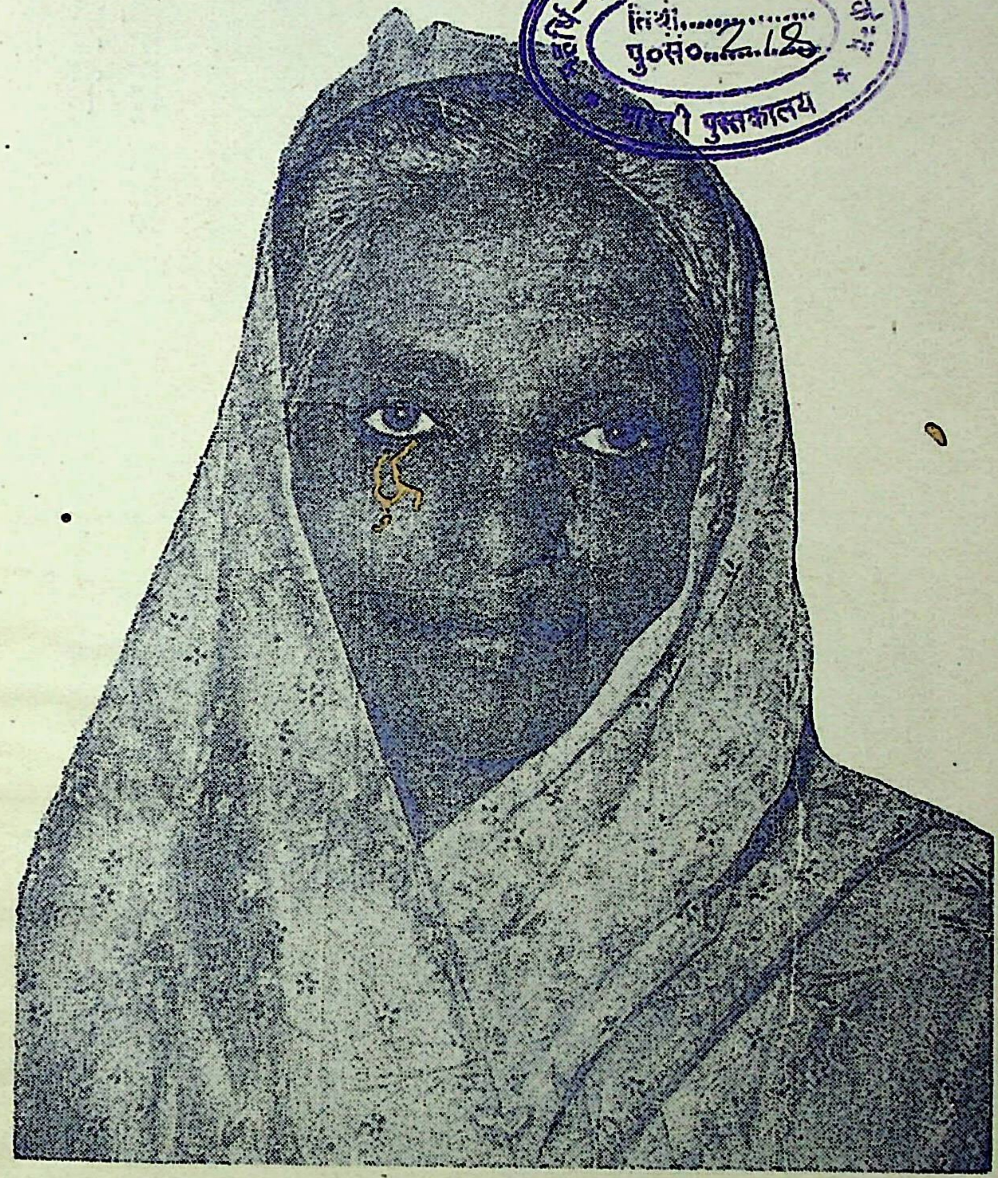

धर्म परायणा स्व० श्रीमती राजदेवी जी

(धर्मपत्नी श्री प्रद्युम्नसिंह जी बम्बई)

आपका ३१-८-७२ को बम्बई में स्वर्गवास हो गया। आपने अपने जीवनकाल में ही वेदभाष्य की सहायतार्थ सभा को ५०००) रुपये प्रदान करने का संकल्प किया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

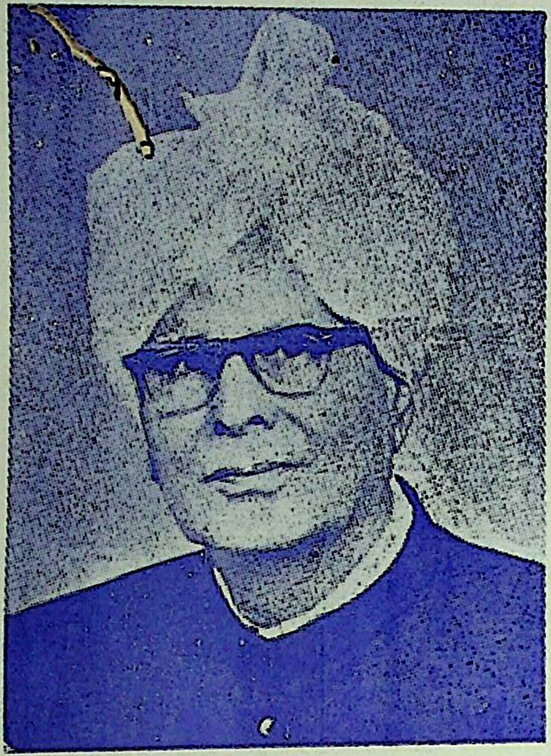

श्रीयुत भाई ज्ञानचन्द जी

आपके सुपुत्र श्री भाई मोहनसिंह जी, मैनेजिंग डायरेक्टर रनबक्सी लेबोरेट्रीज ओखला दिल्ली ने ५०००) वेदभाष्य के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली को सहायतार्थ प्रदान किये।

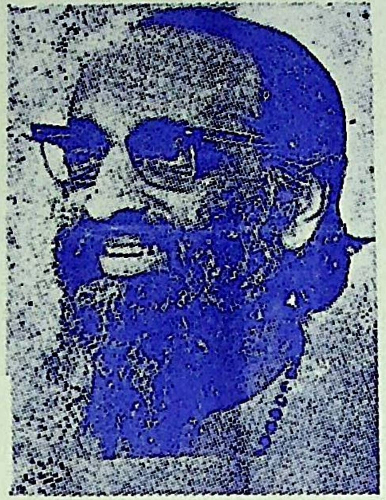

श्री स्वामी चिन्मयानन्द जी महाराज

आपके श्रद्धालु भक्त श्री सदा-जीवित लाल जी बम्बई निवासी ने पांच हजार रुपये वेदभाष्य के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली को प्रदान किये।

श्री मास्टर शिवचरणदास जी

दरियागंज दिल्ली ने वेदभाष्य की सहायतार्थ पाँच हजार रुपये प्रदान किये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी..........
पु०सं०.....212
गायत्री पुस्तकालय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद सब
सत्य विद्याओं
का पुस्तक है।
— महर्षि दयानन्द

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.